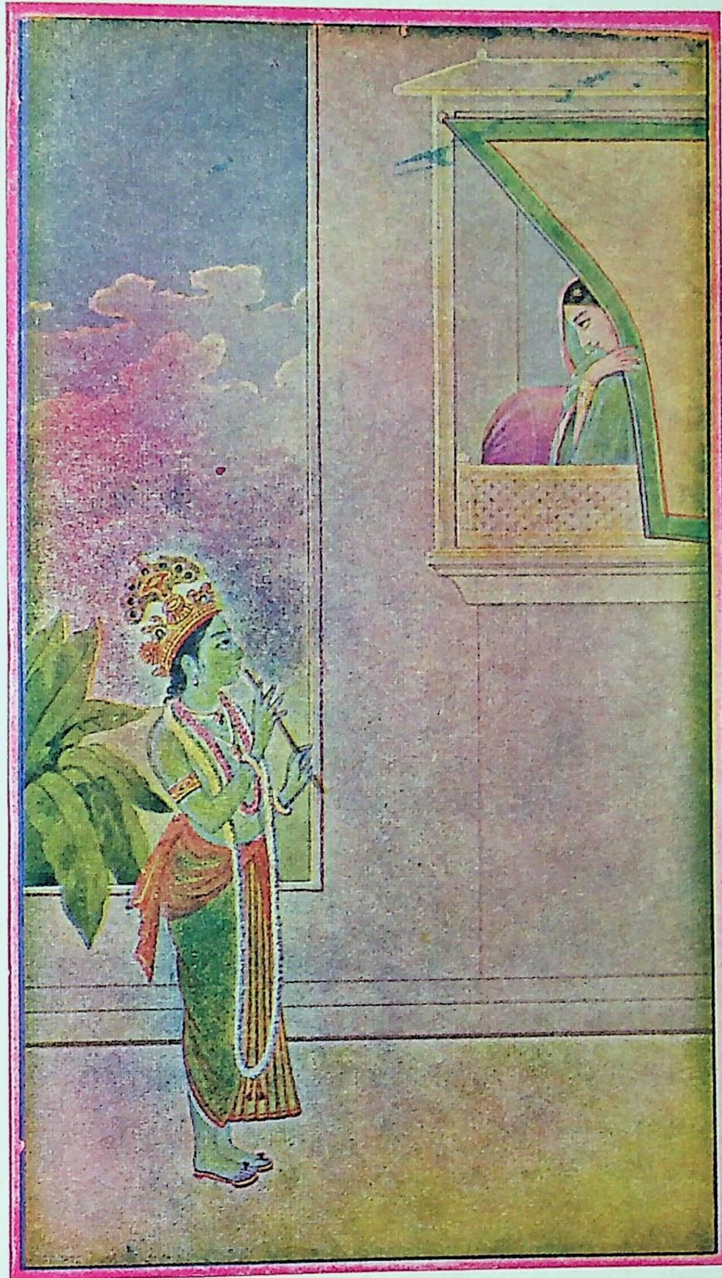
सुखसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत का हिन्दी अनुवाद

मेरी भवबाधा हरो, राधा नागरि सोय। * जा तन की झाँई परे, श्याम हरित द्युति होय॥



जिसका

श्रीकाशीवासी बाबू मक्खनलाल पंजाबी खत्री ने पंडित जोखूराम और जगन्नाथप्रसाद की सहायता से हिन्दी-भाषा में अनुवाद किया।

प्रकाशक—तेजकुमार-प्रेस-बुकडिपो, लखनऊ.

उत्तराधिकारी—नवलकिशोर-प्रेस-बुकडिपो, लखनऊ.

५० वीं बार] सर्वाधिकार सुरक्षित [सन् १९६८

मूल्य १६)

विषय-सूची

अध्याय विषय पृष्ठ

दूसरा स्कन्ध।

तीसरा स्कन्ध।

चौथा स्कन्ध ।

पाँचवाँ स्कन्ध ।

छठा स्कन्ध ।

सातवाँ स्कन्ध ।

आठवाँ स्कन्ध ।

नवाँ स्कन्ध ।

दसवाँ स्कन्ध।

ग्यारहवाँ स्कन्ध।

बारहवाँ स्कन्ध।

——:o:——

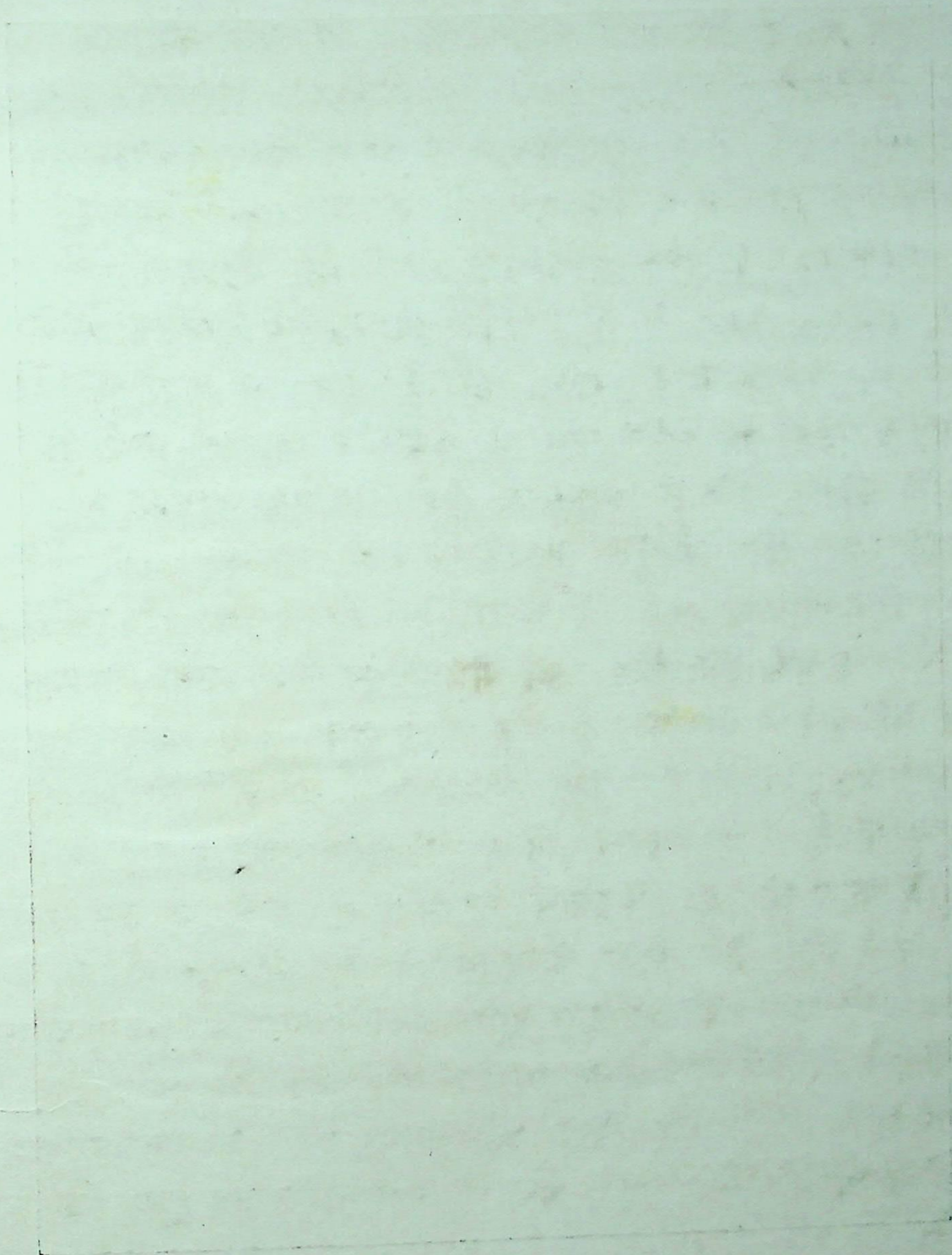
मंगलाचरण।

उल्था श्रीमद्भागवत बीच बोली उर्दू के पहिले श्रीगणेशजी के चरणों को याद व ध्यान करता हूँ, जिनके ध्यान करने से सब कामना आदमी की पूरी होती हैं। फिर आदि निराकार ज्योति परब्रह्म परमेश्वर को दण्डवत् करता हूँ, जिनकी माया से सब जड़ व चैतन्य की उत्पत्ति व पालन व नाश तीनों लोकों में होता है व सब जीवों में ब्रह्मा से लेकर चिउँटी तक उन्हीं के तेज का प्रकाश रहता है। सब से पहिले वही थे व महाप्रलय होने पर भी वही अविनाशी पुरुष स्थिर रहेंगे। श्रीकृष्णजी महाराज साँवली सूरत मोहनी मूरत पर न्यवछार होकर उनके पैरों पर शिर धरता हूँ, जिन्होंने अपनी इच्छा से वास्ते भार उतारने पृथ्वी व मारने कंस व जरासन्ध आदिक अधर्मी राजाओं व राक्षसों जो हरिभक्तों को दुःख देते थे व दर्शन देकर कृतार्थ करने अपने भक्त व सेवक वसुदेव व देवकी के यहाँ मथुरानगरी में सगुण अवतार लेकर अनेक लीला जगत में इस इच्छा से की कि उस लीला की कथा व वार्त्ता संसारी लोग आपस में कहि व सुनकर भवसागर पार उतर जावें। विष्णु भगवान् के चरणों को दण्डवत् करता हूँ, जो सब जीवों की उत्पत्ति व पालन करते हैं। श्रीमहादेवजी के पाँव पर मस्तक रखता हूँ जो आयुर्बल बीतने के उपरांत सब जीवों का नाश करते हैं। बाबा जवाहिरलाल सारस्वत ब्राह्मण रहनेवाले काशीपुरी अपने गुरु के चरण-कमल को साष्टांग दण्डवत् करता हूँ, जिनकी कृपा से श्रीराधाकृष्ण के चरणारविन्द में इस दास को प्रेम उत्पन्न हुआ। श्रीशारदा देवी व शेषनाग व नारदजी के चरणों पर शिर रखता हूँ, जो आठों पहर उस मुरलीमनोहर का गुणानुवाद गाते हैं। वसुदेव व देवकी व नन्द व यशोदाजी के चरणों की धूर अपने मस्तक पर चढ़ाता हूँ, जिनके तप करने से श्रीपरब्रह्म नारायण ने मर्त्यलोक में नरतन धारण करके अपने भक्तों को दर्शन दिया। श्रीवेदव्यास व शुकदेवजी के शरण होता हूँ, जिन्होंने इस अमृतरूपी

कथा श्रीमद्भागवत् को जगत् में प्रकट किया। इन्द्रादि देवता व सनकादिक ऋषीश्वर व श्रीबलराम व राधिका व रोहिणी के चरणों पर गिरकर ब्रज गोकुल व मथुरा देश पर न्यवछावर होता हूँ, जिस नगरी में श्रीपरब्रह्म नारायण ने अवतार लेकर बालचरित्र व रासलीला करके अपने भक्तों को सुख दिया। जितने ग्वाल बाल व गोपियाँ व ब्रजवासी व गौ बछड़े व कीट व पतङ्ग व हिरण आदिक वनचर जलचर व नभचर जीव मथुरा व गोकुल के हैं, सबको दण्डवत् करता हूँ। श्रीयमुनाजी के चरणों को जिसमें मुरलीमनोहर जलक्रीड़ा करते थे, गोवर्धन पहाड़ जिसको नन्दलालजी ने अपनी अँगुली पर उठाया था, उस वन को जहाँ पर मुरलीमनोहर गौ चराते थे, यमुना किनारे की रेत को जहाँ पर बाँकेविहारी ने रासलीला किया था, उस कदम्ब के वृक्ष को जिस पर श्यामसुन्दर चढ़कर बैठते थे, और सब सन्त व हरिभक्तों के चरणों पर अपना शिर रखकर श्रीकृष्णदासानुदास मक्खनलाल बेटा गंजनलाल खत्री पंजाबी रहनेवाला काशीपुरी मुहल्ला ब्रह्मनाल नायब कोतवाल थाने कालभैरव यह इच्छा रखता है कि उल्था श्रीमद्भागवत बारहों स्कन्ध का जो पहले के महात्मा व हरिभक्तों ने भाषा दोहा चौपाई में बनाया है, बीचबोली उर्दू के लिखूँ कि सब स्त्री व पुरुष व लड़का व बूढ़ा छोटा व बड़ा व ज्ञानी अज्ञानी उसके अर्थ को समझकर परमेश्वर के चरणों में प्रीति लगावें। दोहा व चौपाई कि वह बोली ब्रज की है सब लोग अर्थ कहे बिना समझ नहीं सकते जो उसे बूझकर परमेश्वर के चरणों में प्रेम लगावें। और यह दास महा अज्ञानी संसारी मोह में फँसा हुआ इतनी बुद्धि कहाँ रखता है जो उस परब्रह्म परमेश्वर का चरित्र, जिसके वर्णन करने में शेषनाग व गणेशजी व शारदा देवी थकित हैं, उनके अन्त को पहुँचने नहीं सकते बारहों स्कन्ध का उल्था करने सकूँ। इसलिए आप सब देवता व ऋषीश्वर व महात्माओं के चरणों पर, जिनके नाम ऊपर लिखे हैं, शिर अपना धरकर बड़ी अधीनताई से यह वरदान माँगता हूँ कि आप लोग दया करके ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि जिसमें यह पोथी श्रीमद्भागवत् बीच बोली उर्दू, जिस तरह इस दास की इच्छा है,

सम्पूर्ण हो जावे। यह पुराण सब वेदों का सार वास्ते पार उतरने सब जीवों के संसाररूपी समुद्र से श्रीशुकदेवजी ने मर्त्य लोक में जहाज बनाया है। बिना पढ़ने व सुनने उसके जन्म लेना व जीना आदमी का कि यह चैतन्य चोला है संसार में अकार्थ समझना चाहिए। कलियुगवासियों को संसारी मायामोह स्त्री व पुत्र द्रव्य व सुख में फँसे रहने से किसी समय जैसा चाहिए वैसा सावकाश नहीं रहता, जो मन अपना बीच भजन व स्मरण परमेश्वर के लगावें। कलियुग में आयुर्बल आदमी का बहुत कम होकर मरने का ठिकाना नहीं रहता, जिस पर भी रात-दिन कमाने-खाने की चिन्ता में रहकर अपने मरने व परलोक का डर नहीं रखता, इसलिए मनुष्य तन पाकर पहिले वह काम करना चाहिए जिसमें श्रीकृष्णजी महाराज त्रिभुवनपति जिन्होंने आदमी को अपनी महिमा से उत्पन्न किया है प्रसन्न होवें व अपना परलोक बने। मनुष्य-तन पाने का यही फल है कि आठ पहर में किसी बेला परमेश्वर को अपने मन से न भुलावे। आदमी का चोला कलियुग में अनेक अपराध व पापों से भरा रहकर सिवाय बुराई के कोई भलाई इससे जल्दी नहीं होती। इसी वास्ते परब्रह्म नारायण ने वेदव्यासजी का अवतार लेकर पोथी श्रीमद्भागवत को सब वेदों का सार निर्माण किया और श्रीशुकदेवजी महाराज ने यह अमृतरूपी कथा संसारी जीवों के पाप छूटने व भवसागर पार उतरने के वास्ते जगत् में प्रकट किया है। जिस तरह अमृत पीने से जीव अमर होकर नहीं मरता उसी तरह जो कोई इस कथा को प्रीति से सुने वह आवागमन से छूटकर मुक्ति पदवी पर पहुँचता है। इसलिए मक्खनलाल ने उल्था इस पोथी का सब छोटे बड़ों के समझने के वास्ते उर्दू बोली में संवत् १६०३ काशीपुरी में लिखकर सुखसागर नाम रक्खा व कहीं कहीं दोहा चौपाई सोरठा व कवित्त व्रज की बोली में जो बहुत प्यारी मालूम होती है जहाँ जैसा उचित देखा वहाँ वैसा लिखा और कुछ कथा व्रजविलास की जिस में रासक्रीड़ा बहुधा है सिवाय कथा श्रीमद्भागवत के इस पोथी में लिखी गई। अब थोड़ा सा समाचार अपना जिस तरह मुझे श्रीनारायणजी के

चरणकमल में प्रेम उत्पन्न हुआ वर्णन करता हूँ। मैंने काशीपुरी में जन्म लेकर यावनी विद्या पढ़ी, और बीस वर्ष की अवस्था में मुंशी वृन्दावन सरिस्तेदार अदालत फौजदारी मिर्जापुर के उपकार से कि जो मेरे बाप के मामा थे, मैं उसी जिले में बओहदे मुहर्रिरी थाने पर नौकर हुआ, और तेईस वर्ष की अवस्था में दारोगा होकर ऊपर थाने गोपीगंज परगने भदोई जमींदारी श्रीमहाराजाधिराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर काशीनरेश जो चौदह गुणनिधान हैं बदल आया। बत्तीस वर्ष की अवस्था तक काम, क्रोध, मोह और लोभ संसारी जाल में ऐसा फँसा रहा कि गुरमुख भी नहीं हुआ। गोपीगंज काशी और प्रयाग के मध्य रास्ते पर है इसलिए बहुत से साधु और महात्माजन तीर्थयात्रा करने के वास्ते उसी मार्ग से आया जाया करते हैं। मुझे उन सन्तों और महात्माओं के चरणों का दर्शन पाने व सत्संग से यह अभिलाषा हुई कि गुरुमुख हूजिए, जिससे अन्तकाल सुधरे। तब ऐसा सोचकर काशीजी में चला आया और श्रीबाबा जवाहिरलालजी सारस्वत ब्राह्मण छत्तीस गुणनिधान साक्षात् ईश्वर के अवतार का शिष्य हुआ और उन गुरुनारायण ने मुझे बारह अक्षर का मंत्र उपदेश दिया। जब उस मंत्र के जपने और गुरु के आशीर्वाद से मेरा हृदय शुद्ध हुआ और हरिचरणों में प्रेम उत्पन्न हुआ तब मैंने पोथी श्रीमद्भागवत को जो फैजी ने फारसी में उल्था की है, पढ़ना आरम्भ किया, जब उसके पढ़ने से मेरा प्रेम बढ़ा तब मुझे यह इच्छा हुई कि इसको उर्दू भाषा में, जिसे सब कोई समझ सकें, लिखूँ। सो मैंने पोथी श्रीमद्भागवत को महाराज फणीन्द्रचारी रहनेवाले गोपीगंज और पण्डित गोविन्दराम व मदन मोहनजी ओझा काशीवासी से जो छः शास्त्र और अठारह पुराण के जानने वाले हैं मिलान करके उर्दू में उल्था किया। सो श्यामसुन्दर व विश्वनाथजी और सब देवता काशीवासी की कृपा और दया से उल्था सम्पूर्ण हुआ और इस दास को यह ग्रन्थ लिखने पढ़ने का अभ्यास रखने से जैसा सुख मिला उसका हाल क्या कहूँ, इन्द्रलोक का भी सुख सत्संग के सामने कुछ वस्तु नहीं है। आदमी इस अमृतरूपी कथा को नित्य पढ़े व सुना करे तब





राधा कृष्ण

उसको मालूम होगा कि इसमें क्या गुण और लाभ है, जब तक आदमी इस कथा को नहीं पढ़ता व सुनता तब तक उसका सुख नहीं पाता।

दो० एक घड़ी आधी घड़ी और आध की आध। तुलसी संगति साधु से कोटि कटें अपराध॥

और यह दास कुछ संस्कृत व शास्त्र नहीं पढ़ा है, कदाचित् इस उल्था में कोई बात भूल गई हो तो आप लोग दया करके अपराध मेरा क्षमा करें, भूल व चूक में महात्मा लोग सदा से छोटों पर दया करते आए हैं।

स० श्रीभागवत कठोर बड़ी कछु बूझि परै नहिं अर्थ कि रीती।
बूझे बिना नहिं प्रेम जगै बिन प्रेम जगे उपजै नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं काम सरै बिन काम सरे न सरै जग नीती।
याही से बूझिबे हेत कहूँ उर्दू में खुलासे से गोविदगीती॥

दो० व्यासदेव शुकदेव को बिनय करों कर जोरि। हठवश उर्दू करत हौं क्षमो ढिठाई मोरि॥
अपने चित के चैन को उर्दू बैन बनाय। भवसागर उतरन चहौं गोविंद को गुण गाय॥

भागवत माहात्म्य।

पहिला अध्याय।

भक्ति व ज्ञान व वैराग्य की कथा।

शौनकादिक अट्ठासी हजार ऋषीश्वरों ने बीच स्थान नैमिषारण्य तीर्थ के सूत पौराणिक शिष्य वेदव्यासजी से कहा कि तुम कोई कथा व लीला परमेश्वर की ऐसी वर्णन करो जिसमें भक्ति व ज्ञान वैराग्य अधिक हो। इस घोर कलियुग में ज्ञान संसारी आदमियों का राक्षस के समान हो गया है इसलिये कोई सुख से न रहकर सब किसी को ऐसा क्रोध व मोह व लोभ उत्पन्न हुआ है कि आठों पहर उसी दुःख में व्याकुल रहते हैं। कोई ऐसा चरित्र भगवान् का वर्णन कीजिये कि कलियुगवासियों को हरिचरणों में भक्ति व प्रीति उत्पन्न होकर सुख मिले। यह बात सुनकर सूतजी बोले कि तुम लोगों ने बहुत अच्छी बात कलियुगवासियों के उद्धार करने वास्ते पूछी जो कालरूपी साँप के मुँह में पड़े हैं। सो वह कथा श्रीमद्भागवत है जो शुकदेवजी महाराज ने राजा परीक्षित से कही थी। जिस समय राजा को शृंगीऋषि के शाप देने के उपरान्त ऋषीश्वरों व मुनीश्वरों की सभा में शुकदेवजी ने गंगा किनारे

आनकर कथा श्रीमद्भागवत सुनाना आरम्भ किया उस समय देवताओं ने अमृत का कलश वहाँ लाकर शुकदेवजी से कहा महाराज यह अमृत का घड़ा आप लीजिये व हमलोगों को कथारूपी अमृत पिलाइये। यह बात सुनकर शुकदेवजी बोले, तुम्हारा अमृत हमारे काम का नहीं है, इस अमृत के पीने से आयुर्दा आदमी की देवता के बराबर होती है और ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र बदल जाते हैं। तुम्हारे अमृत से उत्तम यह कथा रूपी अमृत भगवान् का चरित्र है जिसके सप्ताह पढ़ने व सुनने से जीव अमर होकर कभी नहीं मरता व मुक्तिपदवी पर पहुँचकर आवागमन से छूटि जाता है। इसलिये राजा परीक्षित तुम्हारा अमृत पीने की इच्छा न रखकर भागवतरूपी अमृत पिया चाहता है। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने कहा कि नारद मुनि को सनकादिक ने सप्ताहपारायण श्रीमद्भागवत का सुनाकर उस कथा सुनने की विधि भी बतलाई है। यह बात सुनकर शौनकादिक ऋषीश्वरों ने सूतजी से पूछा कि नारद मुनि तो दो घड़ी से अधिक कहीं ठहरते नहीं थे वह सात दिन किस तरह एक जगह रहे, जो उन्होंने सप्ताहपारायण सुना, सनकादिक का दर्शन भी तो जल्दी किसी को नहीं मिलता वह नारदमुनि को कैसे मिले, और यह सप्ताहयज्ञ कहाँ पर हुआ था इसका हाल बतलाइये। यह वचन सुनकर सूतजी बोले कि एक समय सनक, सनन्दन, सनातन व सनत्कुमार चारों भाई घूमते हुए बदरिकाश्रम में आये। उन्होंने नारदजी को पहले से वहाँ उदास बैठे देखकर पूछा कि हे नारद मुनि! आज तुम मलीनस्वरूप चिन्ता में किस वास्ते बैठे हो और कौन बात का शोच तुमको है। नारदजी ने चारों ऋषीश्वरों को प्रणाम करके कहा कि हमें जिस बातकी चिन्ता है सो सुनिये। हमने सब तीर्थ काशी व गोदावरी व गया आदि में जाकर देखा तो उन तीर्थों पर कलियुग ने सब जीवों को संसारी माया में ऐसा फँसा रक्खा है कि सत्य व तप व आचार व दया व दान कलियुग में सब जाता रहा, केवल अपने पेट पालने की चिन्ता में सब मनुष्य विकल रहकर झूठ बोलते हैं व अभागी व पाखंडी होकर माता व पिता की सेवा नहीं करते। स्त्री व साले व

श्वसुरे की आज्ञा में रहकर द्रव्य के लालच से अपनी बेटी नीचकुल में बेचते हैं। जहाँ देखो वहाँ म्लेच्छ व शूद्रों की बढ़ती दिखलाई देकर ब्राह्मण व क्षत्री अपने कर्म व धर्म से रहित देख पड़ते हैं। मैं किसी को अपने धर्म पर स्थिर न देखकर जब चारों तरफ से फिरता हुआ मथुरा में यमुना किनारे पहुँचा तब वहाँ पर यह आश्चर्य की बात दिखलाई दी कि एक स्त्री युवती बैठी रोती है और दो मनुष्य बूढ़े उसके पास अचेत पड़े हैं और वह स्त्री चारों तरफ इस इच्छा से देख रही थी कि कोई आदमी मेरी सहायता करनेवाला आनकर प्राप्त हो। जैसे उसने मुझे वहाँ पर देखा वैसे खड़ी होकर बोली, महाराज एक क्षण ठहरकर मेरा दुःख सुन लीजिये; मेरे बड़े भाग्य थे जो आपने मुझे दर्शन दिया। जब मैंने उस स्त्री से पूछा कि तू कौन है और यह दोनों पुरुष जो अचेत पड़े हैं इनका हाल बतलाओ, तो उसने कहा कि मैं भक्ति हूँ और यह दोनों मेरे बेटे ज्ञान व वैराग्य हैं व इन पाँच सात स्त्रियों को जो यहाँ बैठी देखते हो यह सब गंगा व यमुना व सरस्वती आदि नदियाँ स्त्रियों का रूप धरकर मेरी टहल करने के वास्ते आई हैं। मैंने द्रविड़देश में जन्म लिया, करनाटक देश में सयानी होकर थोड़े दिन दक्षिण में रही, गुजरात में जाकर बूढ़ी हुई थी, अब बृन्दावन में आने से तरुण हो गई हूँ, पर मेरे दोनों बेटे कलियुगवासियों के घोर पाप करने से ऐसे बूढ़े व अचेत होकर पड़े हैं कि सामर्थ्य बोलने की नहीं रखते। इनके दुःख से मैं बहुत उदास रहती हूँ। यह बड़ी लज्जा की बात है कि मेरे पुत्र बूढ़े होंवे और मैं तरुण रहूँ। यह हाल देखकर संसारी लोग मेरी हँसी करते हैं। इसका कारण बतलाइये। जब स्त्रीरूप भक्ति ने मुझसे यह हाल पूछा तब मैंने अपनी बुद्धि से विचारकर कहा कि अब घोर कलियुग के आवने से तेरी व ज्ञान और वैराग्य की कुछ मर्यादा नहीं रही, केवल बृन्दावन आवने से तू तरुण हो गई है, पर तेरे बेटों को कलियुग में कोई नहीं जानता। इस कारण वह ज्यों के त्यों बूढ़े व निर्बल बने हैं। यह बात सुनकर उसने कहा कि जो कलियुग ऐसा दुष्ट है तो राजा परीक्षित ने किस वास्ते दया करके प्राण उसका छोड़ा, जिस पर दया

करने से सब लोगों का कर्म व धर्म जाता रहा उसे मार क्यों नहीं डाला। तब मैंने उसको उत्तर दिया कि परीक्षित ने कलियुग में बड़ा गुण देख-कर उसे नहीं मारा कि दूसरे युगों में हजारों वर्ष तक यज्ञ व तप व दान व धर्म करने से भी परमेश्वर का दर्शन जल्दी नहीं मिलता था सो कलि-युग में केवल भजन व कीर्तन करने से नारायणजी तुरंत प्रसन्न होकर दर्शन अपना देते हैं, पर कलियुगवासियों से सहज बात भी नहीं बन पड़ती, इसलिये कलियुग ने सब आदमियों का कर्म धर्म खो दिया है। तीर्थ में ब्राह्मण दान लेकर प्रायश्चित्त उसका नहीं करते, सब कोई काम व क्रोध व लोभ व अहंकार में भरे रहते हैं, कलियुग का यही धर्म है, इसमें केवल परमेश्वर का भजन व स्मरण उत्तम समझना चाहिये। यह बात सुनकर भक्ति ने कहा कि तुम धन्य हो, बड़े भाग्य से तुम्हारे दर्शन मुझे प्राप्त हुए। आप सब किसी का दुःख छुड़ाने के योग्य हैं, सो कोई उपाय करके ज्ञान व वैराग्य को तरुण कर दीजिये, जिसमें मेरा दुःख छूट जावे, मैं तुमको वारंवार दण्डवत् करती हूँ।

दूसरा अध्याय।

नारदजी का भक्ति को बोध करना और भक्ति के दुःख छुड़ाने वास्ते किसी साधु को ढूँढना ॥

नारदजी ने स्त्रीरूप भक्ति से कहा कि अब तू अपनी चिन्ता छोड़-कर श्रीकृष्णजी के चरणों में ध्यान लगा। उनका स्मरण व ध्यान करने से सब दुःख तेरा छूट जायगा। जिस समय राजा दुर्योधन की सभा में दुश्शासन ने द्रौपदी का चीर खींचकर नंगी करना चाहा था उस समय द्रौपदी के ध्यान करने से नारायणजी ने चीर बढ़ाकर उसकी लज्जा रक्खी और जब गजेन्द्र का पैर ग्राह ने पकड़ा और उसका प्राण बचाने वाला कोई नहीं रहा तब हाथी के स्मरण करते ही विष्णु भगवान् ने पहुँचकर गजेन्द्र का प्राण ग्राह से बचाया। हे भक्ति! तू वैकुंठनाथ को प्राण से भी अधिक प्यारी है, वह तेरे वास्ते नीच जाति में भी, जहाँ तेरा वास रहता है, वहाँ आनकर उसका उद्धार कर देते हैं। सतयुग और त्रेता और द्वापर में सज्जन लोग बहुत सा यज्ञ व तप व दान व धर्म करने

से मुक्ति पाते थे, कलियुग में केवल तेरी कृपा से सब जीवों का उद्धार हो जाता है, ज्ञान व वैराग्य को कोई नहीं पूछता, इसलिए तेरा दुःख छुड़ाने वास्ते बहुत अच्छा उपाय करके जगत् में तेरी महिमा प्रकट करे देता हूँ। जिनके हृदय में तेरा वास रहेगा वह लोग पापी होने पर भी यमराज का कुछ डर न रखकर तेरी दया से वैकुंठधाम को चले जावेंगे। परमेश्वर का दर्शन यज्ञ और तप व व्रत व दान करने से जो जल्दी प्राप्त नहीं होता वह भक्ति करने से सहज में मिलता है। जिन्होंने हजारों वर्ष नारायणजी का तप किया था उन्होंने भक्ति पाई है। परमेश्वर बहुत प्रसन्न होने से अपनी भक्ति देते हैं, इसलिए वैकुंठनाथ ने सब बातों पर भक्ति को श्रेष्ठ रक्खा है। यह बात सुनकर भक्ति ने कहा--हे नारद-जी! तुम धन्य हो, जिस तरह आपने मुझे धैर्य दिया उसी तरह मेरे बेटों को जो अचेत पड़े हैं, जगाओ। जब मेरे उठाने व पुकारने से ज्ञान व वैराग्य ने आँख भी नहीं खोली तब मैंने वेद का वचन व गीतापाठ पढ़ना आरम्भ किया। उसके सुनने से उन्होंने अपनी आँख खोलकर उठने के वास्ते चाहा पर निर्बलता से फिर अचेत हो गए। जब यह हाल देखकर मैं बहुत चिन्ता करने लगा कि ज्ञान व वैराग्य किस कारण नहीं उठते तब यह आकाशवाणी हुई कि हे नारद! क्यों इतना शोच करते हो बिना सत्संग नहीं जागेंगे, इनकी संगति करने के वास्ते साधु खोजो। यह वचन सुनते ही वहाँ से साधु ढूँढ़ता हुआ यहाँ तक पहुँचा, पर कलियुग होने से कोई साधु इच्छापूर्वक नहीं मिला। उसी चिन्ता में बैठा था कि आपका दर्शन प्राप्त हुआ, सो आप लोग ब्रह्मा के पुत्र बड़े योगी व ज्ञानी सदा बाल-अवस्था रहकर केवल कथारूपी धन अपने पास रखते हो और तुम्हारी तपस्या का फल कोई वर्णन नहीं कर सकता किस वास्ते कि आपने जय और विजय वैकुंठ के द्वारपालकों को पृथ्वी पर गिरा दिया, ऐसी सामर्थ्य सिवाय तुम्हारे दूसरे में नहीं है। जिस तरह आपने दया करके अपना दर्शन मुझे दिया उसी तरह भक्ति व ज्ञान व वैराग्य का दुःख छुड़ाकर उनको सुख दीजिए, जिसमें चारों वर्ण के आदमी तुम्हारा यश गावें व कलियुगवासियों का मन शुद्ध व पवित्र

हो जावे। यह बात सुनकर सनत्कुमार बोले कि हे नारदजी, तुम उदासी छोड़कर कुछ चिन्ता मत करो, जितने श्यामसुन्दर के दास हैं उन सबों में तुम श्रेष्ठ हो। आपको भक्ति का दुःख छुड़ावने के वास्ते उपाय करना उचित है। पिछले समय के महात्मा व ऋषीश्वरों ने ज्ञान व धर्म के अनेक संसारी मार्ग आदमियों को वैकुण्ठ पहुँचाने के वास्ते बनाए हैं, पर उन कठिन मार्गों पर किसी से चला नहीं जाता और वह राह बतानेवाला गुरु भी जल्दी नहीं मिलता। इसलिए जो कोई श्रीमद्भागवत सच्चे मन से सुने उसको वह राह मिल सकती है। जो कथा शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को सुनाई थी वही कथा सुनने से भक्ति व ज्ञान व वैराग्य को भी सामर्थ्य होकर दुःख उनका छूट जायगा, परमेश्वर के चरणों में प्रेम बढ़ने के वास्ते इससे उत्तम कोई दूसरी राह नहीं है। यह बात सुनकर नारदजी बोले—महाराज, मैंने वेद व गीता का पाठ पढ़कर ज्ञान व वैराग्य को बहुत जायगा, पर उन्हें उठने की सामर्थ्य नहीं हुई, श्रीमद्भागवत कहने से किस तरह जागेंगे। सनत्कुमारजी ने कहा कि हे नारद! सब वेदों का सार श्रीमद्भागवत समझना चाहिए, उसके एक एक श्लोक व पद में वेदों का अर्थ इस तरह भरा है, जिस तरह दूध में घी रहता है, जब तक उसको उपाय के साथ दूध से नहीं निकालते तब तक घी का स्वाद दूध में नहीं मिलता, उसी तरह सब वेद व पुराण को व्यासजी ने मथन करके उसका तत्त्व श्रीमद्भागवत में लिखा है। और नारदजी तुम जान बूझकर क्यों भूलते हो, चार श्लोक मूल श्रीमद्भागवत के नारायणजी ने ब्रह्मा को उपदेश किए और तुमने उनसे सुनकर वेदव्यास से कहा, वेदव्यासजी ने उसे विस्तारपूर्वक लिखकर भागवतपुराण बनाया, वही कथा सब किसी का दुःख छुड़ाने व संसाररूपी समुद्र से पार उतारने वाली है। यह वचन सुनते ही नारदजी हाथ जोड़कर बोले कि आपने बड़ी दया करके यह हाल कहा व हमारे भाग्य थे जो आपका दर्शन मिला, बिना भाग्य के सत्संग नहीं मिलता। अब यह बतलाइये कि इस भागवतरूपी ज्ञानयज्ञ को किस तरह से कहाँ पर करना चाहिए और कितने दिन में वह यज्ञ सम्पूर्ण होता है।

तीसरा अध्याय।

सनत्कुमारजी का श्रीमद्भागवत की सप्ताहविधि व उसके सुनने से जो फल मिलता, वर्णन करना।

सनत्कुमारजी बोले कि हे नारदमुनि, तुमने बहुत अच्छी बात पूछी, हरद्वार में गंगा किनारे यह यज्ञ करने के वास्ते अच्छा स्थान है। वहाँ पर वृक्षों की छाया घनी होकर बहुत से ऋषीश्वर व मुनीश्वर ज्ञान-यज्ञ के चाहनेवाले रहते हैं। उस जगह तुम्हारे कथारूपी यज्ञ करने से ज्ञान व वैराग्य भी तरुण होकर जाग उठेंगे व भक्ति का सब दुःख छूट जायगा। यह बात सुनकर नारदजी बोले, महाराज! बिना तुम्हारे चले वह यज्ञ नहीं हो सकता, इसलिए आप भी हमारे साथ वहाँ चलिए। यह वचन सुनते ही सनकादिक चारों भाई व नारदजी बदरिकाश्रम से चलकर हरद्वार में गंगा किनारे आन पहुँचे। उन्होंने ऋषीश्वरों व मुनीश्वरों से जो वहाँ पर थे कहा कि हम इस स्थान पर भागवतरूपी यज्ञ करते हैं, जिसको कथारूपी अमृत पीना हो वह आनकर सुने। यह समाचार सुनते ही भृगु व वशिष्ठ व च्यवन व मेधातिथि व गौतम व परशुराम व विश्वामित्र व मार्कंडेय व वेदव्यास व पराशर आदि जितने ऋषीश्वर व मुनीश्वर उस तीर्थ पर रहते थे वहाँ सब आए और सिवाय ऋषीश्वरों के वेद जो मूर्तिमान् हैं व गंगाजी इत्यादि नदियाँ व गन्धर्व व किन्नर व यक्ष व नागादिक चौदहों भवन के लोग कथारूपी अमृत पीने वास्ते उस ज्ञान-यज्ञ में आकर इकट्ठे हुए। जब नारदजी ने सब किसी को बड़े आदरभाव से बैठाला तब वैष्णव व विरक्तों व महापुरुषों ने जय शब्द व शंखध्वनि करना आरम्भ किया। देवता लोग अपने-अपने विमानों पर चढ़कर वहाँ कथा सुनने के वास्ते आ पहुँचे व ज्ञानरूपी यज्ञ पर फूल वर्षने लगे व सब श्रोता इस विचार में चित्त लगाकर बैठे कि देखें सनकादिक व नारदजी कौन लीला व कथा परमेश्वर की कहते हैं। उस समय सनत्कुमार ने नारदजी से कहा कि हम तुमको वह कथा सुनाते हैं जो शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कही थी। वह पुराण अठारह हजार श्लोकों में है, उनके पढ़ने और सुनने से मुक्ति हाथ में खड़ी रहती

है। श्रीमद्भागवत सुनने के बराबर दूसरे पुराण के सुनने व हजारों अश्वमेध व वाजपेय यज्ञ करने से फल नहीं मिलता। काशी व गया व प्रयाग व कुरुक्षेत्र व पुष्करादि किसी तीर्थ का स्नान कथा सुनने के बराबर फल नहीं रखता। जब तक संसारी लोग यह कथा नहीं सुनते तब तक उनके अनेक जन्म का पाप गर्जता है। अमृतरूपी भागवत सुनते ही उनके पाप इस तरह छूटकर भाग जाते हैं जिस तरह सूर्य के निकलते ही कुहिरा नहीं रहता। जो मनुष्य प्रतिदिन एक या आधा श्लोक भागवत का पढ़ा करे उसकी भी मुक्ति हो जाती है व जो लोग नित्य भागवत पढ़कर औरों को सुनाते हैं उनके करोड़ों जन्म का पाप जलकर भस्म हो जाता है। जो कोई पोथी श्रीमद्भागवत सोने के सिंहासन पर धरकर वैष्णव व साधु को दान देता है उसे परमेश्वर अपनी ज्योति में मिला लेते हैं। जिसने मनुष्य का तन पाकर भागवत कथा नहीं सुनी उसे धिक्कार है, उसे चांडाल के बराबर समझना चाहिए, ऐसा पूत जनने से उसकी माता बाँझ रहती तो अच्छा था। कलियुग में यज्ञ व तप व दान व धर्म आदमी से कुछ नहीं होता और उसका मन एक तरफ नहीं लगता, इस वास्ते परब्रह्म नारायण ने वेदव्यासजी का अवतार लेकर यह कथा बनाई है। जो कोई सात दिन तक चित्त लगाकर इस पुराण का सप्ताह सुने उसको यज्ञ व तप व व्रत व दान सबका फल प्राप्त होकर मुक्ति पदार्थ मिलता है। जब उद्धव ने एकादशस्कन्ध में सब ज्ञान श्रीकृष्णजी से सुनकर कलियुग का लक्षण जाना तब श्यामसुन्दर के चरणों का ध्यान धरकर मुरलीमनोहर से पूछा कि हे दीनानाथ! आप तो वैकुंठधाम को जाते हैं संसारी लोगों का उद्धार किस तरह होगा। तब त्रिभुवनपति बोले कि हे उद्धव! तुम बदरिकाश्रम में जाकर तप करो, तुम्हारी मुक्ति हो जावेगी। मेरे जाने उपरान्त एक भागवतरूपी मूर्ति हमारी जगत् में रहेगी, जो मनुष्य सप्ताह भागवत सच्चे मन से सुनेगा, उसको हमारा दर्शन हृदय में हो जावेगा। संसारी लोगों का दुःख छुड़ानेवाला यह पारायण समझना चाहिए, सिवाय इसके और कोई दूसरी वस्तु आदमी को मायारूपी जाल से छुटाने वास्ते उत्तम नहीं है।

इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जब सनत्कुमार ने सप्ताह पारायण श्रीमद्भागवत का सुनाना आरम्भ किया व सब कोई सुनने लगे तब उस अमृतरूपी कथा के प्रताप से वह दोनों बूढ़े, ज्ञान व वैराग्य, जो अचेत पड़े थे तरुण होकर उठ बैठे, व भक्ति का दुःख छूट गया, व उनका दर्शन सब सभावाले पाकर गोविन्द व हरे व मुरारे कहने लगे, व भक्ति व ज्ञान व वैराग्य का दर्शन मिलने से उनको भक्ति उत्पन्न होकर कलियुग का दुःख जाता रहा, व सब किसी का मन सप्ताह कथा सुनकर शुद्ध व एकचित्त हो गया।

—— ——

चौथा अध्याय।

नारायणजी का सप्ताह सुननेवालों को दर्शन देना, व आतमदेव ब्राह्मण का इतिहास वर्णन करना कि जिसकी स्त्री बड़ी कर्कशा थी।

सूतजी ने शौनकादिक से कहा कि जब सब वैष्णव व ऋषीश्वर सप्ताह सुनकर एकचित्त हो गये तब श्रीवृन्दावनविहारी सांवली सूरति मोहनी मूरति ने पीताम्बर ओढ़े व करधनी व मुकुट व कुंडल जड़ाऊ पहिने केसर व चन्दन की खौर माथे पर लगाये उद्धव आदिक बैकुंठ-वासी भक्तों को साथ लिए उस ज्ञान-यज्ञ में आनकर सबको दर्शन दिया। अमृतरूपी कथा सुनकर पहिले से साधु व वैष्णव के हृदय में श्याममूर्ति दिखलाई देने लगी थी सो प्रकट में भी सब किसी ने उसका दर्शन करके अपना-अपना जन्म सफल जाना, व वैकुंठनाथ को देखते ही जितने वैष्णव व ऋषीश्वर उस सभा में बैठे थे जय-जय बोलकर उठ खड़े हुए व मलया-गिरि चन्दन व फूलों की वर्षा उनपर करने लगे, व धूप दीप नैवेद्य से पूजा करने उपरांत शंखादिक बजाकर साष्टांग दंडवत् किया। यह सब आनन्द देखकर नारदमुनि बोले कि हे सनत्कुमारजी! आपने जो सप्ताह यज्ञ किया इसमें जिसने जिसने यह कथा सुनी वह सब पवित्र होकर मुक्ति पदवी पर पहुँचे, अब और कौन-कौन लोग यह अमृतरूपी कथा सुनकर भवसागर पार उतरेंगे उनका हाल वर्णन कीजिए। सनत्कुमार ने कहा कि जो कलियुग के मनुष्य बड़े पापी व दुष्ट व लालची व झूठे व चुगुल व कामी उत्पन्न

होकर अपने क्रोध से आप जले मरते हैं वह लोग भी इस सप्ताह यज्ञ के सुनने से पवित्र होकर मुक्ति पदवी को पहुँचेंगे और जो कोई कलियुग में माता व पिता की सेवा व अपने कर्म व धर्म से रहित व लोभ में डूबा रहकर झूठा व चोर व ठग होगा वह भी यह कथा सुनने से भवसागर पार उतर जावेगा। अब हम एक कथा पुरानी तुमसे कहते हैं सुनो—दक्षिण दिशा में तुंगभद्रा नाम एक नदी है, उसके किनारे एक नगर में आत्मदेव नाम का ब्राह्मण बड़ा पंडित व तेजवान् व धर्मात्मा रहता था। उस ब्राह्मण की स्त्री का धुन्धुली नाम था, वह बड़ी कर्कशा थी, वह दिन-रात संसारी माया में फँसी रहकर अपने पति को सब तरह का दुःख देती थी, पर वह ब्राह्मण ज्ञानी 'परमेश्वर की इच्छा' इसी तरह समझ कर उसी के साथ अपने दिन काटता था। जब उस ब्राह्मण के पुत्र न होकर बुढ़ाई आई तब उसने सन्तान होने के वास्ते व्रत और नेम रखना आरम्भ करके बहुत गाय व सोना ब्राह्मणों को दान दिया, तिस पर भी उसकी इच्छा नहीं पूर्ण हुई तब वह ब्राह्मण अपने मन में बहुत उदास होकर घर से निकला और अपना शरीर त्याग करने की इच्छा रखकर वन में चला गया। जब दोपहर को प्यास से बहुत व्याकुल होकर तालाब के किनारे स्नान करके पानी पिया व उसी जगह बैठकर सन्तान होने वास्ते चिन्ता करने लगा तब परमेश्वर की इच्छा से एक संन्यासी महापुरुष उस तालाब पर आन पहुँचा। जब ब्राह्मण ने उसका तेज देखकर बड़े आदर भाव से अपने पास बैठाला तब उस महापुरुष ने पूछा कि कहो ब्राह्मणदेवता, तुम इस वन में किस वास्ते उदास बैठे हो, अपने शोच का हाल हमें बताओ। यह वचन सुनते ही ब्राह्मण आँसू भरने उपरांत हाथ जोड़कर बोला कि महाराज, मैंने पिछले जन्म में बड़े पाप किये थे, इसलिए मेरे सन्तान नहीं हुई। बेटा न होने से पितर लोग नरक में जाते हैं, यही दुःख समझकर अपना प्राण देने यहाँ आया हूँ। जगत् में जिसके पुत्र न हो उसका जन्म लेना व जीना अकार्थ है, व उसके धन व कुल पर धिक्कार समझना चाहिए। मैं ऐसा अभागी हूँ कि मेरी पाली हुई गौ भी बाँझ है, व मेरा लगाया हुआ वृक्ष भी नहीं फलता, जो फल बाजार से मोल लाता हूँ वह भी सूख

जाता है। जब वह ब्राह्मण यह सब बातें उस महापुरुष से कहकर बड़ा विलाप करने लगा तब वह सन्यासी ब्राह्मण को बहुत धैर्य देकर बोला कि मैं तेरे पुत्र होने के वास्ते विचार करता हूँ, तू उदास मत हो। फिर उस महापुरुष ने ब्राह्मण की कर्म रेखा देखकर कहा कि हे ब्राह्मण, तेरे भाग्य में सन्तान नहीं लिखी है इसलिए सात जन्म तक तेरे पुत्र उत्पन्न न होगा, किस वास्ते इतना रोकर अपने प्राण देता है। संसारी माया सब झूठी है, जगत् में सिवाय दुःख के सुख नहीं मिलता, व कलियुग में पुत्र से सबको सुख प्राप्त नहीं होता, बेटा माता-पिता की सेवा नहीं करता, अपनी स्त्री व साले व श्वशुर की आज्ञा में रहकर माता-पिता को दुःख देता है। स्त्री व पुत्र व भाई आदि सब अपने मतलब के साथी होते हैं। तिस पर भी माया का ऐसा हाल है कि अन्त समय संसारी लोग अपना मन स्त्री व पुत्र में लगाए रहकर परमेश्वर का स्मरण नहीं करते, इसलिए उनको नरक में जाकर दुःख भोगना पड़ता है। हे ब्राह्मण, तू पुत्र की इच्छा छोड़कर हरि-चरणों का ध्यान कर, इसमें तुझे बड़ा सुख मिलेगा। यह बात सुनकर वह ब्राह्मण बोला–महाराज, मुझे पुत्र उत्पन्न होने के सिवाय कुछ ध्यान व ज्ञान नहीं सूझता, आप कृपा करके एक बेटा मुझको दीजिये, नहीं तो तुम्हारे ऊपर प्राण देता हूँ। जब संन्यासी ने ब्राह्मण की यह दशा देखी तब फिर उसे समझाकर कहा कि हे ब्राह्मण! सन्तान के वास्ते राजा चित्रकेतु ने दश हजार विवाह किये, तिस पर भी बेटे का सुख नहीं पाया। इसी तरह बहुत से राजा पुत्र की चाहना में मर गये व मनोरथ उनका सिद्ध नहीं हुआ। जो लोग भाग्यहीन हैं उनका उद्यम निष्फल होता है, इसलिए सन्तान की चिन्ता छोड़ दे। यह बात सुनकर ब्राह्मण ने कहा कि आप जितनी बातें ज्ञान की कहते हैं, मेरे चित्त में एक नहीं धँसती, दया करके कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे मेरे पुत्र हो। इस तरह की हठ देख के संन्यासी ने एक फल उस ब्राह्मण को देकर कहा कि तू यह फल ले जाकर अपनी स्त्री को खिला दे। परमेश्वर की कृपा से तेरे पुत्र होगा। जब वह महापुरुष फल देकर किसी तरफ चला गया तब आत्मदेव घर पहुँचने उपरांत वह फल अपनी स्त्री को देकर बोला कि

इसके खाने से तेरे लड़का होगा। यह बात कहकर ब्राह्मण देवता कहीं बाहर चले गए, इतने में एक सखी उसके पास आन पहुँची। तब ब्राह्मणी ने उससे कहा कि यह फल मेरे स्वामी ने पुत्र होने के वास्ते कहीं से लाकर मुझे दिया है, पर मैं गर्भ रहने के डर से न खाऊँगी। गर्भवती स्त्री का जी मतलाकर उससे भोजन नहीं किया जाता, गर्भ रहने से मुझे चलने-फिरने में दुःख होगा, घर के भीतर बैठना पड़ेगा, व सखी-सहेलियों की भेंट छूटकर गाने-बजाने में विघ्न होगा, व जनते समय बहुत दुःख होकर कदाचित् लड़का पेट में टेढ़ा हो जावे तो मेरा प्राण जाता रहेगा, व मेरा शरीर कोमल है दुःख कैसे सहूँगी, यदि कुशल से लड़का भी हुआ तो उसके पालने में बड़ा कष्ट होगा, बालक कपड़े व बिछौने को मल व मूत्र से भ्रष्ट कर देता है उस दुर्गन्धि में मुझसे किस तरह रहा जायगा। इस सब दुःखों के उठाने से बाँझ व विधवा अच्छी होती हैं जिनको गर्भ का दुःख उठावना नहीं पड़ता। ऐसी ऐसी अनेक बातें उस ब्राह्मणी ने अपनी सखी से कहकर वह फल नहीं खाया, उठाकर रख छोड़ा, व अपने पति से झूठ कह दिया कि मैंने फल खा लिया। थोड़े दिन उपरांत उस ब्राह्मणी की बहिन ने वहाँ आकर पूछा कि हे बहिन, तुम इन दिनों में बहुत दुबली व उदास मालूम होती हो, इसका क्या कारण है। तब उसने अपनी बहिन से कहा कि मेरे स्वामी ने एक फल पुत्र होने के वास्ते कहीं से लाकर मुझे दिया था सो मैंने गर्भ रहने के दुःख से वह फल नहीं खाया व अपने पति से फल खाने का हाल झूठ कह दिया, व गर्भ मेरे नहीं है इस बात का उत्तर क्या देऊँगी, इस कारण मैं उदास रहती हूँ। यह बात सुनकर उसकी बहिन बोली कि तू कुछ चिन्ता मत कर मेरे एक महीने का गर्भ है सो तू अपने पति से कह दे कि मेरे गर्भ रहा, जब मेरे लड़का होगा तब मैं वह बालक तुझे देकर उसको तेरा बेटा प्रकट करके दूध पिलाया करूँगी, इस बात की खबर तेरे पति को न होगी और जो फल तेरा स्वामी लाया है वह तू अपनी गाय को खिला दे। यह बात सुनते ही उस ब्राह्मणी ने प्रसन्न होकर वह फल गाय को खिला दिया व अपनी बहिन को आत्मदेव से छिपाकर घर में रक्खा।

जब दशवें महीने उसके बेटा हुआ तब उस ब्राह्मणी ने अपने पति से कहला भेजा कि मेरे लड़का हुआ है। यह हाल सुनते ही आत्मदेव ने मंगलाचार मनाकर ब्राह्मण व याचकों को बहुत-सा दान व दक्षिणा दिया। ब्राह्मणी ने अपने पति से कहा कि मेरे दूध नहीं उतरता व मेरी बहिन के दूध होता है उसका बालक छः महीने का होके जाता रहा, तुम कहो तो उसे दूध पिलाने के वास्ते बुलाकर यहाँ रक्खूँ। ब्राह्मण ने कहा बहुत अच्छा, बालक को किसी तरह पालना चाहिए। जब इतनी बात ब्राह्मण ने कही तब ब्राह्मणी की बहिन प्रकट होकर लड़के को दूध पिलाने लगी। ब्राह्मण ने उस बालक का नाम धुन्धकारी रक्खा। जब दो महीने का धुन्धकारी हुआ तब गौ के भी उस फल के प्रताप से एक लड़का बहुत सुन्दर मनुष्यरूपी जन्मा, पर उस बालक के दोनों कान गौ के समान थे। उसको देखकर ब्राह्मण ने बड़ी प्रसन्नता से गोकर्ण नाम रक्खा व दोनों लड़कों को अपना समझ अच्छी तरह पालन करने लगा। जब वह दोनों बालक सयाने हुए तब गोकर्ण पढ़-लिखकर बड़ा पंडित व बुद्धिमान् व धर्मात्मा हुआ, व धुन्धकारी महामूर्ख, अधर्मी व चोर व जुआरी होकर कुकर्म करने लगा। जब वेश्यागमन करने में सब धन घर का खर्च कर डाला तब धुन्धकारी अपने माता-पिता को मार पीट के सब कपड़ा व बरतन घर से ले गया व उसको भी बेचकर सब द्रव्य वेश्या को दे डाला। जब यह दशा अपने बेटे की ब्राह्मण देवता ने देखी तब रोकर कहने लगे कि ऐसा अधर्मी पुत्र होने से जो मुझे दुःख होता है मैं बिना सन्तान के बहुत अच्छा था, इस जीने से मेरा मरना अच्छा है, जिससे महाकष्ट व दुःख से छूट जाऊँ। यह हाल आत्मदेव का देखकर गोकर्ण ने कहा कि हे पिता, संसार में सिवाय दुःख के सुख किसी को नहीं होता, तुम किस वास्ते इतनी चिन्ता करते हो, जगत् में राजा व प्रजा धनी व कंगाल जितने आदमी हैं सबको एक दुःख लगा रहता है। जिसने संसारी माया छोड़कर परमेश्वर में ध्यान लगाया उसको सुख होता है, इसलिये तुम अज्ञान तजकर स्त्री व पुत्र का मोह मन से तोड़ डालो व वन में जाकर परमेश्वर का भजन करो

तब तुमको सुख मिलेगा। संसारी माया मोह में फँसे रहने से आदमी नरक भोग करता है। जब यह बात गोकर्ण की सुनकर ब्राह्मण देवता को कुछ ज्ञान हुआ तब उसने गोकर्ण से कहा कि तुमने बहुत अच्छी सम्मति हमको दी है, पर बिना ज्ञान सीखे वन में जाकर क्या करूँ, जो मेरे उद्धार का उपाय हो सो भी बतला दे। यह वचन सुनकर गोकर्ण बोला कि हे पिता! यह मन तुम्हारा संसार की माया-मोह के बीच में लगा है, इस मन को तुम उनकी तरफ से खींचकर हरिचरणों में लगाओ, वन में अकेले बैठकर परमेश्वर का ध्यान करो, व संसारी माया व तृष्णा को छोड़ देव, यह साधन करने से बहुत सुख पाकर मुक्त पदवी पर पहुँचोगे। यह ज्ञान सुनते ही आत्मदेव ने प्रसन्न होकर संसारी माया छोड़ दी, व वन में जाकर परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करने लगा। कुछ दिन बीते तन अपना त्यागकर मुक्त पदवी पर पहुँचा।

—:०:—

पाँचवाँ अध्याय।

वेश्या के फाँसी लगाने से धुन्धकारी का मरना व सप्ताहपारायण सुनकर मुक्त होना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जब वह ब्राह्मण वन में चला गया तब धुन्धकारी ने अपनी माता को मारपीटकर कहा कि द्रव्य घर में कहाँ गड़ा है, हमको बतला दे नहीं तो तुझको मार डालूँगा। उसने मारने के डर से कहा कि कल बतला दूँगी। उस समय यह बात कहकर ब्राह्मणी ने बेटा के हाथ से अपना प्राण बचाया पर उसके घर में कुछ द्रव्य नहीं था जो बेटे को बतलाती, इसलिए मारपीट के डर से वह रात को कुयें में गिरकर मर गई। जब गोकर्ण ने धुन्धकारी का यह हाल देखा तब अपना रहना वहाँ उचित न जानकर वह तीर्थयात्रा करने बाहर चला गया। गोकर्ण ऐसा महात्मा व ज्ञानी हुआ कि दुःख व सुख, शत्रु व मित्र को एकसा समझकर दिन रात्रि सिवाय भजन व स्मरण परमेश्वर के कुछ दूसरा उद्यम नहीं रखता था। गोकर्ण के जाने के उपरान्त धुन्धकारी अकेला घर में रहकर चोरी व ठगी करके वेश्या को धन देने लगा। एक दिन वह कहीं से बहुत सा रुपया व गहना चुरा लाया, सो

अपनी वेश्या को देकर उसके पास सोया। जब रात को धुन्धकारी नींद में अचेत हुआ तब उस वेश्या के घरवालों ने आपस में सम्मत किया कि यह सदा चोरी व ठगी करके दूसरे का धन लाकर हमको देता है कहीं पकड़ा जायगा तो उसके साथ हम लोग भी दण्ड पावेंगे, और ऐसा उद्यम करने से यह अवश्य मारा जायगा, इसलिए उत्तम है कि हम लोग इसको मार डालें। उन्होंने आपस में यह विचार करके धुन्धकारी को फाँसी लगाकर अपने घर में लटका दिया। किन्तु फाँसी लगाने से उसका प्राण नहीं निकला तब जलती-जलती लकड़ियों से उसका मुँह जलाकर मार डाला, व घर के भीतर गड़हा खोदकर उसे गाड़ दिया। जब उस वेश्या के पड़ोसियों ने पूछा कि धुन्धकारी जो तुम्हारे घर पर आता था इन दिनों दिखलाई नहीं देता? तब उस वेश्या ने कहा कि कहीं रोजगार करने के वास्ते गया है। यह बात सच समझना कि वेश्या किसी की मित्र नहीं होती, पहले द्रव्य लेकर पीछे प्राण मारती है। ऊपर से उनकी जिह्वा अमृतरूपी रहती और पेट में विष भरा रहता है। द्रव्य लेने से काम रखकर किसी से प्रीति नहीं करती। जब धुन्धकारी इस तरह मरकर प्रेत हुआ, व गर्मी-बरसात व भूख-प्यास व जाड़ा उसको बहुत सताने लगा, जब गोकर्ण ने कहीं तीर्थ में किसी से सुना कि तुम्हारा भाई धुन्धकारी मर गया, व उसकी क्रिया कुछ नहीं हुई, तब गोकर्ण ने गयाजी में जाकर उसका श्राद्ध कर दिया, व जिस जिस तीर्थ पर गोकर्ण का जाना होता वहाँ वहाँ धुन्धकारी का श्राद्ध कर देते थे। जब तीर्थ करने उपरांत गोकर्ण अपने स्थान पर आनकर रात्रि को सोये तब उन्होंने धुन्धकारी को प्रेतयोनि में इस तरह देखा कि कभी वह बैल कभी हाथी कभी बकरा कभी भैंसा कभी मनुष्य कभी बड़ा-सा रूप कभी छोटा रूप बन जाता था। जब गोकर्ण ने उसको प्रेत जानकर मन में धैर्य धरने उपरांत उससे पूछा कि तू भूत या प्रेत या राक्षस कौन होकर कहाँ से आया है, अपना हाल हमसे बतला, तब गोकर्ण की बात सुनकर धुन्धकारी बहुत रोया, पर उसे बोलने की सामर्थ्य नहीं थी जो अपना हाल कहे। जब गोकर्ण ने देखा कि यह सिवाय रोने के कुछ

नहीं बोलता तब दया की राह मन्त्र पढ़कर जल का छींटा उस पर मारा तब वह बोला कि मैं तेरा भाई धुन्धकारी हूँ, अपने पाप से ब्रह्मतेज खोकर मैंने ऐसे भारी अधर्म किये हैं कि जिन पापों की गिन्ती नहीं हो सकती। मुझको वेश्या ने फाँसी लगाकर मार डाला था, इसलिये मुझे दानापानी कुछ नहीं मिलता, हवा खाकर जीता हूँ। अब तुम आये हो जिस तरह बन पड़े मेरा उद्धार करो। यह बात सुनकर गोकर्ण ने कहा कि मैंने तेरे उद्धार के वास्ते गयाजी में व सब तीर्थों पर श्राद्ध किया, तिस पर तू प्रेतयोनि से नहीं छूटा। तब धुन्धकारी बोला कि चाहे हजारों गयाश्राद्ध करो, पर महापाप करने के कारण मेरी मुक्ति नहीं हो सकती, कोई ऐसा उपाय करो जिससे अपने पापों से छूटकर भवसागर पार उतर जाऊँ। यह वचन सुनकर गोकर्ण ने धुन्धकारी से कहा कि तू थोड़े दिन सन्तोष कर, मैं तेरे उद्धार का उपाय करूँगा। गोकर्ण यह बात धुन्धकारी से कहकर सो रहा। जब दूसरे दिन उस नगर के मनुष्य गोकर्ण से भेंट करने के वास्ते आये तब उसने यथोचित् सबका सम्मान किया। फिर कई दिन उपरान्त गोकर्ण ने योगीश्वर व महापुरुष व पंडितों को अपने स्थान पर बुलाकर सभा करके उन लोगों से पूछा कि इस तरह मेरा भाई मरकर प्रेतयोनि में पड़ा है, उसकी मुक्ति होने के वास्ते कोई उपाय बतलाइये। यह बात सुनकर सब महापुरुष व पंडितों ने विचारकर गोकर्ण से कहा कि तुम सूर्य भगवान् की पूजा व ध्यान करके उनसे उसका उपाय पूछो, जैसी वह आज्ञा देवें वैसा करो। यह बचन सुनकर गोकर्ण ने सब पंडितों व महात्माओं को विदा किया, व सूर्यभगवान् का मंत्र पढ़कर व स्तुति करके यह वरदान माँगा कि हे महाराज! धुन्धकारी की जिसमें मुक्ति हो वह उपाय बतलाइये। सूर्यभगवान् ने उस मंत्र के प्रताप से गोकर्ण को दर्शन देकर कहा कि सप्ताहपारायण श्रीमद्भागवत का धुन्धकारी को सुनाओ तब उसकी मुक्ति होवेगी। यह बात सुनकर गोकर्ण बहुत प्रसन्न हुआ व सब पंडित व योगीश्वर व महापुरुषों को बुलाकर गोकर्ण ने सप्ताहयज्ञ श्रीमद्भागवत का आरम्भ किया। उस नगर के बहुत से मनुष्य बूढ़े लड़के व तरुण स्त्री पुरुष कथा सुनने के वास्ते वहाँ आये,

व धुन्धकारी भी एक बाँस के ऊपर, जो सात गाँठ का था, बैठकर सुनने लगा। एक वैष्णव महापुरुष को श्रोता ठहराकर गोकर्णजी अमृतरूपी कथा बाँचने लगे। जब पहिले दिन सन्ध्या समय कथा सुननेवाले उठे तब एक गाँठ उस बाँस की जिस पर धुन्धकारी बैठा था फटकर उसमें बड़ा शब्द हुआ। उसे सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर दूसरे दिन कथा होने से दूसरी गाँठ टूट गई। इसी तरह सात दिन में सातों गाँठे उस बाँस की फट गईं। बारहों स्कन्ध कथा सुनने के प्रताप से धुन्धकारी प्रेतयोनि छोड़कर दिव्यरूप चतुर्भुजी मूर्ति श्यामसुन्दर के समान हो गया, व पीताम्बर पहिने हुए गोकर्ण के पास जाकर नमस्कार करके बोला—महाराज, आपने मुझे बड़े पापों से छुड़ाकर कृतार्थ किया, सिवाय श्रीमद्भागवत के कोई दूसरा उपाय इन पापों से छुड़ाने व मुक्ति देनेवाला नहीं है। जो लोग संसाररूपी कीचड़ में फँसे हैं वह इस कथारूपी तीर्थ में स्नान करने से पवित्र होकर भवसागर पार उतर जाते हैं। जिस समय धुन्धकारी गोकर्ण से यह कह रहा था उसी समय एक विमान बहुत अच्छा आकाश से वहाँ पर उतरा, व धुन्धकारी उस विमान पर चढ़कर वैकुंठ को चला गया। यह हाल देखकर दूसरे ऋषीश्वर व पंडितों ने, जो उस सभा में बैठे थे, गोकर्ण से पूछा—महाराज! हमारे मन में यह सन्देह हुआ है उसे आप छुड़ा दीजिये कि हम लोग बहुत आदमियों ने यह सप्ताहपारायण सुना, इसलिए उचित था कि कथा सुनने के प्रताप से सबके वास्ते विमान आता व हम लोग भी वैकुंठ को चले जाते, यह क्या कारण है कि एक मनुष्य विमान पर चढ़कर वैकुंठ में चला गया और सब लोग यहाँ बैठे रहे। यह बात सुनकर गोकर्ण ने कहा कि कथा सुनने में इतना भेद है कि जो मनुष्य मन लगाकर कथा सुनते हैं उनको सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है और जो लोग कथा में बैठकर अपना चित्त स्त्री व पुत्र के मोह में, व संसारी कामों में लगाये रहते हैं उनको वैसा फल कथा सुनने का नहीं मिलता। एक चित्त होकर सुनने से मुक्ति मिलती है। यह वचन सुनते ही श्रोता लोगों ने लज्जित होकर गोकर्ण से कहा कि महाराज, आप दया करके एक सप्ताह

और सुनाइये जिसमें तुम्हारी कृपा से हम लोग भी भवसागर पार उतर जावें। गोकर्ण ने उन लोगों के कल्याण के वास्ते श्रावण के महीने से दूसरा पारायण आरम्भ किया। उस कथा को बहुत लोगों ने मन लगाकर सुना तब बहुत विमान आकाश से आनकर वहाँ उपस्थित हुए और सब श्रोता लोग गोकर्ण को धन्य धन्य कहकर बोले कि महाराज, तुम्हारी कृपा से हम लोगों का उद्धार हुआ। कथा सम्पूर्ण होने के उपरांत श्रीकृष्णजी महाराज वैकुंठ से वहाँ पधारे, व गोकर्ण को अपने पास विमान पर बैठाकर गोलोक में ले गये। सब श्रोता भी इसी तरह विमानों पर चढ़कर उसी तन से वैकुंठ को चले गये, जिस तरह सब अयोध्यावासी रामचन्द्रजी के साथ सदेह वैकुंठ को गये थे। जिस स्थान पर सूर्य व चन्द्रमा पहुँच नहीं सकते उस जगह संसारी मनुष्य इस भागवत कथा के प्रताप से पहुँच जाता है। जितना श्रीमद्भागवत सुनने और पढ़ने का माहात्म्य व पुण्य है उतना फल यज्ञ व तप व व्रत व तीर्थ व दानादि का नहीं होता। इसका माहात्म्य सबसे अधिक समझना चाहिए।

छठा अध्याय।

नारद मुनि का सनत्कुमार जी से श्रीमद्भागवत की सप्ताहयज्ञविधि पूछना और सनत्कुमारजी का कहना।

नारदजी ने सनत्कुमार से पूछा कि हे महाराज, भागवतपुराण सुनने की सप्ताहयज्ञविधि बतलाइये कि कौन कौन वस्तु इसमें चाहिये और किस तरह से यह करना होता है। सनत्कुमारजी बोले—यह बात तुमने बहुत अच्छी पूछी, सुनो। इस सप्ताहपारायण को भादों व क्वार व कार्त्तिक व अगहन के महीने में सुनना बड़ा पुण्य है, सिवाय इसके जब इच्छा हो और कोई पंडित व्यासजी अच्छे मिल जावैं तब सुनै, शुभ कर्म करना किसी समय मना नहीं है पर जो कोई सप्ताह सुनने की इच्छा करै उसे चाहिये कि अच्छा मुहूर्त पूछकर अपने इष्टमित्रों को कहला भेजै कि हमारे यहाँ सप्ताहयज्ञ होगा, आप लोग भी सुनने वास्ते आना जो लोग विरक्त होवैं उनको भी इस यज्ञ में बुलाना उचित है। जो स्थान घर में या बाग या तीर्थ पर अच्छा हो वह कथा सुनने के वास्ते

ठहरावे और वह जगह चाँदनी व केला बन्दनवार आदि से अच्छी तरह अलंकृत करावे, जिस तरह विवाहादिक व यज्ञ में तैयार कराते हैं। व्यासजी के बैठने को बहुत अच्छा ऊँचा सिंहासन रखवा दे, व वैष्णव लोगों को जो कथा सुनने आवें उनके वास्ते पृथक पृथक आसन बिछवा दे। प्रातःसमय से व्यासजी कथा बाँचना आरंभ करें व श्रोता लोग स्नान व सन्ध्या करके कथा होने से पहले वहाँ आवें व चित्त लगाकर कथा सुनें। पहिले दिन मुख्य श्रोता कथा सुननेवाले को गणेशजी की पूजा करनी चाहिये, जिसमें सप्ताहयज्ञ के बीच में कोई विघ्न न हो, व एक विद्वान् ब्राह्मण को विष्णुसहस्रनाम का वरण सात दिन वास्ते देकर बैठाल देना उचित है। वह ब्राह्मण शालग्राम की पूजा व विष्णुसहस्र-नाम का पाठ करके एक एक नाम लेकर ठाकुरजी पर तुलसीदल चढ़ावे। मुख्य श्रोता पहिले दिन व्यासजी की व श्रीमद्भागवत पोथी की सच्चे मन से पूजा करके यथाशक्ति भेंट रखने उपरान्त हाथ जोड़कर कहे कि हे व्यासजी, आप साक्षात् श्रीकृष्णजी महाराज व शुकदेवजी का रूप हैं, मुझे अपना दास समझकर श्रीमद्भागवत यज्ञ आरम्भ करके मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये। जब व्यासजी कथा कहें तब अपना मन संसारी काम में न लगावे और कथा सुनने के उपरान्त परमेश्वर का भजन भी उस सभा में करना चाहिये, व चार घड़ी दिन रहे तक सप्ताह की कथा सुना करे। व्यासजी को भी उचित है कि जल्दी न करके अच्छी तरह समझाकर कहें, जिसमें सबकी समझ में आवे। दोपहर को दो घड़ी के वास्ते सप्ताह कथा सुनना बन्द करके कुछ दूध या फल व्यासजी व श्रोता लोगों को खा लेना चाहिये, व सात दिन जब तक सप्ताहयज्ञ सम्पूर्ण न होवे तब तक श्रोता लोगों को एक बार संध्या समय भोजन करना चाहिये। कदाचित् केवल फल या दूध व घी खाकर सात रोज तक रह जावे तो और अधिक पुण्य है किन्तु निराहार न रहकर कुछ खा लेना चाहिये। सिवाय इसके सात दिन तक ब्रह्मचर्य रहना व स्त्री से भोग न करना व पृथ्वी पर सोना व पत्तल में खाना श्रोता लोगों को उचित है। सात दिन तक दाल व शहद व बासी अन्न व बैंगन व तरबूज व

मसूर व मोथी व उड़द व पियाज व लहसुन व मूली व गाजर व कोहड़ा न खावें, अधिक भोजन न करें जिसमें आलस्य न आवे। जब तक सप्ताह कथा सुनें तब तक क्रोध झगड़ा या किसी की चुगली व निन्दा न करना चाहिये। इस सात दिन में कोई स्त्री रजस्वला हो जावे तो वह कथा न सुने। म्लेच्छादिक अशुद्ध जाति बीच सभा कथा के आनकर न बैठें, उनको सुनने की इच्छा होय तो दूर बैठकर सुनें। श्रोता लोगों को सत्य बोलना व दया रखना उचित है। कथा के बीच शोर करना न चाहिये। इस तरह सप्ताह कथा सुनने से बड़ा फल होता है। कोई स्त्री बाँझ हो या एक बेर लड़का होकर दूसरा बालक न हुआ हो, या जिसका गर्भपात हो जाता हो, वह चित्त लगाकर इस सप्ताहयज्ञ को सुने तो उसके संतान होवे। इस कथा सुनने के प्रताप से सबका मनोरथ पूर्ण होता है। प्रतिदिन कथा सुनने के उपरान्त तुलसीदल व प्रसाद सब श्रोताओं को देना चाहिये। जब कथा संपूर्ण हो जावे तब आठवें रोज सप्ताह होने का होम दशमस्कन्ध के श्लोकों से या गायत्री मन्त्र से आहुति देकर करे, व अच्छे अच्छे पदार्थ ब्राह्मणों को भोजन करावे, व अपने सामर्थ भर द्रव्य व वस्त्र व भूषण व गऊ व पृथ्वी व बर्तन आदिक व्यासजी को देकर सच्चे मन से पूजा करके उनको बिदा करना चाहिये। इस कथा के सुनने से अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थ मिलते हैं। इतनी बात कहकर सनत्कुमारजी बोले--हे नारद मुनि, तुमको सुनने की इच्छा हो तो हम दूसरा पारायण कहें। नारद मुनि ने कहा—धन्य मेरे भाग्य, इससे क्या उत्तम है। जब सनत्कुमार ने दूसरा पारायण आरम्भ किया और वहाँ सब ऋषीश्वर आनकर बैठे तब शुकदेवजी महाराज भी तीर्थयात्रा करते हुए वहाँ पर आये। सनत्कुमार आदिक ने शुकदेवजी को देखकर बड़े आदरभाव से आसन पर बैठाला। उस समय शुकदेवजी सप्ताहयज्ञ की तैयारी देखकर सब श्रोताओं से बोले कि तुम लोग इस कथा को चित्त लगाकर सुनो। यह कथा वेदरूपी वृक्ष का फल है, संसार में दूसरे फल जो होते हैं उनमें गुठली व छिलका रहता है, इस फल में अमृतरूपी रस भरा है, इसलिये यह अमृत

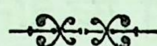
बारंबार पीना चाहिये। इस कथा को श्रीनारायणजी ने ब्रह्मा से कहा और ब्रह्मा ने नारद मुनि को बतलाया, नारदजी ने वेदव्यास हमारे पिता से कहा, व व्यासजी ने मुझे पढ़ाया और मैंने राजा परीक्षित को सुनाया। यह श्रीमद्भागवत अठारहों पुराणों में उत्तम है, साधु-वैष्णव का परम धन यही है, स्वर्गलोक में तपस्वियों व ब्रह्मलोक में ब्रह्मा व कैलास में महादेव व वैकुण्ठ में लक्ष्मीजी इस कथा को गावती हैं। जिस समय शुकदेवजी श्रोता लोगों से यह बात कह रहे थे उसी समय बैकुंठ-नाथ व ब्रह्मा व वरुण व कुबेर देवता प्रह्लादादिक भक्तों को साथ लिये सप्ताहयज्ञ में आये। उनको देखकर जितने लोग उस सभा में बैठे थे सबों ने उठकर दंडवत् व जय जयकार किया और नारद मुनि मारे हर्ष के नाचने और गाने और प्रह्लादजी करताल व उद्धव भक्त मँजीरा और राजा इन्द्र मृदंग बजाने लगे। उस समय नारायणजी त्रिलोकीनाथ ने सब किसी को अपने प्रेम में लीन देखकर उनसे कहा कि जिसके मन में जो इच्छा हो सो वरदान माँगो। तब नारदादिक हाथ जोड़कर बोले कि आपके दर्शन हमको प्राप्त हुए, इससे अधिक कौन वस्तु है जो माँगें। अपने चरणों की भक्ति हम लोगों को दीजिये। श्यामसुंदर यही वरदान सबको देकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये और सप्ताहयज्ञ दूसरा सम्पूर्ण हुआ। इतनी कथा सुनकर शौनकादिक अट्ठासीहजार ऋषीश्वरों ने सूतजी से पूछा कि शुकदेवजी महाराज ने यह कथा राजा परीक्षित को कब सुनाई व गोकर्ण और सनत्कुमारजी ने कब कही थी, इसका हाल बतलाइये। सूत पौराणिक ने कहा की जब श्रीकृष्णजी महाराज द्वारकापुरी से बैकुंठ को पधारे, उसके तीन सौ वर्ष उपरान्त भादौं महीना नवमी के दिन शुकदेव महाराज ने यह कथा राजा परीक्षित को सुनाना आरम्भ किया और सात दिन में वह पारायण सम्पूर्ण हुआ। उसके दोसौ वर्ष पीछे गोकर्ण ने सप्ताहकथा कही थी। उसके तीनसौ छः वर्ष बीतने पर सनत्कुमारजी ने नारद को सुनाया, हमने उसी कथा का वर्णन तुमसे किया। यह अमृतरूपी कथा आदर व प्रेम से जो सुनै व पढ़ै उसको सब फल मिलते हैं।

इति श्रीमद्भागवतमाहात्म्यं सम्पूर्णम्।

सुखसागर बारहों स्कन्ध ।



पहिला स्कन्ध ।



श्रीपरब्रह्म परमेश्वर का अवतार धारण करना व वेदव्यासजी का नारद मुनि से चार श्लोक सुनकर श्रीमद्भागवत बनाना और शृङ्गीऋषि से राजा परीक्षित को शाप मिलना, जिससे इस अमृतरूपी कथा का जगत् में प्रकट होना ।

क० काशी को निवासी मक्खनलाल हौं गोपालजी की लीला व्यासबानी को जबानी कहा चाहत हौं । विद्या को विचार नाहिं कथा को शुमार नाहिं उर्दू जबानी कहत हिये लाज लावत हौं ।। जाकी कृपा पाय के पहाड़ चढ़ैं पंगुल और गूंगे वेद भाषैं सोई कृपा नित्य ध्यावत हौं । कहैं गुणवन्त हरिनाम टेढ़ो सूधो भलो तासों सुनि हिये में गुण नेकही सराहत हौं ।।

दो० गंग यमुन गोदावरी सिन्धु सरस्वति संग । सकलतीर्थ तहँ बसत हैं जहँ हरिकथा प्रसंग ।।
नरनारायण गिरा अरुव्यास मुनिहिं परणाम । आशा मेरी पूजि हैं सब गुण पूरण धाम ।।
गुंग वेद को उच्चरै पंगु लाँघि गिरि जाय । जासुकृपा बन्दौं तिन्हैं माधव होयँ सहाय ।।
गुरुपदपंकज हृदयधरि सप्तऋषिन शिरनाय । कहौं कथा श्रीभागवत यदुपति होयँ सहाय ।।
गुणावाद गोविंद के काटत सब जंजाल । याते भाषा भागवत विरचत माखनलाल ।।

पहिला अध्याय ।

श्री नारायणजी महाराज की स्तुति वर्णन करना व शौनकादिकों करके श्रीमद्भागवत कथा का पूछना व सूतजी करके इस अमृतरूपी कथा का प्रारम्भ करना ।

सूत पौराणिक शिष्य वेदव्यास ने कथा श्रीमद्भागवत व्यासजी के मुख से जिस समय वह शुकदेव अपने पुत्र को पढ़ाते थे और शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कही थी सुना था, उसके थोड़े दिन उपरान्त सूत पौराणिक नैमिषारण्य तीर्थ में जहाँ शौनकादिक अट्ठासी हजार ऋषी-

श्वर इकट्ठे हुए थे गये और कारण इकट्ठे होने उन ऋषीश्वरों का वहाँ पर यह था कि उस जगह सुदर्शनचक्र भमवान् का गिरा है, इसलिये वह स्थान बहुत पवित्र रहकर कलियुग अपना प्रवेश वहाँ नहीं कर सकता था । सो उन ऋषीश्वरों ने सूत पौराणिक से कहा आपने वेदव्यास-जी के पास रहकर सब पुराण पढ़े व सुने हैं सो कृपा करके हमको भी सुनाओ, जिसमें उसका पुण्य हो । तब सूतजी ने उन ऋषीश्वरों से कहा कि जो आदि निरंकार चौदहों भुवन रचकर सब जीवों का पालन करते हैं और महाप्रलय के समय चैतन्य आत्मा सब जीवों का फिर उन्हीं त्रिभुवनपति की ज्योति में समा जाता है और वह परब्रह्म अपने तेज से प्रकाशित रहकर ब्रह्मा और महादेव आदिक सब देवताओं को ज्ञान देते हैं और जिनकी माया में जगत् का सब व्यवहार होता है उन्हीं आदि-ज्योति का ध्यान धरकर व्यासजी कहते हैं कि संसारी व्यवहार सब झूठा होकर परमेश्वर की माया ऐसी बलवान् है जिसको कोई भुलावने नहीं सकता, और श्रीमद्भागवत में ऐसा परमधर्म वर्णन किया है कि जिसमें कुछ कपट व लोभ न रहकर ऐसे निर्गुण धर्म लिखे हैं जिसके करने से तीनों दुःख और पाप संसारी मनुष्य का जो देवता और नवग्रह और शत्रु और मन के संकल्प विकल्प से होता है छूटकर नहीं रहता । दूसरे युगों में यज्ञ और तप, ध्यान और पूजा बहुत दिन करने में बड़े परिश्रम से श्यामसुन्दर की प्रीति उत्पन्न होती थी, कलियुग में केवल इस अमृत-रूपी कथा पढ़ने और सुनने से तुरन्त परमेश्वर के चरणों का वास हृदय में होता है, इसलिये श्रीमद्भावगत को सब वेदों का सार कल्पवृक्ष के समान समझकर शुकदेव जी ने यह कथा जो राजा परीक्षित को सुनाई थी वही अमृतरूपी फल उस वृक्ष का शुकदेवजी महाराज के मुख से टपककर संसार में प्रकट हुआ है सो सूत पौराणिक शौनकादिक ऋषीश्वर और व्यासजी अपने चेलों से कहते हैं कि तुम लोग इस अमृतरूपी फल को, जिसमें कुछ छिलका व गुठली नहीं है, बारंबार कानों की राह पिया करो । जिस तरह संसार में मीठे फल को सुवा काटकर खा लेता है उसी तरह शुकदेवजी ने इस अमृतरूपी कथा को जो वैकुंठ का

सुख देनेवाली है, बहुत मीठी समझकर खा लिया, और अपने मुख से निकालकर जगत् में प्रकट किया। यह बात सुनकर एक दिन शौनकादिक ऋषीश्वरों ने जब प्रातः समय स्नान व पूजा कर चुके तब सूतजी को बड़े आदरभाव से बीच में बैठालकर कहा—आप सब वेद और पुराण जानते हैं, इसलिये हमें अपना चेला समझकर जो पुराण सब वेद और शास्त्र का तत्त्व संसारी जीवों के भवसागर पार उतरने वास्ते उत्तम हो उसे अपने मुखारविंद से वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर जल्दी हम लोगों की मुक्ति हो व थोड़ा परिश्रम करने से फल अधिक प्राप्त हो। और यह बतलाइये कि जिन परब्रह्म परमेश्वर के नाम लेने से संसारी जीवों का उद्धार हो जाता है उन्होंने कौन काम करने के वास्ते मर्त्यलोक में देवकीजी के गर्भ से श्रीकृष्ण अवतार लिया और सगुणरूप धरकर बलरामजी के साथ जगत् में कौन लीला की थी, और जब कलियुग के आदि में श्यामसुन्दर वैकुंठ को पधारे तब धर्म किसके शरण रहा और किसे सौंप गये थे उसका हाल वर्णन कीजिये। परब्रह्म परमेश्वर की लीला और कथा सुनने से आदमी चौरासीलाख योनि में जन्म नहीं पाता और आवागमन से छूटकर भवसागर पार उतर जाता है।

दूसरा अध्याय।

शुकदेवजी का वन में तप करने के वास्ते चले जाना व फिर नारदमुनि के उपदेश से अपने स्थान पर आना।

सूतजी ने जब यह प्रश्न शौनकादिक ऋषीश्वरों का सुना तब मन में बहुत प्रसन्न होकर पहिले शुकदेवजी के चरणों का ध्यान किया जिनके सत्संग से उन्होंने श्रीमद्भागवत सुना था। फिर अपने गुरु वेदव्यासजी के पदकमल को हृदय में रखकर श्यामसुन्दर चतुर्भुजी मूर्ति को दंडवत् करके शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि तुमने बहुत अच्छी बात पूछी, हम तुमको श्रीमद्भागवत कथा, जिसमें सब लीला नारायणजी की लिखी है, सुनाते हैं, चित्त लगाकर सुनो। जिस समय शुकदेवजी ने माता के पेट से जन्म लिया उसी समय मुरलीमनोहर का तप करने

के वास्ते नारबिवार समेत घर से निकलकर वन का रास्ता लिया व उन्होंने मन में विचारा कि वहाँ रहने से हमारा विवाह सब लोग कर देंगे, इसलिये अभी से वन में जाकर हरि भजन करना उचित है जिससे संसारी माया न लपटै। जब व्यासजी ने यह हाल पुत्र का देखा तब प्रेमवश होकर उसे फेर लाने के वास्ते पीछे दौड़े और शुकदेवजी को बहुत पुकार कर कहा कि हे बेटा! खड़े होकर हमारी बात सुन लो पर शुकदेवजी महराज इस तरह संसार से विरक्त होकर हरिचरणों में प्रीति रखते थे कि उन्होंने खड़े होकर व्यासजी को उत्तर देना उचित न जानकर मन में कहा कि देखो हमारे पिता को बुढ़ाई आवने पर भी संसारी माया लगी है। ऐसा विचारकर शुकदेवजी ने वनान्तरी वृक्षों में प्रवेश करके कहा कि कोई किसी का पुत्र व पिता न होकर संसार की गति सदा से इसी तरह पर चली आती है और यह शरीर बारंबार आवागमन में फँसा रहकर जीवात्मा कभी नहीं मरता। यह बात सुनकर व्यासजी को सन्तोष हुआ। जिस समय शुकदेवजी वन को चले जाते थे उसी समय राह में एक तालाब पर देवताओं की स्त्रियाँ नंगी होकर नहाती थीं। उन्होंने शुकदेवजी को देखकर कुछ लज्जा नहीं किया, उसी तरह नंगी खड़ी रहीं। जब पीछे से व्यासजी वृद्ध मनुष्य वहाँ पर पहुँचे तब उन स्त्रियों ने लज्जित होकर अपना अपना वस्त्र पहिन लिया। यह हाल देखकर व्यासजी ने मन में विचारा कि देखो शुकदेव हमारे बेटा को इन स्त्रियों ने देखकर परदा नहीं किया और हम बूढ़े मनुष्य को जिसे आँखों से कम दिखलाई देता है, देखकर इन्होंने कपड़ा पहिन लिया इसका क्या भेद है। उन स्त्रियों ने दिव्य दृष्टि से वेदव्यास के मन का हाल जानकर कहा कि हे व्यासजी! आपको स्त्री व पुरुष का ज्ञान है और शुकदेव महाराज परमहंस होकर कुछ स्त्री व पुरुष में भेद नहीं जानते इसलिये हम लोगों ने उनसे कुछ लज्जा न करके तुम्हें देखकर कपड़े पहिन लिये। यह बात सुनकर व्यासजी के मन का सन्देह मिट गया। शुकदेव महाराज ऐसे तरण व तारण महात्मा हैं। शौनकादि ऋषीश्वरों ने यह स्तुति उनकी सुनकर मन में कहा कि देखो सूत पौरा-

णिक हम सब बूढ़े बूढ़े ऋषीश्वरों व मुनीश्वरों की कुछ उपमा न कहकर शुकदेवजी छोटे बालक की इतनी बड़ाई करते हैं। जब यह बात समझकर ऋषीश्वरों का मुख मलीन हो गया तब सूत पौराणिक उनके मन का हाल अपने ज्ञान से जानकर बोले कि शुकदेवजी वास्ते भवसागर पार उतारने ऋषीश्वरों व मुनीश्वरों के यह भागवत कथा जगत् में प्रकट किया, इसलिये वह योगी और मुनि के भी गुरु हैं। जब यह वचन सुनकर सबको बोध हुआ तब सूतजी ने ऋषीश्वरों से कहा कि कदाचित् कोई इस बात का सन्देह करे कि जब शुकदेवजी जन्मते ही परमेश्वर का तप करने वास्ते वन में चले गये थे तो उन्होंने भागवत-पुराण व्यासजी से किस तरह पढ़ा उसका उत्तर यह है कि जब शुकदेव-जी ने ऋषीश्वर और मुनीश्वरों से ज्ञानचर्चा किया तब उनको यह हाल मालूम हुआ कि जिसके साधन करने से हरिचरणों में प्रीति हो वही परम धर्म है, इसलिये शुकदेव ने नारद मुनि से मिलकर पूछा कि महाराज, हमको कोई ऐसा ज्ञान बतलाइये जिसमें बीच चरण परमेश्वर के हमारा मन लगै तब नारदजी बोले—इसका हाल तुम्हारे पिता अच्छा जानते हैं, हमने उनको बतला दिया है। यह बात सुनकर शुकदेवजी वन से अपने पिता के पास चले आये और उनके चरणों पर गिरकर बोले कि आप मुझे कोई ऐसी विद्या पढ़ाइये जिससे हरिचरणों में प्रीति हो। तब व्यासजी ने कहा सिवाय पढ़ने भागवत और कोई दूसरा उपाय इसका नहीं है। यह बात सुनकर शुकदेवजी ने भागवत पुराण पढ़ना आरम्भ किया। इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि जब शुकदेवजी भागवत कथा वेदव्यास हमारे गुरु से पढ़ते थे तब मैं भी वहाँ था। जो शुकदेव महाविरक्त रहकर एक क्षण कहीं नहीं ठहरते थे वह भागवत पढ़ने के लोभ से बहुत दिन तक व्यासजी की सेवा में रहे व उन्होंने भागवत को बड़े प्रेम से पढ़ा और शुकदेवजी को संग परमहंस व ऋषीश्वरों का बहुत प्यारा होकर उनके पास कुछ द्रव्य नहीं था जो देने के लोभ से किसी को अपने पास बुलाते इसलिये उन्होंने भागवत पढ़ा कि इस अमृतरूपी कथा सुनने की इच्छा से योगीश्वर और मुनी-

श्वर और ऋषीश्वर लोग हमारे पास रहैंगे और इसी कथा का सदावर्त्त मैं दूँगा। इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले—हे ऋषीश्वरो! इस कथा के सुनने से निष्काम भक्ति प्राप्त होती है व निष्कपट भक्ति होने से लोग विरक्त और ज्ञानी होकर मुक्ति पदवी पर पहुँचते हैं, इसलिये मनुष्य को चाहिये कि जो काम यज्ञ व तप, पूजा और व्रत शुभकर्म करै उसमें कुछ चाहना न रक्खै तौ उसके वास्ते यहाँ सुख होकर मरने उपरान्त परलोक बनता है, व किसी बात की कामना रखने से यह जीव आवागमन में फँसा रहकर भवसागर पार नहीं उतरता। भक्ति की बराबर दूसरा धर्म नहीं है, यज्ञ और तप व दान व तीर्थ दूसरे धर्म जो मनुष्य करते हैं उस धर्म करने में बड़े परिश्रम से बीच चरण परमेश्वर के प्रेम उत्पन्न होता है। इसलिये इतना दुख उठाना उचित न होकर मनुष्य को चाहिये कि सच्चे मन से यह अमृतरूपी कथा सुनै और मन अपना माया-मोह, स्त्री व पुत्र झूठे व्यवहार से विरक्त रखकर नारायणजी के चरणों में ध्यान और प्रीति लगावैं। जो कोई मन अपना उस ज्योतिस्वरूप के चरणों में लगाकर परमेश्वर की लीला और कथा सुनता है उसके हृदय में काम और क्रोध, मोह व लोभ का जो मैल जमा है वह छूटकर मन उसका इस तरह शुद्ध हो जाता है जिस तरह सिकल करने से लोह में मुर्चा नहीं रहता। तब उसके हृदय में हरिचरणों का वास हो जाता है। इसलिये मनुष्य को अपनी मुक्ति बनाने वास्ते पहले यह कथा सुनने का अभ्यास करना चाहिये। परमेश्वर की बड़ी कृपा होने से मनुष्य का मन उनकी कथा व कीर्तन में लगता है। बिना भक्ति किये कीर्तन व कथा परमेश्वर की सुने मन शुद्ध नहीं होता। मनुष्य का स्वभाव भी राजसी व तामसी व सात्त्विकी होता है। देवता की पूजा भी तीन तरह पर होती है राजसी व तामसी व सात्त्विकी व शास्त्र में तामस को काठ से और राजस को धुआँ से व सात्त्विकी को आग से दृष्टान्त देते हैं। जो अर्थ आग से निकलता है वह बात काठ व धूम से नहीं प्राप्त होती, इसलिये सात्त्विकी भक्ति व पूजा करनेवाले मुक्तिपदवी पर पहुँचते हैं। संसार में जितना धर्म यज्ञ व तप व व्रतादिक का है वह सब इस तरह

परमेश्वर के रूप में गत हो जाते हैं जिस तरह बरसात में नदी नाले का पानी बहकर समुद्र के बीच मिल जाता है।

तीसरा अध्याय।

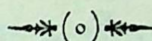
बीच हाल अवतारों के जो-जो अवतार श्रीपरब्रह्म परमेश्वर ने वास्ते सुख देने हरिभक्त व मारने दैत्यों के धारण किये हैं।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि आदि निरंकार जगत् में अवतार धारण करनेवाले पुरुष का रूप है। सबके पहले वही थे और वही मध्य में रहकर महाप्रलय होने उपरान्त भी स्थिर रहेंगे। वह अपने तेज से आप प्रकाशित हैं और सब तेज को उसी ज्योति की परछाईं समझना चाहिये। जब महाप्रलय होने उपरान्त उसी आदि निरंकार ज्योति नारायणजी को संसार रचने की इच्छा होती है तब वह अपनी माया संयुक्त पुरुष का अवतार लेकर शेषनाग की छाती पर शयन करते हैं। उन्हीं को विराट्रूप कहा जाता है। जिनके हजार सिर हजार नाक हजार कान हजार भुजा और हजार चरण होते हैं उनकी नाभी से कमल का फूल निकलता है और उस फूल से ब्रह्माजी उत्पन्न होकर चौदहों लोक की रचना करते हैं। उन्हीं को सब अवतारों का हेतु समझना चाहिये। उस परब्रह्म परमेश्वर के अवतारों का हाल इस तरह पर है। पहिला अवतार सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार का धारण करिकै सदा पाँच वर्ष की अवस्था ब्रह्मचारी रहे। दूसरा अवतार वाराहजी का लेकर पाताल से पृथ्वी को लाये। तीसरा अवतार यज्ञ-पुरुष का चतुर्भुजी धारण करिकै सब राजों को यज्ञ करने की राह बतला कर कृतार्थ किया। चौथा हयग्रीव अवतार, शरीर आदमी का व शिर घोड़े का धारण करिकै ब्रह्मा को वेद पढ़ाया। पाँचवाँ अवतार नरनारायण का लेकर बदरी केदार में वास्ते राह दिखलाने तपस्या के संसारी जीवों को तप करते हैं। छठवाँ अवतार कपिलदेव मुनि का धरकर सांख्ययोग ज्ञान अपनी माता को उपदेश किया। सातवाँ अवतार दत्तात्रेयजी का अत्रिमुनि से हुआ, जिसने राजा अलर्क और प्रह्लादभक्त को वेदान्त पढ़ाया। आठवाँ अवतार ऋषभदेवजी का चित्रदेवी नाम

इन्द्र की कन्या से प्रगट होकर जड़चर्या दिखलाया, और उनके बेटे जयनदेव ने सरावगियों का धर्म संसार में फैलाया। नवाँ अवतार राजा पृथु का वेणु के शरीर मथने से उत्पन्न हुआ जिसने गऊरूपी पृथ्वी दुहकर सब औषधी व अन्नादिक जो उसने अपने भीतर छिपाया था बाहर निकाला। दशवाँ मत्स्य अवतार लेकर राजा सत्यव्रत को सप्त-ऋषियों समेत नौका पर बैठाल के ज्ञान उपदेश किया और अपनी माया का कौतुक दिखलाया। ग्यारहवाँ कच्छप अवतार लेकर समुद्र मथने के समय मन्दराचल पर्वत अपनी पीठ पर लिया। बारहवाँ अव-तार धन्वन्तरि का, एक कलसा अमृत का हाथ में लिये समुद्र से बाहर निकले। तेरहवाँ अवतार मोहनी मूर्ति का धरकर दैत्यों को अपनी सुन्द-रता पर मोहित किया और अमृत का कलसा उनसे लेकर वह सब अमृत देवतों को पिलाया। चौदहवाँ अवतार नरसिंहजी का लेकर हिरण्यकशिपु दैत्य को मारके प्रह्लाद अपने भक्त की रक्षा की। पन्द्रहवाँ वामन अवतार धारण करके तीन पग पृथ्वी राजा बलि से दान लेकर देवतों को दी। माँगने से मनुष्य छोटा हो जाता है, इसी वास्ते परमे-श्वर ने भी माँगने के समय अपना छोटा रूप बनाया था। सोलहवाँ अवतार हंस का लेकर सनत्कुमार को ज्ञान उपदेश करके उनका गर्व तोड़ा। सत्रहवाँ अवतार नारदजी का लेकर पञ्चरात्रवेद बनाया, जिसमें सब वैष्णवधर्म लिखा है। अठारहवाँ अवतार हरिनाम लेकर गजेन्द्र को ग्राह के मुख से छुड़ाया। उन्नीसवाँ अवतार परशुरामजी का लेकर इक्कीस बार सब क्षत्री राजाओं को मारा और पृथ्वी उनसे छीनकर ब्राह्मणों को दान दी। बीसवाँ रामचन्द्र अवतार धारण करके समुद्र का अभिमान तोड़कर रावण को मारा। इक्कीसवाँ वेदव्यास अवतार लेकर सब वेदों का भाग करके अठारह पुराण और महाभारत बनाया। बाईसवाँ श्रीकृष्णावतार धारण करके कंस और कालयवन और जरासन्ध आदिक अधर्मी राजाओं को मारा और पृथ्वी का बोझ उतारकर वास्ते भव-सागर पार उतरने कलियुगवासियों के जगत् में लीला की। तेईसवाँ बौद्ध अवतार लेने का यह कारण है कि जब दैत्यों ने शुक्र अपने पुरो-

हित से पूछा कि देवता सदा इन्द्रासन का राज्य करते हैं, कोई ऐसा उपाय बताओ जिसमें हमारा राज्य सर्वदा बना रहै। शुक्रजी ने कहा यज्ञ करने से देवतों का राज्य रहता है सो तुम लोग भी यज्ञ करो। जब दैत्यों ने शुक्राचार्य के उपदेश से वास्ते मिलने राज्य देवलोक के यज्ञ करना आरम्भ किया तब देवता घबराकर नारायणजी के पास गये व बहुत स्तुति करने के उपरान्त हाथ जोड़कर बोले—हे वैकुंठनाथ! दैत्य लोग इसी तरह हमसे बलवान् हैं जब यज्ञ करने से उनको और अधिक बल होगा तब हम लोग उनको किसी तरह नहीं जीत सकेंगे इसलिए जिसमें हमारा भला हो वह उपाय आप कीजिये। यह वचन सुनते ही आदिपुरुष भगवान् ने बौद्ध अवतार धरकर सेवड़े का रूप बना लिया व मैला कपड़ा पहिरने के उपरात चौंरी रस्सी को हाथ में लेकर जहाँ दैत्य लोग यज्ञ करते थे वहाँ पर गये। दैत्यों ने उनको देखते ही सम्मान करके पूछा कि तुम्हारे हाथ में कौन वस्तु है? बौद्धजी ने कहा जिस जगह मनुष्य बैठता है वहाँ छोटे छोटे जीव उसके नीचे दबकर मर जाते हैं, सो इस चौंरी से जगह झाड़कर बैठना चाहिये। फिर दैत्यों ने पूछा कि तुम्हारा कपड़ा किस वास्ते मैला है? बौद्धजी ने कहा की कपड़ा धोने से भी बहुत जीव मरते हैं। जब इस तरह की बातें सुनने से दैत्यों को मोह प्राप्त होकर मन उनका यज्ञ करने से फिर गया तब उन्होंने आपस में कहा की यज्ञ करने से जीवहिंसा होगी तो यज्ञ करना हमारा निष्फल होकर उसमें और अधिक पाप होगा। यह बात समझ-कर दैत्यों ने परमेश्वर की इच्छा से यज्ञ करना बन्द किया तब उनके धर्म का बल जाता रहा और देवता लोग उनसे प्रबल हुए। कलियुग के अन्त में चौबीसवाँ कलंकी अवतार लेकर धर्म की वृद्धि व म्लेच्छ और अधर्मियों का नाश करेंगे। सो इन चौबीसों अवतारों में रामचन्द्र और श्रीकृष्णजी का अवतार पूर्णकला से है और संसारी जीवों को उद्धार करने वास्ते यह सब अवतार नारायणजी ने धारण किये हैं। संसार में जितने ऋषीश्वर और मुनि और देवता व मनुष्य जीवधारी व जड़ व चैतन्य हैं सबमें उन्हीं परब्रह्म का प्रकाश समझना चाहिये, इस

लिये कोई उनके अवतारों की गिनती नहीं कर सकता। परमेश्वर अपनी माया से जगत् को उत्पन्न करते हैं परन्तु उसके बस नहीं होते, इसलिये संसारी जीवों के दुःखी होने से कुछ दुःख उनको नहीं पहुँचता। नारायणजी की लीला और नाम व चरित्र को कोई नहीं जान सकता, वही मनुष्य उनको कुछ पहिचानता है जो परमेश्वर के भजन में लीन रहकर उनके सिवाय दूसरे का भरोसा नहीं रखता, उसी को परमेश्वर के जानने वास्ते इच्छा रहकर संसारी मोह छोड़ने से परमेश्वर का प्रकाश शरीर में आता है। श्रीमद्भागवत में सब बेदों का सार और परमेश्वर की लीला व्यासजी ने वास्ते भवसागर पार उतरने संसारी जीवों के वर्णन किया है और अपने पुत्र शुकदेवजी को हरद्वार में गंगा किनारे ब्राह्मण और ऋषीश्वरों के बीच में बैठकर पढ़ाया था। जब श्रीकृष्णजी महाराज द्वारका से वैकुंठ को पधारे उस समय धर्म का सूर्य डूबकर संसार से सब शुभ कर्म जाता रहा तब व्यासजी ने इस भागवत को बनाकर धर्मरूपी सूर्य जगत् में प्रकट किया। जिस समय वेदव्यासजी ने यह कथा शुकदेवजी को पढ़ाया था उस समय वहाँ हम भी थे, सो गुरु की दया व कृपा से हमको भी यह अमृतरूपी कथा याद हो गई जो तुम लोगों को सुनाते हैं।



चौथा अध्याय।

व्यासजी का महाभारत और सत्रहपुराण सब वेदों का तत्त्व बनाना।

शौनकादिक ऋषीश्वरों ने सूतजी से कहा—आपकी आयु परमेश्वर बहुत बड़ी करैं। अवतारों के हाल सुनने से हम लोगों का मन बहुत प्रसन्न हुआ, अब चाहते हैं कि जो भागवत व्यासजी से आपने सुना था और उसमें सब लीला और महिमा श्यामसुन्दर की लिखी हैं वह हमको सुनाओ। कौन से युग में किस स्थान पर शुकदेवजी ने वह कथा राजा परीक्षित को सुनाई थी उनका हाल कहो, किस वास्ते कि राजा परीक्षित को साँप के काटने का डर था व हम लोग कालरूपी संसार से जिसमें मृत्यु की अवधि नहीं होती डरते हैं। एक बात का हमको बड़ा सन्देह है कि जो शुकदेवजी इतने विरक्त रहकर एक क्षण कहीं नहीं

ठहरते थे वह किस तरह सात दिन राजा परीक्षित के पास कथा सुनाने के वास्ते रहे, और शुकदेव महाराज कोपीन पहिने विभूति लगाये अवधूत बने रहते थे उनको राजा परीक्षित ने किस तरह पहिचाना कि यही शुकदेव हैं। यह बात सुनकर सूत पौराणिक ने कहा कि द्वापर के अन्त में वेदव्यास हमारे गुरु नारायण-रूप ने यह विचारकर पराशर मुनि और सत्यवती से अवतार लिया कि सतयुग में आयुर्बल मनुष्य की लाख वर्ष व त्रेता में दश हजार व द्वापर में हजार वर्ष होकर जब तक आयुर्बल पूर्ण नहीं होती थी तब तक वह नहीं मरता था, सो कलियुग में आयुर्बल मनुष्य की एक सौ बीस वर्ष की होकर सब लोग पाप करने से उसके भीतर मर जावैंगे। दूसरे युगों में मनुष्य आयुर्बल अपनी बीच वेद पढ़ने और यज्ञ और तप करने में बिताते थे, सो दीर्घायु होने और शुभ कर्म करने से वह काम अच्छी तरह सम्पूर्ण होकर उनको मुक्ति पदार्थ मिलता था और कलियुगवासी थोड़ी आयु होने से तप करने और वेद पढ़ने नहीं सकते और इतना धन भी नहीं रखते जो यज्ञ व दानादिक करके भवसागर पार उतर जावें, और कलियुगवासी जीव संसारी सुख में डूबे रहकर परलोक का सोच नहीं करते व स्त्री और द्रव्य के मोह से मनुष्य मुक्तिपदवी न पाकर केवल हरिभजन से उद्धार होता है, इसलिये परब्रह्म परमेश्वर ने कलियुगवासियों के सुख पाने और भवसागर पार उतरने के वास्ते वेदव्यास का अवतार लिया। एक दिन व्यासजी ने सरस्वती-किनारे स्नान करने उपरान्त अकेले बीच ध्यान परमेश्वर के बैठकर विचार किया कि देखो कलियुगवासी प्रारब्धहीन व मूर्ख होकर ऐसी संगति नहीं करते जिसमें ज्ञानी होकर परमेश्वर को पहिचानें। जो बात ज्ञान की सुनते हैं वह भी धारण नहीं करते और सदा आलस्य में भरे रहकर संसारी तृष्णा नहीं छोड़ते। यह बात बिचारकर हमारे गुरु ने ऋग्वेद और यजुर्वेद और साम और अथर्वणवेद इस इच्छा से बनाया कि कदाचित् संसारी मनुष्य थोड़ी आयु होने से सब वेद न पढ़ सकैं तो केवल एक वेद पढ़कर भवसागर पार उतर जावें। जब व्यासजी ने चारों वेद बनाकर शूद्र व स्त्री को वेद

पढ़ना उचित नहीं जाना तब उन्होंने उन चारों वेद का सार निकालकर महाभारत और सत्रहपुराण निर्माण किये। जिनका पढ़ना और समझना सहज होकर सब छोटे बड़े शूद्र व स्त्री आदि उसके सुनने से भवसागर पार उतर जावें। ऋग्वेद के बाँचनेवाले पैल ऋषीश्वर और सामवेद के पढ़नेवाले जैमिनि ऋषीश्वर और यजुर्वेद के बाँचनेवाले वैशम्पायन और अथर्वण वेद के पढ़नेवाले अंगिरा ऋषीश्वर हुये और महाभारत पुराण को रोमहर्षण मेरे पिता ने पढ़ा है। इन ऋषीश्वरों ने अपने अपने चेलों को जो वेद पढ़ाया था वही वेद की शाखा समझना चाहिये। महाभारतपुराण एक लाख श्लोक का पढ़ना और सुनना बड़ा पुण्य है। महाभारत और सत्रहपुराण बनाने पर भी व्यासजी के मन को बोध न होकर ऐसा विचार में आता था कि अभी हमको और बनाना चाहिये, पर कोई बात पक्की नहीं ठहरती थी कि अब हम कौन सी कथा बनावें कि जिसमें हमारे मन को धैर्य हो। इसी चिन्ता में व्यासजी सरस्वती के किनारे बैठे हुये विचार रहे थे कि नारदजी बीन बजाते और हरिगुण गाते हुये वहाँ आये, सो व्यासजी ने नारदमुनि को बड़े आदरभाव से बैठाला।

पाँचवाँ अध्याय।

नारदमुनि का वेदव्यास को यह बात समझाना कि तुम हरिचरित्र का एक पुराण बनाओ और व्यासजी से अपने पिछले जन्म का हाल कहना।

नारदमुनि ने व्यासजी को चिन्ता में देखकर कहा कि इस समय तुम बड़े शोच में दिखाई देते हो। जिस तरह किसी मनुष्य को कोई कठिन कार्य आन पड़े और वह बात उससे न हो सके तो हार मानकर उसकी चिन्ता करै, सो तुमने एक वेद के चार वेद बनाकर महाभारत व सत्रहपुराण तैयार किये तिस पर भी तुम्हारा बोध नहीं हुआ। यह वचन सुनकर वेदव्यास बहुत प्रसन्न हुये कि इन्होंने हमारे मन की बात को जान लिया। फिर व्यासजी अपनी चिन्ता का हाल नारदमुनि से कहकर बोले कि आप दिनरात परमेश्वर के भजन में लीन रहते हैं,

सो दया करके कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि जिसमें हमारा चित्त शुद्ध हो जावे। यह बात सुनकर नारदमुनि बोले कि हे व्यासजी, जिस तरह तुमने महाभारत और सत्रहपुराण में परमेश्वर का गुणानुवाद थोड़ा सा लिखकर यज्ञ और तप व तीर्थ और दान, व्रत और नेम व लड़ाई देवता और संसारी मनुष्यों का हाल वर्णन किया है उस तरह कोई पुराण निर्मल लीला और यश आदिपुरुष भगवान् का मन लगाकर नहीं बनाया, इस कारण तुम्हारे चित्त को सन्तोष नहीं हुआ। परमेश्वर की लीला के सिवा दूसरे पुराणों के पढ़ने और सुनने में परिश्रम बहुत व लाभ थोड़ा होकर उसका फल सदा स्थिर नहीं रहता। वह सुख थोड़े दिन भोगकर फिर जन्म लेना पड़ता है और श्रीपरमेश्वर की कथा में चित्त लग जाने से जितना फल व सुख प्राप्त होता है वह हाल वर्णन नहीं हो सकता। जिन लोगों को संसार में अनेक तरह के डर व दुःख लगे रहते हैं वह सब वज्ररूपी हरिकथा सुनने और पढ़ने से छूट जाते हैं, इसलिये जिस पुराण और भजन में परमेश्वर की लीला और नाम लिखा हो उसी को उत्तम समझना चाहिये। जिस तरह नौका इच्छापूर्वक पवन चलने से अपने स्थान पर जल्दी पहुँचती है उसी तरह संसारी मनुष्य परमेश्वर का भजन और स्मरण करने से संसार में वांछित फल पाकर मरने उपरांत भवसागर पार उतर जाते हैं। जैसा सुख भगवद्भजन व हरिचरणों में ध्यान लगाने से प्राप्त होता है वैसा आनन्द इन्द्र और कुबेर आदिक देवताओं को भी नहीं मिलता, इसलिये मनुष्यों को उचित है कि अपने मन में सन्तोष रखकर किसी प्रयोजन के बिना परमेश्वर का भजन व स्मरण किया करें। संसार में सब तरह का सुख व दुःख पिछले जन्म के कर्मों से प्राप्त होकर हरिभजन करने में शूली का काँटा हो जाता है। हरिचरणों का ध्यान मन में रखने से संसारी माया छूटकर फिर उस मनुष्य को यज्ञ और तप व व्रत और दानादिक करने का कुछ प्रयोजन नहीं रहता और जो लोग हरिभक्ति न रखकर केवल यज्ञ और तप और व्रत व तीर्थ करते हैं वह आवागमन से रहित नहीं होते। शुभ कर्म करने से थोड़े दिन उसका सुख भोगकर

फिर जन्म लेते हैं। बाजी बात वेद व पुराणों में तुमने इस तरह पर लिखी है जिसको मूर्ख नहीं समझेंगे, जैसे आपने पितरों का श्राद्ध करना मांस से लिखा है, इसलिये मांस खानेवाले तुम्हारे वचन का प्रमाण मानकर मांस भोजन करके यह न समझेंगे कि व्यासजी का अभिप्राय मांस से यज्ञ और श्राद्ध करने वास्ते है। इस तरह की बात साधु व तपस्वी अच्छी न मानैंगे। जो लोग हंसरूपी परमेश्वर के भक्त हैं वह वैकुंठनाथ के भजन व स्मरण और हरिचरणों के ध्यान में मग्न रहकर दूसरी बात नहीं चाहते, जिस तरह हंस मानसरोवर के किनारे रहकर दाने की जगह मोती चुगते हैं और कौवा अशुद्ध जगह बैठकर विष्ठा आदिक अशुद्ध वस्तु खाता है और अपनी बोली बोलकर मारे अभिमान के दूसरे पक्षी को अपने बराबर नहीं समझता और उसकी बोली हंस प्रिय नहीं करते। उसी तरह हंसरूपी साधु और वैष्णव को परमेश्वर का गुण और चरित्र सुनना प्यारा लगता है और जो पुराण श्यामसुन्दर के नाम की स्तुति से रहित हैं वह उनको अच्छे नहीं लगते। काकरूपी मनुष्य उन बातों का सुनना जिनमें केलि व क्रीडा संसारी सुख रहता है अच्छा जानते हैं, इसलिये तुम्हारे मन को सन्तोष नहीं हुआ। अब तुम्हें चाहिये कि एक पुराण ऐसा बनाओ जिसमें सब लीला और गुण परमेश्वर का लिखा हो और उसके पढ़ने और सुनने से मनुष्यों को पुण्य प्राप्त होकर मरने उपरान्त मुक्ति पदवी मिले व तुम्हारी चिन्ता छूटकर सन्तोष हो। हे व्यासजी, कदाचित् तुमको हमारे कहने का विश्वास न हो तो हम अपने पिछले जन्म का हाल कहते हैं, सुनो। उस जन्म में हम एक दासी के पुत्र थे और मेरी माता एक ब्राह्मण के यहाँ काम-काज करती थी। वह ब्राह्मण साधु और सन्त की सेवा किया करता था, सो बरसात के दिनों में उस ब्राह्मण के स्थान पर साधु लोग आनकर टिके और उस ब्राह्मण ने साधुओं के चौका और बरतन करने के वास्ते हमारी माता को रख दिया। मैं भी बालक होने से अपनी माता के साथ उन साधुओं के आश्रम पर रहकर आठों पहर उनका दर्शन किया करता था। जिस समय साधु लोग आपस में बैठकर परमे-

श्वर की कथा और वार्ता कहते थे उस समय में भी उनके पास बैठा रहता था और मुझ बालक अज्ञान को वह बातें कथा की बहुत प्यारी लगती थीं इसलिये मैं बड़े प्रेम से उनको सुनता था। साधु लोग भोजन करके जो अपना अपना जूठन मुझको अपने हाथ से देते थे उसको मैं बड़े प्रेम से खाता था। जब वह साधु बरसात बीते अपने-अपने स्थान को जाने लगे तब मैं बहुत रोया और मुझको यह इच्छा हुई कि मैं भी इनके साथ जाऊँ। तब उन्होंने मेरे ऊपर कृपा करके कहा कि हम तुझे मंत्र पढ़ाये देते हैं उसको तू जपा कर। फिर वह लोग मुझे बारह अक्षर का मन्त्र उपदेश करके अपने स्थान को चले गये। मैं उस मंत्र को जपकर उन साधुओं की आज्ञा प्रमाण श्रीकृष्ण और बलराम और प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के चरणों का ध्यान करने लगा। जब उन साधुओं का जूठन खाने और मंत्र जपने के प्रताप से मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ तब मन में यह बात विचार किया कि वन में जाकर परमेश्वर का भजन करूँ, यहाँ किस वास्ते पड़ा रहूँ। पर मेरी माता मुझसे बड़ा स्नेह रखकर एक क्षणभर भी मेरा साथ नहीं छोड़ती थी, इसलिये मैं उसको अकेले छोड़कर कहीं जा नहीं सकता था। सो परमेश्वर ने मेरे चित्त का हाल जानकर ऐसा संयोग किया कि हमारी माता साँप काटने से जो उसी ब्राह्मण के वास्ते दूध दुहावने जाती थी राह में मर गई। जब लड़कों ने आनकर हमसे यह हाल कहा तब मैंने बहुत प्रसन्न होकर मन में विचार किया कि देखो परमेश्वर ने संसारी माया-मोह से मुझे छुड़ाया। यह विचारकर मैं उसी समय जब कि मैं पाँच वर्ष का था वहाँ से उत्तर दिशा को बड़ी-बड़ी नदी और नाले व पहाड़ नाँघता हुआ एक वन में चला गया। वन में बहुत से सिंह व भालू और हाथी आदिक पशु मुझको दिखलाई दिये, पर भगवान् की कृपा से मैं कुछ नहीं डरा। मेरा ध्यान परमेश्वर के चरणों में लगा था। इससे मुझे कुछ भूख और प्यास भी नहीं लगी। जब मैं बहुत दूर एक वन में जहाँ मनुष्यादिक का आवागमन नहीं था पहुँचा तब वहाँ एक वृक्ष पीपल का नदी किनारे देखा। जब मैंने उस वृक्ष के नीचे जड़ पर बैठकर परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान

किया तब भगवान् का दिव्य रूप मुझको ध्यान में ऐसा देख पड़ा कि एक मनुष्य सुन्दर जिसके मुखारविन्द का प्रकाश सूर्य से भी अधिक था चतुर्भुजी मूर्ति शंख व चक्र व गदा और पद्म अपने हाथों में लिये पीताम्बर और वैजयन्ती माला धारण किये किरीट और मुकुट और कुण्डल कानों में पहिने श्यामस्वरूप कमलनयन लम्बी भुजा घूँघरवाले बाल तापहारिणी चितवन मन्द मन्द मुसकराते और बिजुली की तरह चमकते हुए मुझको दिखाई दिये। उस रूप को देखते ही मैंने बहुत प्रसन्न होकर चाहा कि इसी रूप को देखता रहूँ। जब वह स्वरूप मेरे ध्यान से गुप्त हो गया और मैं बड़ा शोच करके रोने लगा तब यह आकाशवाणी हुई कि तू चिन्ता छोड़कर मेरे भजन में लीन रह, तेरे मन में अधिक प्रीति उत्पन्न होने के वास्ते हमने एक बेर अपना दर्शन तुझे दिया है, दूसरे जन्म में फिर हमारा दर्शन पावेगा और तू मेरे निज भक्तों में होकर मेरी कृपा से तुझको अपने पिछले जन्मों का वृत्तान्त याद रहेगा।

——:o:——

छठवाँ अध्याय।

नारदजी का अपने पिछले जन्म का हाल कहना कि हरिभजन के प्रताप से हमको दर्शन श्यामसुन्दर का हुआ और मैंने जिस तरह शूद्र का तन छोड़कर ब्रह्मा के यहाँ जन्म पाया।

नारद मुनि ने व्यासजी से कहा कि आकाशवाणी होने उपरांत एक बाजा वीणा का नारायणजी ने मुझको दिया, वह वीणा लेकर हम परमेश्वर का भजन करने लगे। जब मैं प्रेम से उस वीणा को बजाकर बीच भजन और ध्यान परमेश्वर के लवलीन हो जाता तब वैकुंठनाथ के प्रेम में डूबकर मुझे यह इच्छा होती थी कि नारायणजी ने दूसरे जन्म में दर्शन देने को कहा है। कब यह तन मेरा छूटे और दूसरा जन्म लेकर परमेश्वर का दर्शन पाऊँ। जब इसी तरह इच्छा करते करते वह तन अपना छोड़ दिया तब त्रिभुवनपति की कृपा से ब्रह्माजी का बेटा हुआ और उनके अँगूठे से उत्पन्न होकर पिछले जन्म का सब हाल मुझको

याद रहा, इसलिये मेरे मन में यह इच्छा हुई कि नारायणजी का भजन करूँ जिसमें फिर मुझे जल्दी वैकुंठनाथ का दर्शन होवे, इस वास्ते संसारी मायामोह और गृहस्थी के जाल में नहीं फँसा। अब उस भजन के प्रभाव से यह हाल मेरा है कि जिस समय परमेश्वर का ध्यान करता हूँ उसी क्षण बाँकेविहारी मुझको इस तरह दर्शन देते हैं जिस तरह कोई किसी का नेवता हुआ आ जावे। सो अब जहाँ इच्छा करता हूँ वहाँ दर्शन उस साँवली मूरत के मुझे हो जाते हैं और जिस जगह तीनों लोक में मेरी इच्छा चाहती है वहाँ चला जाता हूँ, किसी जगह मुझको जाने वास्ते मनहाई नहीं रहती। सो हे व्यासजी, तुम भी परमेश्वर की लीला और गुणों को वर्णन करो, जिसमें तुमको भी परब्रह्म भगवान् के चरणों का दर्शन होवे और तुम्हारा चित्त उनके चरणों का ध्यान छोड़कर दूसरी तरफ न जावे।

—:०:—

सातवाँ अध्याय।

नारद मुनि का व्यासजी से चार श्लोक का हाल कहना और वेदव्यास का बदरी केदार में जाकर तप करना और श्रीमद्भागवत पुराण का बनाना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि नारद मुनि अपने पिछले जन्म का हाल वेदव्यासजी से कहकर बोले कि हे व्यासजी हमने चार श्लोक ब्रह्मा से और ब्रह्मा ने नारायणजी से सुने हैं, सो तुमको चाहिये कि उन्हीं चार श्लोकों की कथा विस्तारपूर्वक वर्णन करो। परमेश्वर की महिमा केवल मनुष्य तन में मालूम होती है। पशु पक्षी आदि जीवों को सिवाय खाने और भोग करने के दूसरा काम नहीं रहता। जो कोई मनुष्य का तन पाकर परमेश्वर का भजन व स्मरण करके मायारूपी भवसागर से पार उतर गया उसी का जन्म लेना सुफल है, और जिसने यह तन पाकर नारायणजी का स्मरण और ध्यान नहीं किया वह मनुष्य चौरासी लाख योनि में जन्म लेकर बड़ा दुःख पाता है। फिर नारद मुनि ने वेदव्यासजी को चार श्लोकों का अर्थ अच्छी तरह समझाकर कहा कि हे व्यासजी, तुमको चाहिये कि पहिले परब्रह्म

परमेश्वर के चरणों का ध्यान करो, जब तुम्हारा अन्तःकरण पवित्र हो जाय और वैकुंठनाथ का चमत्कार तुम्हारे हृदय में आवे तब तुम गुण व स्तुति नारायणजी की वर्णन करना। यह बात कहकर नारद मुनि वहाँ से बिदा हुए। इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि हे ऋषीश्वरो! नारदजी धन्य हैं, जिन्होंने संसारी जीवों के कल्याण के वास्ते वेदव्यास को उपदेश दिया। जब नारद मुनि की शिक्षा से व्यासजी सरस्वती नदी में स्नान करने उपरान्त बदरिकाश्रम को, जो श्रीनगर पहाड़ की तरफ है, जाकर बीच ध्यान परमेश्वर के लीन हुए तब उन्होंने इस बात की चिन्तना की कि मुझ अज्ञान की क्या सामर्थ्य है जो थोड़ी सी महिमा उस परब्रह्म परमेश्वर की वर्णन कर सकूँ। उसी समय एक तेज आदिज्योति का उनके हृदय में चमका। तब व्यासजी ने परमेश्वर की कृपा से स्तुति करने की सामर्थ्य पाकर उन चार श्लोकों को, जो नारद मुनि से सुना था, विस्तारपूर्वक लिखा, और उसका नाम श्रीमद्भागवत रखकर अपने पुत्र शुकदेवजी को पढ़ाया। शुकदेवजी महाराज ने राजा परीक्षित से कहा कि जिसके पढ़ने और सुनने से संसारी माया छूट जाती है, पीछे से उसका हाल कहा जायगा। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले कि हे राजन्, जब कुरुक्षेत्र में अठारह अक्षौहिणि दल पांडव और कौरवों का इकट्ठा होकर अठारह दिन तक बड़ा युद्ध हुआ और बहुत मनुष्य शूर-वीर हाथी घोड़े सम्मुख मारे जाकर वीरलोक में पहुँचे और भीमसेन ने अपनी गदा से धृतराष्ट्र के सब पुत्रों को मारने उपरान्त राजा दुर्योधन की जंघा तोड़कर उसको पृथ्वी पर गिराया, और महाभारत होने के पहले जिस समय दुर्योधन ने राजा युधिष्ठिर से सब धन और उनकी स्त्री द्रौपदी को छल करके जुवे में जीत लिया और उसने द्रौपदी के शिर के बाल खींचते हुए बड़ी सासत और अनीति से अपनी सभा में लाकर उससे कहा कि तू हमारी जंघा पर आनकर बैठ, उसी समय भीमसेन ने मन में प्रण किया था कि श्यामसुन्दर की कृपा होगी तो मैं तेरी जंघा अपनी गदा से तोड़ूँगा, सो श्रीकृष्णजी की अनुग्रह से भीमसेन ने अपना प्रण पूरा किया। जिस

समय दुर्योधन पैर टूटा हुआ घायल और अकेला रणभूमि में पड़ा था उस समय अश्वत्थामा द्रोणाचार्य का पुत्र उसके पास आनकर बोला कि हम व तुम लड़कपन में एक साथ रहकर खेलते थे, सो तुमको शत्रुओं ने यह दिन दिखलाकर इस दुर्दशा को पहुँचाया, हमको जो आज्ञा देव सो करें। दुर्योधन यह बात सुनकर अश्वत्थामा से बोला कि मैं अपनी जंघा टूटने और सब भाई और बेटा और सेनापतियों के मारे जाने की कुछ चिन्ता नहीं करता, जितना खेद मुझे पाण्डवों के जीते रहने और राज्य करने का है। सो तुम्हारे रहते हमारे शत्रु राज्य करें, इस बात में तुमको भी बड़ी लज्जा समझना चाहिये। यह बात सुनकर अश्वत्थामा बोला कि आप कहें तो आज रात को मैं जाके सोते समय पाँचों भाई पांडवों का शिर काटकर तुम्हारे पास ला दूँ। यद्यपि सोये हुए मनुष्य को मारना बड़ा पाप है, परन्तु तुम्हारी प्रसन्नता के वास्ते हम ऐसा करेंगे। दुर्योधन ने कहा जो तुम उनका शिर काट लाओ तो तुम्हारा बड़ा उपकार मानेंगे। यह बात सुनकर अश्वत्थामा वहाँ से चला, परन्तु उसके पहुँचने से पहिले ही श्रीकृष्णजी अन्तर्यामी ने जाना कि आज रात को अश्वत्थामा पांडवों के शिर काटने के वास्ते आवेगा, इस वास्ते वैकुंठनाथ ने सन्ध्या समय पांडवों से कहा कि आज रात को तुम पाँचों भाई अपने डेरे में न रहकर सरस्वती के किनारे दूसरा डेरा खड़ा करके सोवो और सब लोगों को इसी डेरे में रहने देव। इसी लिये पाँचों भाई उस रात को दूसरे डेरे में जाकर सोये थे। अश्वत्थामा ने उसी दिन अँधियारी रात में पांडवों के शिर काटने की इच्छा से कृपाचार्य से सम्मति ली। उन्होंने इस अधर्म करने को बहुत मना किया, पर अश्वत्थामा महादेवजी के वरदान का घमंड रखने से कृपाचार्य का कहना न मानकर पहर रात रहे कृत्या को साथ लिये हुए पांडवों की सेना में चला गया, और उसी वरदान के प्रताप से रुद्रस्तोत्र पढ़कर उसने सेना के चारों तरफ आग लगा दी, और पांडवों के पहिले डेरे में जाकर द्रौपदी के पाचों पुत्रों का शिर काट लिया, जो उसी डेरे में युधिष्ठिर आदि पांडवों की शय्या के ऊपर सोये थे, और प्रातःसमय

दुर्योधन के पास लाकर कहा कि हम पाचों भाई पांडवों का शिर काट लाये। राजा दुर्योधन यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और एक एक का शिर अपने हाथ में लेकर दबाने लगा। जब भीमसेन का शिर बतलाकर अश्वत्थामा ने दुर्योधन के हाथ में दिया तब दुर्योधन ने उससे कहा कि यह शिर भीमसेन का न होगा, उसका शिर ऐसा नहीं है जो मेरे दबाने से टूट जावे, इसलिये मुझको मालूम हुआ कि तू द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का शिर काट लाया है, जो पांडवों के रूप के समान थे। इन बिचारे लड़कों को तैने वृथा मारकर हमारे वंश का नाश किया। जब यह बात समझकर दुर्योधन को हर्ष होने के उपरान्त विस्मय प्राप्त हुआ तब वह उसी क्षण मर गया, उसके जन्मपत्र में लिखा था कि उसका मरना हर्ष व विषाद के मध्य में होगा, वही बात आगे आई। अश्वत्थामा दुर्योधन का मरना देखते ही अर्जुन और श्रीकृष्णजी के डर से इस तरह अपने प्राण लेकर वहाँ से भागा जिस तरह सूर्य देवता महादेव के डर से भागे थे। उसका हाल विष्णुपुराण में इस तरह लिखा है कि शिवजी ने सुमाली दैत्य को एक रथ बहुत उत्तम और वेग से चलने वाला तेजवान् दिया था। जब सुमाली दैत्य ने सूर्य के पीछे अपना रथ चलाया तब उस रथ के प्रकाश से जहाँ सूर्य रात करते थे वहाँ दिन बना रहता था। जब सूर्य ने यह हाल देखकर बड़े क्रोध से उसे मार गिराया तब सुमाली ने महादेवजी की शरण में जाकर पुकारा। उस समय भोलानाथ ने सुमाली की सहायता करके सूर्य का पीछा किया। जब सूर्य देवता महादेव के डर से भागे तब शिवशंकर ने त्रिशूल मारकर सूर्य का रथ काशीजी में गिरा दिया। उसी जगह पर लोलार्क तीर्थ हुआ। जब द्रौपदी ने अपने बेटों के शिर काटने का हाल सुना तब उसने अति विलाप करके यह सौगन्द खाई कि जब तक अश्वत्थामा नहीं मारा जावेगा मैं अन्न-जल नहीं करूँगी। जब राजा युधिष्ठिर और अर्जुन आदि पाचों भाई यह हाल सुनकर बहुत रोने लगे तब द्रौपदी ने अर्जुन से कहा कि अश्वत्थामा का मारना अपने अधीन समझो। मैंने यह सौगन्द केवल तुम्हारे भरोसे पर खाई है जैसा उचित जानो वैसा करो। यह

वचन सुनकर अर्जुन ने द्रौपदी से कहा तू धैर्य रख, मैं अश्वत्थामा का शिर काटकर तुझे ला देता हूँ। तू उसी शिर पर खड़ी होकर स्नान करना, तब तेरे कलेजे की दाह मिटेगी। इस तरह द्रौपदी को समझाकर तुरन्त अर्जुन ने गाण्डीव धनुष हाथ में उठा लिया और रथ पर चढ़कर श्रीकृष्णजी से कहा कि जल्दी रथ को चलाइये। श्यामसुन्दर ने ऐसे वेग से अर्जुन का रथ हाँका कि अश्वत्थामा के निकट जा पहुँचा। जब अश्वत्थामा ने रथ को देखकर ब्रह्मास्त्र जो ब्रह्मा ने उसको दिया था अर्जुन पर छोड़ा और वह ब्रह्मास्त्र आग के समान जलता हुआ अर्जुन की तरफ चला तब अर्जुन ने मुरलीमनोहर से पूछा कि यह कैसी अग्नि हमारी तरफ दौड़ी हुई चली आती है। श्यामसुन्दर बोले कि यह ब्रह्मास्त्र अश्वत्थामा का चलाया हुआ है, तुम भी अपना ब्रह्मास्त्र उस पर चलावो जिसमें दोनों अस्त्र आपस में लपटकर वह आग तुम्हारे पास पहुँच न सके। और अश्वत्थामा ने जो अपना अस्त्र चलाया है उसे बुलाने की सामर्थ्य नहीं रखता, और तुम चलाना और फिर बुला लेना दोनों मंत्र जानते हो, इसलिये चलावो। यह बात सुनकर अर्जुन ने भी अपना ब्रह्मास्त्र चलाया। तब वह दोनों ब्रह्मास्त्र मिलकर आपस में लिपट गये। अर्जुन का ब्रह्मास्त्र अश्वत्थामा के अस्त्र को नहीं छोड़ता था कि वह अस्त्र अर्जुन के पास पहुँच सके। जब थोड़ी देर तक दोनों अस्त्र आपस में लिपटे रहे तब श्यामसुन्दर ने अर्जुन से कहा कि तुम जल्दी मन्त्र पढ़कर दोनों अस्त्रों को अपने पास बुला लो, नहीं तो इस अग्नि से संसारी जीव जल मरेंगे। यह वचन सुनते ही अर्जुन ने मन्त्र के बल से दोनों ब्रह्मास्त्र अपने पास बुला लिया और रथ दौड़ाकर अश्वत्थामा को पकड़ लिया, पर अपने हृदय में दया और धर्म की राह विचार किया कि यह ब्राह्मण मेरे गुरु का बेटा है, इसको मारना न चाहिये। जब यह समझकर अर्जुन ने उसका शिर नहीं काटा तब श्यामसुन्दर अर्जुन के धर्म की परीक्षा लेने वास्ते बोले कि हे अर्जुन, अश्वत्थामा ने सोये हुए लड़कों के शिर काटे हैं, इसलिये यह आततायी हुआ, और तुमने इसका शिर काटने का प्रण किया था सो इसको

मार डालो, जिसमें द्रौपदी को संतोष हो, यह बात सुनकर अर्जुन ने कहा कि महाराज आप सत्य कहते हैं पर ब्राह्मण को मारना बड़ा पाप समझकर अभी इसको वध करना न चाहिये, इसे बाँधकर द्रौपदी के पास ले चलो जैसा वह कहे वैसा करना। जब यह बात सुनकर श्यामसुन्दर ने मान लिया तब अर्जुन हाथ व पैर अश्वत्थामा के बाँध कर उसे द्रौपदी के सामने लाया। जब हरिभक्ता द्रौपदी ने अश्वत्थामा को बँधे हुए देखा तो वह अपने धर्म और दया की राह से रुदन करने लगी और श्रीकृष्णजी की बहुत स्तुति कहकर अर्जुन से विनयपूर्वक बोली कि हे स्वामी, तुमने मेरी प्रतिज्ञा पूरी की, अब इस ब्राह्मण को मारने से मेरे मरे हुए बालक जी नहीं सकते, इसलिये अश्वत्थामा को छोड़ देव। वह अपने कर्मों का दंड परमेश्वर से पावेगा। जिस तरह मैं अपने बेटों के मरने का शोच करती हूँ उसी तरह कृपी नाम अश्वत्थामा की माता भी पुत्र मरने का दुःख पावेगी। और इसके पिता से आपने धनुषविद्या सीखी है, इसलिये अश्वत्थामा को पूजने योग्य समझकर जल्दी छोड़ दीजिये, इसे बाँधकर रखना उचित नहीं है। यह वचन द्रौपदी का सुनते ही राजा युधिष्ठिर और नकुल और सहदेव ने प्रसन्न होकर कहा, द्रौपदी सत्य कहती है, अश्वत्थामा को मारने से सिवाय ब्रह्महत्या के और क्या मिलेगा। जब यह बात द्रौपदी और युधिष्ठिर आदि की भीमसेन को अच्छी नहीं लगी तब वह अपनी गदा पृथ्वी पर पटककर अर्जुन से बोला कि तुमने अश्वत्थामा का शिर काटने का प्रण किया था सो अपनी प्रतिज्ञा झूठी करना न चाहिये, और जो तुम यह कहते हो कि इसके मारने से ब्रह्महत्या लगेगी, सो इसमें ब्रह्मअंश व ब्राह्मण का कर्म नहीं रहा। धर्मशास्त्र में ऐसा लिखा है कि जो कोई शरण आये और सोते हुए को या बालक और स्त्री का वध करे या मतवाले व बौरहे को व हरिभक्त और परमहंस को मारकर दुःख देवे, ऐसे मनुष्य को आततायी समझकर मारना और दंड देना राजाओं का धर्म है, उनके मारने का पाप नहीं होता। आततायी छः तरह के होते हैं, एक जो आग लगावे, दूसरा जो विष देवे, तीसरा जो गुरु की आज्ञा न माने, चौथा

जो ब्रह्मअंश अधर्म से लेवे, पाँचवाँ जो ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्य होकर मदिरा पीवे, छठवाँ जो प्राण मारकर अपना कुटुम्ब पाले, उन लोगों को अवश्य मारना चाहिये। जब भीमसेन की बात सुनकर अर्जुन विचारने लगा कि अब मैं क्या करूँ तब श्रीकृष्णजी ने कहा कि हे अर्जुन! तुमने जो प्रण किया है उसको पूरा करो और भीमसेन का वचन रखकर द्रौपदी का कहना मानो, और जो राजा युधिष्ठिर कहते हैं उनका भी वचन पालो, और वेद में ऐसा लिखा है कि ब्राह्मण का प्राण न मारे और जो आततायी है उनको मार डाले, इसलिये तुम ऐसा काम करो जिसमें वेद और शास्त्र का वचन झूठा न हो और सबको प्रसन्नता हो। यह बात सुनकर अर्जुन ने विचारा कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिसमें अश्वत्थामा का प्राण बचकर वह मरने के बराबर हो जावे। बालहत्या करने से अश्वथामा का बल व तेज जाता रहा था, अर्जुन ने उसका शिर मुड़वा डाला व अपनी तलवार की नोक से चीरकर एकमणि बहुत अच्छी जो उसके सिर में थी निकाल लिया और अपने नगर की सीमा से उसको बाहर निकलवाकर मरणतुल्य करके छोड़ दिया।

आठवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी करके राजा दुर्योधन की लोथ को वीरों समेत जलाना जो कि महाभारत में गये थे और राजा युधिष्ठिर को यज्ञ करने वास्ते समझाना और युधिष्ठिर को बोध न होना, इसलिये भीष्मपितामह के पास ले जाना जो कि रणभूमि में पड़े थे।

सूतजी बोले, हे ऋषीश्वरो! अश्वत्थामा के छोड़ने उपरान्त राजा युधिष्ठिर व श्रीकृष्ण महाराज की आज्ञा पाकर दुर्योधन आदिक कौरव और वीरों की लोथ जो रणभूमि में पड़ी थी, उनके सम्बन्धियों ने उठा लिया व दग्ध कर विधिपूर्वक उनका क्रियाकर्म किया। जब श्यामसुन्दर व धृतराष्ट और पाँचों भाई पांडव और कुन्ती और द्रौपदी व गान्धारी आदि स्नान करने वास्ते गंगा किनारे गये तब जितनी स्त्रियाँ कौरवों

व पाँडवों के घराने में विधवा हो गई थीं वह सब बड़े विलाप से अपने अपने पति का गुण कह कहकर रोने लगीं। उसी समय राजा युधिष्ठिर जो धर्म का अवतार थे, बड़े शोच में डूब गये और अपने ऊपर धिक्कार देकर कहने लगे कि हमारे ये पाप कभी नहीं छूटेंगे व किस तरह मेरा उद्धार होगा। मेरे महाभारत करने से हजारों स्त्रियाँ हमारे कुल व परिवार की विधवा होकर रोती और कल्पती हैं, इनके रोने और आँसू गिरने से जितनी रेणुका पृथ्वी की भीगेगी उतने वर्ष तक मुझे नरकवास करना पड़ेगा। मेरे लड़ाई करने से द्रोणाचार्य गुरु और भीष्मपितामह हमारे दादा व कर्ण मेरा भाई जिसके हाथ से हजारों ब्राह्मण नित्य दान व दक्षिणा पाते थे व हजारों मनुष्य मेरे गोत्री व नातेदार मारे गये। मुझसे बड़ी चूक हुई जो मैंने महाभारत किया, ऐसा अधर्म का राज्य मुझे न करना चाहिये। इन बातों को सुनकर कृष्ण महाराज व वेदव्यासजी आदिक ऋषीश्वर और ब्राह्मणों ने कई बार राजा युधिष्ठिर को समझाकर कहा कि इसी तरह सदा से पिछले राजा करते चले आये हैं। पृथ्वी और राजगद्दी लेने के वास्ते बेटा बाप को और भाई-भाई को मार डालता है। जिस तरह वह लोग राजगद्दी पाकर अश्वमेध यज्ञ करके उन पापों से छूट गये हैं, उसी तरह तुम्हारा पाप भी अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करने से छूट जायगा। यह बात श्यामसुन्दर की सुनकर राजा युधिष्ठिर बोले कि हे ज्योतिस्स्वरूप! आपका यह कहना केवल मन समझाने के वास्ते है, यह करने में भी तो पशु आदिक अनेक जीव हमारे हाथ से मारे जावेंगे। जिस तरह कोई मनुष्य कीचड़ को कीचड़ से धोया चाहे तो नहीं छूटता उसी तरह यज्ञ करने से इन विधवा स्त्रियों की कल्पना नहीं छूटेगी। कदाचित् आप यह कहें कि पहिले तुमने राज्य लेने के वास्ते इतना युद्ध किया अब राज्य क्यों नहीं करते, सो मुझको समर करने की इच्छा न थी, न जाने उस समय किसने मेरी मति को फेरकर महाभारत कराया। अब मैं राजसिंहासन पर नहीं बैठूँगा। यह बात सुनकर मुरलीमनोहर ने जाना कि हमारे समझाने से राजा युधिष्ठिर नहीं मानेंगे। जिस समय श्यामसुन्दर इसी

विचार में बैठे थे उसी समय ब्राह्मण ऋषीश्वरों ने आनकर श्रीकृष्णजी से कहा कि हे त्रिलोकीनाथ! राजा युधिष्ठिर का चित्त राज्यकाज में न लगकर वह अभी इसी चिन्ता में रहते हैं कि हमने अपने भाई और नातेदार व ब्राह्मणों को मारा है, सो आप उनका बोध कर दीजिये। श्यामसुन्दर बोले कि राजा मेरे समझाने से नहीं मानते, हमारी जान में यह उचित है कि उनको भीष्मपितामह के पास जो रणभूमि में बाणशय्या पर पड़े हुए हमारे दर्शनों की इच्छा रखते हैं ले चलें, तब वह राजा युधिष्ठिर को ज्ञान उपदेश करके धैर्य देवेंगे। यह बात कहकर श्यामसुन्दर ने राजा को बुलाके कहा कि हे धर्मराज! तुम्हारी अभी तक चिन्ता नहीं छूटी और ब्राह्मण लोग कहते हैं कि इस पाप के छुड़ाने के वास्ते अश्वमेध यज्ञ करना चाहिये व हमारे समझाने से तुम्हारा बोध नहीं होता, इसलिये तुम हमारे साथ भीष्मपितामह के पास चलो। वे बड़े बुद्धिमान् हैं, जो वह आज्ञा देवें सो करो। राजा युधिष्ठिर ने यह बात मानकर अपने चारों भाई व द्रौपदी व ब्राह्मण व ऋषीश्वरों को रथ पर बैठाल लिया व श्यामसुन्दर के साथ जिस स्थान पर भीष्मपितामह रणभूमि में पड़े थे ले गये। ब्राह्मण लोग दाहिने व पांडव बायें व श्रीकृष्णजी भीष्मपितामह के सम्मुख बैठे। श्मामसुन्दर ने इस वास्ते चरण के समीप बैठना अंगीकार किया कि भीष्मपितामह घायल पड़े हुए मेरे दर्शनों की इच्छा रखते हैं, मैं दूसरी ओर बैठूँगा तो उनको करवट लेने में बहुत कष्ट होगा। यह समाचार सुनकर नारदजी और भरद्वाज व परशुराम आदिक बहुत से ऋषि व मुनि भीष्मपितामह से ज्ञान सुनने के वास्ते वहाँ पर गये और भीष्मपितामह ने मानसी पूजन श्यामसुन्दर का किया।

——:०:——

नवाँ अध्याय।

भीष्मपितामह का राजा युधिष्ठिर को राजनीति धर्म समझाना व द्रौपदी का बोध करना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जब सब लोग वहाँ बैठ चुके तब श्रीकृष्णजी बोले—हे भीष्मपितामह! राजा युधिष्ठिर अपना

मन राज्यकाज में नहीं लगाकर कहते हैं कि हमने अपने भाई व बन्धु व नातेदार और ब्राह्मणों को महाभारत में मारा है, जब तक इन सब पापों से हमारा उद्धार न होगा तब तक राज्य नहीं करेंगे। भीष्मपितामह ने यह वचन सुनते ही राज्यधर्म और आपद्धर्म और दानधर्म व मोक्षधर्म जिसका हाल शांतिपर्व और अनुशासनपर्व महाभारत की पोथी में विस्तारपूर्वक लिखा है, राजा युधिष्ठिर से कहकर संक्षेप में यह ज्ञान बतलाया कि हे राजन्, तुमको बाल्यावस्था से दुःख प्राप्त हुआ, लड़कपन में तुम्हारे पिता मर गये, तब तुमको कुछ ज्ञान न था, कौरवों ने तुम्हारे जलाने का उपाय किया, भीमसेन तुम्हारे भाई के खाने के वास्ते विष का लड्डू बनाकर भेजा, फिर तुम्हारा सब राज्य व धन छल से जुआ में जीतकर तेरह वर्ष का तुमको वनवास दिया, सो वन में तुमने अपने चारों भाई और द्रौपदी स्त्री समेत बहुत से दुःख उठाये। कदाचित् कहो कि सच्चे व धर्मात्मा मनुष्य को दुःख नहीं होता, फिर तुमको जो सत्यवादी व नीतिमान् हो किस वास्ते यह सब दुःख पहुँचा, और कहते हैं कि बलवान् मनुष्य को दुःख व शोक नहीं प्राप्त होता सो तुम पाँचों भाइयों में अर्जुन व भीमसेन बड़े शूर-वीर हैं व द्रौपदी ऐसी पतिव्रता स्त्री तुम्हारे साथ थी, फिर इन्होंने किस वास्ते इतना दुःख पाया, इसके सिवाय जहाँ श्रीकृष्णजी के नाम की चर्चा रहती है वहाँ दुःख नहीं होता सो श्रीकृष्णजी परब्रह्म का अवतार आप रातदिन तुम्हारी सहायता करते थे, फिर तुमने किस वास्ते इतना कष्ट सहा, सो हे राजन्! तुम इस बात को विश्वास करके जानो कि परमेश्वर की इच्छानुसार जिसको जैसा होनहार है उससे पृथक् दूसरी बात नहीं हो सकती, दुःख व सुख पिछले जन्मों के संस्कार से भोगना पड़ता है और परमेश्वर की महिमा और भेद को कोई नहीं जानता। कोई मनुष्य किसी काम के वास्ते परिश्रम करके अपने मनोरथ को पहुँच जाता है और बहुत मनुष्य जन्मभर उद्योग और परिश्रम करने से भी अपने अर्थ को नहीं पाते, इसलिये सबका उत्तम व मध्यम परमेश्वर की इच्छा पर समझना चाहिये, जो वह चाहते हैं सो होता है। इसलिये बुद्धिमान् और ज्ञानी उसी को

समझना चाहिये जो हर्ष व शोक को बराबर जानकर परमेश्वर की इच्छा पर आनन्द रहता है, और जो कोई नारायणजी की आज्ञा ऊपर सन्तोष न रखकर थोड़े से दुःख पहुँचने में रो देता है और जब उसको रोने से कुछ नहीं होता तब हार मानकर कहता है कि नारायणजी की इच्छा यों ही थी, उसे महामूर्ख जानना चाहिये। हे राजन्! मनुष्य के चिन्ता और परिश्रम करने से कुछ नहीं होता, सब काम हरीच्छा से होते हैं, जिसको होनहार कहते हैं, और यह श्रीकृष्ण जो साक्षात् त्रिलोकीनाथ अपना स्वरूप छिपाकर जगत् में लीला करते हैं, इनके भेद को कोई नहीं जानता। यह अर्जुन को अपना भक्त जानकर उसके सारथी हुए थे। इनकी महिमा और बड़ाई कहाँ तक तुमसे वर्णन करूँ। हे राजन्! जो लोग परमेश्वर की इच्छा पर आनन्द से रहकर अपना जन्म तप व जप व हरिचरणों के ध्यान में काटते हैं उनके नाम सुनो। उनमें एक महादेव सदा कैलास पर्वत पर बैठे हुये नारायणजी के तप व ध्यान के सिवाय संसारी व्यवहार से कुछ काम नहीं रखते, दूसरे नारदजी आठों पहर मग्न व आनन्द मूर्ति रहकर जिस जगह उनका मन चाहता है वीणा बजाकर ज्योतिस्वरूप का भजन व गुण गावते फिरते हैं, तीसरे कपिलदेव मुनि दिन रात श्रीपरब्रह्म का जप और ध्यान करके अकेले गङ्गासागर पर बैठे रहते हैं, चौथे शुकदेवजी जन्म से संसारी माया मोह में नहीं लिपटकर आठों पहर वैकुंठनाथ की कथा गाया करते हैं, पाँचवें राजा बलि ने जब जाना कि श्यामसुन्दर की इच्छा यों ही है कि मैं राजसिंहासन पर न रहूँ तब सब राज्य अपना वामन भगवान को अर्पण कर दिया। हे युधिष्ठिर! तुम जानते हो कि मैंने अपने भाई और नातेदार और ब्राह्मणों को मारा है, सो ऐसा समझना न चाहिये, तुम कौन हो तुम्हारा किया कुछ नहीं हो सकता, जो बात नारायणजी ने चाहा सो किया और जब जो चाहेंगे सो करेंगे।

चौ० उमा दारुयोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं॥

इसलिये तुम गोत्रहत्या की चिन्ता अपने मन से दूर करो व भगवान् की इच्छा इसी तरह समझो और यज्ञ करके अपना पाप छुड़ावो और

प्रजा का पालन करना तुम्हारा धर्म है, कदाचित् राज्य नहीं करोगे तो और पाप तुमको होगा। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा जिस समय भीष्मपितामह यह सब ज्ञान व धर्म राजा युधिष्ठिर को समझाते थे उस समय द्रौपदी वहाँ बैठी हुई भीष्मपितामह की ओर देख रही थी जब उन्होंने सब धर्म कहते समय यह बात भी कही कि जिस सभा में धर्म का जाननेवाला मनुष्य बैठा हो व उस जगह दूसरा कोई अधर्म की राह कुछ पाप करने की इच्छा करे तो धर्मात्मा मनुष्य को उचित है कि दूसरे को पाप करने से बर्जि देवे। कदाचित् वह मना करने की सामर्थ्य न रखता हो तो वहाँ से उठ जावे और परमेश्वर का ध्यान करे। यह भीष्मपितामह का वचन सुनते ही द्रौपदी ने राजा युधिष्ठिर व अर्जुन की ओर देख पहिले मुसकरा दिया व फिर मन में लज्जित होकर विचार किया कि देखो राजा दुर्योधन की सभा में भीष्मपितामह के सामने अधर्म की राह मेरी यह दुर्दशा हुई और दुश्शासन ने मुझको नंगी करने के वास्ते मेरा चीर खींचा, राजा दुर्योधन ने मुझे अपनी जंघा पर बैठाने के वास्ते कहा। ऐसी दुर्दशा होने पर भी मेरा प्राण नहीं निकला व मैं अपना मुख लोगों को दिखलाती हूँ, ऐसे जीने से मर जाती तो उत्तम था। जब यह समझकर द्रौपदी बहुत उदास हो मन में अपने को धिक्कार देने लगी तब भीष्मपितामह ने द्रौपदी का मुख मलीन देखते ही उसके हृदय की बात अपने ज्ञान से जानकर कहा कि हे बेटी! तुम अपने मन में कुछ शोच मत करो, यह सब धिक्कार मेरे ऊपर है, किस कारण कि जिस समय यह सब अधर्म तेरे ऊपर हुआ था उस समय मैं भी वहाँ बैठा था, जो मैं दुर्योधन को इस अनीति से मना करना चाहता तो उसकी सामर्थ्य नहीं थी जो ऐसा अधर्म तेरे ऊपर करता, पर उस समय मेरे मन में यह ज्ञान नहीं आया। इससे बेटी, तुम निश्चय जानो कि श्यामसुन्दर की इच्छा इसी तरह पर थी, जो बात वह चाहते हैं सो होती है, उनकी इच्छा में किसी की बुद्धि काम नहीं करती व इसका एक कारण और है, सुनो। कदाचित् कोई मनुष्य कैसा ही ज्ञानी व महात्मा हो अधर्मी की संगति

करने से उसका ज्ञान नष्ट होकर समय पर काम नहीं आता, और जो लोग जिसका अन्न खाते हैं उसके समान उनकी बुद्धि हो जाती है। सो हम उन दिनों राजा दुर्योधन अधर्मी का अन्न खाकर उसी के साथ दिनरात रहते थे, इसलिये मुझे उस समय धर्म व अधर्म का विचार नहीं हुआ। अब हमको छप्पन दिन दानापानी छोड़े व बाणशय्या पर पड़े हो चुके, इसलिये मेरे तन से राजा दुर्योधन के अन्न का विकार व उसके संग का प्रभाव निकल गया तब मुझे इस बात का ज्ञान हुआ। और हे बेटी! इस तरह पर एक इतिहास महाभारत का कहते हैं, सुनो। पिछले युग में राजा शिवि के यहाँ एक परमहंस महात्मा बड़े ज्ञानवान् रहते थे, और राजा उनकी सेवा अच्छी तरह सच्ची प्रीति से करता था। उस राजा के नगर में एक ब्राह्मण ने अपनी बेटी का गहना सोनार को बनाने के वास्ते दिया, सो उस सोनार ने सोना बदलकर पीतल का गहना बनाया व उस पर सोने का मुलम्मा करके ब्राह्मण को दिया व ब्राह्मण ने बिना जाँचे वह गहना सोनार से लेकर अपनी बेटी को पहिनाया। जब वह लड़की उसे पहिनकर अपनी ससुराल में गई तब उसके पति ने पीतल का गहना देखकर मन में खेद माना और उसे अपने घर न रखकर ब्राह्मण के स्थान पर बिदा कर दिया व फिर अपने यहाँ नहीं बुलाया। जब उस ब्राह्मण ने बहुत उदास होकर राजा के पास नालिश किया तब राजा शिवि ने सोनार का अपराध सत्य जानकर सब अन्न व धन उसका लूट के अपने स्थान में भेजवा दिया। एक दिन राजमन्दिर में उसी अन्न की रसोई तैयार हुई और उसमें परमहंस ने भी भोजन किया, इसलिये अधर्मी सोनार का अन्न खाने से परमहंस ने ऐसा विचार किया कि कुछ वस्तु राजा की चोरी करें। यह बात विचारकर परमहंस ने रानी का एक जड़ाऊ हार बहुत उत्तम महल के भीतर से कि उनको वहाँ जाने वास्ते मनहाई नहीं थी चुरा लिया, और कपड़े में लपेटकर अपने पास रख लिया व तीन दिन तक परमहंस राजमन्दिर पर नहीं गया। जब उपवास करने से सोनार का अन्न पेट में नहीं रहा तब परमहंस को ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ कि हमने हार

चुराया है, इस पाप के बदले नरक भोगना पड़ेगा, इस वास्ते अपने अधर्म का दंड इसी तन में भोग कर लेना उचित है जिसमें परलोक का डर न रहे। परमहंस यह बात विचारकर वह हार राजा के पास ले गया व अपनी चोरी करने का हाल कहकर बोला—हे पृथ्वीनाथ! इस पाप के बदले मेरे दोनों हाथ कटवा डालिये जिसमें हम अपने अधर्म का दंड इसी जन्म में भोग कर लेवें। यह वचन सुनते ही राजा ने उदास होकर पंडितों से पूछा कि इसका क्या कारण है जो परमहंस का चित्त उस दिन ऐसा बदल गया कि इन्होंने हार चुराया और आज उस हार को मेरे पास लाकर ऐसी बात कहते हैं। ब्राह्मणों ने अपनी विद्या से विचार-कर कहा कि महाराज, जिस रोज परमहंस ने चोरी किया उस दिन किसी अधर्मी का अन्न खाया होगा। सो पूछने से राजा को मालूम हुआ कि उसी सोनार पापी का अन्न खाने से परमहंस की बुद्धि बदल गई थी। सो हे द्रौपदी! एक दिन अधर्मी के अन्न खाने से परमहंस महात्मा का ऐसा ज्ञान जाता रहा कि उसने चोरी किया और मैं राजा दुर्योधन अधर्मी का सदा अन्न खाकर उसके साथ रहता था, मुझे उस समय इतना ज्ञान नहीं आया कि दुर्योधन को तेरे ऊपर अधर्म करने से मना करता तो कौन बड़ी बात थी।

—:o:—

दसवाँ अध्याय।

भीष्मपितामह को श्रीकृष्ण महाराज की स्तुति करना और श्यामसुन्दर के ध्यान में लवलीन होकर अपना शरीर त्याग करना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि भीष्मपितामह ने यह सब ज्ञान पांडवों और द्रौपदी आदि से कहकर चतुर्भुजरूप परमेश्वर का ध्यान अपने हृदय में रख लिया और श्रीकृष्णजी की तरफ देखकर बहुत स्तुति करके बोले—हे ज्योतिस्स्वरूप परब्रह्म, आप केवल अपने भक्तों की इच्छा पूर्ण करने के वास्ते अवतार धारण करते हैं जिस तरह आप दया की राह मेरे सामने बैठे हैं उसी तरह कृपा करके बैठे रहो जिसमें प्राण छोड़ते समय तुम्हारे चरणों का ध्यान मेरे हृदय में बना रहे।

आप सबसे पहिले थे व महाप्रलय में भी तुम्हारा नाश न होकर आपकी माया से उत्पत्ति व पालन व नाश तीनों लोकों का होता है व आप उत्पन्न होने व मरने से कुछ प्रयोजन न रखकर केवल पृथ्वी का भार उतारने व अधर्मी व दुष्टों को मारने के वास्ते अपनी इच्छा से अवतार लेते हैं। तुम्हारे अवतार लेने का यह कारण है कि जिसमें संसारी लोग आपकी साँवली सूरति मोहनी मूरति का ध्यान, जो सब गुणों से भरी है, अपने हृदय में रक्खें व पापों से छूटकर भवसागर पार उतर जावें। तुम्हारी दया व कृपा अपने भक्तों पर इतनी है कि अपने भक्त अर्जुन के प्राण की रक्षा करने के वास्ते उसके सारथी होकर आप आगे बैठे और अर्जुन को अपने पीछे बैठाला। जिस समय मैं चोखे चोखे बाण अर्जुन पर चलाता था उस समय काल भी उन बाणों के सामने होता तो भाग जाता सो आपने अर्जुन की रक्षा करके उन तीरों से बचाया और उन बाणों के घाव अपने अंग पर उठाया सो मेरे बाणों के घाव से तुम्हारी साँवली सूरत पर रक्त के छीटें मूँगे के समान ऐसे शोभायमान दिखलाई देते थे जिसकी शोभा वर्णन नहीं हो सकती। आप अर्जुन को इस वास्ते धैर्य देते जाते थे जिसमें उसका पराक्रम कम न हो और आपके चन्द्रमुख पर टेढ़े टेढ़े घूँघरवाले बाल कैसे सुन्दर मालूम देते थे जैसे काले काले भँवरे कमल के फूल का रस चूसते हैं। तुम्हारे मुखारविन्द पर धूर उड़कर पड़ने और पसीना होने से कैसा मालूम देता था जैसे फूल पर ओस की बूँदे रहती हैं, और वह पसीना तुम अपने पीताम्बर से पोंछकर दाहिने हाथ कोड़ा व बायें हाथ में रास घोड़ा की लिये हुये रथ को जल्दी से मेरी तरफ दौड़ाते थे। सो मैं चाहता हूँ कि वही आपका स्वरूप मेरी आँखों में बसा रहे व तुम्हारे कमलरूपी चरण मेरे हृदय से बाहर न जावें। आप अपने भक्तों का ऐसा मान रखते हैं कि महाभारत होने के पहिले तुमने प्रण किया था कि हम शस्त्र नहीं चलावेंगे, केवल रथवानी करके शंख बजावेंगे, और हमने प्रतिज्ञा की थी जो मैं भीष्मपितामह कि आपको लड़ाई में विकल करके तुम्हारा प्रण छुड़ाकर तुमसे अस्त्र धराऊँ। सो आपने भक्त-पक्ष की राह से विचारा

कि मेरा प्रण छूट जावे तो सन्देह नहीं, पर मेरे भक्त की प्रतिज्ञा न छूटे। यह समझकर जब मैंने अर्जुन के रथ का पहिया तोड़कर घोड़ों को मार डाला और उसके रथ की ध्वजा व धनुष काट के गिरा दिया तब आप क्रोध करके उसी रथ का टूटा हुआ पहिया उठाकर मेरे मारने के वास्ते दौड़े। उस समय तुम कैसे सुन्दर मालूम देते थे जैसे श्याम घटा बिजुली के साथ बड़े धूमधाम से चढ़े। दौड़ते समय तुम्हारा पीताम्बर जो ओढ़े थे पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके गिरने का यह कारण है कि जब आपने प्रतिज्ञा छोड़कर शस्त्र धरा तब पृथ्वी यह समझकर मारे डरके काँपने लगी कि श्यामसुन्दर ने मेरा भार उतारने के वास्ते अवतार लिया है, कहीं वह भी अपना प्रण न छोड़ देवें। पृथ्वी के हृदय की बात तुमने जानकर उसको धैर्य देने के वास्ते अपना पीताम्बर गिरा दिया कि तू मत डर, अपने भक्तों का प्रण रखने के वास्ते मैंने अपनी प्रतिज्ञा छोड़ी है, तेरा भार हम उतारेंगे। जिस तरह कोई मनुष्य अपनी वस्तु दूसरे के बोध करने के वास्ते गिरौं धर देता है, उसी तरह तुमने अपना पीताम्बर गिरा कर पृथ्वी को धैर्य दिया। और जब मैं चाहता था कि सब सेना पाण्डवों की मारकर हटा दूँ तब तुम मेरे रथ के चारों तरफ़ आनकर अपने अनेक रूप दिखलाते थे जिसमें मेरा चित्त घबड़ा जावे। जब मैं अनेक रूप देखने से विकल होकर यह नहीं समझता था कि इसमें कौन रूप सत्य और कौन स्वरूप माया का है तब फिर तुम अपने निजरूप से रहिकर मेरी बहुत प्रशंसा करते थे। जब मैं उन बातों को समझता हूँ तब मुझे बड़ी लज्जा आती है और अपने को अपराधी समझकर आपके सामने अपना मुँह नहीं दिखलाने सकता। आप दयालु अपने भक्तों को ज्ञान देकर उनका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं, इसलिये तुमने मुझे जो मरने के निकट पहुँचा था बिना बुलाये आनकर अपना दर्शन दिया नहीं तो मरते समय बड़े-बड़े मुनि और ऋषीश्वर और ज्ञानियों को ध्यान में भी तुम्हारा दर्शन जल्दी नहीं मिलता, किस वास्ते कि अन्त समय मनुष्य को इतना दुःख होता है जितना कष्ट साठ हजार बिच्छू के एक साथ डंक मारने से होता है। इसलिये उस समय पीड़ा से मनुष्य

अचेत होकर उसका चित्त ठिकाने नहीं रहता। उस समय तुम्हारी कृपा होने से जिसका ज्ञान बना रहता है वह आदमी तुम्हारे चरणों का ध्यान हृदय में रखकर भवसागर पार उतर जाता है, इसलिये मैं तुमसे यही चाहता हूँ कि यह स्वरूप आपका मेरी आँखों के भीतर बसकर तुम्हारे चरणों में मेरा मन लगा रहे। यह स्तुति करने के उपरान्त भीष्म-पितामह ने ज्योतिस्स्वरूप का ध्यान हृदय में रखकर श्यामसुन्दर और सब ऋषीश्वर और मुनीश्वरों को दंडवत् करके अपनी आँख बन्द कर लिया और योगाभ्यास के साथ अपना तन छोड़कर वैकुंठवास पाया। उस समय देवतों ने आकाश से उन पर फूलों की वर्षा किया।

ग्यारहवाँ अध्याय।

राजा युधिष्ठिर का राजगद्दी पर बैठना और भीष्मपितामह का क्रियाकर्म करना और परीक्षित के मारने के वास्ते अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र चलाना, जो उत्तरा नाम अभिमन्यु की स्त्री के पेट में था व श्यामसुन्दर का परीक्षित की रक्षा करना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि भीष्मपितामह के मरने का शोच श्रीकृष्णजी व पाण्डवों ने बहुत किया। फिर मुरली-मनोहर ने राजा युधिष्ठिर को समझाया कि जिस तरह की मृत्यु संसार में भीष्मपितामह ने पाई इस तरह की मृत्यु दूसरे को पाना बहुत दुर्लभ है। संसार में जिसने तन धारण किया वह एक दिन अवश्य मरेगा, इस वास्ते इनके मरने का शोक छोड़कर हर्ष मानना चाहिये। जो कोई मनुष्य का तन पाकर संसारी माया मोह में फँसा रहे व परमेश्वर से विमुख रहिकर जन्म अपना वृथा गँवावे उसके वास्ते रोना उचित है, सो भीष्मपितामह संसार में भक्तिपूर्वक व धर्मसंयुक्त रहिकर शरीर त्यागने के उपरान्त वैकुंठ को गये, इसलिये इनके मरने का शोक न करना चाहिये। यह वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अपने मन को धैर्य दिया व श्यामसुन्दर की आज्ञा से भीष्मपितामह की क्रिया और कर्म किया। जब मुरलीमनोहर व ऋषीश्वर और मुनीश्वरों ने राजा

युधिष्ठिर को हस्तिनापुर में लाकर राजगद्दी पर बैठाला तब श्रीकृष्णजी महाभारत होने व पृथ्वी का भार उतारने से बहुत प्रसन्न होकर बोले— हे राजन्! तुम प्रजा का पालन करके कुल परिवार समेत राज्य का सुख भोगो और जो कुछ तुम्हारे में शोच है उसको छोड़ दो, यह बात मुरलीमनोहर ने राजा को समझाकर उनसे अश्वमेध यज्ञ कराया व कुछ दिन वहाँ रहकर राजा युधिष्ठिर से कहा--अब हम द्वारकापुरी को जावेंगे। जिस समय श्यामसुन्दर द्वारका जाने की इच्छा रखते थे उसी समय अश्वत्थामा ने शिर मूड़ने और मणि निकाल लेने की लज्जा से राजा युधिष्ठिर आदि पाँचों भाईयों के जलाने के वास्ते ब्रह्मास्त्र चलाया। जब वह अस्त्र अपना पाँच मुँह बनाकर पांडवों की तरफ आया व उस अस्त्र का एक छोटा सा अंगारा गर्भवती उत्तरा के पेट में घुस गया व उसके उदर में आग जलने लगी। तब वह उस जलने से व्याकुल होकर नंगे शिर दौड़ी हुई कुन्ती के पास चली गई। जब कुन्ती ने उसको अपने साथ श्यामसुन्दर के पास ले जाकर उसके पेट में आग जलने का हाल कहा, तब श्रीदुःखभंजन ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी कि तुम उत्तरा के पेट में जाकर ब्रह्मास्त्र की गर्मी से रक्षा करो और स्वयं श्रीकृष्णजी भी अंगुष्ठप्रमाण अपना रूप धरकर उत्तरा के पेट में चले गये और गदा हाथ में लेकर वहाँ घुमाने लगे। उस समय परीक्षित ने साँवली सूरत मोहनी मूरति का दर्शन पाने से चैतन्य होकर अपनी माता के पेट में उनको दूसरा बालक समझा। जब अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र जो युधिष्ठिर आदिक के जलाने के वास्ते पाँच मुँह बनाकर गया था, श्यामसुन्दर की भक्ति रखने व सुदर्शन चक्र के रक्षा करने से उन पाँचों भाइयों को जलाने की सामर्थ्य न रखकर फिर आया। तब अश्वत्थामा ने उस अग्नि को मंत्र के बल से बुझा दिया व राजा विराट् की बेटी उत्तरा अपनी जाति के अभिमान से गुरुमुख भी न होकर हरिचरणों में अच्छी तरह विश्वास व प्रेम नहीं रखती थी। इसलिये ब्रह्मास्त्र का एक अंगारा उसके पेट में चला गया था, सो कुन्ती के कहने से श्यामसुन्दर ने उसकी भी रक्षा किया। जब वैकुंठनाथ द्वारका जाने

लगे तब कुन्ती व द्रौपदी व राजा युधिष्ठिर व अर्जुन व भीमसेन व नकुल व सहदेव ने उनके सामने हाथ जोड़कर कहा--हे दीनानाथ ! तुम्हारे जाने से हम लोगों को बड़ा दुःख मालूम होता है, अब हमारी रक्षा यहाँ कौन करेगा, जितना सुख हमको तुम्हारे चरणों के दर्शन पाने से मिलता था उतना आनन्द इस राजगद्दी मिलने से नहीं है, तुम्हारे चरण देखे बिना हम लोगों को धैर्य किस तरह होगा और कुन्ती हाथ जोड़कर बोली--हे महाप्रभु ! अब तक मैं तुमको अपने भाई का बेटा समझकर तुम्हारी महिमा नहीं जानती थी, अब मुझे विश्वास हुआ कि आप परब्रह्म परमेश्वर का अवतार होकर संसारी जीवों की उत्पत्ति व पालन व नाश करते हैं, और मेरे बेटों ने महाभारत में तुम्हारी कृपा से विजय पाया है, और आप सब ऋषीश्वर और मुनि अपने भक्तों को दर्शन देने और भवसागर पार उतारने और धर्म की रक्षा करने के वास्ते सगुण रूप धरते हैं, नहीं तो तुमको क्या प्रयोजन था जो सब जीवों के मालिक होकर मत्स्य और शूकरादिक का अवतार लेते, तुमने वसुदेव व देवकी के घर जन्म लेकर उनको एक बेर कैद से छुड़ाया, मुझे और मेरे बेटों पर जब-जब कष्ट पड़ा, तब-तब तुमने दया की राह आनकर हम लोगों का दुःख दूर किया। अब मैं ऐसा जानती हूँ कि तुम हम लोगों को राज्य देकर जाते हो इसलिये हमारी सुध भूल जाओगे, सो मुझे राज्य की इच्छा न होकर फिर उसी तरह विपत्ति व वनवास चाहिए जिसमें तुम्हारा दर्शन सदा होता था। यह सुख व राज्य किस काम का है जहाँ तुम्हारा दर्शन न मिले, धन पाने से अभिमान अधिक होकर तुम्हारा भजन नहीं बन पड़ता, इसलिए तुम दीन पर अधिक दयालु होते हो। मनुष्य के वास्ते वह बात अच्छी होती है जिसमें परमेश्वर का ध्यान बना रहे, राज्य व द्रव्य पाने से मनुष्य संसारी सुख में भूलकर परमेश्वर का प्रेम छोड़ देता है और आप सबके मालिक और ईश्वर होकर किसी का डर नहीं रखते, सूर्य और चन्द्रमा तुम्हारी आज्ञा से दिन-रात्रि फिरा करते हैं और अपने भक्तों पर तुम ऐसी कृपा और दया करते हो कि यशोदा पर दयालु होकर तुम

अपनी इच्छा से ऊखल में बँध गये, नहीं तो तीनों लोकों में कौन ऐसा है जो तुम्हारी तरफ आँख उठाकर देख सके। जहाँ कालादिक तुमसे डरकर काँपते हैं वहाँ तुम यशोदा की छड़ी से डरते थे, यह सब लीला आपने अपने भक्तों को सुख देने के वास्ते संसार में किया है। अब मैं यह चाहती हूँ कि बेटा व भाई आदि सब परिवार की प्रीति मेरे मन से छूटकर आठों पहर तुम्हारे चरणों का ध्यान हृदय में बना रहे, जिसके प्रभाव से भवसागर पार उतर जाऊँ। जब यह बात कहकर कुन्ती श्यामसुन्दर के जाने का शोच करके अतिविलाप से रोने लगी, तब मुरलीमनोहर अपनी माया फैलाने के उपरांत मुसकराकर बोले—हम तुमको नहीं भुलावेंगे, तुम हमारी माता की जगह हो। हमको द्वारका से आये बहुत दिन हुए, अब वहाँ जाकर सब किसी को देखेंगे, सात्यकी व ऊधो हमारे साथी चलने के वास्ते जल्दी करते हैं। यह वचन सुनके राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—हे भाई! तुम अपनी सेना व शूर-वीर साथ लेकर श्यामसुन्दर को बड़े यत्न से द्वारका में पहुँचा दो, किस वास्ते कि मेरे शत्रु बहुत हैं, और महाभारत की लड़ाई में मुरलीमनोहर हमारे सहायक थे, ऐसा न हो, जो कोई हमारा शत्रु राह में उपाधि करे। जब अर्जुन राजा युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर श्रीकृष्णजी के साथ द्वारका जाने के वास्ते तैयार हुए और श्यामसुन्दर सब किसी से विदा होके रथ पर बैठकर चले, तब राजा युधिष्ठिर आदि सब हस्तिनापुरवासी त्रिभुवनपति के स्नेह में विलाप करते हुए उनके पीछे दौड़े व वहाँ की सब स्त्रियाँ रुदन करके आपस में कहने लगीं कि देखो, धन्य भाग्य ब्रज की अहीरिनियों के हैं, जो श्यामसुन्दर त्रिभुवनपति के साथ रासलीला करके अपना जन्म सुफल करती थीं, और बड़े भाग्य रुक्मिणी आदि सोलह हजार एक-सौ आठ स्त्रियों के समझना चाहिये, जो ऐसा सुन्दर मोहनीमूर्ति स्वामी पाकर उनके साथ भोग और विलास करती हैं, ऐसी-ऐसी बातें एक दूसरी से कहकर श्यामसुन्दर पर फूल वर्षावती थीं व केशवमूर्ति उनकी बातें सुनके व सच्चा प्रेम देखकर अपनी तिरछी चितवन से उनको देखते व सुख देते हुए चले जाते थे। उस दिन

श्रीकृष्णजी के वियोग का दुःख जितना हस्तिनापुरवासियों को हुआ उसका हाल वर्णन नहीं हो सकता। जब श्रीदीनानाथ ने देखा कि यह सब मेरे प्रेम में दूर तक चले आये, तब अपना रथ खड़ा करके सबको धैर्य देकर बिदा किया, तब वह लोग पछताते हुए हस्तिनापुर फिर गये।

बारहवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णमहाराज का द्वारकापुरी में पहुँचना व सब द्वारकावासियों का हर्ष मनावना।

सूतजी ने कहा--जब सब कोई हस्तिनापुर फिर गये, तब श्यामसुन्दर अर्जुन से बोले कि रथ को जल्दी चलाओ। यह वचन सुनकर अर्जुन ने रथ हाँका, जब मोहनीमूर्ति की सेना विदर्भदेश व कुंडिनपुर व कुन्तिदेश व पंजाब व कश्मीर की राह से होती हुई चली, तब राह में सब देश के राजाओं ने आकर अपने-अपने देश की सौगात वृन्दावनविहारी को भेंट दिया व उनका दर्शन करके अपना जन्म सुफल जाना व राहवाले श्यामसुन्दर का दर्शन पाकर इस तरह उनकी स्तुति करते थे कि देखो, इन्हीं परब्रह्म परमेश्वर ने पृथ्वी के भार उतारने के वास्ते संसार में जन्म लिया है, जिनका दर्शन ब्रह्मा व महादेव आदि देवताओं को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता, उनका दर्शन हम लोगों को बड़े भाग्य से प्राप्त हुआ, और इन्होंने कौरव व पांडवों से महाभारत कराके पृथ्वी का भार उतारा व अनेक मनुष्य कहते थे--धन्य भाग्य यदुवंशियों के हैं, जो इनको अपना नातेदार समझकर दिन-रात्रि इनकी सेवा में रहते हैं। इसी तरह सब छोटे-बड़े उनकी महिमा व लीला कहकर प्रसन्न होते थे। जब तीसरे दिन द्वारकापुरी के निकट पहुँचकर अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया, तब सब द्वारकावासी मुरलीमनोहर के आने का हाल जानकर बहुत आनन्दित हो गये। श्रीकृष्णजी, अपने पुत्र साम्ब व पौत्र अनिरुद्ध को द्वारकापुरी की रक्षा करने के वास्ते छोड़ गये थे, ये दोनों शंखध्वनि सुनते ही अपनी सेना व यदुवंशी व ब्राह्मण व ऋषीश्वरों को साथ लेकर गाते-बजाते मुरलीमनोहर को आगे से लेने के वास्ते गये व नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि सब कोई

गली व सड़क व अपने-अपने द्वार पर मंगलाचार करें, सो सब द्वारकावासियों ने नगर में चन्दनादिक सुगन्ध उड़ने के वास्ते छिड़कवा दिया व अपने-अपने द्वार पर सब स्त्रियाँ अच्छा-अच्छा गहना व कपड़ा पहनकर, आरती लेकर वृन्दावनविहारी की पूजा करने के वास्ते खड़ी हो गईं व अनेक स्त्रियाँ सोलहों शृंगार करने के उपरांत अपनी-अपनी खिड़की व कोठों पर बैठ व खड़ी होकर बाँकेबिहारी की छवि देखने के वास्ते इच्छा करने लगीं। जिस समय वह साँवलीसूरति मोहनीमूरति बड़ी तैयारी से द्वारकापुरी में आये उस समय सब छोटे-बड़ों ने उनका दर्शन पाकर फूलों की वर्षा किया व जिस तरह मुर्दे के तन में प्राण आ जावें उसी तरह सबों ने नया जन्म पाकर हर्ष मनाया और मुरलीमनोहर ने मिलते समय बड़ों को दंडवत् व बराबरवालों से गले मिलकर, छोटों को आशिष दिया व प्रजा लोगों की भेंट हाथ से छूकर उनका सम्मान किया, और अपने मन्दिर में जाकर, माता व पिता के चरणों पर शिर रक्खा। वसुदेव व देवकी व राजा उग्रसेन पांडवों की विजय होना सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और सब द्वारिकावासियों ने दीनानाथ से कहा-- महाराज! हम लोग तुम्हारे देखे बिना अन्धे हो रहे थे, जिस तरह अँधियारी रात में बिना चन्द्रमा आँख होने से भी कुछ दिखलाई नहीं पड़ता और आँखवाला चन्द्रमा को याद करता है, वही हाल हमारा था व द्वारकावासी स्त्रियाँ श्यामसुन्दर को देखकर इस तरह प्रसन्न हुईं जिस तरह चकोर चन्द्रमा के देखने से आनन्दित हो जाता है, और जब श्यामसुन्दर महलों में पहुँचे, तब रुक्मिणी आदि सब स्त्रियों ने अपने-अपने महल में खड़ी होकर उनका बड़ा सम्मान किया और उन्होंने जो नन्दलालजी के पीछे अच्छा गहना और कपड़ा नहीं पहनती थीं उस दिन प्रसन्न होकर अपना-अपना शृंगार किया और एक ही समय में अपने अनेक रूप धारण करके श्यामसुन्दर सब महलों में गये और सब छोटे-बड़े द्वारिकावासियों को सुख दिया।

—०—

तेरहवाँ अध्याय।

परीक्षित का जन्म लेना और राजा युधिष्ठिर का हर्ष मनाना व धृतराष्ट्र और गान्धारी का जंगल में जाना व माण्डव्य ऋषीश्वर की कथा।

सूतजी ने कहा--हे ऋषीश्वरो! दूसरे शास्त्र व पुराण सुनने से बहुत दिन में परमेश्वर की भक्ति उत्पन्न होती है और जब भागवत की कथा सुनने की कोई इच्छा करे उसी समय उसके पापों के तीन टुकड़े होकर एक भाग सुनने की इच्छा करते, व दूसरा जाते समय, व तीसरा श्रवण करने से छूट जाता है, व दूसरे धर्म यज्ञ व्रतादिक सम्पूर्ण होने से उसके फल मिलते हैं और भागवत जितना सुने उतना फल पावे, सो राजा युधिष्ठिर को हस्तिनापुर की राजगद्दी होने पर भी श्यामसुन्दर के दर्शन पाये बिना कुछ अच्छा नहीं लगता था, दिन-रात उन्हीं के चरणों का ध्यान अपने हृदय में रखकर राज-काज करते थे, सो तुम लोग अब परीक्षित के जन्म लेने का हाल सुनो। जब परीक्षित उत्तरा के पेट से उत्पन्न हुआ, तब आँख खोलकर चारों तरफ इस इच्छा से ताकने लगा कि जो स्वरूप मैंने माता के उदर में देखा था वह कहाँ है, परन्तु इस भेद को किसी ने नहीं जाना, और राजा युधिष्ठिर ने बड़े उत्साह से नान्दीमुख श्राद्ध किया व मंगलाचार मनाकर ब्राह्मण व याचकों को मुँह माँगा दान व दक्षिणा दिया। जब ज्योतिषी पंडितों को बुलाकर जन्म लग्न का हाल पूछा, तब पंडितों ने विचारकर कहा--यह बालक जन्म लेते ही आँख खोलकर सबकी परीक्षा लेता था इसलिये परीक्षित नाम रक्खो। यह लड़का बड़ा प्रतापी व बलवान् और नीतिमान् और धर्मात्मा राजा होगा। प्रजा लोग इससे बड़ा सुख पावेंगे और तुम्हारा नाम और कीर्ति व यश इस बालक के चारों दिशाओं में अधिक फैलेगा व बुद्धि में बृहस्पति, व धैर्य में हिमाचल और गम्भीरता में समुद्र, शूरता में परशुराम व दाता में महादेव व सुखविलास करने में इन्द्र व सत्य बोलनेवालों में तुम्हारे समान यह लड़का होकर राजर्षियों में इसकी गिन्ती होगी व अधर्मी व पापी व कलियुग को दण्ड देकर प्रजा का पुत्र की तरह पालन करेगा व अन्त समय में जब ऋषीश्वर का एक

बालक इसे शाप देगा तब तक्षक सर्प के काटने से इस बालक की मृत्यु गंगाजी के किनारे होगी। यह बात सुनकर राजा ने उदास होके ज्योतिषियों से पूछा--तुम सत्य बतलाओ, किसी ब्राह्मण के क्रोध से तो नहीं मरेगा, साँप के काटने से मरना हमारे कुल में अच्छा होता है, ऐसा न हो कि किसी महात्मा व ब्राह्मण व साधु व संत के शाप व क्रोध से मरे। ज्योतिषियों ने कहा--हे युधिष्ठिर! यह लड़का तुम्हारे कुल में हरिभक्त होकर साधु व ब्राह्मण व महात्माओं की सेवा में रहेगा व मरते समय श्यामसुन्दर के चरणों का ध्यान हृदय में रखकर तन त्याग करेगा। ऐसा प्रतापी व परमेश्वर का भक्त आज तक तुम्हारे कुल में दूसरा कोई नहीं हुआ है, तुमको विपत्ति पड़ने से परमेश्वर की भक्ति हुई थी और इसको लड़कपन से हरिचरणों में भक्ति व प्रीति रहेगी। यह बात सुनते ही युधिष्ठिर आदिक बहुत प्रसन्न हुए व ज्योतिषियों को दक्षिणा देकर बिदा किया और आपस में उन्होंने कहा कि पाँच भाइयों में परमेश्वर ने यह भाग्यवान् लड़का दिया है, इससे हमारा नाम संसार में स्थिर रहेगा। यह बात समझकर सब छोटे-बड़े आनन्दित हुए व राजा युधिष्ठिर राजगद्दी और प्रजापालन का काम अच्छी तरह नीति और धर्म के साथ करने लगे पर मन में संसारी माया-मोह से वह विरक्त रहकर दिन-रात यही इच्छा रखते थे कि परीक्षित सयाना हो जावे तो उसको राजगद्दी पर बैठालकर वन में चले जायँ और परमेश्वर का भजन व स्मरण करके अपना परलोक बनावें व अपने चाचा धृतराष्ट्र व चाची गान्धारी को, जिनके पुत्र महाभारत में मारे गये थे, आदरपूर्वक रख-कर, उनकी आज्ञानुसार राजकाज करते थे व उन्हें दिन-रात्रि इस बात का ध्यान बना रहता था कि किसी तरह धृतराष्ट्र और गान्धारी को दुःख न होवे, दुःख पाने से उनको दुर्योधन आदि अपने पुत्रों के मारे जाने का बड़ा शोच होगा। धृतराष्ट्र ने राजा युधिष्ठिर का सेवा करना व आज्ञा मानना देखकर कहा--हे राजन्! मैं मन से कभी यह बात नहीं चाहता था कि तुम्हारे साथ शत्रुता करूँ, पर न मालूम कौन मेरी बुद्धि फेर देता था। यह वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर बोले—हे चाचा, दिन

भर लड़ाई करके जब सन्ध्या को मैं डेरे पर आता था उस समय यह विचार करता था कि चार दिन के जीवन के वास्ते अपने भाई-बन्धुओं को मारना उचित नहीं है, कल से महाभारत बन्द करूँगा। जब प्रातः-काल सोकर उठता था, फिर लड़ाई की तैयारी करके युद्ध करता था। इसलिये समझना चाहिए कि इसी तरह सबके भाग्य में मृत्यु लिखी थी, हरि-इच्छा में कोई युक्ति नहीं लगती, जो ईश्वर ने चाहा सो किया, ऐसी बातें कहकर राजा युधिष्ठिर धृतराष्ट्र व गान्धारी का बोध करते थे और राजा युधिष्ठिर के राज्य में ऐसा धर्म था कि श्यामसुन्दर की दया से प्रजा की इच्छानुसार पानी बरसता था और असमय में भी फूल व फल वृक्षों में लगे रहते थे व सब छोटे-बड़े आनन्द से रहकर बाघ व बकरी एक घाट पानी पीते थे। जब उन्हीं दिनों में विदुरजी, एक वर्ष के उपरान्त, तीर्थयात्रा करते हुए यमुना के किनारे, मैत्रेय ऋषीश्वर के स्थान पर आये, तब उन्होंने ऋषीश्वर से दुर्योधन आदि कौरवों के मारे जाने का हाल व युधिष्ठिर का राजगद्दी पर बैठना सुनकर बड़ा शोच किया और यह भी विदुरजी को वहाँ मालूम हुआ कि राजा युधिष्ठिर धृतराष्ट्र व गान्धारी को अपने स्थान में सुख व सन्मान से रखते हैं। यह समाचार सुनकर विदुर ने चित्त में बड़ा खेद करके कहा--देखो, बड़े आश्चर्य की बात है कि धृतराष्ट्र का मन ऐसी विपत्ति पड़ने व राज्य छूटने व सौ बेटों के मारे जाने में भी अभी तक संसारी माया से विरक्त नहीं हुआ व राजा युधिष्ठिर के यहाँ रहना ही चाहता है इसलिये हम धृतराष्ट्र को संसारी मोह छुड़ाने की राह दिखला देवें तो इसमें उनका भला होगा। जब ऐसा विचारकर विदुरजी ने परमेश्वर की इच्छा पर सन्तोष किया व हस्तिनापुर में राजमन्दिर पर गये, तब राजा युधिष्ठिर ने बहुत आदर व सन्मान करके, हाथ जोड़कर उनसे कहा कि तुमने हमारे कुल में श्यामसुन्दर के भक्त उत्पन्न होकर बड़ी कृपा से अपना दर्शन हमको दिया व अपने चरणों से हमारा घर पवित्र किया, आपके हृदय में आठों पहर परमेश्वर का वास रहता है, हे विदुरजी! तुमने हम पाँचों भाइयों को लड़कों के समान पालन करके बड़े दुःख

में हमारी सहायता किया है, जिस समय दुर्योधन आदि कौरवों ने हम लोगों को लाह के कोट में रखकर चाहा था कि जलाकर मार डालें उस समय तुमने दया करके पहले से वहाँ पर सुरंग खुदवाकर हमारा प्राण बचाया, बहुत अच्छा हुआ जो आप आये, कहिये, कौन-कौन तीर्थों पर गये थे, प्रभासक्षेत्र में भी गये हो तो कुछ हाल श्यामसुन्दर का बतलाओ, मुझको राज्य देकर जब से गये हैं तब से उनका कुछ समाचार नहीं पाया। विदुरजी ने दूसरे तीर्थों का हाल वर्णन किया, पर सब यदुवंशियों के मारे जाने व श्रीकृष्णजी के अन्तर्धान होने का समाचार इसलिये नहीं कहा कि अर्जुन आकर सब हाल कहेगा। कदाचित् मैं कहता हूँ तो राजा युधिष्ठिर को बड़ा दुःख होगा। अच्छे लोग यह कह गये हैं कि ऐसी बात किसी के सामने न कहना चाहिए, जिसके सुनने से उनका मन दुःखित हो। जब महल में स्त्रियों ने विदुर के आने का हाल सुना, तब द्रौपदी आदि ने विदुर को परमेश्वर का भक्त जानकर दण्डवत् किया व सब हस्तिनापुरवासी उनके आने से प्रसन्न हो गये। जब विदुरजी ने वहाँ से धृतराष्ट्र के द्वार पर जाकर उन्हें व गान्धारी को दण्डवत् किया, तब धृतराष्ट्र ने विदुर से गले मिलने के उपरांत रोकर कहा--हे भाई, तुम्हारे जाने के पीछे मेरे ऊपर बड़ा दुःख पड़ा व हमारे सब बेटे मारे जाकर राजगद्दी नष्ट हुई, यह बात सुनकर विदुरजी बोले--हे भाई, मुरलीमनोहर की इच्छा इसी तरह पर थी, उन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के वास्ते अवतार धारण किया था, अब कहो राजा युधिष्ठिर तुम्हारी प्रीति व खाने-पहिरने का सत्कार किस तरह पर करते हैं। धृतराष्ट्र ने कहा, राजा युधिष्ठिर मुझसे बड़ा प्रेम रखकर हमें अपने बाप और गान्धारी को माता की जगह जानते हैं व अर्जुन भी हमारा बहुत आदर करता है, पर भीमसेन राजा युधिष्ठिर के पीछे मुझे दुर्वचन सुनाकर यह कहता है कि जब दुर्योधन तुम्हारा बेटा राजगद्दी पर वर्तमान था, तब तुमने विष मिलाकर लड्डू मेरे खाने को भेजा व पाँचों भाइयों को लाह के कोट में रखकर हमारे जलाने के वास्ते अग्नि लगवा दिया। अब तुम अपना पालन हमसे चाहते हो

तुम्हारे बराबर दूसरा कोई पापी और अधर्मी जगत् में न होगा यह वचन भीमसेन का मुझसे सहा नहीं जाता और यह बातें कहकर फिर मुझे धमकी देता है कि राजा युधिष्ठिर से मेरी चुगली खाओगे तो खाने बिना तुमको मार डालूँगा। यह हाल सुनकर विदुरजी ने बड़ा खेद करके मन में कहा कि देखो परमेश्वर की माया ऐसी प्रबल है कि इतनी दुर्दशा होने पर भी धृतराष्ट्र व गान्धारी घर नहीं छोड़ते। जिस तरह लालची मनुष्य पुराने कपड़ों को त्याग नहीं करता और वह चिथड़ा उसके पास सदा नहीं रहकर एक दिन नष्ट हो जाता है, उसी तरह यह तन इनका सदा स्थिर नहीं रहेगा। बुढ़ापा होने पर भी इनको अपने तन की प्रीति नहीं छूटती। इसलिये इनको ज्ञान सिखलाकर संसारी माया से विरक्त कर देना चाहिये, जिसमें इनकी मुक्ति हो। यह बात विचार-कर विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा--सुनो भाई, यह बात भीमसेन की सत्य जानकर अब तुमको राजा युधिष्ठिर के घर में किसी तरह रहना उचित नहीं है। तुमने अपने राज्य भोगने के समय अधर्म से कैसा-कैसा दुःख भीमसेन को दिया था व दुर्योधन तुम्हारे बेटा ने मध्य सभा में द्रौपदी को चीर खिंचवाकर नंगी करना चाहा, भीमसेन को विष देकर पाँचों भाई पांडवों को लाह के कोट में रखकर आग लगवा दिया, उनका सब राज्य और धन छल से जुए में जीतकर तेरह वर्ष वनवास दिया। यह बात तुमको याद होगी। अब तुम उन्हीं के हाथ से इस शरीर को, जो सदा स्थिर नहीं रहेगा, पालते हो। तुम्हारा जीवन संतान व संसारी माया-मोह में बीता, अब तुम बूढ़े हुए और तुम्हारे सब पुत्र मारे गये, तिस पर तुम राजा युधिष्ठिर के घर में रहकर कहते हो कि राजा हमको अच्छी तरह रखते हैं। इतना दुःख उठाने पर भी तुम्हारा मन विरक्त नहीं होता। हे भाई! हमने सुना था कि परमेश्वर की माया बड़ी प्रबल है, सो तुमको अपनी आँख से देखा कि सब बेटे व पोते तुम्हारे मारे गये, राजगद्दी जाती रही, तुम भी मरने के निकट पहुँचे और जिस भीमसेन ने तुम्हारे बेटों को मारा उसी के हाथ से रोटी लेकर खाते हो। तुमको लज्जा नहीं आती तुम्हारे ऐसे खाने और जीने पर धिक्कार है। जिस तरह कुत्ता

लाठी मारने से भागता है और रोटी का टुकड़ा देने से फिर उसको खा लेता है, वैसी ही गति तुम्हारी भी है। हे भाई! बुढ़ापा आने पर भी तुमको अपने जीने की आशा बनी है, तुम्हारा मन संसार से विरक्त नहीं होता। तुम सदा अमर न रहोगे, इसलिये तुमको यहाँ से उत्तराखंड में चलना उचित है। वहाँ हरिचरणों में ध्यान लगाकर अपना शरीर त्याग करो, जिसमें तुम्हारी मुक्ति बने। संसार में तुम्हारी यह गति हुई, अब अपने परलोक को भी क्यों बिगाड़ते हो। यह वचन सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—हे भाई! तुम सत्य कहते हो, हमारे मन में भी इसी बात की इच्छा है। पर हम स्त्री पुरुष दोनों मनुष्य आँखों से अन्धे लाचार हैं, किस तरह उत्तराखंड को जावें। तब विदुरजी बोले—तुम दोनों मनुष्यों को हम अपना हाथ पकड़ाकर अच्छी तरह ले चलेंगे। तुम हमारे बड़े भाई हो, तुम्हारी सेवा करना हमको उचित है। जब तक तुम जीओगे, तब तक मैं साथ रहकर तुम्हारी टहल अच्छी तरह करूँगा। धृतराष्ट्र और गान्धारी विदुर का यह वचन मानकर दोनों मनुष्य आधी रात को विदुरजी के साथ राजा युधिष्ठिर से बिना कहे उत्तराखंड को हरद्वार की तरफ चले गये। आगे-आगे विदुरजी धृतराष्ट्र का हाथ पकड़े और गान्धारी अपने पति का हाथ धरे हुए चली गई। जब प्रात समय राजा युधिष्ठिर स्नान और नित्य नियम करके माता व पिता को दंडवत् करने के वास्ते उनके स्थान पर गये, तब मकान सूना पाकर बड़ा शोच करके मन में विचार किया कि वह लोग अपने बेटों के शोक में या मुझसे दुःखित होकर न मालूम कहाँ चले गये अथवा मेरा कुछ अपराध समझकर गंगा में डूब मरे। राजा युधिष्ठिर यह बात कहकर रोने लगे। फिर उन्होंने संजय से पूछा कि हमारे माता व पिता आँखों के अन्धे, जिन्होंने मुझे बड़े प्रेम से पाला था, कहाँ चले गये, तुम उनका कुछ हाल जानते हो? संजय ने कहा—मैं यह नहीं जानता कि वह कहाँ गये, पर विदुरजी उनसे कुछ बातें करते थे, उन्हीं के साथ वह गये हैं। यह बात सुनकर राजा युधिष्ठिर राजसिंहासन पर आके बड़ी उदासी में बैठे थे कि उसी समय नारदजी वहाँ आये। राजा

ने उनको दण्डवत् करके बड़े आदर से बैठालकर पूछा--महाराज, हमारे माता व पिता न जाने कहाँ चले गये। कोई वन का पशु उनको खा जायगा या कहीं कुयें में गिरकर मर जायँगे। उनका कुछ हाल आपको मालूम हो तो बतला दीजिए हम जाकर प्रार्थना करके उनको फेर लावें। वह खाने-पीने का दुःख पाते होंगे। आपने बड़ी कृपा की जो इस महाकष्ट में हमारे पास आये। नारद मुनि यह बात सुनकर बोले—हे राजन्, यह मायारूपी संसार झूठा है। जगत् में जो उत्पन्न हुआ वह एक दिन अवश्य मरेगा, इसी वास्ते परमेश्वर ने इसका नाम मर्त्यलोक रक्खा है। तुम धृतराष्ट्र व गान्धारी के जाने का वृथा शोच करते हो। दुःख व सुख किसी के अधीन नहीं रहता, यह दोनों वस्तु परमेश्वर के हाथ हैं। जिस तरह खेलते समय बहुत से बालक एक जगह इकट्ठे होकर सम्पूर्ण खेल होने के उपरान्त अलग हो जाते हैं उसी तरह नारायणजी संसार को रचकर फिर गुप्त कर देते हैं। तुम जो उनके खाने और पहिरने का शोच करते हो, यह भी परमेश्वर के अधीन समझो। जब बालक गर्भ में रहता है, तब उसे कौन खाने को देता है? जिसकी जीविका परमेश्वर ने जहाँ बना दी है उसी जगह वह उसको पहुँचाता है। इसलिये उनकी चिन्ता न करो। जिस तरह मनुष्य बैल को नाथकर जिधर चाहे उधर ले जाता है, उसका कुछ वश नहीं चलता, उसी तरह संसारी मनुष्य अपनी स्त्री व बालक व धन के जाल में मायारूपी रस्सी से बँधे हैं। जिसके ऊपर परमेश्वर दया करके किसी संत व महात्मा से भेंट करा देवे तब वह मनुष्य ज्ञान सीखकर इस मायारूपी फंदे से छूटकर मुक्ति पदवी पर पहुँचता है। सो हे राजन्! तुम धृतराष्ट्र व गान्धारी के वास्ते कुछ चिन्ता मत करो। वह दोनों विदुरजी के ज्ञान सिखलाने से विरक्त होकर उनके साथ हिमाचल पहाड़ के दक्षिण सप्तऋषीश्वरों के स्थान पर चले गये हैं। वहाँ जाकर हरिचरणों का ध्यान करके आज के सातवें दिन अपना तन त्याग करेंगे। अब उन्होंने संसारी माया तजकर अपने शरीर का भी मोह छोड़ दिया। इस समय तुमको उनका फेर लाना उचित नहीं है। शोच उसके वास्ते करना

चाहिए जो हरिभक्ति से विमुख हो, और जो मनुष्य संसारी जाल से छूटकर परमेश्वर का ध्यान करे उसका शोच करना वृथा है, इसलिये तुम कुछ चिन्ता न करके परमेश्वर को सबका मालिक समझो। यह बात कहकर नारदजी वहाँ से चले गये और राजा युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र व गान्धारी के जाने का शोच छूट गया। नारद मुनि के उपदेश से संसारी व्यवहार झूठा मालूम हुआ। इतनी कथा सुनकर ऋषीश्वरों ने सूतजी से पूछा कि विदुरजी को धर्मराज का अवतार कहते हैं, उनकी कथा किस तरह है, कहिये। सूतजी ने कहा--हम विदुर का थोड़ा सा हाल कहते हैं सुनो। मांडव्य ऋषीश्वर को झूठी चोरी लगाकर किसी राजा ने फाँसी दिलवा दी। जब ऋषीश्वर को धर्मराज के पास ले गये तब ऋषीश्वर ने धर्मराज से कहा कि हमने अपनी जानकारी में आज तक कोई बुरा काम चोरी आदि नहीं किया था, कौन पाप करने के बदले हमको फाँसी दी गई, इसका हाल कहो। धर्मराज बोले--तुमने लड़कपन में एक टीड़ी को काँटे की नोक पर उठाकर मार डाला था उसी पाप के बदले तुमने फाँसी पाई है। यह बात सुनकर ऋषीश्वर बोले--हे धर्मराज, लड़कपन में पाप व पुण्य का ज्ञान नहीं होता, अज्ञानता से बहुत अधर्म होता है, उस पाप का दंड न देना चाहिये। तुमने मुझे बिना अपराध फाँसी दिलवा दी, इस वास्ते हम परमेश्वर से चाहते हैं कि तुम दासीपुत्र होकर सौ वर्ष तक मर्त्यलोक में रहो। उसी शाप से धर्मराज दासीपुत्र होकर सौ वर्ष संसार में रहे। धर्मराज जब तक विदुर के अवतार में जगत् में थे तब तक सूर्यदेवता ने धर्मराज का काम किया था। इसी कारण विदुर को परमेश्वर की भक्ति बनी थी।

चौदहवाँ अध्याय।

अर्जुन का द्वारका से वापस आना और युधिष्ठिर का श्यामसुन्दर का हाल पूछना।

सूतजी ने कहा कि हे ऋषीश्वरो! नारद मुनि के कहि जाने के सात दिन बीतने पर धृतराष्ट्र व गान्धारी ने अपना तन त्याग दिया व विदुर-

जी उनकी क्रिया व कर्म करके तीर्थयात्रा करने चले गये। राजा युधिष्ठिर नारदजी के ज्ञान समझाने से संसारी व्यवहार झूठा समझकर उदासीन चित्त परमेश्वर के ध्यान में रहा करते थे। जब उन्हीं दिनों में श्रीकृष्णजी द्वारकापुरी से गोलोक को पधारे तब उनके वैकुंठ जाने से राजा को कलियुग के लक्षण मालूम हुए और बुरे-बुरे स्वप्न दिखाई देने लगे। मनुष्यों के स्वभाव में अधर्म, क्रोध, लोभ और कपट अधिक हो गया। स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र और भाई-बन्धुओं में झगड़ा होने लगा। ये सब कलियुग के लक्षण देखकर राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा कि अर्जुन श्यामसुन्दर प्राणप्यारे के समाचार लेने के वास्ते द्वारकापुरी को गये हैं सो सात महीने हो गये, अभी तक नहीं आये। इसका कुछ कारण मालूम नहीं होता। नारदजी हमसे कह गये हैं कि मुरलीमनोहर ने पृथ्वी का भार उतारने के वास्ते अवतार लिया था। सो उन्होंने महाभारत कराके पृथ्वी का बोझ दूर किया, अब उनका थोड़ा सा काम मर्त्यलोक में और रह गया है उसको संपूर्ण करके परमधाम को जावेंगे। सो अब मुझे संसार में कुलक्षण देखने से जान पड़ता है कि वह समय आ पहुँचा। जिस श्यामसुन्दर की दया से हमने अपने शत्रुओं को मारकर यह सब सुख व राजगद्दी पाया उनके बिना मुझे दिनरात नये-नये अशकुन दिखाई दे रहे हैं। मेरी बाईं भुजा व आँख फड़कती है, कभी-कभी हमारा शरीर काँपने व कलेजा धड़कने लगता है, मन में डर सा मालूम होता है। प्रातः समय सूर्य की तरफ सियार खड़े होकर बोलते और दिन को तारे आकाश से टूटते हैं। जब मैं अहेर खेलने जाता हूँ तब सौंजे मेरी बाईं तरफ से होकर निकल जाते हैं। मेरे चढ़ने के घोड़े व हाथी मुझको रोते दिखलाई देते हैं। दिनरात कुत्ते रुदन किया करते हैं और रात को उल्लू की बोली सुनने से मुझे डर मालूम होता है। चारों दिशाओं में अँधियारा सा देख पड़ता है। इन दिनों भूचाल आया करता है। पृथ्वी बारंबार काँपती है, थोड़ा सा बादल आकाश पर होने से बिजुली गिरती है, आँधी चलती है, आकाश से लोहू बरसता है, सूर्य में प्रकाश कम हो गया है, नदी व नाले का पानी सीधा नहीं बहता, अग्निहोत्री लोग जब आग में आहुति डालते हैं तब

अग्निदेवता प्रसन्न होकर आहुति नहीं लेते, बछड़े गायों का दूध प्रसन्न होकर नहीं पीते, गऊ की आँख से आँसू बहते हैं, साँड़ गायों से प्रीति नहीं करते, देवतों की मूर्ति से पसीना निकलता है, मेरी सभा में अनावश्यक मनुष्य झूठ बोलते हैं, लोगों के स्वभाव में क्रोध और लोभ अधिक हो गया है, आकाश में केतु निकलता है, साधु-महात्मा का चित्त हरि भजन में नहीं लगता, शहर में किसी के घर मंगलाचार नहीं होता, हस्तिनापुर मुझको उजाड़-सा दिखलाई देता है। सो हे भीमसेन, इन सब लक्षणों से मुझे जान पड़ता है कि श्यामसुन्दर प्यारे मेरे प्राण की रक्षा करनेवाले मृत्युलोक छोड़कर वैकुंठ को पधारे। जिस समय राजा युधिष्ठिर बैठे हुए ऐसा शोच कर रहे थे उसी समय अर्जुन द्वारका से आये और राजा के चरणों में प्रणाम करके उनके सामने उदासीन चित्त हाथ जोड़कर खड़े हो गये। अर्जुन का यह हाल हुआ था कि श्रीकृष्णजी ने वैकुंठ जाने के समय दारुक सारथी से अर्जुन को कहला भेजा था कि तुम द्वारकापुरी से सब विधवा स्त्रियों, लड़कों, बूढ़ों को तथा यादवों की सब वस्तु हस्तिनापुर ले जाना, इसलिये अर्जुन उन सबको असबाब समेत द्वारकापुरी से अपने साथ लेकर हस्तिनापुर आ रहे थे, राह में हस्तिनापुर के निकट भिल्लों ने सब धन लूट लिया। अर्जुन ने गांडीव धनुष चढ़ाकर बहुत से बाण उनको मारे, पर उन तीरों से कुछ काम न चला, सब वस्तु डाकू लूट ले गये। उस समय अर्जुन ने उदास होकर कहा कि अब हमारा ऐसा समय आ गया है कि जिस धनुष-बाण से हमने भीष्मपितामह, कर्ण, व जयद्रथ आदि कितने शूरवीरों को जीता था, वही तीर-कमान रहने पर भी हम डाकुओं से हार गये। इससे मालूम होता है कि वह सब पराक्रम केवल श्यामसुन्दर की कृपा से था। अब श्रीदुःखभंजन मेरे रक्षा करनेवाले नहीं हैं, इसलिये मेरा सब बल व तेज जाता रहा। यही चिन्ता करने से और मुरलीमनोहर के वैकुंठ जाने से अर्जुन का मुख बहुत मलीन हो गया था। राजा युधिष्ठिर ने उनको उदास देखकर पूछा—हे अर्जुन, सब यदुवंशी, नाना शूरसेन, वसुदेव मामा, देवकी, राजा उग्रसेन, अक्रूर, बलदेवजी, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध व चारुदेष्ण सब लड़के-बाले,

मुरलीमनोहर, उद्धवभक्त और सब द्वारकावासी अच्छी तरह हैं ? श्यामसुन्दर मेरे प्राणप्यारे जिन आदिपुरुष भगवान् ने संसारी जीवों का मंगल करने के वास्ते यदुकुल में अवतार लिया है, सुधर्मा सभा में आनन्द से हैं ? हे अर्जुन, तुम बहुत उदास दिखलाई देते हो, तुम्हें कोई रोग तो नहीं हुआ ? तुम बहुत दिनों तक द्वारका में रहे हो, तुम्हारा अपमान तो किसी ने नहीं किया ? अथवा किसी सभा में तुम्हारा अनादर तो नहीं हुआ ? क्या तुमने किसी को कोई वस्तु देने को कहा था सो दे नहीं सके ? तुमने किसी ब्राह्मण व महात्मा का अपमान तो नहीं किया ? क्या कोई भूखा तुम्हारे घर आया था उसको तुमने भोजन नहीं दिया ? अथवा कोई ब्राह्मण, बालक, बूढ़ा, रोगी, स्त्री अथवा शत्रु के डर से तुम्हारी शरण में कोई आया और तुमने उसकी रक्षा नहीं की इसलिये तुम्हारा मुख उदास और मलीन है ? अथवा तुमने रजस्वला स्त्री से भोग तो नहीं किया ? किसी छोटे मनुष्य से लड़ाई में हार तो नहीं गये ? जिससे तुम्हारा तेज जाता रहा ? अच्छी चीज भोजन करते समय तुमने बूढ़े व बालक देखनेवालों को उसमें से न देकर अकेले तो नहीं खा लिया ? अथवा श्यामसुन्दरविहारी मर्त्यलोक छोड़कर वैकुंठधाम को तो नहीं पधारे, इसलिये तुम्हारी यह गति हुई है ? इसका हाल हमसे बताओ।

पन्द्रहवाँ अध्याय।

अर्जुन का श्रीकृष्णचन्द्रजी के अन्तर्धान होने का हाल राजा युधिष्ठिर से कहना और परीक्षित को राजगद्दी पर बैठालकर द्रौपदी समेत पाँचों भाई पाँडवों का उत्तराखंड में चले जाना और मुरलीमनोहर के ध्यान में अपना तन त्याग करना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि अर्जुन ये सब बातें राजा युधिष्ठिर से सुनकर कुछ नहीं बोले, पर श्यामसुन्दर के चरणों का ध्यान धरकर इतना रोये कि उन्हें हिचकी आने लगी, बात कहने की सामर्थ्य नहीं रही। कुछ बेर बीते अर्जुन ने मन को धैर्य देकर राजा युधिष्ठिर से कहा--हे पृथ्वीनाथ ! मैं क्या कहूँ, श्यामसुन्दरविहारी हमको छोड़कर अन्तर्धान हो गये। मैं उनको अपना भाई मामा का बेटा जानता था। कदाचित् हम लोग उन्हें परब्रह्म परमेश्वर जानकर उनकी सेवा करते तो भवसागर पार उतर

कर आवागमन से छूट जाते, किन्तु परमेश्वर की माया ऐसी प्रबल है जिसमें लिपटे रहने से हम लोगों ने उनको नहीं पहिचाना। जिस तरह एक बेर चन्द्रमा दक्ष प्रजापति के शाप से बहुत दिनों तक समुद्र में जाकर रहे थे, यह बात सब कोई जानते हैं कि चन्द्रमा के पास अमृत रहता है और मछलियाँ बड़े-बड़े जलचर जीवों व मनुष्यों के खा जाने के डर से सदा अमृत पीने के वास्ते इच्छा रखतीं और चाहती हैं कि हमको अमृत मिलता तो मरने से निर्भय होकर अमर रहतीं। सो चन्द्रमा हजारों वर्ष तक मछलियों के साथ समुद्र में रहे। जिस तरह उन्होंने चन्द्रमा को नहीं पहचाना, उनको समुद्र का एक जीव समझा, उसी तरह हम लोगों ने भी श्रीकृष्णजी को पूर्णब्रह्म न जानकर यदुवंशी जाना। अब वह बात समझकर हमको बड़ा शोच होता है। देखो, मैं उन्हीं की सहायता से बड़े-बड़े राजाओं व वीरों को महाभारत में मारकर यह समझता था कि अपने पराक्रम से इनको मारता हूँ। अब मुझे इस बात का विश्वास हुआ कि श्यामसुन्दर की दया से मैंने सबको जीता था। जब से वह मुझे यहाँ छोड़कर वैकुंठ को चले गये तब से मेरा पराक्रम कुछ काम नहीं करता। देखो, मैं वही अर्जुन और वही धनुष-बाण और वही मेरी भुजाएँ हैं जिनसे मैंने महादेव, गन्धर्व, इन्द्र और मय नाम राक्षस को लड़ाई में जीता था। भीष्मपितामह, कर्ण और जयद्रथ आदि बड़े-बड़े शूरवीरों को मारा और कैसे-कैसे राजाओं को विजय करके यज्ञ करने के वास्ते द्रव्य लाया और अश्वत्थामा की मणि निकाल लिया था, सो अब वह शस्त्रादिक रहने पर भी एक श्यामसुन्दर के बिना राह में डाकुओं से हार गया। वह लोग मुझे जीतकर सब धन और स्त्री आदि जो द्वारका से अपने साथ लाता था, लूट ले गये, इसलिये मैं उदास हूँ। जिस स्थान पर हमको विपत्ति पड़ती थी उसी जगह उनका सुदर्शन चक्र हमारी रक्षा करता था। अब उनके बिना किस तरह मैं प्रसन्न रहूँ। जब महाभारत में कर्ण आदि वीरों ने अनेक प्रकार से मुझे मारने के वास्ते चाहा तब मुरलीमनोहर रथ हाँकते समय हमारे आगे खड़े हो गये और मुझे अपने पीछे रखकर मेरी रक्षा की, मुझको धैर्य देकर कहते थे, तू मत डर, भीष्म व कर्ण

आदिक सब योद्धा मरे हुए हैं, उनकी कृपा से मेरे शरीर पर शस्त्रादिक का कोई घाव नहीं लगता था, जैसे कोई साधु महात्मा का अशुभ चाहे तो परमेश्वर की दया से उनका कुछ नहीं बिगड़ता। श्यामसुन्दर हमारे शत्रुओं की आयुर्बल अपनी दृष्टि से क्षीण करते जाते थे। जब लड़ते समय मैं कभी-कभी उनसे खेद के साथ कहता था कि जल्दी-जल्दी रथ क्यों नहीं हाँकते तब वह दीनानाथ मुझे अपना भक्त और बालक जानकर कुछ बुरा नहीं मानते थे। हे राजन्, मैं उन्हीं की दया और कृपा से बड़े-बड़े प्रतापी राजाओं के सामने मत्स्य बेध कर द्रौपदी को स्वयंवर में से लाया और तुम्हारे मना करने पर भी उनका मन पाकर कौरवों के सन्मुख प्रकट हुआ था। जब दुर्वासा ऋषीश्वर ने कौरवों के भेजने से आधी रात को वन में जाकर हमसे भोजन माँगकर शाप देने की इच्छा की उस समय श्रीकृष्णजी दीनानाथ हम लोगों को अपना भक्त जानकर वहाँ आये और ऋषीश्वर के शाप से बचाकर उनसे आशीर्वाद दिलाया। ये बातें याद करके मेरी छाती शोक और चिन्ता से फटी जाती है। जैसे मुर्दे को कपड़ा व गहना पहिनाकर बैठा दिया जाय वही हाल श्यामसुन्दर के चले जाने से मेरा समझना चाहिए। हे पृथ्वीनाथ! मैं उनके साथ थाली में भोजन करके एक शय्या पर सोता था और वह परब्रह्म नारायण होकर मेरा इतना आदर करते थे, सो कहो अब इस तरह से हमारी कौन रक्षा और सम्मान करेगा और किसके आश्रय व भरोसे पर हम उतना घमंड रक्खेंगे। जब श्रीकृष्णजी महाभारत कराके यहाँ से द्वारकापुरी को गये तब उन्होंने मन में विचार किया कि यह सब यदुवंशी हमारे कुल में बड़े बलवान् उत्पन्न हुए हैं, मेरे जाने के उपरांत उपद्रव करके संसारी जीवों को बड़ा दुःख देंगे इसलिये अपने सामने इन लोगों का भी नाश कर देना उचित है। पर अपने हाथ उनका मारना अधर्म समझकर दुर्वासा ऋषीश्वर से शाप दिलवा दिया, तब छप्पन करोड़ यदुवंशी इस तरह आपस में लड़कर मर गये जिस तरह समुद्र में बड़े जीव छोटे जीवों को खा जाते हैं। सो हे धर्मराज, यह बात कहते हुए इसी समय मेरे प्राण शरीर से निकल जाते, पर श्यामसुन्दर

ने दारुक नाम सारथी से यह बात मुझे कहला भेजा था कि स्त्रियों, बालकों और बूढ़ों को द्वारका से हस्तिनापुर ले जाना और मेरे वियोग का शोक मत करना। हमने गीता में जो कुछ ज्ञान तुमको बतलाया है उसी के अनुसार शरीर को झूठा तथा चैतन्य आत्मा को सत्य जानकर संसारि माया-मोह में मत लिपटना। वही ज्ञान समझकर मैंने सन्तोष किया है, नहीं तो अब तक मेरे प्राण निकल जाते। सो हे पृथ्वीनाथ, अब जीने का कुछ सुख नहीं है। अब इसी में भला है कि हम लोग भी अपना तन तपस्या में गला डालें। जब इतनी बात कहकर अर्जुन अति विलाप करके रुदन करने लगे, तब राजा युधिष्ठिर भीमसेन आदि अपने भाइयों के साथ बड़े जोर से रोकर बोले हे अर्जुन! हम लोग अब जीकर क्या करेंगे और यह राजपाट हमारा किस काम आवेगा। अब हमें यहाँ रहना उचित नहीं है। परीक्षित को राजगद्दी देकर हम लोग बदरी-केदार में चलकर अपना शरीर त्याग करें। युधिष्ठिर की यह बात सब भाइयों ने मान ली। जब रोने का शब्द महल में पहुँचा और श्यामसुन्दर के अन्तर्धान होने का हाल स्त्रियों को मालूम हुआ तब कुंती और द्रौपदी आदि ने रो पीटकर इतना शोक किया जिसका हाल वर्णन नहीं किया जा सकता। कुंती ने उसी खेद में श्यामसुन्दर के चरणों का ध्यान धरकर अपना तन त्याग दिया और राजा युधिष्ठिर ने पुरोहित को बुलाकर हस्तिनापुर की राजगद्दी पर परीक्षित को बैठा दिया तथा इन्द्रप्रस्थ और मथुरा का राज्य, वज्रनाभ नाम बालक को जो श्यामसुन्दर के कुल में बच गया था, देकर राजा युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, नकुल व सहदेव पाँचो भाई और उनकी स्त्री द्रौपदी ने अपना-अपना वस्त्र उतार डाला और एक-एक लँगोटी व चादर पहिनकर राजमन्दिर से बाहर निकले। उस समय जो ब्राह्मण व कँगाल वहाँ पर आये उनको मुहँमाँगा द्रव्य देकर उत्तराखंड को सिधारे। जो कुछ ज्ञान श्रीकृष्णजी ने अर्जुन को गीता में बतलाया था उसकी चर्चा आपस में करते हुए कुछ दिनों तक श्यामसुन्दर का ध्यान व तपस्या किया, फिर हिमालय में जाकर हरि-चरणों का ध्यान करते हुए पहिले नकुल उसके पीछे युधिष्ठिर आदि

चारों भाइयों ने द्रौपदी के साथ अपना-अपना तन गला दिया! विदुरजी ने प्रभासक्षेत्र में जाकर अपना शरीर त्याग किया। राजा परीक्षित राजगद्दी पर बैठकर धर्म के साथ प्रजा का पालन करने लगे। न्याय से राज्य करके प्रजा को प्रसन्न रक्खा और तीन बार अश्वमेध यज्ञ करके कलियुग को दंड दिया। अपना विवाह राजा विराट् की पौत्री से किया। वे दान और धर्म में इतना खर्च करते थे कि एक बेर यज्ञ करते समय उनके पास द्रव्य नहीं रहा, तब श्यामसुन्दर का ध्यान करने से बहुत धन उनको मिल गया और यज्ञ अच्छी तरह सम्पूर्ण हुआ। इसी तरह राजा युधिष्ठिर को तीसरे अश्वमेध यज्ञ के आरम्भ के समय धन का प्रयोजन पड़ा था, तब नारद मुनि उनके कहने से मुरलीमनोहर को हस्तिनापुर में लाकर युधिष्ठिर से बोले--हे राजन्, पिछले युग में राजा मरुत ने ऐसा यज्ञ किया था, जिसके यहाँ प्रतिदिन ब्राह्मणों को एक-एक थाली, लोटा, लुटिला और सुनहरी चौकी भोजन करते समय नई देकर फिर वह सब जूंठे बर्तन नगर के उत्तर गड़हे में फेंकवा दिये जाते थे। यज्ञ होने के उपरान्त जितना सोने का बर्तन बच गया था वह आज तक उस नगर के दक्षिण तरफ गड़ा हुआ है। तुम उन बर्तनों को मँगवाकर अपना यज्ञ करो। सो राजा युधिष्ठिर ने वही बर्तन मँगवाकर यज्ञ में खर्च किया था। श्यामसुन्दर अपने भक्तों की सब इच्छा पूर्ण करते हैं। इतनी कथा सुनकर शौनकादिक ऋषीश्वरों ने पूछा कि राजा परीक्षित ने कलियुग को किस वास्ते दंड दिया। सूतजी ने कहा कि जब राजा परीक्षित सातों द्वीपों के राजों को जीतकर अपने अधीन कर चुके तब उन्होंने विचारा कि राजा युधिष्ठिर के राज्य भोगने तक द्वापरयुग था, अब कलियुग आया, सो हम अपने राज्य में कलियुग को रहने न देंगे। ऐसा विचारकर राजा परीक्षित यह हाल देखने के वास्ते कि हमारे राज्य में कलियुग ने प्रवेश किया या नहीं, दिग्विजय करने निकले। सो जिस देश में पहुँचते थे वहाँ मनुष्यों को अपने कर्म व धर्म से परमेश्वर का ध्यान और चर्चा करते देखकर नारायणजी का गुण गाते थे, क्योंकि कलियुग ने अभी तक वहाँ प्रवेश नहीं किया था।

राजा अपनी प्रजा से कहते थे कि तुम लोग इसी तरह अपने कर्म व धर्म पर स्थिर रहना। जिस देश में परीक्षित की सेना पहुँचती थी उस देश के राजा उनका तेज और प्रताप देखकर उनसे मिलते और बहुतसी भेंट देकर विनय करते थे कि हम लोग राजा युधिष्ठिर और अर्जुन के समय से तुम्हारे अधीन हैं। यह बात सुनकर परीक्षित सब राजों का सम्मान करते थे, किसी को दुःख नहीं देते थे और जो लोग उनके बड़ों का यश गाते थे उनको शिरोपाव देकर विदा कर देते थे। इसी तरह राजा परीक्षित ने दिग्विजय करते हुए कुरुक्षेत्र में नदी के किनारे पहुँचकर क्या देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक बैल एक पैर से खड़ा है उसके तीन पाँव टूटे हुए हैं, और एक दुबली-पतली गौ रोती और काँपती हुई उसके पीछे खड़ी है। वे दोनों आपस में कुछ बातें करते हैं। बैल और गाय का यह हाल देखकर राजा अपने धर्म व दया से एक वृक्ष की ओट में खड़े होकर उनकी बातें सुनने लगे। फिर राजा ने क्या देखा कि एक शूद्र श्याम रंग भयानकरूप राजा का वेष बनाये दूर से उस बैल और गाय की तरफ चला आता है।



सोलहवाँ अध्याय।

धर्मरूपी बैल व गायरूपी पृथ्वी की बातचीत, और राजा परीक्षित का वृक्ष की ओट से सुनना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि उस बैलरूपी धर्म ने गायरूपी पृथ्वी से पूछा कि तुझको क्या दुःख प्राप्त हुआ जो रोती है। कदाचित् तुझे मेरे तीनों पैर टूट जाने का शोक हो, तो इसका यह कारण है कि कलियुग में बहुत पापी मनुष्यों ने उत्पन्न होकर अपना धर्म और कर्म छोड़ दिया, और शुभ कर्म संसार से उठ गया। कलियुग में लोग यह चाहते हैं कि दमाद से रुपया लेकर अपनी कन्या का विवाह करें और पुत्र का पालन इस विचार से नहीं करते कि वह तरुण होने पर बाप के साथ झगड़ा करेगा। ब्राह्मण लोग वेद पढ़ने में आलस्य करते हैं और शूद्र वेद-पुराण पढ़ने की इच्छा रखते हैं। क्षत्रियों ने ब्राह्मणों की

रक्षा और सेवा करना छोड़ दिया है। राजा लोग प्रजा से दोनों फसलों का अन्न ले लेते हैं, और यदि कुछ लगान फिर बाकी रह जाता है तो कहते हैं कि अपना बेटा या बेटी बेंचकर दे। अथवा तू इस वास्ते रोती है कि श्यामसुन्दरविहारी जो तेरे ऊपर अपना चरणकमल रखते थे संसार से वैकुंठ को पधारे और कलियुग में अधर्मी राजा होकर तेरे ऊपर भोग करेंगे। अपने मन का हाल हमसे बतला। यह बचन सुनकर गऊ ने कहा—तुम सब बातें जानबूझकर मुझसे क्या पूछते हो जिस कारण तुम्हारे तीन पैर तप, क्षमा और दया के टूट गये, केवल एक पाँव सत्य रह गया है उसी लिये मेरा रोना भी समझो, क्योंकि मनुष्य का सुख धर्म और दया से है। जब मनुष्य ने धर्म, क्षमा और दया छोड़ दिया तब वह परमेश्वर को नहीं जान सकता और यह बात नहीं जानता कि धर्म करने से ज्ञान होता है। कोई मनुष्य कहते हैं कि मेरा मन संसार से विरक्त नहीं होता सो बिना ज्ञान प्राप्त हुए संसारी मोह छूटना बहुत कठिन है। मैं चारों वर्णों के मनुष्यों और राजा लोगों के लिये शोक करती हूँ कि कलियुग आने से सबको दुःख होगा। मेरा अधिक रोना इस वास्ते है कि वृन्दावन-विहारी वैकुंठ को पधारे, जब मुरलीमनोहर के चरणकमल रखने से शंख, चक्र, गदा, पद्म के आकार मेरे ऊपर बन जाते थे तब मुझे बहुत आनन्द होता था। ऐसा कौन जीव जगत् में है जिसे श्यामसुन्दर के अन्तर्धान होने से शोक न हुआ हो। जो छत्तीस गुण श्यामसुन्दर में थे उनका वर्णन तुमसे करती हूँ, सत्य बोलना, आचार से रहना, हृदय में धैर्य रखना, क्षमा करना, संसारी मायामोह से विरक्त रहना, जो कुछ परमेश्वर देवे उसमें संतोष रखना, मीठे वचन बोलना, मन और इन्द्रियों को वश में रखना, सब छोटे-बड़ों को बराबर जानकर किसी का अपमान न करना, किसी के दुर्वचन कहने से बुरा न मानना, किसी काम में जल्दी न करना, सुनी हुई बात याद रखना, अपना कहा हुआ वचन न भूलना, ज्ञान को स्थिर रखना, मन में वैराग्य रखकर स्त्री और पुत्रों से अधिक मोह न रखना, धन पाकर किसी से अभिमान की बात न बोलना, बल अधिक होने से घमंड न करना, सबसे श्रेष्ठ होना, सब विद्याओं को जानना, दूसरे का

दुःख देकर दुखित होना, किसी से न डरना, जो कोई अपना दुःख कहे उसका हाल मन लगाकर सुनना, भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों की बातें जानना, अपने मन का हाल किसी से न बतलाकर समुद्र के समान गम्भीर रहना, धर्म की तरफ से मन नहीं फेरना, धर्म और वेद की रक्षा करना, संसार में ऐसी कीर्ति करना जिसमें सब कोई भला कहे, आँखों में शील रखना, किसी जीव को दुःख न देना, जो कोई दीन होकर अपना अर्थ कहे उसकी इच्छा पूर्ण करना, परमेश्वर का ध्यान करते रहना, सबसे अधिक बलवान् होना, तीनों लोकों में किसी शूर-वीर को कुछ न समझना, साधु, ब्राह्मण और महात्मा का आदर करना, परोपकार करना सो है बैलरूपी धर्म! श्यामसुन्दर को इन सब गुणों के होने पर भी कुछ अहंकार नहीं था। छत्तीस गुणों के सिवा और भी बहुत से शुभ कर्म उनमें थे। जिस समय उनको याद करती हूँ उस समय मेरा कलेजा फट जाता है। देखो, जिस लक्ष्मी के मिलने के वास्ते सब देवता और संसारी मनुष्य इतना तप और जप करते हैं वही लक्ष्मी कमलवन को छोड़कर दिन रात श्यामसुन्दर की सेवा में रहती है। ऐसे मुरलीमनोहर की मैं दासी हूँ। जब द्वापर के अन्त में तुम्हारे दो पैर टूट गये और मैं कंसादिक राजों के अधर्म करने से दुःखी हुई थी तब वैकुंठ-नाथ ने यदुकुल में अवतार लेकर हमारा और तुम्हारा दुःख छुड़ाया और अपनी कीर्ति संसार में फैलाई। ऐसे परोपकारी पुरुष के वियोग का दुःख कौन सह सकता है। गायरूपी पृथ्वी बैलरूपी धर्म से यह कहती थी और राजा परीक्षित खड़े सुनते थे।

सत्रहवाँ अध्याय।

कलियुग का बैलरूपी धर्म व गोरूपी पृथ्वी के पास आना, कलियुग व राजा परीक्षित से बातचीत होना, परीक्षित का कलियुग के रहने के वास्ते स्थान बतलाना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि उसी समय रथ पर सवार वह शूद्र बहुत सी सेना साथ लिये, राजों का वेष बनाये, काले कपड़े और मुकुट पहिने, सोंटा हाथ में बाँधे, गाय और बैल के पास आकर

रथ से उतर पड़ा और बैल व गाय को पैर से ठोकर मारकर धमकाने लगा। उसका रूप देखकर वे दोनों ऐसे डर गये कि गाय आँखों से आँसू बहाने लगी और बैल ने मल व मूत्र कर दिया। जब ऐसा अधर्म राजा परीक्षित से नहीं देखा गया तब राजा ने बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाया और बड़ा क्रोध करके कलियुग से कहा—मैं सातों द्वीपों का राजा हूँ, तू किस देश का राजा है जो हमारे राज्य में राजों का वेष बनाकर मेरी प्रजा को दुःख देता है। राजाओं का यह धर्म नहीं है कि वह किसी को दुःख दें। श्रीकृष्णजी महाराज त्रिलोकीनाथ मर्त्यलोक से अन्तर्धान हुए और हमारे दादा गांडीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन वैकुण्ठ को गये, इसलिये तू पृथ्वी को बिना राजा के समझकर गाय और बैल को ऐसा दुःख देता है। अधर्म करना छोड़ दे, नहीं तो अभी तुझ को मारे डालता हूँ। कलियुग यह बात सुनते ही राजा के डर से चुपचाप खड़ा हो गया। तब राजा ने बैल से पूछा कि तुम कौन हो और तुम्हारे तीन पैर किसने तोड़े। तुम कोई देवता तो नहीं हो, मुझे भ्रम में डालने के लिए तो नहीं आये हो? हमने अपने राज्य में तुम्हारे बराबर किसी को दुःखी नहीं देखा। अब तुम कुछ शोक मत करो, मेरे मिलने से तुम्हारा सब डर छूट गया, तुम्हारा दुःख मैं दूर करूँगा। राजा यह वचन बैल से कहकर फिर गाय से बोले—तू मत रो, अधर्मी व पापियों को दंड देनेवाला मैं तैयार हूँ। राजाओं का यही धर्म है कि चोर और कुकर्मी मनुष्यों को दण्ड देवें। जिस राजा के देश में प्रजा दुःख पावे उसके चार गुण नष्ट हो जाते हैं—एक तो उसकी कीर्ति नहीं रह जाती; दूसरे आयुर्दाय कम हो जाती है, तीसरे ज्ञान नष्ट हो जाता है, चौथे परलोक बिगड़ता है। राजाओं को चाहिए कि जो उनके राज्य में दुःखी हो उसका दुःख छुड़ा दिया करें। इतना धर्म राजा को रखने से फिर कुछ तप व जप करने का प्रयोजन नहीं रहता। इस वास्ते मैं इस शूद्र को मार डालूँगा, यह संसारी जीवों को बहुत दुःख देता है। यह बात पृथ्वी से कहकर राजा ने बैल से फिर पूछा—तुम्हारा पैर किसने तोड़ा, जल्दी मुझे बतलाओ, उसके हाथ हम काट डालेंगे। मैं श्रीकृष्णचन्द्र का दास हूँ, तुम्हारा दुःख न

छुड़ाऊँगा तो मेरे कुल में दोष लगेगा। कदाचित् कोई देवता भी मेरे राज्य में आकर किसी को दुःख देवे तो मैं उसे भी मार सकता हूँ। मनुष्य की क्या सामर्थ्य है जो किसी को दुःख दे सके। यह बात सुनते ही बैलरूपी धर्म अपना शिर झुकाकर राजा से बोला--पांडवों के वंश में सब राजा इसी तरह धर्मात्मा होते आये हैं। उनके राज्य में किसी ने दुःख नहीं पाया। तुम्हारे दादा अर्जुन ऐसे धर्मात्मा और हरिभक्त थे, जिनके त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णजी सारथी हुए थे। तुमको यही उचित है कि तुम सदा गरीब व दुःखी लोगों का ध्यान रक्खा करो। मैं वेद-शास्त्र के वचन से लाचार हूँ, यह नहीं जान सकता कि मुझको किसने दुःख दिया। इसलिये मैं किसका नाम बतलाऊँ। जिसका नाम बतलाऊँगा उसका तुम संकोच करोगे। अपने प्रारब्ध का फल भोगता हूँ। यह बात जगत् में प्रकट है कि सब कोई अपने-अपने अधर्म के बदले दुःख पाते हैं। किसी को अपने मन के संकल्प-विकल्प से दुःख होता है। कोई कहते हैं कि सब मनुष्य दुःख व सुख परमेश्वर की इच्छा से भोगते हैं, पर इस बात का विचार करना चाहिये कि परब्रह्म परमेश्वर को, जिनकी इच्छा से सब जीव उत्पन्न होते हैं, क्या प्रयोजन है जो किसी को दुःख देवें। नारायणजी को इस बात का दोष लगाना उचित नहीं है। कोई कहते हैं कि मनुष्य अधर्म करने से दंड पाता है। सो अधर्म करने में भी मनुष्य का कुछ वश नहीं रहता, क्योंकि मनुष्य की इच्छापूर्वक सब बातें नहीं होतीं। कोई कहते हैं कि दुःख शत्रु से पहुँचता है, मित्र किसी को कुछ दुःख नहीं देता, इसलिये शत्रु का उत्पन्न करना भी अपने अधीन समझना चाहिये, क्योंकि जब तक मनुष्य माता के पेट में रहता है तब तक उसका कोई शत्रु नहीं होता। जब मनुष्य उत्पन्न होकर सयाना होता है तब लोगों से विरोध करके अपना शत्रु आप खड़ा करता है। इस कारण मैं किसी का नाम नहीं बतला सकता कि किसने हमको दुःख दिया है। तुम अपनी बुद्धि से जान लो। जब परीक्षित ने यह सब ज्ञान बैलरूपी धर्म से सुनकर श्रीकृष्णजी के चरणों का ध्यान किया, तब उनको अन्तःकरण की शुद्धता से मालूम हुआ कि

यह बैलरूपी धर्म है। गौरूपी पृथ्वी है और शूद्ररूप राजा कलियुग है। इसी शूद्र ने धर्म के पैर तोड़े हैं और पृथ्वी को दुःख दिया है। इस पृथ्वी के मालिक परमेश्वर थे, सो परमधाम को गये, इसी कारण पृथ्वी चिन्ता करती है। पापी का नाम लेने से पाप व धर्मात्मा का नाम लेने से पुण्य होता है, इसी वास्ते बैलरूपी धर्म ने कलियुग को पापी समझकर उसका नाम नहीं बतलाया। पहिले धर्म के चारों पैर--तप, सत्य, शौच और दया—स्थिर थे, कलियुग में अधिक पाप होने से धर्म के तीन पैर टूट गये। धर्म के तीन पैर तप, शौच और दया के टूट जाने से मनुष्यों में अहंकार, परस्त्रीगमन और मदिरापान हो गया है। धर्म का केवल एक पैर सत्य रह गया है, उसको भी यह कलियुग तोड़ा चाहता है। राजा ने मन में यह बात विचारकर बैल और गाय को धैर्य दिया और बड़े क्रोध से तलवार निकालकर कलियुग को मारने दौड़े। जब कलियुग ने देखा कि यह धर्मात्मा राजा क्रोध से भरा हुआ मुझे मारना चाहता है और मैं ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो इसके साथ लड़ सकूँ, यह विचारकर कलियुग राजा के चरणों पर गिर पड़ा और अपने प्राण बचाने के वास्ते विनती करने लगा। तब राजा ने अपने धर्म व दया से तलवार न चलाकर कहा--हे कलियुग! जहाँ तक राजा युधिष्ठिर और हमारे दादा अर्जुन का राज्य था वहाँ तक तुझे न रहना चाहिए। तू अधर्म करनेवाला पापियों का साथी है, जिस राजा के देश में रहेगा उस राजा का मन अधर्म करने में लगेगा। तुझमें लालच, अहंकार, झूठ, कपट, झगड़ा, काम और मोह भरा हुआ है, इसलिये भरतखंड में जहाँ तक हमारा राज्य है, और सब लोग अपने धर्म व कर्म से हैं, मत रहो। इस भरतखंड में मनुष्य तप, यज्ञ, दान, धर्म, व्रत और परमेश्वर की पूजा करने से अनेक प्रकार के सुख पाकर मुक्त पदवी को पहुँचते हैं। उनको कभी दुःख नहीं होता। ऐसी जगह तू रहकर विघ्न करेगा और तेरे रहने से पाप अधिक होगा। मेरा कहना मान, नहीं तो तेरा प्राण बचना दुर्लभ है। कलियुग ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाकर राजा से विनय किया-महाराज आप धर्मात्मा और

न्याय करनेवाले हैं, मेरी प्रार्थना सुनिये। ब्रह्माजी ने सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चार युगों को बनाकर उनकी अवधि निश्चित कर दी है, सो सतयुग, त्रेता और द्वापर तीनों युग अपना-अपना राज्य भोग चुके। मैं कलियुग हूँ, अब मेरे भोग करने का समय आया। मुझे आप आज्ञा देते हैं कि मैं आपके राज्य में न रहूँ। आपका राज्य तो सातों द्वीपों में है, फिर मैं कहाँ जाकर रहूँ। ब्रह्माजी ने चारों युगों की जो अवधि निश्चित कर दी है वह किसी तरह मिट नहीं सकती। हे पृथ्वी-नाथ! आप मेरे अवगुणों की तरफ देखते हैं किन्तु गुणों की तरफ ध्यान नहीं देते। मुझमें एक बड़ा गुण है वह आपसे कहता हूँ। सतयुग में जिस राज्य में एक मनुष्य पाप करता था उस राज्य भर के मनुष्य दंड पाते थे। त्रेता में एक मनुष्य के अपराध करने से गाँव भर दंड पाता था। द्वापर में अधर्म करने से परिवार भर को दंड मिलता था, किन्तु कलि-युग में मनुष्य जिस अंग से पाप करता है मैं उसको पकड़कर उसी अंग को दंड देता हूँ। दूसरे युगों में मानसी पाप करने से मनुष्य को दंड मिलता था किन्तु कलियुग में मानसी पाप नहीं होता, पर मानसी पुण्य का फल मिलता है। जब यह बात सुनकर राजा परीक्षित को दया नहीं आई, तब फिर कलियुग बोला—हे पृथ्वीनाथ, मुझमें एक गुण और बहुत बड़ा है। सतयुग में जो कोई परलोक बनाने के वास्ते दश हजार वर्ष तप करता था तब उसकी इच्छा पूर्ण होती थी। त्रेता-युग में जब मनुष्य बहुत द्रव्य लगाकर हजारों वर्षों तक यज्ञ करते थे तब उनका अर्थ सिद्ध होता था। द्वापर में सौ वर्ष तक नारायणजी का पूजन व ध्यान करने से मनोकामना मिलती थी। मेरे राज्य में जो कोई एक क्षण भी श्यामसुन्दर का ध्यान सच्चे मन से करे या उनका नाम लेकर कानों से उनकी लीला व कथा सुने वह अपने अर्थ को पहुँचकर अनेक जन्म के पापों से छूट जाता है। उसका यह गुण सुन-कर राजा परीक्षित बहुत प्रसन्न हुए। तब कलियुग ने कहा—हे पृथ्वी-नाथ! दया करके मुझे जीवदान दीजिए और जहाँ कहिए वहाँ जाकर रहूँ। मैं आपसे बहुत डरता हूँ, आपकी आज्ञा में रहूँगा। जब कलियुग ने

हाथ जोड़कर इस प्रकार विनय किया तब राजा ने उसे दीन जानकर अपना धर्म विचारा कि शरण में आये को कोई नहीं मारता, ऐसा समझकर बोले--हे कलियुग ! जिस जगह मनुष्य जुवा खेलते हैं, जहाँ मदिरा पीने के वास्ते बिकती है, जिस स्थान पर वेश्या रहती हैं, जहाँ पर जीवहिंसा होती है वहाँ जाकर तुम रहो। यह सुनकर कलियुग ने फिर राजा से दीन होकर कहा--इन चार जगहों में मेरा कुल व परिवार नहीं रह सकता। तब राजा ने दयालु होकर कहा--जिस सूम मनुष्य के पास द्रव्य व सोना हो और वह उसमें से दान व धर्म न करे वहाँ भी तुम जाकर बसो। इन पाँचों जगहों के सिवा यदि और कहीं प्रवेश करेगा तो हम तुझे मार डालेंगे। कलियुग ने राजा को धर्मात्मा व बलवान् देखकर उनका वचन मानकर मन में कहा--जब राजा का चित्त धर्म की तरफ से फिरेगा तब हम अवसर पाकर अपना अर्थ निकाल लेंगे। यह बात विचारकर कलियुग राजा से बिदा हुआ और उन्हीं पाँचों जगहों में, जहाँ राजा ने बतलाया था, रहने लगा। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जो कोई अपना भला चाहे वह इन पाँचों बातों से किनारा रक्खे। राजा को ये बातें कभी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि राजा के अधीन सब प्रजा रहती है। जब कलियुग के जाने के उपरांत राजा परीक्षित ने उस बैल के टूटे हुए तीनों पैर अपने धर्म से अच्छे कर दिये और गाय को धैर्य दिया तब वह बैल अपना धर्मरूप व गाय पृथ्वीरूप होकर अपने-अपने स्थान पर चले गये। राजा ने राजगद्दी पर आकर यह हाल ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों से कहा। वह लोग सुनकर बोले—हे राजन्! तुमने बहुत अच्छी बात किया। अब तुम्हारे राज्य में कलियुग प्रवेश नहीं कर सकता। फिर राजा परीक्षित ने अपने राज्य में ऐसा ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई जीवहिंसा न करे, मदिरा न पीवे, जुवा न खेले, द्रव्य पाकर यथाशक्ति दान देवे, परस्त्रीगमन न करे। जो कोई देवता, साधु-सन्त, ब्राह्मण, गौ, वेद और शास्त्र को न मानकर इन पाँचों में से कोई काम करेगा उसका हम अन्न व धन छीनकर दंड देंगे। परीक्षित के डर से उनके राज्य में

यह सब अधर्म करना लोगों ने छोड़ दिया। राजा परीक्षित धर्म बढ़ाते हुए हस्तिनापुर में राजकाज करने लगे। सदा लीला और कथा परमेश्वर की सुनते थे, और उनके चरणों में ध्यान लगाये रहते थे। उनके राज्य में सब प्रजा भी अपने धर्म में रहकर आनन्द से रहती थी।

——:o:——

अठारहवाँ अध्याय।

परीक्षित का शिकार खेलने के वास्ते वन में जाना और उनके मन में कलियुग का प्रवेश करना। इसलिये राजा का समीक ऋषि के गले में मरा हुआ साँप डालना और समीक ऋषि के पुत्र का राजा परीक्षित को शाप देना।

सूतजी शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहते हैं कि जब तक परीक्षित ने राज्य किया तब सक उनकी नीति और धर्म से कलियुग वहाँ प्रवेश नहीं कर सका। राजा परीक्षित रथ पर बैठकर प्रजा की रक्षा करने के वास्ते अपने राज्य में चारों दिशाओं में घूमते और एकच्छत्र राज्य करते रहे। कलियुग की कुछ परवाह न करके उसे पड़ा रहने दिया। इतनी कथा सुनकर शौनकादिक ऋषीश्वरों ने सूतजी से कहा—आप परमेश्वर की कथा कहने में बड़े योग्य हैं, हम लोगों को अमृत रूपी रस पिलाते हैं। आपके सत्संग से हमारा जन्म कृतार्थ हुआ। कदाचित् आप ऐसा कहें कि तुम लोग ऋषीश्वर हो, तुम्हारा जन्म इसी तरह सुधर जावेगा, सो निश्चय जानो, जो सुख आपके सत्संग से प्राप्त होता है वह सुख स्वर्ग और वैकुंठ में नहीं मिलता। जिस तरह राजा परीक्षित ने तन त्याग किया था अब उसका हाल वर्णन कीजिए। सूतजी ने कहा कि जब राजा परीक्षित वृद्धावस्था को पहुँचे तब उन्होंने विचार किया कि घर में जीवहिंसा करना मना था सो हमने छोड़ दिया। राजों का यह धर्म है कि वन में शिकार खेला करें इसी बहाने से उनको अनेक देश देखने में आते हैं। जो हरिन वन में बूढ़ा हो जाता है उसे अहेर में अवश्य मारना चाहिए। सदा से राजा लोग ऐसा करते आये हैं। यह बात विचारकर एक दिन राजा ने वन में जाकर बहुत से जीवों को अहेर में मारा। फिर एक हरिन के पीछे, जो घायल होकर भागा था, मध्याह्न के समय अपना घोड़ा दौड़ाया, तो वे अपने साथियों से विलग हो गये।

जब राजा को गरमी के कारण बहुत प्यास मालूम हुई और पानी ढूँढ़ने के वास्ते चारों तरफ फिरने लगे तब उस जगह भिंडी ऋषीश्वर की कुटी दिखाई दी। वह ऋषीश्वर बड़े योग्य महात्मा थे, सदा वन में रहते थे, जो दूध बछड़े के पीते समय गऊ के थन से टपकता था उसे पीकर परमेश्वर का भजन करते थे। राजा ने कुटी को देखते ही वहाँ जाकर ऋषीश्वर से कहा——मैं राजा परीक्षित, अभिमन्यु का पुत्र, बहुत प्यासा हूँ, दया करके थोड़ा पानी मुझे पिलावो। इसी तरह कई बेर राजा ने ऋषीश्वर से पानी माँगा, किन्तु ऋषीश्वर महाराज उस समय आँख बन्द किये अपने प्राण ब्रह्मांड पर चढ़ाये, परमेश्वर के ध्यान में ऐसे लीन बैठे हुए थे कि उनको अपने तन की भी सुधि नहीं थी। इस कारण उन्होंने राजा की बात नहीं सुनी और न उनको कुछ उत्तर दिया। उस समय कलियुग ने जीवहिंसा करने से राजा के मन में प्रवेश करके कपट उत्पन्न किया। जब राजा को धर्मात्मा व हरिभक्त होने पर भी अधिक भूख व प्यास लगने से क्रोध उत्पन्न हुआ तब उसने यह विचारा कि देखो, हम सातों द्वीप के राजा प्यासे होकर इस ब्राह्मण के द्वार पर पानी माँगने आये, किन्तु इस ऋषीश्वर ने हमको देखकर झूठी समाधि लगाकर हमारी बात का उत्तर भी नहीं दिया, पानी को कौन पूछे। इसको कुछ दंड देना चाहिए। पर मैं पाण्डवों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, ब्राह्मणों को किस तरह दण्ड दूँ। जब ऐसा समझकर राजा घोड़े से उतरा तब उसने एक साँप मरा हुआ उसी जगह पड़ा देखकर मन में कहा कि यह साँप इसके गले में डाल देवें तो सर्प के डर से ऋषीश्वर अपनी आँख खोल देगा। ऐसा विचारकर राजा ने क्रोध के वश होकर उस सर्प को अपने धनुष से उठाकर भिंडी ऋषि के गले में डाल दिया। पर वह ऋषीश्वर परमेश्वर के ध्यान में ऐसे लव-लीन व मग्न थे कि साँप डालने से भी उनको कुछ डर न हुआ, वह ज्यों के त्यों अपनी आँख बन्द किये हुए परमेश्वर के ध्यान में बैठे रहे। राजा ने अपने स्थान पर आकर जब शिर से मुकुट उतारा तब उनको ज्ञान हुआ और बड़े शोक से मन में कहने लगे कि देखो, सोने में कलि-

युग का वास है सो मेरे सिर पर था, और शिकार खेलने से मेरी बुद्धि बदल गई जो हमने मरा हुआ साँप ऋषीश्वर के गले में डाल दिया। अब मैं समझा कि कलियुग ने मुझसे अपना बदला लिया। इस पाप से कैसे छुटकारा मिलेगा। जब कोई मनुष्य नारायणजी से विमुख होकर गऊ व ब्राह्मण को दुःख देवे तो समझना चाहिए कि इसके बुरे दिन आये हैं। मैंने आज ब्राह्मण को वृथा दुःख दिया। इससे मुझको निश्चय होता है कि मेरी आयु और धन की हानि होगी। यहाँ राजा अपने घर पर बैठा हुआ इस तरह सोच रहा था और वहाँ भिंडी ऋषीश्वर ध्यान में बैठे थे। जब ऋषीश्वरों के लड़कों ने खेलते हुए यह हाल देखा तब एक बालक ने भिंडी ऋषीश्वर के बेटे शृंगी ऋषि से, जो कौशिकी नदी के किनारे लड़कों में खेलता था, जाकर कहा कि तुम्हारे पिता के गले में राजा परीक्षित साँप डाल गया है। यह बात सुनते ही शृंगी ऋषि, जिसका वचन ब्रह्मा से वरदान पाने के कारण असत्य नहीं हो सकता था, क्रोध में भर गया। उसकी आँखें लाल हो गईं, शरीर काँपने लगा, उसी समय उसने नदी के किनारे जाकर हाथ-पाँव धोया और आचमन करके हाथ में पानी लेकर शाप दिया कि आज से सातवें दिन तक्षक साँप के काटने से राजा परीक्षित मर जावें। ऐसा शाप देकर वह बोला—श्रीकृष्णजी वैकुंठ को पधारे, इसलिये कलियुगवासी राजा धन व राज्य के मद में अन्धे होकर ब्राह्मणों को दुःख देते हैं। जिस तरह कोई मनुष्य द्वार के अगोरने के वास्ते कुत्ता पाले और वह कुत्ता उसी को काटकर यज्ञ की थाली में मुहँ डाल दे उसी तरह राजा लोग यद्यपि ऋषीश्वरों की रक्षा करने के वास्ते हैं, किन्तु अब कलियुगी राजों का यह हाल है कि ब्राह्मणों की कृपा व आशीर्वाद से राजगद्दी पाकर उन्हीं को दुःख देते हैं। यह अर्जुन और युधिष्ठिर के कुल में ऐसा अधर्मी राजा उत्पन्न हुआ, जिसने मेरे बाप के गले में साँप डाल दिया। राजों ने ब्राह्मणों को निर्बल जाना, इसलिये हम अपनी सामर्थ्य उनको दिखलाते हैं। शृंगी ऋषि सब लड़कों को ऐसा वचन व शाप देने का हाल सुनाकर ऋषि के पास आया। जब अपने पिता को परमेश्वर के ध्यान

में लीन और मरा हुआ साँप उनके गले में पड़ा देखा तब साँप गले से निकालकर रोने लगा और पिता का नाम लेकर पुकारा। उसका शब्द सुनते ही भिंडी ऋषि ने समाधि छोड़कर अपने बेटे से पूछा--तू किस वास्ते रोता है। शृंगीऋषि ने कहा कि राजा परीक्षित तुम्हारे गले में साँप डाल गया, इसलिये मैं रोता हूँ। यह बात सुनकर भिंडी ऋषि ने पूछा कि हे बेटा, तूने राजा को कुछ शाप तो नहीं दिया। शृंगी ऋषि ने कहा कि मैंने इस अधर्म करने के बदले राजा को यह शाप दिया है कि सात दिन बीते तक्षक साँप के काटने से राजा मर जावे। यह वचन सुनते ही भिंडी ऋषि बहुत उदास हो गये और क्रोध करके अपने बेटे से बोले—हे मूर्ख, तूने बहुत बुरा काम किया, जो ऐसे धर्मात्मा राजा को, जिसके राज्य में कलियुग ने प्रवेश नहीं पाया था, शाप दिया। देखो, वैकुंठनाथ श्रीकृष्णजी ने उसकी रक्षा माता के पेट में की। कौरवों और पांडवों के कुल में यही एक राजा बचा था, इसके राज्य में हम सब ब्राह्मण व ऋषीश्वर बहुत सुख व आनन्द से रहते थे। कोई पशु-पक्षी भी दुखी नहीं था। उसके न्याय से गाय व बाघ एक घाट पानी पीते थे। तूने थोड़े अपराध में उसको बहुत दंड दिया। उसका अवगुण लिया और गुण को छोड़ दिया। परीक्षित के मरने के उपरान्त अधर्मी राजा होंगे और उनके राज्य में कलियुग अपना प्रवेश करके मनुष्यों से पाप करावेगा। देखो, राजा मेरे स्थान पर आया तो मुझे उसको भोजन देकर सम्मान करना उचित था। यह बड़ी लज्जा की बात हुई जो मैंने एक लोटा पानी भी उसे नहीं पिलाया, और तूने ऐसा शाप वैष्णव राजा को देकर श्रीकृष्णजी का अपराध किया। राजा के मरने के उपरान्त संसार में सब लोग वर्णसंकर हो जायँगे। इस पाप की जड़ तू हुआ। साधु-संत का यह धर्म है कि गुण को लेते हैं और अवगुण की तरफ नहीं देखते। भिंडी ऋषि ने यह बात अपने पुत्र से कहकर परमेश्वर का ध्यान करके उनसे विनय किया कि हे वैकुंठनाथ, मेरे अज्ञानी बालक से बड़ा पाप हुआ, इसका अपराध क्षमा करो। जो राजा गौ व ब्राह्मण की रक्षा करता है उसके मारने का पाप दश ब्राह्मणों के मारने के

बराबर होता है, और राजा के बिना देश में चोर व पापी बहुत उत्पन्न होते हैं। जिसने राजा को मारा उसने चोर व अधर्मियों को बढ़ाया। भिंडी ऋषि ने ध्यान में परमेश्वर से ऐसा कहकर मन में विचारा कि राजा को इस पाप का हाल कहला भेजना चाहिए, जिसमें वह अपने परलोक का यत्न करे। यह बात सुनकर संसारी लोग शृंगी ऋषि को बुरा तो कहेंगे, पर ऐसे धर्मात्मा राजा की मुक्ति बनाने के वास्ते उसको जता देना चाहिए। ऐसा विचारकर भिंडी ऋषि ने कुमुक नाम अपने शिष्य को बुलाकर कहा कि तू राजा के पास जा और हमारी तरफ से आशीर्वाद देकर कह देना कि शृंगी ऋषि ने तुमको इस तरह शाप दिया है, इसलिये तुम्हारी अकाल मृत्यु होगी सो तुम सावधान होकर अपनी मुक्ति का उपाय करो। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने ऋषीश्वरों से कहा कि देखो, जो राजा परीक्षित अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से बचा, जिसने धर्म और पृथ्वी की रक्षा करके कलियुग को अपने अधीन किया, वही राजा एक ब्राह्मण के शाप से मर गया। ऐसा माहात्म्य ब्राह्मणों का है। परीक्षित के मरने के उपरान्त कलियुग ने सब जगह अपना प्रवेश कर लिया। राजा परीक्षित ने कलियुग का गुण समझकर उसे नहीं मारा था, उन्होंने अवगुण की तरफ ध्यान नहीं दिया। जो लोग धर्मात्मा व हरिभक्त होते हैं वे गुण को ही देखते हैं, अवगुण की तरफ नहीं देखते। इन्द्रलोक, स्वर्ग, वैकुंठ और संसार में सत्संग के बराबर कोई सुख नहीं होता और परमेश्वर का भेद व चरित्र ब्रह्मा व महादेव आदि देवता भी नहीं जान सकते, दूसरे को क्या सामर्थ्य है, जो जान सके। यह बात सुनकर शौनकादिक ऋषीश्वरों ने बहुत स्तुति करने के उपरान्त उनसे कहा कि आप धन्य हैं जो परमेश्वर का चरित्र व अमृतरूपी कथा हम लोगों को, कानों की राह पिलाकर, कृतार्थ करते हैं। यह बात सुनकर सूतजी बोले--आज हमारा जन्म लेना सुफल हुआ, जो आप ऐसे ऋषीश्वर व मुनीश्वर मेरी बड़ाई करते हैं। हमारा जन्म ब्राह्मण व शूद्र से मिलकर हुआ था सो आप लोग जैसे महात्माओं की संगति करने से मेरा सब शोक दूर हो गया। जो कोई मनुष्य-तन पाकर परमेश्वर की कथा

सुने व उनके नाम का स्मरण व भजन करे, संसार में उसी का जन्म लेना सुफल है। देखो, जिन चरणों का धोवन श्रीगंगाजी तीनों लोकों के जीवों को तारती हैं, जो उन चरणों की भक्ति से त्रिभुवनपति का नाम लेवे व उनकी कथा कानों से सुने, उसकी बड़ाई कौन कर सकता है। मनुष्य जितनी देर तक परमेश्वर की कथा सुनकर नाम-स्मरण करते हैं उतना काल उनके आयुर्बल में क्षीण नहीं होता। मेरी क्या सामर्थ्य है जो परमेश्वर के गुणों का वर्णन कर सकूँ। जिस तरह पक्षी आकाश में अपने पराक्रम भर उड़कर आकाश का अन्त नहीं पा सकते उसी तरह ब्रह्मा और महादेव आदि देवता और ऋषीश्वर लोग अपने ज्ञान व सामर्थ्य भर परमेश्वर का ध्यान व स्मरण करते हैं, पर उनका अन्त कोई नहीं जान सकता।

—:o:—

उन्नीसवाँ अध्याय।

राजा परीक्षित को शृंगी ऋषि के शाप देने का हाल मालूम होना और परीक्षित का गंगा के किनारे जाना तथा शुकदेव आदि ऋषीश्वरों का उस स्थान पर आना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा——जिस समय राजा परीक्षित अहेर से आकर अपने धर्म का विचार करके चिन्ता में बैठे हुए मन में कहते थे कि मेरे पीछे जो राजा होंगे वह मेरे अधर्म का हाल सुनकर ऋषीश्वरों व ब्राह्मणों का अनादर करने में नहीं डरेंगे। सो इस पाप के बदले वह ब्राह्मण यदि मुझको शाप देते या मेरे प्राण निकल जाते या मुझे कुछ हानि होती तो दूसरे राजा किसी ब्राह्मण व ऋषीश्वर को दुःख न देते। उसी समय कुर्मुक नाम भिंडी ऋषि के चेले ने वहाँ पहुँचकर कहा——हे राजन्! भिंडी ऋषीश्वर ने आशीर्वाद देकर आपसे कहा है कि मैं आपके आने के समय परमेश्वर के ध्यान में ऐसा मग्न था कि मुझे आपके आने व पानी माँगने की कुछ सुधि नहीं हुई, और आपने क्रोध करके मेरे गले में मरा हुआ साँप डाल दिया, सो मैं उससे बुरा न मानकर आपको पानी न पिलाने से बहुत लज्जित हूँ। परन्तु शृंगी ऋषि मेरे बेटे ने अपने अज्ञान से आपको शाप दिया है कि सात दिन में आप तक्षक

साँप के काटने से मर जायँगे। इसलिये आप अपनी मुक्ति बनाने का उद्योग कीजिए, जिसमें कर्म की फाँसी से छूट जायँ। राजा यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़कर उस चेले से बोला--शृंगीऋषि ने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की जो मुझे शाप देकर इस मायारूपी समुद्र से, जिसमें हम काम व क्रोध के वश होकर डूब रहे थे, बाहर निकाला। मुझको इतने दिनों में आज तक इस बात का ध्यान नहीं हुआ कि माया-मोह से विरक्त होकर परमेश्वर का भजन व स्मरण करूँ, पर अब इस शाप के डर से मेरा मन विरक्त हो गया। सो तू मेरी दंडवत् कहकर ऋषीश्वर महाराज से विनयपूर्वक कह देना कि मैं अपने दंड को पहुँचकर बहुत प्रसन्न हुआ, परन्तु वह हृदय से मेरा अपराध क्षमा करें। राजा ने यह बात उस चेले से कहकर उसको बहुत सा द्रव्य व रत्नादिक दक्षिणा देकर बिदा किया, पर एक बात का खेद राजा को हुआ कि इस धर्म के बदले उचित था कि तुरंत मेरे प्राण निकल जाते, सात दिन तक जीकर इस पापी तन को रखने का क्या प्रयोजन था। इसलिये उचित है कि सात दिन जो मेरे मरने में हैं, इस पापी तन को अन्न-जल न दूँ, क्योंकि जिस शरीर से परमेश्वर का भजन व स्मरण न होवे वह तन किसी काम का नहीं होता। ऐसा विचारकर राजा ने मन में सोचा कि अब स्त्री, पुत्र, राज्य व धन का मोह छोड़कर परमेश्वर के ध्यान में लीन होना चाहिए। इतने दिन संसारी माया-मोह में वृथा बीत गये और मेरा मन विरक्त नहीं हुआ। जब मैं सातवें दिन तक्षक साँप के काटने से मर जाऊँगा, तब यह राज्य और धन मेरा साथ छोड़ देगा। इसलिये उचित है कि मैं पहिले से इन सबका मोह छोड़ दूँ और गंगा के किनारे, जो तीनों लोकों को तारती हैं, सात दिन परमेश्वर का भजन व ध्यान करके अपनी मुक्ति बनाऊँ। संसार में जिसने जन्म लिया, वह एक दिन अवश्य मरेगा, इन्द्रादिक देवता भी अमर नहीं रहते। संसार में जैसा कर्म मनुष्य करता है, वैसा दुःख व सुख भोगकर चौरासी लाख योनि में जन्म पाता है। सो हम इस सात दिन में ऐसा कर्म करें जिसमें आवागमन से छूटकर भवसागर पार उतर जावें। राजा ने

यह बात विचारकर अपने बड़े बेटे जनमेजय को, जो चौदह वर्ष का था, राजगद्दी पर बैठा दिया और राज्यकाज का काम मंत्रियों को सौंपकर जनमेजय से कहा--बेटा, गऊ व ब्राह्मण की रक्षा करना, प्रजा को सुख देना। ऐसा कहकर राजा ने अपना मन विरक्त करके राजसी भूषण व वस्त्र अंग से उतार डाला और कौपीन पहिनकर गंगा के किनारे चले गये। उस समय राजा ने बहुत सा द्रव्य ब्राह्मणों को दान देकर राज्य व परिवार का मोह इस तरह छोड़ दिया जैसे कोई उबान्त करके उसकी तरफ आँख उठाकर नहीं देखता। यह हाल सुनकर सब रानियाँ और नगर के स्त्री व पुरुष रोते हुए राजा के पीछे गंगा के किनारे पहुँचे। रानियों ने कहा कि महाराज! तुम्हारे वियोग का दुःख हम लोगों से नहीं उठाया जायगा। राजा उन्हें विकल देखकर बोले--स्त्री को चाहिए कि जिस बात में उसके पति का धर्म रहे, वह काम करे, उसके धर्म में विघ्न न डाले। यह बात कहकर सबको बिदा कर दिया और किसी की तरफ आँख उठाकर नहीं देखा। हरद्वार में गंगा के किनारे जाकर स्नान करके कुशासन पर उत्तर मुँह बैठकर मन में ऐसा संकल्प किया कि सात दिन हमारी आयु है, इस सात दिन तक कुछ अन्न-जल न करूँगा। राजा का यह हाल जिसने सुना वह बिना रोये नहीं रहा। राजा श्रीकृष्ण-जी के चरणों का ध्यान धरकर विचारने लगा कि यह सात दिन हरि-चर्चा और सत्संग में व्यतीत हों, तो बहुत अच्छा है। राजा के शाप पाने और विरक्त होने का हाल ऋषीश्वर व मुनीश्वर लोग सुनकर उदास हो गये। अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, परा-शर, परशुराम, मेधातिथि, देवल, पिप्पलायन, भरद्वाज, गौतम, मैत्रेय, अगस्त्य, वेदव्यास, नारद, विश्वामित्र, कात्यायन, वामदेव, जमदग्नि आदि बहुत से ऋषीश्वर व महात्मा लोग राजा परीक्षित को धर्मात्मा समझकर गंगा के किनारे भेंट करने के वास्ते आये। राजा ने उनको देखते ही दंडवत् व पूजा करके बड़े आदर-भाव से सबको आसन देकर बैठाया और बोले–महाराज! मरते समय आप लोगों में से एक महात्मा का भी दर्शन जिसको प्राप्त हो, वह आवागमन से छूटकर भवसागर

पार उतर जावे। सो मेरा बड़ा भाग्य है। मरते समय आप लोगों ने जिस तरह कृपा व दया करके मुझे दर्शन दिया उसी तरह दयालु होकर सात दिन तक यहाँ रहिए। आपके रहने से मेरा मन संसारि माया-मोह की ओर न जायगा, आप लोगों के सत्संग से आठों पहर परब्रह्म परमेश्वर के नाम की चर्चा बनी रहेगी। आप लोग कृपा करके मेरे भले के वास्ते यहाँ आये हैं, और कुछ इच्छा व परवाह नहीं रखते। सो दया व कृपा करके कोई ऐसा उपाय बतलाइए कि इस सात दिन में हम वह उपाय करके आवागमन से छूट जावें। उन ऋषीश्वरों में से एक ने कहा कि तीर्थ-स्नान करना बड़ा पुण्य है। दूसरे ऋषीश्वर बोले कि ब्राह्मण लोग इकट्ठे हुए हैं यज्ञ करो, जिससे तुम्हारे सब पाप छूट जावें। तीसरे ऋषीश्वर ने बतलाया कि जो कुछ तुम्हारे वहाँ द्रव्य हो उसे ब्राह्मणों को दान कर दो, दान करने से उत्तम कोई दूसरा धर्म नहीं है। चौथे ऋषीश्वर ने कहा कि देवतों का पूजन व मंत्र का जप करने से सब पाप मिट जाते हैं। इसी तरह सब ऋषीश्वरों ने अपने-अपने ज्ञान पर्यन्त राजा से बतलाया, परन्तु कोई बात पक्की नहीं ठहरी कि कौनसा काम करना चाहिए। तब राजा ने कहा कि आप लोगों ने जो विचार किया, सो सब उत्तम है, पर इन सब बातों की सामग्री इकट्ठी करने को बहुत दिन चाहिए, और मेरे मरने में केवल सात दिन बाकी हैं, कोई ऐसा उपाय बतलाइए जो सात दिन में पूर्ण हो सके। इस बात पर सब महात्मा लोग विचार करने लगे। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने कहा कि हे ऋषीश्वरो! जिस समय नारदजी शाप देने का हाल सुनकर राजा परीक्षित के पास गंगा के किनारे जाते थे उस समय राह में शुकदेवजी से भेंट हुई। शुकदेवजी ने नारद मुनि से पूछा कि आप कहाँ जाते हैं। नारद मुनि ने अपने जाने और राजा परीक्षित के शाप देने का हाल सुनाकर कहा--महाराज, जो मुनि व ऋषीश्वर राजा के पास गये हैं वे लोग राजा को मुक्त होने की उत्तम राह न बतलाकर, कोई ऋषि यज्ञ, कोई तप, कोई दानादिक धर्म करने के वास्ते कहेंगे, पर इन थोड़े दिनों में राजा परीक्षित उस काम को करके भवसागर पार

नहीं उतर सकता, इसलिए आप वहाँ जाकर राजा को भगवद्गुण सुनाकर भवसागर पार उतार दीजिए। यह बात सुनकर शुकदेवजी ने पहिले वहाँ जाना अंगीकार नहीं किया। तब नारदजी ने उनको यह इतिहास सुनाया कि महाराज, चलते समय मैंने रास्ते में क्या देखा कि एक मनुष्य आँखवाला कुएँ पर बैठा था, उस समय एक अंधा राह भूल-कर वहाँ चला आया और उस कुएँ में गिरकर मर गया। उस आँखवाले मनुष्य ने अंधे को देखकर भी कुएँ की तरफ जाने से मना नहीं किया, सो उस देश के राजा ने यह हाल सुनकर उस आँखवाले को बहुत दंड देकर कहा--तेरे आँख थी, तूने उस अंधे को कुएँ की तरफ जाने से क्यों नहीं बरजा। सो आप बतलाइए, उस आँखवाले ने उचित किया या अनुचित। यह इतिहास सुनकर शुकदेवजी ने कहा--हे नारद मुनि, उस आँखवाले ने बड़ा अधर्म किया और दंड देने योग्य काम किया। उसके देखते वह अन्धा कुएँ में गिरकर मर गया, इसलिए वह उस पाप का भागी हुआ। तब नारदजी फिर बोले--हे शुकदेव महाराज! देखो, राजा परीक्षित अपनी मुक्ति बनाने का रास्ता नहीं जानता और आप भगवत्-भजन करने के प्रताप से सब राह जानते हैं। कदाचित् उसको रास्ता नहीं दिखलाओगे तो उसके नरक जाने का पाप किसको होगा, और तीनों लोकों के राजा जो ईश्वर हैं वह तुमको इस पाप के बदले दंड देंगे, या नहीं? यह बात सुनकर शुकदेवजी लाचार हुए और राजा के पास जाना अंगीकार करके नारदजी से बोले--आप चलें, मैं भी पीछे आता हूँ। जिस समय ऋषीश्वर लोग सात दिन में राजा के मुक्त होने का उपाय सोच रहे थे, उसी समय शुकदेवजी महाराज पन्द्रह वर्ष की अवस्था, सुन्दर परमहंस रूप बनाए आनन्दमूर्ति राजा के पास आए। उनके तेज को देखकर सब ऋषीश्वर व मुनि, जो बड़े-बड़े महात्मा व बूढ़े वहाँ पहिले से बैठे थे, उठ खड़े हुए और शुकदेवजी महाराज को बड़े आदरभाव से बीच में ऊँचे सिंहासन पर बैठाया। तब राजा परीक्षित के मन में इस बात का संदेह हुआ कि शुकदेवजी की कम अवस्था होने पर भी बूढ़े-बूढ़े ऋषीश्वरों ने उठकर बड़े आदर से बैठाया, सो

इनके तेज से मालूम होता है कि गुण में ये सबसे अधिक हैं। ऐसा विचार कर राजा परीक्षित भी खड़े हो गए और उनको दंडवत् करके हाथ जोड़कर बड़ी अधीनता से बोले--हे कृपानिधान! आपने बड़ी दया करके इस बेला, जब मैं मरने के वास्ते गंगा के किनारे आया हूँ, मुझको दर्शन दिया। आप ऐसे महापुरुष का आना मेरे भाग्य से हुआ। जब शुकदेवजी सिंहासन पर बैठ चुके तब शुकदेवजी के दादा पराशर मुनि ने राजा परीक्षित का सन्देह मिटाने के वास्ते कहा--हे राजन्, शुकदेवजी अवस्था में छोटे और ज्ञान में सबसे बड़े हैं। जितने बड़े-बड़े ऋषीश्वरों व मुनियों को तुम यहाँ देखते हो, सबको ज्ञान में इनसे छोटा समझना चाहिए। इस वास्ते हम लोगों ने उठकर इनका आदर किया था। यह तारण तरण हैं। जब से इन्होंने जन्म लिया तब से विरक्त मन दिन-रात परमेश्वर के ध्यान में लीन रहकर श्यामसुन्दर का गुणानुवाद गाते हैं। हे राजन्, तेरा कोई बड़ा पुण्य उदय हुआ, जो इस समय ये यहाँ आए। सब कर्मों में जो उत्तम कर्म भवसागर पार उतरने के वास्ते होगा वह कर्म ये बतावेंगे, जिससे तुम आवागमन से छूट जाओगे। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि तुमने जो पूछा था कि शुकदेवजी राजा परीक्षित ने किस तरह पहिचाना उसका हाल तुमसे वर्णन किया। राजा परीक्षित शुकदेवजी का हाल पराशर मुनि के मुख से सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और शुकदेवजी के चरण धोकर विधिपूर्वक पूजन करके, हाथ जोड़कर बोले--महाराज! आप विरक्त रूप हैं, संसार से कुछ प्रयोजन नहीं रखते। श्रीकृष्णजी महाराज ने मुझको पांडवों के वंश में समझकर आपके मन में दया उत्पन्न कर दिया, जो आप कृपा करके मुझको भवसागर पार उतारने के वास्ते यहाँ आए और आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हुआ। जो कोई आपके चरण छुवे वह मुक्त पदवी पा सकता है, सो मैं दीन होकर आपसे विनय करता हूँ। देवताओं की आयु का प्रमाण है कि इतने दिनों में मरेंगे, और इस कलियुग में मनुष्य के आयुर्बल का ठिकाना नहीं है कि कब मरेगा। शृंगी ऋषि के शाप देने से अब मेरे मरने में सात दिन

और बाकी रहे हैं। आप अपने मन के मालिक हैं, आपके ऊपर किसी का वश नहीं चलता, जो आपकी इच्छा के बिना आपको एक क्षण भी रख सके। इसलिये मैं जल्दी करके आपसे पूछता हूँ कि मुझे भव-सागर पार उतरने के वास्ते इस सात दिन में क्या करना चाहिए। स्त्री-पुत्रों के मोह में फँसे रहने के कारण मैंने कभी मन में इस बात का विचार नहीं किया कि अन्त समय में क्या होगा। जिस तरह कसाई बहुत सी बकरियाँ अपने यहाँ रखकर उनमें से नित्य एक-दो बकरी मारता है, किन्तु दूसरी बकरियों को कभी इस बात का डर नहीं होता कि हमारी भी एक दिन यही गति होगी, वे बड़े हर्ष से प्रतिदिन दाना व घास व पानी खाती-पीती हैं, उसी तरह हम संसारी लोग सदा माता-पिता, भ्राता व पुत्र का मरना आँख से देखकर कुछ नहीं डरते कि हमको भी एक दिन मरना होगा, अधर्म छोड़ परमेश्वर का भजन करें। यह सब हाल देखते हुए भी अपने मन को स्त्री-पुत्र आदि झूठे व्यवहार और मायामोह में फँसाये रहते हैं। अब नारायणजी ने मेरे ऊपर कृपा करके मुझे माया-मोह की नींद से जगाया और मेरा मन विरक्त हुआ। जिस तरह शास्त्र का वचन है कि कदाचित् कोई मनुष्य कार्तिक के अन्त में, पाँच दिन गंगास्नान करे तो उसे महीने भर नहाने का पुण्य प्राप्त होता है, उसी तरह आप कोई ऐसा उपाय बतलावें कि इस सात दिन में जो मेरे मरने के हैं, तुरन्त गुण करे। जब मनुष्य मरने के निकट पहुँचे तब उसको अपनी मुक्ति-हेतु क्या उपाय करना चाहिए, क्योंकि मरते समय गले में कफ इकट्ठा होने से हरि-नाम का उच्चारण नहीं हो सकता और यमदूतों के डर से मलमूत्र निकल आता है। इसलिये आपसे विनय है कि ऐसा धर्म बताइए जिसमें जल्दी मुक्ति हो। दूसरे ऋषीश्वरों ने जो कुछ दान व यज्ञा-दिक उपाय बतलाया था वह भी शुकदेवजी से कह दिया। जब ये सब बातें सुनकर शुकदेवजी ने मुसकरा दिया और ऋषीश्वरों के बताये हुए उपायों को उचित नहीं समझा, तब राजा परीक्षित फिर हाथ जोड़कर बोले—हे मुने, इस समय तुम्हारे विचार में कथा पुराण सुनना, या मंत्र जपना या किसी देवता व हरि के चरणों का ध्यान करना जो उत्तम उपाय हो सो बताइये, वैसा मैं करूँ।

दूसरा स्कन्ध।

शुकदेवजी का राजा परीक्षित से श्रीमद्भागवत और परब्रह्म परमेश्वर के अवतार धारण करने का हाल वर्णन करना।

दो० जासु कृपा ते होत है निपट अयान सयान। सो माखन के हिय बसो नँदनन्दन भगवान।
जो द्वितीय के मध्य में गूढ़ कहेउ शुकदेव। श्यामसुँदर सो कृपा करि मोहिं बताओ भेव।

पहिला अध्याय।

शुकदेवजी महाराज का राजा परीक्षित को धैर्य देना और श्रीमद्भागवत की स्तुति वर्णन करना।

शुकदेवजी ने राजा परीक्षित का वचन सुनकर कहा—हे राजन्, तुमने जो पूछा कि अन्त समय मनुष्य को अपनी मुक्ति के लिए क्या करना चाहिए, सो बहुत अच्छी बात पूछी है, इसमें संसारी जीवों का भी भला होगा। हे राजन्, जो अज्ञानी मनुष्य परमेश्वर की महिमा को नहीं जानता और केवल सुख व विलास में डूबकर भ्रष्ट हो रहा है, उसके वास्ते सब दुःख समझना चाहिए, क्योंकि ऐसे लोग संसारी विषय व सुख के पदार्थों की चाहना रखते हैं, पर बिना परमेश्वर की कृपा व दया के उनको कुछ सुख नहीं मिलता। वह इसी तरह अपनी आयु रात को स्त्री-प्रसंग व दिन को उद्यम व व्यापार में व्यतीत करते हैं। उन्हें आठों पहर संसारी काम से छुट्टी नहीं मिलती कि वे उत्पन्न व पालन करनेवाले नारायणजी का किसी क्षण स्मरण व ध्यान करके अपना परलोक बनावें। वे धन और परिवार से अपना भला चाहते हैं। देखो, मनुष्य जिस स्त्री-पुत्र के माया मोह में फँसकर सब तरह का दुःख उठाता है और झूठ-सत्य बोलकर द्रव्य उत्पन्न करके जिनको पालता है, उनका मरना भी अपनी आँखों से देखकर मन को इस महाजाल से विरक्त नहीं करता। मरने के उपरान्त कोई बेटा व भाई-बन्धु उसकी सहायता नहीं कर सकते, वह पाप करने के बदले आप नरक भोगता है।

हे राजन, तुम्हारा जन्म भरतखण्ड में हुआ। जो मनुष्य इस खण्ड में परमेश्वर का भजन व ध्यान करके वैकुंठ का सुख पाते हैं उन्हीं लोगों का संसार में जन्म लेना सफल है। देखो, मुनि व ऋषीश्वर लोग संसारी माया छोड़कर वन में श्यामसुन्दर का स्मरण व भजन करके अपना काल बिताते हैं। सो हे राजन्! सुनो, जिसकी मृत्यु निकट पहुँची हो उसको भवसागर पार उतरने के वास्ते नारायणजी की कथा व स्तुति सुनने के सिवा दूसरी बात उत्तम नहीं है। वह मनुष्य अपना मन स्त्री-पुत्र व धनादिक संसारी माया से विरक्त रखकर इस बात पर स्थिर करे कि यह सब जगत् का व्यवहार झूठा है। संसारी वस्तु सदा वर्त्तमान नहीं रहती और मरने के उपरान्त कोई वस्तु उसके साथ नहीं जाती। वह केवल अकेला जाता है, स्त्री-पुत्र व धनादिक सब उसको छोड़ देते हैं। इस वास्ते बुद्धिमान् व ज्ञानी को उचित है कि उनके छोड़ने से पहिले आप उन लोगों को त्याग देवे और भगवान् की कथा शुद्ध मन से चित्त लगाकर सुने। मुरलीमनोहर के चरणों में ध्यान लगाकर उसी परब्रह्म परमेश्वर की प्रीति उत्पन्न करे। जो कुछ कथा व लीला सुने उस पर विश्वास रखकर कभी उसको झूठ न जाने, उसको सत्य जानकर किसी बात का सन्देह न करे, तब वह मुक्ति पावेगा। सो हे राजन्, हम श्रीमद्भागवत जो सब पुराणों से उत्तम है, उसमें केवल श्यामसुन्दर की लीला व स्तुति लिखी है, और हमने अपने पिता व्यास-जी से उसको पढ़ा था, तुमको सुनाते हैं। जिस किसी की ऐसी इच्छा हो कि हम आवागमन से छूट जावें उसके वास्ते श्रीमद्भावगत सुनने के सिवाय दूसरा कोई उपाय उत्तम नहीं है। सब शास्त्र सुनने का फल केवल भागवत सुनने से प्राप्त होता है। इसे सब वेदों का सार समझना चाहिए। जिसको यमराज की फाँसी से छूटना हो वह भागवत सुने। परमेश्वर के चरणों में उसको प्रीति उत्पन्न होगी। जो मनुष्य स्त्री व लड़कों के मोह में फँसा रहता है, कदाचित् वह भी कथा सुनने का नित्य अभ्यास करे तो निस्सन्देह उसका मन विरक्त होकर हरिचरणों में प्रीति उत्पन्न हो और भवसागर पार उतर जावे। जिस स्थान पर यह

कथा होती है उस स्थान पर सब तीर्थ व देवता लोग सुनने के वास्ते आकर इकट्ठे होते हैं और इसके सुनने से अनेक जन्म का पाप छूट जाता है। सो हे राजन्,तुम भी इस कथा के सुनने से मुक्ति पदवी को पहुँचोगे। कदाचित् तुम यह बात कहो कि तुम्हारे आने से पहिले यह सब ऋषीश्वर जो यहाँ वर्त्तमान थे, इन्होंने हमको भागवत कथा सुनने की सम्मति क्यों नहीं दी। इसका कारण यह समझना चाहिए कि अभी तक ऋषीश्वरों का मन एक बात पर स्थिर नहीं था, कभी यज्ञ करने के वास्ते, कभी जप, कभी तीर्थ, कभी दान व पूजा की तरफ चलायमान होता है, और हम अपना मन रातदिन परमेश्वर के ध्यान व स्मरण में लगाकर श्रीमद्भागवत् पढ़ने के सिवाय दूसरी बातों से कुछ प्रयोजन नहीं रखते। अवधूत की तरह अपनी आयु संसार में व्यतीत करते हुए आनन्द से रहते हैं। हे राजन्, कदाचित् तुम यह जानते हो कि तुम्हारे मरने में थोड़े दिन रह गये, सो इस बात से मत डरो। तुमको अभी सात दिन मरने में हैं, श्रीमद्भागवत् की कथा चित्त लगाकर अच्छी तरह प्रेम से सुनो, तुम्हारी मुक्ति होगी। खट्वांग नामक राजा दो घड़ी में मुक्त हुआ था, तुमको सात दिन बहुत हैं, तुम क्यों घबराते हो। कदाचित् कोई सच्चे मन से परलोक बनाना चाहे तो अढ़ाई घड़ी में मुक्ति पा सकता है। संसारी माया-मोह में हजार वर्ष तक अपनी आयु व्यर्थ बितावे तो मरने के उपरांत नरक भोगता है। यह बात सुनते ही राजा ने हाथ जोड़कर कहा--महाराज! खट्वांग राजा ने दो घड़ी में किस तरह मुक्ति पाई थी, उसका हाल विधिपूर्वक वर्णन कीजिए। शुकदेवजी बोले--त्रेतायुग के आदि में खट्वांग नामक सातों द्वीपों का राजा बड़ा प्रतापी, बलवान्, नीतिमान्, धर्मात्मा, अपने कर्म व धर्म से अयोध्यापुरी में रहता था। उन्हीं दिनों में दैत्यों ने इन्द्रादिक देवतों को लड़ाई में जीतकर इन्द्रासन से निकाल दिया। तब पुरोहित बृहस्पति ने देवतों से कहा कि जब राजा खट्वांग तुम्हारी सहायता करके दैत्यों से लड़ाई करें तब तुम्हारी जीत होगी। यह बात सुनते ही इन्द्र देवतों समेत मर्त्यलोक में राजा खट्वांग के पास आया और उससे अपना

हाल कहकर सहायता चाही। राजा ने उनको दंडवत् करके कहा--हमारा बड़ा भाग्य है जो तुम लोग हमसे दैत्यों की लड़ाई के वास्ते सहायता चाहते हो। एक दिन इस शरीर का अवश्य नाश होगा, कदाचित् आप लोगों के काम आवे तो इससे क्या उत्तम है। ऐसा वचन कहकर राजा ने अपने शस्त्र बाँध लिए, इन्द्रादिक के साथ जाकर दैत्यों से युद्ध किया और उन्हें जीतकर फिर देवलोक की राजगद्दी इन्द्र को दिया। जब देवतों ने राजा की कृपा से विजय पाया और निडर होकर अपना राज्य करने लगे तब राजा ने देवतों से बिदा माँगी। उस समय इन्द्र ने प्रसन्न होकर कहा--हे राजन्, तुम हमसे कुछ वरदान माँगो। यह बात सुनकर राजा ने विचार किया कि हमने सहायता करके इनका छूटा हुआ राज्य इनको दिला दिया है, इनसे कौन वस्तु माँगें। इन्द्र ने उसके मन का हाल जानकर कहा--हे राजन्, देवतों की बीती हुई व होनेवाली सब बात मालूम रहती है। हम लोग दैत्यों के उपद्रव से व्याकुल थे, क्योंकि वे हमसे बलवान् हैं, इसलिए तुमसे सहायता चाही थी। ऐसा वचन सुनकर राजा ने अपने बुढ़ापे को शोचकर देवतों से पूछा कि पहले तुम यह बताओ कि मेरी आयु में कितने दिन हैं, तब मैं तुमसे वरदान माँगूँ। इन्द्र ने विचारकर कहा कि हे राजन्, तुम्हारी आयु में केवल चार घड़ी हैं। यह बात सुनते ही राजा ने देवतों से कहा कि हम यही वरदान माँगते हैं कि हमें इसी क्षण अयोध्या में पहुँचा दीजिए। वहाँ हमारी कर्म भूमि है। अब मेरे मरने का समय निकट पहुँचा, वहाँ जाकर मैं ऐसा कर्म करूँ, जिसमें आवागमन से छूटकर भवसागर पार उतर जाऊँ। इन्द्र ने उसी समय बहुत वेग से चलनेवाला एक विमान राजा को दिया, राजा उसी विमान पर चढ़कर दो घड़ी में अपने स्थान पर पहुँचे। हे राजन्, उसने भरतखण्ड को देवलोक से अच्छा जाना, जो मरने के वास्ते अयोध्यापुरी में आया। सो तुम विश्वास करके जानो कि भरतखण्ड बहुत अच्छा स्थान है। राजा ने अयोध्या में आकर उसी दो घड़ी में द्रव्यादिक सब वस्तु ब्राह्मणों को इच्छापूर्वक दान देकर अपने बेटे को राजगद्दी पर बैठा दिया और स्त्री-पुत्र व राज्य

का माया-मोह मन से तोड़कर वैराग्य धारण करके सरयू के किनारे जा बैठा और भगवान् के ध्यान में लीन होकर योगाभ्यास से अपना तनु त्यागकर वैकुंठ को सिधारा। सो हे राजन्, उसकी मुक्ति दो घड़ी में हुई, तुझे अभी सात दिन बहुत हैं। तुम अपना मन संसारी माया से तोड़कर सब इन्द्रियों को अपने वश में करके परमेश्वर के विराट्रूप का ध्यान करो। सब लोक उसी रूप में वर्तमान हैं। ऊपर के सातों लोक कमर से ऊपर और नीचे के सातों लोक कमर से नीचे उस आदि-पुरुष के समझो। जितनी वस्तु तुम संसार में देखते हो उस रूप से कोई बाहर नहीं है। यह बात विचारकर उस तेज के साथ, जिसके प्रकाश से सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित हैं, ध्यान लगाओ। सब जीवों में उसी तेज का चमत्कार जानकर उसके सिवाय सब जगत् का व्यवहार झूठा समझो। जो कोई उसको सब जगह पर एकसा देखता है उसे किसी शत्रु का डर नहीं रहता और मित्र से भी सहायता की इच्छा नहीं रहती। सब जीवों में उसी का प्रकाश उसको दिखाई देता है। श्रीकृष्णजी के चरणों का ध्यान हृदय में रखकर श्रीमद्भागवत की कथा मन लगाकर सुनो, तुम्हारी मुक्ति हो जायगी। इन सब बातों से शुकदेवजी महाराज का यह अभिप्राय था कि तक्षक साँप का डर राजा के चित्त से निकल जाय। जब राजा अपने मन में विश्वास करे कि नारायणजी के सिवाय दूसरी संसारी वस्तु में कुछ प्रकाश नहीं है तब तक्षक का डर छोड़कर यह समझे कि किसको कौन काटता है। जब इस तरह का ज्ञान मन में आवे तब वह जीवन्मुक्त हो जाय।

शुकदेवजी महाराज की ये बातें सुनकर राजा परीक्षित ने प्रसन्न होकर कहा—महाराज, मैं किस तरह बैठकर कौन से रूप का ध्यान करूँ। शुकदेवजी बोले—हे राजन्, तुम कमलासन बैठो और एकचित्त होकर अपने हृदय में परमेश्वर के सूक्ष्म रूप का ध्यान करो। कदाचित् अन्तःकरण में उस स्वरूप का ध्यान न कर सको तो सब संसार परमेश्वर के विराट् रूप में जानकर उसका ध्यान लगाओ। विराट्रूप इस प्रकार का है—पाताल परमेश्वर के पाँव, रसातललोक घुटना, सुतललोक जंघा,

वितल व अतललोक नितम्ब, पृथ्वी कमर, आकाश नाभि, ज्योतिश्चक्र, जहाँ सूर्य व चन्द्रमा रहते हैं छाती, महर्लोक गला, जनलोक मुख, तपलोक माथा, ब्रह्मा का सत्यलोक शिर उस आदि पुरुष का है। इन्द्रादि देवता उनकी भुजाएँ, दशो दिशाएँ उनके कान, अश्विनीकुमार नाक, सब सुगन्ध नाक का छेद, अग्नि मुख, आकाश आँखों के रहने का गड़हा, सूर्य आँख, दिनरात पलक भाँजना, जल पाँव, सब जगत् का स्वाद जिह्वा, यमराज दाँत, माया उनकी हँसी, लज्जा ऊपर का होठ, लालच नीचे का होठ, धर्म छाती, अधर्म पीठ, सब वृक्ष शरीर के रोम, मेघघटा शिर के बाल, नदियाँ शरीर की नसें, पहाड़ तन की हड्डी, समुद्र पेट, हवा श्वासा, मन चन्द्रमा, पानी मेह का वीर्य, प्रातः व संध्या परमेश्वर का वस्त्र है। परमेश्वर के उस रूप में मनुष्य बुद्धि से, घोड़ा, गधा, खच्चर, ऊँट नख से, हरिण आदि पशु जंघा से, पक्षी आदि जिह्वा से, गन्धर्व, विद्याधर, चारण व अप्सरा स्वर से, भेड़िया आदि पैर की फिल्ली से, यज्ञादिक परमेश्वर के मर्म से उत्पन्न हुए हैं। सो मनुष्य के तन में ज्ञान रहता है, पशु-पक्षी आदि में ज्ञान नहीं होता। इस तरह जो परमेश्वर का विराट्रूप है उसी का तुम ध्यान करो। जब इसमें तुम्हारा मन लग जावे तब छोटे स्वरूप का ध्यान करना।

दूसरा अध्याय।

शुकदेवजी का यह बात वर्णन करना कि परमेश्वर ने अपने भक्तों के वास्ते जो उनके नाम पर वन में जाकर उनका भजन करते हैं, सब खाने व पहिनने के पदार्थ तैयार कर रक्खा है।

शुकदेवजी ने कहा--हे राजन्, पहिला रास्ता परमेश्वर के ध्यान करने का यही विराट्रूप है, पर जब पहिले अपना मन संसारी माया से विरक्त कर लेवे तब नारायणजी की तरफ मन लगता है। परमेश्वर का ध्यान करने से संसारी माया छूट जाती है। जो लोग बुद्धिमान् व ज्ञानी हैं वे आठों पहर हरिचरणों में ध्यान लगाकर संसारी व्यवहार से कुछ प्रयोजन नहीं रखते। कदाचित् तुमको इस बात का सोच हो कि जब

कोई मनुष्य गृहस्थी छोड़कर वन में जाकर नारायणजी का तप व स्मरण करे तो उसको भोजन, वस्त्र और बर्तन के बिना दुःख होगा। तब परमेश्वर के भजन व ध्यान में उसका मन किस तरह लगेगा। सो नारायणजी ने अपने भक्तों के वास्ते, जो लोग विरक्त होकर उनके मिलने के लिए तप व योग करते हैं, पहिले से सब वस्तुएँ तैयार कर रक्खी हैं। संसार में मनुष्य को बड़े परिश्रम से प्रयोजन की सब वस्तुएँ मिलती हैं, किन्तु वन में परमेश्वर की कृपा से बिना परिश्रम सब पदार्थ प्राप्त होते हैं। पृथ्वी सोने के वास्ते तैयार समझकर वहाँ सुख से सोवे, नींद आने पर जैसा सुख पृथ्वी पर होता है वैसा ही शय्या और तोशक पर भी समझना चाहिये। तकिये का काम टिहुनी से निकल जाता है। अनेक प्रकार के फल व मेवे खाने के वास्ते वन में लगे रहते हैं। उनको आनन्द से खाया करे। उनसे पेट भरा रहने पर दूसरी वस्तु के खाने की इच्छा न होगी। उनको बर्तन भी न चाहिए। उनके दोनों हाथों से अच्छा दूसरा बर्तन नहीं हो सकता जिसको चोर और ठग नहीं ले जा सकते और पुराने होने का डर नहीं रहता। कपड़ा पहिनने के वास्ते वृक्ष की छाल उत्तम है, जिसके फटने का कुछ सोच नहीं रहता। कदाचित् छाल में शरीर छिपाया न जा सके जाड़ा मालूम हो तो नगर और गाँव के निकट घूरों पर लत्ते व चिथड़े पड़े रहते हैं, उनको लाकर पानी से धोकर अपना तन छिपा लेवे। पहाड़ों की दरीं को रहने के वास्ते स्थान समझे। तालाब, नदी आदि में पानी पिये उसी में स्नान करे। जो मनुष्य वन में जाकर परमेश्वर की शरण में रहता है, शेर और भालू आदि जीवों से परमेश्वर उनकी रक्षा करते हैं। हे राजन्! हम कुछ लालच व अपने प्रयोजन के वास्ते तुम्हारे पास नहीं आये नारदजी ने हमारे ऊपर तुम्हारा बोझ डाल दिया इसलिये हम आये हैं। जो मनुष्य परमेश्वर के भजन व ध्यान से विमुख रहता है उसे वैतरणी नदी और नरकों का दुःख अवश्य भोगना पड़ेगा, और जो लोग संसारी माया से विरक्त होकर परमेश्वर के ध्यान व स्मरण में रहते हैं उनको किसी गृहस्थ के पास भोजन व वस्त्र माँगने के वास्ते जाने का

क्या प्रयोजन है। धनी लोग उनको पहिचान नहीं सकते। हरिभक्तों का सब अर्थ ईश्वर निकाल देते हैं। मनुष्य को यह बात समझकर संतोष रखना चाहिए कि जिस नारायण ने मुझे उत्पन्न किया वही जीविका देनेवाले हैं, कभी भूखा नहीं रक्खेंगे। जब मैं माता के पेट में था तब वही परमेश्वर मुझे भोजन पहुँचाते थे, अब किस तरह मैं भूखा रहूँगा। उन्हीं परमेश्वर ने उत्पन्न होने से पहिले हमारी माता की छाती में हमारे पीने के वास्ते दूध तैयार कर रक्खा था। थोड़ा सा विचार करके समझना चाहिए कि कुचों में सब मांस रहता है, परमेश्वर की दया व कृपा के बिना उनमें दूध किस भाँति उत्पन्न हुआ। यह हाल देखने पर भी जो मनुष्य संतोष न रक्खे और परमेश्वर को भूलकर खाने-पहिनने का सोच करे उसे मूर्ख समझना चाहिए। देखो, जो कोई गाय व बैल आदि पशुओं को अपने द्वार पर बाँधते हैं वह लोग उनके घास व दाने की फिक्र रखते हैं। नारायणजी जो सबकी जीविका देनेवाले हैं वह कैसे अपने दास की चिन्ता छोड़कर उसे भूखा रक्खेंगे। उस समय तो परमेश्वर ने तुमको नहीं भुलाया जब तुम एक बूँद पानी के समान थे, फिर परमेश्वर ने अपनी महिमा से तुम्हारे हाथों में दश अँगुलियाँ उत्पन्न करके दोनों काँधों पर दो भुजाएँ बनाईं। अब तुम किस तरह जानते हो कि नारायणजी तुम्हें भूल जायँगे। हे राजन्! किसकी सामर्थ्य है जो परमेश्वर के गुणों का हाल जान सके। पहिले नित्य श्वास चढ़ाने का साधन करे और योगाभ्यास के साथ अपने प्राण ब्रह्मांड पर चढ़ावे। कमल के फूल का ध्यान हृदय में करे, जिसमें हजार पत्ते हैं, उनका मुँह नीचे है, अपने ध्यान में उस फूल का मुख ऊपर को करे। यह साधन करने से उनका मन इस तरह निर्मल हो जायगा जैसे मुर्चा लगा हुआ लोहा सिकल करने से चमकने लगता है। जब मन शुद्ध हो जायगा तब उस फूल में उसको परमेश्वर का छोटा स्वरूप दिखलाई देगा और ऐसा सुख मिलेगा जो उसने कभी नहीं पाया था। उस सुख पर वह मोहित होकर दूसरी वस्तु की चाहना नहीं रक्खेगा। जब वह इस पदवी को पहुँचा तब अच्छा योगीश्वर हुआ, फिर उसको यज्ञ, तप आदि कुछ

करने का प्रयोजन नहीं रहता। वह परमेश्वर का चमत्कार सब जीवों में एकसा देखकर किसी के साथ शत्रुता व मित्रता नहीं रखता। सो हे राजन्! पहिले तुम विराट्रूप का ध्यान करो, जब तुम्हारा मन स्थिर हो जावे तब अपने हृदय में उसी कमल का ध्यान लगाओ। उस फूल में तुमको परमेश्वर का अंगुष्ठ प्रमाण चतुर्भुजी रूप श्यामरङ्ग नीलमणि के समान चमकता हुआ, शंख चक्र गदा पद्म चारों हाथों में लिये, जड़ाऊ किरीट व मुकुट मस्तक पर, मकराकृत कुंडल कानों में, वैजयन्ती माला व वनमाला गले में, नवरत्न जड़ाऊ भुजा पर, करधनी घुँघुरूदार कमर के बीच व पैरों में कड़ा पहिने, पीताम्बर बाँधे, उपरना ओढ़े हुए, लम्बी भुजा, बाँके नयन, तापहारिणी चितवन, मन्द-मन्द मुसकराते, छाती में भृगुलता का चिह्न तुमको दिखलाई देगा। कदाचित् सम्पूर्ण रूप का ध्यान तुमसे एक बार न हो सके तो पहिले चरणों से आरम्भ करके एक-एक अंग को ध्यान में लाओ, धीरे धीरे सब रूप तुम्हारे ध्यान में आ जायगा। जब अच्छी तरह वह रूप तुम्हारे ध्यान में आ जावे तब तुम श्वास खींचने की साधना करके अपने प्राण मस्तक पर चढ़ा लेना। जिस मनुष्य के प्राण ब्रह्मांड तोड़कर निकलते हैं वह जीव सूर्यमंडल में होकर वैकुंठ पहुँचता है। फिर उसका आवागमन नहीं होता। जो लोग यज्ञ, तप, दान, तीर्थादिक करके अपना तन त्याग करते हैं वह चन्द्रमा के द्वार पर होकर देवलोकादि में अपने कर्मानुसार जाते हैं और अपने पुण्य के प्रमाण वहाँ का सुख भोगकर उनको फिर संसार में जन्म लेना पड़ता है। वे आवागमन से नहीं छूटते। मकर से लेकर मिथुन की संक्रांति तक छः महीने सूर्य उत्तरायण रहते हैं। यह देवतों के दिन हैं, इस छः महीने में मरनेवाले मनुष्य सूर्य के द्वार पर होकर वैकुंठ को जाते हैं। कर्क से धन की संक्रांति तक छः महीने सूर्य दक्षिणायन रहते हैं। यह देवतों की रात्रि है, इस छः महीने में मरनेवाले लोग चन्द्रमा के द्वार पर होकर देवलोकादि में जैसा कर्म किया हो, जाते हैं। वहाँ का सुख अवधिपर्यन्त भोगकर उनको फिर संसार में जन्म होना पड़ता है। दोनों तरह के धर्म की राह हमने तुमसे कह दिया। इसके सिवाय कोई तीसरी

राह नहीं है। हे राजन्! जो कोई मनुष्य के तनु परमेश्वर का भजन व स्मरण करके अपनी मुक्ति नहीं बनाता, उसको फिर चौरासीलाख योनि में जन्म लेना पड़ता है। जो कोई इस तनु में परमेश्वर को नहीं पहिचानता, और अपनी आयु खेल-कूद व संसारी माया में फँसकर नष्ट कर देता है, उसकी वह गति समझना चाहिए जिस तरह कोई मनुष्य बड़े परिश्रम से ऊँचे पहाड़ पर चढ़ गया तब उसको अपना मनोरथ मिलने के वास्ते थोड़ा सा परिश्रम रह जाता है उसी तरह जब जीव ने मनुष्य का तनु पाया तो जानो वह ऊँचे पहाड़ पर चढ़ चुका, कदाचित् उसने इस तनु में परमेश्वर का भजन व स्मरण करके अपना काम नहीं सँवारा तो जानो वह उस पहाड़ से नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर चौरासीलाख योनि में जन्म पाकर उस पहाड़ के ऊपर वह पहुँच सकता है। जिसने जन्म अपना व्यर्थ खोया वह मरने के उपरांत मन में बहुत पछताकर कहेगा कि देखो, मैंने कैसा बुरा काम किया जो परमेश्वर को नहीं जाना और संसारी माया-मोह में लिपटकर नष्ट हुआ। फिर वह बात हाथ से जाती रहेगी। इसलिये मनुष्य को यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिदिन मेरी आयु क्षीण होकर मृत्यु के दिन निकट चले आते हैं। जो दिन बीत गये वह फिर आ नहीं सकते, इस बात का आठो पहर मन में विश्वास रखकर एक क्षण भी परमेश्वर को न भुलावे और नारायणजी के भजन व स्मरण में अपने दिन काटे। जिसने मनुष्य के तनु में परमेश्वर का भजन नहीं किया वह पशु के समान है। जिस तरह ऊँट और बैल की पीठ पर बोझा लादते और एक समय उसे दाना व घास देते हैं और वह उसी में प्रसन्न रहकर अपने दिन काटता है यह नहीं जानता कि कहाँ सूर्य निकलते हैं व डूबते हैं। वही गति उस मनुष्य की समझना चाहिये। हे राजन्! परमेश्वर थोड़ा ध्यान करने में ही मनुष्य से प्रसन्न होकर उसको मुक्ति देते हैं। श्रीकृष्ण-जी ने गीता में अर्जुन से कहा है कि चार समय में मनुष्य अवश्य मेरा स्मरण करते हैं——एक तो जब मनुष्य रोगी होकर दुःख पाता है, दूसरे जिसको मेरे मिलने की इच्छा होती है, तीसरे जब किसी का

कुछ काम अटकता है, उसे किसी वस्तु के पाने की इच्छा होती है, चौथे ज्ञानी, जो मुझे पहिचानकर मेरे भेद को पहुँचा है। वे लोग अपना-अपना अर्थ सिद्ध होने के वास्ते मेरा स्मरण व ध्यान करते हैं। सो मैं चारों तरह के याद करनेवालों से प्रसन्न होता हूँ, पर ज्ञानी से अधिक, क्योंकि वह सदा मेरे ध्यान में रहता है। हे परीक्षित ! तू मन में कुछ सन्देह मत कर, इस सात दिन में अवश्य तेरी मुक्ति होगी। हम श्रीमद्भागवत की अमृत रूपी कथा कहते हैं, तुम चित्त लगाकर सुनो, भवसागर पार उतर जाओगे।

——:०:——

तीसरा अध्याय।

शुकदेवजी महाराज का यह हाल वर्णन करना कि किस देवता की आराधना करने से कौन फल मिलता है।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जब राजा परीक्षित ने परमेश्वर के ध्यान करने का यह सब हाल सुना तब घबराकर मन में कहा कि किस तरह से नारायणजी का यह स्वरूप मेरे ध्यान में आवेगा। इसी चिन्ता में राजा का मुख मलीन हो गया। तब शुकदेवजी ने राजा को उदास देखकर ऐसा विचारा कि कदाचित् राजा के मन में कोई इच्छा रह गई है, इस कारण राजा का मुख उदास हो गया है, सो मैं अपनी बातों से इनके चित्त का हाल मालूम कर लेता हूँ। यह विचार-कर शुकदेवजी बोले--हे राजन् ! जो कोई अपना सत्य बढ़ाना चाहे वह ब्रह्माजी की, जो अपनी इन्द्रियों को पुष्ट करना चाहे वह राजा इन्द्र की, जो अधिक सन्तान होने की इच्छा रक्खे वह दक्षप्रजापति की, जो द्रव्य की इच्छा रक्खे वह देवीजी की, जो अपने रूप का तेज बढ़ाना चाहे वह अग्नि की, जो अन्न व हाथी व घोड़ा आदि पाने की चाहना रक्खे वह आठ वसु देवता की, जो कामदेव की वृद्धि चाहे वह रुद्र की, जो कोई अपने तनु में अधिक बल होने की इच्छा रखता हो वह इला देवी की, सुन्दरता अधिक चाहे वह गन्धर्वों की, जिसे सुन्दर स्त्री की इच्छा हो वह उर्वशी अप्सरा की, जो मनुष्य यश की इच्छा रखता हो वह जगत् भगवान् की, जो विद्या चाहे वह महादेव की, जो अपने

परिवार की बढ़ती चाहे वह दिव्य पितरों की, जिसको अपने कुल व परिवार की रक्षा करनी हो वह पुण्य जीवों की, जिसको राजगद्दी की इच्छा हो वह मनु की, जो कोई अपने शत्रु का नाश चाहे वह निर्ऋतिराक्षस की, जो कोई अपने शरीर में वीर्य बढ़ने की इच्छा रखता हो वह चन्द्रमा की, जो कोई अपनी आयु अधिक चाहे वह अश्विनीकुमार की, जो स्त्री सुन्दर पति चाहे वह पार्वतीजी की, जिसको किसी वस्तु की इच्छा न होवे वह परम पुरुष नारायणजी की, जिस किसी को सब वस्तुओं की जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है, उनके सिवा और जिस वस्तु की इच्छा हो वह श्रीनारायणजी की पूजा करे, उनकी कृपा से सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। सो हे राजन्! जो मनुष्य अपना परलोक बनाने के वास्ते परमेश्वर को नहीं याद करता उसे कुत्ता व गधा आदि पशु के समान समझना चाहिए। जिस तरह शूकर विष्ठा खाता है उसी तरह मदिरा-पान करनेवाले मनुष्य को समझो। जिस जीव ने मनुष्य का तनु पाकर अपने कानों से परमेश्वर की कथा, व लीला व कीर्तन नहीं सुना, और लोगों की निन्दा सुनने में मन लगाया उसके कान बिच्छू व साँप के बिल के समान हैं। जिसने जिह्वा से परमेश्वर का नाम नहीं जपा उसकी जिह्वा मेंढक के समान जानना चाहिए, जो वृथा वर्षाऋतु में चिल्लाया करता है। जिसका सिर देवस्थान या ब्राह्मण व साधु के आगे दंडवत् करने के वास्ते नहीं झुका उसका मस्तक बोझ के समान तनु पर समझना उचित है। जिसने धन पाकर अपने हाथ से दान नहीं दिया, व हाथों से नारायणजी व देवता व साधु व ब्राह्मण की सेवा व पूजा नहीं की वह हाथ काठ की करछी के समान जानना चाहिए। जिन पैरों से तीर्थयात्रा और देवताओं व साधु ब्राह्मणों के दर्शन को नहीं गया वे पाँव वृक्षों की डाली के समान हैं। जिसने आँखों से प्रत्यक्ष या ध्यान में परमेश्वर का दर्शन नहीं किया उन आँखों को मोर-पंख के समान समझना चाहिए। जिस मनुष्य ने परमेश्वर पर चढ़ी हुई तुलसी तथा साधु ब्राह्मणों के चरणों की धूरि अपने शिर पर श्रद्धा व प्रेम से नहीं चढ़ाया वह जीता हुआ भी मृतक के समान है। जिस

किसी को हरिकथा व लीला व भजन सुनकर करुणा की जगह रोना न आवे उसका हृदय पत्थर के समान समझना चाहिए।

—(०)—

चौथा अध्याय।

राजा परीक्षित का शुकदेवजी महाराज से परब्रह्म परमेश्वर की कथा व कीर्तन वर्णन करने के वास्ते विनय करना।

सूतजी ने कहा—हे ऋषीश्वरो, जब राजा परीक्षित का श्यामसुन्दर के ध्यान का हाल व भागवतपुराण की महिमा सुनकर सब शोक मन से दूर हो गया तब उसने बहुत प्रसन्न होकर राज्य और स्त्री-पुत्रों की प्रीति छोड़ दी और शुकदेवजी से हाथ जोड़कर कहा—महाराज! जो कुछ आपने वर्णन किया उस पर विश्वास करके मुझे बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ। मैंने अपना ध्यान नारायणजी के चरणों में लगाया। मुझको आज व सात दिन में मरना दोनों बराबर हैं। इस बात का डर मेरे मन से जाता रहा। आपने सब पुराण व शास्त्र देखा व पढ़ा है, ब्रह्म आदि पुरुष का हाल आप अच्छी तरह जानते हैं, जिस तरह नारायणजी इस संसार को रचकर पालन करने के उपरान्त फिर उसका नाश कर देते हैं, वह हाल सुनाइए। परब्रह्म परमेश्वर ने सगुण अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ संसार में की हैं उनका वर्णन कीजिए। यह बात सुनते ही शुकदेवजी प्रसन्न होकर पहिले श्यामसुन्दर के चरणों का ध्यान, जिनकी पूजा करने, नाम लेने व कथा सुनने से मनुष्य पवित्र व ज्ञानी होता है, करके इस तरह स्तुति की—हे दीनानाथ, योग और यज्ञ आदि आपकी कृपा के बिना फल नहीं दे सकते। मैं उन परमेश्वर को दंडवत् करता हूँ जिनके चरणों का ध्यान बड़े-बड़े योगी, सनकादि मुनि, ब्रह्मा व महादेव आदि देवता दिन-रात्रि अपने हृदय में रखते हैं और उनके चरित्र व लीला को नहीं जानते। जिनकी दया व कृपा से शबरी, गिद्ध और गोपियाँ आदि छोटे-छोटे जीव मुक्ति पदवी पर पहुँचे, जो लक्ष्मी-जी के पति हैं उनको नमस्कार करता हूँ। वही परमेश्वर अपनी कृपा से मेरी बुद्धि में प्रकाश करके मेरा वचन सत्य करें और उनकी शक्ति

से मुझे उनका चरित्र कहने के वास्ते सामर्थ्य प्राप्त हो। फिर शुकदेवजी ने अपने पिता वेदव्यासजी व गुरु के चरणों का ध्यान व दंडवत् करके कहा—हे राजन्! श्रीमद्भागवत की कथा जो वैकुंठनाथ ने ब्रह्मा से कही, ब्रह्मा ने नारद मुनि से वर्णन किया, नारद मुनि ने व्यासजी को बतलाया और हमारे पिता व्यासजी ने मुझे पढ़ाया था, वह सब मैं तुझे सुनाता हूँ। जो बात तुम सुनना चाहते हो वह सब हाल उसी में लिखा है मन लगाकर सुनो।

——:o:——

पाँचवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का श्रीमद्भागवत की कथा और ब्रह्मा व नारद का संवाद आरम्भ करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! किसी युग में एक दिन नारद मुनि अपने पिता ब्रह्माजी के पास दंडवत् करने के वास्ते गये। उस समय ब्रह्माजी परमेश्वर के ध्यान में बैठे थे। नारद मुनि ने उनको देखकर अपने मन में इस बात का संदेह किया कि सब संसार को उत्पन्न करनेवाले यह ब्रह्माजी किसका ध्यान लगाए हैं, इस ध्यान करने से मालूम होता है कि कोई इनका भी मालिक है जिसका यह ध्यान करते हैं, उसका हाल पूछना चाहिए। यह विचारकर नारदजी ने ब्रह्मा से ध्यान छूटने के उपरान्त पूछा—आप कहते हैं कि जो कुछ जिसके भाग्य में लिखा है वही बात होगी, और मैं देखता हूँ कि आप इस तरह सब संसार को रचकर फिर उसका नाश कर देते हैं जैसे मकड़ी अपने मुँह से डोरा निकालकर फिर उसको खा जाती है। सो आपके कहने व ध्यान करने से मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आपसे भी बड़ा और कोई है जिसका ध्यान करके उसकी आज्ञानुसार आप सृष्टि रचने का सब काम करते हैं। सो जिसका ध्यान आप करते हैं उसका नाम व गुण मुझे भी बतला दीजिए। यह बात सुनकर ब्रह्माजी बोले—हे नारदजी! तुम धन्य हो। जिस परमेश्वर का चरित्र तुमने हमसे पूछा उस नारायणजी की माया बड़ी प्रबल है। तुम मुझको जगत् का कर्ता कहते हो, मैं इस बात से बहुत लज्जित होता हूँ। हे नारद! मुझसे बड़े और मेरे मालिक भगवान्जी हैं, जिनसे

अनेक ब्रह्मा व ब्रह्मांड प्रकट होते हैं, सारा संसार उन्हीं की माया से उत्पन्न होता है। मैं भी उसी परमेश्वर की दया व कृपा से जगत् की रचना करता हूँ। देवता और मनुष्य को उन्हीं के प्रताप से बुद्धि व ज्ञान प्राप्त होता है। सुनो, जब नारायणजी की नाभि से कमल का फूल निकला और मैं उस फूल से प्रकट हुआ तब मैंने बहुत विचार किया कि मैं कहाँ से उत्पन्न होकर यहाँ आया हूँ। जब मुझे इसका कुछ हाल न मालूम हुआ तब उन्हीं परमेश्वर का ध्यान करने से मुझे ज्ञान प्राप्त होकर यह बात जान पड़ी कि नारायणजी ने मुझे उत्पन्न किया है। सूर्य, चन्द्रमा और तारागण आदि उन्हीं के तेज से प्रकाशित हैं। संसार में जितनी वस्तुएँ हैं सब उन्हीं की माया से प्रकट हुई हैं। यह जीव सबके शरीर में उन्हीं का प्रकाश है। नारायणजी अपने तेज से आप प्रकाशित हैं, उनमें किसी दूसरे का तेज नहीं है। उनके आदि व अन्त व भेद को कोई नहीं जान सकता कि उस परब्रह्म परमेश्वर का हाल वर्णन कर सके। पर नारायणजी की कृपा से जितना मुझे मालूम है सो तुमसे कहता हूँ, सुनो। जब नारायणजी को इस बात की चाह होती है कि हम अकेले हैं, बहुत से रूप हो जावें, तब उनकी इच्छा से बहुत रूप हो जाते हैं। जब मैं कमल के फूल से उत्पन्न हुआ तब मुझको नारायणजी ने आज्ञा दी कि तू संसार की रचना कर। उस समय मैंने मन में विचार किया कि किस तरह संसार की उत्पति करूँ। तब उन्हीं नारायणजी की माया से सात्त्विक, राजस, तामस तीन गुण प्रकट हुए, और मुझको अपने हृदय में बुद्धि का चमत्कार दिखलाई दिया। मैंने उन्हीं तीनों वस्तुओं की सामर्थ्य से पाँचों तत्त्व और सारा संसार उत्पन्न करके पृथ्वी को रचा। मिट्टी, आग, पानी, हवा और आकाश इन पाँचों तत्त्वों से सब जीवों का शरीर बनाया। जो पृथ्वी मैंने कमल के पत्ते से बनाई थी वह पानी पर नहीं ठहरती थी, हजार वर्ष तक बराबर हिलती रही। जब हमने नारायणजी से पृथ्वी के हिलने का हाल कहा तब उसी आदिपुरुष ने अपनी शक्ति से पृथ्वी को पानी पर स्थिर कर दिया तो उसका हिलना बन्द हो गया। उसी शक्ति को ब्रह्मांड व विराट्रूप

कहते हैं। वेद में लिखा है कि उस रूप के हजार शिर, हजार हाथ, हजार पाँव, हजार आँख और हजार कान हैं।

—:०:—

छठा अध्याय

ब्रह्माजी का नारदजी से नारायणजी के विराट्रूप का हाल कहना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! ब्रह्माजी ने नारद से कहा कि नारायणजी के विराट्रूप का हाल इस तरह है कि ऊपर के सातों लोक कमर के ऊपर, नीचे के सातों लोक कमर से नीचे उनका तनु समझना चाहिये। अग्नि मुख, वृक्ष शरीर के रोम, दशों दिशाएँ कान, समुद्र पेट, सूर्य आँख, पहाड़ तनु की हड्डी, नदियाँ शरीर की नस, हवा श्वासा, इन्द्रादिक देवता भुजाएँ, अश्विनीकुमार नाक, सब सुगंध नाक का छेद, आकाश आँखों का गोलक, दिनरात पलक भाँजना, जल पैर, जगत् का स्वाद जिह्वा, यमराज दाँत, माया हँसी, लज्जा ऊपर का होंठ, लालच नीचे का होंठ, धर्म छाती, अधर्म पीठ, मेघघटा शिर के बाल, वर्षा का पानी वीर्य, उनके विराट्रूप में समझना चाहिए, इसके सिवा और सब जगत् के व्यवहार इसी रूप में वर्तमान हैं। इसलिये तपस्वी व ऋषीश्वर लोग नारायणजी का प्रकाश सब जगह एकसा समझकर किसी को दुःख नहीं देते। हरा वृक्ष काटने से अवश्य समझना चाहिए कि परमेश्वर को दुःख पहुँचेगा। संसार में हानि, लाभ, यश, अपयश, दुःख, सुख परमेश्वर की इच्छा से होता है। जो कुछ श्राद्धादिक में पितरों के नाम और यज्ञादिक में देवतों के नाम पर संसारी जीव देते हैं वह उसी परमेश्वर को पहुँचता है। जड़ और चैतन्य सब जीवों के उत्पन्न, पालन व नाश करनेवाले वही अविनाशी पुरुष हैं, उन पर कोई दूसरा मालिक नहीं है। हे नारद! जब मुझे संसार के रचने की आज्ञा मिली तब मैंने नारायणजी की दया व कृपा से दक्षप्रजापति को उत्पन्न किया। उससे बहुत मनुष्य हुए। उन्हीं नारायणजी के चरणों का ध्यान अपने हृदय में रखने से मुझे संसार रचने की सामर्थ्य है। वही परमेश्वर आदि,

मध्य व अन्त में सदा एक तरह रहता है, घटने और बढ़ने व पुराने होने से रहित है। कोई संसारि वस्तु उनके रूप से बाहर नहीं है और बुद्धि इतनी सामर्थ्य नहीं रखती जो उनकी स्तुति कर सके। नारायणजी ने अपनी इच्छा से लीला करने और संसारी जीवों को भवसागर पार उतारने के वास्ते मर्त्यलोक में चौबीस अवतार धारण किये हैं। मनुष्य को चाहिए कि सदा उन अवतारों की लीला की चर्चा करें और परमेश्वर के ध्यान में तथा उनके नाम का स्मरण करने में लीन रहें। तब उनका अन्तःकरण शुद्ध व पवित्र होकर उसमें परमेश्वर का प्रकाश चमके और आवागमन से छूटकर भवसागर पार उतर जायँ। देखो, उन्हीं परमेश्वर का भजन व स्मरण करने के प्रताप से ऋषीश्वर लोग जो कुछ किसी को शाप या आशीर्वाद देते हैं वह बात उसी समय हो जाती है। ऋषीश्वर व महात्मा लोग मुझसे वेदादिक सीखकर संसार में प्रकट करते हैं। परमेश्वर के वरदान से मेरा वचन झूठा नहीं होता, मेरा मन पाप की तरफ नहीं जाता, मेरी इन्द्रियाँ अधर्म की चाहना नहीं करतीं। उसी परमेश्वर का ध्यान करने से ये तीन गुण मुझमें प्रकट हुए हैं। परमेश्वर ने मनुष्य के सब अंग एक-एक देवता को सौंप दिये हैं, सो सब देवतों का एक-एक रूप अपने लोक में रहता है और उनका प्रकाश सूर्य के समान जिस तरह पानी भरे बर्तनों में पड़ता है उसी तरह सब जीवों के तनु में समझना चाहिए। तीसरा उनका प्रकाश देव-मन्दिरों में मूर्ति का रहता है। सूर्य का प्रकाश व चन्द्रमा की किरणें पड़ने से चाँदी व सोना व ताँबा आदि की खानि जगत् में प्रकट होती है। जो पाप व अधर्म मनुष्य से होते हैं उनके प्रायश्चित्त धर्मशास्त्र में लिखे हैं। यह सब हाल कहकर ब्रह्माजी ने श्रीमद्भागवत के जो चार मूल श्लोक नारायणजी के मुखारविन्द से सुने थे वह चारों श्लोक नारदजी से कहकर बोले—हे नारद ! वह परब्रह्म परमेश्वर निरंकाररूप किसी के देखने में नहीं आते। उनको कोई हाथ से पकड़ नहीं सकता। किसी में ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो उनके सब अवतारों का हाल वर्णन कर सके, क्योंकि सब जीवों में उन्हीं की ज्योति का प्रकाश है। मैं

परब्रह्म परमेश्वर के चौबीसों अवतारों का हाल, जो सगुणरूप संसार में धारण किये थे, अपनी बुद्धि प्रमाण कहता हूँ।

—:०:—

सातवाँ अध्याय।

ब्रह्माजी का नारदजी से चौबीसों अवतारों का हाल वर्णन करना।

ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा कि पहिला अवतार सनक सनन्दन सनातन व सनत्कुमार का मेरी नाक से उत्पन्न हुआ। वे लोग परमेश्वर के ध्यान में लीन रहते हैं। उस तप के प्रताप से कई कल्प बीतने पर भी सदा पाँच वर्ष की अवस्था के बने रहते हैं। दूसरा अवतार वाराहजी का इसलिये धारण किया कि जब मुझे संसार रचने के वास्ते आज्ञा हुई तब मैंने नारायणजी की कृपा से कमल के पत्ते की पृथ्वी बनाई, सो हिरण्याक्ष दैत्य उस धरती को उठाकर पाताल में ले गया। जब मैंने वैकुंठनाथ से विनय किया कि धरती के बिना जीव कहाँ रहेंगे तब उन्होंने वाराहरूप धरकर पाताल में जाकर हिरण्याक्ष को मार डाला और पृथ्वी को बाहर लाकर अपनी महिमा से जल पर स्थिर किया। सो यह धरती कर्मों का फल देनेवाली है, जैसा शुभ या अशुभ कर्म कोई करे वैसा फल पावे। तीसरा अवतार यज्ञपुरुष का लेकर संसारी राजाओं को यज्ञ करने के वास्ते राह बतलाकर कृतार्थ किया। चौथा अवतार हयग्रीव का धारण करके पाताल में जाकर मधुकैटभ दैत्य को मार डाला, और जो वेद वह दैत्य चुरा ले गया था उसे लाकर मुझे दिया। पाँचवाँ अवतार नारायणजी ने मूर्ति नाम कन्या में धर्म ऋषीश्वर से धारण करके बदरी केदारस्थान उत्तराखण्ड में बैठे हुए इस इच्छा से तप करते हैं जिसमें संसारी लोग मुझे तप करते देखकर आप भी परमेश्वर का तप व स्मरण किया करें। छठा अवतार कपिलदेव मुनि का लेकर अपनी माता देवहूती को सांख्य-योग का ज्ञान सिखलाकर मुक्ति दिया। सातवाँ अवतार दत्तात्रेयजी का लेकर राजा यदु को ज्ञान सिखलाया, जिसके प्रताप से वह मुक्त हुआ और दत्तात्रेयजी ने चौबीस गुरु किये, उनका हाल एकादश स्कन्ध में लिखा है। आठवाँ अवतार ऋषभदेवजी

का लेकर सरावगी व जैनधर्मियों की जाति संसार में प्रकट की। नवाँ अवतार राजा पृथु का लेकर अपने पिता बेन को नरक जाने से बचाया और गऊरूपी पृथ्वी को दुहकर दूध के समान सब औषधियाँ उसमें से निकालीं। पहाड़ों को जो जगह-जगह पृथ्वी छेके थे, उठाकर उत्तरा-खंड में रख दिया। पृथ्वी संसारी जीवों के रहने के वास्ते खाली करके नगर व गाँव बसाये। दशवाँ मत्स्यावतार लेकर राजा सत्यव्रत को प्रलय का तमाशा दिखलाया। ग्यारहवाँ कच्छप का अवतार धारण करके समुद्र मथते समय मन्दराचल पहाड़ अपनी पीठ पर लेकर समुद्र से चौदह रत्न निकाले। बारहवाँ अवतार धन्वन्तरि वैद्य का लेकर रोगों का नाश करने के वास्ते समुद से औषधियाँ निकालीं। तेरहवाँ अवतार मोहनी का धरकर दैत्यों को अपने रूप पर मोहित किया और अमृत का कलश जो उन्होंने धन्वन्तरि वैद्य से देवतों को भाग दिये बिना छीन लिया था, लेकर वह अमृत देवतों को पिलाया। चौदहवाँ नृसिंह अव-तार धारण करके हिरण्यकशिपु दैत्य को मारा। पन्द्रहवाँ वामन अवतार धर के तीन पग पृथ्वी बलि से दान लेकर देवताओं को दिया। सोल-हवाँ अवतार हंस पक्षी का लेकर सनत्कुमार को ज्ञान सिखलाकर उनका गर्व नष्ट किया। सत्रहवाँ नारायण का अवतार लेकर ध्रुव भक्त को दर्शन दिया। अठारहवाँ हरि का अवतार धरकर ग्राह से गजेन्द्र के प्राण बचाये। उन्नीसवाँ अवतार परशुरामजी का लेकर जो-जो दुष्ट पृथ्वी पर हरिभक्तों को दुःख देते थे उन्हें मार डाला और इक्कीस बार क्षत्रिय राजाओं को दूसरे क्षत्रियों समेत मारकर उनकी पृथ्वी छीनकर ब्राह्मणों को दान कर दिया। बीसवाँ अवतार रामचन्द्रजी का धारण करके पापी रावण को दूसरे राक्षसों समेत, जो गऊ व ब्राह्मण को दुःख देते थे, मार डाला और लंका का राज्य विभीषण को देकर हनुमान्‌जी को यश दिया। इक्कीसवाँ अवतार वेदव्यासजी का धारण करके संसारी जीवों को भव-सागर पार उतारने के वास्ते चार वेद, महाभारत और अठारह पुराण बनाये। बाईसवाँ अवतार श्रीकृष्णजी का लेकर कौरवों व पांडवों से महाभारत कराया। कंस, कालयमन, जरासंध आदि अधर्मी राजाओं

को मारकर पृथ्वी का भार उतारा। संसार में बहुतसी लीला की, जिसका वर्णन दशमस्कंध में लिखा है। तेईसवाँ बौद्ध अवतार लेकर दैत्यों का यज्ञ करना वारण किया। कलियुग के अन्त में चौबीसवाँ कल्की अवतार धारण करके तलवार हाथ में लिये हुए नीले घोड़े पर सवार होकर अधर्मी व पापी लोगों को मारेंगे और सतयुग का कर्म संसार में आरम्भ करके धर्म की वृद्धि करेंगे। हे नारद, चौबीस अवतार का हाल अपनी बुद्धि के अनुसार हमने तुमसे कहा। जो अज्ञानी मनुष्य परमेश्वर को अच्छी तरह न जानता हो उसे ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति पाने के लिए इन सब अवतारों की कथा व लीला अवश्य सुनना चाहिए। जो ज्ञानी मनुष्य सब जीवों में परमेश्वर का प्रकाश एकसा देखता हो उसे ब्रह्मज्ञानी जानकर जीवन्मुक्त समझना उचित है। हे नारद, मैं (ब्रह्मा) संसार की रचना करता हूँ, विष्णुजी सब जीवों का पालन करते हैं और महादेवजी सबका नाश करते हैं। ये तीनों अवतार भी नारायणजी के हैं व सारा संसार परमेश्वर की माया से स्त्री, लड़के और द्रव्यरूप महाजाल में फँसा रहता है। जिस मनुष्य पर नारायणजी बड़ी कृपा करते हैं वह सत्संग करके इस मायाजाल से छूट सकता है, नहीं तो संसाररूपी जाल से छूटना बहुत कठिन समझो। इस महाजाल से छूटने के वास्ते परब्रह्म परमेश्वर का भजन व उनके नाम का स्मरण और उनके अवतारों की लीला व कथा सुनने के सिवा दूसरा कुछ उपाय नहीं है। अवतारों की लीला चारों वर्णों को सुनना चाहिए। श्रीमद्भागवत के तत्त्वज्ञान के चार श्लोक जो हमने नारायणजी से सुने थे सो तुमसे कहे। उन्हीं परमेश्वर का भजन व स्मरण करने से तुम्हारे में भी सब गुण प्रकट होंगे। हे नारद, कई बेर मेरे जैसे ब्रह्मा व तुम जैसे नारद संसार में उत्पन्न हो चुके हैं, इसका हाल परब्रह्म परमेश्वर के सिवा दूसरा कोई नहीं जानता। प्रत्येक कल्प में सब जीव अपने कर्मानुसार फिर जन्म पाते हैं। जिस देश में देवस्थान नहीं होता, परमेश्वर की कथा नहीं होती और जिस घर में कोई यज्ञ और होम नहीं होता वहाँ कलियुग का वास अधिक होता है। वहाँ के मनुष्य क्रोध, लोभ और अहं-

कार में भरे रहते हैं। यही क्रोधादिक पाप की जड़ हैं और मनुष्यों से अनेक प्रकार के अधर्म कराते हैं। परमेश्वर की माया को महादेवजी, दक्षप्रजापति, देवता, सनकादिक, भृगु ऋषीश्वर, प्रह्लाद, राजा बलि, अम्बरीष और प्राचीनबर्हिष आदि थोड़ा सा जानते हैं। जिस जीव को अहंकार नहीं होता वही परमेश्वर की माया से छूटकर भवसागर पार उतर जाता है। जो लोग हरिभक्त होते हैं और परमेश्वर की शरण में रहते हैं उन पर माया का कुछ वश नहीं चलता। नारदजी नारायणजी का यह प्रताप ब्रह्मा से सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और वीणा बजाते व परमेश्वर का गुण गाते हुए चले गये।

—:०:—

आठवाँ अध्याय।

राजा परीक्षित का श्रीशुकदेवजी से धर्म, वेद, पुराण, योगाभ्यास आदि का हाल पूछना।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर मन में इस बात का विचार किया कि देखो, शुकदेवजी ने नारायणजी की कथा सुनना चारों वर्णों को कहा और मुझे उनसे उत्तम न जानकर चारों वर्णों के बराबर समझा। सो यह सन्देह छुड़ाने के वास्ते पिछले राजाओं का हाल, जिन्होंने परमेश्वर का भजन व स्मरण करके अपना तनु त्याग किया है, इनसे पूछना चाहिए, ऐसा विचारकर परीक्षित ने पूछा--हे महाराज! अवतारों का हाल सुनकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ, अब मेरी यह इच्छा है कि नारायणजी के अवतारों की लीला के सिवा दूसरा हाल न सुनूँ, क्योंकि इस कथा के सुनने से अन्तःकरण शुद्ध व पवित्र होकर परमेश्वर का प्रकाश हृदय में प्रकट होता है। उस चमत्कार के होने से काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मद शरीर में नहीं रहता, जैसे संसारी जीवों के स्थान में राजा के आने से उनका घर शुद्ध व पवित्र हो जाता है। सो आप कृपा करके यह हाल वर्णन कीजिए कि आदिज्योति निरंकार नारायणजी ने जो विराट्रूप धारण किया, जिस स्वरूप में सब संसारी वस्तुएँ हैं और एक से लेकर लाखों स्वरूप अनेक प्रकार के हो जाते

हैं, इसका क्या भेद है। पिछले युगों में जिन राजाओं ने परमेश्वर के स्मरण व ध्यान में लीन होकर अपना तनु त्याग किया है, वह जितने तत्त्व हैं उनकी गिनती, परमेश्वर की पूजा की विधि, जिस तरह योगी लोग योगाभ्यास करके अपना शरीर छोड़ते हैं, वे वेद का जैसा धर्म व रूप हो, इतिहास-पुराण का माहात्म्य, संसार में जैसे प्रलय होती है, जिस तरह यज्ञादिक किये जाते हैं, ब्रह्माण्ड व ऋषीश्वरों का हाल, जिस प्रकार जीव नरक से निकलकर आते हैं, पाप व अधर्म करनेवालों का मरने के उपरान्त क्या हाल होता है, यह जीव संसार में कौन काम करने से मायाजाल में फँसकर नष्ट होते हैं, कौन कर्म करने से मुक्ति मिलती है, इन सब बातों का हाल कृपा करके वर्णन कीजिए। यह बात सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तुझे यह सब हाल पूछने से क्या प्रयोजन है? राजा ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, मैं चाहता हूँ कि परब्रह्म परमेश्वर के सम्पूर्ण अवतारों की लीला सुनूँ और अपना शरीर नारायणजी की चर्चा व ध्यान में छोड़कर भवसागर पार उतर जाऊँ। यह वचन सुन शुकदेवजी ने कहा कि हे राजन्! मनुष्य का तनु पाना बहुत कठिन है, जो कोई मनुष्य का तनु पाकर नारायणजी की लीला व कथा नहीं सुनता उसको पछिताने के सिवा और कुछ हाथ नहीं लगता। जो बात तुमने पूछी है उसका हाल सुनो। जब परब्रह्म परमेश्वर चाहते हैं कि संसार उत्पन्न करके जीवों की बढ़ती करें और अपना स्वरूप आप देखकर मोहित होवें। जिस तरह मनुष्य अपना मुख दर्पण में देखता है और शीशा उलट देने से फिर कुछ दिखलाई नहीं पड़ता उसी तरह परमेश्वर सारा संसार अपनी इच्छा से उत्पन्न करने के उपरांत फिर उसका नाश करके अपने रूप में मिला लेते हैं, इसलिए जगत् में ज्ञानी उसी को समझना चाहिए जो मनुष्य नारायणजी के चौबीस अवतारों की कथा व लीला अपने सच्चे मन से सुनकर उस पर विश्वास रक्खे और चिउँटी से लेकर हाथी तक सब जीवों में परमेश्वर का चमत्कार एकसा जानकर किसी को दुःख न देवे। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जो बात

परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछी है वही बात एक बार ब्रह्मकल्प में ब्रह्मा ने नारायणजी से पूछी थी।

—:०:—

नवाँ अध्याय

ब्रह्मा के उत्पन्न होने और उनसे श्रीमद्‌भागवत के मूल चार श्लोक श्रीनारायणजी के कहने का हाल शुकदेवजी का परीक्षित से कहना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब एक कमल का फूल परमेश्वर की नाभि से निकला और उस फूल में से ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब ब्रह्मा ने यह बात जानना चाहा कि मैं कहाँ से उत्पन्न हुआ हूँ। जब बहुत विचारने पर भी यह भेद ब्रह्मा को नहीं मालूम हुआ तब हार मानकर उसी फूल पर बैठ रहे। इसलिए समझना चाहिए कि भगवान् की माया ऐसी प्रबल है कि उस माया की रस्सी में ब्रह्मा भी बँधकर उनका भेद नहीं जान सकते, दूसरे की क्या सामर्थ्य है जो परमेश्वर की लीला व आदि अन्त को समझ सके। फिर ब्रह्माजी ने उसी फूल पर बैठे हुए श्रीमद्भागवत के मूल चार श्लोक आकाशवाणी में सुना और उसी आज्ञानुसार तप किया। जब तप करने से ब्रह्माजी को ज्ञान हुआ तब उन श्लोकों का अर्थ जानकर संसार की रचना किया। उन चारों श्लोकों का अर्थ यह है—हे ब्रह्मा! जो सबके पहिले था वह मैं हूँ, मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है। जो कुछ तुम देखते हो वह भी मुझे समझो। महाप्रलय होने के उपरान्त भी मेरे सिवा और कुछ नहीं रहेगा। सब संसारी वस्तुओं का मूल जड़ मैं हूँ। जिस तरह सोने के गहने हाथ, पैर, नाक, कान और सब अंगों में पहिनने के वास्ते बिलग-बिलग तैयार कराओ तो सब भूषणों के नाम पृथक्-पृथक् होते हैं, और जब वह सब गहना तोड़कर गला डालो तब फिर केवल सोना रह जाता है, वही हाल मेरा समझना चाहिए। मैं अकेला हूँ, जब चाहता हूँ अपनी इच्छा से अनेक रूप धारण करके संसार में अपने बहुत नाम प्रकट करता हूँ, फिर जब मेरी इच्छा अकेले रहने की होती है तब अकेला हो जाता हूँ। देखने, सुनने, बोलने व भले बुरे के जानने की जो सामर्थ्य सब जीवों

में है, वह सब मेरे प्रताप से समझना चाहिए। जिस तरह आकाश का घेरा सब जगह है उसी तरह मैं सबसे बलवान् होकर तीनों लोकों व चौदहों भुवन को अपने वश में रखता हूँ। मेरे सिवा सब संसारी वस्तुओं को झूँठी समझना उचित है। पाँच तत्त्व से सब संसारी जीव उत्पन्न होते हैं। जिस तरह संसार का सम्पूर्ण व्यवहार मेरे विराट्रूप में है उसी तरह सबके तनु में ज्योति का प्रकाश, जिसे प्राण कहते, समझो। जब तक वह चमत्कार शरीर में रहता है तब तक चलने, फिरने, खाने, पीने, बोलने और इन्द्रियों के सुख भोगने की सामर्थ्य उसे रहती है, जब वह प्रकाश शरीर से निकल गया तब वही तनु मृतक होकर गल-सड़ जाता है, फिर उस शरीर से कुछ नहीं हो सकता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चारों वर्णों में मेरा प्रकाश एकसा है। ज्ञान की दृष्टि से उनमें कुछ भेद न जानकर सब जीवों में नारायणजी का स्वरूप एकसा समझना चाहिए। जिस तरह सूर्य की छाया सोने, चाँदी, मिट्टी व लोहे आदि के बर्तनों में बराबर पड़ती है और जिस तरह सोना, चाँदी, काठ, पीतल अनेक रंग के दानों को एक तागे में पिरोने से माला हो जाती है उसी तरह मेरा चमत्कार सब जीवों में तागा के समान समझो। जब वह माला का तागा टूट जाता है तब वे सब दाने बिखर जाते हैं। सो हे ब्रह्मा! तुम इसी तरह सब जगह मुझको जानकर जगत् की रचना करो। संसारी माया में फँसकर आनन्द से नहीं रहोगे, तप करने से तुमको मेरा दर्शन होगा। तुम मन में दया रखकर सब जीवों की रचना करो। ऋषीश्वर व ज्ञानी लोग तुम्हारी स्तुति करेंगे। संसार रचने में तुम्हें कुछ परिश्रम व दुःख नहीं होगा। तुम मेरे चतुर्भुजी छोटे स्वरूप का ध्यान करो, जो महात्मा, ऋषीश्वर, नन्द व सुनन्द आदि दासों में विराजमान है। यह आकाशवाणी सुनकर ब्रह्मा नारायणजी को मन ही मन प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—हे दीनानाथ, मुझे यह वरदान दीजिए कि मैं आपको अपना मालिक जानता रहूँ। संसार के उत्पन्न करने में मुझे आसक्ति न होवे। ब्रह्मा का यह वचन सुनते ही परब्रह्म परमेश्वर ने उन्हें इच्छापूर्वक वरदान देकर कहा—

हे ब्रह्मा ! तुम मेरी आज्ञा को याद रखकर संसारी व्यवहार को परछाहीं के समान झूठा समझते रहना, तो तुमको मेरी माया नहीं व्यापेगी। ऐसा कहकर नारायणजी ब्रह्मा के ध्यान से गुप्त हो गये। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले--हे राजन् ! श्रीमद्भागवत के चारों मूल श्लोकों का यही अर्थ है, जो मैंने तुमसे कहा। ब्रह्माजी ने अपने दूसरे बेटों को यह हाल नहीं बतलाया, केवल नारदजी को ज्ञानी समझकर यह भागवतज्ञान उनसे कहा था। नारदजी ने व्यासजी को उपदेश किया और हमारे पिता वेदव्यासजी ने उसको विस्तारपूर्वक लिखा है और उसका श्रीमद्भागवत नाम रखकर मुझे पढ़ाया। इसी ज्ञान को मैत्रेय ऋषीश्वर ने यमुना के किनारे विदुरजी से कहा था, अब वही कथा मैं तुमको सुनाता हूँ। हे राजन् ! जो मनुष्य अहंकार से परमेश्वर का माहात्म्य नहीं जानता, वह इस संसार में और परलोक में दुःख पाता है।

—०—

दसवाँ अध्याय।

पंचतत्त्व से शरीर का तैयार होना व देवतों का सबके अंगों में वास रहना।

शुकदेवजी बोले--हे राजन् ! इस भागवत में दश प्रकार की कथा है, उसका पृथक् पृथक् हाल कहता हूँ, मन लगाकर सुनो। संसार की उत्पत्ति, जगत् का नाश होना, संसार को स्थिर रखना, सब जीवों का पालन करना, परमेश्वर की लीला, मन्वन्तरों का हाल, ईश्वर की कथा, विरक्ति, भक्ति, नारायणजी सब जगत् के मालिक हैं, हे राजन् ! इनमें नव लक्षणों का हाल सुनना केवल दशवें लक्षण के जानने के वास्ते है। जब आदि पुरुष परमेश्वर ने, जो शेषनाग की छाती पर शयन करते हैं, अपने को अकेले देखकर मन नहीं लगने से चाहा कि हम अनेक तरह के रूप धारण करके देखें, तब उन्होंने अपनी माया को आज्ञा दी कि संसार के विस्तार का उपाय कर। उसी समय उस माया ने स्वर्ग, पाताल और मर्त्यलोक बनाकर राजस, तामस और सात्त्विक तीन गुण प्रकट किया। तामस से अहंकार, राजस से हाथ, पाँव, वाक्, लिंग, गुदा और पाँच कर्मइन्द्रिय, सात्त्विक से आँख, कान, जिह्वा, नाक, त्वचा

और पाँच ज्ञानइन्द्रिय प्रकट हुईं। इसके सिवा तमोगुण से पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि, हवा, पाँचों तत्त्व तथा सतोगुण से शब्द, मूर्ति, स्वाद, सूँघने की शक्ति और बुद्धि सबके तन में प्रकट हुई। शरीर की दशों इन्द्रियाँ एक-एक देवता को सौंपी गईं। मुहँ में अग्नि देवता, जिह्वा में वरुण, कान में दिशा, नाक में अश्विनीकुमार, हाथ में इन्द्र, आँख में सूर्य, लिंग में मित्रावरुण, गुदा में यमराज, पाँव में विष्णु और बुद्धि में ब्रह्माजी का वास रहता है। सब देवतों ने चाहा कि अपने सामर्थ्य से हम लोग इस मूर्ति को जिलाकर बुलावें और हँसावें, इसलिये उन्होंने अपने पराक्रम से बहुत उपाय किये। जब उनके सामर्थ्य से वह मूर्ति हिल भी न सकी तब उन्होंने हार मानकर हवा की तरफ जिसको स्वामी कहते हैं, इशारा किया। जब उस हवा से भी कुछ नहीं हो सका तब सब देवताओं ने नारायणजी का ध्यान किया, जिनकी कृपा से वह मूर्ति तैयार हुई थी। देवताओं ने कहा——हे जगत्कर्ता! आपकी दया और कृपा के बिना हम लोगों से कुछ नहीं हो सकता। जब आदि-ज्योति निरंकार ने थोड़ा सा अपना प्रकाश उस मूर्ति में प्रवेश करके कहा कि तुम उठो, तब उस तेज के बल से सब देवतों को अपने-अपने स्थान पर उठने, बैठने, बोलने आदि की सामर्थ्य प्राप्त होकर वह मूर्ति चलने-फिरने लगी। हे राजन्! मनुष्य के हरएक अंग में देवता लोग वास करते हैं और यह इच्छा रखते हैं कि हाथ से दान दें, जिह्वा से परमेश्वर का भजन व स्मरण करें, कानों से उनकी कथा व लीला सुनें, पैरों से तीर्थयात्रा करें, देबस्थान पर जाकर आँखों से मूर्ति के दर्शन करें, ध्यान में परमेश्वर का दर्शन करें, जिसमें हम लोगों का भी भला हो। मनुष्य के तन में रजोगुण या तमोगुण अथवा सतोगुण, एक गुण आठों पहर वर्तमान रहता है। एक गुण के समय दूसरा गुण नट के खेल के समान छिप जाता है। यह ब्रह्मकल्प का हाल हमने तुमसे कहा, इसी तरह सब कल्पों में संसार की उत्पत्ति होती है।

———

तीसरा स्कन्ध ।

—:०:—

विदुरजी की उद्धव भक्त से राह में भेंट होना, विदुरजी का मैत्रेय ऋषीश्वर से यमुना के किनारे मिलना तथा जय-विजय और कपिलदेव अवतार की कथा ।

पहिला अध्याय ।

श्रीकृष्णजी और विदुर आदि का राजा दुर्योधन को राजा युधिष्ठिर का राज्य-भाग बाँट देने के लिए समझाना और दुर्योधन का किसी की बात न मानना ।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन् ! जो बात तुमने हमसे पूछी थी, इसी बात का उत्तर नारायणजी ने लक्ष्मीजी को दिया था । लक्ष्मीजी ने शेषनाग को बतलाया । शेषजी ने वात्स्यायन ऋषीश्वर को सुनाया । वात्स्यायनजी ने मैत्रेय ऋषीश्वर को उपदेश किया । मैत्रेयजी ने विदुर से कहा । इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—हे स्वामिन् ! विदुरजी और मैत्रेय ऋषीश्वर से कहाँ भेंट हुई थी, उन दोनों ज्ञानी और परमेश्वर के परमभक्तों के परस्पर मिलते समय बड़ा आनन्द हुआ होगा, उनका हाल सुनाइए । शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! जिस समय राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर आदि अपने भतीजों को अन्य समझकर दुर्योधन आदि अपने पुत्रों को प्यारा समझा और दुर्योधन ने अर्जुन आदि पाँचों भाई पाण्डवों को लाह के कोट में टिकाकर आग लगवा दिया, भीमसेन के खाने के वास्ते विष का लड्डू बनवाकर भेजा, अधर्म से जुवा खेलकर उनका राज्य व धन जीत लिया, द्रौपदी ऐसी पतिव्रता स्त्री को राजसभा में नंगी करने के वास्ते दुश्शासन से उसका चीर खिंचवाया, युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों को तेरह वर्ष का वनवास दिया । श्रीकृष्णजी की कृपा से सब जगह उनके प्राण बचे और जब वनवास करके युधिष्ठिर आदि फिर आये, तब भी राजा दुर्योधन उनका हिस्सा

नहीं देता था, इसलिए श्रीकृष्णजी, कृपाचार्य और विदुर आदि को धृतराष्ट्र ने बुला भेजा तो वे लोग कौरवों का झगड़ा मिटाने के लिए पंच होकर राजा दुर्योधन की सभा में गये। उस समय श्रीकृष्णजी महाराज, भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य ने धृतराष्ट्र को समझाया कि हे राजन्! तुम्हारे बेटों और भाई के बेटों में कुछ भेद नहीं है। दुर्योधन आदि तुमको स्वर्ग को नहीं ले जा सकते और न युधिष्ठिर आदि तुम्हें नरक में ढकेलेंगे, इसलिए तुमको उचित है कि संसारी व्यवहार झूठा समझकर युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों के खाने व खर्च के वास्ते कुछ गाँव उनको दे दो। इस बात में तुम्हारा यश होगा। राजा धृतराष्ट्र ने यह बात सुनकर उस पर कुछ ध्यान न दिया। जब विदुरजी ने अपने भाई धृतराष्ट्र की मति अधर्म पर देखी तब यथार्थ बात समझकर कहा कि हे भाई तुम युधिष्ठिर आदि का हिस्सा दे डालो, क्योंकि वे साधु-पुरुष हैं, किसी के साथ बैर नहीं रखते, सबको अपना मित्र जानते हैं। युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव पाँचों भाइयों में ऐसी सामर्थ्य है कि यदि वे चाहें तो उनमें से एक ही मनुष्य दशों दिक्पालों को युद्ध में जीत सकता है। इसके सिवा वैकुंठनाथ श्रीकृष्णजी उनके सहायक हैं। तुम जो समझते हो कि मेरे सौ पुत्र बड़े बलवान् हैं, सो श्यामसुन्दर के विमुख रहने से उनके किये कुछ नहीं हो सकता। इस अधर्म में तुम्हारा धन और धर्म दोनों नष्ट हो जायँगे। तुम्हारा बेटा दुर्योधन श्रीकृष्णजी से वैर रखता है, इसलिए उसके साथ प्रीति करने और उसकी बात मानने से तुम अपने वास्ते अच्छा न समझो। युधि-ष्ठिर आदि पाँचों भाइयों का हिस्सा बाँट दो। दुर्योधन से, जो राज्य और धन के मद में अंधा हो रहा है, राजसिंहासन छीन लो, इसी में तुम्हारे कुल और परिवार का कल्याण है। नहीं तो श्रीकृष्णजी से वैर करने के कारण तुम्हारा कहीं पता न लगेगा। जब विदुरजी के सम-झाने पर भी धृतराष्ट्र कुछ नहीं बोले, तब दुर्योधन ने क्रोध करके आज्ञा दी कि विदुर को मेरी सभा से बाहर निकाल दो। यह हमारे कुल में दासीपुत्र होकर सब बातों में पाण्डवों का पक्ष करता है, यद्यपि इसका

पालन हम करते हैं। यह सभा में हमारे बराबर बैठकर हमको ज्ञान सिखलाता है। दुर्योधन की यह आज्ञा सुनकर जब उसके सिपाहियों ने विदुरजी को सभा से निकालना चाहा और धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को ऐसा कहने से मना भी न किया, तब विदुरजी ने समझा कि कदाचित् कोई मुझे सभा से बाँह पकड़कर उठा देगा, तो अधिक अपमान होगा, इसलिए अपने आप यहाँ से उठ जाना उचित है। वृन्दावनविहारी कौरवों का नाश करना चाहते हैं, इसीलिए धृतराष्ट्र आदि कौरवों के मन में अधर्म समाया है। अच्छी बात समझाना इनको बुरा मालूम होता है। ऐसा विचारकर विदुरजी वहाँ से उठकर द्वार पर चले आये। उन्होंने यह समझकर धनुष-बाण आदि शस्त्र वहीं धर दिया कि शस्त्र समेत चले जाने से दुर्योधन को इस बात का संदेह होगा कि यह पाण्डवों की तरफ जा मिला। विदुरजी ने अपना वस्त्र भी उतार डाला, केवल एक लँगोटी बाँधकर और चादर ओढ़कर हस्तिनापुर से उत्तराखण्ड को तीर्थयात्रा करने के वास्ते चले गये। शस्त्रादि रख देने का दूसरा कारण यह था कि विदुरजी परमभक्त थे, होनहार जानते थे कि अब दुर्योधन आदि कौरवों का नाश होनेवाला है। मैंने उनके कुल में जन्म लिया है, इसलिए मुझे पहिले से अपने सब शस्त्र रख देना चाहिए, जिसमें युद्ध न करना पड़े। विदुरजी ने वर्ष भर तक भरतखण्ड की तीर्थयात्रा करते हुए यमुना के किनारे पहुँचकर सब देवतों का दर्शन किया और मैत्रेय ऋषीश्वर की कुटी के समीप बहुत दिनों तक टिके रहे। उन्हीं दिनों में महाभारत युद्ध हुआ, दुर्योधन आदि कौरव मारे गये, राजा युधिष्ठिर को श्रीकृष्णजी की कृपा से राजगद्दी मिली। जब उद्धवभक्त श्यामसुन्दर के वैकुंठधाम जाने के उपरान्त द्वारका से बदरिकाश्रम को जाते थे, तब राह में विदुरजी से भेंट हुई। दोनों परमेश्वर के परमभक्त आपस में गले मिले। विदुरजी उद्धवभक्त से दुर्योधन आदि के मारे जाने और युधिष्ठिर को राजसिंहासन प्राप्त होने का हाल सुनकर पहिले पछिताये, फिर श्यामसुन्दर की इच्छा समझकर उन्होंने संतोष किया।

दूसरा अध्याय।

विदुरजी का उद्धवभक्त से श्यामसुन्दर का हाल पूछना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! विदुरजी ने उद्धव से मिलने के उपरांत उनसे पूछा—हे उद्धव! तुम श्रीकृष्णजी से एक क्षण बिलग नहीं होते थे, आज क्या कारण है, जो मैं तुमको अकेले देखता हूँ। कहो, मेरे प्राणप्यारे श्यामसुन्दर, बलरामजी, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, साम्ब, शूरसेन, वसुदेव, देवकी और अक्रूर आदि सब यदुवंशियों समेत अच्छे हैं? युधिष्ठिर और अर्जुन आदि पांडव कुन्ती और द्रौपदी सहित तथा मेरा भाई अन्धा धृतराष्ट्र, जिसने बेटों के मोह में फँसकर अपने नरक जाने का उपाय किया था, सब लोग कुशल से हैं? मैं जानता हूँ कि श्यामसुन्दर ने पृथ्वी का बोझ उतारने के वास्ते अवतार लेकर धृतराष्ट्र आदि कौरवों का ज्ञान हर लिया है। जो राजा लोग अपने राज्य, सेना और धन का अभिमान करके अधर्म करते हैं, उन्हीं लोगों के मारने के वास्ते वैकुंठनाथ श्रीकृष्णजी ने अवतार लिया है। सो तुम श्यामसुन्दर का हाल बतलाओ, उनकी चर्चा करने में तीर्थ-स्नान का फल मिलता है। यह बात सुनते ही उद्धवभक्त आँखों में आँसू भरकर रोने लगे और कुछ उत्तर न दे सके। तब विदुरजी ने उनको उदास और रोते हुए देखकर समझ लिया कि श्रीकृष्णजी अन्तर्धान हो गये, इसलिए मेरे पूछने पर उद्धव उनका ध्यान करके रोते हैं। एक क्षण उपरान्त उद्धव ने आँखें पोंछकर कहा कि विदुरजी, तुम केशवमूर्ति का हाल क्या पूछते हो, श्रीकृष्णरूपी सूर्य अस्त हो गया और कलियुगरूपी रात्रि ने प्रवेश किया। मैं अपने और दूसरे यदुवंशियों का अभाग्य तुमसे क्या कहूँ। परब्रह्म परमेश्वर ने अपनी इच्छा से वसुदेवजी के घर जन्म लिया, हम लोगों ने उनका माहात्म्य न जानकर उनको भी एक यदुवंशी अपना भाई-बन्धु समझा था। अब उनकी महिमा जानकर पछिताने के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता। मैं उनकी बड़ाई तुम से कहाँ तक करूँ। उन्होंने सोलह हजार एकसौ आठ स्त्रियों से विवाह करके गृहस्थाश्रम धर्म का पालन किया। अवतार लेने और लीला करने का उनका यह

प्रयोजन था कि संसारी मनुष्य और विशेषकर अधर्मी लोग उस लीला व कथा को आपस में कह-सुनकर भवसागर पार उतर जावें। देखो, उन्होंने कैसे-कैसे बलवान् दैत्यों और राजाओं को मारकर मुक्त कर दिया। पृथ्वी का भार उतारने के वास्ते अपनी इच्छा से अवतार लेकर कौरवों और पांडवों से महाभारत कराया। दुर्योधन आदि सब कौरवों का नाश किया। युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई पांडवों की रक्षा करके उन्हें राजगद्दी दिया। छप्पन करोड़ यदुवंशियों को दुर्वासा ऋषीश्वर से शाप दिलवाकर आपस की लड़ाई में मरवा डाला। सो उस बात की याद करके मुझे बड़ा दुःख होता है। हे विदुर! तुम निश्चय करके जानो, जब से श्यामसुन्दर यदुवंशियों को नाश करके वैकुण्ठ को पधारे तब से सत्य और धर्म संसार से उठ गया। मैंने बहुत बिनती करके उनसे कहा कि मैं जन्म भर आपकी सेवा व टहल में रहा, मुझे भी अपने साथ ले चलो। पर मुझे न ले जाकर मुझसे बोले—तू बदरी-केदार में जाकर मेरा ध्यान करके मुक्त हो। जो कुछ ज्ञान उन्होंने मुझे बतलाया उसका हाल ग्यारहवें स्कन्ध में लिखा है। तत्व, ज्ञान मुझसे यह कहा कि हमको जानकर सब संसार का नाश समझो और जीवात्मा कभी नहीं मरता, इसलिए मेरे वियोग का शोक न करो। मरना कैसा होता है, जिस तरह एक कपड़े को उतारकर दूसरा वस्त्र पहिन लेवे, उसी तरह यह जीव एक चोले को छोड़कर दूसरे तन में प्रवेश करता है।

—:०:—

तीसरा अध्याय।

उद्धवजी का विदुरजी से श्यामसुन्दर की स्तुति व प्रशंसा करना।

उद्धव ने विदुर से कहा—देखो, श्यामसुन्दर ऐसे दीनदयालु थे कि जिस पूतना राक्षसी ने उनका प्राण हरने के वास्ते अपने कुचों में विष लगाकर उन्हें दूध पिलाया, उन्होंने उस राक्षसी को भी मारकर वैकुण्ठ में भेज दिया। ऐसा दीनानाथ की शरण छोड़कर दूसरे किसकी शरण में जाना चाहिए। उन श्यामसुन्दर ने पृथ्वी का बोझ उतारने के वास्ते

अपनी इच्छा से संसार में अवतार लेकर वसुदेवजी से कहा कि तुम हमको नन्दजी के यहाँ ले जाकर छिपा आओ। यह सब उनकी लीला थी, जिसमें कोई उन्हें नारायण न जाने; नहीं तो उनको किसका डर था, काल में भी ऐसी सामर्थ्य नहीं थी, जो उनका सामना कर सकता। नन्दजी के घर जाकर कैसी-कैसी लीलाएँ करके ब्रजवासियों को सुख दिया। नन्दजी के बछरे व गायें चराकर जिस तरह आग लकड़ी में गुप्त रहती है उसी तरह अपने को छिपाया, और जो दैत्य व राक्षस कंस के भेजे हुए उनको मारने के वास्ते आये थे, सबको मारकर भवसागर पार उतारा। इन्द्र का अभिमान तोड़ा, गोपी व ग्वालों को वैकुण्ठ का दर्शन कराके अपना चतुर्भुजीरूप दिखलाया। नन्दजी को साँप के काटने से बचाया। गोपियों के साथ रासमंडल किया। शंखचूड़, केशी, बकासुर, अघासुर आदि दैत्यों को मारकर वैकुण्ठ भेज दिया। जब वे अक्रूर के साथ मथुरा को चले तब राह में स्नान करते समय यमुनाजल में अक्रूर को अपने चतुर्भुजी स्वरूप का दर्शन दिया। मथुरा में पहुँचकर राजा कंस के धोबी को मारा और बाहुक दरजी को कपड़े पहनाने के कारण प्रसन्न होकर वैकुण्ठ को भेज दिया। सुदामा माली पर खुश होकर ऐसा वरदान दिया कि तेरा धन कभी न घटे। कुब्जा को चन्दन लगाने के बदले टेढ़ी से सीधी करके देवकन्या के समान रूप देकर उसकी इच्छा पूर्ण किया। महादेवजी का धनुष ऊख के समान तोड़कर कुबलयापीड़ हाथी को लड़कों के खेल के समान मार डाला और कुश्ती लड़कर चाणूर व मुष्टिक आदि पहलवानों को तथा राजा कंस को उसके आठ भाइयों समेत मारकर मुक्तपदवी दिया। जिस परमेश्वर की सेवा में ब्रह्मा, महादेव और काल आदि सब रहते हैं, उन त्रिलोकीनाथ ने राजा उग्रसेन को अपना भक्त जानकर उनकी आज्ञा सेवकों के समान माना। जिस तरह बालक, खेलते समय चिउँटी को मार डाले उसी तरह ऐसे-ऐसे बलवान् दैत्यों, राक्षसों और राजाओं को मारकर अन्तर्धान हो गए। दशवें व ग्यारहवें स्कन्ध में उस सब लीला का हाल लिखा है। हे विदुरजी! ऐसे दीनानाथ, जिन्होंने यह सब लीला संसारी

जीवों के भवसागर पार उतरने के वास्ते किया, उनके चरणों का ध्यान छोड़कर मेरा चित्त दूसरी तरफ नहीं जाता, और वह साँवली सूरति मोहनी मूरति मुझे एक क्षण नहीं भूलती।

चौथा अध्याय

उद्धवजी का विदुरजी से श्यामसुन्दर की स्तुति करना और वियोग का हाल कहना।

उद्धव ने श्रीकृष्णजी के वियोग में व्याकुल होकर कहा—हे विदुर! श्यामसुन्दर के ज्ञान सिखलाने से मेरा संसारी माया मोह छूट गया, पर मुझको मुरलीमनोहर के वियोग का जितना दुःख है, वह कहा नहीं जाता। तुमको सुनना हो तो मैत्रेय ऋषीश्वर से जो उस समय वहाँ पर थे और थोड़े दिनों में यहाँ आवेंगे भेंट करके पूछ लेना। वह सब हाल तुमसे कहेंगे। जिस समय मुरलीमनोहर अन्तर्धान होना चाहते थे, उस समय मैत्रेय ऋषीश्वर ने प्रभासक्षेत्र में जाकर श्रीकृष्णजी को दंडवत् किया। तब श्यामसुन्दर बोले––हे मैत्रेयजी! हमने तुम्हारे मन का सब हाल जाना, तुम धैर्य रक्खो मेरी माया तुमको न व्यापेगी, क्योंकि तुम मेरे भक्त पिछले जन्म के वसुदेवता, इस जन्म में वेदव्यासजी के भाई, और पराशर मुनि के पुत्र हो। तुमको मेरी प्रकट व गुप्त सब लीला मालूम रहेगी। जो भागवत धर्म वात्स्यायन ऋषीश्वर ने तुमसे कहा है, उसी धर्म को याद रखना, भवसागर पार उतर जावोगे। केशवमूर्ति की यह बात सुनते ही मैत्रेयजी ने बहुत प्रसन्न होकर कहा––हे वैकुंठ-नाथ! तुम्हारी लीला याद करके मुझे बड़ा आश्चर्य होता है, क्योंकि ब्रह्मा, महादेव और काल की सामर्थ्य नहीं है, जो तुम्हारे सम्मुख आँख उठाकर देख सकें, सो तुम जरासन्ध व कालयमन के सामने से पैदल भागे थे। तुम्हारे भेद को कोई जान नहीं सकता। इसी तरह मैत्रेयजी श्रीकृष्णजी की बहुत स्तुति करके वहाँ से चले आये। वे सब हाल जानते हैं, तुमसे कहेंगे, और मैं मुरलीमनोहर की आज्ञा से बदरिका-श्रम को जाता हूँ। वहाँ जाकर अपना तन त्याग करूँगा। कदाचित् तुम यह कहो कि जब ज्ञान आया तब आँखों में आँसू भरने व शोक

करने का क्या कारण है, सो श्रीकृष्णजी की दया व प्रीति याद करने से उनके वियोग का दुःख मुझे एक क्षण नहीं भूलता। उसी ज्ञान के प्रताप से अब तक मैं जीता हूँ, नहीं तो श्यामसुन्दर से बिछुड़ते समय मेरे प्राण निकल जाते। सो इतना हाल तुमसे कहता हूँ कि श्यामसुन्दर ने पृथ्वी का बोझ उतारने के वास्ते अवतार धारण किया था। उन्होंने बड़े-बड़े अधर्मी दैत्यों व राजाओं को मारकर कौरवों व पांडवों से महाभारत कराया। जिस सेना में भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदि बड़े-बड़े योद्धा, बुद्धिमान्, ज्ञानी, हरिभक्त युद्ध करते थे, उस सेना में अठारह अक्षौहिणी दल का नाश करके पृथ्वी का भार उतारा। सो हे विदुरजी! परमेश्वर की इच्छा बलवान् है। इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले—हे ऋषीश्वरो! जो लोग परमेश्वर की कथा व कीर्तन में करुणा के स्थान पर रो देते हैं, उनके अनेक जन्म का पाप आँखों की राह से बहकर निकल जाता है। मनुष्य के कल्याण के लिए श्यामसुन्दर के अवतार की कथा व लीला सुनने और परमेश्वर के नाम का स्मरण करने के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। महाभारत होने के उपरांत श्रीकृष्णजी ने पचीस वर्ष तक संसार में रहकर राजा युधिष्ठिर से दो बार यज्ञ कराके जगत् में उनको यश दिया था।

——

पाँचवाँ अध्याय।

उद्धवजी का विदुर से बिदा होना और बदरिकाश्रम में जाकर योगाभ्यास करके अपना तन त्याग करना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उद्धव ने विदुरजी से कहा कि अब तुम मुझे विदा करो, तो मैं बदरिकाश्रम में जाऊँ। विदुर ने उद्धव की ये सब बातें सुनते ही आँखों में आँसू भरकर कहा—देखो, श्यामसुन्दर ने चन्द्रमा के समान संसार में प्रकाश प्रकट करके पृथ्वी का बोझ उतारा और धर्म, गऊ तथा ब्राह्मणों की रक्षा करके गोलोक को चले गये। हम लोगों ने अज्ञान व अभाग्य से उनका प्रताप नहीं जाना। हे उद्धव!

तुम आठों पहर उनके पास रहते थे, किन्तु उनकी माया ऐसी बलवान् है कि तुमने भी उनको नहीं पहिचाना, इसलिए यह बात निश्चय समझना चाहिए कि मुरलीमनोहर की कृपा के बिना उनके भेद व महिमा को कोई नहीं जान सकता। कदाचित् हम लोग आप ऐसे भक्तों की सेवा व टहल में रहें तो हमारा जन्म सफल हो, पर श्यामसुन्दर प्यारे की कृपा व दया के बिना हरिभक्तों का सत्संग नहीं मिलता। इसलिए हम जानते हैं कि हमारे पिछले जन्म के पुण्य सहाय हुए, जो आपका दर्शन मिला। सूतजी शौनकादिक ऋषीश्वरों से और शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहते हैं कि उद्धवजी ये सब बातें करके विदुर से बिदा हुए और बदरिकाश्रम में जाकर श्यामसुन्दर के ध्यान में लीन होकर योगाभ्यास करके अपना तन त्याग दिया और वैकुंठधाम को चले गये। विदुरजी तीर्थयात्रा करते हुए मैत्रेयजी से मिलने की इच्छा से रोते और शोक करते हुए हरद्वार में आकर ठहरे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! उद्धवजी ने श्यामसुन्दर के अन्तर्धान होने का सम्पूर्ण हाल विदुरजी से इसलिए प्रकट करके नहीं कहा कि यह हाल सुनकर विदुरजी उनके विरह में अपना तन छोड़ न दें।

छठा अध्याय।

विदुर का मैत्रेय ऋषीश्वर से यह बात पूछना कि संसार
की उत्पत्ति किस तरह होती है।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! विदुर ने जब हरद्वार में मैत्रेय ऋषीश्वर से भेंट करके उनको दंडवत् किया तब मैत्रेयजी ने पूछा कि हे विदुर, तुम बहुत उदास दिखलाई देते हो, इसका क्या कारण है? विदुर ने उद्धव से मिलने का हाल बताया और श्रीकृष्णजी के अन्तर्धान होने, महाभारत में दुर्योधन आदि कौरवों के मारे जाने तथा यदुवंशियों के नाश होने का हाल जिस तरह उद्धव से सुना था, मैत्रेय ऋषीश्वर से कहा, और बोले कि श्यामसुन्दर विहारी के वैकुंठ जाने का हाल सुनकर मेरी यह दशा हुई है। मैं आपसे यह इच्छा रखता हूँ कि आपने

श्रीकृष्णजी के मुखारविन्द से जो कुछ ज्ञान सुना है वह मुझसे कहिए, जिसमें मेरा मनोरथ पूर्ण हो। यह बात सुनकर मैत्रेयजी ने कहा--जो तुम्हारी इच्छा हो, वह बात पूछो। विदुरजी बोले कि मनुष्य सदा अपने सुख के वास्ते उद्योग करता है, पर सुख न पाकर उसके विपरीत दुःख उठाता है, सो उस क्लेश का देनेवाला कौन है, इसका भेद कहो ? और यह बात बतलाओ कि नारायणजी सगुण अवतार किस वास्ते लेते हैं, उनको संसार रचने और फिर उसका नाश करने से क्या लाभ होता है। मैं अपने ज्ञान से यह जानता हूँ कि पाप छूटने के लिए और सब जीवों को भवसागर पार उतारने के विचार से सगुण अवतार लेते हैं, जिसमें मनुष्य उन अवतारों की कथा व लीला कह-सुनकर उसके प्रताप से भवसागर पार उतर जावें, तिस पर भी अज्ञानी मनुष्य परमेश्वर की कथा व लीला सुनने में प्रीति न रक्खें और दिन-रात संसारी माया-मोह में लिपटकर नष्ट होवें तो उनका अभाग्य है। इसमें परमेश्वर का क्या दोष है। और बतलाओ कि परमेश्वर किस तरह ब्रह्मारूप होकर जगत् की उत्पत्ति, विष्णुरूप धरकर सब जीवों का पालन और महादेवरूप धारण करके सब जीवों का नाश करते हैं ? वह कौन-सा उपाय है, जिससे नारायणजी मनुष्य से प्रसन्न होते हैं, उनके खुश होने से मनुष्य संसार में अपना मनोरथ पाकर मरने के उपरान्त मुक्त होता है। जगत् की ऐसी रीति है कि जब कोई मनुष्य किसी अपराध के बदले दंड पाता है तब फिर वह जल्दी अधर्म नहीं करता। यह जीव कुकर्म व पाप करने से चौरासीलाख योनि व नरक में बहुत दुःख भोगकर जब मनुष्य का तन पाता है तब परमेश्वर की माया में लिपटकर अधर्म क्यों नहीं छोड़ता, और दंड पाने पर भी ऐसा कर्म क्यों नहीं करता, जिसमें जन्म व मरण से छूट जावे। इसका क्या कारण है ? आप कृपा व दया करके इन सब बातों का वर्णन कीजिए, जिसमें मेरे मन का सन्देह मिट जावे।

सातवाँ अध्याय।

मैत्रेयजी का श्यामसुन्दर की प्रशंसा व स्तुति करना।

शुकदेवजी बोले–हे राजन्! विदुर की बात सुनकर मैत्रेयजी ने कहा कि हे विदुर, तुम ज्ञानी हो और तुमको लड़कपन से हरिचरणों में भक्ति है। तुमसे कोई हाल छिपा नहीं है, पर तुमने मुझसे पूछा है, इसलिए मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुमसे कहता हूँ, जिसमें संसारी जीव भी यह हाल सुनकर भवसागर पार उतर जावें। तुम धर्मराज का अवतार हो, कौरवों के कुल में उत्पन्न हुए हो, परमेश्वर के सब गुण जानते हो। माण्डव्य ऋषीश्वर के शाप से तुमने यह तन पाया है। श्रीकृष्णजी महाराज सब बातों में तुम्हारी सलाह लेकर काम करते थे। तुमको परमेश्वर में प्रीति व भक्ति है, इसलिए हम वह भगवद्धर्म तुमसे कहते हैं, जो अपने पिता पराशर मुनि से हमने पढ़ा था। तुम मन लगाकर सुनो। जो मनुष्य परमेश्वर से विमुख हैं वे दुःख के सागर में पड़े रहकर जन्म व मरण से छुट्टी नहीं पाते, और जो काम अपने सुख के लिए करते हैं, उसमें उनको दुःख के सिवा कुछ सुख नहीं मिलता। कदाचित् परमेश्वर का भजन थोड़ा-थोड़ा भी करें तो संसार के दुःख से इस तरह छूट जावें जिस तरह औषध खाने से दिन पर दिन रोग कम होता है। संसार में मनुष्य जैसा भला या बुरा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जिस तरह मनुष्य अपने पुत्र, कन्या, स्त्री आदि संसारी मोह में फँसकर उनसे अपना सुख व भला चाहता है और दुःख के सिवा सुख नहीं पाता उसी तरह कोये में कीड़ा अपने रहने और सुख पाने के वास्ते जाला इकट्ठा करके अन्त को वही जाला बटोरने से कोये में फँसकर मर जाता है, उसमें से निकल नहीं सकता, वही हाल मनुष्यों का भी समझना चाहिए। ईश्वर की कृपा के बिना मनुष्य का उनकी माया से छूटना बहुत कठिन है। उस माया से छूटने के वास्ते परमेश्वर की कथा सुनना और उनके नाम का स्मरण करना मनुष्य को उचित है। संसार के झूठे व्यवहार को सच्चा जानना, इसी को ईश्वर की माया समझना चाहिए। जब मनुष्य इन्द्रियों के सुख को छोड़कर

अपना मन विरक्त करके परमेश्वर का भजन व स्मरण करे तब उस माया से छूट सकता है। जिस तरह स्वप्ने का दुःख जागने से नहीं रहता उसी तरह लोक व परलोक के दुःख हरिभजन करने से छूट जाते हैं। संसार की उत्पत्ति इस तरह होती है कि जब उस आदि निरंकार ज्योति को, जिनका रूप कोई नहीं देख सकता, इस बात की इच्छा होती है कि संसार रचकर हम अपने रूप को आप देखें जिस तरह कोई मनुष्य अपना मुख दर्पण में देखे। तब वह आदि निरंकार पहिले एक ज्योति प्रकट करते हैं, जिसको आदिपुरुष कहा जाता है। फिर एक महातत्त्व सबकी जड़ उत्पन्न करके उससे तीन गुण सत्त्व रज तम प्रकट करते हैं। सतोगुण से देवतों के गुण, रजोगुण से पाँचों तत्त्व और तमोगुण से पञ्चभूतात्मा उत्पन्न होते हैं। उन्हीं पाँचों तत्त्वों से मनुष्य का शरीर तैयार होता है। एक-एक अंग के एक-एक देवता अधिष्ठाता होते हैं। आँख के देवता सूर्य, नाक के अश्विनीकुमार, जिह्वा के वरुण-देवता, इसी तरह सब अंगों के देवताओं का हाल दूसरे स्कन्ध के दशवें अध्याय में लिखा है।

——:o:——

आठवाँ अध्याय।

देवतों का नारायणजी की स्तुति करना।

मैत्रेयजी ने कहा—हे विदुर! जब संसार रचने की ये सब वस्तुएँ प्रकट हुईं तब सब देवतों ने संसार के उत्पन्न करने की आज्ञा पाकर उद्योग किया। जब वह काम उनसे पूरा नहीं हुआ तब सब देवतों ने हार मानकर नारायणजी का ध्यान और स्तुति करके हाथ जोड़कर कहा—हे दीनानाथ, संसार में जो मनुष्य सब जीवों में आपके तेज का प्रकाश समझकर आपके चरणों का ध्यान और पूजन करता है वह जगत् की माया और दुःख से छूटकर सुख पाता है। आपकी कथा व लीला सुनने से उसके मन में इस बात का विश्वास होता है कि सबसे श्रेष्ठ और कर्ताधर्ता नारायणजी हैं। आपकी कृपा के बिना हम लोगों से संसार के रचने का काम जो बहुत कठिन है, नहीं हो सकता। तब

उनके स्तुति करने पर आदि निरंकार ने प्रसन्न होकर देवतों की तरफ जैसे ही कृपादृष्टि से देखा वैसे ही ये पाँचों तत्त्व इकट्ठे होकर मांस का पिंड हो गया। उसी का नाम आदि पुरुष हुआ, उसके रहने के वास्ते पाताल-लोक, भूर्लोक और वैकुण्ठलोक, जिसको तीनों लोक कहते हैं, निर्माण हुए। वही पुरुष आँख, कान, हाथ आदि इन्द्रियों का मालिक हुआ। उसी पुरुष को विराट्रूप कहते हैं। जगत् का सब व्यवहार उसी रूप में है। उस पुरुष की नाभि से कमल का एक फूल निकला, जिस फूल में से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उसी पुरुष की दया व कृपा से ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पैर से शूद्र, चारों वर्णों को उत्पन्न किया।

नवाँ अध्याय।

मैत्रेय ऋषीश्वर का सृष्टि की उत्पत्ति कहना।

इतनी कथा सुन विदुरजी ने मैत्रेय ऋषीश्वर से पूछा—महाराज! वह अवतार आदिपुरुष का हुआ, अब दूसरे अवतारों का हाल भी वर्णन कीजिए। यह बात सुनकर मैत्रेय ऋषीश्वर बोले—हे विदुर! जिस समय महाप्रलय होने से चारों तरफ जलमय होकर कुछ दिखलाई नहीं देता था, उस समय वह आदिपुरुष, जिसका वर्णन ऊपर कर चुका हूँ, शेषनाग की छाती पर शयन करते थे। उनकी नाभि से कमल का एक फूल जिसमें बड़ा प्रकाश था, निकला। उस फूल की नाल से ब्रह्माजी प्रकट होकर उसी फूल पर आ बैठे और यह विचारने लगे कि हमको किसने उत्पन्न किया और यह कमल का फूल किसकी सामर्थ्य में खड़ा है। इसी चिन्ता में ब्रह्मा उस फूल की नाल पकड़े हुए हजार वर्ष तक पानी में थाह लेने के वास्ते चले गये। जब उस फूल की जड़ उन्होंने न पाया तब हार मानकर फिर उसी फूल पर आ बैठे। वे इसी चिन्ता में व्याकुल थे, इसलिए तुम यह समझो कि आदि में सब जीव मूर्ख रहते हैं। पश्चात् नारायणजी की कृपा से ज्ञान प्राप्त होता है। जिस समय ब्रह्माजी सोच में बैठे थे उसी समय यह आकाशवाणी हुई

कि परमेश्वर का तप व ध्यान करो, तब तुमको ज्ञान प्राप्त होगा। यह आकाशवाणी सुनकर जब ब्रह्मा ने परमेश्वर का स्मरण व ध्यान किया तब ब्रह्मा के हृदय में ज्ञान का प्रकाश हुआ और उन्हें यह दिखलाई दिया कि एक पुरुष शेषनाग की छाती पर श्यामरूप अतिसुन्दर चतुर्भुज लक्ष्मीजी समेत सोया है, उसकी नाभि से यह कमल का फूल निकला है और हम इस फूल से उत्पन्न हुए हैं। उस पुरुष ने संसार के रचने का अधिकार हमको दिया है। जब ब्रह्माजी को सब संसारी वस्तुएँ उसी पुरुष के रूप में दिखलाई दीं तब उन्होंने हाथ जोड़कर यह स्तुति की—हे त्रिलोकीनाथ! जो मनुष्य आपसे विमुख है उसको कभी सुख प्राप्त नहीं होता, वह सदा संसारी माया-मोह में व्याकुल रहता है और रात को सोते समय उसे अनेक चिन्ताएँ लगी रहती हैं कि कल हमको यह यह काम करना होगा। एक काम से छुट्टी पाया तो दूसरी बात की चिन्ता होती है। आपके नाम का स्मरण व चरण-कमल की भक्ति रखनेवाले लोग आपकी कृपा व दया से अपने मनोरथ का फल पाकर सदा आनन्द से रहते हैं। कदाचित् कोई कहे कि साधु व वैष्णव की इच्छा किस तरह पूर्ण हो सकती है, सो जो लोग वन में जाकर तुम्हारा तप व जप करते हैं, उनमें जिस समय स्त्री, धन और संसारी सुख की इच्छा होती है उसी समय तुम्हारी कृपा से उनको इन्द्रलोक के सुख प्राप्त हो जाते हैं। सो मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे चरणों के नख जो सूर्य से अधिक तेजवान् हैं, सर्वदा मेरे हृदय में बसे रहें, जिनके प्रकाश से मेरे अन्तःकरण में अज्ञान का अँधियारा न होवे। आपका दर्शन योगी व ऋषीश्वरों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता, सो आपने बड़ी दया करके मुझको अपना दर्शन दिया। यह स्तुति करके ब्रह्मा ने उसी पुरुष से विनय किया कि हे स्वामी, आपने मुझको जीवों के उत्पन्न करने के लिए आज्ञा दी है, सो मुझसे आपकी शक्ति व कृपा के बिना कुछ हो नहीं हो सकता कि संसार को उत्पन्न कर सकूँ। मुझ पर दया कीजिए, तब मैं यह काम करूँ। परन्तु ऐसा न हो कि अहंकार के गढ़े में गिरकर ऐसा समझूँ कि जीवों का उत्पन्न करनेवाला मैं हूँ।

तब उस पुरुष ने, जो शेषनाग की छाती पर शयन करते थे, ब्रह्मा की तरफ आँख उठाकर कहा—जैसा तू चाहता है, वैसा ही होगा, पर तुम अपना मन परमेश्वर के नाम का स्मरण और तप करने में लगाए रहना। काम, क्रोध, लोभ और अहंकार से बचे रहना। सब इन्द्रियों को अपने वश में रखना। जब यह अभ्यास करने से तुमको ज्ञान प्राप्त होगा तब मुझको अपना मालिक व उत्पन्न करनेवाला जानकर सब जीवों में मेरे तेज का प्रकाश बराबर देखोगे। जिस तरह अग्नि काष्ठ में रहती है, पर उपाय किए बिना प्रकट नहीं होती, उसी तरह तुम मेरे चरणों में ध्यान लगाकर संसार की रचना करो। तुमको अहंकार न होकर ध्यान करते समय मेरे सब अंगों का दर्शन मिलेगा और बिना पढ़े सब विद्याएँ याद हो जावेंगी। तुमको अपने उत्पन्न किए हुए किसी जीव के मरने का दुःख नहीं होगा। तुम निस्सन्देह जगत् की रचना करो।

दसवाँ अध्याय।

ब्रह्माजी का नारायणजी की कृपा से देवताओं, पाँचों तत्त्वों और वृक्षादिकों का उत्पन्न करना।

मैत्रेय ऋषीश्वर बोले—हे विदुर! वह पुरुष ब्रह्माजी को ध्यान में दर्शन व धैर्य देकर अन्तर्धान हो गए। ब्रह्माजी ने उस पुरुष की कृपा-दृष्टि से अपने में संसार रचने की सामर्थ्य पाकर जगत् की उत्पत्ति करना आरम्भ किया। पहिले उन्होंने देवतों को पाँचों तत्त्वों समेत, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, फिर अनेक रंग के वृक्षों और पशु-पक्षियों को उत्पन्न किया। जब ब्रह्माजी देवताओं और वृक्षादिकों की रचना कर चुके, तब उन्होंने कई मनुष्यों को, जिनको दुःख व सुख दोनों बराबर रहता है, अपनी इच्छा से मानसी सृष्टि उत्पन्न किया। कमल के फूल से चौदह भुवन, सात लोक ऊपर व सात लोक नीचे के बनाये। उसके उपरान्त सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, चारों युग बनाकर वर्ष, महीना, पक्ष, वार, घड़ी व पल का प्रमाण किया, जिनके बीतने से देवता, मनुष्य, दैत्य और राक्षस आदि सब जीवों की आयु

पूर्ण होती है। देवता, दैत्य राक्षस और मनुष्य की योनि सामने तथा पशु पक्षी आदि की योनि पीछे होती है। ब्रह्मा की आयु के एक दिन में चौदह मन्वन्तर बीतते हैं। एक मन्वन्तर में इकहत्तर चतुर्युग भोग करते हैं, जो नव सौ चौरान्नबे चतुर्युग हुए। यह बीत जावें तब ब्रह्मा की आयु का एक दिन समझना चाहिए। उसी दिन के प्रमाण तीस दिन का महीना, बारह महीने का वर्ष और सौ वर्ष की आयु ब्रह्मा की है। रात भी उनकी उसी दिन के बराबर होती है। सो ब्रह्माजी दिन भर जीवों की उत्पत्ति करते हैं, जब ब्रह्मा का एक दिन बीतकर सन्ध्या होती है तब जगत् का प्रलय होता और सब संसारी जीव नष्ट हो जाते हैं। जब रात बीतकर सबेरा होता है तब फिर ब्रह्माजी सब जीवों को उन्हीं के कर्मानुसार वैसी-वैसी योनि में उत्पन्न करते हैं। इसी तरह जब पचास वर्ष ब्रह्माजी की आयु बीत जाती है तो उसको अर्द्ध प्रलय कहते हैं और जब १०० वर्ष ब्रह्माजी की आयु पूरी होकर उनका तन छूट जाता है तब महाप्रलय होकर चारों तरफ पानी के सिवा और कुछ नहीं रहता। एक वही आदिपुरुष अविनाशी अकेले रह जाते हैं। यह हाल एक ब्रह्माण्ड का कहा गया। ब्रह्माण्ड का स्वरूप गूलर के फल के समान समझना चाहिए। इसी तरह बहुत से ब्रह्माण्ड हैं, और सबके मालिक, उत्पन्न, पालन व नाश करनेवाले आदिपुरुष भगवान् ही हैं। वह चाहें तो कई हजार ब्रह्माण्ड एक क्षण में उत्पन्न करके फिर उनका नाश कर देवें। इसका भेद कोई नहीं जान सकता। वे नारायणजी उस समय भी थे जब कोई नहीं था, और जब कुछ न रहेगा तब भी वे अविनाशी पुरुष स्थिर रहेंगे। मृत्यु उनके पास नहीं आ सकती। वे सदा एक स्वरूप रहते हैं, घटने-बढ़ने से कुछ प्रयोजन नहीं रखते। जो कुछ इस ब्रह्माण्ड में देखते हो सब उन्हीं की रचना है। जो काम उत्तम-मध्यम किसी मनुष्य से होता है, सबका हाल वे जानते हैं। इस ब्रह्मांड को गूलर के फल के समान समझना चाहिए। जिस तरह गूलर के फल में छोटे-छोटे कीड़े रहते हैं और उस फल के तोड़ने पर उड़ जाते हैं, उसी तरह ब्रह्मांड में सब जीव रहते हुए परमेश्वर के

भेद को नहीं जानते। जिनको सत्संग करने से ज्ञान प्राप्त होता है, वे लोग संसारी व्यवहार व शरीर को झूठा समझकर सब जीवों में परमेश्वर का चमत्कार बराबर जानते हैं। वह आदिपुरुष गूलर के वृक्ष के समान हैं। जिस तरह उस वृक्ष में हजारों फल लगे रहते हैं उसी तरह नारायणजी के रोम-रोम में हजारों ब्रह्मांड बँधे रहते हैं। इस कारण सब जीवों में उन्हीं का प्रकाश समझना चाहिए।

ग्यारहवाँ अध्याय।

ब्रह्माजी का सनक सनन्दन सनातन व सनत्कुमार और रुद्र को उत्पन्न करना।

मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा—हे विदुर! जब ब्रह्माजी को देवताओं और मनुष्यादिकों को उत्पन्न करने पर भी संतोष नहीं हुआ तब उन्होंने सृष्टि बढ़ाने के वास्ते सनक सनन्दन सनातन व सनत्कुमार को, जो लोग नारायणजी के अवतार हैं, अपने हृदय से उत्पन्न किया और उनसे कहा कि तुम लोग भी प्रजा उत्पन्न करो और हमसे जो वरदान माँगो सो देवें। उन्होंने ज्ञान से अपने मन में विचार किया कि जो माता-पिता और भाई हरिभजन करने से मना करें उनको अपना मित्र न समझना चाहिए। ऐसा विचारकर सनत्कुमारादि चारों भाइयों ने ब्रह्माजी से कहा कि हम लोग यही वरदान माँगते हैं कि सदा हमारी अवस्था पाँच-पाँच वर्ष की बनी रहे। हमारा मन काम, क्रोध, मोह, लोभ में न फँसकर इन्द्रियों के वश न होवे, हम लोग अपने मन और इन्द्रियों पर प्रबल रहें। युवा व वृद्धावस्था हम पर न व्यापे, क्योंकि पाँच वर्ष की अवस्था में इन्द्रियाँ अपना प्रभाव नहीं कर सकतीं। हम लोग हरिभजन करेंगे, हमें जीव उत्पन्न करने की आज्ञा मत दीजिए। संसार के रचने से भगवद्भजन में विघ्न होगा। यह बात सुनकर ब्रह्माजी ने उन्हें ऐसा वरदान दिया कि तुम लोगों की सदा पाँच वर्ष की अवस्था रहे, सब इन्द्रियाँ तुम्हारे अधीन रहें, पर जो तुमने मेरे कहने से जीवों का उत्पन्न करना अंगीकार नहीं किया सो बहुत अनुचित हुआ। ऐसा कहकर जब ब्रह्माजी ने अपने पुत्रों पर आज्ञा न मानने से क्रोध किया

तब उनकी दोनों भौंहों से एक पुरुष श्याम व ललित रंग का उत्पन्न होकर रोने लगा। उसको देखते ही ब्रह्माजी ने पूछा—तू क्यों रोता है। तब उसने उत्तर दिया, मैं चाहता हूँ कि मेरा नाम धरकर मुझे कोई काम बतलाओ। ब्रह्माजी ने कहा—तूने उत्पन्न होते समय रुदन किया, इसलिए मैंने तेरा नाम रुद्र रक्खा। तू जीवों की उत्पत्ति कर। सब देवतों में श्रेष्ठ होकर रह। संसार में शिवशंकर, भोलानाथ, महादेव आदि तेरे अनेक नाम प्रसिद्ध होंगे। रुद्र ने ब्रह्माजी की आज्ञा से राक्षस भूत पिशाच आदि, जिनके स्वभाव में काम, क्रोध, लोभ व अहंकार भरा था, अपनी इच्छा से उत्पन्न किया, किन्तु उन लोगों से ब्रह्माजी को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने रुद्र से कहा—हे रुद्र! तेरी उत्पत्ति क्रोध से हुई है, जब तक तेरे अन्तःकरण में सतोगुण नहीं आवेगा तब तक तुम्हारे उत्पन्न किये हुए जीव अधर्मी होवेंगे। इसलिए तुम पहिले जाकर परमेश्वर का तप करो। जब तुम्हारे स्वभाव से तमोगुण छूटकर सतोगुण का प्रवेश हो तब सतोगुण से जीवों की उत्पत्ति करना। तप करने से तुम्हें परमेश्वर का दर्शन मिलेगा। यह बात सुनते ही रुद्र जीवों की उत्पत्ति करना बन्द करके तप करने को चले गये।

—:०:—

बारहवाँ अध्याय।

ब्रह्माजी का नारद, वशिष्ठ, अंगिरा आदि ऋषीश्वर, राजा स्वायम्भुव मनु और शतरूपा को उत्पन्न करना।

मैत्रेय ऋषीश्वर बोले—हे विदुर! ब्रह्माजी ने उसके उपरान्त नारद, वशिष्ठ, अंगिरा आदि कई ऋषीश्वरों को, जिनका वर्णन आगे किया जायगा, उत्पन्न करके सरस्वती नाम की एक कन्या अपने वचन से उत्पन्न किया। वह लड़की अतिसुन्दरी उत्तम भूषण व वस्त्र धारण किये प्रकट हुई। उसका रूप देखते ही ब्रह्मा ने परमेश्वर की माया से मोहित होकर उसके साथ भोग करना चाहा। तब नारदजी और अंगिरा आदि ने यह अधर्म देखकर ब्रह्मा को समझाया—हे पिता, यदि तुम जगद्गुरु होकर ऐसा पाप करोगे तो संसारी लोग भी यह हाल सुनकर अधर्म

करेंगे, इसलिए तुमको अपनी कन्या से भोग करना न चाहिए। जब ब्रह्मा को अपने पुत्रों के समझाने से ज्ञान हुआ तब उन्होंने उसी समय लज्जित होकर अपना वह शरीर छोड़कर दूसरा तन धारण किया। ब्रह्मा की लोथ से एक अँधियारा सा उठा था, वही अँधियारा संसार में कुहिरा नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो प्रातःकाल दिखलाई देता है। फिर ब्रह्मा न चारों मुख से चार वेद उत्पन्न किया और वास्तु-विद्या, वैद्यकशास्त्र, यज्ञ व दान का विधान व संगीतशास्त्र चार तरह की विद्याएँ चार आश्रम प्रकट किये। जब ब्रह्मा ने देखा कि अकेले मेरे उत्पन्न करने से जीवों की वृद्धि नहीं होती तब उन्होंने अपने दाहिने अंग से स्वायंभुव मनु नाम का एक पुरुष और बायें अंग से शतरूपा नाम की स्त्री उत्पन्न करके उन दोनों का विवाह कर दिया और उनसे कहा कि तुम दोनों आपस में भोग-विलास करके मनुष्य उत्पन्न करो। यह वचन सुनकर स्वायम्भुव मनु बोले—हे विधाता-जी! मैं आपकी कृपा से बहुत मनुष्य उत्पन्न करूँगा, पर उनके रहने के लिए स्थान चाहिए। चारों ओर पानी भरा हुआ है, सो वह लोग जल पर नहीं रह सकते। अभी तक आपने जिनको उत्पन्न किया, वे सब कमल के फूल पर बैठे हैं। मेरे उत्पन्न करने से अधिक होकर कहाँ रहेंगे। यह बात स्वायम्भुव मनु से सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—पहिले तुम नारायणजी का तप करो, पीछे से मनुष्य की उत्पत्ति करो। मैं उन लोगों के रहने के लिए स्थान का उपाय करता हूँ।

तेरहवाँ अध्याय।

ब्रह्माजी का नारायणजी से जीवों के रहने के स्थान के लिए विनय करना और बाराह अवतार धरकर परब्रह्म परमेश्वर का पाताल से पृथ्वी का लाना।

मैत्रेय ऋषीश्वर बोले—हे विदुर! जब स्वायम्भुव मनु ने पृथ्वी प्रकट होने की चाहना की, तब ब्रह्मा ने आदि पुरुष परमेश्वर का ध्यान करके उनसे विनय किया कि हे महाप्रभु, तुम्हारी दया व कृपा के बिना इस जीव का कोई काम सिद्ध नहीं होता। यह अनेक तरह की इच्छा व चाहना मन में करता है, सो जिस पर तुम दया करते हो वह अपना

मनोरथ पाता है। मैं तुम्हारी आज्ञा से जीवों की उत्पत्ति करता हूँ, पर वे लोग किसी आधार के बिना पानी पर किस तरह रहेंगे। जितने जीव अब तक उत्पन्न हुए वे लोग कमल के फूल पर बैठे हैं। सो आप जैसी आज्ञा दीजिए वैसा करूँ। नारायणजी ने ब्रह्मा का यह वचन सुनते ही उनको ध्यान में दर्शन देकर कहा कि तुम इस बात का सोच न करो। मैं अवतार लेकर जीवों के रहने के लिए पृथ्वी ला दूँगा। ऐसा कहकर परब्रह्म परमेश्वर अन्तर्धान हो गये। उन्होंने विचार किया कि पृथ्वी को हिरण्याक्ष दैत्य उठाकर पाताल में ले गया है, वहाँ से लाना चाहिए। परमेश्वर की इच्छा से ब्रह्माजी को छींक आई, तो उनकी दाहिनी नाक से मच्छड़ के समान बहुत छोटा एक शूकर गिर पड़ा। जब वह शूकर क्षण भर में हाथी के समान बढ़कर अपनी बोली में गर्जने लगा तब ब्रह्मा घबराकर कहने लगे कि यह कौन जीव है जो इतनी जल्दी बढ़ गया। फिर ज्ञान से उन्होंने मालूम किया कि मेरे विनय करने से वैकुण्ठनाथ यह रूप धरकर पृथ्वी लाने का उपाय करने आये हैं, नहीं तो दूसरे में क्या सामर्थ्य थी, जो एक क्षण में इतना बढ़ जाता। यह बात विचारकर ब्रह्मा ने वाराहजी से विनय किया—महाराज, आपने वाराहरूपी ईश्वर होकर अपना वचन पूरा किया। ब्रह्मा की यह बात सुनते ही वाराहजी फूल पर से पानी में कूद पड़े और पाताल में जाकर जब हिरण्याक्ष दैत्य को वहाँ नहीं देखा तो उन्होंने पृथ्वी को, जो बावन करोड़ योजन लम्बी-चौड़ी वहाँ रक्खी थी, अपने दाँतों पर इस तरह उठा लिया जैसे हाथी अपने दाँतों पर कमल का फूल उठा लेवे। जब वाराहजी पृथ्वी लिये हुए चले आते थे तब राह में हिरण्याक्ष दैत्य से युद्ध हुआ। वह बड़ा बलवान् था, कोई देवता उससे लड़ने की सामर्थ्य नहीं रखता था। वाराहजी हिरण्याक्ष दैत्य को मारकर पृथ्वी को पानी के ऊपर लाये। ब्रह्मा पृथ्वी को देखते ही बहुत प्रसन्न होकर परब्रह्म परमेश्वर से बोले—आप जिस प्रकार बड़ी कृपा करके पृथ्वी लाये हैं उसी प्रकार दया करके धरती को पानी पर रखकर स्थिर कर दीजिए, जिसमें सब जीव आनन्द से रहकर पृथ्वी पर यज्ञ

व होम करें। वाराहजी ने जब पृथ्वी को पानी पर रक्खा और वह मिट्टी होने के कारण गलने लगी तब परब्रह्म परमेश्वर ने पृथ्वी को कुछ अपनी शक्ति देकर जल पर स्थिर कर दिया। वशिष्ठ आदि जो लोग ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए थे, नारायणजी की स्तुति करने लगे। उन लोगों ने पृथ्वी पर रहकर परमेश्वर का स्मरण, यज्ञ और होम करना आरम्भ किया।

—:०:—

चौदहवाँ अध्याय।

मैत्रेय ऋषीश्वर का विदुरजी से यह बात कहना कि द्वारपालक जय-विजय ने वैकुण्ठ से आकर दिति के गर्भ में वास किया था।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! इतनी कथा सुनकर विदुरजी ने मैत्रेय ऋषीश्वर से पूछा कि नारायणजी ने हिरण्याक्ष व हिरण्यकशिपु दैत्य को मारने के लिए स्वयं क्यों अवतार लिया, क्या देवता लोग उनको नहीं मार सकते थे? मैत्रेय ऋषीश्वर बोले—हे विदुरजी! हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु वैकुण्ठ के द्वारपाल जय-विजय के अवतार थे। नारायणजी के सिवा दूसरा कोई उनको मार नहीं सकता था। उनकी कथा इस प्रकार है, सुनो। ब्रह्माजी के बेटे कश्यप के दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम दिति और दूसरी का नाम अदिति था। देवता अदिति के बेटे और दैत्य लोग दिति के बेटे हैं। जिन दिनों देवता इन्द्रासन का राज्य व सुख भोग रहे थे उन्हीं दिनों दैत्यों की माता ने अपने बेटों की राजगद्दी छूट जाने से अपने पति कश्यपजी की सेवा इस इच्छा से करना आरम्भ किया कि जिसमें वे प्रसन्न होकर ऐसा बलवान् पुत्र मुझे दें जो देवतों से राज्य छीनकर इन्द्रासन पर बैठे। सो एक दिन दिति ने अपने पति को प्रसन्न देखकर विनय किया कि मैं चाहती हूँ कि मेरे बेटे ऐसे शूर-वीर उत्पन्न हों, जो अदिति के बेटों को युद्ध में जीतकर इन्द्रासन छीन लें। देवता लोग धर्मात्मा थे, इसलिए कश्यपजी को उनकी हार मन से नहीं भावती थी, पर कश्यपजी ने दिति की सेवा से प्रसन्न

होकर कहा–जो तू चाहती है वही होगा। यह बात सुनकर दिति बहुत प्रसन्न हुई। उन्हीं दिनों में जब दिति स्त्रीधर्म से शुद्ध हुई तब उसने संध्या के समय भोग करने की इच्छा से अपने पति कश्यपजी के पास जाकर कहा–इस समय मुझे कामदेव दुःख दे रहा है और मेरी सौत के बेटे राजसिंहासन का सुख भोगते हैं, यह दुःख मुझसे सहा नहीं जाता, सो मेरी चिंता दूर कीजिए। यह वचन सुनकर मरीचि के पुत्र कश्यप मुनि बोले–हे दिति, इस समय तेरे साथ भोग विलास नहीं कर सकता। सन्ध्या से चार घड़ी रात बीते तक और चार घड़ी रात रहे से प्रातःकाल तक परमेश्वर का ध्यान करने और नाम लेने के सिवा दूसरा काम न करना चाहिए, क्योंकि इस समय महादेव और पार्वतीजी बैल पर चढ़कर सब जगह जाते हैं, उन्हें जो मनुष्य जागता हुआ परमेश्वर के ध्यान व स्मरण में दिखलाई देता है उसे आशीर्वाद देकर उसकी बड़ाई करते हैं और जो मनुष्य सोता हुआ या संसारी कामकाज में लगा हुआ दिखाई देता है, उसको ऐसा शाप देते हैं कि तेरा मनोरथ कभी पूरा न हो। यदि तू यह बात कहे कि ब्रह्मा के वंश में तुम और वह दोनों उत्पन्न हुए हो, इसलिए महादेवजी तुम्हारे वंशज होने से तुम्हारा अपराध क्षमा करेंगे, सो शिवजी हमारे मालिक व ईश्वर के तुल्य हैं, धर्म के स्थान पर उनको किसी का संकोच नहीं रहता। इसलिए तू चार घड़ी और धैर्य रख, जिसमें परमेश्वर के भजन व स्मरण का समय बीत जावे। उस समय दिति कामदेव के मद में ऐसी मतवाली हो रही थी कि अपने पति के समझाने पर भी उसने संतोष नहीं किया। और लाज व शर्म छोड़ दिया। जब कश्यपजी का वस्त्र पकड़कर भोग करने के लिए हठ किया तब कश्यपजी ने उसके साथ भोग करके कहा–हे दिति! इस समय तूने जो यह अधर्म किया, इस पाप से तेरे दो पुत्र, ब्राह्मण व ऋषीश्वर आदि सब जीवों को दुःख देनेवाले ऐसे बलवान् उत्पन्न होंगे कि कोई देवता, दैत्य या मनुष्य लड़ाई में उनसे न जीत सकेगा, स्वयं नारायणजी महाराज सगुण अवतार लेकर उनको मारेंगे। दिति ने यह बात सुनते ही बहुत उदास होकर अपने

पति से हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज ! मेरी इच्छा यह थी कि मेरे बेटे देवतों को जीतकर अमरावतीपुरी का राज्य करके सुख भोगें मुझको यह कामना नहीं थी कि मेरे बालक अधर्मी होकर ब्राह्मण आदि जीवों को दुःख दें। ऐसे पापी बेटे लेकर मैं क्या करूँगी। दिति का यह वचन सुनकर और उसे बहुत उदास देखकर कश्यप मुनि बोले—हे दिति ! अब क्या हो सकता है, इस समय भोग करने का यही प्रभाव है, इसीलिए मैं मना करता था। परन्तु कुकर्म करने के पीछे जो तू शोक करती है, इस पछताने से तेरा एक पौत्र ऐसा परमभक्त, ज्ञानी व तपस्वी उत्पन्न होगा, जिसका नाम लेने से संसारी जीव भवसागर पार उतर जावेंगे, सब देवता और दैत्य उसका गुण गावेंगे, नारदजी उसकी बड़ाई इन्द्र की सभा में करेंगे, परब्रह्म परमेश्वर अवतार लेकर उसकी रक्षा करेंगे। अपने पति का यह वचन सुनकर दिति को कुछ धैर्य हुआ।

पन्द्रहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी का नारायणजी के द्वारपालक जय-विजय को शाप देना और दिति के गर्भ में उन दोनों का आना।

मैत्रेय ऋषीश्वर ने विदुरजी से कहा कि जिस समय कश्यप मुनि का वीर्य दिति के गर्भ में पड़ा, उसी समय जय-विजय के तेज से जो दिति के गर्भ में आये थे, देवतों का मन ऐसा घबराया और उनके हृदय में डर उत्पन्न होकर यह मालूम होने लगा कि कोई बलवान् शत्रु हम लोगों को मारने के लिए चला आता है। जब अधिक विकलता से देवतों का बल प्रतिदिन घटने लगा तब उन्होंने ब्रह्मा के पास जाकर कहा—महाराज ! आप जगत्कर्ता हैं, सब जीवों के दुःख व सुख का हाल जो होनेवाला है, पहिले से जानते हैं। इन दिनों हम लोगों का मन बहुत घबराया हुआ और डर से भरा रहता है इसका भेद बतला दीजिए। देवतों का यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले—हे इन्द्र, नारायण-जी के द्वारपालक जय-विजय जन्म लेने के लिए दिति के गर्भ में

आये हैं, इसलिए उनके तप व तेज से तुम्हारा बल हीन हो गया और तुम लोगों का यह हाल हुआ। यह बात सुनकर देवतों ने कहा–महाराज! अभी उनके गर्भ में आने से हम लोगों की यह दशा हुई तो उन दोनों के जन्म लेने से हमारी क्या गति होगी। हे महाप्रभु! वैकुंठवासी लोग जन्म व मरण से रहित हैं, उन्होंने वैकुंठ का सुख छोड़कर दैत्य के शरीर में जन्म लेना क्यों अंगीकार किया? इसका हाल वर्णन कीजिए, जिसमें हमारा सन्देह छूट जावे। तब ब्रह्मा ने कहा–उनका हाल इस प्रकार है, एक दिन लक्ष्मीजी बड़े प्रेम से बहुत दासियों के रहते हुए भी नारायणजी के शरीर व भुजा में अपने हाथ चन्दन लगाती थीं। परब्रह्म परमेश्वर वैकुंठ में, जहाँ सब स्थान सोने के जड़ाऊ बहुत अच्छे बने हैं, रत्नसिंहासन पर बैठे थे। उस समय जगन्माता ने यह विचार किया कि श्यामसुन्दर की भुजाएँ देखने में बहुत सुन्दर और कोमल मालूम होती हैं, पर मैंने आज तक इन भुजाओं का बल भी नहीं देखा, न मालूम इनमें कुछ पुरुषार्थ है या नहीं। नारायण जी अन्तर्यामी ने उनके मन का यह हाल जानकर उनको अपना पराक्रम दिखलाने के लिए यह विचार किया कि जय-विजय के सिवा, जो मेरे द्वारपालक हैं, दूसरा कोई एक क्षण भी हमारी भुजाओं का बल सह नहीं सकता, जो मेरे साथ लड़ सके। इसलिए दैत्ययोनि में, जो हमारे शत्रु हैं, इन दोनों का जन्म देवें, और उनसे लड़ाई करके अपनी भुजाओं का पराक्रम लक्ष्मी को दिखलावें। ऐसा विचारकर वैकुंठनाथ ने जय-विजय का ज्ञान बदल दिया, उसी कारण उन्होंने तीन बेर दैत्य के तन में जन्म लिया। उनके जन्म लेने का यह हेतु है कि एक दिन सनक, सनन्दन, सनातन व सनत्कुमार चारों भाई, जिनको किसी समय भीतर जाने के लिए मनहाई नहीं थी, नारायणजी का दर्शन करने के लिए वैकुंठ में गये। उसी दिन परमेश्वर की इच्छा से, जिसका हाल ऊपर लिखा है, द्वारपालक जय-विजय चतुर्भुजी स्वरूप ने सातवीं डेवढ़ी पर सनत्कुमार आदि ऋषीश्वरों को भीतर जाने से मना करके कहा कि नारायणजी से पूछे बिना भीतर जाना उचित नहीं है। यह नई बात

सुनते ही सनत्कुमारजी ने क्रोध करके कहा—हे मूर्ख, हमको वैकुंठनाथ ने भीतर जाने के लिए कभी नहीं मना किया होगा, क्योंकि वे सदा ब्राह्मणों का आदर-सम्मान दूसरों से अधिक करते हैं। यह सब तुम्हारी दुष्टता है जो हमें रोकते हो। वैकुंठ में काम, क्रोध, मोह व लोभ व्याप नहीं सकता, पर तुमने हमारा अपमान करके हमें क्रोध दिलाया, इसलिए हम परमेश्वर से चाहते हैं कि तुम दोनों मर्त्यलोक में जहाँ पर जीव काम, क्रोध, मोह व लोभ से भरे रहते हैं, दैत्ययोनि में जन्म पाओ। यह शाप सुनते ही जय-विजय का गर्व जाता रहा, दौड़कर सनत्कुमारजी के चरणों पर गिर पड़े और रोते हुए हाथ जोड़कर विनय करने लगे, महाराज! हमने जाना कि अब हमारे बुरे दिन आये हैं, इसलिए हमसे ऐसा अधर्म हुआ, सो हमारा अपराध क्षमा करके अवधि का प्रमाण कर दीजिए कि दैत्ययोनि से कब हमारा उद्धार होगा। यह दीन वचन सुनकर सनत्कुमारजी ने कहा—मेरा शाप किसी तरह फिर नहीं सकता और न मालूम क्यों मेरे स्वभाव में क्रोध ने प्रवेश किया, सो तुम दोनों भाइयों को तीन बार माता के पेट से जन्म लेकर दैत्य होना पड़ेगा और तीनों बेर त्रिलोकीनाथ सगुण अवतार लेकर जब तुम्हें अपने हाथ से मारेंगे तब तुम उद्धार होकर फिर वैकुंठ में अपनी जगह पर आवोगे। जिस समय सनत्कुमारजी जय-विजय से ऐसा कह रहे थे, उसी समय वैकुंठनाथ यह हाल सुनकर सनत्कुमारजी का सम्मान करने के लिए नंगे पाँव लक्ष्मी समेत बाहर निकल आये, और सनत्कुमारजी के चरणों पर गिरकर बोले—इन द्वारपालों से बड़ा अपराध हुआ, जो उन्होंने आपको रोका। मेरी लक्ष्मी को तुमसे कुछ पर्दा नहीं है। अधर्म की जगह स्त्री को पर्दा करना चाहिए। वैकुंठनाथ की यह अधीनता देखकर सनत्कुमारजी ने मन में कहा—देखो, कैसी नम्रता नारायणजी में है, जिस परब्रह्म परमेश्वर के चरणों का ध्यान ब्रह्मा व महादेवजी आदि देवता व नारद मुनि आदि ऋषीश्वर व ज्ञानी लोग अपने हृदय में रखने से भवसागर पार उतरकर कृतार्थ होते हैं, वही आदि पुरुष भगवान् तीनों लोकों के मालिक व उत्पन्न करने

वाले और जिनका भजन व स्मरण करने से हमको इतना सम्मान मिला है, हमारे चरणों पर गिरकर इतनी अधीनता करते हैं। क्यों न हो, इसीलिए ये अपना नाम ब्रह्मण्यदेव रखकर बड़े प्रेम से ब्राह्मणों का सत्कार करते हैं, नहीं तो इनका क्या प्रयोजन था, जो मुझ ऐसे गरीब ब्राह्मण पर इतनी दया करते। यह सब कृपा इसलिए करते हैं, जिसमें संसारी लोग यह हाल सुनकर ब्राह्मणों की सेवा और सम्मान करें। ऐसा विचारकर सनत्कुमारजी त्रिलोकीनाथ से हाथ जोड़कर विनय करने लगे—हे दीनानाथ! मैंने क्रोधवश आपके सेवकों को शाप दिया, सो आप दया करके मेरा अपराध क्षमा कीजिए और अपने चरणों का ध्यान मुझे दीजिए, जिसमें आपके चरण-कमलों का ध्यान मन में रखने से हमको फिर कभी क्रोध न आवे और कोई जीव मेरे हाथ से दुःख न पावे।

सोलहवाँ अध्याय।

नारायणजी का सनत्कुमार का सम्मान करना और सनत्कुमार का वैकुंठनाथ की स्तुति करना।

मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा—हे विदुर! सनकादिक के मुख से सब हाल सुनकर परब्रह्म परमेश्वर बोले—हे महाराज! मेरे द्वारपालक जय-विजय को अपराध करने के बदले जो आपने दंड दिया, सो बहुत अच्छा किया। मैं इस शाप देने से बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि इनके दण्ड पाने से ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों का कोई अपमान न करेगा। आपके स्वभाव में क्रोध नहीं था, यह शाप मेरी इच्छा से इनको हुआ है, आप किसी बात की चिन्ता न करें। मैं इसलिए आपकी विनती करता हूँ कि ये दोनों मेरे द्वारपालक थे, इनके अपराध करने का अपयश मेरे ऊपर है इसलिए मेरा अपराध क्षमा कीजिए, क्योंकि संसार में किसी का नौकर कोई भला या बुरा काम करे तो उसके मालिक का नाम धरा जाता है। जो लोग साधु-महात्मा व ब्राह्मण का अपमान करते हैं, उन्हें नरक

में जाना पड़ता है और नरक के लोगों को भी ऐसे मनुष्य की संगति अच्छी नहीं लगती। आप लोग ब्राह्मण, ऋषीश्वर और मेरे इष्टदेवता हैं आपके चरणों की धूलि का ऐसा प्रताप है कि लक्ष्मीजी चंचल-स्वभाव होने पर भी मेरे पास दिनरात बनी रहती हैं। ब्राह्मण को मैं अपने तन व लक्ष्मीजी व वैकुंठ से भी प्यारा व अच्छा जानता हूँ। संसार में हम ब्राह्मण-मुख व अग्नि-मुख से भोजन करते हैं, पर जैसा ब्राह्मण को अच्छे पदार्थ खिलाने से प्रसन्न होता हूँ वैसा अग्नि में होम करने से प्रसन्न नहीं होता। ब्राह्मणों को इच्छा भोजन कराने से मेरा पेट तीनों लोकों के जीवों समेत भर जाता है, इसलिए गृहस्थ को चाहिए कि ब्राह्मण को अवश्य भोजन करावे। मैं ब्राह्मणों के चरणों की धूलि लक्ष्मीजी समेत अपने शिर पर चढ़ाता हूँ। ब्राह्मण का अपराध क्षमा करनेवाले लोग मुझे बहुत प्यारे मालूम देते हैं। वैकुण्ठनाथ का यह वचन सुनकर सनकादिक बोले—हे महाप्रभु! तुम्हारी लीला व इच्छा हमारे पिता ब्रह्माजी भी नहीं जानते, हम लोगों की क्या सामर्थ्य है जो जान सकें। आप चौदहों भुवन के जीवों के मालिक हैं, जैसी आपकी इच्छा होती है वैसा ब्रह्मादिक देवता करते हैं। आपसे कोई दूसरा बड़ा नहीं है। उनको बड़ा भाग्यवान् समझना चाहिए, जिनके हृदय में आपकी भक्ति और वैकुण्ठ जाने की चाहना रहती है। जो लोग हरिभक्तों का सत्संग और उनकी सेवा करते हैं, उनको वैकुंठ पहुँचने में संदेह नहीं रहता। आपके वैकुण्ठ में काम क्रोध मोह लोभ का प्रवेश नहीं होता। वहाँ बहुत से कल्पवृक्ष लगे हैं, बारहों महीने उन वृक्षों में ऐसे फूल व फल लगे रहते हैं, जिनके देखने से चित्त प्रसन्न होकर शोक व दुःख छूट जाता है। अच्छे-अच्छे पक्षी हंस व मोर आदि वहाँ रहते और अनेक प्रकार की मीठी-मीठी बोलियाँ बोलते हैं। सोने के बहुत बड़े मकान रत्नादिक से जड़े हुए बने हैं। वहाँ पहुँचने से मनुष्य की सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। सब तरह के सुख व पदार्थ उनको वहाँ मिलते हैं। ऐसा कहकर सनकादिक नारायण व लक्ष्मीजी के स्वरूप का ध्यान करके प्रेम में ऐसे डूब गये कि उनकी आँखों से आँसू बहने

लगे। नारायणजी का स्वरूप इस प्रकार का है—श्यामरंग, कमलनयन, चतुर्भुज, मोहनीमूर्ति, किरीट मुकुट साजे, अंग अंग पर भूषण विराजे, कौस्तुभमणि व वैजन्ती माला पहिने, पीताम्बर की कछनी काछे, रेशमी उपरना ओढ़े, चारों हाथों में शंख चक्र गदा पद्म धारण किये, शंख व चक्र के दो हाथ ऊपर को उठाये, पद्म व गदा के दो हाथ नीचे को लटकाये, घूँघरवाले बाल, मन्द-मन्द हास्य तापहारिणी चितवन, उनके बाईं ओर लक्ष्मीजी पीताम्बर पहिने, कानों में कर्णफूल, हाथों में कंगन व कड़ा, पैरों में पायजेब व कड़ा, गले में मोती व रत्न के हार, शिर में चूड़ामणि, नाक में नथ पहिने विराजमान हैं। लक्ष्मीनारायणजी जड़ाऊ सिंहासन पर बैठे हैं। जब ऐसे स्वरूप का ध्यान सनकादिक ने किया तब वैकुण्ठनाथ ने कहा—मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, कुछ वरदान माँगो। यह वचन सुनते ही सनकादिक हाथ जोड़कर बोले—महाराज! हम यही वरदान माँगते हैं कि आपके चरणों की भक्ति मेरे हृदय में बनी रहे, आपकी कथा व लीला सुनने में सर्वदा इच्छा लगी रहे। जब नारायणजी ने इच्छापूर्वक वरदान दिया तब सनकादिक वैकुण्ठनाथ को डंडवत् करके उनसे बिदा होकर चले गये।

सत्रहवाँ अध्याय।

हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु का दिति के गर्भ से जन्म लेना और हिरण्याक्ष का वरुण देवता के स्थान पर जाना।

मैत्रेय ऋषीश्वर ने विदुर से कहा—सनकादिक के जाने के उपरान्त द्वारपालक जय-विजय इस इच्छा से वैकुण्ठनाथ के सामने खड़े रहे कि यदि नारायणजी आज्ञा कर देवें तो ऋषीश्वरों का शाप हमको भोगना न पड़े। त्रिलोकीनाथ अन्तर्यामी उनकी मंशा जानकर बोले—हे जय-विजय! मैंने अपनी इच्छा से तुम्हारा ज्ञान बदलकर यह शाप ब्राह्मणों से दिलवाया है, नहीं तो सनत्कुमारजी के स्वभाव में क्रोध नहीं था। होनेवाली बात बिना हुए नहीं रहती सनत्कुमार ऋषीश्वर अपना क्रोध क्षमा करके तुम्हारे उद्धार का उपाय तीन जन्म बीते कह गये हैं, सो

तुम्हें तीन बेर दैत्ययोनि में जन्म लेकर भूर्लोक में अवश्य रहना होगा। उस तन में मेरा ध्यान शत्रुभाव से करना, मैं सगुण अवतार लेकर तुमको मारूँगा और तीन जन्म के उपरान्त तुम्हें फिर वैकुण्ठ में बुला लूँगा। ऐसा कहकर जय-विजय को वैकुण्ठ से गिरा दिया। ब्रह्माजी ने इन्द्र से कहा—हे इन्द्र! उन्हीं दोनों भाइयों ने वैकुण्ठ से आकर दिति के गर्भ में वास किया है, सो तुम लोग चिन्ता मत करो, उनके उत्पन्न होने से थोड़े दिनों तक देवतों को दुःख पहुँचेगा, फिर नारायणजी अवतार लेकर उन्हें मार डालेंगे। तुम लोगों में ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो उनको मार व जीत सको। ब्रह्माजी से यह हाल सुनकर देवता अपने स्थान को चले गये। दिति सदा इस बात की चिन्ता करके कहती थी कि ऐसे अधर्मी और दुःखदायी बेटे उत्पन्न होने से मुझे दुःख के सिवा कुछ सुख नहीं होगा, इससे वे न जन्में तो अच्छा है। परमेश्वर की इच्छा से सौवर्ष तक वे दोनों दिति के गर्भ में रहकर उत्पन्न हुए। उन दोनों के जन्म के समय संसार में बहुत अशकुन हुए। ब्राह्मणों और देवतों का कलेजा डर के मारे काँपने लगा, अग्निहोत्रियों की अग्नि, जो कई पीढ़ी से कुण्ड में थी, वह बुझ गई, पृथ्वी पर भूचाल आया, कलियुग के सब लक्षण दिखलाई देने लगे। ब्रह्माजी ने उन दोनों का नाम हिरण्याक्ष व हिरण्यकशिपु रक्खा। हिरण्याक्ष का शरीर बहुत लम्बा, चौड़ा कई योजन का था। जब वे दोनों भाई सयाने हुए तब ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि तुम लोग अपनी माता की इच्छा से जाकर राज्य करो। यह वचन सुनते ही हिरण्याक्ष अपने बल के घमंड से उन्मत्त होकर, हाथ में गदा लिये हुए, अकेला घर से निकला। वह अपने पुरुषार्थ के सामने किसी को कुछ नहीं समझता था, इसलिए कुछ सेना लेकर पहिले वरुणलोक गया। वरुण देवता के द्वार पर, जो समुद्र और नदियों के मालिक हैं खड़ा हुआ और समुद्र का पानी अपनी गदा से पीटने लगा। उनसे वरुण देवता के द्वारपालकों से कहा कि तुम लोग जाकर वरुण देवता से कह दो कि यदि वह पुरुषार्थ रखता हो तो आकर हमारे साथ युद्ध करे। हिरण्याक्ष का यह

सन्देशा सुनते ही पहिले वरुण देवता को क्रोध हुआ, फिर ब्रह्माजी के वचन का स्मरण करके हिरण्याक्ष को यह कहला भेजा कि हमने बहुत-से दैत्यों को लड़ाई में मारा व जीता था, अब हम बूढ़े हुए, इसलिए तुझ तरुण दैत्य से नहीं लड़ सकते। तुम्हारे साथ युद्ध करनेवाला नारायणजी के सिवा दूसरा कोई नहीं है। थोड़े दिनों में तुझ अधर्मी व पापी को मारने के लिए वैकुण्ठनाथ अवतार लेकर तुझे मारेंगे। जब हिरण्याक्ष ने सुना कि मुझसे लड़ने के लिए परमेश्वर का अवतार होगा तब वह बहुत प्रसन्न हुआ और वरुण को कहला भेजा कि जब तुमने हमसे हार माना तो जो कुछ उत्तम मणि व रत्न तुम्हारे यहाँ हों, सो हमें भेज दो। वरुण ने हार मानकर बहुत-से रत्न व मणि हिरण्याक्ष को भेज दिए और उससे कहा—यह स्थान तुम्हारा है, तुम रहो या और किसी को दे दो। मुझे जहाँ आज्ञा दो वहाँ जाकर रहूँ, जब हिरण्याक्ष ने वरुण को अपने अधीन देखा तब भेंट लेने के उपरान्त उनको वहाँ अपनी ओर से बसाकर कुबेर देवता के स्थान को गया। कुबेर देवता ने भी अपने दिन बुरे देखकर बहुत उत्तम रत्न व मणि उसको भेंट देकर कहा—जो कुछ द्रव्य मेरे यहाँ है, उसको अपना जानकर जैसी आज्ञा मुझे दो वैसा करूँ। हिरण्याक्ष उनको भी अपने वश जानकर यमपुरी में पहुँचा। यमपुरी के स्वामी धर्मराज ने भी ब्रह्माजी की बात याद करके उसकी विनती की और बहुत-सी भेंट देकर, उसके हाथ से अपने प्राण बचाये। जब हिरण्याक्ष ने उनको भी अपने अधीन समझ लिया तब इन्द्रलोक में जाकर ललकारा। इन्द्र ने भी डर के मारे राज्यसिंहासन का छत्र व चमर उसे भेंट देकर उसकी आज्ञा अंगीकार की। जब हिरण्याक्ष ने देखा कि तीनों लोकों में कोई ऐसा नहीं रहा जो मेरा सामना कर सके और मैं उसके साथ युद्ध करके अपनी इच्छा पूरी करूँ, तब उसने मन में विचारा कि अब उसको ढूँढ़ना चाहिए जो मेरे साथ युद्ध करे। हिरण्याक्ष यह विचारकर लड़नेवाले को ढूँढ़ता हुआ आनन्द से चला जाता था, राह में उसने अचानक नारदजी को देखा और दंडवत् करके हँसकर उनसे पूछा—कहो मुनिनाथ! तुम तीनों

लोकों में घूमते फिरते हो, कोई शूर-वीर हमारे साथ युद्ध करने को बतलाओ, नहीं तो तुम्हें मार डालेंगे। यह बात सुनकर नारदजी बोले—हे कश्यपनन्दन! हम संसार में किसी को ऐसा नहीं देखते जो तुम्हारे साथ लड़ सके, पर नारायणजी तुम्हारे साथ लड़ सकते हैं। तब हिरण्याक्ष ने कहा—तुम परमेश्वर का पता कहीं बतलाओ, मैं उनसे जाकर युद्ध करूँ। हमने सुना था कि ब्राह्मणों और तपस्वियों के स्थान पर वह रहते हैं, सो वहाँ जाकर मैंने बहुत-से ऋषीश्वरों व योगीश्वरों को दुःख दिया, पर मेरे डर से वह प्रकट न हुए। तब नारद मुनि बोले—हे हिरण्याक्ष! इस समय नारायणजी वाराहरूप धरकर पृथ्वी लाने के लिए पाताल में गये हैं, तुम्हें लड़ना हो तो वहाँ जावो, वह तुम्हारे साथ लड़ेंगे। यह बात कहकर नारदजी चले गये।

—:०:—

अठारहवाँ अध्याय।

वाराह भगवान् का हिरण्याक्ष को मारना।

मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा—हे विदुर! हिरण्याक्ष नारदजी से यह हाल सुनते ही बहुत प्रसन्न होकर गदा हाथ में लिए हुए वाराहजी से लड़ने के लिए पाताल की ओर चला। राह में क्या देखता है कि वाराहजी अपने दाँतों पर पृथ्वी को फल के समान लिये हुए चले आते हैं। उनको देखते ही हिरण्याक्ष ने हँसकर कहा—हे वाराह चोर! कहाँ जाता है? खड़ा रह, हमारे साथ लड़ाई कर। वन में हमने वाराह को देखा था, यह बड़े आश्चर्य की बात है जो पानी में वह रूप दिखलाई दिया। तुम हमसे नहीं डरते कि हमारे पुरुषों की थाती पृथ्वी, जो पाताल में रक्खी थी, उसे चुराकर लिये जाते हो। सो मेरे हाथ से तुम्हारे प्राण किसी तरह नहीं बचेंगे। जिस लिए मैं तुमको ढूँढ़ता था, वह मनोरथ मेरा पूर्ण हुआ। मैंने पहिचाना कि तुम नारायण हो, इसी तरह कई बेर अवतार लेकर तुमने हमारे भाई-बन्धु दैत्यों को मारा है। आज तुम्हें मारकर सब दिनों की कसर लेता हूँ। तुम्हारे मारने के उपरान्त योगी व ऋषीश्वरों को मारूँगा, जिनके होम या यज्ञ करने से तुमको सामर्थ्य

होती है। हिरण्याक्ष के यह सब दुर्वचन सुनकर वाराहजी इसलिए थोड़ी देर कुछ नहीं बोले कि भले मनुष्य को दुर्वचन कहने से आयु, तेज और बल कम हो जाता है जब वाराहजी ने जाना कि दुर्वचन कहने से हिरण्याक्ष का तेज व बल क्षीण हो गया तब पृथ्वी को अपनी माया से पानी पर रखकर हिरण्याक्ष से कहा—हे कश्यपनन्दन ! सत्य है मैं जल का शूकर होकर तेरे ऐसे गाँव के कुत्ते को, जो अपने को सिंह समझते हैं, ढूँढ़ता फिरता हूँ। जिसकी मृत्यु निकट पहुँचती है उसको भली व बुरी बात कहने का विचार नहीं रहता। यह पृथ्वी तेरे पुरुषों की थाती है, तू अपने को बड़ा शूर-वीर समझता है, मैं इसे लाकर तेरे सम्मुख खड़ा हूँ। पहिले तू अपनी गदा मेरे ऊपर चला, जब तेरी गदा कुछ काम न करेगी तब मैं अपनी गदा तुझे मारूँगा। यह तूने सत्य कहा कि हमने हजारों बार अवतार लेकर दैत्यों को मारा और पृथ्वी का भार उतारा है। वही गति तेरी भी होगी यह वचन सुनते ही हिरण्याक्ष ने क्रोध से वाराह भगवान् पर अपनी गदा चलाया सो नारायणजी ने उसकी गदा रोककर अपनी गदा उसके मारा। इसी तरह दोनों तरफ से गदायुद्ध होने लगा। जब लड़ते-लड़ते थोड़ा-सा दिन रह गया तब ब्रह्मा ने आकर वाराहजी से विनय किया कि हे महाप्रभु ! आप हिरण्याक्ष के मारने में क्यों विलम्ब करके उसे खेल खिलाते हैं। इस अधर्मी को जल्दी मारकर देवतों का डर छुड़ाना चाहिए। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा सामर्थ्य नहीं रखता, जो इसे मार सके। ब्रह्मा का यह वचन सुनते ही वाराहजी ने एक गदा हिरण्याक्ष के ऐसी मारी कि वह गिर पड़ा। जब फिर उठकर उसने अपनी माया से अँधियारा उत्पन्न किया तब वाराहजी ने सुदर्शन चक्र को, जिसमें हजार सूर्य के समान प्रकाश है, बुलाकर उसकी माया हर लिया। जब हिरण्याक्ष ने त्रिशूल चलाया तब सुदर्शन चक्र ने उसका त्रिशूल काट डाला। फिर वाराहजी ने एक तमाचा हिरण्याक्ष के ऐसा मारा कि वह मरकर गिर पड़ा। उसके मरते ही देवतों ने प्रसन्न होकर वाराहजी पर फूल बरसाये और अपना मनोरथ सिद्ध पाकर बाजे बजाये।

उन्नीसवाँ अध्याय।

ब्रह्माजी का देवतों समेत बाराह भगवान् के पास आना और उनकी स्तुति करना।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! जब हिरण्याक्ष मारा गया तब ब्रह्मा ने देवतों समेत वाराहजी के पास आकर इस प्रकार स्तुति किया—हे परब्रह्म परमेश्वर! आपने ब्राह्मण, देवता और यज्ञ की रक्षा करने के लिए अवतार लेकर अधर्मी हिरण्याक्ष को मार डाला और पृथ्वी को पाताल से लाकर पानी पर स्थिर किया, सो अब तुम्हारी कृपा से पृथ्वी पर सब जीव आनन्द से रहकर यज्ञ, पूजा व दान आदि करेंगे। हिरण्याक्ष के समय में देवता और पितरों को भाग नहीं मिलता था, अब वे लोग यज्ञ में अपना-अपना अंश पाकर आनन्द से तुम्हारा स्मरण करेंगे। जब देवता लोग स्तुति कर चुके तब पृथ्वी स्त्री रूप होकर वाराहजी के सामने आई। उसने हाथ जोड़कर कहा—हे ज्योतिस्वरूप! आपने दया करके मुझको पाताल से लाकर पानी पर स्थिर किया। सब छोटे-बड़े संसारी जीव अपने चरण मेरे ऊपर रखते हैं, सो आपने आदर करके मुझे अपने दाँतों पर उठाया, इसलिए मैंने अपने को कृतार्थ जाना, क्योंकि तुम्हारे चरणों की छाया सम्पूर्ण जगत् पर पड़ती है, सो मेरी छाया तुम्हारे शिर पर पड़ी। पर मैं एक बात से बहुत डरती हूँ कि कलियुग में मनुष्य बड़े पापी होंगे, अपना कर्म-धर्म छोड़कर अशुभ कर्म करेंगे, हरिभक्तों से शत्रुता रक्खेंगे, तुम्हारी भक्ति से विमुख रहेंगे, अपने माता-पिता और भाई-बन्धुओं से झगड़ा करेंगे, साले व श्वशुर से प्रीति रक्खेंगे, स्त्रियाँ अपने पति से प्रीति न करेंगी दूसरे पुरुष को चाहेंगी, पुरुष अपनी स्त्री का पालन न करके वेश्या से प्रीति करेंगे, बेटा अपने बाप के मरने की इच्छा रक्खेगा कि जब यह मरे तब धन हमारे हाथ लगे और वेश्यागमन करने या जुवा खेलने की सुविधा हो, राजा लोग अपना कर्म-धर्म छोड़कर प्रजा का धन लेकर उन्हें दुःख देंगे, सब मनुष्य केवल अपने खाने-पहिनने और इन्द्रियों को सुख देने की इच्छा से स्वार्थ के लिए मित्रता रक्खेंगे, इसलिए कलियुग में आपस के विरोध से मनुष्यों को बड़ा दुःख होगा। जब ऐसे अधर्मी मेरे ऊपर अपने

चरण रक्खेंगे तब मैं बहुत दुःखी होऊँगी, उस दुःख से मेरी रक्षा आपको करनी चाहिए। यह वचन सुनकर वाराहजी बोले—हे पृथ्वी! तू इन बातों से मत डर, जब अधर्मियों के उत्पन्न होने से तुझको दुःख प्राप्त होगा तब हम सगुण अवतार लेकर अधर्मियों को मारकर तुझे सुख देंगे। ऐसा कहकर वाराहजी वैकुंठ को पधारे और सब देवता अपने-अपने लोक को गये।

बीसवाँ अध्याय।

मैत्रेय ऋषीश्वर का विदुरजी से जगत् की उत्पत्ति कहना।

शौनकादिक ऋषीश्वरों ने इतनी कथा सुनकर सूतजी से पूछा कि जब वाराहजी पृथ्वी को पानी पर स्थिर करके वैकुंठ को गये, उसके पीछे किस तरह संसार की रचना हुई? मैत्रेय ऋषीश्वर और विदुर से क्या संवाद हुआ? सूतजी ने कहा—वाराह अवतार की लीला सुनकर विदुरजी बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने मैत्रेय ऋषीश्वर से पूछा—महाराज! ब्रह्मा ने संसारी जीवों को किस तरह उत्पन्न किया? मैत्रेयजी बोले—जब पृथ्वी स्थिर हो चुकी तब आदि निरंकार की माया और इच्छा से पहिले चौबीस तत्त्व प्रकट हुए, फिर एक पुरुष यक्ष नाम का उत्पन्न हुआ। जब उसे भूख और प्यास लगी तब वह भोजन के लिए कोई पदार्थ न पाकर ब्रह्माजी को खाने चला। जब ब्रह्माजी ने क्रोध करके उसको मना किया तब उनके क्रोध से एक तमोगुणी पुरुष रक्ष नाम का राक्षस प्रकट हुआ। ब्रह्मा ने उन दोनों को देखते ही कुछ भय मान-कर जीवों का उत्पन्न करना बन्द कर दिया और मन में विचारा कि हमारे इस तन से सृष्टि रचने में अधर्मी लोग उत्पन्न होंगे। जब मैं दूसरा तन धरकर सतोगुण से जीवों की उत्पत्ति करूँगा तब ज्ञानी और धर्मात्मा लोग उत्पन्न होंगे। ऐसा विचारकर उन्होंने अपना वह तन छोड़कर दूसरा शरीर धारण किया और अपने पहिले शरीर के दाहिने अंग से स्वायम्भुव मनु नाम का एक पुरुष तथा बाएँ अंग से शतरूपा नाम की स्त्री उत्पन्न करके दोनों का विवाह कर दिया। स्वायम्भुव मनु ने

ब्रह्माजी से कहा कि महाराज ! मुझे क्या आज्ञा है ? ब्रह्मा ने विचारा कि जिस शरीर से स्वायम्भुव मनु और शतरूपा उत्पन्न हुए हैं उस शरीर से परमेश्वर का तप व स्मरण नहीं किया था, इसलिए हरिभजन किये बिना धर्मात्मा व ज्ञानी मनुष्य इनसे उत्पन्न नहीं होंगे। यह बात सोचकर ब्रह्मा ने स्वायम्भुव मनु और शतरूपा से कहा कि तुम लोग पहिले परमेश्वर का तप व स्मरण करके पीछे से संसारी जीवों की उत्पत्ति करो, जिसमें धर्मात्मा मनुष्य उत्पन्न हों। ब्रह्मा की आज्ञा से स्वायम्भुव मनु और शतरूपा उसी समय वन में तप करने चले गये। उनके जाने के उपरान्त ब्रह्मा ने भगवान्‌जी का ध्यान करके उनसे प्रार्थना की-हे दीनदयालु ! मेरा अपराध क्षमा करो। मुझसे संसार रचने में भूल हुई। यह कठिन काम मुझसे न बन पड़ता हो तो मुझे सामर्थ्य दो, जिसमें तुम्हारी आज्ञानुसार जीवों की उत्पत्ति हो। यह बात सुनकर ब्रह्माजी को ध्यान में नारायणजी ने यह उपदेश किया-हे ब्रह्मा ! अब तुम्हारा तन शुद्ध हुआ, तुम संसार की रचना करो, धर्मात्मा और ज्ञानी मनुष्य उत्पन्न होंगे। वैकुंठनाथ का यह वचन सुनते ही ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर नारायणजी की कृपा से मरीचि, कश्यप, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद ये दश पुत्र उत्पन्न किये। उन दशों ने ब्रह्माजी से पूछा कि हमें जो आज्ञा हो सो पालन करें। ब्रह्माजी ने कहा-तुम लोग परमेश्वर का तप करके संसारी जीव उत्पन्न करो, इसी बात में नारायणजी और हम प्रसन्न होंगे। ब्रह्मा का यह वचन सुनकर नारद, अंगिरा और क्रतु तीन मनुष्यों ने कुछ उत्तर नहीं दिया और भृगु आदि सात बेटे प्रसन्न हुए। दशों मनुष्य परमेश्वर का तप करने के लिए वन को चले गये। ब्रह्मा के जिस शरीर से स्वायम्भुव मनु और शतरूपा उत्पन्न हुए थे उस तन की हड्डी व चमड़ा जो पड़ा था, उसमें से एक अँधियारा प्रकट हुआ। उस अँधियारे को यक्ष और रक्ष ने, जो पहिले ब्रह्मा से उत्पन्न हुए थे, स्त्री समझ कर ले लिया।

इक्कीसवाँ अध्याय।

नारायणजी का स्वायम्भुव मनु, शतरूपा और कर्दम ऋषीश्वर को दर्शन देकर वरदान देना।

मैत्रेय ऋषीश्वर बोले—हे विदुर! जब स्वायम्भुव मनु और शतरूपा ने वन में जाकर दश हजार वर्ष तक परमेश्वर का तप और ध्यान किया तब वैकुंठनाथ ने दर्शन देकर उनसे कहा--मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, कुछ वरदान माँगो। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा ने परब्रह्म परमेश्वर का दर्शन पाते ही बहुत स्तुति और पूजा करके हाथ जोड़कर कहा--हे दीनानाथ अन्तर्यामी! हमने संसार उत्पन्न करने और राजगद्दी का सुख भोगने के लिए तप किया है, सो हमने बड़ी भूल की, जो राज्य की इच्छा से तप किया, मुक्ति प्राप्त करने के लिए तप और स्मरण करना उचित था। नारायणजी ने यह वचन सुनकर कहा—हे स्वायम्भुव मनु! जिस मनोरथ के लिए तुमने तप किया है वह वरदान माँगो, उसके सिवा और जिस वस्तु की तुम्हें इच्छा हो वह भी मुझसे माँग लो। जब वैकुंठनाथ की ऐसी दया व कृपा स्वायम्भुव मनु और शतरूपा ने अपने ऊपर देखी तब हाथ जोड़कर बोले--हम चाहते हैं कि आपके समान पुत्र हमारे घर उत्पन्न हो। यह बात सुनकर परब्रह्म परमेश्वर ने कहा—मेरे समान दूसरा कोई नहीं है, जो तुम्हारे यहाँ उत्पन्न होकर तुम लोगों की इच्छा पूर्ण करे, इसलिए हम स्वयं तुम्हारे घर अवतार लेंगे। ऐसा कहकर नारायणजी अन्तर्धान हो गये। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा ने ब्रह्माजी के पास आकर दण्डवत् किया। स्वायम्भुव मनु अपने पिता की आज्ञा से सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य करने लगे। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा से दो बेटे उत्तानपाद और प्रियव्रत तथा तीन कन्याएँ आकूती, देवहूती और प्रसूती नाम की उत्पन्न हुईं। उत्तानपाद के ध्रुव नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ और प्रियव्रत पहिले नारदजी के ज्ञान सिखलाने से विरक्त हो गये थे, फिर उन्होंने ब्रह्माजी के समझाने से सातों द्वीपों का राज्य किया। स्वायम्भुव मनु ने आकूती का विवाह रुचि नामक ऋषीश्वर से कर दिया। ब्रह्माजी के बेटे कर्दम ऋषीश्वर

ने अपने पिता की आज्ञा से दश हजार वर्ष तक परमेश्वर का तप किया। जब नारायणजी ने प्रसन्न होकर दर्शन देने के उपरान्त उनसे कहा कि तुम वरदान माँगो तब कर्दम ऋषीश्वर दण्डवत् और पूजा-स्तुति करके हाथ जोड़कर बोले—हे ज्योतिस्वरूप अन्यर्तामी ! मैंने संसार उत्पन्न करने के लिए तप किया है। यह वचन सुनकर वैकुंठनाथ ने कहा कि मुझे पहिले से तुम्हारे मन का हाल मालूम था, सो मैंने तुमको इच्छापूर्वक वरदान दिया। इसके सिवा और जो कुछ चाहते हो वह सब तुमको मिल जायगा। आज के तीसरे दिन स्वायम्भुव मनु तुम्हारे पास आकर अपनी कन्या देवहूती तुझे विवाह देगा और हम तेरे यहाँ अवतार धारण करेंगे। तुम विवाह करने से नाहीं मत करना। यह कहने के उपरान्त वैकुंठनाथ की आँखों से यह समझकर आँसू बहने लगे कि देखो कर्दम ऋषीश्वर ने केवल विवाह के लिए, जो सदा स्थिर नहीं रहता, दश हजार वर्ष तप किया। जिस जगह परमेश्वर का आँसू गिरा था वहाँ विन्दुसर नामक तीर्थ प्रकट हुआ। वह तालाव आज तक कुरुक्षेत्र के पास वर्त्तमान है। आँसू गिरने के उपरान्त वैकुण्ठनाथ ने कहा कि जो कोई इस तीर्थ में स्नान करेगा उसके सब पाप छूट जायँगे और धर्म में उसका मन लगेगा। यह कहकर परब्रह्म परमेश्वर वैकुण्ठ को पधारे और कर्दमजी स्वायम्भुव मनु के आगमन की आशा करने लगे। तीसरे दिन राजा स्वायम्भुव मनु अपनी स्त्री शतरूपा और कन्या देवहूती समेत जड़ाऊ रथ पर चढ़कर पहिले विन्दुसरतीर्थ में गये, वहाँ स्नान करने के उपरान्त फिर कर्दम ऋषीश्वर के स्थान पर जाकर उन्हें दण्डवत् किया। कर्दमजी ने बड़े आदरभाव से उन्हें बैठाया और उनकी प्रशंसा करने लगे। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि स्वायम्भुव मनु और शतरूपा कर्दमजी का रमणीक स्थान देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी कन्या देवहूती का विवाह कर्दमजी के साथ करने का विचार किया और कर्दम ऋषीश्वर के सामने खड़े होकर हाथ जोड़कर बोले—महाराज ! नारदजी के मुख से आपके गुण सुनकर मेरी कन्या देवहूती की इच्छा तुम्हारे साथ

विवाह करने की हुई है। उसने अपनी माता से यह हाल कहा, और मैं अपनी स्त्री से उसका मनोरथ सुनकर उसको साथ लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। मेरी कन्या आपकी सेवा में रहेगी। यह बात सुनते ही कर्दमजी मन में बहुत प्रसन्न होकर बोले—हे राजन् ! तुम्हारा कहना मुझे अंगीकार है। कदाचित् कोई मनुष्य कुछ वस्तु अपनी प्रसन्नता से किसी को दे तो अवश्य उसको ले लेना चाहिए, नहीं तो पीछे दुःख होता है। इसलिए मैं आपकी आज्ञा से बाहर नहीं हूँ, पर जब तुम्हारी कन्या के सन्तान उत्पन्न हो जायगी तब मैं गृहस्थी छोड़कर हरिभजन करने चला जाऊँगा। स्वायम्भुव मनु ने ऋषीश्वर महाराज का कहना मान लिया। देवहूती ऐसी सुन्दरी थी कि कामदेव की स्त्री रति भी सौन्दर्य में उसके समान न थी।

बाईसवाँ अध्याय।

स्वायम्भुव मनु का कर्दम ऋषीश्वर के साथ अपनी कन्या देवहूती का विवाह कर देना।

मैत्रेयजी ने विदुर से कहा कि जब कर्दम ऋषीश्वर ने देवहूती के साथ विवाह करना अंगीकार किया तब स्वायम्भुव मनु ने देवहूती का विवाह कर्दमजी से विधिपूर्वक करके कहा—महाराज ! आपको सेना और द्रव्य आदि जिस वस्तु की चाह हो सो मैं तुम्हारे यहाँ पहुँचा दूँ, क्योंकि मेरा सब राज्य और धन ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों का है। यह सुनकर कर्दमजी हँसकर बोले—हे राजन् ! हमको धन और सेना कुछ न चाहिए। जब स्वायम्भुव मनु और शतरूपा अपनी कन्या को कर्दमजी के पास छोड़कर राजमंदिर को जाने लगे तो देवहूती ने बहुत रुदन किया। राजा और रानी उसे धैर्य देकर कर्दमजी से बिदा हुए और देवहूती कर्दमजी की सेवा में रहकर उनका सब काम बिना कहे कर देती थी, जिसमें किसी काम के लिए उनको कहना न पड़े। राजा स्वायम्भुव मनु ने बर्हिष्मतीपुरी में, जहाँ वाराहजी के रोम गिरने, कुशा उगने और ऋषीश्वरों के मंत्र पढ़ने से दैत्य नहीं

रह सकते थे अपनी राजगद्दी पर जाकर विचार किया कि हमारे पास राज्य और द्रव्य बहुत है। संसार में मनुष्य धन अधिक होने से उसको अपने सुख के लिए, जो सदा स्थिर नहीं रहता, खर्च करते हैं और परलोक का डर नहीं रखते। किन्तु मनुष्य को उचित है कि परमेश्वर जिसको धन देवे उसे वह नारायणजी के नाम पर शुभ कर्म में खर्च करे। यह बात विचारकर स्वायम्भुव मनु ने हर साल विधिपूर्वक यज्ञ करना और नित्य प्रातःसमय बहुत-सी गायें और स्वर्णादिक ब्राह्मणों को दान देना आरम्भ किया। जब नित्य नियम से छुट्टी पावें तब महात्मा ऋषीश्वरों से परमेश्वर की कथा व लीला सुना करें। जिस समय कोई ब्राह्मण व महापुरुष न होवें उस समय आप नारायणजी की कथा कहकर हरिचरणों का ध्यान मन में रक्खें। इसी तरह इकहत्तर चतुर्युग उन्होंने राज्य किया और हरिभजन के प्रताप से उनका पराक्रम मरते समय तक ज्यों का त्यों बना रहा। उनका कोई क्षण परमेश्वर की याद व चर्चा के बिना नहीं बीतता था। उनके राज्य में हरिइच्छा से जब प्रजा चाहती थी तब पानी बरसता था। बारहों महीने सब तरह के फल-फूल वृक्षों में लगे रहते थे। सब प्रजा आनन्द से रहकर परमेश्वर का भजन व स्मरण किया करती थीं, स्वप्न में भी किसी को दुःख नहीं होता था।

तेईसवाँ अध्याय।

कर्दमजी का अपने योगबल से एक बहुत उत्तम विमान प्रकट करना और उसी विमान में रहकर देवहूती के साथ विहार करना।

मैत्रेय ऋषीश्वर बोले—हे विदुरजी! देवहूती नित्य अपने पति की सेवा में रहकर एक दिन उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हुई। उसके मन में गृहस्थी का सुख भोगने की कुछ चाहना हुई। कर्दम ऋषीश्वर उसकी सेवा और पातिव्रत धर्म से बहुत प्रसन्न रहते थे। उन्होंने अपने तप के प्रभाव से जान लिया कि मेरी स्त्री को संसारी सुख भोग करने की इच्छा हुई है। यह जानकर उन्होंने मन में विचार किया इसने राजकन्या होकर आज तक कभी अपने लिए कुछ गहना व कपड़ा

मुझसे नहीं माँगा, इसलिए इसकी इच्छा पूर्ण करना चाहिए। ऐसा विचारकर कर्दम ऋषीश्वर बोले–हे राजपुत्री! मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ, जो इच्छा हो सो वरदान माँग ले, इस बात का संदेह न करना कि ये कहाँ से लाकर हमको देंगे, नारायणजी की कृपा से हम सब पदार्थ तुझे दे सकते हैं। यह वचन सुनते ही देवहूती हँसकर बोली–हे स्वामी! आप लोक और परलोक दोनों जगह का सुख देनेवाले हैं। जब मैंने आप ऐसा पति पाया तो मुझे किस वस्तु की कमी है। मेरे पिता ने आपको ऐसा ही महापुरुष और गुणवान् जानकर मुझे आपको अर्पण किया है। एकबेर मुझे आपके साथ गृहस्थी का संयोग होना बहुत है, सदा भोग-विलास की चाहना करना अच्छा नहीं होता। यह बात सुनकर कर्दमजी ने कहा–तू संतोष रख, मैं तेरी इच्छा पूरी करूँगा। अपने पति का यह वचन सुनकर देवहूती ने मन में विचार किया कि मेरे पास कुछ गहना, कपड़ा, और स्थान आदि संसारी सुख-भोग करने के योग्य नहीं हैं, मेरा शरीर मिट्टी व धूलि से भरा है, किस तरह भोग-विलास होगा। कर्दम ऋषीश्वर अन्तर्यामी थे, उसके मन का हाल जानकर उसी समय एक विमान सोनहरा जड़ाऊ बहुत लम्बा चौड़ा, जिसमें चारों तरफ मोतियों की झालरें बँधी, मखमली बिछौने बिछे और झाड़ व फानूस लगे थे, अपने योगबल से प्रकट किया। उस विमान में अनेक प्रकार के मकान बिलग-बिलग इन्द्रपुरी के समान बने थे। अनेक प्रकार के फल-फूल वृक्षों में लगे थे। अनेक रंग के पक्षी उस विमान में सोहावनी बोली बोलते थे। अच्छे-अच्छे जलाशय बने थे। संसारी सुख के सब पदार्थ उसमें रक्खे थे। देवहूती ने उस विमान की शोभा देखकर मन में विचार किया कि धूलि लगा हुआ मेरा शरीर इस विमान पर बैठने योग्य नहीं है। यह संदेह देवहूती के मन का जानकर उसी समय कर्दमजी ने अपने योगबल से एक नारायणकुंड, जिसमें बहुत निर्मल पानी भरा हुआ और कमल के फूलों पर भ्रमर गूँज रहे थे, प्रकट करके देवहूती से कहा–हे राजपुत्री, तू इस कुंड में स्नान कर। ऋषीश्वर की आज्ञा से जब देवहूती ने उस कुण्ड में स्नान किया तो

वह बहुत सुन्दर दिव्यरूप देवकन्या के समान बारह वर्ष की अवस्था होकर जड़ाऊ गहने व उत्तम वस्त्र पहिने उसमें से बाहर निकल आई। उसके साथ हजार दासी भी बहुत सुन्दर गहने व कपड़े पहिने हाथों में चमर आदि सब वस्तुएँ लिये हुए उस कुण्ड में से बाहर निकलकर बोलीं—हे राजपुत्री, जो आज्ञा हो सो करें। उस समय राजपुत्री ऐसी सुन्दरी मालूम देती थी कि कामदेव की स्त्री रति भी उसके समान नहीं थी। जब कर्दम ऋषीश्वर ने उस चन्द्रमुखी का रूप देखा तो अपने तन को निहारकर मन में विचार किया कि मुझको भी उचित है कि अपना शरीर देवहूती के साथ प्रसंग करने योग्य बनाऊँ। ऐसा विचारकर कर्दमजी ने भी उस कुण्ड में स्नान किया, सो वे भी दिव्यरूप अश्विनी-कुमार के समान अति सुन्दर सोलह वर्ष के हो गये। जब नारायणजी की कृपा से दोनों मनुष्य तरुण हुए तब कर्दमजी बड़े प्रेम से देवहूती का हाथ पकड़कर उस विमान पर चढ़ गये। सब दासियाँ भी उसी विमान में जाकर अपना-अपना काम करने लगीं। सुख-विलास के जो पदार्थ वैकुंठ और इन्द्रलोक में रहते हैं, वे सब पदार्थ परमेश्वर की दया से उस विमान में कर्दम ऋषीश्वर और देवहूती के लिए वर्तमान थे। उस विमान पर बहुत दिनों तक कर्दमजी और देवहूती ने रहकर संसार का सुख उठाया। जब उनका चित्त कहीं जाने को चाहता था तो वह विमान पवन के समान उड़ता हुआ इन्द्रलोक, वरुणलोक, कुबेरलोक, गन्धर्वलोक आदि सब लोकों में और मन्दराचल आदि पहाड़ों पर एक क्षण में चला जाता था। देवकन्या और देवता आदि उस विमान की सुन्दरता और रचना देखकर कर्दमजी और देवहूती के भाग्य की बड़ाई किया करते थे। जब इसी तरह कर्दम ऋषीश्वर को दश हजार वर्ष देवहूती के साथ भोग-विलास करते हुए बीत गये और उनके नव कन्याएँ उत्पन्न हुईं तब कर्दमजी ने चाहा कि मैं संसारी भोग-विलास छोड़कर फिर नारायणजी का तप व ध्यान करूँ। ऐसा विचारकर उन्होंने देवहूती से कहा—हे राजपुत्री! तुम कहो तो मैं परमेश्वर का भजन करने चला जाऊँ, अब मेरा चित्त गृहस्थी में नहीं लगता। यह वचन सुनकर देव-

हूती हाथ जोड़कर बोली—महाराज! हरिभजन करना बहुत अच्छी बात है। मैं भी आज तक संसारी सुख-विलास में भूलकर आपकी सेवा टहल से विमुख रही। मुझे उचित था कि आपके चरणों का ध्यान धरकर मुक्ति पाती, सो संसारी सुख भोगने से नव कन्याएँ उत्पन्न हुई हैं, इनके विवाह करने का सोच मुझे लगा है। इनका विवाह करके मैं भी बन्धन से छूटती तो आपके साथ आपकी सेवा टहल करने के लिए चलती। सो इन कन्याओं का विवाह कर दीजिए और मुझे भी अपने साथ लेकर वन में चलकर हरिभजन कीजिए। आपके चले जाने के उपरान्त मैं इनका विवाह करने के लिए कहाँ वर पाऊँगी। अब तक मैंने संसारी सुख के लिए आपकी सेवा की, जो आपको परमेश्वर भाव जानकर आपकी टहल करती तो अपना परलोक बनाकर आवागमन से छूट जाती। मैंने अपने बाप के यहाँ महात्मा लोगों से यह बात सुनी थी कि जिसने मनुष्य तन पाकर हरिभजन व सत्संग नहीं किया और संसारी माया-मोह में फँसकर भ्रष्ट हुआ, उसका जन्म लेना निष्फल समझना चाहिए। परमेश्वर की माया ने मुझे ठग लिया जो आप ऐसे महापुरुष पति पाने पर भी मैंने हरिभजन नहीं किया। संसार में जो मनुष्य शालग्राम व ठाकुरजी का भोग लगाये बिना भोजन करते हैं उन्हें जीते हुए मृतक के समान जानना चाहिए। यह बात सुनकर कर्दम ऋषीश्वर ने मन में विचार किया कि परमेश्वर ने मेरे यहाँ अवतार लेने के लिए वरदान दिया था सो अभी तक जन्म नहीं लिया। गृहस्थी छोड़ देने से यह बात रह जायगी। कर्दम ऋषीश्वर परमेश्वर का यह वचन याद करके अपनी स्त्री से बोले—हे राजपुत्री, तू अपने मन में किसी बात का सन्देह मत कर, तेरे गर्भ से नारायणजी अवतार लेंगे। ऐसा कहकर कर्दम ऋषीश्वर ने देवहूती के साथ भोग किया, सो हरि इच्छा से उसी समय उसके गर्भ रहा।

—(०)—

चौबीसवाँ अध्याय।

कपिलदेव मुनि का देवहूती के गर्भ से अवतार लेना और कर्दम ऋषीश्वर का वन में तप करने के लिए चले जाना।

मैत्रेयजी ने कहा—हे विदुर! जब देवहूती के गर्भ में कपिलदेव मुनि ने वास किया तब कर्दम ऋषीश्वर उसके मुखारविन्द का प्रकाश देखकर बोले—हे राजपुत्री! तेरे गर्भ में परमेश्वर अवतार लेने के वास्ते आये हैं, सो तू किसी बात की चिन्ता मत कर। अब हम तप करने के लिए जाएँगे तुम मेरी प्रीति कम करो। यह वचन सुनते ही देवहूती बहुत प्रसन्न होकर बोली—हे प्राणनाथ! मैं इस बात का किस तरह विश्वास करूँ। देवहूती अपने पति से यह कह रही थी, उसी समय ब्रह्मादिक देवताओं ने वहाँ आकर देवहूती को निश्चय कराने के लिए कहा—हे राजपुत्री! तेरा जप, तप, नियम व धर्म सब सफल हुआ, अब तेरे गर्भ से परब्रह्म परमेश्वर कपिलदेव मुनि का अवतार लेकर संसार में तेरा यश व कीर्ति बढ़ावेंगे। उनके उत्पन्न होने से तुम्हारा नाम सदा संसार में स्थिर रहेगा और तुम्हारे हृदय में जो अज्ञानता की काटि जमी है उसको ज्ञानरूपी अग्नि से वह जला देंगे। तुम उनको अपना बेटा मत समझना, वे आचारियों को सांख्य-योग का ज्ञान सिखाने के लिए अवतार लेते हैं। जब धर्म की हानि हो जाती है तब वह संसार में अवतार लेकर धर्म की बढ़ती और पाप का नाश करते हैं। यह कहकर देवता लोग देवहूती और कर्दम ऋषीश्वर की परिक्रमा करके अपने-अपने लोक को चले गये। देवहूती को हरिमन्दिर जानकर उसके दर्शन करने से वे बहुत आनन्दित हुए। जब दश महीने बीतने के उपरान्त कपिलदेव मुनि ने अवतार लिया तब कर्दम ऋषीश्वर परमेश्वर के सब लक्षण उनके अंगों में देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उस समय देवताओं ने आनन्द की दुन्दुभी बजाकर आकाश से फूल बरसाये, गन्धर्वों ने नारायणजी का यश गाया, अप्सराएँ आकाश में आकर अपने-अपने विमानों पर नाचने लगीं, तीनों लोकों में मंगलाचार हुआ, चारों दिशाओं में प्रकाश हो गया। जब कर्दम ऋषीश्वर ने उन्हें पूर्णब्रह्म जाना तब उनके सामने हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति

किया—हे आदिपुरुष भगवान्! तुम्हारा नाम लेने और दर्शन करने से संसारी जीव भवसागर पार उतर जाते हैं। आपका दर्शन बड़े-बड़े योगी और ऋषीश्वरों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता। मेरा बड़ा भाग्य है, जो आपने मेरे यहाँ अवतार लिया। कदाचित् अब भी मैं मुक्ति पदवी को न पहुँचूँ तो मुझे बड़ा अभागी समझना चाहिए। मैंने देवताओं के मुख से सुना था कि आपने ज्ञान का उपदेश करने के लिए अवतार लिया है, सो दया करके मुझे ऐसा ज्ञान सिखलाइए कि जिस ज्ञान के प्रताप से इस शरीर को छोड़कर भवसागर पार उतर जाऊँ। जिस समय कर्दमजी यह स्तुति कर रहे थे उसी समय फिर ब्रह्माजी, सनक, सनन्दन, सनातन व सनत्कुमार ने वहाँ आकर कपिलदेवजी से हाथ जोड़कर बिनती की—महाराज! जैसा आपने अपने मुखारविन्द से कहा था वैसा करके अपना दर्शन हम लोगों को दिया। संसार में तुम्हारा नाम कपिलदेव मुनि प्रसिद्ध होगा। फिर ब्रह्माजी ने कर्दमजी से कहा कि तुम अपनी नव कन्याओं का विवाह नव ऋषीश्वरों से कर दो। सो कर्दमजी और देवहूती ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार कलानाम की कन्या का विवाह मरीचि ऋषीश्वर से, अनुसूया का विवाह अत्रि मुनि से, श्रद्धा का विवाह अंगिरा ऋषीश्वर से, हवि का विवाह पुलस्त्य मुनि से, गती नाम की कन्या का विवाह पुलह ऋषीश्वर से, योग्य का विवाह क्रतु ऋषीश्वर से, ख्याति का विवाह भृगु ऋषीश्वर से, अरुन्धती का विवाह वशिष्ठ ऋषीश्वर से, शान्ति का विवाह अथर्वण ऋषीश्वर से कर दिया, सो यज्ञ की सब क्रियाएँ अथर्वण वेद के प्रमाण से होती हैं। विवाह करने के उपरान्त ऋषीश्वर लोग अपनी-अपनी स्त्री समेत कर्दमजी और देवहूती से बिदा होकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थान को गये। ब्रह्माजी और सनकादिक ऋषीश्वर भी कपिलदेव मुनि को दण्डवत् करके चले गये। कर्दमजी ने अपनी कन्याओं को बिदा करके कपिलदेव मुनि से विनय किया कि हे महाप्रभु! संसार में यह जीव बारंबार जन्म-मरण में फँसे रहने से मुक्ति पाने की इच्छा नहीं करते और अनेक प्रकार के दुःख उठाकर भी दुःख देनेवाले इस अधर्मी को नहीं

छोड़ते, इसका क्या कारण है? और आपसे यह पूछता हूँ कि कौन उपाय करने से यह मन, जो परिवार के माया-मोह, परिवार और संसारी सुख में फँसकर नष्ट हो रहा है, इस मायारूपी जाल से छूट सकता है? कर्दमजी का यह वचन सुनकर कपिलदेव मुनि ने कहा--हे ऋषीश्वर! तुम्हारी इच्छा पूरी हुई। जब मनुष्य संसार में जन्म लेता है तब तीन ऋण देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण उस पर रहते हैं, सो तुम यज्ञ करके देवऋण, वेद पढ़कर ऋषिऋण और सन्तान उत्पन्न करके पितृऋण, तीनों ऋणों से उऋण हुए। अब हरिभजन करना तुम्हारे लिए बहुत अच्छी बात है। जो तुम अपना मन संसार से विरक्त किया चाहते हो, तो धीरे-धीरे साधन करने से संसारी प्रीति छूट जाती है। तुम इस तन को झूठा समझो। जिस तरह पानी में बुल्ला उठता है उसमें मिट्टी, पानी, आग, हवा व आकाश कोई वस्तु नहीं होती उसी तरह इस तन को निषिद्ध समझकर इसका अहंकार मत करो। प्राण निकलने के उपरान्त यह शरीर किसी काम में नहीं आता, इसलिए शरीर से प्रीति करना न चाहिए। प्रेम उस वस्तु से करे जो सर्वदा स्थिर रहे, उसका कभी नाश न हो। जिसके प्रकाश से इस तन में चलने, सुनने, देखने और खाने-पीने की सामर्थ्य है उसका ध्यान करो। उस चमत्कार को सब जीवों के तन में मेरी शक्ति समझकर किसी वस्तु से प्रीति न करो। मेरे प्रकाश को प्रतिदिन अपने शरीर में ध्यान धरकर देखो, तब तुम्हारा चित्त शुद्ध हो जायगा। हे पिताजी, संसारी, जीव इस ज्ञान को भूलकर केवल अपने तन, धन और परिवार पर अहंकार करते हैं, इसलिए मैंने धर्म और ज्ञान का उपदेश करने के लिए यह अवतार धारण किया है। हे ऋषीश्वर! काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर छः शत्रु मनुष्य के शरीर में रह-कर, संसारी जीवों को भुलावा देकर नष्ट करते हैं। उन्हीं के मद में मनुष्य अन्धा होकर अधर्म करता है। जो उनके वश में न होकर उन्हें अपने अधीन रक्खे, वह मनुष्य वन में रहे, चाहे घर में, उसे जीवन्मुक्त समझना चाहिए। जब तक मनुष्य अपने शरीर, अपनी स्त्री, अपने पुत्र और परिवार को अपना जानता है तब तक उसको मृत्यु और सब

किसी से डर है। जब उसे मेरी आज्ञानुसार ज्ञान प्राप्त होता है तब वह कालादिक सबसे निडर हो जाता है। इतनी कथा सुनाकर मैत्रेय ऋषीश्वर ने विदुरजी से कहा--यह ज्ञान सुनते ही कर्दमजी ने अपना मन विरक्त करके कपिलदेवजी से विनय किया--महाराज! अब मुझे कहिए तो वन में जाकर आपके चरणों का ध्यान करूँ। यहाँ रहने से मेरा मन संसारी माया में फँसा रहेगा। आप यही ज्ञान अपनी माता को भी सुनाकर भवसागर पार उतार दीजिएगा। यह बात सुनकर कपिलदेवजी ने कहा—हे पिता, तुम वन में जाकर हमारे स्वरूप का ध्यान धरना और साधु-महात्मा की संगति करना, जिनकी मण्डली में सदा मेरी कथा, कीर्तन और चर्चा होती है। उनके सत्संग और मेरे ध्यान के प्रताप से तुम्हारा मन फिर संसारी माया की तरफ नहीं दौड़ेगा।

—:o:—

पच्चीसवाँ अध्याय।

कर्दमजी का वन में जाना और परमेश्वर का ध्यान करके अपना तन त्याग करना।

मैत्रेयजी ने कहा--हे विदुर! कपिलदेवजी का यह वचन सुनते ही कर्दम ऋषीश्वर उन्हें दण्डवत् और परिक्रमा करके वन में चले गये। जाते समय देवहूती से कह गये कि तुझे जिस बात का संदेह हो वह कपिलदेव मुनि से पूछ लेना। यह वचन सुनकर देवहूती ऋषीश्वर महाराज के चरणों पर गिरने के उपरान्त हाथ जोड़कर बोली—आपने मुझे कपिलदेव मुनि को सौंप दिया इसलिए मैं साथ चलने से लाचार हूँ। कर्दमजी वन में जाकर नारायणजी के तप और ध्यान में लीन हुए। सब जीवों और संसारी वस्तुओं में परमेश्वर का प्रकाश ऊख के रस के समान है कि कोई गाँठ मिठाई व रस से खाली नहीं होती, एकसा समझकर अपना तन योगाभ्यास के साथ त्याग दिया। उनके जाने से देवहूती को बड़ा शोक और दुःख हुआ, पर ब्रह्माजी का वचन याद करके ज्ञान की दृष्टि से चित्त को धैर्य दिया और कपिलदेवजी के सामने हाथ जोड़कर कहा—मैंने देवताओं से सुना था कि आदिपुरुष भगवान् यह संसाररूपी वृक्ष, जो मायामोह के फल-फूल से लदा है, इसके काटने-

वाले हैं, सो अब मुझे राजसी की चाहना नहीं रही। इसलिए मुझको अपनी शरण में जानकर दया करके ऐसा ज्ञान सिखलाइए, जिसमें मेरी अज्ञानता छूट जाय। संसार में अज्ञान को अँधेरे के समान समझना चाहिए। जिस तरह मनुष्य अँधियारे में राह भूलकर ठोकर लगने से गड़हे में गिरकर चोट खाता है, उसी तरह अज्ञानी मनुष्य संसारी माया-मोह में लिपटकर नष्ट होते हैं। ज्ञान का दीपक हाथ में रखनेवाला मनुष्य अच्छी तरह अपनी कामना के स्थान पर पहुँचकर भवसागर पार उतर जाता है। काम, क्रोध, लोभ व अहंकार के गढ़े में नहीं गिरता। सो मैं चाहती हूँ कि आप इस प्रकृति का हाल, जिससे सारा संसार उत्पन्न होता है और जिस तरह परमात्मा का प्रकाश सब जीवों के तन में रहता है, कृपा करके वर्णन कीजिए। यह वचन सुनते ही कपिलदेवजी बोले--हे माता! मैं इस हाल के पूछने से बहुत प्रसन्न हुआ। मुझसे ऐसी बात सुनने की इच्छा योगी और ऋषीश्वर लोग रखते हैं। संसारी माया-जाल से छूटने के लिए मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त करने के सिवा दूसरी बात उत्तम नहीं है। माता, पिता, भाई, बेटा और मित्र उसी को कहना व समझना चाहिए, जो ज्ञान की बात बतलावे। जो माता-पिता आदि अपने परिवार को ज्ञान नहीं सिखलाते उन्हें हितू न जानकर शत्रु जानना उचित है। तुम तो आप ज्ञानी हो, तुम्हारे भवसागर पार उतरने में सन्देह नहीं है, पर तुम यह बात निश्चय करके जानो कि मेरी दया व कृपा हुए बिना किसी को ज्ञान नहीं मिलता, नहीं तो जो कोई चाहता ज्ञानी हो जाता। हम ज्ञान का हाल तुमसे कहेंगे, उसे जो मनुष्य प्रीति के साथ सुनेगा वह कृतार्थ होकर भवसागर पार उतर जावेगा। संसार में ज्ञानी लोग मुक्ति पाते हैं और अज्ञानी मनुष्य मुक्ति पदवी पर नहीं पहुँचते। हे माता, जो लोग काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, मद व मत्सर के वश होकर संसारी माया-मोह में फँस जाते हैं उन्हें अवश्य नरक भोगना पड़ता है। यह मन उनकी संगति पाकर अशुभ कर्म करने से चौरासी लाख योनि में जन्म लेकर अनेक तरह के दुःख भोगता है। जो मनुष्य उनको अपने वश में रक्खे

वह अपने तन से उस पुरुष को पृथक् देख सकता है। ज्ञान प्राप्त हुए बिना काम-क्रोध आदि वश में नहीं हो सकते। जो लोग विरक्त होकर वैराग्य धारण करके भक्ति-योग का अभ्यास करते हैं उनके वश में काम-क्रोध आदि हो जाते हैं। जो लोग मेरे चरणों की भक्ति सच्चे मन से करते हैं उनकी मुक्ति होने के लिए वह आनन्द की राह है। सो तुम अपने पति और लड़कियों के जाने की कुछ चिन्ता न करो, गृहस्थी में मन लगाना ही संसार की फाँसी है। मनुष्य जितनी प्रीति परिवार और धन आदि झूठे व्यवहार की करता है, उतनी प्रीति साधु-महात्मा से करे तो मुक्ति पदवी पर पहुँच जावे। हे माता, मनुष्य का तन देवतों से कुछ कम नहीं होता, पर ज्ञानी होना चाहिए। ज्ञानवान् मनुष्य देवता से अच्छे होते हैं, उनकी बराबरी देवता नहीं कर सकते, भक्ति-योग की पदवी यज्ञ, दान, तीर्थ और व्रत आदि सब धर्मों से उत्तम समझना चाहिए। जब तक संसारी तृष्णा नहीं छूटती तब तक भक्ति-योग मिलना कठिन है। ज्ञान प्राप्त होने के लिए सत्संग चाहिए, सो मेरी कृपा के बिना सन्त-महात्मा की संगति नहीं मिलती।

यह बात सुनते ही देवहूती प्रसन्न होकर इस इच्छा से चारों ओर देखने लगी कि वे साधु-सन्त कैसे होते हैं, मुझे मिलें तो मैं उनका सत्संग करके भवसागर पार उतर जाऊँ। कपिलदेवजी ने उसका यह हाल देखकर कहा—हे माता, साधु-सन्त व ज्ञानी के लक्षण हम तुमसे कहते हैं, सुनो। उनको किसी के दुर्वचन कहने से क्रोध नहीं होता, निन्दा व स्तुति करना दोनों उनके निकट बराबर हैं, क्योंकि वे सबके तन में परमेश्वर का प्रकाश एक सा देखते हैं और दुःखी मनुष्य को देखकर उनके हृदय में दया आती है। वे सब जीवों के साथ मित्रता रखते हैं, किसी से शत्रुता नहीं करते और दिन-रात हरिचरणों में ध्यान लगाकर मेरी कथा व कीर्तन सुनने का प्रेम उनको आठों पहर बना रहता है। खाने-पहिनने आदि संसारी कामों को अपना किया नहीं समझते, सब भली व बुरी बातें परमेश्वर की इच्छा के ऊपर जानते हैं। सुख और दुःख को एक-सा समझकर, मेरे मिलने की इच्छा से अपना

घर-द्वार, कुल परिवार छोड़कर जिस जगह मेरी कथा व कीर्तन का स्मरण व चर्चा रहती है वहाँ बड़े आनन्द से रहते हैं। कथा के सुनने से उनको ज्ञान प्राप्त होकर भक्ति उत्पन्न होती है और भक्ति होने से मैं उनको संसारी माया-जाल से विरक्त कर देता हूँ, तब वे मेरा स्वरूप अपने तन में ज्ञान की दृष्टि से देखते हैं। उनका मन मेरे चरणों में लगा रहने से बरसात, धूप और जाड़ा उनको कुछ सता नहीं सकता। ऐसे सन्तों की संगति करने की मुझे सदा इच्छा बनी रहती है, पर वे साधु-सन्त ऐसे समदर्शी हों जो पशु-पक्षी आदि सब जीवों में परमेश्वर का चमत्कार एक सा समझकर अपना भीतर व बाहर एक-सा रक्खें। ऐसे ज्ञानियों की मुक्ति होती है। काल, सूर्य, चन्द्रमा, यमराज, अग्नि, पानी और हवा आदि सब मेरे अधीन हैं, मेरी आज्ञा के बिना कुछ काम नहीं कर सकते। जो मेरी शरण में आता है उसके ऊपर किसी का कुछ वश नहीं चलता। कपिलदेवजी का यह वचन सुनकर देवहूती ने कहा—महाराज मुझ स्त्री को यह ज्ञान प्राप्त होना बहुत कठिन है, अपनी भक्ति और पूजा का सरल मार्ग मुझे बतलाकर प्रकृति का हाल कहिए।

यह बात सुनते ही कपिलदेव मुनि बोले—हे माता, पहिले तुम प्रकृति का हाल, जो शरीर कहलाता है, सुनो। यही सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण तीनों मिलकर जो एक जगह रहते हैं उसे प्रकृति का मूल जानकर माया की उस जड़ को डालियाँ समझना चाहिए। चौबीस तत्त्व उन शाखों के पत्ते हैं, उसी से सब जीवों का तन बनकर संसार की उत्पति होती है। तुम आत्मा को, जिसे बोलता पुरुष कहते हैं, इन चौबीस तत्त्वों से पृथक् जानो; क्योंकि वह आत्मा सदा एकरूप रहकर घटने-बढ़ने, जन्म लेने और मरने से रहित है। चौबीस तत्त्व, जिनसे शरीर तैयार होता है, सदा बनते-बिगड़ते रहते हैं। जो मनुष्य अपने तन और इन्द्रियों के सुख को अपना सुख जानकर उससे प्रीति रखता है उसको अज्ञानी, और जो मनुष्य अपने शरीर में आत्मा को तन से सदा बिलग जानता है उसे ज्ञानी समझना चाहिए। इन्हीं चौबीस तत्त्वों से देवता, मनुष्य, जड़ और चैतन्य आदि सब जीवों की उत्पत्ति होती है,

इसलिए परमेश्वर को सबका मालिक और उत्पन्न करनेवाला जानना चाहिए। सो हे माता, तुम अपने तन में आत्मा को चौबीस तत्वों से पृथक् जानो तब तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा।

—:०:—

छब्बीसवाँ अध्याय।

कपिलदेवजी का देवहूती से प्रकृति का हाल कहना जिससे सब जीवों का तन बनता है।

कपिलदेव मुनि बोले—हे माता! मैं चौबीस तत्त्वों के लक्षण बिलग-बिलग तुमसे कहता हूँ, जिनके जानने से आत्मा और शरीर का भेद पृथक्-पृथक् मालूम होता है। नारायणजी का जो प्रकाश सब जीवों के तन में रहता है उसी को आत्मा (बोलता पुरुष) कहते हैं। उसका नाश कभी नहीं होता, वही पुरुष सब जीवों का पालन करता है। उसका चमत्कार जीवों के तन में इस प्रकार है जैसे कई बर्तनों में पानी भरकर धूप में रख दो तो उन बर्तनों में सूर्य की छाया पड़ने से दूसरे सूर्य दिखलाई देते हैं, जब उन बर्तनों को तोड़ डालो तब सूर्य उनमें नहीं देख पड़ते। बर्तन के टूटने से सूर्य का नाश नहीं होता, वह प्रकाश फिर सूर्य में मिल जाता है उसी तरह आत्मा का हाल भी समझना चाहिए। जिसको यह ज्ञान प्राप्त होता है वह मनुष्य संसारी माया में नहीं फँसता। इसके सिवा जिस तरह काठ में अग्नि और तिल में तेल रहता है, पर दिखलाई नहीं देता, उसी तरह आत्मा भी तन में दिखाई नहीं पड़ता। पर ज्ञान की दृष्टि से उसको अलग समझना चाहिए, क्योंकि जब तक वह बोलता पुरुष तन में रहता है तब तक उसका संग पाकर यह शरीर उसी की सामर्थ्य से चलने, बोलने, खाने, पीने और इन्द्रियों को सुख देने के सब काम करता है। उस सुख का भोगनेवाला उसी आत्मा पुरुष को, जो छोटा रूप परमेश्वर का प्रकाश अँगूठे के समान सब शरीर में रहता है, समझना चाहिए; क्योंकि जब वह आत्मा पुरुष शरीर से निकलकर बिलग हो जाता है तब वह तन मृतक होकर गल-सड़ जाने के सिवा किसी काम का नहीं हो सकता। यही समझकर आत्मा को चौबीस तत्त्वों से पृथक् जानना चाहिए, जो लोग ज्ञानी हैं वे आत्मा पुरुष को

अविनाशी और शरीर को नश्वर जानकर इस शरीर से प्रीति नहीं रखते। प्रकृति का रूप पहिले अच्छी तरह मालूम नहीं होता, जब सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण उसमें मिल जाते हैं तब उसका स्वरूप प्रकट होता है। शरीर में रहनेवाला परमेश्वर का छोटा रूप योगाभ्यास किये बिना और ज्ञान प्राप्त हुए बिना किसी को दिखलाई नहीं देता। वही पुरुष कालरूप बनकर बाहर रहता है, उसी को जानने के लिए संसार में यज्ञ, तप, दान और धर्म बने हैं। हे माता! जिसने उस पुरुष को पहिचानकर उसे अपना मालिक और उत्पन्न करनेवाला जाना, वह यज्ञ और तप आदि सब शुभ कर्म कर चुका। उसके जाने बिना सब सुकर्म व्यर्थ होते हैं। उसका जानना कुछ कठिन नहीं है, वह सहज में भक्ति व प्रेम करने से पहिचाना जाता है। सो तुम भक्ति करके उस पुरुष को जानो, फिर तुम्हें दूसरी कोई बात करने का प्रयोजन न रहेगा। संसारी सोच तुम्हारा छूट जायगा। मैं चार तरह की भक्ति सात्त्विकी, राजसी, तामसी और नवधा तुमसे कहता हूँ, मन लगाकर सुनो। परमेश्वर के मिलने के लिए सात्त्विकी भक्ति जल के समान निर्मल है, जिसमें मुक्ति प्राप्त होने के सिवा दूसरी कामना नहीं रहती। राजसी भक्ति स्त्री, द्रव्य और पुत्रादिक संसारी सुख के लिए समझो। तामसी भक्ति इस वास्ते है कि मेरा शत्रु मर जावे और नवधा भक्ति करनेवाले संसारी सुख और मुक्ति आदि किसी वस्तु की चाहना नहीं रखते। इस तरह की भक्ति मुझे बहुत प्यारी मालूम होती है। भक्ति उसको कहते हैं कि मेरे चरणकमलों का ध्यान, जो अति सुंदर और कोमल हैं, बड़ी प्रीति और सच्चे मन से हृदय में रक्खे और आठों पहर मेरे नाम का स्मरण करे। हाथों से मेरी सेवा और पूजा तथा पैरों से तीर्थयात्रा किया करे। जो लोग सात्त्विकी, राजसी वा तामसी भक्ति करते हैं मैं उनकी इच्छा और कामना पूरी कर देता हूँ, जिसमें उनका परिश्रम व्यर्थ न हो। पर जो मनुष्य मेरी नवधा भक्ति करता है उससे मैं बहुत प्रसन्न रहता हूँ और सोचता हूँ कि कौन वस्तु उसको देकर उसके बदले से उऋण हो जाऊँ। हे माता तुम मेरी नवधा

भक्ति करो, मुक्ति पद पर पहुँचोगी। पर जो तुम अपने को यह जानती हो कि मैं राजा स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की बेटी, कर्दमजी की स्त्री, राजा प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहिन हूँ, यह शरीर का नाता सब झूठा जानकर हरिभक्तों और साधु-संतों से नाता लगाओ। सब इन्द्रियों का जो स्वाद व सुख है, उसकी चाहना परमेश्वर को अर्पण किये बिना मत करो। जब इस तरह तुम साधना करोगी तब तुम्हारे हृदय में उस आदिपुरुष का रूप तुमको आप से आप दिखाई देगा। हे माता! यह ज्ञान उस मनुष्य को प्राप्त हो सकता है, जो अपने धर्म पर स्थिर रहकर ज्ञानियों का सत्संग करे। जिस काम का फल बुरा है वह कर्म न करे। जो कुछ प्रारब्धानुसार उसे मिले उस पर संतोष रखकर अधिक लोभ न बढ़ावे। पेट भर न खाय, जिसमें परमेश्वर का भजन व स्मरण करते समय आलस्य न आवे। जहाँ तीर्थस्थान और ज्ञानियों का अच्छा सत्संग हो वहाँ पर रहे और जहाँ अच्छी संगति न हो वहाँ न रहे। परमात्मा को अपने शरीर और सब जीवों में एक-सा देखकर भूख-प्यास और दुःख-सुख को बराबर समझे। ऐसे मनुष्य को जीवन्मुक्त कहते हैं। जब तक ऐसा ज्ञान न प्राप्त हो तब तक अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार धर्म-कर्म करता रहे, उसके करने से धीरे-धीरे ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

—:o:—

सत्ताईसवाँ अध्याय।

कपिलदेवजी का सांख्य-योग-ज्ञान देवहूती से कहना।

कपिलदेवजी बोले—हे देवहूती! अब मैं सांख्य-योग का ज्ञान तुमसे कहता हूँ, चित्त लगाकर सुनो। पर तुम इस ज्ञान को बहुत अच्छा जानकर दूसरे किसी से मत कहना। यह ज्ञान जल्दी सब मनुष्यों को नहीं मिलता। संसारी व्यवहार को तुम झूठा समझो, कभी सत्य मत समझना। कदाचित् तुमको यह सन्देह हो कि जब संसारी व्यवहार सब झूठा है तो संसार में जो यज्ञ, तप आदिक धर्म और पाप की बात मनुष्य लोग करते हैं वे भी झूठी होंगी, सो पाप और पुण्य की बात को सत्य

मानकर उसे कभी झूठा मत समझो। जिस तरह कोई मनुष्य किसी स्त्री से जागते समय मिलने की चाहना रखकर उसी ध्यान में सो जावे और स्वप्न में उसी स्त्री से भोग करके उसका वीर्य गिर पड़े तो उसका भोग करना झूठा और वीर्य का गिरना सच्चा होता है, उसी तरह यह संसार झूठा है, पर जो पाप-पुण्य मनुष्य करते हैं उसके बदले सुख और दुःख अवश्य भोगना पड़ता है। इस बात का एक इतिहास मैं कहता हूँ, सुनो। एक मनुष्य लकड़ी का बोझ वन से काटकर अपने शिर पर लिये हुए बेचने के लिए जाता था। जब वह धूप की गर्मी से राह में थक गया तब वृक्ष की छाया में शिर से अपना बोझ उतारकर एक कुआँ पर पानी पीने के उपरांत बैठकर सुस्ताने लगा। उस समय उसने क्या देखा कि एक सवार घोड़ा दौड़ाये उस कुआँ पर पानी पीने के लिए चला आता है। उसे देखकर लकड़ी बेचनेवाले ने मन में कहा कि हमको भी घोड़ा मिलता तो सवार होकर चलते। बोझा उठाने और पैदल चलने से पैर जलते हैं। इसी विचार में वह कुएँ की जगत पर सो गया। स्वप्न में उसको घोड़ा मिला। जब वह उस पर सवार होकर कुदाने लगा तब घोड़े पर से गिर पड़ा और उसी स्वप्नावस्था में वह उछला तो कुएँ में गिर पड़ा। कुएँ में गिरने से उसके हाथ-पैर टूट गये। सो हे माता, उसको घोड़ा मिलना झूठा और कुएँ में गिरने से चोट लगना सत्य हुआ। इसी तरह संसारी सुख झूठा समझो, पर मनुष्य को पाप करने से दंड अवश्य मिलता है। जब लोगों ने उस लकड़हारे को निकालने का उपाय किया तब उसने कुएँ में से कहा—मैं स्वप्न में घोड़े पर चढ़ा था उसका यह फल पाया, जो लोग नित्य घोड़े पर चढ़ते हैं वे न मालूम कैसे गहरे कुएँ में गिरकर दंड पावेंगे। हे देवहूती, जो मनुष्य संसार में सवारी, गहना, कपड़ा, स्त्री और मकान आदि का सुख पाकर यह समझता है कि यह सब सुख मैं अपने पराक्रम से भोग रहा हूँ। परमेश्वर की दया से वह सुख मिलना नहीं समझता, उसे अवश्य दुःख भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य उस सुख को परमेश्वर की इच्छा और दया से प्राप्त हुआ जानकर उसमें अधिक स्नेह नहीं रखता और अपने वर्ण

व शरीर का धर्म समझकर उस द्रव्य के अहंकार में किसी जीव को दुःख नहीं देता उसे दंड नहीं मिलता। मुनि का यह ज्ञान सुनकर देवहूती बोली—महाराज! आपने कहा है कि इस शरीर से उस आदिपुरुष को पृथक् समझो, सो यह बड़ी कठिन बात है। आँख से देखे बिना उस पुरुष को प्रकृति से किस तरह बिलग जानूँ। वह पुरुष शरीर से इस तरह मिला है, जिस तरह दूध में घी और अग्नि में प्रकाश रहता है। इसका हाल पृथक् करके वर्णन कीजिए। यह वचन सुनकर कपिलदेव मुनि बोले—हे माता, यह बात ज्ञान की दृष्टि से और आँखों से भी देखकर विचार करना चाहिए, क्योंकि जब परमेश्वर का चमत्कार शरीर से निकल जाता है, तब हाथ पाँव आदि उसकी सब इन्द्रियाँ बनी रहती हैं, परन्तु उस तन से कुछ काम नहीं हो सकता। यह बात आँखों से प्रत्यक्ष देखकर जानना चाहिए कि उस आत्मापुरुष के न रहने से शरीर का यह हाल हो जाता है। सो तुम मनुष्यों की यह गति देखकर आत्मापुरुष को शरीर से पृथक् समझो जिस तरह वेश्या विषयी मनुष्यों के पास द्रव्य देखकर अनेक ढंग से उसका धन और धर्म दोनों ले लेती है उसी तरह मेरी माया धर्मात्मा पुरुष के पास जाकर अनेक ढंग से उसको छलती है। जो लोग मेरे चरणों की शरण में रहते हैं उन पर उस माया का कुछ वश नहीं चलता। गंगाजी मेरे पाँव का धोवन हैं, उनमें स्नान करने से मनुष्यों के सब पाप छूट जाते हैं और उनका मन शुद्ध हो जाता है। जो लोग मेरे चरणों का ध्यान अन्तःकरण में रखते हैं वे फिर संसारी माया-मोह में नहीं फँसते, जिसने पारस पत्थर पाया वह काँच के झूठे नग की चाह नहीं करता। संसार में उसकी सब कामनाएँ पूरी होती हैं औरमरने के उपरांत परलोक का सुख मिलता है। जिस तरह बेटा के भोजन करने से बाप का पेट नहीं भरता और दूसरे के पास रक्खा हुआ द्रव्य समय पर काम नहीं आता, उसी तरह शरीर को आत्मा से अलग जाने बिना ज्ञान नहीं प्राप्त होता। ऐसा ज्ञान जाननेवाले जीवन्मुक्त होते हैं। यह सब ज्ञान सुनकर देवहूती बोली—हे महाप्रभो! मैंने आपके ज्ञान सिखलाने के अनुसार आत्मा

को प्रकृति से बिलग समझा, पर तत्काल इस मन का संसारी जाल से विरक्त होना और नारायणजी के चरणों में ध्यान लगना बहुत कठिन है। जिस दिन से तुम्हारे पिता तप करने के लिए गये हैं उस दिन से एक क्षण भी मुझे नहीं भूलते। मेरा मन उन्हीं की चिन्ता में लगा रहता है। कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे सहज में ज्ञान और मुक्ति प्राप्त हो। यह बात सुनकर कपिलदेवजी बोले--हे माता, हम भक्ति योग का सरल मार्ग तुमसे कहते हैं, सुनो। कदाचित् कोई परमेश्वर के मिलने के लिए अपना मन धीरे-धीरे लगावे तो उसकी भी मुक्ति होती है। जिस तरह कोई मनुष्य जगन्नाथजी या मथुरा को जाने की इच्छा से घर के बाहर निकले और नित्य रास्ता चलता रहे तो एक दिन ठिकाने पर पहुँच जाता है और जो रास्ता न चलेगा वह किस तरह पहुँचेगा। जब राह में बटोही थककर किसी से पूछता है कि टिकने का ठिकाना कितनी दूर है, यदि वह मनुष्य टिकने का स्थान निकट बतलाता है तो थकने पर भी उसे चलने की सामर्थ्य हो जाती है और वह ठिकाने पर पहुँच जाता है। टिकने की जगह दूर बतलाने से आगे न जाकर उसी जगह टिक रहता है, उसी तरह हम तुमसे कहते हैं कि भक्ति-योग, पूजा, पाठ, व्रत, नियम और परमेश्वर की कथा व कीर्तन सुनना सहज राह है। जो लोग चित्त लगाकर ये सब कर्म करें वह भी मुक्ति पा सकते हैं। पूजा कई प्रकार की होती है, एक तामसी पूजा है जिससे यह प्रयोजन रखते हैं कि मेरा शत्रु मर जावे। अनेक मनुष्य लोगों के दिखलाने के लिए देर तक माला फेरकर पूजा करते हैं जिसे देखकर लोग हमारा विश्वास करें। दूसरी राजसी पूजा है, जिसमें नारायणजी के नाम पर मनुष्यों से कपड़ा, रुपया, मिठाई व सुगन्धादिक लेकर उसको अपने खर्च में लाते हैं। शालग्राम व लक्ष्मी-नारायणजी की मूर्ति संसारी सुख प्राप्त होने के लिए पुजाते हैं। दूसरे के घर जो ठाकुर व शालग्राम होते हैं उनसे भक्ति व प्रीति नहीं रखते। तीसरी सात्त्विकी भक्ति व पूजा मुक्ति पाने के लिए करते हैं। चौथी निर्गुण पूजा वह है, जिसमें मुक्ति की भी इच्छा न रक्खे। जो यज्ञ,

पूजा, दान, व्रत आदिक शुभ कर्म करे सब परमेश्वर के नाम पर अर्पण कर दे, उसके बदले में कोई कामना न करे। मेरी कथा व कीर्तन सुनते समय करुणा के स्थान पर रो देवे, हर्ष की जगह प्रसन्न होकर मेरे ध्यान में मग्न रहे, उन भक्तों से मैं बहुत लज्जित रहता हूँ, यह विचार करता हूँ कि कौन-सी वस्तु उन्हें दूँ जिसमें वह मुझसे प्रसन्न हों और मैं उस सेवा से उऋण हो जाऊँ। इस तरह के भक्त जीवन्मुक्त हैं। चारों वर्णों में वेद पढ़ा हुआ ब्राह्मण मुझे बहुत प्यारा मालूम होता है, पर जो ब्राह्मण परमेश्वर में प्रीति नहीं रखता उस ब्राह्मण से हरिभक्त व साधुलक्षण शूद्र का मैं अधिक प्यार करता हूँ। सो हे माता, तुम मेरे चरणों में ध्यान लगाकर नारायण नाम का स्मरण करो, भवसागर पार उतरकर आवागमन से छूट जावोगी। जो परमेश्वर की भक्ति व पूजा से विमुख रहकर उनका नाम कभी नहीं लेता वह मरने के उपरान्त बहुत दिनों तक नरक में दुःख पाकर पशु आदि योनि में जन्म पाता है और उस योनि में बहुत दिन रहकर फिर मनुष्य का तन उसे मिलता है। हे माता! परमेश्वर की भक्ति व ज्ञान प्राप्त होने और भवसागर पार उतरने के लिए केवल मनुष्य का चोला है, जिसने इस तन में परमेश्वर को नहीं जाना वह पीछे बहुत पछितावेगा।

—:०:— ।

अट्ठाईसवाँ अध्याय।

कपिलदेवजी का देवहूती से मनुष्य की उत्पत्ति कहना, जिस दिन से गर्भ में आकर फिर मरता है।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! इतनी कथा सुनकर देवहूती ने पूछा कि महाराज, जो मनुष्य परमेश्वर से विमुख हैं उनका मरने के उपरान्त क्या हाल होगा? कपिलदेवजी बोले—हे माता, संसारी लोग कुल-परिवार, घर व द्रव्य के जाल में फँसकर अपनी आयु व्यर्थ नष्ट करते हैं। मनुष्य युवावस्था में कमाकर जिन लोगों को खिलाता है, बुढ़ापे में वही लोग शत्रु होकर उसे दुःख देते हैं। मैं मनुष्य की उत्पत्ति और जन्म से मरण तक का हाल तुमसे कहता हूँ, सुनो। जिस रोज स्त्री को परमेश्वर की

कृपा से गर्भ रहना होता है उस दिन भोग करने के समय पुरुष का वीर्य स्त्री के रज से मिलकर खौलता है। पाँचवें दिन उसमें से बुल्ले के समान उठता और दशवें दिन बेर के समान गाँठ बँध जाती है। पन्द्रहवें दिन वह गाँठ मांस का पिंड होकर कुछ लम्बा गोला हो जाता है। एक महीने में हाथ, पैर व शिर का चिह्न बनता है। दूसरे महीने में अँगुलियाँ, तीसरे महीने में चमड़ा व हड्डी, चौथे महीने में शरीर पर रोयें व आँख-कान आदि सब इन्द्रियों के आकार बन जाते हैं, पाँचवें महीने में नारायणजी की कृपा से उसमें जीवात्मा का प्रकाश होकर उसको भूख व प्यास लगती है, छठवें महीने में शिर नीचे और पैर ऊपर रहने के कारण उसका मन घबराता है, सातवें महीने में उसको अपने कई जन्म और आठवें महीने में सौ जन्म पीछे का हाल याद होकर ज्ञान प्राप्त होने से वह मालूम करता है कि पिछले जन्मों में हमने ऐसा कर्म करने से ऐसा दुःख व सुख पाया था। यह बात समझकर वह परमेश्वर का ध्यान करके उनसे बिनती करता है कि महाराज! मैंने पिछले जन्म में संसारी सुख व स्त्री-पुत्र के मोह में फँसे रहने से नष्ट होकर जन्म व मरण से छुट्टी नहीं पाया और संत व महात्मा से सत्संग नहीं किया, इसलिए उलटा लटककर दुःख पाता हूँ। इस समय मेरे ऊपर कृपा करके इस नरककुंड से मुझे बाहर निकालिए। अब मैं तन-मन से तुम्हारी सेवा में तत्पर रहूँगा, पर ऐसी दया कीजिए कि यह ज्ञान मुझे न भूले और संसार में ऐसा काम करूँ जिसमें जन्म व मरण से छूट जाऊँ। जब नवाँ या दशवाँ महीना हुआ तब वायु जोर करके उसको बाहर गिरा देती है। गर्भ में कन्या बाईं ओर और पुत्र दाहिने कोख में रहता है। जब पृथ्वी पर बाहर गिरकर रोता है तब परमेश्वर की माया से पहिले जन्मों का ज्ञान उसे भूल जाता है। वह बालक छोटी अवस्था में भूख-प्यास लगने पर रोने के सिवा बोल नहीं सकता। बिछौने पर मल-मूत्र करता है, जब तक कोई उसको नहीं उठाता तब तक उसी में पड़ा रहकर कष्ट पाता है। उसके माता-पिता मल-मूत्र को धोकर उसे गोद में लेकर प्रसन्न होते हैं। जब उस अवस्था से सयाना होकर पाँच वर्ष का होता है तब उसके

माता-पिता विद्या सीखने के लिए गुरु को सौंप देते हैं। वहाँ विद्या सीखने में मारपीट खाता है, इच्छापूर्वक खेलने नहीं पाता। जब सोलह वर्ष की अवस्था में तरुण होकर अच्छा-अच्छा गहना व कपड़ा पहिनता है तब अभिमान से काम, क्रोध और मोह में फँसकर अपनी बराबर दूसरे किसी को नहीं समझता। कदाचित् कंगाल हुआ तो दूसरे को अच्छा गहना व कपड़ा पहिने और उत्तम पदार्थ खाते देखकर डाह करता है। विवाह होने के उपरान्त घर में स्त्री आने पर कमाने-खाने की चिन्ता में दिनरात विकल रहकर अपना जन्म व्यर्थ गँवाता है। जो मनुष्य पहिले जन्म में कुछ दान व धर्म नहीं किए रहता वह मनुष्य अधिक कङ्गाल होकर आठों पहर पेट भरने के लिए चिन्ता व दुःख उठाता है। जब लड़के-बाले उत्पन्न होते हैं तब उनकी प्रीति में फँसकर अनेक तरह से झूठ-सत्य बोलकर कमाई करके उनका पालन करता है। जब तक सामर्थ्य रहती है तब तक स्त्री और लड़कों को अपना समझकर उनका पालन करने के लिए सब तरह के दुःख उठाता है। अपने परिवार में किसी मनुष्य के मरने से इतना रोता है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। अपनी स्त्री के वश में रहकर माता-पिता को कठोर वचन कहकर दुःख देता है, परलोक का डर नहीं रखता। मनुष्य स्त्री के मोह में फँसकर जैसा नष्ट होता है वैसा और कोई काम उसका परलोक बिगाड़ने के लिए नहीं है।

दो०अहिविष तो काटे चढ़ै यह चितवत चढ़ि जाय। ज्ञान ध्यान अरु धर्म जो जरामूल से खाय।
नारि पराई स्वप्न में भोगत अति सुख पाय। धर्मरुकाम गँवाय के आप रहै खिसिआय॥

इसलिए जो मनुष्य अपना भला चाहे वह स्त्री के स्नेह में न फँसे। सो हे माता! तुम भी स्त्री हो, मेरे कहने से बुरा मत मानना। धर्मशास्त्र के अनुसार यह ज्ञान तुमसे कहता हूँ। जब तरुणाई बीतकर बुढ़ाई आती है तब आँखों से कम दिखाई देता है, कानों से सुनाई नहीं देता, कमाई करने की सामर्थ्य नहीं रहती, तब घर में पड़ा हुआ लम्बी श्वास लेकर पछताता और कहता है कि अब मैं अपने लड़कों का किस तरह पालन करूँगा। जो कंगाल हुआ वह उस समय खाने व पहिनने का

बहुत दुःख पाता है। जिसके बेटे कमाई करनेवाले हुए वे अपनी स्त्री समेत उस बूढ़े को शत्रु के समान समझते हैं। उस अवस्था में जब वह बूढ़ा अपने काम के लिए किसी से कुछ कहता है तब उसे घुड़ककर दुर्वचन कहते हैं। उस समय वह मन में बड़ा खेद करके कहता है कि अब मैं बूढ़ा हुआ, कमाने योग्य नहीं रहा, इसलिए ये लोग, जिनका जन्म भर मैंने पालन किया, खाने-पीने की सुधि भी समय पर नहीं लेते। जिस तरह बैल जब बूढ़ा हो जाता है, बोझ उठाने की सामर्थ्य नहीं रखता, तब बनियें लोग उसकी नाथ काटकर वन में छोड़ आते हैं।

दो० सींग झड़े अरु खुर घिसे पीठ न बोझा लेय। ऐसे बूढ़े बैल को कौन बाँधि भुस देय॥

हे माता, उस समय वह बूढ़ा यह सब दुःख देखकर परमेश्वर से अपनी मृत्यु माँगता है, पर आयु सम्पूर्ण हुए बिना मृत्यु नहीं आती। उसके बेटा और पतोहू पहिले आप भोजन करके पीछे से भिक्षुकों की तरह कुछ उसको भी खाने के लिए दे देते हैं। जब बुढ़ापे में कोई रोगादि उसे होता है तो कोई घरवाला मनुष्य उसकी सेवा नहीं करता। दो घड़ी उसके पास बैठने का भी साथी नहीं होता। वह बेचारा अकेला पड़ा रहता है। जब किसी से भोजन व पानी माँगता है तो वह जान बूझकर चुप हो जाता है। उसकी बात का उत्तर नहीं देता, उसे दुर्वचन कहता है। ये सब कष्ट उठाकर जब उसके मरने का काल निकट पहुँचता है तब कफ, पित्त, वात से उसका गला बन्द हो जाता है, शुद्ध श्वास भी नहीं निकलती। उस समय पाप करनेवालों से यमदूत कहते हैं कि जिनके लिए तूने यह सब पाप बटोरा था उनको अब अपनी रक्षा के लिए बुलावो। जब वह बोल बन्द हो जाने से उनको उत्तर नहीं दे सकता और न किसी को बुला सकता है तब अपनी करनी याद करके आँखों से सबको देखकर रो देता है। जब यमदूत अपना भयानक रूप दिखाकर धमकाते हैं तब उनके डर से उसका मल-मूत्र निकल जाता है। उसके सिवा दूसरे को वे दूत दिखलाई नहीं देते। उस समय परिवारवाले जग को दिखाने के लिए झूठी प्रीति प्रकट करके रोते हैं। इसलिए उसका मन और अधिक घबराता है। उस रोने-पीटने के शब्द में यमदूत उसे और बहुत दुःख देते हैं। उस समय परमेश्वर का

नाम व कथा व कीर्तन उसको सुनाना और गंगाजल, तुलसी, शालग्रामजी का चरणामृत उसके मुख में डालना और साधु-वैष्णव के चरणों की धूलि उसके शरीर पर लगाना उचित है, सो किसी से नहीं बन पड़ता केवल दिखावे के लिए रोना जानते हैं।

—:०:—

उन्तीसवाँ अध्याय।

यमदूतों का अधर्मी जीवों को यमराज के पास ले जाना।

मैत्रेयजी ने कहा—हे विदुर! इतनी कथा सुनकर देवहूती ने पूछा कि हे महाप्रभो, उस मनुष्य के मरने के उपरान्त क्या हाल होता है, सो वर्णन कीजिए। कपिलदेव मुनि बोले—हे माता! यह सब दुःख उठाने के उपरान्त यमदूत उस जीव को (मरने के पीछे अँगूठे के प्रमाण उसका शरीर बना रहता है, सब इन्द्रियों की शक्ति उसमें होती है) अपनी फाँसी से बाँधकर लोहे के मुदगरों से मारते हुए यमपुरी में, जो मृत्युलोक से निन्नानवे हजार योजन पर है, यमराज के पास ले जाते हैं। उस समय राह में वह जीव भूख व प्यास लगने पर अपने किये हुए पापों का स्मरण करके बहुत पछताता है। रास्ते में पृथ्वी आग के समान जलती हुई मिलती है। जब वह उस धरती पर नंगे पैर, नंगे शिर, नंगे शरीर चलने से थककर कहीं सुस्ताना चाहता है या राह में अन्धकार रहने से चल नहीं सकता तब यमदूत उसको मुदगरों से मार-कर दम नहीं लेने देते। उस समय वह जीव मृतक के समान अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है। जिस तरह संसार में राजा लोग कुकर्म करनेवालों को दण्ड देते हैं उसी तरह वहाँ भी पाप करनेवाला मनुष्य दंड पाता है। परमेश्वर की माया से उस अँगूठे भर के शरीर को अपना पहिला तन समझता है और बहुत दुःखी होकर अपने परिवारवालों और नौकरों को याद करके पीछे फिरकर देखता है कि इस महादुःख में कोई मेरी सहायता करने के लिए आता है या नहीं। जब उसे वहाँ कोई नहीं दिखाई देता तब वह बहुत पछताने और रोने के उपरान्त कहता है कि जिनका पालन करने के लिए यह सब पाप बटोरा था उनमें से कोई

मनुष्य इस समय मेरी सहायता नहीं करता। इस बात का स्मरण करके उस जीव को बड़ा खेद होता है, पर उस समय पछताने के सिवा और कर ही क्या सकता है। राह में साँप और बिच्छू आदि अनेक तरह के जीव उसे काटते हैं। जब इसी तरह बहुत दुःख देते हुए यमदूत उस मनुष्य को वैतरणी नदी में, जहाँ मल-मूत्र, रक्त, पीब, कीड़े, बाल, नख, हड्डी व सड़ा मांस भरा हुआ चार कोस का फाँट बहता है, चार घड़ी में ले जाकर डाल देते हैं। वह जीव उस नदी में कीड़ों के काटने, और गिद्धों से मांस नोचने पर बहुत दुःख पाकर अति विलाप करके कहता है कि जो कोई मुझे इस नदी से पार करता उसका मैं बड़ा यश मानता। यह बात सुनकर यमदूत अपनी गदा उसे मारते हैं। यह सब दुःख उठाने के उपरान्त वह जीव वैतरणी पार उतरकर जब चार घड़ी में यमराज के पास पहुँचता है तब धर्मराज की आज्ञा से चित्रगुप्त उसके कर्मों का कागज देखकर जितने दिन जिस नरक भोगने का दण्ड देना उचित होता है वहाँ उसे भेज देते हैं। उस नरक में जाकर वह बहुत दुःख उठाता है और अवधि पूर्ण होने पर फिर उस नरक से निकलकर अशुद्ध व कुरूप जीव की योनि में जन्म पाता है। वह सदा रोगी रहता है, कभी सुख नहीं पाता। इसी तरह चौरासी लाख योनि में भ्रमकर फिर उसे मनुष्य का तन मिलता है। सो हे माता, यह मनुष्य का चैतन्य चोला मिलना सहज नहीं होता। रौरव आदि अट्ठाईस नरक हैं, उनका हाल पाँचवें स्कन्ध में आवेगा।

तीसवाँ अध्याय।

कपिलदेवजी का देवहूती से वर्णन करना कि यह पाप करने से मरने के उपरान्त ऐसा दण्ड मिलता है।

कपिलदेवजी बोले—हे माता! जो पाप करने से मनुष्य यमपुरी को जाकर नरक भोगते हैं उन पापों के दंड पाने का हाल तुमसे बिलग-बिलग कहता हूँ, सुनो। जो कोई किसी का धन बरजोरी ले लेता है उसे यमदूत बहुत ऊँचे पहाड़ पर चढ़ाकर नीचे पत्थर की चट्टान पर

गिरा देते हैं। सो उसके सब अंग-भंग हो जाते हैं और बड़े-बड़े गिद्ध उसका मांस खाते और रौरव नाम जीव जोंक के समान लोहू पीने के उपरान्त उससे कहते हैं कि जितना धन तुमने दूसरे का लिया है उतने कल्प भर तुम्हारी यही दशा होगी। यह बात सुनकर वह जीव बहुत पछताता और सोच करता है, पर प्राण उसका नहीं निकलता। जो मनुष्य अच्छे भोजन और अच्छे कपड़े केवल आप ही खाता व पहिनता है, अपने परिवार व साथवालों को नहीं देता, साधु-सन्त की सेवा नहीं करता उसको वहाँ बड़ी भूख मालूम होती है। तब यमदूत उसी के तन का मांस नोचकर उसे खाने के लिए देकर कहते हैं कि जिस तन का तुमने पालन किया था उसी को खाओ। जो कोई सन्त व महात्मा को दुर्वचन कहकर उन्हें टेढ़ी आँख से देखता है उसकी आँखें गिद्ध अपनी चोंच से फाड़कर उसका मांस और सिर का गूदा निकाल लेते हैं। जो मनुष्य या हाकिम किसी को बिना अपराध दंड देता है उसे दो पत्थरों की चट्टान में रखकर कोल्हू के समान पेरते हैं। जो कोई भोजन में किसी को विष देता या आग लगाता है उसको बहुत ऊँचे वृक्ष पर, जिसमें तलवार के समान पत्ते हैं,चढ़ाकर ऊपर से छोड़ देते हैं। उसका शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। जो मनुष्य परस्त्री गमन करता है उसके देह में लोहे की स्त्री बनवाकर आग में लाल करके लपटा देते हैं। जो कोई दूसरे की थाती बेईमानी से हड़प लेता है उसको आग के समान जलती हुई पृथ्वी पर लेटाकर गर्म-गर्म तेल शरीर पर छिड़कते और जलते हुए तेल के कड़ाह में डाल देते हैं, तो भी उसके प्राण नहीं निकलते। जो मनुष्य जीवहिंसा करता है उसको लालाभक्ष नरक में, जो पीब और मुँह के लार से भरा है, डालकर पानी की जगह वही पिलाते हैं। जो कोई न्याय व पंचायत व गवाही में पक्ष करके झूठ बोलता है उसको बहुत गहिरे अँधियारे कुएँ में, जो साँप व बिच्छू से भरा रहता है, बारम्बार डालते और निकालते हैं। साँप व बिच्छू के काटने से वह बहुत दुःख पाता है। हे माता, इसी तरह जो जैसा पाप करते हैं वैसा दण्ड उनको वहाँ मिलता है।

—:०:—

इकतीसवाँ अध्याय।

कपिलदेवजी का देवहूती से यह बात कहना कि नरक भोगने के उपरान्त जीव का क्या हाल होता है।

कपिलदेवजी ने कहा—हे माता! जो लोग कभी परमेश्वर का नाम नहीं लेते और कुकर्म के सिवा अच्छा काम कुछ नहीं करते उन्हीं मनुष्यों की वह गति होती है। फिर वे पशु-पक्षी आदि का तन पाते हैं, इसी तरह चौरासी लाख योनि में जन्म पाकर फिर उनको मनुष्य का तन मिलता है। पर वह लोग काने, कुबड़े, अंधे, रोगी, कुरूप व दरिद्री होकर संसार में सब तरह के दुःख उठाते हैं। जो मनुष्य जगत् में सुन्दर, धर्मात्मा, हरिभक्त, नीतिमान्, धनीपात्र दिखलाई दे उसे समझना चाहिए कि इसने स्वर्ग से आकर मृत्युलोक में जन्म लिया है। हे माता, ये दोनों बातें प्रत्यक्ष देखकर स्वर्ग व नरक से आनेवालों का हाल ज्ञानी मनुष्य को मालूम हो सकता है। जिस मनुष्य के पाप व पुण्य दोनों रहते हैं वह अपने कर्मों का फल भोगकर फिर मनुष्य का तन पाता है। जिसका केवल पुण्य ही होता है, पाप नहीं रहता, वह जीव मरने के उपरांत देवता व गन्धर्व का तन पाकर देवलोक व स्वर्ग में सुख भोग करता है। हे माता, यह जीव देवता या मनुष्य या कुत्ता या बिल्ली या शूकर आदि जिस तन में जन्म पाता है, परमेश्वर की माया से उसी योनि में सदा रहने की इच्छा करता और प्रसन्न रहता है। उसका मन परमेश्वर की कृपा के बिना संसार से विरक्त नहीं होता। जिस शरीर को अपना जानकर पालन करता है वह तन स्थिर नहीं रहता। सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण तीन तरह के स्वभाव होते हैं। जिसे रजोगुण अधिक रहता है वह राजसी कर्म करके सत्यलोक में जाता है, तमोगुण के अधिक रहने से पाप करनेवाला मनुष्य पाताल में नरक के बीच पड़ता है और सतोगुणी मनुष्य शुभ कर्म करके देवलोक में पहुँचते हैं। हे माता, सब जीवों की गति तीन तरह की जानकर जप, तप व दानादिक शुभ कर्मों को भी राजसी, तामसी, व सात्त्विकी समझो। जिसका जैसा स्वभाव होता है उसी बात में उसका मन

लगता और वह वैसा ही कर्म करता है। यह जीव अपने स्वभावानुसार कर्म करके बारम्बार संसार में जन्म लेकर दुःख व सुख भोगता है आवागमन से रहित नहीं होता। जिस तरह कुएँ से पानी भरने के लिए एक रहँट चरखी का बनाकर उसमें मेटियों का हार ऊपर से पानी तक पहिनाकर उस रहँट को घुमाते हैं तो एक मेटी ऊपर का पानी गिर जाने से खाली होकर दूसरी मेटियों में नीचे पानी भर जाता है उसी तरह इस जीव की गति समझना चाहिए कि एक तन से निकलकर अपने कर्मों का फल शुभ या अशुभ जैसा किया हो भोगने के उपरान्त दूसरे शरीर में जाता है। और जिस तन में जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार दूसरा चोला पाता है। यह बात सुनकर देवहूती ने कहा—महाराज! जब यही हाल है तो जीव का छुटकारा इस संसार से किसी तरह नहीं हो सकता। तब कपिलदेवजी बोले—हे माता, जन्म मरण से छूटने का उपाय हम तुमसे कहते हैं, सुनो। सत्य बोलना, आचार से रहना, सब जीवों की रक्षा करना, बिना प्रयोजन अधिक न बकना, बुद्धि को नष्ट न करना, कुसंगति व बुरे कामों से अलग रहना, सदा चित्त प्रसन्न रखना, जितना परमेश्वर दे उस पर सन्तोष करना, किसी के पास द्रव्य देखकर डाह न करना, शुभ कर्म करके संसार में यश कमाना, अयश किसी बात का न लेना, किसी पर क्रोध न करना, धर्म से कमाई करके अपना कालक्षेप करना, परमेश्वर के चरणों में प्रीति रखना, नारायणजी को अपना मालिक उत्पन्न करनेवाला जानते रहना, किसी जीव को दुःख न देना, परनारी से प्रसंग न करना, साधु-सन्त व ब्राह्मणों की सेवा करते रहना, परमेश्वर की कथा व कीर्तन सुनना, परमेश्वर के नाम का भजन करना, बड़ों की सेवा में रहकर कभी उनका अनादर न करना, भली-बुरी सब बातों को परमेश्वर की इच्छा समझना, अपने कर्म-धर्म पर वर्तमान रहना। हे माता! जो जीव मनुष्य तन पाकर इस तरह के कर्म करेंगे वे आवागमन से छूटकर भवसागर पार उतर जायँगे। पर ये सब गुण बिना सत्संग किये व कथा-पुराण सुने प्राप्त नहीं होते, इसलिए मनुष्य को महात्मा व ज्ञानी लोगों

से प्रेम रखना बहुत उचित है। जितना उनका सत्संग करे उतना अधिक गुण उसको हो। अधर्मी लोगों की संगति करने में, कदाचित् पहिले से भी कोई गुण उसमें होगा तो वह भी जाता रहेगा। संसार में परस्त्रीगामी, जुवारी, लोभी, चोर, मद्यप, चुगुल, झूठ बोलनेवाले और अपना शरीर पालन करनेवाले, जो सुख के लिए अपना धर्म छोड़ देते हैं उन लोगों की संगति कभी न करनी चाहिए। उन मनुष्यों की एक क्षण संगति करने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जो लोग परस्त्री से प्रसंग करते हैं उनका ज्ञान और धर्म दोनों नष्ट हो जाते हैं, इसलिए अपनी बेटी व बहिन के पास भी अकेले में बैठना न चाहिए, क्योंकि मनुष्य का चित्त सब क्षण एक तरह का नहीं रहता। कामदेव का मद ऐसा बुरा है जो मनुष्य का ज्ञान हरकर उससे बहुत पाप कराता है। एक समय ब्रह्माजी, जो संपूर्ण संसार और चारों वेदों के उत्पन्न करनेवाले हैं, वेद के अनुसार धर्म व अधर्म का विचार रखते हैं, सरस्वती नाम की अपनी कन्या के पास अकेले में बैठे थे। परमेश्वर की माया से उस कन्या की सुन्दरता देखकर ब्रह्मा के मन में पाप समाया। जब ब्रह्माजी कामदेव के नशे में मतवाले होकर अपनी बेटी से भोग करने चले तब वह धर्मरूपी कन्या उनका यह हाल देखकर बहुत लज्जित हुई और हरिणी का रूप धारण करके वहाँ से भागी। ब्रह्मा भी हरिण का रूप धरकर उसके पीछे दौड़े। उस समय सनकादिक उनके बेटों ने, जो परमेश्वर का अवतार हैं, वहाँ आकर ब्रह्मा को बहुत समझाया। तब ब्रह्मा ने ज्ञान प्राप्त होने से अति लज्जित होकर अपना वह तन छोड़कर दूसरा शरीर धारण किया। हे माता, जब ब्रह्माजी की यह दशा हुई, जिनसे ऋषीश्वर, मुनि, प्रजापति आदि सब संसारी जीव उत्पन्न हैं तो संसारी जीव जो सदा अज्ञान से भरे रहते हैं, उनकी क्या सामर्थ्य है जो कामदेव के वेग को रोक सकें। जिस तरह आँधी चलने से वृक्ष के पत्ते, घास और तिनके उड़ने लगते हैं उसी तरह जब परमेश्वर की माया से कामदेव अपना बल करता है तब योगी और ऋषीश्वर आदि किसी का मन चलायमान हुए बिना स्थिर नहीं रह सकता। मेरी माया दो रूपों से——एक जड़रूप द्रव्य, दूसरा चैतन्यरूप

स्त्री—संसार में फैली है। इन्हीं दोनों रूपों में संसारी लोग लपटकर नष्ट होते हैं। चैतन्यरूप माया तो छोड़ भी सकती है, पर जड़रूप माया नहीं छोड़ती, उसके मोह में सब मनुष्य फँसे रहते हैं। कदाचित् कोई पूछे कि मनुष्य चैतन्य चोला होकर जड़रूप माया में क्यों फँसता है ? उसका उत्तर यह देना चाहिए कि जिस तरह अच्छा गानेवाला, ताल व स्वर से प्रवीण, जब वन में अलगोजा बजाकर गाता है तब हरिण आदि वन-चर जीव उस शब्द पर मोहित होकर उस गानेवाले के पास आकर खड़े हो जाते हैं, और वह उन्हें पकड़कर बहुत दुःख देता है उसी तरह संसारी मनुष्य परमेश्वर का भजन व स्मरण, जो सदैव के लिए सुख की खानि है, छोड़कर जड़रूपी माया से अपना सुख समझते हैं और मायारूपी जाल में फँसकर बहुत दुःख पाकर पीछे पछताते हैं।

—:o:—

बत्तीसवाँ अध्याय।

कपिलदेवजी का देवहूती को तीन तरह का ज्ञान समझाना।

कपिलदेवजी बोले—हे माता ! हमने तुमसे स्त्री और द्रव्य दोनों को बुरा कहा, सो तुम्हारे मन में इस बात का सन्देह हुआ होगा कि संसार में स्त्री से सब जीवों की उत्पत्ति है और द्रव्य से अनेक प्रकार का सुख प्राप्त होता है, यदि इन दोनों को छोड़ दे तो संसारी काम किस तरह चले। इसका हाल मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। हमने द्रव्य और स्त्री को छोड़ देना गृहस्थाश्रम के लिए नहीं कहा। जो लोग गृहस्थी छोड़कर, परमेश्वर के नाम पर साधु, वैरागी व संन्यासी होकर वन या तीर्थों में रहकर अपना जीवन परमेश्वर के स्मरण व ध्यान में बिताते हैं उन लोगों को द्रव्य व स्त्री की संगति करना न चाहिए, और जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहकर परमेश्वर का भजन करके भवसागर पार उतरना चाहे, वह अपनी विवाहिता स्त्री से, रूपवती हो या कुरूपा, प्रीति रखकर दूसरी नारी का प्रसंग न करे। थोड़ा या बहुत जितना धन परमेश्वर उसको दे उतने में अपने परिवार का पालन करे। पाप की कौड़ी पर इच्छा न रक्खे। गृहस्थ को उचित है कि नित्य देवकर्म, पितृकर्म,

ठाकुरजी की पूजा व सेवा कर उनका भोग लगाकर भोजन किया करे। परमेश्वर की कथा सुनकर उसमें ध्यान लगाए रहे और यथाशक्ति साधु, सन्त, वैरागी और ब्राह्मण को भोजन व वस्त्र दिया करे। यज्ञ, तप, दान, व्रत आदि जो कर्म करे उसे परमेश्वर को अर्पण कर दे, अपने परिवार के लोगों को ऐसा जानता रहे कि संसार में ये सब मेरे पैर की बेड़ी के समान हैं। मुझे ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो इनके फंदे से छूट सकूँ। इस जाल से छुड़ानेवाले नारायणजी हैं। इस तरह का विचार हृदय में रखकर उनका पालन किया करे। गृहस्थ को अपना मन विरक्त रखना चाहिए। वैरागी व संन्यासी के वास्ते संसारी सुख का त्याग करना उचित है। हरिभक्त गृहस्थ के लक्षण हम तुमसे कहते हैं, सुनो। जिस तरह पानी में कमल का फूल जल से पृथक रहता है उसी तरह हरिभक्त गृहस्थ भी प्रत्यक्ष में गृहस्थी के बीच रहकर अपना मन संसारी माया से विरक्त रक्खें, मन को परमेश्वर के ध्यान में लगाए रहें तो गृहस्थ भी मरने के उपरान्त सूर्यमंडल में होकर वैकुण्ठ को जाते हैं। अब अज्ञानी गृहस्थों के लक्षण सुनो। वे लोग देवताओं और पितरों की पूजा और दान-पुण्य कुछ नहीं जानते, परमेश्वर के भजन-स्मरण व कथा-कीर्तन में प्रीति नहीं रखते केवल अपना परिवार पालने और इन्द्रियों को सुख देने में अपना जन्म बिताते हैं। पर परमेश्वर की भक्ति के बिना उनको कुछ सुख प्राप्त नहीं होता। वे लोग मरने के उपरान्त चन्द्रमंडल में होकर पितृलोक को जाते हैं। कुछ दिन वहाँ रहकर फिर संसार में जन्म लेते और अपने कर्मों का फल भोगते हैं। उत्तरायण सूर्य, शुक्लपक्ष में, दिन के समय मरनेवाला मनुष्य सूर्यमंडल में होकर वैकुण्ठ को जाता है और दक्षिणायन सूर्य, कृष्णपक्ष में, रात्रि के समय मरनेवाले मनुष्य चन्द्रमंडल की राह से देवलोक में जाते हैं। वहाँ का सुख अपने कर्मानुसार भोगकर उनको फिर संसार में जन्म लेना पड़ता है। पापी मनुष्य नरक में रहने के उपरान्त चौरासी लाख योनि में जन्म पाकर दुःख भोग करते हैं। जब तक मनुष्य इन्द्रियों का सुख नहीं छोड़ता तब

तक उसका शरीर अँगूठे के प्रमाण बना रहकर आवागमन में फँसा रहता है। मुक्त हो जाने से उसका वह शरीर छूट जाता है, फिर संसार में जन्म नहीं लेता। हे माता, इसके सिवा मुक्त होने का और एक हाल कहता हूँ, सुनो। मेरी राजसी भक्ति करनेवाले मनुष्य कई जन्म में मुक्त होते हैं और सात्त्विकी भक्ति करनेवाला मरने के उपरान्त पहिले ब्रह्मलोक में जाता है, अवधि बीतने पर वहाँ से गिरकर दूसरे जन्म में मुक्ति पाता है। निर्गुण भक्ति करनेवाले मनुष्य तन छोड़कर सीधे वैकुण्ठधाम को चले जाते हैं। इनके सिवा और तीन मार्ग मुक्त होने के हैं, सुनो। जो मनुष्य अपने वर्णानुसार, जैसा वेदशास्त्र में सब वर्णों का धर्म लिखा है, कर्म करके बुरे कामों से न्यारा रहे, दूसरे जो कोई परमेश्वर की पूजा व स्मरण प्रेम के साथ करे, तीसरे जो मनुष्य परमेश्वर का चमत्कार सब जीवों में एक-सा देखे और किसी के साथ शत्रुता न रक्खे तो वे लोग भी मुक्तपदवी को पहुँचते हैं। जिस तरह ऊख के रस से मिश्री, शक्कर और गुड़ बनता है, किन्तु जड़ तीनों की ऊख है, उसी तरह भक्ति, पूजा व योग आदि पृथक्-पृथक् मार्ग हैं, किन्तु सब मार्गों से पहुँचने का ठिकाना नारायणजी के चरण हैं। सो हे माता! गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी, योगी, यती कोई हो, जिसे परमेश्वर के चरणों में प्रीति है वह मुक्ति पाता है। जो मनुष्य परमेश्वर से प्रेम नहीं रखता उसके पिछले जन्मों का पाप उदय हुआ जानना चाहिए। वह अमृत छोड़कर समुद्र का खारा पानी पीकर उसमें मीठा स्वाद ढूँढ़ता है। जिस तरह शूकर को घी और चीनी खिलाओ तो उसे अच्छा नहीं मालूम होता, विष्ठा प्यारा लगता है, उसी तरह जिस जगह परमेश्वर की कथा व कीर्तन हरिभक्त लोग कहते हैं उस जगह से वह अधर्मी उठकर चुगुली और कुकर्म करनेवालों की संगति में आनन्द से बैठता है।

दो० तुलसी पिछले पाप से हरिचर्चा न सुहाय। जैसे ज्वर के जोर में भोजन की रुचि जाय॥

हे माता! मेरे चरणों में प्रीति करनेवाले का चित्त संसार के बुरे कामों से विरक्त होकर उसे अपना भला-बुरा दिखलाई देता है। मैंने यह सब ज्ञान जो तुमसे कहा, इसको कभी न भूलना। इस ज्ञान को स्मरण

रखने से तुम्हें इस विमान के छोड़ने का और कर्दमजी के और मेरे वियोग का दुःख न होगा। कलियुग में लोग इस ज्ञान को सुनकर इसी के अनुसार काम करके भवसागर पार उतर जायँगे। इस ज्ञान के प्रताप से तुम भी मुक्ति पाओगी।

दो० इसी ज्ञान-उपदेश को कहै सुनै चितलाय। भवसागर से पार ह्वै अन्त मिलै यदुराय॥

—:o:—

तेंतीसवाँ अध्याय

कपिलदेवजी का पूर्व दिशा में जाना और देवहूती का सरस्वती के किनारे बैठकर मुक्त होना।

मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा—हे विदुर! देवहूती ने यह ज्ञान सुनकर कपिलदेवजी को दण्डवत् करके विनती की—हे दीनानाथ! तुम्हारे उपदेश के प्रताप से मुझको संसारी माया-मोह और कर्दमजी के वियोग का दुःख सब छूट गया। आप ऐसे जगत् को उत्पन्न करनेवाले त्रिलोकी-नाथ नारायण ने मेरे गर्भ में वास किया, इसलिए मेरा अज्ञान छूट गया। अब मुझे गृहस्थी की इच्छा नहीं रही। महाप्रलय के समय ब्रह्मा-दिक देवता तुम्हारी माया में समाकर नष्ट हो जाते हैं, वह माया तुम्हारे रूप में मिल जाती है। आप अविनाशी पुरुष बालकरूप अँगूठे के प्रमाण होकर अकेले बरगद के पत्ते पर क्षीरसमुद्र में शयन करते हैं। अवतार धारण करना तुम्हारी इच्छा पर है। आप जिस समय जैसा रूप चाहें वैसा धारण कर सकते हैं। जिस तरह पहिले आपने वाराह, मत्स्य, कच्छप, नृसिंह, वामन आदि अवतार अपनी इच्छा से धारण किये और हरि-भक्तों को अपनी लीला दिखाकर वैकुण्ठ को चले गये थे उसी तरह अब भी आपने कृपा करके मेरे गर्भ से उत्पन्न होकर मुझे ज्ञान सिखलाया। ज्ञानरूपी औषध देकर संसाररूपी मेरा भारी रोग छुड़ाया। इतनी कथा सुनाकर मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा—हे विदुर! देवहूती की यह स्तुति सुनकर कपिलदेवजी बोले—हे माता! तुम इस सूर्यरूपी ज्ञान को बहुत उत्तम जानकर सदा याद रखना और सब किसी से मत कहना। जिस तरह सूर्य के प्रकाश से अन्धकार दूर हो जाता है उसी तरह यह ज्ञान याद रखने से मनुष्य की अज्ञानता छूट जायगी। गुरु, ब्राह्मण, साधु,

वैष्णव और हरिभक्तों को यह ज्ञान सुनाना, अधर्मी, मूर्ख ,चोर, लोभी, मिथ्यावादी और चुगुल से मत कहना। जो मनुष्य गुरु और परमेश्वर से विमुख रहे, दूसरे का उपकार न माने, गुरु की बात पर विश्वास न रक्खे, उसको भी यह ज्ञान सुनना न चाहिए।

यह बात कहकर कपिलदेवजी बोले—हे माता! अब मैं गंगासागर को जाता हूँ, तुमको जिस वस्तु की चाह हो सो माँग लो। यह सुनकर देवहूती ने विनय किया कि महाराज, जिसके तुम्हारे सदृश त्रिलोकीनाथ पुत्र उत्पन्न हो उसको फिर किस वस्तु की इच्छा रहेगी। अपनी माता का यह वचन सुनकर कपिलदेव मुनि पूर्व दिशा को चले गए। देवहूती ने अपना मन संसारी माया से विरक्त करके विमान आदि को उसी जगह छोड़ दिया और सरस्वती के किनारे बैठकर नारायणजी का स्मरण सच्चे मन से करने लगी। ध्यान करते-करते उसका शरीर जल के समान बहकर सरस्वती नदी से मिल गया और चैतन्य आत्मा मुक्ति पदवी पर पहुँचा।

जब कपिलदेवजी समुद्र के किनारे गंगासागर में पहुँचे तब समुद्र ने विधिपूर्वक उनकी पूजा, परिक्रमा और स्तुति करके उन्हें बैठने के लिए आसन दिया। वह इस वास्ते वहाँ बैठकर योगाभ्यास करने लगे कि कलियुग में मनुष्य योग व तप नहीं कर सकेंगे, उनको मेरे दर्शन से योगाभ्यास करने का फल प्राप्त हो। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, जो सांख्ययोग-ज्ञान कपिलदेव मुनि ने देवहूती से वर्णन किया था वही ज्ञान मैंने तुमको सुनाया। सांख्ययोग का तत्त्व यही है कि आत्मा को अविनाशी और अपने शरीर का नाश समझकर अपना मन संसारी माया में न लगावे। मैत्रेयजी ने विदुर से कहा कि मैंने कपिलदेव अवतार की कथा तुमको सुनाई। जो कोई इसको सच्चे मन से कहे व सुने वह मनुष्य संसार में वांछित फल पाकर अन्त समय मुक्तिपदवी पावेगा।

दो० कर्दम हू ते अति सरस करत जीव अभिमान।
तजत न टूटी झोपड़ी कर्दम तज्यो विमान॥

——:०:——

चौथा स्कन्ध।

सती का दक्ष प्रजापति के यज्ञ में तन त्याग करना और पार्वती नाम से हिमाचल पर्वत के यहाँ जन्म लेना तथा ध्रुवभक्त व राजा पृथु की कथा।

पहिला अध्याय।

अत्रि मुनि का उत्पन्न होना और तप करना। अत्रि मुनि के यहाँ चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा का जन्म लेना।

दो० नरनारायण गिरापति व्यासदेव शुकदेव। बार बार बिनवों तुम्हें हरो विघ्न बुधि देव॥

मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा—हे विदुर! अब हम संसार उत्पन्न होने का हाल कहते हैं, सुनो। ब्रह्माजी से मरीचि नामक बेटा उत्पन्न हुआ। उसके कश्यप व कला नाम दो पुत्र उत्पन्न हुए। फिर उसके आगे बहुत सन्तान हुई, जिनका हाल छठे स्कन्ध में आवेगा। अब मैं स्वायम्भुव मनु की सन्तान का हाल कहता हूँ, सुनो। राजा स्वायम्भुव मनु के देवहूती आदि तीन कन्याएँ और उत्तानपाद, प्रियव्रत नाम के दो बेटे हुए। देवहूती का विवाह कर्दम ऋषीश्वर से हुआ था, जिनके यहाँ कपिलदेव भगवान ने अवतार लिया। उसका हाल मैं वर्णन कर चुका। अब अन्य दोनों बेटियों का हाल सुनो। एक कन्या का विवाह दक्ष प्रजापति से और दूसरी बेटी का विवाह रुचि प्रजापति से स्वायम्भुव मनु ने कर दिया। रुचि प्रजापति के उस कन्या से अत्रि नाम का बेटा उत्पन्न हुआ और अत्रि से तीन बेटे हुए। इतनी कथा सुनकर विदुरजी ने मैत्रेय ऋषीश्वर से कहा—महाराज! तीनों बेटों के उत्पन्न होने का हाल वर्णन कीजिए। तब मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! अत्रि ने भी ब्रह्माजी की

आज्ञा से संसार उत्पन्न करने की इच्छा रखकर मन में ऐसा विचार किया कि मेरे पुत्र को भी संसारी जीव उत्पन्न करना होगा, इस वास्ते पहिले परमेश्वर का तप करके पीछे से सन्तान उत्पन्न करें, जिसमें वह धर्मात्मा हो। ऐसा विचारकर अत्रि मुनि ने अपनी स्त्री अनसूया समेत तप करना आरम्भ किया, पर किसी देवता का नाम न लेकर कर्ता कहकर तप करते थे। जब सौ वर्ष तप करते बीत गए तब ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी तीनों देवतों ने जाकर अत्रि मुनि को दर्शन दिया। मुनीश्वर ने तीनों देवतों की पूजा और स्तुति करके कहा—महाराज! मैंने तो एक देवता का तप किया था, आप तीन देवतों ने किस वास्ते मुझे दर्शन दिया। अब मैं अपनी कामना किससे माँगूँ। यह वचन सुनकर विष्णु ने अत्रि मुनि को उत्तर दिया कि तुम तप करते समय कर्ता का नाम लेते थे, हम तीनों देवता कर्ता हैं, एक-एक काम उत्पत्ति, पालन और नाश जगत् का करते हैं। हम लोगों ने आदिज्योति निरंकार की महिमा से जन्म पाया है। निर्गुण निरंकार किसी को अपना दर्शन नहीं देते उन्हें कोई आँख से देख नहीं सकता, पर जगत् का सब काम उनकी आज्ञानुसार हम लोग करते हैं। अपने-अपने काम पर, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, उनकी ओर से वर्तमान हैं। जो तुझे इच्छा हो सो हम लोगों से वरदान माँग। यह वचन सुनते ही अत्रि मुनि ने दण्डवत् करके उनसे कहा—महारज! मैं भाग्यवान् व धर्मात्मा पुत्र चाहता हूँ। तब ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी अत्रि मुनि को उनकी इच्छापूर्वक वरदान देकर अपने-अपने लोक को चले गये। अत्रि मुनि के यहाँ दत्तात्रेय विष्णु भगवान् की कृपा से, दुर्वासा महादेव के आशीर्वाद से और चन्द्रमा ब्रह्मा की दया से, तीन पुत्रों ने जन्म लिया। उनमे दुर्वासा बड़े क्रोधी, आँख खोले उत्पन्न हुए। दुर्वासा, चन्द्रमा और दत्तात्रेय से बहुत सन्तानें हुईं, उनका नाम संस्कृत भागवत में लिखा है। इतनी कथा सुनाकर मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा—हे विदुर! स्वायम्भुव मनु की दूसरी कन्या का हाल भी, जो रुचि प्रजापति से विवाही गई थी, तुमको सुनाया। अब तीसरी बेटी, जो दक्ष प्रजापति से विवाही थी, उसकी सन्तान का हाल सुनो। दक्ष प्रजापति

के उस स्त्री से साठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं, उनमें सती नाम की कन्या का विवाह महादेवजी से हुआ था।

दूसरा अध्याय।

दक्ष प्रजापति का महादेवजी से बुरा मानना और महादेवजी को शाप देना।

विदुर ने इतनी कथा सुनकर मैत्रेय ऋषीश्वर से पूछा कि महाराज, सतीजी ने अपना तन किस तरह त्याग किया था, उसका हाल वर्णन कीजिए। मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा कि सतीजी का विवाह होने के उपरान्त एक दिन महादेव बहुत-से देवताओं व ऋषीश्वरों समेत ब्रह्माजी की सभा में बैठे थे। उस समय दक्ष प्रजापति वहाँ आये, सो सबने उठकर उन्हें बड़े आदर से बैठाला। पर उस समय शिवजी, जो अपनी आँख बन्द किये हुए परमेश्वर के ध्यान में मग्न थे, नहीं उठे। उन्होंने दक्ष प्रजापति को दण्डवत् भी नहीं किया। इस कारण दक्ष ने क्रोध करके कहा—इनको लोग ज्ञानी, तपस्वी और सत्यवादी कहते हैं, यह बात झूठ है। इनका नाम वृथा देवतों ने महादेव रक्खा है। हमने भूलकर ब्रह्माजी के कहने से अपनी बेटी का विवाह महादेवजी से, जो एक लोकपाल के तुल्य हैं, किया। ये इस विवाह के योग्य नहीं थे। मेरी कन्या विवाहने से देवतों में इनकी प्रतिष्ठा अधिक हो गई। इन्हें ऐसा अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे दामाद होकर मुझे दण्डवत् भी नहीं करते। मैंने महासुन्दरी मृगलोचनी सती नाम की कन्या का विवाह भूतों के राजा महादेव के साथ, जो दिन-रात श्मशान पर बैठे रहते हैं, कर दिया। यह वैसा ही काम हुआ जिस तरह कोई मनुष्य शूद्र को वेद पढ़ावे। यह दुर्वचन कहने के उपरान्त दक्ष प्रजापति ने उसी सभा में खड़े होकर ब्रह्मादिक देवताओं और ऋषीश्वरों के सामने शिवजी को यह शाप दिया कि आज से किसी यज्ञ में महादेव का भाग न लगाया जाय। शिवजी ने ऐसा शाप सुनकर कुछ उत्तर न दिया, उसी तरह चुपचाप बीच परमेश्वर के ध्यान में बैठे रहे। जब दक्ष ऐसा शाप देकर

अपने घर को चले तब नन्दीगण ने विचारा कि देखो शिवशंकर भोलानाथ हमारे स्वामी को बिना अपराध इस ब्राह्मण ने शाप दिया है, इसलिए मैं भी ब्राह्मण को शाप दूँगा। यह विचारकर नन्दीगण ने सब सभावालों को सुनाकर कँहा कि हे दक्ष, मैं तुझे और सब ब्राह्मणों को शाप देता हूँ कि ब्राह्मण लोग वेद-पुराण पढ़ने पर भी अन्तिम अवस्था का सोच न रक्खेंगे और अपनी पूजा, पाठ, तप व जप का फल मनुष्यों के हाथ रुपया-पैसा लेकर बेचेंगे। प्रणाम किये बिना ही सबको आशिष देंगे। सब जगह भोजन करेंगे, धर्म-अधर्म का विचार न करेंगे। नन्दीगण का यह शाप सुनकर भृगु ऋषीश्वर ने, जो उस सभा में बैठे थे, कहा कि नन्दीगण! तुमने दक्ष प्रजापति के अपराध करने पर सब ब्राह्मणों को व्यर्थ शाप दिया, इसलिए मैं भी महादेव के भक्तों को शाप देता हूँ कि वे लोग परलोक का डर छोड़कर मद्य पियेंगे और अपने शरीर पर राख मलेंगे। कानों में बड़े-बड़े छेद करावेंगे। महादेवजी के समान योगियों का वेष बनावेंगे। पूजा-पाठ करने का फल उन्हें प्राप्त न होगा। जब यह शाप हो चुका तब दक्ष प्रजापति अपने स्थान को चले आये। महादेवजी भी नन्दीगण और भृगु ऋषीश्वर का यह झगड़ा देखकर नन्दी बैल पर चढ़कर कैलास को चले गये और समाधि लगाकर परमेश्वर का ध्यान करने लगे। सब देवता और ऋषीश्वर आदि भी उस सभा में यह हाल देखकर दुःखित होकर अपने-अपने घर चले गये। दक्ष प्रजापति ने अपने घर पहुँचकर यह विचार किया कि मैंने देवताओं और ब्राह्मणों की सभा में ऐसा शाप दिया कि कोई महादेव का भाग यज्ञ में न निकाले, पर इस बात का आरम्भ पहिले मुझे करना चाहिए। जब हम अपने घर यज्ञ करके सब देवताओं, ऋषीश्वरों और ब्राह्मणों को बुलाकर महादेव का यज्ञ में भाग न देंगे तब अधिक अपमान होगा और कोई मनुष्य भी यज्ञ में उनका भाग न निकालेगा। ऐसा विचारकर दक्ष प्रजापति ने यज्ञ की तैयारी करके सब देवताओं, दैत्यों, ऋषीश्वरों को नेवता भेज दिया।

तीसरा अध्याय।

सब देवता, ऋषीश्वर और गन्धर्वादि का अपने-अपने विमानों पर चढ़कर दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जाना और सतीजी का कैलास पर्वत पर से देखना।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! जब दक्ष प्रजापति के नेवता भेजने से सब देवता, दैत्य, ऋषीश्वर, मुनि, ब्राह्मण, गन्धर्व और किन्नरादि अपनी-अपनी स्त्रियों समेत अच्छे-अच्छे गहने व कपड़े पहिनकर उत्तम-उत्तम विमानों पर सवार होकर गाते-बजाते उनके यज्ञ में नेवता करने चले तब सतीजी ने उनके जाने का शब्द सुनकर लोगों से पूछा कि आज आकाशमार्ग में भीड़ दिखाई देने का क्या कारण है। यह बात सुनकर महादेवजी के गण बोले—तुम्हारे पिता दक्ष प्रजापति के यहाँ यज्ञ है, इसलिए सब देवता और ऋषीश्वर आदि अपनी-अपनी स्त्रियों समेत वहाँ नेवता करने जाते हैं। ऐसा सुनते ही सतीजी ने उदास होकर मन में कहा कि मेरे बाप ने अपने यज्ञ में और लोगों को तो नेवता भेजा, पर मुझे और महादेवजी को न बुलाकर मेरा अपमान किया। कदाचित् काम-काज की अधिकता में भूल गये हों सो माता-पिता, गुरु व मित्र के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिए, इसमें कुछ अपमान नहीं होता। इसलिए वहाँ जाकर सबसे भेंट करके वह आनन्द देखना उचित है। मेरे न जाने से देवताओं की स्त्रियाँ वहाँ इकट्ठी होकर आपस में कहेंगी कि क्या कारण है जो दक्ष प्रजापति ने सती को नहीं बुलाया। इसमें हमारे माता-पिता का भी अपमान है और मेरा भी मरते समय तक इस बात का पछतावा मन में रह जायगा। ऐसा विचारकर सती ने महादेवजी से विनय किया कि हे महाप्रभु! मेरे पिता के यज्ञ में सब देवता आदि अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ लेकर नेवता करने जाते हैं, कदाचित् मेरे माता-पिता ने काम-काज की भीड़ में भूलकर आपको और मुझे नहीं बुलाया। वे मेरे पिता हैं, बिना बुलाये जाने में कुछ लज्जा नहीं है। वहाँ पर मेरी सब बहिनें अपने-अपने पति के साथ आवेंगी। मुझे बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि कोई उत्सव का काम मेरे बाप के यहाँ हो तो मैं भी तुम्हारे साथ वहाँ जाऊँ, सो आप

दया करके मुझे अपने साथ लिये हुए वहाँ चलिए। सबसे भेंट करके मुझे परम आनन्द होगा। सती का यह वचन सुनकर महादेवजी ने दक्ष प्रजापति से शत्रुता होने का हाल सुनाकर कहा–हे सती, तुम्हारा पिता मुझसे शत्रुता रखता है, यदि वह मुझसे शत्रुता न मानता तो बिना बुलाये भी हम जाते। अब बिना बुलाये उसके यहाँ जाऊँ और वह मेरा आदर न करे, अपना मुँह फेर लेवे, या कोई दुर्वचन कहे तो इसमें अच्छा नहीं, क्योंकि तीर और तलवार के घाव मलहम से भर जाते हैं पर जिह्वा का घाव, जो किसी के दुर्वचन कहने से कलेजे में पड़ जाता है, वह किसी तरह अच्छा नहीं होता। उसकी औषध दुर्लभ है, इसलिए मैं तुम्हारे पिता के यज्ञ में नहीं जाऊँगा। जब शिवजी ने जाना अंगीकार नहीं किया तब सतीजी विनयपूर्वक बोलीं कि आप नहीं जाते तो मुझको आज्ञा दीजिए। मुझे अपने माता-पिता के घर बिना बुलाये जाने में कुछ लज्जा नहीं है। यह वचन सुनकर महादेवजी ने कहा–हे सती! दक्ष प्रजापति अपने राज्य व धन के मद में गर्वित है, मेरी शत्रुता से तुम्हारा भी अपमान करेगा, तब तुम बहुत दुःख पाओगी और तुम्हारा निरादर होने से मुझे भी क्रोध उत्पन्न होगा, इसलिए तुम्हारा जाना भी किसी तरह उचित नहीं है। नारायणजी की इच्छा से सती ने उनके समझाने पर भी न माना और फिर शिवजी से कहा कि मेरे न जाने पर अपनी साठ बहिनों के निकट मेरा अनादर होगा। वह लोग मुझको ताना मारेंगी। इसलिए मेरे बिना गये नहीं बनता। मुझे आज्ञा दीजिए तो जल्दी जाऊँ। शिवजी ने ऐसा वचन सुनकर मन में विचार किया कि सती ने आज तक कोई काम मेरी आज्ञा के बिना नहीं किया था, आज यह जाने के वास्ते ऐसा हठ करती है और मेरा कहना नहीं मानती, इससे मालूम होता है कि वहाँ जाने में इसका कल्याण नहीं है। होनहार प्रबल होता है, परमेश्वर की इच्छा में किसी का वश कुछ नहीं चलता। ऐसा विचारकर महादेवजी ने सती से कहा कि जो तुम्हारी इच्छा हो, वह करो।

चौथा अध्याय ।

सती का अपने पिता के घर जाना और उसी यज्ञ में अपना तन त्याग करना ।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर ! जब शिवजी के मना करने पर भी सतीजी अपने पिता के स्थान पर चलीं तब महादेवजी ने अपने कई गण उनके साथ कर दिये कि वहाँ न जाने क्या दशा हो। जब सतीजी दक्ष प्रजापति के यज्ञ में पहुँचीं तो उनको देखते ही दक्ष प्रजापति ने अपना मुँह फेर लिया, उनसे कुछ नहीं पूछा। अपने बाप की यह दशा देखकर सती बड़े सोच से मन में कहने लगीं कि मैंने बहुत बुरा काम किया, जो महादेवजी की आज्ञा न मानकर यहाँ आई। मैंने अपने पति का कहना नहीं माना, उसका फल आँखों से देखा। अब कोई ऐसा बहाना मिल जाय तो मैं जल्दी यहाँ से शिवजी के पास चली जाऊँ। सतीजी की माता के सिवा और सब स्त्रियाँ, जो यज्ञ में आई थीं, दक्ष प्रजापति के बुरा मानने से सती के साथ प्रीतिपूर्वक नहीं बोलीं। सती यह हाल देखकर दुःख सागर में डूबी हुई यज्ञशाला में बैठी थीं। जब आहुति देने का समय आया और यज्ञ करानेवालों ने दक्ष से महादेवजी के नाम पर आहुति देने के लिए पूछा तब दक्ष प्रजापति शिवजी को दुर्वचन कहकर उनसे कहा कि हमने देवताओं और ऋषीश्वरों की सभा में महादेव को शाप दिया है कि यज्ञ में कोई उनका भाग न निकाले, इस वास्ते तुम लोग महादेव के नाम पर आहुति मत दो। यह कठोर वचन सुनकर और शिवजी का भाग न देखकर, सतीजी को बड़ा क्रोध आया। जब उनसे वह क्रोध रोका नहीं गया तब उन्होंने दक्ष से कहा—हे पिता, तुम शिवजी की बड़ाई और महिमा को नहीं जानते। वे सब देवतों में श्रेष्ठ हैं। किसी के साथ शत्रुता नहीं रखते। तुम व्यर्थ अपनी अज्ञानता से बिना समझे उनके साथ वैर रखते हो। महात्मा लोग गुण को लेते हैं, अवगुण की तरफ नहीं देखते। शिवजी सब गुणों से भरे हुए, केवल जगत् में लोगों को दिखलाने के वास्ते अपना रूप भयानक बनाये रहते हैं, उसको तो तुमने देखा, पर उनके गुणों

को नहीं जाना। सनकादिक व नारदादि उनके चरणों का ध्यान अपने हृदय में रखते हैं। तुम्हारी पदवी ऐसी नहीं है, जो उनसे बराबरी कर सको। वे तीनों लोकों में श्रेष्ठ हैं, तुम बीच सभा में दुर्वचन कहकर उनका अनादर करते हो, ऐसा न चाहिए। तुम्हें क्या कहूँ, तुम मेरे पिता हो, पर मैं तुम्हारे सामने इसी क्रोध में अपना यह तन, जो तुमसे उत्पन्न हुआ है, त्यागे देती हूँ, जिसमें तुम्हारे-ऐसे अधर्मी और अज्ञानी के साथ शिवजी का नाता न रहे। व्यर्थ उनके साथ शत्रुता करने का फल तुमको पीछे से मिलेगा। ऐसा वचन कहकर सतीजी ने उसी जगह उत्तर मुँह बैठकर योगाभ्यास करके अपना तन अग्नि से जला दिया। जब शिवजी के गणों ने, जो साथ में आये थे, सती का यह हाल देखा तब क्रोध करके अपने-अपने शस्त्र लेकर चाहा कि जो लोग यहाँ हैं उन्हें मारपीट कर दक्ष प्रजापति का यज्ञ विध्वंस कर डालें। गणों की इच्छा जानकर भृगु ऋषीश्वर ने यज्ञ की रक्षा के लिए, कुछ मन्त्र पढ़कर अग्निकुंड में आहुति डाला तो अग्नि पुरुष, वैताल और वीरभद्र तीन जने उस कुण्ड से निकलकर बोले कि हे ऋषीश्वर महाराज, जो आज्ञा हो सो पालन करें। भृगु ऋषीश्वर ने कहा कि महादेव के गण इस यज्ञ को भ्रष्ट करना चाहते हैं, सो तुम लोग उन्हें बाहर निकाल दो। यह बात सुनते ही उन तीनों ने महादेवजी के गणों को धक्का देकर यज्ञशाला से बाहर निकाल दिया।

पाँचवाँ अध्याय।

नारद मुनि का महादेवजी के पास आना और सतीजी के तन त्याग करने तथा गणों के निकाले जाने का हाल कहना।

मैत्रेयजी ने विदुर से कहा कि जिस समय सतीजी ने अपना तन त्याग किया और महादेवजी के गण उस सभा से निकाले गये उसी समय नारद मुनि यह सब हाल देखकर शिवजी के पास कैलास पर्वत पर पहुँचे। शिवशंकर ने नारद मुनि को देखकर दंडवत् करके बड़े आदर

से बैठाकर पूछा—कहो मुनिनाथ! कहाँ से आते हो? नारदजी बोले—महाराज! आपको यह मालूम है या नहीं कि आज सती ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ में आपकी निन्दा सुनकर अपना तन छोड़ दिया और भृगु ऋषीश्वर के मंत्र पढ़ने से आपके गण भी अपमानित होकर उस सभा से निकाले गये, इसका कुछ उपाय करना चाहिए। यह कहकर नारद मुनि चले गये। शिवजी ने सती का मरना सुनते ही क्रोधवन्त होकर अपनी जटाएँ पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे वीरभद्र नामक एक महाबली गण उत्पन्न होकर हाथ जोड़कर बोला—मुझे जो आज्ञा हो सो करूँ। शिवजी ने कहा—तू बहुत जल्द दक्ष प्रजापति के यज्ञ में चला जा और उसका शिर काटकर अग्नि कुण्ड में डाल दे। जो लोग उस सभा में बैठे हों उन्हें वहाँ से बाहर निकाल दे। यह वचन सुनते ही वीरभद्र, जिसका शरीर पहाड़ के समान था, त्रिशूल लेकर भूत-प्रेत की सेना के साथ वहाँ से चला और क्षण भर में यज्ञशाला में पहुँचा। उसने दक्ष प्रजापति का शिर काटकर अग्निकुण्ड में डाल दिया और भृगु ऋषीश्वर की दाढ़ी नोच डाली। देवता, ऋषीश्वर, गन्धर्व, ब्राह्मण और किन्नर आदि, जो उस सभा में थे, उन्हें मारपीट कर अंग-भंग कर डाला। वहाँ से सबको बाहर निकाल दिया और यज्ञ की सब सामग्री फेंक दी। जब शिर काटने पर भी दक्ष प्रजापति के प्राण नहीं निकले तब मूकों से उसे मार डाला। जो लोग दक्ष के यहाँ न्योता करने आये थे वे सब दुखित होकर भागे और आपस में कहने लगे कि महामूर्ख दक्ष ने महादेवजी का, जो सब देवतों में श्रेष्ठ हैं, जैसा अपमान किया वैसा फल उसे मिला। वीरभद्र ने यज्ञ का विध्वंस करके शिवजी के पास आकर सब हाल कहा, तब भोलानाथ ने परमेश्वर की इच्छा से सती की मृत्यु समझकर अपना क्रोध शान्त किया। अन्तर्यामी विष्णु भगवान् और ब्रह्माजी पहिले से यज्ञ विध्वंस होने का हाल जानकर वहाँ नहीं गये थे।

छठा अध्याय।

भृगु आदि ऋषीश्वरों और देवतों का ब्रह्माजी के पास जाना और वीरभद्र का हाल कहना।

मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा—हे विदुर! जब वीरभद्र ने सबको मारपीट कर यज्ञशाला से बाहर निकाल दिया तब उन लोगों ने ब्रह्माजी के पास जाकर अपना हाल उनसे कहा। ब्रह्माजी उनका वृत्तान्त सुनकर बोले कि तुम लोगों ने बहुत बुरा काम किया, जो यज्ञ में बैठकर शिवजी की निन्दा अपने कानों से सुनते रहे और महादेवजी का भाग यज्ञ में बन्द करके अपना-अपना अंश लिया। ऐसा अधर्म करना तुम्हें उचित नहीं था। जैसा अपराध किया वैसा फल पाया। महादेवजी सब देवताओं और तीनों लोक के जीवों से श्रेष्ठ हैं, वे परमेश्वर-तुल्य हैं, मैं उनका कुछ नहीं कर सकता। तुम लोग मेरे साथ उन्हीं की शरण में चलो, उनकी स्तुति करके तुम्हारा अपराध क्षमा कराऊँ। ब्रह्माजी सब देवताओं और ऋषीश्वरों को साथ लेकर कैलाश पर्वत पर गये। उस पहाड़ पर पत्थर की जगह लाल, पन्ना व हीरा आदि अनेक तरह के मणि व रत्न थे। वह पहाड़ सोरह सौ कोस ऊँचा और बारह सौ कोस के घेरे में है। वहाँ बरगद आदि के बहुत वृक्ष लगे रहने से धूप का प्रकाश नहीं होता सदा ठंढी छाया बनी रहती है। अनेक रंग के फूल ऐसे लगे हैं कि जिसकी सुगन्ध कोसों तक उड़ती है। अनेक प्रकार के फल बारहों महीने वृक्षों में लगे रहते हैं, वे अमृत के समान स्वाद देते हैं। वहाँ पर तालाब, बावली, नहर व झरना ऐसे निर्मल भरे हैं कि जिनके देखने से आँखों में तरावट आ जाती है। तालाब और बावली के किनारे सुन्दर पक्षी मीठी बोली बोलनेवाले सारस, तोता, कोकिला और मोर आदि बैठे हुए चहचहे मचाते हैं। उस जगह देवकन्या और गन्धर्व आदि आकर जिस वस्तु की इच्छा करते हैं, उनका सब मनोरथ सिद्ध होता है। वह शोभा देखकर उनका मन मोहित हो जाता है और वे लोग सेतुगंगा में, जो धारा हिमाचल

पहाड़ से उतरकर वहाँ आई है, स्नान करके प्रसन्न हो जाते हैं। उसी पहाड़ पर बरगद का एक वृक्ष, जो चार सौ कोस ऊँचा और तीन सौ कोस चौड़ा था, उसके नीचे महादेवजी मृगछाला पर बैठे हुए नारद मुनि व सनकादिक अपने चेलों से परमेश्वर का गुणानुवाद कह रहे थे और योग, तप, वेदादिक अपना-अपना रूप धारण किये उनके सामने बैठे थे, उसी समय ब्रह्माजी सब ऋषीश्वरों और देवताओं समेत वहाँ जा पहुँचे। शिवजी ने ब्रह्मा को देखते ही दण्डवत् करके बड़े आदर भाव से उन्हें अपने पास बैठाया। ब्रह्माजी शिवशंकर को नमस्कार करके उनके सामने बैठे और देवतादिक, जो ब्रह्मा के साथ गये थे, शिवजी को दण्डवत् करके यथायोग्य स्थान पर चारों तरफ बैठ गये। महादेवजी के मन में दक्ष प्रजापति से शत्रुता होने और सती के तन त्याग करने का शोक नहीं था, परमेश्वर की इच्छा पर इन सब बातों को समझकर उस समय वे हरिचर्चा में ऐसे मग्न थे कि उन्हें इस बात का कुछ ध्यान नहीं हुआ कि ब्रह्माजी देवताओं का अपराध क्षमा कराने के लिए आए हैं। वीरभद्र ने ऋषीश्वरों और देवतों को भी मारा है। ब्रह्मा के आने पर भी वे हरिचरित्र कहते रहे। तब ब्रह्मा ने शिवजी की बहुत स्तुति करके उनसे विनय किया कि आप सब देवतों के मालिक हैं, इसलिए आपका नाम महादेव हुआ। दक्ष आपकी प्रभुता नहीं जानते थे। उन्होंने आपका अपमान किया वैसा उन्हें फल मिला। उनके निरादर करने से आपकी बड़ाई कम नहीं हो गई। जिस तरह कोई मनुष्य चन्द्रमा पर थूके तो वह थूक चन्द्रमा पर नहीं पड़ता, उसी थूकनेवाले के मुँह पर गिरता है, वही हाल दक्ष का हुआ। अब मेरे विनय करने से दयालु होकर दक्ष का अपराध क्षमा कीजिए। जो देवता और ऋषीश्वर आदि उस सभा में थे, वीरभद्र ने उनको भी बहुत दुःख दिया। कितनों के पैर तोड़ डाले, कितनों की आँखें फोड़ डालीं, वे लोग भी आपके भय से घबरा रहे हैं। इसलिए उनको धैर्य देकर ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि जिसमें उनका घायल शरीर अच्छा होकर वे लोग ज्यों के त्यों हो जायँ और दक्ष प्रजापति आपकी कृपा से फिर

जीकर अपना यज्ञ विधिपूर्वक सम्पूर्ण करें। सब देवता और ऋषीश्वर भी वहाँ आकर अपना-अपना भाग पावें। आप भी मेरे साथ वहाँ चलिए मैं नारायणजी को भी विनय करके वहाँ ले आऊँगा। यज्ञ करने में जो साकल्य बच जाती है वही साकल्य आपका भाग होगा, सो आप अपना भाग पावेंगे। ये सब बातें ब्रह्माजी की सुनकर शिवजी ने कहा—मैं किसी से शत्रुता नहीं रखता, अज्ञान के कहने का कुछ बुरा नहीं मानता, सती के प्राण देने का हाल सुनकर मुझे क्रोध आ गया था, सो दक्ष प्रजापति अपनी करणी को पहुँचा। सती के प्रारब्ध में इसी तरह तन त्याग करना लिखा था, जो कुछ परमेश्वर की इच्छा थी, वह बात हुई। अब जो आज्ञा दीजिए सो करूँ। जो कोई बड़ों का कहना नहीं मानता, वह पीछे से दुःख पाता है।

—:०:—

सातवाँ अध्याय।

महादेव और ब्रह्मादिक देवतों का दक्ष प्रजापति की यज्ञशाला में जाना।

मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर! जब कैलास पर्वत से शिवशंकर और ब्रह्माजी सब देवतों और ऋषीश्वरों को साथ लेकर दक्ष प्रजापति की यज्ञशाला में गये और जो देवता आदि वीरभद्र के डर से भाग गये थे वह भी वहाँ पर आये तब शिवजी ने, जिन देवतों और ऋषीश्वरों का शरीर वीरभद्र के मारने से घायल हो गया था, उनको अपनी कृपादृष्टि से अच्छा कर दिया। भृगु ऋषीश्वर की दाढ़ी के बाल बकरे की दाढ़ी लगाने से फिर उसी तरह जम गये। उस समय ब्रह्मा ने शिवजी से कहा, दक्ष प्रजापति की जो लोथ पड़ी है, इसको भी जिलाना चाहिए। तब महादेवजी बोले—दक्ष का शिर जो अग्निकुंड में जल गया वह नहीं तैयार हो सकता, कहो तो यज्ञ के बकरा का शिर दक्ष के धड़ से लगाकर उसे जिला दें। ब्रह्मा ने इस बात को मान लिया और शिवजी ने बकरे का शिर दक्ष प्रजापति के धड़ से लगाकर उसे जिला दिया। शिवजी की कृपा से यज्ञशाला का स्थान फिर ज्यों का त्यों हो गया।

दक्ष प्रजापति ने महादेवजी को देखते ही उन्हें दंडवत् करके हाथ जोड़कर अधीनता से विनय किया—हे महाप्रभु! मैंने आपकी बड़ाई और महत्त्व न जानकर जैसी करणी आपके साथ की वैसा फल पाया। आप कृपा करके यहाँ आये व मुझे अपनी प्रभुता से फिर जिलाया, और मुझ अज्ञान का अपराध क्षमा किया। सच है जिनको परमेश्वर ने महत्त्व दिया है, वे लोग छोटे और मूर्ख मनुष्य की बात पर ध्यान नहीं देते। जितने देवता, ऋषीश्वर, गन्धर्व और किन्नर आदि स्त्री व पुरुष दक्ष के यहाँ नेवता करने आये थे, वे लोग भी शिवजी की यह महिमा देखकर इसी तरह स्तुति करने लगे। जब महादेवजी की आज्ञा से दक्ष प्रजापति फिर यज्ञ करने बैठे तब ब्रह्मा, महादेव और विष्णु भगवान् ने सब देवताओं और ऋषीश्वरों समेत शास्त्र के अनुसार दक्ष से उस यज्ञ को संपूर्ण कराया। यज्ञ सम्पूर्ण होते ही अग्निकुंड से यज्ञ-पुरुष भगवान् चतुर्भुजी मूर्ति ने, वैजन्ती माला, कौस्तुभमणि और फूलों के हार गले में डाले, गरुड़ पर चढ़े प्रकट होकर दर्शन दिया। उनको देखते ही जितने छोटे-बड़े वहाँ बैठे थे, उठ खड़े हुए और उस पुरुष को साष्टांग दण्डवत् किया। दक्ष प्रजापति हाथ जोड़कर यज्ञ-भगवान् से बोले—हे वैकुण्ठनाथ! इस यज्ञ के आरम्भ में मैंने महादेव का अपमान किया, इसलिए मेरा यज्ञ विध्वंस हो गया था। अब मेरा भाग्य उदय हुआ, जो आपने दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया। मेरा यज्ञ आपकी कृपा से सम्पूर्ण हुआ, अब दया करके ऐसा वरदान दीजिए कि मुझको फिर दुर्बुद्धि न व्यापे। फिर भृगु ऋषीश्वर बोले—हे दीना-नाथ! मैं ब्राह्मण और तपस्वी होने पर भी अपने क्रोध को वश में नहीं रख सका, इस कारण मुझे यह दण्ड मिला। आप दयालु होकर ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि मेरा क्रोध छूट जावे, क्योंकि जब तक काम, क्रोध, मोह और लोभ अपने अधीन नहीं होते तक तब आपकी भक्ति नहीं प्राप्त होती। जब इसी तरह ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, गन्धर्व, लोकपाल, किन्नर तथा सब देवताओं और ऋषीश्वरों ने बहुत स्तुति की तब यज्ञपुरुष ने दक्ष से कहा—तुमने यह बहुत अनुचित किया जो

महादेवजी का अपमान किया। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों देवतों को तुम एक-सा जानो। जिस निरंकार पुरुष का लोग जप करते और अपना उत्पन्न करनेवाला जानते हैं उसी के ध्यान में तुम भी लीन रहो, तब तुमको ज्ञान प्राप्त होगा। जिस समय यज्ञपुरुष ने यह बात कही उस समय आकाश से उन पर फूलों की वर्षा हुई और सब लोगों ने जय-जयकार किया। तब यज्ञपुरुष सबको इच्छापूर्वक वरदान देकर वैकुण्ठ को पधारे और ब्रह्मादिक देवता व ऋषीश्वर भी अपने-अपने स्थान को गये। दक्ष प्रजापति उस दिन से शिवजी को अपना ईश्वर जानकर उनकी सेवा करने लगे। इतनी कथा सुनाकर मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर! धर्म की मरिष्या नाम स्त्री से क्रोध, लोभ और मृत्यु आदि बहुत सन्तानें उत्पन्न हुई थीं। उनके नाम संस्कृत भागवत में लिखे हैं। जो कोई इस अध्याय को चित्त लगाकर कहे व सुने, वह सब पापों से छूटकर परमपद को पावेगा।

—○—

आठवाँ अध्याय।

सती का हिमाचल के यहाँ पार्वती नाम से जन्म लेना और उनका महादेवजी के साथ विवाह होना।

मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा—हे विदुर! अब हम सतीजी की कथा, जिस तरह दूसरा जन्म पार्वती का लेकर महादेवजी को मिली थीं, वर्णन करते हैं। सती ने तन छोड़ते समय महादेवजी के चरणों का ध्यान हृदय में रखकर ऐसा प्रण किया था कि अब फिर मेरा जन्म हो तो शिवजी की सेवा में रहकर एक क्षण उनका साथ न छोड़ूँगी। सो वह तन छोड़ने के उपरान्त हिमाचल पर्वत के यहाँ पार्वती नाम से जन्म लिया। जब वह सयानी हुई तब हिमाचल ने अपनी कन्या से पूछा कि तेरा विवाह किसके साथ करूँ। पार्वती को अपने पिछले जन्म का हाल याद था, इसलिए वे हिमाचल से बोलीं कि मेरा विवाह महादेवजी के साथ कर दो। उसने कहा शिवजी सब देवतों के मालिक हैं, मेरी कन्या को किस

तरह अंगीकार करेंगे। तब पार्वती ने उत्तर दिया कि महादेवजी के सिवा दूसरे से मैं विवाह नहीं करूँगी। वह मुझे अंगीकार करें तो मेरे पति होवें, नहीं तो मैं वन में जाकर तप करके अपना यह तन फिर छोड़ दूँगी। ऐसा कहकर पार्वती ने इस इच्छा से कि महादेवजी के साथ मेरा विवाह हो, वन में जाकर तप करना आरम्भ किया। सो एक दिन नारदजी ने पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने के वास्ते वहाँ जाकर पूछा—हे पर्वतराज की कन्या! तुम इस वन में किस इच्छा से तप करके इतना दुःख उठाती हो। पार्वती ने नारदजी को परमेश्वर का परम भक्त जानकर दण्डवत् करके, विनय किया—हे मुनिनाथ! मैं महादेवजी से विवाह होने की इच्छा से तप करती हूँ। यह वचन सुनकर नारदजी बोले—हे पार्वती! तुम बड़ी बौरही और मूर्ख हो। शिवजी अपने शरीर में राख व धूलि लगाये, साँप व बिच्छू लपेटे, मुंडों की माला गले में डाले, भूत व पिशाच अपने साथ रखते हैं। उनको देखकर मनुष्य मारे डर के भाग जाते हैं, तुम उनसे विवाह करने की चाहना क्यों करती हो? यह बात सुनकर पार्वती ने कहा—वे कैसे ही अवगुणों से भरे हों, पर मेरा चित्त उन्हीं से प्रसन्न है। ऐसा सुनकर नारदजी फिर बोले कि हे पार्वती! इन्द्र, गन्धर्व, कुबेर, वरुण आदि अच्छे-अच्छे देवतों को तुम क्यों नहीं चाहती हो। यह वचन सुनते ही पार्वती ने हँसकर कहा—हे मुनिनाथ! मन एक है, दो चार नहीं होते, सो मेरा चित्त शिवजी के चरणों में लगा है। वहाँ से हट नहीं सकता। मेरी इच्छा शिवजी पूर्ण करेंगे, दूसरे की चाह मुझको नहीं है। यह बात सुनकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए और पार्वती को आशीर्वाद देकर बोले—तुम्हें महादेवजी अवश्य मिलेंगे, तुम किसी के कहने व भुलावा देने में मत आना। जब नारदजी ने पार्वती की सच्ची प्रीति देखी तब उसी समय शिवजी के पास जाकर पार्वती का मनोरथ और प्रेम उनसे कहा। जब महादेवजी ने सुना कि सती हिमाचल पर्वत के घर जन्म लेकर मेरे साथ विवाह होने के लिए तप करती हैं तब उन्हें भी प्रेम उत्पन्न हुआ। इसलिए महादेव ने हिमाचल से जाकर कहा—तू अपनी कन्या का

विवाह हमारे साथ कर दे। हिमाचल ने यह बात सुनते ही बड़ी प्रसन्नता से मान लिया और पार्वती को यह संदेशा सुनाया। यह बात सुनते ही पार्वतीजी बहुत प्रसन्न हुईं। उसी समय हिमाचल ने पार्वती को वन से लाकर विधिपूर्वक शिवजी के साथ विवाह कर दिया और बहुत से रत्नादि दहेज में देकर वर और कन्या को बिदा किया। तब से पार्वतीजी एकक्षण भी महादेवजी से अलग नहीं होतीं, उनकी अर्धांगी बनी रहती हैं।

नवाँ अध्याय

उत्तानपाद के बेटे ध्रुवजी का तप करने के लिए वन में जाना।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! राजा स्वायम्भुव मनु की तीनों कन्याओं का हाल मैंने तुमसे वर्णन किया, अब उनके बेटों का हाल कहता हूँ, सुनो। स्वायम्भुव मनु के दो बेटे उत्तानपाद व प्रियव्रत उत्पन्न हुए। सो प्रियव्रत की सन्तान की कथा पाँचवें स्कन्ध में आवेगी। उत्तानपाद के पुत्रों का हाल इस तरह है कि स्वायम्भुव मनु के तन त्याग करने पर उनका बेटा उत्तानपाद राजा हुआ। कदाचित् कोई इस बात का सन्देह करे कि स्वायम्भुव मनु की राजगद्दी पर प्रियव्रत ने राज्य किया। उत्तानपाद उन्हीं के देश में दूसरे नगर का राजा हुआ। उसके सुनीति और सुरुचि नाम की दो स्त्रियाँ थीं। दोनों स्त्रियों से संतान उत्पन्न हुई। बड़ी रानी के बेटे का नाम ध्रुव और छोटी रानी के पुत्र का नाम उत्तम था। राजा उत्तानपाद छोटी रानी और उसके बेटे से बहुत प्रीति करते थे तथा बड़ी रानी और उसके पुत्र से कम प्रेम रखते थे। एक दिन राजा अपनी छोटी रानी समेत राजसिंहासन पर बैठे हुए उसके बेटे को गोद में लिये प्यार करते थे, उसी समय बड़ी रानी का पुत्र ध्रुव जो पाँच वर्ष का था, खेलता हुआ वहाँ पहुँचा। उसने चाहा कि हम भी राजा की गोद में जाकर अपने सौतेले भाई उत्तम के बराबर बैठें। राजा ने छोटी रानी के डर से, जो उस समय वहाँ बैठी थीं, ध्रुव को अपने पास नहीं बैठाला। यह देखकर छोटी रानी ने ध्रुव

से कहा कि तूने पिछले जन्म में नारायणजी का तप व स्मरण नहीं किया, इसलिए तू अभागी उत्पन्न हुआ। कदाचित् तू पहिले जन्म में तप करता तो मेरे पेट से जन्म लेकर राजा की गोद में बैठने योग्य होता। तुझे इस जन्म में राजसिंहासन पर बैठना बहुत कठिन है। अब भी तू जाकर परमेश्वर का भजन व स्मरण कर, जब तेरा भाग्य उदय हो तब मेरे पेट से जन्म लेकर राजा के आसन पर बैठना। क्योंकि मैं पटरानी हूँ, मेरे बेटे के सिवा दूसरी रानी का पुत्र राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकता। राजा उत्तानपाद ने भी रानी की यह बात सुनकर जब ध्रुव का कुछ आदर नहीं किया, तब ध्रुव को सौतेली माता की यह बात तीर के समान लगी, इसलिए ध्रुव वहाँ से रोता हुआ अपनी माता के पास आया। उसकी माता सुनीति ने उसे रोते हुए देखकर अपनी गोद में उठा लिया और उससे पूछा—हे बेटा! तुझको किसने मारा, जो तू इतना रुदन करता है। ध्रुव को अधिक रोने से ऐसी हिचकी लग गई थी कि थोड़ी देर तक उससे बोला नहीं गया। जब उसका रोना कम हुआ तब अपनी माता से बोला कि मैं अभी राजा के पास गया था, राजा उत्तम को गोद में लिए बैठे थे, सो हमने भी चाहा कि पिता की गोद में जाकर बैठूँ। पर राजा ने मुझे अपनी गोद में नहीं बैठाला। तब उत्तम की माता ने मुझसे कहा कि तूने पिछले जन्म में परमेश्वर का भजन व स्मरण नहीं किया था, इसलिए प्रारब्धहीन उत्पन्न हुआ। तू राजा की गोद में बैठने योग्य नहीं है। अब भी जाकर परमेश्वर का तप करके मेरे पेट से जन्म ले तब राजा के आसन पर बैठना। सुनीति यह बात सुनकर बोली—हे बेटा! राजा की छोटी रानी सच कहती है। कदाचित् तू पिछले जन्म में परमेश्वर का तप किये होता तो मेरे पेट से जन्म न लेता, इसलिए अब भी तू नारायणजी की शरण में जाकर उनका तप व स्मरण कर, तो तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। तेरे परदादा ब्रह्माजी से भी पहिले संसार उत्पन्न करने का कठिन काम नहीं हो सका था, जब उन्होंने नारायणजी का तप व ध्यान किया तब परमेश्वर की कृपा से उनको ज्ञान प्राप्त हुआ और ज्ञान के प्रताप से

उन्होंने संसार की रचना की। तेरे दादा स्वायम्भुव मनु ने परमेश्वर का तप करके धर्मात्मा सन्तान पाया। मनुष्य का सब मनोरथ नारायणजी की कृपा से पूर्ण होता है, परमेश्वर का तप करने से तेरी कामना भी प्राप्त होगी। राजा मुझे अपनी दासी के बराबर भी नहीं समझते, जो बात मेरी सौत कहती है वही करते हैं। मैं जानती हूँ कि राजा के न रहने पर मेरी सौत तुझे देश से निकाल देगी। यह बात सुनते ही ध्रुव ने अति लज्जित होकर नारायणजी की खोज में घर से निकलकर वन का रास्ता लिया, पर वह मन में इस बात का सोच-विचार करता जाता था कि मैं अज्ञानी बालक परमेश्वर का पता किस तरह पाऊँगा, जो उनकी शरण में जाकर अपनी कामना पूरी करूँगा। राह में नारदजी ने ध्रुव को देखकर मन में विचारा कि यह बालक अपनी विमाता की बातों से दुखित होकर परमेश्वर को ढूँढ़ने निकला है, सो हम इसकी परीक्षा लेवें कि यह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है या नहीं। ऐसा विचारकर नारदजी बोले—हे राजकुमार! तू किस लिए अपने घर से निकल आया, बाल्यावस्था में तुझे ऐसा क्रोध न करना चाहिए। बालक को कोई दुर्वचन कहकर फिर प्यार से बुलावे तो वह उसके पास चला जाता है, पर तूने लड़कों का स्वभाव छोड़कर वन का रास्ता लिया। तुझे ऐसी बात उचित नहीं है। हम तुझको तेरे बाप के पास ले चलते हैं, राजगद्दी या जिस वस्तु की तुझे इच्छा हो हम दिलवा देंगे, और जो तू नारायणजी को ढूँढ़ता है, सो उनका मिलना सहज मत समझना। बहुत से योगीश्वर व तपस्वी लोगों ने नारायणजी का तप व जप करके अपना शरीर जला दिया, तिस पर भी उनको नहीं पाया। तू वृथा उनको ढूँढ़ने क्यों जाता है। हम नारद मुनि हैं, परमेश्वर के भक्त व सेवक हैं, तुझको तेरे पिता के पास ले जाकर जो कुछ हम कहेंगे, हमारी सब बातें तेरा बाप मानेगा। ध्रुव ने नारदजी का यह वचन सुनकर विचार किया कि मैंने सुना था कि नारद मुनि नारायणजी के परम भक्त हैं। देखो, हम अभी नारायणजी की खोज में केवल घर से निकले हैं सो ऐसे महात्मा व हरिभक्त

का दर्शन पाया, जब मैं बीच परमेश्वर के तप व स्मरण में लीन हो जाऊँगा तब न मालूम और कैसे-कैसे अच्छे पदार्थ मिलेंगे। यह बात विचारकर ध्रुव ने नारदजी को दण्डवत् करके विनय किया—महाराज! आप नारायणजी के परम भक्त हैं, इसलिए मेरी सहायता कीजिए, जिसमें परमेश्वर के चरणों तक जल्दी पहुँच जाऊँ। आपको परमेश्वर की राह पर जाने से मुझे फेरना उचित नहीं है। नारायणजी के मिलने का जो सहज मार्ग हो वह मुझे दिखला दीजिए। मैं क्षत्रिय का बेटा हूँ, अब नारायणजी का दर्शन किये बिना फिर कर अपने घर नहीं जाऊँगा। जब नारदजी ने देखा कि यह लड़का परमेश्वर की भक्ति में सच्चा है और ज्ञान सिखलाने के योग्य है तब नारद मुनि ने ध्रुव से कहा—हे बेटा! तुझे और तेरे ज्ञान को धन्य है। हम तेरी परीक्षा लेते थे, अब तुझको नारायणजी के मिलने का मार्ग दिखलाते हैं। तू यहाँ से मथुरा-पुरी में जाकर यमुना के किनारे जहाँ श्रीकृष्णजी त्रिलोकीनाथ आठों पहर रहते हैं, कुश का आसन बिछाकर, उत्तर मुँह बैठकर, नारायणजी का ध्यान करना। नित्य यमुनाजी में त्रिकालस्नान करना। वहाँ नहाने से तेरे जन्म-जन्मांतर के सब पाप छूट जायँगे। उनका स्वरूप इस तरह का है—श्यामरंग, कमलनयन, चतुर्भुज, जड़ाऊ मुकुट पहिने, मकराकृत कुंडल धारण किये, चन्द्रमा की तरह शोभायमान, वैजन्ती माला और कौस्तुभमणि गले में डाले, मन्द-मन्द मुसकराते हैं, सो तुम नित्य स्नान करके आसन पर बैठकर ऐसे रूप का ध्यान मन लगाकर करना और फल, दूब या जल जो कुछ मिले उसी से धूप-दीप आदि कर देना। बारह अक्षर का मन्त्र नारद मुनि ने ध्रुव को उपदेश करके कहा कि इसी मन्त्र को जपना। भोजन कम करना। पानी थोड़ा पीना। श्रीनारायणजी दयालु होकर तुझे दर्शन देंगे और तेरी कामना पूरी करेंगे, तू बड़ी पदवी को पहुँचेगा। हरिभजन करने से संसार और परलोक दोनों जगह का सुख मिलता है। ध्रुव ने नारायणजी का स्वरूप, ध्यान व मन्त्र नारद मुनि से सुनकर बहुत प्रसन्न होकर कहा—आपने बड़ी दया करके परमेश्वर के मिलने का सहज मार्ग मुझे दिखला दिया। मैं तो जानता

था कि नारायणजी का घर किसी नगर या गाँव में न मालूम कितनी दूर होगा, वहाँ जाकर उनको ढूँढ़ता, सो आपने उनका स्मरण व ध्यान करना मेरे हृदय में बतला दिया। अब मैं आपकी आज्ञानुसार जप व ध्यान करके परमेश्वर को मिलूँगा। यह बात कहकर ध्रुव नारद मुनि को दण्डवत करके मथुरा को चला गया और नारदजी ने वहाँ से राजा उत्तानपाद के पास आकर क्या देखा कि राजा और ध्रुव की माता दोनों रोते और चिन्ता करते हुए आपस में कहते हैं कि हम लोगों ने अपने पाँच वर्ष के बालक को, जो कुछ ज्ञान नहीं रखता, तप करने का उपदेश देकर वन में भेज दिया। न मालूम वह बेचारा कहाँ गया और उसकी क्या गति हुई। बड़े-बड़े योगीश्वर और ज्ञानियों को परमेश्वर का मिलना कठिन है, उस बालक अज्ञान को भगवान् किस तरह मिलेंगे। राजा अपनी छोटी रानी पर क्रोध करके कहते थे कि तूने कठोर वचन कहकर मेरे बेटे को वनवास दिया। नारदजी के पहुँचने पर राजा ने दण्डवत् करके बड़े सम्मान से उनको बैठाकर पूछा—महाराज, आप कहाँ से आते हैं? नारद मुनि ने कहा कि हम अपना हाल पीछे से कहेंगे, पर इस समय तुमको बड़ी चिंता में देखते हैं, इसका कारण कहो। राजा बोले—हे मुनिनाथ! मेरी छोटी रानी ने मेरे बेटे ध्रुव को, जो अज्ञान बालक था, ऐसी कठोर बात कही कि वह दुःखित होकर न जाने कहाँ चला गया, सो हम उसी के शोक में व्याकुल हैं। न मालूम उस बालक की क्या दशा हुई होगी। कोई शेर व भालू आदि उसे खा लेगा। मुझसे बड़ी भूल हुई जो स्त्री के वश होकर उसका निरादर किया। यह बात सुनकर नारदजी बोले—हे राजा! तुम अपना चित्त उदास न करो, तुम्हारा बेटा मुझे मार्ग में मिला था। मैंने उसको बहुत समझाया कि तू अपने घर मेरे साथ लौट चल, परंतु उसने नहीं माना। जब मैंने देखा कि परमेश्वर के तप व स्मरण में इसका सच्चा प्रेम है तब हमने उसको नारायणजी के मिलने का उपाय बतलाकर मथुरा की तरफ भेज दिया। अब तुम उसकी चिंता न करो, वह ऐसी पदवी को पहुँचेगा कि आज तक तुम्हारे पुरुषों को भी नहीं प्राप्त हुई है। ध्रुव नारायणजी की

शरण में गया, अब उसको कोई दुःख नहीं दे सकता, पर तुमने अपनी अज्ञानता से स्त्री के वश होकर पुत्र का निरादर किया। नारदजी यह बात कहकर ब्रह्मलोक को गये और राजा को नारद मुनि के कहने से धैर्य हुआ, पर उसका मन ध्रुव की तरफ लगा रहता था, राज्यकाज में नहीं लगता था। ध्रुव मथुरा में जाकर यमुना के किनारे कुश के आसन पर बैठकर नारदजी की आज्ञानुसार परमेश्वर का तप व ध्यान करने लगा। वह पहिले तो तीसरे दिन एक समय भोजन करता था, एक महिने इस तरह नियम रखकर उसके उपरान्त सातवें दिन थोड़ा-सा खाने लगा। फिर तीन महीने तक वृक्ष की पत्ती खाकर रहा। चौथे महीने में पत्ती खाना भी त्यागकर केवल पानी पीकर रहा। पाँचवें महीने में पानी पीना भी छोड़कर जितनी हवा मुँह में जाती थी उसी के आहार पर रहा। पाँच महीने तक एक पैर से खड़े होकर उसी मंत्र को जपते हुए नारायणजी के स्वरूप का ध्यान किया। सो ध्रुव का शरीर लकड़ी के समान सूख गया, परन्तु उसका मुखारविंद सूर्य की तरह चमकने लगा। छठे महीने ध्रुव मुँह बन्द करके परमेश्वर के ध्यान में ऐसा लवलीन हुआ कि उसका अन्तःकरण श्यामसुन्दर के स्वरूप से भर गया, श्वास लेने की जगह भी न रही। जब ध्रुव ने इस तरह तप करके अपनी श्वास को रोक लिया तब तीनों लोकों में हवा का चलना बन्द हो गया। जब पवन न चलने से सब जीव दुःखी हुए तब ब्रह्मा ने सब देवताओं समेत नारायणजी के पास जाकर विनय किया—हे त्रिलोकीनाथ! हवा बन्द होने का क्या कारण है? श्यामसुन्दर बोले कि ध्रुव ने अपने तप के सामर्थ्य से पवन को बाँध लिया है, इसलिए यह दशा हुई, सो अब हम ध्रुव को दर्शन देकर हवा को छुड़ाये देते हैं।

दसवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का ध्रुव को नारायणरूप धारण करके दर्शन देना।

मैत्रेयजी ने कहा—हे विदुर! श्रीभगवान् देवतों से यह कहकर जिस स्वरूप का ध्यान ध्रुव करता था उसी रूप से गरुड़ पर सवार होकर ध्रुव के सम्मुख जाकर क्षण भर खड़े रहे, पर उस समय ध्रुव आँखें बन्द किये परमेश्वर के ध्यान में ऐसा लीन था कि नारायणजी के आने का हाल उसने नहीं जाना और न उसने आँखें खोलीं। तब श्यामसुन्दर ने अपना स्वरूप ध्रुव के अन्तःकरण से खींच लिया। जब ध्रुव ने परमेश्वर का स्वरूप अपने हृदय में न देखा तब घबराकर आँख खोल दिया, तो क्या देखता है कि जिस मूर्ति का ध्यान मैं करता था वही स्वरूप साँवली सूरति मोहनी मूरति मेरे सामने खड़ी है। ध्रुव ने उस परब्रह्म परमेश्वर की परिक्रमा करके दण्डवत् किया और उनके चरणों पर शिर रखकर चाहता था कि नारायणजी की स्तुति करे। फिर उसने ऐसा विचार कि जिनकी महिमा ब्रह्मा, शेषनाग और गणेशजी वर्णन नहीं कर सकते, मैं अज्ञानी बालक किस तरह उनकी स्तुति करूँ। इसी विचार में ध्रुव चुपचाप हाथ जोड़े परमेश्वर के सामने खड़ा रहा और उनका मुखारविन्द बड़े प्रेम से देखने लगा। तब नारायणजी ने जाना कि अभी तक ध्रुव को इतना ज्ञान नहीं है जो मेरी स्तुति कर सके। यह विचारकर त्रिलोकीनाथ ने कृपा करके अपना शंख ध्रुव के मुख और कपोलों में छुआ दिया। उसके छुआते ही ध्रुव के हृदय में ज्ञान और बुद्धि का प्रकाश हो गया। उसको सब विद्याएँ याद हो गईं। ध्रुव ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनानाथ! जब तक आपकी कृपा व दया न हो तब तक कोई आपके चरणों का दर्शन नहीं पा सकता। ब्रह्मादिक देवतों को भी ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो आपका गुण वर्णन कर सकें। आप स्तुति करने की कुछ इच्छा नहीं रखते। अपनी माया से तीनों लोकों की उत्पत्ति, पालन व नाश करते हैं। ब्रह्मा से लेकर चिउँटी तक तीनों लोकों के सब जीव आपकी माया से उत्पन्न हुए हैं।



श्री नारायण जी का ध्रुवजी को दर्शन देना

सबके मालिक परब्रह्म परमेश्वर त्रिलोकीनाथ आप ही हैं। ब्रह्मा भी आपके स्वरूप को नहीं जानते, जो आपकी स्तुति कर सकें। संसार में स्त्री और पुत्र का मोह बबूलरूपी वृक्ष और आपके चरणों की भक्ति कल्पतरु के समान है, जिससे मनुष्य की सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। मैं माता-पिता से दुःखित होकर आपकी शरण में आया था, सो आपने दया करके अपने दर्शन से मुझे कृतार्थ किया। उन लोगों का बड़ा भाग्य है, जो आपका निष्काम तप व जप करते हैं। आपकी दया के बिना किसी को ज्ञान नहीं प्राप्त होता। जब इस प्रकार से ध्रुव ने नारायणजी की बहुत स्तुति की तब श्यामसुन्दर बोले—हे ध्रुव! हम तुझसे बहुत प्रसन्न हुए, कुछ वरदान मांग। यह बात सुनकर ध्रुव बोला—हे दीनदयालु! जब आपके चरणों का दर्शन मैंने किया तब मुझे माँगने को क्या बाकी रहा। केवल आपके चरणों में भक्ति और प्रेम चाहता हूँ। यह वचन सुनकर अन्तर्यामी नारायणजी ने कहा—हे ध्रुव! तूने राजगद्दी मिलने के लिए मेरा तप किया था, सो हमने तुझे राजसिंहासन दिया। अब तू मेरी आज्ञा से नगर में जा और जिसने तुझे ताना मारा था उसके सामने छत्तीस हजार वर्ष राज्य कर। जो तुझे अभागी कहती थी, वह और उसका पुत्र उत्तम, जिसके पास तुझे राजा ने गोद में नहीं बैठाया था, तेरी सेवा करेंगे। तेरा बाप तुझे राजगद्दी पर बैठाकर तप करने के लिए वन में चला जायगा। तेरे भाई उत्तम को वन में शिकार खेलते समय कुबेर का अनुचर एक यक्ष मार डालेगा। उसी चिन्ता में उत्तम की माता भी वन में जलकर मर जायगी। जब तू शरीर त्याग करेगा तब हम ब्रह्मलोक से भी ऊँचे ध्रुवलोक में तुझे रहने के लिए स्थान देंगे। वहाँ तू महाप्रलय तक स्थिर रहेगा। चन्द्रमा, सूर्य और सब तारा-गण तेरी परिक्रमा करेंगे। महाप्रलय के अन्त में तेरी मुक्ति होगी। मेरे भक्तों की बराबरी कोई नहीं कर सकता, उनकी कोई इच्छा बाकी नहीं रहती। तुम सदा हमारी कथा सुनकर पिछले धर्मात्मा राजाओं का हाल जानना। भगवान्‌जी ने जब यह वरदान ध्रुव को दिया तो देवता लोगों ने प्रसन्न होकर नारायणजी और ध्रुव के ऊपर फूल बरसाये और

ध्रुव के भाग्य की प्रशंसा की। जब नारायणजी यह वरदान देकर ब्रह्मलोक को सिधारे तब फिर हवा चलने लगी और तीनों लोक के जीव पवन बहने से सुखी हुए। ध्रुव वहाँ से घर को चला, पर राह में यह विचार करता जाता था कि मुझसे बड़ी भूल हुई, जो नारायणजी का दर्शन पाकर फिर मैंने राजगद्दी अंगीकार किया। मुझे ऐसा मालूम होता है कि देवतों ने भुलावा देकर मेरा ज्ञान हर लिया जिसमें यह विरक्त होकर नारायणजी की शरण में न रहे या पितरों ने यही बात समझा हो; क्योंकि संसार में प्रसिद्ध है कि जब कोई मनुष्य परमेश्वर का ध्यान करता है तब इन्द्रादिक देवता उसके भजन व स्मरण में विघ्न डालते हैं। इसी तरह चिन्ता करता हुआ ध्रुव अपने नगर के निकट पहुँचकर एक बाग में ठहरा। बाग के माली ने जाकर राजा से कहा। राजा उसके कहने का विश्वास न करके बोले कि ध्रुव घर से बहुत उदास होकर परमेश्वर का तप करने के लिए चला गया है, वह क्यों आवेगा। उसी समय नारदजी ने आकर कहा—हे राजन्! तुम्हारा बेटा ध्रुव नारायणजी का दर्शन पाकर सफल मनोरथ हो गया है सो तुम्हें यहाँ बैठा रहना उचित नहीं है। चलो, उसको आदर भाव से ले आओ। नारद मुनि के कहने से राजा को विश्वास और बड़ा आनन्द हुआ। राजा ने रत्न का एक हार माली को देकर उसी समय अपने बेटा उत्तम और दोनों रानियों को लेकर नारदजी समेत बाजे बजते हुए बड़ी धूम-धाम से ध्रुव के पास चले। जब नगर के लोगों ने सुना कि ध्रुव परमेश्वर से मिल आया, उसका दर्शन करना बड़ा पुण्य है तब वे लोग भी सब गाते-बजाते हुए ध्रुवजी का दर्शन करने गये। सब लोगों ने सवारी पर से उतरकर ध्रुवजी का दर्शन किया। वे अपने शरीर व शिर के बालों में राख लगाए और जटा बढ़ाये बैठे थे। ध्रुव ने नारदजी और राजा के चरणों पर गिरकर दण्डवत् किया। राजा ने बड़े प्रेम से ध्रुव को गोद में उठाकर छाती से लगाया और अपने आँसुओं से उसके मुहँ को धो दिया। फिर ध्रुव ने पहिले छोटी रानी के पास, जिसने उसको ताना मारा था, जाकर साष्टांग दण्डवत् करके कहा—हे माता! तुम्हारे उपदेश से मैं

चला गया था, सो नारायणजी के दर्शन मिलने से मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुए। फिर उन्होंने अपनी माता सुनीति को दण्डवत् करके जितने छोटे-बड़े पुरवासी उनके दर्शन के लिए आये थे, यथायोग्य सबका शिष्टाचार किया। राजा उत्तानपाद ध्रुव को अपने साथ हाथी पर बैठाकर ब्राह्मणों और याचकों को दान व दक्षिणा देते हुए और द्रव्य लुटाते हुए राजमन्दिर में ले आये। उन्होंने हजामत बनवाकर स्नान कराया और बहुत उत्तम भूषण व वस्त्र उन्हें पहिनाया। नारदजी ब्रह्मलोक को गए और राजा ने लाखों ब्राह्मण खिलाकर बड़ी खुशी मनाया। पुरवासियों ने भी अपने-अपने घर आनन्द मनाया। ध्रुव की माता सुनीति को परम आनन्द प्राप्त हुआ।

इतनी कथा सुनाकर मैत्रेयजी ने कहा—हे विदुर! जिसके ऊपर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं उससे सब खुश रहते हैं और श्यामसुन्दर के विमुख रहने से पिता और भाई भी शत्रु हो जाते हैं। ध्रुव का चित्त धर्म में तत्पर देखकर राजा उससे बहुत प्रसन्न रहते थे। कुछ दिन उपरान्त राजा ने मन में विचारा कि ध्रुव अब राज्य करने के योग्य हुआ, अब इसे राजगद्दी देकर परमेश्वर का तप करते, तो हमारा परलोक बनता। ऐसा विचारकर राजा ने अपने मन्त्रियों से पूछा। जब सब लोगों को यह बात भली मालूम हुई तब राजा ने अच्छा मुहूर्त पूछकर ध्रुव को राजसिंहासन पर बैठा दिया और राज्यकाज उनको सौंपकर आप वन में जाकर नारायणजी का तप व ध्यान करने लगे। ध्रुवजी ने राजगद्दी पर बैठकर सातों द्वीपों का ऐसा राज्य किया, जिनके धर्म व न्याय से सब प्रजा आनन्द से रहती थी। बाघ व बकरी एक ही घाट पानी पीते थे। उनके राज्य में कोई दुःखी व दरिद्री न था, प्रजा के इच्छा करने पर पानी बरसता था। ध्रुवजी ने अपने भाई उत्तम को राज्यकाज का अधिकार दिया था और उत्तम भी ध्रुवजी की आज्ञानुसार सब काम करके बड़े प्रेम से उनकी सेवा करता था। एक दिन उत्तम ध्रुव से आज्ञा लेकर वन में शिकार खेलने गया। वह एक मृग के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ कुबेर के विहार की जगह में जा पहुँचा और उसके साथियों ने उस स्थान

को मल-मूत्र करके भ्रष्ट कर दिया। कुबेर के नौकर बोले कि तुम संसारी मनुष्य होकर देवलोक में क्यों आये हो, इसी बात पर उत्तम भी अपने राज्य के अभिमान से उनको दुर्वचन कहने लगे। उनमें एक यक्ष बड़ा बलवान् था, उसने उत्तम को मार डाला। उसके साथियों ने आकर यह हाल ध्रुव से कहा, तब ध्रुवजी क्रोधवन्त होकर अपनी सेना समेत यक्षों से लड़ने चले। उत्तम की माता सुरुचि यह हाल सुनकर रोती और विलाप करती हुई उसकी लोथ ढूँढ़ने के लिए वन में गई, सो आग लगने से वहाँ जल मरी। जब राजा ध्रुव अपनी सेना समेत यक्षों के पास पहुँचे तो एक लाख तीस हजार यक्ष शस्त्र लेकर राजा ध्रुव के सम्मुख युद्ध करने के लिए आये। राजा ने अपने सेनापतियों से कहा कि तुम लोग अलग खड़े होकर युद्ध का तमाशा देखो, हमको लड़ने दो। ऐसा कहकर ध्रुवजी अपना रथ यक्षों के सम्मुख ले गये। यक्षों ने राजा को देखकर उन पर शस्त्र चलाये। ध्रुवजी ने उनके सब वार बचाये और अपना धनुष चढ़ाकर ऐसे बाण मारे कि उनमें से कुछ तो मर गये और बाकी घायल होकर गिर पड़े। राजा ध्रुव की विजय हुई। यक्षों की यह दशा देखकर एक यक्ष ने जाकर कुबेर से सब वृत्तान्त कहा। कुबेर अपने नौकरों के घायल होने और मारे जाने का हाल सुनकर अपनी सेना के साथ लड़ने के लिए संग्राम-भूमि में आये। उन्होंने ध्रुवजी से कहा कि तू मनुष्य होकर देवतों को दुःख देता है, मैं तुझे मारूँगा। ध्रुवजी बोले—मैं केवल परमेश्वर को देवता मानता हूँ, जिन्होंने देवता और मनुष्य, सब जीवों को उत्पन्न किया है। तब कुबेर ने बहुत से तीर ध्रुव को मारे। ध्रुव ने उनके सब बाणों को अपने तीरों से काट डाला। तब कुबेर ने ध्रुवजी से कहा कि तुम्हारा गुरु कौन है, जिसने ऐसी विद्या तुम्हें पढ़ाई, बताओ किसके चेले हो? ध्रुव ने उत्तर दिया कि जिसके प्रताप से तुम देवता हुए हो वही मेरा गुरु और मालिक है। यह सुनकर कुबेर ने क्रोधवन्त होकर नारायणशस्त्र ध्रुव के मारने के वास्ते उठाया और ध्रुव ने भी नारायणशस्त्र निकाला। तब ब्रह्माजी ने विचार किया कि नारायणशस्त्र चलने से बड़ा अनर्थ होगा, संसारी जीव मारे

जायँगे। ध्रुव परमेश्वर के भक्त और कुबेरजी देवता हैं, इन दोनों में कोई मर नहीं सकता। ऐसा विचारकर ब्रह्माजी ने ध्रुवजी के दादा स्वायम्भुव मनु और नारदजी से कहा कि तुम लोग जाकर कुबेर और ध्रुवजी को समझाकर उन दोनों में मेल करा दो। उन्होंने उसी समय रणभूमि में, जहाँ ध्रुव लड़ रहे थे, जाकर उन्हें प्रेम से पुकारा। जब ध्रुवजी ने देखा कि हमारे दादा स्वायम्भुव मनु आये हैं तब वे युद्ध करना छोड़कर रथ पर से उतर पड़े और स्वायम्भुव मनु को साष्टांग दण्डवत् किया।

ग्यारहवाँ अध्याय।

ध्रुवजी का कुबेर से मिलाप कर लेना और अपने पुत्र को राज्य देकर वन में तप करने के लिए जाना।

मैत्रेयजी ने विदुर से कहा कि जब ध्रुव ने स्वायम्भुव मनु को दंडवत् किया तब स्वायम्भुव मनु बोले—हे ध्रुव! तुम वैष्णव और परमेश्वर के भक्त हो, सो हरिभक्तों को क्रोध न करना चाहिए। क्रोध करनेवाले अपने को वैष्णव व साधु कहें तो उनका यह कहना झूठ समझो। क्रोध करने से बहुत पाप होता है। हे ध्रुव! तुमने वैष्णव व राजा होने पर भी कुछ न्याय नहीं किया, क्योंकि तेरे भाई उत्तम की मृत्यु आई थी, इसलिए एक यक्ष ने मारा। उसके बदले तुमने एक लाख तीस हजार यक्षों को घायल करके दुःख दिया। उनमें कितने लोग मर गये, यह बात तुमने अच्छी नहीं किया। राजा को न्याय न करने से अधर्म होता है। सब प्राणी अपनी मृत्यु से मरते हैं, बहाना व अपयश दूसरे को हो जाता है। इसका एक इतिहास हम कहते हैं, सुनो। सारस्वत आदि कल्प में संसारी जीव बहुत उत्पन्न हुए, पर उस समय तक मृत्यु उत्पन्न नहीं हुई थी, इसलिए जब पृथ्वी संसारी जीवों के बोझ से पानी में डूबने लगी तब ब्रह्मा ने मृत्यु नाम की एक कन्या उत्पन्न करके उसे समझाकर कहा—तू संसार में जाकर बूढ़े व रोगी मनुष्यों को मार डाल

पर वह कन्या इस बात को अंगीकार न करके परमेश्वर का तप करने लगी। तब नारायणजी ने मृत्युरूपी उस कन्या से कहा—तू जगत् में जाकर आयु बीतने के उपरान्त सब जीवों को मार, तुझे कुछ अपयश न होगा। कोई कहेगा कि तपेदिक रोग से मरा, कोई कहेगा साँप काटने से मर गया, इसी तरह अनेक प्रकार से दूसरे को दोष लगावेंगे। नारायणजी की यह बात सुनकर जब उस कन्या ने संसार में आकर लोगों को मारना आरम्भ किया तब पृथ्वी का बोझ हलका हुआ। तुमने परमेश्वर का भजन किया है, फिर उनकी सृष्टि को मारकर क्यों अपराध लेते हो। ध्रुव यह बात सुनते ही अति लज्जित हुए और लड़ना बन्द करके स्वायम्भुव मनु से विनयपूर्वक बोले—महाराज, मुझसे अपराध हुआ। यह वचन सुनकर स्वायम्भुव मनु बोले—हे ध्रुव! तुम इस बात की चिन्ता न करो, इन लोगों के भाग्य से इसी तरह मरना व दुःख पाना लिखा ही था। परमेश्वर की इच्छानुसार सब बातें होती हैं। नारद मुनि ने कुबेर को समझाया कि ध्रुवजी ने स्वायम्भुव मनु के कहने से युद्ध करना बन्द कर दिया है। तुम भी अपना क्रोध क्षमा करो। सो कुबेर ने भी लड़ना बन्द किया। फिर स्वायम्भुव मनु और नारदजी ने कुबेर से कहा—पहिले तुम्हारे नौकरों ने ध्रुव के भाई को वृथा मारा था, इसलिये तुम अपने सेवकों का अपराध उनसे क्षमा करावो। कुबेर ने यह बात सुनकर विनयपूर्वक ध्रुव से कहा—हे राजन्! हमारे नौकरों से अपराध हुआ जो तुम्हारे भाई को मारा, उसके बदले जो चाहो सो हमसे दण्ड लेकर उनका अपराध क्षमा करो। ध्रुव बोले कि आप देवता हैं, हमको ऐसा आशीर्वाद दीजिए, जिससे फिर मुझे क्रोध न आवे और परमेश्वर के चरणों में भक्ति बनी रहे। उत्तम के प्रारब्ध में इसी तरह मरना लिखा था। कुबेर ने ध्रुव को इच्छापूर्वक वरदान देकर उनसे मिलाप कर लिया। उसके बाद स्वायम्भुव मनु और नारदजी अपने स्थान को चले गये। कुबेरजी अपने स्थान पर पधारे और ध्रुव ने अपने घर आकर विचार किया कि राज्य, धन, स्त्री, पुत्र व संसारी व्यवहार स्वप्न के समान झूठा है। राजगद्दी पर रहने से काम, क्रोध, मोह व लोभ

समय पाकर स्वभाव में प्रवेश करते हैं, इसलिए इन लोगों से विरक्त होकर हरिभजन करना उचित है। ऐसा विचारकर ध्रुवजी ने अपने पुत्र उत्कल को, जो इला नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ था, राजगद्दी पर बैठा दिया और अपनी स्त्री-समेत बदरिकाश्रम में जाकर परमेश्वर के तप व ध्यान में लीन हुए। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! तुम्हारे दादा राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में किसी ब्राह्मण ने सोने का थाल चुराया था, लोगों ने कहा कि इस ब्राह्मण का हाथ काट डालो। यह बात सुनकर युधिष्ठिर ने उस ब्राह्मण को राजा बलि के पास न्याय करने के लिए भेज दिया। राजा बलि ने कहा कि जिस राजा के देश में यह ब्राह्मण रहता है उस राजा को दण्ड देना चाहिए। राजा ने इस ब्राह्मण को क्यों इतना दान नहीं दिया, जिससे इसको चोरी करने की इच्छा न होती। सो हे परीक्षित ! राजा को इसी तरह धर्म रखना चाहिए। उस ब्राह्मण का पूरा हाल महाभारत में लिखा है।

बारहवाँ अध्याय।

ध्रुवजी का अपनी दोनों माताओं सहित ध्रुवलोक में जाना।

मैत्रेयजी ने विदुर से कहा कि जब ध्रुव का तनु त्यागने का समय निकट पहुँचा तब श्रीभगवान्‌जी के गणों ने एक बहुत अच्छा विमान वहाँ लाकर ध्रुव से कहा कि नारायणजी ने यह विमान तुम्हारे वास्ते भेज दिया है, इस पर बैठकर ध्रुवलोक में चलो। यह बात सुनकर ध्रुवजी ने विचारा कि सुरुचि मेरी छोटी माता, जिसके ताना मारने से हम परमेश्वर का तप करके इस पदवी को पहुँचे, वह गुरु के समान है। मुझे कठोर वचन कहने से नरक भोगती है। वहाँ मेरे अकेले जाने से क्या धर्म रहेगा, जो मैं सुख करूँ और मेरी माता दुःख भोगे। ध्रुवजी इस सोच में थे कि गण लोग उनके दिल का हाल जानकर बोले कि तुम किस चिन्ता में हो। ध्रुव ने कहा कि जिस माता-पिता के ताना मारने से मैंने यह पद पाया है, सो मैं चाहता हूँ कि नारायणजी से

कहकर उनकी भी मुक्ति करावें। गण बोले कि भगवान्‌जी ने आज्ञा दी है कि ध्रुव को उसकी दोनों माताओं समेत विमान पर बैठाकर ले आओ। सो वे दोनों तुमसे पहिले वहाँ पहुँचेंगी। यह बात सुनते ही ध्रुवजी बड़े आनन्द से अपनी स्त्री समेत दिव्यरूप होकर विमान पर चढ़कर ध्रुवलोक को चले गये। यह हाल देखकर देवतों ने ध्रुवजी के ऊपर फूलों की वर्षा की। नारदजी उस समय प्राचीन बर्हिष प्रचेतों के बाप को यज्ञ कराते थे। ध्रुवजी का विमान देखकर मारे आनन्द के नाचने लगे। यज्ञ कराने के उपरान्त उन्होंने ध्रुवलोक में जाकर कहा—हे ध्रुव, तेरा सब मनोरथ पूर्ण हुआ। ध्रुव ने नारदजी के चरणों पर गिरकर हाथ जोड़कर विनय किया—हे मुनिनाथ! मुझे यह सब बड़ाई आपकी दया व कृपा से मिली है। तब नारदमुनि बोले कि जैसी कृपा तुझ पर नारायणजी ने किया, ऐसी अटल पदवी दूसरे को मिलना कठिन है। यह वचन कहकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये। ध्रुवजी खुशी व आनन्द से रहकर वहाँ सुख भोगने लगे।

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! प्रचेता लोग कौन थे, उनका हाल वर्णन कीजिए। शुकदेवजी बोले—हे राजा, जब ध्रुवजी बदरिकाश्रम को गये तब उनके पुत्र उत्कल ने बहुत दिनों तक सातों द्वीपों का राज्य करके सब प्रजा को प्रसन्न रक्खा। फिर उन्होंने भी विचारा कि राज्य, धन, कुल व परिवार आदि संसारी सुख स्वप्न के समान हैं। जिस तरह मेरे पिता विरक्त होकर नारायणजी की शरण में जाकर कृतार्थ हुए हैं, उसी तरह मैं भी इस मायाजाल से छूटकर परमेश्वर का भजन करता तो क्या अच्छी बात थी। पर घरवाले वैराग्य लेने व घर छोड़ देने के समय मना करेंगे, इसलिए उत्तम बात यह है कि मैं अपने को बौरहों की तरह बना लूँ। जब सब लोग जानेंगे कि यह राज्य करने के योग्य नहीं है तब उनके हाथ से अपना प्राण छुटाकर मैं परमेश्वर का स्मरण व तप अच्छी तरह करूँगा। ऐसा विचारकर राजा उत्कल बौरहों की तरह बनकर बेप्रमाण बातें कहने लगा। उसकी यह दशा देखकर घरवालों ने जाना कि यह विक्षिप्त हो गया, राज्य करने योग्य नहीं है। तब सबकी सम्मति से वत्सर नामक उसके छोटे भाई को जो

ध्रुव की दूसरी स्त्री से उत्पन्न हुआ था, राजसिंहासन पर बैठाला। उत्कल बौरहों के समान घर में रहने लगा। कुछ दिनों के बाद जब उत्कल ने देखा कि राजगद्दी का कामकाज चल निकला, तब उसने एक दिन घर से निकलकर वन का रास्ता लिया और वहाँ परमेश्वर के तप व ध्यान में लीन होकर अपना तनु त्याग दिया।

—:○:—

तेरहवाँ अध्याय।

बेन का राजा अंग के यहाँ ध्रुवजी के कुल में उत्पन्न होगा।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि अब हम ध्रुव के वंश का हाल, जो उसके पीछे राजा हुए थे, कहते हैं। उसके वंश में कई पीढ़ी के उपरांत अंग नाम का राजा हुआ। उसके कोई बेटा नहीं था, इसलिए उसने दुःखित होकर ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों से कहा—कोई ऐसा उपाय करो कि जिसमें मेरे लड़का उत्पन्न हो। ऋषीश्वरों ने राजा से यज्ञ कराके उसका प्रसाद राजा को देकर कहा कि तुम यह प्रसाद अपनी एक स्त्री को खिला दो। राजा ने अपनी रानी सुनीथा को खिला दिया। उस प्रसाद के प्रताप से उसके लड़का हुआ। उसका नाम ब्राह्मणों ने बेन रक्खा। जब राजा ने उस बालक को शूद्र के समान बहुत कुरूप देखा और उसके ग्रह भी बुरे मालूम हुए तब ब्राह्मणों से पूछा कि आज तक हमारे कुल में ऐसा कोई लड़का नहीं उत्पन्न हुआ, सब धर्मात्मा व सुन्दर होते आये हैं। क्या कारण है जो यह बालक ऐसा कुरूप हुआ? ब्राह्मण बोले कि यज्ञ का प्रसाद भोजन करते समय तुम्हारी स्त्री ने मृत्यु-नामक अपनी माता और अधर्म अपने पिता को याद किया था, इसलिए यह बालक अपने नाना व नानी के स्वभाव पर कुरूप व अभागी उत्पन्न हुआ है। यह वचन सुनकर राजा को चिन्ता हुई, पर परमेश्वर की इच्छा समझकर उस बालक का पालन करने लगे। जब बेन सयाना हुआ तब शिकार खेलने के लिए वन में जाकर उन जानवरों को मारने लगा, जिनका मारना अधर्म है और राजा ने भी जिनके

मारने को मना किया था। नगर के बालकों को अपने साथ स्नान कराने के लिए नदी के किनारे ले जाकर पानी में डुबाकर मार डालता था। कभी वन में ले जाकर मुक्का व लात मारकर उनके प्राण ले लेता था। जब वह ऐसा अधर्म करने लगा तब वहाँ की प्रजा ने यह हाल राजा से कहा कि राजकुमार ने हमारे लड़कों को बिना अपराध मार डाला है। राजा ने कई बेर प्रजा को समझा-बुझाकर बिदा कर दिया और अपने बेटे बेन को सब तरह से समझाया, पर वह राजा का कहना न मानकर और अधिक उपद्रव करने लगा। तब एक दिन फिर उस नगर की प्रजा ने जाकर राजा से कहा कि हे पृथ्वीनाथ! हम ऐसी अनीति होने से आपके देश में नहीं रह सकते। जब राजा ने प्रजा को अति दुःखी देखा तब बेन को बहुत डाटकर समझाया कि तू प्रजा को दुःख मत दे, तिस पर भी वह न मानकर रोता-रोता अपनी माता के पास जाकर कहने लगा कि राजा मुझे वृथा धमकाते हैं, मेरा कुछ आदर नहीं करते, इसलिए मैं घर से निकल जाऊँगा। उसकी माता सुनीथा भी अधर्मिणी थी, इस कारण वह बेन की बात सुनकर बोली—हे बेटा! तेरे बाप की बुद्धि बूढ़े होने से मारी गई है, उसको बकने दे, तेरा जैसा दिल चाहे वैसा कर। सुनीथा इस तरह अपने पुत्र को धैर्य देकर जब उसके बदले अपने पति से झगड़ा करने लगी तब राजा ने दुःखित होकर विचारा कि मैं पृथ्वीपति हूँ, सब राजा मेरे अधीन हैं, मैं चाहूँ तो बेन को उसकी माता समेत अपने देश से निकाल दूँ, पर इसमें भी मेरी हँसी होगी। मनुष्य स्त्री-पुत्र के मोह में फँसा रहकर परलोक का सोच नहीं करता, सो वही लोग भली बात समझाने से बुरा मानते हैं। सो मैं किस वास्ते अपना जन्म अकारथ खोऊँ। मेरे पिछले जन्म का पाप उदय हुआ, जो ऐसे अधर्मी बेटे ने मेरे यहाँ जन्म लिया। उसके पाप करने से मैं भी नरक भोगूँगा। जिसकी माता धर्म-अधर्म का विचार नहीं करती उसका बेटा पापी क्यों न हो। ऐसे अधर्मियों की संगति में रहना न चाहिए। कुसंग में रहने से सुख नहीं मिलता, इसलिए वन में जाकर परमेश्वर का स्मरण व तप करना उत्तम है। मेरे पीछे चाहे

जो कुछ हो। राजा ने यह विचारकर अपना मन विरक्त कर लिया और आधी रात के समय रानी को सोई हुई छोड़कर वन को चले गये। वहाँ परमेश्वर के तप व ध्यान में लीन हुए। उस दिन राजा के निकल जाने का हाल किसी ने नहीं जाना।

---:o:---

चौदहवाँ अध्याय।

बेन का राजगद्दी पर बैठना और ऋषीश्वरों को हरिभजन करने से बर्जना।

मैत्रेयजी ने विदुर से कहा कि जब राजा अंग बिना कहे रात को वन में चले गये तब प्रातःकाल मंत्रियों को यह समाचार सुनकर बड़ा खेद हुआ और बहुत ढूँढ़ने पर भी उनका कहीं पता नहीं लगा। राजा के बिना उस देश में चोर और ठग उपद्रव करने लगे। जब ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों ने प्रजा को दुःखी देखा और दूसरे किसी को राजा अंग के वंश में न पाया तब लाचार होकर आपस में सम्मति करके बेन को राजगद्दी पर बैठाला। बेन ने राजसिंहासन पर बैठते ही डाकुओं और चोरों को पकड़कर मारना आरम्भ किया। उसके राज्य में चोर व डाकू का नाम भी बाकी न रह गया। अधर्म करनेवाले उसका राज्य छोड़-कर ऐसे भाग गये जैसे साँप के डर से चूहे भाग जाते हैं। जो राजा अपने देश का पैसा अंग को नहीं देते थे वे लोग भी राजा बेन की आज्ञा का पालन करने लगे। जब बेन सातों द्वीपों का ऐसा प्रतापी राजा हुआ कि जिसका सामना करनेवाला कोई दूसरा संसार में न रहा तब उसने राज्य और धन के अभिमान से अन्धा होकर यह विचारा कि दूसरे देवता के नाम पर यज्ञ, दान, जप, तप आदि किसी को न करना चाहिए। देवता और पितर की जगह पर हमारी पूजा होनी चाहिए, क्योंकि सबको भोजन देकर मैं पालन करता हूँ। ऐसा विचारकर वह परमेश्वर को भूल गया और उसने अपने राज्य भर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई मनुष्य यज्ञ, पूजा, श्राद्ध, होम व दान आदि परमेश्वर तथा अन्य देवताओं व पितरों के नाम पर न करे। जिसको जो कुछ

करना हो वह मेरे नाम पर किया करे। जो कोई ऐसा नहीं करेगा उसको हम दण्ड देवेंगे। इस तरह ढिंढोरा पिटवाने के उपरान्त राजा बेन अपनी सेना साथ लेकर दूसरे राजाओं के देश में दिग्विजय के लिए चला। जहाँ वह पहुँचता था वहाँ के राजा अनेक प्रकार की वस्तुएँ भेंट देकर उससे मिलते थे। तब राजा बेन उनसे कहता था कि तुम हमारी आज्ञा मानो और अपने राज्य भर में ऐसा उपदेश करो कि कोई मनुष्य यज्ञ, दान, जप, तप, आदि किसी देवता के नाम पर न करे, जिसको करना हो वह हमारी पूजा करे। वे सब राजा अपने प्राण व धन के भय से उसकी आज्ञा मान लेते थे। जब राजा बेन के डर से सातों द्वीपों में यज्ञ और दान आदि शुभ कर्म करना लोगों ने छोड़ दिया तब अधर्म और पाप का अधिकार होने से ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों का कर्म व धर्म छूटने लगा। जब भृगु और वशिष्ठ आदि ऋषीश्वरों ने इस तरह राजा बेन का अधर्म देखा और अपने जप व पूजा में विघ्न समझा तब सरस्वती के किनारे बैठकर आपस में यह विचार किया कि जिस देश में राजा नहीं रहता वहाँ की प्रजा मनमाना पाप करती है। चोर आदि अधर्मी लोग सबको दुःख देते हैं। इस कारण धर्म की हानि और पाप की वृद्धि होती है। अधर्मियों और पापियों को दण्ड देने व धर्म की रक्षा करनेवाले राजा होते हैं, सो यह राजा बेन ऐसा अधर्मी उत्पन्न हुआ कि इसने संसार से सम्पूर्ण धर्म उठा दिया, इसका क्या उपाय करना चाहिए। ऐसा विचारकर ऋषीश्वरों ने आपस में कहा कि हम लोगों ने उसको राजसिंहासन पर बैठाया है, इसलिए एक बेर चलकर उसे समझाना चाहिए। कदाचित् हमारे बर्जने से उसने अधर्म करना छोड़ दिया तो अच्छी बात है, नहीं तो कोई और उपाय करेंगे। यह सम्मति करके भृगु और वशिष्ठ आदि बहुत से ऋषीश्वर व ब्राह्मण इकट्ठे होकर राजमन्दिर पर गये। जब राजा ने दण्डवत् करके उनको बैठाया तब ऋषीश्वर बोले—हे राजन्! हम तुझे एक बात समझाने आये हैं, उसको अंगीकार करने में तेरा कल्याण है, नहीं तो नष्ट हो जायगा। राजा ने पूछा कि वह कौन-सी बात है, कहो। तब ऋषीश्वरों ने कहा—

हे राजन्! हम लोगों को तुम यज्ञ व तप आदि करने से क्यों मना करते हो? संसारी मनुष्यों को शुभ कर्म करने से मना करके कहते हो कि देवता और पितरों की जगह हमारी पूजा करो। यह बात किसी को अच्छी नहीं लगती। हम लोगों का यही धर्म है कि यज्ञ, होम और नारायणजी का ध्यान किया करें। यह वचन सुनकर राजा बोला—तुम्हारे वेद व पुराण में लिखा है कि राजा नारायणजी का स्वरूप है, इसलिए तुम्हें हमारी आज्ञा मानना चाहिए। यदि मेरा कहना न मानोगे तो तुम लोगों को दण्ड दूँगा। ऋषीश्वरों ने जब यह बात सुनी तब आपस में सम्मति किया कि ऐसे अधर्मी राजा को मार डालना उचित है। ऐसा विचारकर किसी ऋषीश्वर ने कुश और किसी ने जल हाथ में लेकर कुछ मंत्र पढ़कर ऐसा शाप दिया कि राजा बेन उसी समय मर गया और ऋषीश्वर लोग अपने-अपने स्थान पर चले गये। बेन की माता सुनीथा ने यह हाल सुनकर बहुत विलाप किया और इस विचार से उसकी लोथ नहीं जलाई कि ऋषीश्वरों और ब्राह्मणों को सब सामर्थ्य है कदाचित् पीछे से प्रसन्न होकर इसे फिर जिला दें। इसी आशा से उसकी आँतें निकलवाकर उसका पेट धुलवा डाला और मसाला भरवाकर उसकी लोथ तेल में रख छोड़ी, जिसमें गले-सड़े नहीं। बेन के मरने के उपरान्त फिर यज्ञ और होम आदि शुभ कर्म संसार में होने लगे। पर राजा के न रहने से चोर व ठग फिर प्रजा को दुःख देने लगे। अधर्मियों ने निडर होकर मनमाना पाप करना आरम्भ किया। यह दशा देखकर ऋषीश्वरों और ब्राह्मणों ने आपस में फिर विचारा कि राजा के बिना संसार में धर्म नहीं रह सकता, सब लोग वर्णसंकर हो जायँगे। राजनीति में लिखा है कि जिस देश में राजा न हो या जहाँ राजा अधर्मी और मूर्ख हो या जिस देश में स्त्री राज्य करे या जिस स्थान पर कई राजा हों वहाँ बसने से धर्म नहीं रहता। इसलिए दूसरे राजा का उपाय करना चाहिए, राजा के बिना प्रजा सुख नहीं पावेगी। नारायणजी की कृपा से बेन भी जी सकता है, पर वह अपने अधर्म को न छोड़ेगा, इसलिए उसको जिलाना साँप को दूध

पिलाने के समान है, पर यह ध्रुव भक्त के कुल में राजगद्दी थी, सो बेन की लोथ में भी कुछ उसके धर्म का अंश होगा, इसलिए इस लोथ में से एक बालक उत्पन्न करके राजसिंहासन पर बैठाना चाहिए, जिसमें प्रजा सुख पावे और धर्म की रक्षा हो। यह बात आपस में विचारकर भृगु आदि ऋषीश्वरों ने, जिनको परमेश्वर का तप व जप करने से सब सामर्थ्य थी, जाकर सुनीथा से पूछा—बेन की लोथ कहाँ है? यह बात सुनते ही सुनीथा ने ऋषीश्वरों को दण्डवत् किया और बड़ी प्रसन्नता से बेन की लोथ उनके सामने ले आई। ऋषीश्वरों ने कुछ मंत्र पढ़कर राजा बेन की जंघा मथानी से दही के समान मथी। जिस तरह दही मथने से मक्खन निकलता है उसी तरह जंघा मथने से एक नाटा पुरुष काले रंग का अति कुरूप उत्पन्न होकर बोला—हे ऋषीश्वरों! मुझे क्या आज्ञा देते हो? जब ऋषीश्वरों ने देखा कि यह मनुष्य राज्य करने योग्य नहीं है तब उससे कहा तू वन में जाकर भिल्लों का राजा हो। सो वह उनकी आज्ञा से वन में जाकर भिल्लों का राजा हुआ। उसी के वंश में मल्लाह और मुसहर आदि उत्पन्न हुए। वे आज तक संसार में वर्तमान हैं। उस पुरुष के निकलते ही सुनीथा का सब पाप बेन के शरीर से बाहर निकल गया।

—:o:—

पन्द्रहवाँ अध्याय।

ऋषीश्वरों का उसकी दाहिनी भुजा से राजा पृथु और
अरुचि नाम की स्त्री को उत्पन्न करना।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! ऋषीश्वरों ने एक बहुत सुन्दर और नीतिमान् राजा उत्पन्न करने के लिए बेन की दाहिनी भुजा फिर मथी तो उसमें से एक पुरुष अति सुन्दर, तेजस्वी, विशाल शरीर, लम्बी भुजाओं वाला तथा एक रूपवती स्त्री, दो मनुष्य उत्पन्न हुए। ऋषीश्वरों ने उस पुरुष का नाम पृथु और स्त्री का नाम अरुचि रक्खा और उन दोनों का विवाह करके पृथु से कहा कि तुम सातों द्वीपों का राज्य करो। ऋषीश्वरों ने ज्ञान की दृष्टि से जाना कि ये दोनों लक्ष्मीनारायण

का अवतार हैं, इसलिए बड़े हर्ष से पृथु को राजसिंहासन पर बैठाने का निश्चय किया। तब कुबेर देवता को बुलाकर कहा कि जिस सिंहासन पर अधर्मी बेन बैठता था वह राजा पृथु के बैठने योग्य नहीं है, इसलिए तुम दूसरा बहुत अच्छा सिंहासन पृथु के बैठने के लिए लाओ। उसी समय कुबेर देवता एक बहुत उत्तम जड़ाऊ सिंहासन ले आये। ऋषीश्वरों और देवतों ने पृथु को राजसिंहासन पर बैठाकर दण्डवत् किया। वरुण देवता ने छत्र, पवन देवता ने चमर, नाग देवता ने मणि, पृथ्वी ने खड़ाऊँ, सरस्वती ने मोतियों का हार, महादेव ने तलवार, विष्णु ने सुदर्शनचक्र, पार्वतीजी ने ढाल, त्वष्टा देवता ने रथ, अग्नि देवता ने धनुष-बाण और समुद्र ने शंख लाकर राजा पृथु को भेंट दिया। इसी तरह और सब देवता भी उत्तम-उत्तम वस्तुएँ लाकर राजा पृथु को भेंट दे गये। इन्द्रपुरी से अप्सराओं ने आकर राजा को नाच दिखाया, गन्धर्वों ने गाना सुनाया, सिद्ध व चारण लोगों ने आकाश से स्तुति करके राजा पर फूल बरसाये, भाटों ने आकर राजा पृथु की बड़ाई में प्रतापी राजाओं की उपमा दी। उनका वचन सुनकर राजा ने भाटों से कहा कि अभी तक मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, तुम लोग इतनी बड़ाई क्यों करते हो। जिसमें कुछ भी गुण नहीं होता, भाट लोग लोभ के वश उस मनुष्य की भी बड़ाई इन्द्र के समान करते हैं, यह बात अनुचित है। जो मनुष्य अपनी बड़ाई सुनकर प्रसन्न होता है, उसे मूर्ख समझना चाहिए। अपने में जो गुण न हो और उस गुण के होने की कोई प्रशंसा करे तो निस्संदेह समझना चाहिए कि यह हमारी हँसी करता है, सो हे भाटो! जब हम कोई अच्छा काम करें तब हमारी स्तुति करना, अभी चुप रहो। मनुष्य बड़ाई के योग्य नहीं है, नारायणजी की स्तुति करनी चाहिए जिन्होंने मनुष्य को उत्पन्न करके उसे महत्त्व दिया। वे जब उसके हाथ से शुभ कर्म कराते हैं तब वह स्तुति के योग्य होता है। स्तुति के योग्य भगवान् ही हैं, जो सबका पालन करके संसार और वैकुण्ठ का सुख देते हैं। यह वचन सुनकर सब लोग राजा की बड़ाई करने लगे।

—(०)—

सोलहवाँ अध्याय।

भाटों का विदा होना और पंडितों का राजा पृथु की जन्मकुण्डली का फल कहना।

मैत्रेयजी ने विदुर से कहा कि भाटों ने राजा का वचन सुनकर विनय किया कि हे पृथ्वीनाथ! आप नारायणजी का अवतार हैं, आपकी बड़ाई करना भगवान्‌जी की स्तुति करने के तुल्य है। हम लोग अपनी जिह्वा पवित्र करने के लिए आपकी स्तुति करते हैं, क्योंकि हम लोगों ने अपना पेट पालने के लिए और लोगों की झूठ व सच बहुत-सी बड़ाई की है। आप ऐसे अच्छे काम करेंगे कि आज तक किसी राजा ने संसार में ऐसे कर्म नहीं किये। जब भाट लोग ऐसे वचन कहकर राजा से द्रव्य लेकर अपने-अपने घर चले गये तब ज्योतिषी पण्डितों ने राजा की जन्मकुण्डली बनाकर ग्रहों का फल इस तरह वर्णन किया कि ये सातों द्वीपों के राजा होंगे। अपनी भुजाओं की सामर्थ्य से पृथ्वी भर के राजाओं को जीतकर उदयास्ताचल तक राज्य करेंगे। पृथ्वी को गौ के समान दुहेंगे। पृथ्वी को कन्यातुल्य और प्रजा को पुत्रतुल्य समझेंगे। ब्राह्मणों, ऋषीश्वरों व साधु-सन्तों को नारायणरूप जानेंगे। आठ महीने प्रजा से पृथ्वी का देन लेकर चार महीने बरसात में उनको अपने पास से भोजन व वस्त्र देंगे। बिना अपराध किसी को दण्ड नहीं देंगे। जब इन्द्र डाह से उनके राज्य में पानी न बरसावेगा तब राजा पृथु के प्रताप से प्रजा की इच्छा होते ही वर्षा होगी। राजा पृथु सौ अश्वमेध यज्ञ भगवान्‌जी को प्रसन्न करने के लिए निष्काम करेंगे। जब निन्नानवे यज्ञ पूर्ण हो जायँगे और सौवाँ यज्ञ आरम्भ होगा तब राजा इन्द्र अपने इन्द्रासन लेने के डर से योगी का रूप बनाकर यज्ञ का श्यामकर्ण घोड़ा चुरा ले जायँगे। जब राजा पृथु का पुत्र इन्द्र से घोड़ा छीन लावेगा तब इन्द्र उससे हार मानकर छल करने के वास्ते अनेक तरह के रूप धारण करेंगे। उनके रूप धारण करने का हाल सुनकर कलियुग में मूर्ख लोग भी दूसरों को ठगने के वास्ते अनेक प्रकार के रूप धरेंगे। नारायणजी यज्ञशाला में प्रकट होकर राजा पृथु को दर्शन देंगे और सनकादिक ऋषीश्वर राजमन्दिर पर आकर उनको

ज्ञान सिखावेंगे। राजा पृथु परस्त्री को माता और दूसरे का धन मिट्टी के समान समझकर सदा परमेश्वर के भजन व स्मरण में लीन रहेंगे। ऐसा कहकर ज्योतिषी लोग राजा से दक्षिणा लेकर अपने-अपने घर चले गये। भृगु आदिक ऋषीश्वर और देवता भी राजा को आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थान को पधारे।

सत्रहवाँ अध्याय।

राजा पृथु का प्रजा के दुःख पाने से धरती पर क्रोध करना।

मैत्रेयजी ने कहा—हे विदुर! जब देवता और ऋषीश्वर विदा हो गये तब राजा पृथु धर्म और नीति के साथ राज्य-काज करने लगे। एक दिन सब प्रजा ने उनके पास आकर विनय किया कि महाराज! आप हमारे राजा और मालिक हैं, शास्त्र के अनुसार आपको हमारा पालन करना चाहिए। हम लोग भूख के मारे मरे जाते हैं। जिस तरह वृक्ष भीतर से जलकर खोखले हो जाते हैं उसी तरह हम लोगों का कलेजा व पेट मारे भूख के जला जा रहा है। अन्न व फल खाने से सब लोग जीते हैं, सो राजा बेन के पाप करने से पृथ्वी ने सब अन्न व फल अपने में चुरा लिया। जो अन्न हम लोग पृथ्वी पर बोते हैं सो नहीं उगता और जो वृक्ष पहले से उगे हुए हैं उनमें फल नहीं लगते, इसलिए हम लोग अपने लड़के-बालों समेत खाने के बिना मरे जाते हैं। सो आपको धर्मात्मा राजा समझकर अपना दुःख आपसे कहा। कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिसमें पहले की तरह अन्न व फल पृथ्वी से उत्पन्न हुआ करें। यह बात सुनते ही राजा ने पृथ्वी पर क्रोध करके अपना धनुष-बाण उठा लिया और बाण साधकर कहा कि अभी एक तीर मारकर पृथ्वी के टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। पृथ्वी राजा को ऐसे क्रोध में देखकर उसी समय गोरूप धारण करके डरती व काँपती हुई उनके सामने आई। राजा ने उसे अपने ज्ञान से पहिचान लिया कि यह गोरूपी पृथ्वी है, तिस पर भी राजा ने क्रोध के वश होकर धर्म और अधर्म का विचार न करके जब उसे तीर मारने की इच्छा की तब गोरूपी पृथ्वी वहाँ से भागती हुई सब

लोकों में गई और राजा भी धनुष-बाण लिये हुए रथ पर बैठकर उसके पीछे दौड़ते चले गये। जब उसे कहीं अपने प्राण का बचाव न दीखा तब वह राजा के सामने खड़ी होकर बोली—हे पृथ्वीनाथ! आप नहीं जानते कि वेद-शास्त्र में गौ का मारना बड़ा पाप है। राजा ने जवाब दिया कि शास्त्र में ऐसा लिखा है कि जिस किसी से संसारी जीव दुःख पावें उसका मारना पाप नहीं है, उसे धर्म समझना चाहिए। ब्रह्माजी ने जो ओषधि व अन्न संसारी जीवों के पालन के हेतु प्रकट किया है उसको तूने छिपा लिया। राजाओं का यही धर्म है कि जो उनके प्रजा को दुःख दे उसे मार डालें। यह बात सुनकर फिर गौरूपी पृथ्वी ने कहा—हे राजन्! जब मुझको हिरण्याक्ष दैत्य पाताल में ले गया था और जीवों के रहने के लिए जगह नहीं थी तब नारायणजी वाराह अवतार धारण करके मुझे पाताल से लाये और पानी पर स्थिर करके सब जीवों को मेरे ऊपर बसाया। कदाचित् तुम मुझे मार डालना चाहते हो तो सब प्रजा को कहाँ रक्खोगे। राजा ने कहा कि मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि तुझको मारने के उपरांत अपने तपोबल व नारायणजी की कृपा से महाप्रलय के पानी पर प्रजा को बसाऊँगा। गौ ने यह बात सुनकर अपने ज्ञान से मालूम किया कि राजा बड़े प्रतापी और परमेश्वर का अवतार हैं, जो चाहेंगे सो करेंगे, अब बिना इनकी शरण गये मेरे प्राण बचना कठिन है। ऐसा विचारकर पृथ्वी ने राजा से विनयपूर्वक कहा कि हे पृथ्वीनाथ! आप कर्तापुरुष परमेश्वर का अवतार सब कर सकते हैं, जो आज्ञा दीजिए सो मैं करूँ।

—:०:—

अठारहवाँ अध्याय।

राजा का सब अन्न व ओषधि गोरूपी पृथ्वी को दुहकर निकालना।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! गोरूपी पृथ्वी ने राजा से कहा कि महाराज, मैंने बेन के अधर्म करने से अन्न व ओषधि आदि इसलिए अपने में छिपा लिया कि बेन के राज्य में संसारी लोग होम व दान करना छोड़कर सब अन्न अपने खर्च में लाने लगे थे। देवता व अग्नि का भाग देना

उन्होंने बन्द कर दिया था, इसलिए अधर्मी लोगों का पालन करना मैंने उचित नहीं जाना। अब तुम धर्मात्मा राजा अवतार लेकर पहले की तरह अन्न व फल उत्पन्न होना चाहते हो तो तुम वेद का मंत्र पढ़कर योगाभ्यास के साथ गौ के समान मुझे दुहो। जो कुछ मैंने गुप्त कर लिया है और जिस चीज की तुमको इच्छा हो, सब मुझसे दूध की तरह निकलेगी। पहाड़ों का बहुत बड़ा बोझ मेरे ऊपर बेठिकाने रक्खा है, आप उसे उठाकर एक तरफ धर दीजिए तो बहुत-सी पृथ्वी खाली हो जायगी। अनेक जगह ऊँची-नीची धरती, जो गड़हे के समान है, उसे पाटकर बराबर कर दीजिए, तब मेरे ऊपर सब जीव आराम से रहकर खेती आदि व्यापार करके बड़ा सुख पावेंगे, किसी को दुःख न होगा। बरसात बीतने पर भी जीवों के पीने और खेतों के सींचने के लिए सब जगह पानी रहेगा। राजा पृथु ने यह वचन सुनते ही अपने धनुष की नोक से पहाड़ों को, जो बीच में जगह छेंके थे, उठाकर उत्तर दिशा में धर दिया, सो तीन तरफ पृथ्वी खाली हो गई और जिस जगह गड़हे थे, वहाँ पर छोटे-छोटे पहाड़ों को रखकर अपने धनुष से ठोंक दिया तो वह धरती भी बराबर हो गई। वहाँ राजा ने बहुत सी जगहों पर नगर व गाँव बसाये। जहाँ पानी की जरूरत थी वहाँ तालाब, बावली व कुवाँ आदि बनवा दिया, जिसमें सब जीवों को सुख मिले। तब गोरूपी पृथ्वी ने प्रसन्न होकर कहा—हे पृथ्वीनाथ! अब मुझे दुहो, पर दुहने का बर्तन और बछड़े की सूरत, अनेक वस्तुओं के निकालने के लिए, जुदा-जुदा बनाओ, जिसमें सब पदार्थ मुझसे निकलें। पहले भृगु व दुर्वासा आदि ऋषीश्वरों ने गोरूपी पृथ्वी को दुहा तो उसमें से वेद निकला। ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर कहा—हम लोगों को यही चाहिए। फिर देवता, गन्धर्व, दैत्य व राजा पृथु आदि ने उस गौ को दुहकर अनेक प्रकार के फल, अन्न व ओषधि आदि प्रयोजन की सब वस्तुएँ उसमें से निकालीं। दुहने का बर्तन और बछड़े का स्वरूप पृथक-पृथक बनाया था। हे विदुर, पृथ्वी कामधेनु गाय के समान है, इसलिए सब लोगों ने अपनी इच्छापूर्वक गोरूपी पृथ्वी को दुहकर सब तरह की वस्तुएँ

निकाल लीं। देवता और ऋषीश्वरों ने पृथ्वी को आशीर्वाद दिया कि पहाड़ व समुद्रादिक का बोझ तुझे कुछ नहीं मालूम होगा, परन्तु साधु व ब्राह्मण को दुःख देनेवाले अधर्मी जब तेरे ऊपर अपना चरण रक्खेंगे तब तू उनके भार से दुःखी होगी। उस समय नारायणजी अवतार लेकर, अधर्मियों को मारकर, तेरा बोझ दूर करेंगे। देवताओं और ऋषीश्वरों का यह वरदान सुनकर, पृथ्वी अपना रूप धरकर, राजा पृथु को आशीर्वाद देकर अपने स्थान को चली गई और संसारी जीव अन्न व फल उत्पन्न होने से प्रसन्न होकर अपने कर्म व धर्म में लीन हुए तथा नगर व गाँव में सुखपूर्वक रहकर राजा पृथु को आशीर्वाद देने लगे।

—:०:—

उन्नीसवाँ अध्याय

राजा पृथु का सौ अश्वमेध यज्ञ करना।

मैत्रेयजी ने विदुर से कहा कि जब सब प्रजा आनन्द से रहने लगी तब राजा ने ऋषीश्वरों और ब्राह्मणों को बुलाकर सौ अश्वमेध यज्ञ का संकल्प किया। वे ब्रह्मावर्त्त में स्वायम्भुव मनु के स्थान पर निष्काम यज्ञ करने लगे, सो उनके धर्म के प्रताप से घी, दूध, दही की नदियाँ प्रकट होकर संसार में बहने लगीं। रत्न, मोती, सोना, चाँदी और ताँबा आदि की खानें समुद्र व पहाड़ों में बिना खोदे प्रकट हो गईं, इसलिए उनके राज्य में कोई मनुष्य दुःखी व दरिद्री नहीं रह गया। राजा ने शास्त्र के अनुसार श्यामकर्ण घोड़ा छोड़कर अपनी सेना उसके साथ कर दी। वह घोड़ा सातों द्वीपों में फिरकर चला आया, किसी राजा में ऐसी सामर्थ्य नहीं थी, जो पृथु का घोड़ा बाँध सके। सब राजा उनके अधीन रहकर अपने-अपने देश का पैसा उनको देने लगे। इसी तरह राजा ने निन्नानवे यज्ञ सम्पूर्ण करके जब सौवाँ यज्ञ आरम्भ किया और श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा तब इन्द्र ने सोचा कि सौवाँ यज्ञ सम्पूर्ण होने पर राजा पृथु मेरा इन्द्रासन छीन लेंगे। इसलिए इस घोड़े को बाँध लेना चाहिए, जिसमें सौ यज्ञ सम्पूर्ण न होने पावें। ऐसा विचारकर

इन्द्र अपने बेटे से बोला कि तू जाकर यह घोड़ा किसी तरह पकड़कर हमारे पास ले आ। जब इन्द्र का बेटा घोड़े को पकड़ने के लिए आया तब उसके साथ बड़े-बड़े योद्धा देखकर डरके मारे उसे पकड़ नहीं सका और इन्द्र के पास जाकर बोला कि मेरी सामर्थ्य नहीं कि मैं घोड़े को पकड़ सकूँ, तुममें बल हो तो पकड़ लाओ। यह वचन सुनकर इन्द्र ने विचारा कि राजा पृथु बड़े धर्मात्मा और बलवान् हैं, उनसे सम्मुख लड़कर हम घोड़ा नहीं ला सकते, इसलिए कुछ छल करके घोड़ा लाना चाहिए। ऐसा विचारकर इन्द्र योगी का रूप बनाकर घोड़े के पास गया। जब राजा के नौकरों ने योगी समझकर उसको वहाँ जाने से मना नहीं किया तब इन्द्र उस घोड़े की बाग पकड़कर आकाश-मार्ग से अपने लोक को ले चला। राजा के सैनिकों ने यह हाल देखकर राजा से जाकर कहा कि महाराज, एक मनुष्य योगी का रूप बनाकर घोड़े को आकाश में उड़ा ले गया है। यह वचन सुनते ही राजा ने ब्राह्मणों से पूछा कि तुम लोग अपनी ज्ञानदृष्टि से देखो, वह योगी कौन है, जो हमारा घोड़ा ले गया। ब्राह्मणों ने दिव्यदृष्टि से देखकर कहा—हे राजन्! तुम्हारा घोड़ा इन्द्र इस डर से अपने लोक में लिये जाता है कि सौ यज्ञ सम्पूर्ण होने पर मेरा इन्द्रासन छूट जायगा। यह वचन सुनकर राजा बोले—मैं इन्द्रलोक लेने की इच्छा नहीं रखता, परन्तु इन्द्र मेरा यज्ञ बन्द कराना चाहता है, इसलिए घोड़ा अवश्य मँगवाना चाहिए। ब्राह्मणों से यह कहकर राजा ने अपने पुत्र विजिताश्व को आज्ञा दी कि तू अभी जाकर घोड़ा ले आ। राजा ने अत्रि मुनि को भी उसके साथ कर दिया। अत्रि मुनि और विजिताश्व जब इन्द्रलोक के पास पहुँचे तब इन्द्र को घोड़ा लिये हुए जाते देखा। राजकुमार ने सरवन्त नामक बाण धनुष पर धरकर जैसे चाहा कि इन्द्र की छाती में मारें वैसे ही इन्द्र अपने प्राण के डर से घोड़ा वहीं छोड़कर अन्तर्धान हो गया। विजिताश्व ने घोड़ा पृथु के पास लाकर इन्द्र के भागने का हाल कहा। जब इन्द्र घोड़ा छीन जाने से बहुत लज्जित हुआ तब अपनी माया से अँधियारा उत्पन्न करके कई बार धोखा देकर घोड़ा चुरा

ले गया, पर विजिताश्व जाकर छीन लाया। जब इन्द्र ने कई बेर घोड़ा छीन लाने पर भी उसका चुराना न छोड़ा तब राजा पृथु ने क्रोधवन्त होकर अपना धनुष-बाण इन्द्र को मारने के वास्ते उठाया। यज्ञ करानेवाले ऋषीश्वरों ने राजा को समझाया कि हे पृथ्वीनाथ! तुमने सौ अश्वमेध यज्ञ का संकल्प किया है, क्रोध करने से संकल्प में विघ्न होगा। इन्द्र अमृत पीने से किसी तरह मर नहीं सकता। जब ऋषीश्वरों के समझाने से राजा का क्रोध शान्त नहीं हुआ तब ब्रह्माजी ने नारद मुनि समेत यज्ञशाला में आकर राजा से कहा कि तुम इन्द्र के मारने की इच्छा मत करो। तुम्हारे हाथ उसकी मृत्यु नहीं है। तुम्हें इन्द्रासन लेने की इच्छा हो तो उसको इन्द्रपुरी से निकालकर वहाँ का राज्य भोगो और मुक्ति की चाहना रखते हो तो सौवाँ यज्ञ मत करो जितने यज्ञ तुमने किये हैं उन्हीं के प्रताप से परमेश्वर तुमको दर्शन देकर मुक्ति पदवी देवेंगे। तुम्हारे यज्ञ करने का हाल सुनकर संसारी लोग शुभ कर्म करेंगे और जब ब्रह्माजी के समझाने से राजा पृथु ने अपना क्रोध क्षमा किया तब ब्रह्माजी नारद मुनि समेत अपने लोक को गये। राजा ब्राह्मणों से बोले कि मैं इन्द्रलोक की इच्छा नहीं रखता, निन्नानवे यज्ञ अच्छी तरह सम्पूर्ण हुए, एक यज्ञ बाकी है, वह मैं नहीं करूँगा, पूर्णाहुति अग्निकुंड में डाल दो। जैसे ऋषीश्वरों ने मंत्र पढ़कर पूर्णाहुति किया वैसे ब्रह्मा ने नारायणजी के पास जाकर कहा—महाराज! इन्द्र के सामने दूसरा कोई सौ यज्ञ नहीं कर सकता, पर राजा परम भक्त पृथु का संकल्प झूठा न होना चाहिए। आप संसार के मालिक हैं जैसा उचित हो वैसा कीजिए। यह वचन सुनते ही परमेश्वर त्रिलोकीनाथ ब्रह्मा और इन्द्र को अपने साथ गरुड़ पर बैठाकर पूर्णाहुति डालने के समय पृथु की यज्ञशाला में पधारे। उन्हें देखते ही राजा पृथु, सब ब्राह्मण और ऋषीश्वर खड़े होकर वैकुंठनाथ को दण्डवत् करके स्तुति करने लगे।

बीसवाँ अध्याय ।

राजा पृथु का सब राजाओं को अपने मकान पर बुलाना ।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित ! नारायणजी राजा पृथु के स्तुति करने से प्रसन्न होकर बोले—हे राजा ! तुम्हारे सौ यज्ञ सम्पूर्ण हुए । हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, कुछ वरदान माँगो । तुम इन्द्र का अपराध क्षमा करके इससे किसी बात का विरोध मत रक्खो । क्योंकि शत्रुता किसी से न करनी चाहिए, सब छोटे-बड़े प्राणियों में आत्मा एक ही है, शुभ व अशुभ कर्म करने से भला व बुरा कहलाता है । सो तुम दया व धर्म से प्रजा का पालन करो । तुम्हें सनकादिक ऋषीश्वर आकर ज्ञान का उपदेश करेंगे । यह वचन त्रिलोकीनाथ से सुनकर राजा पृथु ने विधिपूर्वक उनकी पूजा करके हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनदयालु ! मैं किसी के साथ शत्रुता नहीं रखता और न इन्द्रलोक या दूसरी वस्तु लेने की चाहना करता, केवल यही चाहता हूँ कि आपके चरणों की भक्ति व प्रीति मेरे हृदय में बनी रहे । आप लक्ष्मीजी से भी अधिक अपने भक्तों का प्यार करते हैं । जिसने आपकी भक्ति का सुख पाया है, वह मनुष्य संसारी माया मोह में नहीं फँसता । सो मुझे आपके चरणों की भक्ति व प्रीति चाहिए । यह वचन सुनते ही नारायणजी प्रसन्न होकर बोले—हे राजा ! तुम मेरे परम भक्त हो, तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण होंगी। जब त्रिलोकीनाथ ऐसा कहकर वैकुंठ को पधारे और ब्रह्मा अपने स्थान को गये और राजा का यज्ञ सम्पूर्ण हुआ तब उन्होंने ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों को बहुत-सा दान व दक्षिणा देकर विदा किया । राजा पृथु इन्द्र से प्रीति रखकर धर्म के साथ प्रजा का पालन व राज्य करने लगे । उनके राज्य में कभी ब्राह्मणों व ऋषीश्वरों ने किसी पर क्रोध नहीं किया । सब छोटे-बड़े जीव सुख व आनन्द से रहते थे । कुछ दिनों के उपरान्त राजा ने विचारा कि हमारे राज्य भर में सब छोटे व बड़े चारों वर्ण परमेश्वर का भजन व स्मरण करके हरिकथा सुनते, अशुभ कर्म न करते, साधु-ब्राह्मणों की भक्ति करते तो बहुत अच्छा होता, ऐसा विचारकर

उन्होंने सातों द्वीपों के राजाओं, ऋषीश्वरों, ब्राह्मणों, महात्माओं और चारों वर्णों के लोगों को नेवता भेजा। थोड़े दिनों में सब लोग राजा पृथु के यहाँ आकर इकट्ठे हुए। राजा ने उनका सम्मान किया और वे लोग राजा से बहुत प्रसन्न हुए।

——:०:——

इक्कीसवाँ अध्याय।

राजा पृथु का सब राजाओं से भगवद्भजन अपने-अपने राज्य में फैलाने के लिए कहना।

मैत्रेयजी ने विदुर से कहा कि जब राजा पृथु सब राजों का शिष्टाचार कर चुके तब सब ऋषीश्वरों के साथ सब लोगों को सभा में बैठाकर बोले कि हम एक वस्तु तुम लोगों से माँगते हैं, पर दबाव करके नहीं कहते, तुम लोग दया करके अपनी प्रसन्नता से हमको दो तो हम तुम्हारा बड़ा उपकार मानेंगे। यह दीन वचन सुनकर सब राजाओं ने हाथ जोकड़र विनय किया—हे पृथ्वीनाथ! हमारा तन, धन, स्त्री व पुत्र सब आपके ऊपर न्योछावर हैं, जो आज्ञा हो सो करें। तब राजा पृथु बोले—मैं चाहता हूँ कि सातों द्वीपों में छोटे-बड़े, स्त्री पुरुष चारों वर्ण के जितने मनुष्य हैं, सब लोग नारायणजी की भक्ति, पूजा, जप व स्मरण किया करें। जिस राजा के देश में प्रजा लोग जो धर्म या पाप करते हैं उसका छठा भाग राजा को पहुँचता है। सो परमेश्वर का भजन व स्मरण करना, उनके चरणों में भक्ति व प्रीति रखना, अवतारों की कथा व लीला सुनना चारों वर्णों को अवश्य चाहिए। हरिभजन व भक्ति करना किसी वर्ण के वास्ते पृथक् नहीं है। चारों वर्णों में जो कोई सच्चे मन से स्मरण व भक्ति करता है, परमेश्वर उस पर दयालु होकर अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष चारों पदार्थ उसे देते हैं। देखो, शबरी भिल्लिनि का जूठा बेर दिया हुआ परमेश्वर ने बड़े प्रेम से खाया था, इसी तरह बहुत हरिभक्त मनुष्य बड़ी पदवी को पहुँचे हैं। दूसरे राजों के समय में वर्णों व आश्रमों के और-और धर्म प्रसिद्ध थे, अब हमारी इच्छा यह है कि मेरे समय में परमेश्वर का नाम लेना व उनकी भक्ति करना ही सबका धर्म हो। सो तुम लोग अपनी-अपनी प्रजा को इसी तरह के धर्म का

उपदेश करो। राजा को छठा भाग अन्न, जो खेतों में उपजता है, प्रजा से लेना चाहिए, सो हमने वह अंश भी प्रजा को छोड़ दिया, उसी से सब लोग होम व दान किया करें। उसके सिवा और जिस किसी को द्रव्य की चाहना हो वह मेरे यहाँ से ले जाकर शुभ कर्म में खर्च किया करे। हम इसमें बहुत प्रसन्न हैं। जो धन धर्म में खर्च हो व दूसरे के काम आवे, उसी को सफल जानना चाहिए। हरिभक्ति करने से मनुष्य की सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं और मरने के उपरान्त वैकुण्ठ का सुख मिलता है। जिस तरह अग्नि काठ में रहती है पर उपाय किये बिना नहीं निकलती उसी तरह परमेश्वर सबके हृदय में रहता है किन्तु भक्ति और ज्ञान प्राप्त हुए बिना दिखलाई नहीं देता। परमेश्वर का जड़ मुख अग्नि और चैतन्य मुख ब्राह्मण है, नारायणजी ब्राह्मण को भोजन कराने से जितना प्रसन्न होते हैं उतना यज्ञ व होम करने से प्रसन्न नहीं होते। सो मैं उन्हीं ब्राह्मणों के चरणों की धूलि अपने मस्तक पर चढ़ाता हूँ, जिनकी सेवा करने से मनुष्य तुरन्त अपना मनोरथ पाता है। जिससे ब्राह्मण प्रसन्न हों, उसको समझना चाहिए कि परमेश्वर उससे प्रसन्न हैं और जिस पर ब्राह्मण क्रोध करें उसे परमेश्वर का शत्रु जानना चाहिए। यह बात सुनते ही सब ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों ने राजा को आशीर्वाद देकर कहा—आप ऐसा धर्मात्मा राजा पाकर हमारे सब दुःख छूट गये। सब राजाओं ने अपने-अपने देश में जाकर पृथु की आज्ञानुसार धर्म का प्रचार किया। जब धर्मात्मा पृथु के उपदेश से सब संसारी मनुष्य हरिचरणों की भक्ति व नाम का स्मरण करने लगे तब देवलोक में यह समाचार सुनकर एक दिन सनकादिक ऋषीश्वरों ने ब्रह्माजी की सभा में कहा—मर्त्यलोक में राजा पृथु ऐसा धर्मात्मा उत्पन्न हुआ है कि जिसके उपदेश से हरिभजन व भागवत धर्म संसार में फैल गया। उसके धर्म से सब लोग कृतार्थ होंगे, सो हम भी उस राजा को देखने जाते हैं। ऐसा कहकर वह चारों भाई पृथु से भेंट करने के लिए राजमन्दिर पर आये। राजा उन्हें आकाशमार्ग से सूर्य के समान आते देखकर अपनी सभा समेत उठ खड़ा हुआ और दण्डवत् करके बड़े हर्ष

व सम्मान से सिंहासन पर बैठाकर उनके चरण धोये और विधिपूर्वक पूजन करके चरणामृत लेकर हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज! मेरे पिछले जन्म का पुण्य उदय हुआ जो आपने बिना बुलाये अपना दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया। यह दीन वचन सुनकर सनत्कुमारजी बोले—हे राजा! परमेश्वर से तेरी भक्ति सुनकर हम तुझे देखने आये हैं। राजा ने उनकी अति दया देखकर पूछा—हे दीनबन्धु! संसारी मनुष्य जन्म व मरण से किस तरह छूटते हैं? सनत्कुमार ने कहा—हे राजा! तुमने जगत् की भलाई के लिए यह बात पूछी है, सो उसका उपाय हम बतलाते हैं, सुनो जो कोई मनुष्य तनु पाकर अन्तःकरण में श्याम-सुन्दर के चरण व स्वरूप का ध्यान, जिह्वा से नाम का स्मरण व हरि-चर्चा और कानों से उनकी कथा व लीला प्रीति के साथ सुना करे वह मनुष्य आवागमन से रहित होता है और परमेश्वर में दृढ़ प्रीति हो जाती है। संसार में अपने शरीर, घर, स्त्री व पुत्रों को अपना समझ-कर उनसे प्रीति रखना, यही दुःख की फाँसी जानो। परमेश्वर के चरणों का ध्यान करने से ज्ञान प्राप्त होता है और काम, क्रोध, मोह व लोभ में चित्त लगाने से ज्ञान नहीं रहता। यह बात विचारकर मनुष्य को उचित है कि कुसंग से अलग रहकर सन्त व महात्माओं की सेवा किया करे, जिसमें उसका कल्याण हो। इसके सिवा दूसरा कोई उपाय मुक्ति पाने का नहीं है। यह ज्ञान सुनकर राजा ने विनय किया—हे तरणतारण महाराज! आप जिस तरह कृपा करके यहाँ आये हैं, उसी तरह दयालु होकर ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि जिसमें मेरी सब प्रजा हरिभक्त हो जावे। आपने मुझे ज्ञान का जो यह उपदेश किया है, इसके बदले में आपको कौन-सी वस्तु दूँ। मेरा राज्य और सब धन ब्राह्मणों और वैष्णवों के लिए है, उन लोगों से जो बचता है उसे मैं अपने काम में लाता हूँ, इसलिए आपको कुछ दे नहीं सकता, मैं आपका ऋणी हूँ। आप दया करके कोई ऐसा उपाय करें, जिसमें इस ऋण से मैं उऋण हो जाऊँ। सनत्कुमारजी ने कहा—हे राजा! कोई किसी का ऋणी हो और ऋण का पानेवाला कहे कि हमने तुझे छोड़ दिया तो

वह उऋण हो जाता है, वैसे ही हमने ऋण छोड़कर तुम्हें उऋण कर दिया। सनकादिक ऐसा कहकर ब्रह्मलोक को चले गये।

—:०:—

बाईसवाँ अध्याय।

राजा पृथु का तप करने के लिए अपनी स्त्री अरुचि के साथ वन को जाना।

मैत्रेयजी ने कहा—हे विदुर! सनकादिक के चले जाने पर राजा पृथु ने उसी तरह धर्म के साथ प्रजा का पालन करके बहुत दिनों तक राज्य किया। वे सदा साधु-ब्राह्मणों की सेवा और हरिभजन करके नारायणजी की कथा व कीर्तन सुना करते थे। राजा के अरुचि नामक स्त्री से विजिताश्व आदि पाँच पुत्र थे। राजा ने कुछ दिनों के उपरांत विचार किया कि यह राज्य व धन सदा स्थिर नहीं रहता, मरने के उपरान्त साथ नहीं जाता, इसलिए उत्तम है कि मैं इनसे विरक्त होकर वन में परमेश्वर का भजन व स्मरण करूँ, जिसमें मेरा परलोक बने। पृथु ने यह विचारकर राजगद्दी अपने बड़े बेटे विजिताश्व को दे दी और अपना मन संसारी माया से विरक्त करके अपनी स्त्री अरुचि के साथ वन में जाकर परमेश्वर के तप व ध्यान में लीन हुए। राजा पृथु के चले जाने से सब प्रजा को बड़ा खेद हुआ।

———

तेईसवाँ अध्याय।

राजा पृथु का योगाभ्यास के साथ तनु त्याग करना और अरुचि का सती होना।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! राजा पृथु ने वन में जाकर गर्मी में पंचाग्नि तापा, बरसात में बीच मैदान में बैठे रहे और जाड़े में पानी के भीतर खड़े रहकर परमेश्वर का तप व स्मरण किया। जब इसी तरह कुछ काल स्त्री समेत तप करते बीत गये तब एक दिन राजा ने विचारा कि अब यह तनु छोड़कर वैकुण्ठ में जाना चाहिए। यह निश्चय करके मध्याह्न के समय राजा पृथु ने परमेश्वर के ध्यान में योगाभ्यास के साथ बैठकर ब्रह्माण्ड की राह अपने प्राण निकाल दिये। तब उनकी

स्त्री अरुचि ने राजा का यह हाल देखकर पहिले तो बहुत सोच किया, फिर मन को धैर्य देकर उठी और वन में से लकड़ी बटोरकर चिता बनाई। उस पर राजा की लोथ धरकर आग लगा दिया और अपने पति के चरण देखती हुई चिता की सात परिक्रमा करके हाथ जोड़कर बोली—महाराज! मैं आपके बिना दूसरी जगह नहीं रह सकती, मुझे अकेली छोड़कर आप कहाँ चल दिये? जहाँ आप जाते हैं वहीं मुझको भी अपने साथ सेवा करने के लिए ले चलिए। आपकी सेवा करने से मेरा परलोक बनेगा। यह वचन कहने के उपरान्त रानी भी उस चिता में कूदकर राजा के साथ सती हो गई। उस समय एक बहुत अच्छा जड़ाऊ विमान, जिसमें मखमली बिछौना बिछे थे और मोतियों की झालरि लगी थीं, वैकुंठ से आया। राजा पृथु अपनी स्त्री समेत उस पर बैठकर वैकुण्ठ को चले गये।

चौबीसवाँ अध्याय।

देवतों का पृथु की स्तुति करना और विजिताश्व का धर्म के साथ राज्य करना।

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! जिस समय राजा पृथु अपनी स्त्री समेत विमान पर बैठकर वैकुंठ को गये उस समय देवता लोग उनकी स्तुति करके आपस में कहने लगे कि आज तक इस तरह का राज्य, प्रजा का पालन और तपस्या किसी राजा ने नहीं किया और न अरुचि के समान पतिव्रता स्त्री दूसरी होगी। राजा ने धर्म को ऐसा बढ़ाया था कि सातों द्वीपों के सब लोग हरिभक्त हो गये थे। वे इसलिए राज्यकाज करते थे कि जिसमें अधर्मियों व पापियों को दण्ड देने से पुण्य प्राप्त हो। राजा पृथु नारायणजी का अवतार थे, उन्होंने संसारी राजाओं को धर्म का उपदेश करने और पृथ्वी पर नगर व गाँव आदि बसाकर जीवों को सुख देने के लिए शरीर धारण किया था। इतनी कथा सुनाकर मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर, जब राजा पृथु का बड़ा बेटा विजिताश्व राजगद्दी पर बैठा तब उसने अपने चारों भाइयों को चारों दिशाओं का राज्य बाँट

दिया और अपनी राजगद्दी पर आप बैठकर धर्म के साथ प्रजा का पालन करने लगा। उसके राज्य में भी सब प्रजा सुखी रहती थी। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! एक बेर वशिष्ठजी ने तीनों तरह की अग्नि को (एक वह अग्नि जिसमें ब्राह्मण हवन करते हैं, दूसरी रसोई बनाने की और तीसरी जो काष्ठ में रहती) शाप दिया था कि तुम मर्त्यलोक में जाकर मनुष्य का जन्म लो। उस शाप से उन तीनों अग्नियों ने संसार में आकर राजा विजिताश्व के यहाँ शिखण्डिनी नाम स्त्री से जन्म लिया। राजा ने पावक, पुमान व शुचि उनका नाम रक्खा। वे लोग थोड़े दिन संसार में रहकर तन छोड़कर फिर अग्निदेवता हो गये। राजा विजिताश्व के प्रसूति नाम की दूसरी स्त्री से हविर्धान नाम का बेटा उत्पन्न हुआ। उसका विवाह हविर्धानी नामक अग्नि की कन्या से हुआ। हविर्धान के उस स्त्री से प्राचीनबर्हिष आदि छः बेटे उत्पन्न हुए। प्राचीनबर्हिष के सत्यवती नामक स्त्री से, जो अतिसुन्दरी थी, दश बालक एक रूप के जन्मे, जिन्हें प्रचेता कहते हैं। उनका शरीर दश लड़कों की तरह जुदा-जुदा था, पर रूप व ज्ञान सबका एक था, इस वास्ते दशों का नाम प्रचेता रक्खा। एक को बुलाओ तो दशों बोलें, उनमें एक जो काम करे वही दशों करें, एक के बीमार होने से दशों बीमार हो जावें। प्रत्यक्ष में वह दशों अलग अलग थे, पर बुद्धि प्रारब्ध कर्म मृत्यु और जीवन सबका एक साथ था। जब उन्होंने अपने पिता की आज्ञा से वन में जाकर दश हजार वर्ष परमेश्वर की तपस्या की तब महादेवजी और उनसे बहुत ज्ञानचर्चा हुई।

पच्चीसवाँ अध्याय।

महादेवजी और प्रचेतों का संवाद।

विदुरजी ने इतनी कथा सुनकर मैत्रेय ऋषीश्वर से पूछा—जो कुछ ज्ञानचर्चा महादेवजी व प्रचेतों से हुई थी वह वर्णन कीजिए। मैत्रेयजी ने कहा कि प्रचेता लोग जब उत्पन्न हुए तब प्राचीनबर्हिष ने उन दशों पुत्रों को आज्ञा दी कि पहिले तुम लोग वन में जाकर परमेश्वर का तप

करो। भगवान् का दर्शन होने के उपरांत नारायणी सृष्टि संसार में उत्पन्न करना। प्रचेता लोग यह वचन सुनते ही घर से निकलकर पश्चिम दिशा में समुद्र के निकट चले गये। उनको वहाँ एक बहुत रमणीक स्थान तालाब के किनारे दिखलाई दिया, सो उन्होंने वहाँ बैठकर आपस में विचारा कि हम नहीं जानते कि नारायणजी कौन हैं और किस तरह उनका तप व स्मरण करना चाहिए। वे लोग इसी चिन्ता में बैठे थे कि उसी समय मनुष्य की कुछ बोली उनको सुनाई देने लगी। तब उन्होंने आपस में कहा कि यहाँ कोई दिखलाई नहीं देता। यह कौन बोलता है। यही चर्चा कर रहे थे कि महादेवजी उसी तालाब में से निकलकर वहाँ आये। उनके साथ देवता लोग स्तुति करते और गन्धर्व गाते थे। जब प्रचेता लोग उनको नहीं पहिचानकर उसी तरह बैठे रहे तब शिवजी ने कहा—हे प्रचेतो! हम महादेव हैं, तुम लोगों को ज्ञान सिखलाने के लिए यहाँ आये हैं कि तुम लोग नारायणजी का भजन व स्मरण इस तरह करो, जिसमें उनका दर्शन तुमको प्राप्त हो। मैं जिस तरह परमेश्वर को जानता हूँ उसी तरह नारायणजी के भक्त मुझे प्यारे हैं, सो मैं तुम्हें हरिभक्त समझकर ज्ञान सिखलाता हूँ। यह वचन सुनते ही प्रचेतों ने बड़े हर्ष से खड़े होकर शिवजी को दण्डवत् किया और बड़े सम्मान से बैठाकर विनयपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। तब शिवजी ने नारायणस्तुति का हंसगुह्य स्तोत्र प्रचेतों को सिखलाकर कहा—तुम लोग नित्य प्रातःकाल व सन्ध्या समय और स्नान करने के उपरान्त यह स्तोत्र पढ़कर नारायणजी की स्तुति और चतुर्भुजी स्वरूप का ध्यान किया करो, परमेश्वर तुम्हें जल्दी मिलेंगे। हे प्रचेतो! मैं हरिभक्तों और ज्ञानियों का दर्शन किया करता हूँ, जो लोग अपने अज्ञान से परमेश्वर के भजन व स्मरण में चाहना नहीं रखते उनको ज्ञान सिखलाकर सौ जन्म तक कृतार्थ कर देता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वेद व शास्त्र में बताये हुए अपने धर्म में दृढ़ रहें, पाप व अधर्म के निकट न जावें, वे मनुष्य चतुर्भुजी रूप परमेश्वर को पाते हैं। इस तरह का धर्म व हरिभक्ति

करनेवाले मनुष्य दूसरी बात का कुछ प्रयोजन नहीं रखते। महादेवजी प्रचेतों को यह ज्ञान सिखलाकर कैलाश को चले गये।

—:o:—

छब्बीसवाँ अध्याय।

नारदजी का प्रचेतों के बाप प्राचीनर्बाहिष से भेंट करना।

साधन यज्ञ अनेक से सरै न एकौ काम। बिना भक्ति भगवन्त की जीव न लह विश्राम॥

मैत्रेयजी ने कहा—हे विदुर! प्रचेता लोग साधु व वैष्णव की बड़ाई और परमेश्वर के मिलने का उपाय महादेवजी से सुनकर आनन्दपूर्वक स्तोत्र पढ़ने और नारायणजी का ध्यान करने में लीन हुए। जब उनको दश हजार वर्ष हरिभजन करते-करते बीत गये तब परमेश्वर ने प्रसन्न होकर दर्शन देकर बड़े हर्ष से उन्हें वरदान दिया। तिस पर भी वे लोग संसारी व्यवहार झूठा समझकर उसी तरह परमेश्वर का तप व ध्यान करते रहे। उनके पिता प्राचीनबर्हिषि ने बहुत दिनों तक संसारी सुख व राज्य भोगकर यह बात विचारा कि राज्य व द्रव्य भगवान्‌जी की दया से पाकर यह धन संसारी सुख में खर्च करना अच्छा नहीं होता, इसे यज्ञ व दानादिक में खर्च करके अपना परलोक बनाना चाहिए। ऐसा विचारकर राजा ने यज्ञ व दान करना आरम्भ किया। शास्त्रानुसार जिन-जिन स्थानों पर यज्ञ करना उचित था वहाँ यज्ञ किये, पर राजा का मन विरक्त न हुआ, इन्द्रलोक व स्वर्ग के सुख की चाहना रखता था। उसका यह हाल देखकर नारदजी ने विचारा कि राजा की आयु यज्ञ करते-करते बीती जाती है, पर केवल यज्ञ करने से इसका परलोक नहीं बनेगा। यह राजा धर्मात्मा पृथु के कुल में उत्पन्न हुआ है। इसलिए कुछ ज्ञान सिखलाकर इसे भवसागर पार उतारना चाहिए। यह बात विचारकर नारद मुनि मर्त्यलोक में राजा के पास आये। उन्हें देखते ही राजा ने बड़े हर्ष से दण्डवत् किया और आदर भाव से बैठाकर हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज! मेरा भाग्य उदय हुआ जो आप ऐसे महात्मा पुरुष ने कृपा करके मुझे दर्शन दिया। नारदजी हँसकर बोले—हे राजा! सच बात है, तेरा बड़ा भाग्य था जो तू मनुष्य तनु पाकर भरतखण्ड

का राजा हुआ। तुमने इस भरतखण्ड कर्मभूमि में यज्ञ आदि बहुत धर्म-कर्म किया। जहाँ जाने की इच्छा करके चले, उस ठिकाने पर पहुँचना चाहिए। कदाचित् चलते-चलते मार्ग में आयु पूरी हो जाय और अपने स्थान पर न पहुँचे तो उस मार्ग चलने से थकने के सिवा क्या लाभ होगा। नारदमुनि का यह वचन सुनते ही राजा ने बड़े आश्चर्य से मन में कहा कि वेद व पुराण में यज्ञ और दान करने का बड़ा पुण्य वर्णन किया है, उससे अधिक दूसरा धर्म नहीं लिखा है और नारदजी ऐसा कहते हैं इसका क्या भेद है। राजा यह बात विचारकर चिन्ता करने लगे।

—:o:—

सत्ताईसवाँ अध्याय।

राजा प्राचीनबर्हिष का उन जीवों का स्वरूप देखना जिनको मारकर यज्ञ में हवन किया था।

नारदजी ने राजा के मन की बात अपने ज्ञान से समझकर विचार किया कि जब तक राजा को कुछ डर न दिखलावेंगे तब तक उसका मन यज्ञ करने की तरफ से फिर नहीं सकता। ऐसा विचारकर नारद मुनि ने अपने योगबल से, जितने पशु राजा ने यज्ञ में मारे थे, उन सबों को आकाश में राजा के सामने लाकर खड़ा कर दिया। जब वे सब जीव राजा को घूरने लगे तब नारदजी बोले—हे राजा! यह सब जानवर तुमको क्यों देख रहे हैं। जैसे ही राजा ने आकाश की तरफ आँख उठा कर उनको क्रोध से अपनी तरफ घूरते हुए देखा वैसे ही मारे डर के काँपता हुआ नारदजी से बोला—हे मुनिनाथ! मैंने इन सब पशुओं को मारकर यज्ञ में हवन किया, सो ये सब किसलिए मुझे क्रोध से देखते हैं? आप कृपा करके इसका कारण बताइए जिसमें मेरा डर व सन्देह छूट जावे। यह वचन सुनकर नारदजी बोले—हे राजन्! जिस तरह तुमने इन जीवों को मारकर यज्ञ में हवन किया उसी तरह तुमको भी ये सब पशु एक-एक जन्म में मारकर अपना बदला लेंगे। यह वचन सुनते ही राजा को इस बात का बड़ा सोच हुआ कि जितने जीव मैंने मारे

हैं उतने जन्म मुझे लेने पड़ेंगे, तब इनके बदले से मैं उऋण हूँगा। मुझसे बड़ी चूक हुई, जो इतने जीवों को मारकर हवन किया। ऐसा विचारकर राजा बोला—महाराज! जितने पण्डित पुरोहित, और मंत्री लोग मेरे यहाँ हैं, सबने मुझको यह मत दिया था कि यज्ञ करने से उत्तम दूसरा धर्म नहीं है, और आप मुझे इसमें डर दिखलाते हैं इसका कारण कहिए। उस समय राजा के निकट एक पिंजरे में मैना और एक पिंजरे में तोते को देखकर नारदजी बोले—हे राजन्! यह तोता मैना से बारम्बार कहता है कि तू मुझको इस पिंजरे से निकाल दे तो मैं बन्दी से छूटकर वन में पक्षियों के साथ विहार करूँ। मैना कहती है—हे तोते, मैं भी चाहती हूँ कि कोई मुझे इस पिंजरे से बाहर निकाल देता तो अपने साथियों में जाकर खुशी मनाती। सो दोनों आपस में एक-दूसरे से कहते हैं कि पहले तुम उड़ो, पर उड़ने की सामर्थ्य दोनों नहीं रखते। यह बात सुनकर राजा बोला—हे मुनिनाथ! यह तो दोनों पिंजरे में बन्द हैं, एक दूसरे को कैसे निकाल सकें, जब इनमें से एक पिंजरे के बाहर हो तो दूसरे के निकालने का उपाय करे। नारदजी बोले—हे राजन्! इसी तरह तुम्हारे पण्डित, उपरोहित और मन्त्री लोग भी संसाररूपी माया-जाल के पिंजरे में पड़े हैं, वे क्या सामर्थ्य रखते हैं जो तुम्हें इस संसाररूपी जाल से बाहर कर सकें। यह बात सुनकर राजा ने समझा कि आज तक ऐसा ज्ञानी मुझको कोई नहीं मिला, जिसका वचन सुनने से मुझे ज्ञान प्राप्त होता। ऐसा विचारकर राजा ने विनय किया—महाराज! आप कोई ऐसा उपाय बतलावें, जिससे इन जीवों के हाथ से बचकर मुक्ति पदवी पाऊँ। यह बात सुनकर नारदजी बोले—हे राजन्! हम एक इतिहास तुमसे कहते हैं, सुनो। एक पुरंजन नाम का राजा अपने मित्र अविज्ञात से बड़ी प्रीति रखता था। किसी दूसरे को यह बात नहीं मालूम थी। अविज्ञात सब तरह से राजा के खाने-पहिनने और सुख व आराम की सुधि लेता था। एक समय राजा पुरंजन अपनी इच्छा से अविज्ञात का साथ छोड़कर किसी दूसरे स्थान को चला, सो वह पूर्व, पश्चिम और उत्तर तीनों दिशाओं में ढूँढ़ता हुआ

बहुत दिनों तक व्याकुल रहा। इच्छापूर्वक कोई स्थान रहने योग्य उसे नहीं मिला। जब वह दक्षिण दिशा में पहुँचा तब एक मकान किले के समान बहुत अच्छा नव दरवाजे का दिखलाई दिया। उसके चारों तरफ नहर, बाग, फल, फूल और मेवों के वृक्ष लगे थे, अनेक रंग के पक्षी मधुर बोली बोलनेवाले बैठे हुए चहचहा रहे थे। वहाँ सब तरह का सुख देखकर राजा पुरंजन उस मकान में रहने की इच्छा से भीतर चला। द्वार पर पहुँचकर उसने क्या देखा कि एक युवती स्त्री महासुन्दरी अनेक प्रकार के भूषण व वस्त्र धारण किये वहाँ टहल रही है और दश सहेलियाँ उसके साथ हैं। उससे थोड़ी दूर आगे एक साँप पाँच फण का दरवाजे पर बैठा हुआ दिखलाई दिया। राजा पुरंजन उस स्त्री को देखते ही उसके रूप पर मोहित हो गया।

अट्ठाईसवाँ अध्याय।

राजा पुरंजन का उस स्त्री से विवाह करके सुख व विलास करना।

नारदजी बोले—हे प्राचीनबर्हिष! जब राजा पुरंजन का चित्त उस स्त्री पर मोहित हो गया तब उसके पास जाकर प्रेम से पूछा—हे सुन्दरी! तुम देवकन्या और लक्ष्मी के समान किसकी बेटी व स्त्री हो। किस इच्छा से यहाँ टहलती हो। तुम्हारे नेत्ररूपी बाणों से पुरुषों का मन घायल हो जाता है। यह मकान किसने बनाया, और इसमें कौन रहता है? यह मधुर वचन सुनते ही वह स्त्री मुस्कराकर बोली—हे राजन्! मैं अपने माता-पिता का नाम नहीं जानती कि मैं किसकी बेटी हूँ और अभी तक मेरा विवाह नहीं हुआ, इसलिए मैं अपना विवाह करना चाहती हूँ। मुझे यह भी नहीं मालूम कि यह मकान किसने बनाया, पर मैं यहाँ रहती हूँ। जो कोई मेरे साथ विवाह करे वह भी इस किले में रहे, और यह साँप मेरे दरवाजे पर रक्षा करने के लिए रहता है। यह वचन सुनते ही राजा पुरंजन ने बहुत प्रसन्न होकर कहा—हे प्राणप्यारी! मुझे अंगीकार करो तो मैं तुमसे ब्याह करने में बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे

साथ विवाह करके इस मकान में रहकर भोग-विलास करूँगा। वह सुन्दरी हँसकर बोली—हे राजन्! तुम्हारा सुन्दर रूप देखकर कौन स्त्री मोहित न होगी। जब इस तरह दोनों से बातचीत हुई तब राजा पुरंजन उसके साथ किले में जाकर गन्धर्व-विवाह करके भोग-विलास करने लगा। राजा ऐसा उसके वश में हो गया कि दिन-रात उसकी आज्ञा में रहता था, बिना पूछे कोई काम नहीं करता था। जब पुरंजन के उस स्त्री से बहुत बेटी व बेटे उत्पन्न हुए तब वह उनका विवाह करने के उपरान्त एक दिन बिना पूछे उस स्त्री के रथ पर सवार हुआ और शिकार खेलने के वास्ते वन में जाकर बहुत-से पशु मारे। इसलिए रानी क्रोध में भरकर मैली धोती पहिनकर कोपभवन में पड़ रही। जब राजा शिकार में दौड़-धूप करने से प्यासा होकर अपने मकान पर आया और पानी पीने के उपरान्त दासियों से रानी का हाल पूछा तो उन्होंने कहा कि न मालूम आज कौन-सा दुःख रानी को उत्पन्न हुआ, जो गहना व कपड़ा उतारकर पृथ्वी पर पड़ी हैं। यह वचन सुनते ही राजा बड़े डर और सोच से दौड़ता हुआ रानी के पास गया और प्रेम से पुकारा। जब वह मारे क्रोध के कुछ नहीं बोली तब राजा बड़ी विनती से उसका चरण दाबकर कहने लगा—हे प्राणप्यारी! तू मुझसे क्यों नहीं बोलती। मैंने कौन वस्तु तुझे नहीं दिया, किस बात में तेरा कहना नहीं माना, जो इतनी दुखी हो रही है। तेरी यह दशा देखकर मेरा कलेजा फटता है। मुझे मेरी सौगन्द है, जल्दी सच बतला दे। तुझे किसी ने दुर्वचन कहा हो तो अभी उसको दंड दूँ। यह वचन सुनकर रानी क्रोध से बोली—यह सब तुम्हारा कसूर है, जो मुझसे पूछे बिना शिकार खेलने चले गये थे, इसी कारण मैं उदास हूँ। तब राजा पुरंजन रानी के पाँव पर गिरकर हाथ जोड़कर बोला—मुझसे चूक हुई, जो बिना पूछे चला गया। अब तेरी आज्ञा बिना कहीं न जाऊँगा। मुझे अपना दास समझकर इस बेर मेरा अपराध क्षमा कर। तुम अपनी भुजाओं से मुझे बाँधकर जो चाहो सो दण्ड दो। जब ऐसी विनती करने से रानी उठी तब राजा ने अपने हाथ से उसका मुख धोकर शरीर की धूलि

झाड़ दी और उसको गहना व कपड़ा पहिनाया। बहुत दिनों तक उसके साथ भोग-विलास करने पर उसका मन मायारूपी जगत् से विरक्त नहीं हुआ। जिस तरह तुझे संसारी चाहना बनी है उसी तरह राजा पुरंजन को बुढ़ापा आने और इन्द्रियों के शिथिल होने पर भी संसार का मोह लगा था। पुरंजन का इतना हाल सुनाकर नारद मुनि बोले—हे प्राचीनवर्हिष! मृत्यु-नामक काल की बेटी अपना पति ढूँढ़ने के लिए सब जगह जाती थी, पर उसे मृत्यु जानकर कोई अंगीकार नहीं करता था। सो वह एक दिन मेरे पास आकर कहने लगी कि तुम मेरे साथ ब्याह करो। जब मैंने नहीं माना तब उसने क्रोध करके मुझे शाप दिया कि तुम एक मुहूर्त से अधिक किसी जगह नहीं रह सकते। दिन-रात घूमते-फिरते रहो। अढ़ाई घड़ी से अधिक कहीं ठहरोगे तो तुम्हारा शिर दुखेगा। जब उसने मुझको ऐसा शाप दिया तब मैंने उसे यह उपाय बतलाया कि तू जाकर प्रज्वार गन्धर्व की बहिन हो जा। उसके बड़ी सेना है, वह नित्य एक पुरुष पकड़कर तुझसे भोग करने के लिए दिया करेगा। यह वचन सुनते ही वह कन्या प्रज्वार गन्धर्व से जाकर बोली—मैं तुम्हारी बहिन होने के वास्ते आई हूँ। गन्धर्व बोला—बहुत अच्छा, तुम यहाँ रहो। फिर प्रज्वार ने जरा नाम की कुटनी को बुलाकर कहा—तू इसके लिए एक युवा व सुन्दर मनुष्य ठहराव तो हम इसका ब्याह उससे कर दें। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! कदाचित् कोई किसी को कुछ चीज अपनी खुशी से दे और वह न ले, या धन पाकर दान व पुण्य न करे वह मनुष्य पीछे से दुःख पाता है। परमेश्वर ने मृत्यु की अवधि इस वास्ते नहीं रक्खी कि यदि मनुष्य को अपनी मृत्यु का हाल मालूम होगा तो वह अधर्म करना छोड़कर विरक्त हो जायगा। इसलिए अपनी माया से यह बात परमेश्वर ने गुप्त रक्खी है।

उन्तीसवाँ अध्याय।

प्रज्वार का अपनी सेना लेकर पुरंजन को मारने के लिए जाना।

नारदजी बोले–हे राजन्! कुछ दिनों के उपरांत जरा नाम की कुटनी ने जाकर प्रज्वार गन्धर्व से कहा कि राजा पुरंजन इसके साथ विवाह करने योग्य है तब प्रज्वार ने तीन सौ साठ गन्धर्व और तीन सौ साठ गंधर्विनी सेना को साथ लेकर राजा पुरंजन से लड़ने के लिए जाकर उसका किला घेर लिया। वह साँप, जो पाँच फण का उसके द्वार पर रहता था, गन्धर्वों से युद्ध करने लगा और उन्हें भीतर जाने नहीं दिया। अकेला वह साँप लड़ते-लड़ते जब थक गया तब उदास होकर कहने लगा कि मैं इतने दिनों तक शत्रु से लड़ा, पर मेरा स्वामी भोग-विलास में ऐसा आसक्त है कि उसने कुछ भी मेरी सहायता न की। जब इस तरह सोच करने और लड़ने से वह साँप थक गया और एक खोखले वृक्ष में जा घुसा तब प्रज्वार गन्धर्व उस किले में आग लगाकर चला गया। पुरंजन व्याकुल हो गया, वह अपने प्राण भी बचा न सका तो अपने कुटुम्ब की रक्षा वह क्या करता। वह जलकर मर गया। वह दूसरे जन्म में मलयदेश में राजा विदर्भ की बेटी हुआ। स्त्री होने का कारण यह है कि मरते समय उसका ध्यान पुरंजनी में लगा था, इसलिए उसे स्त्री का तनु मिला। पांचाल देश में मलय-ध्वज राजा से, जो बड़ा धर्मात्मा था, उसका ब्याह हुआ। बहुत दिनों तक उसने गृहस्थी का सुख उठाया, सात बेटे व कई पोते उत्पन्न हुए।

तीसवाँ अध्याय।

राजा मलयध्वज का मरना और पुरंजन का अपने मित्र अविज्ञात से भेंट करना।

नारदजी ने कहा–हे प्राचीनबर्हिष! मलयध्वज बहुत दिनों तक राज्य करके अगस्त्य मुनि से ज्ञान सीखकर संसारी माया से विरक्त हो गये और राजगद्दी अपने बेटे को देकर स्त्री समेत वन में जाकर बहुत दिनों तक हरिभजन करके जब अपना शरीर त्याग किया तब रानी

चिता बनाकर और राजा की लोथ उस पर रखकर दाह करने के वास्ते तैयार हुई, पर मोहवश आग न लगाकर अति विलाप करने लगी। इतने में उसका पुराना मित्र अविज्ञात वहाँ आया और उसने उसे पहिचाना कि यह वही पुरंजन है जिसने मेरा साथ छोड़कर पुरुष से स्त्री का तनु पाया। उसकी यह दशा देखकर अविज्ञात ने दया करके जब स्त्री रूप पुरंजन से पूछा—तू क्यों इतना रोती है और यह तेरा कौन था जो मर गया? मुझको तूने पहिचाना या नहीं। रानी बोली—मैं तुमको नहीं पहिचानती। यह मेरा पति मर गया है, इसके शोक में रोती हूँ। यह बात सुनकर अविज्ञात ने कहा कि तू पूर्वजन्म में पुरंजन नाम का पुरुष था और मैं अविज्ञात नाम का तेरा मित्र हूँ। तू मेरा साथ छोड़कर घर से निकल आया और एक स्त्री के संग भोग-विलास व संसारी सुख में फँसकर मुझे भूल गया, इसलिए तूने स्त्री का तनु पाया। इसके मरने का शोक छोड़कर पुरुष तनु मिलने का उपाय करना चाहिए। हम और तुम दोनों मनुष्य हंसरूपी जीवात्मा और परमात्मा मानसरोवर के किनारे के रहनेवाले हैं। तू संसारी मोह में फँसकर नष्ट हो गया। यह जीव मेरी माया से चौरासी लाख योनि में अनेक प्रकार का तनु पाता है। यह वचन सुनते ही जब स्त्रीरूप पुरंजन को ज्ञान उत्पन्न हुआ तब उसने पति का शोक छोड़कर उसकी लोथ जला दी और अविज्ञात की आज्ञानुसार हरिभजन में लीन हो गया। वह शरीर छोड़ने के उपरांत उसे पुरुष का तन मिला और वह अविज्ञात से जा मिला।

इतनी कथा सुनकर प्राचीनबर्हिष ने नारदजी से पूछा कि महाराज, मैं संसारी जीव इतना ज्ञान नहीं रखता, जो इस कथा का अर्थ समझ सकूँ, आप दया करके विस्तारपूर्वक इसका हाल वर्णन कीजिए तब मेरी समझ में आवे। यह वचन सुनकर नारदजी बोले—हे राजा! पुरंजन जो जीव और अविज्ञात नामक मित्र को परमेश्वर समझना चाहिए, जो इस जीव की रक्षा सब जगह नरक व गर्भादि में करते हैं, पर किसी को दिखलाई नहीं देते। यह जीव परमेश्वर का स्मरण व ध्यान छोड़कर संसारी सुख में फँस जाता है और जैसे कर्म करता है उन्हीं

कर्मों के अनुसार चौरासी लाख योनि में जन्म पाकर इच्छापूर्वक उस तनु में सुखी नहीं होता। उसी तरह पुरंजन भी अविज्ञात का साथ छोड़कर चौरासी लाख योनि में बहुत दिनों तक भ्रमता रहा। जिस तरह यह जीव मनुष्य का तनु पाकर प्रसन्न होता है उसी तरह पुरंजन भी किले को देखकर बहुत खुश था। जैसे उस किले में नव द्वार थे वैसे ही मनुष्य तनु में कान व नाक आदि नव छिद्र इन्द्रियों के हैं। मनुष्य का शरीर रथ के समान है जिस पर बैठकर पुरंजन शिकार खेलने गया था। उस रथ के घोड़े इन्द्रियों को समझना चाहिए। जिस ओर मन आदि इन्द्रियाँ दौड़ती हैं वही काम मनुष्य करता है। मनुष्य के अहंकार को वह साँप, जो पुरंजन ने किले के दरवाजे पर देखा था, समझना उचित है, क्योंकि मनुष्य बुढ़ापे के समय भी अपना अहंकार नहीं छोड़ता। वह कहता है कि हम मरते दम तक अपने लड़के-बालों का पालन करेंगे। वह यह बात नहीं जानता कि सबका पालन करनेवाले परमेश्वर हैं। मनुष्य की बुद्धि को वह स्त्री, जिस पर पुरंजन मोहित हुआ था, समझना चाहिए। जिस तरह मरते दम तक बुद्धि मनुष्य के साथ रहकर अपनी इच्छापूर्वक उससे काम कराती है उसी तरह पुरंजन ने भी उस स्त्री के वश रहकर अपनी आयु बिताई और जैसे अज्ञानी मनुष्य अपनी बुद्धि व करतब के सामने उत्पन्न व पालन करनेवाले परमेश्वर त्रिलोकी नाथ को भूलकर और पुराण की बातों पर विश्वास न करके अन्त में दुःख पाता है वैसे ही पुरंजन भी अपने मित्र अविज्ञात का साथ छोड़कर बुद्धिरूपी स्त्री का संग करके बहुत दुःखी हुआ था। जिस तरह मनुष्य परिश्रम करने पर भी अपना मनोरथ न पाकर पछताता है उसी तरह पुरंजन ने भी जलने व मरने के समय चिन्ता की थी। मनुष्य के तनु में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जो भरा रहता है उसको पुरंजन का परिवार समझना चाहिए। जिस तरह बुढ़ापा मरनेवाले की खबर काल के यहाँ जाकर देती है कि उसको मार लो उसी तरह जरा नाम की कुटनी ने भी पुरंजन के बुढ़ापा को देखकर प्रज्वार गन्धर्व से उसके मारने के लिए कहा था। उस काल कन्या-

को मृत्यु और प्रज्वार गन्धर्व को अन्त समय का विषमज्वर, उसके साथ जो तीन सौ साठ गन्धर्व थे उन्हें दिन, और गन्धर्वियों को रात्रि समझना चाहिए। उन्हीं को काल की सेना समझो, दिन और रात्रि के बीतने से आयु पूर्ण होने पर काल मार लेता है। जिस तरह बुढ़ापे में इन्द्रियों में सामर्थ्य नहीं रहती, शरीर का लोहू और मांस सूख जाता है उसी तरह प्रज्वार गन्धर्व की सेना ने जाकर पुरंजन का किला जला दिया था। मरते समय जिस मनुष्य का जिस तनु में ध्यान लगा रहता है वह मनुष्य मरने के उपरांत वही तनु पाता है। पुरंजन का चित्त मरते समय पुरंजनी में लगा था, इसलिए वह स्त्री हुआ। अबला होने से अपने पति की आज्ञा में रहकर दिन काटने पड़ते हैं। जब तक इस जीव की मुक्ति नहीं होती तब तक इसी तरह चौरासी लाख योनि में जन्म पाकर दुःख से नहीं छूटता। जब वह अविज्ञात नामक मित्र, जो ईश्वर है, दया करके मनुष्य तनु में किसी साधु व महात्मा से भेंट करा दे और उस महात्मा के ज्ञान-उपदेश करने से मनुष्य हरिकथा व कीर्तन सुनकर अज्ञान छोड़कर हरिचरणों में प्रीति करे तब ईश्वर का भजन व स्मरण करके जन्म व मरण से छूटे, जिस तरह पुरंजन अविज्ञात मित्र की कृपा से अपना पहिला तनु पाकर मुक्त हुआ था। सो हे राजा! ईश्वर की दया के विना साधु व महात्मा का दर्शन व सत्संग मिलना कठिन है और मनुष्य हरिभक्तों का सत्संग व सेवा किये विना संसार-रूपी जाल से निकल नहीं सकता। सो तुमने बहुत दिनों तक राज-गद्दी पर बैठकर संसारी सुख भोगा, बहुत से यज्ञ व दान करके यश पाया, अब तुम्हें उचित है कि अपना मन विरक्त करके हरिचरणों में प्रीति लगाकर, परमेश्वर का भजन व स्मरण करो, जिसमें तुम्हारा पर-लोक बने। जब तक संसारी मोह छोड़कर हरिचरणों में भक्ति न करोगे तब तक आवागमन से छूटना बहुत दुर्लभ है। सो तुम परमेश्वर की कथा व लीला सुनकर जब साधु व महात्मा से सत्संग करोगे तब तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होगा। दान और यज्ञ करने से संसारी लोग थोड़े दिन देवलोक में सुख भोगकर फिर जन्म लेकर दुःख पाते हैं और

विरक्त होने व भक्ति करने से वैकुंठ का सुख मिलता है, सो तुमको भक्ति करना चाहिए। यह वचन सुनते ही राजा ने हाथ जोड़कर नारदजी से कहा—महाराज! यह ज्ञान आपने बहुत अच्छा बतलाया, पर अभी तक हमारे बेटे, जो तप करने गये हैं, नहीं फिरे। वे लोग आवें तो उन्हें राजगद्दी देकर मैं वन में जाकर परमेश्वर का तप व ध्यान करूँ।

इकतीसवाँ अध्याय।

नारद मुनि का एक बाग हरिण समेत अपने योगबल से प्राचीनबर्हिष को दिखलाना।

मैत्रेय ऋषीश्वर ने कहा—हे विदुर! यह बात सुनते ही नारदजी ने आश्चर्य में आकर यह विचारा कि मैंने इतना ज्ञान राजा को सिखलाया पर यह विरक्त न हुआ, अभी तक इसे राजगद्दी का मोह बना है। ऐसा विचारकर नारद मुनि अपने योगबल से आकाश में एक बाग तैयार करके बोले—हे राजन्! हमको एक बड़ा अचम्भा मालूम देता है, नेक ऊपर तो देखो। राजा ने आँख उठाकर देखा तो आकाश की तरफ उसे एक बहुत अच्छा बाग फल व पुष्प लगा हुआ चार द्वार का दिखलाई दिया और एक जंगली हरिण उस हरियाली को देखकर कूदता व चौकड़ी मारता हुआ जब उस बाग में आकर घास खाने लगा तब एक बहेलिया शिकार की सब सामग्री साथ लिये हुए उस हरिण को पकड़ने के लिए बाग में पहुँचा। उसने एक द्वार पर जाल लगाया, दूसरे दरवाजे से कुत्ते को ललकारा, तीसरे द्वार पर आग जला दी और चौथे द्वार पर आप धनुष-बाण साध कर खड़ा हुआ। वह हरिण यह दशा देखने पर भी कुछ डर न मानकर खुशी से चरता रहा। राजा उस बाग, बहेलिया और हरिण को देखकर बोला—हे मुनिनाथ! एक बात बड़े आश्चर्य की दिखलाई देती है कि चारों द्वार पर इस हरिण के मरने का योग है, उस पर भी यह हरिण अपने मरने का भय न रखकर आनन्दपूर्वक चरता है। इस चरने से इसको क्या लाभ होगा। यह वचन सुनते ही नारदजी मुसकराकर बोले—हे राजा! तेरा भी तो

यही हाल है, बुढ़ापा आने से तेरी सब इन्द्रियों की सामर्थ्य जाती रही और मृत्यु का दिन निकट पहुँचा। उसके हाथ से तेरा बचाव नहीं हो सकता, पर तू संसारी माया-मोह के जाल में ऐसा लिप्त है कि यह सब हाल आँखों से भी देखकर तुझे अपने मरने का कुछ डर नहीं होता, संसारी सुख व राजगद्दी की तृष्णा तुझको अब तक लगी है। यह ज्ञान सुनते ही राजा के रोम खड़े हो गये। डर के मारे उसे ऐसा जान पड़ा कि उसका शरीर जला जाता है। अपनी यह दशा देखकर नारद मुनि के चरणों पर गिरकर बोला—महाराज! आपने बड़ी कृपा करके मुझे संसारी फन्दे से बाहर निकाला, नहीं तो मैं इस माया-मोह के महाजाल में फँसा रहता। यह वचन कहकर राजा ने विधिपूर्वक नारदजी का पूजन किया और उसी समय बदरी-केदार की तरफ चला गया। वहाँ हरिभजन करके मुक्ति पदवी को पहुँचा। नारद मुनि वहाँ से चले गये। उसके बहुत दिनों के उपरांत नारायणजी प्रचेतों के तप व स्मरण से प्रसन्न हुए तब अपने चतुर्भुजी रूप का दर्शन देकर उनसे बोले—तुम लोग वरदान माँगो। प्रचेतों ने दण्डवत् व स्तुति करके विनय किया—महाराज! हम यह वरदान माँगते हैं कि संसारी माया में न फँसें, साधु व महात्मा का सत्संग हो और तुम्हारे चरणों में भक्ति बनी रहे। श्यामसुन्दर त्रिलोकीनाथ ने इच्छापूर्वक उन्हें वरदान देकर कहा—तुम लोग गृहस्थ होकर अन्त समय मुक्ति पदवी पाओगे। जब ऐसा वरदान पाकर अपने घर को चले तब रास्ते में क्या देखा कि जो नगर व गाँव बसे थे, वे सब उजड़कर वन हो गये। यह दशा देखकर प्रचेतों ने कहा कि वन के देवतों ने हमारा राज्य व देश उजाड़ दिया सो हम योग की अग्नि से उन्हें जला देंगे, जिसमें अपने किये का फल पावें। ऐसा विचारकर जब प्रचेतों ने वन की तरफ क्रोध से देखा तब वह वन जलने लगा और वहाँ के देवता अपने अपने प्राण लेकर भागे और ब्रह्मा के पास जाकर यह हाल कहा। तब चन्द्रमा ब्रह्मा की आज्ञानुसार प्रचेतों के पास आकर बोले—तुम लोग हरिभक्त हो, दश हजार वर्ष तुम लोगों ने परमेश्वर का तप किया है, तुम्हें विना अपराध ऐसा क्रोध न करना चाहिए। इस वन से सब ऋषीश्वरों

मुनीश्वरों और पशु-पक्षियों को भोजन मिलता था, अनेक जीवों की रक्षा होती थी, इसके जलाने से तुम्हें बड़ा पाप होगा। तुमने संसार उत्पन्न करने की इच्छा से परमेश्वर का तप किया है, सो तुम लोग निम्लोचना नाम की कन्या से, जो वृक्षों की बेटी है, ब्याह करो। उससे तुम्हारे बहुत सन्तान होंगी। चन्द्रमा का यह वचन सुनते ही वन के देवता उस कन्या को प्रचेतों के पास ले आये। चन्द्रमा के समझाने से प्रचेतों ने अपना क्रोध क्षमा किया, तब वन की अग्नि बुझ गई। प्रचेता लोग उस कन्या से गन्धर्व विवाह करके स्त्री समेत अपने बाप की नगरी माहिष्मती में पहुँचे और राज्यकाज करने लगे। चन्द्रमा प्रसन्न होकर अपने लोक को गये। उसी कन्या से प्रचेतों के दक्ष नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने परमेश्वर का तप करके बहुत जीव उत्पन्न किये। जब कुछ दिनों के उपरांत प्रचेता लोग अपने बेटे को राज्य देकर परमेश्वर का तप करने के लिए पश्चिम दिशा को चले, तब राह में उनको नारदजी मिले। उनके उपदेश से प्रचेता लोग परमेश्वर का भजन व स्मरण करके, योगाभ्यास के साथ अपना तनु छोड़कर गोलोक को गये। मैत्रेय ऋषीश्वर से इतनी कथा सुनकर विदुरजी हस्तिनापुर को चले गये।

दो० पति की निन्दा सुनत ही तजी सती निज देह। लाखन गारी देत अब पतिको त्याग सनेह ॥
जो चौथे अस्कन्ध को कहै सुनै चित लाय। लहै ज्ञान सुख सम्पदा पाप पहाड़ बिलाय॥

——:०:——

पाँचवाँ स्कन्ध।

—: ० :—

राजा प्रियव्रत, जड़भरत, तथा सातों द्वीपों, नव खण्डों, चौदहों भुवनों और सब नरकों का हाल।

दो० शेष शारदा विनय करि गोविंदपद शिर धार। यह पञ्चम अस्कन्ध की कथा कहौं विस्तार।।

क० चढ़े गजराज चतुरंगिनी समाज संग जीति क्षितिपाल सुरपाल सौं सजत हैं।
विद्या अपार पढ़ि तीरथ अनेक करि यज्ञ और दान बहु भाँति सौं करत हैं।।
तीनकाल में नहाय इन्द्रियों को वश लाय करि वनवास विषय वासना तजत है।
योग और यज्ञ जप तप को अनेक करैं बिना भगवन्तभक्ति भव न तरत हैं।।

पहिला अध्याय।

परीक्षित का शुकदेवजी से राजा प्रियव्रत का हाल पूछना।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर शुकदेवजी से विनय किया—महाराज! आपने तीसरे स्कन्ध में कहा है कि स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत ने नारदजी के उपदेश से बालपन में ही विरक्त होकर वन में जाकर परमेश्वर का तप किया था, फिर गृहस्थ होकर राज्य भोगने के उपरांत तप करके मुक्त पदवी पाया। हे ब्रह्ममूर्ति! ज्ञान प्राप्त होने पर फिर वह क्यों गृहस्थी में फँसा? जब तक मनुष्य संसारी मोह में फँसा रहकर स्त्री, पुत्र व धन को अपना जानता है तब तक वह ज्ञानी नहीं हुआ, और ज्ञान प्राप्त होने से जिसकी संसारी माया छूट जाती है वह फिर जानबूझकर क्यों माया-जाल में फँसेगा, यह मेरा संदेह छुड़ा दीजिए। शुकदेवजी हरिचरणों का ध्यान करके बोले—हे राजन्! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी। उसका हाल इस प्रकार है कि राजा प्रियव्रत ज्ञानी होने पर भी पिछले जन्म के संस्कार से प्रत्यक्ष में राजकाज करता

रहा, पर वह गृहस्थाश्रम से भी विरक्त था, राज्य, धन व पुत्रादिक के मोह में नहीं फँसा था। कुछ दिनों के उपरांत राजगद्दी छोड़कर परमेश्वर के तप व ध्यान में लीन हुआ। जब पहिले नारद मुनि के उपदेश से प्रियव्रत ज्ञानी होकर मन्दराचल पहाड़ पर तप करने चला गया था तब राजा स्वायम्भुव मनु ने वहाँ जाकर प्रियव्रत से कहा—हे बेटा! तू राज्य कर और विवाह करके सन्तान उत्पन्न कर। उसने उत्तर दिया—हे पिता! ब्याह करने और सन्तान उत्पन्न होने से मनुष्य धन और परिवार के मोह में फँसकर नरक में पड़ता है, इसलिए मैं राजगद्दी और संसारी सुख नहीं चाहता, मुझे परमेश्वर का स्मरण व ध्यान अच्छा मालूम होता है। जब प्रियव्रत ने स्वायम्भुव मनु का कहना नहीं माना तब वह उदास हो गये। उसी समय ब्रह्माजी सनकादिक ऋषीश्वरों और देवतों को साथ लिए हंस पर चढ़कर वहाँ आये। जब स्वायम्भुव मनु व प्रियव्रत ने उन्हें दण्डवत् करके आदरपूर्वक बैठाया तब ब्रह्माजी ने कहा—हे प्रियव्रत! तू ब्याह करना और राजगद्दी पर बैठना क्यों नहीं अंगीकार करता? नारायणजी की आज्ञा है कि क्षत्रिय लोग राज्य करें, सो तुझे उनकी आज्ञा मानकर संसारी जीवों को बढ़ाना चाहिए। जिस तरह हम नारायणजी की आज्ञानुसार संसार की रचना करते हैं, उसी तरह तू भी उनकी आज्ञा मानकर राजगद्दी पर बैठ और ब्याह करके क्षत्रियों को उत्पन्न कर। कोई जीव उनकी आज्ञा से बाहर नहीं रहता। जो कुछ जिसके भाग्य में लिखा है वही होगा। श्यामसुन्दर ने जिसे जो काम सौंपा है उसके सिवा वह दूसरा काम नहीं कर सकता। जिस तरह बैल की नाक में रस्सी नाथकर जिधर चाहे उधर ले जावे उसका कुछ वश नहीं चलता, उसी तरह परमेश्वर को जड़ व चैतन्य सब जीवों की गति समझना चाहिए। किसी को ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो परमेश्वर की आज्ञा में तिल भर घटा-बढ़ा सके, इसलिए वेद की आज्ञानुसार सब काम करना उचित है। हे प्रियव्रत! गृहस्थाश्रम कुछ बुरा नहीं होता, जो मनुष्य, काम, क्रोध, अहंकार, लालच, मन और इन्द्रियों को अपने अधीन रक्खे, उनके वश में न हो,

उसको वन व गृहस्थी दोनों जगह का रहना बराबर है। जिसने उनको अपने वश में नहीं किया उसको गृहस्थी छोड़कर वन में जा बैठने से क्या लाभ होगा। क्योंकि वह तो बलवान् शत्रु अपने साथ रखता है। जब तक मनुष्य काम-क्रोध आदि को अपने वश में नहीं करता तब तक परमेश्वर उसको नहीं मिलते। मनुष्य पर देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण तीन ऋण रहते हैं। जब तक इन तीनों से उऋण नहीं होता तब तक उसे विरक्त होना न चाहिए। जब मनुष्य संसारी सुख भोगकर उसका स्वाद देख लेता है तब फिर उस सुख की वह चाहना नहीं रखता। सो तुम पहिले राज्य करके फिर वैराग्य धारण करो। जब इस तरह समझाने से प्रियव्रत ने विवाह करना और राजगद्दी पर बैठना अंगीकार किया तब ब्रह्माजी और स्वायम्भुव मनु ने बड़े हर्ष से प्रियव्रत को माहिष्मती पुरी में लाकर राजगद्दी दी।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! इस तरह राजा प्रियव्रत राज्य-सिंहासन पर बैठकर हरिचरणों में ध्यान लगाकर राज्य करने लगा। जब उसने अपना विवाह विश्वकर्मा की बेटी बर्हिष्मती से किया तब उस स्त्री से अग्नीध्र आदि दश बेटे और यशवती नाम की कन्या उत्पन्न हुई। उनमें तीन पुत्र बालयती हो गए, वेद पढ़कर परमहंसों का सत्संग करने लगे। सांतनी नामक दूसरी स्त्री से, जिसे देवतों ने लाकर राजा प्रियव्रत को दिया था, तीन बेटे उत्तम, तामस और रैवत उत्पन्न हुए। चौदह मन्वन्तरों में उनकी गिनती हुई। प्रियव्रत ने हजारों वर्ष तक धर्म के साथ प्रजा का पालन करके राज्य किया और प्रजा को पुत्र के समान सुख दिया। हरिइच्छा से उनकी इन्द्रियों का पराक्रम कम नहीं हुआ। कुछ दिनों के उपरान्त राजा ने विचार किया कि सूर्य का रथ आठों पहर चलते रहने से दिन और रात्रि होती है। सुमेरु पर्वत की ओट में रथ जाने से रात्रि हो जाती है, सो रात्रि को संध्या, पूजा, तर्पण, तप और दान आदि शुभ कर्मों में विघ्न होता है, अँधियारे में कुकर्म होता है। इसलिए हमारे राज्य में आठों पहर दिन के समान प्रकाश बना रहता, रात्रि न होती तो अच्छा था। यह विचारकर राजा प्रियव्रत

ने एक पहिए का ऐसा रथ सूर्य के समान तैयार कराया, जिस रथ के प्रकाश से आठों पहर उनके राज्य में उजियाला रहे। रात्रि कभी न हो। प्रियव्रत बड़ा प्रतापी था, वह आठों पहर नारायणजी के चरणों में चित्त लगाये रहता था। जब उस रथ पर बैठकर उसने सात बेर पृथ्वी की परिक्रमा करके एकच्छत्र राज्य किया तब उस रथ के घूमने से पृथ्वी पर सात समुद्र और सात द्वीप हो गये। पहिला जम्बूद्वीप जो लाख योजन के घेरे में है और भरतखण्ड आदि इसी द्वीप में हैं, इसके चारों ओर खारे पानी का समुद्र है। दूसरा पाकरद्वीप जो दो लाख योजन के घेरे में है, उसके चारों ओर ऊख के रस का समुद्र है। तीसरा शाल्मलिद्वीप जो चार लाख योजन के घेरे में है, उसके चारों ओर मदिरा का समुद्र भरा है। चौथा कुशद्वीप जो आठ लाख योजन के घेरे में है, उसके चौगिर्द घी का समुद्र भरा है। पाँचवाँ क्रौंच द्वीप जो सोलह लाख योजन के घेरे में है, उसके चारों तरफ दूध का समुद्र है। छठा शाकद्वीप जो बत्तीस लाख योजन के घेरे में है, उसके चारों दिशा में मट्ठे का समुद्र भरा है। सातवाँ पुष्करद्वीप जो चौंसठ लाख योजन के घेरे में है उसके चौगिर्द मीठे पानी का समुद्र भरा हुआ है। राजा प्रियव्रत ने एक-एक द्वीप का राज्य अपने बेटों को बाँट दिया और यशवती नाम की अपनी कन्या का ब्याह शुक्राचार्य से कर दिया, जिसके पेट से देवयानी कन्या उत्पन्न हुई। जब उसके राज्य में रात्रि होना बन्द हो गया तब स्वायम्भुव मनु और ब्रह्मा ने प्रियव्रत को समझाया कि जो बात परमेश्वर की इच्छा से होती है उसको मेटना न चाहिए। तब उन्होंने रथ का फिराना बन्द किया। इतनी कथा कहकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! इन सातों द्वीपों का राजा प्रियव्रत था, सो उसने इतने बड़े राज्य को झूठा समझकर एक दिन अपनी स्त्री बर्हिष्मती से कहा कि एक इतिहास हम कहते हैं, सुनो। एक अज्ञानी दरिद्री बालक अपने घर से निकलकर किसी ऋषीश्वर के स्थान पर गया। उस ऋषीश्वर ने दया करके उस बालक को ऐसी विद्या पढ़ाई कि उसे देव-दृष्टि हो गई, वह पृथ्वी का गड़ा हुआ धन और सौ कोस की चीज

देखने लगा। कुछ दिनों के उपरान्त उस बालक के माता-पिता ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँचे। जब वे उसे पकड़कर घर ले जाने लगे तब उसने समझा कि घर जाने से मेरा यह गुण भूल जायगा, इसलिए वह अपने घर नहीं जाता था। पर माता-पिता ने हठ से घर पर लाकर उसका विवाह कर दिया। वह लड़का उस विद्या को भूल गया। गरीब तो था ही, बोझा ढोकर अपना पेट पालने लगा। इतनी कथा सुनकर बर्हिष्मती बोली कि वह ऐसे गुण को छोड़कर गृहस्थी के जाल में क्यों फँसा? प्रियव्रत ने कहा कि वही हाल तो हमारा भी है। नारद मुनि का बताया हुआ ज्ञान छोड़कर हम संसारी जाल में फँसे हैं। यह वचन सुनते ही बर्हिष्मती बोली कि महाराज, अब विरक्त होना चाहिए। प्रियव्रत ने स्त्री की यह बात सुनकर राज्य बेटों को दे दिया और स्त्री समेत वन में जाकर हरिभजन करके मुक्त हुआ। जो लोग परमेश्वर की शरण में जाते हैं उन्हीं को सुख होता है।

—०—

दूसरा अध्याय।

प्रियव्रत के बेटे अग्नीध्र का राजा होना और पूर्वचित्ती अप्सरा से विवाह करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब राजा प्रियव्रत वन में तप करने के लिए चले गये तब उनके बड़े बेटे अग्नीध्र ने राजगद्दी पर बैठकर विचारा कि पहिले परमेश्वर का तप व स्मरण करके पीछे से ब्याह करें, जिसमें सन्तान धर्मात्मा उत्पन्न हों। वेद व शास्त्र में भी ऐसा ही लिखा है कि चौबीस वर्ष की अवस्था तक स्त्री का प्रसंग न करना चाहिए। यह विचारकर वह घर से निकल खड़ा हुआ और मन्दराचल पहाड़ पर जाकर एक रमणीक स्थान में बैठकर परमेश्वर का तप करने लगा। जब बहुत दिन उसको तप करते बीते तब इन्द्र ने अपना इन्द्रासन छीन लेने के डर से महासुन्दरी पूर्वचित्ती नाम की अप्सरा को उनका तप भंग करने के लिए भेजा। वह अप्सरा वहाँ जाकर नृत्य करने लगी। उसके गाने, नाचने व बाजे का शब्द सुनकर ही अग्नीध्र का ध्यान छूट गया और

वह उसके रूप पर मोहित होकर बौरहे के समान उससे पूछने लगा—हे मुनि ! तुम किस वन में तप करते हो, वहाँ पर कैसे फल व पुष्प होते हैं, तुम्हारे सिर के बाल बहुत सुन्दर हैं, और छातियों में दो अनार के समान ऊँचे-ऊँचे क्या दिखाई देते हैं ? पूर्वचित्ती अपने बालों में जो पुष्प गुहे थी उस सुगन्ध से भँवरे गूँजते हुए देखकर राजा बोले कि ये सब तुम्हारे चेले वेद पढ़ने के लिए आए हैं ? नाचते समय घुँघरू की झनकार सुनकर कहने लगे कि तुम वेदों का स्वर बहुत अच्छा उच्चारण करते हो । शरीर में अगर व चन्दनादिक सुगन्ध लगे देखकर बोले कि तुम्हारे तपोवन में नदी की मिट्टी इसी तरह की होती है, जिसे तुम अंगों में लगाये हो और जिसकी सुगन्ध से मेरा स्थान भर गया ? उस वन में क्या इसी रूप के सब ऋषि व मुनि रहते हैं ? मुझे तुम्हारा स्थान देखने की अभिलाषा है । सो कृपा करके मुझे दिखला दो । मेरी समझ में तुम लक्ष्मी या नारायणजी की माया हो, जो यहाँ आकर अपने नयनों का बाण चलाकर मुझ-ऐसे हरिण को मारना चाहती हो । परमेश्वर ने बड़ी कृपा करके तुम्हारा दर्शन दिया । तुम्हारा मोहनी रूप मुझको बहुत प्यारा मालूम देता है, इसलिए अब मैं तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ूँगा । राजा की यह बात सुनकर पूर्वचित्ती समझ गई कि यह मेरे ऊपर अतिमोहित हुआ है । वह मुसकराकर बोली—हे राजन्, हमारे तपोवन में इसी रूप के सब ऋषि व मुनि रहते हैं । वहाँ ऐसे कन्द-मूल होते हैं जिनके खाने से मनुष्य सदा तरुण, रूपवान् व कोमल बना रहता है। जब तुम अपनी राजगद्दी पर चलकर कुछ दिन मेरे साथ रहो तब अपना स्थान तुम्हें दिखावें । यहाँ पहाड़ पर मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकती । यह वचन सुनते ही राजा परमेश्वर का तप व ध्यान छोड़कर अप्सरा के साथ राजमन्दिर को चले आये और उसके संग विवाह करके दश हजार वर्ष तक भोग-विलास और राज्यकाज धर्मपूर्वक करते रहे । राजा के नाभि और इलावृत्त आदि नव बेटे पूर्वचित्ती अप्सरा से उत्पन्न हुए और जन्मते ही अपनी माता के आशीर्वाद से तरुण, तेजवान् व बलवान् हो गये । पूर्वचित्ती उनका विवाह करके इन्द्रलोक को चली गई और राजा

ने जम्बूद्वीप के नव भाग करके एक-एक भाग, जिसे नव खण्ड कहते हैं, अपने नव बेटों को बाँट दिया। फिर वे वन में जाकर परमेश्वर का तप व ध्यान करने लगे। वन में भी राजा को पूर्वचित्ती के वियोग का बड़ा शोक था, उसी कारण अपना शरीर त्यागकर गन्धर्व तनु पाकर उससे जा मिले।

—:०:—

तीसरा अध्याय।

राजा नाभि के यहाँ ऋषभदेवजी का अवतार लेना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! राजा अग्नीध्र वन में तप करने चला गया और नाभि आदि उसके नव बेटे अपने-अपने खण्ड में धर्म के साथ प्रजा का पालन करते हुए राज्य करने लगे। कुछ दिनों के उपरांत बड़े बेटे राजा नाभि ने अपनी स्त्री मेरुदेवी के साथ सन्तान की इच्छा से वन में जाकर बहुत दिनों तक परमेश्वर का तप किया। फिर रानी समेत अपने घर आकर ब्राह्मणों व ऋषीश्वरों को बुलाकर यज्ञ करने लगा। जब यज्ञ अच्छी तरह सम्पूर्ण हुआ तब नारायणजी साँवली-सूरत मोहनीमूरत ने शंख, चक्र, गदा व पद्म धारण किये किरीट मुकुट कुण्डल वैजयन्ती माला पहिने तापहारिणी चितवन, मन्द-मन्द मुसकराते हुए अग्निकुण्ड से निकलकर अपना दर्शन दिया। उन्हें देखते ही राजा नाभि और ऋषीश्वर आदि जितने मनुष्य यज्ञशाला में बैठे थे, दण्डवत् करके खड़े होकर उनकी स्तुति करने लगे। देवतों ने आकाश से उन पर पुष्प बरसाये। राजा ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे त्रिलोकीनाथ! आपने मुझ गरीब की इच्छा पूर्ण करने के लिए दयालु होकर दर्शन दिया। किसकी ऐसी सामर्थ्य है जो आपकी महिमा का वर्णन कर सके। हरिचरणों में भक्ति करनेवाले को चारों पदार्थ मिलते हैं, सो मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि आपके समान मेरे पुत्र उत्पन्न हो। यह वचन सुनते ही यज्ञ भगवान् प्रसन्न होकर बोले—हे राजन्! तुमने मेरे समान पुत्र होने की चाहना रखकर तप व यज्ञ किया है, सो हम तेरे घर अवतार लेंगे। यह कहकर वैकुंठ को पधारे।

राजा ने ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों को दक्षिणा देकर बिदा किया और जैसे ही यज्ञ का प्रसाद अपनी रानी मेरुदेवी को खिलाया वैसे ही उसके गर्भ रह गया। तब ब्रह्माजी देवतों समेत गर्भ की स्तुति करने के लिए राजमंदिर पर आकर बोले—हे राजन्! तेरा भाग्य उदय हुआ, आदि पुरुष भगवान् तेरे यहाँ पुत्र होकर अवतार लेंगे। ब्रह्मादिक सब देवता गर्भस्तुति करके अपने-अपने लोक को चले गये। दशवें महीने परब्रह्म परमेश्वर ने रानी के गर्भ से अवतार लेकर अपनी साँवलीसूरत चतुर्भुजी-मूरत किरीट कुंडल मुकुट साजे, नवरत्न, भुजवन्द वनमाला विराजे, कौस्तुभमणि वैजयन्ती माला गले में डाले, राजा नाभि व मेरुदेवी को दर्शन दिया। वे दोनों प्रसन्न होकर दण्डवत् करके उनकी स्तुति करने लगे। देवतों ने अपने-अपने विमान पर बैठकर आकाश से उन पर पुष्प बरसाये, अप्सराएँ नाचने लगीं और गन्धर्वों ने गाना सुनाया। ब्रह्मा ने आकर उनका नाम ऋषभदेवजी रक्खा। जब ब्रह्मादिक देवता दण्डवत् व स्तुति करके अन्तर्धान हो गए तब परब्रह्म परमेश्वर बालक रूप होकर रोने लगे।

—:०:—

चौथा अध्याय।

राजा नाभि का स्त्री के सहित वन में जाकर तप करना
और ऋषभदेवजी का गद्दी पर बैठना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! आदिपुरुष भगवान् ने राजा नाभि के यहाँ जन्म लिया और राजा ने उन्हें परमेश्वर का अवतार समझकर बड़े हर्ष से ब्राह्मणों व याचकों को इतना दान व दक्षिणा दिया कि उसके राज्य में कोई मनुष्य कंगाल न रह गया। राजा और रानी ऋषभदेवजी की बाललीला का सुख देखकर अपना जन्म सफल जानकर प्रसन्नता से कपड़ों में नहीं समाते थे। जब ऋषभदेवजी सयाने होकर राजगद्दी पर बैठने योग्य हुए तब राजा ने अपने मंत्री और प्रजा को उनसे प्रसन्न देखकर विचारा कि अब इनको राजगद्दी पर बैठाकर मुझे परमेश्वर का भजन करना चाहिए। यह विचारकर राजा ने ज्योतिषियों से शुभ

मुहूर्त पूछकर ऋषभदेवजी को राजसिंहासन पर बैठा दिया और आप स्त्रीसमेत बदरी-केदार में जाकर परमेश्वर का तप व ध्यान करने लगे। कुछ दिनों के उपरान्त योगाभ्यास के साथ अपना तनु छोड़कर भव-सागर पार उतर गये। ऋषभदेवजी ने धर्म के साथ प्रजा का पालन करके ऐसा राज्य किया कि उसके राज्य में बाघ और बकरी एक घाट पानी पीते थे। कोई प्रजा दुःखी व कंगाल न थी। देवता उनकी स्तुति देवलोक में किया करते थे। जब राजा इन्द्र ने सब छोटे व बड़ों के मुँह से उनका यश व प्रताप सुना तब डाह से उनके राज्य भरतखण्ड में पानी नहीं बरसाया। जब ऋषभदेवजी को यह हाल मालूम हुआ तब उन्होंने इन्द्र के अज्ञान पर हँसकर अपने योगबल से ऐसा कर दिया कि उनके राज्य में जिस समय प्रजा लोग पानी चाहते थे उसी समय नारायणजी की कृपा से जल बरसता था। जब इन्द्र ने ऋषभदेवजी की यह महिमा व प्रताप देखा तब उन्हें परमेश्वर का अवतार जानकर अपना अपराध क्षमा कराने के लिए जयन्ती नाम की अपनी कन्या उनको विवाह दी। ऋषभदेवजी के उसी स्त्री से सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें नव बालक विरक्त हो गए, वे वन में जाकर परमेश्वर का तप व ध्यान करने लगे। उन्हीं को नव योगीश्वर कहते हैं। उन्होंने राजा जनक को ज्ञान का उपदेश किया था। वह कथा ग्यारहवें स्कंध में आवेगी। नव बालक नवखंड के राजा हुए। भरत नाम का उनका बड़ा बेटा अपने पिता की राजगद्दी पर बैठा और इक्यासी बेटे ब्राह्मणों के समान वेद पढ़ने और तप करने लगे। एक समय ऋषभदेवजी ने सब प्रजा को यज्ञ में बैठाकर अपने पुत्रों को यह ज्ञान उपदेश किया कि हे बेटो! संसार में जितने जीव जड़ व चैतन्य देखते हो एक दिन सबका नाश होगा, केवल अविनाशी पुरुष नारायणजी स्थिर रहेंगे। उन्हीं की शक्ति शरीर में रहने से सब जीव चलते-फिरते हैं। तुम लोग उसी परमेश्वर का ध्यान हृदय में रखकर संसारी जीवों से मोह तोड़कर ज्ञानी व महात्मा लोगों का सत्संग करो, जिसमें तुम्हारी मुक्ति हो। कुसंग करने से मनुष्य तुरन्त नष्ट हो जाता है। जब तक संसारी सुख

को स्वप्न के समान झूठा नहीं समझता तब तक उसे सुख मिलना कठिन है। जगत् में द्रव्य और स्त्री दो रस्सी मायारूपी ऐसी फैली हैं, जिसमें सारा जगत् बँधकर नष्ट होता है। जो मनुष्य इन दोनों से अलग रहे वह इस मायाजाल से छूट सकता है, पर इन दोनों से बचना और संसारी मोह छोड़कर परमेश्वर में चित्त लगाना सहज नहीं होता। इसका एक उपाय हम तुमसे कहते हैं, सुनो। केवल सन्त व महात्मा की संगति करना ही इसका उपाय है। बिना सत्संग ज्ञान मिलना, संसार को झूठा जानना और परमेश्वर के चरणों में प्रीति होना कठिन है। साधु व महात्माओं की संगति करने से धीरे-धीरे मनुष्य का मन विरक्त होकर परमेश्वर की तरफ लग जाता है। इसके सिवा एक और मुख्य बात कहता हूँ, उस पर तुम विश्वास करो। संसार में नरक व मोक्ष के दो दरवाजे हैं। सन्त व महात्मा की संगति व सेवा करना मोक्ष का द्वार है और परस्त्रीप्रसंग करना, चोर, जुआरी, विषयी व मद्यप का संग करना नरक का दरवाजा है।

पाँचवाँ अध्याय।

ऋषभदेवजी का अपने बेटों को ज्ञान सिखलाना और सन्त-महात्मों के लक्षण कहना।

ऋषभदेवजी ने कहा—हे बेटो! जिन सन्तों व महात्मों की संगति व सेवा करने से मोक्ष का द्वार खुल जाता है उनके लक्षण सुनो। उनका मन सदा एकसा रहता है। किसी के दुर्वचन कहने से उनको क्रोध नहीं होता। भीतर व बाहर समान रहता है। हृदय में कपट नहीं होता। वे हरिभक्तों से अधिक प्रीति रखते हैं। रात्रि-दिन हरिकथा कहने सुनने पर भी उनको उससे सन्तोष नहीं होता, आलस्य नहीं आता। अपने घर व परिवार में अतिथि के समान रहकर केवल अपना पेट भरने व अर्थ निकालने से प्रयोजन रखते हैं। लाभ व हानि होने से कुछ हर्ष व चिन्ता नहीं करते। अतिथि का एक लक्षण यह है कि जिस तरह कोई परदेशी कंगाल दूसरे ग्राम या नगर में पहुँचे और एक दिन किसी के घर भोजन करके दूसरे

रोज वहाँ से चला जाय तो भोजन देनेवाले से उसे कुछ मोह उत्पन्न नहीं होता। दूसरा लक्षण अतिथि का सुनो, जैसे पक्षी किसी मकान में घोंसला बनाकर रहते हैं, वहाँ दाना-पानी खाते-पीते हैं, पर उस घर के गिरने का उन्हें कुछ सोच नहीं होता। तीसरा लक्षण अतिथि का यह है कि जिस तरह खीरे का फल ऊपर से एक होकर उसके भीतर तीन चार फाँक अलग-अलग रहती हैं उसी तरह ज्ञानवान् गृहस्थ भी प्रकट में स्त्री व पुत्र का मोह रखकर अन्तःकरण से उनको अपना शत्रु जानता है। ऐसे विरक्त गृहस्थ को भी, जो किसी जीव को दुःख नहीं देता, साधु व महात्मा समझना चाहिए। सो तुम ब्राह्मणों को बहुत उत्तम जानकर दयापूर्वक प्रजा का पालन करो। इस तरह का ज्ञान रखनेवाला यमदूतों की फाँसी में नहीं बाँधा जाता। ऋषभदेवजी ने अपने बेटों को यह उपदेश देकर कुछ दिनों के उपरान्त विचारा कि अन्त समय यह राज्य व परिवार मेरे साथ न जायगा, सब मेरा संग छोड़ देंगे, इसलिए पहिले से इनका साथ छोड़ देना उत्तम है। ऐसा विचारकर भरत नामक अपने बड़े बेटे को राजगद्दी पर बैठा दिया और आप विरक्त होकर जड़भरत का रूप बना लिया। जड़भरत पहाड़ पर जाकर परमेश्वर का तप व भजन करने लगे। जड़भरत के यह लक्षण हैं कि मल-मूत्र करने पर भी स्नान आदि का कुछ नियम न रक्खे, भोजन व वस्त्र का उद्योग छोड़ दे, कदाचित् कोई भोजन खिला दे तो खा ले, नहीं तो निश्चिन्त बैठा रहे, अपने कपड़े तक की सुधि न रक्खे। सो ऋषभदेवजी ने स्नान व पूजा आदि सब छोड़ दिया। उस पर भी उनका रूप देखकर देवकन्याएँ मोहित हो जाती थीं। चालीस कोस तक उनके मल-मूत्र की सुगन्धि पहुँचती थी। उसी समय अष्टसिद्धि ने उनके पास आकर अपने-अपने गुणों को वर्णन किया, पर ऋषभदेवजी ने उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा।

———

छठा अध्याय।

ऋषभदेवजी का चलन देखकर सरावगी धर्म का प्रकट करना।

राजा परीक्षित इतनी कथा सुनकर बोले—हे मुनिनाथ! ऋषभदेवजी जो नारायणजी का अवतार थे, आठों सिद्धियों का मन अपनी ओर खींच कर उन्हें विरक्त क्यों नहीं कर दिया? जो मनुष्य काम, क्रोध, मोह, लोभ, मन व इन्द्रियों को अपने वश में न रखता हो उसे अष्टसिद्धि की ओर देखने से डर व खटका है। सो ऋषभदेवजी उन सबको अपने अधीन किये थे, उन्होंने किस वास्ते अष्टसिद्धि की ओर नहीं देखा। यह वचन सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यह चंचल मन काम-क्रोध आदि बड़े-बड़े बलवानों की कुसंगति पाने से वश में नहीं रहता। उनमें कामदेव ऐसा बली है, जिसके मद में मनुष्य अन्धा होकर अपना भला-बुरा नहीं समझता। यही कामदेव बड़े-बड़े योगियों व ऋषीश्वरों के तप व ध्यान में विघ्न डालकर हजारों वर्ष का तप एक क्षण में नष्ट कर देता है। चंचल मन बिजली व पारे के समान कभी एक ठिकाने नहीं रहता, इसलिए मन का विश्वास न रखना चाहिए। जिस तरह पुंश्चली स्त्री अपने पति को भुलावा देकर दूसरे पुरुष के पास जाती है उसी तरह यह मन व इन्द्रियाँ अष्टसिद्धि का कुसंग पाने से चैतन्य होकर कुकर्म की इच्छा करती हैं। यह विचारकर ऋषभदेवजी ने उनकी ओर नहीं देखा था जिसमें कामदेव को रोकना न पड़े। जड़भरतरूप रहने में शास्त्र के अनुसार धर्म रखने व षटकर्म करने का प्रयोजन नहीं रहता, इसलिए बहुत मनुष्यों ने ऋषभदेवजी का चलन देखकर स्नान करना और वेद पढ़ना छोड़ दिया। तभी से ओसवाल व सरावगी का मत फैला, जो लोग वेद व शास्त्र को नहीं मानते उन लोगों में इस मत का प्रचार हुआ। वे लोग जैनधर्मी कहलाते हैं। ऋषभदेवजी उसी अवस्था में अग्नि लगने से जलकर परमधाम को चले गये।

सातवाँ अध्याय।

ऋषभदेवजी के पुत्र भरत का राज्य करना और फिर वन में तप करने के लिए जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! ऋषभदेवजी का भरत नामक बड़ा बेटा जो उनकी जगह राजा हुआ उसने धर्मपूर्वक राज्य करके प्रजा को पुत्र समान जाना। अपना विवाह पंचजनी नामक विश्वरूप की कन्या से किया। उसी स्त्री से धूम्रकेतु आदिक पाँच पुत्र बहुत सुन्दर व प्रतापी उत्पन्न हुए। जब राजा ने बहुत से यज्ञ करके उनका फल परमेश्वर को अर्पण कर दिया तब उन्हें ईश्वर की चतुर्भुजी मूर्ति का दर्शन ध्यान में होने लगा। इसी तरह दश हजार वर्ष राज्य व सुख भोगकर संसारी व्यवहार को झूठा समझ विरक्त होकर राजगद्दी बेटों को सौंप दी और आप वन में पुलहाश्रम नदी के किनारे, जहाँ पर नारायणजी शालग्राम-रूप से रहते हैं, बैठकर भगवत्-भजन करने लगे। वह पत्तों की कुटी में कन्द-मूल खाकर जैसा आनन्द करते थे वैसा सुख उन्हें राजगद्दी पर नहीं मिलता था। वेद की आज्ञानुसार ब्राह्मण व क्षत्रिय को नित्य शालग्राम की पूजा करनी उचित है। एक दिन राजा भरत मध्याह्न समय नदी के किनारे बैठे हुए सूर्य देवता का ध्यान कर रहे थे उसी समय एक गर्भवती हरिणी अपने गोल से फूटकर जैसे वहाँ पानी पीने लगी वैसे ही एक बाघ बोला। उसकी बोली सुनते ही हरिणी भागी तो नदी का सेतु नाघते समय उसके पेट से बच्चा गिर पड़ा। वह बच्चा तो जीता बच गया, पर हरिणी उसी जगह मर गई। राजा भरत ने यह दशा देखकर विचार किया कि इस बच्चे को यहाँ पड़ा रहने से कोई जानवर खा लेगा या मारे भूख व प्यास से यह मर जायगा तो मुझे पाप होगा। परमेश्वर ने इसका बोझ मेरे ऊपर डाल दिया है, इसलिए इसकी रक्षा करनी चाहिए। ऐसा विचारकर राजा ने उस बच्चे को उठा लिया और पानी से धोकर अपनी कुटी में ले आये और गौ का दूध पिलाकर उसे पालने लगे।

आठवाँ अध्याय।

उस बच्चे का खो जाना और राजा भरतजी का उसी शोक में तन त्याग करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजा! जब उस बच्चे को पालने से अधिक मोह हुआ तब भरतजी अपने हाथ से हरी घास छीलकर उसको खिलाने व अपने पास सुलाने लगे। जब दिशा फिरने व स्नान करने के लिए कहीं बाहर जाते तब उसे अपने साथ रखते। पूजा व तप करते समय भी उसको अपने पास बैठाये रहते थे। भरतजी ने इतना प्रीति उस बच्चे से बढ़ाई कि उनके जप व ध्यान में बाधा होने लगी। जब वह बच्चा कहीं चला जाता तब उसके लिए बहुत उदास होते थे। अनायास एक दिन वह बच्चा छूटकर वन में चला गया और अपने गोल में मिल जाने से फिर लौटकर कुटी में नहीं आया। जब राजा भरत ने बहुत ढूँढ़ने पर भी उसे न पाया तब बड़े सोच से कहने लगे—मुझसे बड़ी चूक हुई, अकेला छोड़ देने से वह भाग गया। मैं ऐसा जानता कि वह चला जायगा तो उसे अकेला न छोड़ता। परमेश्वर मुझपर दया करके मेरा भाग्य उदय करे, वह बच्चा मेरे पास चला आवे। वह डाटने से मुनीश्वरों के बालकों के समान डरता था। पृथ्वी, तू उसे अकेला देखकर उठा ले गई है, सो मेरे बच्चे को बतला दे। जब इसी तरह शोक व विलाप करते-करते रात्रि हो गई तब राजा ने कहा—हे चन्द्रमा, तुम उस बच्चे को अवश्य देखते होगे, जहाँ मेरा बच्चा हो तुम कृपा करके बतला दो, जिसमें वह मिल जावे, नहीं तो मेरे प्राण निकलने चाहते हैं। जैसा शोक अपने पुत्र के मरने का भी कोई नहीं करता वैसी चिन्ता भरतजी ने बच्चे के लिए की। उस दिन स्नान, पूजा और भोजन कुछ नहीं किया और उसी शोक में मर गये। मरते समय उनका ध्यान उस बच्चे में लगा था, इसलिए वह तनु छोड़कर हरिण का जन्म पाया।

—:०:—

नवाँ अध्याय

भरतजी का हरिण का तनु त्यागकर एक ब्राह्मण के यहाँ जन्म लेना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजा! भरतजी हरिण का जन्म पाकर वन में रहने लगे, परन्तु हरिभजन के प्रताप से वह अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त जानते थे, इसलिए अपनी अज्ञानता समझकर मन में कहते थे कि मैंने हरिचरणों का ध्यान छोड़कर जैसी प्रीति उस बच्चे से की वैसी अपनी स्त्री व पुत्र से कभी नहीं की थी। उसके मोह में फँसकर ऐसा नष्ट हुआ कि मनुष्य से हरिण का तनु पाया। भरतजी पिछली बात सोचकर किसी हरिणी आदि से प्रीति नहीं करते थे, कहते थे कि न मालूम इनकी संगति करने से फिर मेरी क्या गति होगी। यह समझकर वे किसी जीव को दुःख नहीं देते थे और न हरी घास खाते थे। जो फल व पत्ता सूखकर गिर पड़ता था उसे खाकर हरिण के तनु में भी परमेश्वर का ध्यान व स्मरण करते थे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले कि हे राजा, मृत्यु से मनुष्य को प्रतिक्षण डरना चाहिए, न जाने किस समय मृत्यु आ जावे। एक हरिण के बच्चे से मोह करने में ऐसे महात्मा की यह गति हुई, फिर दूसरों की क्या गिनती है। जो कोई परमेश्वर का ध्यान छोड़कर मायारूपी जाल में फँसेगा, उसकी ऐसी ही गति होगी। भरत उस तन में दिन-रात इसी बात का सोच करते थे कि जल्दी मेरा यह शरीर छूटे तो मनुष्य तनु पाकर परमेश्वर का भजन करूँ। एक रोज नदी पार उतर रहे थे, वे रूखे पत्ते खाने से निर्बल तो थे ही, इसलिए नाँघते समय पुलहाश्रम नदी में गिर पड़े और डूबकर मर गये। फिर अथर्वण वेद पढ़नेवाले एक ब्राह्मण के पुत्र हुए। उनका नाम भरत रक्खा गया। जब सयाने हुए तब पूर्वजन्म का वृत्तान्त याद करके संसारी मोह में न फँसे और दिन-रात परमेश्वर में ध्यान लगाये रहे। अपने पिता के डाटने पर भी पढ़ने में जी नहीं लगाया। उस ब्राह्मण ने अन्त समय में दूसरे बेटों से कहा—हे पुत्रों, मैंने बहुत चाहा कि तुम्हारा भाई भरत कुछ पढ़े, पर उसने पढ़ने में चित्त नहीं लगाया, इस

कारण मूर्ख रहा। तुम लोग मेरे अन्त समय की बात मानकर ऐसा उद्योग करना कि जिसमें वह पढ़कर चतुर हो जावे। जब वह ब्राह्मण यह कहकर मर गया तब उसके बेटों ने भरत को पढ़ने के लिए बहुत उपाय किये, पर उसने नहीं पढ़ा। जड़भरत रूप बनकर ऐसा चलन पकड़ा कि कोई खिला दे तो खावे, पिला दे तो पीवे, नहीं तो कुछ सोच न करके दिन-रात्रि परमेश्वर के ध्यान में मग्न रहे। भरत के भाइयों ने यह हाल देखकर उससे अपना मन मोटा कर लिया, पर भोजन उसको दे दिया करते थे। जब उन्होंने देखा कि यह घर गृहस्थी का कोई काम नहीं करता, वृथा खाता है तब उसे अपना खेत अगोरने के लिए बैठाकर कहा कि तुम देखा करो जिसमें इस खेत का अनाज कोई न ले जावे। पशु-पक्षी भी खाने न पावें। जड़भरत ने उसकी कुछ रखवारी न की, वहाँ आनन्दपूर्वक बैठकर परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करने लगे। एक भीलों का राजा जो उस देश में रहता था, उसने मान्ता मानी कि हे भद्रकाली! मेरे बेटा हो तो मैं मनुष्य का बलिदान तुम्हें चढ़ाऊँ। जब भद्रकाली की कृपा से उसके पुत्र उत्पन्न हुआ तब उसने एक बालक को बलिदान देने के लिए मोल लेकर उसका पालन किया; किन्तु वह बालक अपने बलिदान दिये जाने का हाल सुनकर भाग गया। तब राजा अपने नौकरों से बोला कि कुछ रुपया देकर एक मनुष्य बलिदान देने के लिए ढूँढ़ लाओ। वे लोग खोजते हुए रात्रि के समय उस खेत पर पहुँचे, उन्होंने वहाँ जड़भरत को हृष्टपुष्ट देखकर बलिदान देने के लिए पकड़ लिया और गले में रस्सी बाँधकर राजा के मन्दिर में ले गये। वह राजा जड़ भरत को देखकर बड़े हर्ष से बोला कि तुम ऐसा अच्छा मनुष्य बलिदान देने के लिए लाये हो कि जो अपने मरने का कुछ डर नहीं रखता, आनन्दमूर्ति दिखलाई देता है। भद्रकाली इसका बलिदान लेकर बहुत प्रसन्न होगी। राजा के पुत्र, पुरोहित व ब्राह्मण महामूर्ख थे, वेद व शास्त्र का हाल नहीं जानते थे कि मनुष्य का बलिदान देना चाहिए या नहीं। इस बात का विचार न करके जड़भरत का क्षौर कराकर व उबटन लगाकर स्नान कराया

और बलिदान देने के लिए उसको नया कपड़ा व गहना पहिनाया। इत्र व चन्दन शरीर में मलकर बहुत अच्छा भोजन कराया। उस समय जड़भरत ने प्रसन्न होकर मन में कहा कि जब से मेरे माता पिता मरे हैं, तब से मुझे किसी ने ऐसा पदार्थ नहीं खिलाया था, आज बहुत अच्छे व्यंजन ये लोग प्रीति से खिलाते हैं। जब भोजन कराने के उपरान्त जड़भरत के गले में उत्तम फूलों का हार पहिनाकर भद्रकाली के सामने खड़ा किया तब ब्राह्मणों ने राजा के हाथ में नंगी तलवार देकर कहा—मारो। जैसे राजा ने खड्ग मारने को हाथ उठाया वैसे ही जड़-भरत ने यह विचारकर अपना शिर उसके आगे झुका दिया कि पूरी व मिठाई खाते समय मैंने अपना मुँह फैलाया था अब तलवार खाने के समय गर्दन सामने से हटाना उचित नहीं है। भद्रकाली ने उसको शिर झुकाते देखकर विचारा कि ये सब ब्राह्मण ऐसा ज्ञान नहीं रखते कि राजा को बलिदान देने से मना करें और इस हरिभक्त ब्राह्मण को दुःख न दें। यदि मैं इसकी रक्षा नहीं करती तो मुझे पाप होगा, क्योंकि कोई मनुष्य अपने सामने किसी को बिना अपराध दुःख देवे तो उसकी रक्षा करनी चाहिए, नहीं तो देखनेवाले को पाप लगता है। ऐसा विचार-कर भद्रकाली ने बड़ा क्रोध किया और खड्ग व खप्पर हाथ में लिए हुए चिल्लाकर ऐसा डपटा कि वह शब्द सुनते ही राजा अपने पुरोहित समेत बहिरा होकर मूर्च्छित हो गया और तलवार गिर पड़ी। भद्रकाली ने उसी खड्ग से राजा और पुरोहित का शिर काट लिया। दोनों का शिर गेंद के समान उछालकर इस इच्छा से नाचने लगी कि जिसमें जड़भरत प्रसन्न होकर मुझे कृपा व दया की दृष्टि से देखें तो मेरा भला हो। इनके दुःखी होने से मेरा कल्याण न होगा। जब भद्रकाली के नृत्य करने पर भी वे उसी तरह माथा झुकाये खड़े रहे तब भद्रकाली ने स्तुति करके उनसे कहा—हे ब्रह्मदेव! आप कृपा करके मेरा अपराध क्षमा करें, क्योंकि जब किसी का भक्त व सेवक दूसरे का अपराध करता है तो उसके मालिक का नाम धरा जाता है, सो आप ऐसा विचार न करें कि यह राजा भद्रकाली का भक्त था। यह तो मेरा बड़ा शत्रु है,

जिसने आप-जैसे महात्मा को दुःख देना चाहा और राज्य व धन के मद में अन्धा होकर तुम्हें नहीं पहिचाना। जड़भरत ने यह वचन सुनते ही मुसुकराकर कहा कि आत्मा का कभी नाश नहीं होता, इसलिए अपना शिर कटने से मैं नहीं डरता। पर तेरा भक्त इस पाप के बदले नरक भोग करेगा, इस बात का सोच मुझे है। जड़भरत ऐसा कहकर वहाँ से चले आये। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तुम निश्चय करके जानो कि जो मनुष्य अपना मन परमेश्वर में लगाये रहता है उसे कोई दुःख नहीं दे सकता।

—:०:—

दसवाँ अध्याय।

राजा रहूगण का जड़भरत को पकड़कर अपने सुखपाल में लगाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजा! जड़भरत का दूसरा हाल सुनो। एक दिन राजा रहूगण सिन्धुसुवीर नाम अपने नगर से शिविका पर चढ़कर कपिलदेव मुनि के पास ज्ञान सीखने जाता था। राह में उसकी सवारी का एक कहार माँदा हो गया। उसी ओर कहीं जड़भरत भी परमेश्वर के ध्यान में आनन्द से बैठे थे। दूसरे कहारों ने जड़भरत का हृष्टपुष्ट देखकर पकड़कर शिविका में लगा दिया। जड़भरत आनन्दपूर्वक राजा की पालकी उठाये चले जाते थे और इस अपमान का उनको कुछ सोच नहीं था। पर धरती को देखते हुए चिउँटी आदि जीवों को दबने से बचाते हुए पाँव रखते थे, इसलिए जब कई बेर शिविका हिली तब राजा ने क्रोध से कहारों की ओर देखकर कहा कि तुम लोग पालकी क्यों हिलाते हो। कहार बोले—हमारा कुछ अपराध नहीं है, यह नया कहार शिविका हिलाता है। यह बात सुनते ही राजा ने जड़भरत से कहा—हे कहार, तू हृष्टपुष्ट दिखलाई देता है, अभी इतना रास्ता नहीं चला जो थक गया हो, क्या तुझे अपने प्राणों का डर नहीं है, जो हमारी पालकी अच्छी तरह नहीं ले चलता। जड़भरत यह वचन सुनकर चुप हो रहा। राजा को कुछ उत्तर न देकर मन में कहने लगा कि

इस शरीर को कर्मानुसार दुःख व सुख मिलता है। परमात्मा इन दोनों से विलग रहकर सदा एक रीति से रहते हैं। जब जड़भरत चुप हो रहे तब फिर राजा क्रोध करके बोला कि हे कहार, तू हमारी बात का उत्तर क्यों नहीं देता ? यह वचन सुनकर जड़भरत ने बिचार किया कि यह अपने को बड़ा ज्ञानी समझता है, इसलिए इसका अभिमान तोड़ना चाहिए। ऐसा विचारकर जड़भरत हँसकर बोले—हे राजा ! तुमने कहा कि तू बहुत राह नहीं चला और थक गया। जो मनुष्य वृथा फिरता है वह दुःख पाने से अवश्य माँदा होगा, क्यों ऐसा कर्म नहीं करता कि जिससे जन्म व मरण से छूट जावे। आपने कहा कि तू दुर्बल नहीं है, मोटा दिखाई देता है, सो हे राजा ! जिसको जीव कहते हैं वह सदा चैतन्य रहकर न मोटा होता है न दुर्बल, सदा एकसा रहता है। कदाचित् उसे दुबला कहो तो वह ऐसा सूक्ष्मरूप है कि किसी को दिखलाई नहीं देता और मोटा समझो तो उसके विराट्रूप में सारा संसार व चौदहों लोक वर्तमान हैं। यह शरीर नाश होनेवाला है, कभी पुष्ट व कभी कृश रहता है। जिसने इस अनित्य शरीर में प्रीति लगाई उसे इन बातों का विचार करना चाहिए। और जो तुमने कहा कि तू मरने की इच्छा रखता है, सो मेरे निकट जीना व मरना दोनों बराबर हैं। बिना मृत्यु आये कोई नहीं मरता। हे राजन्, परमेश्वर का प्रकाश मेरे, तुम्हारे और सब जीवों के तनु में एकसा है, इसलिए मैं स्वामी व सेवक को सम जानता हूँ। तुम इसी शरीर तक राजा हो, मरने के उपरान्त हम और तुम दोनों बराबर हो जायँगे, इसलिए तुमको यह सामर्थ्य नहीं है कि जो अविनाशी पुरुष आत्मा को दुःख दे सके। इस झूठी काया को चाहो सो दण्ड दे दो। दुःख व सुख, हर्ष व विषाद शरीर को होता है, परमात्मा तनु में पृथक् रहकर दुःख व सुख से कुछ प्रयोजन नहीं रखते। यह वचन सुनते ही जब राजा को ज्ञान प्राप्त हुआ तब वह शिविका से उतर पड़ा और जड़भरत को दण्डवत् करके बोला कि महाराज, मन मैंने संसारिजाल में फँसे रहने से तुमको नहीं पहिचाना सत्य बताओ, तुम ऋषीश्वर हो, या किसी महापुरुष का अवतार

होकर अवधूतों की तरह अपना भेष बदले फिरते हो। आप कृपा करके अपना भेद बतलाइए और मुझे ज्ञान सिखलाकर भवसागर पार उतार दीजिए। मैं महादेव के त्रिशूल से और यमराज, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि आदि किसी देवता से नहीं डरता, पर ब्राह्मण के शाप से बहुत डरता हूँ सो मेरा अपराध क्षमा कीजिए। यह बात सुनकर जड़भरत ने कहा—हे राजा, यह जीव अपनी करणी से कभी देवता होता है, कभी मनुष्य तनु में राजा होता है, कभी भिखारी, यह गति इस शरीर की समझकर परमात्मा को, जिसे जीव कहते हैं, उन सबसे पृथक् जानना चाहिए। इतना ज्ञान कहने के उपरान्त जड़भरत ने अपने पूर्वजन्म का सब वृत्तांत राजा रहूगण से वर्णन किया।



ग्यारहवाँ अध्याय।

जड़भरत का राजा रहूगण को ज्ञान का उपदेश करना।

जड़भरत ने कहा—हे राजा! मनुष्य की अज्ञानता देखो, वह अपने कानों से जिन स्त्री व पुत्रादिक का दुर्वचन सुनकर दुःख पाता है, तिस पर भी उसका चित्त उनकी ओर से नहीं फिरता। झूठ-सत्य बोलकर किसी प्रकार से दश रुपया कमाकर उन्हीं लोगों का पालन करता है। छः चोर व ठग आठों पहर मनुष्य के साथ रहकर इस तरह उसके शुभ कर्मों को चुरा लेते हैं जिस तरह राह में चोर व ठग धनपात्र के साथ लगकर अवसर पाकर उसे लूट लेते हो। चूहा घर में रहने से खाने-पीने पर भी वस्त्रादिक काट डालते हैं। जिसके घर में चूहा न हो उसकी वस्तु नष्ट नहीं होती। उन छहों में एक चोर मन को समझो जिसके चलायमान होने से मनुष्य कुकर्म करके नष्ट होता है। दूसरे पाँच चोर व ठग, काम, क्रोध, लोभ, मोह व इन्द्रियाँ हैं, जिनके अधीन रहकर अशुभ कर्म करने से मनुष्य का धर्म क्षीण हो जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि इन छहों चोरों व ठगों को अपने अधीन रक्खे, उनके वश में न होवे। जब जड़भरत ने यह बात रहूगण से कही तब राजा ने फिर उन्हें दण्डवत् किया।

बारहवाँ अध्याय ।

राजा रहूगण का मनुष्य तनु की स्तुति करना ।

राजा रहूगण ने जड़भरत से इतना ज्ञान सुनकर विनय किया—महाराज ! मनुष्ययोनि से दूसरा चोला उत्तम नहीं होता, जिससे तुम्हारे ऐसे महात्मा व ज्ञानी का मुझे दर्शन मिला । मनुष्य का जन्म देवतों से भी अच्छा समझना चाहिए । कदाचित् देवता परमेश्वर का तप करें तो मुक्ति के सिवा दूसरा मनोरथ उनको नहीं मिलता । भरतखण्ड का मनुष्य जिस अर्थ के वास्ते हरिभजन करे वही फल उसको प्राप्त होता है, इसलिए मैं मनुष्यतनु को देवतों से उत्तम जानकर दण्डवत् करता हूँ । जड़भरत यह वचन सुनकर बोले—हे राजा ! जो बातें मैंने तुझसे कहा—उसका अर्थ तूने समझा या नहीं ? राजा बोला कि महाराज, मैं संसारी जीव अति मूर्ख अज्ञान हूँ, इसलिए यह ज्ञान अच्छी तरह नहीं समझा । आप दया करके विस्तारपूर्वक कहिए तब मैं समझ सकता हूँ । यह वचन सुनते ही जड़भरत हँसकर बोले—हे राजन् ! यह बात कठिन है, ऐसा ज्ञान, यज्ञ, पूजा, तप करने, विरक्त होने, वन में रहने, पंचाग्नि, तापने, जल में बैठने व दान देने से नहीं प्राप्त होता । यह सब कर्म करने से मनुष्य को इस बात का अहंकार होता है कि मैंने ऐसे शुभ कर्म किये हैं, मेरी बराबर दूसरा कौन होगा । शुभ कर्म करने पर भी अहंकार रखने से वह नष्ट हो जाता है । जब तक अभिमान छोड़कर सन्त व महात्मा के चरणों की धूल अपने मस्तक पर नहीं लगाता तब तक यह ज्ञान उसको नहीं मिलता । परमेश्वर की कृपा के बिना सन्त व महात्मा का दर्शन दुर्लभ है । हे रहूगण ! तुम समझते हो कि हम राजा हैं, सो मैं भी पिछले जन्म में भरत नामक सातों द्वीपों का राजा था । पर वहाँ रहने से अपना भला न समझकर राजगद्दी छोड़ दिया और वन में नारायणजी की शरण में जाकर हरिभजन करने लगा । तुमको अभी तक अपनी राजगद्दी का अभिमान बना है, इसलिए दूसरे जीवों पर दया नहीं रखते । जिस तरह परमेश्वर का प्रकाश तुम्हारे तनु में है

उसी तरह इन कहारों में भी समझना चाहिए। ज्ञान की दृष्टि से ये लोग और परमेश्वर के सब जीव तुम्हारे समान हैं। सो तुम अपने शरीर के सुख के वास्ते इन्हें दुःख देते हो, यह बहुत अनुचित है। यह ज्ञान सुनते ही राजा रहूगण मारे डर के काँपने लगा और जड़भरत से हाथ जोड़कर बोला—महाराज, मैं ब्राह्मण के शाप से डरता हूँ, ऐसा न हो कि आप क्रोध करके मुझे कुछ शाप दें।



तेरहवाँ अध्याय।

जड़भरत का राजा रहूगण से एक धनी बनिये का इतिहास कहना।

रहूगण की बात सुनकर जड़भरत ने कहा—हे राजा! मैं तुझे शाप नहीं दूँगा, डरो मत। ज्ञानी व महात्मा लोग संसारि सुख स्वप्नवत् झूठा समझकर इस शरीर से प्रीति नहीं रखते। परमात्मा काया से इस तरह अलग है जिस तरह वृक्ष पर पक्षी बैठा हो और उस पेड़ के काटने से उसे कुछ दुःख नहीं होता। कदाचित् पक्षी उस वृक्ष को अपना जान-कर रोवे तो उसका शोक करना वृथा है। जो मनुष्य शरीर को अपना समझकर संसारि सुख में मन लगाता है उसे दुःख के सिवा सुख नहीं होता। जब वह विरक्त होकर परमेश्वर में ध्यान लगाता है तब उसको सुख मिलता है। परमेश्वर की भक्ति करने से हृदय में ज्ञान का दीपक प्रज्वलित होता है और काम-क्रोध का अन्धकार उसके अन्तःकरण से छूट जाता है। यह ज्ञान सुनते ही राजा रहूगण ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! मैंने आपको पहिचाना। आप ब्राह्मण हैं, जिस तरह रोगी का दुःख अमृत पीने से छूट जाता है उसी तरह आप संसारी मनुष्यों को, जो माया-मोह में फँसकर नष्ट हो रहे हैं, अपना दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। सो मुझे भी अपना दास जानकर आपने दर्शन दिया। यह बात सुनकर जड़भरत बोले—हे राजन्! मैं एक इतिहास कहता हूँ, तू उसके सुनने से भवसागर पार उतर जायगा। एक धन-पात्र बनिया व्यापार की बहुत वस्तुएँ अपने साथ लेकर किसी दिशावर को चला। उसने कृपणता से माल की रक्षा करने के लिए अपने साथ कोई चाकर

नहीं रक्खा, इसलिये छः चोर उसके संग हो लिये। उन चोरों के और भी सहायक उनके पीछे-पीछे चले। थोड़ी दूर नगर से बाहर जाकर वह बनिया राह भूलकर ऐसे वन में पहुँचा जहाँ कोसों तक बस्ती नहीं थी। जब वन में बाघ, भालू, कटीले वृक्ष और नदी-नाले अधिक होने से उसका राह चलना कठिन हो गया। तब वह मारे डर के उस वन से पार होने के लिए संध्या तक बराबर चला गया, पर बस्ती कहीं न मिली, उसी वन में रात हो गई। जब बनिया रात को एक नाले में अपने मालसमेत पहुँचा तब वहीं छः चोर और उनके सहायक उसका सब माल लूटने लगे। उस समय उस बनिये ने रोकर मन में कहा कि कुछ भी माल यदि बच जाता तो उसे बेचकर फिर व्यापार करता। वह बनिया ऐसा विचारकर जिस वस्तु का बचाव करता था उसे सब चोर लूटते थे। जब उसका सब माल चोर लूट ले गये तब वह बनिया घबराकर उस वन में अपने टिकने का स्थान ढूँढ़ने लगा, पर कोई जगह उसके रहने के लिए नहीं मिली। वह व्याघ्र व हाथी आदि की बोली सुनकर डर से काँपता हुआ राह में चला जाता था। कहीं साँप व बिच्छू देखता तो ठोकर खाकर गिर पड़ता था। कहीं पैर में काँटे चुभते थे। वृक्ष के नीचे जब सुस्ताने लगता तो वृक्ष पर उल्लू का शब्द सुनकर वहाँ से भी भागता। कभी वन में आग लगी देखकर उसके डर से दूसरी ओर दौड़ता था। उसी विपत्ति में भागते हुए एक सूखे कुएँ में गिर पड़ा। उस कुएँ पर एक बरगद का वृक्ष था, उसकी एक डाली कुएँ में लटकती थी। जब वह बनिया आधे कुएँ में पहुँचा तब वह डाली उसके हाथ लगी, उसे पकड़कर लटक गया। उस कुएँ में एक साँप नीचे बैठा था, सो अँधियारी रात में बिजुली चमकने से उसने देखा कि कुएँ में एक साँप फन काढ़े बैठा है। जिस डाली को पकड़े था उस डाली को ऊपर से दो चूहे श्याम व श्वेतवर्ण के काटते हैं। तब बनिया ने विचारा कि कुएँ में कूद पड़ूँ तो साँप के काटने से मर जाऊँ, नहीं कूदता तो डाली कट जाने से गिरकर साँप के मुँह में पड़ूँगा। इसी सोच-विचार में बनिया पड़ा रहा। उसी बरगद के वृक्ष में शहद का एक

छत्ता लगा था। डाली हिलने से एक-एक बूँद टपककर उस बनिया के मुँह में गिरता था। ऐसी विपत्ति में वह बनिया शहद चाटकर बहुत प्रसन्न होता था। इसी तरह बनिया की आयु उस कुएँ में लटके हुए बीत गई, उसे निकालनेवाला कोई वहाँ न पहुँचा। जब एक दिन उन दोनों चूहों ने ऊपर से डाली काट दी तब वह कुएँ में गिर पड़ा और साँप के काटने से मर गया। इतनी कथा सुनकर राजा ने जड़भरत से कहा—महाराज! मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम होता है कि वह बनिया एक बूँद शहद खाकर प्रसन्न रहा और डाली पकड़कर ऊपर क्यों नहीं चढ़ आया। यह वचन सुनकर जड़भरत बोले—हे राजन्! ऐसी ही तुम्हारी और सब संसारी मनुष्यों की दशा है। सब मनुष्य अनेक तरह के उद्यम करके कुटुम्ब का पालन करते हैं, पर घरवालों को किसी तरह का सन्तोष न होकर प्रतिदिन अधिक लोभ बढ़ता जाता है। अपने उद्यम से उनको किसी साइति छुट्टी नहीं मिलती कि दो घड़ी अपने उत्पन्न व पालन करनेवाले परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करें। जब कोई उनसे हरिभजन करने की चर्चा करता है तब कहते हैं कि हमको अपने उद्यम व गृहकार्य से छुट्टी नहीं रहती, किस समय परमेश्वर का भजन व ध्यान करें। सो हे राजन्! इस जीव को बनिया समझो और काम, क्रोध लोभ, मोह, मद व मत्सरता यही छः चोर आठों पहर मनुष्य के साथ रहते हैं। परिवारवालों को छहों का सहायक समझो। जीव को इसलिए बनिया कहना चाहिए कि उसने धर्म व ज्ञान बढ़ाने के लिए भरतखण्ड में मनुष्य का तनु पाया था। पूर्व जन्म में साधु व महात्मा का सत्संग व हरिभजन करके संसारी माया-जाल में फँस गया था, इसी कारण जो कुछ उसके पूर्व जन्म का धर्म था उसे भी परिवारवालों ने चुरा लिया। बनिया ने अपने माल की रक्षा करने के लिए नौकर नहीं रक्खा, इसलिए चोरों ने उसको लूट लिया। कदाचित् वह भरत-खण्ड में जन्म लेकर साधु व महात्मा का सत्संग करके ज्ञान सीखता तो माया-जाल में फँसकर क्यों नष्ट होता। जैसे वह बनिया अपने टिकने के लिए स्थान ढूँढ़ते समय व्याघ्रादिक के डर से भागता था वैसे ही

संसारी सुख चाहनेवाले दुःख भोगते हैं। मनुष्य कभी अपने कुटुम्ब की बीमारी व मृत्यु देखकर, कभी अपने शरीर के रोग से और कभी धन मिलने के वास्ते आठों पहर चिन्ता में फँसा रहता है। जिस तरह उल्लू व व्याघ्रादिक बनिये को डरपाते थे उसी तरह जब परिवारवाले झगड़ा करके घुड़कते हैं तब मनुष्य बड़ा दुःख पाता है। स्त्री की संगति को अन्धकार समझना चाहिए, उस जगह ज्ञान और वेदपुराण का वचन सब भूल जाता है। जब मनुष्य बूढ़ा होकर कुछ कमाई नहीं कर सकता तब परिवारवाले उसे दुर्वचन कहकर भोजन व वस्त्र का दुःख देते हैं, उसका कुछ आदर नहीं करते। जिस तरह मनुष्य महादुःख में भी मरने का कुछ डर न रखकर दिन-रात कमाने की चिन्ता किया करता है उसी तरह बनिया कुएँ में साँप व चूहे को देखने पर भी मरने का भय नहीं रखता था। सो मनुष्य के वास्ते संसार व परिवार में रहना यही अँधियारा कुआँ समझो। जैसे कर्म पिछले जन्म में किये हैं उसे बरगद की जड़ समझना चाहिए जिसे पकड़कर जीता है। दो चूहे काले व सफेद जो जड़ काटते थे वही दिन व रात हैं, जिनके बीतने से आयु घट जाती है। बनिये ने जो साँप कुएँ में देखा था उसे काल समझो। जिस तरह एक बूँद शहद चाटकर बनिया प्रसन्न होता था उसी तरह अज्ञानी मनुष्य बुढ़ापे व सब तरह के दुःख होने पर भी अपने कुटुम्ब में बैठकर मग्न होते हैं, उसी को शहद की बूँद समझो। हे राजन्, जगत् को दुःख देनेवाला वन जानो। संसारी माया-जाल में फँसनेवाला मनुष्य उसी बनिये के समान दुःख पाकर नष्ट होगा। जिस तरह तू जगत् की माया में लपटा है उसी तरह वह बनिया स्त्री व पुत्र के मोह में फँसकर नष्ट हुआ था। जो कोई वेद व शास्त्र के अनुसार चले वह अपना मनोरथ पा सकता है, नहीं तो सब छोटे-बड़े इसी माया-रूपी वन में भूलकर नष्ट हो रहे हैं। सत्संग के बिना मोहरूपी वन से बाहर निकलना बहुत कठिन है।

——:०:——

चौदहवाँ अध्याय।

यह ज्ञान सुनकर रहूगण का प्रसन्न होना और तप करने के लिए वन में चले जाना।

जड़भरत ने जब इस तरह का ज्ञान रहूगण को बतलाया तब राजा प्रसन्न होकर जड़भरत के चरणों पर शिर रखकर विनयपूर्वक बोला कि आपने अति दया करके मुझे, जो माया में भूल रहा था, यह ज्ञान रूपी रास्ता दिखलाया है। यह वचन सुनकर जड़भरत बोले कि तुम इस ज्ञान के प्रकाश से संसारी जाल में नहीं फँसोगे। राजा उसी समय विरक्त हो गया। उसी जगह अपनी पालकी छोड़कर वन में जाकर हरिभजन करके मुक्त हुआ। जड़भरत अपना शरीर योगाभ्यास के साथ त्यागकर परमधाम को चले गये। जड़भरत के सुमत नाम बेटे ने जैनधर्म का मत संसार में फैलाया। उनके वंश में प्रतिहार आदिक उत्पन्न होकर शुभ कर्म करके परमपद को पहुँचे।

——:o:——

पन्द्रहवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का राजा परीक्षित से पृथ्वी आदि का विस्तार कहना।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर पूछा कि हे स्वामी! आप दयालु होकर पृथ्वी व सूर्यादिक लोकों का हाल विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए। शुकदेवजी बोले—हे राजा! पहिले सातों द्वीपों का हाल संक्षेप से कहा है, अब फिर विस्तारपूर्वक कहते हैं, सुनो। पृथ्वी में सात द्वीप हैं। सब द्वीपों की धरती पृथक्-पृथक् बँटी है। जम्बूद्वीप में लाख योजन भूमि है और सातों द्वीपों की सम्पूर्ण पृथ्वी पचास करोड़ योजन है। चौथाई धरती लोकालोक पर्वत के नीचे दबी है और तीन भाग में सातों द्वीप व समुद्र हैं। राजा प्रियव्रत इन सातों द्वीपों के मालिक थे। एक-एक द्वीप अपने सातों बेटों को बाँटकर आप वन में जाकर परमेश्वर के तप व ध्यान में लीन हुए। प्रियव्रत के अग्नीध्र नामक बेटे ने जम्बूद्वीप के नव खण्ड करके एक-एक खण्ड अपने पुत्रों को बाँट दिया। उनके बेटों के जो नाम थे वही नाम उन नव खण्डों के हुए।

पहिला उत्कलखण्ड, दूसरा हिरण्यखण्ड, तीसरा भद्राश्वखण्ड, चौथा केतुमालखण्ड, पाँचवाँ इलाव्रतखण्ड। उस खण्ड के मध्य में सुमेरुनामक सोने का एक पर्वत लक्ष योजन ऊँचा, सोलह हजार योजन लम्बा, आठ हजार योजन चौड़ा और बत्तीस हजार योजन के घेरे में है। छठा नाभिखण्ड, सातवाँ किम्पुरुषखण्ड, आठवाँ भरतखण्ड और नवाँ नरहरिखण्ड है। ब्रह्माण्ड कमलफूल के समान गोल है। एक-एक पर्वत नवों खंडों के सिवाने पर वर्तमान है। सुमेरुपर्वत के चारों ओर चार पहाड़ों पर दूध, शहद, पानी व रस के कुण्ड भरे हैं और चार बहुत अच्छे बाग फल व पुष्प लगे हुए कुबेर, महादेव, इन्द्र व वरुण देवताओं के वहाँ पर ऐसे बने हैं कि जहाँ जाने व स्नान करने से देवपत्नी जवान हो जाती हैं। सुमेरुपर्वत के शिखर पर ब्रह्मपुरी दश हजार योजन लम्बी व चौड़ी जड़ाऊ बनी है। वहाँ भाँति-भाँति के पक्षी मीठी बोली बोलते हैं। हे राजन्, वहाँ की शोभा हम तुमसे कहाँ तक वर्णन करें, देखने से ही मालूम होती है।

सोलहवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का राजा परीक्षित से लोकालोक पर्वत की कथा कहना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! इस तरह जम्बूद्वीप में नव खण्ड हैं और हर एक खण्ड के रहनेवाले सब अवतारों की पृथक्-पृथक् पूजा करते हैं। इन सातों द्वीपों के बाहर लोकालोक पर्वत है, उसके उधर अँधेरा रहता है, सूर्य व चन्द्रमा का प्रकाश नहीं रहता। वहाँ योगी लोग जा सकते हैं, संसारी लोग वहाँ जाने की सामर्थ्य नहीं रखते। बड़े बलवान् आठ हाथी जिनको दिग्पाल कहते हैं, पृथ्वी के आठों ओर धरती को अपने नीचे ऐसा दबाये हैं कि हिलने नहीं देते। सुमेरु पर्वत पर कुबेर पुरी, वरुणपुरी, इन्द्रपुरी और यमपुरी हैं। सूर्य का रथ दो-दो पहर के बाद इन चारों पुरियों में प्रातःकाल, दो पहर, सन्ध्या व आधी रात के समय एक-एक जगह पहुँचता है। ब्रह्मा की पुरी से गंगाजी निकलकर सुमेरुपर्वत के नीचे गंगोत्तरी में आई हैं।

सत्रहवाँ अध्याय।

शुकदेव स्वामी का गंगाजी की महिमा वर्णन करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! गंगाजी की उत्पत्ति विस्तारपूर्वक कहता हूँ, सुनो। जब नारायणजी ने वामन अवतार लेकर तीन पग पृथ्वी राजा बलि से दान लिया और विराट्रूप धारण करके एक पग से सातों लोक नीचे के और दूसरे पग से सातों लोक ऊपर के नाप लिए, तब ब्रह्मा परब्रह्म परमेश्वर का दाहिना चरण अपनी पुरी में पहुँचते ही त्रिविक्रम अवतार जानकर उठ खड़े हुए। ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु में से विरजा नदी का पानी जो ब्रह्मरूप परमेश्वर के आँसू गिरने से बैकुंठ में प्रकट हुई थी, लेकर उन चरणों को धोया और चरणामृत लेकर वह जल अपने शिर व आँखों में लगाया। चरण धोते समय जो पानी सुमेरु पर्वत पर गिरा था वह नीचे आकर मन्दराचल पहाड़ के सिवाने पर थँभ रहा। फिर वहाँ से चार धारा होकर बहा तो एक धारा सुमेरु के पश्चिम, दूसरी सुमेरु के दक्षिण, तीसरी सुमेरु के उत्तर दिशा में बहकर समुद्र में मिल गई। चौथी धारा जो पूर्व को बही थी वह भगीरथ के तपोबल से इलाव्रत खण्ड को बाईं ओर छोड़ती हुई नरनारायण पर्वत से उतरकर गंगोत्तरी से होकर भरतखण्ड में आई। उसी धारा का नाम संसार में गंगाजी प्रकट हुआ। गंगाजी का ऐसा माहात्म्य है कि जो कोई गंगास्नान, जलपान व दर्शन करने के वास्ते अपने घर से जाने की इच्छा करता है उसके करोड़ों जन्म के पाप छूट जाते हैं। वह मनुष्य इस इच्छा से जितने पग चलकर गंगाजी तक पहुँचता है, एक-एक पग धरने के बदले उसको सौ-सौ राजसूय व अश्वमेध यज्ञ के फल मिलते हैं। यह वचन सुनते ही परीक्षित ने सन्देह मानकर शुकदेवजी से पूछा कि महाराज, जब मनुष्य को गंगास्नान के लिए जाने से ही यज्ञों के फल मिलते हैं तो हमारे दादा युधिष्ठिर ने किस वास्ते इतना रुपया खर्च करके यज्ञ किया था और दूसरे राजा क्यों यज्ञ करते हैं। यह वचन सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! हम एक इतिहास तुमसे

कहते हैं, सुनो। एक समय महादेवजी पार्वती को साथ लेकर मकर महीने में गंगास्नान करने के लिए प्रयागराज को जाते थे। राह में पार्वतीजी ने बहुत लोगों को जाते हुए देखकर महादेवजी से गंगास्नान का माहात्म्य पूछा। शिवजी ने कहा—हे पार्वती ! जो कोई अपने घर से गंगा नहाने चले, उसको एक-एक पग चलने में सौ-सौ अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है और करोड़ों जन्म के पाप छूट जाने से वह देवता के समान हो जाता है। यह वचन सुनने व यात्रियों को देखने से पार्वतीजी ने यह सन्देह किया कि लाखों नीच जाति के मनुष्य गंगाजी में नहाकर चले जाते हैं, पर इन लोगों की गंगास्नान करने से अभी तक कुरूपता भी नहीं गई, देवता का तनु किस तरह पावेंगे। महादेवजी जैसा कहते हैं, इतने यात्रियों को वैसा फल किस तरह मिलेगा। ऐसी शंका करके पार्वतीजी फिर विनयपूर्वक बोलीं कि महाराज, आपने गंगाजी का माहात्म्य इस तरह वर्णन किया और इन यात्रा करनेवालों का रूप देखने से मुझे इस बात की प्रतीति नहीं होती। महादेवजी बोले कि इसका भेद हम तुमसे क्या कहें, चलो आँख से दिखला देवें। यह कहकर जब शिवजी गंगा के निकट पहुँचे तब वहाँ कोढ़ीरूप बनकर बैठ गये और पार्वती से बोले कि तुम दिव्यरूप अति सुन्दरी होकर मेरे शरीर की मक्खी उड़ाओ स्नान करनेवाला जो कोई तुमसे पूछे तो उससे यह कहना कि हमारा पति कोढ़ी हो गया है, सो एक पण्डित ने कर्मविपाक की पोथी देखकर बतलाया है कि जिस किसी ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हों वह इनको अपने हाथ से छू दे तो इनका कोढ़ छूट जावे। यहाँ लाखों मनुष्य नहाने आये हैं, इसलिए इनको यहाँ लाकर बैठी हूँ कि जिसने सौ यज्ञ किये हों वह इनको छू दे तो इनका यह तनु अच्छा हो जावे। जब पार्वतीजी देवकन्या के समान बनकर मक्खी उड़ाने और यही बात कहने लगीं तब बहुत से यात्री उनका रूप देखते ही मोहित होकर उनके चारों ओर खड़े हो गये। उनमें कोई पार्वती को अपने साथ चलने के लिए कहता, कोई उनसे हँसी-ठट्ठा करता और कितनों ने अनेक तरह का डर व लोभ उन्हें

दिखलाया। ज्ञानी लोगों ने कहा कि इस स्त्री को धन्य है कि जो इस दशा में भी अपने पति की सेवा नहीं छोड़ती। जो स्त्री अपने स्वामी को काना, कुबड़ा, कोढ़ी, लँगड़ा, अन्धा, दरिद्री, कुरूप कैसा ही हो, परमेश्वर के समान जानकर आनन्दपूर्वक उसकी सेवा करे और परपुरुष को कुभाव से न देखे उसे पतिव्रता कहना चाहिए। उसी समय एक कंगाल दुर्बल ब्राह्मण उनको देखते ही निकट आकर दण्डवत् करके पार्वतीजी से बोला कि हे माता, तुम किस इच्छा से यहाँ भीड़ में बैठी हो, कहीं एकान्त में अपने पति को ले जाकर उसकी सेवा करो, जिसमें मक्खी आदि बैठने से यह दुःख न पावे। यह वचन सुनकर पार्वती बोलीं—मेरे पति के कर्मविपाक में ऐसा निकला है कि जिसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हों वह इनको छू दे तो इनका शरीर अच्छा हो जाय, इसी इच्छा से मैं इन्हें यहाँ लाकर बैठी हूँ कि इस पर्व में लाखों मनुष्य आवेंगे, किसी ने तो सौ अश्वमेध यज्ञ किये होंगे, जिसके छूने से हमारे स्वामी का रोग छूट जायगा। यह बात सुनकर वह ब्राह्मण बोला—यह कौन बड़ी बात है। तुम तो सौ अश्वमेध करने को कहती हो, मैंने लाखों अश्वमेध यज्ञ किये हैं, जिनकी गिनती तुम नहीं कर सकतीं। यह वचन सुनते ही पार्वतीजी विनयपूर्वक बोलीं कि महाराज! आप दया करके इनको छू दीजिए। जैसे ही उस ब्राह्मण ने शिवजी के अंग में अपना हाथ लगाया वैसे ही महादेवजी दिव्यरूप अश्विनीकुमार के समान हो गये। यह हाल देखकर पार्वती और सब यात्रियों को इस बात का सन्देह हुआ कि इस ब्राह्मण की उम्र तीस वर्ष की होगी और यह कंगाल है, सौ अश्वमेध करने में सौ वर्ष और बहुत सा द्रव्य व सेना, दूसरे राजाओं को जीतने के लिए चाहिए, इसने किस तरह सौ यज्ञ किये होंगे, शिवजी अन्तर्यामी ने उनका सन्देह छुड़ाने के लिए यात्रियों के सामने उस ब्राह्मण से पूछा कि महाराज! तुमने इतनी अवस्था में लाखों यज्ञ किस तरह किये होंगे। वह ब्राह्मण बोला—सुनिए महाराज! यज्ञ की विधि और उसका फल शास्त्रानुसार होता है। उसी शास्त्र में गंगास्नान का माहात्म्य ऐसा लिखते हैं कि जो कोई गंगा

स्नान करने को अपने घर से चले उसको एक-एक पग चलने में सौ-सौ अश्वमेध का फल मिलता है, सो मैं अपने घर से नित्य गंगास्नान करने को कोस भर हजारों पग चलकर आता हूँ। उस हिसाब से लाखों कौन चीज हैं, कई करोड़ अश्वमेध यज्ञ हम कर चुके होंगे। इसमें आश्चर्य किस बात का है। यह बात सुनकर महादेवजी ने पार्वती व यात्रियों से कहा—ब्राह्मण सच कहता है। शिवजी ऐसा कहकर अपने स्थान को चले। राह में पार्वती से बोले कि देखो, हमारे कहने के अनुसार इस ब्राह्मण को गंगास्नान के फल मिलते हैं। सब यात्री वेद के वचन पर विश्वास नहीं रखते, इसलिए यह फल उनको नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिए वेद व शास्त्र को सुनकर उस पर विश्वास करना चाहिए। हे परीक्षित ! तुम्हारे दादा राजा युधिष्ठिर को वेद व शास्त्र पर विश्वास था, पर उनके पास बहुत द्रव्य होने से उनको यह इच्छा हुई कि इसी बहाने से श्यामसुन्दर को अपने यहाँ रखकर ऋषीश्वरों व मुनीश्वरों का सत्संग करूँ। मेरा धन शुभकर्म में लगे और मुझे यश मिले, इस कारण उन्होंने यज्ञ किये थे।

—:०:—

अठारहवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का यह वर्णन करना कि कौन-कौन खण्ड में
किस-किस अवतार की पूजा होती है।

शुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित, हमने नवों खण्डों की कथा तुमसे वर्णन की, अब परमेश्वर के अवतारों का हाल और जिस-जिस खण्ड में जो-जो अवतार नारायणजी ने लिये थे और वहाँ के सब लोग उस अवतार पर अधिक प्रीति रखकर उनकी पूजा करते हैं, सुनो। भद्राश्वखण्ड में वृन्दश्रवा नामक राजा था, वहाँ परमेश्वर ने हयग्रीव अवतार धारण किया, सो उस खण्ड में राजा व प्रजा उसी रूप की पूजा व उन्हीं का मन्त्र पढ़कर स्तुति करते हैं। नरहरिखण्ड में नृसिंह अवतार नारायणजी ने लिया था, वहाँ नरहरिवर्ष नाम का राजा अपनी प्रजा समेत उसी रूप की पूजा करता है और उनके पुजारी प्रह्लाद भक्त ने मंत्रसहित

स्तुति करके नृसिंहजी से यह वरदान माँगा कि महाराज ! आप अपने जीवों को जिस-जिस योनि में चाहें जन्म देकर उन पर ऐसी कृपा रक्खें कि जिससे उनको उसी तनु में तुम्हारे चरणों का ध्यान बना रहे। यह बात सुनकर नृसिंहजी बोले कि हे प्रह्लाद ! तुम अपने वास्ते जो चाहो सो माँग लो, पर संसारी जीवों के वास्ते, जो माया-मोह में फँसे हैं, ऐसा वरदान मत माँगो। तब प्रह्लाद फिर हाथ जोड़कर बोले— महाराज ! संसार में जो लोग कुकर्म करते हैं उनका अधर्म अपनी दया से छुड़ा दो, अपने चरणों की भक्ति उन्हें देकर वैकुंठ में बुला लो। यह वचन सुनकर नृसिंहजी ने कहा—हे प्रह्लाद ! सब जीवों को वैकुंठ की चाहना नहीं होती। जिसे सत्संग प्यारा होता है उसे ज्ञान मिलता है। कलियुग में मनुष्यों को सत्संग अच्छा नहीं लगता। वे संसारी माया में फँसे रहते हैं। जो परमेश्वर की भक्ति करता है, उसके पास सब गुण अपने आप इस तरह चले आते हैं जैसे नीची पृथ्वी पर पानी बहकर बटुर जाता है। यह बात सुनकर प्रह्लाद ने कहा—महाराज ! संसार में कोई ऐसा भी मूर्ख होगा, जिसे वैकुंठ जाने की इच्छा न होगी। आप अपना वैकुंठ किसी को दिया नहीं चाहते, लालच करते हैं। मुझे इस बात में लज्जा मालूम होती है कि संसारी लोग ऐसा कहेंगे कि प्रह्लाद के स्वामी लालची हैं। यह वचन सुनते ही नृसिंहजी हँसकर बोले—हे प्रह्लाद ! तुम जगत् में जाकर जिसे अति दुःखी पाओ उससे वैकुण्ठ चलने के लिए कहो, देखो वह क्या कहता है। जब उनकी आज्ञानुसार प्रह्लाद के नगर में आकर किसी दुःखी जीव को ढूँढ़ने लगा तब उसे एक शूकर अति रोगी चहले में फँसा देख पड़ा। उसे महादुःखी देखकर प्रह्लाद ने कहा— तू यहाँ रहकर क्यों इतना दुःख उठाता है, वैकुण्ठ चल, वहाँ तुझे बड़ा सुख मिलेगा। नृसिंहजी की आज्ञा से तुझे बुलाने आया हूँ। यह बात सुनकर शूकर ने पूछा कि वैकुण्ठ में क्या सुख है। जब प्रह्लाद ने वैकुण्ठ का सुख वर्णन किया तब वह शूकर बोला कि मैं अकेला वहाँ नहीं चल सकता, कुटुम्ब समेत कहो तो चलूँ। तुम नृसिंहजी से पूछ आओ। यह वचन सुनते ही प्रह्लाद ने जाकर नृसिंहजी से पूछा। वे बोले, बहुत

अच्छा सबको ले आवो। जब फिर प्रह्लाद ने आकर उस शूकर से परिवार समेत चलने के लिए कहा, तब उस शूकर की स्त्री ने प्रह्लाद से पूछा कि वैकुण्ठ में हमारे खाने के लिए विष्ठा है या नहीं। प्रह्लाद ने कहा कि वहाँ नरक नहीं है, और सब अच्छे-अच्छे पदार्थ भोजन करने के हैं। तब शूकर व शूकरी आपस में सम्मत करके बोले कि हमें यहाँ बड़ा सुख है, हम लोग वैकुण्ठ में न जायँगे। यह बात सुनकर प्रह्लाद ने कहा कि तुम बड़े मूर्ख हो, जो वैकुण्ठ को नहीं चलते। जब यह बात सुनकर वह शूकर प्रह्लाद की ओर घूरने लगा तब वे दूसरा जीव वैकुण्ठ में ले जाने के लिए ढूँढ़ते हुए एक वृद्ध मनुष्य के पास जाकर बोले कि अब तुम बूढ़े हुए, वैकुण्ठ में चलकर वहाँ का सुख भोगो। यह बात सुनकर वह बोला कि अभी मुझे संसार में जीकर अपने बेटों का मुण्डन व विवाह करके नाती-पोते देखने हैं, तुम्हारे कहने से अभी मर जावें। तुम यहाँ से चले जाओ, हमारे बेटों के सामने ऐसा वचन कहते तो वे तुम्हें दण्ड देते। जब प्रह्लाद ने उस बूढ़े की बात सुनकर हार मान ली तब नृसिंहजी के पास जाकर विनय किया कि महाराज! संसार में सब छोटे-बड़े अपने अज्ञान से माया-मोह के जाल में फँसे हैं, इसलिए कोई मनुष्य वैकुण्ठ जाने की इच्छा नहीं करता। यह वचन सुनकर नृसिंहजी बोले—हे प्रह्लाद! जगत् में जिस जीव ने जो तनु पाया वह उसी योनि में मग्न रहता है। उसकी इच्छा किसी तरह पूरी नहीं होती। आँख-कान आदि सब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, पर उसका मन संसार को छोड़ना नहीं चाहता। यह बात सुनकर प्रह्लाद ने नृसिंहजी को दण्डवत् करके विनय किया—महाराज! यह सब आपकी माया है, जिसको आप दया करके ज्ञान देते हैं वह वैकुण्ठ जाने की इच्छा करता है, सबको ज्ञान प्राप्त होना बहुत कठिन है। केतुमालखण्ड में कामदेव भगवान् ने अवतार लिया था, वहाँ लक्ष्मीजी प्रजासमेत मन्त्र पढ़कर उनकी स्तुति व पूजा करती हैं। रमणकखण्ड में परमेश्वर ने मत्स्य अवतार धारण किया था, वहाँ रमणक नाम का राजा अपनी प्रजासमेत मत्स्यरूप की पूजा करता है। हिरण्मयखण्ड

में नारायणजी ने कच्छप अवतार लिया था, वहाँ हिरण्मय नाम का राजा अपनी प्रजा समेत उसी रूप की पूजा व स्तुति मन्त्र पढ़कर करता है। कुरुखण्ड में भगवान् ने वाराह अवतार धारण किया था, वहाँ कुरु नाम का राजा अपनी प्रजासमेत उसी रूप की पूजा मन्त्र पढ़कर करता है और पृथ्वी उस रूप की स्तुति करके कहती है कि आप हिरण्याक्ष दैत्य को मारकर मुझे रसातललोक से ले आये हैं।

उन्नीसवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का राजा परीक्षित से शेष खण्डों का हाल कहना।

शुकदेवजी बोले—हे राजा! किम्पुरुषखण्ड में रामचन्द्रजी विराजते हैं और हनुमान्जी मन्त्र से उनकी पूजा व स्तुति करके कहते हैं कि महाराज! आपने केवल संसारी जीवों को शुभमार्ग दिखलाने और कृतार्थ करने के लिए नरतनु धारण किया था, रावण आदि को मारने के लिए अवतार नहीं लिया था। आप चाहते तो अपनी इच्छा से राक्षसों का वध कर देते। आपने वन में जानकीजी के वियोग में विलाप किया था, सो संसारी जीवों को यह दिखलाया है कि जब मेरे-ऐसे ईश्वर परब्रह्म को गृहस्थी करने में दुःख हुआ तो जगत् में जितने जीव हैं सबको स्त्री व पुत्रादिक से दुःख प्राप्त होगा। आपने नरतनु इस वास्ते धारण किया कि आपकी शरण में आनेवाला ऐसा सुन्दर रूप छोड़कर दूसरे को क्यों भजेगा। परमेश्वर ने भरतखण्ड में यह विचारकर नरनारायण का अवतार लिया कि इस खण्ड के मनुष्य कलियुग में तप व जप नहीं कर सकेंगे, इसलिए मैं तपस्वीरूप होकर बदरी-केदार में बैठा रहूँ, जो कोई मेरा दर्शन करेगा उसको तप का फल देकर पवित्र करके मुक्ति पदवी दूँगा। इसलिए अभी तक बदरिकाश्रम में बैठे हुए तप करते हैं। वहाँ नारदजी सांख्ययोग से मन्त्र पढ़कर पूजा व स्तुति करके कहते हैं कि हे दीनानाथ! सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, पालन और नाश करनेवाले आप ही हैं। सातों द्वीपों में भरतखंड मध्यदेश है और

बहुत पवित्र है, इस खण्ड में जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा फल दूसरे लोक में जाकर भोगता है। इसलिए कर्मभूमि भरतखण्ड का किया हुआ पाप व पुण्य खेत के समान बढ़ता है। भरतखण्ड के सिवा दूसरे जो आठ खण्ड हैं वहाँ सदा त्रेतायुग के समान रहता है, कलियुग अपना प्रवेश नहीं कर सकता। वहाँ के रहनेवाले देवतों की तरह स्त्रियों को साथ लेकर भोग व विलास किया करते हैं। उनको वहाँ सदा वसन्त ऋतु व इन्द्रलोक के समान सुख बना रहता है, किसी बात का दुःख नहीं होता। चारों वर्ण का विचार केवल भरतखण्ड में है। दूसरे खण्ड के लोग इतना सुख होने पर भी भरतखण्ड के मनुष्यों को अपने से अच्छा व भाग्यवान् मानते हैं। भरतखण्ड के जीव नारायणजी का थोड़ा-सा स्मरण व भजन करने से भवसागर पार उतर जाते हैं और दूसरे खण्डों व द्वीपों में यह बात नहीं प्राप्त होती। आपने बड़ी कृपा करके इस खण्ड में अवतार लिया, तो भी कलियुग के मनुष्य कपट, आलस्य और अभिमान में भरे रहेंगे। उनको संसारी माया में फँसे रहने से आपके दर्शन करने की छुट्टी नहीं मिलेगी। जिस पर आप अनुग्रह करेंगे वही आपके चरणों के दर्शन करेगा। हे परीक्षित! जब देवता लोग स्वर्ग से अपने-अपने विमानों में बैठकर मन्दराचल पर्वत पर विहार करने आते हैं तब भरतखण्ड के मनुष्यों को देखकर अपने को तुच्छ समझकर कहते हैं कि हम लोगों को यह सामर्थ्य नहीं है कि इससे उत्तम पदवी को पहुँच सकें। भरतखण्ड के जीव शुभ कर्म करके जितनी बड़ी पदवी को चाहें, पहुँच जावें। सो हे राजा, जिसने भरतखण्ड में मनुष्य तनु पाकर अपना जन्म संसारी माया-मोह में खोया और हरिभजन से विमुख रहा, उसका जन्म अकार्थ हुआ। उस मनुष्य की वह गति समझनी चाहिए, जैसे कोई मनुष्य द्रव्य प्राप्त करने के लिए बड़े परिश्रम से ऊँचे पर्वत पर चढ़कर धन के पास पहुँचे और द्रव्य प्राप्त हुए विना पहाड़ पर से नीचे गिर पड़े तो उसका सब परिश्रम वृथा हो जाता है। पछिताने के सिवा और कुछ हाथ नहीं लगता। इसलिए उचित है कि जो जीव भरतखण्ड में मनुष्य का तनु

पावे वह हरिभजन करके भवसागर पार उतर जावे। जो अपने अज्ञान से ऐसा नहीं करता वह पीछे बहुत दुःख पाता है। इस भरतखण्ड में चित्रकूट और गोवर्धन आदि बहुत से पर्वत तथा कौशिकी और सरस्वती आदि अनेक नदियाँ ऐसी हैं कि जिनका नाम लेने, दर्शन करने और नहाने से मनुष्य का सब पाप छूटकर उसकी काया शुद्ध हो जाती है। इस कारण देवता लोग कहते हैं कि भरतखण्ड के जीवों ने पिछले जन्म के पुण्य से यहाँ जन्म पाया, जिस खण्ड में जन्म लेने और परमेश्वर का भजन करने से मनुष्य तुरन्त मुक्त हो जाता है। इलावृत खण्ड की कथा नवें स्कन्ध में आवेगी। उस खण्ड में शिवजी पार्वती को साथ लिये सोलह हजार सहेलियों समेत सदा विहार करते और शेष भगवान् की पूजा व स्तुति मन्त्र पढ़कर करते हैं। नाभिखण्ड भरतखण्ड में मिला है।

—:○:—

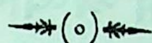
बीसवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का विस्तारपूर्वक सातों द्वीपों की कथा राजा परीक्षित से कहना।

शुकदेवजी बोले—हे राजा! नवों खण्डों की कथा हमने तुमसे वर्णन की, अब सातों द्वीपों का हाल सुनो। जम्बूद्वीप में नव खण्ड हैं। इस द्वीप में जामुन का एक बहुत बड़ा वृक्ष लाख योजन ऊँचा है, इस कारण जम्बूद्वीप नाम हुआ। उस वृक्ष की छाया लाख योजन के घेरे में पड़ती है। उसके फल काले-काले हाथी के समान बड़े होते हैं। उस फल का रस पृथ्वी पर गिरने से सूर्य का तेज पाकर सोना हो जाता है। इस द्वीप के चारों ओर खारे पानी का समुद्र है। नव खण्ड के जो राजा थे, उन्होंने एक-एक खण्ड के छ-छ भाग करके अपने-अपने बेटों को बाँट दिया। उन नव खण्डों के सिवाने पर एक-एक पहाड़ बीच में है। सुमेरु पर्वत के नीचे रस, शहद और घी की तीन नदियाँ बहती हैं। देवता और गन्धर्व आदिकों की स्त्रियाँ उन नदियों में जाकर स्नान करके वह रस पीती हैं, तो उनको अबलता और बुढ़ापा नहीं होती। जम्बूद्वीप में राजा सगर के साठ हजार बेटों ने यज्ञ का श्यामकर्ण घोड़ा ढूँढ़ने के

लिए पृथ्वी को खोदा था; उस खोदने से सिंहलद्वीप आदि सात टापू और प्रकट हुए हैं। दूसरे पाकरद्वीप में पाकर का एक वृक्ष दो लाख योजन ऊँचा है। उसके फल बहुत बड़े होते हैं। उसकी छाया दो लाख योजन के घेरे में पड़ती है। उसके चारों ओर रस का समुद्र भरा है। जो कोई उस वृक्ष के नीचे जाकर भूषण, वस्त्र और भोजन आदि जिस वस्तु की इच्छा करे उसी समय उसे वह पदार्थ उस वृक्ष से मिलता है। उस द्वीप में अमृत आदि सात खण्ड हैं। तीसरा शाल्मलिद्वीप है। वहाँ सेमल का वृक्ष चार लाख योजन ऊँचा है। उतने ही घेरे में उसकी छाया पड़ती है, इस कारण उसका नाम शाल्मलिद्वीप हुआ। उस द्वीप में चारों ओर किनारे किनारे आठ पर्वत हैं। उन पहाड़ों पर यक्ष और गन्धर्वादिक जाकर गाते-बजाते हैं। वहाँ अच्छे-अच्छे तालाब, बाग और मकान विहार करने के लिए बने हैं। सूर्य आदि सात खण्ड उस द्वीप में हैं। उसके चारों ओर मदिरा का समुद्र भरा है। चौथा कुशद्वीप है। यहाँ कुश का वृक्ष आठ लाख योजन ऊँचा है। उसकी छाया उतने ही घेरे में पड़ती है, इसलिए उसका नाम कुशद्वीप हुआ। उसके चारों ओर घी का समुद्र भरा है। उस वृक्ष के नीचे कुण्ड और तालाब ऐसे बने हैं कि जिनमें स्नान करने और जल पीने से भूख-प्यास सब छूट जाती है। यदि बूढ़ा व रोगी मनुष्य उसमें स्नान करे तो वह नीरोग होकर हृष्ट-पुष्ट हो जावे। सकत आदि नाम के सात खण्ड उस द्वीप में हैं। पाँचवाँ क्रौंचद्वीप है, जिसमें क्रौंच नाम का पर्वत सोलह लाख योजन ऊँचा है, इसलिए उसका नाम क्रौंच द्वीप हुआ। उस पहाड़ पर गरुड़जी बैठकर वहाँ से सब द्वीपों को देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं। उसके चारों ओर दूध का समुद्र भरा है और व्यास आदि नाम के सात खण्ड उस द्वीप में हैं। छठा शाकद्वीप है। वहाँ शाक का वृक्ष बत्तीस लाख योजन ऊँचा है। उतने ही घेरे में उसकी छाया पड़ती है। उस द्वीप के चारों ओर मट्ठे का समुद्र भरा है। देव, द्विज आदि नाम के सात खण्ड उस द्वीप में हैं। सिद्ध और तपस्वी लोग उस वृक्ष के नीचे बैठकर हरिभजन करते हैं। उस वृक्ष का गिरा हुआ पत्ता खाने से उनका पेट भरा रहता है, भूख-प्यास

नहीं लगती। सातवाँ पुष्करद्वीप है। वहाँ कमल का एक वृक्ष चौंसठ लाख योजन ऊँचा और उतने ही घेरे में उसकी छाया है। वहाँ केसर की सुगन्ध आती है। उस द्वीप के चारों ओर मीठे पानी का समुद्र भरा है। उस वृक्ष के नीचे मानसरोवर तालाब है। वहाँ हंस पक्षी मोती चुगते हैं। क्रमरात आदिक सात खण्ड उस द्वीप में हैं। हे परीक्षित! राजा प्रियव्रत ने इन सातों द्वीपों के राज्य को झूठा समझकर छोड़ दिया और हरिभजन करके मुक्ति पाई।



इक्कीसवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का राजा परीक्षित से आकाश और सूर्य आदि का विस्तार कहना।

शुकदेवजी बोले—हे राजा! जितना विस्तार सातों द्वीपों का हमने तुमसे कहा उतना ही लम्बा-चौड़ा आकाश भी है। जिस तरह चने की दो दालें होती हैं उसी तरह आकाश व पृथ्वी को समझना चाहिए। सूर्य से तीनों लोकों में प्रकाश होता है। सूर्य छः महीने उत्तरायण और छः महीने दक्षिणायन रहते हैं। सुमेरु पर्वत से होकर तीन मार्ग सूर्य का रथ जाने के वास्ते बने हैं। उत्तरायण में ऊँचे रास्ते पर होकर उनका रथ जाने से जगत् में प्रकाश अधिक होता है। दक्षिणायन में नीचे मार्ग से होकर जाने से उनका तेज कम हो जाता है। मकर से लेकर मिथुन तक सूर्य उत्तरायण और कर्क से लेकर धन की संक्रांति पर्यंत दक्षिणायन रहते हैं। उत्तरायण सूर्य में दिन बढ़ता और रात घटती है तथा दक्षिणायन में दिन छोटा होता और रात्रि बढ़ती है। सूर्य एक राशि पर महीना भर रहते हैं और एक दिन-रात में नौ करोड़ लाख योजन सूर्य का रथ सुमेरु पर्वत के चारों दिशाओं में फिरता है। सुमेरु के पूर्व इन्द्रपुरी, दक्षिण यमपुरी, पश्चिम वरुणपुरी और उत्तर कुबेरपुरी है। सूर्य अपने निकलने के स्थान से उसी के सम्मुख अस्त होते हैं। उनके रथ का एक पहिया चलता है और दूसरे पहिया की धुरी सुमेरु पर्वत पर ध्रुवलोक से दबी है। सूर्य का रथ छब्बीस

लाख योजन के विस्तार में है। सात घोड़े एक ओर व एक घोड़ा दूसरी ओर जोता रहता है। यक्ष लोग उस रथ को पीछे से ढकेलते हैं और रस्सी की जगह साँपों से उस रथ की धुरी आदि बाँधी रहती है। अरुण सारथी रथ हाँकता है। बालखिल्य आदि साठ हजार ऋषीश्वर, जिनके शरीर अँगूठे के प्रमाण हैं, उस रथ के आगे सूर्य की ओर मुँह किये स्तुति करते हुए पिछले पाँव दौड़े चले जाते हैं।

बाईसवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का राजा परीक्षित से चन्द्रमा और मंगल आदि ग्रहों का हाल कहना।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर पूछा—हे मुनिनाथ! आपने कहा कि सूर्य का रथ सुमेरु पर्वत और ध्रुवलोक के चारों ओर फिरता है, पर आपने चन्द्रमा व दूसरे ग्रहों का हाल नहीं कहा, सो उसको भी दया करके बतलाइए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! चन्द्रमा का रथ ग्यारह लाख योजन लम्बा-चौड़ा और सूर्य के रथ से लाख योजन ऊँचे रहता है। सूर्य का रथ एक महीने में जितना फिरता है उतना चन्द्रमा अपने रथ पर अढ़ाई दिन में चलते हैं। चन्द्रमा के रथ से लाख योजन ऊँचे मंगल का रथ, उससे लाख योजन ऊँचे बुध का रथ, उससे लाख योजन ऊपर बृहस्पति का रथ, उससे लाख योजन ऊँचे शुक्र का रथ, उससे लाख योजन ऊपर शनैश्चर का रथ, उससे लाख योजन ऊँचे राहु का रथ सत्रह लाख योजन के विस्तार में रहता है। सब रथों की धुरी ध्रुवलोक में लगी रहती हैं। राहु का रथ चन्द्रमा और सूर्य के बराबर आने से ग्रहण लगता है। सूर्य का रथ सुमेरु पर्वत पर कहीं-कहीं रुक जाने से तीसरे वर्ष एक महीना मलमास अधिक होता है, जिससे संक्रांति बराबर रहती है। पाँच प्रकार के वर्ष होते हैं। एक संक्रांति की गिन्ती से सूर्य का वर्ष, दूसरा शुक्लपक्ष की द्वितीया से चन्द्रमा का वर्ष, तीसरा चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से संवत् का वर्ष, चौथा नक्षत्रों की गिन्ती से, पाँचवाँ बृहस्पति की गति से, जो दूसरी राशि पर बदल जाते हैं, समझना चाहिए। सूर्य क्षत्रियों के लिए, बृहस्पति व चन्द्रमा ब्राह्मणों

के लिए, मंगल वैश्यों के लिए, बुध शूद्रों के लिए और राहु म्लेच्छों के लिए शुभकारक होते हैं। शुक्र जैसे स्थान में पड़ते हैं वैसा फल चारों वर्णों को देते हैं। किसी वर्ण के साथ मित्रता व शत्रुता नहीं रखते। शनैश्चर व राहु-केतु चारों वर्णों को दुःख देते हैं।

तेईसवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का ध्रुवलोक की स्तुति परीक्षित से कहना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! सुमेरु पर्वत से तेरह लाख योजन ऊँचा ध्रुवलोक है। वहाँ सदा ध्रुवजी सप्तऋषियों समेत सुख व आनन्द से रहते हैं। वशिष्ठ, भृगु, कश्यप, अंगिरा, अगस्त्य, अत्रि और पुलह, यह सात ऋषीश्वर तारारूप से दिन-रात ध्रुवजी की परिक्रमा लेकर इस तरह नहीं हिलते जिस तरह तेल निकालते समय बैल चारों ओर घूमता है और कोल्हू नहीं हिलता। ध्रुवलोक के नीचे कालचक्र फिरता है। अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र ध्रुवलोक के आसपास बिना आश्रय हवा के सहारे पर इस तरह चलते हैं जिस तरह बादल आकाश में पवन के सहारे चलता है। चौदह नक्षत्र दाहिने और चौदह नक्षत्र उसके बायें ओर रहते हैं। उसके घूमने के वक्त वह सब उसी के आश्रय से घूमते हैं। उसकी पूँछ में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म, पूँछ की जड़ में धाता विधाता, कमर में सप्तऋषीश्वर, ऊपर के ओठ में अगस्त्यजी, नीचे के ओठ में यमराज, राहु और मंगल, मूत्रस्थान में शनैश्चर, काँधे पर बृहस्पति, आँखों में सूर्य, हृदय में परमेश्वर, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, दोनों छाती में अश्विनीकुमार, श्वास में बुध, गले में राहु-केतु और सब तारागण बदन के रोम-रोम में रहते हैं। वह ध्रुवलोक नारायणजी का स्वरूप है, इसलिए सब देवताओं और ब्रह्माण्ड को उसी रूप में समझना चाहिए। जो कोई प्रातः व संध्याकाल में इस कथा को पढ़कर इस रूप का ध्यान करे उसके सब पाप छूट जाते हैं और अशुभ ग्रह का फल नहीं होता।

—:o:—

चौबीसवाँ अध्याय।

चौदहों लोकों का वर्णन करना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! ऐसा भी किसी पुराण में लिखा है कि सूर्य से दश हजार योजन नीचे राहु का रथ रहता है। जब उसके सम्मुख सूर्य और चन्द्रमा का रथ आ जाता है तब ग्रहण लगते हैं, जिसकी कथा विस्तारपूर्वक अष्टम स्कन्ध में आवेगी। पर सुदर्शनचक्र की रक्षा से राहु कुछ उनका कर नहीं सकता। उसके बारह योजन नीचे सिद्ध, चारण व विद्याधर आदि देवतों के रहने का स्थान है। उसके बारह लाख योजन नीचे यक्ष, राक्षस व पिशाच लोग रहते हैं। उनके सौ योजन नीचे पृथ्वी मर्त्यलोक की है। हंस, बाज व गिद्ध आदि बड़े उड़नेवाले पक्षी बारह योजन से अधिक जाने की सामर्थ्य नहीं रखते। ऊपर के सातों लोक सात खण्ड के घर के समान हैं और नीचे के सातों लोक भी उसी के तुल्य समझना चाहिए। नीचे के सातों लोकों के नाम अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, और पाताल हैं। नीचे के सातों लोक दश-दश हजार योजन के विस्तार में हैं। ऊपर के सातों लोकों के नाम भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक हैं। जितना सुख भोजन, वस्त्र व भोगादिक का वहाँ रहता है उससे अधिक नीचे के लोकों में समझना चाहिए। अतललोक में मय नामक दैत्य रहता है। वह इन्द्र-जाल की माया व विद्या बहुत जानता है। दैत्य लोग उस विद्या को उससे पढ़कर किसी को कुछ नहीं समझते। उस लोक के रहनेवाले सब दैत्य व दानव अपनी-अपनी स्त्रियों समेत अमृत पीकर आनन्दपूर्वक भोग व विलास करते हैं। अमृत पीने में उनको मरने व बूढ़े होने का डर नहीं रहता और अच्छी-अच्छी औषध खाने से उनको कुछ रोग नहीं होता। उनकी आयु की कुछ अवधि नहीं है। जब अधिक दैत्य उत्पन्न होने से वहाँ जगह नहीं रहती तब हरिइच्छा से सुदर्शन चक्र वहाँ जाकर कुछ दैत्यों को मार डालता है। उसके नीचे वितललोक में मय दानव का बेटा बलवान् असुर, जिसने इन्द्रजाल की छानबे माया बनाई हैं, रहता है।

भानमती आदिक उसी मन्त्र को सीखने से एक साइति में फलसमेत वृक्ष लगाकर दिखला देती हैं। यह सब इन्द्रजाल की विद्या समझना चाहिए। बलवान् असुरों के जमुहाई लेने के वक्त उनके मुख से अति-सुन्दरी पुंश्चली स्त्रियाँ निकलकर तीनों लोकों में फिरती हैं और इच्छा-पूर्वक एक पुरुष को उठा ले जाकर उसे औषध के कुण्ड में डाल देती हैं। जब वह कुण्ड में स्नान करने से रूपवान् हो जाता है और उसे दश हजार हाथी का बल व कामदेव में बड़ी सामर्थ्य हो जाती है तब वह पिछली अवस्था को भूलकर अपने को बड़ा बलवान् ईश्वर के समान समझकर उन तीनों पुंश्चलियों से भोग-विलास करता है। उसी वितल-लोक में हाटकेश्वर महादेव रहते हैं, जिनका वीर्य अग्नि ने मुँह से खाकर गुदा के रास्ते बाहर निकाल दिया था। उसी से बहुत अच्छा सोना उत्पन्न हुआ, जिस सुवर्ण के भूषण देवतों की स्त्रियाँ पहनती हैं। मर्त्यलोक का सोना उसकी बराबरी नहीं कर सकता। उसके नीचे तीसरे सुतललोक में राजा बलि राज्य करता है, जिस बलि को वामन भगवान् ने इन्द्रादिक देवतों के कल्याण के वास्ते वहाँ भेज दिया था। सो वह अपने गुरु व परिवार समेत वहाँ रहकर आठों पहर परमेश्वर का दर्शन पाने से अपना जन्म सुफल जानता है। राजा बलि ने शुक्राचार्य गुरु के बर्जने पर भी तीन पग पृथ्वी वामन भगवान् को दान दिया, इसी कारण नारायणजी त्रिलोकीनाथ आठों पहर उसके द्वार पर गदा लिये बने रहते हैं। सुतललोक में वैकुण्ठ के समान सुख रहता है। उसी तीन पग पृथ्वीदान के प्रताप से राजा बलि अगिले मन्वन्तर में इन्द्रपुरी का राज्य पावेगा। दान देना ऐसा अच्छा होता है। उसके नीचे चौथे तलातललोक में त्रिपुर दानव महादेवजी का परम भक्त वहाँ राज्य करता है। शिवजी की कृपा से उसको मरने का कुछ डर नहीं रहता। उसके नीचे पाँचवें महातललोक में कद्रू, तक्षक व कालीय आदिक बड़े-बड़े सर्प अपने कुटुम्ब समेत, जिनके अनेक शिर व फन हैं, वहाँ का राज्य करते हैं। वे लोग गरुड़जी से डरा करते हैं। उसके नीचे छठे रसातललोक में विराट्कुल दानव अपने परिवार समेत आनन्दपूर्वक वहाँ राज्य करता

है। उसके नीचे सातवें पाताललोक में वासुकि आदि बहुत बड़े-बड़े नाग और हजार मस्तकवाले अति तेजवान् शेषजी वहाँ रहते हैं, जिनके मस्तक पर पृथ्वी एक सरसों के समान रक्खी है। हजारों महासुन्दरी नाग-कन्याएँ दिन-रात उनकी सेवा करती हैं। शेषजी आठों पहर परमेश्वर का गुण हजार मुख और दो हजार जिह्वा से गाते हैं, जिस पर भी उनके भेद व आदि अन्त को नहीं पहुँचते। शेषजी के अंग पर एक शय्या अति सुन्दर सांगोपांग रक्खी है उस पर चतुर्भुजीरूप भगवान् जगत् को सुख देनेवाले तीस हजार योजन के शरीर से लक्ष्मीसमेत शयन करते हैं। नीचे के सातों लोकों में सूर्य व चन्द्रमा का प्रकाश नहीं जाता। वहाँ ऐसे मणि व रत्नादिक हैं, जिनके तेज से दिन-रात उजियाला बना रहता है। वहाँ सुदर्शन चक्र की तड़प से स्त्रियों का गर्भपात हो जाता है। वहाँ के लोग देवतों के समान सुख भोगने से बूढ़े व दुर्बल नहीं होते।

—:०:—

पच्चीसवाँ अध्याय।

शेषनाग की महिमा का वर्णन।

शुकदेव मुनि ने कहा—शेषनागजी भी ग्यारहों रुद्रों में संकर्षण नामक एक रुद्र हैं। महाप्रलय में उनके मुँह से अग्नि निकलकर तीनों लोकों को जला देती है। चौदहों भुवन उनके एक मस्तक पर रक्खे हैं। इतना बोझ उनको कुछ नहीं मालूम देता। देवताओं और नागों की हजारों कन्याएँ नित्य आकर उनकी सेवा में बनी रहती हैं, तिस पर भी शेषजी को कामदेव की चेष्टा नहीं होती। वह केवल संसार के कल्याण के वास्ते काम, क्रोध, मोह, लोभ, मन व इन्द्रिय आदि को अपने अधीन रखकर उनके वश नहीं होते। बड़े-बड़े योगी व मुनि उनके चरणों का ध्यान व स्मरण आठों पहर किया करते हैं। शेषजी दिन-रात वैकुण्ठनाथ की कथा व कीर्तन कहने के सिवा दूसरा काम नहीं करते। जो कोई मुक्ति की चाहना रखता हो वह शेष भगवान् का ध्यान व स्मरण करके उनकी शरण में जावे तो संसार में वांछित फल पाकर भवसागर

पार उतर जावे। शेषजी से अधिक किसी दूसरे देवता की पूजा परमेश्वर के मिलने के वास्ते उत्तम नहीं होती। कहाँ तक उनकी महिमा तुमसे कहें, उसका कुछ अन्त नहीं है। हे राजा, जहाँ तक इस जीव के रहने और जाने की गति है, सो वर्णन किया। इसके सिवा और कहीं जीव नहीं जा सकता और न जन्म ले सकता है।

—:o:—

छब्बीसवाँ अध्याय।

नरकों के नाम और उनका हाल वर्णन करना।

राजा परीक्षित इतनी कथा सुनकर बोले—हे शुकदेव स्वामी! आपने कई जगह कहा है कि पाप करनेवाले नरक में जाकर बड़ा दुःख पाते हैं और शुभ कर्म करनेवाला स्वर्गादिक का सुख भोगता है, किन्तु चौदहों लोकों की कथा कहने पर भी आपने किसी जगह नरक का वर्णन नहीं किया, इससे मुझे नरक का नाम केवल भय दिखाने के लिए मालूम होता है। मुझसे इतनी अवस्था में यही एक अपराध हुआ कि जो ब्राह्मण के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया। इस पाप के बदले मुझे नरक जाने का डर लगा है। सो नरक का कोई भिन्न लोक पृथ्वी व पानी पर होकर उसके नाम में कुछ भेद तो नहीं है, उसे वर्णन कीजिए। यह वचन सुनते ही शुकदेवजी हँसकर बोले कि हे राजा! तू नरक में जाने योग्य नहीं है, इसलिए वहाँ का हाल तुझसे नहीं बतलाया। अब कहते हैं, सुनो। नरक सुमेरु पर्वत से निन्नानबे योजन दक्षिण धरती से नीचे पानी के ऊपर है। धृतपृष्ठ आदि चारों वर्ण के दिव्य पितर उस नरक का दुःख देखकर अपने परिवारवालों को मना करने के लिए उसके द्वार पर बने रहते हैं, जिसमें कोई हमारे परिवार का ऐसा कर्म न करे कि उसे नरक में आना पड़े। सूर्य के पुत्र यमराज यमपुरी के राजा हैं। तामिस्र और रौरव आदि अट्ठाईस नरक हैं। उनके दक्षिण संयमनी नाम की एक पुरी भी नरक के समान है। सो धर्मराज जिन्हें यमराज भी कहते हैं, मरने के उपरान्त पापी को नरक

में और धर्मात्मा को स्वर्ग में भेज देते हैं। जीव अपने कर्मानुसार वहाँ दुःख व सुख भोगकर फिर संसार में जन्म पाता है। अति कष्ट पाने पर भी नरक में प्राण नहीं निकलते। जो पाप करने से जिस नरक में वे लोग जाते हैं उसका हाल सुनो। जो मनुष्य दूसरे का धन व स्त्री छलबल से ले लेता है उसे यमदूत बाँधकर मुद्गरों से मारते हुए तामिस्र नामक महाअन्धकार नरक में ले जाकर डाल देते हैं। वहाँ उसे कुछ भोजन व पानी नहीं मिलता। जो कोई किसी स्त्री के पति या रक्षक को किसी बहाने से बाहर भेजकर उसके साथ भोग करता है उसकी आँखें फूट जाती हैं और मरने के उपरान्त उसको यमदूत मुद्गरों से मारते हुए ले जाकर उसके अंग-अंग काटकर अन्धतामिस्र नरक में डाल देते हैं। जो मनुष्य अधर्म की कमाई से अपने परिवार का पालन करके अभिमान से कहता है कि मैं इनको भोजन देता हूँ, उसको यमदूत रौरव नरक में डालकर साँपों से कटवाते हैं। जो कोई किसी मनुष्य व पशु-पक्षी को अपने भोजन के वास्ते या शत्रुता से मारता है, यमदूत उसको महारौरव नरक में डाल देते हैं, तब वह बड़े-बड़े सर्पों के काटने से महादुःख पाता है। जो मनुष्य केवल अपने तन से प्रीति रखकर उसको सुख देने के लिए अपना धर्म-कर्म छोड़कर ब्राह्मण, वेद व शास्त्र को नहीं मानता, उसे यमदूत कालसूत्र नरक में, जहाँ सड़ा हुआ मांस भरा है, डालकर उसका मांस बड़े-बड़े गिद्धों को खिलाते हैं। जो कोई हरिण व पक्षी आदि को बाँध रखता या पिंजड़े में बन्द रखता है, उसे यमदूत पीब भरे हुए कुम्भीपाक नरक में डालकर गरम-गरम तेल उसके बदन पर छिड़कते हैं। जो मनुष्य अपने माता-पिता को दुर्वचन कहकर भोजन व वस्त्र का दुःख देता है उसको यमदूत ले जाकर एक पट पर, जहाँ दस हजार योजन लम्बी पृथ्वी ताँबे के समान पीटी हुई अग्नि ऐसी जलती है, नंगे पैर दौड़ाते हैं। उसके पैर जलते हैं, वह क्षुधा और तृषा से अतिदुःख पाता है, कुछ अन्न व जल नहीं पाता, अचेत होकर गिर पड़ता है। जितने रोम पशु के अंग पर रहते हैं उतने हजार वर्ष उस जलती हुई धरती पर तड़फता है। जो लोग शास्त्र का

मार्ग छोड़कर अपने मन से या किसी को देखकर कुराह चलते हैं, उनको यमदूत असिपत्र नरक में जहाँ वृक्षों में तलवार ऐसे पत्ते हैं, ले जाकर उन दरख्तों पर चढ़ाकर गिरा देते हैं। शरीर कट जाने से उन्हें बड़ा दुःख प्राप्त होता है। जो राजा किसी को बिना अपराध दण्ड देता है या ब्राह्मण को फाँसी देता है, उसे यमदूत शूकरमुख नरक में ले जाकर तेल के समान पेरते हैं। वह जीव कोल्हू में पेरने और शूकर-ऐसे जानवरों के काटने से बड़ा दुःख पाता है। जो कोई अपनी कमाई में देवता व पितर का भाग न देकर केवल अपना व परिवार का पेट पालता है उसको यमदूत अन्धकूप नरक में डाल देते हैं। वहाँ वह साँप, बिच्छू और जोंक आदि के काटने से बहुत दुःखी होता है। जो कोई उत्तम पदार्थ अकेले खा लेता है, अपने साथी व देखनेवालों को नहीं देता उसे यमदूत कृमिभोजन नरक में हजार योजन के कुण्ड में, जो कीड़ों से भरा है, डालकर वही कीड़े खिलाते हैं। जो कोई किसी ब्राह्मण का धन व खेत चुराकर या बरजोरी से ले लेता है, उसको यमदूत संदशन नरक में, जहाँ बिच्छू भरे हैं, डालकर लोहे का गज आग से लाल करके उसका अंग दाग देते हैं। जो कोई परस्त्री से भोग करता है या जो स्त्री अपना पति छोड़कर दूसरे पुरुष के पास जाती है, यमदूत उसके तनु में जलती हुई लोहे की मूर्ति लपटाकर नाना प्रकार के दुःख देते हैं जो कोई नीच-ऊँच वर्ण का विचार न रखकर परस्त्रीगमन करता है, उसे यमदूत वज्रकंटक व शाल्मलि नरक में डालकर बड़े-बड़े लोहे के काँटे उसके शरीर में चुभाते हैं। जो मनुष्य राजा या बलवान् होकर किसी का धर्म जबरदस्ती बिगाड़ देता है, उसे यमदूत वैतरणी नदी में, जहाँ लोहू, पीब और मलमूत्रादिक भरा है, डालकर भोजन की जगह वही खिलाते हैं। तब पापी जीव अपने कर्मों को समझकर वहाँ बहुत पछिताता है। जो मनुष्य दासी के साथ भोग करता है उसे यमदूत लालाभक्ष नरक में डालकर मुँह की लार व पीब पिलाते हैं। जो कोई राजा या बड़ा आदमी अहेर आदि में पक्षी को मारता है, उसे यमदूत दश हजार योजन ऊँचे ले जाकर वहाँ से पत्थर की चट्टान पर

गिरा देते हैं। जो मनुष्य देवी या देवतों के नाम से अपने भोजन के वास्ते जीवहिंसा करते हैं, उन्हें यमदूत विश्वासन नरक में डालकर मुद्गरों से इस तरह कूटते हैं जिस तरह ओखली में धान कूटे जाते हैं। आग लगानेवाले मनुष्य को यमदूत सारमेयादन नरक में डालकर हजारों कुत्तों से कटाते हैं। जो कोई किसी से द्रव्य लेकर झूठा न्याय करता है और जो मिथ्या साखी भरता है, उसे यमदूत दश हजार योजन ऊँचे ले जाकर शिर नीचे व पैर ऊपर करके रक्त भरे हुए विश्वासन नरक में गिराते हैं। उसको सूखी पृथ्वी पर जल दिखलाई देता है और पानी भरा हुआ स्थान सूखा देख पड़ता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेद का अधिकारी होकर देवतों के बहाने या अपने सुख के वास्ते मद्य पीता है, उसे यमदूत लोनामिट्टी से भरे हुए क्षारकर्दम नरक में डालकर गलाया हुआ सीसा पिलाते हैं। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जिन जीवों का मांस खाते हैं, वे जीव गिद्धरूप होकर उसका मांस खाते हैं। उन्हें रक्त के सिवा पानी पीने को नहीं मिलता। जो कोई साधु, सन्त, कंगाल या अपने सेवक को बिना अपराध दुर्वचन कहकर सताता है और अन्धे मनुष्य को पूछने से भी राह नहीं बतलाता, उसे यमदूत रक्षोगण भोजन नरक में, जहाँ राक्षस काटते हैं, डालकर पाँच-पाँच सात-सात मुहँवाले साँपों से कटाते हैं। जो मनुष्य भिक्षा माँगते हुए मंगन व वैरागी को आँखें दिखाकर झिड़क देता है, उसे यमदूत शूलप्रोत नरक में डालकर बड़े-बड़े गिद्धों व साँपों से कटाते हैं और कुछ भोजन व पानी नहीं देते। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्, जो मनुष्य वेद व शास्त्र से विमुख होकर थोड़ा या बहुत कुकर्म करता है और परमेश्वर की कथा व स्मरण में प्रीति नहीं रखता, वह अवश्य नरक में जाकर अपने कर्मानुसार दुःख पाता है। मनुष्य का तनु वेद व शास्त्र से विपरीत चलने के वास्ते नहीं होता। अपना शरीर दूसरी योनि में भी पाल सकता है। इसलिए मनुष्य को सन्त व महात्मा की सेवा व संगति करके ज्ञान सीखना चाहिए और ज्ञानी होने पर सब जीवों में परमेश्वर का चमत्कार एक-सा समझकर दूसरे

जीवों की रक्षा व पर उपकार करना उचित है, जिसमें परलोक बने। अज्ञानी मनुष्य जब तक कथा व पुराण न सुने और अनजान में उससे नरक भोगने योग्य कोई पाप भी हो जावे और ज्ञान प्राप्त होने पर कुकर्म छोड़कर परमेश्वर का भजन व स्मरण करे तो नारायण दीन-दयालु उसका सब अपराध क्षमा करके उसे देवलोक व वैकुण्ठ का सुख देते हैं। पहिले पाप करने के कारण वह नरक में नहीं जाता। हे राजा! तुम मत डरो, भागवतकथा सुनने के प्रताप से ब्राह्मण के गले में साँप डालने का तुम्हारा अपराध छूट गया। अब तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी और वैकुण्ठ का सुख मिलेगा। जो कोई इस स्कन्ध की कथा सच्चे मन से सुने व पढ़े वह सब पापों से छूटकर भवसागर पार उतर जायगा।

——

छठा स्कन्ध।

—:०:—

अधर्मी अजामिल ब्राह्मण का मुक्त होना। देवतों व दैत्यों की उत्पत्ति।

दो० लिखौं बड़ाई नाम की जाको वार न पार। जिहि सुमिरे से होत हैं कोटिन जिव विस्तार॥

पहिला अध्याय।

अजामिल ब्राह्मण की कथा।

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित शुकदेवजी से बोले—महाराज! आपने दूसरे स्कन्ध में मनुष्य के वैकुंठ जाने के वास्ते प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग दो राह बतलाकर यह कहा था कि परमहंस व योगी लोग निवृत्ति मार्ग से सूर्यमंडल में होकर पहिले ब्रह्मपुरी को जाते हैं, कुछ दिन वहाँ ब्रह्मा के साथ रहकर उनकी मुक्ति होती है। और जो जीव माया के गुणों से बारंबार जन्म व मरण को प्राप्त होते हैं, वे प्रवृत्ति-मार्ग से पहिले चन्द्रमण्डल में जाकर अपने कर्मानुसार स्वर्गादिक का सुख भोगकर फिर संसार में जन्म लेते हैं। आपने विस्तारपूर्वक चौदहों लोकों की कथा, स्वर्ग व नरक, धर्म व अधर्म करनेवालों की गति, जो पाप के बदले नरक का दुःख और पुण्य के प्रताप से स्वर्ग का सुख भोगते हैं, सुनाया। और राजा स्वायंभुव मनु प्रियव्रत, उत्तानपाद, देवहूती, ध्रुव आदि और उनकी संतान का सब वृत्तान्त तथा सातों द्वीपों, नवों खण्डों, सातों समुद्रों का हाल, पृथ्वी का विस्तार, भूमण्डल आदि का वर्णन किया। अब मैं ऐसा धर्म सुना चाहता हूँ कि जिस धर्म के करने से पापी व अधर्मी लोग भी पवित्र होकर स्वर्ग का सुख पावें, सो आप दया करके बतलाइए जिसमें कोई मनुष्य नरक में न जावे। यह वचन सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजा! जो लोग मनसा

वाचा कर्मणा से जानबूझकर पाप करेंगे उन्हें उस अधर्म के बदले नरक अवश्य भोगना पड़ेगा, इस वास्ते मनुष्य को चाहिए कि मनुष्यतनु पाकर हर साइत अपनी मुक्ति का उपाय करता रहे। जो कोई इस तनु में इसका सोच नहीं करता वह अपना जन्म अकार्थ खोकर पीछे बहुत पछताता है। मनुष्य से कोई पाप छोटा या बड़ा किसी प्रकार का हो जावे तो उसका प्रायश्चित्त थोड़ा या बहुत शास्त्रानुसार कर डाले। जिस तरह रोग बिना औषध खाये नहीं जाता उसी तरह पाप भी बिना प्रायश्चित्त किये नहीं छूटता। यह बात सुनकर परीक्षित ने विनय किया—महाराज! जानबूझकर पाप करनेवाला जो एक बेर प्रायश्चित्त करने से शुद्ध होकर फिर अधर्म करेगा तो उसका उद्धार प्रायश्चित्त करने से किस तरह हो सकता है। यह वचन सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजा! पाप व पुण्य दोनों एक-एक कर्म हैं, शुभ कर्म करने से पाप छूटता है, पर फिर अधर्म न करे। जिस तरह रोग छूटने के वास्ते औषध खाकर संयम नहीं करता या थोड़े दिन बराबर संयम करके फिर खट्टा-मीठा खाने लगता है तो उसका रोग और अधिक हो जाता है। जिस तरह हाथी नहाने के उपरान्त फिर धूलि उठाकर अपने मस्तक पर डाल लेवे तो उसके स्नान करने से क्या गुण होगा। जैसा उद्धार ज्ञान प्राप्त होने से होता है वैसा शुभकर्म करने से जल्दी पाप नहीं छूटता, पर संयम करनेवाले का रोग नहीं बढ़ता, इसलिए शुभकर्म करना उत्तम है। कुछ दिन बीते उसका कल्याण हो जाता है। इसके सिवा पापों का नाश करने के वास्ते ब्रह्मचर्य व व्रत रखकर सुधर्म व तप करना, इन्द्रियों को अपने वश रखना, मन को संसारी माया-मोह से विरक्त रखकर सच बोलना, मनसा वाचा कर्मणा किसी का बुरा न चाहना, परउपकार करना और किसी जीव को दुःख न देना चाहिए। ये सब उपाय करने से भी पाप कट जाते हैं, पर जैसा परमेश्वर के चरणों में भक्ति व प्रीति रखने, उनका नाम जपने और कीर्तन सुनने से अनेक जन्म के पाप छूटकर मनुष्य तुरन्त मुक्ति पाता है वैसा तप आदि करने से शुद्ध नहीं होता। जिस तरह प्रातःकाल कुहिरे का अँधेरा सूर्य देवता

के प्रकाश से नष्ट हो जाता है उसी तरह वासुदेव श्रीकृष्णजी का नाम लेने से अनेक जन्म के बड़े-बड़े पाप न मालूम कहाँ भाग जाते हैं। जैसे पृथ्वी पर वृक्ष और फल आदि उपजते हैं वैसे ही मनुष्य परमेश्वर का भजन व भक्ति करने से मनवांछित फल पाता है। इसलिए मनुष्य को संसार में परमेश्वर की प्रीति उत्पन्न होने के वास्ते साधु व महात्मा का सत्संग व सेवा करने के सिवा दूसरा मार्ग अच्छा नहीं होता। उनकी संगति व टहल करने से बहुत शीघ्र मनुष्य का मन संसार से विरक्त होकर मुक्ति पाता है। जो लोग परमेश्वर से विमुख हैं वह प्रायश्चित्त करने से भी किसी तरह शुद्ध नहीं होते, जिस तरह मदिरा का घड़ा गंगाजल के धोने से पवित्र नहीं हो सकता। जिसने एक बेर भी अपना चित्त श्रीकृष्णजी के चरणों में लगाया वह स्वप्ने में भी यमराज व यमदूतों को नहीं देखता। वह सब प्रायश्चित्त कर चुका। सो हम एक कथा नारायण के नाम का माहात्म्य, जिसमें विष्णु भगवान् व यमदूतों का संवाद है, कहते हैं, सुनो। पिछले युग में अजामिल नाम का एक ब्राह्मण कन्नौज में रहता था। उसने एक दासी से प्रीति की थी। चोरी, ठगी और जुवा उसका उद्यम था। उस दासी से उसके दश बेटे उत्पन्न हुए। उसने अपने छोटे पुत्र का नाम नारायण रक्खा, उस पुत्र से उसको बड़ा प्रेम था, इसलिए खाते-पीते उठते-बैठते चलते-फिरते उसकी याद मन में रखता था। जब इसी तरह अट्ठासी वर्ष की अवस्था बीत गई और उसके मरने का समय आया तब तीन यमदूत भयानक-रूप मुद्गर व फाँसी लिये हुए उसको लेने के वास्ते आये और गले में फाँसी डालकर खींचने लगे। तब अजामिल ने उनका भयानक रूप देखते ही घबराकर जैसे नारायण नामक अपने पुत्र को चिल्लाकर पुकारा वैसे ही अन्त समय नारायण नाम लेने के प्रताप से विष्णु भगवान् की आज्ञानुसार चार दूत श्यामरंग चतुर्भुज शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये बड़े तेजवान् सुवर्ण की छड़ी लिये हुए उसके पास पहुँचकर यमदूतों से बोले—तुम हमारे सामने इसको दुःख देकर धर्मराज के यहाँ नहीं ले जा सकते। यह बात सुनकर यमदूतों ने कहा—सुनो मित्र ! इस

ब्राह्मण ने बहुत पाप किये हैं, पापों का दण्ड धर्मराज सदा देते हैं, इसलिए हम उनकी आज्ञानुसार इसे नरक में ले जायँगे । तुम्हें नारायणजी के दूत होकर ऐसे अधर्मी के पास आना और हमको ले जाने से मना करना उचित नहीं है । यह वचन सनकर विष्णु के दूत बोले—तुम लोग धर्मराज के दूत होने पर भी यह नहीं जानते कि किस मनुष्य को सुख देना चाहिए और कौन मनुष्य दुःख देने योग्य है । इसलिए धर्म व अधर्म का रूप हमें बतलाओ, किस पाप करनेवाले को दंड देना चाहिए और कौन कर्म करने से मनुष्य सुख देने योग्य होता है । यमदूत बोले—वेद व शास्त्र में जो शुभ कर्म लिखा है उसे धर्म और जो अशुभ लिखा है उसको अधर्म समझना चाहिए । वेद व शास्त्र का वचन नारायणजी की आज्ञानुसार है । पाप व पुण्य करने के साक्षी सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, दिन, रात्रि, दिशा और वायु आदि देवता हैं । उन्हीं लोगों से धर्म का हाल बूझकर मनुष्य को दुःख व सुख दिया जाता है । ऐसा कोई जीव संसार में नहीं होगा जिसे चलते-फिरते, उठते-बैठते, पाप व पुण्य न होवे । यह अजामिल ब्राह्मण के घर जन्म लेकर विद्या पढ़ने के उपरान्त शास्त्रानुसार गुरु, माता-पिता, विष्णु भगवान्, अग्नि और सूर्य देवता की भक्ति रखकर अपने कर्म व धर्म से रहता था । एक दिन पिता की आज्ञानुसार जंगल से लकड़ी, पत्ता और पुष्पादिक तोड़कर लिए चला आता था । राह में क्या देखा कि एक भिल्ल अपनी वेश्या को साथ लिये दोनों मतवाले होकर आपस में हँसते चले जाते हैं । इस ब्राह्मण को देखते ही वह वेश्या कामदेव के वश होकर इसके गले में लपट गई । तब यह ब्राह्मण भी कामासक्त होकर उससे भोग करने के उपरांत उसे अपने घर ले आया और माता-पिता, स्त्री, गुरु और धर्म-कर्म को छोड़ दिया । उसके साथ रहकर मांस व मदिरा खाना-पीना आरम्भ किया । थोड़े दिनों में अपने पिता का सब धन फूँककर फिर चोरी, ठगी और जुवा का उद्यम करके अपना कुटुम्ब पालने लगा । इस वास्ते हम ऐसे महापापी को यमराज के यहाँ से लेने आये हैं, जिसमें अपने कुकर्मों का वहाँ दण्ड पाकर शुद्ध हो जावे ।

दूसरा अध्याय।

विष्णु के दूतों का परमेश्वर के नाम की महिमा वर्णन करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! यमदूतों से अजामिल के अधर्म करने का हाल सुनकर विष्णु भगवान् के दूत बोले कि धर्मराज के यहाँ बड़ा अन्धेर है, कुछ न्याय नहीं होता, क्योंकि उनके दूत बिना अपराध साधु लोगों को भी दुःख देते हैं। जब धर्मराज पाप व पुण्य का सब हाल जानने पर भी अन्याय करेंगे तो संसारी काम, जिसमें कोई अपने धर्म व अधर्म का हाल नहीं जानता, किस तरह चलेगा। जिसके विश्वास पर कोई गोद में शिर रखकर सोवे वही उसका शिर काट ले या माता-पिता अपने पुत्र को विष दे तो उसकी रक्षा कौन कर सकता है। तुम लोगों ने नारायण नाम की महिमा नहीं सुनी। जो मनुष्य जानकर या धोखे से भय से या हँसी से भी परमेश्वर का नाम लेता है उसके सब बड़े-बड़े पाप सोना चुराने, गो-ब्राह्मण, तपस्वी व माता-पिता को मार डालने, गुरु की स्त्री से भोग करने, मदिरा पीने व गुरु को दुर्वचन कहने के भी अन्त समय में परमेश्वर का नाम लेने से छूट जाते हैं। इस ब्राह्मण ने मरते समय नारायण का नाम अपने मुख से निकाला, उसी के प्रताप से अनेक जन्म का पाप छूटकर वह ब्राह्मण वैकुण्ठ जाने योग्य हुआ। उस नाम लेने व पाप छूटने के उपरान्त फिर इसने कोई अपराध नहीं किया जो दण्ड देने योग्य हो। नारायण का नाम लेने से अधिक कोई प्रायश्चित्त पापों का छुड़ानेवाला संसार में नहीं होता। कदाचित् किसी यज्ञ व तप व होम आदिक में भूल हो जावे तो राम व कृष्ण का नाम लेने से वह शुद्ध हो जाता है। कोई तीर्थ, व्रत, नियम, तप, जप, यज्ञ, होम, दान और धर्म राम नाम लेने के तुल्य नहीं हो सकता। जो मनुष्य नारायण का नाम चार अक्षर मुख से निकालता है उसको परमेश्वर अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ देते हैं। बड़े-बड़े योगी व मुनीश्वरों ने परमेश्वर के नाम का माहात्म्य सबसे श्रेष्ठ लिखा है। उनका नाम लेने व कथा सुनने व भक्ति करने से अनेक जन्म के पाप

छूट जाते हैं। जिस तरह संसार में दश बीस मनुष्य एक जगह बैठे हों और उनमें से किसी का नाम लेकर कोई पुकारे तो वह मनुष्य उसकी ओर आँख उठाकर अवश्य देखता है उसी तरह परमेश्वर त्रिलोकीनाथ ने अजामिल के नारायण नाम पुकारने पर आँख उठाकर देखा था। जिस तरह मनुष्य का रोग जानकर व अजान में भी दवा खाने से छूट जाता है और आग की एक चिनगारी रुई या लकड़ी के बड़े ढेर को क्षण भर में जला देती है उसी तरह एक बेर नारायण का नाम लेने से अनेक पाप रुई व लकड़ी के समान जलकर छूट जाते हैं। परमेश्वर ने वेद में ऐसा कहा है कि जो कोई मेरा नाम लेवे उसे मैं कृतार्थ कर देता हूँ। जिस तरह वन में व्याघ्र की बोली सुन-कर हरिण भाग जाते हैं उसी तरह रामनाम मुख से निकलते ही पाप मारे डर के शरीर से निकलकर भाग जाते हैं। जब विष्णु भगवान् के दूतों ने ऐसी-ऐसी बातें कहकर यमदूतों को वहाँ से निकाल दिया और चार भुजावाले दूतों का दर्शन करने से अजामिल को ज्ञान व वैराग्य उत्पन्न हुआ तब वह परमेश्वर के नाम की महिमा सुनने व समझने पर बहुत पछताकर कहने लगा कि मैंने ब्राह्मण के घर जन्म पाकर अपना कर्म व धर्म छोड़ दिया और दासी के वश रहकर अपनी आयु कुकर्म में बिताई। इन साधुओं के आने से मेरे प्राण बचे, नहीं तो यमदूत न मालूम मुझको कैसा दुःख देते। जिस नारायण का नाम लेने के प्रताप से मेरा कल्याण हुआ, उस परमेश्वर का नाम जपकर अब अपना जन्म सुधारूँगा। अजामिल इस तरह पछताने लगा और विष्णु भगवान् के पार्षद वहाँ से अन्तर्धान हो गये। अजामिल ने उसी समय अपना चित्त संसारी माया मोह से विरक्त कर दिया। पार्षदों का दर्शन करने के प्रताप से एक वर्ष की आयु उसको और मिली, सो वह हरद्वार में जाकर सच्चे मन से परमेश्वर का ध्यान व स्मरण करने लगा। जब उसको वहाँ एक वर्ष ध्यान व भक्ति करते हुए बीता तब वैकुण्ठ से अति उत्तम विमान उसके पास आकर उतरा, सो वह विमान पर चढ़कर गाता-बजाता वैकुण्ठ को चला गया और चतुर्भुजी रूप होकर

वहाँ रहने लगा। यह हाल देखकर देवता व ऋषीश्वर उसकी बड़ाई करने लगे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! ऐसे महापापी ने बेटा के धोखे नारायणजी का नाम मुख से लिया था, सो ऐसी पदवी को पहुँचा। जो कोई संसार से विरक्त होकर हरिभजन करता है, उसकी गति का क्या कहना है उनका भक्त नरक में नहीं जाता।

—:०:—

तीसरा अध्याय।

यमदूतों का धर्मराज से अजामिल का वृत्तान्त कहना।

परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर शुकदेवजी से पूछा—महाराज! यमदूतों ने अजामिल के पास से जाकर यमराज से क्या कहा और धर्मराज ने क्या उत्तर दिया, सो दया करके बतलाइए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यमदूतों ने धर्मराज से जाकर कहा कि संसार में अनेक मनुष्य न्याय करनेवाले हमें दिखलाई देते हैं, जब बहुत लोग न्याय करेंगे तो आपस के झगड़े से किसी पापी को वैकुण्ठ में और किसी धर्मात्मा को नरक में भेज देंगे। हम लोग आज तक केवल आपको न्याय करनेवाला जानते थे, आपकी आज्ञा से सब जीवों को ले आते थे और कर्मानुसार उनको फल मिलता था। आज हम लोग आपकी आज्ञा से अजामिल पापी को लेने गये थे उसने हमें देखकर नारायण नामक अपने पुत्र को पुकारा तो चतुर्भुजीरूप चार पार्षदों ने आकर उस पापी को हमसे छीन लिया। इसलिए कहे देते हैं कि इसका यत्न कीजिए, जिसमें हमारा अपमान न हो। यह वचन सुनते ही यमराज ने ब्रह्मरूप भगवान का ध्यान करने के उपरांत दूतों से कहा—तुम लोग नारायण नाम की महिमा नहीं जानते, उस नाम का माहात्म्य इन्द्रादिक देवता और भृगु आदिक ऋषीश्वर भी अच्छी तरह नहीं जानते। हम ब्रह्मा, राजा जनक, मनु, भीष्मपितामह, प्रह्लाद, राजा बलि, शुकदेव, नारद, महादेव, कपिलदेवजी और चारों भाई सनकादिक उस नाम के महात्म्य को अच्छी तरह जानते हैं। देखो, नाम का वह प्रताप है कि अजामिल ऐसा महापापी अपने बेटे के धोखे से नारायण का

नाम लेकर तुम्हारी फाँसी से छूट गया। हम, ब्रह्मा, महादेव और इन्द्रादिक सब देवता परमेश्वर की सेवा में रहते हैं, उनकी आज्ञानुसार सब काम करते हैं। भगवान् की इच्छा से तीनों लोकों की उत्पत्ति, पालन व नाश एक क्षण में होता है। उनकी माया में सारा जगत् बँधा रहता है। उनके दूत सब जगह रहते और भक्तों की रक्षा करते हैं, पर किसी देवता व मनुष्य को दिखलाई नहीं देते। उन्हीं दूतों ने अजामिल को तुमसे छुड़ा दिया। तुम इस बात में कुछ खेद न मानकर अपना बड़ा भाग्य समझो, जो उनका दर्शन तुमने पाया। उनके दर्शन देवता व ऋषीश्वरों को जल्दी नहीं मिलते। यमदूतों ने नारायणजी के नाम का यह माहात्म्य सुनकर धर्मराज से विनय किया कि जब परमेश्वर का नाम लेने से ऐसा फल होता है तो वेद शास्त्र में पाप छुड़ाने के वास्ते तप आदि कठिन-कठिन प्रायश्चित्त क्यों लिखे हैं? धर्मराज बोले—जो मनुष्य नाम की महिमा नहीं जानता उसके वास्ते सब तप व यज्ञ आदि लिखे हैं, जिसमें उसका मन परमेश्वर की भक्ति व पूजा में लगे। नारायण का नाम लेने से उत्तम दूसरा कोई कर्म नहीं है। यज्ञ व तप आदि करने से एक पाप छूटता है, किन्तु परमेश्वर का नाम लेने से अनेक प्रकार के पाप नष्ट होते हैं। भगवान् ने कलियुगवासियों को केवल भय दिखलाने के वास्ते यज्ञ व तप आदि कठिन-कठिन प्रायश्चित्त बना दिये हैं, जिसमें संसारी जीव उस डर से अधर्म न करें। नहीं तो मनुष्य निर्भय होकर ऐसा विचारता कि पहिले संसारी सुख भोगने के वास्ते पाप कर लें पीछे से परमेश्वर का नाम लेकर शुद्ध हो जायँगे। यह वचन सुनकर यमदूत बोले कि महाराज, ऐसा है तो आप हमको क्यों भेजते हैं। तब धर्मराज ने कहा कि हम उस मनुष्य को लेने के वास्ते तुमको आज्ञा देते हैं, जिसने जन्म भर परमेश्वर का नाम न लिया हो। कभी उनकी लीला व कथा न सुनी हो, उसे महापापी समझना चाहिए। जो नारायणजी की शरण में जाता है उससे पाप नहीं होता। परमेश्वर उसको अशुभ कर्मों से बचाये रखते हैं। तुम लोग आज से ऐसे पापी को विचारकर लाया करो, जो परमेश्वर से विमुख हो। जो लोग

हरिभजन में लीन रहकर शालग्राम का चरणामृत नित्य लेते हैं, उनके पास कभी मत जाना। वे लोग कुन्दन के समान शुद्ध रहकर मुक्ति पाते हैं। ऐसा कहकर धर्मराज ने परमेश्वर का ध्यान करके अपने दूतों का अपराध उनसे क्षमा कराया। यमदूतों ने यह बात सुनते ही भय मानकर आपस में ऐसी सम्मति किया कि आज से कभी उस मनुष्य के पास, जो हरिचर्चा रखता है, जाना न चाहिए। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने विनय किया—हे मुनिनाथ! अजामिल महापापी के मुख से मरते समय नारायणजी का नाम किस तरह निकला। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक दिन चार साधु तीर्थयात्रा करते हुए अजामिल के गाँव में सन्ध्या समय पहुँचे। उन्होंने अपने टिकने के वास्ते किसी हरिभक्त का स्थान लोगों से पूछा। उस गाँववालों ने ठट्ठे से अजामिल अधर्मी का घर बतला दिया। जब साधु लोग वहाँ गये तो अजामिल की वेश्या ने उन साधुओं को अच्छा गृह टिकने के वास्ते देकर धुनी-पानी से उनकी सेवा की। प्रातःकाल चलते समय साधुओं ने उस वेश्या से, जो गर्भवती थी, कहा—तेरे पुत्र हो तो उसका नारायण नाम रखना। उनकी आज्ञा से अजामिल ने उस बेटे का नाम नारायण रक्खा। उन साधुओं की कृपा से मरते बेर अजामिल के मुख से नारायण का नाम निकला था। सन्त व महात्मा की सेवा वृथा नहीं जाती। जो लोग साधु व वैष्णव की संगति व टहल करते हैं, उनको कोई दुःख नहीं दे सकता। यह सुनकर परीक्षित अति प्रसन्न हुए। शुकदेवजी ने कहा कि हे राजन्! हमने यह कथा अगस्त्य मुनि से सुनी थी, सो तुम्हें सुनाई। परीक्षित ने हाथ जोड़कर विनय किया, आपने बड़ी कृपा व दया करके नारायण नाम का माहात्म्य मुझे सुनाया।

चौथा अध्याय।

दक्ष का प्रचेतों के यहाँ उत्पन्न होना।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर विनय किया—महाराज! आपने देवता व दैत्यादिक की उत्पत्ति संक्षेप में कही थी, अब उसे

विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूँ। यह सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! प्राचीनबर्हिष के प्रचेता नामक दश पुत्र समुद्र के किनारे जाकर महादेवजी के ज्ञानोपदेश से परमेश्वर का तप व ध्यान करने लगे। उनके जाने के उपरान्त नारद मुनि की आज्ञानुसार प्राचीनबर्हिष राजगद्दी को सूनी छोड़कर वन में हरिभजन करने चला गया। उसका बहुत-सा देश दूसरे राजों ने दबा लिया और अनेक नगर व गाँव उजड़कर जंगल हो गये। जब प्रचेतों को हरिभजन के प्रताप से परमेश्वर का दर्शन मिल चुका तब एक दिन नारदजी ने रमते हुए जाकर उनके राज्य का सब हाल उनसे कह दिया। यह बात सुनते ही क्रोध से अग्नि के समान ऐसी साँस उनकी नाक से निकली कि जिसकी ज्वाला से वन जलने लगा। यह दशा देखते ही चन्द्रमा ने निम्लोचा नाम की कन्या को, जो विश्वामित्र और मेनका अप्सरा के संयोग से हुई थी, लाकर प्रचेतों से उसका विवाह कर दिया। जैसे प्रचेतों ने आँख उठाकर उस कन्या को देखा वैसे ही हरिइच्छा से उसके गर्भ रह गया और दशवें महीने में दक्ष नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। तब प्रचेतों ने अपने पिता का नगर व देश बसाने और सृष्टि बढ़ाने की उसे आज्ञा दी। दक्ष ने मानसी सृष्टि से बहुत मनुष्य उत्पन्न किये। वे लोग स्त्री व पुरुष के भोग न करने से अधिक नहीं होते थे, इसलिए दक्ष ने सृष्टि बढ़ाने के वास्ते मन्दराचल पर्वत पर जाकर कुछ काल तक परमेश्वर का तप व ध्यान करके हंसगुह्यस्तोत्र से इस तरह उनकी स्तुति की—मैं उस पुरुष को नमस्कार करता हूँ जिसका वीर्य कभी नहीं घटता और माया के गुणों में वह वीर्य पकड़कर जड़ को चैतन्य करता है, इस जीवात्मा से जो स्नेह रखता और सब इन्द्रियों का हाल जानता है, इन्द्रियाँ उसका भेद नहीं जान सकतीं। मैं उस परब्रह्म परमेश्वर को दण्डवत् करता हूँ जिसकी कृपा से शरीर, प्राण, मन और बुद्धि सब अपना-अपना कर्म करते हैं। ज्ञानी लोग जिनके चरणों का ध्यान आठों पहर हृदय में रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं, मैं उस अविनाशी पुरुष का चरण धरता हूँ। यह जगत् जिससे उत्पन्न हुआ, जिसका रूप

है, जिसके आश्रय पर रहता है, और जो इस संसार से पृथक् रहकर अपनी माया का उसमें प्रवेश रखता है, मैं उस ईश्वर को दण्डवत् करता हूँ। जब दक्ष ने ऐसी स्तुति करके नारायणजी को प्रसन्न किया तब वह साँवलीसूरत गरुड़ पर बैठ चतुर्भुजीमूर्ति शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये तापहारिणी चितवनि तेजवान् पीताम्बर धारण किये किरीट कुण्डल मुकुट साजे वैजयन्ती माला व वनमाला विराजे कौस्तुभमणि पहने नारदजी आदि भक्तों और सोलह पार्षदों को संग लिये मन्द-मन्द मुसकराते हुए दक्ष के सम्मुख प्रकट हुए। ऐसा सुन्दर रूप देखते ही जब दक्ष ने अति हुलास से उनको साष्टांग दण्डवत् किया तब भगवान् जी उसे अपना भक्त जानकर बोले—हे प्रचेता के पुत्र! तू अपनी तपस्या से सिद्ध हुआ और हम तेरी स्तुति करने से बहुत प्रसन्न हुए। ब्रह्मा व महादेव आदि जो मेरे भक्त हैं, उनको मैं अपना मित्र जानता हूँ। तप मेरा हृदय, यज्ञ मेरा शरीर, धर्म मेरा आत्मा और देवता मेरे प्राण हैं। इस जगत् का उत्पन्न करनेवाला मैं हूँ। ब्रह्मा ने भी तप के ही प्रताप से सृष्टि की रचना की है। तुम भी पंचजन्य प्रजापति की कन्या असिक्नी से विवाह करने के उपरान्त मैथुन करके संसार उत्पन्न करो। मानसी सृष्टि से उत्पन्न हुए मनुष्य विरक्त होकर तप करने चले जाते हैं, उनको किसी से प्रीति नहीं रहती। स्त्री-पुरुष के भोग करने से मोहनी सृष्टि बहुत उत्पन्न होकर संसारी माया में इस तरह लपटे रहेंगे जिस तरह गुड़ में चिउँटा लपटा रहता है। आज से सब जीव मैथुन करने से जगत् में उत्पन्न होंगे और अपने-अपने कर्मों का फल भोग करेंगे। ऐसा कहकर नारायणजी अन्तर्धान हो गये और दक्ष उस कन्या से विवाह करके घर में आकर राज्यकार्य करने लगे।

—०—

पाँचवाँ अध्याय।

उस स्त्री से दश हजार पुत्रों का उत्पन्न होना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! दक्ष की उसी स्त्री से जब दश हजार पुत्र हुए तब दक्ष ने सबका नाम हर्यश्व रखकर उनसे कहा कि पहले

तुम लोग परमेश्वर का तप करके पीछे से संतान उत्पन्न करो। यह वचन सुनते ही वह दशों हजार बालक पश्चिम दिशा में नारायण नामक तीर्थ पर जाकर जब परमेश्वर का तप व ध्यान करने लगे तब नारद मुनि ने दया करके उन लोगों को भवसागर पार उतारने का विचार करके उनसे कहा कि तुम लोग जानते हो कि सब जगत् का उत्पन्न करनेवाला एक पुरुष है, उसके समान दूसरा नहीं हो सकता। सब जीवों में उसी के तेज का प्रकाश रहता है, उसी की शक्ति से सब जीवों को चलने-फिरने की सामर्थ्य होती है। महाप्रलय होने पर भी केवल वही अविनाशी पुरुष स्थिर रहता है। सो तुम लोग संसार किस तरह उत्पन्न करोगे, अभी तुम बालक हो। पृथ्वी का अन्त और उस स्थान को, जहाँ गया हुआ कोई नहीं फिरता, तुमने नहीं देखा। भूरवन्ती स्त्री को, जो नित्य नये पुरुष की इच्छा करती है, तुम नहीं जानते, व्यभिचारिणी स्त्री के पति को भी नहीं पहिचानते। एक नदी में दोनों तरफ धाराएँ बहती हैं, उसे भी तुम नहीं जानते। पच्चीस मंत्र का जो गृह बना है और एक हंसा जो है, उसे भी तुमने नहीं देखा। चोखी धार के चक्र को भी तुम नहीं जानते, इसलिए इन सब बातों को विचारकर संसार को उत्पन्न करना और अपने पिता की आज्ञा भी रखना। जब नारदजी पहेली के समान यह ज्ञान बतलाकर चले गये तब बालकों ने आपस में बैठकर अपने ज्ञान से उन सब बातों का यह अर्थ विचारा कि पृथ्वी जीव है और उसका अन्त मोक्ष है, जब तक उसको हम न जान लें तब तक सृष्टि की वृद्धि क्या करेंगे। वह पुरुष नारायणजी हैं, उनकी कृपा व दर्शन हुए बिना हम क्या कर सकते हैं। वह स्थान वैकुण्ठ है, जहाँ गया हुआ फिर संसार में जन्म नहीं लेता। उसको देखे बिना हमसे क्या हो सकेगा। भूरवन्ती स्त्री को बुद्धि समझो, उसको एकचित्त किये बिना हम संसारी जीव कैसे उत्पन्न करेंगे। व्यभिचारिणी स्त्री का पुरुष जीव है सो वह संसारी माया में फँस गया है, उसको अलग किये बिना संसार हमसे नहीं उत्पन्न होता। दोनों तरफ बहनेवाली नदी माया को समझना चाहिए। जगत् में एक

मरता है दूसरा जन्म लेता है। एक घर में ढोल बजाकर हर्ष से लोग गाते हैं और दूसरे के यहाँ शोक व विलाप होता है। जब तक उस माया का भेद हमें न मालूम हो तब तक संसार हमसे नहीं उत्पन्न हो सकता। पचीस तत्त्वों का बना हुआ यह शरीर है, इसमें परमेश्वर का प्रकाश है। उस ईश्वर को जाने विना हमारा किया कुछ न होगा। हंस वेद-शास्त्र को समझो जिसका वचन बंध व मोक्ष का बनानेवाला है। उसको जाने विना हम जगत् की उत्पत्ति नहीं कर सकते। चोखी धार का चक्र मृत्यु को जानना चाहिए, जो सब जगत् का नाश करती है। उसको जाने बिना हमें सृष्टि बढ़ाने की सामर्थ्य न होगी। इन सब बातों को विचारकर उन्होंने संसार का उत्पन्न करना उचित नहीं जाना। जब ज्ञान प्राप्त होने से उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया तब वे लोग फिरकर अपने घर नहीं आये। परमहंस होकर जीवन्मुक्त हो गये। जब बहुत दिन बीतने पर भी वह फिरकर नहीं आये तब दक्ष ने जाना कि नारद मुनि ने ज्ञान सिखलाकर उन्हें विरक्त कर दिया। ऐसा विचार कर दक्ष ने उसी स्त्री से हजार बेटा और उत्पन्न करके सबल नाम रखकर उनसे कहा कि पहिले परमेश्वर का तप करके पीछे से संतान उत्पन्न करो। जब वे लोग भी उसी जगह, जहाँ उनके भाई गये थे, जाकर पहुँचे तब नारद मुनि ने वहाँ आकर उनको ऐसा ज्ञान बतलाया कि वे भी संसारी माया छोड़कर परमहंस हो गये। यह हाल सुनते ही दक्ष ने क्रोधवान् होकर कहा कि नारद मुनि ने हमारे ग्यारह हजार बेटों को ज्ञान सिखलाकर विरक्त कर दिया, संसार में मनुष्य किस तरह अधिक होंगे। दक्ष इसी क्रोध में बैठे थे कि नारदजी उसी समय वीणा बजाते हुए वहाँ आये। उनको देखते ही दक्ष ने विना दण्डवत् किये कहा—हे नारद मुनि! तुमने हमारे अज्ञान लड़कों को बहकाकर विरक्त कर दिया, मुझे बहकाओ तो मैं जानूँ कि तुम बड़े ज्ञानी हो। परमेश्वर के पार्षदों में होकर तुमको हमारे साथ शत्रुता करना उचित नहीं है। तुम केवल यती व सत्यवादी हो, वेद शास्त्र के धर्म को नहीं जानते। मनुष्य को देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण तीनों ऋण से अवश्य उऋण होना चाहिए, सो मेरे बालक अभी

इन तीनों ऋणों से नहीं छूटे, तुमने किस वास्ते उनको ज्ञान सिखलाकर विरक्त कर दिया। क्या तुम स्त्री-पुत्रादि का गृहस्थाश्रम में रहना अच्छा नहीं समझते ? जो गृहस्थ शास्त्रानुसार अपना कर्म व धर्म रक्खे, वह निस्संदेह योगी व परमहंसों की गति को पहुँचता है। तुमने वेद-शास्त्र का धर्म निषिद्ध जाना, इसलिए मैं परमेश्वर से चाहता हूँ कि तुम दो घड़ी से अधिक एक जगह न रहो, कदाचित् ठहरो तो तुम्हारा शिर दुखे। ऐसा शाप दक्ष ने नारद को दिया। नारदजी को भी शाप देने की सामर्थ्य थी, पर उन्होंने दक्ष को हरिभक्त जानकर कुछ शाप नहीं दिया, आनन्द-पूर्वक वहाँ से चले गये। तब दक्ष ने ब्रह्मा से जाकर कहा कि तुम्हारा पुत्र नारद मुनि हमारे बेटों को ज्ञान सिखलाकर विरक्त कर देता है, संसारी सृष्टि किस तरह बढ़ेगी। यह सुनकर ब्रह्माजी बोले कि तुम कन्या उत्पन्न करो, उन्हें घर में रहने से नारद ज्ञान उपदेश नहीं कर सकेंगे। स्त्रियों को जल्दी ज्ञान नहीं प्राप्त होता, वे अपने अर्थ को अच्छा जानती हैं, उनसे संसारी जीव अधिक होंगे।

छठा अध्याय।

दक्ष का उसी स्त्री से साठ कन्याएँ उत्पन्न करना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! फिर दक्ष ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार उसी असिक्नी नाम की स्त्री से साठ कन्याएँ उत्पन्न की। उनमें से दश कन्याएँ धर्म को, सत्ताइस चन्द्रमा को, सत्रह कश्यप को, दो भूतों को, दो अंगिरा ऋषीश्वर को, दो कृशाश्व प्रजापति को विवाह दिया। उन्हीं कन्याओं से बहुत जीव, देवता, मनुष्य, दैत्य, दानव, पशु, पक्षी उत्पन्न हुए। हम उन सब कन्याओं और उनकी संतानों के नाम संक्षेप से कहते हैं, सुनो। धर्म की दशों स्त्रियों के नाम भानु, लम्बा, ककव, जामी, विश्वा, साध्या, मृत्युवती, वसू, मुहूर्ता और संकल्पा था। भानु का बेटा ऋषभ उनसे इन्द्रसेन। लम्बा का पुत्र विद्युत उनसे मेघ। ककव का बेटा संकट उनसे विटक और किकीट से किले के देवता उत्पन्न हुए। जामी का पुत्र स्वर्ग उनसे नन्दप जन्मा। विश्वा का बेटा विश्वदेवा। साध्या के पुत्र साध्य-

गण उनसे अर्थ सिद्ध हुआ। मृत्युवती के बेटे इन्द्र और उपेंद्र हुए। वसु के अष्टवसु देवता जन्मे। मुहूर्ता से मुहूर्तों के देवता। संकल्पा का पुत्र संकल्प उनसे काम नाम बेटा हुआ। स्वरूपा नाम भूत की एक स्त्री से गरुड़ और रुद्र उत्पन्न हुए। उसमें ग्यारह रुद्र मुख्य हैं—रेवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान। अंगिरा की सुधा नाम की स्त्री से पितर लोग उत्पन्न हुए। कृशाश्व प्रजापति की अरुचि नाम की स्त्री से धूमकेश पुत्र हुआ। चन्द्रमा की स्त्रियों के नाम अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती। ये सत्ताइस नक्षत्र हैं। दक्ष के शाप से चन्द्रमा के क्षयी का रोग हो गया था, इसलिए उनसे सन्तान नहीं हुई।

इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा कि दक्ष ने अपने दामाद चंद्रमा को किस वास्ते शाप देकर अपनी बेटियों के वंश की हानि की, सो कहिए। शुकदेवजी बोले—एक समय कृत्तिका ने अपने पिता से जाकर कहा कि चन्द्रमा मुझे नहीं चाहते, मेरी बहिन रोहिणी से बहुत प्रीति रखते हैं। यह बात सुनते ही दक्ष ने चन्द्रमा को शाप दिया कि तुझे क्षयी का रोग हो जावे। उसी कारण चन्द्रमा हजार वर्ष तक समुद्र में पड़े रहे। जब चन्द्रमा ने दक्ष की बहुत स्तुति की तब दक्ष ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि तेरा यह रोग छूटकर पन्द्रह रोज तेरी कला घटे और पन्द्रह रोज बढ़े। इसी कारण चन्द्रमा की कला घटती-बढ़ती है। कश्यप की विनता स्त्री से गरुड़ और अरुण, कद्रू से सर्पादिक, पतगी से पक्षी आदि, यामिनी से टिड्डी आदि, नेमी से जलचर, सरमा से कुत्ते आदि पाँच नख के जीव, ताम्रा से गृद्ध व बाज आदि, क्रोधवसा से बिच्छू आदि, मनी से अप्सरा, इला से वृक्षादिक, सुरसा से राक्षस आदि, अरिष्टा से गन्धर्व आदि, काष्ठा से घोड़े आदि सब खुरवाले पशु, दनु से दानव आदि, दिति से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दैत्य,

अदिति से सूर्य व त्वष्टादिक देवता उत्पन्न हुए। इन सत्रह स्त्रियों के सिवा उनके दो स्त्रियाँ पुलोमा व कालिका नाम की और थीं। पुलोमा से पुलोमादि और राक्षस, कालिका से काले-काले दैत्यों ने जन्म पाया। विप्रचित्ती दानव के सिंहिका स्त्री से राहु नामक दैत्य उत्पन्न हुआ, जिस राहु का शिर नारायणजी ने सुदर्शनचक्र से काट डाला था। सूर्य के श्राद्धदेव और धर्मराज दो पुत्र तथा यमुना नाम की कन्या सवर्णा स्त्री से, जो विश्वकर्मा की बेटी थी, उत्पन्न हुए। जब वही सवर्णा मायारूपी अपनी छाया छोड़कर चली गई और उसने जाकर घोड़ी का स्वरूप धारण किया तब उस छाया के गर्भ से शनैश्चर और सावर्णि-मन दो पुत्र सूर्य के और उत्पत्र हुए। जब सूर्य ने घोड़ीरूप सवर्णा से जाकर भोग किया तब उससे अश्विनीकुमार हुए। त्वष्टा देवता का विवाह जया नाम की कन्या से हुआ था, सो उससे एक कन्या और विश्वरूप नामक बेटा हुआ, जिस विश्वरूप को इन्द्रादिक देवतों ने बृहस्पतिजी के रूठ जाने से अपना पुरोहित बनाया था।

इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—महाराज! सवर्णा अपनी छाया छोड़कर किस तरह चली गई थी, उसका वृत्तान्त कहिए। शुकदेवजी बोले—हे राजन! सवर्णा अपने पति सूर्य का तेज नहीं सह सकती थी, इसलिए उसने मंत्र के प्रताप से अपने समान एक स्त्री बनाकर उससे कहा कि मैं अपने पिता के घर जाती हूँ तू मेरे बदले यहाँ रहा कर, पर यह भेद मेरे पति से न कहना। उसने उत्तर दिया कि जब तक मेरे शिर के बाल पकड़कर सूर्य देवता मुझे न मारेंगे तब तक मैं नहीं कहूँगी। जब सवर्णा यह बात मायारूपी स्त्री को समझाकर अपने पिता के यहाँ गई तब विश्वकर्मा ने क्रोध करके कहा कि तू अपने स्वामी की आज्ञा के बिना चली आई है, इसलिए तुझे न रक्खूँगा। जब सवर्णा ने अपने पिता का यह वचन सुना तब निराश होकर कुरुक्षेत्र में चली गई और घोड़ी रूप बनकर वहाँ रहने लगी। मायारूपी सवर्णा के शनैश्चर और सावर्णि नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। वह अपने बेटों से अधिक प्रेम करती थी और धर्मराज व श्राद्धदेव जो सवर्णा के बेटे थे, उन्हें कम चाहती

थी। छाया ने धर्मराज को एक दिन लात से मारा, यह बात सुनकर जब सूर्य देवता ने छाया के शिर के बाल पकड़कर उसे मारा तब उसने सवर्णा के चले जाने का सब वृत्तांत कह दिया। यह समाचार सुनकर जब सूर्य देवता सवर्णा को ढूँढ़ते हुए कुरुक्षेत्र में पहुँचे और घोड़ा बनकर उससे भोग करना चाहा तब घोड़ीरूप सवर्णा ने अपना मुख फेर लिया। इसलिए उनका वीर्य घोड़ी की गर्दन व नाक पर गिरा। सो गर्दन के बाल से अश्विनी और नाक से कुमार उत्पन्न हुए। हे राजा, इस तरह सवर्णा अपनी छाया छोड़ गई थी। यह कथा सुनकर परीक्षित बहुत प्रसन्न हुए।

सातवाँ अध्याय।

बृहस्पति पुरोहित का इन्द्रादि देवतों से रूठना।

परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर विनय किया—हे मुनिनाथ! इन्द्र ने बृहस्पतिजी पुरोहित को किस वास्ते उदास करके विश्वरूप को अपना पुरोहित बनाया था, उसे विस्तारपूर्वक कहिए। शुकदेवजी बोले—हे राजा! एक दिन इन्द्र बड़े अहंकार से राजगद्दी पर बैठा था और बहुत से देवता, ऋषीश्वर, गन्धर्व व किन्नर आदि उस सभा में वर्तमान थे, उसी समय बृहस्पतिजी वहाँ आये। इन्द्र सदा उनका सम्मान करके अपनी गद्दी पर बैठाता था, उस दिन अभिमान से उसने उनका आदर नहीं किया, इसलिए बृहस्पति रूठकर अपने घर चले गये। तब इन्द्र ने बड़ा शोक करके कहा कि देखो मुझसे बड़ी चूक हुई, जो मैंने राज्य व धन के मद से गुरु का निरादर किया। जिनके आशीर्वाद व कृपा से मुझे यह सब सुख प्राप्त हुआ, उनके क्रोध करने से यह सब नष्ट हो जायगा, इसलिए उनके पास चलकर विनती करके अपना अपराध क्षमा कराना चाहिए जिसमें मेरा कल्याण हो। ऐसा विचार कर इन्द्र उसी समय उनके घर गया। जब बृहस्पतिजी ने अपने योगबल से जाना कि इन्द्र यहाँ आते हैं तब क्रोधवश उनसे भेंट करना उचित न जानकर अन्तर्धान हो गये। जब इन्द्र ने बृहस्पति को घर पर नहीं पाया तब वहाँ

से उदास होकर लौट आये। जब यह समाचार दैत्यों ने सुना तब दैत्यों के राजा वृषपर्वा ने शुक्रजी की आज्ञा से अपनी सेना लेकर इन्द्रपुरी को घेर लिया। जब लड़ते समय देवतों को बृहस्पतिजी के रूठ जाने के कारण दैत्यों से हार मालूम हुई तब उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर सब वृत्तान्त कहा। ब्रह्मा बोले कि तुमसे यह बड़ा अपराध हुआ, जो अपने पुरोहित बृहस्पति का अपमान किया। तुम्हारा कल्याण इसी में है कि त्वष्टा ब्राह्मण का विश्वरूप नामक बेटा बड़ा तपस्वी व ज्ञानी है, उसे अपना पुरोहित बनाओ तो तुम्हारे वास्ते अच्छा होगा। यह वचन सुनते ही इन्द्र ने त्वष्टा के पास जाकर हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—मैं आपके पास भीख माँगने आया हूँ, सो आप दयालु होकर मेरे पुरोहित हूजिए और ऐसा उपाय कीजिए जिसमें हमारा राज्य बना रहे। त्वष्टा ने उत्तर दिया कि पुरोहित होने से तपोबल घट जाता है, पर तुम बहुत विनती करते हो, इसलिए मेरा बेटा विश्वरूप पुरोहित होकर तुम्हारी सहायता करेगा। विश्वरूप ने अपने पिता की आज्ञानुसार पुरोहित बनकर ऐसा यत्न किया कि हरिइच्छा से इन्द्र वृषपर्वा को युद्ध में जीतकर अपने इन्द्रासन पर स्थिर हुआ।

आठवाँ अध्याय।

जिस कवच के प्रताप से इन्द्र ने दैत्यों को जीता था उसका माहात्म्य वर्णन करना।

परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर पूछा—हे शुकदेव स्वामी! विश्वरूप की थोड़ी कृपा करने से इन्द्र ने किस तरह दैत्यों को जीतकर अपना राज्य स्थिर रक्खा? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! विश्वरूप ने इन्द्र को ऐसा नारायणकवच सिखला दिया कि जिस कवच का मंत्र पढ़कर अंग पर फूँक देने और वह कवच लिखकर भुजा पर बाँधने से किसी शस्त्र का घाव नहीं लगता। जिस तरह शूरवीर अपने अंग की रक्षा के वास्ते कवच पहिन लेते हैं उसी तरह का कवच इसे समझना चाहिए। सो राजा इन्द्र वही मंत्र अपने शरीर पर फूँककर लड़ने के वास्ते चढ़ा था, उसी के प्रताप से दैत्यों को जीता। यह सुनकर परीक्षित ने विनय किया—

महाराज! जिस कवच में ऐसा गुण व प्रताप है उसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए। शुकदेवजी बोले—हे राजा! जिस समय किसी मनुष्य को कुछ भय प्राप्त हो उस समय हाथ-पाँव धोकर आचमन करके उत्तर मुँह बैठे और आठ अक्षर के मंत्र से अंगन्यास व करन्यास करके बारह अक्षर का मंत्र पढ़कर यों कहे—जल में मत्स्यावतार से रक्षा करो, पाताल में वामन अवतार से रक्षक हो, जहाँ पर किला व जंगल हैं वहाँ नृसिंहजी रक्षा करें, मार्ग में यज्ञ भगवान् रक्षा करें, विदेश में व पर्वत पर रामचन्द्रजी रक्षक हों, योगमार्ग से दत्तात्रेयजी रक्षा करें, देवता के अपराध से सनत्कुमार रक्षक हों, पूजा के विघ्न में नारदजी सहायक हों, कुपथ्य से धन्वन्तरि वैद्य रक्षा करें, अज्ञान से वेदव्यासजी और अधर्म से कलंकी भगवान् सहायता करें। गोविंद, नारायण, बलभद्र, मधुसूदन, हृषीकेश, पद्मनाभ, गोपीनाथ, दामोदर, ईश्वर, परमेश्वर जो भगवान् के नाम हैं वे आठों पहर सब अंगों व इन्द्रियों की रक्षा करें। वैकुण्ठनाथ का शंख, चक्र, गदा, पद्म और गरुड़जी अनेक भय से रक्षा करें। यही कवच विश्वरूप ने इन्द्र को बतलाकर कहा—हे इन्द्र! इस नारायणकवच को धारण करनेवाले मनुष्य का सब भय छूट जाता है। यही कवच पढ़कर गरुड़जी वैकुण्ठनाथ को अपने ऊपर बैठाकर उड़ते हैं, जिसके प्रताप से कोई उनको जीत नहीं सकता। इस कवच का अभ्यास रखनेवाला कौशिक नाम का ब्राह्मण मरुदेश में मर गया था, उसकी हड्डियाँ वहाँ पड़ी थीं। एक दिन चित्ररथ गंधर्व का विमान उड़ता हुआ चला जाता था, जैसे ही विमान की छाया उन हड्डियों पर पड़ी वैसे ही विमान उलट गया। जब बालखिल्य ऋषीश्वर के उपदेश से उस गंधर्व ने उन हड्डियों को सरस्वती नदी में प्रवाह किया तब उसका विमान फिर उड़ने लगा। सो हे राजन्! ऐसा नारायणकवच हमने तुम्हें सुनाया। जो इस कवच को पढ़ा करे उसके सामने युद्ध में कोई नहीं ठहर सकता।

नवाँ अध्याय।

इन्द्र का अपने पुरोहित विश्वरूप को मारना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! विश्वरूप के तीन मुख थे। एक मुँह से वे सोमवल्ली लता का रस निकालकर यज्ञ में पीते थे, दूसरे मुख से मदिरा पीते थे और तीसरे मुख से अन्नादिक भोजन करते थे। इन्द्र ने कुछ दिनों के उपरांत विश्वरूप से कहा कि मैं तुम्हारी दया से यज्ञ करना चाहता हूँ। जब विश्वरूप की आज्ञानुसार यज्ञ आरम्भ हुआ, तब एक दिन किसी दैत्य ने विश्वरूप के पास जाकर कहा कि तुम्हारी माता भी दैत्य की कन्या है, इस कारण हमारे कल्याण के वास्ते एक आहुति दैत्यों के नाम पर भी यज्ञ में दिया करते तो उत्तम होता। विश्वरूप उस दैत्य का कहना मान-कर आहुति देते समय दैत्यों का नाम भी धीरे से लेने लगा, इसी कारण देवतों का तेज यज्ञ करने से नहीं बढ़ा। इन्द्र ने यह वृत्तान्त जानते ही क्रोधित होकर विश्वरूप के तीनों शिर काट डाले। सो मद्य-पान करनेवाला भँवरा, सोमवल्ली पीनेवाला कबूतर और अन्न खानेवाला शिर तीतर पक्षी होकर संसार में उत्पन्न हुए। विश्वरूप के मरते ही इन्द्र का स्वरूप ब्रह्महत्या के घेर लेने से बदल गया। जब देवतों के वर्षदिन पुरश्चरण करने पर भी ब्रह्महत्या का वह महापाप नहीं छूटा तब इन्द्रादिक देवतों के विनती करने से ब्रह्माजी ने उस हत्या के चार टूक करके एक भाग पृथ्वी को दिया, इसी कारण कहीं-कहीं धरती ऊसर होती है, वहाँ पूजा-पाठ न करना चाहिए और पृथ्वी को यह वरदान दिया कि जहाँ गड़हा हो कुछ दिन में वह आपसे भर जावे। दूसरा भाग वृक्षों को दिया, जिससे कोई-कोई वृक्ष गोंद व लाही लग-कर सूख जाते हैं। गुग्गुल के सिवा और सब गोंद अशुद्ध समझना चाहिए और यह आशीर्वाद दिया कि वृक्ष काट डालने पर भी जड़ बनी रहने से फिर तैयार हो जावे। तीसरा भाग स्त्रियों को दिया, उसी कारण स्त्री महीने-महीने रजस्वला होकर पहिले दिन चाण्डालिनी, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजकी के समान रहकर चौथे दिन

पवित्र होती हैं। उन्हें यह वरदान दिया कि उनका कामदेव सदा बना रहे, इसलिए गर्भवती स्त्री का भी मन भोग करने को चाहता है। चौथा भाग जल को दिया, जिससे पानी पर काई व फेन व बुल्ले आदि होते हैं। जल को यह वरदान दिया कि जिस वस्तु में पानी डाल दे वह अधिक हो जावे। सो इन्द्र चारों जगह हत्या बट जाने से शुद्ध होकर अपना राज्य करने चला। जब त्वष्टा को विश्वरूप के मारे जाने का हाल पहुँचा तब उसने बड़ा क्रोध करके ऐसा मंत्र पढ़कर हवन किया, जिसमें इन्द्र का मारनेवाला एक पुरुष उत्पन्न हो। परमेश्वर की इच्छा से सरस्वती ने उस मंत्र का अर्थ इस तरह पर उलट दिया कि इन्द्र के हाथ से वह मारा जावे। हवन सम्पूर्ण होने के समय अग्निकुंड में से एक अति बलवान् दैत्य पर्वत के समान कालावर्ण, गदा व खड्ग हाथ में लिये हुए निकला। जितनी दूर एक तीर जाता है इतना शरीर उस दैत्य का नित्य बढ़ता था, इसी वास्ते त्वष्टा ने उसका नाम वृत्रासुर रक्खा और उसे आज्ञा दी कि इन्द्र ने तेरे भाई को मारा है सो तू जाकर अपने भाई का बदला ले। यह बात त्वष्टा के मुख से निकलते ही वृत्रासुर ने एक क्षण में इन्द्र के पास पहुँचकर ललकारा। उसका भयानक रूप देखकर और ललकार सुनकर सब देवता घबरा गये। वृत्रासुर ने चाहा कि इन्द्र को मुँह में डालकर निगल जाऊँ। इन्द्रादिक सब देवतों ने उसके सामने आकर अपने-अपने शस्त्र उस पर चलाये। जब वृत्रासुर उनके सब हथियार निगल गया तब इन्द्र देवतों समेत वहाँ से भागा और नारायणजी की शरण में जाकर विनय किया—हे दीनानाथ ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मेरे प्राण इस दैत्य के हाथ से बचाइए। हम लोगों का किया कुछ नहीं हो सकता। जिस तरह श्रावण-भादों में कुत्ते की पूँछ पकड़कर मनुष्य गंगापार नहीं जा सकता उसी तरह हमारा भजन व स्मरण करने से कोई भवसागर पार नहीं उतरता। यह स्तुति सुनते ही परमेश्वर दीनदयालु ने इन्द्रादिक देवतों को अपना भक्त जानकर चतुर्भुजी मूर्ति ने सोलह पार्षद साथ लिये हुए उनको दर्शन दिया। इन्द्रादिक देवतों ने वैकुण्ठनाथ को देखते ही दण्डवत्

करके इस प्रकार विनय की—महाराज ! यज्ञरूप आपको हम नमस्कार करते हैं। वेद शास्त्र आपकी श्वासा से उत्पन्न होने पर भी आपका आदि व अन्त नहीं जान सकते, सो हम लोग नारायण वासुदेवरूप को दण्डवत् करते हैं। आपके जो चरणकमल बड़े-बड़े योगियों और परमहंसों के हृदय में आठों पहर रहते हैं उन चरणों को हमारी दण्डवत् अंगीकार हो। हे भगवन् दीनानाथ ! सब देवता व मनुष्य तुम्हारे बनाये हुए हैं, वृत्रासुर के मारने के वास्ते कोई उपाय कीजिए, नहीं तो वह देवता व मनुष्यादिक सब जीवों को मार डालेगा। हम लोग तुम्हारे दास होकर ऐसे दुःखी हैं कि वृत्रासुर के भय से आनन्दपूर्वक निद्रा नहीं आती। अपने समय पर तुम्हारी कृपा से सब बढ़ते हैं। इस समय देवतों को बढ़ाना चाहिए, सो उसके विपरीत वृत्रासुर बढ़ा है। हमें दीन व दुःखी जानकर दयालु हूजिए, यह वचन सुनकर नारायणजी बोले—हे इन्द्र ! तूने अज्ञानता से ब्राह्मण को मारा था, उसी का यह फल है। वृत्रासुर के शरीर पर कोई शस्त्र नहीं लग सकता। तुम लोग दधीचि ऋषीश्वर की हड्डी, जिसने बहुत तप किया है, माँगकर उस हड्डी का वज्र बनाओ तो उस तप के प्रताप से वह वज्र वृत्रासुर के अंग को काटेगा। ऐसा कहकर वैकुण्ठनाथ अन्तर्धान हो गये।

दशवाँ अध्याय।

दधीचि ऋषीश्वर के पास इन्द्रादिक देवतों का हड्डी माँगने के लिए जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित ! इन्द्र नारायणजी का वचन सुनते ही सब देवतों समेत दधीचि ऋषीश्वर के पास गया और दण्डवत् करके विनय किया—हम लोग आपके पास भिक्षा माँगने आये हैं, अपने कल्याण के लिए तुम्हारे शरीर का हाड़ चाहते हैं। यह बात सुनकर ऋषि बोले—हे इन्द्र ! तुम अपने मन में विचार करो, थोड़ासा दुःख तनु पर पहुँचने से कैसा क्लेश होता है, इसलिए तुमको अपने अंग के समान दूसरे का भी समझना चाहिए। जिस तरह सब लोग अपना तनु प्यारा

जानकर उसको सुख देने और मोटा करने के लिए अनेक यत्न करते हैं, उसी तरह मुझे भी अपना शरीर प्यारा है, इसलिए क्यों ऐसा दुःख मुझे देने आये हो। इन्द्र ने उत्तर दिया कि आप यह वचन सत्य कहते हैं, पर मैं नारायणजी की आज्ञानुसार हड्डी माँगने आया हूँ, जिस तरह हरा वृक्ष अपनी छाया व फल-पुष्प से सब जीवों और पशु-पक्षियों को सुख देता है, किसी के डाली काटने पर भी दुःख नहीं मानता, उसी तरह वैष्णव और ऋषीश्वर भी अपना शरीर केवल परोपकार के लिए समझते हैं। उनका तनु दूसरे के काम आवे तो देने से नहीं मुकरते। जब इन्द्र ने ऐसा ज्ञान कहकर बहुत विनती की तब ऋषि बोले—हे इन्द्र ! यह शरीर नारायणजी ने दिया है, कदाचित वह आप आकर ऐसा कहते तो भी मैं अपनी प्रसन्नता से न मानता। पर ऐसा समझकर तुम्हारा कहना मानता हूँ कि यह तनु सदा स्थिर न रहेगा, एक दिन अवश्य इसका नाश होगा, इससे और क्या उत्तम हो सकता है जो तुम्हारे काम आवे। मैं योगाभ्यास साधकर परमेश्वर के ध्यान में बैठता हूँ, तुम एक गाय लाकर मेरा शरीर चटाओ। जब शरीर का सब मांस चाटने के उपरांत केवल हड्डी रह जावें तब उस हाड़ को लेकर अपना मनोरथ सिद्ध करना। पर मुझे तीर्थ स्नान करने की अभिलाषा है, तुम आज्ञा दो तो मैं तीर्थ स्नान कर आऊँ तब मेरे शरीर की हड्डी लेना। देवतों ने कहा कि हम इसी जगह सब तीर्थों का जल ला देते हैं, आप स्नान कर लीजिए। ऋषीश्वर ने कहा बहुत अच्छा। देवतों ने क्षण भर में सब तीर्थों का जल वहाँ ला दिया। जब ऋषीश्वर स्नान करने के उपरांत योगाभ्यास से अपने प्राण ब्रह्माण्ड में चढ़ाकर परमेश्वर के ध्यान में लीन हुए तब इन्द्र ने एक गाय मँगाकर नोन लगाकर उनका शरीर चटवाया। जब उस गाय ने सब मांस चाट लिया, केवल हड्डी रह गई तब इन्द्र ने वह हड्डी लेकर विश्वकर्मा को शस्त्र बनाने के लिए दिया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! देखो, दधीचि ऋषीश्वर को दाता समझकर राजा इन्द्र भिखारी हो गया, इसलिए दाता का नाम सब लोग लेते हैं, सूम व लालची का नाम कोई नहीं लेता। देना बहुत अच्छा होता है। जब

विश्वकर्मा ने उस हड्डी का अति तेजवान् वज्र नामक शस्त्र बना दिया तब इन्द्र उस वज्र को लेकर वृत्रासुर से लड़ने आया। वह दैत्य इन्द्र को देखकर सोचने लगा कि यह तो मेरे सामने से भाग गया था, आज न मालूम किस कारण से फिर लड़ने आया है। वृत्रासुर ने निमोची, द्विमूर्द्धा और विप्रचित्ती आदि दैत्यों को अपने साथ लेकर देवतों से बड़ा भारी युद्ध किया। जब गदा, तीर, तलवार, त्रिशूल, भुशुण्डी आदि नव शस्त्र दैत्यों के टूट गये तब वे लोग पर्वत व वृक्ष उखाड़कर मारने लगे। पर ईश्वर की दया से देवतों ने दैत्यों को मारकर हटा दिया। जब वृत्रासुर के साथी हार मानकर भागे और देवतों ने उनको पीछे से खदेरा तब वृत्रासुर ने दैत्यों को भागते देखकर कहा कि तुम लोग युद्ध से मत भागो। एक दिन अवश्य मरना है, मृत्यु के हाथ से कोई नहीं बचेगा। सो घर में मरना उत्तम नहीं होता। दो तरह की मृत्यु को उत्तम समझना चाहिए, एक योगाभ्यास करके तनु छोड़ना और दूसरे युद्ध में सम्मुख मारा जाना। इसलिए तुम लोग फिर कर लड़ाई करो, भागना उचित नहीं है।

—: ० :—

ग्यारहवाँ अध्याय।

इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब वृत्रासुर के समझाने पर भी बहुत से दैत्य भाग गये तब वृत्रासुर ने बड़े क्रोध से ललकार कहा—हे इन्द्र! भागे हुए को मारना कुछ शूरता नहीं होती। पहिले मैंने सब देवतों को जीतकर भगा दिया था, अब क्या हुआ जो मेरे साथी भागे जाते हैं। तुम खड़े रहो, मैं अकेला सबको मारूँगा। जब सब देवता उसकी ललकार सुनकर भय से पृथ्वी पर गिर पड़े तब वृत्रासुर ने लातों से सबको इस तरह रौंद डाला जैसे कमलवन को हाथी रौंद डालता है। इन्द्र ने देवतों की यह दशा देखकर जैसे अपनी गदा उसपर चलाई वैसे वृत्रासुर ने उस गदा को छीनकर ऐरावत हाथी के मस्तक पर ऐसी मारी कि हाथी साठ पग पीछे को हट गया। तब इन्द्र ने अमृत लगाकर उसका

घाव अच्छा कर दिया जब फिर इन्द्र अपने को सँभालकर वृत्रासुर के सम्मुख आया तब वृत्रासुर ने कहा कि आज बड़ा उत्तम दिन है जो तू अपने भाई व गुरु व ब्राह्मण का मारनेवाला हत्यारा मेरे सम्मुख हुआ। सबके बदले आज तुझे देवतों समेत अपने त्रिशूल से मारकर भूतनाथ के नाम का यज्ञ करूँगा। अब तू मेरे सामने से जीता नहीं जा सकता। कदाचित् तुझको अपनी रानी व राज्य प्यारा हो तो मेरे सामने से भाग जा। मैं अपने भाई का बदला लेने आया हूँ। तुझको मारने से मुझे संसार में कोई यश न मिलेगा और कदाचित् तूने मुझको मार लिया तो मैं तुरन्त परमेश्वर के चरणों के पास पहुँच जाऊँगा और यहाँ राज्य करने से बढ़कर वहाँ अतिसुख पाऊँगा। जिस तरह पक्षी का बच्चा पंख के बिना उड़ नहीं सकता, दूध पीनेवाला बालक व बछड़ा अपनी माता के भरोसे रहता और पतिव्रता स्त्री अपने स्वामी के अधीन रहती है, उसी तरह मैं श्यामसुन्दर के चरणों का ध्यान रखता हूँ। इसलिए मुझे इन्द्रासन लेने और राज्य करने से बढ़कर मारे जाने में अति आनन्द है। जो लोग अपने को बलवान् व ज्ञानी जानते हैं उनको मूर्ख समझना चाहिए। परमेश्वर सब बातों के मालिक हैं। यह बात कहकर वृत्रासुर ईश्वर के चरणों का ध्यान करने लगा।

बारहवाँ अध्याय।

वृत्रासुर का वज्र से मारा जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! यह सब ज्ञान कहकर वृत्रासुर ने बड़े क्रोध से अपना त्रिशूल इन्द्र पर चलाया। इन्द्र ने उसका शस्त्र बचाकर वही वज्र, जो हड्डी से बना था, ऐसा मारा कि वृत्रासुर की दाहिनी भुजा कटकर गिर पड़ी। तब उसने बायें हाथ से परिघ नामक शस्त्र मारकर इन्द्र के हाथ से वज्र गिरा दिया। जब इन्द्र मारे डर के वज्र को पृथ्वी पर से उठा न सका तब वृत्रासुर बोला—हे इन्द्र! तू मत डर, मुझसे शूर-वीरों की तरह युद्ध कर। कदाचित् मैंने तुझको मार लिया तो इन्द्रपुरी का राज्य करूँगा और तेरे हाथ से मारा गया तो वैकुण्ठ में जाकर सुख

भोगूँगा। इसलिए मैं मृत्यु से नहीं डरता, दोनों बातों में प्रसन्न हूँ। मारना व मरना मेरे व तेरे वश नहीं है। संसारी जीवों के सब काम परमेश्वर की आज्ञानुसार नट के खेल के समान होते हैं। सो तू हर्ष से वज्र उठाकर मुझे मार, जिसमें तुरन्त ईश्वर के चरणों के पास पहुँच जाऊँ। इन्द्र ने यह वचन सुनकर अति प्रसन्नता से कहा—हे वृत्रासुर! तेरी बुद्धि धन्य है। जब इन्द्र ने ऐसा कहकर वज्र से उसकी बाँई भुजा को भी काट डाला तब वृत्रासुर दौड़कर इन्द्र को हाथी समेत निगल गया। पर नारायणकवच के प्रताप से इन्द्र नहीं मरा और वज्र से उसकी कोख चीरकर बाहर निकल आया। परमेश्वर की कृपा से इन्द्र या हाथी को कुछ दुःख नहीं पहुँचा। इसी प्रकार सौ वर्ष तक इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध हुआ। इन्द्र ने उसी वज्र से वृत्रासुर को मार डाला। उसके तनु से एक तेज निकलकर वैकुण्ठ में चला गया। सब देवता उसके मारे जाने से हर्षित हुए, पर इन्द्र प्रसन्न नहीं हुआ।

—:०:—

तेरहवाँ अध्याय।

ब्रह्महत्या के डर से इन्द्र का भागना।

राजा परीक्षित इतनी कथा सुनकर बोले—हे मुनिनाथ! इन्द्र ऐसे बली शत्रु को मारकर क्यों नहीं प्रसन्न हुआ। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! वृत्रासुर दैत्य को त्वष्टा ब्राह्मण ने उत्पन्न किया था, इसलिए वृत्रासुर के मरते ही वृद्धारूप ब्रह्महत्या, जिसकी योनि से रक्त बहता और अंग से सड़ी मछली की दुर्गन्ध आती थी, लोहे का गहना पहिने हुए इन्द्र के पास आकर उसे निगलने के लिए दौड़ी। इन्द्र उसके डर से भागा और वृद्धारूप हत्या ने उसका पीछा किया। जब इन्द्र ने उसके हाथ से अपना बचाव कहीं न देखा तो पूर्व व उत्तर के कोने पर मान-सरोवर तालब में जाकर कमलनाल में छिप रहा और वह हत्या भ्रमररूप होकर उस फूल के चारों ओर गूँजने लगी। इस कारण इन्द्र उसके भय से बाहर नहीं निकल सकता था। जब वह क्षुधा व तृषा से अति दुःख पाने लगा तब लक्ष्मीजी ने उसका पालन किया। जब इन्द्र के छिपे रहने से

इन्द्रासन सूना हो गया तब ऋषीश्वरों ने वहाँ का राज्य राजा नहुष को देने का विचार करके उससे कहा कि हम लोग तुझे इन्द्रासन पर बैठाना चाहते हैं। राजा ने उत्तर दिया कि मुझे देवलोक में राज्य करने की सामर्थ्य नहीं है। यह वचन सुनकर ऋषीश्वर बोले कि हम लोग अपने तप व जप का फल तुझे देंगे तब वहाँ का राज्य करने योग्य हो जायगा। जब ऋषीश्वरों ने अपने तप का थोड़ा-थोड़ा पुण्य नहुष को देकर उसे इन्द्रासन पर बैठा दिया तब उसने इन्द्राणी पर मोहित होकर उससे कहला भेजा कि अब मैं इन्द्र की जगह पर राजा हूँ, तू मेरे पास क्यों नहीं आती। यह बात सुनते ही पतिव्रता इन्द्राणी ने, जो अपने स्वामी के सिवा दूसरे को नहीं चाहती थी, नहुष के भय से गुरु बृहस्पति के पास जाकर विनय किया—महाराज! राजा नहुष मनुष्य होकर मुझे भोग करने के लिए बुलाता है, जिस उपाय से मेरा पातिव्रतधर्म बचे वह यत्न कीजिए। बृहस्पतिजी बोले—तू राजा नहुष से कुछ दिन की अवधि माँग ले, मैं इन्द्र को फिर गद्दी पर बैठाने का उपाय करता हूँ। उनकी आज्ञानुसार इन्द्राणी ने कुछ दिनों की अवधि माँगकर उसे प्रसन्न किया। बृहस्पति ने अग्नि को इन्द्र का पता लगाने के लिए भेजा, सो अग्नि देवता ने बृहस्पति से आकर कहा कि इन्द्र ब्रह्महत्या के भय से मानसरोवर तालाब में छिपा है। जब इन्द्र का समाचार आने तक अवधि के दिन बीत गये और नहुष का मनुष्य फिर इन्द्राणी को बुलाने गया तब उसने बृहस्पतिजी की आज्ञानुसार राजा को कहला भेजा कि मनुष्य सौ राजसूय व अश्वमेध यज्ञ करने से इन्द्र होता है, सो तुम यज्ञ किये बिना देवलोक का राज्य करते हो, इसलिए तुम सुखपाल में बैठकर ब्राह्मणों के कंधे पर मेरे यहाँ आवो तब मैं तुम्हारे पास रहूँ। राजा ने काम के वश होकर पाप व पुण्य का कुछ विचार नहीं किया, बहुत-से ऋषीश्वरों व ब्राह्मणों को अपने सुखपाल में बरजोरी लगाकर इन्द्राणी के स्थान पर चला। ब्राह्मणों ने कभी बोझा नहीं उठाया था, इस कारण जल्दी नहीं चल सकते थे। जब राजा ने काम के मद में अन्धा होकर ऋषीश्वरों को चरण से ठोकर मारकर कहा कि जल्दी-जल्दी चलो तब ऋषीश्वरों

ने उसका अधर्म देखकर राजा को शाप दिया कि तू सर्प हो जा। यह वचन उनके मुख से निकलते ही वह सर्प होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इन्द्राणी का पातिव्रतधर्म परमेश्वर ने बचाया। बृहस्पतिजी ने मान-सरोवर तालाब पर जाकर कहा कि हे इन्द्र, तुम कमलनाल से बाहर आवो। इन्द्र ने दण्डवत् करके विनय किया कि महाराज, मैं ब्रह्महत्या के भय से बाहर नहीं आ सकता। यह बात सुनकर बृहस्पतिजी बोले कि तू मत डर, अश्वमेध करने से यज्ञ पुरुष अनेक प्रकार के पाप छुड़ा देते हैं, सो मैं भी यज्ञ कराके तेरा अपराध छुड़ा दूँगा। इन्द्र ने बृहस्पतिजी की आज्ञानुसार तालाब से निकलकर अश्वमेध यज्ञ किया तब वह ब्रह्म हत्या से छूटकर फिर दिव्यरूप हो गया और देवलोक का राज्य करने लगा।



चौदहवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का वृत्रासुर के पूर्वजन्म की कथा कहना।

परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर पूछा—हे शुकदेव स्वामी! साधु व वैष्णव परमेश्वर के भक्त होते हैं, वृत्रासुर दैत्य को जिसे त्वष्टा ने क्रोध से उत्पन्न किया था, युद्ध में मरते समय किस तरह ऐसा ज्ञान हुआ था? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जिस कारण वृत्रासुर को अन्त समय ज्ञान उत्पन्न हुआ उसकी कथा सुनो। पूर्वजन्म में वृत्रासुर चित्रकेतु नामक सातों द्वीपों का राजा था और धर्म के साथ प्रजा का पालन करता था। छोटे-बड़े सब लोग उस राज्य में अपने कर्म व धर्म से रहकर मगन थे। राजा चित्रकेतु के एक करोड़ स्त्रियाँ थीं किन्तु उसके कोई पुत्र न हुआ, इसलिए वह आठों प्रहर सोच में रहता था। एक दिन अंगिरा ऋषीश्वर अपनी इच्छा से राजमंदिर पर आये। राजा ने बड़े आदर व सम्मान से बैठाकर उनका पूजन किया। जब ऋषीश्वर ने उसको उदास देख-कर पूछा कि तुम इतने बड़े धर्मात्मा व प्रतापी राजा होकर मलीनरूप क्यों दिखलाई देते हो, तब राजा ने हाथ जोड़कर विनय किया कि महाराज, तुम्हारे आशीर्वाद से सब सुख मुझे हैं, पर संतान न उत्पन्न

होने से दुःखी रहता हूँ। जिस तरह कोई भूखे-प्यासे मनुष्य के शरीर में चन्दन आदि लगावे तो सुगन्ध सूँघने से उसकी भूख-प्यास नहीं जाती, उसी तरह पुत्र के बिना यह सातों द्वीपों का राज्य व सुख मुझे अच्छा नहीं लगता। जैसे आप दयालु होकर यहाँ आये हैं वैसे ही मेरी यह चिन्ता भी दूर कीजिए। यह बात सुनकर ऋषीश्वर बोले—हे राजन्! तुम्हारे भाग्य में सन्तान नहीं लिखी है, तुम किस वास्ते इतना सोच करते हो। हम भवसागर पार उतारने का उपाय बतलाते हैं, तुम परमेश्वर का भजन करो, जिसमें तुम्हारी मुक्ति हो। राजा बोला—महाराज! पुत्र के बिना मुझे ज्ञान व ध्यान अच्छा नहीं लगता। अंगिरा ऋषीश्वर ने पुत्र की अति अभिलाषा देखकर उससे कहा—हे राजन्! जो तुम ऐसा हठ करते हो तो तुम्हारे एक पुत्र होगा, किन्तु उसके होने पर पहले तो तुम्हें बड़ा हर्ष होगा पर पीछे से महादुःख पावोगे। राजा ने कहा—महाराज! एक बेर मुझे बेटे का सुख दिखला दीजिए, फिर जो चाहे सो हो। यह बात सुनकर अंगिरा ऋषीश्वर ने पुत्र होने के वास्ते राजा से यज्ञ कराया और पूर्णाहुति देकर जो कुछ साकल्य बचा वह प्रसाद राजा को देकर कहा—इसे तू अपनी एक रानी को खिला दे। जैसे ही राजा ने वह साकल्य अपनी बड़ी स्त्री कृतद्युती को खिलाया वैसे ही हरि इच्छा से रानी के गर्भ रह गया और दशवें महीने पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने बड़े हर्ष से छः अरब गो विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान दिया और सब छोटे-बड़े को मुहँ माँगा द्रव्यादिक देकर इस तरह प्रसन्न किया कि जैसे श्रावण-भादों में पानी बरसने से प्रजा को सुख होता है। चित्रकेतु को उस बालक से इतनी प्रीति हुई कि उसके प्रेम में वह दिन-रात बड़ी रानी के मन्दिर में पुत्र के पास रहने लगा। जब दूसरी रानियों ने देखा कि राजा बालक के मोह से आठों पहर हमारी सवति के पास रहते हैं, हम लोगों को आँख उठाकर भी नहीं देखते, उसके वश में होकर हमें अपनी लौंड़ी के बराबर भी नहीं समझते तो सवतिया-डाह से सब रानियों ने आपस में यह सलाह किया कि यदि यह बालक मर जावे तो राजा हम लोगों से भी प्रीति करेंगे। ऐसा विचाराकर एक

दिन अकेला पाकर किसी रानी ने उस बालक को जहर खिला दिया, सो वह लड़का मर गया। कृतद्युती रानी उसे सोया हुआ जानकर जब जगाने के लिए गई तब उसको मरा हुआ देखकर अति विलाप करने लगी। जब राजा ने यह समाचार सुना तो रोता-पीटता हुआ वहाँ जाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह बारह पहर तक ऐसा अचेत रहा कि उसे अपने तन की सुधि नहीं रही। राजकुमार के मरने और राजा के अचेत होने का समाचार सुनकर नगर में हाहाकार मच गया। सब छोटे बड़े रुदन करते हुए राजमन्दिर पर आये। उस बालक के मरने का जितना शोक राजा, बड़ी रानी, दास-दासी और नगरवासियों को हुआ वह वर्णन नहीं हो सकता। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! स्त्रियाँ अपने पति व कुल का भला न चाहकर केवल अपने ही तन का सुख चाहती हैं, इसलिए ज्ञानी मनुष्य को स्त्री की बात पर विश्वास करना और उसके वश में होना उचित नहीं है।

—:०:—

पन्द्रहवाँ अध्याय।

नारदजी और अंगिरादि ऋषीश्वरों का राजमन्दिर पर आना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब चित्रकेतु के अचेत होने का समाचार चारों तरफ फैला तब नारद मुनि और अंगिरा आदि ऋषीश्वर यह सुनकर राजा को बोध करने आये। उन्होंने चित्रकेतु को उठाकर कहा—हे राजन्! तू किस वास्ते इतना विलाप करता है, वह बालक तुझसे क्या प्रयोजन रखता था। ये सब संसारी जीव अपने पूर्वजन्मों का बदला लेने के लिए जगत् में आकर इकट्ठे होते हैं। जब उस कर्म का बदला मिल जाता है तो अन्त में वे लोग फिर विलग हो जाते हैं। इसलिए सब बातों को पिछले जन्म के संस्कार से जानकर मरने का शोक न करना चाहिए, संसार स्वप्नवत् है, जिस तरह मनुष्य को स्वप्न में अनेक वस्तुएँ दिखलाई देकर जागने के उपरांत कुछ नहीं मिलता तब वह जानता है कि यह सब स्वप्न की बातें झूठी थीं, उसी तरह संसार में जब तक मनुष्य को ज्ञान नहीं प्राप्त होता तब तक वह अज्ञानरूपी निद्रा में अचेत रहता है। सो

तुम इस बात को समझकर शोक छोड़ दो। उस समय राजा ने पुत्र के शोक में डूबे रहने से किसी ऋषीश्वर को नहीं पहिचाना था, इसलिए उनसे पूछा कि तुम लोग कौन हो? तब अंगिरा ऋषीश्वर ने नारद आदि ऋषीश्वरों का नाम बतलाकर राजा से कहा—मैं अंगिरा ऋषीश्वर हूँ, मैंने तुम्हारे यहाँ पुत्र होने का उपाय करके पहिले ही कह दिया था कि बेटा उत्पन्न होने में तुम्हें हर्ष व विषाद दोनों होंगे। सो अब तुम अपने मन को धैर्य देकर मेरे बचन का विश्वास मानो कि हानि व लाभ सब परमेश्वर की इच्छा से होता है, उसमें कोई तिल भर घटा-बढ़ा नहीं सकता। इसलिए तुम हरिचरणों में ध्यान लगाकर अपनी मुक्ति का यत्न करो, इस झूठे संसार की माया छोड़ दो, जिसमें तुम्हारा कल्याण हो। नारदजी ने भी इसी तरह बहुत समझाकर कहा कि हे राजन्! हम तुमको एक मंत्र बतलाते हैं उसे तुम सात दिन तक जपो, तुम्हें शेष भगवान् का दर्शन मिलेगा।

——:o:——

सोलहवाँ अध्याय।

नारदमुनि के उपदेश से राजा चित्रकेतु को ज्ञान प्राप्त होना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! राजा चित्रकेतु बड़ी रानी समेत उस बालक के शोक में ऐसा व्याकुल था कि ऋषीश्वरों के समझाने पर भी उसका शोक नहीं गया। जब उसने आँख खोलकर अंगिरा और नारद मुनि को पहिचाना तब उनके चरण अपने आँसुओं से धोकर विनयपूर्वक कहा कि महाराज! एक बेर किसी तरह इस बालक को जिला दो तो मुझे धैर्य हो। यह वचन सुनते ही नारद मुनि ने अपने योगबल से उस बालक के जीवात्मा को बुलाकर आकाश में खड़ा कर दिया और राजा व रानी के सम्मुख उससे कहा कि तुम अपने शरीर में आकर माता-पिता का शोक दूर करके इन्हें सुख दो और सातों द्वीपों का राज्य करो। यह जीवात्मा चित्रकेतु को गाली देकर बोला—यह मेरे किस जन्म के माता-पिता हैं और मैं किस जन्म का उनका बेटा हूँ। संसारी व्यवहार सदा से यों ही चला आता है जिस तरह मनुष्य रुपया व मोहर हाथ में

रहने से उनको अपना जानते हैं, पर वह किसी का नहीं होता उसी तरह जीवात्मा भी चौरासी लाख योनि में भ्रमता है पर वह किसी के अधीन नहीं होता। इसलिए मेरा व इनका कुछ नाता नहीं है। पूर्वजन्म में मैं और चित्रकेतु दोनों मनुष्य राजा होकर आपस में लड़ते थे। जब मैं अपनी सेना कट जाने से भरभण्ड के वन में जाकर छिपा तब उसने वहाँ आकर मेरा शिर काट लिया था। उसी कारण इस जन्म में मैंने पुत्र होकर इसे दुःख दिया। ये सब रानियाँ पिछले जन्म में एक करोड़ चिउँटियाँ होकर एक माँद में रहती थीं, हमने दँतौन करते समय उनके बिल में पानी गिरा दिया, सो वे सब मर गईं। इसी कारण उन्होंने इस जन्म में मुझे विष देकर अपना बदला लिया। इसी तरह सब जीव संसार में जन्म लेकर एक दूसरे से अपना बदला लेते हैं। ऐसा कहकर वह जीवात्मा चला गया और ये बातें सुनकर राजा व रानी का शोक छूट गया। उन्होंने कहा कि मनुष्य तन में जन्म पाकर सुकर्म करना चाहिए। यह पुत्र मेरा शत्रु था, इसके मरने का अब कुछ शोक नहीं है। राजा की दूसरी स्त्री जिसने उस बालक को विष दिया था, यह हाल देखकर बहुत पछताई और नारदजी व अंगिरा ऋषीश्वर से पूछकर शास्त्रानुसार प्रायश्चित्त किया। राजा चित्रकेतु उसी समय घर व राज्य छोड़कर वन को इस तरह चला गया जिस तरह चहले में फँसा हुआ हाथी निकलकर चला जावे। राजा यमुना के किनारे जाकर नारदजी का बतलाया हुआ मन्त्र जपने लगा और उस मन्त्र के प्रताप से सातवें दिन शेषजी ने उसको दर्शन दिया। राजा ने शेषजी को दण्डवत् करके विधिपूर्वक उनकी पूजा व स्तुति की। शेष भगवान् ने प्रसन्न होकर चित्रकेतु को उसी तन से विद्याधरों का राजा बना दिया और ऐसा वरदान दिया कि सदा तुझे हरिचरणों में भक्ति बनी रहे। एक दिव्य विमान, क्षणभर में सब जगह पहुँचनेवाला, उसे देकर शेषजी अन्तर्धान हो गये। चित्रकेतु विद्याधरों का राजा होकर अपनी स्त्रियों समेत विमान पर बैठकर सैर किया करता था।

—:०:—

सत्रहवाँ अध्याय।

पार्वतीजी का चित्रकेतु को शाप देना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! एक दिन चित्रकेतु अपनी स्त्रियों समेत विमान पर बैठकर सैर करने निकला और कैलास पर्वत पर, जहाँ महादेवजी पार्वती को अपनी जाँघ पर बैठाये हुए भृगु आदि ऋषीश्वरों को ज्ञान उपदेश कर रहे थे, जा पहुँचा। उसने महादेवजी को देखते ही हँसकर कहा कि देखो, इन्होंने तपस्वी, ब्रह्मज्ञानी व जगद्गुरु होने पर भी ऐसी लज्जा छोड़ दी कि विषयी मनुष्य के समान स्त्री को सभा में जाँघ पर बैठाये हैं। संसारी जीव भी अपनी स्त्री को अकेले में लेकर बैठता है। ऐसा वचन सुनने पर भी महादेवजी हँसकर चुप हो रहे, परन्तु पार्वतीजी को बड़ा क्रोध आया, उन्होंने शाप दिया कि तुम दैत्य-योनि में जन्म लेकर कुछ दिनों तक इस हँसने का दण्ड भोगो। चित्रकेतु ने उस शाप को अपने मस्तक पर चढ़ा लिया और विमान पर से उतरकर पार्वतीजी को दण्डवत् करके बोला कि हे माता, तुम्हारा शाप मैंने हर्ष से अंगीकार किया। परमेश्वर की यही इच्छा थी। संसार में मनुष्य दुःख व सुख दोनों भोगता है, इसलिए मैं शाप व वरदान, नरक व स्वर्ग दोनों समान जानता हूँ। मुझे ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि मैं महादेवजी को ज्ञान सिखलाऊँ। मैंने इसलिए इतना कहा कि जिसमें संसारी लोग यह हाल सुनकर ऐसे निर्लज्ज न हों। चित्रकेतु शाप को हरिइच्छा जानकर आनन्दपूर्वक चला गया। तब शिवजी बोले—हे पार्वती, तुमने परमेश्वर के भक्तों का माहात्म्य व स्वभाव देखा, इतना बड़ा शाप सुनकर भी चित्रकेतु दुःखी न हुआ। मुझे हरिभक्तों के समान दूसरा कोई प्यारा नहीं लगता। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! वही चित्रकेतु पार्वतीजी के शाप से वृत्रासुर दैत्य हुआ। इसलिए परमेश्वर ने अपना भक्त जानकर अन्त समय में उसे ज्ञान दिया था, सो वह असुर तन छोड़ने के उपरान्त वैकुण्ठ में जाकर परमेश्वर की सेवा करने लगा। हे राजन्! चित्रकेतु की यह कथा कहने व सुननेवाला मनुष्य भवसागर पार उतर जाता है।

——:o:——

अठारहवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का सविता आदि की कथा कहना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! अब मैं सविता देवता आदि की सन्तान की कथा कहता हूँ, सुनो। सविता देवता के पृष्णी नामक स्त्री से अग्निहोत्र आदि तीन बेटे और सावित्री आदि तीन कन्याएँ, भग देवता के सिद्धि नामक स्त्री से दो पुत्र और एक कन्या, धाता देवतों के यहाँ उरगादिक चार बेटी और पूर्णमास आदिक चार बालक, अग्नि देवता के कृत्तिका नामक स्त्री से पुरीष आदिक बेटे, वरुणदेवता की चर्षणी नामक स्त्री से वाल्मीकि आदि ऋषीश्वर दो पुत्र उत्पन्न हुए। मित्रावरुण देवता का वीर्य उर्वशी अप्सरा को देखकर गिर पड़ा था, सो वह वीर्य घड़े में रखने से अगस्त्य व वशिष्ठजी ने जन्म पाया। इन्द्र की पुलोमा स्त्री से जयन्त आदि तीन पुत्र, वामन भगवान् के कीर्ति नामक स्त्री से सुभग नाम का बालक, कश्यप के दिति नामक स्त्री से हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष दो पुत्र, हिरण्यकशिपु के कयाधू नाम की स्त्री से सिंहिका नामक कन्या और सिंह्लाद, प्रह्लाद, अह्लाद तीन पुत्र उत्पन्न हुए। वह कन्या विप्रचित्ती दैत्य को ब्याही गई, जिससे राहु उत्पन्न हुआ। सिंह्लाद का बेटा पंचजन और प्रह्लाद का पुत्र वातापी दानव हुआ, जिसको अगस्त्यजी ने मारा। अह्लाद के महिषासुर और वाष्कल दो बेटे हुए। प्रह्लाद से विरोचन उत्पन्न हुआ। विरोचन के देवी नाम की स्त्री से राजा बलि हुए, उससे बाणासुर आदि सौ पुत्र हुए। कश्यप के दिति स्त्री से मरुद्गण नामक उंचास बालक उत्पन्न होकर इन्द्र के समान देवता हो गये। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा कि महाराज, दिति के पुत्र दैत्य किस तरह देवता हुए, सो वर्णन कीजिए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब परमेश्वर ने वाराह और नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दिति के दोनों पुत्रों को मार डाला तब दिति ने बहुत उदास होकर कहा कि मेरे दोनों बालक इन्द्र ने मरवा डाले, अब मैं ऐसा उपाय करूँ कि जिसमें इन्द्र का मारनेवाला पुत्र मेरे हो। इसी इच्छा से दिति अपने स्वामी की सेवा प्रेम से करने

लगी। एक दिन कश्यपजी ने प्रसन्न होकर उससे पूछा कि हे दिति, मैं तेरे ऊपर बहुत हर्षित हूँ, तुझे जो इच्छा हो सो वरदान माँग ले। तब दिति हाथ जोड़कर बोली—महाराज! तुम प्रसन्न होकर वरदान देने के लिए कहते हो तो एक पुत्र मुझे ऐसा दीजिए कि जो इन्द्र को मारकर अमर रहे। यह बात सुनते ही कश्यपजी ने उदास होकर मन में विचारा कि मैं वचन दे चुका, अब क्या करूँ। इन्द्र परमेश्वर का भक्त है, उसके प्राण लेना न चाहिए, और मेरा वचन भी झूठा नहीं हो सकता। यह विचारकर कश्यपजी ने कहा—हे दिति, तू अगहनमास का व्रत रक्खे तो तेरे ऐसा पुत्र उत्पन्न हो। यह सुनकर दिति बोली कि महाराज, मुझे उसकी विधि बतला दीजिए, मैं यह व्रत करूँगी। कश्यपजी ने कहा कि अगहन मास के शुक्लपक्ष से उस व्रत को आरम्भ करके प्रतिदिन ब्रह्मचर्य रहना चाहिए। इस व्रत में दिन को सोना, नंगी होकर स्नान करना, नीच जाति से बोलना, शिर के बाल खुले रखना और झूठ बोलना मना है। आठों पहर शुद्ध रहना चाहिए। लक्ष्मीनारायण और सावित्री स्त्रियों की पूजा विधिपूर्वक वर्ष दिन तक नित्य करना चाहिए। तू यह व्रत रक्खे तो तेरे ऐसा पुत्र उत्पन्न हो कि इन्द्र को मारकर अमर रहे। पर नारायणजी ऐसा न चाहेंगे तो तेरे व्रत में विघ्न हो जायगा। यह वचन सुनकर दिति प्रसन्नता से विधिपूर्वक व्रत रखने लगी। इन्द्र ने जब यह वृत्तान्त सुना तो उसे अति भय हुआ। उसने मन में कहा कि यह मेरे मरने का संयोग हुआ है। अब मैं किसी तरह बच नहीं सकता। ऐसा विचारकर इन्द्र ब्राह्मणरूप बनकर दिति के पास गया और दिन-रात उसकी सेवा करने लगा। दिति उसकी सेवा से बहुत प्रसन्न रहने लगी। ज्यों-ज्यों व्रत सम्पूर्ण होने के दिन निकट पहुँचते जाते थे, त्यों-त्यों इन्द्र को अधिक सोच होता था। जब उस व्रत के सम्पूर्ण होने में पाँच-चार दिन रह गये तब परमेश्वर की इच्छा से एक दिन दिति शिर के बाल खुले छोड़कर जूठे मुँह सो गई। ये दोनों बातें व्रत में अशुद्ध हैं, यह विचारकर इन्द्र अपना छोटा रूप बनाकर वज्र लिए हुए दिति के पेट में घुस गया और गर्भ में जो बालक था

उसके सात भाग कर डाले। वे सातों रोने लगे, फिर इन्द्र ने एक-एक के सात-सात टुकड़े किये, पर नारायणजी की इच्छा से कोई नहीं मरा। वे उचांस बालक होकर रुदन करके बोले—हे इन्द्र! तुम हमें मत मारो, हम लोग तुम्हारी सहायता करेंगे। यह सुनकर इन्द्र उन लड़कों से बोले—हे भाई! अब तुम मत रोवो, मरुत नाम होकर मेरे साथ रहोगे। फिर इन्द्र उंचासों बालकों समेत गर्भ से बाहर निकलकर इन्द्ररूप हो गया। जब दिति ने जागकर इन्द्र को उंचास बालकों समेत खड़े हुए देखा तो उससे पूछा—हे इन्द्र, मैंने एक पुत्र के लिए व्रत किया था, उंचास बालक किस तरह उत्पन्न हुए। यह वचन सुनकर इन्द्र डरता व काँपता हुआ बोला—हे माता, जब मैंने तुमको जूठे मुँह व खुले बाल सोते हुए देखा तो व्रत को अशुद्ध जानकर अपने प्राण बचाने के लिए तुम्हारे पेट में घुस गया और अपने वज्र से उस बालक के उंचास भाग किये, पर तुम्हारे व्रत व पूजा के प्रताप से वह उंचासों अमर होकर जीते रहे। अब मैं इन बालकों के साथ तुम्हारे गर्भ से निकला, इस कारण ये सब मेरे भाई होकर इन्द्रपुरी में मेरे साथ रहेंगे। यह बात सुनते ही दिति अति प्रसन्न होकर बोली—हे इन्द्र, तूने ब्राह्मणरूप धरकर मेरी बड़ी सेवा की, इसलिए अब मुझे तेरे मरने की कुछ इच्छा नहीं है। ये लोग भाई के समान तेरे साथ रहकर समय पर काम आवेंगे। जब यह वचन सुनकर इन्द्र को अपने मरने का भय छूट गया तब वह बड़े हर्ष से दिति को साष्टांग दण्डवत् करके उंचासों बालकों समेत इन्द्रलोक में जाकर राज्य करने लगा। हे राजन्! इस तरह दिति के पुत्र देवता हो गये थे। यह कथा सुनकर राजा परीक्षित अति प्रसन्न हुए।



उन्नीसवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का उस व्रत की विधि कहना।

परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर पूछा—महाराज! इस व्रत का बहुत बड़ा प्रताप है, इसकी विधि बतलाइए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जो स्त्री यह व्रत करना चाहे वह अपने स्वामी से आज्ञा लेकर अगहन

की अमावस को नहाकर पहिले मरुतदेवता की कथा सुने, फिर शूकर की खोदी हुई मिट्टी शरीर में मलकर स्नान करे, दूसरे दिन प्रतिपदा से व्रत आरम्भ करके ब्रह्मचर्य रहे और शास्त्रानुसार नित्य लक्ष्मीनारायण की पूजा करके हाथ जोड़कर उनके मंत्र से स्तुति करे। फिर सावित्री स्त्री को पूजकर अग्नि में खीर की आहुति दे और ब्राह्मण को खीर खिलाकर बची हुई खीर आप खावे। इसी तरह नित्य वर्ष दिन तक बराबर व्रत व पूजन करके कार्त्तिक शुक्ल पूर्णमासी को विधिपूर्वक उद्यापन करे। ब्राह्मण और कंगालों को भोजन करावे। उद्यापन करानेवाले आचार्य को शय्यादान, गौ और द्रव्यादिक देकर प्रसन्न करे। इस तरह व्रत रखनेवाली स्त्री देवता के समान पुत्र पाकर सदा सावित्री रहती है, संसार में उसके सब मनोरथ पूरे होते हैं और मरने के उपरांत मुक्ति पाती है। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! हमने पुंसवन नामक व्रत और मरुतों के जन्म की कथा तुमको सुनाई। व्रत का यह माहात्म्य सुनकर परीक्षित अति प्रसन्न हुए।

सातवाँ स्कन्ध।

नृसिंह भगवान् का हिरण्यकशिपु को मारना।

दो०—लिखौं कथा प्रह्लाद की जाकी भक्ति अपार। वाकी रक्षा के लिए भे नरहरि अवतार॥

पहिला अध्याय।

शुकदेवजी का जय-विजय की कथा वर्णन करना।

राजा परीक्षित इतनी कथा सुनकर बोले—हे शुकदेव स्वामी! परमेश्वर के निकट दैत्य और देवता बराबर हैं, फिर क्यों नारायणजी देवतों की सहायता करके दैत्यों को मारते हैं? इस बात का मुझे निर्गुण के गुणों में सन्देह है, सो छुड़ा दीजिए। जिस तरह किसी के दो पुत्र हों वह दोनों पर समान प्रीति रखता है उसी तरह देवता व दैत्य परमेश्वर की इच्छा से उत्पन्न हुए हैं, दोनों एक समान हैं, किस कारण नारायणजी देवतों पर दया करते और दैत्यों का वध करते हैं। यह वचन सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तुमने यह बहुत अच्छी बात भगवान् की भक्ति बढ़ानेवाली पूछी है। जो कथा मैंने नारद आदि ऋषीश्वरों से सुनी थी वह तुमसे कहता हूँ, सुनो। परमेश्वर निर्गुणरूप को सबसे न्यारा समझना चाहिए, पर उनकी माया से तीन गुण सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण प्रकट हुए हैं। इसलिए सतोगुण की पारी में देवतों को बढ़ाकर रजोगुण के समय दैत्यों का प्रताप अधिक करते हैं। तमोगुण की पारी में मनुष्य का भाग्य उदय होता है। सो एक समय राजा युधिष्ठिर ने शिशुपाल की मुक्ति राजसूय यज्ञ में देखकर नारदजी से पूछा कि महाराज, जिस शिशुपाल ने श्रीकृष्णजी त्रिलोकीनाथ को दुर्वचन कहा, उसकी जिह्वा के सौ टुकड़े हो जाना उचित था, सो उसने मुक्ति पाई, यह बड़े आश्चर्य की बात है। तब नारद मुनि बोले—हे राजन्!

परमेश्वर सबको एकसा जानते हैं। जो मनुष्य अपना मन काम, क्रोध, लोभ, मोह व किसी प्रकार से भी उनमें लगावे वह उन्हीं का रूप इस तरह हो जाता है कि जिस तरह भृंगी कीड़े को देखने से दूसरे कीड़े उसी का रूप हो जाते हैं। देखो, गोपियों ने नारायणजी को अपना पति जानकर प्रीति की, शिशुपाल और रावण आदि ने शत्रु समझा, यदुवंशियों ने भाई-बन्धु, युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने ईश्वर जानकर उनमें चित्त लगाया, सो सब वे उनकी कृपा से कृतार्थ हो गये। एक शिशुपाल की मुक्ति होने में क्या संदेह है। शिशुपाल और दन्तवक्र तुम्हारी मौसी के बेटे, जय-विजय नामक द्वारपाल हैं, ब्राह्मण के शाप से वैकुण्ठ से गिरकर इन्होंने दैत्ययोनि में जन्म पाया था। तीनों जन्म में परमेश्वर से शत्रुभाव रखने के कारण नारायणजी के हाथ से मारे गये, अब तीसरे जन्म में मुक्त हुए हैं। यह सुनकर युधिष्ठिर बोले—हे मुनिनाथ! वैकुण्ठ में रहनेवालों के शरीर व प्राण संसारी मनुष्यों के समान नहीं होते, उनका चैतन्यरूप होता है। वैकुण्ठवासी पाप नहीं करते, सो उन्होंने बिना अपराध किये किस वास्ते दैत्य का तनु पाया। हिरण्यकशिपु दैत्य के यहाँ प्रह्लाद-जैसा परम भक्त क्यों उत्पन्न हुआ, उसका वर्णन कीजिए। नारद मुनि बोले—हे राजन्! एक दिन सनकादिक परमेश्वर के दर्शन के वास्ते वैकुण्ठ में गये। सो जय-विजय ने ईश्वर की आज्ञानुसार उन्हें भीतर नहीं जाने दिया। पाँच-पाँच वर्ष के बालक जानकर उनका अपमान किया। उन्होंने क्रोधवश जय-विजय को शाप देकर कहा कि हम लोग नारायणजी का दर्शन करने आये थे, सो तुम्हारे रोक देने से तीन क्षण दर्शन मिलने में विघ्न हुआ, इसलिए तुम दोनों यहाँ रहने योग्य नहीं हो। वैकुण्ठ से गिरकर दैत्ययोनि में जन्म लो, तीसरे जन्म में उद्धार होकर फिर वैकुण्ठ में आवोगे। सो हे युधिष्ठिर! वही दोनों भाई शाप के मारे हिरण्याक्ष व हिरण्यकशिपु नामक दैत्य दिति से उत्पन्न हुए। हिरण्याक्ष ने युवा होकर ऐसा विचारा कि देवता लोग पृथ्वी पर यज्ञ व होम होने से अपना भाग पाकर बलवान् होते हैं, सो मैं पृथ्वी को उठाकर पाताल में ले जाऊँ तो

किस तरह कोई यज्ञ-हवन करेगा और यज्ञ का भाग न पाने से सब देवता भोजन बिना दुर्बल होकर मर जायँगे। जब हिरण्याक्ष ऐसा विचारकर पृथ्वी को पाताल में ले गया तब नारायणजी ब्रह्मा के विनय करने से वाराह अवतार लेकर पाताल में चले गये और हिरण्याक्ष को मारकर पृथ्वी को लाकर फिर ज्यों का त्यों स्थिर कर दिया। नृसिंह अवतार लेकर प्रह्लाद भक्त के प्राण बचाने के लिए हिरण्यकशिपु को मारा। जब वह तनु छोड़कर उन दोनों ने विश्रवा मुनि के यहाँ केसी नाम की स्त्री से जन्म पाया और रावण व कुम्भकर्ण कहलाये तब नारायणजी ने रामचन्द्र का अवतार लेकर उनका वध किया। अब उन्होंने क्षत्रियवर्ण होकर तीसरा जन्म तुम्हारी मौसी के घर लिया, सो उसी विरोध से शिशुपाल क्रोधरूप होकर परमेश्वर का भजन करता था। अब श्रीकृष्णजी ने सुदर्शनचक्र से मारकर उसे मुक्त किया। वे दोनों भाई शिशुपाल व दंतवक्र श्यामसुन्दर के हाथ से मारे जाकर फिर वैकुण्ठ में अपने स्थान पर पहुँचे। इतनी कथा सुनकर युधिष्ठिर ने नारद मुनि से पूछा कि महाराज, प्रह्लाद-जैसे परम भक्त व गुणवान् से हिरण्यकशिपु ने क्यों शत्रुता करके उसको दुःख दिया और प्रह्लाद-जैसा परमभक्त दैत्य-कुल में क्यों उत्पन्न हुआ, यह मुझे बतलाइए।

दूसरा अध्याय।

नारदजी का हिरण्यकशिपु की कथा कहना।

नारदजी युधिष्ठिर की बात सुनकर बोले—हे राजन्! जब हिरण्याक्ष दैत्य वाराहजी के हाथ से मारा गया तब हिरण्यकशिपु क्रोधित होकर अपने साथी विप्रचित्ती और शतबाहु आदि दैत्यों से बोला—तुम लोग मेरा वचन सुनो। देवतों ने विष्णु भगवान् को फुसलाकर मेरे भाई को मरवा डाला। नारायणजी बालकों के समान बड़े अज्ञानी हैं, जो कोई उनकी विनती करता है उसी की सहायता करते हैं। इसलिए मैं अभी हिरण्याक्ष के नाम पर पानी न देकर विष्णु भगवान् को त्रिशूल से मारूँगा और उन्हीं के रक्त से अपने भाई को तिलांजलि दूँगा। दुर्बल देवतों को

क्या मारूँ। जब मैं नारायणजी को, जो सब देवतों की जड़ हैं, मार लूँगा तब सब देवता बिना मारे आप ही मर जायँगे। इस कारण तुम लोग उस मूल को उखाड़ने का यह उपाय करो कि जिस जगह ब्राह्मणों या ऋषीश्वरों को यज्ञ व हवन करते देखो तो उनका यज्ञ विध्वंस कर डालो और जहाँ गो व ब्राह्मण को पावो मार डालो। संसार में किसी को तप, जप व हरिभजन मत करने दो। यह वचन सुनते ही दैत्य लोग सब जगह ढूँढ़-ढूँढ़कर गो, ब्राह्मण और ऋषीश्वरों को मारने लगे। जब हिरण्याक्ष की माता, स्त्री और बेटों ने उसके मरने का अति शोक किया तब हिरण्यकशिपु ने उनको इस तरह समझाया कि मेरा भाई शत्रु के सम्मुख युद्ध में मारा गया है, इसलिए उसका शोक न करना चाहिए। जीव कभी नहीं मरता और शरीर किसी का सदा स्थिर नहीं रहता, इसलिए मरने का शोक अज्ञानी मनुष्य करते हैं। इसका मैं एक इतिहास कहता हूँ, सुनो। उत्तर देश में सुयज्ञ नाम का एक राजा रहता था। वह भी इसी तरह युद्ध में मारा गया। उसकी रानियों ने मोहवश लोथ के पास बैठकर ऐसा विलाप किया कि सूर्य अस्त होने पर भी उसकी लोथ नहीं जलाई। तब यमराज पाँच वर्ष के बालक बनकर वहाँ आये और राजा के जाति-भाई व रानियों को समझाकर कहा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम लोग ज्ञानी होकर इतना खेद करते हो। संसार की गति देखो, जहाँ से जीव आया था वहाँ चला गया। तुम लोग भी उसी जगह अवश्य जावोगे। फिर तुम्हारा रोना वृथा है। जिसके वास्ते तुम रोते हो वह शरीर ज्यों का त्यों यहाँ पड़ा है और जो इस काया में बोलने व खाने-पीनेवाला सामर्थी पुरुष था उसको तुमने कभी आँख से नहीं देखा। फिर किस कारण शोक करते हो। सब जीवों की रक्षा प्रारब्ध के अधीन समझना चाहिए। देखो मैं पाँच वर्ष का बालक अकेला वन में फिरता हूँ, बिना मृत्यु आये नहीं मरता। मेरे माता-पिता ने मुझको छोड़ दिया है, इसलिए मुझको किसी से प्रीति नहीं है। जिसने गर्भ में मेरा पालन किया था वही अब भी रक्षा करेगा। जिस तरह वृक्ष लगानेवाला अपने पेड़ को सींचकर उसकी रक्षा करता है,

वृक्ष अपनी रक्षा आप नहीं कर सकता उसी तरह नारायणजी सब जीवों का पालन करते हैं। कदाचित तुम लोग ऐसा कहो कि राजा युद्ध में न जाता तो क्यों मरता, सो यह बात निश्चय करके जानो कि जब मृत्यु आती है तब मनुष्य लोहे के कोट में भी बन्द रखने से नहीं बचता। जिस तरह घर बनता और कुछ दिनों के उपरान्त गिर पड़ता है उसी तरह शरीर का धर्म बनना और बिगड़ना है। यह सदा स्थिर नहीं रहता और जीव सदा अमर होकर आकाश के समान रहता है। जिस तरह दश बर्तन पानी से भरकर धूप में रख दो तो सूर्य की छाया पड़ने से दूसरे सूर्य दिखलाई देते हैं। जब उस बर्तन को तोड़ डालो तब फिर वह प्रकाश सूर्य में मिल जाने से उन बर्तनों में देख नहीं पड़ता। जिस तरह उन बर्तनों के टूटने से सूर्य का प्रकाश नष्ट नहीं होता उसी तरह इस जीव को भी समझो। जैसे आग लकड़ी में नहीं दिखलाई देती उसी तरह यह जीव बोलता पुरुष शरीर में रहकर दृष्टि में नहीं आता। जब तक वह जीवात्मा शरीर में था तब तक राजा जीता रहा, अब तुम जितना चाहो उतना रुदन करके अपने प्राण भी दे डालो, पर उससे भेंट नहीं हो सकती। कर्मों के फल से न मालूम वह जीव कहाँ चला गया। कदाचित तुम लोग रोते-रोते मर जावोगे तो अकाल मृत्यु होने के कारण नरक में दुःख भोगना पड़ेगा। जैसे कुरंग पक्षी बच्चों के मोह से जाल में फँसकर नष्ट हुआ था, वही गति तुम्हारी भी होगी। जब ऐसा ज्ञान सुनकर रानियों का शोक मिटा तब उन्होंने राजा को दग्ध किया और बालकरूप यमराज वहाँ से अन्तर्धान हो गये। सो तुम लोग भी यही समझकर हिरण्याक्ष के मरने का शोक न करो। हिरण्यकशिपु की ये बातें सुनकर हिरण्याक्ष की माता दिति, स्त्री रुधाभानु और शकुन आदि उसके बेटों का शोक दूर हुआ।

तीसरा अध्याय।

मंदराचल पर्वत पर जाकर हिरण्यकशिपु का तप करना।

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर ! जब हिरण्यकशिपु के समझाने से उनका शोक कम हुआ तब दिति ने कहा कि हे बेटा, नारायणजी ने देवतों की सहायता करके तेरे भाई को मारा है, सो तू भी देवतों को मारकर अपने भाई का बदला ले। हिरण्यकशिपु बोला—हे माता, हिरण्याक्ष को परमेश्वर ने मारा था, इसलिए मैं परमेश्वर को मारकर अपने भाई का बदला लूँगा। पर मैंने यह उपाय विचारा है कि पहिले ब्रह्मा का तप करके उनसे ऐसा वरदान माँगू कि जिससे मैं कभी न मरूँ, तब नारायणजी का सामना करके उन्हें मारूँगा। यह कहकर हिरण्यकशिपु अपनी माता से बिदा हुआ और मन्दराचल पहाड़ पर जाकर तप करने लगा। उसने सौ वर्ष तक ऊर्ध्व-बाहु एक पैर के अँगूठे पर खड़े रहकर ब्रह्माजी का तप किया। तप करते समय अपना अंग न हिलाकर सूर्य भगवान् को देखता रहा। उसके चारों ओर मिट्टी जमा होने और घास उगने से सर्प व बिच्छू ने अपना बिल बना लिया। तप के प्रताप से उसका ऐसा तेज बढ़ा कि नदी, पर्वत, समुद्र सब जलने लगे। जब देवतों को उसकी ज्वाला पहुँची तब उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर कहा कि महाराज, हिरण्यकशिपु के तपोबल से हमें अतिकष्ट होता है, सो आप जाकर उसे वरदान देकर तप करना छुड़ाइए, नहीं तो हिरण्यकशिपु आपके उत्पन्न किये हुए जीवों को अपने तेज से भस्म करके दूसरी सृष्टि बनाना चाहता है। देवतों का यह वचन सुनकर ब्रह्माजी भृगु आदिक ऋषीश्वरों को अपने साथ लेकर हिरण्यकशिपु के पास गये और उसका तेज देखकर ब्रह्माजी ने कहा—हे कश्यपनन्दन ! तूने बड़ा भारी तप करके मुझे अति प्रसन्न किया। ऐसा दूसरे से नहीं हो सकता, जो सौ वर्ष तक बिना अन्न जल किये जीता रहे। अब तुझे जिस वरदान की इच्छा हो, सो माँग। यह कहकर जैसे ब्रह्माजी ने अपने कमण्डलु का जल उस पर छिड़क दिया वैसे ही उसके शरीर का मांस जो दीमक लगने से केवल हड्डी रह गई थीं ज्यों का त्यों बलवान व पुष्ट हो गया और सुवर्ण के समान

चमकने लगा तब हिरण्यकशिपु ने दण्डवत् व स्तुति करके ब्रह्माजी से हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज ! आप जगद्गुरु हैं । सब जड़ व चैतन्य की उत्पत्ति करते हैं, आप ही यज्ञों का विधान व धर्मों की रक्षा करनेवाले निर्गुणरूप हैं, यह स्वरूप केवल संसार की रचना करने के लिए धारण करते हैं । जो आप दयालु होकर मुझे वरदान देने को कहते हैं तो मुझको ऐसा वरदान दीजिए कि आपका उत्पन्न किया हुआ कोई जीव जड़ व चैतन्य, देवता व दैत्य और मनुष्यादिक कोई मुझे मार न सके । मैं न दिन को मरूँ न रात को, न पृथ्वी पर मरूँ न आकाश में, कोई शस्त्र मुझे न लगे और युद्ध में कोई मेरा सामना न कर सके । योग व तप करने से जो सिद्धि होती है वह सिद्धि मुझको हो जावे । मैं देवता, दैत्य व मनुष्यादिक सब जीवों का राजा हो जाऊँ और मेरी सामर्थ्य कभी न घटे ।

चौथा अध्याय ।

हिरण्यकशिपु को ब्रह्माजी का वरदान देना ।

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर ! ब्रह्माजी ने हिरण्यकशिपु की बात सुनकर विचारा कि इस अधर्मी दैत्य को ऐसा वरदान देना न चाहिए, पर यदि वरदान नहीं देता तो यह तप करना न छोड़ेगा । इसलिए वरदान दिये देता हूँ, फिर नारायणजी की दया से यह मारा जायगा । ऐसा विचारकर ब्रह्माजी ने कहा—हे हिरण्यकशिपु ! तूने अति कठिन वर माँगा है, पर तेरे तप के प्रताप से यह वरदान मैंने तुझको दिया । अब तू सातों द्वीपों का राजा होगा । ऐसा कहकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये और हिरण्यकशिपु अति प्रसन्न होकर अपनी माता के पास आया । वरदान पाने का समाचार उससे कहकर बोला कि अब मैं सब देवतों को मारकर तीनों लोकों का राज्य करूँगा । दिति ऐसे वरदान पाने की वार्ता सुनकर बहुत प्रसन्न हुई । हिरण्यकशिपु अपनी भुजाओं के बल से देवता, दैत्य, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, किन्नर, ऋषीश्वर, तपस्वी, भूत-प्रेत, पिशाच, प्रजापति, मनु और सातों द्वीपों के राजाओं को जीतकर तीनों लोकों

का राज्य करने लगा। जब उसको यह इच्छा हुई कि कोई शूरवीर मिले तो उससे युद्ध करूँ तब सब देवता उसके भय से भागे और ब्रह्माजी के पास जाकर बोले—महाराज! हिरण्यकशिपु ने देवलोक का राज्य छीन लिया तिस पर भी दिन-रात हमारे प्राण लेने का गाहक रहता है, अब हम लोग क्या करें। ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि इस समय दैत्यों की दशा अच्छी है और तुम्हारे दिन खोटे आये हैं, इसलिए तुम लोग कहीं पर्वत की कन्दरा में छिपकर हरिचरणों का ध्यान व स्मरण करो। जब तुम्हारी दशा अच्छी आवेगी तब फिर तुम्हारा राज्य होगा। यह वचन सुनते ही देवता लोग कहीं पर्वत की कन्दरा में छिप रहे और अपने दिन काटते हुए परमेश्वर का ध्यान करने लगे। जब वहाँ रहने से देवता लोग अति दुखी हुए तब क्षीर समुद्र के किनारे जाकर बड़ी दीनता से नारायणजी की स्तुति करने लगे। उसी समय आकाशवाणी हुई कि हिरण्यकशिपु धर्म का, वेद का और तुम्हारा विरोध कर चुका, जब प्रह्लाद भक्त को वह दुःख देगा तब मैं उसे मारूँगा। यह वचन सुनते ही देवता फिर कन्दरा में आकर हरिभजन करने लगे। हिरण्यकशिपु इन्द्रासन पर बैठकर इन्द्रपुरी और स्वर्गादिक का सुख भोगता था। इन्द्र की अप्सराएँ उसको नाच दिखाती थीं, गन्धर्व गाना सुनाते थे, ऋषीश्वर व तपस्वी आदि उसके अधीन रहते थे। पृथ्वी, समुद्र, पर्वत और वृक्षादिक अनेक तरह के रत्न और फल-पुष्प हिरण्यकशिपु को भेंट देते थे। उसके प्रताप व भय से बारहों महीने वृक्षादिकों में फल व पुष्प लगे रहते थे, घी-दूध की नदी बहती थी। हिरण्यकशिपु अपनी माया से वरुण और कुबेरादिक दशों दिक्पालों का रूप धरकर मद्यपान करके अप्सराओं से भोग व विलास करता था। ऋषीश्वर, मुनि, गो, ब्राह्मण उसके हाथ से बहुत दुःख पाते थे। हिरण्यकशिपु के चार पुत्र उत्पन्न हुए, सो तीन बालक तो दैत्यों का कर्म करते थे और चौथे पुत्र प्रह्लाद का चलन व स्वभाव देवतों के समान था। वह आठों पहर सन्त व महात्मों की सेवा और हरिभजन में रहता था। सब जीवों में परमेश्वर का चमत्कार एक-सा जानकर किसी जीव को दुःख नहीं देता था।

इन्द्रियजित् व सत्यवादी था, छोटों को पुत्र के समान और बड़ों को पिता व ईश्वरतुल्य जानता था। बालकों के समान न खेलकर सत्संग में अति प्रीति रखता था, इसलिए महात्मा लोग उसकी बड़ाई करते थे। ऐसे पुत्र से हिरण्यकशिपु का विरोध हो गया। इतनी कथा सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा कि हे मुनिनाथ! पूत कपूत होते हैं, पर माता-पिता अपने बेटे का अनभला नहीं चाहते, इस विपरीत का कारण बतलाइए।

—:०:—

पाँचवाँ अध्याय।

हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद को पढ़ने के लिए बैठाना।

नारदजी ने कहा—हे युधिष्ठिर! शुक्राचार्य के पुत्र सण्डा और मर्क हिरण्यकशिपु व दैत्यों के लड़कों को पढ़ाया करते थे। जब प्रह्लाद पाँच वर्ष का हुआ तब हिरण्यकशिपु ने उसे उनको सौंपकर कहा कि हमने तुम्हारे पिता से पढ़ा था, प्रह्लाद को तुम हमारा धर्म सिखलाओ। जब प्रह्लाद वहाँ और लड़कों के साथ पढ़ने लगा तब सण्डा और मर्क ने हिरण्यकशिपु की आज्ञानुसार प्रह्लाद से कहा कि तू हिरण्यकशिपु का नाम जपा कर। जब प्रह्लाद ने गुरु के समझाने और डाटने पर भी राम व नारायण व विष्णु का नाम लेने के सिवा हिरण्यकशिपु का नाम मुख से नहीं लिया तब गुरु ने उसके पिता के पास जाकर सब वृत्तान्त कह दिया। इसलिए हिरण्यकशिपु ने एक दिन प्रह्लाद को अपनी गोद में बैठाकर पूछा—हे बेटा! तुमने अपने गुरु से आजतक जो पढ़ा हो वह हमें सुनाओ। प्रह्लाद बोला—हे पिता! मैंने राम नाम के सिवा जिनकी चर्चा व भजन आठों पहर करना चाहिए, और कुछ नहीं पढ़ा है। मेरे जान में साधु व महात्मों का सत्संग उत्तम है, मैं परमेश्वर की नवधा भक्ति अच्छी तरह जानता हूँ। वह नवधा भक्ति इस प्रकार है। श्रवण-परमेश्वर की कथा सुनना। कीर्तन—ईश्वर का गुणानुवाद वर्णन करना। स्मरण—भगवान् का नाम जपना। पादसेवन—नारायण के चरणों की पूजा करना। अर्चन—ठाकुर की मूर्ति को विधिपूर्वक पूजकर भोग लगाना। बन्दन—परमेश्वर को बारम्बार दण्डवत् करना। दास्य—ईश्वर

की भक्ति रखकर भजन गाना। सख्य–परमेश्वर से मित्रता व प्रीति रखना। आत्मनिवेदन–अपना तन, मन, धन सब भगवान् को अर्पण करके साधु, सन्त व महात्मों की संगति व सेवा करना। सब वेद व शास्त्र का सार यही है, जो हमने तुमसे कहा। गृहस्थी में रहने से दुःख के सिवा सुख नहीं होता। वन में जाकर हरिभजन करना सब बातों से उत्तम समझना चाहिए। प्रह्लाद की बातें सुनते ही हिरण्यकशिपु क्रोधित होकर बोला–हे मूर्ख! तू नहीं जानता कि नारायण ने बाराह अवतार धरकर मेरे भाई हिरण्याक्ष को मार डाला था, सो तू मेरे शत्रु का नाम लेकर उसकी स्तुति करता है। अभी तू बालक अज्ञानी होकर मेरा कहना नहीं मानता तो सयाना होने पर क्या दशा होगी। हे बेटा, अपना धर्म छोड़कर दूसरे का धर्म करना और बालकों को साधु सन्त की संगति करना अच्छा नहीं होता, इसलिए तुम साधु व वैरागी का कहना न मानकर अपने गुरु की आज्ञानुसार पढ़ा करो। यह सुनकर प्रह्लाद ने कहा–मैं उस परमेश्वर को नमस्कार करता हूँ, जिनकी माया से तुम अपने व दूसरों में भेद जानते हो। ईश्वर की कृपा व दया के बिना किसी को ज्ञान नहीं मिलता। जो कोई शास्त्र पढ़कर परमेश्वर में भक्ति न रखता हो उसका पढ़ना वृथा है। यह ज्ञान भरा बचन सुनते ही हिरण्यकशिपु ने बड़े क्रोध से कई दैत्यों को बुलाकर कहा कि विष्णु भगवान् दैत्यकुल के लिए कुल्हाड़ा है और प्रह्लाद उस कुल्हाड़े का बेंट उत्पन्न हुआ। यह मेरा कहना नहीं मानता और मेरे शत्रु का नाम जपकर उसकी बड़ाई करता है। बड़े लोग पहिले ही ऐसा कह गये हैं कि जिस अंग में रोग हो और उस अंग से खटका रहे तो उस अंग को काट डालना चाहिए। इसलिए ऐसे पुत्र का मारना उत्तम समझ कर तुम लोग इसको मार डालो। यह वचन सुनते ही दैत्य लोग प्रह्लाद को वहाँ से खींचते हुए बाहर ले जाकर तलवार तीर त्रिशूल व गदा से मारने लगे। प्रह्लाद आँख बन्द किये अपना मन हरिचरणों में लगाये चुपचाप बैठा रहा। जब परमेश्वर की दया से किसी शस्त्र का घाव प्रह्लाद के अंग पर नहीं लगा तब उन दैत्यों ने प्रह्लाद को पर्वत के ऊपर ले

जाकर वहाँ से ढकेल दिया। तिस पर भी उसके शरीर में कुछ चोट नहीं लगी। फिर दैत्यों ने प्रह्लाद को बहुत लकड़ियों के मध्य में बैठाकर आग लगा दिया। जब सब लकड़ी जलकर भस्म हो गईं और श्यामसुन्दर की कृपा से प्रह्लाद ज्यों का त्यों नारायणजी के ध्यान में मग्न बैठा रहा तब हिरण्यकशिपु ने यह महिमा देखकर मन में कहा कि बड़े आश्चर्य की बात है, प्रह्लाद इतने उपाय करने पर भी नहीं मरता। अब मैंने प्रह्लाद से अधिक शत्रुता उत्पन्न की, इसलिए नारायणजी उसकी रक्षा करने के लिए अवश्य आवेंगे, तब उनको मारकर हिरण्याक्ष का बदला लूँगा। ऐसा विचारकर हिरण्यकशिपु ने सण्डा व मर्क से कहा कि हमने प्रह्लाद को बहुत दण्ड दिया है, अब तुम्हारी आज्ञानुसार पढ़ेगा। यह बात सुनते ही प्रह्लाद ने प्रसन्न होकर मन में कहा कि अब मैं पाठशाला के बालकों को ज्ञान सिखलाऊँगा। गुरु हिरण्यकशिपु की आज्ञा से फिर प्रह्लाद को पाठशाला में ले आया और उनसे बोला—हे प्रह्लाद! तुझे वन में जाकर हरिभजन करने का किसी ने उपदेश दिया है या तूने अपने मन से यह बात कही थी। प्रह्लाद ने उत्तर दिया—हे गुरुजी! जो लोग मायारूपी गृहस्थी के अँधियारे कुएँ में पड़े रहकर परमेश्वर से विमुख हैं उनको ज्ञान प्राप्त न होकर हरिचरणों की भक्ति नहीं मिलती। उन्हें गदहे व कुत्ते आदि पशु के समान समझना चाहिए। जब तक संसारी मनुष्य सन्त व महात्मा के चरणों पर अपना शिर रखकर उनकी सेवा मनसा वाचा कर्मणा नहीं करता और परमेश्वर की कथा व कीर्तन नहीं सुनता तब तक उसको ज्ञान नहीं प्राप्त होता। परमेश्वर की दया व कृपा के बिना ज्ञान मिलना बहुत कठिन है। मैंने श्यामसुन्दर की दया से ज्ञान पाकर यह बात कही थी। इतनी कथा सुनाकर नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर! देखो, सण्डा व मर्क महात्मा शुक्राचार्य के पुत्र ज्ञानी व पण्डित थे, दैत्यों की संगति करने और उनका अन्न खाने से नारायणजी की महिमा को भूल गये थे। परमेश्वर की माया ऐसी बलवान् है। जब तक गुरु पाठशाला में बैठे थे तब तक प्रह्लाद मन में यह विचार करता था कि जब गुरु यहाँ से उठकर कहीं बाहर जावें तब मैं पाठशाला

के सब बालकों को ज्ञान सिखलाऊँ। जब गुरु वहाँ से उठकर बाहर चले गये तब प्रह्लाद ने लड़कों की ओर देखकर यह विचार किया कि अभी बाल्यावस्था होने से इन बालकों को काम, क्रोध, मोह, लोभ नहीं व्यापा है, इस समय इनको समझना तुरन्त प्रवेश करेगा। इतनी कथा सुनाकर नारद मुनि ने युधिष्ठिर से कहा कि कदाचित् कोई पूछे कि प्रह्लाद को उन्हें ज्ञान सिखलाने से क्या प्रयोजन था तो इस बात का उत्तर यह है कि प्रह्लाद ने अपने हृदय में दया व धर्म रखकर पर उपकार के कारण यह चाहा था कि जिसमें यह लोग भी ज्ञानी होकर मेरी संगति से कृतार्थ हो जावें। यह विचारकर जब प्रह्लाद ने लड़कों को अपने पास बुलाया तब सब बालक उसे राजकुमार जानकर उसके निकट चले आये।

—:०:—

छठा अध्याय।

प्रह्लाद का पाठशाला के बालकों को ज्ञान सिखलाना।

प्रह्लाद ने सब बालकों को अपने निकट बैठाकर कहा कि सुनो मित्रो, अभी तक बालापन होने से तुमको काम, क्रोध, लोभ, मोह नहीं व्यापा और तुम्हारा मन संसारी माया-जाल में नहीं फँसा, इसलिए तुम जिस बात पर चित्त लगावो वह कामना तुम्हें तुरन्त प्राप्त हो सकती है। सो मैं तुम्हारे कल्याण के लिए एक उपाय बतलाता हूँ, सुनो। अभी से अपना मन परमेश्वर के ध्यान में लगावो और इस बात का विश्वास मानो कि मनुष्य संसारी तृष्णा रखने और स्त्री, पुत्र व धन का मोह करने से सदा दुःखी रहकर जन्म व मरण से नहीं छूटता और इसी कारण हरिचरणों में प्रेम नहीं होता। परमेश्वर से विमुख रहने और अपना जन्म वृथा खोनेवाला मनुष्य अवश्य नरक भोगता है। इसलिए तुम्हें हरि-भजन व स्मरण करना उचित है, संसारी जाल में न फँसना चाहिए। परमेश्वर को पहिचानने, हरिभजन करने, नारायण का नाम लेने और भवसागर पार उतरने के लिए यही चैतन्य चोला समझो। कुत्ते व बिल्ली आदि पशुयोनि में केवल पेट भरने व भोग करने का ज्ञान रहता है, इसलिए मनुष्य तन पाकर एक क्षण भी परमेश्वर को भूलना न चाहिए। तुम लोग

यह बात अच्छी तरह जानते रहो कि किसी देवता का जप व पूजा परमेश्वर के तप व स्मरण के समान नहीं होता। देवता लोग जप व पूजन करने से प्रसन्न होने पर भी छोड़ देते हैं, पर नारायणजी अपने भक्तों पर चूक होने से भी क्रोध नहीं करते। उन्हें सब जगह वर्तमान जानकर कहीं ढूँढ़ने के लिए जाना न चाहिए। जिस समय प्रेमपूर्वक उनका ध्यान करो उसी समय वे प्रकट होकर रक्षा करते हैं। सो तुम लोग अपनी इन्द्रियों और मन को वश में करके क्रोध व तृष्णा को छोड़कर सतोगुण से सब जीवों पर दया रक्खो। मनसा वाचा कर्मणा हरिचरणों में ध्यान लगाकर परमेश्वर के नाम का स्मरण करो, तब तुमको बड़ा सुख मिलेगा। कदाचित् तुम लोग मेरे कहने का विश्वास न मानकर ऐसा कहो कि यह हमारे साथ का बालक होकर हमें ज्ञान सिखलाता है, इसने ज्ञान कहाँ से पाया, सो मैं अपने मन से यह ज्ञान तुमको नहीं बतलाता, नारद मुनि के वचन के अनुसार कहता हूँ। यह बात सुनकर लड़कों ने कहा—हे प्रह्लाद! अभी हम लोग बालक हैं, वृद्धापन में परमेश्वर का भजन व स्मरण कर लेंगे। तब प्रह्लाद बोले—सुनो, इन्द्रियों को सब योनि में सुख मिलता है और परमेश्वर का भजन दूसरे तन में नहीं हो सकता। जो तुम यह समझते हो कि इस जन्म में संसारी सुख-भोग कर लें फिर मनुष्यतन पाकर हरिभजन करेंगे, सो मनुष्य चोला बारम्बार मिलना दुर्लभ है। दुःख व सुख पूर्वजन्मों के संस्कार से मिलता है। संसारी सुख थोड़े दिन रहता है और हरिभजन करने से महाप्रलय तक अनेक प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं। जिस तरह आँधी वृक्षों और पत्तों को उड़ा ले जाती है उसी तरह तुम्हारे दादा और परदादा आदि पुरुषों को कालरूपी आँधी मारकर उड़ा ले गई। एक दिन तुम्हारी भी वही दशा होगी। जो मायारूपी जाल में फँस गया वह उससे निकल नहीं सकता। तुम लोग भी जब स्त्री व पुत्र के मोह में फँस जावोगे तब परमेश्वर का भजन तुमसे नहीं होगा। जिस तरह गाय-भैंस आदि पशु वन में घास चरने के लालच से कुएँ व खंदक में गिरकर चोट खाते हैं उसी तरह मनुष्य मायारूपी अन्धकूप में गिरने से दुःख पाता है। जो कोई संसारी

मोह छोड़कर हरिचरणों में प्रेम लगावे वह मायारूपी अंधकूप से बाहर निकल सकता है। संसारी सुख को काँच के समान और हरिभजन व भक्ति को पारस पत्थर के समान समझना चाहिए। यह बात सुनकर लड़कों ने प्रह्लाद से पूछा कि तुम्हें नारदजी कहाँ मिले थे, सो बतलाओ।

सातवाँ अध्याय।

प्रह्लाद का उपदेश लड़कों को मानना।

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर! उन बालकों की बात सुनकर प्रह्लाद ने कहा कि जब हमारे चाचा हिरण्याक्ष को वाराहजी ने मार डाला और मेरा पिता हिरण्यकशिपु तप करने के लिए मन्दराचल पर्वत पर चला गया तब इन्द्र ने अवसर पाकर नमुचि आदि दैत्यों को युद्ध में मारकर भगा दिया और दैत्यों की स्त्रियों को पकड़कर देवलोक में ले चला। जब रास्ते में नारदजी से भेंट हुई तब उन्होंने इन्द्र से कहा कि तुम इन स्त्रियों को क्यों लिये जाते हो? इन्द्र बोले—हे मुनिनाथ! दैत्यों ने भी हमारा राज्य छीनकर हमें अति दुःख दिया है, इसी वास्ते हम भी अपना बदला उनसे लेते हैं। यह वचन सुनकर नारद मुनि बोले—हे इन्द्र! इन स्त्रियों में हिरण्यकशिपु की स्त्री को, जिसके गर्भ में प्रह्लाद हैं, तू छोड़ दे। प्रह्लाद हरिभक्त होकर देवतों की सहायता करेगा। तब इन्द्र ने मेरी माता को नारद मुनि को सौंप दिया और मुझे गर्भ में हरिभक्त सुनकर उनकी परिक्रमा करके इन्द्रलोक को चला गया। नारदजी ने मेरी माता को ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों के स्थान पर, जहाँ लोग तप व स्मरण करते थे, लाकर रक्खा। ऋषीश्वर लोग भोजन व वस्त्र देकर उनकी रक्षा करते थे। जब कभी मेरी माता अपने स्वामी व परिवार को याद करके रोती थी तब नारद आदि ऋषीश्वर उसे ज्ञान का उपदेश करते और समझाकर कहते थे कि हे कयाधू, तू चिन्ता मत कर, संसार में कभी दुःख होता है कभी सुख, तू सन्तोष रख कुछ दिनों में तेरा पति हिरण्यकशिपु मन्दराचल से आकर तीनों लोकों का राज्य करेगा और तू रानी होगी। मैंने अपनी माता के गर्भ में यह ज्ञान सुनकर याद रक्खा था, जो तुम्हें सुनाया।

तुम लोग मेरा वचन सत्य मानकर उसी के अनुसार करो। नारदजी ने ज्ञान का उपदेश करते समय यह भी कहा था कि इस स्त्री को यह ज्ञान प्राप्त न होगा, जो बालक इसके गर्भ में है वह याद रक्खेगा। सो मैं वही ज्ञान कहता हूँ, सुनो। मनुष्य की बाल, युवा, वृद्धा तीन अवस्थाएँ होती हैं और परमेश्वर परमात्मा पुरुष, जिनका तेज सबके शरीर में रहकर जीवात्मा कहलाता है, वह सदा एकरूप रहता है, कभी घटता-बढ़ता नहीं है, और हर्ष व विषाद उनके नहीं होता। जो मनुष्य परमेश्वर को इस तरह जाने वह सदा सुखी रहता है। जिस तरह न्यारिया मिट्टी छानकर सोने का चूर निकाल लेता है और मिट्टी से कुछ प्रयोजन नहीं रखता उसी तरह मनुष्यतन में परमेश्वर का भजन व स्मरण करके मुक्ति पदार्थ, जो सोने के समान है, प्राप्त कर ले और शरीर को मिट्टी समझकर छोड़ दे। जो लोग धन व कुटुम्बादिक से सुख चाहते हैं वह आनन्द सदा स्थिर नहीं रहता और हरिभजन करने का सुख प्रतिदिन बढ़ता है, कभी नहीं घटता, महाप्रलय तक बना रहता है। इसलिए तुम लोग काम, क्रोध, मोह, लोभ को जीतकर भगवान् की भक्ति करो, उसी में तुम्हारा बेड़ा पार लगेगा। स्त्री, पुत्र, राज्य, सेना, कोट, गज-तुरंगादिक कुछ काम न आवेंगे। मरते समय कोई बचा नहीं सकते। वे सब संसार में रह जाते हैं, कोई उसका संग नहीं देता। कोट आदि गिराने से भी जल्दी नहीं गिरते और यह शरीर एक क्षण में नष्ट हो जाता है, मरने के उपरान्त किसी काम नहीं आता। मनुष्य आठों पहर अपने सुख की वस्तु चाहता है, पर ईश्वर की दया व कृपा के बिना वह सुख नहीं मिलता। जब अपना शरीर संग नहीं जाता तब धन व कुटुंबादिक उसका साथ क्यों दे सकते हैं। परमेश्वर जैसे भक्ति व स्मरण से प्रसन्न होते हैं वैसे यज्ञ, तप, दान व व्रतादिक करने से प्रसन्न नहीं होते। मैंने नारद मुनि से जो सुना था उस पर विश्वास किया। तीनों लोकों के राजा हिरण्यकशिपु ने मेरे प्राण लेने के लिए अनेक उपाय किये, उसी ज्ञान के प्रताप से उसका कुछ बल नहीं चला। कदाचित् यह कहो कि हम लोग दैत्य-बालक मांसाहारी व मद्यपान करनेवाले हैं, हमारा तप

व भजन नारायणजी किस तरह अंगीकार करेंगे, सो ऐसा विचार न करके मेरी बात का विश्वास मानो। देवता, दैत्य, मनुष्य जो कोई परमेश्वर का तप व स्मरण करे वही उनको प्यारा है। देखो, मैं भी दैत्य का पुत्र हूँ, नारायणजी की शरण में गया तो मेरे प्राण बचे नहीं तो मेरे पिता ने प्राण लेने में कुछ उठा नहीं रक्खा था। कदाचित् तुम्हारे माता-पिता भी हरिभजन करने से बरजकर तुम्हें दुःख देंगे तो परमेश्वर की सहायता से उसी तरह उनका बल भी तुम्हारे ऊपर कुछ नहीं चलेगा। यह ज्ञान सुनकर सब लड़के बोले कि हे प्रह्लाद! हम लोगों ने तुम्हारा उपदेश माना, आज से गुरु की झूठी बात न मानकर तुम्हारी आज्ञानुसार सब काम करेंगे।

---:o:---

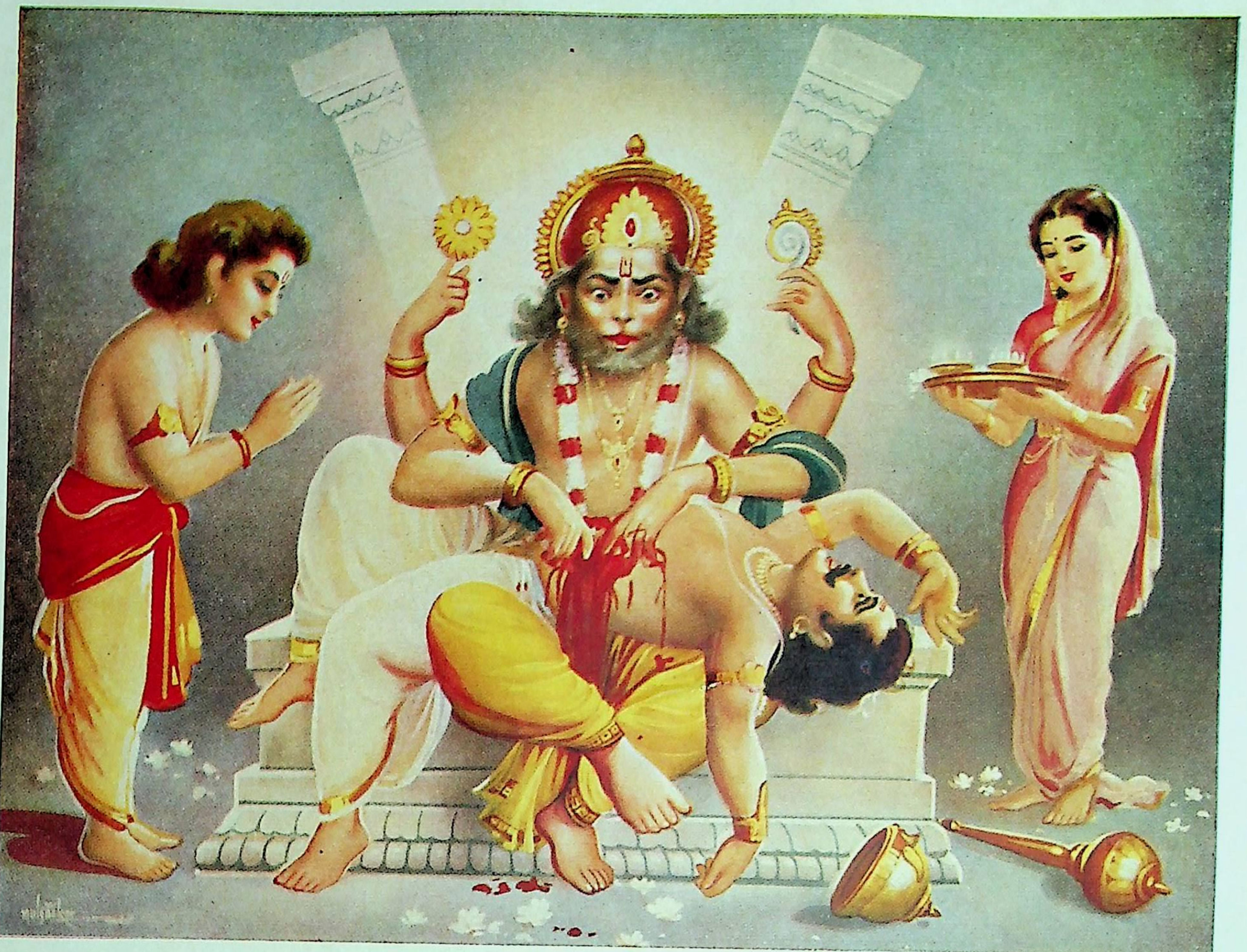
आठवाँ अध्याय।

नारायणजी का नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु को मारना

नारदजी ने कहा—युधिष्ठिर! जब प्रह्लाद के ज्ञान उपदेश से सब लड़के भी गुरु का पढ़ाना छोड़कर नारायण, विष्णु व राम का नाम लेने लगे और सण्डा व मर्क ने घर से आकर उनकी यह दशा देखी तब गुरु ने हिरण्यकशिपु के भय से लड़कों से कहा कि तुम लोग क्या कहते हो। उन्होंने उत्तर दिया कि इस तन में जो बात हमको करना चाहिए सो करते हैं, तुम्हारी झूठी बातें पढ़कर क्यों अपना जन्म अकार्थ खोवें। जब गुरु के धमकाने व हिरण्यकशिपु के भय सुनाने पर भी लड़कों ने राम नाम लेना नहीं छोड़ा तब गुरु ने जाना कि इन सब बालकों को प्रह्लाद ने ज्ञान सिखलाकर अपना ऐसा बना लिया। यह बात विचारकर जब गुरु ने प्रह्लाद पर अति क्रोध करके धमकाया और प्रह्लाद हँसकर चुप हो रहा तब सण्डा व मर्क ने प्रह्लाद आदिक बालकों को हिरण्यकशिपु के पास ले जाकर कहा—महाराज! तुम्हारे पुत्र ने सब बालकों को ऐसा बहका दिया कि वे लोग नारायण का नाम लेने के सिवा दूसरी बात मुख से नहीं कहते। यह वचन सुनते ही हिरण्यकशिपु क्रोधित होकर बोला—हे प्रह्लाद! मैंने तुझे बहुत दण्ड देकर समझाया कि

नारायण का नाम मत ले, पर तू मेरा कहना नहीं मानता, इससे मैंने जाना कि तेरी मृत्यु निकट पहुँची है। जिस तरह ऋषीश्वर व योगियों को इन्द्रियाँ दुःख देती हैं उसी तरह तू मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ। इसलिए तेरा वध अपने हाथ से करूँगा, देखूँ कौन राम व नारायण तेरे प्राण बचाते हैं। यह सुनकर प्रह्लाद भक्त बोला—हे पिता! तुम विश्वास करके मानो, जिसकी शक्ति से सब जीव तीनों लोकों में वर्तमान हैं और तुम राज्य करते हो, वही अविनाशी पुरुष सबसे बलवान् सर्वत्र रहते हैं। उनसे अधिक संसार में कोई उत्तम व पवित्र व मालिक नहीं है। उन्हीं को सब जीवों की उत्पत्ति, पालन व नाश करनेवाला समझना चाहिए। जो कुछ वे चाहते हैं सो होता है। उनकी इच्छा के विना किसी को श्वास लेने की सामर्थ्य नहीं रहती। वही आदि निरंकार मेरी भी रक्षा करेंगे। हे पिता! अपने को तीनों लोकों का राजा समझकर सब जीवों को अपने अधीन जानते हो। तुमने अभी तक मन, इन्द्रिय, काम, क्रोध आदि को अपने वश नहीं किया, उनके अधीन रहकर नष्ट हो रहे हो तो दूसरे को क्या अपने वश में करोगे। तुम्हें उचित है कि राजसी स्वभाव व अधर्म करना छोड़कर मन व इन्द्रियों को अपने अधीन रक्खो और हरिचरणों का ध्यान व स्मरण किया करो तब संसाररूपी महाजाल से छूटकर भवसागर पार उतर जाओगे। सुनो, जिसकी मृत्यु निकट पहुँचती है उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। सो मैं जानता हूँ कि तुम्हारी मृत्यु आ पहुँची है, इसी कारण तुम अपने उत्पन्न करनेवाले परब्रह्म को भूल गये हो। यह ज्ञान सुनते ही हिरण्यकशिपु बड़ा क्रोध करके बोला—हे प्रह्लाद! मुझसे बलिष्ठ तेरा नारायण नहीं है, उसे बुलाओ, अब आकर तेरी रक्षा करे। प्रह्लाद ने कहा, वह ईश्वर सर्वत्र अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए रहता है। तब हिरण्यकशिपु उनको मारने के लिए खड्ग निकालकर और खंभे की ओर आँख दिखलाकर प्रह्लाद से बोला—इसमें भी तेरा नारायण है? प्रह्लाद ने कहा, परमेश्वर खम्भे में भी मुझे दिखलाई देते हैं। हिरण्यकशिपु भी ईश्वर का भय मन में रखता था, इसलिए डरता हुआ खम्भे की ओर देखकर बोला—हे

प्रह्लाद! मुझे नारायणजी इसमें नहीं दिखलाई देते, तूने झूठ क्यों कहा। अब तुझे मारता हूँ, जो तेरा सहायक खम्भे में या जहाँ कहीं हो उसे तुरन्त बुला, वह आकर तुझे मेरे हाथ से छुड़ावे। यह वचन सुनते ही जैसे प्रह्लाद ने परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करके खम्भे की ओर देखा वैसे ही नारायणजी नृसिंह अवतार, शरीर मनुष्य का और मस्तक सिंह का धरकर उस खम्भे में दिखलाई दिये। हिरण्यकशिपु ने वह स्वरूप देखते ही बायें हाथ से ऐसा एक मुक्का मारा कि खम्भा फट गया और उसके भीतर से नृसिंह भगवान् दश योजन का शरीर धारण किये अपने भक्त की बात सच करने के लिए प्रकट हुए और बड़े क्रोध से ऐसा ललकारा कि तीनों लोकों में वह शब्द फैल गया। उस शब्द को सुनते ही ब्रह्मा, इन्द्र, देवता, दैत्य, मनुष्यादि जीव मारे डरके काँपने लगे। हिरण्यकशिपु ने उनका तेज देखते ही घबराकर मन में कहा, यह आश्चर्य रूप मैंने आज तक कभी नहीं देखा था। ब्रह्मा ने मुझे ऐसा वरदान दिया है कि तू मनुष्य, देवता, दैत्य व पशु-पक्षी आदि किसी के हाथ से नहीं मरेगा, सो यह रूप ऐसा प्रकट हुआ जिसे न मनुष्य कहना चाहिए, न पशु। ब्रह्मा ने कहा था कि तू न दिन में मरेगा न रात को, सो यह सन्ध्या का समय है, इसे न दिन कहना चाहिए, न रात। मैंने ब्रह्मा से यह वरदान माँगा था कि तुम्हारा उत्पन्न किया हुआ कोई जीव मुझे मार न सके, सो यह स्वरूप ब्रह्मा ने नहीं बनाया है। इसलिए जान पड़ता है कि ब्रह्मा का वरदान भी झूठा न होगा और यह मुझे अवश्य मारेगा। हिरण्यकशिपु इसी सोच-विचार में खड़ा और उसके साथी दैत्य नृसिंहजी के डर से भाग गये। जब हिरण्यकशिपु उनके सम्मुख आकर अपनी गदा उन पर चलाई तो नृसिंहजी उसकी गदा पकड़कर इस तरह उससे लड़ने लगे जिस तरह पहलवान लोग अपने चेलों को कुश्ती लड़ाते हैं, बिल्ली चूहे को पकड़कर खेल खिलाती है। जब इन्द्रादिक देवतों ने, जो नृसिंह भगवान् का दर्शन करने वहाँ आये थे, यह दशा देखकर संदेह से मन में कहा कि कदाचित् हिरण्यकशिपु इनसे नहीं मारा गया तो हम लोगों का दुःख किस तरह छूटेगा



नृसिंह अवतार

तब नृसिंहजी अन्तर्यामी ने देवतों के मन की बात जानकर हिरण्यकशिपु को पकड़ लिया और उसकी सभा का जो स्थान था वहाँ डेवढ़ी में ले आये। लड़कों के समान उसे अपनी जाँघ पर लेटाकर उसका पेट नखों से फाड़ डाला। उस समय हिरण्यकशिपु हँसने लगा तब नृसिंहजी ने पूछा कि तू हँसता क्यों है। हिरण्यकशिपु बोला कि लड़ते समय जब इन्द्र ने अपनी गदा मुझे मारी थी तब वह गदा मेरे अंग से चोट खाकर टूट गई और मुझको कुछ दुःख नहीं पहुँचा। सो अब नखों से मेरा पेट फाड़ा जाता है, यही बात समझकर मुझे हँसी आई। अब मैंने जाना कि यह सब मेरे दिनों का फेर है जो इस तरह मरता हूँ। ऐसा कहकर जब हिरण्यकशिपु मर गया तब नृसिंहजी उसकी आँतें माला के समान अपने गले में पहिनकर राजसिंहासन पर बैठे। उस समय वे महाक्रोध में थे। जब नृसिंहजी का क्रोध देखकर तीनों लोकों के सब जीव काँपने लगे तब देवतों ने ब्रह्मा से कहा कि तुम जाकर स्तुति करो कि जिसमें उनका क्रोध शान्त हो। ब्रह्मा ने नृसिंहजी के पास जाकर दण्डवत् व परिक्रमा करके विनय किया—हे त्रिलोकीनाथ! आप आदिपुरुष सब जीवों को उत्पन्न, पालन व नाश करनेवाले हैं। कोई ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो तुम्हारी स्तुति कर सके। अब हिरण्यकशिपु मारा गया, अपना क्रोध क्षमा कीजिए। जब स्तुति करने पर भी नृसिंहजी ने क्रोध दृष्टि से ब्रह्मा को देखा तो वे मारे डरके लौट आये। तब महादेव ने देवतों के कहने से नृसिंहजी के पास जाकर इस तरह स्तुति की—हे दीनानाथ! आपने अपने भक्त की रक्षा के लिए अवतार लिया है, सो हिरण्यकशिपु मारा गया। अब अपना क्रोध शान्त कीजिए। एक छोटे दैत्य को मारकर इतना क्रोध न करना चाहिए। महाप्रलय में तुम्हारे क्रोध से तीनों लोकों का नाश हो जाता है, अभी वह समय नहीं आया, इसलिए क्षमा करना उचित है, नहीं तो इस क्रोध की अग्नि से सब जीव भस्म हो जायँगे। जब शिवजी के स्तुति करने पर भी उनका क्रोध नहीं शान्त हुआ तब इन्द्र ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनदयालु! हिरण्यकशिपु के मारे जाने से सब देवता

सुखी हुए। होम में देवतों का भाग वह आप लेता था, अब तुम्हारी दया से हम लोग अपना-अपना अंश पावेंगे, सो क्षमा कीजिए। जब इन्द्र के स्तुति करने से भी उनका क्रोध नहीं गया तब लक्ष्मीजी शृंगार किये कमल का पुष्प लिये वहाँ जाकर हाथ जोड़कर बोलीं—महाराज! मैंने आज तक ऐसा तेजवान् तुम्हारा स्वरूप कभी नहीं देखा था, इसलिए यह रूप देखकर मुझे भय प्राप्त होता है, सो यह अपना स्वरूप अन्तर्धान कीजिए। जब लक्ष्मीजी के स्तुति करने पर भी नृसिंहजी ने अपना क्रोध क्षमा नहीं किया तब वरुण, कुबेर, गन्धर्व, विद्याधर आदि देवतों ने आपस में विचारकर कहा कि यह अवतार नारायणजी ने केवल प्रह्लाद भक्त का प्राण बचाने के लिए लिया है उसी के विनती करने से उनका क्रोध शान्त होगा। ऐसा विचार कर ब्रह्मादिक देवतों ने प्रह्लाद से कहा कि तुम जाकर नृसिंहजी का क्रोध शान्त कराओ, नहीं तो तीनों लोकों का नाश हो जायगा। यह वचन सुनकर प्रह्लाद बोले—बहुत अच्छा। उनकी आज्ञानुसार प्रह्लाद साष्टांग दण्डवत् करता हुआ नृसिंहजी के पास गया और परिक्रमा करके उनके चरणों पर अपना शिर धर दिया। उस समय प्रह्लाद का हृदय मारे हर्ष के ऐसा गद्‌गद् हो गया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। प्रह्लाद उस स्वरूप का कुछ डर न मानकर बड़े प्रेम से हाथ जोड़कर स्तुति करने लगा।

—:○:—

नवाँ अध्याय।

नृसिंहजी का क्रोध शान्त होना।

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर! जैसे प्रह्लाद ने नृसिंहजी के चरणों पर शिर रखकर स्तुति की वैसे उन्होंने क्रोध क्षमा करके प्रह्लाद का शिर प्रेम से उठाकर उसको अपनी गोद में बैठा लिया और उसके मस्तक पर हाथ फेरकर बोले—हे बेटा! तू मत डर, क्या चाहता है। जब यह वचन कहते हुए नृसिंहजी के नेत्रों में आँसू भर आये तब प्रह्लाद भक्त उनके प्रेम से रुदन करता हुआ हाथ जोड़कर बोला—हे दीनानाथ! मेरा जन्म दैत्यकुल में हुआ, मैं बालक अज्ञानी आपकी स्तुति, जिनका आदि व अन्त

कोई नहीं जानता, नहीं कर सकता। हे दीनदयालु! मुझ अधर्मी कुल के बालक पर दयालु होकर आपने रक्षा की, इसलिए अपने बराबर दूसरे का भाग्य नहीं समझता। आप उत्पत्ति, पालन व नाश करनेवाले तीनों लोकों के स्वामी हैं। ब्राह्मण को चारों वर्ण में उत्तम और शूद्र को सबसे छोटा जानते हैं, पर मेरी समझ से ब्राह्मण उसी को जानना चाहिए जो आपका तप व स्मरण करे। जो ब्राह्मण तुमसे विमुख रहकर तुम्हारे चरणों की भक्ति नहीं रखता वह नाम के वास्ते ब्राह्मण है और जो शूद्र हरिचरणों में भक्ति व प्रीति रखकर तुम्हारे नाम का स्मरण व भजन करते हैं, मैं उन शूद्रों को ब्राह्मण से श्रेष्ठ जानता हूँ। आप संसार में केवल हरिभक्तों को सुख देने और अधर्मियों को भवसागर पार उतारने के लिए सगुण रूप धरते हैं। जिससे संसारी लोग तुम्हारे सगुण रूप का ध्यान करके और उन अवतारों की लीला आपस में कह सुनकर उसके प्रताप से मुक्ति पावें। मनुष्य अपने सुख व कल्याण के लिए तुम्हारा तप व भजन करते हैं, नहीं तो आपको किसी से अपनी स्तुति व तप कराने का क्या प्रयोजन है। आप सर्वगुण निधान हैं, कोई अवगुण आप में नहीं है। संसारी वस्तु की आपको कुछ इच्छा नहीं है। तुम्हारे भक्त ऐसी सामर्थ्य रखते हैं कि शुभ या अशुभ जो बात किसी को कहें उसी समय वैसा हो जाता है। आपकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है। आप चाहते तो हिरण्यकशिपु का नाश अपनी इच्छा से कर देते। सो हे दीनानाथ! आप जितनी भक्ति करने से प्रसन्न होते हैं उतना तप, यज्ञ व दानादिक से प्रसन्न नहीं होते। जो ब्राह्मण सब वेद व पुराण जाननेवाला तुम्हारी भक्ति न रखता हो उस ब्राह्मण से हरिभक्त डोम को उत्तम समझना चाहिए। यज्ञ व तपादिक करने से केवल अपना भला होता है और भक्ति करनेवाले के सात पुरुषा वैकुण्ठ में जाते हैं। आप ब्रह्मा व महादेव आदि देवता और लक्ष्मीजी के स्तुति करने से नहीं प्रसन्न हुए, मुझ अज्ञानी बालक के विनय करने से आपने क्रोध क्षमा किया, इसलिए मैंने अपने को बड़ा भाग्यवान् जाना। हे त्रिलोकी-नाथ! जिस तरह साँप को मारकर मनुष्य प्रसन्न होते हैं उसी तरह

संत व महात्मा लोग हिरण्यकशिपु के मारे जाने से प्रसन्न हुए। मैं तुम्हारे इस तेजवान् रूप व दाँत व नख से कुछ भय न मानकर संसार-रूपी माया से अति डरता हूँ, सो दया करके मुझे इस मायारूपी अन्धे कुएँ से बाहर निकालकर अपनी शरण में रक्खो। हे त्रिलोकीनाथ! आपने मेरे शिर पर हाथ रखकर मुझे कृतार्थ किया। ऐसा दीनदयालु संसार में कोई दूसरा नहीं है। आपका यह स्वरूप देखकर सब देवता डरते हैं और मैं इस रूप का भय न मानकर बहुत प्रसन्न हूँ, क्योंकि आपने यह अवतार लेकर मेरे प्राण बचाये हैं, फिर मैं क्यों डरूँ। जिस तरह वन में सब जीव बाघ से डरते हैं और उसका बच्चा कुछ भय न मानकर उसे अपना पिता व रक्षा करनेवाला जानता है उसी तरह मैं भी तुमको अपना पिता समझकर इस भयानक रूप से कुछ नहीं डरता। पर देवतों का डर छुड़ाने के लिए दया करके अब इस स्वरूप को अन्तर्धान कीजिए।

दसवाँ अध्याय।

नृसिंहजी का प्रह्लाद पर दया करना।

नारदजी ने कहा हे युधिष्ठिर! प्रह्लाद की स्तुति सुनकर नृसिंहजी बोले—हे प्रह्लाद! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ, कुछ वरदान माँगो। प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे त्रिलोकीनाथ! मैंने संसारी सुख भूलोंक व देवलोक दोनों जगह का देखा, पर वह सुख सदा स्थिर नहीं रहता, एक दिन उसका नाश हो जाता है। कदाचित् आप यह कहें कि तू बालक अज्ञानी क्या जानता है, तूने कहाँ देखा, सो हे महाप्रभु! हिरण्य-कशिपु मेरा पिता तीनों लोकों का राजा ऐसा प्रतापी था, जो इन्द्र व वरुण व कुबेरादि देवतों से हँसकर यह बात कहता था कि ऐसा काम तुमने क्यों किया तो वे लोग डरकर भाग जाते थे। अब उसी हिरण्य-कशिपु को देखता हूँ कि मरा पड़ा है। जब अपना शरीर स्थिर नहीं रहता तो संसारी वस्तु का क्या विश्वास है। जिस तरह अज्ञानी बालक को दीपक दिखलाकर उसके माता-पिता फुसलाते हैं उसी तरह वरदान

देने के लिए कहकर आप भी मुझे ललचाते हैं। संसार में तीनों लोकों के राज्य से उत्तम कोई वस्तु नहीं होती, सो मैं उसकी भी चाहना नहीं रखता, क्योंकि मेरा यह तन सदा स्थिर नहीं रहेगा, फिर किसलिए आपसे कोई वस्तु लूँ। मुझे यही एक इच्छा है कि जन्म-जन्मान्तर दिन-रात सन्त व महात्मों की संगति में रहकर तुम्हारे नाम का स्मरण व चरणों की भक्ति करता रहूँ। एक क्षण भी तुम्हारी याद मुझे न भूले। इसके सिवा अपने वास्ते और कुछ चाहना नहीं रखता। दूसरी इच्छा यह है कि जो लोग अपने अज्ञान से माया-मोह स्त्री, पुत्र, धन आदि संसारी सुख के अन्धकूप में लटके हैं उनको ज्ञानरूपी रस्सी पकड़ाकर इस कुएँ से बाहर निकालकर भवसागर पार उतार दीजिए, जिसमें उनका कल्याण हो। कदाचित् आप यह कहें कि जिन्होंने जैसा कर्म शुभ या अशुभ किया है वैसा फल भोग करेंगे, सबकी मुक्ति नहीं हो सकती, सो मेरे तप व भजन का जो फल हो वह उन्हें देकर कृतार्थ कीजिए और उनके अधर्म व पाप करने के बदले जो उचित हो सो दण्ड मुझे दीजिए, मैं उसे भोग करूँगा। हे महाप्रभु! मनुष्य अपने अभाग्य व अज्ञानता से आपका विश्वास न करके किसी उत्तम पदार्थ के मिलने से जानता है कि यह वस्तु मैंने अपने पराक्रम से पाई और यह नहीं जानता कि सब पदार्थ नारायणजी देकर मेरा पालन व रक्षा करते हैं। कदाचित् मनुष्य के परिश्रम से कोई वस्तु मिलती तो संसार के सब द्रव्य व सुन्दर स्त्री व सुख के सब पदार्थ अपने घर ले आता। हे दीनदयालु! संसारी मनुष्य दिन-रात दुःखसागर में पड़ा रहकर पहिले अपने पेट भरने की चिन्ता में व्याकुल रहता है, दूसरे सैकड़ों स्त्रियों से भोग करने पर भी उसका मन तृप्त नहीं होता, सदा नवीन स्त्री की चाहना रखता है, ऐसे मूर्ख मनुष्य को ज्ञान देकर भवसागर पार उतार दीजिए। जब तक तुम्हारी दया व कृपा नहीं तब तक मायारूपी जाल से उसका छूटना कठिन है। कदाचित् आप यह कहें कि तुझे इन लोगों की मुक्ति होने से क्या लाभ होगा, सो मेरे विनय करने का यह कारण है कि तुम्हारी एक बेर की कृपादृष्टि से उन बेचारों का, जो दुःख-सागर में पड़े हैं, भला

हो जायगा। यह बात आपकी प्रभुता से कुछ दुर्लभ नहीं, बड़े लोग छोटों पर सदा से कृपा करते आये हैं। जिस तरह समुद्र में से कोई मनुष्य एक कटोरा पानी लेकर अपनी प्यास मिटा ले तो समुद्र सूख नहीं जाता उसी तरह तुम्हारी थोड़ी कृपा करने में उनका कल्याण हो जायगा और आपका कुछ नहीं घट जावेगा।

दो० तुलसी पक्षिन के पिये सरिता घटै न नीर। धर्म किये धन ना घटै जो सहाय रघुबीर॥

यह वचन सुनकर नृसिंहजी बोले—हे बेटा! मैंने अपना क्रोध शान्त किया, तुझे अपने वास्ते जो इच्छा हो माँग ले, पर दूसरों की मुक्ति जो चाहता है सो सब जीवों को वैकुण्ठ जाने की इच्छा नहीं होती।

दो० मायारूपी जाल में सबकी है यह चाल। अपनी अपनी खाल में सभी जीव खुशहाल॥

इतनी बात सुनकर प्रह्लाद बोला—हे जगत्-पालक! मैं निष्काम भक्ति चाहता हूँ, किसी वस्तु की चाहना नहीं रखता। संसार में जब कोई मनुष्य किसी के पास जाकर कुछ माँगता है तब उसके मुख का तेज क्षीण हो जाता है। कदाचित् तुम्हारी इच्छा कुछ देने की हो तो ऐसा वरदान दीजिए, जिसमें मुझे किसी वस्तु की चाहना न रहे। तृष्णा रखने से धर्म नहीं रहता और लज्जा छूट जाती है। जिनको लालच व चाह नहीं रहती वे राजा इन्द्र और मंगन दोनों को समान जानते हैं। जो कोई परमेश्वर का तप व भजन करके उससे कुछ माँगता है उसे मजदूर के तुल्य समझना चाहिए, इसलिए मैं कुछ नहीं माँगता, तुम्हारी इच्छा पर प्रसन्न हूँ। यह वचन सुनते ही नृसिंहजी बोले—हे बेटा! तू मेरा बड़ा मित्र व भक्त है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि तू अपने पिता के सिंहासन पर बैठकर इकहत्तर चौयुगी राज्य कर। कदाचित् तेरा दूसरा भाई राज्य करेगा तो संसारी जीव कहेंगे कि प्रह्लाद ने हरिभक्त होने पर भी राज्य नहीं पाया। तुझे मेरी आज्ञा मानना चाहिए। तू धैर्य रख, हमारी कृपा से तुझे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार नहीं व्यापेंगे, मेरे चरणों में प्रीति बनी रहेगी। जिस तरह मेरे परमभक्त लोक व परलोक किसी सुख की चाहना नहीं रखते उसी तरह तुझको भी कुछ तृष्णा नहीं रहेगी और महाप्रलय तक संसार में तेरा यश स्थिर रहेगा। ऐसा कहकर

जब नृसिंहजी गाय के समान प्रह्लाद का अंग चाटने लगे तब प्रह्लाद ने उनकी आज्ञा मानकर विनय किया—हे महाप्रभु! मेरा पिता अपने अज्ञान से आपके साथ शत्रुता रखकर भक्तिहीन था, इसलिए आपको अपने भाई का मारनेवाला समझकर उसने दुर्वचन कहा है, सो आप उसका बेटा समझकर मुझसे कुछ बुरा न मानिएगा। जो कोई परमेश्वर, वेद, शास्त्र, सन्त व महात्मा की निंदा करता है, वह इस महापाप से अति दुःख पाकर जल्दी कृतार्थ नहीं होता, इसलिए मेरा पिता नरक भोग करेगा, सो आप मेरे ऊपर दयालु होकर उसका उद्धार कीजिए। यह बात सुनकर नृसिंहजी ने कहा—हे प्रह्लाद! तू अपने पिता का कुछ सोच मत कर, वह अधर्म करने के बदले नरक को न जावेगा। जिस कुल में तेरा-ऐसा हरिभक्त उत्पन्न हुआ उस कुलवाले स्वप्न में भी यमदूतों को नहीं देख सकते। हमने तेरे इक्कीस पुरुषा नरक से निकालकर स्वर्ग में भेज दिये, तेरा पिता किस तरह से नरक भोगेगा। मेरे भक्तों के सात पुरुषा नरक से निकलकर स्वर्गवास करते हैं। वेद व शास्त्र में मगहदेश को मरने के वास्ते अशुद्ध लिखा है, पर वहाँ भी मेरे भक्तों के जाने व रहने से वह धरती पवित्र होकर उसका दोष मिट जाता है। अधर्मी व पापी होने पर भी तुझे अपने पिता का दाहकर्म व श्राद्ध करना चाहिए। जब प्रह्लाद नृसिंह भगवान् की आज्ञानुसार हिरण्यकशिपु का दाह व श्राद्ध कर चुका तब नृसिंहजी ने प्रह्लाद को राजसिंहासन पर बैठाकर तिलक लगाया। उस समय सब दैत्य व देवतों ने वहाँ जाकर प्रह्लाद को यथायोग्य दण्डवत् कर आशीर्वाद दिया। ब्रह्मादिक देवतों ने नृसिंहजी को दण्डवत् व स्तुति करके विनय किया—हे कृपानिधान! आपने बहुत अच्छा किया जो अधर्मी हिरण्यकशिपु को मारा और दया करके मेरा वरदान असत्य नहीं किया। यह बात सुनकर नृसिंह भगवान् बोले—हे ब्रह्मा! अब किसी दैत्य को ऐसा वरदान मत देना, सर्प को अमृत न पिलाना चाहिए। ऐसा कहकर नृसिंहजी वहाँ से अन्तर्धान हो गये। प्रह्लाद ने ब्रह्मा आदिक देवता व शुक्राचार्य पुरोहित का विधिपूर्वक पूजन करके सब देवतों को बिदा किया और आप आठों पहर हरिचरणों का ध्यान

रखकर धर्म के साथ प्रजा का पालन करने लगा। उसके राज्य में देवता, ऋषीश्वर, गौ, ब्राह्मण, सन्त व महात्मा आनन्दपूर्वक रहकर परमेश्वर का भजन व स्मरण करते थे। कोई जीव दुःखी नहीं था। इतनी कथा सुनाकर नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर! तुमने हिरण्यकशिपु व प्रह्लाद के विरोध होने का हाल जो मुझसे पूछा था सो मैंने वर्णन किया। वही हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष दूसरे जन्म में रावण व कुम्भकर्ण हुए और तीसरे जन्म में शिशुपाल व दन्तवक्र होकर जब श्रीकृष्णजी के हाथ से मारे गये तब वैकुण्ठ में जाकर जय-विजय परमेश्वर के द्वारपाल हुए। जो कोई परमेश्वर की कथा व लीला कहता व सुनता है वह कर्मों की फाँसी से छूटकर स्वप्न में भी यमदूतों को नहीं देखता। हे युधिष्ठिर! तुम बड़े भाग्यवान् व पूर्वजन्म के तपस्वी व धर्मात्मा हो। जिस परब्रह्म परमेश्वर के चरणों का ध्यान ब्रह्मा व महादेव आदि देवता आठों पहर अपने हृदय में रखकर उनकी आज्ञा पालन करते और बड़े-बड़े योगी व ऋषीश्वर जिनका दर्शन ध्यान में भी जल्दी नहीं पाते वही श्रीकृष्णजी त्रिलोकीनाथ तुम्हें अपना भक्त जानकर तुम्हारी आज्ञा में बने रहते हैं। इसी वास्ते भक्तवत्सल इनका नाम संसार में प्रकट हुआ। एक बेर महादेवजी ने भी इन्हीं श्यामसुन्दर की सहायता से त्रिपुर नाम दैत्य को मारा था, उसी दिन से शिवजी त्रिपुरारि कहलाते हैं। इतनी कथा सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा—हे मुनिनाथ! इसकी कथा वर्णन कीजिए। नारदजी बोले—एक समय देवतों ने दैत्यों को युद्ध में जीत लिया तब सब दैत्य ब्रह्माजी की आज्ञानुसार मय नाम दानव की शरण में गये। सो उसने दैत्यों को अपनी माया व इन्द्रजाल के मन्त्र से चाँदी, सोने और लोहे के तीन किला विमान के समान बना दिये। वे तीनों किले आकाशमार्ग में कभी दिखलाई देते थे और कभी अन्तर्धान हो जाते थे। जब पुर दैत्यों का राजा हुआ और बहुत दैत्य उसी विमान में साथ लेकर देवतों से लड़ने के लिए चढ़ा तब इन्द्रादिक देवतों ने उसके सम्मुख जाकर अपने-अपने शस्त्र उस पर चलाये। देवतों के हथियार उस कोट की दीवार में लगकर टूट गये और दैत्यों ने अपने

शस्त्र मारकर उनको हटा दिया। जब दैत्य लोग तीनों लोक जीतने पर भी उस किले में दिन-रात रहकर मनुष्यों और देवतों को ढूँढ़-ढूँढ़कर मारने व दुःख देने लगे तब सब देवतों ने शिवजी की शरण में जाकर उनसे सहायता चाही। जब महादेवजी उनके सहायक होकर दैत्यों को युद्ध में मारने लगे तब मय दानव ने अपनी माया से उस कोट में अमृत का एक कुण्ड बना दिया। सो जितने दैत्यों को महादेव मारकर गिराते थे, उन्हें वह दानव उठाकर उस अमृतकुण्ड में डाल देता था, तब वे लोग फिर जीकर शिवजी से लड़ने लगते थे। जब इसी तरह कई दिन तक महादेवजी ने दैत्यों को मारा और वे लोग अमृतकुण्ड के प्रताप से कम नहीं हुए तब शिवजी ने अपना धनुष-बाण पृथ्वी पर पटक दिया और नारायणजी का ध्यान करने लगे। श्यामसुन्दर दीनदयालु ने महादेवजी को उदास देखकर ब्रह्मा को बछड़ा बनाया और आप गाय का रूप धरकर उस कुण्ड पर जाकर जैसे ही अमृत पीने के लिए मुँह लँबाया वैसे ही रखवारी करनेवाले किसी दैत्य ने कहा कि यह गौ अमृत पीती है, इसको मारना चाहिए। दूसरे ने उत्तर दिया कि यह गाय-बछड़ा अति सुन्दर है, पीने दो, कितना पीवेंगे। जब नारायणजी ने गायरूप की सुन्दरता दिखलाकर रखवारी करनेवाले सब दैत्यों को मोह लिया और क्षण भर में उस कुण्ड का सब अमृत पीकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये तब दैत्य लोग अमृतकुण्ड को सूखा देखकर मय नाम दानव के पास जाकर रोने लगे। जब कुण्ड के सूखने का समाचार मय दानव ने सुना तब उसने दैत्यों से कहा—हे भाई! कोई जीव परमेश्वर नहीं हो सकता जो हरिइच्छा टाल सके। यह वचन कहकर मय दानव नारायणजी को दैत्यों के विरुद्ध देखकर उस विमान से बाहर चला गया और श्यामसुन्दर ने महादेव के पास जाकर उन्हें धैर्य दिया। एक रथ व धनुष-बाण देकर उनसे कहा कि अब दैत्यों का अमृतकुण्ड सूख गया है, तुम इस रथ पर बैठकर इसी धनुष-बाण से युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी। यह वचन सुनते ही महादेव ने बड़े हर्ष से नारायणजी को दण्डवत् करके विनय किया—हे दीनदयालु! तुम्हारी

कृपा के विना मुझसे क्या हो सकता है। जिस तरह आप देवतों की रक्षा सदा करते आये हैं उसी तरह आज भी कृपालु होकर मेरी सहायता की है। जब धनुष-बाण देकर वैकुण्ठनाथ चले गये तब शिवजी ने उसी धन्वा पर एक बाण रखकर चलाया तो उस बाण के लगते ही मायारूपी तीनों कोट, पुर आदिक दैत्यों समेत जलकर भस्म हो गये और श्यामसुन्दर की दया से महादेव ने विजय किया। इन्द्रादिक देवता अपना राज्य पाकर प्रसन्न हुए। हे युधिष्ठिर! देखो ऐसा प्रताप श्रीकृष्णजी का है। यह महिमा श्यामसुन्दर की सुनकर युधिष्ठिर ने अपने को धन्य जाना। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! नारायणजी अपने भक्तों की अवश्य रक्षा करते हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय।

नारदजी का राजा युधिष्ठिर से चारों वर्णों और चारों आश्रमों का धर्म कहना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित ! इतनी कथा सुनकर राजा युधिष्ठिर नारद मुनि की बहुत स्तुति करके बोले—हे मुनिनाथ ! आप दयालु होकर वह धर्म चारों वर्णों और चारों आश्रमों का वर्णन कीजिए जिस धर्म के करने में नारायणजी प्रसन्न होते हैं। नारद मुनि ने कहा—हे राजा ! जिस किसी में ये सब गुण हों उसको तुम जानना कि इस धर्मात्मा से परमेश्वर प्रसन्न हैं। उस मनुष्य को पहिचानने के लिए ये सब लक्षण उसमें देखना चाहिए। पहिले वह सत्यवादी होकर झूठ न बोले। दूसरे वह अन्तःकरण में दया रखकर जिसे दुखी देखे अपने सामर्थ्य भर उसका दुःख छुड़ाने के लिए उपाय करे। तीसरे अपने वित्तानुसार दान देकर अकेले भोजन न करे, जो उत्तम पदार्थ मिले उसमें से पहिले ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को देकर पीछे से आप खावे। चौथे अपना चित्त परमेश्वर के भजन व स्मरण में लगाये रखकर उनकी नवधा भक्ति करता रहे। पाँचवें अति लालच छोड़कर सन्तोष रक्खे और संसारी माया से विरक्त रहकर साधु व महात्मा की भक्ति व सेवा करे। छठे परमेश्वर के अवतार की लीला व कथा प्रेमपूर्वक कह सुनकर जीवहिंसा

छोड़ दे। सातवें इन सब बातों में जितना बन पड़े उतना ध्यान रक्खे। जो मनुष्य इन शुभ कर्मों में से कोई बात नहीं करता वह पशु के समान है। हे युधिष्ठिर! परमेश्वर की भक्ति चारों वर्णों व चारों आश्रमों को करना चाहिए। जो ब्राह्मण अपने कर्म व धर्म, वेद पढ़ने व संध्या करने में सावधान रहकर परमेश्वर की भक्ति न रखता हो तो उसका वेद पढ़ना व संध्या करना सब वृथा समझो। इसी तरह से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तीनों वर्णों को तथा गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ व संन्यासी चारों आश्रमों को नारायणजी का ध्यान, स्मरण व भक्ति सच्चे मन से करना चाहिए, जिसमें उनका बेड़ा पार लगे। धर्म चारों वर्णों का विलग-विलग है, उसकी कथा सुनो। ब्राह्मण उसे कहना चाहिए जिसका सब संस्कार विधिपूर्वक जन्म लेने, मुण्डन व जनेऊ व विवाह करने के समय हुआ हो। ब्राह्मण को नित्य वेद व शास्त्र पढ़ना, उनकी चर्चा आपस में करना और दूसरों को विद्या पढ़ाना चाहिए। यज्ञ व होम करना और दूसरों से यज्ञ व होम कराना तथा दान लेना और दूसरे को दान देना ब्राह्मण का धर्म है। क्षत्रिय वर्ण का धर्म ऐसा लिखते हैं कि यज्ञ व होम आप करे और ब्राह्मण के हाथ से भी करावे। वेद व शास्त्र आप पढ़कर दूसरों को भी पढ़ावे। आप दान दे और दूसरे से दान न ले। साधु व ब्राह्मण का भक्त हो, शूरवीर व धर्मात्मा हो, अपने मन व इन्द्रियों को वश में रक्खे। वैश्य वर्ण व्यापार करे। वणिज विद्या में निपुण रहे। देवता व ब्राह्मण में भक्ति रक्खे। क्षत्रिय व ब्राह्मण की बराबरी न करे। शूद्र ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों की सेवा करके अपना कुटुम्ब पाले। शूद्र को वेद के मंत्र से यज्ञ व होम करना न चाहिए। ब्राह्मण देवता-तुल्य होते हैं, इसलिए उनको नौकरी और मनुष्य की सेवा करना अत्यन्त वर्जित है। कदाचित् कोई कहे कि द्रोणाचार्य ऐसे महात्मा ने किस वास्ते दुर्योधन की नौकरी की थी, सो उनका यह वृत्तान्त है कि एक दिन अश्वत्थामा द्रोणाचार्य का बेटा लड़कपन में किसी बालक को दूध पीते देखकर अपने पिता से बोला कि मैं भी दूध लूँगा। द्रोणाचार्य को दरिद्रता से इतनी सामर्थ्य नहीं थी जो दूध मोल लेकर उसे

देते, इसलिए उन्होंने सफेद मिट्टी, जिससे लड़के लिखते हैं, पानी में पीसकर दूध की जगह अपने बेटा को दिया। जब अश्वत्थामा ने उसे दूध समझकर पी लिया तब द्रोणाचार्य ने मन में कहा कि देखो, मेरे ऐसे जीने पर धिक्कार है कि पाव भर दूध पुत्र के पीने के लिए मेरा किया नहीं हो सकता। इसी दुःख से द्रोणाचार्य राजा दुर्योधन के पास जाकर रहने लगे, पर उन्होंने महीना बाँधकर उससे नहीं लिया। हे युधिष्ठिर! चारों वर्ण का धर्म हमने तुमसे कहा, अब स्त्रियों का धर्म सुनो। वे अपने स्वामी को देवता व परमेश्वर के तुल्य जानकर उनकी आज्ञा में रहें और किसी को कठोर बात न कहें। अधिक लोभ न रक्खें। अपने स्वामी व बड़ों की टहल शुद्ध मन से करें। अपने रहने का स्थान पवित्र रक्खें। थोड़ा या बहुत जो कुछ भूषण व वस्त्र परमेश्वर दे उसको पहिनकर मगन रहें। सच के सिवा मिथ्या वचन अपने स्वामी से न कहें। सन्तोष रक्खें। जो स्त्री अपने कर्मों के फल से विधवा हो जावे उसको किसी वस्तु से पेट भर लेना और वस्त्र से तन ढाँपकर परमेश्वर का भजन व ध्यान करना उचित है। विधवा स्त्री को भोजन आदि में स्वाद की इच्छा रखना और उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनकर शृंगार करना न चाहिए। जो स्त्री अपने धर्म व कर्म से रहकर ऐसा करती है वह मरने के उपरान्त वैकुण्ठ में जाकर लक्ष्मी के समान अपने स्वामी के साथ सुख व विलास भोगती है चारों वर्णों को चोरी आदि कुकर्मों से रहित रहना चाहिए। नित्य स्त्री व पुरुष के भोग करने में जल्दी सन्तान नहीं होती, इसलिए ज्ञानी मनुष्य को उचित है कि जब स्त्री रजस्वला होकर चौथे दिन स्नान करे तब स्त्रीप्रसंग करना चाहिए। दिन में मैथुन करने से तेज, बल और धर्म का नाश और आयु क्षीण हो जाती है। जो कोई रजस्वला होने पर चौथे दिन अपनी स्त्री के पास न जाकर परस्त्रीगमन करता है उसे महापापी व अधर्मी समझना चाहिए। इन चारों वर्णों के सिवा और जो वर्णसंकर आदि हैं उनको ऐसा उचित है कि उनके कुल में जिस तरह से धर्म व कर्म चला आता है, उसी तरह वे लोग अपना धर्म रक्खें।

बारहवाँ अध्याय।

नारदजी का चारों आश्रमों का धर्म वर्णन करना।

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर ! चारों वर्णों का धर्म हमने तुमसे वर्णन किया, अब चारों आश्रमों का धर्म, जो उन्हें करना चाहिए, सुनो। ब्रह्मचारी का धर्म यह है कि जब किसी की इच्छा ब्रह्मचर्य लेने की हो और उसके माता-पिता आज्ञा दें तब वह बीस वर्ष की अवस्था में गुरु के घर जाकर रहे और एकाग्र मन से उनकी सेवा करे। गुरु की आज्ञानुसार पढ़े और उनकी सेवा करना पढ़ने से भी उत्तम समझे। प्रातःकाल व सन्ध्या समय, गुरु, नारायण, सूर्य व अग्नि आदि देवतों का पूजन विधिपूर्वक किया करे। जटा रखावे और शिर व दाढ़ी आदि के किसी अंग के बाल कभी न मुड़ावे। जो भिक्षा माँगकर लावे सब गुरु के आगे रक्खे। जब गुरु आज्ञा दे तब भोजन करे। क्रोध करना व दुर्वचन कहना छोड़ दे। गुरु की निन्दा न करे। चन्दन आदि सुगन्ध व सुरमा आदि लगाना, मांस खाना, मदिरा पीना त्यागकर पाँच वर्ष ब्रह्मचर्य से गुरु के घर रहे। उनकी स्त्री से हँसकर न बोले, दूर से दण्डवत् कर लेवे। कभी स्त्री का प्रसंग न करे। उसके साथ बातें करना और स्त्री का गाना सुनना भी छोड़ दे। उनके पास अकेले में न बैठे, जिसमें इन्द्रियाँ व मन चलायमान न हों। स्त्री को अग्नि व पुरुष को घृत के समान समझना चाहिए, घी अग्नि का साथ पाकर बिना पिघले नहीं रहता। कदाचित् बीस वर्ष की अवस्था में उसका चित्त गृहस्थी करने को चाहे तो उत्तम कुल में विवाह करके गृहस्थ धर्म से रहे। विवाह करने की इच्छा न हो तो जन्म भर गुरु के घर में रहकर किसी स्त्री को कुदृष्टि से न देखे। वानप्रस्थ का धर्म यह है कि जब गृहस्थी में पचास वर्ष की अवस्था हो जाय तब अपनी स्त्री समेत वन में जाकर परमेश्वर का तप व स्मरण करे। कन्द मूल व फलादिक के सिवा खेत का बोया हुआ अन्न न खावे। कन्द मूल आदि न मिले तो वृक्ष का पत्ता खाकर रहे, पर फल व पत्ता वृक्ष में से न तोड़कर पृथ्वी का गिरा हुआ खावे। वन में स्त्री समेत एकान्त में रहकर छाल का वस्त्र पहिने। जो अथिति

व मंगन आ जावे उसको भी वही फल व कन्द मूल खिलावे। उसी फलादिक से होम किया करे। क्षौरादिक छोड़ दे। वर्षा में मैदान में बैठे और जाड़े में जलवास करे। गर्मी में पंचाग्नि तापे। इस तरह का तप एक वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष, आठ वर्ष या बारह वर्ष जब तक हो सके, करके ब्रह्म का विचार करता रहे तो वह ब्रह्मरूप हो जाता है।

—:०:—

तेरहवाँ अध्याय।

नारदजी का राजा युधिष्ठिर से संन्यासधर्म की कथा कहना।

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर! वानप्रस्थ पचहत्तर वर्ष की अवस्था में संन्यास लेकर दण्ड-कमण्डलु धारण करे। संन्यासी धर्म यह है कि पहिले जिस तरह ब्राह्मणों ने वेदमंत्र से उसके गले में जनेऊ पहिनाया था उसी तरह मंत्र पढ़कर जनेऊ गले से उतार डाले और पूर्व आश्रम का धर्म छोड़ दे। किसी नगर व गाँव में एक रात्रि से अधिक न रहे, पर भिक्षा माँगने को बस्ती में जावे जो कुछ मिले उसे लेकर शास्त्रानुसार अपना कर्म करता रहे। कुछ वस्तु आदि अपने पास न बटोरे। अकेला रहे और दण्ड कमण्डलु एक क्षण न छोड़े। सब जीवों पर दया रक्खे, हरिचरणों का ध्यान करता रहे। परब्रह्म का प्रकाश जड़ व चैतन्य सब तन में एकसा समझे। किसी को चेला न मूड़े और अपने रहने के वास्ते मठादिक न बनवावे। बस्ती के बाहर रहे और भोजन व वस्त्र का सोच न करे। वेद व शास्त्र पढ़ने व सुनने का अधिक अभ्यास रक्खे। संसार को स्वप्नवत् समझकर मरने की चिन्ता व जीने का हर्ष न करे। इतनी कथा सुनाकर नारदजी बोले कि हे राजा! हमने ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास का धर्म तुमसे कहा। अब एक संन्यासी का इतिहास कहते हैं, सुनो। प्रह्लादजी राजगद्दी पर बैठकर एक समय अपने देश में सैर करने निकले। जिस स्थान पर किसी ज्ञानी का समाचार मिलता था वहाँ जाकर उसके साथ हरिचर्चा बड़े प्रेम से करते थे। एक दिन रेवा नदी के किनारे पहुँचकर क्या देखा कि एक अवधूत दत्तात्रेय नाम का अति पुष्ट व तेजस्वी नंगे शिर नदी के तट पर पड़ा हुआ परमेश्वर के ध्यान में लीन है। प्रह्लाद

उस अजगर मुनि को देखते ही शिविका पर से उतर पड़ा और उसके निकट जाकर बोला—हे परमहंसमूर्ति। तुम हमको बड़े गुणवान् व महात्मा दिखलाई देते हो। कुछ भोजन व वस्त्रादिक अपने पास नहीं रखते। कुछ उद्यम नहीं करते और न किसी से कुछ माँगते हो, तिस पर भी बहुत मोटे दिखलाई देते हो। जगत् में हम देखते हैं कि बिना उद्यम किये किसी को द्रव्य नहीं मिलता और बिना धन संसारी सुख नहीं मिलता। संसारी जीव अनेक उद्यम करने पर भी दुर्बल रहते हैं, इसका क्या कारण है। इसके सिवा और जो कुछ ज्ञान परमेश्वर ने आपको दिया हो वह भी थोड़ा कहो। यह बात सुनते ही अजगर मुनि उठ बैठे और प्रह्लाद को हरिभक्त जानकर बोले कि हे प्रह्लाद। तुमने जो पूछा कि तू कुछ उद्यम नहीं करता और मोटा दिखलाई देता है, इसका हाल सुनो। मैंने जगत् में उद्यम करके बहुत द्रव्य कमाया, पर मेरी तृष्णा नहीं छूटी। जब मैंने देखा कि लोभरूपी कमण्डलु मेरा किसी तरह नहीं भरता और जितना द्रव्य अधिक बटोरता हूँ उतना ही लोभ प्रतिदिन बढ़ता है तब मैंने विचारा कि मनुष्यतन पाकर किस वास्ते अपना जन्म अकार्थ खोऊँ। कदाचित् इसी तरह संसारी माया में फँसा रहकर एक दिन मर गया तो नरक में जाकर अवश्य दुःख भोगूँगा, इसलिए संसारी तृष्णा छोड़कर आठों पहर परमेश्वर के ध्यान में मग्न रहता हूँ। जिनके हृदय में हरिचरणों का वास रहता है वे लोग बेफिक्र रहकर पुष्ट होते हैं। संसारी चिन्ता रखने से मनुष्य दुर्बल होता है। बाहर का अंधकार सूर्य के प्रकाश से मिटता है और भीतर अन्तःकरण का अँधियारा परमेश्वर की भक्ति करने से छूट जाता है। जो तुमने यह कहा कि तू कोई वस्तु अपने पास नहीं रखता और किसी से कुछ माँगता भी नहीं, सो मैंने बहुत धनपात्रों को देखा है कि वे लोग द्रव्य बटोरने से सदा चिन्ता में रहते हैं। प्रथम तो राजा का भय रहता है कि ऐसा न हो कोई कलंक लगाकर हमारा धन छीन लेवे। दूसरे चोर व डाकू के डर से रात को अच्छी तरह निद्रा नहीं आती। तीसरा भय अपने नातेदारों का लगा रहता है, वे लोग इसी विचार में दिनरात रहते हैं कि किस तरह इनका

द्रव्य हमको मिले। इसी कारण धन बटोरनेवालों को सुख नहीं मिलता। जिस तरह मक्खियाँ अति परिश्रम से छत्ते में शहद बटोरकर कृपणता से उसको नहीं खातीं, जब बहुत-सा मधु उसमें इकट्ठा होता है तब कोल व मुसहर आदि उस छत्ते में अग्नि लगाकर शहद अपने घर ले जाते हैं। उन मक्खियों को शहद बटोरने में दुःख के सिवा कुछ सुख नहीं मिलता। उसी तरह द्रव्य बटोरनेवालों को भी अति दुःख के सिवा वह धन उनके काम नहीं आता। इसी वास्ते मैं संसारी मोह छोड़कर विरक्त हो गया। जिस तरह अजगर सर्प चलने की सामर्थ्य न रखकर एक स्थान पर पड़ा रहता है और परमेश्वर उसी जगह उसको आहार पहुँचाते हैं उसी तरह मैं भी पड़ा रहकर दिन-रात परमेश्वर के ध्यान में मग्न रहता हूँ। जो कुछ प्रारब्धानुसार कोई दे जाता है उसे खाकर सन्तोष रखता हूँ।

दो० अजगर करें न चाकरी पक्षी करें न काम। दास मलूका यों कहैं सबके दाता राम।

हे प्रह्लाद! कदाचित् कोई दया से खीर-पूरी मुझे दे गया तो उसे खाकर उसका कुछ बखान नहीं करता और जो कोई दुर्बचन कहकर साग-रोटी अलोनी खिला जाता है उससे भी कुछ खेद न मानकर यह समझता हूँ कि यह सब मेरे कर्मानुसार होता है। किसी दिन भोजन न मिलने और उपास करने पर भी प्रसन्न रहकर यह जानता हूँ कि आज मेरे भाग्य में भोजन नहीं लिखा था। कभी कोई मेरे अंग में चन्दनादिक सुगन्ध लगाकर उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाकर हाथी व घोड़ा व सुखपाल पर बैठा देता है और कभी पृथ्वी पर धूलि में पड़ा रहता हूँ सो मुझे उसके मिलने का हर्ष व छूटने का विषाद कुछ नहीं होता। इसी तरह हम आनन्दपूर्वक अपना जन्म काटते हैं। सो हे प्रह्लाद! यह जीव चौरासी लाख योनि में भ्रमकर मनुष्य तन पाता है। जो कोई भरतखण्ड में मनुष्य का चैतन्य चोला पाकर हरिभजन व स्मरण से विमुख रहा उसे बड़ा अभागी व मूर्ख समझना चाहिए। प्रह्लाद यह ज्ञान सुनकर अति प्रसन्न हुआ और अजगर मुनि से विदा होकर अपने घर आया।

चौदहवाँ अध्याय।

नारदजी का राजा युधिष्ठिर से गृहस्थाश्रम का धर्म कहना।

नारदजी ने कहा—हे युधिष्ठिर! अब हम गृहस्थाश्रमधर्म कहते हैं, सुनो। जब ब्रह्मचारी वेद आदि पढ़कर गृहस्थी करना चाहे तो वह अपने देश के राजा से जाकर कहे कि हम विद्या पढ़ चुके अब तुम्हारे नगर में गृहस्थाश्रम में रहेंगे। तब राजा को उचित है कि उसकी विद्या की परीक्षा लेवे और अपने कोश से द्रव्यादिक देकर उसका विवाह उत्तम कुल में करा देवे। गृहस्थ होने के उपरान्त वह ब्राह्मण अपने धर्मानुसार उद्यम करके अपना कुटुम्ब पाले। चारों वर्णों के गृहस्थ को चाहिए कि प्रतिदिन यथाशक्ति दान व पुण्य करे। जिसके घर कोई वस्तु दान देने की न हो उसको जिस समय कुछ भोजन मिले उसमें से कुछ दे दे। गृहस्थ को ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी के भोजन व वस्त्र की सुधि अवश्य लेना चाहिए। क्योंकि इन तीनों आश्रमवालों को धनादिक बटोरना वर्जित है। गृहस्थ नित्य पितरों का श्राद्ध व तर्पण करे। अमावस, पूर्णमासी, संक्रांति और द्वादशी के दिन अवश्य कुछ दान देना चाहिए। ब्राह्मण को नारायणरूप समझकर दान देवे। गृहस्थ प्रतिदिन परमेश्वर की कथा व लीला सुनकर हरिचरणों का ध्यान व स्मरण रखके ऐसा जानता रहे कि आत्मा सब जीवों में एकसा है। जिस तरह सोने व मिट्टी का बर्तन पानी भरकर रख दो तो चन्द्रमा व सूर्य का प्रकाश दोनों बर्तनों में बराबर पड़ता है, उसी तरह परमेश्वर के प्रकाश जीवात्मा को ब्राह्मण, क्षत्रिय, चाण्डाल, पशु व पक्षी आदि सबके तन में समान समझकर किसी जीव को दुःख देना न चाहिए। आत्मा में ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्रवर्ण का भेद नहीं होता। गृहस्थ को धर्म की कमाई से देवतों के नाम पर यज्ञ व होम करना, मंगन व कंगालों को भोजन व वस्त्र देना और अपने परिवारवालों का पालन करना उचित है। पर मन से घरवालों को ऐसा समझे कि जिस तरह रात को चारों दिशा के पथिक एक जगह वास करके प्रातःकाल विलग हो जाते हैं, फिर उनका साथ नहीं रहता, उसी तरह संसारी जीव अपने-

अपने कर्मों के फल से उत्तम व नीच कुल में जन्म लेकर इकट्ठे होते हैं और पूर्वजन्मों के संस्कार से अपना-अपना बदला लेकर मरने के उपरांत न मालूम किस योनि में चले जाते हैं, इसलिए उनसे अधिक प्रीति न रक्खे। काम, क्रोध, मोह व लोभ आदि अपने शत्रुओं को जीतकर पतिव्रता स्त्री के समान हरिचरणों में ध्यान लगाकर मुक्त होवे, नहीं तो फिर यह तन मिलना बहुत कठिन है। अधर्म व पाप करने से नरकों का दुःख अवश्य भोगकर सदा आवागमन में फँसा रहेगा। मरते समय हाथी, घोड़ा व द्रव्यादिक कुछ संग नहीं जाता, इसलिए धन पाकर दान व धर्म करना चाहिए। जो सूम लोग धन जोड़कर मर जाते हैं उनको यमपुरी में चोरों के समान दण्ड मिलता है और जिन परिवारवालों को झूठ-सच बोलकर वह जन्म भर पालता है वे लोग उस दुःख में कुछ सहायता नहीं करते। अपना शरीर भी गल-सड़कर कुछ काम नहीं आता। इसलिए मनुष्य को अपना परलोक बनाने के लिए ब्राह्मण को देवतातुल्य समझकर अच्छा भोजन खिलाना और उसकी सेवा करना उचित है। इसमें परमेश्वर अति प्रसन्न रहते हैं। गृहस्थ को अपने परिवारवालों का क्रिया व कर्म अवश्य करना चाहिए। तीर्थ पर रहने से मनुष्य का मन अधर्म की तरफ नहीं जाता और किसी जगह रहने में चित्त पाप की तरफ दौड़ता है। कलियुग-वासी जीव परमेश्वर का भजन व स्मरण करने और कथा व लीला सुनने से कृतार्थ होते हैं।

—:०:—

पन्द्रहवाँ अध्याय।

गृहस्थाश्रम की कथा।

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर! गृहस्थाश्रम को देवता व पितरों के नाम पर यज्ञ व श्राद्धादिक में अच्छे कुलीन क्रियावान् वेद व शास्त्र जाननेवाले हरिभक्त ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। ऐसा ब्राह्मण खिलाने से अति पुण्य होता है, जिस तरह अच्छी धरती पर थोड़ा अन्न बोने से बहुत उत्पन्न होता और ऊसर पृथ्वी पर कुछ नहीं उपजता। देवकर्म व पितरकर्म में तीन ब्राह्मण से कम कभी न खिलावे। यज्ञ व श्राद्ध में जीवहिंसा न

करे। देवता और पितर जीवहिंसा करने से प्रसन्न नहीं होते। सब यज्ञों से ज्ञानयज्ञ परमेश्वर की कथा व कीर्तन कहना व सुनना अति उत्तम व पवित्र है, और सब धर्मों में बड़ा धर्म यह जानो कि मनसा वाचा कर्मणा किसी का अनभल न चाहे। सन्तोष रक्खे, जिनको सन्तोष नहीं होता वे बड़े-बड़े पण्डित व ज्ञानी भी नरकवास करते हैं। गृहस्थ को प्रतिज्ञा किसी बात की न करना चाहिए। जो गृहस्थ अपने धर्म से विपरीत चलता और ब्रह्मचारी अपने व्रत व धर्म को छोड़ देता है जो वानप्रस्थ अपने तप से धर्म को नहीं मानता और जो संन्यासी लालच करता तथा अपनी इंद्रियों का सुख चाहता है ये सब नाम के वास्ते आश्रम का रूप बनाये हैं, पर उस धर्म का फल इनको नहीं मिलता। हे राजन्! चारों वर्ण और चारों आश्रम को ऐसा उचित है कि चैतन्य चोला पाकर दो तरह का कर्म करें, एक प्रवृति और दूसरा निवृत्ति। शास्त्र की आज्ञानुसार प्रवृत्तिकर्म करनेवाला जीव चन्द्रमण्डल की राह से देवलोकादिक में जाकर अपने कर्मों का सुख भोगता है और अवधि बीतने पर फिर संसार में जन्म लेकर आवागमन से छुट्टी नहीं पाता। निवृत्तिकर्म करनेवाले सूर्य मण्डल के मार्ग से वैकुण्ठ में पहुँचकर जन्म व मरण से छूट जाते हैं। सो हमने दोनों राह तुझको बतला दिया। जो गृहस्थ हमारे कहने व शास्त्रानुसार अपने कर्म व धर्म से रहे वह परमहंस पदवी को गृहस्थाश्रम में भी पा सकता है। जो कोई संन्यास व वैराग्य लेकर फिर गृहस्थी की चाह करे उसको कुत्ते के समान, जो उबांत करके खा लेता है, समझना चाहिए। परमेश्वर की माया में संसारि मनुष्य लपटकर नष्ट हो रहे हैं। जिस तरह रथ में जोता हुआ घोड़ा रथ को जिधर चाहें उधर खींचकर ले जावे, रथ का कुछ वश नहीं चलता उसी तरह रथरूपी शरीर में मन चंचल घोड़े के समान है। अपने कर्मों से जिस लोक में चाहे वहाँ ले जा सकता है। इसलिए मनुष्यतन में शुभ कर्म करके वैकुण्ठ व स्वर्ग का सुख भोगना चाहिए जिस भक्ति व भजन के प्रताप से मैं ब्रह्मा का पुत्र हुआ, वह कथा सुनो। पिछले महाकल्प में हम उपवर्ण नामक गन्धर्व थे। गाना अच्छा जानते थे और अति सुन्दर होने से अनेक स्त्रियाँ मुझे चाहती थीं। सो मैं भी

उन पर मोहित रहकर उनके साथ भोग व विलास करता था। एक दिन मैं विश्वसर्ज देवता की सभा में जाकर गाने लगा, पर मेरा चित्त एक स्त्री से उन दिनों में बहुत फँसा था, इसलिए उस समय मेरा गाना नहीं बन पड़ा। अंगिरा ऋषीश्वर का कुरूप देखकर मैंने हँस दिया, इसी अपराध से उस देवता ने मुझे शाप दिया कि तू शूद्र हो जा। उसी शाप से मैं दूसरे जन्म में एक ब्राह्मण की दासी का पुत्र हुआ। वहाँ सत्संग व हरिभजन करने के प्रताप से फिर मुझे नारद पदवी मिली। सो हे युधिष्ठिर! तुम बड़े भाग्यवान् हो। जिनका नाम लेने व भजन करने से मनुष्य कृतार्थ होकर ऐसी पदवी को पहुँचता है वही श्रीकृष्ण परब्रह्म परमेश्वर दिनरात तुम्हारे सम्मुख रहकर तुम्हें अपना बड़ा जानते हैं। ऐसा भाग्य दूसरे का होना अति दुर्लभ है। हम लोग ऋषीश्वर और देवतादिक भी उन्हीं का दर्शन करने के लिए तुम्हारे पास आया करते हैं। सो श्यामसुन्दर के दर्शन व पूजा करने से तुम्हारी मुक्ति होने में कुछ संदेह नहीं है। यह वचन सुनते ही राजा युधिष्ठिर व अर्जुन ने श्रीकृष्णजी के प्रेम में डूबकर बड़ा सोच करके मन में कहा कि देखो, परमेश्वर त्रिलोकीनाथ को हमने अपना भाई जानकर उनसे नातेदारों के समान काम लिया। जब ऐसा विचारकर दोनों भाई श्यामसुन्दर के चरणों पर शिर रखकर रोने लगे तब श्यामसुन्दर ने संकेत से नारद-मुनि से कहा कि तुमने क्यों मेरा भेद खोल दिया, अब ये लोग नातेदारी की प्रीति छोड़कर मुझे ईश्वर भाव समझेंगे। नारदजी बोले—हे दीनानाथ! आज तक ये लोग तुम्हारी माया में फँसे थे अब इनका मोह छुड़ाकर इन्हें कृतार्थ कीजिए। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! श्यामसुन्दर की यह महिमा सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने अति प्रसन्न होकर बड़े प्रेम से श्रीकृष्णजी और नारद मुनि की विधि-पूर्वक पूजा की। उसी दिन से युधिष्ठिर श्यामसुन्दर को पूर्ण ब्रह्म जान-कर उनका ध्यान व स्मरण करने लगे और नारद मुनि वहाँ से ब्रह्मलोक को चले गये।

आठवाँ स्कन्ध।

—:०:—

परमेश्वर का हरिअवतार लेकर हाथी का प्राण बचाना और वामन अवतार धरकर राजा बलि से तीन पग पृथ्वी दान लेना।

पहिला अध्याय।

शुकदेवजी का मन्वन्तरों की कथा कहना।

राजा परीक्षित इतनी कथा सुनकर बोले—हे शुकदेव स्वामी! राजा स्वायम्भुव मनु के वंश का हाल मैंने सुना, अब मन्वन्तरों के नाम और जिस-जिस मन्वन्तर में परमेश्वर ने जो-जो अवतार लिए थे उनकी कथा सुना चाहता हूँ, सो कहिए। शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! स्वायम्भुव मनु से लेकर आज तक छः मन्वन्तर बीते हैं, सो पहिले मन्वन्तर की कथा, जिसमें वही स्वायम्भुव मनु राजा होकर दो पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न किया था, तीसरे-चौथे और पाँचवें स्कन्ध में तुमसे वर्णन कर चुके हैं। उन्हीं की तीसरी कन्या आकूती थी जो रुचि प्रजापति को ब्याही गई थी। उसी मन्वन्तर में यज्ञ भगवान् ने अवतार लिया। एक समय राजा स्वायम्भुव मनु सुभद्रा नदी के तट पर एक पग से खड़े होकर तप करते थे, उस समय राक्षसों ने आकर उनके तप में विघ्न करना चाहा। तब उन्हीं यज्ञ भगवान् ने राक्षसों के हाथ से स्वायम्भुव मनु को बचाकर तीनों लोकों की लक्ष्मी समेत राज्य भोगा। यह सब कथा पहिले मन्वन्तर की है। दूसरा स्वारोचिष नाम मनु अग्नि का पुत्र हुआ, उसमें देवता आदि मनु के बेटे, रोचन नाम का इन्द्र, तुषिता आदि देवता और ऊर्जस्तम्भ आदि सप्तऋषि हुए। शिरस ऋषीश्वर के यहाँ विभव नाम परमेश्वर ने अवतार लेकर अट्ठासी हजार

ऋषीश्वरों को ज्ञान का उपदेश किया। तीसरा उत्तम नाम मनु राजा प्रियव्रत का पुत्र हुआ, उसमें पवन आदि मनु के बेटे, सत्यजित नाम इन्द्र, सत्य आदि देवता और परमेश्वर आदि सप्तऋषि हुए। धर्म की सुनीता स्त्री से सत्यसेन नाम परमेश्वर ने अवतार लेकर पापी व दुष्टों का नाश करके सत्य को स्थिर किया। चौथा तामस नाम मनु उत्तम का भाई हुआ, उसमें पृथु आदि मनु के बेटे, विसख नाम इन्द्र, सत्यक आदि देवता और ज्योतिधर्म आदि सप्तऋषि हुए। हरिमेधा ऋषीश्वर के यहाँ हरिनाम परमेश्वर ने अवतार लेकर ग्राह से गजेन्द्र को छुड़ाया। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने विनय किया—महाराज! जिस तरह परमेश्वर ने गज को ग्राह से छुड़ाया था उसकी कथा वर्णन कीजिए।

—: ० :—

दूसरा अध्याय।

शुकदेवजी का गजेन्द्र व ग्राह की कथा कहना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! परमेश्वर अविनाशी पुरुष जन्म मरण से रहित हैं। ब्रह्मा आदि देवता भी उनके आदि व अन्त को नहीं जानते, उनका निरंकाररूप प्रत्यक्ष नहीं देख सकते। जब कभी हरिभक्तों पर दुःख पड़ता है तब वह अपने भक्त की रक्षा करने के लिए सगुण अवतार लेकर संसार में अपना एक नाम प्रकट कर देते हैं। उसी तरह हाथी का प्राण बचाने के लिए भी हरि ने अवतार धारण किया था। उसकी कथा इस तरह है। त्रिकूट नाम का एक पर्वत दश हजार योजन लम्बा व चौड़ा व ऊँचा क्षीर समुद्र के मध्य में है, उसके तीन शिखर सोने, चाँदी व लोहे के हैं। उसके एक शिखर में अनेक रंग के उत्तम रत्न ऐसे जड़े थे कि जिसका प्रकाश सूर्य से अधिक था। उस पहाड़ पर देवता व गन्धर्वादिक अपनी-अपनी स्त्रियों समेत रहकर विहार करते थे। वहाँ संगमरमर के कुण्ड बने थे और अनेक रंग के पक्षी मीठे शब्द बोलते थे। ऐसे उत्तम बगीचे, अनेक रंग के पुष्प व फल वहाँ लगे रहते थे, जिनको देखकर सबका मन मोहित हो जाता था। योजन पर्यन्त उन पुष्पों की

सुगन्ध उड़ती थी। वहाँ एक बहुत बड़ा तालाब था, जिसमें कमल फूले हुए थे। उसमें कच्छ-मच्छ व ग्राहादिक रहते थे। एक दिन सब हाथियों का राजा गजेंद्र, जो उस पर्वत पर रहता था, जेठ महीने में दोपहर के समय प्यासा होकर हजार हथिनी व कई हजार बच्चों को साथ लिये उस तालाब पर जल पीने के लिए चला। मद बहने से उसके चारों ओर भँवरे गूँजते थे। जब वह अपने उमंग से, जो दश हजार हाथी का बल रखता था, रास्ते में झूमता, वृक्षों को गिराता और पत्तों को खाता हुआ तपन का मारा तालाब में जाकर घुसा और जल पीकर अपनी हथिनी व बच्चों को सूँड़ से पानी पिलाकर उनके साथ कलोल करने लगा तब एक ग्राह ने, जो उससे भी बलवान् था, आकर हाथी का पिछला पैर पकड़ लिया। हाथी व ग्राह से युद्ध होने लगा। कभी गजेंद्र अपने बल से ग्राह को खींचकर सूखे में ले आता और कभी ग्राह उसको खींचकर पानी में ले जाता था। जब इसी तरह उन दोनों को लड़ते-लड़ते हजार वर्ष बीत गये और उसकी हथिनी व बच्चा बड़ा परिश्रम करने पर भी गजेंद्र को ग्राह से छुड़ा न सके तब अधैर्य होकर उन्होंने समझा कि अब हाथी जीता नहीं बचेगा, इसके साथ हम लोग अपने प्राण क्यों देवें। ऐसा विचारकर हाथी को अकेला छोड़कर वे सब वन में चले गये। गजेंद्र के प्राण कण्ठ में आ लगे थे, उनके चले जाने से घबराकर उसने विचार किया कि इस महादुःख में कोई मेरा साथी नहीं है। हथिनी व बच्चों ने भी मुझे अकेला छोड़ दिया, जान पड़ता है कि मेरे पूर्वजन्म के पापों ने ग्राहरूप होकर मेरा पैर पकड़ा है। जैसा कर्म मैंने किया था वैसा फल भोगता हूँ। ये सब देवता और गन्धर्वादिक अपने-अपने विमान पर बैठे हुए मेरे युद्ध का कौतुक देखते हैं, इनमें से भी कोई मेरे प्राण नहीं बचाता, इसलिए अब मैं उस परब्रह्म की शरण में जाऊँ, जो काल का भी मालिक है, तो मेरे प्राण बचें। ऐसा विचारकर हाथी नारायणजी के चरणों का ध्यान सच्चे मन से करने लगा।

तीसरा अध्याय।

गजेंद्र का परब्रह्म की स्तुति करना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! गजेंद्र ने पूर्वजन्म के पुण्य से परमेश्वर का ध्यान करके कहा—मैं उन भगवान् की शरण में हूँ जिनकी कृपा से संसारी जीव चैतन्य होते हैं और सारा जगत् उन्हीं से उत्पन्न होकर उनके आश्रय में रहता है। उस परमेश्वर का महाप्रलय में भी नाश नहीं होता, वे सदा स्थिर रहते हैं। जिस तरह बालक नट व भानमती के खेलवाड़ को नहीं पहिचानते उसी तरह ब्रह्मादिक देवता भी उनके आदि व अन्त को नहीं जानते। जैसे अग्नि की चिनगारी उड़ती हैं और सूर्य का प्रकाश छिद्र में से रज के समान दिखलाई देता है वैसे जिन परब्रह्म के सामने देवता लोग चिनगारी व रजतुल्य हैं, मैं उन्हीं परमेश्वर को दण्डवत् करता हूँ। जिनके बहुत से नाम व स्वरूप हैं, प्रकट में उनका कोई रूप दिखलाई नहीं देता और वह आप मुक्तरूप होकर सब कार्य करते हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अविनाशी पुरुष मुझे इस फंदे से छुड़ा सकते हैं, जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ देनेवाले हैं, सब जीवों में उन्हीं का तेज रहता है ऐसे जगद्-व्यापक राम की मैं शरण में हूँ। जो परमेश्वर योगीश्वरों को योग व तप करने का फल देते हैं, वही दीनानाथ इस समय मेरी रक्षा करें। उनके सिवा अब मैं किसी का भरोसा नहीं रखता। हे दीनदयालु महाप्रभु! मैं इस ग्राह के मुँह से छूटने के लिए यह स्तुति नहीं करता, मायारूपी संसारी जाल से निकलने के लिए यह कहता हूँ। इसलिए मुझ दीन पर दयालु होकर मेरा दुःख दूर कीजिए। हे परब्रह्म परमेश्वर! तीनों लोकों के उत्पन्न, पालन व नाश करनेवाले! तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो दीनों का दुःख छुड़ा सके। हे जगद्गुरु! जब तक मनुष्य अपनी सामर्थ्य और परिवारवालों का बल रखता है तब तक उसकी कोई इच्छा पूर्ण नहीं होती, सो मैं भी तुम्हारी माया में फँसकर अपनी हथिनी व बच्चों का भरोसा रखने से इस दुर्दशा को

पहुँचा। अब उनका आसरा छोड़कर तुम्हारी शरण में आया हूँ। हे दीनदयालु ! मुझे अपने मरने का कुछ भय नहीं है, केवल इस बात का सोच है कि संसारी लोग कहेंगे कि गजेन्द्र का दुःख नारायणजी की शरण में जाने से भी नहीं छूटा। इस बात की लज्जा रखकर मेरा कष्ट दूर कीजिए, नहीं तो आपकी शरण में कोई न जायगा। आप अन्तर्यामी हैं, अधिक क्या विनती करूँ। हे परीक्षित ! यह स्तुति सुनकर अन्तर्यामी परमेश्वर ने गजेन्द्र को महादुःखी जानकर उसी समय अपना सुदर्शनचक्र उठा लिया और गरुड़ पर बैठकर वैकुण्ठ से चले। जब गजेन्द्र ने देखा कि वैकुण्ठनाथ सुदर्शनचक्र हाथ में लिये, गरुड़ पर चढ़े, आकाशमार्ग से मेरी रक्षा करने को चले आते हैं तब उसने कमल का एक पुष्प सूँड़ से तोड़ लिया और ऊँचे उठाकर पुकारा हे नारायण, हे जगद्गुरु, हे दीनानाथ, हे भगवन्त, हे दुखभंजन, हे श्यामसुन्दर, हे ज्योतिस्वरूप ! मैं आपकी शरणागत होकर दण्डवत् करता हूँ, जल्दी मेरी सुधि लीजिए। जैसे त्रिलोकीनाथ ने उस दुखिया के यह दीन वचन सुने वैसे ही सुदर्शनचक्र समेत गरुड़ पर से कूदकर पैदल दौड़े और वहाँ पहुँचते ही सुदर्शनचक्र से ग्राह का मुख चीरकर मार डाला और हाथी को तालाब से खींचकर बाहर निकाल दिया।

—:०:—

चौथा अध्याय।

ग्राह का गन्धर्वतन पाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित ! जिस समय ग्राह मारा गया उस समय देवतों ने आनन्दपूर्वक दुन्दुभी बजाकर पुष्पों की वर्षा हरिभगवान् पर की, और ऋषीश्वर आदि उनकी स्तुति करने लगे। वह ग्राह परमेश्वर के स्पर्श करते ही एक महासुन्दर पुरुष होकर भूषण व वस्त्र पहिने हुए आकर नारायणजी के चरणों पर गिर पड़ा। उसने स्तुति व परिक्रमा करके हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज ! मैं पिछले जन्म में हूहू नाम का गन्धर्व था। एक दिन अपनी स्त्रियों को विमान पर

बैठाकर विहार को निकला और वन में एक बहुत अच्छा तालाब देखकर स्त्रियों समेत उसमें जलविहार करने लगा। उसी जगह देवल ऋषि भी नहाते थे, सो मैंने अपनी अज्ञानता और स्त्रियों के कहने से उन ऋषि का उपहास करने के लिए गोता मारकर उनका पैर पकड़-कर पानी के भीतर खींच ले गया। जब वे गिर पड़े तो उनका पैर छोड़कर तालाब से बाहर निकल आया और अपनी स्त्रियों समेत हँसने लगा। तब देवल ऋषि ने क्रोधित होकर मुझे शाप दिया कि हे गंधर्व! तूने हँसी से हमारा पैर ग्राह के समान पकड़कर खींचा था, इसलिए परमेश्वर से चाहता हूँ कि तू ग्राहतन में जन्म लेकर पशु व मनुष्यों का पैर जल के भीतर पकड़ाकर। यह शाप सुनते ही मैंने अति लज्जित होकर उनसे कहा—मैंने अपने किये का फल पाया, पर अब यह बतलाइए कि इस शाप से मेरा उद्धार कब होगा। तब ऋषीश्वर बोले कि तू कई हजार वर्ष तक ग्राहयोनि में रहकर एक दिन गजेन्द्र का पैर पकड़ेगा। और वैकुण्ठनाथ हाथी को छुड़ाने के लिए आकर तुझे सुदर्शनचक्र से मारेंगे तब फिर तू गन्धर्वतन पावेगा। उन ऋषीश्वर की कृपा से आज आपका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हुआ, अब आज्ञा दीजिए तो अपने लोक को जाऊँ। जब वह गन्धर्व परमेश्वर से विदा होकर दंडवत् करके विमान पर बैठकर अपने लोक को चला गया तब हरि भगवान् की आज्ञा से उस गज ने भी वह तन छोड़कर मुक्ति पाई और इन्द्रदमन राजा का स्वरूप हो गया। वह भी दण्डवत्, स्तुति और परिक्रमा करके हाथ जोड़कर बोला—हे दीनानाथ! मैं पूर्वजन्म में इन्द्रदमन नाम का राजा था, दिन-रात हरिचरणों में ध्यान लगा-कर राजकाज करता था। एक दिन जप व ध्यान करते समय अगस्त्य मुनि मेरे घर आये थे, सो मैं अपने अज्ञान से उनका आदर न करके ज्यों का त्यों बैठा रहा। तब अगस्त्यजी क्रोध करके बोले—हे राजा! किस शास्त्र में ऐसा लिखा है कि जब ब्राह्मण, ऋषीश्वर व वैष्णव किसी स्थान पर आवे और घर का मालिक उनका आदर न करके मतवाले हाथी की तरह बैठा रहे। इसलिए परमेश्वर से मैं चाहता हूँ कि तू हाथी का तन पावे। यह शाप सुनते ही मैंने लज्जित होकर उनसे विनय किया—हे मुनिनाथ

मैंने अपने कर्म का फल पाया, पर यह बतलाइए कि उस तन से मेरी छुट्टी कब होगी। यह सुनकर मुनि ने कहा कि जब ग्राह तेरा पैर तालाब में पकड़ेगा तब वैकुंठनाथ तेरी सहायता करने आवेंगे और ग्राह को मारकर तुझे मुक्ति देंगे। सो मैं अगस्त्य मुनि की दया से आपका दर्शन पाकर कृतार्थ हुआ। जब इस तरह इन्द्रदमन ने हाथ जोड़कर स्तुति किया, तब नारायणजी प्रसन्न होकर बोले—हे इन्द्रदमन! जो कोई मेरा, तेरा इस पर्वत का, क्षीरसमुद्र, कौस्तुभमणि, मेरे शंख, चक्र, गदा, पद्म, मत्स्य, कच्छप आदि मेरे अवतारों का, गंगा आदि तीर्थों का, ध्रुव व प्रह्लादादिक मेरे भक्तों का पिछली रात उठकर ध्यान करेगा उसे अशुभ स्वप्न का फल नहीं होगा। जो संसारी जीव इस गजेंद्र-मोक्ष-स्तुति को मेरे निमित्त करेंगे उनको मैं अन्त समय इसी तरह मुक्ति दूँगा जिस तरह तेरा उद्धार किया है। ऐसा कहकर हरिभगवान् ने इन्द्रदमन को अपने गरुड़ पर बैठा लिया और शंख बजाकर वैकुंठ में चले गये। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित्! जिस तरह हाथी को ग्राह ने पकड़ा था उसी तरह सब संसारी जीव कालरूपी ग्राह के मुख में पड़े हैं। जैसे गजेंद्र ने जब दीन होकर नारायणजी को पुकारा और परमेश्वर ने उसे ग्राह के मुख से छुड़ाया उसी तरह मनुष्य जब परमेश्वर का ध्यान व स्मरण करें तब जन्म-मरण से छूटकर भवसागर पार उतर सकते हैं, जो कोई विपत्ति में गजेंद्रमोक्ष-कथा का ध्यान करेगा, नारायणजी उसका दुःख अवश्य दूर करेंगे।

—•◯•—

पाँचवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का कच्छप अवतार की कथा कहना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! हर मन्वन्तर में, जो इकहत्तर चतुर्युग का होता है, नारायणजी एक अवतार लेकर धर्म की रक्षा करते हैं। चौथे मन्वन्तर में हरि अवतार हुआ था, यह उसकी कथा तुमको सुनाया और पाँचवाँ मनु रैवत नाम तामस का भाई हुआ उसमें बलि विंध्यादिक मनु के बेटे, विभव नाम इन्द्र, ऊर्ध्वबाहु आदि देवता, हिरण्यरोमादिक सप्तऋषि हुए और शुभर ऋषीश्वर की वैकुंठ नाम स्त्री से वैकुंठ भगवान् का अव-

तार हुआ। उन्होंने सुमेरुपर्वत पर सत्यलोक के सामने दूसरा वैकुंठ लक्ष्मीजी के रहने के लिए बनाया। उस अवतार के गुणों का कोई वर्णन नहीं कर सकता। छठा चाक्षुष नाम मनु हुआ, उसमें पुर आदि मनु के बेटे, मित्ररूप नाम इन्द्र, अभू आदि देवता हर्यश्वदेव आदि सप्तऋषि हुए। विराज की देव सम्भूता नाम स्त्री से अजित नाम अवतार परमेश्वर का हुआ, जिन्होंने चौदह रत्न निकालने के लिए देवताओं और दैत्यों से समुद्र का मंथन कराया। परमेश्वर ने कच्छप का अवतार धरा और मन्दराचल पर्वत को, जो मथानी बनाने से डूबा जाता था, अपनी पीठ पर उठाया। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे शुकदेव स्वामी! भगवान् ने किस तरह पहाड़ अपनी पीठ पर लेकर समुद्रमथन कराया और उससे चौदह रत्न निकालकर देवतों को अमृत पिलाया, सो कथा दया करके सुनाइए। मेरा मन हरिचरित्र सुनने से तृप्त नहीं होता। यह सुनते ही शुकदेवजी ने अति प्रसन्न होकर कहा—हे राजा! देवता व दैत्य दोनों भाई कश्यपजी के पुत्र होकर आपस में शत्रुता रखते हैं। कभी इन्द्र दैत्यों को जीतकर देवतों समेत राज्य करता है और कभी दैत्य लोग देवतों को जीतकर तीनों लोकों का राज्य करते हैं। जिस तरह संसारी जीव पृथ्वी पर चलते हैं उसी तरह देवलोकादिक में ऋषीश्वर व महात्मा लोग आकाशमार्ग से चलते-फिरते हैं। एक समय जब इन्द्र राजसिंहासन पर था, ऐरावत पर चढ़कर कहीं को चला। रास्ते में दुर्वासा ऋषीश्वर को देखकर इन्द्र ने दण्डवत् किया। ऋषि ने बड़े हर्ष से एक पुष्प की माला, जो गले में पहिने थे, उतारकर इन्द्र के पास भेज दिया। जब उनका शिष्य माला लेकर इन्द्र के पास गया तब इन्द्र ने वह माला उससे लेकर हाथी के मस्तक पर धर दिया और अभिमान से बोला कि इससे सुगंधित और उत्तम पुष्प देवलोक में होते हैं। हाथी ने उस माला को सूँड़ से गिरा-कर पैर से रौंद डाला। जब उस शिष्य ने जाकर यह बात ऋषीश्वर से कह दिया तब दुर्वासा क्रोध करके बोले—हे इन्द्र! तूने राज्य व धन के मद से मेरी माला का निरादर किया, इसलिए तेरा राज्य व धन नष्ट हो जावे। जब दैत्यों ने दुर्वासा ऋषीश्वर के शाप देने का समाचार सुना

और युद्ध करके उनका राज्य छीन लिया तब इन्द्र ने देवतों समेत भागकर ब्रह्माजी से विनय किया—हे महाप्रभु! दुर्वासा के शाप से मेरा राज्य व धन जाता रहा, कुछ सहायता कीजिए। ब्रह्माजी बोले—मैं रक्षा करने की सामर्थ्य नहीं रखता, चलो नारायणजी से विनती करें, उनकी दया से तुम्हारा दुःख छूटेगा। ब्रह्मा ने इन्द्रादिक देवतों को अपने संग लेकर क्षीरसमुद्र के तट पर जाकर परमेश्वर से स्तुति की कि हे दीनानाथ! मैं आपकी कृपा से सब जीवों को उनके कर्मानुसार चौरासीलाख योनि में जन्म देता हूँ, पर आप अपनी इच्छा से देवता, ब्राह्मण और हरिभक्तों का दुःख छुड़ाने के लिए अवतार लेते हैं, उसमें मेरा कुछ वश नहीं चलता। इन दिनों दुर्वासा ऋषि के शाप से देवतों का राज्य दैत्यों ने छीन लिया, इसलिए सब देवता दुःखी होकर आपकी शरण में आये हैं। आप दयालु होकर इनका दुःख निवारण कीजिए। आपके सिवा कोई दूसरा मालिक व बड़ा नहीं है, जिससे जाकर अपना दुःख कहें। संसार में आपका नाम दीनदयालु प्रकट है, सो इन्हें दीन जानकर इन पर दया कीजिए और शरण आये की लाज रखकर सहायता कीजिए।

छठा अध्याय।

परमेश्वर का ब्रह्मादि देवतों को दर्शन देना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब ब्रह्मादिक देवतों के स्तुति करने से वैकुंठनाथ प्रसन्न हुए तब उन्होंने हजार सूर्य के समान तेजस्वी रूप से गरुड़ पर आकर देवतों को दर्शन दिया। वह प्रकाश देखते ही ब्रह्मा के सिवा और सब देवतों की आँखें झप गईं। सुदर्शन चक्रादिक उनके आठों शस्त्र अपना-अपना रूप धारण किये चारों ओर खड़े थे। ब्रह्मा ने दण्डवत् व परिक्रमा करके हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनानाथ! जल, थल, अग्नि, वायु और आकाश सब आप ही हैं! हम, महादेव और दक्षप्रजापति आदि देवता आपके सामने चिनगारी के समान हैं, कुछ सामर्थ्य नहीं रखते। आप सर्वदा आनन्दरूप हैं। कौन ऐसा है

जो आपका आदि-अन्त और आपकी महिमा का वर्णन कर सके। जिससे देवतों का कल्याण हो वह कीजिए। तब परमेश्वर ने जलविहार करना विचारकर कहा—हे ब्रह्मा! इन दिनों दैत्यों की दशा बली है, दुर्वासा के शाप से देवतों के दिन निर्बल हैं। अब मेरे निकट उचित है कि सब देवता दैत्यों के पास जाकर उनसे प्रीति करके क्षीरसमुद्र मथें। मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर उसमें वासुकि सर्प की रस्सी लगावें। समुद्र से अमृत आदि अति उत्तम चौदह रत्न निकालें। वह अमृत देवतों को पिलाऊँगा, उसके पीने से देवता अमर होकर दैत्यों को जीतकर अपना राज्य पावेंगे। यह बात सुनकर देवतों ने विनय किया—महाराज! दैत्य लोग हमसे बलवान् हैं, जब अमृत छीनकर पी लेंगे तब हमारा क्या वश चलेगा। परमेश्वर बोले कि तुम लोग धैर्य रक्खो, हम किसी उपाय से अमृत तुम्हें पिला देंगे। दैत्यों को परिश्रम के सिवा कुछ लाभ न होगा। तुम उनसे प्रीति करके अपना काम निकालो। जिस तरह सर्प ने जाल में फँसकर चूहे से मित्रता करके अपना कार्य सिद्ध किया था, उसका इतिहास महाभारत में विस्तारपूर्वक लिखा है। जो लोग परमेश्वर की शरण में रहते हैं उनका सब मनोरथ सिद्ध होता है। जो बात दैत्य लोग कहें उसे मान लेना, अधिक लोभ न करना, जिसमें तुम्हारी उनकी प्रीति बनी रहे। यह आज्ञा देकर नारायणजी वैकुंठ को पधारे और देवता उनकी आज्ञा से दैत्यों के राजा बलि के पास पहुँचे। राजा बलि ने मन में कहा कि इन्द्र, वरुण, कुबेरादिक देवता, जो मेरे साथ सदा शत्रुता रखते थे, आज बिना शस्त्र गहे मेरी शरण आये हैं, इसलिए जो बात यह लोग कहें वह माननी चाहिए। ऐसा विचारकर राजा बलि ने देवतों से पूछा कि तुम लोग किस इच्छा से यहाँ आये हो, अपना वृत्तान्त कहो। तब इन्द्र बोला कि हम-तुम देवता और दैत्य कश्यपजी के पुत्र और भाई-भाई हैं, सो मैंने विचारा कि कोई ऐसा उपाय करें जिसमें वृद्धापन व मृत्यु न आवे और बहुत सन्तान उत्पन्न हों, इसी इच्छा से मैं ब्रह्मा के पास गया था। ब्रह्मा हम लोगों को नारायणजी के यहाँ ले गये। उन्होंने हमारी विनय सुनकर कहा कि तुम

लोग राजा बलि आदि अपने भाइयों को साथ लेकर क्षीरसमुद्र को मथो। मन्दराचल की मथानी बनाकर उसमें वासुकि नाग की रस्सी लगावो। जिस तरह दही मथने से घी निकलता है उसी तरह क्षीर समुद्र का मथन करने से अमृत आदि चौदह रत्न निकलेंगे, सो तुम लोगों को वह अमृत पीने से बुढ़ापा व मृत्यु का खटका छूटकर सदा तरुण अवस्था बनी रहेगी। इसी वास्ते हम लोग आये हैं कि इस काम में तुम लोग हमारे साथ प्रीति रखकर सहायता करो, जिसमें देवता व दैत्य दोनों भाई अमृत पीकर अमर हो जावें। हे राजा बलि! तुम सब देवतों के मालिक होकर रहना, हम तुम्हारे अधीन रहेंगे। यह सुनकर राजा बलि और दूसरे दैत्यों ने कहा कि इस काम में हम लोग तुम्हारा संग देंगे, पर अमृत आदि जो वस्तु समुद्र से निकले उसको बाँट लेंगे। देवता बोले—बहुत अच्छा, तुम्हारा कहना हमें अंगीकार है। फिर सब देवता और दैत्यों ने जाकर बड़े परिश्रम से मन्दराचल को उखाड़ा। जब उसे समुद्र के किनारे ले चले तब कई देवता और दैत्य घायल होकर मर गये। उन्होंने हार मानकर पर्वत को रास्ते में धर दिया और अपना अभिमान टूटने से परमेश्वर का ध्यान करके विनय किया—हे वैकुण्ठ-नाथ! आपकी दया के बिना यह पर्वत हम लोगों से समुद्र तक नहीं पहुँच सकता। जैसे भगवान् अन्तर्यामी ने उनका दीन वचन सुना वैसे ही गरुड़ पर बैठकर वहाँ आये। तब देवता व दैत्यों ने दण्डवत् व स्तुति करके कहा कि महाराज, हम लोगों से यह पर्वत क्षीर-समुद्र तक नहीं पहुँच सकता, थोड़ी ही दूर ले आने में कई देवता व दैत्य घायल होकर मर गये। यह वचन सुनते ही परमेश्वर दीनदयालु ने अमृत दृष्टि से देखकर घायल व मरे हुओं को जिला दिया और बायें हाथ से मन्दराचल को उठाकर गरुड़ की पीठ पर धर लिया, सब देव-ताओं और दैत्यों को भी गरुड़ पर बैठाकर एक क्षण में समुद्र के किनारे जा पहुँचे। जब पर्वत उतारकर गरुड़ को विदा किया तब देवता और दैत्य उनकी स्तुति करने लगे।

——:०:——

सातवाँ अध्याय।

क्षीरसमुद्र का मथना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब परमेश्वर ने समुद्र के किनारे पहुँचकर देवताओं और दैत्यों को वासुकि नाग के लाने की आज्ञा दी तब उन्होंने पाताल में जाकर वासुकि से कहा कि नारायणजी की आज्ञा से मन्दराचल में तुम्हें लपेटकर समुद्र मथा जायगा, सो तुमको बुलाने आये हैं, चलो। यह सुनकर वासुकि नाग बोला कि पर्वत में लपेटने से मेरे कोमल अंग को दुःख होगा, इसलिए मैं नहीं चल सकता। देवताओं और दैत्यों ने उत्तर दिया कि परमेश्वर ने बुलाया है, सो उनकी आज्ञा मानकर अवश्य चलना चाहिए। यह वचन सुनकर जब वासुकि नाग लाचारी से नारायणजी के पास गया तब वैकुण्ठनाथ बोले—हे वासुकि नाग! तुम कुछ सोच मत करो, तुम्हें दुःख न होगा। अमृत निकलने पर तुम भी भाग पावोगे। जब देवताओं और दैत्यों ने वासुकि नाग से पर्वत लपेटकर समुद्र में डाल दिया और मन्दराचल पानी पर न ठहरकर डूबने लगा तब देवतों और दैत्यों ने परमेश्वर से विनय किया—हे महाप्रभु! पहाड़ पानी में डूबा जाता है, हमारा बल कुछ काम नहीं करता, समुद्र किस तरह मथें। यह वचन सुनकर नारायणजी ने कच्छप का रूप धारण कर लिया। वह कच्छपरूप लाख योजन लम्बा व चौड़ा था। उसने पर्वत को अपनी पीठ पर उठा लिया। जब वह पहाड़ जल पर ठहर गया तब भगवान्‌जी ने देवताओं और दैत्यों से कहा कि पहिले तुम लोग गणेशजी का पूजन करो, जिसमें तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो। गणेशजी की उत्पत्ति इस तरह हुई है कि एक दिन पार्वतीजी बैठी हुई महादेव के पंखा हाँकती थीं, उसी समय उनके बालक उत्पन्न हुआ। पार्वतीजी उस पर प्रेम से देखने लगीं तो पंखा हाथ से गिर पड़ा। इस कारण शिवजी ने क्रोधित होकर एक त्रिशूल उस बालक को ऐसा मारा कि उसका शिर कटकर न मालूम कितनी दूर जा गिरा। यह दशा देखकर पार्वतीजी ने कहा कि यह मेरा पुत्र था, तुमने क्यों

मारा, अब फिर इसको जिला दो, नहीं तो मैं भी अपना तनु छोड़ दूँगी। यह वचन सुनकर महादेवजी बोले कि इस बालक का मस्तक बहुत दूर चला गया, वह नहीं आ सकता। उत्तर दिशा में शिर करके जो जीव मरा पड़ा हो उसका शिर ले आवो तो मैं इसे जिला दूँ। खोजने से एक हाथी उत्तर को शिर किये मरा हुआ मिला, उसे महादेवजी के गण ले आये। उस बालक के धड़ में वह शिर जोड़कर महादेवजी बोले—उठ बैठ। वह बालक उठ खड़ा हुआ। तब शिवजी ने उसका नाम गणेशजी रखकर ऐसा वरदान दिया कि आज से तीनों लोकों में जिसके यहाँ शुभ कार्य हो वह प्रथम गणेशजी को पूजकर पीछे दूसरा काम करे तो उसका कार्य अच्छी तरह सम्पूर्ण होगा। उसी दिन से सब लोग गणेशजी को पूजते हैं। श्यामसुन्दर की आज्ञा पाकर देवताओं और दैत्यों ने भी पहिले गणेशजी की पूजा की, फिर नारायणजी की आज्ञा से देवताओं ने वासुकि नाग का शिर पकड़ा और दैत्यों से पूँछ पकड़ने को कहा। तब दैत्य लोग अभिमान से बोले कि हम किस बात में तुमसे कम हैं, जो अशुद्ध अंग पूँछ को पकड़ें। यह सुनकर परमेश्वर ने देवतों से कहा कि तुम्हीं लोग पूँछ पकड़ो। सो दैत्य लोग शिर और देवता व नारायणजी वासुकि नाग की पूँछ पकड़कर समुद्र को दही के समान मथने लगे। उस समय मन्दराचल का घूमना कच्छपरूप भगवान् को ऐसा मालूम होता था कि जैसे कोई पीठ में खुजलाता है। जब दैत्य लोग समुद्र मथते समय वासुकि नाग का शिर खींचने लगे तो उसके फुफकार से ऐसी ज्वाला निकली कि उनका शिर जलने लगा तब दैत्यों ने फिर चाहा कि हम लोग पूँछ पकड़ें। उस समय नारायणजी बोले कि जो बात तुमने अपनी इच्छा से अंगीकार किया वह छोड़ना न चाहिए। जब देवता और दैत्य समुद्र मथते-मथते थक गये तब उन्होंने नारायणजी से विनय किया कि हे त्रिलोकीनाथ, अब हमें सामर्थ्य नहीं रही कि हम समुद्र-मथन करें। यह वचन सुनते ही परमेश्वर ने कुछ अपना बल उनको देकर धैर्य दिया तब वे लोग नवीन बल पाकर फिर समुद्र मथने लगे। समुद्र

से प्रथम ऐसा हलाहल विष निकला कि जिसकी गरमी पाकर समुद्र के सब जलचर व्याकुल हो गये। देवताओं और दैत्यों ने भी घबराकर कहा कि हे वैकुण्ठनाथ, इस विष के रखने का कहीं ठिकाना कीजिए, नहीं तो हम लोग इसकी गर्मी से मरा चाहते हैं। तब भगवान्जी बोले—इस गरल को महादेवजी के सिवा दूसरा कोई अंगीकार नहीं कर सकता, तुम लोग उनकी बिनती करो। यह वचन सुनकर दैत्यों और देवतों ने महादेवजी से हाथ जोड़कर कहा—हे महाप्रभु! इस विष से तीनों लोकों के जीव जलकर मरना चाहते हैं, इसको अंगीकार कीजिए। तुम्हारे सिवा दूसरे में ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि जो विष की गर्मी सह सके। यह बात सुनकर शिवजी ने विचारा कि मैं वैष्णव हूँ, जो कोई दूसरे का दुःख देखकर उनका कष्ट न निवारण करे उसे वैष्णव न कहना चाहिए। इसलिए इनका कष्ट छुड़ाना उचित है। यह सोचकर शिवजी ने पार्वती की ओर देखा। तब पार्वतीजी बोलीं—हे स्वामी! देवता लोग शरण में आये हैं, जिसमें इनका कल्याण हो, सो कीजिए। नारायणजी ने भी शिवजी से कहा कि ये सब लोग देव हैं, आप महादेव हैं, इसलिए प्रथम जो वस्तु समुद्र से निकली है वह आपको भेंट करना चाहिए, सो आप इसे अंगीकार कीजिए, सब जीवों का दुःख हरना आपको उचित है। तब महादेवजी प्रसन्न होकर बोले—सच है, इस गरल को मेरे सिवा दूसरा कोई पी नहीं सकता। इसे पेट में उतार जाऊँ तो रामचन्द्रजी को, जो मेरे हृदय में रहते हैं, दुःख पहुँचेगा। इसलिए कण्ठ में इस विष को रक्खे रहना उचित है। ऐसा कहकर शिवजी ने उस विष को, जो फेन के समान समुद्र से निकला था, एक ही बेर सब मुँह में डाल लिया। सो मुँह में डालते समय थोड़ा-सा विष पृथ्वी पर गिर पड़ा था उसी से सिंगिया और बच्छनाग आदि उत्पन्न हुए। महादेवजी वह विष अपने कण्ठ में रक्खे रहे, इसी कारण उनका गला बाहर से नीला है और नीलकण्ठ नाम प्रसिद्ध हुआ। नारायणजी ने अमृतदृष्टि से देवतों व दैत्यों को देखा तो विष की सब गर्मी उनके अंग से दूर हो गई। देवतों ने शिवजी की बहुत स्तुति की।

आठवाँ अध्याय।

कामधेनु गौ और अमृत आदि समुद्र से निकलना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब फिर देवता व दैत्य परमेश्वर की आज्ञा से समुद्र को मथन करने लगे तो दूसरी बेर कामधेनु गौ अतिसुन्दर समुद्र से निकली तब नारायणजी ने कहा—इस गाय से संसारी वस्तु जो माँगो सो मिलती है। यह सुनकर देवतों व दैत्यों ने उस गौ को लेना चाहा। तब वैकुण्ठनाथ बोले कि यह गऊ ब्राह्मणों व ऋषीश्वरों को देनी चाहिए, वे लोग वनवास करके कन्दमूलादिक खाकर दिन-रात हरिभजन करते हैं और ब्याह व यज्ञादिक में उनको राजा से भिक्षा माँगनी पड़ती है, यह गाय उनके पास रहेगी तो वे लोग निश्चिन्त रहकर परमेश्वर का ध्यान करेंगे। वेद व शास्त्र में भी ऐसा लिखा है कि जब मनुष्य कोई काम अपने लिए करे तो पहले उस लाभ में से ब्राह्मण को अवश्य कुछ देना चाहिए, जिसमें उसका मनोरथ सिद्ध हो। यह वचन कहकर भगवान्‌जी वह गौ वशिष्ठ व दुर्वासा आदि ऋषीश्वरों को देकर बोले कि तुम इस गौ को देवलोक में रक्खो। जब ब्राह्मणों व ऋषीश्वरों को किसी वस्तु की चाह हो तो गाय को अपने स्थान पर ले आकर उससे जो पदार्थ चाहें माँग लें और गौ को फिर वहाँ पहुँचा दें। गौ देकर जब फिर समुद्र मथने लगे तब नारायणजी ने कहा कि अब जो समुद्र से निकले उसमें एक वस्तु दैत्य और एक देवता लें। तीसरी बेर उच्चैश्रवा नामक घोड़ा श्वेत-वर्ण अतिसुन्दर निकला। सो दैत्यों ने कहा कि यह घोड़ा राजा बलि के चढ़ने योग्य है। नारायणजी ने वह घोड़ा दैत्यों को दे दिया। चौथी बेर ऐरावत हाथी श्वेतवर्ण चौदन्त प्रकट हुआ, वह देवतों को दिया। तब दैत्यों ने कहा कि हाथी हमको दीजिए, देवता हमसे घोड़ा ले लेवें। श्यामसुन्दर बोले कि जो बात ठहर गई उससे फिरना न चाहिए। पाँचवीं बेर कौस्तुभमणि अति तेजवाली और महासुन्दर निकली, उसे देखकर नारायणजी बोले कि यह हम लेंगे। जब दैत्यों और देवतों ने प्रसन्न होकर कहा कि बहुत अच्छा, तब त्रिलोकीनाथ ने वह मणि पिरोकर

गले में पहन लिया। छठी बेर पारिजातक नाम एक वृक्ष निकला, तब नारायणजी बोले कि इस वृक्ष से जो माँगो सो देगा, उसे दैत्यों ने लिया। कदाचित् कोई कहे कि वह वृक्ष इन्द्रलोक में किस तरह गया, सो जानना चाहिए कि जब चौदह रत्न समुद्र से निकलने के उपरांत देवतों और दैत्यों में युद्ध हुआ तब देवता दैत्यों को जीतकर वह वृक्ष देवलोक में ले गये। सातवीं बेर रम्भा नाम की अप्सरा महासुन्दरी क्षीरसागर से निकली। वह किसी को नहीं मिली, वेश्या होकर रही। आठवीं बेर लक्ष्मीजी अतिसुन्दरी उत्तम भूषण व ललित वस्त्र पहिने, दाहिने हाथ में कमल का पुष्प और बायें हाथ में माला लिये समुद्र से निकलीं। उनका रूप देखते ही नारायणजी के सिवा सब देवतों व दैत्यों ने उन पर मोहित होकर समुद्र का मथना छोड़ दिया और उनके चौगिर्द आकर चाहा कि इन्हें ले लेवें। तब लक्ष्मीजी बोलीं कि मुझे बरजोरी कोई नहीं ले सकता, जिसमें सब गुण होंगे उसके पास मैं अपनी इच्छा से रहूँगी। मेरे निकट देवता व दैत्य दोनों एक-से हैं। तुम सब देवता, दैत्य, तपस्वी, ऋषीश्वर व ब्राह्मण और गन्धर्वादिक अपनी-अपनी पाँति बाँधकर बैठो, उनमें जिस पर मेरा मन चाहेगा उसके गले में जयमाल डालकर उसे पति बनाऊँगी। जब उनकी आज्ञानुसार वह सब पाँति बाँधकर बैठे तब पहिले लक्ष्मीजी दैत्यों को देखकर बोलीं—इन लोगों का राज्य सदा स्थिर नहीं रहता और ये लोग अभिमानी होकर पाप करते हैं, इसलिए इनकी संगत करना न चाहिए। फिर तपस्वी व ऋषीश्वरों को देखकर कहा कि ये लोग महाक्रोधी हैं, थोड़ा अपराध करने पर भी बड़ा भारी शाप देते हैं। फिर ज्ञानियों को देखकर बोलीं कि ये लोग नियम व आचार से न रहकर मनमाना कर्म करते हैं। फिर देवतों को देखकर कहा कि ये लोग निर्बल हैं। जब इन पर कुछ विपत्ति पड़ती है तब नारायणजी की शरण में जाकर उनसे सहायता लेते हैं, इसलिए इनको अंगीकार करना उचित नहीं है। उसी समय पृथ्वी ने अति उत्तम रत्नजटित सिंहासन लाकर उस पर लक्ष्मीजी को बैठाया और गंगा, यमुना, नर्मदा आदि तीर्थ स्त्रीरूप होकर स्वर्ण के कलशों में अपना-अपना जल ले आये।

कामधेनु गौ ने दूध, दही, गोबर, गोमूत्र व घृत मिलाकर पंचगव्य बनाया। पृथ्वी ने पंचगव्य और तीर्थों के जल से लक्ष्मीजी को स्नान कराया। अति उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाकर यथायोग्य उनका शृंगार किया तब लक्ष्मीजी ब्रह्मा को देखकर बोलीं कि यह बूढ़े हैं, फिर इन्द्र, वरुण, कुबेर देवतों को देखकर कहा कि इनको आठों पहर अपनी पदवी बढ़ने की इच्छा बनी रहती है। फिर लोमश आदि ऋषीश्वरों को देखकर बोलीं कि इन लोगों की इतनी बड़ी आयु है कि कितने ब्रह्मा इनके सामने मर जाते हैं, सो दीर्घ आयु होने से निर्बल होकर अशुभ कर्म करने से नहीं डरते और मृत्यु का भय नहीं रखते। जो मनुष्य मरने से डरता है उससे कुकर्म नहीं होता। फिर लक्ष्मी ने नारायणजी के सम्मुख जाकर उनका रूप, तेज, बल और गुण देखकर कहा कि यह त्रिलोकी-नाथ सब गुणों से भरे हैं, पर एक दोष इनमें भी है कि संसारी वस्तु की इच्छा व किसी का मोह नहीं रखते। इनकी कृपा व दया कुछ जप व स्मरण के अधीन नहीं है। देखो, उद्धव भक्त जो जन्मभर इनकी सेवा में रहा उसको इन्होंने आज्ञा दी कि तुम बदरिकाश्रम में जाकर तप करो तब तुम्हारी मुक्ति होगी, और वह केवट जिसने इनके पैर में बाण मारा था उसको विमान पर बैठाकर उसी समय वैकुण्ठ में भेज दिया। यह सब दोष होने पर भी इनसे उत्तम त्रैलोक्य में दूसरा कोई नहीं है, इसलिए मैं इन्हीं के चरणकमल दाबकर अपना जन्म सफल करूँगी। यह कहकर लक्ष्मीजी ने वही माला, जो हाथ में लिये थीं, वैकुण्ठनाथ के गले में डाल दिया। तब भगवान्‌जी बोले—तू आठों पहर हृदय में बसी रहेगी। यह देखते ही देवता व दैत्यों ने अति हर्ष से कहा—हे लक्ष्मीजी! तुमने बहुत अच्छा किया, जो नारायणजी के गले में माला डाली। उसी समय समुद्र ने मनुष्यरूप होकर वेदानुसार लक्ष्मीजी का विवाह नारायणजी से कर दिया और विश्वकर्मा ने आभूषण, पृथ्वी ने मोतियों और रत्नों की माला, नागों ने कुण्डल लाकर लक्ष्मीजी को पहिनाया। ब्रह्मा और महादेव आदि देवतों ने आनन्दपूर्वक लक्ष्मी-नारायण पर पुष्पों की वृष्टि की। दैत्यों व देवतों ने बड़े हर्ष से दुन्दुभी

आदि बजाया। इन्द्र की अप्सराओं ने आकाशमार्ग में आकर नाच दिखलाया। गन्धर्वों ने गाना सुनाया। उस समय तीनों लोकों में मंगलाचार हुआ। लक्ष्मीजी के दर्शन से देवताओं व दैत्यों के अंग में बल आ गया। फिर नारायणजी की आज्ञा से देवता व दैत्य समुद्र मथने लगे। तब नवीं बेर कन्यारूप होकर वारुणी समुद्र से निकली। उसको दैत्यों ने ले लिया। दशवीं बेर एक पुरुष अति सुन्दर व तेजस्वी धन्वन्तरि नाम का वैद्य, परमेश्वर का अवतार, यज्ञ का एक भाग लेनेवाला, एक हाथ में अमृत का कलशा व दूसरे हाथ में एक हरीतकी लिये हुए समुद्र से निकला। उसको देखते ही देवतों व दैत्यों ने प्रसन्न होकर कहा कि इस अमृत के वास्ते हम लोगों ने इतना परिश्रम किया था सो निकला। यह कहते ही एक दैत्य ने दौड़कर वह कलशा धन्वन्तरि वैद्य से छीन लिया। तब देवता बोले कि इसमें आधा भाग हमारा भी है। दैत्यों ने अधर्म से उत्तर दिया कि हमारे पीने से जो बचेगा सो तुमको भी देंगे। जब देवतों ने हार मानकर यह समाचार नारायणजी से कहा तब वैकुण्ठनाथ बोले कि तुम्हारे कहने से यह लोग अमृत न देवेंगे, मैं अपनी माया से कोई उपाय करके अमृत तुम्हें पिला दूँगा, तुम सोच मत करो। उनके कहने से देवतों को धैर्य हुआ। दैत्य अमृत का कलशा धन्वन्तरि से छीन ले गये। जो दैत्य उनमें बलवान् थे, वे एक-दूसरे से वह कलशा छीन लेते थे। किसी दैत्य को इतना अवकाश नहीं मिलता था कि जो उस अमृत को पी सके। उसी समय नारायणजी मोहनी मूर्ति, अति सुन्दर, उत्तम भूषण व वस्त्र पहिने स्त्रीरूप प्रकट होकर देवतों व दैत्यों की ओर चले। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! मोहनीरूप उसे कहते हैं कि जिसका रूप देखकर देवता, दैत्य, मनुष्य, योगीश्वर व मुनि और यती सब मोहित होकर विह्वल हो जाते हैं। वही स्वरूप परमेश्वर ने धरा था।

नवाँ अध्याय।

मोहनीरूप भगवान् का दैत्यों से अमृत का कलशा लेना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब देवतों व दैत्यों ने उस मोहनी रूप स्त्री को अपनी ओर आते देखा तब वे लोग उसके रूप पर मोहित होकर अमृत पीना भूल गये। जब वह रूपवती स्त्री दैत्यों की ओर कटाक्ष करती चली तब उन्होंने अति प्रसन्न होकर आपस में कहा कि हमारा भाग्य उदय हुआ, जो ऐसी महासुन्दरी स्त्री, जिसके बराबर तीनों लोकों में दूसरी स्त्री न होगी, हमारी ओर चली आती है। हम लोग अमृत पीने का झगड़ा जो आपस में करते हैं उसे निपटाने के लिए इस स्त्री को पंच मानकर अमृत का कलशा इसके सामने धर दें जो यह सबको बाँटकर पिला दे उसे पी लें। आपस का झगड़ा अच्छा नहीं होता। यह सम्मत करके दैत्यों ने अमृत का कलशा मोहनीरूप भगवान् के पास ले जाकर कहा—हे महासुन्दरी! इस अमृत को पीने के लिए हम लोगों में विरोध है, इसलिए अपनी इच्छा से तुम्हें पंच मानकर चाहते हैं कि यह अमृत तुम अपने हाथ से बाँटकर सबको पिला दो। जब मोहनीरूप भगवान् उनकी बातों पर कुछ ध्यान न करके आगे चले और दैत्यों ने उनके चरणों पर गिरकर अमृत बाँटने के लिए अति बिनती की तब मोहनीरूप ने दैत्यों की ओर देखकर मुस्करा दिया। वह मुसकान देखकर दैत्य लोग अचेत हो गये तब मोहनीरूप भगवान् ने दैत्यों से कहा कि तुम लोग मुझ वेश्या स्त्री से कहाँ की जान-पहचान रखकर मुझे अमृत बाँटने के लिए पंच बनाते हो। ज्ञानी को वेश्या का कभी विश्वास न करना चाहिए। और जो तुम अमृत बाँट देने के लिए ऐसा हठ करते हो तो मेरे निकट अमृत निकालने में तुम्हारा व देवतों का परिश्रम बराबर है, तुम्हारी प्रसन्नता हो तो मैं आधा-आधा अमृत दोनों को पिला दूँ और तुम लोग जो अधर्म से अमृत लेना चाहते हो तो ऐसी झूठी पंचायत मैं नहीं करती। यह वचन सुनकर दैत्यों ने कहा—हे प्राणप्यारी! तुम सत्य कहती हो, हम लोग अधर्म से सब अमृत अकेले पीना चाहते थे। अब हमने तुमको अपना पंच

माना, इस कारण हम तुम्हारी आज्ञा पालन करेंगे, जो चाहो सो करो। जब मोहनीरूप भगवान् ने जाना कि दैत्य लोग अच्छी तरह हमारे वश हो चुके तब दैत्यों व देवतों से कहा कि तुम लोग स्नान करके पवित्र होकर अग्नि में आहुति दो और पृथक्-पृथक् पंक्ति बाँधकर कुश के आसन पर बैठो तो मैं अमृत बाँटकर पिला दूँ। जब मोहनीरूप भगवान् के कहने से देवता व दैत्य अच्छे-अच्छे भूषण व वस्त्र पहिनकर पृथक्-पृथक् बैठे तब मोहनीरूप भगवान् दैत्यों से बोले कि मैं पहिले देवतों को अमृत देकर पीछे तुम्हें पिलाऊँगी। दैत्यों ने कहा कि हमें तुम्हारा कहना सब अंगीकार है। यह सुनते ही मोहनीरूप भगवान् ने अमृत का कलशा उठा लिया और देवतों की पंक्ति में जाकर उन्हें अमृत पिलाना और दैत्यों की ओर तिरछी चितवन से देखना आरम्भ किया। दैत्य लोग उसी चितवन के मद में मतवाले होकर अमृत का पीना भूल गये। जब मोहनीरूप भगवान् सब देवतों को अमृत पिलाते हुए पंक्ति के अन्त में, जहाँ सूर्य व चन्द्रमा बैठे थे, पहुँचे तब राहु नामक दैत्य ने कलशा देखकर विचारा कि इस स्त्री ने हम लोगों को अपने रूप पर मोहित करके सब अमृत देवतों को पिला दिया और दैत्यों को अमृत पीने से निराश रक्खा। ऐसा विचारकर उस दैत्य ने अपना स्वरूप देवतों के समान बना लिया और सूर्य व चन्द्रमा के मध्य में बैठकर अमृत पिया तब सूर्य व चन्द्रमा ने चिल्लाकर मोहनीरूप से कहा कि यह दैत्य है। जैसे यह वचन मोहनी-रूप भगवान् ने सुना वैसे ही बचा हुआ अमृत चन्द्रमा पर गिरकर सुदर्शन चक्र से राहु का शिर काट लिया। पर वह दैत्य अमृत पीने के प्रताप से नहीं मरा। उसका शिर व धड़ अलग-अलग दो स्वरूप होकर उठ खड़ा हुआ। सूर्य व चन्द्रमा ने मोहनीरूप से कहा कि महाराज, अब तो इसे मत मारो जितने टुकड़े इसके शरीर के होंगे, अमृत पीने के प्रताप से उतने स्वरूप होकर यह जीता रहेगा। यह सुनकर मोहनीरूप भगवान् ने राहु से कहा कि तूने देवतों में बैठकर अमृत पिया, इसलिए अब तू दैत्यों का लक्षण व स्वभाव छोड़ दे, सूर्यादिक सात ग्रहों के साथ रहकर अपनी पूजा लिया कर। उसी दिन से नवग्रह हुए। उसके

मस्तक को राहु और धड़ को केतु कहते हैं। सूर्य व चन्द्रमा के बतलाने से मोहनीरूप भगवान् ने राहु दैत्य का शिर काट लिया, इसी कारण वह शत्रुता रखकर अमावस्या के दिन सूर्य को और पूर्णिमा की रात में चन्द्रमा को निगलना चाहता है, जिसको चन्द्रग्रहण व सूर्यग्रहण कहते हैं। उस समय भगवान्जी की आज्ञानुसार सुदर्शनचक्र उनकी रक्षा करते हैं। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! मोहनी-रूप भगवान् ने देवतों को अमृत पिलाकर सुदर्शनचक्र को सूर्य व चन्द्रमा की रक्षा करने के लिए छोड़ दिया और आप अन्तर्धान होकर वैकुण्ठ को पधारे। त्रिलोकीनाथ ने यह विचारकर दैत्यों को अमृत नहीं पिलाया कि वह लोग अमृत पीने से अमर होकर संसारि जीवों को दुःख देंगे। इनको अमृत पिलाना ऐसा है कि जैसे कोई सर्प को दुग्ध पिलावे।

—:०:—

दसवाँ अध्याय।

देवतों व दैत्यों से युद्ध होना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! अमृत निकालने में परिश्रम देवतों व दैत्यों का बराबर था, पर नारायणजी जिसको देते हैं वह पाता है। जिस तरह मनुष्य अपने लाभ के लिए बहुत उद्योग करते हैं उनमें जिस पर भगवान् की कृपा होती है वह अपना मनोरथ पाता है नहीं तो परमेश्वर की इच्छा के बिना उनका सब परिश्रम व्यर्थ जाता है। वही दैत्यों की दशा हुई। हे राजन्, जब मोहनीरूप भगवान् वहाँ से अन्तर्धान् हो गये तब दैत्य लोग चैतन्य होकर कहने लगे कि वह सुन्दरी सब अमृत देवतों को पिलाकर कहाँ चली गई। उन दैत्यों में जो बुद्धिमान् थे उन्होंने कहा कि अमृत का कलशा तुम्हारे हाथ लगा था, तुम लोगों ने अपनी अज्ञानता से एक स्त्री के रूप पर मोहित होकर उसे दे दिया। वह मोहनीरूप नारायण थे, जिन्होंने देवतों की सहायता करने के लिए हमें धोखा देकर अमृत ले लिया। यह समझते ही दैत्य लोग क्रोधित होकर देवतों से युद्ध करने के लिए तैयार हुए।

देवतों ने भी लड़ाई की तैयारी की। देवतों की ओर राजा इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़ा और चन्द्रमा, सूर्य, वरुण, कुबेरादिक सेनापतियों को अपने साथ लिया। वे लोग उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिने व अनेक प्रकार के शस्त्र लिये रथ, गज, वाजी, विमानादिक पर बैठकर रणभूमि में आये। दैत्यों की ओर से राजा बलि अति उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनकर प्रभास नामक आकाशगामी विमान पर, जो मय दानव ने उसको बना दिया था, सवार हुआ। हयग्रीव, द्विमूर्धा, विप्रचित्ती, कालनेमि आदि उसके सेनापतियों ने उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनकर अनेक रंग के शस्त्र बाँध लिये और बाघ, पक्षी, मछली व विमानादिक पर चढ़कर युद्ध में आये। उस समय दोनों सेना में मारू बाजा बजने और अनेक रंग की ध्वजा फहराने से ऐसी शोभा मालूम देती थी कि जैसे दूसरा क्षीरसमुद्र वहाँ प्रकट हुआ। इतनी सेना दोनों ओर थी कि जिसकी कोई गिन्ती नहीं कर सकता था। देवता व दैत्य अपनी बराबरवाले जोड़ी को देखकर सवार से सवार व पैदल से पैदल लड़ने लगे। दोनों ओर से तलवार, भुशुण्डी, चक्र, तीर, साँग, व त्रिशूलादिक शस्त्र चलने लगे। राजा इन्द्र और बलि से साँग, वज्र, त्रिशूलादिक अनेक प्रकार के शस्त्रों से ऐसा संग्राम हुआ, जिसमें रक्त नदी के समान बह निकला। शस्त्रों की घटा छा गई। तलवारें बिजली के समान चमकती थीं। जब युद्ध में परमेश्वर की कृपा से देवतों ने बहुत से दैत्यों को मार डाला और इन्द्र ने मारे बाणों के राजा बलि को व्याकुल कर दिया तब उसने सम्मुख लड़ने की सामर्थ्य न रहने से मायायुद्ध आरम्भ किया। अपना विमान आकाश में ले जाकर देवतों की सेना पर शस्त्र, पर्वत, अग्नि, रक्त, पीब आदि वर्षाने लगा। नंगी राक्षसियाँ खड्ग व खप्पर लिए देवतों की सेना में आ पहुँचीं। चारों ओर से समुद्र का पानी चढ़ा आता दिखलाई देने लगा। यह दशा देखकर देवतों ने घबराकर नारायणजी का स्मरण करके उनसे सहायता चाही। तब दीनदयालु अन्तर्यामी अपने भक्तों का दुःख देखकर उसी समय गरुड़ पर चढ़े और चतुर्भुजी रूप से शस्त्र धारण किये देवतों की सेना में आये

और उन्हें धैर्य देकर बोले कि तुम लोगों ने अमृत पिया है, मरने से निडर होकर दैत्यों के साथ लड़ो, वे तुमको जीत नहीं सकेंगे। तब भगवान्जी का दर्शन पाने और उनके धैर्य देने से सब देवता अधिक बल पाकर फिर दैत्यों से लड़ने लगे। नारायणजी को देखकर कालनेमि दैत्य बाघ पर चढ़ा हुआ उनकी ओर दौड़ा और एक त्रिशूल उन पर चलाया तब वैकुण्ठनाथ ने वह त्रिशूल पकड़कर चक्र से उसका शिर व वाहन समेत काट डाला। कालनेमि को मरा हुआ देखकर माली व सुमाली दैत्य ज्योतिस्स्वरूप के सम्मुख लड़ने आये। श्यामसुन्दर ने उनके भी शिर चक्र से गिरा दिये। फिर माल्यवान् दैत्य ने आकर एक गदा नारायणजी को, दूसरी गरुड़ को मारी। महाप्रभु ने उसका भी मस्तक सुदर्शन चक्र से काट लिया।

ग्यारहवाँ अध्याय।

देवतों की विजय होना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! वैकुण्ठनाथ के आते ही दैत्यों की सब माया इस तरह जाती रही जिस तरह स्वप्न का दुःख जागने से छूट जाता है। देवतों को बड़ा भरोसा हो गया। राजा बलि व इन्द्र से फिर सम्मुख युद्ध होने लगा। इन्द्र ने कहा कि हे राजा बलि, तुम नटों के समान छल करके मेरा राज्य लेना चाहते हो। शूरवीरों की तरह सम्मुख होकर धर्मयुद्ध करो। आज दैत्यों को मारकर सब दिन का वैर तुमसे लूँगा। यह वचन सुनते ही राजा बलि बोला—हे इन्द्र! अभी चार दिन हुए तुम हमारे सामने से भाग गये थे, आज ऐसा अभिमान तुम्हें करना उचित नहीं है। दिन किसी के सदा एक से नहीं रहते। अज्ञानी मनुष्य थोड़ा दुःख व सुख होने से अभिमान करते हैं। विजय व पराजय परमेश्वर के अधीन है, मेरा व तेरा किया कुछ नहीं हो सकता। ऐसा कहकर राजा बलि ने इन्द्र को बाणों से व्याकुल कर दिया तब इन्द्र ने अपने वज्र से बलि को मारा। वह इस तरह आकाश से विमान समेत पृथ्वी पर गिरा जैसे पंख कटा हुआ पहाड़ गिर पड़े। यह दशा राजा बलि की देखते ही यक्ष नामक

दैत्य ने अपने वाहन बाघ को दौड़ाकर एक गदा इन्द्र को और दूसरी ऐरावत हाथी के मस्तक पर ऐसी मारी कि वह हाथी व्याकुल होकर घुटने के बल बैठ गया। तब इन्द्र हाथी से उतरकर रथ पर चढ़ा। मातलि सारथी की फुरती देखकर यक्ष दैत्य ने एक त्रिशूल मातलि को मारा तब इन्द्र ने वज्र से यक्ष का शिर काट डाला। उसके मरने का समाचार नारदजी से सुनकर नमुचि, बलि और पाक नामक तीन महाबली दैत्य इन्द्र से लड़ने आये। उन्होंने इन्द्र को दुर्वचन कहकर इतने बाण मारे कि इन्द्र रथ समेत इस तरह छिप गया जैसे सूर्य बदली में दिखलाई नहीं देते। जब यह दशा देखकर देवता घबरा गये तब इन्द्र ने अपने वज्र से बलि और पाक दोनों दैत्यों को मारकर फिर वही बज्र नमुचि पर चलाया। उस वज्र से नमुचि का शिर नहीं कटा तब इन्द्र ने बहुत घबराकर मन में कहा कि जिस वज्र से मैंने वृत्रासुर को मारा और पहाड़ों की भुजाएँ काटी थीं, उस वज्र से नमुचि का मस्तक नहीं कटा, इससे मालूम होता है कि मेरे वज्र की सामर्थ्य जाती रही। यही सोच-विचार इन्द्र कर रहा था, उसी समय यह आकाशवाणी हुई—हे इन्द्र, नमुचि को वरदान है कि किसी गीली या सूखी वस्तु से यह नहीं मरेगा। कोई दूसरा उपाय इसके मारने का करो। यह आकाशवाणी सुनते ही इन्द्र ने समुद्र का फेन वज्र में लपेटकर उस पर चलाया तो उसका सिर कट गया। जब इसी तरह दूसरे देवतों ने भी दैत्यों को मारा तब ब्रह्माजी ने विचारा कि देवता व दैत्य दोनों मेरी सन्तान हैं, देवता सब दैत्यों को मारना चाहते हैं। ऐसा समझकर नारदजी से कहा कि तुम जाकर देवतों को समझा दो कि अब न लड़ें। उसी समय नारद मुनि ने जाकर देवतों से कहा कि तुमने सेनापतियों को मार डाला, अब सब दैत्यों को किस वास्ते मारते हो। और दैत्यों को समझाया कि अभी तुम्हारे दिन खोटे हैं, मत लड़ो। जब नारद मुनि के समझाने से देवतों और दैत्यों ने लड़ना छोड़ दिया तब इन्द्रादिक देवतों ने परमेश्वर की दया से विजय पाकर दुन्दुभी बजाई, अप्सराओं ने नाच दिखलाया और गन्धर्वों ने गाना सुनाया। नारायणजी वैकुण्ठ गये और सब देवता

परमेश्वर का यश गाते हुए अपने-अपने लोक में जाकर सुख व आनन्द करने लगे। इन्द्र अपने राजसिंहासन पर बैठा। नारद मुनि की आज्ञा से दैत्य लोग राजा बलि आदि सब मरे हुए और घायल दैत्यों को उठाकर अस्ताचल में शुक्राचार्य के पास ले गये। शुक्र ने संजीवनी विद्या से सब दैत्यों को जिलाकर राजा बलि को बहुत धैर्य दिया। राजा बलि ने हँसते हुए हाथ जोड़कर कहा—महाराज! आपकी दया से मुझे कुछ सोच नहीं है, कभी हमारी जय होती है और कभी देवतों की। अब देवतों के दिन अच्छे हैं, इसलिए उनकी विजय हुई, जब हमारी दशा अच्छी आवेगी तब हम लोग भी आपके आशीर्वाद से देवलोक का राज्य पावेंगे। यह सुनकर शुक्रजी ने राजा बलि के धैर्य व ज्ञान की बड़ाई की। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तुमने अमृत निकालने और पिलाने की जो कथा पूछी थी सो हमने सुनाई।

—:०:—

बारहवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का परीक्षित से मोहनीरूप की सुन्दरता वर्णन करना।

इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे शुकदेव स्वामी! मोहनीरूप कैसा सुन्दर था जिसे देखकर सब देवता व दैत्य ऐसे मोहित हो गये कि दैत्यों को अमृत पीना भूल गया। शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! हम उस रूप का वर्णन कहाँ तक तुमसे करें। वह मोहनीरूप ऐसा सुन्दर था कि जिसे देखकर महादेवजी भी, जिन्होंने कामदेव को भस्म किया था मोहित हो गये थे। देवता, दैत्य और मनुष्यादिक की कौन गिनती है जो अपने को सँभाल सकें। यह कथा इस तरह है कि एक दिन पार्वतीजी ने शिवशंकर से कहा कि विष्णु भगवान् ने जिस स्त्रीरूप से दैत्यों को मोहित किया था उस रूप को मैं देखना चाहती हूँ। यह सुनते ही शिवजी पार्वती समेत नन्दीगण पर चढ़कर वैकुण्ठ में नारायणजी के पास गये। विष्णु भगवान् ने आदरपूर्वक उन्हें बैठाकर पूछा कि आज किधर चले। महादेवजी ने उनकी स्तुति करके विनयपूर्वक कहा—हे दीनानाथ! जिस स्वरूप से आपने दैत्यों को मोहित किया था उस

मोहनीरूप को मैं भी देखना चाहता हूँ। वैकुण्ठनाथ बोले—हे महादेवजी! मोहनीरूप के देखने से कामवश होकर विह्वल हो जाओगे। शिवशंकर ने उत्तर दिया कि दैत्य लोग अपने मन और इन्द्रियों के अधीन रहकर कामदेव के वश हो रहे थे, इस वास्ते उनकी वह दशा हुई और मैं अपनी इन्द्रियों को वश में रखता हूँ, इसलिए मोहनीरूप देखकर उस पर मोहित न हूँगा। पार्वती भी उस रूप को देखना चाहती हैं। जिस तरह आप हमारी विनती सदा मानते थे उसी तरह यह इच्छा भी पूर्ण कीजिए। यह सुनकर ज्योतिस्स्वरूप बोले—हे भोलानाथ! तुम हमारे निर्गुणरूप के चाहनेवाले हो, जो घटने, बढ़ने, खाने-पहिरने से रहित है, किसी को दिखलाई नहीं देता। सो तुम उसी रूप को देखा करो। मेरा सगुणरूप उसे देखना उचित है, जिसे निर्गुणरूप देखने का ज्ञान न हो। जिसमें सगुणरूप देखकर निर्गुणरूप से प्रीति उत्पन्न करे। और जो अज्ञानी मेरे निर्गुणरूप को नहीं देख सकता उसे मैं अपने सगुण-रूप का दर्शन देकर ज्ञानी बनाता हूँ कि वह थोड़ा सा प्रेम करने से अपना मनोरथ पावे। जब यह सब बात सुनने पर भी शिवजी ने मोहनी-रूप देखने के लिए हठ किया तब वैकुण्ठनाथ हँसकर बोले कि तुम और पार्वती दोनों ओट में जाकर बैठो, हम तुमको मोहनीरूप दिखला-वेंगे, पर सावधान रहना। यह कहकर नारायणजी वहाँ से अन्तर्धान हो गये। जब महादेव व पार्वती आड़ में जाकर बैठे तब श्यामसुन्दर की इच्छा से उस जगह एक अच्छा बाग, कुण्ड, बावली और अनेक रंग के पक्षी प्रकट हो गये। उस समय शिवजी व पार्वती बड़ी अभिलाषा ले चारों ओर देखकर आपस में कहते थे कि देखना चाहिए कि वह रूप किधर से प्रकट होता है। पार्वतीजी अपनी सुन्दरता के सामने दूसरी स्त्री को तुच्छ समझती थीं, इसलिए वह मोहनीरूप देखने की अति चाह रखकर यह विचारती थीं कि देखूँ वह रूप मुझसे अच्छा है या नहीं। इसी इच्छा से पार्वती बारम्बार उठकर बाग में चौगिर्द देखती थीं। जिस समय महादेव व पार्वती मोहनीरूप देखने के लिए बहुत आशा कर रहे थे उसी समय अकस्मात् एक दिशा से मोहनीरूप स्त्री अति सुन्दर उत्तम

भूषण व वस्त्र पहिने प्रकट हुई। उसका मुखारविन्द बिजली के समान चमकता था। जड़ाऊ करधनी घुँघरूदार पहिने कपड़े का गेंद बहुत अच्छा व गोल रेशम से सिया हुआ अपने हाथ में लिये आकाश में उछालकर फिर रोक लेती थी। गेंद उछालने और नीचे-ऊपर देखने के समय अनार-फल के सदृश उसके स्तन दिखलाई देते थे, और देखने वालों का मन चलायमान हो जाता था। वह मोहनी उस बाग में चारों ओर गेंद खेलती फिरती थी। जैसे महादेवजी की ओर उसकी आँख सम्मुख हुई और मोहनी ने नयन मटकाकर मुस्करा दिया वैसे शिवजी उसका रूप व चितवन देखते ही कामातुर होकर उस पर मोहित हो गये। जो मृगछाला पहिने थे उसे उतारकर फेंक दिया और पार्वतीजी को अकेली छोड़कर उस मोहनीरूप के सम्मुख नंगे चले गये। वह रूपवती महादेव पर कुछ स्नेह न रखकर आगे को चली। तब शिव शंकर उस मोहनीरूप के पीछे इस तरह विह्वल होकर दौड़े जिस तरह साँड़ गाय के पीछे दौड़ता है। कामदेव ने अवसर पाकर शिवजी से बदला लिया। जब महादेवजी मोहनीरूप के निकट पहुँचे और उसने घूँघट काढ़कर अपना मुँह छिपा लिया तब भोलानाथ अति व्याकुल होकर मन में कहने लगे कि मुझसे बड़ी भूल हुई जो इसके निकट आया, इसका मुखारविन्द देखने से भी विमुख रहा। पार्वतीजी ने भी वहाँ जाकर उस स्त्री की सुन्दरता देखी तो अपने रूप को उसके सामने हजार भाग में एक भाग के तुल्य भी नहीं पाया। उस मोहनी का पाँव मोती के समान चमकता देखकर अति लज्जा से मन में कहा कि ऐसी सुन्दरी मैंने कभी नहीं देखी थी, इसके सामने मेरी कुछ गिनती नहीं है। जब महादेवजी कामातुर होकर अति व्याकुल हुए तो दौड़कर उस मोहनी को अपने गले से लगा लिया, सो वह छिटककर आगे को चली। जब गोद में लेने से शिवजी अति विह्वल हो गये तब वे उसके पीछे पकड़ने के लिए दौड़े, पर वह मोहनी इस तरह चमककर निकल जाती थी कि दौड़ने पर भी शिवजी का हाथ उसके अंग तक नहीं पहुँचता था। उसी समय वह सुन्दरी एक बेर महादेवजी की दृष्टि से

अन्तर्धान होकर एक क्षण में फिर प्रकट हुई तब शिवजी ने झपटकर उसे पकड़ लिया, पर वह महादेव को झटककर फिर बिलग हो गई। जब इस खींचाखींची में मोहनीरूप का वस्त्र ढीला होकर गिर पड़ा तब शिवजी ने उसे नंगी देखा और कामवश होकर उसे गोद में उठा लिया। भगवान् की इच्छानुसार उसे गोद में लिये हुए उसी तरह ऋषीश्वरों व मुनीश्वरों के स्थान पर भटका किये। जब शिवजी बहुत दौड़ने से थक गये और ऋषीश्वरों व मुनीश्वरों के निकट अति लज्जित हुए और मोहनीरूप को गोद में लेने से उनका ज्ञान व धैर्य छूटकर वीर्य गिर पड़ा तब मोहनी भगवान् उनकी यह दशा देखकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये। सो जहाँ महादेवजी का वीर्य गिरा था वहाँ सोना, चाँदी और पारे की खानि उत्पन्न हुई। वीर्य गिरने और मोहनीरूप के अन्तर्धान होने से महादेव अति लज्जित व उदास होकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये, और यह सोचने लगे कि कदाचित् फिर वह मोहनी प्रकट हो। उसी समय पार्वतीजी वहाँ पहुँच गईं, उन्हें देखते ही महादेव ने अति लाज्जित होकर मन में कहा कि देखो, मैं काम, क्रोध, मोह, लोभ को अपने वश में करके हजारों वर्ष समाधि में बैठा था, सो इस मोहनीरूप के देखने से सब ज्ञान भूलकर विह्वल हो गया और उसके पीछे पागल के समान दौड़ता रहा, अपना धैर्य व बड़ाई छोड़कर मुनियों व ऋषीश्वरों के निकट अपना उपहास कराया। इससे मुझे मालूम होता है कि मैंने कामदेव को अपने वश में कहकर नारायणजी से मोहनीरूप देखने का हठ किया था, इसी वास्ते गर्वप्रहारी भगवान् ने ज्ञान हरकर मेरी यह दशा की। संसार में जो लोग अपने ज्ञान का गर्व करते हैं उनको मूर्ख समझना चाहिए। परमेश्वर की माया ऐसी प्रबल है कि जिससे कोई नहीं छूट सकता। ऐसा विचारकर महादेवजी अति चिन्ता करने लगे। जब परमेश्वर ने देखा कि भोलानाथ मेरे परम भक्त अति लज्जित होकर उसी सोच में अपना तनु छोड़ना चाहते हैं तब विष्णु भगवान् चतुर्भुजी स्वरूप से शिवजी के पास आकर प्रकट हुए और उनका हाथ पकड़कर आदरपूर्वक बोले—हे सदाशिव! तुम कुछ चिन्ता मत करो, यह मोहनीरूप देखने से योगी

व मुनि आदि किसी का ज्ञान ठिकाने नहीं रहता। मायारूपी स्त्री की चाह से बड़े-बड़े ऋषीश्वर, महात्मा और संसारी जीव अपना धर्म-कर्म छोड़ देते हैं। इस मायारूपी समुद्र में चैतन्य रूप कौन नहीं डूबा, इस सागर से कोई बाहर नहीं निकल सकता। बहुत-से देवता, दैत्य, मनुष्य, ज्ञानी लोग कामदेव के मद में नष्ट होकर कामरूपी शत्रु से हार मान गये हैं, इसलिए स्त्रीरूपी माया को अति प्रबल समझना चाहिए। पर तुमको मेरी माया नहीं व्यापेगी, क्योंकि तुम सदा मेरी चर्चा व ध्यान में रहते हो। कदाचित् तुम कहो कि इस समय मोहनीरूप माया क्यों मेरे ऊपर व्यापी, उसका यह कारण है कि तुमने मेरे निर्गुण रूप का ध्यान छोड़कर अपने को हमसे बिलग समझा और मेरी माया का कौतुक देखना चाहा, इसलिए तुम्हारी यह गति हुई। अब तुम धैर्य रक्खो, फिर मेरी माया तुमको नहीं व्यापेगी। जब नारायणजी ने इस तरह शिवजी को बोध किया तब वे धैर्य धरकर वैकुण्ठनाथ को दण्डवत् करके बिदा हुए, और कैलाश पर्वत पर आकर पार्वतीजी से बोले—तुमने नारायणजी की माया का चरित्र देखा, मैं इन्हीं ज्योतिस्स्वरूप का ध्यान, जो मेरे इष्ट-देव हैं, आठों पहर करता हूँ। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जो मनुष्य समुद्रमथन की कथा सुनकर कोई उद्यम का आरम्भ करे तो उस व्यापार में उसका मनोरथ पूर्ण होता है।



तेरहवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का आठ मन्वन्तरों की कथा राजा परीक्षित से कहना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! एक मन्वन्तर इकहत्तर चतुर्युग का होता है और एक इन्द्र एक मन्वन्तर पर्यन्त राज्य करता है। हर मन्वन्तर में परमेश्वर एक अवतार धारण करते हैं और अधर्मियों को मारकर धर्म की रक्षा करते हैं। चिरञ्जीवी ऋषीश्वर की आयु एक मन्वन्तर की होती है। सो छः मन्वन्तर की कथा हमने तुमसे वर्णन की। अब सातवाँ मनु विवस्वान् का पुत्र श्राद्धदेव नाम जो वर्तमान है, इस मन्वन्तर में इक्ष्वाकु आदि मनु के दश बेटे, आदित्य आदि देवता, अगस्त्य, अत्रि, वशिष्ठ,

विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज सप्त ऋषि, पुरन्दर नाम इन्द्र और कश्यपजी अदिति के नाम स्त्री से परमेश्वर का वामन अवतार हुआ था। उसकी कथा हम पीछे से विस्तारपूर्वक कहेंगे। आठवाँ सावर्णि नाम मनु, निर्मेकादिक उसके पुत्र, सुतपालादिक देवता, बलि नाम इन्द्र और दीप्त आदि सप्त ऋषीश्वर होंगे। नारायणजी सार्वभौम नाम अवतार लेकर इन्द्रलोक का राज्य इन्द्र से छीनकर बलि को राज्य देंगे। नवाँ दक्षसावर्णि नाम मनु, भूतकेतु आदि उसके पुत्र, मरीचि आदि देवता, अभूत नाम इन्द्र, द्युति आदि सप्त ऋषि होंगे और ऋषभ नाम भगवान् का अवतार होगा। दशवाँ ब्रह्मसावर्णि नाम मनु, भूषण आदि उसके बेटे, हविष्मन्त आदि सप्त ऋषीश्वर, सत्यादिक देवता, स्वायम्भुव नाम इन्द्र और परमेश्वर अमूर्ति नाम अवतार लेंगे। ग्यारहवाँ धर्मसावर्णि नाम मनु, अनागत आदि उसके पुत्र, विहंगम आदि देवता, वैधृत नाम इन्द्र, अरुणादिक सप्त ऋषीश्वर और नारायणजी धर्मसेतु नाम अवतार धारण करेंगे। बारहवाँ रुद्रसावर्णि नाम मनु देववामन आदि उसके बेटे, राजधामा इन्द्र, हरित आदि देवता, तपमूर्ति आदिक सप्त ऋषीश्वर और सुधा नाम भगवान् का अवतार होगा। तेरहवाँ देवसावर्णि नाम मनु, चित्रसेन आदि उसके बेटे, सुकर्म आदि देवता, दिवस्पति नाम इन्द्र, निर्मेक आदि सप्त ऋषि और परमेश्वर योगीश्वर नाम अवतार लेंगे। चौदहवाँ सावर्णि नाम मनु, उरुगम्भीर आदि उसके बेटे, पवित्र आदि देवता, शुचि नाम इन्द्र, अग्निबाहु सप्त ऋषीश्वर और बृहद्भानु नाम परमेश्वर का अवतार होगा। हे राजन्! ये चौदह मन्वन्तर ब्रह्मा के एक दिन में भोग करते हैं, उनकी कथा हमने तुमसे वर्णन की। सब कल्पों में यही मनु अदल-बदल कर राज्य भोगते हैं।

—:○:—

चौदहवाँ अध्याय।

इन्द्रादिक देवतों की कथा।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर शुकदेवजी से पूछा—महाराज! आपने परमेश्वर की बहुत अच्छी कथा मुझे सुनाई, अब दयालु होकर

यह कहिए कि मनु आदि अपने राज्य में क्या काम करते हैं। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! हर मन्वन्तर में मनु और मनु के बेटे परमेश्वर की आज्ञानुसार पृथ्वी पर दिग्विजय व धर्म का प्रचार करते हैं। देवता लोग यज्ञों का भाग, आहुति और पूजा लेते हैं। राजा इन्द्र दैत्यों को मारकर तीनों लोकों की रक्षा करते हैं। सप्त ऋषीश्वर योग साधकर जो वेद गुप्त हो जाता है उसे संसार में प्रकट करते हैं। भगवान् अवतार धारण करके दुष्टों और अधर्मियों को मारकर गौ, ब्राह्मण और हरिभक्तों की रक्षा करते हैं। चौदहों मन्वन्तर में यही बातें होती हैं। महा प्रलय में वही परमेश्वर कालरूप होकर सब जीवों का नाश कर देते हैं। संसारी मनुष्य अपने बड़े व छोटे का मरना देखने पर भी ईश्वर की माया में लपटकर अपनी मृत्यु का विचार नहीं करते। जिस तरह तालाब का पानी प्रतिदिन सूखता जाता है और मालूम नहीं होता उसी तरह मनुष्य की आयु घटती जाती है, पर वे अपने मरने से निडर रहकर परलोक का सोच नहीं करते। इसलिए मनुष्य को उचित है कि दिन-रात अपना मरना विचारकर कुकर्म न करे और परमेश्वर का ध्यान व स्मरण करता रहे, जिससे परलोक बने। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जो लोग इन चौदहों मन्वन्तर की कथा सुनकर प्रातःसमय उनका ध्यान करते हैं उनको धर्म व ज्ञान प्राप्त होता है। देवता आदि परमेश्वर की शक्ति हैं, उनका ध्यान करने से भी पाप छूट जाता है।

—(०)—

पन्द्रहवाँ अध्याय।

राजा बलि का शुक्रगुरु की कृपा से इन्द्रलोक का राज्य छीन लेना।

राजा परीक्षित इतनी कथा सुनकर बोले—हे स्वामी! प्रथम आपने कहा कि नारायणजी ने वामन अवतार धारण करके राजा बलि से भीख माँगी और उसका राज्य छल से लेकर देवतों को दिया। इस बात का मुझे बड़ा संदेह है कि राजा बलि को ऐसी सामर्थ्य थी जो परब्रह्म परमेश्वर ने उससे भिक्षा माँगकर दान लिया और दान लेने के उपरांत फिर क्यों यज्ञ करते समय उसे बाँधा, इसको विस्तारपूर्वक कहिए। शुक-

देवजी बोले—हे राजन्! जब नारायणजी की कृपा से देवतों ने अमृत पीकर दैत्यों को लड़ाई में जीत लिया और अपनी राजगद्दी पाई और राजा बलि ने दैत्यों समेत अस्ताचल में रहकर बहुत दिनों तक अपने गुरु की सेवा प्रेमपूर्वक की तब शुक्राचार्य अति प्रसन्न हुए और राजा बलि को प्रयागक्षेत्र में लाकर उससे विश्वजित् नाम यज्ञ कराया। यज्ञ सम्पूर्ण होते ही अग्निकुण्ड में से एक सुनहरा रथ और चार घोड़े, एक शंख की ध्वजा, एक धनुष, एक तर्कस जिसके तीर नहीं घटते थे, खड्ग और दिव्य कवच निकला। फूलों की एक माला प्रह्लादभक्त ने अपने पोते राजा बलि को दी। शुक्राचार्य गुरु ने एक शङ्ख राजा बलि को देकर कहा कि तुम इन्हीं घोड़ों को इस रथ में जोतो, यही ध्वजा लगाकर रथ पर चढ़ो, यह दिव्य कवच पहनो, यह धनुष-बाण उठा लो और यह माला पहिनकर मेरा दिया हुआ शङ्ख बजाकर देवतों पर चढ़ाई करो, नारायण-जी की दया से तेरी विजय होगी। अपने योगबल से तुझे यह वरदान देता हूँ। राजा बलि यह वरदान पाकर अति प्रसन्न हुआ और शुक्राचार्य की आज्ञानुसार शुभ साइति में अपने गुरु को दादा को दण्डवत् करके उसी रथ पर चढ़ा और अनेक शूरवीरों को संग लेकर बड़ी धूमधाम से इन्द्र-पुरी को घेर लिया। हे राजन्, इन्द्र की अमरावती पुरी में अति उत्तम स्थान हैं, बाग व तड़ागादिक सुनहले रत्नजटित हैं, सब स्त्री व पुरुष सोलह वर्ष के किशोर अवस्था बने रहते हैं। वहाँ के सब जीव नीरोग रहकर बहुत अच्छा भूषण व वस्त्र पहिनते हैं। सब स्त्री व पुरुष आनन्द-पूर्वक भोग-विलास करते हैं, जड़ाऊ विमानों पर बैठकर विहार किया करते हैं। हे राजन्! उस स्थान की बड़ाई कहाँ तक करूँ। वहाँ का वृत्तान्त देखने से ही मालूम होता है। पर लालची, क्रोधी, कुकर्मी, अहंकारी, अपना शरीर पालन करने व मांस खानेवाले मनुष्य वहाँ नहीं जा सकते। जब राजा बलि ने वहाँ पहुँचकर वही शंख बजाया तब इन्द्रादिक देवता वह शब्द सुनकर मारे भय के काँप उठे। लाचारी से जब राजा बलि के सम्मुख लड़ने के वास्ते आये तब उसके तेज से देवतों का अंग जलने लगा। सो देवता लोग अमृत पीने पर भी दैत्यों से हार मानकर भाग

गये। राजा बलि तीनों लोकों का राज्य देवतों से छीनकर इन्द्रासन पर बैठा। देवतों ने जाकर बृहस्पतिजी से पूछा—महाराज! हम लोगों की पराजय क्यों हुई। बृहस्पति बोले—शुक्राचार्य के आशीर्वाद व वरदान से दैत्यों ने विजय पाई है, तुम्हारे ऐसे सौ इन्द्र इकट्ठे होकर राजा बलि का सामना करें तो भी उस शङ्ख के प्रताप से हार जायँगे। परब्रह्म परमेश्वर के सिवा दूसरा कोई उसका सामना नहीं कर सकता। जो कोई गुरु व ब्राह्मण की सेवा विधिपूर्वक करता है उसके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। यह वचन सुनते ही देवता अधैर्य होकर मुरैला व हरिण आदि का रूप धरकर वहाँ से भागे और किसी जगह छिपकर अपने दिन काटने लगे। राजा बलि तीनों लोकों का राज्य पाकर अति प्रसन्न हुआ। उसने अपना तेज व बल बढ़ाने के लिए भरतखण्ड में यज्ञ करना विचारकर शुक्राचार्य गुरु से विनयपूर्वक कहा—महाराज! आप कोई ऐसा उपाय करें जिसमें सदा मेरा राज्य स्थिर रहे। शुक्रजी बोले—हे राजा बलि! तुम सौ वर्ष तक यज्ञ बराबर करो, बीच में किसी साल विघ्न न हो, सौ यज्ञ सम्पूर्ण हो जाने पर तुम्हारा राज्य सदा स्थिर रह सकता है, बिना सौ यज्ञ किये इन्द्र भी देवलोक का राज्य नहीं पाता। यह वचन सुनते ही राजा बलि ने गुरु की आज्ञानुसार हर साल यज्ञ करना आरम्भ किया। जब निन्नानबे यज्ञ अच्छी तरह हो गये, सौवाँ यज्ञ सम्पूर्ण होने के निकट पहुँचा तब राजा बलि बहुत प्रसन्न हुआ। उसने इतना दान व दक्षिणा ब्राह्मणों व कंगालों को हर यज्ञ में दिया कि किसी को कुछ इच्छा नहीं रही। कोई मंगन उसके द्वार से विमुख नहीं फिरा। संसार में उसकी बड़ी कीर्ति फैल गई।

——

सोलहवाँ अध्याय।

इन्द्र का राज्य पाने के लिए अदिति का अपने पति कश्यपजी की सेवा करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब इन्द्र ने यह समाचार सुना कि राजा बलि अपना राज्य सदा स्थिर रखने के लिए सौ यज्ञ करना चाहता है तब उसे बड़ा सोच हुआ। देवतों की माता अदिति अपने बेटों

का राज्य छूट जाने से सदा चिन्ता में रहा करती थी। जब उसने देवतों से राजा बलि का यह वृत्तान्त सुना तब उसको और अधिक सोच हुआ। एक दिन वह इसी चिन्ता में डूबी हुई अपने पति कश्यपजी के पास चुपचाप बैठी थी। उसे उदास देखकर कश्यपजी ने पूछा—हे अदिति! आज हम तुझे बड़े सोच में देखते हैं, इसका क्या कारण है। तेरे द्वारे पर से कोई मंगन व अतिथि भूखा तो फिरकर नहीं चला गया, या तूने किसी ब्राह्मण को दान देने को कहा था सो नहीं दिया, इसलिए तेरा मुख मलीन है। यह वचन सुनते ही अदिति हाथ जोड़कर बोली—हे स्वामी! मेरे द्वारे से कोई अभ्यागत भूखा फिरकर नहीं गया, मैं अपने बेटों का, जिनका राज्य दैत्यों ने छीन लिया और उनकी स्त्रियाँ भाग कर पहाड़ों की कन्दरा में छिपी हैं, दिन-रात सोच करती हूँ। इसी कारण मेरा तेज हीन हो गया है। आप दयालु होकर कोई ऐसा उपाय कीजिए जिसमें देवता फिर अपना राज्य पावें। तब कश्यपजी बोले—देवता और दैत्य दोनों मेरी सन्तान हैं, अपने अज्ञान से यह नहीं समझते कि जो नारायणजी चाहते हैं, सो होता है, मेरा किया कुछ नहीं हो सकता। कोई किसी का बाप व बेटा नहीं है, यह सब परमेश्वर की माया समझना चाहिए। देवतों के राज्य भोगने के समय तेरी सवति दिति रोती है और जब दैत्य लोग राजा होते हैं तब तू उदास होती है। मुझे किसी तरह छुट्टी नहीं मिलती। तू परमेश्वर की शरण में जाकर उनका व्रत रख, तो तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। यह बात सुनकर अदिति ने विनय किया—महाराज! मुझे बतला दो परमेश्वर का व्रत किस तरह करना होगा। कश्यपजी बोले—तुम फाल्गुन सुदी प्रतिपदा से नित्य शिवव्रत, जो ब्रह्मा ने मुझे बतलाया था, रखकर ब्रह्मचर्य रहो। दूध के सिवा और कुछ भोजन न करो। पृथ्वी पर सोया करो। शूकर की खोदी हुई मिट्टी प्रतिदिन अंग में लगाकर स्नान किया करो। उसी मिट्टी की मूर्ति नित्य बनाकर वासुदेव मंत्र से विधिपूर्वक पूजा किया करो। एक सौ आठ आहुति खीर से अग्नि में देकर उसी खीर का भोग लगाओ। बारह दिन तक यह व्रत रखकर दिनरात नारायणजी के चरणों का ध्यान

किया करो। फाल्गुन सुदी द्वादशी को उसका उद्यापन करके ब्राह्मणों को अच्छे-अच्छे पदार्थ खिलाओ। आचार्य और पूजा व होम करानेवाले ब्राह्मण को बहुत-सा दान व दक्षिणा दे। आनन्दपूर्वक उसे विदा करके रात को जागरण करो तब तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। यह व्रत सब यज्ञादिकों से उत्तम होता है।

सत्रहवाँ अध्याय।

अदिति का कश्यपजी की आज्ञानुसार व्रत आरम्भ करना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! अदिति ने उसी तरह व्रत रखकर शुद्ध अन्तःकरण से परमेश्वर के चरणों का ध्यान किया। व्रत सम्पूर्ण होने पर आदिपुरुष भगवान् प्रसन्न होकर चतुर्भुजीरूप जड़ाऊ मुकुट पहिने बैजयन्ती माला गले में डाले मन्द-मन्द मुसकराते हुए उसको दर्शन देने के लिए आये। अदिति ने उस मोहनी मूर्ति को देखकर अति हर्ष से दण्डवत्, पूजा व परिक्रमा करके स्तुति की। नारायणजी ने कहा—तू क्या चाहती है, जो कुछ इच्छा हो सो वरदान माँग। अदिति हाथ जोड़कर बोली—हे महाप्रभु अन्तर्यामी! मुझे यही अभिलाषा है कि दैत्यों से राज्य छूटकर इन्द्रादिक देवता मेरे बेटों को इन्द्रासन मिले। यह बात सुनकर नारायणजी ने कहा—हे अदिति! तू चाहती है कि जिस तरह इन्द्राणी आदिक तेरी पतोहू दुःख पाती हैं उसी तरह दैत्यों की स्त्रियाँ भी कष्ट पावें, सो राजा बलि ने सौ यज्ञ करके मुझे प्रसन्न किया है और वह गुरु व ब्राह्मण की भक्ति रखता है, इस कारण मैं उसका राज्य बरजोरी छीनकर नहीं ले सकता। धर्मात्मा व हरिभक्तों पर मेरा कुछ वश नहीं चलता। पर तूने भी मेरा व्रत रखकर मुझे अति प्रसन्न किया है, इसलिए तेरे वास्ते छल करके राजगद्दी दैत्यों से लेकर देवतों को देंगे। यह वचन सुनकर अदिति ने विनय किया—महाराज! मैं चाहती हूँ कि तुम मेरे गर्भ से अवतार लेकर देवतों की सहायता करो, जिसमें वे लोग अपना राज्य पावें। आदिपुरुष बोले—बहुत अच्छा, तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। ऐसा वरदान देकर अन्तर्धान हो गये। उसी दिन अदिति

के कश्यपजी से गर्भ रहा और उसका मुखारविंद सूर्य के समान चमकने लगा। जब दशवें महीने बालक होने का समय निकट पहुँचा तब ब्रह्मा और महादेवादिक देवतों ने अदिति के स्थान पर आकर गर्भ-स्तुति करके विनय किया—हे वैकुण्ठनाथ! आप देवतों को छुड़ाने के वास्ते अवतार लेते हैं, तुम्हारे सिवा और कौन उनकी सुधि ले सकता है। यह स्तुति सुनकर आदिपुरुष भगवान् ने भादौं सुदी द्वादशी मध्याह्न समय चतुर्भुजी रूप से प्रकट होकर अपने माता-पिता और देवता आदि जो लोग वहाँ थे, सबको दर्शन दिया। उनको देखकर सब छोटे-बड़े प्रसन्न हुए और उनको दण्डवत् किया। उसी समय परमेश्वर ने अति सुन्दर वामनरूप धारण कर लिया। जब कश्यप और ब्रह्मा आदि देवतों ने उनका वामनतनु देखा तब उन्होंने कौपीन, अँगोछा, करधनी, दंड, कमण्डलु और छत्रादिक ब्रह्मचर्य की सब वस्तुएँ वहाँ ला दीं। ब्रह्मा ने वेदानुसार उनका यज्ञोपवीत किया और देवतों समेत स्तुति व परिक्रमा करके उन पर फूल बरसाते हुए अपने-अपने स्थान को चले गये। अप्सराओं ने अपने-अपने विमानों पर आकर आकाश से नाच दिखाया। गन्धर्वों ने गाना सुनाया और कश्यपजी ने उनकी बहुत स्तुति की। उस समय तीनों लोकों में आनन्द व मंगलाचार हो गया।

———

अठारहवाँ अध्याय।

वामनजी का राजा बलि की यज्ञशाला में जाना और तीन पग पृथ्वी उनसे माँगना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! वामन भगवान् ने यज्ञोपवीत होने के उपरांत अपना स्वरूप ब्रह्मचारी के समान बना लिया और दण्ड-कमण्डलु हाथ में लेकर कश्यप व अदिति के स्थान से बाहर निकले। पृथ्वीदान् लेने की इच्छा से, नर्मदा के किनारे जहाँ राजा बलि यज्ञ करता था, चले। उस समय पृथ्वी यह विचारकर काँपने लगी कि परमेश्वर त्रिलोकीनाथ चौदह भुवन के मालिक होकर पृथ्वी माँगने के लिए जाते हैं। जब वामन भगवान् अति तेजवान् रूप से यज्ञशाला में पहुँचे तब बड़े-बड़े ऋषीश्वर, ब्राह्मण, राजा बलि और शुक्राचार्य आदि जितने लोग वहाँ बैठे थे, उनका

तेज देखकर उठ खड़े हुए। इस सूरत का नाटा मनुष्य उन्होंने कभी नहीं देखा था, इसलिए वामनरूप को देखकर आश्चर्य करने लगे। राजा बलि ने वामनजी को जड़ाऊ सिंहासन पर बैठाकर हाथ जोड़कर विनय किया—हे ब्रह्मचारी महाराज! मैंने गुरु और ब्राह्मण के आशीर्वाद से निन्नानवे यज्ञ सम्पूर्ण किये, अब यह सौवाँ यज्ञ करता हूँ, बहुत अच्छा हुआ जो इस यज्ञ में आप ऐसे महापुरुष के चरण आये। आपका दर्शन पाकर मेरा भाग्य उदय हुआ और पितृलोग कृतार्थ हुए। हे बालकरूप ब्रह्मचारी, जिस तरह आप बिना बुलाये दयालु होकर यज्ञ में पधारे हैं उसी तरह आपको गो, स्थान, बाग, हाथी, घोड़ा, द्रव्य, रथ, पालकी, गाँव, पृथ्वी और नगर आदि जिस वस्तु की इच्छा हो सो कहिए, मैं आपकी भेंट करूँ। और यदि तुम्हें विवाह की अभिलाषा हो तो अच्छे कुल में विवाह कर दूँ। हे ब्रह्मरूप, आपका अंग छोटा दिखलाई देता है, पर मुखारविन्द के प्रकाश से आप मुझे महापुरुष मालूम होते हैं। जो कुछ माँगो सो दे सकता हूँ, अपने प्राण तक देने में भी लोभ नहीं करूँगा। यह वचन सुनकर वामनजी बोले—हे राजन्! तुम्हारी बुद्धि व बड़ाई के आगे ये सब बातें कोई कठिन नहीं हैं। तुम प्रह्लाद भक्त के वंश में, जो कश्यपजी का पोता था, उत्पन्न हुए और शुक्राचार्य ऐसे महात्मा तुम्हारे गुरु हैं। तुम क्यों धर्मात्मा न हो। मैं बहुत लोभ न रखकर केवल तीन पग पृथ्वी तुमसे दान लेना चाहता हूँ, वहाँ कुश का आसन बिछाकर हरिभजन करूँगा। यह बात सुनते ही राजा बलि हँसकर बोला—हे ब्रह्मचारी, आपने बहुत थोड़ी वस्तु माँगी, इतनी भूमि क्यों नहीं माँग लेते, जिसमें तुम्हारा स्थान तैयार हो और खेती करके प्रसन्नता से अपना प्रतिपाल करो, फिर तुम्हें संसार में किसी वस्तु की इच्छा न रहे, और दूसरे किसी से कुछ माँगना न पड़े। तब भगवान्‌जी बोले—हे राजन्! अपने प्रयोजन भर माँगना अच्छा होता है, लोभ से अधिक दान लेना उचित नहीं होता। हम संतोषी ब्राह्मण हैं, तीन पग पृथ्वी के सिवा और किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। तुम्हारी गिनती बड़े दानियों में है, जो तुमने मुझे इच्छापूर्वक दान माँगने को कहा, दूसरे मनुष्य तो अपनी सामर्थ्य के प्रमाण दान देते हैं। हे विरोचन के पुत्र!

तुम्हारे पुरुषा ऐसे दानी व शूरवीर हुए हैं, जिन्होंने कभी दान देने से हाथ और रणभूमि से मुँह नहीं फेरा। इस कुल में कोई लालची व अधर्मी नहीं हुआ। हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष तुम्हारे परदादा ऐसे प्रतापी हुए, जिन्होंने देवतों को जीतकर तीनों लोकों का राज्य किया था। यह बात सुनकर राजा बलि बोला—तुम ब्राह्मण के बालक होकर अपना अर्थ सिद्ध करना नहीं जानते। तुम्हारे मुखारविन्द का तेज देखकर और तुम्हारी बातें सुनकर मैं तुमको बड़ा महात्मा समझता हूँ, पर तीन पग पृथ्वी माँगने से तुम मुझे दरिद्री मालूम होते हो। मेरे द्वार पर जो ब्राह्मण व मंगन आता है, फिर उसे जन्म पर्यंत दूसरी जगह जाने व माँगने का प्रयोजन नहीं रहता। इसलिए मुझे तुम्हारे ऐसे महात्मा पुरुष को तीन पग पृथ्वी दान देते हुए लज्जा मालूम होती है। वामनजी ने कहा—हे राजन्! लोभ बहुत निषिद्ध होता है, अधिक तृष्णा रखने से ब्राह्मण का तेज व धर्म नहीं रहता। संतोष रखने से ब्राह्मण का तेज, बल और गुण अधिक होता है। लालची मनुष्य देश-विदेश फिरकर करोड़ों रुपया कमावे और तीनों लोकों का राज्य पावे, बहुत से बेटे व नाती उसके उत्पन्न हों तिस पर भी उसकी इच्छा पूरी नहीं होती। जिस तरह आग में घी डालने से अग्नि की ज्वाला बढ़ती है, उसी तरह लोभी मनुष्य बहुत मिलने पर भी तृष्णा बढ़ाते जाते हैं। सन्तोष रखने से तीन पग पृथ्वी हमको बहुत है। कदाचित् मुझे सन्तोष न होगा तो सातों द्वीपों का राज्य मिलने से भी मेरी चाह नहीं छूटेगी। इसलिए मैं तीन पग भूमि के सिवा और कुछ नहीं चाहता। बिना सन्तोष किये संसार में सुख नहीं होता। अधिक तृष्णा रखना दुःख की जड़ समझना चाहिए।

दो० अर्ब खर्बलों द्रव्य है उदय अस्तलों राज। तुलसी जो निज मरण है तो आवे केहि काज॥

—:○:—

उन्नीसवाँ अध्याय।

बलि का वामनजी को तीन पग पृथ्वी दान देने के लिए तैयार होना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! यह बात वामनजी से सुनकर राजा बलि ने कहा—बहुत अच्छा, अपना चरण आगे लाइए, मैं उसे धोकर

तीन पग भूमि संकल्प दूँ। वामनजी ने अपना पाँव आगे बढ़ाया और राजा बलि ने उनका चरण धोकर वह जल अपने सिर व आँखों में लगाया। और धूप-दीपादिक से उस चरण की पूजा करके अपनी स्त्री से संकल्प करने के वास्ते पानी माँगा। जब रानी विन्ध्यावली गंगाजल की झारी उठा लाई और राजा तीन पग पृथ्वी दान देने के वास्ते तैयार हुए तब शुक्राचार्य अपने ज्ञान से वामनजी को पहिचानकर उठे और राजा बलि के पास जाकर कान में कहा—हे राजन्, तुमने इनको नहीं पहिचाना, इन्हें छोटा-सा ब्रह्मचारी मत समझो, यह आदिपुरुष भगवान् देवतों की सहायता करने के वास्ते वामन अवतार धरकर तुम्हारा राज्य लेने आये हैं। तीन पग दान लेने के बहाने तीनों लोक लेकर देवतों को दे देंगे। तुम इनके छल में मत आओ। कदाचित् तुम ऐसा कहो कि तीन पग भूमि देने के वास्ते इन्हें कह चुका हूँ, तो इसका उत्तर यह है कि राजा जो कुछ देश व धन रखता हो उसमें पाँच भाग होना चाहिए। एक भाग धर्म के लिए, दूसरा यश के लिए, तीसरा अपने प्रयोजन के लिए, चौथा स्त्री व पुत्र के लिए, पाँचवाँ सेवकों के लिए होता है, इसलिए पाँचवाँ भाग अपने देश व धन में दान करना उचित है। यही बात वामनजी से कह दो, नहीं तो अपने दो पग में चौदहों भुवन नाप लेंगे और तू तीसरा पग भूमि नहीं दे सकेगा। धन जाने व गो-ब्राह्मण की भलाई होने के स्थान पर झूठ बोलना अधर्म नहीं होता, इसलिए तू अपने वचन से फिर जा तुझे पाप न होगा। यह बात सुनकर राजा बलि ने चार घड़ी तक विचार किया कि शुक्रगुरु का कहना न मानना मेरे वास्ते अच्छा नहीं मालूम होता और ब्राह्मण से बात हारकर अपना वचन छोड़ देना उससे भी अधिक निषिद्ध है। उन्हीं नारायणजी ने हिरण्यकशिपु मेरे परदादे को जिसने मुँह माँगे वरदान ब्रह्मा से पाये थे, मारकर राज्य छीन लिया। वही त्रिलोकीनाथ मेरे घर आकर तीन पग पृथ्वी भिखारी के समान दान माँगते हैं, इसलिए मुझको अपना राज्य, धन व प्राण इनके ऊपर निछावर कर देना उचित है। कदाचित् मैं शुक्रगुरु की आज्ञानुसार अपना वचन छोड़

दूँगा तो इनमें यह भी सामर्थ्य है कि मुझे मारकर मेरा सब राज्य व देश छीन लेंगे। जो नारायणजी की इच्छा होगी वही होगा, उसमें तिलभर भी घट-बढ़ नहीं हो सकता, इसलिए जो मैंने तीन पग पृथ्वी दान देने का वचन दिया है उससे फिरना न चाहिए।

बीसवाँ अध्याय।

राजा बलि का वामनजी को तीन पग पृथ्वी संकल्प कर देना।

शुकदेवजी ने कहा–हे परीक्षित! राजा बलि यह बात विचारकर शुक्राचार्य से बोले–महाराज! आप कहते हैं कि तुम इस ब्राह्मण को पृथ्वीदान मत दो, सो ब्राह्मण से झूठ बोलना बड़ा पाप होता है। मैं राज्य, धन और संसारी सुख के लिए, जो सदा स्थिर नहीं रहता, झूठ क्यों बोलूँ। झूठ बोलने से मुझे नरक भोगना पड़ेगा। यह राजगद्दी मेरे साथ न जायगी। इसलिए जो कुछ वचन मैंने हारा है उससे फिर नहीं सकता। चाहे मेरा राज्य जावे या रहे। देखो, हिरण्यकशिपु मेरे परदादा और प्रह्लाद भक्त मेरे दादा तीनों लोकों के राजा थे, देवता जिनकी आज्ञा मानते थे, वे लोग भी संसार में नहीं रहे उनका राज्य भी जाता रहा। विरोचन मेरा बाप भी राज्य और धन छोड़कर मर गया उसी तरह मैं भी एक दिन राज्य व द्रव्य छोड़कर मर जाऊँगा, फिर किस वास्ते झूठ कहूँ। आप मुझे इस ब्राह्मण को पृथ्वी दान देने से मना न कीजिए। जो मनुष्य शुभकर्म करते हैं, उनका नाम स्थिर रहता है, कोई जीव सदा अमर नहीं रहता। देखो, दधीचि ने इन्द्रादिक देवतों के लिए अपने शरीर की हड्डी उनको दे डाली, राजा शिवि ने कबूतर का प्राण बचाकर उसके बदले अपने अंग का मांस काट दिया, सो आज तक उन लोगों का यश संसार में छा रहा है। इसलिए मैं राजगद्दी जाने या नरक भोगने से नहीं डरता, केवल अपयश से बहुत डरता हूँ। संसारी लोग कहेंगे कि राजा बलि ने वामनजी को दान देने को कहा था, सो लालच के वश अपना वचन छोड़ दिया। इसके सिवा गृहस्थ का यही धर्म है कि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी जो उसके

द्वार पर आवें उन्हें विमुख न फेरे, कुछ देकर प्रसन्न करे। आप ऐसा कीजिए जिससे मेरा गृहस्थ धर्म बना रहे। आप कहते हैं कि ये नारायणजी हैं, सो जिन परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए सब संसार, यज्ञ, तप, दान व होम करता है, जब वही त्रिलोकीनाथ मेरे घर आकर भिखारी के समान तीन पग पृथ्वी दान माँगते हैं तो किस तरह न देवें। इसलिए इनको दान देकर आशीर्वाद लेना और अपने प्राण तक इन पर निछावर कर देना मैं उचित समझता हूँ। ये मेरा राज्य लेकर देवतों को दे डालेंगे, तो इससे भी मेरा यश महाप्रलय तक स्थिर रहेगा। लक्ष्मीपति इस शरीर और तीनों लोकों के मालिक होकर मुझसे दान माँगते हैं, इसलिए इनको बड़े हर्ष से दान देकर इनका हाथ नीचे करना चाहिए। लालची मनुष्य नरक में पड़ते हैं, इस कारण तुम्हारी आज्ञा न मानकर अवश्य दान दूँगा। जब शुक्रजी ने देखा कि राजा बलि मेरा कहना नहीं मानता तब क्रोध करके उसे शाप दिया कि राज्य व धन दोनों तेरा जाता रहे। जब राजा बलि ने उस शाप का कुछ भय नहीं माना और बड़े हर्ष से वामन भगवान् को संकल्प देकर विनय किया—हे त्रिलोकीनाथ! तीन पग पृथ्वी आप नाप लीजिए। तब वामनजी ने स्वस्ति कहकर अपना विराट्रूप इतना लम्बा-चौड़ा धारण किया कि सात लोक कमर के नीचे और सात लोक कमर के ऊपर हो गए। उस रूप में सारा ब्रह्माण्ड और देवता, दैत्य, मनुष्य, पर्वत, समुद्र, नदी, वन, आकाश, पातालादिक तीनों लोकों की वस्तुएँ दिखलाई देने लगीं। शंख, चक्र, गदा, पद्म उनके हथियार, गरुड़जी, नन्द व सुनन्दादिक सोलह पार्षद अपना-अपना रूप धारण किए किरीट कुण्डल मुकुट जड़ाऊ पहिने वहाँ आकर प्रकट हो गए। जामवन्त भालू ने इक्कीस परिक्रमा विराट्रूप की लेकर वामनजी की दोहाई फेर दी। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित, जब राजा बलि शुक्र पुरोहित का कहना न मानकर वामनजी को पृथ्वी का संकल्प करने लगा तब शुक्रजी बहुत छोटा रूप बनाकर उस झारी की टोंटी में, जो राजा बलि संकल्प देने के वास्ते हाथ में लिए था, घुस गए। उन्होंने पानी गिरने का मार्ग इस इच्छा से बन्द कर दिया कि

पानी न गिरेगा तो राजा बलि किस तरह संकल्प करेगा। वामन भगवान् अन्तर्यामी यह हाल जानकर जो कुशा लिए थे वही उस टोंटी में डालकर उसका छेद खोलने लगे। जब उस कुशा की नोक से शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई तब शुक्रजी काने होकर टोंटी से बाहर निकल भागे। सो हे राजन्! जो लोग किसी को दान देने आदि शुभकर्म करने से बर्जते हैं उनकी यही गति होती है। दूसरा कारण आँख फोड़ देने का यह समझना चाहिए कि परमेश्वर ने दो आँखें मनुष्य को इस वास्ते दी हैं कि एक आँख से संसारी सुख और दूसरी आँख से परलोक का भला-अनभला देखे। शुक्रजी संसारी सुख को अच्छा जानकर अन्त समय का सोच भूल गये थे, इसलिए परमेश्वर ने एक आँख फोड़कर उन्हें आगे को चैतन्य कर दिया। यह बात सुनकर सबको परलोक का सोच करना चाहिए।

—:o:—

इक्कीसवाँ अध्याय।

नारायणजी का अपने विराट्रूप से एक पग में सातों लोक ऊपर के और दूसरे पग से सातों लोक नीचे के नाप लेना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! वामनजी ने अपना विराट्रूप बहुत लम्बा व चौड़ा बढ़ाकर एक पग से सातों लोक ऊपर के और दूसरे पग से सातों लोक नीचे के नाप लिये। जब दहिना चरण नारायणजी का ऊपर के सातों लोक नापते समय ब्रह्मपुरी में पहुँचा तब ब्रह्मादिक देवता वह चरण देखते ही उठ खड़े हुए और विरजा नदी के पानी से उसको धोकर चरणामृत लिया। वह जल अपने सिर व आँखों में लगा कर शेष चरणोदक एक कमण्डलु में रख छोड़ा, उसी पानी से गंगाजी प्रकट हुई हैं। ऋषीश्वर लोग जो वहाँ बैठे थे, उन्होंने चरणोदक को अपनी आँखों में लगाकर बहुत स्तुति की। देवतों ने अपना मनोरथ पाकर बड़ी खुशी मनाई और अनेक तरह के बाजे बजाकर जयजयकार किया। उस चरणोदक की विधिपूर्वक पूजा करके आनंद मनाया। अप्सराओं ने बड़े हर्ष से नाच और गन्धर्वों ने गाना आरम्भ किया।

विप्रचित्ती आदि दैत्यों ने विराट्रूपवामनजी को देखते ही घबड़ाकर राजा बलि से कहा—देखो, इस ब्रह्मचारी नाटे मनुष्य ने कैसा छल किया, तुम कहो तो इसे पकड़ लें। राजा बलि ने दैत्यों को उत्तर दिया कि यह परमेश्वर त्रिलोकीनाथ हैं, जो कुछ करेंगे सब अच्छा होगा, इनसे विरोध न करना चाहिए। यह बात राजा बलि की सुनकर अपने अज्ञान से सब दैत्यों ने आपस में कहा कि हमारा राजा धर्मात्मा बैठा हुआ यज्ञ करता था, सो इस ब्राह्मण ने आकर छल से उसका राज्य ले लिया, अब हमारा राजा और हम लोग कहाँ रहेंगे। राजा बलि ने जन्मभर हमारा पालन किया है, आज इस छली ब्राह्मण को मारकर पृथ्वी छीन लें तो राजा बलि के अन्न-जल से उऋण हो जावें। राजा दान दे चुके हैं, वे लड़ने के वास्ते नहीं कहेंगे। सब दैत्य यह सम्मति करके अपने शस्त्र सहित नारायणजी के अंग में लिपट गये। तब त्रिलोकीनाथ की आज्ञानुसार सुदर्शन चक्र व पार्षदों ने दैत्यों को मारकर हटा दिया। जब दैत्य लोग भागकर राजा बलि के पास आये तब उसने परमेश्वर की इच्छा ऐसी समझकर और शुक्राचार्य गुरु का शाप विचारकर दैत्यों से कहा कि तुम लोग युद्ध मत करो। दुःख व सुख प्रारब्ध से होता है, जब तुम्हारी सायत अच्छी आवेगी तब फिर राज्य पावोगे। इस समय देवतों का भाग्य उदय हुआ है, इसलिए तुम्हारा लड़ना व्यर्थ होगा। यह वचन सुनकर जब दैत्य लोग लड़ना छोड़कर भाग गये तब नारायणजी बोले—हे राजन्! तुमने तीन पग पृथ्वी दान दिया है, और नापने में तुम्हारा सम्पूर्ण राज्य मेरे दो पग से अधिक नहीं ठहरा, सो तीसरा पग पृथ्वी संकल्प करने के अनुसार दीजिए।

बाईसवाँ अध्याय।

वामनजी का राजा बलि को सुतललोक का राज्य देना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब वामनजी ने तीसरा पग पृथ्वी माँगी और राजा बलि, जो वामन भगवान् के सामने सिर नीचे किये खड़ा था, मारे डर के कुछ नहीं बोला तब फिर वामनजी ने कहा—

हे बलि ! यदि तुम तीसरा पग भूमि नहीं दे सकते, तो यही बात कहो कि हम न देंगे। यह वचन सुनकर राजा बलि ने हाथ जोड़कर विनय किया– हे त्रिलोकीनाथ ! मैं अधर्मी नहीं हूँ, जो अपना वचन छोड़ूँ। तब वामनजी बोले कि पहिले तुमने अहंकार से यह बात कही थी कि जो चाहो मुझसे माँगो, कंगाल ब्राह्मण के समान तीन पग पृथ्वी क्या माँगते हो, सो अब तुम तीन पग पृथ्वी नहीं दे सकते। राजा बलि वामनजी के तेज व डर से यह नहीं कह सका कि दान माँगने के समय आपका स्वरूप छोटा था, अब तुमने अपना चरण इतना बढ़ाया, किस तरह देवें। जब थोड़ी देर तक राजा बलि ने कुछ उत्तर नहीं दिया तब वामन भगवान् ने क्रोध करके गरुड़ से कहा कि इसे बाँध लो तो तीसरा पग भूमि देगा। जब गरुड़ ने राजा बलि को बाँधकर पृथ्वी पर गिरा दिया तब जो लोग वहाँ पर थे उन्होंने आश्चर्य मानकर कहा कि राजा ने अपना सब राज्य व धन वामनजी को दे दिया तिस पर उन्होंने इसको बाँधा है यह बात अच्छी नहीं की। यह सुनकर नारद और सनत्कुमारजी बोले कि वामन भगवान् राजा बलि की परीक्षा लेते हैं कि यह अपने धर्म का सच्चा है या नहीं। जब फिर वामनजी ने एक पग भूमि तीन बेर माँगकर कहा कि हे राजा, तू इन्द्र से ऊपर रहना चाहता था, सो शुक्राचार्य गुरु के शाप से तुझे नीचे नरक में जाना पड़ेगा। तब राजा बलि हाथ जोड़कर बोला–हे वैकुण्ठनाथ ! मैं अपने वचन से न फिरकर दण्डवत् करता हूँ। आप अपना चरण मेरे मस्तक पर रखकर मेरा शरीर तीसरे पग पृथ्वी के बदले नाप लीजिए। कदाचित् आप यह कहें कि चौदह लोक तेरा राज्य दो पग नाप में ठहरा तो तेरा अंग एक पग के बराबर कैसे हो सकता है। सो आप देखिए कि जिस तरह मनुष्य का सब अंग बराबर न होकर नाक छोटी होने पर भी बड़ी पदवी रखती है उसी तरह यह मेरा अंग जो सब धन, राज्य और तीनों लोकों का मालिक था सो एक पग भूमि से अधिक पदवी रखता है। हे जगत्पालक ! तुम्हारा नाम लेने से मनुष्य नरक को नहीं जाता, जब आप साक्षात् ईश्वर मेरे सामने खड़े हैं तो मैं नरक को क्यों जाऊँगा। तुम्हारा दर्शन

करने से संसार में मेरी कीर्ति अधिक होगी। जिस तरह आप हरिभक्तों पर दयालु होकर उनको अशुभ कर्मों से बचाये रखते हैं उसी तरह अपने भक्त प्रह्लाद के कुल में जानकर मेरा अहंकार, जो राज्य, और धन, संतान, बल के मद में अन्धा हो रहा था, तोड़ दिया और कृपा करके अपना चरण यहाँ लाकर गुरु के समान उपदेश देकर मुझे कृतार्थ किया। कदाचित् आज मैं लोभवश अपना राज्य तुम्हें दान न करता तो मरते समय यह सब राज्य व धन मेरे साथ न जाकर संसार में केवल अपयश मुझे प्राप्त होता। और यह भी मेरा अज्ञान है जो अपने को दान देनेवाला समझता हूँ, क्योंकि सब यह लक्ष्मी व पृथ्वी आपकी है, आपकी कृपा के बिना कोई मनुष्य राज्य व द्रव्य पा नहीं सकता। हे परीक्षित! जिस समय राजा बलि यह सब बातें वामन भगवान् से कह रहा था उसी समय प्रह्लाद भक्त आकाश से उतरे और वामनजी को दण्डवत् करके हाथ जोड़कर बोले—हे त्रिलोकीनाथ! आपने बड़ी कृपा की जो बलि से तीन पग पृथ्वी दान माँगा, नहीं तो आपको जो तीनों लोकों और सब संसारी वस्तु के मालिक हैं किसी से कुछ माँगने का क्या प्रयोजन है। राजा बलि जो कुछ तुम्हारा दिया हुआ अपने पास रखता था सो सब उसने आपको अर्पण किया, अब अपने शरीर के सिवा कोई वस्तु उसके पास नहीं रही, सो दया करके इसे अपना सेवक व भक्त जानकर छोड़ दीजिए। विंध्यावली राजा बलि की स्त्री हाथ जोड़कर बोली—हे दीनानाथ! आपने अच्छा न्याय किया, जो इन्हें बाँधकर दण्ड दिया, क्योंकि संसार में सब वस्तु तुम्हारी है, तुम तीनों लोकों की रचना केवल अपने खेल के वास्ते करते हो, इस लिए राजा बलि को अहंकार से यह बात कहना उचित नहीं था कि जो कुछ तुम माँगो सो मैं दूँ। उसी समय ब्रह्मा ने भी वहाँ आकर वामन भगवान् को दण्डवत् करके विनय किया—हे परब्रह्म परमेश्वर! राजा बलि ने शुभ कर्म करने से जो धन व राज्य पाया था सो सब आपको दान देकर यज्ञों का पुण्य भी आपको अर्पण किया और अपने धर्म से न फिरकर बाँधने पर भी कुछ विषाद नहीं किया, अपना शरीर भी आपको भेंट देता है, फिर उसे बाँध रखना न्याय की बात नहीं है। जब आप

दीनानाथ होकर ऐसा करेंगे तो फिर आपकी शरण में कौन आवेगा। जो मनुष्य आपको तुलसीदल, फल, पुष्प और जल चढ़ाकर गुग्गुल आदि सुगन्ध से आपके नाम पर अग्नि में धूप देता है उसको आप अपना भक्त जानकर संसारी महाजाल से छुड़ाकर भवसागर पार उतार देते हैं, सो राजा बलि ने अपना सब धन व तनु आपको अर्पण किया, फिर इसे छुट्टी क्यों नहीं देते। जब प्रह्लाद भक्त, विंध्यावली और ब्रह्मा ने इस तरह वामनजी से विनय किया तब वैकुण्ठनाथ बोले—मैंने राजा बलि की परीक्षा लेकर उसका गर्व तोड़ दिया तुम लोग इस बात का विश्वास मानो कि जिस किसी पर मेरी कृपा होती है उससे इतनी वस्तुएँ छीन लेता हूँ—एक जात्याभिमान, दूसरा धन, तीसरी विद्या, चौथा गर्व। राजा बलि का धन व राज्य सदा स्थिर नहीं रहता और इसकी कीर्ति महाप्रलय तक बनी रहेगी। इसके उपरांत आठवाँ मन्वन्तर जो आवेगा उसमें इन्द्रलोक का राज्य हम राजा बलि को देंगे। मेरे भक्त लोग किसी बात का अहंकार नहीं करते। यह कहने के उपरांत वामन-जी ने अपना चरण राजा बलि के शिर पर धरकर कहा, अब तीसरा पग पृथ्वी मुझे मिल गई। तब बलि ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे महाप्रभु! आपका नाम भक्तवत्सल है, इसलिए आपने मुझे अपना दास जानकर मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण की। यह वचन सुनकर वामन भगवान् अति प्रसन्न होकर बोले—हे राजन्! उदास मत हो, मैंने सुतललोक का राज्य तुझे दिया, उसी जगह तू अपने परिवार समेत जाकर आनन्द-पूर्वक वास कर। वहाँ मैं भी वामनरूप से सदा तेरे द्वार पर रहकर रक्षा करूँगा। आज से तेरी बुद्धि दैत्यों के समान नहीं होगी।

—:०:—

तेईसवाँ अध्याय।

राजा बलि का सुतललोक में जाना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! वामनजी का यह वचन सुनते ही राजा बलि बन्धन से छुट्टी पाकर अति हर्षित हुआ और वामन भगवान् से हाथ जोड़कर बोला—महाराज! आप जो आज्ञा दें उसी पर मैं प्रसन्न

हूँ जिन चरणों का दर्शन महादेव व ब्रह्मादिक देवताओं और ऋषीश्वरों को ध्यान में नहीं मिलता वे चरण आपने मेरे शिर पर रक्खे, उन्हें मैं दण्डवत् करता हूँ और अपने समान इन्द्र, कुबेर, वरुणादिक किसी देवता का भाग्य नहीं समझता हूँ। यह बात वामनजी से कहकर राजा बलि ने प्रह्लाद भक्त को प्रणाम किया। तब प्रह्लाद ने आँखों में आँसू भरकर अपने पोते राजा बलि को गले लगा लिया और उसके ज्ञान की बड़ाई की। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर वामनजी से कहा—हे वैकुण्ठनाथ! राजा बलि का बड़ा भाग्य है। राजा बलि के ऊपर आपने जैसी दया की वैसी कृपा ब्रह्मा व महादेव पर भी नहीं करते, क्योंकि उनसे कभी कोई वस्तु नहीं माँगी। आपके चरणकमल को, जिसका ध्यान ब्रह्मादिक देवता और बड़े-बड़े ऋषीश्वर आठों पहर हृदय में रखते हैं, राजा बलि ने अपने हाथ से धोकर चरणामृत लिया, नहीं तो हम दैत्यों का, जो मांस खाने व मद पीनेवाले अधर्मी हैं, ऐसा भाग्य कहाँ उदय हो सकता है। इससे मैंने जाना कि आप नीच जाति का विचार न करके केवल अपने भक्तों की कामना पूर्ण करते हैं। जिस तरह कल्पवृक्ष सबको इच्छापूर्वक फल देता है उसी तरह आपने त्रिलोकीनाथ होकर अदिति की इच्छा पूरी करने के लिए भीख माँगना अंगीकार किया। दूसरा कौन ऐसा दीनदयालु होगा। यह स्तुति सुनकर वामनजी बोले—हे प्रह्लाद! हमने बलि को सुतललोक का राज्य दिया सो तुम भी वहाँ जाकर उसके पास रहो, और मैं भी राजा बलि के द्वार पर गदा लिए आठों पहर बना रहूँगा। हमारा मुखारविन्द देखने व तुम्हारे सत्संग से उसको कुछ नहीं मालूम होगा कि इतने दिन कहाँ बीत गये। अब तक तुम हमारा दर्शन ध्यान में पाया करते थे, आज से मेरी व तुम्हारी भेंट नित्य सम्मुख हुआ करेगी। जब यह वचन सुनकर राजा बलि व प्रह्लाद भक्त वामन भगवान् को दण्डवत् करके अपने परिवार समेत सुतललोक को चले गये तब शुक्र पुरोहित ने आकर वामनजी को दण्डवत् करके विनय किया—हे महाप्रभो! संसारी माया के वश होने से, ब्राह्मण व पंडित होने पर भी मुझे ऐसी कुबुद्धि आई कि मैंने राजा बलि को

भूमिदान देने से मना किया, पर उसका भाग्य बलवान् था जो मेरा कहना न मानकर अपने वचन से नहीं फिरा। सो आप मेरा अपराध क्षमा करके आज्ञा दीजिये तो मैं भी सुतललोक में जाकर राजा बलि के पास रहूँ और यह भी वरदान दीजिए कि फिर मुझे ऐसी कुबुद्धि न आवे। यह सुनकर वामन भगवान् बोले—बहुत अच्छा, तुम भी सुतल-लोक में जाकर राजा बलि के पास रहो, पर फिर कभी ऐसी दुर्बुद्धि उसको मत देना। तुम अपने शिष्य का सौवाँ यज्ञ सम्पूर्ण कर लो। तब शुक्रजी बोले—हे ज्योतिस्स्वरूप! जहाँ आपका नाम लेने से यज्ञ सम्पूर्ण होता है वहाँ जब आपका चरण आया तो उसके सम्पूर्ण होने में क्या सन्देह है, पर आपकी आज्ञानुसार पूर्णाहुति डाले देता हूँ। जब शुक्रजी पूर्णाहुति देकर आप भी सुतललोक में चले गये तब ब्रह्मादिक देवता वामन भगवान् का नाम उपेन्द्र रखकर और उन्हें विमान पर बैठाकर स्वर्गलोक को पधारे। जब वामनजी ने वहाँ पहुँचकर इन्द्रपुरी का राज्य देवतों को दिया तब देवता लोग वामन भगवान् व अदिति का यश गाते हुए आनन्दपूर्वक अपने-अपने लोक को चले गये। इन्द्र अपना राज्य पाकर इन्द्राणी के साथ भोग-विलास करने लगा। वामन भगवान् जी वैकुण्ठ को पधारे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तुमने जो वामन अवतार की कथा हमसे पूछी थी उसे वर्णन किया। जो कोई सच्चे मन से कथा को कहे व सुनेगा उसे मुक्ति पदवी मिलेगी।

चौबीसवाँ अध्याय।

मत्स्यावतार की कथा।

राजा परीक्षित इतनी कथा सुनकर बोले—हे शुकदेव स्वामी! मेरा मन नारायणजी के अवतारों की कथा सुनने से नहीं भरा, इसलिए मत्स्यावतार की कथा सुना चाहता हूँ कि इतने बड़े ईश्वर ने छोटा अवतार मछली का क्यों लिया। शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! आदि-पुरुष भगवान् जन्म व मरण से रहित हैं, केवल इस वास्ते अवतार लेते हैं कि हरिभक्त लोग उन अवतारों की लीला कह सुनकर भवसागर पार उतर जावें। जब गौ, ब्राह्मण, देवता, पृथ्वी, धर्म और हरिभक्तों पर

दुःख पड़ता है तब वह छोटे व बड़े जीव का विचार नहीं करते। मत्स्यावतार की कथा इस तरह है। एक बेर प्रलय होने पर ब्रह्मा रात्रि को अचेत सोये थे, जब दिन में उनको जम्हाई आई तब हयग्रीव दैत्य उनके मुख से वेद निकालकर पाताल में ले गया। ब्रह्मा ने यह जानकर नारायणजी से विनय किया कि महाराज! हयग्रीव दैत्य वेद चुरा ले गया है, सो वेद के बिना संसारी काम नहीं हो सकते। वह दैत्य महाबलवान् है, इसलिए हम और देवता लोग उसे जीत नहीं सकेंगे। आप वेद लाने के वास्ते कोई उपाय कीजिए। सत्यव्रत श्राद्धदेव के बेटे ने राजगद्दी छोड़कर दश हजार वर्ष तप करके महाप्रलय देखने की इच्छा की। तब नारायणजी ने ब्रह्मा के विनय करने से वेद को लाने और अपने भक्त राजा सत्यव्रत की इच्छा पूर्ण करने के लिए मत्स्यावतार लिया था। एक दिन राजा सत्यव्रत कीर्तिमाला नदी में नहाने गया। जब स्नान करके तर्पण के निमित्त दोनों हाथों में जल उठाया तब एक बहुत छोटी मछली अंजली में दिखाई देकर बोली—हे राजन्! मैं बहुत दीन हूँ, तेरी शरण में आई हूँ, यदि तू मुझे फिर जल में डाल देगा तो बड़ी मछली मुझे खा जायगी, इसलिए तुझसे यह चाहती हूँ कि मुझे नदी में न डालकर मेरा पालन कर। राजा यह वचन सुनते ही आश्चर्य मानकर मन में कहने लगा कि यह मछली मनुष्य के समान बोलती है, इसलिए अवश्य इसकी रक्षा करनी चाहिए। ऐसा विचारकर राजा ने उस मत्स्य को अपने कमण्डलु में धरकर कहा—तू धैर्य रख, मैं तेरा पालन करूँगा। जब राजा सत्यव्रत उस मत्स्य को अपने स्थान पर ले आये तो क्षण भर में वह बढ़कर कमण्डलु में फँस गई। तब फिर उसने कहा—हे राजन्! कमण्डलु में मुझे दुःख मालूम होता है, कहीं चौड़ी जगह में रक्खो। जब राजा ने कमण्डलु तोड़कर मछली को घड़े में रक्खा और एक पहर बीतने पर फिर जाकर देखा तो मछली वहाँ भी बढ़कर फँस गई थी। वह फिर बोली—हे राजन्! इस घड़े में भी मेरा अंग नहीं समाता। फिर राजा ने एक बड़े मटके में उसे रक्खा। वहाँ भी मछली और बढ़ी। तब एक गड़हा खुदवाकर पानी से भरवाकर रख दिया। जब गड़हा भी मत्स्य के शरीर बढ़ने से भर गया तब उसे तालाब

में ले जाकर रक्खा। थोड़ी देर में वह मत्स्य इतना बढ़ा कि तालाब में भी उसका अंग नहीं समाया तब राजा ने तालाब को नदी तक खुदवाकर उस मत्स्य को वहाँ पहुँचा दिया। जब दूसरे दिन फिर राजा स्नान करने लगे तो देखा कि मछली से सब नदी भरी है तब राजा ने उस मत्स्य को बड़े परिश्रम से समुद्र में ले जाकर कहा—हे मत्स्य! समुद्र से बड़ा कोई स्थान तेरे रहने के वास्ते नहीं है अब तू यहाँ रह और मुझको विदा कर। जब उस मत्स्य का अंग समुद्र में बढ़कर दश हजार योजन लम्बा-चौड़ा हो गया तब उस मत्स्य ने सत्यव्रत से कहा—हे राजन्! तू अपने को बड़ा ज्ञानी व धर्मात्मा समझकर मुझे समुद्र में छोड़कर अपने घर चला जाता है, मुझसे भी जो बड़ी-बड़ी मछली हैं वह मुझको खा जायँगी। यह सुनकर राजा ने ज्ञान से जाना कि यह मत्स्य परमेश्वर का अवतार मालूम होता है क्योंकि मछली तुरन्त इतना नहीं बढ़ सकती, सो इनकी पूजा करनी चाहिए, ऐसा विचारकर राजा ने बहुत स्तुति करने के उपरान्त उस मत्स्य से हाथ जोड़कर विनय किया—हे मत्स्यरूप भगवान्! मैंने तुमको नहीं पहिचाना कि आप नारायणजी का अवतार हैं। मेरा बड़ा भाग्य था जो दर्शन तुम्हारा मिला। यह ज्ञानभरी हुई बात सुनकर मत्स्य भगवान् बोले—हे राजन्! तूने क्या समझकर कहा था कि हम तेरा पालन करेंगे, इसी वास्ते मैंने अपना शरीर बढ़ाकर थोड़ीसी अपनी महिमा तुझे दिखलाई जिसमें तू मेरा पालन व रक्षा करने से हार माने और तेरा अहंकार टूट जावे। मनुष्य को उचित है कि किसी काम को ऐसा न कहे कि मैं कर दूँगा, सब बातों में यही कहना चाहिए कि परमेश्वर चाहेंगे तो यह काम हो जायगा। मेरे भक्त अहंकार का वचन नहीं बोलते। हे राजा! तू विश्वास करके जान, जिस बात को परमेश्वर चाहते हैं वही बात होती है। नारायणजी की इच्छा के बिना मनुष्य का किया कुछ नहीं हो सकता। यह सुनकर राजा ने कहा—हे वैकुण्ठनाथ! आपने मछली का तनु किस वास्ते धारण किया। तब मत्स्य भगवान् बोले—हे राजन्! मैं तनु धरने व मरने दोनों से रहित रहकर अपने भक्तों व सेवकों की इच्छा पूर्ण करने के वास्ते कभी-कभी सगुण अवतार लेकर अपना नाम प्रकट करता हूँ। सो

इन दिनों ब्रह्मा की विनय करने से वेद लाने और तेरी इच्छा पूर्ण करने के लिए, जो तू महाप्रलय का कौतुक देखना चाहता था, हमने मत्स्यरूप अवतार लिया है। मैंने वाराह, कच्छप और नरसिंह अवतार जो लिया था उससे मैं छोटा नहीं हो गया और रामचन्द्र व श्रीकृष्ण अवतार लेने से मेरी कुछ पदवी नहीं बढ़ी। मैं सदा समान रहकर घटने व बढ़ने से रहित हूँ। तुझे महाप्रलय देखने की इच्छा है, इसलिए आज से सातवें दिन संसार में चारों ओर पानी दिखलाई देगा और उस जल में एक नौका पर सप्तऋषि बैठे हुए प्रकट होकर तेरा हाथ पकड़कर उस नाव में बैठा लेंगे। उस नौका के पास पानी पर एक सर्प प्रकट होगा, सो तुम लोग नौका की रस्सी का एक कोना मेरे सोने के सींग में, जो दश हजार योजन लम्बा निकलेगा, और दूसरा कोना उस सर्प की पूँछ से बाँधोगे। जब वह नौका पानी पर घूमेगी तब तू महाप्रलय का चरित्र देखकर सप्तऋषियों समेत मुझसे ज्ञान पूछेगा। जो ज्ञान मैं तुम लोगों से कहूँगा उसके प्रताप से तेरी मुक्ति होगी। इन सात दिनों में तुम सब औषधों के बीज इकट्ठा करके अपने पास रखना। मत्स्यरूप भगवान् यह कहकर वहाँ से अन्तर्धान् हो गये और राजा सब ओषधियों के बीज अपने पास रखकर नित्य कृतमाला के किनारे महाप्रलय देखने के वास्ते आ बैठता था। जब सातवें दिन राजा नित्य नियम करके वहाँ बैठा तब उसने क्या देखा कि चारों ओर से नदी का पानी उमड़ा आता है और आकाश से भी इतना जल वर्षा कि सम्पूर्ण पृथ्वी उस जल में डूब गई। राजा उस जल में गोता खाने लगा और घबराकर मन में कहने लगा, मत्स्य भगवान् ने एक नौका प्रकट होने के वास्ते कहा था, सो अभी तक दिखाई नहीं देती, जब मैं डूब जाऊँगा तब वह नौका प्रकट होकर क्या करेगी। राजा इसी चिन्ता में था कि दूर से एक नाव पर सप्तऋषियों को बैठे हुए देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। जब वह नौका निकट पहुँची तब सप्तऋषीश्वरों ने उसका हाथ पकड़कर उस नौका में बैठा लिया और धैर्य देकर कहा—हे राजन्! तू नहीं डूबेगा। राजा ने दण्डवत् करके उनसे पूछा—मत्स्यरूप भगवान् क्यों नहीं आये? सप्त-

ऋषि बोले—तुम ईश्वर का स्मरण करो, मत्स्यरूप भगवान् भी अभी आते हैं। जैसे ही राजा ने प्रेमपूर्वक नारायणजी का ध्यान किया वैसे ही मत्स्यरूप भगवान् ने राजा को दर्शन दिया। जब वासुकि सर्प वहाँ जल में प्रकट हुआ और सप्तऋषीश्वर व राजा ने नौका की रस्सी का एक कोना (वह रस्सी भी सर्प की थी) उस मछली की सींग में और दूसरा कोना वासुकि नाग की पूँछ से बाँधा तब वह मछली उस नाव को पानी में फिराने लगी। राजा ने इच्छापूर्वक महाप्रलय का कौतुक देखकर मत्स्यरूप भगवान् से विनय किया—महाराज! आपने दयालु होकर महाप्रलय का चरित्र मुझे अच्छी तरह दिखाया, अब मैं यह चाहता हूँ कि आप मुझको ज्ञान सिखलाकर भवसागर पार उतार दीजिए, जिसमें जन्म-मरण से छुट्टी पाऊँ। संसारी मनुष्य ऐसा कर्म करता है जिससे सदा महाजाल में फँसा रहे। जो कोई तन पाकर अपना परलोक नहीं बनाता वह फिर कुत्ता व शूकर आदि चौरासी लाख योनि में जन्म लेकर दुःख पाता है। संसारी मनुष्य रात्रि दिन स्त्री, पुत्र व धन के मोह में फँसा रहता है। किसी समय नारायणजी को, जो उसका बेड़ा पार लगावेंगे, स्मरण नहीं करता। परमेश्वर अपनी दया से जिसका मनोरथ पूर्ण करते हैं, वह अपने अज्ञान से उस काम को कहता है कि मैंने परिश्रम से किया। घर, द्रव्य, स्त्री व लड़कों को अपना जानकर उनकी प्रीति में अपना जन्म अकार्थ करता है और यह नहीं समझता कि पूर्वजन्मों के संस्कार से सब जीव अपना बदला लेने के वास्ते संसार में आकर इकट्ठे होते हैं। सो हे दीनानाथ! इस कुबुद्धि का छूटना और ज्ञान का प्राप्त होना आपकी दया के बिना हो नहीं सकता। जब तक मनुष्य संसारी माया से विरक्त नहीं होता तब तक आवागमन से नहीं छूटता। जिस पर आप दयालु होकर ज्ञान देते हैं वह भवसागर पार उतर जाता है, नहीं तो बारम्बार जन्म लेकर दुःख पाता है। मुझे अपना दास जानकर ऐसा ज्ञान दीजिए जिसमें भव-सागर पार उतर जाऊँ। यह सुनकर मत्स्यरूप भगवान् ने राजा को जिस ज्ञान का उपदेश किया वह सब ज्ञान विस्तारपूर्वक मत्स्यपुराण में लिखा

है। वही ज्ञान सुनने से राजा सत्यव्रत परम ज्ञानी हो गया। फिर मत्स्यरूप भगवान् बोले—हे राजन्! तू अपनी आँख बन्द कर ले। जैसे राजा ने आँख बन्द करके फिर खोला तो अपने को उसी नदी के तट आसन पर बैठे हुए पाया और महाप्रलय का कौतुक फिर न दिखाई दिया। यह चरित्र और नारायणजी की महिमा देखकर राजा ने आश्चर्य मानकर मन में समझा कि मत्स्यरूप भगवान् ने अपनी माया से मेरी इच्छानुसार यह कौतुक दिखलाया है। राजा सत्यव्रत ज्ञान प्राप्त होने से हरि-चरणों में ध्यान लगाकर मुक्त हुआ और मत्स्यरूप भगवान् पाताल में जाकर अपनी गदा से हयग्रीव दैत्य को मारकर चारों वेद ले आये और ब्रह्मा को देकर वैकुण्ठ को पधारे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! चौदहों मन्वन्तरों में जो-जो अवतार परमेश्वर लेते हैं उनकी कथा तुमसे वर्णन की। चौदहों मन्वन्तर ब्रह्मा के एक दिन में बीत जाते हैं और इतनी ही बड़ी उनकी रात भी होती है। उसी दिन व रात के प्रमाण से ब्रह्मा सौ वर्ष जीते हैं। इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने विनय किया—हे महाप्रभो! चौदहों मन्वन्तरों और परमेश्वर के अवतार लेने की कथा, जिसके सुनने से संसारी जीव भवसागर पार उतर जाते हैं, तुम्हारे मुखारविन्द से मैंने सुना। आप भूत, भविष्य व वर्तमान तीनों काल के ज्ञाता हैं, इसलिए मैं चाहता हूँ कि आपके मुख से सूर्यवंशी व चन्द्रवंशी राजों की कथा, जो पहले हो गये हैं, सुनूँ। शुकदेवजी यह बात सुनकर बोले कि हे राजन्! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी, हम कहते हैं, सुनो। कदाचित् कोई ऐसा कहे कि शुकदेवजी ने वैष्णव होकर संसारी राजों का वृत्तान्त किस वास्ते कहा, सो उन्होंने दो गुण समझकर यह कथा कही थी। एक यह कि वे राजा धर्मात्मा और ज्ञानी थे, संसारी माया से विरक्त होकर मुक्त हुए हैं, उनकी कथा सुनने से राजा परीक्षित को राज्य छोड़ने और शरीर त्यागने का सोच न होगा। दूसरे परब्रह्म परमेश्वर ने रामचन्द्र का अवतार सूर्यवंश में और कृष्ण का अवतार चन्द्रवंश में हरिभक्तों को सुख देने के वास्ते धारण करके अनेक लीलाएँ की हैं। वह कथा सुनकर संसारी लोग सब पापों से छूटकर मुक्ति पावें।

नवाँ स्कन्ध।

—:०:—

सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं की कथा।

पहिला अध्याय।

श्राद्धदेव मनु की कथा।

राजा परीक्षित इतनी कथा सुनकर बोले—हे शुकदेव स्वामी! मैंने सब मन्वन्तरों की कथा तुम्हारे मुखारविंद से सुनी और राजा सत्यव्रत का वृत्तान्त, जिसे मत्स्यरूप भगवान् ने ज्ञान बतलाया था, सुनकर अति प्रसन्न हुआ। अब मैं यह सुना चाहता हूँ कि किस किस राजा ने कौन कौन मन्वन्तर में राज्य किया? अब सूर्य का बेटा श्राद्धदेव मनु जो राज्य पर है उसके सन्तान की कथा विस्तारपूर्वक कहिए। यह बात सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! विस्तारपूर्वक उसका हाल कोई सैकड़ों वर्ष में भी नहीं कह सकता, इसलिए संक्षेप से मैं उनकी कथा कहता हूँ, सुनो। जब महाप्रलय होकर संसार में चारों ओर पानी भर गया। केवल नारायणजी स्थिर रहे और उनको यह इच्छा हुई कि जगत् उत्पन्न करके अपना रूप आप देखें। तब कमल का एक पुष्प वैकुण्ठनाथ की नाभि से प्रकट हुआ, उस फूल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उन्होंने नारायणजी की आज्ञानुसार मनु नाम का पुत्र उत्पन्न किया। मनु के हृदय से मरीचि ने जन्म लिया और उससे कश्यप नाम का बालक उत्पन्न हुआ। कश्यप से सूर्य ने जन्म पाकर श्राद्धदेव मनु पुत्र उत्पन्न किया। जब श्राद्धदेव के सन्तान नहीं उत्पन्न हुई तब उसने वशिष्ठ ऋषीश्वर से विनय किया कि आप कोई ऐसा उपाय करें जिसमें मेरे पुत्र उत्पन्न हो। वशिष्ठजी बोले कि यज्ञ करने से तेरे सन्तान होगी। जब उसने वशिष्ठजी की आज्ञानुसार यज्ञ आरम्भ किया तब मनु की स्त्री

ने वशिष्ठजी के साथी ब्राह्मण से, जो अग्निकुण्ड में घी की आहुति डालता था, कहा कि मैं चाहती हूँ कि मेरे अति सुन्दर कन्या उत्पन्न हो। उस ब्राह्मण ने बेटी उत्पन्न होने के वास्ते मंत्र पढ़कर आहुति दी, इसलिए कन्या उत्पन्न हुई। वशिष्ठ ने उसका नाम इला रक्खा। तब श्राद्धदेव बोला कि महाराज, मैंने पुत्र उत्पन्न होने के वास्ते यज्ञ किया था, सो बड़ा आश्चर्य है कि मंत्र का फल विपरीत होकर कन्या उत्पन्न हुई। वशिष्ठजी बोले—हे राजन्! तेरी स्त्री ने बेटी होने के वास्ते इच्छा रखकर आहुति देनेवाले ब्राह्मण से कह दिया था, इसलिए पुत्री उत्पन्न हुई। जब यह वचन सुनकर राजा मनु चिन्ता करने लगा तब वशिष्ठजी बोले—हे राजन्! तू उदास मत हो, मैं परमेश्वर से विनय करके इस कन्या को पुत्र कर दूँगा। यह वचन सुनते ही राजा प्रसन्न हो गया। वशिष्ठजी ने परमेश्वर का ध्यान लगाकर जब अपने ब्रह्मतेज से उनकी स्तुति की तब वैकुण्ठनाथ दर्शन देकर बोले—तुम क्या चाहते हो? वशिष्ठजी ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! मैं चाहता हूँ कि यह कन्या पुत्र हो जावे। परमेश्वर बोले—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। यह वचन नारायणजी के मुख से निकलते ही जब वह कन्या सुन्दर-रूप बेटा होकर खेलने लगा तब राजा ने उसका नाम सुद्युम्न रखकर बड़ी खुशी मनाई। ब्राह्मण और याचक लोगों को मुँह माँगा दान व दक्षिणा देकर उसे राजगद्दी पर बैठा दिया। वह धर्म के साथ प्रजा का पालन करने लगा। एक दिन परमेश्वर की इच्छा से उत्तर दिशा इलाव्रत खण्ड में अहेर खेलने गया और एक हरिण के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ अम्बिका वन में जा पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही राजा स्त्रीरूप हो गया। उसकी सवारी का घोड़ा भी घोड़ी हो गया। जितने सेवक राजा के साथ उस वन में पहुँचे थे सब स्त्री हो गये। अपनी यह दशा देखकर वे लोग लज्जित होकर एक दूसरे से अपना चरित्र नहीं कह सकते थे। जब किसी का कुछ वश नहीं चला तब परमेश्वर की इच्छा इसी तरह जानकर सबों ने धैर्य धरा। इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! वे लोग उस वन में जाने से स्त्री क्यों हो गये थे, इसका वृत्तान्त कहिए। शुकदेवजी

बोले—हे राजन् एक दिन उस वन में महादेव व पार्वती नंगे होकर विहार कर रहे थे, उसी समय सनकादिक चारों भाई उनका दर्शन करने के वास्ते वहाँ पहुँचे। उन लोगों ने महादेव और पार्वती को दण्डवत् किया। पार्वतीजी ने उन लोगों को देखकर महालज्जित होकर अपनी आँखें नीची कर लीं। ऋषीश्वर लोग उदास होकर वहाँ से नर-नारायण का दर्शन करने के वास्ते बदरी-केदार को चले। तब पार्वती ने महादेव से कहा कि आप विहार करने के वास्ते कोई स्थान नहीं बनवाते, मुझे वन में लज्जित करते हैं। आज मारे लज्जा के मुझसे अपना मुँह किसी को नहीं दिखलाया जाता। यह सुनकर शिवजी बोले—हे प्राणप्यारी! तुम उदास मत हो, हम इस वन को ऐसा शाप देते हैं कि आज से जो कोई देवता, दैत्य, मनुष्य या पशु आदि पुरुष इस वन में आवेगा वह स्त्री हो जायगा। इसी कारण राजा सुद्युम्न स्त्री हो गया था। भोलानाथ सदा पार्वती के संग वहाँ विहार करते हैं और गिरिजा देवी की सोलह हजार सहेली सेवा में आठों पहर बनी रहती है। वहाँ महादेव के सिवा दूसरा पुरुष नहीं जा सकता। जब राजा सुद्युम्न स्त्री होने से लज्जा के मारे अपने घर न जा सका तब अपने साथियों समेत व्याकुल होकर उसी वन में चारों ओर फिरने लगा। उस वन के दक्षिण सिवाने पर चन्द्रमा का बेटा बुध बैठा हुआ तप करता था, अचानक राजा सुद्युम्न स्त्रीरूप से उसी जगह जा निकला और बुध तपस्वी होने पर भी उसके रूप पर मोहित हो गया। स्त्रीरूप सुद्युम्न का भी मन उस पर चलायमान हुआ। तब दोनों ने गन्धर्व विवाह कर लिया और वहाँ रहकर भोग-विलास करने लगे। जब बुध की आज्ञानुसार सुद्युम्न के साथ की स्त्रियाँ पर्वत पर चली गईं तब उन्हें गन्धर्व उठाकर अपने लोक को ले गये। जब स्त्रीरूप सुद्युम्न के पुरूरवा नाम बेटा बुध से उत्पन्न हुआ तब एक दिन सुद्युम्न ने वशिष्ठ गुरु का ध्यान करके उन्हें याद किया। जब वशिष्ठ ऋषीश्वर अन्तर्यामी उसके पास आकर प्रकट हुए तब सुद्युम्न अपना वृत्तान्त उनसे कहकर हाथ जोड़कर बोला—हे मुनिनाथ! ऐसी कृपा कीजिए कि जिसमें फिर मुझे पुरुष का तन मिले। यह वचन सुनकर वशिष्ठजी बोले—तू धैर्य धर, मैं तेरे वास्ते उपाय

करता हूँ। जब वशिष्ठ ऋषीश्वर ने सुद्युम्न पर दयालु होकर गौरीशंकर का ध्यान करके स्तुति की तब भोलानाथ गिरिजा देवी समेत दर्शन देकर बड़े हर्ष से बोले—तुम क्या चाहते हो? वशिष्ठजी ने दण्डवत् करके विनय की—हे महाप्रभु! आप कृपा करके सुद्युम्न को फिर पुरुष बना दीजिए। यह वचन सुनकर पार्वतीजी बोलीं कि सुद्युम्न के स्त्री हो जाने का कारण यह है शिवशंकर ने अम्बिका वन को शाप दिया है, वह शाप मिट नहीं सकता। पार्वती के यह कहने पर भी शिवजी दयालु होकर बोले—हे वशिष्ठ मुनि! सुद्युम्न एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रहेगा। यह वरदान देकर महादेवजी पार्वती समेत अन्तर्धान हो गये। राजा सुद्युम्न उसी समय पुरुष होकर पुरूरवा बेटे को साथ लिए हुए अपनी राजगद्दी पर चला आया। वह एक महीना पुरुष रहकर राज्यकाज करता और दूसरे मास स्त्रीरूप रहने से रोग के बहाने राजमन्दिर में रहता था। जब पुरुष होने पर सुद्युम्न के अपनी स्त्री से तीन पुत्र और उत्पन्न हुए तब उसने कुछ दिन और राजगद्दी का सुख भोगकर अपना मन संसारी माया से विरक्त कर लिया। दक्षिण देश का राज्य अपने तीनों पुत्रों को, जो स्त्री से उत्पन्न हुए थे, दे दिया और अपनी निज राजगद्दी पर पुरूरवा बेटे को जो बुध से उत्पन्न हुआ था, बैठाकर आप वन में चला गया और कुछ दिन हरिभजन करके मुक्त हो गया। राजा पुरूरवा से चन्द्रवंशी और सुद्युम्न के दूसरे बेटों से सूर्यवंशी कुल चला।

—:•:—

दूसरा अध्याय।

श्राद्धदेव के और सन्तानों की कथा।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब राजा सुद्युम्न वन में अपना शरीर त्यागकर मुक्त हुआ तब उसके बाप श्राद्धदेव ने और सन्तान उत्पन्न होने के वास्ते परमेश्वर का तप किया। परमेश्वर की इच्छा से उसके श्रद्धा नाम की स्त्री से दश पुत्र और हुए। उसने बड़े पुत्र का नाम इक्ष्वाकु रक्खा। दूसरा बेटा पृखन्धर नाम हुआ, वह वशिष्ठ गुरु की गौवें दिन को चराकर रात में उनकी रखवारी करता था। एक दिन

बरसात में रात को बाघ ने एक गौ को पकड़ा सो गाय का चिल्लाना सुनकर पृखन्धर उठा और उसने बिजली की चमक में शेर को देखकर उस पर तलवार चलाई। वह खड्ग बाघ का एक कान काटकर गाय के लगा, इस कारण वह गौ मर गई। प्रातः समय वशिष्ठजी ने उस गौ को देखकर पृखन्धर से कहा—तूने तलवार से गौ मार डाली है, इसलिए तू शूद्र हो जा। गुरु के शाप से पृखन्धर ने अपना वह तन छोड़कर अहीर के यहाँ जन्म पाया। उस तन में ब्रह्मचर्य रहकर हरिभजन करने लगा और वन में आग लगने से अपनी इच्छापूर्वक जलकर मुक्त हुआ। राजा का तीसरा बेटा कवि नाम का था वह परमहंस हो गया। करुष नामक चौथे पुत्र से कारुष जाति के क्षत्रियों ने उत्पन्न होकर उत्तर दिशा का राज्य किया। दृष्टिधृक् नामक पाँचवें बेटे के वंश में धारिष्ट जाति के क्षत्रिय उत्पन्न हुए, वे लोग अपनी क्रिया व कर्म से ब्राह्मण हो गये। नृग नामक छठे पुत्र के वंश में सुमन्त से लेकर अग्नि तक तो क्षत्रिय रहे, फिर अग्नि के वंश में ब्राह्मण हो गये। नभग नामक सातवें बेटे का पुत्र नाभ हुआ, कई पीढ़ी के उपरान्त मरुत नाम का ऐसा प्रतापी व चक्रवर्त्ती राजा हुआ, जिसके समान किसी दूसरे राजा ने यज्ञ नहीं किया। उसके यज्ञ में सब बर्तन सुवर्ण के बने थे। उसने ब्राह्मणों को अपने यज्ञ में इतना दान व दक्षिणा दिया कि फिर किसी को कुछ इच्छा न रह गई। उसके वंश में तृणबिन्दु नाम का राजा लम्बुका अप्सरा का पति हुआ और उसी अप्सरा से इड़बिड़ा नाम की कन्या उत्पन्न हुई जो विश्रवा ऋषीश्वर को ब्याही गई, जिससे कुबेर उत्पन्न हुए। तृणबिन्दु राजा के शाल नामक एक पुत्र ने वैशालीपुरी बसाई। उसके वंश में हेमचन्द्र और सोमदत्तादिक बहुत से धर्मात्मा राजा हुए थे।

तीसरा अध्याय।

श्राद्धदेव मनु के सन्तान उत्पन्न होने की कथा।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! उसी श्राद्धदेव मनु का पुत्र शर्याति नाम का राजा था, उसके यहाँ सुकन्या नाम की एक पुत्री अति सुन्दरी

उत्पन्न हुई। राजा उससे बड़ी प्रीति रखता और आठों पहर उसको अपने साथ रखता था। एक दिन राजा अपनी रानी और कन्या समेत अहेर खेलने के लिए वन में गया। जहाँ पर च्यवन ऋषीश्वर का स्थान था उसी के समीप राजा भी ठहरा हुआ था। वह कन्या अपनी सहेलियों के साथ अपने डेरे के निकट फिर रही थी, उसने मिट्टी का एक ढेर, जिसमें दो छेद चमकते थे, देखकर बालकपन के स्वभाव-वश उन दोनों छेदों में काँटा चुभो दिया। वे दो छिद्र च्यवन ऋषीश्वर की आँखें थीं, उनसे रक्त बहने लगा। तब राजकन्या मारे डर के घबराकर सहेलियों समेत अपने डेरे में चली आई। ऋषीश्वर महाराज के दुःख पाने से उसी समय राजा की सेना में सब छोटे-बड़े मनुष्य, ऊँट, घोड़ा, हाथी आदिक का मल-मूत्र बन्द हो गया और पेट में पीड़ा होने लगी। राजा ने यह दशा देखकर अति व्याकुल होकर वनवासियों से पूछा—यह कैसा स्थान है कि हमारी सेना के लोग पीड़ित हो रहे हैं। वहाँ के लोगों ने कहा कि यह च्यवन ऋषीश्वर के रहने का स्थान है। यह बात सुनकर राजा उन ऋषीश्वरों का स्थान ढूँढ़ता हुआ उस जगह जा पहुँचा, जहाँ लोहू बहता था। उसने रक्त देखकर अपने ज्ञान से मालूम किया कि इसी टीले में च्यवन ऋषीश्वर का शरीर मिट्टी से ढँक गया है और वे परमेश्वर के ध्यान में ऐसे लीन हैं कि अपने तन की सुधि नहीं रखते। यह रक्त उनकी दोनों आँखों में काँटा चुभो देने से बहता है। यह वृत्तान्त देखकर राजा अपनी सेना-वालों से काँटा चुभाने का हाल पूछने लगा, तब राजकन्या बोली—हे पिता! यह अपराध अनजान में मुझसे हुआ है। राजा यह बात सुन-कर प्रथम तो बहुत उदास हुए, फिर उसी टीले के पास खड़े होकर बड़े शब्द से उन ऋषीश्वर की स्तुति करने लगे। अपने हाथ से वह मिट्टी हटाया। जब च्यवन ऋषीश्वर वह शब्द सुनकर समाधि से जागे और सावधान हुए तब राजा ने उन्हें दण्डवत् करके हाथ जोड़कर विनय की—हे मुनिनाथ! यह अपराध अनजान में मेरी पुत्री से हुआ है, उसने तुम्हारी आँखों में काँटा चुभो दिया, इस कारण मैं अपनी कन्या को तुम्हें अर्पण करता हूँ। आप ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि जिसमें मेरी

सेना का दुःख छूट जाय। च्यवन ऋषीश्वर ने राजा के स्तुति करने से प्रसन्न होकर ऐसा वरदान दिया कि सबके पेट की पीड़ा दूर हो गई। राजा अपनी कन्या च्यवन ऋषीश्वर के पास छोड़कर वहाँ से सेना समेत राजमन्दिर पर चले आये। च्यवन ऋषीश्वर फिर परमेश्वर के ध्यान में समाधि लगाकर चौदह वर्ष तक आँख बन्द किये बैठे रहे और राजकन्या भी उतने दिन विना अन्नजल उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी रही, वह ऐसी सुन्दरी थी कि इन्द्र ने उसके पास आकर कहा कि तू यहाँ क्यों इतना दुःख सहती है, मेरे साथ चल, हम तुझे इन्द्राणी बनाकर सुख देंगे। इसी तरह कुबेरादिक कई देवतों ने आकर उसे अनेक प्रकार से अपने साथ चलने को कहा, पर उस कन्या पतिव्रता ने किसी की ओर आँख उठाकर कभी नहीं देखा। च्यवन ऋषीश्वर को अपना पति व परमेश्वर समझकर उनके चरणों में ध्यान लगाये खड़ी रही। चौदह वर्ष के बाद च्यवन ऋषीश्वर ने समाधि से जागकर क्या देखा कि राजकन्या उसी तरह हाथ जोड़े सम्मुख खड़ी है, उसके शरीर में केवल हाड़ व चाम रह गया है। उसका ऐसा पातिव्रत धर्म देखकर च्यवन ऋषीश्वर अति प्रसन्न हुए। उसी दिन परमेश्वर की इच्छा से अश्विनीकुमार वैद्य वहाँ आये और ऋषीश्वर को दण्डवत् करके विनय किया कि जो आज्ञा हो सो तुम्हारी सेवा करें। च्यवन ऋषीश्वर बोले—हमारी आँखें अच्छी करके मुझे तरुण कर दो तो मुँहमाँगी वस्तु तुम्हें देंगे। अश्विनीकुमार ने औषध का कुण्ड बनाकर ऋषीश्वर को उसमें स्नान कराया तो उसी समय उनकी आँखें अच्छी हो गईं और वे अति सुन्दर हो गये। उनकी सोलह वर्ष की अवस्था हो गई। तब राजकन्या उन्हें देखकर अति प्रसन्न हुई। च्यवन ऋषीश्वर ने आदरपूर्वक अश्विनीकुमार से कहा कि जो माँगो सो दूँ। यह वचन सुनकर अश्विनीकुमार बोले—महाराज! हम देवतों की औषध करते हैं, इसलिए देवता लोग अपनी पंक्ति में मुझे भोजन करने के लिए नहीं बैठाते और सोमयज्ञ में मेरा भाग नहीं देते, सो आप दयालु होकर ऐसा कर दीजिए कि जिसमें मैं भी भाग पाऊँ। ऋषीश्वर बोले—तू धैर्य धर, तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। जब अश्विनीकुमार वरदान पाकर आनन्दपूर्वक

वहाँ से विदा हुए तब ऋषीश्वर ने राजकन्या से कहा कि मैं तपस्वी हूँ, संसारी सुख की इच्छा नहीं रखता, सदा विरक्त रहता हूँ, पर तेरे पातिव्रत धर्म से हम अति प्रसन्न हैं, इसलिए संसारी सुख के सब पदार्थ संयुक्त करके तेरे साथ भोग-विलास करेंगे। ऐसा कहकर ऋषीश्वर महाराज ने अपने योगबल से उसी जगह सुवर्ण का रत्नजड़ित एक मकान, बाग व तड़ागादिक समेत, ऐसा प्रकट किया कि जिसमें हरि-इच्छा से संसारी सुख की सब वस्तुएँ रक्खी थीं। तब ऋषीश्वर ने राजकन्या से कहा कि तू इस तड़ाग में स्नान कर। जैसे उसने तालाब में गोता मारा, वैसे ही सोलह वर्ष की देवकन्या के समान सुन्दरी हो गई और हजार दासी रूपवती भूषण व वस्त्र पहने हुए उसके साथ तालाब में से प्रकट हुईं। जब उन्होंने राजकन्या को उत्तम भूषण व वस्त्र पहनाकर सोरहों शृंगार उसका किया तब च्यवन ऋषीश्वर राजकन्या से अपना विवाह करके भोग-विलास करने लगे। कुछ दिन बीते एक रोज राजा शर्याति ने अपनी स्त्री से कहा कि जिस दिन से हम अपनी प्राणप्यारी कन्या को वन में ऋषीश्वर को सौंप आये हैं तब से उसका कुछ समाचार नहीं मिला, और बिना प्रयोजन उसको अपने घर बुला नहीं सकते, सो मैं चाहता हूँ कि अपने यहाँ यज्ञ करके इस बहाने से च्यवन ऋषीश्वर को कन्या समेत अपने घर बुलावें तो पुत्री का समाचार भी मालूम होवे। जब रानी ने भी यह बात पसंद की तब राजा यज्ञ की तैयारी करके च्यवन ऋषीश्वर को बुलाने गये। उनके स्थान पर पहुँचकर क्या देखा कि वहाँ टीला व झोपड़ी नहीं है, एक मकान और सुन्दर बाग बना है। उसे देखकर राजा ने आश्चर्य मानकर मन में कहा कि इस वन में ऐसा स्थान किसने बनाया। जिस समय राजा वहाँ खड़ा हुआ यही विचार कर रहा था उसी समय राजकन्या दासियों समेत तालाब में स्नान करने के लिए महल से बाहर निकली और राजा को देखकर बड़े हर्ष से उनके पास आई। किन्तु राजा उसका विभव देखकर सन्न रह गया। और उससे कुछ नहीं बोला। तब राजकन्या बोली कि हे पिता, तुमने मुझे नहीं पहिचाना, जो मुझे गले नहीं लगाया। राजा बोले कि तेरे माता

पिता का उत्तम कुल है, तूने दूसरा पति करके कलंक लगाया। यह वचन सुनकर वह बोली कि आप ऐसा संदेह न करें, मैंने दूसरा पति नहीं किया। यह सब विभव, जो देखते हो, ऋषीश्वर महाराज ने अपने योगबल से प्रकट किया है। यह वचन सुनकर राजा ने बड़े हर्ष से अपनी कन्या को प्यार किया। जब मन्दिर में जाकर च्यवन ऋषीश्वर को अश्विनीकुमार के समान अति सुन्दर व तरुण देखा तब आनन्दपूर्वक दण्डवत् करके उनसे विनय किया—महाराज! मैं सोमयज्ञ करना चाहता हूँ, आप भी दया करके उस यज्ञ में चलिए। च्यवन ऋषीश्वर अपनी स्त्री समेत राजा के साथ गये। रानी अपनी बेटी और दामाद को देख कर हर्षित हुई। जब च्यवन ऋषीश्वर ने राजा के यहाँ यज्ञ आरम्भ किया और सब देवता व ऋषीश्वर आदि वहाँ आये तब च्यवन ऋषीश्वर ने देवतों से कहा कि यज्ञ में अश्विनीकुमार को भी भाग दो। यह वचन सुनकर इन्द्र बोले कि अश्विनीकुमार वैद्य हैं, रोगियों को छूते हैं, इसलिए उनको यज्ञ का भाग देना न चाहिए। च्यवन ऋषीश्वर बोले—हे इन्द्र, मैं अश्विनीकुमार को यज्ञ में भाग देने का वचन दे चुका हूँ, इसलिए उन्हें अवश्य भाग दूँगा। यह वचन सुनकर इन्द्र क्रोधित होकर बोले—हे ऋषीश्वर, तुम हमारा कहना न मानकर अश्विनीकुमार को यज्ञ में भाग दोगे तो हम तुमको मार डालेंगे। ऐसा कहकर जैसे इन्द्र ने च्यवन ऋषीश्वर को मारने के लिए गदा उठाई, वैसे ही ऋषीश्वर की आज्ञा व परमेश्वर की इच्छा से इन्द्र का हाथ उसी तरह उठा हुआ रह गया। उसने गदा मारने के वास्ते बहुत चाहा पर उसका हाथ नीचे को नहीं झुका। जब इन्द्र अपने काम से लज्जित हुआ और हाथ उठे रहने से दुःख पाने लगा तब सब देवताओं व ऋषीश्वर ने इन्द्र से कहा कि तुमने महात्मा च्यवन के साथ जैसा अनुचित बर्ताव किया वैसा दण्ड पाया, अब तुम उन्हीं से अपना अपराध क्षमा करावो। जब इन्द्र ने हार मानकर उनसे विनय किया कि आप महात्मा पुरुष हैं, मैं आपकी महिमा को न जानकर अपने फल को पहुँचा, अब दयालु होकर मेरा अपराध क्षमा कीजिए और अश्विनीकुमार को

यज्ञ में भाग दीजिए, हम सब देवतों को आपका कहना अंगीकार है। जब च्यवन ऋषीश्वर ने इन्द्र को दीन देखकर अपने हाथ से उसका हाथ झुका दिया तब उसका हाथ ज्यों का त्यों हो गया। जब च्यवन ऋषीश्वर व देवतों ने अश्विनीकुमार का भाग यज्ञ में देकर उसको अपनी पंक्ति में बैठाकर खिलाया, राजा का यज्ञ सम्पूर्ण हुआ, अश्विनीकुमार अति प्रसन्न हुए, तब सब देवता, मुनि, च्यवन ऋषीश्वरादिक अपने-अपने स्थान को चले गये। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जो कोई परमेश्वर की शरण में जाकर उनका तप व स्मरण करता है उसे लोक व परलोक दोनों जगह सुख मिलता है। उसे कोई दुःख नहीं दे सकता। वह जो कुछ मुख से कहे या जिस वस्तु की चाह करे, नारायणजी उसके मनोरथ सिद्ध करते हैं। सो हे परीक्षित! उसी श्राद्धदेव के वंश में रेवत नाम का राजा बड़ा प्रतापी हुआ। उसके यहाँ रेवती नाम की एक कन्या अति सुन्दरी व बुद्धिमती उत्पन्न हुई। जब राजा ने उस कन्या को विवाह के योग्य देखा तब मन में विचारा कि जगत् की रचना करने वाले ब्रह्माजी हैं, मैं उनसे जाकर पूछूँ, जिस राजकुँवर को वे बतलावें उसी से अपनी कन्या विवाह दूँ। ऐसा विचारकर राजा अपनी कन्या समेत ब्रह्मलोक को गये। ब्रह्मा ने उनको बड़ा राजा समझकर आदरपूर्वक बैठाया। उस समय ब्रह्मा की सभा में गन्धर्व लोग गाते थे, इसलिए राजा ने कुछ कहना उचित न समझा। जब गन्धर्व गा चुके तब राजा ने ब्रह्मा से विनय किया—जो राजकुमार तुम्हारी समझ में अति सुन्दर हो उसको बतला दीजिए, मैं इस कन्या का विवाह उससे कर दूँ। ब्रह्माजी बोले—जब से तुम मेरे यहाँ आये हो तब से संसार में सत्ताईस युग बीत गये। जो राजा तुम्हारे सामने मृत्युलोक में थे वे सब मर गये। अब उनके वंश में कोई दूसरा राजा धर्मात्मा न रहा, इसलिए तुम अपनी कन्या वसुदेवजी के पुत्र बलभद्र को, जो शेषनाग का अवतार हैं, विवाह दो। राजा रेवत ने ब्रह्माजी की आज्ञा से अपनी कन्या रेवती का ब्याह बलरामजी से कर दिया। राजा आप वन में जाकर हरिभजन करके मुक्त हुआ। रेवती सतयुग की कन्या इक्कीस हाथ लम्बी थी, इसलिए

बलभद्र ने अपने हल से दबाकर उसका अंग अपने बराबर छोटा कर लिया।

चौथा अध्याय।

राजा अम्बरीष की कथा।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! राजा शर्याति की सन्तानों में अम्बरीष राजा ऐसा वैष्णव व परमभक्त उत्पन्न हुआ कि जिस पर ब्राह्मण का शाप नहीं लगा। इतना सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—महाराज! यह बड़े आश्चर्य की बात है, जो ब्राह्मण का शाप मिथ्या हो। परम वैष्णव राजा को ब्राह्मण ने क्यों शाप दिया, इसका वृत्तान्त कहिए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इसकी कथा इस तरह है कि राजा अम्बरीष इन्द्रियों का सुख छोड़कर नारायणजी की तप व पूजा सच्चे मन से करके हरिचरणों में ध्यान लगाये हुए राज्य करता था। उसके यज्ञ में देवता लोग ऋषीश्वरों व ब्राह्मणों का तनु धरकर अपना-अपना भाग लेते थे। वह दिन-रात मुख से परमेश्वर का स्मरण, हाथों से ठाकुरजी की पूजा व सेवा आँखों से ध्यान में हरिचरणों का दर्शन, कानों से अवतारों की कथा सुनता और संसारी व्यवहार को स्वप्नवत् जानता था, इसलिए नारायणजी दीनदयालु उसको अपना परम भक्त जानकर उसके राज्य व देश की रक्षा सुदर्शनचक्र से करते थे। राजा की स्त्री भी परम वैष्णवी व पतिव्रता थी। राजा व रानी दोनों मनुष्य परमेश्वर की भक्ति अपने हृदय में रखकर दशमी को संयम व सब एकादशी निर्जल व्रत करते थे। द्वादशी के दिन राजा साठ करोड़ गौ विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान देकर और उनको भोजन कराकर व्रत का पारण करता था। एक बेर एकादशी के दूसरे दिन दो घड़ी द्वादशी थी, उसी दिन प्रातःसमय दुर्वासा ऋषीश्वर ने अट्ठासी हजार ऋषीश्वरों को साथ लेकर धर्म की परीक्षा लेने के लिए अम्बरीष के मकान पर आकर भोजन माँगा। राजा ने ऋषीश्वर का सम्मान करके विनय किया—महाराज! भोजन का पदार्थ बना है। दुर्वासा बोले कि हम

स्नान कर आवें, तब भोजन करें। ऐसा कहकर यमुना के किनारे स्नान करने चले गये और वहाँ जान-बूझकर पूजा व स्नान में विलंब किया। जब दुर्वासा न आये और द्वादशी बीतने लगी तब राजा ने घबराकर ब्राह्मणों से पूछा कि दुर्वासा ऋषीश्वर स्नान करके नहीं लौटे और द्वादशी बीती जाती है, त्रयोदशी में व्रत का पारण नहीं होता, सो क्या करना चाहिए। ब्राह्मणों ने आज्ञा दी कि द्वादशी में ठाकुरजी के चरणामृत से व्रत का पारण कर ले। चुल्लू भर जल पीना भोजन की गिनती में नहीं है। राजा ने ब्राह्मणों की आज्ञानुसार द्वादशी में चरणामृत से पारण कर लिया। एक क्षणभर जब द्वादशी बीत गई तब दुर्वासा ऋषीश्वर स्नान करके आये। राजा ने बड़े हर्ष से उनको भोजन करने के लिए कहा। ऋषीश्वर बोले—हे राजन्! तू सदा अपने व्रत का द्वादशी में पारण करता था, आज इस समय द्वादशी बीत गई, तूने पारण किया या नहीं। राजा ने कहा कि महाराज! मैंने कुछ भोजन नहीं किया, ब्राह्मणों की आज्ञानुसार चरणामृत से पारण कर लिया है। यह वचन सुनते ही दुर्वासा क्रोधित होकर बोले—तूने हमको द्वादशी में भोजन कराने को कहा था, हमारे आये बिना व्रत का पारण कर लिया, ऐसा तुझे नहीं चाहिए। यह कहकर क्रोधवश दुर्वासा ने अपनी जटा से एक लट नोचकर पृथ्वी पर पटकी तो उसी समय कृत्या नाम की स्त्री शस्त्र लिये प्रकट होकर राजा को मारने दौड़ी। सो हे परीक्षित! दुर्वासा ने राजा को बिना अपराध मारना चाहा था, इसलिए नारायणजी ने उनका अधर्म समझकर सुदर्शनचक्र को आज्ञा दी कि तू अभी जाकर राजा की रक्षा कर। उसी समय सुदर्शनचक्र वहाँ आकर प्रकट हुआ। सुदर्शनचक्र के प्रकाश से कृत्या का अंग जलने लगा और वह व्याकुल होकर भागी। सुदर्शनचक्र दुर्वासा ऋषीश्वर को भी जलाने चला। जब दुर्वासा भी वहाँ से अपना प्राण लेकर भागे, सुदर्शनचक्र ने उनका पीछा किया तब वे भागकर वरुण, कुबेर, इन्द्रलोकादि में इस इच्छा से गये कि कोई देवता हमारी रक्षा करे, पर किसी देवता को ऐसी सामर्थ्य नहीं हुई जो ऋषीश्वर को बचा सके। जब दुर्वासा ने अपना बचाव

कहीं नहीं देखा तब ब्रह्मलोक में दौड़े गये। ब्रह्मा उनको देखकर बोले कि हे दुर्वासा! तुमने उन आदिपुरुष भगवान् के भक्त का अपराध किया है, जो ईश्वर हम सबके मालिक हैं, पलक भाँजते भर में तीनों लोकों का नाश कर सकते हैं, मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। तब दुर्वासा वहाँ से भी निराश होकर महादेवजी की शरण में गये। शिव-शंकर बोले कि हे दुर्वासा परमेश्वर की माया से हम सब लोग उत्पन्न हुए हैं, पर उनकी माया का भेद हम लोग नहीं जान सकते, तुम उन्हीं परब्रह्म की शरण में जाओ तो बचोगे। मुझे सामर्थ्य नहीं है जो तुम्हारी रक्षा कर सकूँ। जब दुर्वासा ने देखा कि परमेश्वर के सिवा कोई दूसरा तीनों लोक में मेरा रक्षक नहीं है तब वैकुण्ठनाथ की शरण में गये और स्तुति करके विनयपूर्वक बोले—मैंने तुम्हारे भक्त का अपमान किया, इसलिए सुदर्शनचक्र मुझे मारना चाहता है, सो मैं आपकी शरण में आया हूँ। शरण आये की लाज रखकर मेरी रक्षा कीजिए। यह बात सुनकर वैकुण्ठनाथ बोले —हे दुर्वासा! हम त्रिलोक के मालिक हैं, परन्तु अपने भक्त पर मेरा कुछ वश नहीं चलता। मैं उसके अधीन रहता हूँ। मुझको अपने भक्त जैसे प्रिय हैं वैसा मैं लक्ष्मीजी और अपने तनु को भी प्यारा नहीं जानता! जिस तरह पतिव्रता स्त्री अपनी सेवा से पति को वश में कर लेती है, उसी तरह मैं अपने भक्तों के अधीन रहता हूँ। निर्गुण भक्त सब संसारी सुख त्यागकर हरिचरणों में ध्यान रखने के सिवा दूसरी कुछ इच्छा नहीं रखते! मुझे अपना इष्टदेव मानकर मनसा वाचा कर्मणा चाहते हैं। इसलिए मैं उनका वचन मिटा नहीं सकता। मुझे अपना वचन टल जाने का कुछ सोच नहीं होता पर मेरे भक्त का कहा कोई मिटा नहीं सकता। हे दुर्वासा, मेरे भक्त बड़े दयावान् होते हैं, क्रोध को अपने वश में रखते हैं, किसी का अनभला नहीं चाहते। कदाचित् राजा अम्बरीष अपने अन्तःकरण से क्रोध करता तो तुम उसी जगह भस्म हो जाते। हम तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते। तुम राजा अम्बरीष की शरण में जाओ, वही तुम्हारी रक्षा करेगा, नहीं तो सुदर्शनचक्र से न बचोगे।

पाँचवाँ अध्याय।

राजा अम्बरीष के पास दुर्वासा ऋषि का आना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब दुर्वासा वैकुण्ठनाथ से भी निराश हुए तब वह अति लज्जित होकर राजा अम्बरीष के पास आये और दण्डवत् करके खड़े हुए। राजा उनकी यह दशा देखकर सुदर्शन-चक्र की बड़ी स्तुति करके रोकर बोला—हे सुदर्शनचक्र! ऋषीश्वर को ब्राह्मण जानकर इनकी रक्षा करो। क्योंकि तुम्हारे मालिक ब्रह्मण्यदेव हैं। मैं भी ब्राह्मण का भक्त हूँ, इसलिए मुझसे ऋषीश्वर का दुःख नहीं देखा जाता। मैंने आज तक जो धर्म किया हो, उसके फल से दुर्वासा कुछ दुःख न पावें। अम्बरीष का यह वचन सुनते ही सुदर्शनचक्र ने अपना तेज ठण्ढा कर लिया। तब राजा ने दुर्वासा से हाथ जोड़कर कहा—महाराज! सब पदार्थ बने हैं, चलकर भोजन कीजिए। दुर्वासा ने छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन बड़े आनन्द से भोजन किया। हे परीक्षित! दुर्वासा सुदर्शनचक्र के भय से आकाश व पाताल में एक वर्ष पर्यन्त भागा किये और राजा अम्बरीष वर्ष दिन बराबर उसी जगह वैसे ही खड़ा रहकर इस बात की चिंता करता रहा कि मेरे वास्ते ऋषीश्वर इतना दुःख पाते हैं। वर्ष दिन तक वही भोजन जो दुर्वासा के लिए बना था, हरिइच्छा से ठंढा नहीं हुआ। जब ब्राह्मणों को भोजन कराकर राजा ने भी प्रसाद पाया तब दुर्वासा ऋषीश्वर अति अधीनता से बोले—हे अम्ब-रीष, मैं आज तक हरिभक्तों की महिमा नहीं जानता था कि परमेश्वर के भक्त सबसे प्रबल हैं। तुम धन्य हो, जो मुझ अपराधी के वास्ते वर्ष दिन तक खड़े रहकर चिन्ता करते रहे और सुदर्शनचक्र की स्तुति करके तुमने मेरे प्राण बचाये। मुझे सामर्थ्य नहीं है जो हरिभक्तों का माहात्म्य वर्णन कर सकूँ। जब दुर्वासा राजा से विदा होकर चले गये तब और सब ब्राह्मण व ऋषीश्वर, जो वहाँ थे, राजा की स्तुति करने लगे। उनका वचन सुनकर राजा बोला—मैं कौन गिनती में हूँ, यह सब परमेश्वर के सुदर्शनचक्र का प्रताप था, जिसने मुझे कृत्या के हाथ से बचाया। परमेश्वर की इतनी कृपा होने पर भी राजा अम्बरीष कुछ अभिमान न

रखता था और भक्ति के तुल्य इन्द्रलोक का सुख भी नहीं समझता था। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! यह थोड़ी सी महिमा अम्बरीष की मैंने तुमको सुनाई, उसकी भक्ति व गुणों का सब वृत्तान्त कोई वर्णन नहीं कर सकता। कुछ काल बीते राजा अम्बरीष ने विरक्त होकर राजगद्दी अपने छोटे पुत्र को दे दिया और आप वन में जाकर हरिभजन करके मुक्त हुआ।

—:o:—

छठा अध्याय।

राजा इक्ष्वाकु का अपने पुत्र पर क्रोध करना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! अम्बरीष के वंश में इक्ष्वाकु नाम का राजा बड़ा प्रतापी हुआ। वह एक दिन अपने बड़े बेटे शशाद से बोला कि तुम वन में जाकर अहेर मार लाओ तो मैं पितरों का श्राद्ध करूँ। राजकुमार ने वन में खरगोश मारकर भूख लगने से थोड़ा मांस उसका खा लिया, शेष मांस अपने बाप के पास ले आया। जब राजा श्राद्ध करने के लिए बैठे तब वशिष्ठ ऋषीश्वर अपने योगबल से जानकर बोले—हे राजन्! इसमें से थोड़ा मांस तेरे पुत्र ने खा लिया है, इसलिए यह मांस श्राद्ध करने योग्य नहीं रहा। यह वचन सुनते ही राजा ने शशाद को अपने नगर से बाहर निकाल दिया, वह वन में जाज्वल्य ऋषीश्वर की कुटी पर जाकर हरिभजन करने लगा। कुछ काल बीतने पर राजा इक्ष्वाकु मर गये तो वशिष्ठ ऋषीश्वर ने शशाद को वन से लाकर राजगद्दी पर बैठा दिया। उसके वंश में पुरंजय नाम का राजा बड़ा प्रतापी व बलवान् हुआ। एक बेर देवतों को दैत्यों ने युद्ध में जीत लिया और इन्द्र ने जाकर ब्रह्मा से अपने विजय का उपाय पूछा। तब ब्रह्माजी बोले—हे इन्द्र! तुम मर्त्यलोक से राजा पुरंजय को अपनी सहायता के लिए बुलावो तो तुम्हारी विजय होगी। यह वचन सुनते ही इन्द्र ने राजा पुरंजय के पास जाकर विनय किया कि आपको हमारा सहायक होकर दैत्यों से लड़ना चाहिए। पुरंजय बोला—हे इन्द्र! मुझे तुम्हारी सहायता करने में कुछ संदेह नहीं है, पर दैत्यों से लड़ते समय

मुझे इतना बल उत्पन्न होगा कि यह हाथी व घोड़ा मेरा बोझा उठा नहीं सकेंगे। इसलिए तुम बैलरूप होकर मुझे अपनी पीठ पर उठाओ तब मैं दैत्यों से लड़ूँगा। जब इन्द्र ने अपने स्वार्थ के लिए बैलरूप धरा तब राजा ने उस पर चढ़कर दैत्यों को युद्ध में जीत लिया। जब राजा की सहायता से इन्द्र ने अपना राज्य पाया तव पुरंजय फिर मर्त्यलोक में आकर अपना राज्य करने लगा। उसके वंश में सावस्त नाम का राजा महाप्रतापी हुआ उसने सावस्ती पुरी बसाई। उसका पोता राजा कुबलयाश्व ऐसा बलवान् उत्पन्न हुआ जिसने उतंग ऋषीश्वर की सहायता करके धुन्ध नामक दैत्य को मार डाला। उस दैत्य के मुख से ऐसी ज्वाला निकली कि उससे इक्कीस हजार पुत्र राजा कुबलयाश्व के भस्म हो गये। दृढ़हास आदि तीन बेटे उसके बचे। दृढ़हास का पुत्र निकुम्भ हुआ उसके वंश में युवनाश्व नाम का राजा ऐसा प्रतापी व बलवान् हुआ जिसके अधीन सातों द्वीपों के राजा रहते थे, पर वह सन्तान न होने से सदा उदास रहता था। एक दिन राजा ने ऋषीश्वरों से विनय किया कि महाराज! आप लोग कोई ऐसा उपाय करें जिसमें मेरे पुत्र हो। ऋषीश्वरों ने पुत्र होने के लिए राजा से यज्ञ कराकर पानी का एक कलशा मंत्र पढ़कर यज्ञशाला में इस इच्छा से रक्खा कि प्रातःकाल रानी को यह जल पिलावेंगे तो उसके पुत्र होगा। रात को राजा व ऋषीश्वर लोग उसी यज्ञशाला में सोये और परमेश्वर की इच्छा से राजा को तृषा लगी तो उसने धोखे से वह जल पी लिया। प्रातःकाल ऋषीश्वर लोग यह वृत्तान्त जानकर बोले—हे राजन्! तुम्हारे भाग्य और नारायणजी की इच्छा में किसी का वश नहीं है। तेरे पेट से एक बालक उत्पन्न होगा। राजा यह वचन सुनकर पहिले उदास हुआ, फिर परमेश्वर की इच्छा इसी तरह जानकर सन्तोष किया। जब राजा का पेट गर्भवती स्त्री के समान प्रतिदिन बढ़ने लगा और दश महीने बीते तब ऋषीश्वरों ने राजा की दाहिनी कोख चीरकर पेट से लड़का निकाल लिया और घाव सीकर हरिइच्छा से राजा को चंगा कर दिया। जब उस बालक ने रोकर दूध माँगा तब इन्द्र ने

अमृत भरा हुआ अपना अँगूठा उसके मुख में डालकर चुसाया। इन्द्र ने अँगूठा डालते ही समय उसे मान्धाता पुकारकर कहा था कि इसका पालन मैं करूँगा, इसलिए ऋषीश्वरों ने उसका नाम मान्धाता रक्खा। यह सातों द्वीपों का ऐसा प्रतापी व बलवान् राजा हुआ कि जिससे रावण आदि सब दैत्य व राक्षस डरते थे। उसने यज्ञ करके ब्राह्मणों को बहुत दान व दक्षिणा दी, इस कारण उसका तेज व बल अधिक हुआ। मान्धाता के मुचकुन्दादिक तीन पुत्र और पचास कन्याएँ हुईं। उसने अपनी पचासों पुत्री सौभरि ऋषीश्वर को ब्याह दीं। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—महाराज! मान्धाता ने पचास कन्याएँ एक ऋषीश्वर को क्यों ब्याह दिया था? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! सौभरि ऋषीश्वर यमुना के किनारे जल में बैठे तप करते थे। साठ हजार वर्ष तप करने के उपरान्त एक दिन ऋषीश्वर ने मछली को अपने बच्चों के साथ यमुना जल में क्रीड़ा करते देखा। तब वृद्ध होने पर भी उन्होंने मन में यह विचारा कि गृहस्थाश्रम बहुत अच्छा होता है। जब ऋषीश्वर को गृहस्थी करने की इच्छा हुई तब उन्होंने राजा मान्धाता के पास जाकर कहा कि हमको अपनी एक कन्या दो। राजा ने शाप के भय से यह उत्तर दिया कि महाराज! मेरे पचास पुत्री हैं, आप राजमन्दिर में जावें, जो कन्या आपको अंगीकार करे उसका ब्याह आपसे कर दूँ। यह वचन सुनकर सौभरि ऋषीश्वर ने विचारा कि मुझ वृद्ध मनुष्य को कोई राजकन्या क्यों अंगीकार करेगी, तरुण स्त्री वृद्ध मनुष्य को नहीं चाहती। ऐसा विचारकर ऋषीश्वर ने तपोबल से अपना स्वरूप आदि सुन्दर व तरुण बना लिया, जिसे देखकर अप्सराएँ भी मोहित हो जावें। जब वे अश्विनीकुमार के समान अपना रूप बनाकर राजमन्दिर में गये तो उनकी सुन्दरता देखते ही पचासों राजकन्याएँ लाज छोड़कर उन पर मोहित हो गईं। तब राजा मान्धाता ने विधिपूर्वक पचासों कन्या ऋषीश्वर को ब्याह दीं और ऋषीश्वर महाराज सबको अपने स्थान पर लाये। उन्होंने अपने योगबल से पचास रत्नजटित विमान बाग व तड़ागादिक सब वस्तुएँ बना दीं और पचास रूप धरकर एक-एक स्त्री से विलग-विलग विमानों

में भोग-विलास करने लगे। वे विमान ऋषीश्वर की इच्छानुसार उड़कर इन्द्रलोकादिक में चले जाते थे। उन विमानों की शोभा देखकर देवता, देवकन्याएँ और मान्धाता आदि ईर्षा संयुक्त उनकी बड़ाई करते थे। इसी तरह सुख व विलास करते हुए पचास हजार पुत्र हुए और उनका इतना वंश बढ़ा कि जिसकी कुछ गिनती नहीं हो सकती। उन्होंने बहुत दिन संसारी सुख भोग करके एक दिन मन में विचारा कि इतने दिन हमने सुख भोगा, तिस पर भी मन नहीं भरा। मैंने अज्ञान से हरिभजन व स्मरण छोड़ दिया और संसारी माया में फँसकर नष्ट हुआ। कदाचित् इसी तरह मायाजाल में फँसा हुआ मर गया तो मेरा परलोक बिगड़ जायगा, इसलिए फिर परमेश्वर का तप व भजन करना चाहिए। ऐसा विचारकर सौभरि ऋषीश्वर ने अपना मन संसारी माया से विरक्त कर लिया और पचासों स्त्रियों समेत वन में जाकर तप करने लगे। फिर योगाभ्यास के साथ अपना तनु त्याग दिया और पचासों स्त्रियाँ उनके संग सती होकर पति समेत सत्यलोक को चली गईं।

—:०:—

सातवाँ अध्याय।

राजा त्रिशंकु की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! मान्धाता के मरने के उपरांत अम्बरीष नाम का बड़ा बेटा उसकी गद्दी पर बैठा उसके वंश में हारीत नाम ऐसा प्रतापी राजा हुआ जिसने नागों की सहायता करके गन्धर्वों को मारा था। नागों ने बड़े हर्ष से अपनी बहिन उसको ब्याह कर यह वरदान दिया कि जो लोग तुम्हारे नाम का स्मरण करेंगे उनको कोई सर्प दुःख न देगा। हारीत के वंश में त्रिशंकु नाम राजा उत्पन्न हुआ। वशिष्ठ गुरु के पुत्रों ने उसे ऐसा शाप दिया कि वह चांडाल हो गया और फिर विश्वामित्र के वरदान से उसको स्वर्ग मिला। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे स्वामी? इसकी कथा विस्तारपूर्वक कहिए। शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! त्रिशंकु राजा एक दिन वशिष्ठ गुरु से बोला कि आप मुझे कोई ऐसा यज्ञ करावें कि जिसमें इसी शरीर से मैं स्वर्ग को चला जाऊँ। यह

सुनकर वशिष्ठजी ने कहा कि हमको ऐसा यज्ञ कराना नहीं आता। जब त्रिशंकु ने जाकर वशिष्ठ के बेटों से यही बात कही तब उन्होंने उसे शाप दिया कि तू गुरु का वचन झूठ समझकर फिर हमारे पास पूछने आया, इसलिए चांडाल हो जायगा। त्रिशंकु जब रात को सोकर प्रातःसमय उठा तो उसका शरीर काला हो गया, कपड़े नीले हो गये, इसलिए लोगों ने उसका छूना बन्द कर दिया। तब वह घबराकर विश्वामित्र ऋषीश्वर की शरण में जाकर बोला—महाराज! गुरु के बेटों ने मुझे शाप देकर चांडाल बना दिया मेरी इच्छा स्वर्ग में जाने की थी, सो पूरी नहीं हुई, इसलिए आपकी शरण में आया हूँ। जिस प्रकार मेरी कामना पूरी हो वैसा कीजिए। यह वचन सुनते ही विश्वामित्र हँसकर बोले—हे राजन्! शाप देने से तेरा, स्वरूप जो चांडाल के समान हो गया है वह किसी तरह बदल नहीं सकता, पर मैं तुझको इसी रूप से स्वर्ग में पहुँचा दूँगा। ऐसा कहकर विश्वामित्र ने सम्पूर्ण पृथ्वी के ऋषीश्वरों को अपने यहाँ बुलाया, किन्तु वशिष्ठ गुरु के सौ पुत्र नहीं आये, इसलिए विश्वामित्र ने उन लोगों को शाप देकर डोम बना दिया। फिर राजा त्रिशंकु से यज्ञ कराया। जब उसमें किसी देवता ने आहुति नहीं ली तब विश्वामित्र ने क्रोधित होकर अपने कमण्डलु के पानी से त्रिशंकु को स्नान कराके कहा कि तू मेरे तपोबल से स्वर्ग में चला जा। सो वह चांडाल होने पर भी विश्वामित्र के योगबल से स्वर्ग को चढ़ गया और इन्द्रासन पर जाकर थोड़ी देर बैठा। जब इन्द्र ने देखा कि चांडाल मनुष्य इन्द्रासन पर बैठा तब एक लात मारकर उसको गिरा दिया। देवतों ने त्रिशंकु से कहा कि तू चांडाल है, इसलिए शिर नीचे पैर ऊपर करके गिर। चांडाल का ठिकाना स्वर्ग में नहीं है। गिरते समय त्रिशंकु ने चिल्लाकर पुकारा—हे विश्वामित्र महाराज! मुझे इन्द्र ने लात मारकर इन्द्रासन से गिरा दिया, मेरी सहायता कीजिए। यह वचन सुनते ही विश्वामित्र ने त्रिशंकु से कहा—तू उसी जगह रह। जब ऋषीश्वर की आज्ञा से वह उसी स्थान पर ठहर गया और विश्वामित्र अपने योग बल से उसके रहने के लिए नवीन स्वर्ग तैयार करके दूसरे देवता बनाने

लगे तब देवतों ने घबराकर विश्वामित्र की शरण जाकर विनय किया—महाराज! दूसरे देवता बनाने से हम लोगों का अपमान होगा, नारायणजी की आज्ञा के बिना नई बात करना उचित नहीं है। यह वचन सुनकर विश्वामित्र बोले—मैं त्रिशंकु को स्वर्ग देने के लिए वचन हार चुका हूँ, इसलिए यह मेरा बनाया हुआ नया स्वर्ग उसके रहने के लिए स्थिर रहेगा, पर दूसरे देवतों की रचना न करूँगा। विश्वामित्र ने दूसरे देवता न बनाकर अपना बनाया हुआ स्वर्ग रहने दिया सो आज तक राजा त्रिशंकु उसी स्वर्ग में उलटे लटके हैं। उसके मुख से जो लार बहती है उसी की कर्मनाशा नदी प्रकट हुई, जिस नदी में पैर डालने से मनुष्य के सब पुण्य क्षीण हो जाते हैं और त्रिशंकु की छाया मगध-देश पर पड़ती है, इसलिए मगध को मरने के लिए अशुद्ध कहते हैं। त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चन्द्र नामक राजा बड़ा प्रतापी हुआ। उसने पुत्र होने के लिए वरुण देवता की मानता मानी थी कि मेरे बेटा हो तो उसी बालक का तुम्हें बलिदान चढ़ाऊँ। जब वरुण देवता की कृपा से रोहित नाम का बेटा हुआ तब राजा ने प्रेमवश उसे बारह वर्ष तक बलिदान नहीं दिया। जब वरुण देवता ने बलिदान देने के लिए अति हठ किया और उस बालक ने समझा कि घर रहने से एक दिन अवश्य बलिदान दिया जाऊँगा तब वह अपना प्राण बचाकर तीर्थयात्रा करने चला गया। वरुण ने बलिदान न पाने से क्रोधित होकर हरिश्चन्द्र के जलंधर का रोग उत्पन्न किया। जब राजा उस रोग से मरण तुल्य हो गया तब रोहित ने यह वृत्तान्त सुना कि मेरे पिता वरुण देवता के क्रोध से मरे जा रहे हैं तब उसने कहा कि मेरे ऐसे जीने को धिक्कार है, जो मेरा पिता मेरे वास्ते मारा जावे। ऐसा विचारकर जब वह बलिदान होने के लिए अपने घर आने लगा तब राह में उसने सुनःसेफ विश्वामित्र के भानजे को देखा। रोहित ने सुनःसेफ के माता-पिता से कहा कि सौ गौ हमसे लेकर एक पुत्र हमको दे दो। यह वचन सुनकर सुनःसेफ का पिता अजयकीर्ति बोला कि बड़ा बेटा मुझे बहुत प्यारा है उसे न दूँगा और उसकी स्त्री बोली कि मैं छोटे पुत्र को बहुत प्यार करती

हूँ उसे न बेचूँगी। यह वचन अपने माता-पिता का सुनकर सुनःसेफ मँझले पुत्र ने कहा कि मेरा मोह माता-पिता नहीं रखते, इसलिए मैं रोहित के हाथ बिका जाता हूँ। जब यह वचन सुनकर अजयकीर्ति और उसकी स्त्री चुप हो रही तब रोहित ने सौ गौ विधिपूर्वक उन्हें देकर सुनःसेफ को मोल ले लिया और उसे अपने बदले वरुण देवता का बलिदान देने के लिए साथ लेकर घर को चला। राह में विश्वामित्र ऋषीश्वर मिले। उन्होंने अपने भानजे को देखकर अपने योगबल से जाना कि यह बलिदान होने के लिए जाता है तब उसे वेद की ऋचा बतलाकर कहा कि तू इसे नित्य पढ़ा कर, तेरी मृत्यु न होगी। ऋषीश्वर की आज्ञा से उसने वह ऋचा पढ़ना आरम्भ किया। जब राजकुमार सुनःसेफ को साथ लिए हुए राजमंदिर पर पहुँचा तब हरिश्चन्द्र अपने बेटे को देखकर अति प्रसन्न हुआ और उसने विश्वामित्रादिक ऋषीश्वरों को बुलाकर वरुण देवता का बलिदान देने के लिए यज्ञ आरम्भ किया। उसने मन में विचारा कि राजकुमार के बदले सुनःसेफ को बलिदान देकर रोहित को बचा लूँगा और वरुण देवता अपना बलिदान लेकर मुझे भी आराम कर देंगे। जब यज्ञ करते समय सुनःसेफ को बलिदान देने का समय आया तब विश्वामित्र ने बहुत स्तुति करके वरुण देवता को प्रसन्न किया और अपने भानजे को बलिदान होने से बचा लिया। वरुण ने राजा हरिश्चन्द्र को वरदान देकर उसका रोग छुड़ा दिया। जब रोहित और सुनःसेफ दोनों के प्राण बचे और वरुण देवता प्रसन्न हो गये तब विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को ऐसा ज्ञान उपदेश किया, जिसके प्रताप से वह मुक्त हुआ और रोहित उसकी राजगद्दी पर बैठकर धर्मपूर्वक राज्य करने लगा।

—:०:—

आठवाँ अध्याय।

राजा सगर की कथा।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! रोहित के वंश में राजा चम्पक हुआ, जिसने चम्पापुरी बसाई और चम्पक के वंश में आहुक नाम राजा

बड़ा प्रतापी हुआ। उसने पुत्र होने के वास्ते अपने हज़ार विवाह किये, पर हरिइच्छा से किसी रानी के सन्तान नहीं हुई। इसलिए राजा आहुक उदास रहता था। एक दिन नारद मुनि ने राजमन्दिर पर आकर पूछा—हे राजन्! तुम उदास क्यों दिखलाई देते हो? आहुक ने हाथ जोड़कर विनय किया कि महाराज, मैं आपको परम भक्त समझकर अपना दुःख कहता हूँ। हजार विवाह करने पर भी मेरे पुत्र नहीं हुआ, यही चिन्ता मुझे दिनरात रहती है। यह वचन सुनते ही नारदजी ने दयालु होकर आम का एक फल जो हाथ में लिये थे राजा को देकर कहा कि जिस रानी को चाहो यह आम खिला दो, परमेश्वर की दया से बालक होगा। राजा ने वह फल लेकर अपनी बड़ी स्त्री को, जिसकी उस दिन बारी थी, खिला दिया। रानी के उसी दिन गर्भ रह गया, पर बालक उत्पन्न नहीं हुआ था कि उन्हीं दिनों में दूसरे राजों ने राजा आहुक को युद्ध में जीतकर उसका राज्य अपने अधीन कर लिया। तब वह अपनी रानियों समेत भागकर वन में चला गया और ऋषीश्वरों के स्थान के निकट झोपड़ी बनाकर रहने लगा। राजा बड़ी रानी के गर्भवती होने से उस पर अति प्रीति रखता था, आठों पहर उसी के पास रहता था। इसलिए दूसरी रानियाँ सवतियाडाह से आपस में कहने लगीं कि देखो, अभी बड़ी रानी के पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ तिस पर भी राजा रात-दिन उसी के पास रहते हैं, हमारी ओर आँख उठाकर कभी नहीं देखते, बालक होने पर न मालूम हम लोगों की क्या दशा होगी। इसलिए रानी को विष देना चाहिए, जिसमें वह पेट के बालक समेत मर जावे। जब उन्होंने यह सम्मति करके किसी वस्तु में विष मिलाकर गर्भवती रानी को खिला दिया और वह विष की ज्वाला से व्याकुल हुई तब उसने अवरव ऋषीश्वर के पास, जो उसी जगह रहते थे, जाकर विनय किया—महाराज, मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ, मेरे प्राण बचाइए। यह दीन वचन सुनकर ऋषीश्वर बोले—हे रानी, तू मत डर, परमेश्वर की कृपा से नहीं मरेगी और जो बालक तेरे पेट में है वह भी जीता बचकर विषसमेत उत्पन्न होगा। यह आशीर्वाद सुनकर रानी अति प्रसन्न हुई

और ऋषीश्वर की दया व हरिइच्छा से विष ने अपना बल नहीं किया। गर्भ भी ज्यों का त्यों बना रहा। जब कुछ काल बीते राजा आहुक अपमृत्यु से मर गया और उसकी सब स्त्रियाँ सती होने लगीं तब अवरव ऋषीश्वर ने गर्भवती रानी से कहा कि तू मत सती हो, तुझसे एक बालक बड़ा बलवान् व तेजस्वी उत्पन्न होकर चक्रवर्ती राज्य करेगा। यह सुनकर वह रानी नहीं सती हुई और सब रानियाँ राजा के साथ जलकर सत्यलोक को चली गईं। गर्भवती रानी उसी जगह कुटी बनाकर रही। दशवें महीने उसके एक बालक अति सुन्दर व तेजस्वी उत्पन्न हुआ और उस बालक के साथ वह विष भी पेट से निकला। संस्कृत में विष को गर कहते हैं, इसलिए अवरब ऋषीश्वर ने उस बालक का नाम सगर रक्खा। जब वह बालक बड़ा हुआ तब उसने सेना बटोरी और हरिइच्छा व ऋषीश्वर के आशीर्वाद से दूसरे राजों को जीतकर अपने पिता की राजगद्दी छीन ली और राजसिंहासन पर बैठकर क्षर्म के साथ प्रजा का पालन करने लगा। राजा सगर ऐसा प्रतापी हुआ कि तालजंघ और बव आदि म्लेच्छ राजों को अपनी भुजाओं के बल से युद्ध में जीतकर मार डाला। सातों द्वीपों के राजों को अपने अधीन करके दो विवाह किये। बड़ी रानी केशिनी से असमंजस नाम का एक पुत्र हुआ और सुघृती नाम की दूसरी स्त्री से साठ हजार बेटे उत्पन्न हुए। असमंजस के अंशुमान नाम का एक पुत्र बड़ा प्रतापी व अति सुन्दर उत्पन्न हुआ। असमंजस पूर्वजन्म का योगी था, इस कारण प्रजा को दुःख देना आरम्भ किया। इसलिए राजा सगर ने प्रजा के कहने से असमंजस को वनवास दे दिया और अपने पोते अंशुमान को जो धर्मात्मा था, पास रक्खा। कुछ दिनों के उपरांत राजा सगर ने सौ अश्वमेध यज्ञ करने का विचार करके निन्नानबे यज्ञ अच्छी तरह सम्पूर्ण किया, जब सौवाँ यज्ञ आरम्भ करके शास्त्रानुसार श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा और साठों हजार बेटों को उसकी रक्षा करने के वास्ते संग कर दिया तब इन्द्र ने मन में विचारा कि मनुष्य सौ यज्ञ करने से इन्द्र होता है, सो राजा सगर सौवाँ यज्ञ सम्पूर्ण करके मेरा इन्द्रासन छीन लेगा। मुझे ऐसी सामर्थ्य नहीं है, जो

राजा से सम्मुख लड़कर श्यामकर्ण घोड़ा छीन लाऊँ और उसका यज्ञ विध्वंस करूँ, इसलिए छल करके श्यामकर्ण घोड़ा लेना चाहिए। ऐसा विचारकर इन्द्र वह घोड़ा किसी छल से चुरा ले गया और जहाँ कपिलदेव मुनि बैठे तप करते थे, उनके पीछे बाँध दिया और आप इन्द्रलोक को चला गया। जब राजकुमारों ने अपना घोड़ा नहीं देखा तब उन्होंने चौदहों लोकों में जाकर उस घोड़ा को बहुत ढूँढ़ा, पर कहीं पता न चला। जब खोजने से निराश हुए तब राजा सगर के पास जाकर सब वृत्तान्त कहकर विनय किया कि महाराज! आप आज्ञा दें तो पृथ्वी खोदकर घोड़ा ढूँढ़ें। राजा बोले—बहुत अच्छा, खोजना चाहिए। उन्होंने अपने पिता की आज्ञानुसार घोड़ा ढूँढ़ने के लिए इतनी पृथ्वी खोदी कि छोटे-छोटे सात समुद्र भरतखंड में प्रकट हुए। जब वे लोग घोड़ा खोजते हुए कपिलदेव मुनि के स्थान पर गये तो क्या देखा कि कपिलदेव बैठे तप करते हैं और घोड़ा उनके पीछे बँधा है। तब साठों हजार राजकुमार चिल्लाकर बोले—कि हमने अपना चोर पकड़ा। जब उनके चिल्लाने से कपिलदेव मुनि का ध्यान खुल गया तब उन्होंने आँख उठाकर क्रोध से उन लोगों की ओर देखा तो उसी जगह साठों हजार राजकुमार जलकर भस्म हो गये। जब राजा सगर ने बहुत दिन तक अपने बेटों का कुछ समाचार नहीं पाया तब अंशुमान को बुलाकर कहा कि तू जाकर अपने चाचों व घोड़े की सुधि ले आ। यह वचन सुनते ही अंशुमान घर से निकला और उनका पता लेता हुआ जहाँ पर वे जल गये थे जा पहुँचा। जब उसने वहाँ कपिलदेव मुनि को परमेश्वर के ध्यान में बैठे देखा और दण्डवत् व परिक्रमा करके उनकी स्तुति की तब कपिलदेव मुनि प्रसन्न होकर बोले—हे राजकुमार! तू अपना घोड़ा ले जा, पर तेरे चाचा लोग जो मेरे क्रोध से जलकर मर गये हैं वे अभी मुक्त नहीं हो सकते। जब गंगाजी आकर अपने जल से उनकी हड्डी व राख बहावेंगी तब उनका उद्धार होगा। कपिलदेव मुनि का यह बचन सुनकर अंशुमान उनको दण्डवत् करके श्यामकर्ण घोड़ा वहाँ से लेकर राजा सगर के पास आया और उनसे सब वृत्तान्त कह दिया। राजा सगर ने अपने बेटों का मरना परमेश्वर की

इच्छा समझकर सन्तोष किया और सौवाँ यज्ञ सम्पूर्ण करके व ऋषीश्वरों से ज्ञान सुनकर संसारी माया छोड़ दिया। अंशुमान अपने पोते को राजगद्दी पर बैठाकर वन में चला गया और हरिचरणों में ध्यान लगाकर मुक्त हुआ।

——:०:——

नवाँ अध्याय।

मृत्युलोक में गंगाजी के आने की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! अंशुमान ने कुछ दिनों तक धर्म के साथ प्रजा का पालन करके दिलीप नामक अपने बेटे को राजगद्दी दे दी और आप वन में जाकर गंगाजी को लाने के लिए तप करते-करते मर गया, पर गंगाजी प्रसन्न नहीं हुईं। कुछ दिनों के उपरान्त राजा दिलीप भी गंगाजी को लाने के वास्ते तप करने लगा और उसी इच्छा में उसने भी अपना तनु त्याग दिया, पर गंगाजी ने दर्शन नहीं दिया। राजा दिलीप का बेटा भगीरथ उस समय बालक था। जब उसने खेलते समय अपने साथी बालकों के मुख से सुना कि मेरे बाप व दादा गंगाजी को लाने के वास्ते तप करते-करते मर गये, तिस पर भी वह नहीं आईं, तब भगीरथ ने कहा कि प्रथम मैं गंगाजी को लाकर पीछे राजगद्दी पर बैठूँगा। यह बात मन में ठानकर वह भी वन में चला गया और प्रेमपूर्वक हरिचरणों का ध्यान करने लगा। तब गंगाजी ने प्रसन्न होकर स्त्रीरूप से भगीरथ को दर्शन दिया और कहा कि तू क्या चाहता है? भगीरथ ने गंगाजी को देखकर दंडवत्, परिक्रमा व स्तुति करके हाथ जोड़कर विनय किया—हे माता! मेरे पुरुषा लोग कपिलदेव मुनि के शाप से जलकर राख हो गये हैं, इस वास्ते चाहता हूँ कि तुम मृत्युलोक में चलकर उस राख को अपनी लहर से बहावो तब वे लोग कृतार्थ होंगे। यह बात सुनकर गंगाजी बोलीं—हे राजकुमार, मुझे पृथ्वी पर आने में दो बातों का संदेह है, एक तो आकाश से गिरते समय पृथ्वी मेरा भार न सह सकेगी, ऐसा ही कोई प्रतापी बलवान् हो जो मेरे जल का वेग अपने शरीर में ले सके, दूसरे पापी व अधर्मी लोग मुझमें स्नान करने

से मुक्ति पाकर वैकुण्ठ जावेंगे, उनके पाप का अंश मुझे पहुँचेगा। इन दोनों बातों का उपाय करो तो आ सकती हूँ। यह सुनकर भगीरथ बोले—हे जगतारिणी! मैं शिवजी से विनय करता हूँ कि वे तुमको अपने शिर पर लेंगे और हरिभक्त, तपस्वी, मुनि, महात्मा, ऋषीश्वरों के स्नान करने से पापी व अधर्मी लोगों के नहाने का पाप तुमको नहीं लगेगा। यह बात मानकर गंगाजी वहाँ से अन्तर्धान हो गईं। भगीरथ महादेवजी के ध्यान में लीन हुआ। जब शिवशंकर प्रसन्न हुए और भगीरथ को दर्शन देकर बोले कि तू क्या चाहता है तब भगीरथ ने दण्डवत् व परिक्रमा करके विनय किया—हे महाप्रभु! मैंने अपने पुरुषों को तारने के लिए गंगाजी से मृत्युलोक में आने को विनय किया, सो गंगाजी ने कहा कि कोई मुझे अपने ऊपर लेकर मेरे जल का वेग उठावे तो मैं आऊँ। इसलिए चाहता हूँ कि आप पहिले गंगाजी को अपने मस्तक पर लेवें, तब उनका वेग पृथ्वी सह सकेगी। महादेवजी ने प्रसन्न होकर भगीरथ की विनती मान ली। जब गंगाजी का जल आकाश से गिरा और शिवजी ने अपने शिर पर लिया तब कुछ काल गंगाजी शिवशंकर की जटा में घूमती रहीं, पृथ्वी पर नहीं गिरीं। जब भगीरथ ने फिर शिवजी की स्तुति की तब महादेवजी ने भगीरथ को एक रथ देकर कहा कि तू इस पर बैठकर गंगाजी के आगे-आगे जाकर अपने पुरुषों की राह दिखला दे। यह कहकर शिवशंकर ने अपनी जटा निचोड़कर गंगाजी को बाहर निकाला और उसी रथ पर भगीरथ चढ़ा, जहाँ उसके पुरुषों की राख पड़ी थी वहाँ गंगाजी को लिवा लाया। जब गंगाजी उस राख पर होकर बहीं तब उसके सब पुरुषा देवतारूप होकर विमान पर बैठकर स्वर्ग को चले गये। भगीरथ बड़े हर्ष से राजमन्दिर पर आया और ब्राह्मण व कंगालों को बहुत-सा दान व दक्षिणा देकर राजगद्दी पर बैठा। उसने बहुत काल तक धर्मपूर्वक राज किया। उसके वंश में राजा ऋतुपर्ण बड़ा प्रतापी राजा नल का मित्र हुआ। जिसने राजा नल से घोड़े पर चढ़ना सीखा और उसने उसे जुआ खेलना सिखाया था। ऋतुपर्ण का पुत्र सुदास नामक बड़ा प्रतापी राजा एक दिन वन में अहेर

खेलने गया और वहाँ हिरण्यरूप राक्षस को मार डाला। उस राक्षस के भाई ने राजा से बदला लेने की इच्छा की, पर वह राजा से सम्मुख लड़ने की सामर्थ्य नहीं रखता था, इसलिए वह ब्राह्मणरूप से राजा के पास जाकर बोला कि मुझे रसोई बनानी अच्छी आती है। यह वचन सुनकर राजा ने उसे रसोई बनाने के वास्ते नौकर रख लिया। वह ब्राह्मण-रूप राक्षस वहाँ रहने लगा। एक दिन राजा सुदास ने वशिष्ठ ऋषीश्वर को नेवता देकर अनेक प्रकार का व्यंजन व मांस बनवाया तो उस राक्षस ने मनुष्य का मांस बनाकर सब पदार्थ समेत वशिष्ठजी के सम्मुख धर दिया। वशिष्ठ गुरु ने अपने योगबल से वह मांस पहिचान लिया और राजा पर क्रोध करके कहा कि हे राजन्! तू मुझे राक्षस समझकर मनुष्य का मांस मेरे खाने के लिए लाया है, इसलिए मैं नारायणजी से चाहता हूँ कि तू बारह वर्ष तक राक्षस हो जा और मनुष्य का मांस खाया कर। ऐसा शाप देकर वशिष्ठजी उठ खड़े हुए। राजा भी अपने तपोबल से शाप देने की सामर्थ्य रखता था। उसने कहा कि मेरी जानकारी में किसी ने मनुष्य का मांस वशिष्ठ ऋषीश्वर के खाने के लिए नहीं रक्खा था, मुझे वृथा ऋषीश्वर ने शाप दिया है, इसलिए मैं भी उनको शाप देता हूँ। ऐसा कहकर जब राजा ने शाप देने के लिए हाथ में जल उठाया तब रानी ने राजा का हाथ पकड़कर कहा—आपको ब्राह्मण व गुरु से बराबरी करना न चाहिए। वशिष्ठजी ने क्रोधवश शाप दिया तो अच्छा किया, फिर दयालु होकर वरदान देंगे, तुम इनको शाप मत दो। राजा ने रानी के समझाने से वशिष्ठजी को शाप देना उचित न जानकर वह जल अपने पैर पर डाल दिया सो राजा के दोनों पैर काले हो गये। उस दिन से राजा सुदास को लोग कल्माषपाद कहने लगे। उसका ज्ञान राक्षसों के समान हो गया, इसलिए वह मनुष्यों को पकड़कर उनका मांस खाने लगा, पर स्त्री को नहीं खाता था। एक दिन राजा ने वन में किसी ऋषीश्वर को स्त्री समेत देखकर उसे खाने की इच्छा की, तब वह स्त्री विनती करके बोली—हे राजन्! अभी तक मैंने अपने स्वामी से इच्छापूर्वक संसारी सुख नहीं भोगा, मुझे सन्तान

होने की इच्छा बनी है, इसलिए तू मेरे पति को मत खा। कदाचित् तू न माने तो मुझे भी खा ले। जब राजा ने अपने राक्षसी धर्म से उसकी विनती न मानकर ऋषीश्वर को खा लिया तब वह ब्राह्मणी अपने स्वामी के हाड़ बटोरकर सती हो गई और जलते समय उसने राजा को यह शाप दिया कि जब तू स्त्रीप्रसंग करेगा तब मर जावेगा। जब शाप के बारह वर्ष बीत गये और राजा का ज्ञान शुद्ध हुआ तब वह अपना राज्य करने लगा। एक दिन राजा ने रानी से प्रसंग की इच्छा की, पर रानी शाप का समाचार सुन चुकी थी, इसलिए उसने राजा को बहुत समझा-कर भोग नहीं करने दिया। फिर एक दिन वशिष्ठ गुरु ने अपनी इच्छा से राजमन्दिर पर आकर राजा व रानी को ऐसा वरदान दिया कि विना भोग किये तुम्हारे पुत्र होगा। यह आशीर्वाद देकर वशिष्ठ ऋषीश्वर अपने स्थान पर चले गये। उनकी कृपा से बिना प्रसंग किये उसी दिन रानी के गर्भ रह गया। सातवें वर्ष अश्मक नाम का पुत्र हुआ। उससे मोलक नाम का बालक हुआ, वह परशुरामजी के क्रोध से बचा, सब क्षत्रियों की जड़ वही है। उसका बेटा राजा खट्वांग ऐसा प्रतापी व धर्मात्मा हुआ, जिसने देवतों की सहायता की और दैत्यों को युद्ध में जीतकर मुक्त हुआ। उसकी कथा विस्तारपूर्वक दूसरे स्कन्ध में लिखी है।

—०—

दसवाँ अध्याय।

रामावतार की कथा।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! खट्वांग के वंश में राजा दशरथ बड़े प्रतापी व तेजस्वी हुए, जिन्होंने अयोध्यापुरी में धर्मपूर्वक राज्य किया। उनके यहाँ परब्रह्म का अवतार रामचन्द्रजी कौशल्या रानी से, शेषनाग का अवतार लक्ष्मणजी और शत्रुघ्न सुमित्रा स्त्री से तथा भरत कैकेयी रानी से उत्पन्न हुए। उन्हीं रघुनाथजी का चरित्र तुमने ऋषीश्वरों के मुख से सुना होगा, हम उनकी कथा संक्षेप से कहते हैं, सुनो। जिन्होंने बालपन में मारीच व सुबाहु राक्षस को मारकर विश्वा-मित्र ऋषीश्वर के यज्ञ की रक्षा की, उन्हीं त्रिलोकीनाथ ने अपने भाई

लक्ष्मणजी समेत विश्वामित्र गुरु के साथ जनकपुर में जाकर महादेवजी का जो धनुष किसी राजा से नहीं उठता था उसे ऊख के समान तोड़कर परशुरामजी का गर्व मिटाया और सीता को व्याहकर अयोध्या में लाये। फिर अपने पिता की आज्ञानुसार लक्ष्मण व जानकी समेत चौदह वर्ष वनवास किया। जब पंचवटी में रावण की बहिन शूर्पणखा की नाक व कान काट लिया तब खर, दूषण और त्रिशिरा शूर्पणखा के भाई चौदह हजार राक्षस समेत रामचन्द्रजी से लड़ने आये। उनको सेना समेत मार डाला। जब रावण ने शूर्पणखा के नाक व कान काटने और खर-दूषण आदि अपने भाइयों के मारे जाने का समाचार सुना तब वह योगी का वेष धरकर सीताजी को हर ले गया। मार्ग में हरिभक्त जटायु गृध्र ने रावण को रोका तो उसने जटायु से बड़ा युद्ध करके अग्निबाण मारकर उसे गिरा दिया और सीताजी को समुद्र पार ले जाकर अशोक-वाटिका में रक्खा। जब रामचन्द्रजी मारीच राक्षस को, जो मायारूपी हरिण बना था, मारकर अपने स्थान पर आये और जानकीजी को नहीं देखा तब नरदेह धारण करने से अति विलाप करते हुए दोनों भाई सीताजी को खोजते चले। जब राह में जटायु से सुना कि लंकापति रावण जानकी को हर ले गया है तब रघुनाथजी ने गृध्र को परम भक्त जानकर उसका संस्कार अपने हाथ से किया। फिर आगे जाकर कबन्ध राक्षस को मारा और कबन्ध के मुख से सुग्रीव बानर का समाचार सुनकर जानकीजी को ढूँढ़ने के वास्ते उसके साथ मित्रता की। बालि वानर को मारकर किष्किंधा का राज्य सुग्रीव को दिया और उसकी आज्ञानुसार हनुमान् आदिक करोड़ों वानर व भालु सीता के खोजने के वास्ते चारों दिशाओं में गये। हनुमान्जी ने लंका में जाकर उस पुरी को जला दिया और वहाँ से आकर जानकीजी के कुशलानन्द का समाचार रघुनाथजी को सुनाया। तब रामचन्द्रजी ने भालू व वानरों की बड़ी भारी सेना साथ लेकर लंका पर चढ़ाई की और समुद्र के किनारे पहुँचकर नल व नील वानरों से उसमें सेतु बँधाया। जब रावण के भाई विभीषण ने वहाँ आकर रघुनाथजी का दर्शन किया तब रामचन्द्रजी ने उसी जगह लंका के राज्य का तिलक

विभीषण के लगाया। उसी पुल की राह सेना समेत पार उतरकर लंका को घेर लिया। लक्ष्मणजी, सुग्रीव, हनुमान्, अंगद, नल, नील और जामवन्त भालू आदि सेनापतियों को साथ लेकर राक्षसों से युद्ध करके उन्हें मार डाला। कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत जब मारा गया तब रावण ने आप चढ़ाई करके रामचन्द्रजी से बड़ा युद्ध किया। रघुनाथजी ने अग्निबाण रावण के हृदय में मारकर उसे मुक्ति पद दिया। जब विभीषण रामचन्द्र की आज्ञा से रावण का दाहकर्मादिक कर चुका तब उसे रघुनाथजी ने लंका का राज्य दिया। विभीषण राजसिंहासन पर बैठा। वह सीताजी को जड़ाऊ सुखपाल पर बैठाकर रामचन्द्रजी के पास ले चला, उस समय भालू व वानरों की यह इच्छा हुई कि हम लोग जानकीजी का दर्शन करके नेत्रों को सुफल करते तो अच्छा होता। रघुनाथजी अन्तर्यामी ने विभीषण को आज्ञा दी कि जानकीजी से कह दो कि पैदल हमारे पास आवें। यह वचन सुनकर सीताजी सुखपाल से उतरकर रघुनाथजी के पास आईं। रीछों व वानरों ने उनका दर्शन पाकर नेत्रों को सुख दिया। लक्ष्मणजी सीता माता के चरणों पर गिरे, उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर रामचन्द्रजी विभीषण व हनुमान् आदि सेनापतियों और सीताजी को अपने साथ पुष्पक विमान में बैठाकर लंका से चले। जब प्रयागराज में पहुँचे तो वहाँ से हनुमान्जी को यह कहकर अयोध्यापुरी में भेजा कि तुम पहिले से जाकर भरतजी को हमारे आने का समाचार दो। एक दिन अवधि का रह गया है, यदि मैं अपनी अवधि पर नहीं पहुँचूँगा तो भरतजी अपना तनु त्याग देंगे। यह वचन सुनकर हनुमान्जी ने अयोध्या में जाकर रघुनाथजी का आगमन भरतजी से कहा। यह समाचार सुनकर भरतजी को बड़ा हर्ष हुआ और हनुमान्जी को आशीर्वाद देकर वशिष्ठ गुरु, पुरवासी और सेनासमेत रामचन्द्रजी को लेने के लिए गये। रघुनाथजी पहिले वशिष्ठ गुरु के चरणों पर गिरे, फिर उठकर भरतजी व शत्रुघ्न को अपने गले लगाया, और वहाँ से अयोध्यावासी व अपने साथियों को अनेक वाहनों पर बैठाकर अयोध्यापुरी में पहुँचे। रामचन्द्र व लक्ष्मणजी ने सीता समेत राजमन्दिर में जाकर अपनी माता को दण्डवत् किया

और वशिष्ठजी की आज्ञा से शुभ मुहूर्त में राजसिंहासन पर बैठकर धर्म-पूर्वक राज्य करने लगे। उस समय त्रेतायुग था, पर रामचन्द्रजी के धर्म-व प्रताप से उनका राज्य सतयुग के समान हो गया।

ग्यारहवाँ अध्याय।

सीताजी को वाल्मीकिजी के स्थान पर भेजने की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! रामचन्द्रजी ने राजगद्दी पर बैठकर संसारी जीवों को धर्ममार्ग दिखलाने के वास्ते अनेक यज्ञ किये और सब द्रव्य व राज्यादिक ब्राह्मणों व ऋषीश्वरों को संकल्प कर दिया। तब नारदजी आदिक ऋषीश्वरों व ब्राह्मणों ने उनको आशीर्वाद देकर कहा—महाराज! आप त्रिलोकीनाथ हैं, अपने स्वरूप का दर्शन जो हम लोगों को दिया है उसी में हम लोग मग्न हैं, यह राज्य लेकर क्या करेंगे। हम लोगों को केवल गोदान चाहिए, जिससे अग्निहोत्रादिक किया करें। रघुनाथजी ने ब्राह्मणों को गो आदिक विधिपूर्वक दान देकर अपना देश ब्राह्मणों से फिर ले लिया और राज्य करने लगे। सातों द्वीपों के राजा और सब देवता व दैत्यादिक उनकी आज्ञा मानते थे। प्रजा आनन्दपूर्वक हरिभजन में लीन रहती थी। एक दिन रात्रि को रघुनाथजी वेष बदलकर अपनी कीर्ति की परीक्षा लेने के वास्ते अयोध्यापुरी में निकले। सो एक धोबी ने अपनी स्त्री से लड़ते हुए यह कहा कि तू मुझसे पूछे बिना एक रात्रि कहीं बाहर रह आई है, इसलिए तू अब मेरे घर रहने योग्य नहीं है। तुझे अपने यहाँ न रक्खूँगा, जहाँ तेरी इच्छा हो चली जा। मैं राजा रामचन्द्रजी नहीं हूँ, जो उनकी स्त्री सीता वर्ष दिन तक रावण के यहाँ रहीं, फिर उन्हें अपने घर में लाकर रख लिया। रामचन्द्रजी यह लोक-निन्दा अपने कान से सुनकर राजमंदिर पर आये और उसी चिन्ता में रात्रि भर निद्रा न आई। प्रातःकाल शत्रुघ्न से कहा कि सीता को वन में ले जाकर छोड़ आवो। शत्रुघ्न यह वचन सुनकर व्याकुल हो गये, उन्होंने उनकी आज्ञा न मानी। तब यही बात रघुनाथजी ने भरत से कही। जब उन्होंने भी त्रिलोकीनाथ का यह वचन न माना तब रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण

को बुलाकर कहा कि तुम हमारी आज्ञा मानकर सीताजी से कहो कि तुमने ऋषीश्वरों की स्त्रियों व गंगाजी की पूजा करने के वास्ते मानता मानी थी, सो चलकर उनकी पूजा करना चाहिए। जब वह तुम्हारे साथ जावें तब तुम उनको बाल्मीकि ऋषीश्वर के स्थान के निकट छोड़कर चले आवो। जानकीजी को घर में रखने से प्रजालोग मेरी निन्दा करते हैं। हमारा कहना न मानोगे तो मैं मर जाऊँगा। जब लक्ष्मणजी ने ऐसा वचन सुना और उत्तर देना उचित न जाना तब सीताजी से जाकर कहा कि तुम हमारे साथ चलकर गंगाजी व ऋषिपत्नियों की पूजा, जो मानता मानी थी, कर आवो। यह वचन सुनकर सीताजी अति प्रसन्न हुईं। और अनेक प्रकार के भूषण व वस्त्र ऋषिपत्नियों के वास्ते लेकर लक्ष्मणजी के साथ रथ पर चलीं। उस समय बहुत अशकुन हुए, पर जगन्माता ने कुछ विचार नहीं किया। जब लक्ष्मणजी गंगापार उतरे और बाल्मीकि ऋषीश्वर के स्थान के निकट पहुँचकर रुदन करने लगे तब जानकीजी ने पूछा—हे लक्ष्मण! तुम्हारे भाई अच्छी तरह हैं, तुम क्यों रोते हो? यह वचन सुनकर लक्ष्मणजी ने अति व्याकुल होकर सब वृत्तान्त कह दिया और हाथ जोड़कर विनय किया कि हे माता! मैं तुमको यहाँ वन में छोड़ने आया हूँ। यह बात सुनते ही जगन्माता अचेत होकर गिर पड़ीं और अति विलाप करके लक्ष्मणजी से बोलीं—बहुत अच्छा जो आज्ञा रघुनाथजी की हो सो तुम करो। मेरी ओर से रामचन्द्रजी को हाथ जोड़कर कह देना कि मुझसे जो अपराध हुआ हो क्षमा करें, क्योंकि मैं अनेक जन्म की उनकी दासी हूँ। लक्ष्मणजी गर्भवती जानकी माता को रोते हुए बाल्मीकि ऋषीश्वर के स्थान पर छोड़कर चले आये। ऋषीश्वर ने उनको अपनी कन्या के समान रक्खा। कुछ दिन बीतने पर सीताजी के लव व कुश दो बालक अति सुन्दर, तेजस्वी, प्रतापी और बलवान् उत्पन्न हुए। जब अश्वमेध यज्ञ करते समय रघुनाथजी ने फिर लक्ष्मण को सीता के बुलाने के वास्ते भेजा तब जानकीजी ने लव व कुश दोनों पुत्रों को लक्ष्मणजी को सौंप दिया और अयोध्यापुरी में जाकर उसी जगह पृथ्वी में समा गईं। यह देखकर रघुनाथजी ने बड़ा विलाप किया। सीता को त्यागने के उपरान्त

रामचन्द्रजी ब्रह्मचर्य रहकर यज्ञादिक किया करते थे। ग्यारह हजार वर्ष तक उन्होंने अयोध्यापुरी का राज्य भोग कर प्रजा को बड़ा सुख दिया। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के चित्रकेतु व सुबाहु आदि दो-दो पुत्र उत्पन्न हुए। रघुनाथजी ने उत्तर का देश भरतजी को, पश्चिम का देश शत्रुघ्नजी को और पूर्व का देश लक्ष्मणजी को बाँट दिया। अयोध्यावासी सब स्त्री-पुरुष रघुनाथजी का दर्शन पाकर जैसा प्रसन्न रहते थे वैसा सुख इन्द्रपुरी में किसी को नहीं मिलता। उनके राज्य में पशु-पक्षी आदि कोई जीव दुःखी नहीं था। इस तरह धर्मपूर्वक अयोध्यापुरी का राज्य किया और अन्त समय अपने पुत्र को अयोध्यापुरी का राज्य देकर वैकुंठ को पधारे। अयोध्यावासी सब जीवों को उसी शरीर से विमान पर बैठाकर अपने साथ ले गये। उन रामचन्द्रजी का नाम लेने से करोड़ों जीव भवसागर पार उतर जाते हैं। उनकी विस्तारपूर्वक कथा रामायण में लिखी है। रामचन्द्रजी के निकट समुद्र में सेतु बाँधना और रावण आदि राक्षसों का वध करना कुछ कठिन नहीं था, वे अपनी भृकुटी फेरने से एक क्षण में चौदहों लोकों का नाश कर सकते थे, पर यह सब लीला व चरित्र संसारी जीवों को केवल गृहस्थाश्रम मार्ग दिखलाने के वास्ते किया था। देखो, जब ऐसे ईश्वर को गृहस्थी करने में स्त्री के कारण दुःख हुआ, तो संसार में स्त्री व गृहस्थी से सबको दुःख प्राप्त होगा।

बारहवाँ अध्याय।

कुश के वंश की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! राजा कुश के वंश में अतिथि, पुण्डरीक और सुदास आदि कई पीढ़ी के उपरान्त मरु नामक राजा बड़ा प्रतापी हुआ। वह मरु आज तक उत्तर दिशा में कलापग्राम में बैठा हुआ तप करता है। कलियुग के अन्त में फिर सूर्यवंशी धर्मात्मा राजा उससे उत्पन्न होकर अपना वंश चलावेंगे। उसी मरु के वंश में बृहद्बल नाम का राजा बड़ा प्रतापी हुआ, जिसको तुम्हारे दादा भीमसेन ने महाभारत में मारा था। राजा इक्ष्वाकु के कुल में इतने राजा बड़े प्रतापी

हो चुके हैं, अब जो उसके वंश में आगे होंगे उनके नाम सुनो। बृहद्-बल के वंश में सहदेव और सुमन्त आदि कई राजा प्रतापी होंगे और बहुत पीढ़ी तक उनका राज्य संसार में स्थिर रहेगा। हे राजन्! कलि-युग में भी सूर्यवंशियों का राज्य होगा और उनका कुल उत्तम रहेगा।

तेरहवाँ अध्याय।

वशिष्ठ ऋषीश्वर का राजा निमि को शाप देना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! इक्ष्वाकु के बेटे राजा निमि ने एक समय अपने गुरु वशिष्ठ ऋषीश्वर से यज्ञ कराने के लिए कहा। तब वशिष्ठजी बोले—राजा इन्द्र के यहाँ से हमें ज्ञानयज्ञ कराने का नेवता आया है, पहिले वहाँ यज्ञ करा आऊँ, पीछे तुम्हारा करा दूँगा। जब ऐसा कहकर वशिष्ठ ऋषीश्वर इन्द्रपुरी में यज्ञ कराने चले गये तब राजा निमि ने बिचारा कि जीने का एक क्षण भी भरोसा नहीं रहता, कदा-चित् वशिष्ठजी के लौटने तक मेरा यह तनु छूट जावे तो यह इच्छा बाकी रह जावेगी। ऐसा विचारकर राजा ने गौतमजी को पुरोहित बनाकर यज्ञ करना आरम्भ किया। उसी समय वशिष्ठ गुरु इन्द्र को यज्ञ कराकर राजमन्दिर पर आये। जब वशिष्ठ ऋषीश्वर ने दूसरे पुरोहित को यज्ञ कराते देखा तब बड़े क्रोध से राजा निमि को शाप देकर कहा कि तू बिना हमारे आये यज्ञ कराने लगा, इसलिए तेरा तनु छूट जावे। यह वचन सुनकर राजा बोला—हे वशिष्ठजी! तुम यजमान का यज्ञ कराना छोड़कर लोभ से इन्द्र के यहाँ चले गये थे, इसलिए तुम्हारा शरीर भी स्थिर न रहे। वशिष्ठ ऋषीश्वर और राजा निमि दोनों ने आपस के शाप से अपना-अपना तनु छोड़ दिया। कुछ काल बीतने पर मित्रावरुण देवता का वीर्य उर्वशी अप्सरा का रूप देखकर गिर पड़ा, सो वह वीर्य घड़े में रखने से वशिष्ठ व अगस्त्य मुनि उत्पन्न हुए। राजा निमि के जीने के वास्ते गौतम आदिक ऋषीश्वरों ने फिर यज्ञ किया। जब देवतों ने प्रसन्न होकर पूछा कि तुम क्या चाहते हो तब ऋषीश्वरों ने विनय किया कि आप लोग ऐसी दया करें कि हमारा यजमान जी उठे। देवतों ने

ऐसा आशीर्वाद दिया कि राजा के शरीर में प्राण आ गये। तब राजा देवताओं व ऋषीश्वरों से हाथ जोड़कर बोला—महाराज ! अब मुझे यह तनु जिसका एक दिन अवश्य नाश होगा, न चाहिए। ऐसी कृपा करो जिसमें सदा स्थिर रहूँ। यह सुनकर देवताओं और ब्राह्मणों ने राजा को आशीर्वाद दिया कि तुम बिना अंग होकर सब जीवों के पलक में रहो। यह वरदान देकर सब देवता अन्तर्धान हो गये। उसी दिन से राजा निमि का जीव सबके पलक में रहता है। फिर उन सब ऋषीश्वरों ने राजा का शरीर दही के समान मथकर उसमें से एक अति सुन्दर व तेजस्वी बालक उत्पन्न किया, जिसने मिथिलापुरी बसाई। उसके वंश में देवरात आदिक बहुत से राजा हुए। कई पीढ़ी के उपरान्त जनक नाम का बड़ा प्रतापी राजा हुआ, जिसकी यज्ञशाला जोतते समय हल लगने से सीताजी कन्या मिलीं, जिनका ब्याह रामचन्द्रजी से हुआ। शीरध्वज और धर्मध्वज आदि बहुत से प्रतापी राजा इस वंश में हुए। उन राजाओं के दूसरे नाम होने पर भी वे सब जनक विदेही कहलाते थे। उनके वंश में सब राजा योगीश्वर व ज्ञानी उत्पन्न हुए और धर्मपूर्वक राज्य करके अन्त समय वैकुण्ठ को गये। यह सूर्यवंशी राजाओं की कथा हमने तुमको सुनाई।

—:○:—

चौदहवाँ अध्याय।

चन्द्रवंशी राजाओं की कथा।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन् ! अब हम चन्द्रवंशकुल की उत्पत्ति कहते हैं, सुनो। नारायणजी के नाभिकमल से प्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुए और ब्रह्मा के नेत्र से अत्रि मुनि ने जन्म लिया। उनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए जो ब्राह्मण, तारागण, ओषधि और वृक्षादिक के राजा हुए। उन्होंने बृहस्पति को गुरु बनाकर राजसूय यज्ञ आरम्भ किया। उस यज्ञ में बृहस्पतिजी की स्त्री तारा को, जो अति सुन्दरी थी, छल करके छीन लिया। जब तारा के लिए दैत्यों ने चन्द्रमा की ओर और देवतों ने बृहस्पति की ओर सहायक होकर आपस में महायुद्ध किया तब ब्रह्मा की आज्ञानुसार चन्द्रमा ने बृहस्पति की स्त्री दे दी। चन्द्रमा के वीर्य से तारा के गर्भ रह

गया था। जब बृहस्पति के क्रोध करने से तारा ने अपना लड़का गर्भ से गिरा दिया तब उस बालक का रूप देखकर बृहस्पति ने चाहा कि यह बालक हम लेवें और चन्द्रमा ने इच्छा की कि यह मैं लूँ। जब उस बालक के लिए फिर बृहस्पति और चन्द्रमा से झगड़ा होने लगा तब ब्रह्मा ने तारा से पूछा कि यह बालक किसके वीर्य से है। तारा ने चन्द्रमा का वीर्य बतलाया, इसलिए ब्रह्मा की आज्ञा से वह पुत्र चन्द्रमा ने पाकर उसका नाम बुध रक्खा। बुध के इला नाम की स्त्री से पुरूरवा नामक बेटा बड़ा प्रतापी, तेजस्वी और सुन्दर उत्पन्न हुआ। राजा पुरूरवा के यश, बल और धर्म की बड़ाई उर्वशी अप्सरा ने इन्द्र की सभा में सुनी थी। जब एक दिन उर्वशी अप्सरा मित्रावरुण के तप करने के स्थान पर जा निकली और उसका रूप देखकर मित्रावरुण का वीर्य गिर पड़ा तब मित्रावरुण ने शाप दिया कि तूने हमारे स्थान पर आकर मेरे तप में भंग किया है, इसलिए तू मर्त्यलोक में जाकर रह। जब वह अप्सरा उस शाप से भूलोक में आई तब वह राजा पुरूरवा के पास रहना विचारकर उसके बाग में गई और एक जड़ाऊ हिंडोला वृक्ष में लटकाकर झूलने लगी और दो गन्धर्वों को भेड़ा बनाकर अपने साथ रक्खा था। जब राजा माली से उसका समाचार पाकर बाग में आया तब उर्वशी अप्सरा का रूप देखकर उस पर मोहित हो गया। राजा ने हठ करके उर्वशी को अपने पास रहने के लिए कहा। वह महासुन्दरी बोली—हे राजन्! तुम तीन बात की प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हारे पास रहूँ। राजा बोले—जो तुम कहो सो करूँ। उर्वशी बोली कि एक तो मेरे दोनों भेड़े कभी दुःख न पावें, दूसरे नित्य नवीन घृत भोजन को देना, तीसरे कभी अपनी इन्द्रिय नंगे होकर मत दिखलाना। जब इन तीनों बातों में कुछ विपरीत होगा तब मैं यहाँ से चली जाऊँगी। राजा ने तीनों बातें मानकर उसको अपने पास रक्खा और आठों पहर उसके पास रहकर भोग-विलास करने लगा। छः पुत्र राजा के उर्वशी से उत्पन्न हुए और उर्वशी अप्सरा मित्रावरुण के शाप से मर्त्यलोक में राजा के पास रहने लगी। जब देवतों का मन उर्वशी अप्सरा का नाच देखने को चाहा तब राजा इन्द्र ने गन्धर्वों को आज्ञा दी कि किसी तरह

उर्वशी को यहाँ लाना चाहिए। जब गन्धर्वों ने जाकर उर्वशी से कहा कि तुझे इन्द्र ने याद किया है, तेरे बिना इन्द्र की सभा में शोभा नहीं होती। यह वचन सुनकर उर्वशी बड़े हर्ष से चलने के लिए तैयार हुई। तब गन्धर्वों ने उर्वशी की आज्ञानुसार अपनी माया से नया घृत बदलकर पुराना घृत उर्वशी को खिला दिया और रात को गन्धर्व लोग उर्वशी के दोनों भेड़े चुराकर आकाश में ले उड़े। उस समय उर्वशी ने राजा पुरूरवा को, जो उसके पास सोया था, जगाकर कहा कि मेरे दोनों भेड़े कोई चुराकर लिये जाता है, तुम जल्दी छीन ले आओ। तुम भी अपने को शूरवीर समझते हो, तुमसे तो स्त्री बली होती है। यह वचन सुनकर राजा घबराकर भेड़ों के पीछे नंगा उठ दौड़ा, तब उर्वशी ने उसको नंगे देखकर कहा—हे राजन्! मेरा तेरा यही प्रण था कि जब मैं तुझे नंगा देखूँगी या मेरे दोनों भेड़ें दुःख पावेंगे या जिस दिन मुझे नया घृत खाने को नहीं मिलेगा तब मैं तेरे पास न रहूँगी। सो आज तीनों बातें विपरीत हुईं, इसलिए अब मैं तेरे पास नहीं रह सकती। ऐसा कहती हुई बिजली के समान चमककर वहाँ से उड़ गई। गन्धर्वों ने उसे इन्द्रलोक में पहुँचा दिया। राजा पुरूरवा उसके चले जाने से अति व्याकुल होकर वन में और पहाड़ पर उसे ढूँढ़ने निकला। पैदल चलने व काँटे चुभने से ऐसा दुःखी हुआ कि उसको अपने तनु की सुधि नहीं रही। इस तरह राजा उसके विरह में व्याकुल होकर चारों ओर फिरता था, सो एक दिन फिरता हुआ कुरुक्षेत्र में जाकर सेमल वृक्ष के नीचे खड़ा हुआ, उसी जगह उर्वशी अप्सरा भी बहुत सखी अपने साथ लिए हुए, सरस्वतीकुण्ड में स्नान करती थी। कोई उन्हें नहीं देख सकता था, पर अप्सराएँ देव-दृष्टि से सबको देखती थीं। उस समय तिलोत्तमा नाम सखी ने उर्वशी से पूछा कि तुम मर्त्यलोक में आकर किस पुरुष के पास रहती थीं, उसको मैं भी देखना चाहती हूँ। उर्वशी ने राजा पुरूरवा को दिखाकर कहा कि मैं इसी के पास रहती थी। तिलोत्तमा राजा को देखकर बोली कि तुम्हारे विरह में यह बहुत व्याकुल और मलीन दिखलाई देता है, एक बेर तुम अपना रूप इसे दिखला दो तो इसकी व्याकुलता और मलीनता दूर हो जाय। यह बात तिलोत्तमा से सुनकर उर्वशी ने अपना

रूप राजा के सामने प्रकट किया, उसे देखते ही राजा पुरूरवा का चित्त ठिकाने होकर उसका रूप इस तरह बदल गया कि जिस तरह मुर्दे के तनु में प्राण आ जावे। राजा ने उर्वशी के सामने बहुत रोकर कहा—हे प्राणप्यारी! तू मुझे क्यों छोड़कर चली गई, तेरे विरह से मेरी यह दशा हो गई है। खाना-पीना, राजपाट सब छूट गया। यह वचन सुनकर उर्वशी बोली—हे राजन्! तुम पुरुष होकर अपनी इन्द्रियों के ऐसे वश हो गये कि मेरी विनती करते हो। तुम अपनी इन्द्रियों को वश में करो। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को अधीन नहीं रखता वह मायारूपी स्त्री के मोह में फँसकर नष्ट होता है। वही दशा तुम्हारी हुई। मैं स्त्री किसी पर मोहित न होकर सिवा अपने सुख के दूसरे का प्रेम नहीं रखती। जब तक कोई पुरुष मेरे पास रहता है तब तक उसकी प्रीति करती हूँ। कदाचित् मैं हजार वर्ष तक एक पुरुष के पास रहकर जब दूसरे पुरुष के निकट जाऊँ तब फिर मुझे पहिले पुरुष से कुछ प्रीति नहीं रहती। क्षण भर में उसे भूलकर उसका प्राण लेने में भी मुझे कुछ दुःख नहीं होता। मैं ज्ञान उपदेश किसी का कुछ न मानकर अपने मनमाना काम करती हूँ। इसी तरह सब स्त्रियों का स्वभाव समझना चाहिए। राजा उर्वशी पर ऐसा मोहित था कि इतना समझाने पर भी उसे कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। जब राजा ने उर्वशी से भोग करने की इच्छा की तब वह दया करके बोली—हे राजन्! जब वर्ष दिन उपरान्त दूसरे वर्ष का पहिला दिन लगेगा तब तेरे पास आकर एक रात रहूँगी। ऐसा कहकर उर्वशी वहाँ से लोप हो गई। जब उर्वशी के मिलने और एक वर्ष की अवधि करने से राजा का चित्त सावधान हो गया तब वह राजमन्दिर पर आया और अवधि का दिन गिनने लगा। जब वह अप्सरा अपने वचन के प्रमाण आई और एक रात राजा के पास रहकर प्रातःसमय इन्द्रलोक को चली तब पुरूरवा उसका पाँव पकड़कर रोने लगा। उस समय उर्वशी बोली—हे राजन्! मैं यहाँ रह नहीं सकती, मुझे मेरी चाह अन्तःकरण से हो तो मैं एक मन्त्र बतलाती हूँ। तुम वह मन्त्र जपकर गन्धर्वों की तपस्या करो। जब वे प्रसन्न होकर तुझे यज्ञ करने की आज्ञा दें तब तू उस यज्ञ

करने से गन्धर्वलोक में आकर फिर मुझे पावेगा, तब मैं तेरे साथ आनन्दपूर्वक रहूँगी। यह कहकर उर्वशी वेद की दो ऋचा राजा को बतलाकर इन्द्रपुरी को चली गई। राजा वही मंत्र जपकर गन्धर्वों का तप करने लगा। जब गन्धर्वों ने प्रसन्न होकर राजा को दर्शन दिया और अग्नि के समान एक बटलोही उसे देकर यज्ञ करने का उपाय बतलाकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये तब राजा ने उनकी आज्ञानुसार वह बटलोही वन में ले जाकर गाड़ दी। जब उस बटलोही में से एक वृक्ष पीपल और शमी का मिलकर उगा और राजा ने वे दोनों लकड़ी रगड़-कर उसमें से आग निकालकर यज्ञ किया तब राजा को इतना बल हुआ कि वह गन्धर्वलोक में जा बसा। गन्धर्वों के देने से फिर उर्वशी को पाकर उसके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

—(०)—

पन्द्रहवाँ अध्याय।

पुरूरवा के सन्तान की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! राजा पुरूरवा के उर्वशी के पेट से छः बालक जो राजगद्दी पर उत्पन्न हुए थे, उनमें बड़े पुत्र का नाम आयु था। उसके वंश में जह्नु नाम ऐसे महात्मा हुए, जिन्होंने गंगाजी को अपनी अंजली में उठाकर पी लिया। जब देवतों ने अति विनती की तब अपनी जाँघ चीरकर बाहर निकाल दिया। उसी दिन से गंगाजी का नाम जाह्नवी प्रकट हुआ। राजा जह्नु के वंश में गाधि नाम के राजा बड़े प्रतापी व महात्मा हुए। उनके यहाँ सत्यवती नामकी कन्या महासुन्दरी व बुद्धिमती उत्पन्न हुई। गाधि ऋषि से ऋचीक ऋषीश्वर ने जाकर कहा कि तुम अपनी कन्या हमको विवाह दो। गाधि बोला कि जो कोई हजार घोड़े श्यामकर्ण मुझे लादे उसे मैं अपनी कन्या दूँगा। यह वचन सुनकर ऋचीक ऋषि बड़ा परिश्रम करके हजार श्यामकर्ण घोड़े वरुण देवता के यहाँ से लाया और वह सब घोड़े गाधि को देकर सत्यवती से अपना विवाह किया। तब गाधि की स्त्री ने ऋचीक से कहा कि कोई ऐसा उपाय करो, जिससे मेरे पुत्र हो और सत्यवती ने भी अपने पति से सन्तान होने

की इच्छा की। ऋचीक ऋषीश्वर ने अपनी सासु व स्त्री के सन्तान होने के लिए यज्ञ करके जो साकल्य यज्ञ करने से बचा उसमें एक पिण्डी अपनी स्त्री को, दूसरी सासु को खाने के लिए दिया। ऋषीश्वर महाराज स्नान व संध्या करने गंगा के किनारे चले गये। उनकी सासु ने अपनी पिण्डी जिसे संस्कृत में चरु कहते हैं, बेटी को खिला दी और उसका चरु आप खा लिया। जब ऋषीश्वर ने अपने घर आकर तपोबल से यह हाल जाना तब अपनी स्त्री सत्यवती से कहा कि तुझसे बड़ी चूक हुई, जो अपना चरु माता को देकर उसका चरु तूने खा लिया। इस कारण तेरा पुत्र महाबली और क्रोधी होगा और तेरा भाई बड़ा धर्मात्मा व ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न होगा। यह वचन सुनकर वह विनयपूर्वक बोली—महाराज! आप ऐसा कीजिए जिसमें मेरा पुत्र क्रोधी न हो। तब ऋषीश्वर ने दूसरा मंत्र पढ़कर अपनी स्त्री से कहा कि तू धैर्य रख, तुझसे ज्ञानी व धर्मात्मा बेटा होगा, पोता तेरा महाबली व बड़ा क्रोधी होगा। सो सत्यवती से जमदग्नि ऋषीश्वर बड़े महात्मा हुए। उनके रेणुका नाम की स्त्री से चार पुत्र उत्पन्न हुए। उन चारों में सबसे छोटे परशुरामजी ईश्वर का अवतार थे, जिन्होंने पापी व अधर्मी क्षत्रियों को इक्कीस बेर मारकर उनके कुल का नाश किया। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—महाराज! क्षत्रियों ने कौन ऐसा अपराध किया था, जिस कारण परशुरामजी ने उन्हें वध किया। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जमदग्नि ऋषीश्वर परशुराम के पिता से रेणुका ब्याही गई थी और सत्यानाम रेणुका की बहन से सहस्रबाहु अर्जुन का विवाह हुआ था। सहस्रार्जुन सातों द्वीपों का ऐसा प्रतापी राजा था, जिसके यहाँ आठों सिद्धियाँ बनी रहती थीं। वह ऋषीश्वरों के समान कर्म व धर्म करता था और पवन के समान क्षण भर में सब जगह जाने की सामर्थ्य रखता था। वह अपनी हजार स्त्रियों को साथ लेकर नर्मदा नदी में जल विहार करने गया और अपनी हजार भुजाओं से जो तप करके पाई थीं, नर्मदा नदी का पानी बहने से रोक दिया। वह जल उलटा बहकर जहाँ पर रावण बैठा था वहाँ इकट्ठा हुआ। जब रावण वह जल देखकर अभिमान-

पूर्वक सहस्रार्जुन से लड़ने आया तब सहस्रबाहु ने अपने बल से रावण को पकड़ लिया और उसे अपने मकान पर ले जाकर कभी-कभी उसके दशों मस्तकों पर दीपक जलाकर सब स्त्रियों व लड़कों को दिखलाया करता था। जब रावण ने बहुत विनती करके उसे अपना मालिक जाना तब सहस्रबाहु ने उसको छोड़ दिया। इस तरह की सामर्थ्य उसमें थी। एक दिन रेणुका अपनी बहिन सत्या के यहाँ गई और रेणुका ने अपनी बहिन से कहा कि एक बेर तुम भी हमारे यहाँ आवो। सत्या अभिमान से बोली कि तुम कंगाल ऋषीश्वर की स्त्री होकर हमारी सेना को कहाँ से खिलावोगी। यह बात सुनकर रेणुका लज्जा से कुछ नहीं बोली। जब स्थान पर आई तब उसने अपने स्वामी जमदग्नि से कहा कि आप एक बेर मेरी बहिन को सेनासमेत बुलाकर मेहमानी करें तो मेरी लज्जा छूटे। सत्या ने मुझे ऐसा ताना मारा है। जमदग्नि बोले कि परमेश्वर की दया से मेहमानी करना कुछ कठिन नहीं है। नारायणजी तेरी इच्छा पूर्ण करेंगे। एक दिन राजा सहस्रबाहु अहेर खेलता हुआ उसी वन में, जहाँ पर जमदग्नि ऋषीश्वर की कुटी थी, सेनासमेत आ पहुँचा। उन दिनों कामधेनु गाय ऋषीश्वर के स्थान पर थी। जब जमदग्नि ने अपनी स्त्री के कहने से सहस्रार्जुन और सत्रह अक्षौहिणी दल को, जो उसके साथ में था, नेवता देकर कामधेनु के प्रताप से इच्छापूर्वक भोजन कराया तब सहस्रबाहु ने मन में विचारा कि जमदग्नि ने जिस कामधेनु के प्रताप से लाखों मनुष्यों को ऐसे पदार्थ भोजन कराये हैं वह गाय ऋषीश्वर से लेना चाहिए। ऐसा विचारकर राजा ने जमदग्नि से कहा कि ऐसी गौ ऋषीश्वर को रखना न चाहिए, यह गाय राजाओं के घर रहने योग्य है, इसलिए तुम कामधेनु गौ हमको दो। जमदग्नि ने उत्तर दिया कि हे राजन्! यह गौ मेरी नहीं है, मैं इसको देवलोक से माँग लाया हूँ और फिर वहाँ पहुँचा दूँगा, इस कारण तुमको नहीं दे सकता, यह वचन सुनते ही सहस्रार्जुन ने क्रोधित होकर जब अधर्म की राह वह गौ छीन ली और अपने देश को ले चला तब कामधेनु भागकर जमदग्नि के पास चली आई और रुदन करके बोली—हे ऋषीश्वर! मेरा क्या अपराध है जो तुमने मुझे राजा

को दे दिया। जमदग्नि ने आँसू भरकर कहा कि हे कामधेनु! तुझे राजा बरजोरी लिये जाता है, मैं क्या करूँ। यह बात सुनकर कामधेनु ने दश हजार शूर-वीर अपने अंग से उत्पन्न किये। जब उन वीरों ने राजा का सामना किया तब सहस्रार्जुन अपने बल से उन्हें लड़ाई में जीतकर कामधेनु को छीन ले गया। यह दशा देखकर जमदग्नि ने अपने बेटे महाबली परशुराम को, जो उस समय कुटी पर नहीं था, बुलाकर कहा कि हे बेटा, सहस्रबाहु कामधेनु गौ हमारी कुटी से बरजोरी छीन ले गया है सो लाना चाहिए। यह वचन सुनकर परशुरामजी महाक्रोधित होकर अकेले माहिष्मती पुरी में चले गये और अपनी भुजाओं की सामर्थ्य से राजा सहस्रबाहु को उसके नौ सौ बेटे व सत्रह अक्षौहिणी सेनासमेत मारकर कामधेनु गौ अपने पिता के पास ले आये। तब जमदग्नि ऋषीश्वर ने उदास होकर परशुरामजी से कहा कि हे बेटा, तुमने चक्रवर्ती राजा को मारा है, इसलिए शास्त्रानुसार तुमको दोष लगा, सो तुम एक वर्ष तक पृथ्वीपरिक्रमा व तीर्थयात्रा कर आवो, तब तुम्हारा अपराध छूटेगा। हम ब्राह्मणों को क्षमा करना चाहिए, क्षमा से ईश्वर प्रसन्न होते हैं। परशुरामजी यह वचन सुनकर पृथ्वी की परिक्रमा व तीर्थयात्रा करने चले गये।

——:o:——

सोलहवाँ अध्याय।

परशुरामजी का अपनी माता व भाइयों को मारना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! परशुरामजी ने अपने पिता की आज्ञानुसार वर्ष दिन पृथ्वीपरिक्रमा व तीर्थयात्रा करने के उपरान्त आकर जमदग्नि को दण्डवत् किया। फिर एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि परशुरामजी की माता रेणुका गंगाजी में जल भरने गई। वहाँ पर चित्ररथ गन्धर्व को, जो अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करता था, देख कर मन में कहा कि यह अति सुन्दर है। जब रेणुका को उसका जल-विहार देखने में विलंब हुआ तब वह समझी कि मेरे पति अग्निहोत्र पर बैठे हैं, जल पहुँचाने की राह देखते होंगे, जल्दी जाना चाहिए। जब वह

ऐसा विचारकर जलसमेत कुटी पर पहुँची और ऋषि ने विलम्ब होने का कारण अपने योगबल से जान लिया कि इसको परपुरुष की सुन्दरता देखने से पानी लाने में विलम्ब हुआ तब उन्होंने क्रोधित होकर अपने तीनों बड़े बेटों से कहा कि तुम लोग इसे मार डालो। जब उन्होंने माता का मारना अधर्म विचारकर रेणुका को नहीं मारा तब ऋषीश्वर ने छोटे पुत्र परशुरामजी से कहा कि तू अपनी माता को भाइयों समेत मार डाल। यह सुनकर परशुरामजी ने विचारा कि माता व भाइयों का मारना बड़ा पाप है, यदि मैं नहीं मारता तो पिता क्रोधित होकर मुझे शाप देंगे और मार डालने से मेरे पिता अपने योगबल से फिर इनको जिला सकते हैं। ऐसा विचारकर परशुरामजी ने अपनी माता रेणुका को तीनों भाइयों समेत मार डाला। तब ऋषीश्वर प्रसन्न होकर बोले—हे परशुराम! तूने मेरी आज्ञा मानकर अपनी माता व भाइयों का वध किया, इससे हम अति प्रसन्न हुए, जो वरदान माँगे सो दूँ, यह वचन सुनते ही परशुराम अपने पिता से हाथ जोड़कर बोले—महाराज! मैं यही वरदान माँगता हूँ कि मेरी माता व भाई फिर जी उठें और उनको यह बात न मालूम हो कि हमें परशुराम ने मारा था। जमदग्निजी बोले—बहुत अच्छा, परमेश्वर की दया से ऐसा ही हो। यह वचन ऋषीश्वर के मुख से निकलते ही वे सब इस तरह जीकर उठ खड़े हुए जिस तरह कोई सोया हुआ जागे और नारायणजी की माया से उनको यह नहीं मालूम हुआ कि हमको परशुरामजी ने मारा था। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! परमेश्वर के तप व जप में ऐसी सामर्थ्य है कि हरि-भक्त लोग मुर्दे को जिला सकते हैं। परशुरामजी इस विचार से कि मैंने अपने माता व भाइयों को मारा है, सो पृथ्वी परिक्रमा करके यह पाप छुड़ाना चाहिए, इसलिए तीनों भाइयों समेत फिर तीर्थयात्रा करने चले गये। कुछ दिन बीते राजा सहस्रबाहु के सौ बेटों ने, जो परशुराम से भागकर बच गये थे, विचारा कि इन दिनों परशुरामजी भाइयों समेत कुटी पर नहीं हैं, किसी तरह अपने बाप का बदला उनसे लेना चाहिए। सो एक दिन राजकुमारों ने आकर हरिइच्छा से जमदग्नि ऋषीश्वर को

अग्निहोत्र करते समय मार डाला और ऋषीश्वर का मस्तक काटकर ले गये रेणुका अति विलाप करने लगी। उसने इक्कीस बेर अपनी छाती पीटकर परशुरामजी को पुकारा। परशुराम ने माता का चिल्लाना सुनकर कुटी पर आकर पिता को मरे हुए देखा, और जब रेणुका से जमदग्नि के मारे जाने का समाचार सुना तब उन्होंने बड़ा क्रोध करके सौगन्ध खाकर यह प्रण किया कि मैं इस अपराध के बदले पृथ्वी पर किसी क्षत्रिय को जीता न छोड़ूँगा। यह कहकर परशुरामजी माहिष्मतीपुरी में चले गये और सहस्रबाहु के बेटों को, जिन्होंने जमदग्नि को वध किया था, मारकर अपने बाप का शिर वहाँ से उठा लाये और पिता के धड़ से मिलाकर उनका क्रियाकर्म किया। यही प्रतिज्ञा करने से परशुरामजी ने इक्कीस बेर चारों ओर घूमकर क्षत्रियों को मार डाला और कुरुक्षेत्र में स्नान करके सम्पूर्ण पृथ्वी इक्कीस बेर ब्राह्मणों को दान कर दिया। जब अगले मन्वन्तर में राजा बलि इन्द्र होगा तब परशुरामजी सप्त ऋषीश्वरों में रहेंगे। इन दिनों मन्दराचल पर्वत पर बैठे हुए परमेश्वर का तप करते हैं। उनका गुण व यश देवता गन्धर्व लोग सदा स्वर्ग में गाते हैं और उनके अंत को नहीं पहुँचते। हे राजन्! गाधि ऋषि के पुत्र विश्वामित्र ऋषीश्वर ऐसे महात्मा हुए, जिन्होंने अपने को राजऋषि से ब्रह्मऋषीश्वर कहलाया। उनके सौ पुत्र हुए, उनमें छोटे पचास बेटों का नाम मधुछंदा था। विश्वामित्र ने शुनःसेफ अपने भानजे को, जो राजा हरिश्चन्द्र के बलिदान होने से बचा था, अपना बेटा बनाया और उसका नाम देवरात रखकर अपने बड़े पचासों पुत्रों से कहा कि तुम लोग इसे अपना बड़ा भाई करके मानो। जब उन्होंने यह बात नहीं मानी तब विश्वामित्र ने उनको ऐसा शाप दिया कि तुम लोग म्लेच्छ हो जावो। तभी से संसार में म्लेच्छ हुए हैं। फिर विश्वामित्र ने मधुछन्दा आदिक अपने छोटे पचासों पुत्रों से वही बात कही। जब उन्होंने अपने पिता की आज्ञानुसार देवरात को बड़ा भाई करके जाना तब विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर उनको ऐसा वरदान दिया कि तुम्हारा वंश अधिक हो। इसलिए विश्वामित्र के वंश की वृद्धि हुई, वे सब कौशिकगोत्री कहलाते हैं।

सत्रहवाँ अध्याय।

राजा पुरूरवा के वंश की कथा।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! पुरूरवा के वंश में राजा नहुष ऐसा प्रतापी हुआ, जिसने देवलोक का राज्य किया। उसकी कथा पहिले हो चुकी है। अब हम उसकी सन्तान का हाल कहते हैं, सुनो। राजा ययाति उसका पुत्र अति तेजस्वी व प्रतापी होकर एक बेर इन्द्रपुरी का राज्य किया था। उसकी कथा इस तरह है कि एक दिन राजा इन्द्र गौतम ऋषीश्वर की स्त्री अहल्या को, जो अति सुन्दरी पंचकन्याओं में थी, देखकर मोहित हो गया और उससे भोग करने की इच्छा किया। पर महात्मा गौतम ऋषिश्वर के डर से वहाँ नहीं जा सकता था। जब इन्द्र से बिना प्रसंग किये नहीं रहा गया तब एक दिन रात को काकरूप बनकर गौतम ऋषीश्वर के आँगन में वृक्ष पर जा बैठा और बहुत रात रहे बोलने लगा। जब ऋषीश्वर ने उसकी बोली सुनकर जाना कि अब थोड़ी रात है तब वे स्नान व पूजा करने के वास्ते उठकर मकान से बाहर आये। उस समय इन्द्र ने घर सूना पाकर अपना स्वरूप ऋषि के समान बना लिया और अहल्या के पास जाकर उससे भोग किया। जब प्रसंग करने के उपरान्त अहल्या ने जाना कि यह मेरा पति नहीं है, किसी दूसरे ने कपटरूप बनाकर मेरा पातिव्रत धर्म बिगाड़ दिया तब उसने कहा कि हे अधर्मी चाण्डाल! तू कौन है, यहाँ से चला जा। जब यह वचन सुनकर इन्द्र वहाँ से बाहर निकलने लगा और गौतम ऋषीश्वर से, जो अधिक रात समझकर फिरे आते थे, डेवढ़ी में भेंट हुई तब ऋषीश्वर इन्द्र को देखते ही अपने योगबल से उसके कुकर्म करने का हाल जानकर बोले—हे इन्द्र! बड़ी लज्जा की बात है, जो तूने अनेक अप्सराएँ व इन्द्राणी के रहने पर भी ऐसा अधर्म किया। इसलिए हम तुझे शाप देते हैं कि तू एक भग के वास्ते काकरूप हुआ था सो तेरे अंग में हजार भग प्रकट हो जावें। यह वचन ऋषीश्वर के मुख से निकलते ही इन्द्र के शरीर में हजार भग हो गईं। जब मारे लज्जा के वह राज-सिंहासन पर न जाकर कमल की डार में छिप रहा तब ऋषीश्वरों ने

इन्द्रासन सूना देखकर राजा नहुष को इन्द्रासन पर बैठाया। जब इन्द्राणी का रूप देखकर राजा नहुष का मन चलायमान हुआ तब इन्द्राणी पतिव्रता ने बृहस्पतिजी की आज्ञानुसार नहुष से कहा कि तुमने आज तक जो शुभ कर्म किया हो उसे बतलाओ। जब राजा ने अपने मुख से अपने शुभ कर्मों का वर्णन किया तब उसका पुण्य क्षीण हो गया और वह इन्द्र-लोक से गिर पड़ा। बृहस्पतिजी ने जाकर इन्द्र को कमलनाल से बाहर निकाला और उससे यज्ञ कराकर ऐसा आशीर्वाद दिया कि वह हजार भग आँख के समान हो गईं। तब इन्द्र अपनी गद्दी पर आकर राज्य करने लगा। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! अब हम नहुष के दूसरे वंश की कथा कहते हैं, सुनो। उसके वंश में धन्वन्तरि नाम के वैद्य ऐसे महात्मा हुए कि जिनका नाम लेने से मनुष्य का रोग व दुःख छूट जावे। उनके वंश में राजा कुवलयाश्व बड़ा प्रतापी हुआ, उसके मन्दा-लसा नाम की स्त्री से अलर्क आदिक पुत्र उत्पन्न हुए। राजा अलर्क छासठ हजार वर्ष राज्य करके तरुण बना रहा। रानी मन्दालसा अपने बेटों को बाल्यावस्था में ज्ञान सिखलाया करती थी। उसने मरते समय अपने पुत्र राजा अलर्क को दो श्लोक देकर कहा कि तू इसे यंत्र बनाकर अपने पास रख। जब तेरे ऊपर कुछ विपत्ति पड़े तब इस श्लोक को पढ़कर उसी के अनुसार करना। राजा अलर्क ने उन दोनों श्लोकों को यन्त्र बनाकर भुजा में बाँध लिया और संसारी सुख में फँसकर राज्य करने लगा। जब दूसरे राजों ने उसे सुख व विलास में फँसा देखा तब जाकर अपने सेना से उसका नगर घेर लिया। जब राजा अलर्क ने देखा कि अब मेरा प्राण व राज्य बचना कठिन है तब अपने ऊपर विपत्ति जानकर दोनों श्लोक यंत्र से निकालकर पढ़ा। उनमें लिखा था कि महात्माओं को सत्संग के सिवा संसारी वस्तुओं से प्रीति नहीं करना, संसारी लोगों से संगति व प्रेम करने में पीछे दुःख होता है, जगत् का व्यवहार स्वप्नवत् समझकर उसमें मन न लगाना चाहिए, संसार में चाह रखना यही दुःख की फाँसी है। जब उन श्लोकों को पढ़ने से राजा अलर्क को ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वह विरक्त होकर वन की ओर हरिभजन करने चला। उस समय दूसरे राजों ने, जो

उसका नगर घेरे थे, यह हाल सुनकर राजा अलर्क से जाकर पूछा कि तुम बिना युद्ध किये हार मानकर वन में क्यों जाते हो। अलर्क ने उत्तर दिया कि राज्य करने के उपरान्त नरक भोगना पड़ता है, इसलिए मैं राज्य नहीं करूँगा, तुम मेरी राजधानी लेकर आनन्दपूर्वक सुख करो, मुझे लड़ने की इच्छा नहीं है। जब यह वचन सुनकर दूसरे राजों को भी नरक भोगने के डर से ज्ञान उत्पन्न हुआ तब उन्होंने राजा अलर्क का देश लेना उचित नहीं समझा और अपने-अपने देश को चले गये। राजा अलर्क फिर धर्मपूर्वक राज्य करने लगा। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! देखो हरिभजन का ऐसा प्रताप है कि जैसे ही राजा अलर्क ने हरिभजन करने की इच्छा की वैसे ही नारायणजी की दया से उनका दुःख छूट गया और जो लोग परमेश्वर का तप व स्मरण करते हैं उन्हें न मालूम कैसा सुख मिलेगा। उसी अलर्क के देश में राजा रम्भस ऐसा महात्मा व ज्ञानी हुआ कि जिसके कुल में सब ब्राह्मण हो गये। उसके वंश में राजा रज बड़ा प्रतापी व धर्मात्मा हुआ। उसके पाँच सौ पुत्र अति बलवान् उत्पन्न हुए। एक बेर इन्द्रादिक देवतों का राज्य दैत्यों ने छीन लिया था, जब इन्द्र ने बृहस्पति की आज्ञानुसार राजा रज से सहायता चाही तब उसने अपने पाँच सौ पुत्रों को साथ लेकर इन्द्र की सहायता की। जब दैत्यों को जीतकर इन्द्रासन देवतों को देने लगा तब इन्द्र ने कहा कि देवलोक का राज्य आप कीजिए। इन्द्रादिक देवतों के कहने से बहुत दिनों तक देवलोक का राज्य करके वह मर गया तब उसके बेटे इन्द्रलोक का राज्य बरजोरी करके यज्ञ में इन्द्र का भाग लेने लगे और इन्द्रादिक के माँगने पर भी देवलोक का राज्य नहीं छोड़ा। तब देवतों के विनय करने पर बृहस्पतिजी ने अपने तपोबल से राजा रज के बेटों को मार डाला। जब उनमें कोई जीता नहीं बचा तब इन्द्रादिक देवता बृहस्पति गुरु की कृपा से इन्द्रपुरी का राज्य पाकर अपना भाग आनन्दपूर्वक लेने लगे।

——:०:——

अठारहवाँ अध्याय।

राजा नहुष के वंश की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! राजा नहुष के ययाति आदि छः बेटे बड़े प्रतापी हुए। जब राजा नहुष ऋषीश्वरों के शाप देने से अजगर होकर कुरुक्षेत्र में गिर पड़ा तब उसके राजसिंहासन पर उसका पुत्र ययाति बैठा। वह बड़ा धर्मात्मा व चक्रवर्ती राजा हुआ। उसने दूसरे देश का राज्य समभाग करके अपने भाइयों को बाँट दिया और अपना विवाह शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से किया। फिर उसने वृषपर्वा दैत्य की बेटी शर्मिष्ठा के साथ भी विवाह कर लिया। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! राजा ययाति ने क्षत्रिय होकर शुक्राचार्य ब्राह्मण की कन्या किस तरह ब्याही थी, यह मेरा सन्देह दूर कीजिए। यह बात सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! वृषपर्वा दानव दैत्यों का राजा था। एक दिन उसकी बेटी शर्मिष्ठा शुक्र गुरु की कन्या देवयानी को साथ लेकर हजार दासियों समेत अपने बाग में तालाब पर स्नान करने गई। जब शर्मिष्ठा, देवयानी और दासियाँ अपना-अपना वस्त्र तालाब के किनारे उतारकर जलक्रीड़ा व स्नान करने लगीं उसी समय महादेव व नारदजी घूमते हुए वहाँ आ गये। उनको देखते ही सब लड़कियों ने लज्जित होकर अपने-अपने वस्त्र पहिन लिये। शर्मिष्ठा ने जल्दी में भूलकर जब देवयानी का वस्त्र पहिन लिया तब देवयानी क्रोधित होकर बोली—हे शर्मिष्ठा! मेरा वस्त्र पहिनने योग्य तू नहीं है क्योंकि तेरा पिता मेरे बाप का शिष्य है। मैं ब्राह्मण की कन्या हूँ, मेरा वस्त्र तूने क्यों पहिना। जैसे यज्ञ की आहुति कुत्ता उठा ले या शूद्र होकर वेद पढ़े, वैसा ही काम तूने किया। जब देवयानी ने शर्मिष्ठा को ऐसा दुर्वचन कहा तब उसने क्रोध करके उत्तर दिया कि तू भिखारी की कन्या होकर मुझे ऐसी बात कहती है। तेरे पिता ने जन्म भर मेरे बाप से भीख माँगकर तेरा पालन किया, सो तू मेरी बराबरी करती है। ऐसा वचन कहकर शर्मिष्ठा ने क्रोधवश देवयानी को, जो नंगी खड़ी थी, कुएँ में ढकेल दिया और आप दासियों

समेत घर चली गई। उसी समय हरिइच्छा से राजा ययाति अहेर खेलते हुए वहाँ आ पहुँचे और अपने सेवक को पानी लेने के लिए उसी कुएँ पर भेजा। जब उसने एक स्त्री अति सुन्दरी कुएँ में गिरी देखकर राजा से यह समाचार कहा तब ययाति ने जाकर देखा तो एक कन्या रूपवती उसे देख पड़ी। जब उसने अपना वृत्तान्त कहकर राजा से निकालने के लिए कहा तब ययाति ने अपना डुपट्टा उसके पहिनने के लिए फेंक दिया और उसका हाथ पकड़कर कुएँ से बाहर निकाल लिया। उस समय देवयानी बोली—हे राजन्! हरिइच्छा से ऐसा संयोग हुआ जो तुमने मेरा हाथ पकड़ा, इसलिए मेरा विवाह तुम्हारे साथ होगा। बृहस्पति के पुत्र कच ने मुझे ऐसा शाप दिया था कि तेरा विवाह ब्राह्मण से न होगा, इसलिए मेरा विवाह ब्राह्मण से नहीं हो सकता। राजा भी उस पर मोहित हो गया था। परमेश्वर की इच्छा इसी तरह जानकर देवयानी से विवाह करना अंगीकार करके राजमन्दिर को चला गया। देवयानी ने वहाँ से रोती हुई अपने घर आकर शुक्राचार्य से कहा कि हे पिता! शर्मिष्ठा ने तुमको भीख माँगनेवाला कहा और मुझे कुएँ में ढकेल दिया। राजा ययाति ने आकर मुझे कुएँ से बाहर निकाला तब मेरे प्राण बचे। यह बात सुनते ही शुक्रजी ने क्रोधित होकर विचारा कि पुरोहिती करने से खेत का गिरा हुआ अन्न चुनकर खाना अच्छा होता है, उसमें कोई अपमान तो नहीं करता। शर्मिष्ठा ने राज्य व धन के मद से मेरी बेटी को कुएँ में गिरा दिया, इसलिए अब वृषपर्वा के राज्य में रहना न चाहिए। शुक्रजी ऐसा विचारकर देवयानी कन्या समेत उसका राज्य छोड़कर वहाँ से चल दिये। वृषपर्वा ने जब यह हाल सुना तो उसने घबराकर कहा कि उन्हीं के आशीर्वाद से यह सब राज्य व सुख मुझे मिला है, नहीं तो देवता लोग अब तक मुझको मारकर निकाल देते। उनके चले जाने से मेरा राज्य व धन जाता रहेगा। यह समझकर वृषपर्वा दौड़ा हुआ शुक्र गुरु की शरण में गया और हाथ जोड़कर विनय किया कि महाराज! मेरा अपराध क्षमा करके फिर अपने मकान पर चलिए। राजा का यह दीन वचन सुनकर शुक्राचार्य बोले—हे राजन्!

तुमने मेरा कुछ अपराध नहीं किया, पर तुम्हारी कन्या ने देवयानी का अनादर किया है। जिस बात में यह प्रसन्न हो वही काम करो, तब फिर तुम्हारे देश में चलकर रहूँ। जब वृषपर्वा ने देवयानी से बहुत विनती करके प्रसन्न होने के लिए कहा तब वह शर्मिष्ठा का सब हाल कहकर बोली—हे राजा! जिसके साथ मेरा विवाह शुक्राचार्य करें, वहाँ शर्मिष्ठा हजार दासियाँ अपने साथ लेकर मेरी सेवा में रहे तो मुझे प्रसन्नता हो। यह सुनकर राजा ने विचारा कि शुक्र गुरु सदा हमारे कुल की रक्षा करते आये हैं, इनके प्रसन्न हुए बिना मेरा कल्याण न होगा। यह सोचकर राजा ने शर्मिष्ठा से यह सब हाल कहकर उससे पूछा—हे पुत्री! तेरा मोह करने में शुक्राचार्य के क्रोध से हमारे वंश व राज्य का नाश हो जायगा और तेरे दासी होने से हमारा कल्याण है, इसमें क्या करना चाहिए। यह वचन सुनकर शर्मिष्ठा बोली—हे पिता! मेरा शरीर आप से उत्पन्न व पालन हुआ है, आप जिसे चाहें उसे मुझको दे डालें। यह बात सुनकर वृषपर्वा बोला—हे देवयानी! तुम्हारा कहना मुझे अंगीकार है। जब देवयानी यह बात सुनकर प्रसन्न हुई तब शुक्राचार्य कन्या समेत फिर अपने स्थान पर आकर रहने लगे, इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! बृहस्पति के बेटे कच ने देवयानी को क्यों शाप दिया था, इसकी कथा सुनाइए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक बेर युद्ध में देवतों के हाथ से बहुत दैत्य मारे गये, पर उन्हें शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या से जिला दिया। जब लड़ाई होने के उपरान्त देवतों ने बृहस्पतिजी से यह समाचार सुना तब इन्द्रादिक देवतों ने बृहस्पति गुरु से कहा कि महाराज! आप भी अपने बेटे कच को शुक्रजी के पास भेज दीजिए, वह उनका शिष्य होकर संजीविनी विद्या पढ़ आवे। जब बृहस्पति ने देवतों के कहने से कच को संजीविनी विद्या पढ़ने के लिए भेज दिया तब कच ने शुक्राचार्य की शरण में जाकर दण्डवत् करके विनय किया—महाराज! मैं संजीविनी विद्या पढ़ने आया हूँ। शुक्राचार्य उसे अपने घर में रखकर संजीविनी विद्या सिखलाने लगे। देवयानी और कच से अति प्रीति हो गई। जब दैत्यों ने यह समाचार सुना कि बृहस्पति का पुत्र हमारे गुरु से संजी-

विनी विद्या पढ़ता है तब उन्होंने सलाह किया कि वह संजीविनी विद्या पढ़कर हमारे शत्रुओं को जिला दिया करेगा, तो अच्छा नहीं होगा, इसलिए इसको मार डालना चाहिए। एक दिन कच शुक्र गुरु की गौ चराने के लिए वन में गया, दैत्यों ने उसके अंग के टुकड़े-टुकड़े करके एक गड़हे में फेंक दिया। जब सन्ध्या समय वह गौ चराकर नहीं लौटा तब देवयानी बोली—हे पिता! कच अब तक गौ चराकर नहीं आया। शुक्राचार्य ने योगबल से विचारकर कहा—हे पुत्री! उसे दैत्यों ने मार डाला, वह किस तरह आवे। जब यह सुनकर देवयानी सोच करने लगी तब शुक्रजी ने कच को संजीविनी विद्या से जिला दिया। यह समाचार पाकर दैत्यों ने आपस में कहा कि शुक्र गुरु यदि इसी तरह उसको जिला दिया करेंगे तो हमारे मारने से क्या लाभ होगा। ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिसमें वे जिला न सकें। यह विचारकर दैत्यों ने गौ चराते समय फिर कच को मार डाला और उसके अंग की मदिरा चुवाकर शुक्र गुरु को पिला दिया। जब सन्ध्या समय कच फिर नहीं आया तब देवयानी के विनय करने से शुक्राचार्य ने ध्यान धरकर तीनों लोकों में देखा, पर उसका पता नहीं लगा। जब अपने आत्मा में ध्यान लगाया तब उसको पेट में देखकर जाना कि दैत्यों ने उसकी मदिरा चुवाकर मुझे पिला दिया है। यह दशा देखकर शुक्राचार्य ने कहा—हे पुत्री! कच के जिलाने से मैं मर जाऊँगा। देवयानी हाथ जोड़कर बोली—महाराज! ऐसा उपाय कीजिए, जिसमें आप और वह दोनों जीते रहें। तब शुक्रजी ने मंत्र पढ़कर अपने पेट में कच को जिला दिया और उसी जगह संजीविनी विद्या उसको पढ़ाकर कहा कि हे कच! जब तुझे अपने पेट से निकालकर मैं मर जाऊँ तब तू इसी विद्या से मुझको जिला देना। कच बोला, बहुत अच्छा। जब शुक्रजी ने अपना पेट चीरकर कच को जीता बाहर निकाला और आप मर गये तब कच ने संजीविनी विद्या से उनको जिला दिया। जब कुछ दिनों के उपरांत कच शुक्र गुरु से बिदा होकर अपने घर आने लगा तब देवयानी उससे बोली कि तुम अपना विवाह मेरे साथ करो। कच ने उत्तर दिया कि गुरु की कन्या बहिन के

समान होती है, इसलिए तुमसे विवाह नहीं कर सकता। इसी बात पर देवयानी ने क्रोधित होकर उसको शाप दिया कि जो संजीवनी विद्या तूने मेरे पिता से पढ़ी है, वह तुझे भूल जावे। यह वचन सुनकर कच बोला कि हे देवयानी! धर्म करते हुए तूने मुझे शाप दिया, इसलिए तेरा विवाह ब्राह्मण से न होवे। ऐसा शाप देकर कच अपने बाप के पास चला गया। हे परीक्षित! देवयानी को शाप होने का यही कारण था, सो मैंने तुमको सुना दिया। अब देवयानी के विवाह की कथा कहता हूँ, सुनो। जब शुक्राचार्य वृषपर्वा के देश में आकर बसे तब उन्होंने कुछ दिन बीतने पर परमेश्वर की इच्छानुसार राजा ययाति को बुलाकर अपनी कन्या उसको विवाह दी और शर्मिष्ठा को हजार दासियों समेत दहेज में देकर राजा ययाति से कहा कि तुम शर्मिष्ठा को अपनी सेज पर मत बैठालना। देवयानी ने भी इस बात का वचन ययाति से ले लिया। जब राजा ने कहा कि मैं शर्मिष्ठा से भोग नहीं करूँगा तब शुक्रजी ने देवयानी को शर्मिष्ठा व हजार दासियों समेत बहुत-सा भूषण व वस्त्र आदि दहेज में देकर बिदा किया। राजा ययाति देवयानी समेत राज-मन्दिर पर आकर उसके साथ भोग-विलास करने लगा और शर्मिष्ठा को एक अति उत्तम स्थान रहने के लिए बनवा दिया। कुछ दिन बीतने पर राजा ययाति व देवयानी से दो पुत्र यदु व तुर्वसु नाम उत्पन्न हुए। एक बेर शर्मिष्ठा रजस्वला से शुद्ध हुई थी सो उसी दिन राजा ययाति भी बाग में सैर करने जा निकले। शर्मिष्ठा ने हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज! मैं भी आपकी दासी होकर आपसे भोग करने व सन्तान होने की इच्छा रखती हूँ, राजकन्या होकर दूसरे से भोग नहीं कर सकती। ऐसा वचन सुनकर राजा ने शुक्राचार्य का वचन याद करके विचारा कि शर्मिष्ठा से भोग करने में मेरे लिए अच्छा नहीं होगा, और यह राजकन्या होकर अपने मुँह से रतिदान माँगती है, इसका कहना न मानने में भी मेरा धर्म नहीं रहता, इसलिए अब इसकी इच्छा पूरी करना चाहिए, आगे जो मेरे प्रारब्ध में लिखा है वह मिट नहीं सकता। यह विचारकर राजा ने शर्मिष्ठा से भोग किया। फिर इसी तरह

देवयानी से छिपाकर कभी-कभी राजा उसके साथ भोग-विलास करने लगे। कुछ दिनों तक यह बात छिपी रही। जब द्रुह्य व अणु नाम के दो पुत्र शर्मिष्ठा के राजा से होकर तीसरा गर्भ रहा तब एक दिन शर्मिष्ठा देवयानी के पंखा हाँकती थी, उसी समय शर्मिष्ठा के दो बालक वहाँ आकर खड़े हुए। देवयानी ने पूछा—हे शर्मिष्ठा! तेरे यह दो पुत्र किस तरह उत्पन्न हुए और तीसरा गर्भ किससे रहा। शर्मिष्ठा बोलीं कि रात को किसी ऋषीश्वर ने आकर मुझसे स्वप्न में भोग किया था, उसी से दो बालक होकर तीसरा गर्भ रहा है। यह बात सुनकर देवयानी चुप हो रही, पर उसके मन में खटका हुआ, इसलिए कई दिन बीतने पर एक रोज देवयानी ने शर्मिष्ठा के मकान पर जाकर उन लड़कों से पूछा कि तुम्हारे पिता का क्या नाम है। तब बड़े बालक ने बतलाया कि मैं ययाति का बेटा हूँ। यह वचन सुनते ही देवयानी महाक्रोध से राजा के पास आकर बोली कि तुमने मेरे पिता के मना करने पर भी शर्मिष्ठा से भोग किया, इसलिए अब मैं तुम्हारे यहाँ नहीं रहूँगी। जब ऐसा कहकर देवयानी क्रोधवश अपने पिता के घर चली तब ययाति उसके पीछे विनय करता हुआ पैदल दौड़ा गया। पर उसने नहीं माना और अपने बाप से जाकर यह सब हाल कह दिया। राजा ययाति भी वहाँ पहुँचकर खड़ा हुआ। जब शुक्राचार्य ने जाना कि मेरे बरजने पर भी राजा ने शर्मिष्ठा से भोग करके सन्तान उत्पन्न किया है तब क्रोध करके कहा कि हे राजन्! तूने बल के अभिमान से मेरा कहना नहीं माना, इसलिए तुझे शाप देता हूँ कि बूढ़ा और निर्बल होकर स्त्रीप्रसंग करने योग्य न रहे और तेरा स्वरूप बिगड़ जावे। यह वचन उनके मुँह से निकलते ही उसी समय राजा बूढ़ा हो गया, उसके दाँत टूट गये, बाल श्वेत हो गये, आँख से कम दीखने लगा, तब हाथ जोड़कर बोला—महाराज! अभी तक मेरा मन संसारी सुख से नहीं भरा, एक बेर अपराध क्षमा कीजिए। यह दीन वचन सुनकर शुक्राचार्य ने अपनी बेटी का सुख विचारकर कहा कि हे राजन्! मेरा शाप फिर नहीं सकता, पर तेरे पाँचों पुत्रों में जो खुशी से तेरा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी तुझे दे,

तब तू फिर युवा हो जायगा। यह आशीर्वाद सुनते ही राजा प्रसन्न होकर देवयानी समेत राजमन्दिर पर चले आये। उन्हीं दिनों शर्मिष्ठा से पुरु नाम तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने अपने बड़े पुत्र से कहा कि तुम्हारे नाना ने हमको शाप देकर बूढ़ा बना दिया है, तुम अपनी जवानी हमको दो, तो थोड़े दिन और संसारी सुख कर लें। यदु ने समझा कि हमारी जवानी लेकर राजा मेरी माता से भोग करेंगे तो मुझको बड़ा अधर्म होगा। यह विचारकर उसने उत्तर दिया कि मैंने अभी तक संसारी सुख नहीं उठाया, इसलिए मैं अपनी जवानी नहीं दे सकता।

बड़े पुत्र का यह वचन सुनते ही राजा ने तुर्वसु आदि तीन बालक जो यदु से छोटे थे उनको बुलाकर यही बात कही। जब उन्होंने भी इसी तरह उत्तर दिया तब ययाति ने शर्मिष्ठा के छोटे बेटे पुरु से कहा कि हे पुत्र! तुम अपनी जवानी मुझे दो। अब तुम्हारे सिवा दूसरे का भरोसा मुझको नहीं है। यह दीन वचन सुनते ही पुरु हाथ जोड़कर बोला—हे पिता! मेरा तन आपने उत्पन्न व पालन किया है, इसलिए जवानी क्या वस्तु है, अपने प्राण तुम्हारे पर निछावर कर सकता हूँ। कदाचित् मैं सौ जन्म आपकी सेवा करूँ तो भी आपसे उऋण नहीं हो सकता। जो बेटा बिना कहे माता-पिता की सेवा करे, वह उत्तम है और जो कहने से करे वह मध्यम और जो कहने पर चिड़चिड़ाकर आज्ञा का पालन करे उसको निकृष्ट समझना चाहिए, और जो पुत्र माता-पिता की आज्ञा न माने वह मूत्र के तुल्य है।

पुरु की यह बात सुनकर राजा अति प्रसन्न हुआ और अपना बुढ़ापा उसे देकर उसकी जवानी आप ले ली, और अपने चारों पुत्रों को यह शाप दिया कि तुम लोग राजसिंहासन न पावोगे। जवानी लेकर राजा ने हजार वर्ष तक संसारी सुख देवयानी के साथ उठाया और बहुत-से यज्ञ व दान किया, पर उसका मन संसारी सुख से न भरा।

उन्नीसवाँ अध्याय।

राजा ययाति का बकरी व बकरे का एक इतिहास कहना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! राजा ययाति बहुत दिनों तक संसारी सुख में फँसा रहा। जब यज्ञादिक करने से उसके ज्ञान हुआ तब एक दिन उसने विचार किया कि हमने पुत्र की जवानी लेकर इतना सुख उठाया, तिस पर अभी तक इच्छा पूरी नहीं हुई। देखो, मिट्टी का घड़ा पानी डालने से भर जाता है और इन्द्रियाँ अति सुख पाने पर भी तृप्त नहीं होतीं। इसी तरह संसारी जाल में फँसे हुए मरने से मेरा जन्म अकार्थ होगा, इसलिए अब परलोक बनाने के लिए हरिभजन करना चाहिए। यह विचारकर राजा ने देवयानी से कहा—हे प्राणप्यारी! हमने अहेर खेलते समय वन में एक कौतुक देखा था, वह हाल कहते हुए हँसी आती है। देवयानी हाथ जोड़कर बोली—महाराज! मुझे भी वह चरित्र सुनाओ। राजा ने कहा कि ब्राह्मण की एक बकरी कुएँ में गिर पड़ी थी, उसको एक बकरे ने बाहर निकाला, सो बकरी ने उस बकरे को अपना स्वामी बनाकर बहुत दिन उसके साथ संसारी सुख उठाया। जब उस बकरी के दो पुत्र उत्पन्न हुए तब वह बकरा किसी दूसरी बकरी से फँस गया, इसलिए पहिली बकरी अनादर होने से अपने ब्राह्मण के यहाँ चली गई। उस ब्राह्मण ने अपनी बकरी की सहायता करके बकरे को बधिया कर दिया। जब बकरे ने ब्राह्मण से अति बिनती की और ब्राह्मण ने दयालु होकर फिर उसे ज्यों का त्यों बना दिया तब वह बकरा फिर संसारी सुख में फँस गया। यह वचन सुनकर देवयानी बोली—महाराज! वह बकरा बड़ा मूर्ख था जो बकरी के साथ भ्रष्ट हुआ। तब राजा बोले—यही दशा हमारी व तुम्हारी है। हे देवयानी! मनुष्य को चाहे संसार का सब धन, स्त्री व सातों द्वीपों का राज्य मिले और हजारों सन्तान होकर सब मनोरथ पावे तिस पर भी उसका मन संसारी सुख से नहीं भरता। जिस तरह आग में घी डालने से ज्वाला बढ़ती है उसी तरह प्रतिदिन तृष्णा अधिक होती जाती है। इसलिए अब विरक्त होकर हरिभजन करना चाहिए।

जब यह वचन देवयानी ने पसन्द किया तब राजा ययाति ने छोटे बेटे पुरु को जवानी फेरकर अपना बुढ़ापा उससे ले लिया और राजसिंहासन पर उसे बैठाकर, दूसरे चारों बेटों को चारों दिशाओं का राज्य बाँट दिया। आप देवयानी समेत बदरी-केदार में चले गये और परमेश्वर का तप व ध्यान करके मुक्त हुए।

बीसवाँ अध्याय।

पुरु के वंश की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! अब मैं राजा पुरु के वंश की कथा कहता हूँ, जिस कुल में तुमने जन्म लिया है, सुनो। पुरु के वंश में कई पीढ़ी बीतने पर दुष्यंत नाम का राजा बड़ा प्रतापी हुआ। एक दिन वह वन में अहेर खेलने गया तब उसने कण्व ऋषीश्वर की कुटी में एक कन्या अति सुन्दरी देखी और उस पर मोहित होकर पूछा—हे प्राणप्यारी! तू देवकन्या के समान किसकी बेटी है, कोई राजकन्या भी तेरे तुल्य न होगी, इसलिए तेरा स्वरूप मेरे हृदय में बस गया है। यह वचन सुनते ही शकुन्तला बोली—हे राजन्! मैं विश्वामित्र ऋषीश्वर और मेनका अप्सरा से उत्पन्न हुई हूँ। इस बात को कण्व ऋषीश्वर जानते हैं। आप मेरे स्थान पर टिककर जो आज्ञा दीजिए, कन्द मूलादिक व लोटे भर पानी से आपका सम्मान करूँ। यह बात सुनते ही राजा प्रसन्न होकर बोले—कन्या का भी स्वयंवर करना धर्म है। यह कहकर राजा बड़े प्रेम से रात्रि को उसके स्थान पर टिके और दोनों ने प्रसन्नता से आपस में गन्धर्व विवाह करके भोग किया। हरि इच्छा से उसी दिन उसके गर्भ रह गया। जब प्रातःसमय राजा शकुन्तला को उसी तरह छोड़कर राजमन्दिर पर चले गये तब कण्व ऋषीश्वर ने जाना कि इसके राजा से गर्भ रहा है। दशवें महीने एक बालक अति सुन्दर व ऐसा बलवान् उससे उत्पन्न हुआ, जो लड़कपन में सींक के धनुष-बाण से बाघों को मारने लगा। तब कण्व ऋषीश्वर बोले—हे शकुन्तला! तू अपने बालक को राजा के पास ले जा। जब ऋषीश्वर की आज्ञा से शकुन्तला ने अपना बालक लिए हुए राजसभा में जाकर कहा—

हे पृथ्वीनाथ ! मैं आपकी स्त्री हूँ, राजकुमार समेत आई हूँ। तब राजा बोले—मैं तुझे नहीं पहिचानता, तू कौन है ? और यह बालक किसका है। जब दुष्यन्त ने जान बूझकर यह झूठ वचन कहा तब राजसभा में यह आकाशवाणी हुई कि हे राजा ! शकुन्तला सच कहती है, यह बालक तुम्हारे वीर्य से उत्पन्न हुआ है, इसलिए तुम इन दोनों को अपने घर रक्खो, धर्मात्मा पुत्र अपने पिता को नरक जाने से बचा लेते हैं। जब यह आकाश-वाणी सब सभावालों ने सुनी तब राजा ने देवतों की आज्ञा से शकुन्तला को अंगीकार किया और उसे पुत्र समेत राजमंदिर में भेज दिया। उस बालक का नाम भरत रक्खा। राजा के मरने के उपरांत वही लड़का, जो परमेश्वर का अंश था, राजगद्दी पर बैठकर ऐसा चक्रवर्ती व प्रतापी राजा हुआ, जिसने एक सौ तेंतीस अश्वमेध यज्ञ किये और बहुत-से रत्नादिक ब्राह्मणों को दान दिये। उसके यज्ञों में इन्द्र कई बेर श्यामकर्ण घोड़ा चुरा ले गया, किन्तु राजा भरत अपने प्रताप व बल से घोड़ा छीन लाया। उसके राज्य में कोई दूसरा राजा अश्वमेध यज्ञ नहीं कर सकता था। जितने म्लेच्छ व दुःखदायी राजा पृथ्वी पर थे, सबका उसने नाश कर दिया और सातों द्वीपों के राजों को अपनी सेवा में रक्खा। अपने बल से दैत्यों को जीतकर इन्द्रादिक देवतों को देवलोक का राज्य दिला दिया। उसके राज्य में पर्वत व समुद्रादिक में अनेक तरह के रत्न, सोना और चाँदी आदि सदा इस वास्ते प्रत्यक्ष रहते थे कि जिसे जो इच्छा हो वह ले जावे। इसी तरह सत्ताईस हजार वर्ष भरत ने इन्द्र के समान चक्रवर्ती राज्य किया और तप करने से उसका पराक्रम बना रहा। राजा भरत ने अपने तीन विवाह विदर्भदेश के राजा की बेटियों से किये। जब हरिइच्छा से उसके कई पुत्र कुरूप उत्पन्न हुए तब रानियों ने इस डर से कि राजा भरत कहेंगे कि ये बालक हमारे वीर्य से नहीं हुए हैं, उन लड़कों को गंगा में फेंकवा दिया, इसलिए राजा भरत सन्तान न होने से चिंता में रहा करते थे। कुछ दिन बीतने पर राजा ने कण्व ऋषीश्वर से मन्त्र लिया, तब ऋषीश्वर ने पुत्र होने के लिए राजा भरत से यज्ञ कराया। उसी समय देवतों ने प्रसन्न होकर भारद्वाज नाम का बालक, जो ममता से हुआ था, लाकर भरत को दिया। राजा

ने उसका वितथ नाम रखकर पुत्र के समान पालन किया और भरत के मरने के उपरान्त वह राजा हुआ। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—महाराज! भारद्वाज किस तरह उत्पन्न हुआ था, उसकी कथा कहिए। शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! एक बेर बृहस्पति ने अपने बड़े भाई उतथ्य की स्त्री ममता से बरजोरी भोग किया सो उसके गर्भ रह गया। उसने अपने स्वामी के डर से बालक को पेट से गिरा दिया, वही पुत्र भारद्वाज था। जब बृहस्पति के समझाने और आकाशवाणी होने पर भी ममता ने उसका पालन नहीं किया तब मरुत देवता ने, जिसके नाम का यज्ञ भरत ने किया था, उस बालक को लाकर राजा को दे दिया। इस तरह भारद्वाज का जन्म हुआ।

इक्कीसवाँ अध्याय।

राजा वितथ के सन्तान की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! वितथ के वंश में कई पीढ़ी बीतने पर राजा रन्तिदेव महात्मा ऐसा हुआ कि राजसिंहासन पर न बैठकर अपना मन विरक्त कर लिया और अपनी स्त्री व एक पुत्र के साथ वन में जाकर परमेश्वर का तप व ध्यान करने लगा। उसने भोजन करना भी छोड़ दिया था, जब अपनी प्रसन्नता से कोई मनुष्य बिना माँगे भोजन दे जाता था, तो उसी को अपनी स्त्री व बेटे समेत खाकर वन में आनन्द से रहता था, नहीं तो भूखा रह जाता था। आप कन्द मूलादिक लाने में उद्योग नहीं करता था। एक बेर ऐसा संयोग हुआ कि भोजन न मिलने से अड़तालीस उपास उनको हो गये, उन्चासवें दिन थोड़ा अन्न कोई उनको दे गया। राजा ने उसे रसोई बनाकर तीन भाग करके जैसे ही चाहा कि भोजन करें वैसे ही नारायणजी बूढ़े ब्राह्मण का रूप धरकर परीक्षा लेने के लिए वहाँ आकर बोले—हे राजन्! मैं बहुत भूखा हूँ, मुझे भोजन दो। यह वचन सुनते ही रन्तिदेव ने बड़ी श्रद्धा से अपना भाग उसे खिला दिया। जब वह खाकर नारायणरूप ब्राह्मण बोले—अभी मेरा पेट नहीं भरा। तब रानी व राजकुमार भी अपना-अपना भाग उस

ब्राह्मण को खिलाकर आप तीनों मनुष्य ज्यों के त्यों भूखे रहे और ब्राह्मण-रूपी परमेश्वर आशीर्वाद देकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये। कई दिन और उनको बिना अन्न के बीत गये, तब फिर थोड़ा किसी ने लाकर उन्हें दिया। जैसे ही उन तीनों ने आपस में बाँटकर भोजन करना चाहा वैसे ही एक शूद्र ने आकर कहा कि मैं बहुत भूखा हूँ, मुझे भोजन दो। राजा ने अपना अतिथि समझकर सम्पूर्ण भोजन उसे दे दिया और आप तीनों मनुष्य उसी तरह रह गये। रानी व राजकुमार अन्न के बिना बहुत निर्बल हो गये थे, इसलिए राजा उनसे बोला कि जिस बर्तन में अतिथि ने भोजन किया है उसमें कुछ अन्न का अंश लगा होगा उसको धोकर पी लो। जब रानी व राजकुमार ने वह धोवन पीना चाहा तब एक डोम कुत्ते को साथ लिये हुए वहाँ आ पहुँचा और भूख से व्याकुल होकर राजा के सामने गिर पड़ा और रोकर कहने लगा कि मेरे प्राण निकले जाते हैं, सो यह बर्तन का धोवन आपके पीने योग्य नहीं है यह जूठन मेरा भाग समझकर मुझे दे दो, मैं इसे पीकर अपने प्राण बचाऊँ। राजा ने उस चांडाल में भी परमेश्वर का प्रकाश समझकर उसे दण्डवत् किया और रानी व राजकुमार डोम से बोले कि हम लोगों ने बहुत दिनों के बाद यह धोवन पीने की इच्छा की है। तुम दया करके इसे छोड़ दो तो हम पी लें। जब चांडाल ने नहीं माना तब वे दोनों वह धोवन का पानी भी उसे पिलाकर आप भूखे रह गये। जब परमेश्वर ने उन तीनों में इस तरह धर्म व धैर्य देखा तो उसी डोम से श्याम-वर्ण चतुर्भुजी स्वरूप शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये प्रकट होकर राजा, रानी और राजकुमार से कहा कि तुम्हें बड़ा धैर्य है। जब उन तीनों ने परमेश्वर का दर्शन पाकर विनयपूर्वक उनकी स्तुति की तब नारायणजी रन्तिदेव को अपने गले लगाकर बोले—हे राजन्! हम तुझसे अति प्रसन्न हैं, जो वरदान माँगो सो दें। रन्तिदेव हाथ जोड़कर बोला—महाराज! यही वरदान माँगता हूँ कि मेरी सब प्रजा सुख पावे, कोई दरिद्री न रहे और मेरा मन तुम्हारे चरणों में लगा रहे। परमेश्वर ने इच्छापूर्वक वरदान देकर राजा, रानी और राजकुमार को उसी तनु से विमान पर

बैठाकर वैकुण्ठ को भेज दिया। रन्तिदेव का गर्ग नामक दूसरा बेटा जो राजसिंहासन पर था उसके वंश में सब लोग उनकी कृपा से ब्राह्मण हो गये। पुरु के वंश में बृहत्क्षेत्र राजा हुआ। उसके वंश में हस्ती नाम का ऐसा प्रतापी राजा उत्पन्न हुआ जिसने हस्तिनापुर नगर बनाया। उसके तीन बेटे अजमीढ़, पुरुमीढ़ और दुर्मीढ़ नामक बड़े धर्मात्मा हुए। अजमीढ़ की सन्तान ब्राह्मण हो गई। उसके वंश में मुद्गल ऐसा ज्ञानी हुआ, जिसके नाम का गोत्र आज तक संसार में प्रकट है। मुद्गल के वंश में अहल्या नाम की कन्या महासुन्दरी उत्पन्न हुई और गौतम ऋषीश्वर को ब्याही गई। उसके गर्भ से शतानन्द लड़का हुआ और उसके सत्यवती नाम का बालक उत्पन्न हुआ। उसका वीर्य एक दिन उर्वशी अप्सरा को देखकर सरकण्ड के वन में गिर पड़ा, उस वीर्य से कृपाचार्य बालक और कृपी कन्या उत्पन्न हुई, जिन्हें राजा शन्तनु जो भारद्वाज के वंश में थे, अहेर खेलते समय वन में पड़ा हुआ देखकर अपने घर उठा लाये और लड़कों के समान उन दोनों को पाला। राजा शन्तनु के हाथ में यह गुण था कि जिसके मस्तक पर अपना हाथ रख दें उसका रोग छूट जावे। इसलिए जो रोगी उनके पास जाते थे वे अच्छे हो जाते थे। इस कारण संसार में उनका यश प्रकट हुआ कि राजा शन्तनु सबको सुख देनेवाले हैं। एक बेर उनके राज्य में पानी नहीं बरसा और प्रजा लोग अन्न के बिना दुःख पाने लगे तब राजा ने ऋषीश्वरों से पूछा कि हमने कौन अधर्म किया है जो मेरे राज्य में पानी नहीं बरसता। ऋषीश्वरों ने विचारकर कहा कि तुमने अपने भाई देवापी का भाग छीन लिया था, इसीलिए जल नहीं बरसता। तुम उसका भाग दे दो, नहीं तो अवर्षण से तुम्हारी प्रजा अति दुःख पावेगी। यह वचन सुनते ही राजा शन्तनु ने देवापी से जो वन में बैठा हुआ तप करता था, इस तरह भुलावा देकर बात चीत किया कि उसके मुख से कई वचन देव के विपरीत निकल आये, इसलिए देवापी का तपोबल घट गया, तब शन्तनु के राज्य में पानी बरसने से प्रजा ने सुख पाया। हे परीक्षित! राजा शन्तनु ऐसे प्रतापी हुए, जिनका यश संसार में छा रहा है।

बाईसवाँ अध्याय।

दिवोदास के वंश की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! मुद्गल का बेटा राजा दिवोदास बड़ा प्रतापी हुआ। उसके वंश में राजा द्रुपद बहुत तेजवान् उत्पन्न हुआ, जिसकी कन्या द्रौपदी को तुम्हारे दादा अर्जुन मत्स्य बेधकर ले आये और वह अर्जुन आदि पाँचों पाण्डवों की स्त्री हुई थी। राजा द्रुपद के धृष्टद्युम्न आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए। उसी धृष्टद्युम्न ने महाभारत में द्रोणाचार्य का शिर काटा था। अजमीढ़ के वंश में वृहद्रथ नाम का बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसके दो स्त्रियाँ थीं, सो एक रानी के सत्यजित् नाम का बालक उत्पन्न हुआ और दूसरी स्त्री से कोई पुत्र नहीं था, इसलिए राजा महापुरुषों की सेवा किया करते थे। एक दिन किसी ऋषीश्वर ने प्रसन्न होकर एक आम राजा वृहद्रथ को देकर कहा कि तू यह फल अपनी स्त्री को खिला दे, उसके पुत्र होगा। राजा ने वह आम लेकर अपनी बड़ी रानी को दिया। दोनों रानियाँ आपस में प्रेम रखती थीं, इसलिए आधा-आधा आम बाँटकर खा गईं। सो राजा की दोनों स्त्रियों के गर्भ रहा और दशवें महीने उनके पेट से आधे-आधे बालक, जिस तरह कोई खड़े मनुष्य को चीर डाले, उत्पन्न हुए। यह देखते ही राजा ने क्रोधित होकर उसको वन में फेंकवा दिया और आम बाँटकर खाने का हाल सुनकर राजा दोनों रानियों पर अति क्रोधित हुए। सो ईश्वर की इच्छा से जहाँ पर वे दोनों टुकड़े राजा ने फेंकवा दिये थे वहाँ जरा नाम की राक्षसी जा पहुँची और उसने अपनी माया से दोनों टुकड़ों को मिलाकर जोड़ दिया। वह बालक परमेश्वर की इच्छा से जी उठा तब वह राक्षसी उसको राजा के पास ले गई। उसे देखकर राजा ने अति प्रसन्न होकर उसका नाम जरासन्ध रक्खा। वह बड़ा बलवान् व तेजस्वी राजा हुआ, जिसको भीमसेन ने श्रीकृष्णजी की कृपा से दोनों टाँगे चीरकर मार डाला। जरासन्ध का बेटा सहदेव हुआ। उसके वंश में देवापी नाम का राजा बड़ा प्रतापी व धर्मात्मा हुआ, जिसने राजसिंहासन छोड़कर अपना मन विरक्त कर

लिया और उत्तराखण्ड में जाकर तप करने लगा। वह कलियुग के अन्त में चन्द्रवंश को फिर उत्पन्न करेगा। अब राजा शन्तनु के वंश की कथा जिस कुल में तुम हुए हो वर्णन करते हैं, सुनो। राजा शन्तनु की स्त्री से सल उत्पन्न हुआ। उसके वंश में राजा दिवोदास कौरव ऐसा प्रतापी जन्मा जिसके नाम से कुरुक्षेत्र तीर्थ प्रकट हुआ। राजा दिवोदास के पूर्वजन्म के संस्कार से कोढ़ हो गया था, सो एक दिन वह अहेर खेलते समय वन में जाकर गर्मी से व्याकुल हुआ और कुरुक्षेत्र में जाकर एक वृक्ष के नीचे बैठा। वहाँ पानी का एक कुण्ड देखकर जैसे राजा ने उसमें स्नान किया वैसे ही उसका कोढ़ छूट गया। वह अति प्रसन्न होकर उस कुण्ड को और दूसरे जो तालाब व कुण्ड वहाँ थे, सबको अच्छी तरह बनवा दिया, इसी कारण वहाँ का नाम कुरुक्षेत्र हुआ। उसके वंश में राजा दिलीप ऐसा प्रतापी हुआ, जिसने दिल्ली नगर बसाया। और राजा शन्तनु की दूसरी स्त्री गंगाजी से भीष्मपितामह महा बलवान् और धर्मात्मा हुए, जिन्होंने परशुरामजी से युद्ध किया। धनुष-विद्या में उनके तुल्य कोई नहीं था। राजा शन्तनु की तीसरी स्त्री सत्यवती से चित्रांगद और विचित्रवीर्य दो पुत्र उत्पन्न हुए। हे परीक्षित ! यह वह सत्यवती थी, जिसके साथ पराशर मुनि हमारे दादा ने कुमारपन में नौका में भोग किया था, उसी से वेदव्यास हमारे पिता उत्पन्न हुए। एक दिन सत्यवती का पुत्र चित्रांगद अहेर खेलने के लिए वन में गया तो चित्रांगद गन्धर्व ने उसको इस शत्रुता से कि मेरे समान इसने अपना नाम क्यों रखवाया, मार डाला। भीष्मपितामह अपने पराक्रम से अम्बा, अम्बिका व अम्बालिका नाम की तीन कन्याएँ काशीनरेश की स्वयंवर में से छीन लाये थे, सो उनमें दो का विवाह विचित्रवीर्य से हुआ। उनमें अम्बा अपने मन में राजा शाल्व की चाह रखती थी, इसलिए राजा विचित्रवीर्य ने उसको छोड़ दिया। राजा की अम्बिका व अम्बालिका से इतनी प्रीति हुई कि दिन-रात राजमंदिर में रहकर, उनके साथ भोग-विलास किया करते थे, इसलिए राजा क्षयी का रोग होने से विना संतान मर, गये। तब सत्यवती ने अपना वंश बढ़ाने के लिए अपने पुत्र वेदव्यास को,

जो पराशर मुनि से उत्पन्न हुए थे, बुलाकर कहा कि विचित्रवीर्य की दोनों स्त्रियों से एक-एक पुत्र उत्पन्न करो। तब वेदव्यासजी जो परमेश्वर का अवतार थे, बोले—हे माता! विचित्रवीर्य की दोनों स्त्री मेरे सम्मुख से नंगी होकर चली जावें तो मेरे देखने से उनके गर्भ रह जायगा और एक-एक पुत्र उत्पन्न होगा। जब अम्बिका अपनी सासु की आज्ञा से नंगी होकर वेदव्यास के सामने चली तब उसने लज्जावश अपने बालों से मुँह छिपाकर आँख बन्द कर लिया था, इसलिए उसके धृतराष्ट्र अन्धा पुत्र उत्पन्न हुआ और अम्बालिका लज्जा से अपने अंग में मिट्टी लगाकर उनके सामने गई थी, इसी कारण उससे राजा पाण्डु पिण्डरोगी उत्पन्न हुए। बिलरा नाम की विचित्रवीर्य की दासी नंगी होकर हँसती हुई वेदव्यासजी के सामने चली गई, सो उसके पेट से विदुरजी परम भागवत ने, जो धर्मराज का अवतार थे, जन्म लिया। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र गान्धारी स्त्री से हुए और राजा पाण्डु तुम्हारे परदादा को एक हिरणरूप ऋषीश्वर ने, जो राजा के डरा देने से भोग करने नहीं पाया, ऐसा शाप दिया था कि स्त्री भोग करते समय तुम मर जावोगे। इसके सिवाय राजा के पिण्डरोग हो गया था, इसलिए उनके संतान न थी। जब कुन्ती उनकी स्त्री ने अपने पति की आज्ञानुसार मंत्र के प्रताप से धर्म, इन्द्र और पवन देवताओं को बुलाकर उनसे भोग किया तब धर्म से राजा युधिष्ठिर, इन्द्र से अर्जुन और पवन से भीमसेन ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। फिर कुन्ती ने उसी मंत्र से अश्विनीकुमार देवता को बुलाकर नकुल व सहदेव दो पुत्र माद्री अपनी सवति से उत्पन्न किए। वे पाँचों भाई द्रौपदी से विवाह करके अपने अपने पास पारी बाँधकर उसको रखते थे। पाँचों भाइयों के एक-एक पुत्र द्रौपदी से उत्पन्न हुए, जिनको अश्वत्थामा ने मार डाला। राजा युधिष्ठिर के पौरवी नाम दूसरी स्त्री से देवक, भीमसेन के हिडम्बा राक्षसी से घटोत्कच, सहदेव के सहोत्रा पत्नी से विजय, नकुल के कर्णमती स्त्री से निर्मित्र और अर्जुन के सुभद्रा नाम की पत्नी, श्रीकृष्णजी की बहिन से, अभिमन्यु पुत्र बड़ा प्रतापी हुआ, जो तुम्हारा पिता था। अर्जुन के अलोपा नाम की तीसरी पत्नी से, जो नागकन्या थी, बभ्रु-

वाहन और ऐरावत दो पुत्र बड़े तेजवान् उत्पन्न हुए। उसमें ऐरावत को मणिपूरपती नामक उसके नाना ने अपने रास बैठाया और बभ्रुवाहन ने अर्जुन के साथ बड़ा भारी युद्ध किया था, उसकी कथा महाभारत के अश्वमेधपर्व में लिखी है। जब अश्वत्थामा ने तुझे मारने के लिए ब्रह्म अस्त्र चलाया तब श्रीकृष्ण वैकुण्ठनाथजी ने माता के पेट में तेरी रक्षा की। हे परीक्षित! जनमेजय आदि जो तेरे चार पुत्र हैं, उनमें जनमेजय बड़ा प्रतापी व चक्रवती राजा होगा और तुम्हारा बदला लेने के लिए ऐसा यज्ञ करेगा, जिसमें बहुत से सर्प जलकर मर जायँगे। शुभकर्म करने से उसका यश संसार में प्रकट होगा और तुम्हारे मरने के उपरान्त पच्चीस पीढ़ी तक हस्तिनापुर का राज्य इस वंश में रहेगा। हस्तिनापुर यमुनाजी में डूब जायगा तब तिमी नाम का राजा तुम्हारे वंश में होकर वहाँ पर सोबस्तीपुरी बसावेगा। उसके पीछे तुम्हारे वंश से राजगद्दी छूट जायगी। वेदव्यासजी हमारे पिता ने चारों वेद और सब पुराण अपने शिष्यों को पढ़ाए, पर श्रीमद्भागवत जो सब वेदों का सारांश है, किसी को न पढ़ाकर मुझे पढ़ाया था। वही अमृतरूपी कथा हम तुम्हें सुनाते हैं। जरासन्ध और ययाति के वंश में बहुत से राजा हुए, उनके नाम संस्कृत भागवत में लिखे हैं।

तेईसवाँ अध्याय।

यदुवंशियों की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! अब हम यदुवंशियों की कथा, जिस कुल में कृष्णावतार हुआ था, कहते हैं। उसके सुनने से मनुष्यों को सब मनोरथ मिलते हैं, सो तुम चित्त लगाकर सुनो। ययाति का यदु नाम बड़ा पुत्र, जो देवयानी से हुआ था, उसके वंश में कई पीढ़ी उपरान्त राजा सहस्रार्जुन ऐसा तेजस्वी उत्पन्न हुआ जिसने पचासी हजार वर्ष चक्रवर्ती राज्य किया। उसका नाम स्मरण करने से गया हुआ धन मिलता है। उसके हजार बेटों में नौ सौ पंचानबे राजकुमारों को परशुरामजी ने मार डाला, पाँच बेटे जो बचे थे उनमें जयध्वज बेटा से तालजंघ नाम का क्षत्रिय

हुआ। उसके वंश में मधु नाम का बड़ा प्रतापी राजा हुआ, इसी वास्ते श्रीकृष्णजी का नाम माधव कहा जाता है। मधु का पुत्र वृष्णी था, इसी से यदुवंशी वृष्णिवंशी और मधुवंशी कहलाते हैं। वृष्णी का बेटा शिशुबिन्द ऐसा धर्मात्मा हुआ, जिसके पास चौदह रत्न थे। उसने दश लाख स्त्रियों से अपना विवाह किया, सो हरिइच्छा से दश करोड़ पुत्र उसके उत्पन्न हुए। उनमें सबसे बड़ा पुत्र पुरुजित और छोटा पुत्र जामघ था। राजा जामघ की शैव्या नाम की स्त्री बाँझ थी, अनेक उपाय करने पर भी उसके सन्तान नहीं हुई, इसी कारण वह उदास रहा करती थी। एक बेर राजा जामघ विदर्भ देश के नृपति से लड़ने गया, वहाँ से एक अति सुन्दरी कन्या किसी भोजवंशी की छीन लाया। जब उस बाँझ स्त्री ने देखा कि मेरा स्वामी एक सुन्दरी अपने साथ रथ पर बैठाये लिए आता है, तब वह क्रोध से बोली कि तुम यह कन्या किसलिए लाए हो। राजा डरता हुआ अपनी स्त्री से बोला कि मैं तेरे लिए यह पतोहू ले आया हूँ। यह वचन सुनकर रानी ने हँसकर कहा कि मेरे पुत्र नहीं है, यह पतोहू किस तरह होगी। तब राजा ने उत्तर दिया कि पुत्र होने पर इस कन्या का विवाह उसके साथ करूँगा। परमेश्वर की इच्छा से उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि तू धैर्य धर, तेरे पुत्र उत्पन्न होगा। यह आकाशवाणी सुनते ही राजा व रानी ने बड़े हर्ष से विश्वेदेवों का पूजन किया। जब उनके आशीर्वाद और हरिइच्छा से उस बाँझ स्त्री के एक पुत्र अति सुन्दर व तेजस्वी उत्पन्न हुआ तब राजा ने उसका नाम विदर्भ रखकर वही कन्या उसे विवाह दी। फिर अपने बेटे को राजगद्दी देकर स्त्री-समेत वन में चला गया और परमेश्वर का ध्यान करके मुक्त हुआ। राजा विदर्भ धर्मपूर्वक राज्य करने लगा।

चौबीसवाँ अध्याय।

राजा उग्रसेन आदि का उत्पन्न होना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! राजा विदर्भ से तीन पुत्र कुश, कृथ और रोमपाद हुए। रोमपाद के वंश में जयद्रथ नाम का बड़ा प्रतापी

चन्देली का राजा हुआ, जिसके यहाँ शिशुपाल ने जन्म पाया। उसी कुल में देवावृद्ध और विभु दो पुत्र ऐसे धर्मात्मा व ज्ञानी हुए, जिनके सत्संग से छः हजार पैंसठ मनुष्यों ने मुक्ति पाई। विभु के वंश में सत्राजित और प्रसेन ने जन्म लिया। विदर्भ की सन्तान में युयुधान और सात्यकी बड़े बलवान् हुए। युयुधान के सुफलक पुत्र हुआ और सुफलक के गाँदनी नाम की स्त्री से अक्रूर आदि बारह बालक उत्पन्न हुए। ये सब वृष्णि वंशी कहलाये। यदु के वंश में राजा अन्धक बड़ा प्रतापी हुआ। उससे दुन्दुभी उत्पन्न हुआ। दुन्दुभी के आहुक नाम बालक और आहुकी कन्या हुई। आहुक से देवक और उग्रसेन दो पुत्र हुए। देवक के यहाँ देववान आदि चार बालक और देवकी आदि सात कन्याओं ने जन्म पाया। उग्रसेन के कंस आदि आठ पुत्र और आठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं वे सब कन्याएँ वसुदेवजी के छोटे भाई से ब्याही गईं। देवक ने देवकी आदि अपनी कन्याओं का विवाह वसुदेवजी से कर दिया। कुंतिभोज पाँचाल देश का राजा शूरसेन से बड़ी प्रीति रखता था, पर उसके कोई सन्तान न थी, इसलिए शूरसेन ने पृथा नाम की अपनी कन्या उसके पास बैठा दिया। इसी कारण पृथा का नाम कुन्ती हुआ और कुंतिभोज ने कुन्ती का विवाह राजा पाण्डु से कर दिया। युधिष्ठिर आदि उससे उत्पन्न हुए। जब कुन्ती ने बालापन में दुर्वासा ऋषीश्वर को अपनी सेवा से प्रसन्न किया तब ऋषीश्वर ने एक देवाहूत मंत्र कुन्ती को ऐसा सिखला दिया कि जिस मंत्र के पढ़ने से देवता चले आवें। सो कुन्ती ने कुमारपन में एक दिन सरस्वती के किनारे परीक्षा लेने के लिए वह मंत्र पढ़कर जैसे सूर्य देवता का आवाहन किया वैसे ही सूर्य भगवान् रथ पर बैठे हुए वहाँ आकर बोले—तूने मुझे किस वास्ते बुलाया। उनका तेज देखते ही कुन्ती भय से काँपती हुई हाथ जोड़कर बोली—महाराज! मैंने अपने मंत्र की परीक्षा लेने के लिए तुमको बुलाया था, सो आप दयालु होकर चले जाइए। यह वचन सुनकर सूर्य देवता बोले—हे कुन्ती! मेरा आना व्यर्थ नहीं हो सकता। अब मैं तेरे साथ भोग करके एक बालक तुझे दूँगा। यह वचन सुनते ही कुन्ती ने विनय किया—महाराज!

अभी मेरा विवाह नहीं हुआ, पुत्र होने से मेरी निन्दा होगी। यह सुनकर सूर्य भगवान् बोले—हे कुन्ती! तू धैर्य धर, तेरा लड़कपन ज्यों का त्यों बना रहेगा। ऐसा कहकर सूर्य देवता कुन्ती से भोग करके अपने स्थान पर चले गये। उसी समय परमेश्वर की इच्छा से कुन्ती के एक बालक अति सुन्दर व तेजवान् कुण्डल आदि पहिने कान की राह उत्पन्न हुआ। उसे देखकर कुन्ती को आश्चर्य हुआ और उसे सन्दूक में रखकर गंगा में बहा दिया। वही पुत्र कर्ण था, जो महाभारत में दुर्योधन की ओर से लड़ा था, जिसको तुम्हारे दादा अर्जुन ने मारा। वसुदेवजी की बहिन पृथा की कथा हमने तुम्हें सुनाई अब उनकी और चारों बहिनों का समाचार सुनो। दूसरी बहिन सत्यदेवी का विवाह कारुषदेश के राजा धर्म से हुआ। उससे दन्तवक्रादिक पुत्र जन्मे। तीसरी बहिन श्रुतिकीर्ति का विवाह धृष्टकेतु से हुआ, शत्रवन आदि ने उनके यहाँ जन्म लिया। चौथी बहिन राजदेवी का विवाह अवन्तीपुरी में जयसेन राजा से हुआ। पाँचवीं बहिन श्रतिश्रवा दमघोष चन्देली के राजा को ब्याही गई, जिसके पेट से शिशुपाल उत्पन्न हुआ। देवक की सात कन्याओं के सिवा वसुदेवजी के और ग्यारह स्त्रियाँ थीं। उन सबसे सन्तान हुई थीं, उनके नाम संस्कृत भागवत में लिखे हैं। देवकी के गर्भ से श्रीकृष्णजी त्रिलोकीनाथ, सात और बेटे तथा सुभद्रा नाम की कन्या ने जन्म लिया था, सो हम दशम स्कन्ध में श्यामसुन्दर के अवतार की कथा कहेंगे। अब द्रौपदी के विवाह का हाल संक्षेप में कहते हैं, सुनो। अर्जुन मत्स्यवेध कर द्रौपदी को स्वयंवर में से ले आया और अर्जुन आदि पाँचों भाइयों ने उसे अपने स्थान पर ले आकर कुन्ती से कहा कि हम एक वस्तु लाये हैं। कुन्ती उसे खाने का पदार्थ समझकर बोली—तुम पाँचों भाई आपस में बाँट लो। इसलिए माता की आज्ञानुसार पाँचों भाइयों ने द्रौपदी को स्त्री बनाकर रक्खा। जब राजा द्रुपद को यह बात अच्छी नहीं मालूम हुई तब युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि हम अपनी माता की आज्ञा टाल नहीं सकते। यह आश्चर्य देखकर राजा द्रुपद ने व्यासजी से पूछा कि महाराज! मेरा प्रण द्रौपदी के विवाह का अर्जुन ने पूरा किया, पर द्रौपदी को युधिष्ठिर

आदि पाँचों भाई अपनी स्त्री बनाना चाहते हैं, सो आपके निकट इस कन्या को किसकी स्त्री होना चाहिए। व्यासजी ने द्रुपद को अकेले में ले जाकर कहा—हे राजन् ! हम द्रौपदी के पूर्वजन्म की कथा कहते हैं, सुनो। एक बेर देवतों ने क्या देखा कि एक कमल का पुष्प बहुत अच्छा गंगाजी में बहा जाता है। तब इन्द्र बोला कि मैं जाकर देखता हूँ, यह पुष्प कहाँ से आया है। जब इन्द्र उस फूल का हाल मालूम करता हुआ जहाँ से गंगाजी का पानी निकला है वहाँ पहुँचा तो क्या देखा कि एक अति सुन्दरी स्त्री खड़ी हुई रोती है और उसके आँसू गंगा में गिरने से पुष्प होकर बहते हैं। यह हाल देखते ही इन्द्र ने आश्चर्य मानकर उस स्त्री से पूछा—तू कौन है ? यह सुनकर वह बोली कि मैं एक जगह चलती हूँ, तू भी साथ आ तो मेरा हाल तुझको मालूम होगा। यह बात कहकर वह स्त्री आगे चली और इन्द्र भी उसके साथ एक पर्वत पर चढ़ गया। वहाँ क्या देखा कि एक पुरुष और स्त्री अति सुन्दर व तेजवान् रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठे हुए आपस में कुछ खेल रहे हैं। जब उस पुरुष ने इन्द्र को देखकर उसका कुछ सम्मान नहीं किया तब इन्द्र ने अभिमान से मन में कहा कि मैं सब देवतों का राजा हूँ, किन्तु इसने मेरा कुछ आदर नहीं किया। उस पुरुष ने, जो अन्तर्यामी महादेव थे, जैसे ही इन्द्र की ओर देखकर हँस दिया वैसे ही इन्द्र मारे भय के सूख गया। उसकी यह दशा देखकर शिवजी ने कहा कि तुम यह प्रतिज्ञा करो कि फिर कभी अभिमान न करेंगे तो तुम्हारे प्राण बचें। जब इन्द्र ने उनके भय से वही प्रतिज्ञा की तब महादेव सिंहासन पर से उतरकर इन्द्र को पर्वत की कन्दरा में ले गये। वहाँ जाकर इन्द्र ने क्या देखा कि इन्द्ररूपी चार और पुरुष उस जगह बैठे हैं। उनको देखते ही इन्द्र घबराकर उसी जगह मारे भय के चुपचाप खड़ा हो गया। तब शिवजी ने इन्द्र से कहा कि जिस तरह तूने गर्व किया उसी तरह इन चारों मनुष्यों को भी अहंकार हुआ था, इसी कारण ये लोग कन्दरा में बन्द हैं। अब मैं नारायणजी से चाहता हूँ कि तुम इन चारों समेत संसार में जाकर जन्म लो। यह शाप सुनते ही चारों मनुष्य शिवजी के चरणों पर गिरकर अति विलाप करने लगे। तब भोलानाथ ने कहा कि तुम

लोग संसार में जन्म लेकर शुभकर्म करोगे और बड़े बलवान् होगे। तुम्हारे हाथ से बहुत शूरवीर युद्ध में मारे जायँगे। यह सुनकर उन्होंने विनय किया—हे महाप्रभो आपकी आज्ञानुसार हमारा जन्म मर्त्यलोक में अवश्य होगा, पर ऐसी दया कीजिए जिसमें देवतों के वीर्य से मनुष्य तन पावें। शिवजी ने कहा, बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। इसलिए वे पाँचों धर्मराज, पवन, इन्द्र और अश्विनीकुमार देवतों के वीर्य से युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव नाम से उत्पन्न हुए। जिस स्त्री के साथ इन्द्र पर्वत पर गया था उस मायारूपी स्त्री से शिवजी ने कहा कि तू भी मनुष्य तन में उत्पन्न होकर इन पाँचों की पत्नी होगी। सो हे राजन्! वही स्त्री आकर तेरे यहाँ द्रौपदी नाम की कन्या हुई है और उन्हीं पाँचों इन्द्रों ने राजा पांडु के घर जन्म लिया है। सो तुम इस बात की कुछ चिंता मत करो। यह हाल सुनकर राजा द्रुपद का संदेह छूट गया। कोई-कोई ऋषीश्वर ऐसा लिखते हैं कि द्रौपदी ने महादेवजी का तप किया था। जब शिवजी ने प्रसन्न होकर उससे कहा कि तू क्या चाहती है, तब द्रौपदी ने पाँच बेर पति-पति अपने मुख से कहा, इसलिए महादेवजी ने उसको ऐसा वरदान दिया कि तू पाँच मनुष्यों की स्त्री होगी। यह सुनकर द्रौपदी बोली—महाराज! मैंने पाँच पति होने के लिए तुम्हारा तप नहीं किया था। तब शिवजी ने कहा कि तूने पाँच बेर अपने मुख से पति माँगा, इसलिए मैंने तुझको पाँच स्वामी दिये। कदाचित् एक बार कहती तो हम तुझे एक पुरुष देते। अब जो वचन मेरे मुख से निकला वह फिर नहीं सकता। तू धैर्य रख, तेरे पाँचों पति आपस में झगड़ा नहीं करेंगे। तेरे भाग्य में इसी तरह लिखा था। कोई-कोई महापुरुषों ने ऐसा भी कहा है कि एक गौ रास्ते में चली जाती थी और पाँच साँड़ उस गौ के पीछे दौड़े जाते थे, सो द्रौपदी यह देखकर हँसने लगी, तब उस गौ ने द्रौपदी को शाप दिया कि तू मुझे देखकर हँसती है, इसलिए तू भी पाँच पुरुषों की स्त्री होगी, इसी कारण द्रौपदी के पाँच पुरुष हुए थे।

दसवाँ स्कन्ध।



श्रीकृष्णावतार की लीला व कथा।

दो० जन्म-मरण से रहित हैं नारायण करतार। हरिभक्तन के हेतु सों लेत भूमि अवतार ॥
जब पृथ्वी पर होत हैं अधिक पाप विस्तार। तबहीं सगुणै धरत हैं एकरूप अवतार ॥
युग द्वापर के अन्त में कंस कियो जब राज। साधु ऋषीश्वर दुख भयो दैत्यन बढ़े समाज ॥
यज्ञ होम की हानि करि परजा को दुख दीन। ऐसो पाप विचारकर भूमि भई आधीन ॥
जब सब देवन जाइकै कीन्हीं बहुत पुकार। तब धरि सगुणै रूपको दूरि कियो महिभार ॥

पहिला अध्याय।

राजा परीक्षित का शुकदेवजी से श्रीकृष्णावतार की कथा पूछना।

जब राजा परीक्षित को श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध की कथा पाँच दिन में सुनने से ज्ञान उत्पन्न हुआ और अपने मुक्त होने की राह दिखलाई दी तब उसने हाथ जोड़कर विनय किया—हे शुकदेव स्वामी महाराज! आपने सूर्यवंशी व चन्द्रवंशी राजाओं और ऋषीश्वरों की कथा, जो लोग परमेश्वर के तप व ध्यान में अपना जन्म बिताकर वैकुण्ठ में गये हैं, कही। वह कथा और श्रीनारायणजी की महिमा सुनकर मेरे मन को बोध हुआ। अब यदुवंशियों की कथा सुना चाहता हूँ, जिस कुल में श्रीकृष्णजी महाराज त्रिलोकीनाथ ने अवतार लेकर संसार में अनेक लीलाएँ मनुष्यों के मुक्त होने और हरिभक्तों को सुख देने के लिए की थीं। आपने कहा है कि परब्रह्म परमेश्वर सदा एकरूप रहते हैं, जन्म-मरण से रहित हैं, सो उन्होंने देवकीजी के पेट से किस तरह जन्म लिया, इस बात का सन्देह मेरे मन में हुआ है सो छुड़ा दीजिए। आपने यह भी कहा है कि बलभद्र ने देवकीजी के उदर में गर्भवास किया। फिर रोहिणीजी को उनकी माता क्यों कहते हैं, इसका हाल भी विधिपूर्वक

वर्णन कीजिए। मुझको इस कथा के सुनने से आलस्य न आकर प्रति-दिन सामर्थ्य होती जाती है। आप ज्यों-ज्यों यह कथा सुनाते हैं त्यों-त्यों अधिक प्यास में अमृत पिलाते हैं। जिस परमेश्वर की स्तुति करने में ब्रह्मादिक देवता हार मान गये, दूसरे को क्या सामर्थ्य है जो उनका गुणानुवाद वर्णन कर सके। मेरे पुरुषों ने श्रीकृष्णजी की दया से दुर्यो-धन और कर्ण आदि बड़े-बड़े वीरों को मारकर राजगद्दी पाई, और जिस समय द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने क्रोध करके चाहा कि पांडवों का नाम व वंश संसार में न रक्खें और मेरे प्राण लेने के लिए ब्रह्मास्त्र हमारी माता पर चलाया, उस समय श्यामसुन्दर ने मेरी रक्षा की। तीनों लोकों की उत्पत्ति व पालन करनेवाले हमारे सहायक व कुलपूज्य वही श्रीकृष्णजी अविनाशी पुरुष हैं, सो आप दया करके उनकी कथा सुनाइए।

दो० सुनिकै शुक बोले तभी राजा तू बड़भाग। माखन प्रभु सों या समय बाढ़यो है अनुराग॥

हे परीक्षित! तुमने श्यामसुन्दर की कथा पूछकर मुझे बड़ा सुख दिया। अब हम श्रीकृष्णजी का निर्मल यश तुमको सुनावेंगे। पर कई दिन से तुमने अन्न-जल नहीं किया, इसलिए तेरा चित्त ठिकाने न होगा, सो तुझे सावधान होकर यह कथा सुनना चाहिए। यह वचन सुनकर राजा बोले—हे स्वामी! आपने जो नवमस्कंध की कथा अमृतरूपी मुझे सुनाई है, वह अमृत कानों की राह पीने से मेरा पेट भर गया, इसलिए मुझे कुछ क्षुधा व तृषा नहीं है। शुकदेवजी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और पर-मेश्वर के चरणों में ध्यान लगाकर उनको दण्डवत् किया। छठवें दिन सोमवार से दशमस्कन्ध की कथा आरम्भ करके बोले—हे राजन्! द्वापर के अन्त में भजमान यदुवंशी के वंश में शूरसेन नाम का बड़ा प्रतापी राजा हुआ। राजा शूरसेन के मरिष्या नाम की स्त्री से पाँच कन्याएँ और वसुदेवादिक दश पुत्र उत्पन्न हुए। बड़े बेटे वसुदेवजी ने अपना पहिला विवाह राजा रोहिण की बेटी रोहिणी से किया। वसुदेवजी के सत्रह पटरानी थीं। जब उन्होंने अठारहवीं शादी देवकी से की, जो देवक की बेटी और कंस की चचेरी बहिन थी, तब यह आकाशवाणी हुई कि देवकी के आठवें गर्भ से राजा कंस का मारनेवाला उत्पन्न होगा। यह

आकाशवाणी सुनकर कंस ने वसुदेव व देवकी को कैद कर लिया और परब्रह्म परमेश्वर ने श्रीकृष्ण नाम से देवकी के गर्भ से जन्म लिया। इतनी कथा सुनकर राजा ने पूछा कि महाराज! किस तरह कंस उत्पन्न हुआ और क्योंकर श्यामसुन्दर मथुरा में जन्म लेकर गोकुल में गये, वह कथा विधिपूर्वक वर्णन कीजिए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उन दिनों यदुवंशी राजा आहुक मथुरापुरी का राज्य करता था। जब देवक और उग्रसेन दो पुत्र उसके उत्पन्न हुए और वह मर गया तब उसका बड़ा बेटा उग्रसेन महाप्रतापी राजा हुआ। उसकी रानी पवनरेखा अति सुन्दरी व पतिव्रता थी, वह आठों पहर अपने स्वामी की आज्ञा में रहती थी। एक दिन रानी पवनरेखा ऋतुस्नान से शुद्ध होकर अपने पति की आज्ञानुसार सहेलियों समेत वनविहार करने गई। वहाँ अति उत्तम फल-फूल लगे थे, अनेक रंग के पक्षी सोहावनी बोली बोलते थे, ठंडी मन्द सुगन्ध पवन चलती थी, एक ओर यमुनाजी लहरें लेती थीं, ऐसी शोभा देखकर पवनरेखा रथ से उतरकर वन में घूमने लगी। जब वह घूमती फिरती हुई सहेलियों से अलग होकर एक घने जंगल में अकेली जा पहुँची तब हरिइच्छा से अचानक द्रुमलिक नाम का राक्षस वहाँ आ निकला। वह पवनरेखा का रूप देखते ही उस पर मोहित हो गया। उसने भोग करने की इच्छा से अपना स्वरूप राजा उग्रसेन के समान बना लिया और सामने आकर रानी से भोग करना चाहा। पवनरेखा दिन को प्रसंग करना अधर्म विचारकर बोली—महाराज! दिन में भोग करने से लज्जा व धर्म का नाश और पाप होता है, इसलिए दिन में प्रसंग न करना चाहिए। इसी तरह अनेक बातें कहकर पवनरेखा ने अपने को बचाना चाहा, पर द्रुमलिक राक्षस ने, जो काम के वश हो रहा था, रानी का हाथ बरजोरी पकड़ लिया और पृथ्वी पर गिराकर उसके साथ भोग किया। पवनरेखा भी उसको अपना पति समझकर चुप हो रही।

हे राजन्! जब द्रुमलिक भोग करने के उपरांत अपना राक्षस रूप बनाकर रानी के सम्मुख खड़ा हो गया तब पवनरेखा उसको देखते ही अति लज्जित हुई और बड़े क्रोध से बोली—हे राक्षस अधर्मी चाण्डाल!

तूने छल करके मेरा धर्म नष्ट कर दिया, तेरे माता-पिता व गुरु को धिक्कार है, जिसने तुझे ऐसा ज्ञान सिखलाया। तेरी माता ऐसा कुपूत जनने से बाँझ रहती तो अच्छा होता। जो लोग मनुष्य का तन पाकर किसी का सत व धर्म बिगाड़ देते हैं उनको अनेक जन्म नरक भोगना पड़ता है। द्रुमलिक यह वचन सुनकर बोला—हे पवनरेखा! तू क्रोध करके मुझे शाप मत दे। तेरी कोख बन्द देखकर मुझको बड़ा सोच था। मैंने अपने धर्म का फल तुझे दिया। मेरे भोग करने से तुझे गर्भ रहेगा और बड़ा प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा। वह अपनी भुजाओं के बल से पृथ्वी के सब राजों को जीतकर चक्रवर्ती राजा होगा। परब्रह्म परमेश्वर पृथ्वी पर अवतार लेकर उससे लड़ेंगे। मेरा नाम पिछले जन्म कालनेमि था। मैं हनुमान्‌जी के हाथ से मारा गया था। अब द्रुमलिक राक्षस का जन्म पाकर तुझको बेटा दिये जाता हूँ। तुम किसी बात की चिंता मत करो। ऐसा कहकर द्रुमलिक अपने घर चला गया। पवनरेखा ने समझा कि परमेश्वर की यही इच्छा थी, होनेवाली बात बिना हुए नहीं रहती। ऐसा विचारकर उसने भी अपने मन को धैर्य दिया। जब सहेलियाँ रानी को मिलीं तब पवनरेखा का रंग व शृङ्गार बिगड़ा हुआ देखकर एक सहेली बोली—हे रानी, इतना विलंब तुमको कहाँ लगा और तुम्हारी यह क्या दशा हुई। यह सुनकर रानी ने कहा कि जब तुम लोगों ने मुझे इस वन में अकेली छोड़ दिया तब एक वानर ने आकर मुझको ऐसा सताया कि जिसके डर से अभी तक मेरा कलेजा धड़कता है, इसी कारण मेरी यह दशा हुई। यह बात सुनकर सहेलियाँ घबरा गईं और रानी को रथ पर बैठाकर राजमंदिर पर ले आईं। दश महीने के उपरांत माघ सुदी तेरस बृहस्पति के दिन जिस समय रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ उस समय ऐसी आँधी चली कि पृथ्वी काँपने लगी, हजारों वृक्ष गिर पड़े और अँधियारा होने, बादल गर्जने, बिजुली चमकने से दिन रात के समान हो गया। तारे टूटने लगे। राजा उग्रसेन ने पुत्र उत्पन्न होने का बड़ा उत्सव किया और याचकों को बहुत दान व दक्षिणा दिया। जब ज्योतिषियों से बालक की कुण्डली का फल पूछा तब पण्डितों ने

कहा कि महाराज! अपने पुत्र का नाम कंस रक्खो। यह बालक अति बलवान् होगा और राक्षसों को अपने साथ लेकर राज्य करेगा। देवता, ब्राह्मण, साधु, सन्त, हरिभक्त लोग इसके हाथ से दुःख पावेंगे। तुम्हारा राजसिंहासन छीनकर प्रजा को बड़ा दुःख देगा। जब इसके अधर्म करने से पृथ्वी दुःख पावेगी तब परब्रह्म परमेश्वर अवतार लेकर इसको अपने हाथ से मारेंगे। यह वचन सुनकर राजा पहिले तो बहुत उदास हुए फिर परमेश्वर की ऐसी ही इच्छा जानकर संतोष किया और ज्योतिषियों को सम्मानपूर्वक विदा करके पुत्र का पालन करने लगे। जब कंस पाँच-छः वर्ष का हुआ तब अनेक तरह के उपद्रव प्रजा पर करने लगा। कभी मथुरावासी लड़कों को बरजोरी पकड़कर वन में ले जाता और मारकर उनकी लोथ पहाड़ की खोह में रख आता। जो लोग उससे सयाने थे उनकी छाती पर चढ़कर गला दबाकर मार डालता था। कभी लड़कों को नहाने के वास्ते अपने साथ यमुना के किनारे ले जाकर पानी में डुबा देता था। जब इस तरह का पाप कंस करने लगा तब मथुरावासी अपने-अपने लड़कों को घर में छिपाकर रखने लगे। सब प्रजा उसके हाथ से दुःखी होकर आपस में कहती थी कि पापी कंस राजा उग्रसेन के वीर्य से उत्पन्न नहीं हुआ। यह कोई पापी है, धर्मात्मा राजा के घर जन्म लेकर प्रजा को दुःख देता है। जब राजा ने प्रजा को दुःख देने का हाल सुना तब कंस को बहुत डाटकर समझाया कि प्रजा को दुःख मत दे, पर वह राजा का कहना न मानकर प्रतिदिन प्रजा को अधिक पीड़ा देने लगा। राजा ने उसकी यह दशा देखकर बड़े सोच से मन में कहा कि ऐसे अधर्मी पुत्र होने से मैं बिना सन्तान के अच्छा था। जिसके कुपूत सन्तान उत्पन्न होती है उसका संसार में यश व धर्म नहीं रहता। इसी तरह बहुत चिन्ता करके राजा उग्रसेन पछताया करते थे। कंस पर उनका कुछ वश नहीं चलता था। जब कंस आठ वर्ष का हुआ तब अकेला मगध देश में जाकर जरासंध से, जो बड़ा प्रतापी राजा था, कुश्ती लड़ा। जरासंध ने उसको अपने से बलवान् जानकर समझा कि हम इससे युद्ध में न जीतेंगे, तब हार मानकर अपनी

दो बेटी कंस को ब्याह दीं। कंस दोनों स्त्रियों को साथ लेकर मथुरापुरी में आया और अपने पिता राजा उग्रसेन से कहा कि तुम राम नाम छोड़कर महादेवजी का नाम जपा करो। यह सुनकर राजा बोले कि मेरे कर्ता-धर्ता श्रीभगवान्‌जी हैं, उनका स्मरण छोड़ दूँ तो भवसागर किस तरह पार उतरूँगा। जब कंस ने पिता का यह वचन सुना तब क्रोधित होकर उनकी राजगद्दी छीन ली और आप सिंहासन पर बैठकर राज्यकाज करने लगा। उसने अपने राज्य में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई मनुष्य परमेश्वर का नाम न ले और यज्ञ, होम, दान, धर्म, तप, जप नारायणजी का न करे। जो कोई हमारी आज्ञा न मानेगा उसको मरवा डालेंगे। ऐसा ढिंढोरा पीटने से उसके राज्य में सब शुभकर्म बन्द हो गये। राजा कंस गौ, ब्राह्मण व हरिभक्तों को दुःख देकर दैत्यों के सम्मत प्रमाण राज्य करने लगा। उसने पृथ्वी के राजों को अपने बल से जीत लिया। तब एक दिन अपनी सेना साथ लेकर राजा इन्द्र से युद्ध करने चला। उस समय एक मंत्री ने, जो उग्रसेन के समय का नौकर था, कंस से कहा कि हे पृथ्वीनाथ! विना सौ अश्वमेध यज्ञ किए इन्द्रासन नहीं मिलता। आप अपने बल का घमंड न कीजिए। रावण और कुम्भकर्ण को अहंकार ने कैसा खो दिया था कि उनके कुल में कोई पानी देनेवाला नहीं रहा। यह वचन सुनकर वह इन्द्र मे लड़ने नहीं गया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब पृथ्वी पर राजा कंस के डर से यज्ञादिक शुभकर्म करना सबने छोड़ दिया और ब्राह्मण व ऋषीश्वर राक्षसों के हाथ से दुःख पाने लगे, पृथ्वी ऐसे अधर्मियों का बोझ सह न सकी तब उसने गौ रूप धरकर रोती हुई राजा इन्द्र के सामने जाकर विनय किया—महाराज! संसार में कंस और राक्षस लोग बड़ा पाप करते हैं, उन्हीं के डर से हरिभजन व यज्ञादिक शुभकर्म कोई नहीं करता। मुझे आज्ञा हो तो मर्त्यलोक छोड़कर पाताल को चली जाऊँ। यह वचन सुनते ही इन्द्र ने देवतों समेत ब्रह्मा के पास जाकर सब हाल कहा। ब्रह्माजी उन सबों को साथ लेकर कैलास पर्वत पर इस इच्छा से गये कि महादेवजी राक्षसों को दण्ड देने योग्य हैं, वे उन्हें मारकर पृथ्वी का दुःख

छुड़ावेंगे। जैसे ब्रह्मा वहाँ पहुँचे वैसे ही महादेवजी अन्तर्यामी बोले कि हे ब्रह्मा! इस पृथ्वी के भार उतारने की सामर्थ्य मुझे व तुमको नहीं है। इसका दुःख छुड़ानेवाले आदिपुरुष भगवान्‌जी हैं। पृथ्वी का बोझा वही उतारेंगे। यह बात कहकर शिवजी ब्रह्मा आदिक को साथ लिये हुए क्षीरसागर के किनारे चले गये। वहाँ हाथ जोड़कर सब देवता परब्रह्म परमेश्वर की स्तुति करने लगे—हे करुणानिधान! किसको सामर्थ्य है जो तुम्हारी महिमा वर्णन कर सके। आपने मत्स्यरूप धारण करके शंखासुर दैत्य को मारकर वेद समुद्र से बाहर निकाला। कच्छपरूप होकर मंदराचल पहाड़ अपनी पीठ पर लेकर चौदहों रत्न क्षीरसागर से प्रकट किये। वाराहरूप धरकर पृथ्वी को पाताल से बाहर निकाल लाये। देवतों की रक्षा करने के लिए वामनरूप होकर राजा बलि से पृथ्वीदान लिया। परशुराम अवतार लेकर सब क्षत्रियों का वध किया और पृथ्वी उनसे छीनकर ब्राह्मणों को दान कर दिया। रामचन्द्र का अवतार धरकर रावण आदि राक्षसों को मार डाला। जब-जब पृथ्वी पर दैत्य, राक्षस और पापी राजा गौ, ब्राह्मण और हरिभक्तों को दुःख देते हैं तब-तब आप उनकी रक्षा के लिए सगुण अवतार लेकर अधर्मियों को मारते हैं। सो इन दिनों पृथ्वी कंसादिक के पाप करने से दुःखी होकर तुम्हारी शरण में आई है, उस पर दयालु होकर रक्षा कीजिए। गौ, ब्राह्मण व हरिभक्तों को सुख दीजिए। जब ब्रह्मादिक देवतों ने इस तरह नारायणजी की स्तुति की तब आकाशवाणी हुई कि हे ब्रह्मा! मुझे पृथ्वी का दुःख मालूम हुआ, इसलिए हम सगुण अवतार लेकर उसका भार उतारेंगे। जन्म व मरण से हम कुछ प्रयोजन नहीं रखते, पर वसुदेव व देवकी ने पिछले जन्म में तप व ध्यान करके हमसे ऐसा वरदान माँग लिया है कि हम उनके पुत्र हों, और इसी तरह नन्द व यशोदा ने भी तप करके यह वरदान माँगा था कि तुम्हारी बाललीला का सुख देखें। इसलिए हम उनकी इच्छा पूर्ण करने के वास्ते मथुरा में वसुदेव व देवकीजी के घर जन्म लेंगे, वहाँ से गोकुल में जाकर नन्द व यशोदा को बालचरित्र दिखलावेंगे और कंसादिक अधर्मी राजों को

मारकर अपने भक्तों को सुख देंगे। सो तुम देवी व देवता लोग व्रज, गोकुल और मथुरा में पहिले से जाओ और यदुवंश व ग्वालवंश में हमारी लीला का सुख देखने के लिए जन्म लो। पीछे से हम भी चार स्वरूप धरकर अवतार लेंगे। सब देवता यह आकाशवाणी सुनते ही बड़े हर्ष से अपने-अपने घर आये। जब ब्रह्मा ने आकाशवाणी का हाल पृथ्वी को समझा दिया तब वह भी प्रसन्न होकर अपने स्थान पर चली आई। उनकी आज्ञानुसार देवता, मुनि, किन्नर व गन्धर्व आदि अपनी स्त्रियों समेत मथुरा व गोकुल में जन्म लेकर यदुवंशी व ग्वालबाल कहलाये। चारों वेदों की ऋचाओं ने भी ब्रह्मा से आज्ञा लेकर गोपियों का जन्म लिया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! अब हम देवकी के विवाह का हाल कहते हैं, सुनो। देवक नाम जो उग्रसेन का भाई था उसके छः कन्याएँ और चार पुत्र हुए। उसने अपनी छवों बेटी वसुदेवजी को ब्याह दीं। जब सातवीं कन्या देवकी उसके यहाँ उत्पन्न हुई तब देवता अतिहर्षित हुए। राजा उग्रसेन के यहाँ कंसादिक दस पुत्रों ने जन्म लिया। जब देवकी विवाह के योग्य हुई तब देवक ने राजा कंस से आज्ञा लेकर शुभ साइति में उसके विवाह का तिलक वसुदेवजी को भेज दिया। जब वसुदेव के पिता राजा शूरसेन बड़ी धूम-धाम से मथुरा में वसुदेवजी को ब्याहने आये तब राजा कंस अपने बाप, चाचा और सेना के साथ आगे जाकर बरातियों को बड़े आदर भाव से ले आया और जनवासा दिया। सबका यथायोग्य शिष्टाचार किया। वसुदेवजी को मड़वे में ले जाकर देवकी का विवाह विधिपूर्वक उनके साथ कर दिया। पन्द्रह हजार घोड़े, चार हजार हाथी, अठारह सौ रथ, दो सौ दासी व दास, भूषण-वस्त्र व बहुत सा द्रव्यादिक दहेज में देकर, बरातियों का भी सम्मान करके, बिदा किया।

दो० तब चढ़ाय रथ देवकी आप भयो रथवान।
पहुँचावन अति प्रीति सों चल्यो सहित अभिमान॥

जब कंस वसुदेव व देवकी का रथ हाँकता हुआ थोड़ी दूर मथुरा के बाहर गया तब यह आकाशवाणी हुई कि हे कंस! तू जिसको बड़े हर्ष से पहुँचाने जाता है उसके पेट में आठवाँ लड़का तेरा मारनेवाला उत्पन्न

होगा। यह आकाशवाणी सुनकर कंस मारे डर के काँपने लगा, घोड़ों की रास उसके हाथ से गिर पड़ी, उसने विचारा कि कोई कैसा ही नातेदार हो, पर अपने प्राण से प्यारा नहीं होता, इसलिए देवकी को अभी मार डालना चाहिए। वह न रहेगी तो उसके आठवाँ बालक मुझे मारनेवाला कहाँ से उत्पन्न होगा। यह बात विचारकर कंस रथ के भीतर घुस गया और देवकी के शिर के बाल पकड़कर उसे नीचे खींच लिया। नंगी तलवार निकालकर क्रोध से दाँत पीसता हुआ यों कहने लगा कि जिस वृक्ष में विष के समान फल लगे उसको जड़ से पहिले ही उखाड़ डालना चाहिए। जब वह वृक्ष नहीं रहेगा तब उसमें फूल व फल किस तरह लगेंगे। इसलिए देवकी को अभी मार डालूँ तो निर्भय राज्य करूँ। यह दशा देखकर जितने मनुष्य उस समय वहाँ थे सब चिन्ता करके रोने लगे, पर राजा कंस के डर के मारे किसी की सामर्थ्य नहीं थी जो कुछ कह सके। तब वसुदेवजी ने विचार किया कि अज्ञानी कंस को पाप और पुण्य का कुछ विचार नहीं है, इस समय मेरे क्रोध करने से देवकी के प्राण जायँगे, इसलिए क्षमा करना उचित है। क्योंकि जब बलवान् शत्रु क्रोध करे तब क्षमा करके वह अवसर बचा जाना चाहिए। जिस तरह ठण्डा लोहा गर्म लोहे को काट डालता है उसी तरह क्षमा करनेवाले मनुष्य अवसर पाकर अपने वैरी को जीत लेते हैं। ऐसा विचारकर वसुदेव ने राजा कंस के सामने हाथ जोड़कर विनय किया—हे पृथ्वीनाथ! संसार में तुम्हारे समान कोई दूसरा बलवान् और प्रतापी नहीं है, जो आपकी बराबरी कर सके। जहाँ सब लोग तुम्हारी छाया में रहते हैं, वहाँ आपको यह अनुचित है कि आपके समान शूरवीर होकर अपनी बहिन पर बिना अपराध खड्ग चलावें। स्त्रीवध का बड़ा पाप है, ऐसे अधर्म करनेवालों के अनेक पुरुषे नरक में पड़ते हैं। संसार में जो जन्मा वह एक दिन अवश्य मरेगा। अपना शरीर रहने के लिए चाहे जितने उपाय करे, पर यह तनु किसी तरह रह नहीं सकता। तरुणाई व राज्य भी कुछ काम न आकर, केवल यश व अपयश संसार में रह जाता है।

क० दाता को महीप मानधाता औ दिलीप ऐसे जाके यश आज हूँ लौं द्वीप द्वीप छाये हैं।

बलि ऐसो बलवान को भयो जहान बीच रावण समान को प्रतापी जग जाये हैं ।।
बान की कलान में सुजान द्रोण पारथ से जाके गुण दीनद्याल भारत में गाये हैं ।
कैसे कैसे शूर रचे चातुरी विरंचि जू की फेर चकचूर कर धूर में मिलाये हैं ।।

दो०अर्बखर्ब लों द्रव्य हैं उदय अस्त लों राज। तुलसी जो निज मरण है तौ आवै क्यहि काज।।

यह बात सुनकर कंस बोला—हे वसुदेव ! तुमने भी तो आकाशवाणी सुनी है इसका उपाय पहिले से करना चाहिए। जो मैं आज देवकी को नहीं मारता तो मेरी यह चिन्ता न छूटेगी। इसके बदले हम तुम्हारा विवाह दूसरी कन्या से कर देंगे और इसको मारकर निश्चिन्त हो जायँगे। यह वचन सुनकर ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों ने, जो उसके साथ थे, कंस से कहा कि वेद व शास्त्र में बहिन का मारना बड़ा पाप लिखा है, ऐसा अधर्म तुमको न करना चाहिए। जब कंस ने ब्राह्मणों का समझाना भी नहीं माना तब वसुदेवजी ने विचारा कि यह पापी अपनी टेक पर है, कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें देवकी के प्राण बचें। ऐसा विचारकर वसुदेव ने कंस के कहा—महाराज ! एक विनती मैं करता हूँ सुनिए, आकाशवाणी के अनुसार आप देवकी के पुत्र से अपने प्राण का डर रखते हैं, देवकी से तो कोई खटका नहीं है, इसलिए देवकी को बिना अपराध जानकर छोड़ दीजिए, इसके जो बालक उत्पन्न होगा उसे मैं तुम्हारे पास पहुँचा दूँगा। इस बात के साक्षी सूर्य और चन्द्रमा हैं। कंस ने यह बात सुनकर देवकी को छोड़ दिया और उनसे बोला कि इस समय तुमने मुझे अपराध से बचाया। ऐसा कहकर उसी जगह से वसुदेव व देवकी को विदा कर दिया और आप राजमन्दिर पर चला आया। वसुदेवजी देवकी समेत अपने घर को चले गये। जब कुछ दिनों में देवकी के पुत्र उत्पन्न हुआ और वसुदेवजी ने उसी समय रोता हुआ बालक लाकर कंस के आगे रख लिया तब कंस ने हँसकर कहा—हे वसुदेवजी ! तुम बड़े सच्चे हो, तुमने हमसे कुछ कपट नहीं किया, हमारे भले के वास्ते अपने पुत्र का मोह छोड़कर रोता हुआ बालक मेरे सामने रख दिया। इस बालक से मुझे कुछ डर नहीं है, इसे तुम अपने घर ले जाओ। वसुदेवजी प्रसन्न होकर उसे अपने घर ले चले, पर कंस

को अधर्मी समझकर पीछे देखते और यह विचार करते जाते थे कि कदाचित् फिर बुलाकर मार न डाले। उसी समय हरिइच्छा से नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। कंस ने उनको बड़े आदर भाव से बैठाया और उनके चरण धोकर विधिपूर्वक पूजन किया। नारदजी ने कहा—हे कंस! तूने वसुदेव का बालक क्यों फेर दिया, तू यह नहीं जानता कि वसुदेवजी की सेवा करने के वास्ते सब देवताओं और ऋषीश्वरों ने गोकुल व मथुरा में जन्म लिया है। देवकी से आठवें गर्भ में पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्रीकृष्णजी अवतार लेकर तुमको राक्षसों समेत मारेंगे। तुम्हारे पिता आदि सब यदुवंशी देवतों का अवतार हैं, ये सब तुम्हारे वैरी हैं। इनको तुम अपना मित्र न समझो। ऐसा कहकर नारद मुनि ने आठ रेखा पृथ्वी पर खींच दी और कंस को दिखलाकर गिनाया तो दोनों ओर से आठवीं लकीर अन्त की ठहरी। तब नारदजी ने कंस से कहा कि तुम यह नहीं जानते कि किस आठवें बालक से तुम्हारी मृत्यु है। जब यह बात समझाकर नारद मुनि चले गये तब कंस ने उसी समय वसुदेवजी को बालक समेत बुला भेजा और लड़के को पत्थर पर पटककर मार डाला। वसुदेव और देवकी को कैद कर लिया। अपने माता-पिता के समझाने पर उनसे कहा कि मैं अपने प्राण बचाने के लिए देवकी के पुत्रों को अवश्य मार डालूँगा। कंस ने अपने बाप उग्रसेन को वसुदेव और देवकी का सहायक और अपना शत्रु समझकर उनको भी कैद कर लिया। प्रलम्ब, बकासुर, केशी और अघासुर आदि राक्षसों को बुलाकर आज्ञा दी कि नारदजी हमसे कह गये हैं कि सब ऋषीश्वरों और देवतों ने मथुरा व गोकुल में आकर जन्म लिया है, उन्हीं लोगों में श्रीकृष्णजी भी अवतार लेंगे, सो तुम लोग जितने यादववंशी मथुरा व गोकुल में पावो सबको मार डालो।

दूसरा अध्याय।

श्रीकृष्णजी का देवकी के उदर में गर्भवास करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! इसी तरह पाँच पुत्र और देवकी

के उत्पन्न हुए, सो वसुदेवजी ने अपने वचन के प्रमाण उनको भी कंस के पास पहुँचा दिया और उसने उनको भी मार डाला। कंस की आज्ञानुसार प्रलम्ब और बकासुर आदि राक्षसों ने मथुरा में जाकर जितने यदुवंशियों को खाते, पीते, सोते, बैठते, चलते व फिरते पाया सबको बाँधकर ले आये और कंस ने किसी को पानी में डुबाकर, किसी को आग में जलाकर, किसी का गला दबाकर मार डाला। जो यदुवंशी उसके मारने से बचे वे लोग अपने लड़के-बालों समेत मथुरा नगर छोड़कर पांचाल आदि देश में जा बसे। वसुदेवजी ने अपनी स्त्री रोहिणी को अपने मित्र नन्दजी के यहाँ गोकुल में भेज दिया। नन्दजी ने उसको बड़े सम्मान से अपने यहाँ रक्खा। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—महाराज! नारद मुनि ऐसे ज्ञानी और हरिभक्त थे, उन्होंने कंस को ऐसी सम्मति देकर वसुदेवजी के बालकों और यदुवंशियों का बध क्यों कराया, इसका क्या कारण था? शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! नारद मुनि ने इस वास्ते कंस के हाथ से यह पाप कराया कि अधर्म करने से उसके पिछले जन्म का पुण्य क्षीण हो जावे और श्रीकृष्णजी जल्दी अवतार लेकर उसे मार डालें। सो हे परीक्षित! जब कंस देवताओं और ऋषीश्वरों को, जिन्होंने यदुकुल में जन्म लिया था, अनेक तरह के दुःख देने लगा और उसने वसुदेवजी के छः पुत्र मार डाले तब वसुदेव और देवकी ने हरिचरणों का ध्यान करके बड़ी करुणा से विनती की कि हे महाप्रभो! कंस हमको निर्वंश किये डालता है, अब जल्दी सुधि लेकर इस दुःख से छुड़ाओ।

दो० विपतिविनाशन दुखहरण जनरंजनसुरराय। अब हमको कोऊ नहीं तुम बिन और सहाय॥

जब इसी तरह वसुदेव और देवकी ने अति विलाप किया तब परब्रह्म परमेश्वर अन्तर्यामी दीनदयालु ने यह विचारा कि देवता और मुनि आदि मथुरा व गोकुल में जन्म ले चुके, अब पहिले लक्ष्मणजी बलभद्र नाम से, फिर हम वासुददेव नाम से, भरतजी प्रद्युम्न, शत्रुघ्न अनिरुद्ध और सीताजी रुक्मिणी नाम से संसार में अवतार लें। ऐसा विचारकर उन्होंने गर्भ बलभद्रजी का देवकी के पेट में स्थिर कर दिया और अपनी आँख से

योगमाया देवीरूप को प्रकट किया। जब वह देवी नारायणजी के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हुई तब उससे कहा कि तुम भी मथुरापुरी में, जहाँ राजा कंस मेरे भक्तों को दुःख देता है, जावो और सातवाँ गर्भ बलभद्रजी का जो देवकी के पेट में है उसे निकालकर रोहिणी के उदर में धर दो। यह भेद कोई दुष्ट न जाने। इस काम के करने से कलियुग में तेरा नाम दुर्गादेवी होगा और तेरा बड़ा माहात्म्य होगा। संसारी जीव तेरी पूजा करने से अपना मनोरथ पावेंगे। संसार में बलभद्रजी का नाम संकर्षण और बलराम आदि तथा तेरे भी अनेक नाम होंगे। यह काम करने के उपरान्त तू यशोदा के गर्भ से जन्म ले और हम भी वसुदेवजी के घर जन्म लेकर गोकुल में आते हैं। यह बात सुनकर परब्रह्म परमेश्वर की योगमाया परिक्रमा करके मोहनीरूप से मथुरा में आई और देवकीजी के पेट से बलभद्रजी को निकाल लिया और गोकुल में ले जाकर रोहिणी के पेट में धर दिया। पर यह हाल रोहिणी को कुछ नहीं मालूम हुआ। योगमाया ने वसुदेव और देवकी को स्वप्न दिया कि मैंने तुम्हारा लड़का गर्भ से निकालकर रोहिणी के पेट में धर दिया है, तुम किसी बात का सोच मत करना। ऐसा स्वप्न देखकर वसुदेव व देवकी नींद से जागकर आपस में कहने लगे कि भगवान् ने यह बात बहुत अच्छी की, पर गर्भपात होने का हाल कंस से कहला देना चाहिए, नहीं तो वह पीछे न मालूम क्या दुःख दे। जब वसुदेवजी ने ऐसा विचार-कर एक चौकीदार से गर्भ गिर जाने का हाल कंस को कहला भेजा तब उसने प्रसन्न होकर चौकीदार से कहा कि आठवें गर्भ रहने का हाल तुरन्त कहना। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब श्रावण सुदी चतुर्दशी बुधवार को बलभद्रजी ने रोहिणी के पेट से गोकुल में जन्म लिया, योगमाया ने यशोदा के उदर में जाकर गर्भवास किया और वैकुण्ठनाथ जगत् के मंगल करनेवाले देवकी के गर्भ में आये तब उनका प्रकाश आने से देवकी का मुख सूर्य के समान चमकने लगा।

दो० माखनप्रभुजू गर्भ में वास कियो जब आय। शिव ब्रह्मादिक आनकर अस्तुति करें सुनाय॥

कैद होने से पहिले एक दिन देवकी व्रत रखकर यमुना-स्नान करने

गई थी। वहाँ यशोदा से भेंट हुई। जब दोनों ने आपस में कंस के दुःख देने की चर्चा की तब यशोदा ने देवकी से कहा कि मैं अपना लड़का तुझे देकर तेरे बेटे का पालन कर दूँगी। उसके बाद दोनों अपने घर चली गईं। जब देवकी के आठवाँ गर्भ रहा तब कंस ने यह हाल सुनते ही बन्दीखाने में जाकर बड़े-बड़े राक्षसों का पहरा बैठा दिया और वसुदेव से कहा कि तुम अपने मन में कुछ कपट न रखकर आठवाँ बालक जब उत्पन्न हो उसी समय मेरे पास पहुँचा देना। तुम्हारे ही कहने से मैंने देवकी को जीवित छोड़ दिया था। ऐसा कहकर कंस ने वसुदेव व देवकी के हथकड़ी व बेड़ी डालकर कोठरी में बन्द कर दिया और ताला देकर अनेक राक्षसों की चौकी वहाँ बैठाकर राजमन्दिर पर चला आया। उस दिन अतिभय से उपवास करके सो रहा, दूसरे दिन फिर बंदीखाने में जाकर देवकी के मुख का प्रकाश देखकर कहने लगा कि जैसा तेज, इस गर्भ में दिखलाई देता है वैसा प्रकाश और गर्भों में नहीं था, इसलिए जान पड़ता है कि मेरा काल इसी गर्भ में है। जब राजा कंस को देवकीरूप हरिमन्दिर का दर्शन करने से ज्ञान प्राप्त हुआ तब उसने कहा कि देवकी को अभी मार डालता, पर संसार के अपयश व पाप से डरता हूँ। ऐसा प्रतापी राजा होकर गर्भवती स्त्री को क्या मारूँ। ऐसा अधर्म करने से यश, पुण्य और आयु की हानि होती है। जो बालक जन्मेगा उसी को मारूँगा। यह विचारकर वह अपने घर चला आया और रखवारी करनेवालों से कह दिया कि जिस घड़ी बालक उत्पन्न हो उसी समय मुझे संदेशा देना। चौकी रहने पर भी अपने प्राण के डर से नित्य वहाँ जाकर सुध ले आता था। गर्भ का तेज देखकर आठों पहर उसको खाते-पीते, चलते-फिरते बालरूपी श्रीकृष्णजी की मूर्ति दिखलाई देती थी, सो उस रूप के डर से दिन-रात वह व्याकुल रहता था। वसुदेव व देवकी दुःख से व्याकुल होकर हरिचरणों का ध्यान करते थे। जब गर्भ के दिन पूरे हुए तब श्यामसुन्दर ने वसुदेव व देवकी को यह स्वप्न दिया कि तुम शोक छोड़कर धैर्य रक्खो, मैं जल्दी अवतार लेकर तुम्हारा दुःख छुड़ाता हूँ। जब यह स्वप्न देखकर वे दोनों जाग उठे

तब देवकी ने वसुदेव से कहा कि धर्म छूट जावे तो कुछ डर नहीं, पर इस बालक को कंस से छिपाना चाहिए। यह सुनकर वसुदेवजी बोले—हे प्राण-प्यारी! इस बन्दीखाने में पड़े हैं, किस तरह छिपावेंगे। यह कहकर वे दोनों अति विलाप करके रोने लगे तब उसी समय ब्रह्मा और महादेव आदि देवता इस रूप से जिसमें उनको कोई न देखे वहाँ आये और हाथ जोड़कर वेदमंत्र से गर्भस्तुति करने लगे कि हे परब्रह्म परमेश्वर सत्यरूप! आप तीनों काल में सच्चे रहते हैं, इस वास्ते हम लोग तुम्हारी शरण में आये हैं। यह संसाररूपी वृक्ष आपकी माया से उत्पन्न होकर तुम्हारे आश्रय पर रहता है, इसकी रक्षा व पालन करने के वास्ते आप अनेक रूप धरकर सब जीवों को सुख देते हैं। जो भक्त तुम्हारे नाम का स्मरण व स्वरूप का ध्यान करता है उसके भवसागर पार उतरने में कुछ संदेह नहीं रहता, और जो लोग अपने ज्ञान व तप व यज्ञादिक शुभ कर्म करने का अभिमान रखते हैं और तुम्हारी भक्ति नहीं करते, वे अवश्य धोखा खाते हैं। यज्ञादिक कर्म करने से मुक्ति नहीं होती। तुम्हारा प्रकाश सबके तनु में बराबर रहकर पाप व पुण्य का गवाह होता है। आप किसी के दुःख व सुख से कुछ प्रयोजन नहीं रखते। सो हे परब्रह्म परमेश्वर! यदि आप सगुण अवतार धारण न करें तो संसारी जीव किस नाम का स्मरण करके किस लीला को गाकर भवसागर पार उतरें। आप जन्म व मरण से रहित हैं, केवल अपने भक्तों का उद्धार करने के वास्ते अवतार लेते हैं। जिस तरह आपने मत्स्य व कच्छप आदि अवतार धारण किया था उसी तरह अब भी पृथ्वी का भार उतारने, हरिभक्तों को सुख देने और अधर्मी राक्षसों को मारने के वास्ते यदुकुल में अवतार लेकर अपनी लीला कीजिए। देवता लोग यह स्तुति करके देवकी व वसुदेव से आकाशवाणी की तरह बोले कि जिनके दर्शन के वास्ते हम लोग त्रिभुवन में घूमते हैं और उनका दर्शन नहीं पाते, वही आदिपुरुष नारायण तुम्हारे यहाँ अवतार लेकर सब दुष्टों को मारेंगे और पृथ्वी का बोझ उतारकर तुमको सुख देंगे। तुम्हारी कृपा से उनका दर्शन हमें भी मिलेगा। अब तुम लोग कंस से मत डरो, उसकी मृत्यु निकट आई है। वसुदेव

और देवकी को यह आकाशवाणी सुनकर आश्चर्य हुआ और यह विश्वास हुआ कि अब जल्दी नारायणजी आकर हमारा दुःख छुड़ावेंगे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस तरह स्तुति करके ब्रह्मादिक देवता अपने-अपने स्थान को चले गये।

—:○:—

तीसरा अध्याय।

श्रीकृष्णावतार की कथा।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब वैकुण्ठनाथ गर्भ में आये तब सबको परमानन्द हो गया। सब वृक्षों में ऋतु व अनऋतु के फूल व फल लगकर नदी व नाले पानी से भर गये। मोर आदि पक्षी आपस में कलोल व विहार करने लगे। सबके घर में मंगलाचार होने लगा। ब्राह्मणों ने यज्ञ करना आरम्भ किया। साधुओं के चित्त प्रसन्न हो गये। देवता प्रसन्न होकर मथुरापुरी पर फूल बरसाने लगे। आकाश में घटा छा गई। किन्नर व गन्धर्वों ने बाजे बजाकर परमेश्वर के भजन गाना आरम्भ किया। अप्सराएँ अपने-अपने विमानों पर नाचने लगीं। भादों बदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र में आधी रात को श्रीकृष्ण महाराज ने इस स्वरूप से अवतार लिया—

दो० हेमवरण पीताम्बर माथे मुकुट अनूप। शंख चक्र अम्बुज गदा धरे चतुर्भुज रूप॥
चौ० कानन में कुण्डल छबि छाजै। उर मुक्तन की माल बिराजै॥
मुख आभा कछु कही न जाई। भानु कोटि प्रकटे मनु आई॥

हे राजन्! श्यामसुन्दर मेघवर्ण कमलनयन ने इस स्वरूप से वसुदेव व देवकी को अपना दर्शन दिया। तब दोनों ने ज्ञान की दृष्टि से उन्हें परमेश्वर का अवतार समझा और हाथ जोड़कर विनय किया—हे त्रिभुवनपति अन्तर्यामी! हम तुम्हारे चरणों को दंडवत् करते हैं। जब आपकी स्तुति करने में ब्रह्मा, महादेव, शेष और गणेश भी समर्थ नहीं हैं, तुम्हारे भेद व अन्त को नहीं पहुँच सकते तब हमारी क्या सामर्थ्य जो आपकी स्तुति करें। जब जब गौ, ब्राह्मण व हरिभक्तों के दुःख पाने से पृथ्वी पर बोझा होता है तब तब आप एक रूप धरकर पृथ्वी का भार उतारते हैं। हमारे बड़े भाग्य

हैं, जो आपने दर्शन देकर जन्ममरण से उद्धार किया। अब तुम्हारे चरणों के प्रताप से हमारा सब दुःख छूट जायगा। जब यह स्तुति करके वसुदेव व देवकी ने अपनी दुर्दशा उनसे कही तब श्रीकृष्णजी बोले कि अब तुम कुछ सोच न करो। तुमने पिछले जन्म बड़ा उग्र तप करके मेरे चरणों का ध्यान किया था। जब हमने प्रसन्न होकर अपना दर्शन दिया तब तुमने हमसे यह वरदान माँगा कि तुम्हारे ऐसा पुत्र मेरे उत्पन्न हो, सो मेरे समान दूसरा नहीं था इसलिए मैंने तुम दोनों की इच्छा पूर्ण करने और पृथ्वी का भार उतारने के वास्ते अवतार लिया है। सो तुमको अपने पिछले जन्म का हाल भूल गया, इसलिए पूर्वजन्म की सुधि कराने के वास्ते इस स्वरूप से मैंने तुमको दर्शन दिया। अब तुम इसी समय मुझे गोकुल में ले जाकर यशोदा की गोद में सुला दो। एक कन्या यशोदा के उत्पन्न हुई है उसे लाकर कंस को दे दो। नन्द व यशोदा ने भी मेरी बाललीला का सुख देखने के लिए पिछले जन्म तप किया है, सो थोड़े दिन बाल-चरित्र उन्हें दिखलाकर फिर कंस को मारकर आ मिलूँगा। तुम धैर्य रक्खो। यह सुनकर देवकी बोली—हे करुणानिधान! यह अपना स्वरूप अन्तर्धान कर लो। ऐसा सुनकर श्रीकृष्णजी बालक होकर रोने लगे। उन्होंने अपनी माया ऐसी फैला दी कि वसुदेव व देवकी ने वह ब्रह्मज्ञान भूलकर उस बात को स्वप्न के समान जाना। तब वसुदेवजी पुत्र होने से अति हर्षित होकर दश हजार गौ का संकल्प मन में किया व श्रीकृष्णजी को गोद में उठाकर छाती से लगा लिया। वसुदेव व देवकी ठण्ढी साँस लेकर चिन्ता करने लगे। देवकी ने वसुदेवजी से कहा कि इस बालक को कहीं छिपा दीजिए तो कंस के हाथ से बच जाय। तब वसुदेवजी ने उसे उदास देखकर कहा—हे प्रिये! मैं कहाँ छिपाऊँ, जो कुछ मेरे कर्म में लिखा है वही होगा। यह वचन सुनकर देवकी हाथ जोड़कर बोली।

दो०तब देवी पति सों कह्यो नाहीं और उपाव। माखन प्रभु को गोद ले गोकुल में ले जाव॥

हे स्वामी! वहाँ आपकी स्त्री रोहिणी व मेरी मित्राणी यशोदा और तुम्हारे सखा नन्दजी रहते हैं, वे लोग बालक की रक्षा व पालन अच्छी

तरह करेंगे। इतना सुनकर वसुदेवजी बोले कि इस बन्दीखाने से किस तरह ले जाऊँ। ऐसा कहते ही परमेश्वर की इच्छा से वसुदेवजी की बेड़ी व हथकड़ी खुलकर गिर पड़ी और सब दरवाजे व ताले खुल गये, पहरे-वाले चौकीदार नींद में अचेत होकर सो रहे। तब वसुदेवजी ने श्याम-सुन्दर की यह महिमा देखकर श्रीकृष्णजी को सूप में धरकर अपने शिर पर उठा लिया और जल्दी से गोकुल को चले। उस समय अँधि-यारी रात होने और पानी बरसने से राह में काँटे गड़ते थे, इसलिए शेषनागजी ने अपने शरीर की सड़क बनाकर फण की छाया वैकुण्ठ-नाथ पर कर दी जिसमें वसुदेव के पाँव में काँटे न चुभें और श्रीकृष्णजी पर बूँदें न पड़ें। इसी तरह वसुदेवजी बृन्दावनविहारी को लिए हुए यमुना के किनारे पहुँचकर कहने लगे—पीछे सिंह बोलता है, आगे यमुनाजी अथाह हैं, किस तरह पार उतरूँ। देवकी के पास लौट चलूँ या क्या करूँ। जब वसुदेवजी पहिले ऐसी चिन्ता करके फिर हरिचरणों का ध्यान धरकर यमुनाजल में पैठे तब यमुनाजी का पानी श्यामसुन्दर के चरण छूने के वास्ते ऊपर को बढ़ने लगा। वसुदेवजी ने यह भेद न समझकर श्यामसुन्दर को दोनों हाथों से ऊपर उठा लिया। जब यमुना-जल वसुदेवजी की नाक तक पहुँचा और वे बहुत घबराकर चिन्ता करने लगे तब श्रीकृष्णजी अन्तर्यामी ने उनको दुःखी देखकर जैसे ही अपना चरण यमुनाजल को छुआकर हुंकार दिया वैसे ही यमुनाजी थाह हो गईं। जल घुटने बराबर हो गया। वसुदेवजी यह महिमा देखकर प्रसन्न होकर पार उतर गये और गोकुल में नन्दजी के स्थान पर जाकर उनका द्वार खुला पाया। सबको सोता हुआ देखकर बेधड़क घर में चले तो क्या देखा कि एक कन्या उसी समय की जन्मी हुई यशोदा के पास सोई है। यशोदा ने योगमाया के मोहिनी डालने से कन्या होने का हाल नहीं जाना। सो वसुदेवजी ने यशोदा को सोई हुई देखकर तुरन्त श्रीकृष्णजी को उसके पास सुला दिया और उस कन्या को लेकर उसी तरह यमुना पार उतरकर मथुरा को चले। जब देवकी ने वसुदेव व श्रीकृष्णजी को अँधियारी रात पानी बरसते में गोकुल को भेज दिया तब वह रोकर पछ-

ताने लगी कि कदाचित् कोई चौकीदार जाग उठे और किवाड़े खुले देखकर कंस से जाकर कह दे या राह में कोई वसुदेवजी को मिल जाय और उनका समाचार कंस से कह दे तो न मालूम वह हमको कैसा दुःख देगा। अथाह यमुना में वह कैसे पार उतरे होंगे। उनको गये विलम्ब हुआ, लौटकर अभी तक नहीं आये। ऐसी बातें सोचती हुई देवकी बैठी रो रही थी उसी समय वसुदेवजी आ पहुँचे और वह कन्या देवकी को देकर वहाँ का सब हाल कह दिया। तब देवकी प्रसन्न होकर बोली—अब हमको कंस चाहे मार भी डाले तो कुछ डर नहीं है। ऐसे पापी के हाथ से मेरा बालक तो बच गया।

—:o:—

चौथा अध्याय।

कंस के हाथ से उस कन्या का पटकते समय छूट जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब वसुदेवजी गोकुल से कन्या को ले आये तब फिर ज्यों के त्यों किवाड़ और ताले बन्द हो गये, बेड़ी व हथकड़ी उनके पड़ गईं और वह कन्या रोने लगी। उसका रोना सुनते ही चौकीदार जागकर बन्दूक छोड़ने लगे और उसी समय अँधियारी रात पानी बरसते में एक चौकीदार ने कंस के पास जाकर कहा—महाराज आपका शत्रु उत्पन्न हुआ। यह बात सुनते ही वह घबराकर उठा और गिरता-पड़ता नंगे शिर डरता हुआ वसुदेव व देवकी के पास पहुँचा।

दो० कन्या ले ठाढ़ी भई देवी अंचल ओड़। भैया तेरे शरण है चाहे मार कि छोड़॥

हे राजन्! ऐसा वचन कहने पर भी महापापी कंस ने उस कन्या को देवकी के हाथ से छीन लिया। तब फिर उसने हाथ जोड़कर विनय किया—हे भाई! मुझसे छः पुत्र हुए, सो तुमने मार डाले, अब यह पेट-पोछनी मेरी कन्या है, तू इसे छोड़ दे। संसार में जिस स्त्री के बालक नहीं उसका जीना व्यर्थ है। तुमने मेरे छः लड़के मार डाले हैं उनका शोक एक सायत मुझे नहीं भूलता, बिना अपराध इस कन्या को मारकर क्यों पाप लेते हो। कंस निर्दयी ने यह सुनकर उससे कहा कि मैं इस कन्या को जीती नहीं छोड़ सकता, जिससे इसका विवाह होगा वही

मुझे मारेगा। यह कहकर कंस उस लड़की का पाँव पकड़कर बाहर लाया और जब उसे घुमाकर पत्थर पर पटकने लगा तब वह कन्या कंस के हाथ से छूटकर आकाश में चली गई और वहाँ जाकर उसने कंस को त्रिशूल व खड्ग हाथ में लिए उत्तम भूषण व वस्त्र पहिने, फूलों की माला गले में डाले, ध्वजा लगे हुए विमान पर बैठकर देवीजी के समान अपना अष्टभुजी रूप दिखलाया। कंस वह रूप देखकर घबरा गया। अष्टभुजी माता ने उससे कहा—हे कंस पापी! तूने मुझे पटककर वृथा पाप लिया, तेरा मारनेवाला व्रज में उत्पन्न हो चुका, अब तू उसके हाथ से नहीं बच सकता। वह तुझे जल्दी मारकर पृथ्वी का भार उतारेगा। तेरा मारनेवाला साँप के समान और तू मेढक तुल्य है। मेढक ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो साँप को खा सके। अब तू होशियार रहना, वृथा हत्या करके क्यों पाप बटोरता है। ऐसा कहकर देवीजी अन्तर्धान हो गई और कंस योगमाया की ये बातें सुनकर बहुत लाज्जित और चिन्तित होकर कहने लगा कि हमने वसुदेव व देवकी को वृथा दुःख दिया, उनके बालक मारकर पाप लिया और मेरा मारनेवाला भी उत्पन्न हुआ, मैं अपना दुःख किससे कहूँ। इसी तरह चिन्ता करता हुआ वह वसुदेव देवकी के पास आया और हथकड़ी व बेड़ी काटकर विनयपूर्वक उनसे बोला—मेरे बराबर संसार में दूसरा पापी नहीं है। मैंने अपने शरीर की रक्षा के वास्ते, जिसका एक दिन अवश्य नाश होगा, तुम्हारे छः बेटे बिना अपराध मारकर पाप बटोरा, तिस पर भी मेरा काम नहीं हुआ। यह पाप व कलंक कैसे छूटेगा। देवता लोग भी झूठे हुए, जिन्होंने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ में पुत्र होगा सो कन्या हुई और वह भी मेरे हाथ से छूटकर स्वर्ग को चली गई। तुम लोग मेरा अपराध क्षमा करो और यह समझकर धैर्य धरो कि उन लड़कों की आयु इतनी ही थी। कर्म का लिखा हुआ कोई मिटा नहीं सकता। संसार में जन्म लेकर मृत्यु के हाथ कोई नहीं बचता। जिस तरह नदी में घास व तिनके न मालूम कहाँ से आकर इकट्ठे हो जाते हैं और तरंग उठने से फिर अलग होकर उनका पता नहीं लगता उसी तरह संसारी जीवों का

हाल भी समझना चाहिए। ज्ञानी लोग जीने व मरने को बराबर समझते हैं और अहंकार करनेवाले मनुष्य शत्रु व मित्र में भेद जानते हैं। सत्य पूछो तो जीव अमर है, वह कभी नहीं मरता। जब यह कहकर कंस ने देवकी के चरणों पर शिर धर दिया और अति विलाप करके रोने लगा तब देवकी ने क्रोध क्षमा करके उसके आँसू पोंछ दिया और वसुदेवजी ने कहा कि महाराज! तुम सत्य कहते हो, इसमें तुम्हारा दोष नहीं है, बिधाता ने हमारे कर्म में इसी तरह लिख दिया था। होनेवाली बात विना हुए नहीं रहती। मनुष्य अपने सुख के लिए अनेक उपाय करते हैं, पर परमेश्वर की इच्छा के विना उनका कोई मनोरथ सिद्ध नहीं होता। यह बात सुनकर कंस बहुत प्रसन्न हुआ और वसुदेव व देवकी को अपने घर ले आया, उनको भोजन कराकर उत्तम-उत्तम वस्त्र पहिनाकर उनके स्थान पर पहुँचा दिया। वसुदेव व देवकी ने घर आकर गौ, अन्न और द्रव्य बहुत-सा दान व दक्षिणा ब्राह्मणों व याचकों को दिया। कंस ने दूसरे दिन राजसभा में अपने मंत्री राक्षसों को बुलाकर कहा कि हमसे देवीजी कह गई हैं कि तेरा मारनेवाला उत्पन्न हो चुका। देवतों ने हमसे झूठा कहा था कि देवकी से आठवाँ बालक तेरा मारनेवाला उत्पन्न होगा। उसके आठवें गर्भ में कन्या हुई, इसलिए तुम लोग देवतों को मार डालो। यह बात सुनते ही तृणावर्त व प्रलम्ब आदि राक्षस बोले—हे कृपानिधान! देवता लोग जन्म के कंगाल हैं, उनका मारना क्या कठिन है। तुम्हारे क्रोध करने से वह भाग जायँगे। उनकी क्या सामर्थ्य है जो आपसे युद्ध कर सकें। ब्रह्मा आठों पहर पूजा व पाठ में लीन रहते हैं, महादेवजी दिन-रात इलावर्त में पार्वतीजी से भोग-विलास किया करते हैं, इन्द्र ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो आपके सम्मुख लड़ सके, नारायण वही हैं जिन्होंने कच्छपरूप धारण किया था और सदा क्षीरसागर में लक्ष्मीजी के साथ विहार करते हैं, उनको युद्ध करना नहीं आता, इन लोगों का जीतना कौन कठिन है। यह सुनकर कंस बोला कि नारायणजी ने मेरे मारने के लिए कहीं अवतार लिया है, उन्हें कहाँ पाऊँ जो लड़ाई करके मारूँ। ऐसा सुनकर राक्षसों ने कहा कि हे पृथ्वीनाथ! यह नहीं मालूम होता

कि वह बालक कहाँ उत्पन्न हुआ, इसलिए हमारे जान में यह उपाय करना चाहिए कि इन दिनों में जहाँ-जहाँ बालक उत्पन्न हुये हों सबको मरवा डालो, उनमें वह भी मर जायगा। कदाचित् इस उपाय करने से कहीं छिपकर बच गया और न मरा तो ब्राह्मण व वैष्णव आदि जितने हरिभक्त हैं उनको जहाँ पावो मार डालो। ऐसा करने से नारायण भाग गये तो अच्छा है, नहीं तो उन लोगों को दुःख देने से जब वह उनकी सहायता करने के लिए प्रकट हों तब मार डालना चाहिए। यह उपाय कंस को अच्छा मालूम हुआ। उसने ब्राह्मणों, ऋषीश्वरों और छोटे-छोटे बालकों को मारने की आज्ञा दी। वे लोग बहुत से वीरों को साथ लेकर हरिभक्तों व लड़कों को ढूँढ़-ढूँढ़कर बल व छल से मारने लगे। उन्होंने यज्ञादिक शुभकर्म व हरिचर्चा संसार से उठा दी। साधु व महात्मा को दुःख देने से आयु, धन और बल का नाश हो जाता है, सो ऐसा पाप करने से पिछले जन्म का पुण्य क्षीण हो गया।

—:o:—

पाँचवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का जन्मोत्सव।

शुकदेव स्वामी ने कहा—हे राजन्! जब वसुदेवजी श्रीकृष्णजी को यशोदा के गोद में सुलाकर मथुरा चले आये तब यशोदा जागीं और उसने बालक का मुख चन्द्रमा के समान देखकर नन्दजी को कहला भेजा कि तुम्हारे पुत्र हुआ है, आकर देखो। सो उन्होंने बड़े प्रेम से जाकर श्यामसुन्दर को देखा। नन्द और यशोदा ने अति प्रसन्न होकर अपना जन्म सुफल जाना। नन्दजी ने वेद के अनुसार नांदीमुख श्राद्ध किया और श्यामसुन्दर के तेज से नन्दजी का घर प्रकाशित हो गया। यह आनन्द-समाचार गोपी व ग्वालों ने सुनते ही अपने-अपने घर मंगलाचार मनाया और ब्राह्मणों को गोदान दिया।

दो० ब्रजवासी टेरत फिरें कोऊ वन जनि जाय। नंदराय घर सुत भयो देव बधाई आय॥

जब प्रातःकाल नन्दजी ने ज्योतिषियों को बुलाकर बालक उत्पन्न होने की सायत पूछी तब पण्डितों ने कहा कि हमारे विचार में यह

लड़का दूसरा परमेश्वर मालूम होता है। यह राक्षसों को मारकर पृथ्वी का भार उतारकर गोपीनाथ कहलावेगा और सब संसारी जीव इसका यश गावेंगे। यह बात सुनकर नन्दजी बहुत प्रसन्न हुए और दो लक्ष गौ, मणि व रत्न मिलाकर सात भार तिल, चाँदी व सोने का घड़ा दही व दूध व घी से भरवाकर ब्राह्मणों को दान दिया। इसके सिवा बहुत-सा द्रव्य ज्योतिषी पण्डितों को दिया और सब याचकों को अयाचक कर दिया। उस समय नन्दजी ने अति प्रसन्नता से अपने द्वारे जड़ाऊ चौकी पर बैठकर मंगलामुखियों का नाच व गान कराया और उन लोगों को मुँहमाँगी वस्तु देकर आदरपूर्वक विदा किया।

दो० काहू हीरा लाल मणि काहू मोतिन माल। काहू भूषण वसन दे कीन्ह्यो सभी निहाल॥

फिर सब गोपी व ग्वालों ने अच्छा-अच्छा गहना व कपड़े पहिन लिये और मेवा आदि थाल में लेकर गाते-बजाते दही व हल्दी मिलाकर लुटाते हुए नन्दजी के यहाँ बधावा लाये।

दो० चोली ऊदी कोचकी लहँगा कुसुमी रंग। सारी गौटैतार की शोभित सुन्दर अंग॥
कंचन थार सँवार के तामें दीपक बारि। माखन प्रभु की आरती लै आईं ब्रजनारि॥
देहिं बधाई नन्द को पड़ैं यशोदा पाँव। कहैं पियारे लाल कोनेक हमैं दिखलाव॥

जब ऐसे मीठे वचन सुनकर यशोदा ने श्यामसुन्दर का मुख खोल-कर दिखा दिया तब सब ब्रजबाला साँवली सूरति मोहनी मूरति को देखते ही परमानन्द हो गईं और उन पर मोती व रत्नादिक निछावर करके आशीर्वाद देने लगीं कि हे नन्दरानी! तुम्हारा बालक लाख वर्ष जीता रहे। गोकुलवासियों ने उस दिन अति हर्षित होकर ऐसा दधि-काँदो खेला कि सब गली व बाजार में दही-दही हो गया। गोपियाँ सोहर गाकर नन्दजी को आनन्द की गालियाँ देती थीं और नन्दराय वह सुनकर परमानन्द होते थे। रोहिणी अति हर्ष से गोपियों के साथ नाचने लगीं। उस समय ब्रह्मादिक देवता अपनी-अपनी स्त्रियों समेत विमानों पर बैठकर आकाशमार्ग से ब्रजमण्डल पर आये और अप्स-राओं ने अपने-अपने विमानों पर नाचना व किन्नर व गन्धर्वों ने अनेक रंग का बाजा बजाकर गाना आरम्भ किया। देवतों ने फूल बरसाकर

आपस में कहा कि गोकुलवासियों का बड़ा भाग्य है। जिन परब्रह्म परमेश्वर का दर्शन ब्रह्मादिक देवतों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता, उन्होंने यहाँ नरतनु धारण किया है।

दो० भरे परमआनन्द सुर उपजावत अनुराग। बार बार वर्णन करें नन्दयशोमति भाग ॥
गोकुल को आनन्द अति कापै बर्णो जाय। जहाँ परम आनन्दमयलियोजन्महरिआय ॥
ब्रजकोसुखकोकहिसकैउपमाबड़ीअपार। सुखनिधानभगवानजहँलियोमनुजअवतार ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उस दिन नन्दजी के स्थान पर जैसा आनन्द हुआ वह समाचार मुझसे वर्णन नहीं हो सकता। नन्दजी ने सब ग्वालों को अच्छे-अच्छे पदार्थ भोजन कराये और उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाकर उनकी इच्छा पूर्ण की। यह आनन्द-समाचार सुनकर उस देश की सब मंगलामुखी व याचक नन्दजी के यहाँ आये, सो उन्होंने सबको मुँहमाँगी वस्तु देकर आनन्दपूर्वक विदा किया।

स० पूत सपूत जन्यौ यशुदा इतनी सुनिकै वसुधा सब दौरी। देवन को आनन्द भयो सुनि धावत गावत मंगन गौरी ॥ नन्द कछू इतनी जो दियो घनश्याम कुबेरहु की मति बौरी। म्वहि देखत ब्रजहि लुटाय दियो न बची बछिया छछिया न पिछौरी ॥

हे राजन्! उन्हीं दिनों महादेवजी योगीरूप से वैकुण्ठनाथ के दर्शन करने को नन्दराय के द्वारे पर आये और उन्होंने भिक्षा न लेकर परब्रह्म का दर्शन बड़े प्रेम से किया। उस समय ब्रजवासियों ने नन्दजी से कहा—

क० हे हो व्रजराज कोऊ वेषधारी आज इत पुत्र को जनम सुनि आयी तेरे भौन है। मोती मणिमाणिक न कञ्चन रतन लेत हय गय भूमि ग्राम लेत हमसो न है ॥ नगर अहोटे नाहिं भूमि ब्रज लोले एक अलख उचारै बैन और निज मौन है। बालक के पाँव लै जटान सों छुवाय नाचै योगी तीनि आँखि को कहाँ से आयो कौन है ॥

सो हे राजन्! जब छठीं का दिन आया तब नन्दजी ने अपना आँगन चन्दन व केसरि से लिपवाकर मोतियों का चौक पुरवाया और पुरोहित को बुलाकर अपने कुल के अनुसार पूजा की। यशोदाजी श्याम-सुन्दर को पीला कुरता व टोपी व उत्तम भूषण पहिनाकर पूजन करने के लिए गोद में लेकर बैठीं। उस दिन वृषभानु आदि गोप व गोपियाँ कुरता, टोपी और अनेक प्रकार के भूषण नन्दजी के घर देने के लिए लाये और सबों ने बड़े हर्ष से ढोलकी बजाकर अच्छे-अच्छे गीत गाये। नन्दजी

ने गोप व गोपियों का यथायोग्य सम्मान किया। एक रत्नजटित पालना अति उत्तम श्यामसुन्दर के झूलने के वास्ते बनवाया, उसी में वैकुण्ठ-नाथ को सुलाकर यशोदाजी बड़े प्रेम से झुलाया करती थीं। लक्ष्मी-पति की कृपा से सब गोकुलवासियों के घर इतना द्रव्य हो गया जिसकी संख्या कोई नहीं कर सकता। सो वे लोग आनन्द से रहकर श्याम-सुन्दर का दर्शन करके अपना-अपना जन्म सुफल करते थे। जब नन्दजी ने यह सुना कि राजा कंस ने बालकों को मारने के लिए आज्ञा दी है तब उन्होंने ग्वालों से सब वृत्तान्त सुनाकर कहा कि पुत्र होने की कुछ भेंट लेकर राजा कंस को चलकर दे आवें, जिसमें किसी बात का डर न रहे। यह सम्मति आपस में करके नन्दजी माखन, दूध, घी और द्रव्य गाड़ियों में लदवाकर ग्वालों समेत मथुरा में ले गये और राजा कंस को भेंट देकर अपने घर पुत्र होने का हाल कहा। राजा ने नन्दजी को शिरोपाँव देकर विदा किया। जब नन्दजी वहाँ से विदा होकर अपने घर चले तब वसुदेवजी उनके आने का हाल सुनकर मिलने के लिए यमुना के किनारे आये और उनका कुशल-मंगल पूछकर कहा।

दो० सुधि आवे जब मित्र की तब मन आवै चैन। या सुख की उपमा नहीं जो मुख देखै नैन ॥

हे नन्दजी! तुम्हारे समान अपना कोई मित्र हम नहीं देखते। राजा कंस के दुःख देने से मैंने अपनी गर्भवती स्त्री तुम्हारे यहाँ भेज दी और उसके वहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पालन तुमने हमसे अधिक किया। मैं राजा कंस के डर से कुछ सुधि नहीं ले सका। यह तुम्हारा बड़ा उपकार मेरे ऊपर है, इसके बदले जन्मभर तुम्हारी सेवा करूँ तब भी उऋण नहीं हो सकता। तुम्हारे यहाँ पुत्र होने का हाल सुनकर मुझे बड़ा सुख हुआ। तुम्हारी स्त्री यशोदा श्रीकृष्णजी बालक समेत अच्छी तरह हैं? गोकुल में गौओं के चरने के लिए घास अच्छी उपजी है? यह प्रीतिभरी बात सुनकर नन्दजी बोले कि तुम्हारी कृपा से बलराम आदि सब आनन्द से हैं। उनके उत्पन्न होने के उपरांत मेरे भी बालक हुआ। पर कंस ने तुम्हें दुःख देकर तुम्हारे लड़कों को मार डाला, यह हाल सुनकर मुझे बड़ा दुःख रहता है। क्या करूँ, इसमें कुछ मेरा वश नहीं चलता। ऐसा सुन वसुदेवजी बोले—हे

मित्र! विधाता ने जो हमारे कर्म में लिखा है वह किसी तरह मिट नहीं सकता। संसार में जन्म लेने से कौन नहीं दुःख पाता। तुम मेरे बड़े मित्र हो, इसलिए मैं अपने व तुम्हारे लड़कों में कुछ भेद नहीं जानता। पर राजा कंस इन दिनों बड़ा अन्धेर कर रहा है, हाल के जन्मे हुए बालकों को मरवा डालता है। तुम यहाँ आये हो, राक्षस लोग चारों ओर बालक ढूँढ़ते फिरते हैं, ऐसा न हो कि कोई राक्षस गोकुल में जाकर कुछ उपद्रव करे।

सो० गई पूतना आज व्रजको बालकघातिनी। करिहै कछू अकाज वेगि धाम सुधि लीजिये ॥

हे नन्दजी! तुम पराक्रम भर अपने व मेरे बालक की रक्षा करते रहना, आगे परमेश्वर मालिक हैं, और जब अवकाश मिले तब दर्शन देना। उसके बाद नन्दजी वसुदेव से विदा होकर ग्वालों समेत गोकुल को चले और चलते समय बोले—

दो० बिनती कीन्ही मित्र सों डारेउ जनि बिसराय। माखनप्रभु जु बुलाइहैं फेरि मिलेंगे आय ॥

छठवाँ अध्याय।

पूतना राक्षसी का गोकुल में जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! बहुत से राक्षस लड़कों के मारने में लगे थे, तिस पर भी कंस को श्यामसुन्दर के डर से चैन नहीं पड़ता था। इसलिए उसने पूतना राक्षसी को बुलाकर कहा कि इन दिनों जितने बालक मथुरा व गोकुल में उत्पन्न हुए हैं सबको तू मार डाल। यह सुनते ही पूतना कंस की आज्ञा पालन करने के लिए चली। उसने विचार किया कि गोकुल में नन्दजी के यहाँ पुत्र हुआ है, सो मैं गोपीरूप बनाकर जाऊँ और उस बालक को छल से मारकर चली आऊँ। यह ठानकर उसने अपने को मोहनीरूप गोपी अति सुन्दर बना लिया और भूषण व वस्त्रादिक पहिनकर सोलहों शृंगार करके अपने कुचों में विष लगाकर हँसती हुई बेधड़क नन्दजी के घर में चली गई। उसका स्वरूप देखकर किसी डेवढ़ीदार ने भीतर जाने से नहीं रोका। जिस तरह आग राख में छिपी रहती है, कोई नहीं जानता, उसी तरह पूतना ने श्रीकृष्णजी को परमेश्वर का अवतार नहीं समझा था।

और यशोदा आदि स्त्रियों ने भी उसका रूप व शृंगार देखकर उसे देवकन्या जाना, इसलिए बड़े सम्मानसे अपने पास बैठाकर उससे बातचीत करने लगीं।

चौ० एक कहै यह है कोउ रानी। यशुमति के आई हम जानी॥
एक कहै यह कमला बाई। श्रीकमलापति देखन आई॥

हे राजन्! उस समय श्यामसुन्दर पालने पर झूलते थे, उन्होंने उसको देखकर मुसकरा दिया और जाना कि यह कपटरूप धरके मेरे मारने के वास्ते आई है। उन्होंने आँख बन्द करके मन में कहा कि बहुत अच्छा हुआ जो यह मेरे यहाँ आई, अपने दण्ड को पहुँचेगी। कदाचित् गोकुल में दूसरे घर जाती तो मेरे मित्र व सखाओं को मार डालती। कपटरूप पूतना ने यशोदा से कहा—हे बहिन! तुम्हारे यहाँ पुत्र होने का हाल सुनकर राजा कंस बहुत प्रसन्न हुआ, उसकी आज्ञा से मैं प्राणप्यारे बालक को देखने आई हूँ। यशोदा बोलीं कि मेरे ललना पलना में झूलते हैं। यह बात सुनकर वह कपटरूप कहने लगी कि तुम्हारा लड़का करोड़ वर्ष जीता रहे। ऐसी प्रीति भरी बातें कहकर पूतना पालने के निकट चली गई और श्यामसुन्दर को बड़े प्रेम से गोद में उठा लिया और मुख चूमकर दूध पिलाने लगी। जब मोहनप्यारे ने दोनों हाथ से स्तन धरकर इस तरह दूध के साथ उसका प्राण खींचा कि वह व्याकुल होकर यशोदा से बोली कि तेरा बालक मनुष्य नहीं है, यमराज का दूत मालूम होता है। मैंने रस्सी के धोखे साँप को पकड़ लिया। कदाचित् आज इसके हाथ से जीती बचकर जाऊँ तो फिर गोकुल में नहीं आऊँगी। जब पूतना इस तरह कहती हुई अधिक व्याकुल होकर आकाशमार्ग को भागी तब श्रीकृष्णजी भी उसका स्तन मुख से न छोड़कर लटके चले गये। जब वह गोकुल गाँव की बस्ती से बाहर पहुँची तब नन्दलालजी ने उसका प्राण खींच लिया। मरते समय वह राक्षसी बड़ा भयानक रूप होकर वज्र के समान पृथ्वी पर गिरी। उसके गिरने से ऐसा शब्द हुआ कि धरती व आकाश कम्पायमान हो गया। वह शब्द सुनकर गोकुलवासी डर के मारे काँपने लगे। छः कोस के बीच में पूतना के गिरने से सैकड़ों वृक्ष टूट गये।

दो०आई अद्भुतरूपधरिअतिबिपरीतकोभार। कपटहेतुनहिंसहिसक्योतेहिमारचोकरतार॥

जब यशोदा व रोहिणी ने वह शब्द सुना और अपने लाल को वहाँ नहीं देखा तब रोती-पीटती हुई श्मामसुन्दर को ढूँढने निकलीं।

दो० माखन प्रभु गोपाल को ढूंढ़त गोपी ग्वाल। तबहुँ पूतना उदर पर खेलत पायो लाल॥

जब यशोदा ने देखा कि मोहनप्यारे उसकी छाती पर चढ़े हुए दूध पी रहे हैं तब उसने दौड़कर उनको उठा लिया और गोद में लेकर उनका मुख व हाथ चूमने लगी। जिस तरह कोई साँप अपनी मणि खो जाने से विकल होकर उसके मिलने के उपरान्त प्रसन्न होता है उसी तरह यशोदा को आनन्द हुआ।

सो० कहैयशोमतिमाय फिर फिर सबके पाँवपरि। उबरचोआजुकन्हायतुमपंचनकेपुण्यसे॥

जब श्रीकृष्णजी ने थोड़ी देर दूध नहीं पिया तब गोपियाँ गौ की पूँछ छुआकर श्यामसुन्दर को झाड़ने लगीं। यशोदा जल्दी से नन्दलाल को घर ले आईं और गुणी को बुलाकर झाड़फूँक कराके अपने देवता व पितर मनाया और दूध आदि उन पर न्योछावर करके कंगालों को पिलाया तब वे दूध पीने लगे। सब ब्रजबाला मोहनप्यारे के प्राण बचने से प्रसन्न होकर बारंबार परमेश्वर को दण्डवत् करने लगीं। गोपी व ग्वाल उस लोथ के पास खड़े होकर आपस में कहते थे कि इसके गिरने का शब्द सुनकर अब तक हम लोगों का कलेजा काँपता है, न मालूम उस बालक की क्या गति होगी। उसी समय नन्दजी ने गोकुल के निकट पहुँचकर क्या देखा कि एक बहुत बड़ी राक्षसी मरी पड़ी है और गोकुल-वासी उसको खड़े हुए देख रहे हैं। जब नन्दजी ने लोगों से उसके मरने का हाल पूछा तब उन लोगों ने सब समाचार कह सुनाया। नन्दजी यह बात सुनकर कहने लगे कि बड़ी कुशल हुई जो इसके हाथ से मेरा प्राण प्यारा जीता बचा और यह भी बहुत अच्छा हुआ जो इस राक्षसी की लोथ गाँव से बाहर गिरी। कदाचित् बस्ती में गिरती तो इसके नीचे सब गोकुलवासी दबकर मर जाते। यह बात कहकर नन्दजी घर को आये और अपने लाल को गोद में लेकर बहुत प्यार किया। दूध देनेवाली छः हजार गौ विधिपूर्वक श्यामसुन्दर के हाथ से ब्राह्मणों को दान दिलाया। अन्न, सोना और चाँदी आदि बहुतसा द्रव्य उनके शिर पर न्योछावर करके कंगालों

को दिया। फिर नन्दजी की आज्ञानुसार ग्वालों ने फरसा व कुल्हाड़ों से पूतना का शरीर काट डाला और गड़हा खोदकर हड्डी उसकी गाड़ दिया। उसका मांस चमड़ा आग में जला देने से ऐसी सुगन्ध उड़ी जिसके सूँघने से सब गोकुलवासी प्रसन्न हो गये। इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—महाराज! मदिरा पीने व मांस खानेवाली राक्षसी का शरीर जलने से सुगन्ध उड़ने का क्या कारण था। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! श्रीकृष्णजी ने उसका दूध पीकर उसकी छाती पर अपना चरण रक्खा और उसको अपने हाथ से मारकर पवित्र करके मुक्त किया, इस लिए उसके जलने से सुगन्ध उड़ी थी।

दो० माखनप्रभु कमलापती सकलसुबास निवास। तिनके अंग प्रसंगते प्रकटचो बाससुबास ॥

हे राजन्! देखो, पूतना परमेश्वर को विष पिलाकर मारने आई थी, उसने यह गति पाई। जो कोई नारायणजी को प्रेम से अच्छा-अच्छा पदार्थ भोग लगाते हैं उनको न जाने कैसी पदवी मिलती है। जो लोग पूतना-मरण की कथा कहेंगे व सुनेंगे उन्हें परमेश्वर के चरणारविंद में भक्ति प्राप्त होकर मुक्ति पदवी मिलेगी। हे राजन्! श्रीकृष्णजी के दर्शन के वास्ते देवता लोग अपना-अपना रूप बदलकर गोकुल में आते थे और देवतों की स्त्रियाँ श्यामसुन्दर की सुन्दरता देखकर मोहित हो जाती थीं।

—※(०)※—

सातवाँ अध्याय।

कंस का तृणावर्त आदिक राक्षसों को श्यामसुन्दर के मारने के वास्ते भेजना।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर पूछा—हे महाराज! जिस तरह आपने पूतना व श्रीकृष्ण की लीला सुनाई उसी तरह और कुछ बाल-चरित उनका वर्णन कीजिए, यह मुझको बहुत प्यारा मालूम दता है। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! कंस ने पूतना की दशा सुनकर विश्वास करके जाना कि मेरा मारनेवाला गोकुल में उत्पन्न हुआ। इस चिन्ता से वह व्याकुल होकर गिर पड़ा और कुछ देर में जब चैतन्य हुआ तब सभा में बैठकर अपने मंत्रियों से कहा कि नंदजी के बालक ने पूतना राक्षसी को मार डाला, सो मुझे मालूल होता है कि उसके हाथ से मेरा काल

होगा। मित्र उसी को समझना चाहिए जो विपत्ति में काम आवे, उस बालक को मारकर हमारा भला करे। हे राजन्! कंस ने सब किसी से कहा कि जो कोई मेरे शत्रु को मारे उसे मैं बहुत द्रव्य दूँगा। उस समय श्रीधर नाम का ब्राह्मण जो वहाँ बैठा था बोला—हे राजन्! तू सोच मत कर, मैं तेरे शत्रु को मारकर तुझे निश्चिन्त किये देता हूँ।

दो० तब बोले राजा वचन धन्यधन्य द्विजराज। तुम बिन ऐसो कौन है जो करिहै यह काज॥

यह सुनते ही श्रीधर ब्राह्मण राजा से बिदा हुआ और पण्डितों का वेष बनाकर नन्दजी के यहाँ गया। यशोदा ने उसे देखकर दण्डवत् किया और बड़े आदर से बैठाकर पूछा—महाराज! आपने किधर कृपा की। तब ब्राह्मण देवता अपने को पुरोहित बतलाकर बोले कि तुम्हारे बालक की बड़ाई सुनकर उसका दर्शन करने आया हूँ। यशोदा ने कहा—

दो० कमलनयन हैं शयन में बैठो द्विज यहिकाल। न्हाय आय दिखरायहौं माखन प्रभु गोपाल॥

जब यशोदा ऐसा कहकर यमुना किनारे स्नान करने चली गई तब ब्राह्मण ने विचारा कि यह अच्छा मौका है। श्रीकृष्ण को मारकर कंस के पास जाऊँ और बहुत सा द्रव्य ले लूँ। यह विचारकर वह ब्राह्मण जहाँ वैकुण्ठनाथ सोते थे वहाँ चला गया, तब नन्दलालजी उसकी खोटी इच्छा समझकर पालने से उतर पड़े और उसे पकड़कर उसकी जिह्वा मरोर डाली, ब्राह्मण समझकर प्राण नहीं मारा। उसके मुँह में दही लगाकर दही व दूध का बर्तन तोड़ डाला और आप फिर पालने पर लेट रहे। जब यशोदा यमुना स्नान करके आई तब उसने दही व दूध का बर्तन टूटा हुआ और दही ब्राह्मण के मुख में लगा हुआ देखकर जाना कि इसने दही व दूध खाकर बर्तन तोड़ डाले हैं। यह बात बिचारकर यशोदा ने कहा—महाराज! तुमने दही व दूध खाया तो अच्छा किया, पर मेरे बर्तन क्यों तोड़ डाले। जब जिह्वा मुड़कने से वह बोल नहीं सका तब नन्दलाल की ओर हाथ उठाकर बतलाया कि इसी ने बर्तन तोड़े हैं। यशोदा ने उस ब्राह्मण के बतलाने का विश्वास न करके उसको अपने घर से निकलवा दिया। जब वह ब्राह्मण रोता हुआ कंस के पास आया तब उसने अधिक उदास होकर बकासुर को साँवली सूरत के मारने के वास्ते भेजा।

जैसे वह श्यामसुन्दर के पालने पर आकर अपनी घात लगाकर बैठा वैसे ही नन्दलालजी ने उसका गला मरोरकर फेंका तो कंस के सामने जा गिरा। यह हाल गोकुल में किसी ने नहीं जाना। मरते समय उसने कंस से कहा कि वह बालक मनुष्य नहीं है, परमेश्वर का अवतार मालूम होता है।

दो०एक हाथ से पकड़िम्वहिं फेंकि दियो तुम पास। ह्वैहै तुम्हरो काल वह मैं कीन्हों विश्वास॥

यह बात सुनते ही कंस ने चिन्तित होकर अपनी सभावालों से कहा कि अभी वह लड़का है, सो नहीं मारा जाता, तरुण होने पर किस तरह मारा जायगा। कोई उसे मारता तो मैं बड़ा गुण मानता। यह वचन सुनते ही शकटासुर श्यामसुन्दर के मारने के लिए करार करके बिदा हुआ और पवनरूप बनकर गोकुल को चला। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब श्रीकृष्णजी सत्ताईस दिन के हुए और जिस नक्षत्र में उनका जन्म हुआ था वही नक्षत्र फिर आया तब नन्दजी ने ब्राह्मणों व गोकुलवासियों को न्योता देकर अपने यहाँ बुलाया और अपने कुल की रीति व रसम करके ब्राह्मणों को दान व दक्षिणा देकर बिदा किया। ग्वालों को भोजन करने के वास्ते बैठाकर यशोदा व रोहिणी अच्छा-अच्छा पदार्थ उन्हें परोसने लगीं। गोपियों ने बड़े हर्ष से गाना-बजाना आरंभ किया और वे लोग आनन्दपूर्वक खाने लगे। हे राजन्! उस समय श्रीकृष्णजी को पालने में सुलाकर सब छोटे-बड़े अपने-अपने काम में लगे थे। उस पालने के पास एक छकड़ा लटकाया था, सो श्यामसुन्दर नींद से जागे और मारे भूख के हाथ-पैर पटककर रोने लगे। उसी समय वह राक्षस पवनरूप उड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा और श्यामसुन्दर को अकेला देखकर मन में कहने लगा कि यह बालक अति बलवान् है, इसने पूतना को मार डाला, आज इसे मारकर उसका बदला लूँगा। यह बात विचार-कर छकड़े पर आ बैठा, इसी कारण उसका नाम शकटासुर हुआ। जब वह छकड़ा, जिसके नीचे दही व दूध का बर्तन रक्खा था, हिलने लगा तब श्रीकृष्णजी अन्तर्यामी ने उसके आने का हाल जानकर रोते-रोते एक ऐसी लात उस छकड़े पर मारी, जिसके लगने से शकटासुर मरकर कंस की सभा में जा गिरा। उसे देखकर कंस सब राक्षसों समेत घबरा गया।

हे राजन्! जब छकड़ा गिरने और बर्तन टूटने से बड़ा शब्द हुआ और दूध-दही नदी के समान बह निकला तब नन्दजी आदि सब ग्वाल-गोपी वहाँ दौड़ आये। यशोदा ने श्यामसुन्दर को उठाकर अपनी छाती में लगा लिया और उनका मुख व हाथ चूमने लगीं। सबने आश्चर्य मानकर आपस में कहा कि आकाश से वज्र भी तो नहीं गिरा, न मालूम किस तरह छकड़ा टूटकर गिर पड़ा।

दो०पलना ढिग खेलत हते कछुक गोपकेबाल। तिन्हन कह्यो डारयो शकट पलनासेनँदलाल॥

उन लड़कों की बात का किसी ने विश्वास न करके आपस में कहा, श्रीकृष्णजी का चरण फूल से भी कोमल है, इतना बड़ा छकड़ा इन्होंने लात मारकर किस तरह गिराया होगा।

दो०बहुत भाँति करुणा करी और दियो बहु दान। बार-बार नँदलाल के रक्षपाल भगवान्॥

हे राजन्! जब श्रीकृष्णजी पाँच महीने के हुए तब कंस ने तृणावर्त राक्षस को उनके मारने के वास्ते भेजा। सो वह बवण्डररूप बनकर गोकुल में आया। उस समय यशोदा मनहरण प्यारे को लिये आँगन में बैठी थीं। श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने तृणावर्त के आने का हाल जानकर अपने शरीर को इस वास्ते भारी कर दिया, जिसमें यशोदा अपनी गोद से पृथ्वी पर उतार दें, नहीं तो तृणावर्त मेरे साथ इनको भी उड़ा ले जायगा। जब यशोदा से उनका बोझ नहीं उठाया गया तब वे श्यामसुन्दर को आँगन में सुलाकर घर का काम करने लगीं उस समय बवण्डर रूप तृणावर्त के पहुँचने से गोकुल में ऐसी आँधी आई कि धूर उड़ने से दिन रात्रि के समान हो गया, वृक्ष गिरने और छप्पर उड़ने लगे। तब यशोदा घबराकर श्यामसुन्दर को आँगन से उठाने आईं, पर उनका अंग ऐसा भारी हो गया था कि उनसे वह नहीं उठ सके। जब यशोदा ने अपना हाथ उनके शरीर से अलग किया तब तृणावर्त उनको उठाकर एक योजन ऊँचे आकाश में ले गया। यशोदा ने फिर प्राणप्यारे को उठाने के वास्ते हाथ लपकाया तो उस जगह उनको न पाकर रुदन करने लगीं। नन्दजी को पुकारकर कहा कि तुम्हारा बेटा आँधी में उड़ गया। ऐसा सुनते ही नन्दादिक ग्वाल व गोपी वहाँ दौड़ आये और श्याम-

सुन्दर का नाम पुकारकर चारों ओर ढूँढ़ने लगे। यशोदा व रोहिणी भी गोपियों समेत उनको ढूँढ़ने निकलीं। अँधेरे में ठोकर खाकर व्याकुलता से गिर गिर पड़ती थीं।

दो० नन्दयशोमतिरोहिणी गोपग्वाल ब्रजबाल। माखन प्रभुगोपाल बिनसकलविकलयहिकाल॥

हे राजन्! जब श्रीकृष्णजी ने नन्दादिक को अपने विरह में अति दुखित देखा तब तृणावर्त का गला दबाकर नन्दजी के द्वारे पत्थर पर पटका और उसे मारकर मुक्त कर दिया। जब उसके मरने से आँधी व अँधियारा जाता रहा तब नन्द व यशोदा आदि पटकने का शब्द सुनकर अपने द्वार पर दौड़ आये तो क्या देखा कि एक राक्षस मरा पड़ा है और उसकी छाती पर नन्दलालजी खेल रहे हैं। गोपियों ने दौड़कर श्यामसुन्दर को उठा लिया और यशोदाजी ने उन्हें गोद लेकर प्यार किया। सबों ने कहा कि आज श्रीकृष्णजी का नया जन्म हुआ।

दो० क्या जानों केहि पुण्य ते को करि लेत सहाय। कियो काम बहुपूतना तृणावर्त फिर आय॥

उस समय नन्दराय बोले कि हमसे वसुदेवजी ने कहा था कि इन दिनों बहुत उपद्रव उठेगा, सो वही बात देखने में आती है। नन्दजी ने उस दिन भी बहुतसा द्रव्य व भूषणादिक उन पर न्योछावर करके ब्राह्मणों व कंगालों को दिया। गोपियों ने यशोदा से कहा कि तूने घर का काम प्राणप्यारे से बढ़कर प्यारा जाना, जो उन्हें आँगन में अकेला छोड़कर काम करने लगी। यशोदा लज्जित होकर बोली कि आज मैंने अपनी अज्ञानता का दण्ड पाया, फिर कभी प्राणप्यारे को अकेला नहीं छोड़ूँगी। उस दिन से यशोदा आठों पहर नन्दलालजी को छाती में लगाये रहती और उनकी बाललीला का सुख देखती थी।

दो० हलरावत गावत मधुर हरि के बालविनोद। जो सुख सुरमुनि को अगम सोसुखलेत यशोद॥
कभी झुलावत पालने कभी खिलावत गोद। कभी सुलावत पलँग पर यशुदा सहित विनोद॥

हे राजन्! एक दिन यशोदा श्यामसुन्दर को गोद में लेकर बड़े प्रेम से बारंबार उनका मुख चूमती थीं, उस समय श्यामसुन्दर ने मुख खोलकर हँस दिया तो यशोदा को उनके मुखारविन्द में पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, पहाड़ व समुद्र आदि सब संसारी वस्तुएँ दिखलाई दीं। तब

यशोदा आश्चर्य मानकर कहने लगीं कि मेरी बुद्धि बदल तो नहीं गई जो यह सब चरित्र मुझे दिखलाई देता है, या मेरे बालक पर किसी देव व परी की छाया तो नहीं हो गई जो ये सब वस्तुएँ उसके मुख में दिखलाई पड़ती हैं। ऐसा विचारकर यशोदा ने गुणी को बुलाकर श्रीकृष्णजी का झाड़ फूँक कराया और व्याघ्र का नख, भालू के बाल व अनेक यंत्र श्रीकृष्णजी के गले में पहना दिये।

—:०:—

आठवाँ अध्याय।

गर्गाचार्य का श्याम व बलराम के नाम रखना और श्रीकृष्णजी की बालचरित्र कथा।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! वसुदेवजी ने अपने पुत्र बलभद्र के जन्म का हाल कंसादिक से नहीं बताया था, इसलिए एक दिन अपने पुरोहित गर्गजी को बुलाकर कहा कि रोहिणी के बेटा हुआ है, सो अभी तक राजा कंस के डर से हमने उसका नामकरण नहीं किया, आप गोकुल में जाकर उसका नाम रख दीजिए। यह बात सुनते ही गर्गजी प्रसन्न होकर गोकुल को गये। नन्दजी उनका आगमन सुनते ही ग्वालों समेत आगे जाकर सम्मानपूर्वक उन्हें अपने घर लिवा लाये और विधिपूर्वक पूजा करके उन्हें आसन पर बैठाया। नन्द व यशोदा ने उनका चरण धोकर चरणामृत लिया और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोले—मेरा बड़ा भाग्य था, जो आपने दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया। अब यह बतलाइए कि किस कारण यहाँ आने का संयोग हुआ। यह बात सुनकर गर्गजी बोले—वसुदेव ने मुझे अपने पुत्र का नामकरण करने के लिए भेजा है। तब नन्द ने प्रसन्न होकर कहा कि आप हमारे भाग्य से यहाँ आये हैं, एक बालक हमारे भी उत्पन्न हुआ है, उसका भी नाम धर दीजिए। गर्गजी ने कहा कि मुझे उसका नाम रखने में यह डर है कि कदाचित् कोई शत्रु जाकर कंस से कह दे कि गर्ग मुनि गोकुल में नामकरण करने के लिए गये थे, तो उसे यह संदेह होगा कि वसुदेव ने कोई बालक देवकी का नन्द के यहाँ पहुँचा दिया है, इसी वास्ते गर्ग पुरोहित उनका नाम रखने गोकुल में गये होंगे। यह बात सुनकर कंस न मालूम तुम्हें क्या दुःख दे, इसलिए तुम

नामकरण में कुछ धूमधाम न करो, साधारण रीति से घर में नाम धरा लो। नन्दजी उनका कहना उचित जानकर उन्हें घर के भीतर ले गये। गर्गजी ने रोहिणी के पुत्र का हाथ और जन्मलग्न देखकर कहा—

दो० राम नाम है राशि को सुख निवास अभिराम। बली होयगो लोक में सब कहिहैं बलराम॥

इसके सिवा इनका नाम संकर्षण, रेवतीरमण, बलदाऊ, कालिंदी-भेदन, हलधर और बलभद्र भी संसार में प्रसिद्ध होगा। श्रीकृष्ण की जन्मकुण्डली बनाकर गर्ग मुनि बोले कि हे नन्दजी! तुम्हारे पुत्र जो श्याम रंग हैं इनका नाम श्रीकृष्ण रक्खो। इनके अनेक नाम हैं। एक बेर इन्होंने वसुदेव के यहाँ जन्म लिया था, इसलिए इनका नाम वासुदेव हुआ। हमारे विचार में तुम्हारा बालक परब्रह्म परमेश्वर का अवतार मालूम देता है। इनका भेद कोई नहीं जान सकता। तीनों लोकों में किसी को ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो इनको मार सके। ये जैसे जैसे काम संसार में करेंगे तैसे तैसे इनके नाम प्रसिद्ध होंगे। अपनी इच्छा से इन्होंने अवतार लिया है, किसी समय तुमने इनके बाललीला का सुख देखने के वास्ते तप किया था, उसके प्रताप से इनको पाया है। इन्हें तुम अपना जना हुआ पुत्र मत जानो। जो कोई इनके नाम का स्मरण करेंगे वे संसार में मनोकामना पाकर अन्त समय मुक्ति पावेंगे। ये दोनों बालक चारों युग में एक साथ उत्पन्न होते हैं। यह बात सुनकर नन्द व यशोदा बहुत प्रसन्न हुए और सोना व रत्नादिक गर्गाचार्य को देकर बिदा किया। गर्गजी ने मथुरा में आकर वसुदेवजी से सब समाचार से कह दिया। हे राजन्! जब श्याम व बलराम अति सुन्दर मोहनी मूर्ति घुँघुवारे बाल शिर पर बिखरे अनेक रंग के भूषण व वस्त्र पहिने व खिलौना लिये बालकों के साथ घुटनियों से चलकर आँगन में खेलते थे तब यशोदा व रोहिणी व गोपियों को वह छवि देखकर जैसा सुख मिलता था वह मुझसे वर्णन नहीं हो सकता।

क० डगमग पवन ते अलख अलेख ज्योति नन्द के हैं जाहिर के योगिन के जपके।
रुनझुन पैंजनियाँ खेलत हैं रजभरे गभुवारे घुंघुवारे सौहैं बार झपके॥
मोहन बलैया लेउँ आवो धूरि झार डारों सुनि बात मात गले लागन को लपके।
शारदा गणेश शेष विधिसों न गिने जात भक्तन के हित के अहीरन के तपके॥

कौ० जबहि यशोदा माय बुलावै। बारोलाल घुटुनियों धावै॥
ताके धावत अति छबि होई। जो देखै सुख पावत सोई॥
दो०बालविनोद विलोकिकै मुदितयशोदामात। माखनप्रभुहिं निहारिकेबार-बार बलिजात॥
सो०नितउठिव्रजकीवाम आवैंयशुमतिके सदन। मुदित निरख घनश्यामलैलै मोदखिलावहीं॥
दो०करन बाललीला ललितपरम पुनीतउदार।सुन्दर श्याम सुजान हरि सन्तन के आधार॥
सो०कापैवरण्यो जाय बालचरित नँदलाल को। कल्पन सकैं न गाय शेष कोटि शारद सहस॥

हे राजन्! देखो, जिस परब्रह्म परमेश्वर की महिमा वेद नहीं जानते वह वैकुण्ठनाथ बालरूप से नन्दजी के आँगन में खेलकर प्रतिदिन नये सुख नन्द व यशोदा को दिखलाते थे। जो आनन्द तीनों लोकों में नहीं मिलता वह सुख श्यामसुन्दर की कृपा से व्रजवासियों को गोकुल में प्राप्त होता था। जब श्यामसुन्दर के दाँत निकले तब नन्द व यशोदा ने शुभ साइत में खीर व मिश्री से उनका अन्नप्राशन कराया। उस दिन व वर्षगाँठ के दिन ब्राह्मणों को बहुतसा दान व दक्षिणा देकर अपने जाति भाइयों को भोजन कराया और बड़ा आनन्द मनाया। जब खेलते समय श्याम व बलराम छोटे-छोटे बछड़ों की पूँछ पकड़कर खड़े होते और गिर पड़ते, फिर उठते और तुतलाकर बोलते थे तब यशोदा व रोहिणी बड़े हर्ष से उन्हें गोद में उठाकर दूध पिलाती थीं। वे दोनों भाई अति सुन्दर थे, इसलिए उनके रूप पर सब ब्रजबाला मोहित होकर अनेक बहाने से उनको देखने आया करती थीं। उन्हीं दिनों एक ब्राह्मण नन्दजी के घर आया। यशोदा ने दूध, चावल और मीठा उसे दिया। जब उस ब्राह्मण ने खीर बनाकर थाली में परोसा और परमेश्वर का भोग लगाकर आँख बन्द करके ध्यान किया तब श्रीकृष्णजी जाकर उसकी थाली में भोजन करने लगे। उस ब्राह्मण ने उनको खाते देखकर वह थाली छोड़ दी और यशोदा से कहा कि तुम्हारे बालक ने हमारी रसोई छू ली। इसी तरह तीन बेर यशोदा ने उस ब्राह्मण से खीर बनवाई और भोग लगाते समय नन्दलालजी जाकर उसकी थाली में खाने लगे तब यशोदा ने क्रोधित होकर कहा कि मैं ब्राह्मण को भोजन कराने के लिए खीर करा देती हूँ, सो तू जूठी क्यों कर देता है, मैं तुझे मारूँगी। यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने कहा हे माता! तू मुझको दोष मत लगा, जब यह ब्राह्मण विनय-

पूर्वक भोजन करने के वास्ते बुलाता है तब मैं इसके प्रेम को देखकर खाने लगता हूँ। नन्दलालजी की यह बात सुनते ही ब्राह्मण देवता को ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह बोला—हे यशोदा! धन्य तेरा भाग्य है कि साक्षात् वैकुण्ठनाथ ने तेरे यहाँ आकर अवतार लिया।

सो०सुफलजन्मप्रभुआजप्रकटभयोसबसुकृतफल। दीनबंधुब्रजराजदियोदर्शम्वहिंकृपाकरि॥

उसी प्रेम में वह ब्राह्मण मग्न होकर नन्दजी के आँगन में लोटने लगा और श्यामसुन्दर के सामने हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीना-नाथ! मेरा यह अपराध क्षमा कीजिए, जो मैंने कहा था कि रसोई जूठी कर दी। जो कोई तुम्हारी शरण में आया वह कृतार्थ हुआ। आप अन्तर्यामी हैं, मुझे अपनी शरण में जानकर दयालु हूजिए। श्यामसुन्दर उस ब्राह्मण का यह हाल देखकर यशोदा के पास खड़े होकर हँसने लगे। ब्राह्मण उनकी स्तुति करके विदा होकर चला गया और यशोदा आदि ने यह हाल देखकर आश्चर्य माना। इसी तरह श्यामसुन्दर अनेक बाल चरित्र करके नन्द व यशोदा को सुख देते थे। एक दिन श्याम व बल-राम लड़कों के साथ अपने आँगन में खेलते थे, सो कन्हैयाजी ने मिट्टी खा लिया। तब श्रीदामा बालक ने यह हाल यशोदा से जाकर कहा। यह बात सुनते ही यशोदा मारे क्रोध के हाथ में छड़ी लेकर श्यामसुन्दर को मारने दौड़ी। जब वैकुण्ठनाथ ने अपनी माता को क्रोध में आते देखा तब मारे डर के अपना मुख पोंछकर खड़े हो गये। यशोदा ने श्रीकृष्णजी से कहा—तैंने मिट्टी क्यों खाई, गाँववाले मेरी निन्दा करेंगे कि यह अपने पुत्र को कुछ खाने को नहीं देती, इसलिए वह मिट्टी खाता है। यह बात सुनकर मोहनप्यारे डरते हुए बोले—हे मैया! यह झूठी बात तुमसे किसने कही। कदाचित् कोई वृथा कलंक लगा दे तो मेरा क्या दोष है। तब यशोदा बोली कि तेरे साथी श्रीदामा ने यह बात मुझसे कही है। जब श्यामसुन्दर ने श्रीदामा को डाटकर पूछा कि मैंने कब मिट्टी खाई थी। तब वह बोला—हे भाई! मैंने तुम्हारी माता से कुछ नहीं कहा है। जब यशोदा ने केशवमूर्ति का हाथ पकड़कर धमकाया तब वे बोले—हे मैया, कहीं मनुष्य भी मिट्टी खाता है।

दो० झूठ कहत तोसों सभी मिट्टी म्वहिं न सोहाय। नहिं मानै जो बात तू दिखलावों मुख बाय॥

यह वचन सुनकर यशोदा बोली कि अच्छा, तेरी झूठी बातों का विश्वास नहीं करती, तू सच्चा है तो अपना मुख खोलकर दिखला दे। यह बात सुनते ही श्यामसुन्दर ने अपना मुख खोलकर दिखला दिया तो यशोदा को उनके मुख में तीनों लोकों की वस्तुएँ जिस तरह पहिले देखी थीं उसी तरह फिर दिखलाई दीं। तब यशोदा ने मन में कहा कि मेरे समान कोई मूर्ख न होगी, जो त्रिलोकीनाथ को अपना पुत्र जानती हूँ। यह बालक मनुष्य नहीं है, नारायण का अवतार मालूम होता है, क्योंकि मैंने दो बेर इसके मुख में सब संसारी व्यवहार देखा। जब ऐसा विचारकर यशोदा उनकी स्तुति करने लगी तब मोहनप्यारे ने समझा कि अभी मुझे बहुत लीला करनी है, अपने को प्रकट करना न चाहिए। यह विचारकर अपनी माया यशोदा पर फैला दी। तब उसने नंदजी से कहा कि मैंने यह सब चरित्र श्यामसुन्दर के मुख में देखा है। यह हाल सुनकर नन्दराय बोले कि जो बात गर्गजी कह गये हैं सो सत्य मालूम होती है।

दो० नन्दकहत सुनबावरी हरि अति कोमलगात। लै साँटी धावत वृथा पुनि पाछे पछितात॥

सो० अचरज तेरी बात को जानै देख्यो कहा। कुशल रहैं दोउ भ्रात राम श्याम खेलत हँसत॥

यह वचन सुनते ही यशोदा ने नन्दलाल को अपना बेटा समझकर गोद में उठा लिया और प्यार करके बोलीं—हे प्राणप्यारे! जो हाथ मैंने तुझे साँटी मारने को उठाया था वह मेरा हाथ गलि जावे और जिन आँखों से तुझको घूरा था वे फूट जावें। हे बेटा! तुम माखन व मिठाई छोड़कर मिट्टी क्यों खाते हो। ऐसा कहकर यशोदा श्यामसुन्दर को घर के भीतर ले गईं। एक दिन श्याम और बलराम लड़कों के साथ खेलते थे, आपस में कुछ झगड़ा हुआ तो बलरामजी ने मोहनप्यारे से कहा—

दो० बोलि उठे बलराम तब इनके माय न बाप। हारजीत जाने नहीं लड़िकन लावत पाप॥

यह वचन सुनते ही श्यामसुन्दर रोते हुए यशोदा के पास जाकर बोले।

चौ० मैया म्वहिं दाऊ दुख दीन्हों। मोसों कहत मोल को लीन्हों॥
कहा करूँ या रिस के मारे। मैं नहिं खेलन जात दुआरे॥
पुनि पुनि कहत कौन तेरि माता। को तेरो तात कौन तेरो भ्राता॥

गोरे नन्द यशोदा गोरी। तुम तो कारे आये चोरी॥
मोसों कहत देवकी जाये। लै बसुदेव यहाँ मिसि आये॥
मोल कछुक बसुदेवहि दीन्हों। ताके पलटे तुमको लीन्हों॥

हे माता! बलदाऊजी के सिखलाने से सब बालक भी मुझे यह बात कहकर चिढ़ाते हैं, सो तू सत्य कह, मैं किसका बेटा हूँ। यह सुनते ही यशोदा गोधन की सौगन्द खाकर बोलीं—हे मोहनप्यारे! मैं तेरी माता और तू मेरा पुत्र है।

दो०पाछे ठाढ़े सुनत सब नंद श्याम की बात। लीन्हों गोद उठाय हँसि सुन्दर साँवल गात॥

केशवमूर्ति यह बात अपनी माता से सुनकर प्रसन्न हुए और फिर लड़कों में जाकर खेलने लगे। जब कभी रात को मोहनप्यारे बाहर खेलने की इच्छा करते थे तब यशोदा उनसे कहती थी कि बाहर मत जाओ वहाँ हउवा काट लेगा।

दो०रूप रेख जाके नहीं विधि हर अंत न पाय। हाऊ सों डरपात तेहि यशुमति रखत सोवाय॥

फिर नन्दजी ने मोहनप्यारे का मुण्डन व कर्णछेदन करके ब्राह्मणों और अपने जाति भाइयों का सम्मान किया। जब श्यामसुन्दर को पाँचवाँ वर्ष लगा तब ग्वालबालों के साथ ब्रजगोकुल की गलियों में खेलने लगे।

दो०जाके गुणगण अगम अति निगम न पावत ओर। सो प्रभु खेलत ग्वालसंग बँधे प्रेमकी डोर॥
सो०खेलत भई अबेर जननी टेरत श्याम को। आवो धाम सबेर साँझ समय नहिं खेलिए॥

हे राजन्! सब ब्रजबाला श्याम व बलराम के रूप पर मोहित रहकर यह इच्छा रखती थीं कि वह किसी तरह हमारे घर आवें तो हम उनका दर्शन पाकर अपनी आँखें ठण्ढी किया करें, इसलिए अन्तर्यामी सबकी इच्छा पूर्ण करनेवाले श्यामसुन्दर ग्वालबालों समेत उनके घर जाने लगे। सो गोपियाँ बड़ी प्रसन्नता से दही व माखन खिलाकर उनका सब सम्मान करने लगीं। जो ब्रजबाला घर पर नहीं रहती थी उसके सूने घर में बेधड़क घुसकर उसका दही, दूध और माखन ग्वालबालों व बानरों को खिलाकर आप भी खाते थे। जब सबका पेट गोरस खाते-खाते भर जाता था तब दही आदि पृथ्वी पर गिराकर हाँडी और मटुकी को तोड़कर कहते थे कि कैसा निकम्मा यह दूध व दही है जिसे कोई नहीं खाता। यह उपद्रव

देखकर गोपियाँ बहुत बरजती थीं, तिस पर भी नहीं मानते थे, तब ब्रजबाला माखन चोर उनका नाम धरकर हँसी से पुकारती थीं।

दो० माखन प्रभु गुण देखिकै गोपिन कियो उपाय। दूध दही माखन मही राखैं दूर दुराय।।

सब गोपियाँ दही आदि छींके पर रखने लगीं, जिसमें उनका हाथ न पहुँचे। तब उन्होंने यह उपाय निकाला कि पहिले ऊखली के ऊपर पीढ़ा रखकर उसके ऊपर एक लड़के को खड़ा कर देते थे और उसके काँधे पर आप चढ़कर छींके पर से दूध व माखन उतारकर खा जाते थे। जब यह उपाय करने पर भी बहुत ऊँचे रहने से वह बर्तन नहीं उतरता था तब मुरली व लाठी से उस हाँडी में छेद करके दही आदि को अंजली में रोप कर खाते और लुटाते थे। जब कोई गोपी उनकी यह दशा देख-कर गालियाँ देती हुई निकट आती थी तब मोहनीमूर्ति को देखते ही हँस देती थी। गोपियाँ माखन देने के लालच से ताली बजाकर श्याम-सुन्दर को नचाती थीं।

स० शंकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावें।
नेक हिए में जो आवत ही रसखान महाजड़ मूढ़ कहावें।।
जापर सुन्दर देववधू नहिं वारत प्राण अबार लगावें।
ताहि अहीर की छोकरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावें।।

दो० गोरस को चस्को लग्यो दिन प्रति आवै लाल। यशुदहिंदेन उराहनो आवैं सब ब्रजबाल।।

कभी-कभी गोपियाँ यशोदा के पास जाकर कहती थीं कि तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्ण ने हमारा दूध व दही आदि चुराकर खा लिया और दूसरे बालकों व वानरों को खिलाकर हमारी मटुकी तोड़ डाली, हम लोग बहुत छिपा-छिपाकर अपना दूध व माखन रखती हैं तिस पर भी उसके हाथ से नहीं बचता कहाँ तक तुम्हारा संकोच करैं। आप खा जावें तो हमें सन्तोष है, दूसरे ग्वालबालों और वानरों को खिलाकर लुटा देता है और हमारे रसोई व पूजा का स्थान मल व मूत्र करके भ्रष्ट करता है। तुम अपने कन्हैया को मने करो। तब श्रीकृष्ण बड़ी गरीबी से कहते थे—हे माता! यह सब गोपियाँ मुझे झूठा कलंक लगाती हैं, नहीं मालूम कौन ग्वालबाल इनका दूध व दही खा गया होगा, सीधा मेरा नाम

इन्होंने सीख लिया है, जो प्रतिदिन आकर तुमसे चुगुली खाती हैं। भला यह तो विचार करो कि मैंने छोटे हाथों से किस तरह छींके पर की वस्तु उतारी होगी।

दो॰ मैं अपनो घर छोड़िकै कभी कहूँ नहिं जात। आय सबै ये सुन्दरी वृथा कहत उठि प्रात॥

हे माता! यह सब ब्रजबाला मुझे यमुना किनारे व गली-राह में से अपने घर बरजोरी पकड़ ले जाती हैं और कोई मेरा मुख चूमती, कोई कपड़ा खींचती, कोई मेरी टोपी उतार लेती, कोई मेरे गाल में मुक्का मारकर कहती हैं कि तू नाच। हे माता! ये गोपियाँ मुझे बड़ा दुःख देती हैं। तुम यह गाँव छोड़कर कहीं दूसरी जगह चलकर बसो। ऐसी मीठी बातें मोहनप्यारे की सुनकर यशोदा ने गोपियों के कहने का विश्वास नहीं किया।

दो॰ माखनप्रभुहि उठाय के मातु लियो उरलाय। गोपिन सों बिनती करी रहीं तबै शिर नाय॥

इसी तरह सब ब्रजबाला उरहना देते समय नन्दलालजी की अनोखी बातें सुनकर आनन्दपूर्बक अपने-अपने घर चली आती थीं और मोहन प्यारे ने यशोदा के समझाने पर भी दही व माखन की चोरी करना नहीं छोड़ा। अँधेरे घर में भी अपने चंद्रमुख के प्रकाश से माखन आदि ढूँढ़कर खा जाते थे। यशोदा उरहना देते समय गोपियों से कहती थीं कि यह काम श्यामसुन्दर का नहीं है, भला तुम्हीं न्याय करो कि इस छोटे बालक का हाथ छींके पर किस तरह पहुँचा होगा। किसी दूसरे ग्वाल का यह कर्म है। तुम लोग झूठा कलंक मेरे प्राणप्यारे को लगाती हो। जितना तुम्हारा गोरस आदि गया हो, मेरे यहाँ से ले जाओ।

दो॰ झूठो दोष लगाय के नित उठि आवत प्रात। सम्मुख बोलत लाज तजि फेरि बनावत बात॥

जो तुम लोग सच्ची हो तो चुराते समय उसको मेरे पास पकड़ लाओ। यह बात सुनकर सब ब्रजबाला अपने-अपने घर चली गईं।

दो॰ घर-घर प्रकटी बात यह सखा वृन्द ले साथ। माखन चोरी खात हैं नन्दसुवन व्रजनाथ॥

सो॰ सबके मन अभिलाख चोरी पकर न पाइये। धरिये माखन राख यही ध्यान सबके हिये॥

हे राजन्! जब कोई ब्रजबाला चोरी करते समय पहुँचकर नन्दलाल से यह कहती कि तुमने हमारे सूने घर में आकर माखन व दही की हाँडी में क्यों हाथ डाला तब उसको उत्तर देते कि मैं धोखे से अपना घर जानकर यहाँ चला आया, दही में चिउँटी पड़ गई थीं सो निकालता हूँ।

कदाचित् कोई ब्रजबाला दही आदि खाते समय आकर कहती कि हे माखनचोर! तू हमारा दही क्यों खाता है तब मोहनप्यारे उस गोपी को आँख के सैन से निकट बुलाकर दूध या दही जो मुख में लिये रहते थे उसके मुख व आँखों पर कुल्ला कर देते थे। जब तक वह मुख व आँख पोंछती तब तक भागकर अपने घर चले आते थे। यशोदा उनको नित्य समझाया करती थी कि हे बेटा! मेरे नव लाख गौ दही-दूध देनेवाली हैं, जितना दूध व माखन तुम्हारा मन चाहे, खाया और लुटाया करो। किसी दूसरे के घर चुराने मत जाओ। सब गाँववाले मुझे कहते हैं कि तू अपने बेटे को भोजन नहीं देती, इसी वास्ते वह सबके घर माखन व दही चुराकर खाता है। जब गोकुलवासी तुम्हें माखनचोर कहकर पुकारते हैं तब मारे लज्जा के मुझसे किसी को अपना मुख नहीं दिखलाया जाता। जब हाट-बाजार में दूध-दही बेचनेवाली यह सब ग्वालिन नित्य आकर तेरा उरहना मुझे देती हैं तब मैं मारे लज्जा के डूब जाती हूँ। नन्दजी यह हाल सुनकर तुझे मारेंगे।

सो० बड़े बाप के पूत चोरनाम राख्यो जगत। उपज्यो पूत सपूत नाम धरावत तात को॥

यह सुनकर मोहनप्यारे बोले—हे माता! अब मैं ग्वालियों के घर नहीं जाऊँगा। ऐसा कहने पर भी उन्होंने दही आदि चुराकर खाना नहीं छोड़ा। तब सब गोपियों ने आपस में सलाह की कि एक दिन माखनचोर को दहीसमेत पकड़कर यशोदा के पास ले जाना चाहिए। सो एक दिन मोहनप्यारे किसी ब्रजबाला के घर में माखन आदि चुराकर खाते थे। जब कई गोपियों ने मिलकर उन्हें पकड़ लिया और उनके साथी ग्वालबाल वहाँ से भाग गये तब गोपियाँ केशवमूर्ति को पकड़कर यशोदा के पास ले चलीं। उस समय ब्रजनाथजी ने अपनी माया से ऐसा छल किया कि जो गोपी हाथ पकड़े जाती थी उसी के पुरुष का हाथ, मुख में दही लगाकर उसे पकड़ा दिया और आप वहाँ से अन्तर्धान होकर ग्वालबालों में खेलने लगे। उस गोपी ने हरिइच्छा से यह भेद नहीं जाना कि मैं अपने पति का हाथ पकड़े जाती हूँ। उसके साथ जो गोपियाँ थीं, उन्होंने भी उसे नहीं पहिचाना। उस ब्रजबाला ने गोपियों समेत नन्द-

रानी के पास जाकर कहा कि नन्दलालजी के मारे वज्र और गोकुल का गोरस नहीं बचता, नित्य हमारा दही व माखन चुराकर खा जाते हैं। जब दही खाते समय इन्हें कोई पकड़ता है तब कहते हैं कि तुमने बर-जोरी मेरे मुख में दही लगा दिया। इनके मारे कोई बछरा बँधा रहने नहीं पाता। इनमें बड़े चरित्र भरे हैं, माखन व दही चुराने के सिवा हमारी अँगिया भी फाड़ डाली है। इनको तुम बालक मत समझो, हम लोगों को इनका हाल कहते लज्जा मालूम होती है।

दो०करतफिरतउत्पातअतिसबब्रजघरघरजाय। नितउठिखेलतफागुरी गरियावतनलजाय॥

और जब हम लोग उरहना देने आती हैं तब तुम भी हमें झूठी बनाती हो, सो आज श्यामसुन्दर को माखन चुराते व खाते पकड़कर तुम्हारे पास लाई हैं। जब गोपियाँ इसी तरह का बहुत उराहना दे चुकीं तब यशोदा बोलीं कि मेरा मोहनप्यारा कहाँ है? हे बहिन, तुम किसे पकड़कर लाई हो, तुम अपने चोर का मुख तो देखो, तब तुम्हारा सत्य व झूठ खुल जायगा। मेरा श्रीकृष्ण तो कल्ह से घर के बाहर भी नहीं निकला। यह बात सुनकर जैसे उस गोपी ने अपने चोर का मुख देखा तो अपना पति दिखलाई दिया। यह चरित्र देखते ही उसने उसका हाथ छोड़ दिया और लज्जित होकर हँसने लगी। तब यशोदा ने सच्ची बन कर गोपियों से कहा कि मेरे बालक को तुम लोग वृथा चोरी लगाती हो, मेरा कन्हैया पाँच वर्ष का चोरी योग्य नहीं है। तुम मेरे प्राणप्यारे से मत बोला करो। यह बात गोपियों से कहकर यशोदा ने मोहनप्यारे से कहा कि हे बेटा! मेरे बर्जने पर भी तू चोरी करना नहीं छोड़ता।

दो०सुनि सुनि लाजन मरतमैं तू नहिं मानत बात। अबतोहिं राखौं बाँधि कै जानी तेरी बात॥

सो० मोपे लीजे श्याम दधि माखन मेवा मधुर। सब कुछ तेरे धाम पर घर जाय बलाय तुव॥

यह बात सुनते ही मोहनप्यारे ने तुतलाकर कहा—हे माता! तुम इन लोगों के कहने का विश्वास मत करो। ये सब मेरे पीछे-पीछे फिरा करती हैं, कभी मुझे दूध व दही के बर्तन, कभी बछड़ा पकड़ाकर अपने घर के अनेक काम मुझसे कराती हैं और मेरी झूठी चुगुली आकर तुमसे खाती हैं। यह सुनकर सब व्रजबाला केशवमूर्ति का मुख देखती

हुई अपने-अपने घर चली गईं। फिर एक दिन श्यामसुन्दर किसी व्रजबाला के घर माखन आदि चुराने गये। उस समय वह गोपी शय्या पर सोई थी। नन्दलालजी ने उस व्रजबाला की चोटी चारपाई से बाँध दी, उसका माखन और दही ग्वालबालों समेत आनन्दपूर्वक खाया और बर्तन तोड़ डाला। जब वह गोपी बर्तनों का खटका सुनकर चिल्लाई तब पड़ोस की गोपियों ने आकर नन्दलालजी को पकड़ लिया और यशोदा के पास ले जाकर कहा—

दो० वही उलहना नित्य को सत्य करन के काज। मैं गहि लाई श्याम को बाँह पकड़ के आज॥

हे राजन्! उस दिन गोपियों ने सच्ची बनकर यशोदा से कहा कि अपने पुत्र के लक्षण देखो, हमारे बर्तन तोड़ डाले और मेरी चोटी चारपाई से बाँधकर सब माखन व दही खा गया। यह हम लोगों का चीर खींचकर नंगी कर देता है। इसके मारे रास्ता नहीं चलने पातीं। यह बात सुनकर यशोदा बोलीं—

क० प्यारे की कोसन सुनि कसकी कलेजे माहिं जीवन है मेरा कान्ह कहा कर आयो है।
मोसों कहौ कोटिक कछू न कहो बालक सों केतो दुख देखदेख कैसे कर पायो है॥
माखन को माठ लेके द्वार पर महरि बैठी तौल तौल लेव बीर जाको जेतो खायो है।
गोरस के काज ग्वालि गोदहु पसारति हूँ गारी मति देव मो गरीबिनी को जायो है॥

जब यशोदा को गोपियों की बात सत्य मालूम हुई तब मोहनप्यारे पर क्रोध करके कहा कि तूने अच्छा चोरी का काम सीखा है। हे बेटा! मैंने तुझे बारम्बार समझाया, पर तू मेरा कहना नहीं मानता, अब मैं तुझको बाँध कर घर में बैठा रक्खूँगी। यह बात सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा—हे मैया! यह गोपी मुझे बरजोरी पकड़कर अपने घर ले गई और हमसे इसने अपने घर का काम-काज कराया, अब झूठ कलंक लगाकर उलाहना देने आई है। यह बात मोहनप्यारे की सुनकर यशोदा हँसने लगीं और सब गोपियाँ अपने-अपने घर चली गईं। हे परीक्षित! इसी तरह श्यामसुंदर नई-नई लीला करके अपनी माता व पिता व व्रजवासियों को सुख देते थे। देखो, जो वैकुण्ठनाथ आठों पहर क्षीर-समुद्र में रहते हैं, वे गोपियों का दही व माखन चुराकर खाते थे।

दो० विश्वभरण पोषणकरन कल्पतरोवर नाम। सो दधि चोरी करत हैं प्रेमविवश सुखधाम।।
धनिव्रजवासिनधन्यव्रजधनिधनिव्रजकीगाय। जिनकोमाखनचोरिहरिनितउठिघरघरखाय।।

देखो, जिस परब्रह्म परमेश्वर के चरणों का ध्यान ब्रह्मा व महादेव आदि देवता आठों पहर अपने हृदय में करते हैं और जल्दी उनका दर्शन नहीं पाते, उन्हें व्रज की अहीरिनियाँ बाँह पकड़कर यशोदा के पास ले जाती थीं। उनकी लीला व भेद को कोई नहीं जान सकता। इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—हे स्वामी! नन्द और यशोदा ने ऐसा कौन तप किया था, जिसके फल से परब्रह्म परमेश्वर उनके पुत्र कहलाये और उनको बाललीला दिखलाकर ऐसा सुख दिया। यह बात वसुदेव और देवकी को नहीं प्राप्त हुई। शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! पिछले जन्म में नन्दजी द्रोण नामक वसु देवता और यशोदा धरा नाम की उनकी स्त्री थी। दोनों ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार बहुत दिनों तक परमेश्वर का तप किया। नारायणजी ने प्रसन्न होकर ब्रह्मा से कहा कि तुम उनको दर्शन देकर जो वरदान माँगे वह वरदान उन्हें दो। तब ब्रह्मा ने उनको दर्शन देकर कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो सो वरदान माँगो। उन्होंने दण्डवत् करके विनय किया कि हमें परमेश्वर की भक्ति प्राप्त हो। ब्रह्माजी बोले कि तुम्हें परमेश्वर की ऐसी भक्ति होगी जो दूसरे को मिलना कठिन है। तुम लोग व्रज गोकुल में जाकर मनुष्य का तन धारण करो, परब्रह्म परमेश्वर सगुण अवतार लेकर तुम्हें अपनी बाललीला का सुख दिखलावेंगे। उसी वरदान के प्रताप से द्रोण ने नन्दजी का और धरा ने यशोदाजी का जन्म पाकर परमेश्वर की बाललीला का सुख देखा था।

नवाँ अध्याय।

यशोदा का श्यामसुन्दर को ऊखल में बाँधना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! एक दिन प्रातःसमय यशोदा गोपियों समेत अपने घर में दही मथती थीं। मेघ गरजने के समान मथानी का शब्द सुनकर मोहनप्यारे नींद से जागे और मैया-मैया करके रोने व पुकारने लगे। जब उनका रोना किसी ने नहीं सुना तब आप उठकर

रोनी सूरत बनाये हुए यशोदा के पास जाकर तुतलाते हुए बोले—मैया! तू पुकारने पर भी मुझे कलेवा देने नहीं आई, तुझको अब तक घर के काज से छुट्टी नहीं मिली। ऐसा कहकर नंदलाल ने यशोदा की मथानी पकड़ ली और चरुई में से माखन निकालकर फेंकने लगे। तब नन्द-रानी झुँझलाकर बोली—बेटा! तूने यह क्या चाल निकाली है, चल उठ, तुझे कलेवा दूँ। यह सुनकर नन्दलालजी ने कहा कि पहिले तूने कलेवा क्यों नहीं दिया, अब मेरी बलाय कलेवा ले। जब यशोदा ने श्यामसुन्दर को फुसलाकर गोद में उठा लिया और मुख चूमकर माखन रोटी खाने के वास्ते दिया तब मोहनप्यारे प्रसन्न होकर खाने लगे और यशोदा अपने अंचल का ओट करके खिलाने लगीं। श्यामसुन्दर अपनी माता के जड़ाऊ गहने में अपना मुख देखकर प्रसन्न होते थे और यशोदा बड़े प्रेम से उनको लिये बैठी थीं। उस समय श्रीकृष्णजी ने अपनी माया से दूध, जो चूल्हे पर चढ़ा था, उबाल दिया तब यशोदा श्रीकृष्णजी को गोद से उतारकर आप दूध बचाने चली गईं। मुरलीमनोहर ने क्रोधित होकर मन में कहा कि देखो, माता को दूध हमसे अधिक प्यारा है, जो पृथ्वी पर मुझे पटककर उसे उतारने चली गई। ऐसा विचारकर नन्दलालजी ने बर्तन फोड़कर सब दही व मट्ठा गिरा दिया और माखन भरी मटुकी लेकर ग्वालबालों में चले गये। एक ऊखली पर, जो वहाँ औंधी पड़ी थी, बैठ गये तब उनके साथी लड़कों ने कहा कि नित्य तुम हमारे घर का माखन व दही खाया करते थे, आज अपने घर का हमें भी तो खिलाओ। यह बात सुनकर श्यामसुन्दर प्रसन्न हुए और अपने चौगिर्द सबको बैठाकर माखन बाँटकर खाने लगे। जब यशोदा ने आकर अपने आँगन में दही व मट्ठे की कीचड़ देखी तब छड़ी हाथ में लेकर जहाँ पर श्यामसुन्दर माखन खा रहे थे जा पहुँची। उसे क्रोध में आते देखकर केशवमूर्ति ग्वालबालों समेत भाग चले और यशोदा उनके पीछे दौड़ी।

दो०आगे सुन्दरश्यामघन पाछे यशुमतिमाय। दामिनि ज्यों दौड़ी फिरै हरि नहिं पकड़ोजाय।।

जब यशोदा श्यामसुन्दर को नहीं पकड़ सकीं तब बहुतसी गोपियों को साथ लेकर पकड़ने के लिये दौड़ी, तिस पर भी वह हाथ नहीं आये।

हे राजन् ! जिस परब्रह्म परमेश्वर ने अपने दो पग में चौदहों लोक नाप लिया था उसको किसकी सामर्थ्य है जो पकड़ सके। जब यशोदा आदि सब व्रजबाला दौड़ती-दौड़ती थक गईं और श्यामसुन्दर के शरीर तक किसी का हाथ नहीं पहुँचा तब दीनानाथ भक्तवत्सल माता को दुःखी देखकर अपनी इच्छा से यशोदा के पास खड़े हो गये। यशोदा ने उन्हें पकड़ लिया और क्रोधवश उन्हें बाँधने के लिए रस्सी माँगकर कहा कि मैं तुझे समझाते-समझाते हार गई, पर तूने माखन व दही चुराकर खाना नहीं छोड़ा। अब तुझे ऊखल में बाँधूँगी। जब यह कहकर यशोदा श्यामसुन्दर को रस्सी से बाँधने लगीं तब गोपियों ने नंदरानी से हँसकर कहा कि तुमको हम लोगों का कहना झूठा मालूम होता था, आज अपनी हानि देखकर तुम्हें भी सत्य मालूम हुआ। यह बहुत अच्छी बात है जो माखनचोर को बाँधती हो। जब यशोदा श्यामसुन्दर को रस्सी में बाँधकर गाँठ देने लगीं तब वैकुन्ठनाथ की माया से दो अंगुल रस्सी छोटी हो गई। यशोदा ने गोपियों से रस्सी लाने के लिए कहा। यह बात सुनते ही सब व्रजबाला हँसकर कहने लगीं कि इन्होंने हमारा माखन व दही बहुत चुराकर खाया है, सो इनको बाँधने के वास्ते हम रस्सी लाती हैं। जब गोपियाँ अपने-अपने घर से रस्सी लाईं और यशोदा सब रस्सियों में गाँठ देकर दीनानाथ को बाँधने लगीं तब भी परमेश्वर की इच्छा से गाँठ देते समय वह रस्सी छोटी हो गई। श्यामसुन्दर की यह महिमा देखकर सबको आश्चर्य हुआ। जब रस्सी पूरी न होने से यशोदा आदि गोपियाँ हार मान गईं तब केशवमूर्ति अपनी इच्छा से एक छोटी रस्सी में बँध गये। यशोदा ने क्रोधवश गाँठ देकर वह रस्सी ऊखल में बाँध दी और सब व्रजबालाओं को सौगन्ध धराकर कहा कि इसे कोई मत खोलना। उसी तरह वैकुण्ठनाथ को बँधा हुआ छोड़कर यशोदा घर का काम करने लगीं। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! देखो, जिस परब्रह्म परमेश्वर का दर्शन ब्रह्मा व महादेव को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता, वे ऐसे भक्त के अधीन रहते हैं कि रस्सी में बँध गये। परमेश्वर की माया ऐसी बलवान् है कि

यशोदा ने दो बेर उनके मुख में तीनों लोकों का व्यवहार देखा तिस पर भी उनको न पहिचानकर ऊखल में बाँध दिया।

दो० आप बँधावत प्रेमवश भक्तन छोरत फंद। वेद पुकारत रात दिन भक्तवछल नँदनंद॥

हे राजन्! पहिले तो गोपियाँ श्यामसुन्दर को बाँधते समय हँसती थीं, और यशोदा के चले जाने पर मोहनप्यारे को बँधे हुए उदास देखकर सब रोने और पछताने लगीं। गोपियों ने यशोदा के पास जाकर कहा कि तुमने माखन व दही खाने व लुटाने के कारण श्यामसुन्दर को बाँधा है, हमसे अपराध हुआ जो तुमसे उलहना दिया, अब हमारे ऊपर दया करके उनको खोल दो।

दो० बारबार देखत वदन हिचकिन रोवत श्याम। वज्रहु से तेरो हियो कठिन यही नँदवाम॥

यह वचन सुनते ही यशोदा ने झुँझलाकर कहा कि तुम लोग अपने-अपने घर जाओ, अब झूठी प्रीति दिखलाने आई हो, प्रतिदिन तुम्हीं लोग उलहना देने आती थीं। जब यशोदा ने गोपियों का कहना नहीं माना तब सब व्रजबाला उदास होकर अपने-अपने घर चली गईं। उस समय एक बालक ने जाकर बलरामजी से कहा कि यशोदा ने श्यामसुन्दर को ऊखल में बाँधा है, सो वे बैठे रोते। बलभद्रजी यह वचन सुनकर दौड़े गये और अपने भाई को बँधे देखकर रोकर बोले—हे भाई! मैं तुमको नित्य समझाता था कि गोपियों के घर माखन चुराने मत जाया करो, माता मारेगी, सो तुमने हमारा कहना नहीं माना। अब मैं तुम्हारे छुड़ाने के लिए यशोदा के पास जाता हूँ। यह कहकर बलरामजी यशोदा के पास गये और उससे हाथ जोड़कर बोले—हे माता! मेरे भाई को छोड़ दो, उसके बदले चाहो मुझको बाँध रक्खो। न मालूम तुम्हारे कौन जन्म के तप करने से वह संसार में जन्म लेकर तुम्हें बाललीला का सुख दिखलाते हैं और तुमने उनको न पहिचानकर गोरसहानि करने के बदले बाँधा है।

दो० छूतोतनिकजो और कोउ आजदेखत्योंसोय। तू जननी कछुवश नहींजोकछुकरो सो होय॥

यह वचन सुनकर यशोदा बोली—हे बलभद्र! मेरी बात सुनो, आज मुझे श्रीकृष्ण को अच्छी तरह दण्ड देने दो। मैंने उसे बहुत समझाया,

तिस पर भी उसने गोपियों के घर जाकर माखन व दही चुराना नहीं छोड़ा । व्रजवासियों ने उसका नाम माखन चोर रक्खा है । भला तुमहीं बतलाओ कि मेरे घर उसे कौन वस्तु खाने को नहीं मिलती, जो वह बिराने घर दही व माखन चुराकर खाता है और मेरा कहना नहीं मानता । जब ग्वालिन मुझे उलहना देती हैं तब मैं लज्जा के मारे डूब जाती हूँ । वह सब जगह जाकर धूम मचाता है, घर में एक साइत नहीं बैठता, आज मैंने उसे धमकाने के लिए बाँधा है, तिस पर तुम मुझसे कहते हो कि तुमको दूध व माखन कन्हैया से अधिक प्यारा है । यह बात सुनकर बलराम ने कहा—हे मैया ! गोपियाँ श्रीकृष्णजी का झूठा उलहना तुम्हें देती हैं । सब व्रजबाला श्यामसुन्दर से प्रीति करती हैं और उनको देखने के लिए उलहना देने के बहाने तुम्हारे पास आती हैं ।

दो० दधिमाखनपय कान्ह को कान्हा की सब गाय । मोकोहै बलकान्हको तू नहिं जानत माय ॥

यह बात सुनकर यशोदा ने कहा कि तुम दोनों भाइयों का एक सम्मत है । जब बलरामजी के कहने से भी यशोदा ने मोहनप्यारे को नहीं छोड़ा तब बलभद्रजी श्यामसुन्दर की इच्छा इसी तरह जानकर वहाँ से व्रजनाथजी के पास आये और हँसकर उनसे बोले कि आपकी लीला आपके बिना दूसरा कौन जान सकता है ।

चौ० को तुम छोरन बाँधन हारा । तुम छोरत बाँधत संसारा ॥

हे भाई ! तुम नन्दरानी की भक्ति से उसके हाथ बिक गये हो । तुम दैत्यों को मारने और अपने भक्तों का दुःख छुड़ाने के लिए सदा भक्तों के वश रहते हो, इस कारण तुम्हारा कुछ बल भक्तों पर नहीं चलता । ऐसा कहकर बलरामजी वहाँ से चले आये तब श्यामसुन्दर ने विचार किया कि नलकूबर और मणिग्रीव कुबेर देवता के दो पुत्र नारद मुनि के शाप से नन्दजी के द्वार पर आँवले के दो वृक्ष होकर खड़े हैं और उनका यमलार्जुन नाम यहाँ प्रसिद्ध है, उनको उस शाप से छुड़ाकर अपना दर्शन देना चाहिए । उन्हीं का उद्धार करने के लिए तो मैंने अपनी भुजा बँधवाई है ।

दो० व्रजवासी प्रभु भक्तहित आप बँधायो दाम । ताही दिन ते प्रकट भो दामोदर असनाम ॥

दसवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का नलकूबर और मणिग्रीव को उद्धार करना।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर शुकदेवजी से पूछा—महाराज! आप विस्तारपूर्वक दोनों वृक्षों का हाल वर्णन कीजिए कि नारदजी ने उनको क्यों शाप दिया था। शुकदेव मुनि बोले—हे राजन! पिछले जन्म में नलकूबर और मणिग्रीव कुबेर देवता के दो बेटे महादेव जी की भक्ति करने से धनपात्र होकर कैलास पर्वत पर रहते थे। एक दिन वे दोनों अपनी स्त्रियाँ साथ लेकर वनविहार करने गये। जब वहाँ मदिरा पीकर मतवाले हुए तब अपनी स्त्रियों समेत नंगे होकर गंगाजी में जलक्रीड़ा करने लगे। उसी समय अचानक नारदजी वहाँ आ पहुँचे। उनकी स्त्रियाँ नारद मुनि को देखते ही अति लज्जित होकर अपना-अपना वस्त्र पहिनने लगीं और वे दोनों अभिमान से अंधे होकर उसी तरह खड़े रहे। उन्होंने धन के गर्व से नारदजी को दण्डवत् भी नहीं किया। उन्हें नारद मुनि का आना बुरा मालूम हुआ। यह दशा देखकर नारदजी ने मन में कहा कि इनको द्रव्य का घमण्ड हुआ, इसलिए काम व क्रोध के वश होकर किसी को कुछ नहीं समझते। मनुष्य धन पाने से परस्त्रीगमन और जीवहिंसा करता है, जुआ खेलता है। अपने शरीर को अमर जानकर यह नहीं समझता कि एक दिन इसका अवश्य नाश होगा और मरने के उपरान्त इस तन को कुत्ते व कीड़े खायँगे या जलाने से राख हो जायगा। इसलिए धनवान् मनुष्य को अच्छे-बुरे और छोटे-बड़े का विचार रखना उचित है। गरीब मनुष्य को अभिमान नहीं होता, केवल पेट भरने से काम रहता है। कंगाल लोग परमेश्वर के भक्त होते हैं और धनपात्र से हरिभजन नहीं बन पड़ता। मूर्ख लोग संसारी माया-मोह में फँसकर अपना तन, धन और परिवार देखकर प्रसन्न होते हैं, बुद्धिमान व हरिभक्त मनुष्य धनवान्-कंगाल, दुःख व सुख को बराबर जानते हैं। ऐसा विचारकर उन दोनों का घमण्ड तोड़ने के लिए नारदजी ने यह शाप दिया कि तुम दोनों भाई आँवले

के वृक्ष होकर मर्त्यलोक में रहो तब तुमको धन का अभिमान करने और मदिरा पीने का स्वाद मिलेगा।

जब तक मनुष्य दुःख नहीं पाता तब तक उसको दूसरे का दुःख देखकर दया नहीं आती। तरुणाई व धन की शोभा धर्म, शील व लज्जा है, सो तुमने छोड़ दी, इसलिए थोड़े दिन तुमको दण्ड भोगना पड़ेगा। जब उन दोनों ने यह बात सुनी सब उनको तन व धन का अभिमान टूट गया। दोनों भाई दौड़कर नारदजी के चरणों पर गिर पड़े और हाथ जोड़कर विनय किया कि इस शाप से हमारा उद्धार कब होगा। नारद मुनि ने कहा कि जब श्रीकृष्णजी पृथ्वी का भार उतारने के लिए मथुरा-पुरी में जन्म लेकर नन्द और यशोदा के घर बाललीला करेंगे तब तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा।

हे राजन्! उसी शाप से वह दोनों गोकुल में आकर यमलार्जुन नाम आँवले के वृक्ष हुए थे। उस समय श्रीकृष्णजी उनका शाप याद करके ऊखल को घसीटते हुए उन वृक्षों के पास ले आये और दोनों वृक्षों में ऊखल अड़ाकर ऐसा झिटक दिया कि वे जड़ से उखड़ गये। उन वृक्षों के गिरने का बड़ा शब्द हुआ और उनकी जड़ में से दो मनुष्य अति सुन्दर व तेजवान् प्रकट हुए। जब मोहनप्यारे ने अपने चतुर्भुजी स्वरूप का उन्हें दर्शन दिया तब दोनों भाइयों ने उस मोहनी मूर्ति को दण्डवत व परि-क्रमा करके हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनानाथ! तुम्हारे सिवा और कौन हम ऐसे अधर्मियों की सुधि लेवे। आप जन्म व मरण से रहित हैं। केवल हरिभक्तों को सुख देने के लिए अपनी इच्छा से अवतार लेते हैं। सब संसार तुम्हारी माया से उत्पन्न होता है। ब्रह्मादिक देवता आपके चरणों का ध्यान अपने हृदय में रखते हैं। नारदजी ने हमारे ऊपर बड़ी कृपा करके शाप दिया था, जिस कारण आपके चरणों का दर्शन मिल-कर हमारा सब दुःख छूट गया। जिस तरह सूर्य व चन्द्रमा के प्रकाश से सब वस्तुएँ दिखलाई देती हैं, अँधेरे में कुछ नहीं सूझ पड़ता, उसी तरह तुम्हारा भजन व स्मरण करने से ज्ञान की आँख खुल जाती है और जो मनुष्य आपसे विमुख हैं उन्हें अन्धा समझना चाहिए। यह सब स्तुति

सुनकर दीनानाथ बोले—नारद मुनि ने तुम लोगों को गोकुल में वृक्ष बना दिया था, उन्हीं की कृपा से मेरा दर्शन तुम्हें मिला। अब जो कुछ तुमको इच्छा हो वह वरदान माँगो। ऐसी कृपा अपने ऊपर देखकर नलकूबर और मणिग्रीव ने विनय किया कि हे महाप्रभु! जब आपका दर्शन प्राप्त हुआ तब हम लोगों को किसी बात की इच्छा नहीं है, पर इतना वरदान कृपा करके दीजिए कि हमारे हृदय में सदा आपकी नवधा भक्ति बनी रहे। यह वचन सुनकर श्यामसुन्दर बहुत प्रसन्न हुए और इच्छापूर्वक उन्हें वरदान देकर बिदा किया। दोनों भाई विमान पर बैठकर कुबेरलोक में चले गये।

ग्यारहवाँ अध्याय।

नन्दजी का गोकुल छोड़कर वृन्दावन में बसना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब वे दोनों वृक्ष गिर पड़े तब उनके गिरने का शब्द सुनकर यशोदा अति व्याकुलता से दौड़ी और जिस जगह श्रीकृष्ण को बाँध गई थी वहाँ उनको न देखकर अधिक घबराकर श्यामसुन्दर का नाम लेकर पुकारने लगी। नन्दजी भी यशोदा का चिल्लाना सुनकर दौड़ आये। जहाँ दोनों वृक्ष गिरे थे वहाँ पर क्या देखा कि नन्दलालजी उन वृक्षों के बीच में ऊखल से बँधे सिकुड़े बैठे हैं। तब नन्दजी ने केशव-मूर्ति को ऊखल से खोलकर गोद में उठा लिया और छाती से लगाकर रोने लगे। यशोदा पर क्रोध करके बोले—तूने मेरे प्राणप्यारे को ऊखल में क्यों बाँधा था, आज परमेश्वर ने इसके प्राण बचाये। उस समय मोहन प्यारे यशोदा की ओर कनखियों से देखकर अपनी आँख मलते जाते थे। यशोदा ने उनको नन्दजी की गोद से लेकर अपने गले लगा लिया। जैसे साँप अपना खोया हुआ मणि पावे वैसा ही हर्ष यशोदा को हुआ। गोपियाँ मोहनप्यारे के प्राण बचने से बहुत प्रसन्न हुई और नन्द-उपनन्द आदि वहाँ इकट्ठे होकर आपस में कहने लगे कि ऐसे पुराने वृक्ष बिना आँधी आये जड़ से क्योंकर उखड़ गये, यह बड़ा आश्चर्य मालूम होता है। तब एक ग्वालबाल ने जो चरित्र देखा था,

ज्यों का त्यों कह सुनाया, पर उस बालक की बात का विश्वास न करके वे लोग आपस में कहने लगे कि मोहनप्यारे से इतने बड़े वृक्ष कैसे गिरे होंगे। तब दूसरे ने कहा कि कदाचित् ऐसा ही हुआ हो, परमेश्वर की गति परमेश्वर जाने, दूसरा कौन जान सकता है। इसी तरह सब लोग आश्चर्य की बातें करते हुए मनमोहनप्यारे को घर में ले आये। नन्द ने ब्राह्मणों व कंगालों को दान व दक्षिणा देकर श्रीकृष्णजी से पूछा—हे बेटा! तुमको भी दो मनुष्य वृक्ष में से निकलते हुए दिखलाई दिये थे? व्रजनाथ ने कहा—हे बाबा! हमने कुछ नहीं देखा। नन्दजी ने उनको अपने गले लगा लिया और उनके शरीर में जो धूर लगी थी उसे पोंछ दिया। तब नन्दलालजी बोले—

सो०माखनल्यावरिमातभूखलगीमोको बहुत। आजनखायोंप्रातसुनतवचनयशुमतिहँसी॥

यह वचन सुनते ही यशोदा ने माखन रोटी मेवा मिठाई आदि ला दिया, सो मोहनप्यारे ने ग्वालबालों समेत बड़े हर्ष से भोजन किया। जब श्रीकृष्णजी के वर्षगाँठ का दिन आया तब नन्दजी ने अपने जातिभाइयों और ब्राह्मणों को सम्मानपूर्वक खिलाकर बड़ी खुशी मनाई और उपनन्द आदि ग्वालों से कहा कि गोकुल में नित्य नया उत्पात उठता है, इसलिए दूसरे स्थान पर, जहाँ घास व जल का सुख हो, चलकर बसना चाहिए। यह सुनकर उपनन्द ने कहा कि वृन्दावन में, जहाँ गोवर्द्धन पर्वत है, चलकर बसो तो अच्छी तरह आराम पावेंगे। जब यह सम्मत सबको भला मालूम हुआ तब दूसरे दिन शुभ साइत में नन्दजी अपने जातिभाई गोकुलवासी और घर की सब वस्तु समेत वृन्दावन को गये। सन्ध्या समय पहुँचकर वृन्दादेवी का पूजन किया और आनन्दपूर्वक वहाँ बसे। श्यामसुंदर की कृपा से वृन्दावन फूल-फल घास आदि से हरा हो गया। अनेक रंग के पक्षी बोलने लगे। सब लोग वहाँ अपने रहने के लिए अच्छे-अच्छे स्थान बनाकर आनन्दपूर्वक रहने लगे। गौओं को वहाँ चरने का बड़ा सुख था। सब लोग नित्य नई-नई लीला केशवमूर्ति की देखकर सुख पाते थे।

दो०सुखयशुमतिअरुनंद को कोकरिसकैबखान। सकलसुखनकैखानिहरिजहाँ रहेसुखमान॥

हे राजन् ! जब व्रजनाथजी पाँच वर्ष के हुए तब उन्होंने नन्दरानी से कहा कि हे मैया ! हम भी बछरा चराने जायँगे । तुम बलदाऊ से कह दो कि वन में हमको अकेला न छोड़ें । तब यशोदा बोली कि हे बेटा ! बछड़ा चराने के लिए बहुत से बालक तुम्हारे यहाँ चाकर हैं, मेरी आँखों के सामने से तुम अलग मत हो । यह सुनकर नन्दलालजी ने कहा कि तुम मुझको बछड़ा चराने और खेलने के वास्ते वन में न जाने दोगी तो मैं माखनरोटी न खाऊँगा । जब यशोदा कन्हैयाजी के हठ करने से हार गई तब शुभ साइत में ब्राह्मणों को कुछ दान देकर सब ग्वालबालों को बुलवाया और श्याम बलराम को सौंपकर उनसे कहा कि तुम लोग बछड़ा चराने बहुत दूर मत जाना और सन्ध्या होने के पहिले दोनों भाइयों को घर पर ले आना । इनको वन में अकेले न छोड़कर अपने साथ लिए रहना । ऐसा समझाकर श्रीकृष्ण व बलराम को बछड़ा चराने के लिए भेजा । श्याम व बलराम ग्वाल-बालों समेत यमुना के किनारे बछरा चराने और खेलने लगे ।

दो० दियेबच्छबगराय सब चरत आपने रंग । बच्छ चरावत नंद सुत मिलि ग्वालन के संग ।।
सो० उर मुक्तन कीमाल शीशमुकुट कटिपीत पट । हाथलकुटिया लाल डोलतग्वालनसंगप्रभु ।।
दो० माखनरोटी और जलशीतल छाकबनाय । दीन्हों जल्दी ग्वालसँग यशुमति बनहिंपठाय ।।

जब कंस ने सुना कि नन्द आदि गोप गोकुल छोड़कर वृन्दावन में बसे हैं तब उसने वत्सासुर को बुलाकर विनयपूर्वक श्यामसुन्दर के मारने के लिए भेजा । जब वत्सासुर बछरारूप वृन्दावन में आया और जो बछरे श्यामसुन्दर चराते थे उन्हीं में वह भी मिलकर चरने लगा और उसे देखते ही सब बछरे डरकर इधर उधर भाग गये तब केशवमूर्ति ने उसे पहचानकर आँख की सैन से बलरामजी से कहा कि हे भाई ! यह राक्षस कंस के भेजने से बछरारूप बनकर मुझे मारने के लिए आया है । वत्सासुर अपनी घात लगाये हुए चरते-चरते श्रीकृष्णचन्द्रजी के पास आ पहुँचा तब मोहनप्यारे ने उसका पिछला पाँव पकड़कर घुमा-कर वृक्ष की जड़ पर ऐसा पटका कि उसके प्राण निकल गये । उस समय देवतों ने श्यामसुन्दर पर फूल बरसाये । यह देखकर ग्वालबाल

बोले कि हे नन्दलालजी! तुमने बहुत अच्छा किया, जो कपटरूप राक्षस को मार डाला, नहीं तो यह हम सबको खा जाता। फिर सब लोग प्रसन्न होकर खेलने लगे। जब राजा कंस ने वत्सासुर के मरने का हाल सुना तब अति चिन्तित होकर उसके भाई बकासुर को भेजा। सो वह बकुलारूप से वृन्दावन में आया और यमुना के किनारे पर्वत के समान रूप बनकर इस घात में बैठा कि श्रीकृष्णजी आवें तो मछली की तरह उनको निगल जाऊँ। श्यामसुन्दर ने उसको देखकर जान लिया कि यह राक्षस है, और किसी ग्वालबाल ने नहीं पहिचाना। ग्वालबालों ने मोहनप्यारे से कहा कि हे भाई! हमने तो इतना बड़ा बकुला कभी नहीं देखा था। श्यामसुन्दर बोले कि तुम लोग धैर्य रक्खो, हम इसको मारेंगे। ऐसा कहकर नन्दलालजी ग्वालों के बर्जने पर भी उस बकुले के पास चले गये तब वह श्यामसुन्दर को उठाकर निगल गया और अपना मुख बन्द करके प्रसन्न होकर मन में कहने लगा कि आज मैंने अपने भाई वत्सासुर का बदला लिया। यह हाल देखते ही सब ग्वालबाल व्याकुल होकर आपस में कहने लगे कि हम लोग चलकर यशोदाजी से यह हाल कहें। इस समय बलभद्रजी भी न मालूम कहाँ पीछे रह गये हैं। ऐसा कहते व रोते हुए ग्वालबाल मारे डर के वहाँ से भागे। जब थोड़ी दूर पर बलभद्रजी से भेंट हुई तब लड़कों ने बलरामजी से कहा कि हमारे बर्जने पर भी मोहनप्यारे बकुले के पास चले गये, सो वह उनको निगल गया। बलरामजी बोले कि तुम मत डरो, नन्दलालजी उसको मारकर तुमसे आ मिलेंगे। जब व्रजनाथ ने ग्वालबालों को दुःखी देखा तब अपने अंग में ऐसी ज्वाला उत्पन्न की कि उस बकुले का पेट जलने लगा। उस राक्षस ने व्याकुल होकर श्यामसुंदर को उगिल दिया। तब नन्दलालजी ने उसकी चोंच का निचला भाग पाँव से दबाकर और ऊपर के भाग को हाथ से पकड़कर चीर डाला। वह राक्षस मर गया। उस समय देवतों ने बड़े हर्ष से बाजे बजाए।

दो० बकासुर सुरपुर गयो अधम असुरतनत्याग। सुर हर्षंत वर्षंत सुमनगगन सहितअनुराग॥

जब मरते समय उस बकुले ने बड़ा शब्द किया तब बलरामजी ने ग्वाल-

बालों से कहा कि कन्हैया ने राक्षस को मार डाला, चलो हम लोग भी देखें। जब सब बालक बलरामजी वहाँ पर गये तब नन्दलालजी ने अपने सखा लोगों से कहा कि हमने चोंच फाड़कर इसको मारा है। यह बात सुनते ही सब ग्वालबाल परमेश्वर से विनय करने लगे कि आज नन्दलाल के प्राण नारायणजी ने बचाये। तीनों लोकों में कोई इनका मारनेवाला नहीं है। जब से ये उत्पन्न हुए तब से इन्होंने कई राक्षसों को मार डाला, यह हमारा बड़ा भाग्य समझना चाहिए, जो इनके सखा कहलाते हैं। जब मोहनप्यारे सन्ध्या समय ग्वालबाल व बछरों समेत हँसते व खेलते हुए अपने घर आये तब मुरली की ध्वनि सुनते ही सब व्रजबाला प्रसन्न हो-कर अपने-अपने घर से बाहर निकल आईं और बनवारीलाल की छबि देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। ग्वालबालों ने अपने-अपने माता और यशोदा आदि से बकुला व वत्सासुर दोनों राक्षसों के मारे जाने का हाल ज्यों का त्यों कह दिया।

दो० मोहनलीला नंद सों ग्वालन कही सुनाय। देवी देव मनाइकै मात लियो उर लाय॥
सुनि ग्वालन के मुखन ते वत्सासुर को घात। यशुमति सबके पाँवपरि बारबार पछितात॥
सो० भई महरिउरत्रास बचेआज हरिअसुर ते। मैं न बिगारयोकाह भएसहायकआनिविधि॥

हे राजन्! उस दिन नन्दजी ने बहुत सा दान मोहनप्यारे के हाथ से कराकर कहा कि हम लोग गोकुल छोड़कर वृन्दावन को चले आये तिस पर भी नित्य नया उत्पात श्रीकृष्णजी के पीछे उठता है। अब यह गाँव छोड़कर कहाँ जावें। परमेश्वर की कृपा से हमारे कुलदेवता सहायक हुए, जो श्यामसुंदर का प्राण राक्षसों के हाथ से बचा। यशोदा बहुत पछताकर नन्दलालजी को समझाने लगी कि ऐ बेटा! तुम वन में मत जाया करो, तुम्हारे पीछे अनेक राक्षस लगे रहते हैं। मोहनप्यारे ने कहा—ऐ मैया! हमको वन में ग्वालबाल अकेले छोड़ देते हैं और मैं उनके साथ बहुत दुःख पाता हूँ, अब मेरी बलाय बछड़ा चराने जावे। मुझको तू चकई भँवँरा मँगा दे, हम गाँव में खेला करेंगे।

दो० मोहि लियोमनजननि को मधु रे वचनसुनाय। वत्सासुरका सोचडर क्षणमें दियोमिटाय॥

हे राजन्! यशोदा ने प्रसन्न होकर उसी समय उनको चकई भँवँरा

मँगा दिया तब ग्वालबालों के साथ उसे खेलने लगे। गोपियाँ नन्द-लालजी के साथ अति प्रीति रखकर एक क्षण उनको देखे बिना नहीं रहती थीं, इसलिए जब चकई खेलते समय कोई ब्रजबाला उनके निकट आकर खड़ी होती थी तब नन्दलालजी हँसी से चकई घुमाकर उसके गहना में, जो गले में पहिने रहती थीं, फँसाकर उनको छेड़ते थे और गोपियाँ अंतःकरण से प्रसन्न होकर प्रकट में गालियाँ देती थीं। केशवमूर्ति किसी से जामुन व बेर आदि फल लेकर उसे जो अन्न देते थे वह उनकी महिमा से मोती व रत्न हो जाता था, इसलिए अनेक ब्रजबाला बेचने के बहाने लालचवश उनके यहाँ आती थीं। मनहरणप्यारे इसी तरह नित्य नई लीला करके वृन्दावनवासियों को सुख देते थे।

दो०धनि-धनिब्रजकेनारिनरधनियशुदाधनिनन्द। विहरतजिनकेसदनमेंब्रह्मसच्चिदानन्द ॥

सो०कहिकहिदेवसिहायधन्य धन्यवृन्दाबिपिन। जहाँचरावतगायसकलसुरनसिरमुकुटमणि॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! ग्वालबालों ने पिछले जन्म में बड़ा पुण्य किया था, इसलिए जिनका दर्शन ब्रह्मादिक को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता उस परब्रह्म के साथ वे खेलते थे।

बारहवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का अघासुर को मारना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! एक दिन श्यामसुंदर यमुना के किनारे खेलने गये वहाँ केशवमूर्ति नटवररूप बनाये, पीताम्बर की कछनी काछे किरीट कुण्डल मुकुट पहिने, उपरना ओढ़े, लकुटिया हाथ में लिए एक सखा के काँधे पर हाथ धरे हुए खड़े थे। उसी समय राधिका वृषभानुदुलारी, जो लक्ष्मीजी का अवतार अतिसुंदरी सात-आठ वर्ष की थीं, स्नान करने गईं। जब श्यामसुन्दर और राधा की आँखें सम्मुख हुईं तब पिछली प्रीति याद करके श्रीकृष्ण उस पर मोहित हो गये और श्यामा का प्रेम भी उनके ऊपर बहुत लग गया। जब दोनों की प्रीति अन्तःकरण से बढ़ी तब वृन्दा-वनविहारी ने हँसकर पूछा कि तुम्हारा क्या नाम है और तुम किसकी पुत्री अति सुंदरी व गोरी हो। हमने आज तक तुम्हें कभी नहीं देखा

यह प्रीति भरी हुई बात सुनकर श्यामा बोली—मैं वृषभानु की बेटी हूँ, राधिका मेरा नाम है, मैं अपने घर सखियों के साथ खेलती हूँ, बाहर नहीं निकलती, इसलिए तुमने हमको नहीं देखा होगा। पर मैंने सुना था कि नंदजी का बेटा गोपियों का माखन चुराकर खाया करता है सो आज मैंने तुमको देखा। तुम्हीं नन्दकुमार हो ? यह सुनकर मोहनप्यारे ने कहा कि मैंने तुम्हारा क्या चुराया। हमारा मन तुम्हारे साथ खेलने को चाहता है सो तुम घड़ी दो घड़ी आकर हमारे साथ खेला करो। श्यामसुन्दर की प्यारी-प्यारी बातें सुनकर श्यामा भी अन्तःकरण से उन पर मोहित हो गई पर सखियों के डर से अपना प्रेम प्रकट नहीं किया।

दो०गुप्त प्रीति प्रकटत नहीं दोऊ हृदय छिपाय। मनमोहनप्यारी चलीं घर को नयनचलाय।।

उस समय तो राधिका यह बातें करके अपने घर चली गई पर उसका मन केशवमूर्ति में लगा रहा। संध्या समय राधा अपनी माता से दूध दुहाने का बहाना करके खरका में मोहनप्यारे से भेंट करने चली।

दो० लै माता सों दोहनी चलीं दुहावन गाय। मन अटक्यो नँदलालसों गई खरक समुहाय ।।

सो०मगमगसोचतजायकितदेखौंवह साँवरो। जिन मनलियोचुरायखरक मिलनमोसोंकह्यो।।

हे राजन् ! जब राधाप्यारी और केशवमूर्ति से खरका में भेंट हुई तब श्यामसुंदर ने अपनी माया से घटा व बदली उत्पन्न करके उसी अँधेरे में उससे प्रेमपूर्वक बातें कीं। जब राधाप्यारी विलम्ब होने से हरबराकर अपने घर चली तब मोहनप्यारे ने उसकी सारी आप ओढ़ ली और अपना पीताम्बर उसे दे दिया। जब श्रीकृष्णजी वह सारी ओढ़े हुए अपने घर आये तब यशोदा ने उनको देखकर बिचारा कि इसने किसी गोपी से प्रीति करके उसकी सारी ले ली है। मोहनप्यारे अन्तर्यामी यशोदा के मन का हाल जानकर बोले—हे मैया ! आज मैं यमुना के किनारे गौवों को पानी पिलाने गया था वहाँ एक गोपी अपनी सारी रखकर स्नान करने लगी। सो एक गौ वहाँ से भागी, जब मैं गाय बहोरने गया तब उस गोपी ने डर के मारे जल्दी में मेरा पीताम्बर, जो यमुना के किनारे रक्खा था, पहिन लिया और अपनी सारी छोड़कर चली गई। वह व्रजबाला मेरी पहिचानी हुई है, अभी जाकर अपना पीताम्बर ले

आता हूँ। ऐसा कहकर वहाँ से बाहर चले आये और अपनी माया से उसी सारी को पीताम्बर बना लिया। फिर यशोदा के पास जाकर कहा कि मैं अपना पीताम्बर बदल लाया। यशोदा उनकी बात सच जानकर चुप हो रही। राधाप्यारी दूध दुहाकर श्यामसुन्दर का पीताम्बर पहिने हुए अपने द्वार तक पहुँची और घबराकर अपनी माता को पुकारा। उसका बोल सुनते ही कीर्त्ति दौड़ी आई उसने अपनी बेटी को घबराई हुई देखकर पूछा—हे बेटी ! अभी तू अपने घर से चंगी भली गई थी, तेरी क्या दशा हो गई। तब राधा ने कहा कि एक लड़की, जिसका नाम मैं नहीं जानती, मेरे साथ चली जाती थी उसको साँप ने काट लिया सो वह अचेत होकर गिर पड़ी तब मैं भी डर गई। जब नन्दकुमार के झारने से उसको आराम हुआ तब मैं अपने घर आई। यह बात सुनते ही कीर्ति ने राधा को गले लगाकर कहा कि तुझे परमेश्वर ने मृत्यु से बचाया। मैं तुझको बारम्बार मना करती हूँ, तू मेरा कहना नहीं मानती। कभी बाहर दूर खेलने, कभी यमुना किनारे नहाने, कभी खरका में दूध दुहाने जाती है। खेलते समय देखकर धरती पर पाँव नहीं रखती है। अब तू कहीं बाहर खेलने मत जाया कर। यह बात अपनी माता से सुनकर राधिका मन में कहने लगी कि आज मैंने अपनी माता से अच्छा छल किया। उसने मोहनीमूर्ति का ध्यान हृदय में रखकर अपनी माता से कहा कि अब मैं बाहर न जाकर गाँव और घर में खेला करूँगी। हे राजन् ! राधा-प्यारी के मन में नन्दलालजी ऐसे बस गये थे कि उनके देखे बिना उसे चैन नहीं पड़ता था, इसलिए तीसरे दिन फिर राधिका दूध दुहाने के बहाने श्यामसुन्दर के स्थान पर आई और द्वारे पर से मोहनप्यारे को पुकारा। मारे लज्जा के भीतर नहीं गई। राधाप्यारी का शब्द सुनते ही नन्द-लालजी ने यशोदा से कहा कि हे मैया ! कल्ह मैं यमुना के किनारे रास्ता भूल गया था सो एक गोपी मेरा हाथ पकड़कर गाँव में पहुँचा गई तब मैं घर पहुँचा हूँ, नहीं तो न मालूम भूलकर कहाँ चला जाता। वही व्रजबाला मेरे साथ खेलने आई है, पर तुम्हारे भय से यहाँ नहीं आती। तुम उसको भीतर बुलाकर देखो। ऐसा कहकर मोहनप्यारे ने

अपनी माया ऐसी यशोदा पर फैला दी कि उसको श्यामा से प्रीति उत्पन्न हो गई। तब यशोदा ने श्यामसुन्दर से कहा तू उसको भीतर बुला ले। यह बात सुनते ही मोहनप्यारे जब राधिका की बाँह पकड़कर भीतर ले आये तब यशोदा ने उसकी सुन्दरता देखते ही बड़े प्रेम से अपने पास बैठाकर पूछा कि तू किस गाँव में रहती है, मैंने आज तक कभी तुझको नहीं देखा, तेरा व तेरे माता पिता का क्या नाम है? कल्ह मेरा मोहनप्यारा राह भूल गया था, सो तूने बहुत अच्छा किया जो उसको गाँव में लिवा लाई। श्यामा ने कहा कि मेरा नाम राधिका है।

दो० मैं बेटीवृषभानु की तुमको जानत माय। बहुत बेर मिलनो भयो यमुना के तट आय॥

यह सुनते ही यशोदा ने कहा कि मैं जानती हूँ तेरी माता बड़ी कुलवन्ती और वृषभानु तेरा पिता बड़ा खोटा है। तब राधाप्यारी हँसकर बोली कि मेरे बाप ने तुमसे क्या खुटाई की थी। यह प्रेम भरा वचन सुनते ही यशोदा ने राधिका को अपने गले लगाकर बहुत प्यार किया और मन में विचारा कि इस कन्या का विवाह मोहनप्यारे से होता तो बहुत अच्छा था। फिर यशोदा ने श्यामा का शिर गूँथकर शृंगार किया और बहुत अच्छा गहना व कपड़ा पहिनाकर मेवा, मिठाई व तिल-चावली उसकी गोद में डालकर कहा कि तू कन्हैया के साथ जाकर खेल। यह बात सुनते ही राधिका प्रसन्न होकर नन्दलालजी के साथ खेलने लगी। हे राजन्! श्याम व श्यामा ऐसे सुन्दर थे, जिनके स्वरूप का वर्णन शेष-गणेशजी नहीं कर सकते, दूसरे की क्या सामर्थ्य है जो बड़ाई कर सके।

दो० खेलत दोउ झगड़नलगे भरे परम अहलाद। मानो घन अरुदामिनी करत परस्पर वाद॥

यशोदा उन दोनों को खेलते-हँसते हुए देखकर बहुत प्रसन्न हुई और राधिका से कहा कि तू नित्य यहाँ आकर मेरे मोहनप्यारे के साथ खेला कर। श्यामसुन्दर राधाप्यारी से हँसकर बोले तुम लज्जा छोड़कर हमारे यहाँ खेलने आया करो। तुम्हारे साथ खेलने से मेरा मन अति प्रसन्न होता है। राधा यह बात मोहनप्यारे की सुनकर मुस्कराती हुई अपने घर चली गई।

दो० परम नागरी राधिका अतिनागर वृजचन्द । करत आपनी घात दोउ बँधे प्रेम के फन्द ॥

जब राधाप्यारी शृंगार किये हुए अपने घर पहुँची तब उसकी माता कीर्ति ने पूछा कि तू कहाँ गई थी, तेरा शृंगार किसने कर दिया है? राधिका बोली कि मैं यशोदाजी के घर गई थी, उन्होंने तुम्हारा व मेरे पिता का नाम पूछकर मेरा बहुत प्यार करके शृंगार कर दिया।

दो० मेरे सिर बेणी गुही बेणी लाल बनाय । पहिनाई निज हाथसों सारी नई मँगाय ॥

हे माता! तिलचावली और मेवा-मिठाई मेरी गोद में डालकर मुझे विदा किया और तुमको ठठोली की राह उन्होंने गाली दी। यह बात सुनकर कीर्ति बहुत प्रसन्न हुई। यह हाल बरसाने गाँव की गोपियाँ सुनकर यशोदा को ठट्ठे की राह गाय-बजायकर गालियाँ देने लगीं। यशोदा के मन का हाल जानकर कीर्ति ने सब गोपियों से कहा कि मेरी बेटी दामिनी और मोहनप्यारा घटा-सा श्याम अति मनभाव दोनों विवाह के योग्य हैं। कीर्ति को भी इस बात की चाह हुई कि राधाप्यारी का विवाह नन्दलालजी से होता तो बहुत अच्छा था। ऐसा विचराकर उसने वृषभानु से यह बात कही—

दो० युगुलकिशोर स्वरूपवर वृंदावन रसखान । नवदूलह दुलहिन सदा राधाश्यामसुजान ॥

वृषभानु भी अपनी स्त्री की बात सुनकर प्रसन्न हुए। इसी तरह राधिका नित्य नन्दजी के घर आकर मोहनप्यारे के साथ खेला करती थी। श्यामसुन्दर भी उसके साथ बड़ी प्रीति रखते थे। राधाप्यारी जब कभी अपनी गौवों का दूध दुहाने के वास्ते मनहरणप्यारे से कहती थी तब वह बड़े प्रेम से उसकी गौ दुह दिया करते थे।

दो० धेनुदुहावत लाड़िलीदुहत नंदको लाल । सो सुख कासों जात कहि देखतब्रजकीबाल ॥

एक दिन राधाप्यारी श्यामसुन्दर से गौ दुहाकर जब दूध लिए हुए अपने घर चली, उस समय मोहनप्यारे ने उसकी ओर देखकर मुसुकरा दिया। राधा वह मुसुकान देखते ही मोहित हो गई। जब राह में उससे सखियों ने पूछा कि आज तेरे गौ दुहानेवाले ग्वाल क्या हुए जो तूने नन्दलालजी से दूध दुहाया है। राधा श्यामसुन्दर का नाम सुनकर ऐसी अचेत होकर गिरी कि दूध का बर्तन उसके हाथ से छूट पड़ा और गिरते

समय सखियों से बोली कि मुझको काले साँप ने काटा है। यह वचन सुनते ही सहेलियाँ उसे उठाकर उसके घर ले गईं और कीर्ति से साँप काटने का हाल कह दिया। उन्होंने बहुत-से गुणी बुलाकर झाड़-फूंक कराया, पर उसको मोहनरूप साँप ने डसा था, इसलिए मंत्र व यंत्र से कुछ लाभ न हुआ। जब वह उसी तरह रही तब सहेलियों ने, जो उसकी प्रीति का हाल जानती थीं। कीर्ति से कहा कि नन्दमहरि का बेटा बड़ा गुणी है, उसे बुलाकर दिखलावो तो इसको आराम हो जायगा। यह सुनकर कीर्ति बोली कि एक दिन राधिका ने भी मुझसे कहा था कि किसी लड़की को साँप काटने से नन्दकिशोर ने अच्छा कर दिया था। वह बात याद करते ही कीर्ति ने दौड़कर यशोदा के पास जाकर कहा कि मेरी बेटी को साँप ने काटा है, सो तुम मोहनप्यारे को साथ कर दो, वह मंत्र पढ़कर उसे अच्छी कर दे। यह सुनकर यशोदा बोली कि अय बहिन! मेरा अज्ञान बालक मंत्र-यंत्र क्या जाने, किसी गुणी को बुलाकर दिखलाओ। आज तक मैंने कभी उसके मंत्र-यंत्र जानने का हाल नहीं सुना है। तब कीर्ति ने कहा कि मैंने राधिका से एक लड़की के साँप काटने और कन्हैया को अच्छा कर देने का हाल सुना था, सो तुम दया करके तुरन्त उसे बुला दो। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब कीर्ति मोहनप्यारे को बुलाने जा चुकी तब ललिता सखी ने, जो उसकी प्रीति का हाल जानती थी, एक व्रजबाला को मोहनप्यारे के पास जहाँ पर वह खेलते थे समझाकर भेजा। उस गोपी ने जाकर नन्दलाल से कहा—

दो०अहोमहरि के लाड़ले मोहनश्यामसुजान। कित सीखे यह गोदुहन हमसे कहो बखान॥

हे नन्दकुमार! आज प्रातःसमय जिसकी गौ तुमने दुही थी वह इस समय अचेत पड़ी है, केवल तुम्हारा नाम लेने से आँख खोल देती है। उसने गिरते समय यह कहा था कि मुझको काले साँप ने काटा है सो कोई मंत्र व यंत्र उसको लाभ नहीं करता। इसलिए तुम चलकर अपनी कृपा-दृष्टि से उसका विष उतार दो। तुम्हारा श्यामरंग देखकर, मैं जानती हूँ कि यह लहर तुम्हारे मुसुकान की उसे चढ़ी है। जल्दी चलकर उसे चंगी कर दो। वह तुम्हारे विरह की आग में जल रही है, सो अपने चन्द्रमुख

की शीतलता से उस विरहिनी की अग्नि बुझाओ। कदाचित् तुम उसे न जिलाओगे तो हम लोग नन्दजी के द्वारे पर जाकर तुम्हारे ऊपर अपना प्राण दे देंगी। कीर्ति उसके दुःख से व्याकुल होकर यशोदा के पास तुमको बुलाने गई है। यह बात सुनते ही मोहनप्यारे ने मुसुकराकर उससे कहा कि कदाचित् राधाप्यारी को काले भुजंग ने भी डसा होगा, तो मैं उसको अच्छा कर दूँगा। ऐसा कहकर उस सखी को विदा किया और आप अपने घर चले आये। तब यशोदा ने उनसे हँसकर पूछा कि अय बेटा! तुम क्या साँप काटने का मंत्र जानते हो? यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले—अय मैया! तेरी सौगन्ध है, मैं ऐसा मंत्र जानता हूँ कि साँप के डसे हुए को देख पाऊँ तो वह मरने न पावे। यशोदा ने कहा कि बेटा, राधा को साँप ने काटा है, तुम कीर्ति के साथ जाकर उसे आराम कर दो। श्यामसुन्दर यह आज्ञा पाते ही प्रसन्न होकर कीर्ति के साथ गये। जब कीर्ति नन्द-लाल समेत अपने घर पहुँची तब राधिका को अधिक व्याकुल देख मोहनप्यारे से विनयपूर्वक कहा कि हे नन्दकुमार! मुझे अपने ऊपर न्योछावर समझकर राधा को अच्छा कर दो। जैसे राधिका ने श्याम-सुन्दर के आने का हाल सुना वैसे ही उसका हृदय ठण्ढा हो गया और प्रेम के आँसू बहने लगे। जब श्रीकृष्णजी ने कुछ पढ़कर अपनी मुरली राधा के अंग में छुआ दी तब उसने चैतन्य होकर अपना अंग कपड़े से ढाँप लिया। श्यामसुन्दर को देखकर वह भली चंगी हो गई और अपनी माता से पूछा कि आज क्या है जो इतने मनुष्य यहाँ इकट्ठे हुए हैं। कीर्ति ने कहा कि बेटी तू साँप के काटने से मरण तुल्य हो गई थी, सो तुझको कन्हैयाजी ने अपने मंत्र से जिलाया है। इनसे तुझे लज्जा न करनी चाहिए। यह कहकर श्रीकृष्ण को गोद में उठा लिया।

दो०उरलगाय मुखचूमिकैपुनिपुनिलेतबलाय। धन्य कोखयशोमतिमहरिजहाँअवतरचोआय॥

सो०कछु मेवापकवान कहेउखानघनश्याम सों। बिदा कियो दैपान कीरति श्यामसुजानको ॥

हे राजन्! श्यामसुन्दर के जाने के उपरांत वृषभानु और कीर्ति ने कहा कि श्रीकृष्ण और राधिका दोनों विवाह करने योग्य हैं। ललिता

सखी सब भेद जानती थी, वह मनहरणप्यारे से बोली कि तुम बड़े गुणी हो गये, राधिका का विष तुरन्त तुमने उतार दिया। यह मंत्र कभी मत भूलना, मैं तुम्हारा भेद अच्छी तरह जानती हूँ। तुमने राधा को मोहनी डालकर उसको अपने वश कर लिया है। यह सुनकर श्यामसुन्दर हँसते हुए अपने घर चले आये। यशोदा राधिका के आराम होने का हाल सुनकर अति प्रसन्न हुई और मोहनप्यारे को गोद में उठाकर प्यार करने लगी।

दो०कारो सुत नंदराय को जाकी लीला नित्त । उनहीं को ये डसत हैं जिनके उज्ज्वल चित्त ॥
सो०धनिधनिव्रजकीबालधन्यधन्यव्रजग्वालसब। जिनके संग नँदलालदुहतचरावतधेनुनित॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक दिन श्यामसुन्दर प्रातःसमय सब ग्वालबालों को साथ लिये कलेवा बाँधे हुए बछड़े चराने वन में गये। वहाँ बछड़ों को चरने के वास्ते छोड़ दिया और खड़िया व गेरू से ग्वालबालों समेत अपने अपने अंग पर चित्रकारी की अनेक रंग के फूलों का गहना बनाकर पहिन लिया और पशु-पक्षी आदि की बोलियाँ बोलकर आपस में खेलने लगे।

दो०कबहुँ गावत सखन संग कबहुँ बजावत बेनु। धवरी धुमरी नाम ले कबहुँ बुलावत धेनु ॥

हे राजन्! उसी समय कंस का भेजा हुआ अघासुर राक्षस श्यामसुन्दर के मारने के वास्ते वहाँ आया और अजगर साँप का रूप बनाकर रास्ते में बैठा। उसका नीचे का ओठ पृथ्वी पर व ऊपर का ओठ आकाश में जा लगा। जब अचानक श्यामसुन्दर ग्वालबालों समेत, जहाँ वह साँप मुख बाये घात लगाये बैठा था, जा निकले तब मोहनप्यारे ने ग्वालबालों से कहा कि जिधर यह पर्वत की कन्दरा सी दिखलाई पड़ती है, उधर मत जाना। हे राजन्! जब ग्वालबाल श्यामसुन्दर के मना करने पर भी बछड़ों समेत उसी ओर चले गये और उस अजगर को जो चार कोस लम्बा व एक कोस चौड़ा था, देखकर आपस में कहने लगे कि यह पर्वत-सा क्या मालूम होता है। जब इसी तरह की बातें करते और बछड़े चराते हुए उसके पास जा पहुँचे तब एक बालक बोला कि हे भाई! यह बड़ी डरावनी खोह दिखलाई देती है, इसके भीतर मत

जाओ। यह सुनकर तोष नामक बालक ने कहा कि आवो इस कन्दरा के भीतर चलें, दुःखभञ्जन हमारे साथ हैं हमको किसका डर है। कदाचित् राक्षस भी होगा तो बकासुर की तरह मारा जायगा। जब सब ग्वालबाल ऐसी बातें करते व पीछे मोहनप्यारे का मुख देखते हुए ताल बजाकर उस साँप के मुख में घुसे तब अघासुर ने ऐसा श्वास खींचा कि सब ग्वालबाल बछड़ों समेत उसके पेट में चले गये। उस समय अघासुर ने विचारा कि कदाचित् आज श्याम-बलराम को मारूँ तो बकासुर और पूतना का बदला लेकर उसके नाम पर तर्पण करूँ। उनकी यह दशा देखकर श्रीकृष्णजी ने कहा—

दो० ग्वालबाल बछड़ा सबै पड़े असुर मुख आय। इन सबहिनकी मायासों कहा कहौंगो जाय॥

मेरे सिवा और कोई इनकी रक्षा करनेवाला नहीं है, इसलिए हमें भी इस राक्षस के मुख में जाकर इनका प्राण बचाना चाहिए। ऐसा विचारकर श्यामसुन्दर भी उस अजगर के मुख में चले गये तब उसने अति प्रसन्न होकर अपना मुख बन्द कर लिया। यह दशा देखकर देवता चिन्ता करने लगे और कंस के मित्र राक्षस व दैत्य प्रसन्न हुए।

दो० माखनप्रभु कीन्हौंतभी बालशरीर विशाल। श्वासव्यालकोरोकके त्रासदियो तेहिकाल॥

हे राजन्! जब मोहनप्यारे के शरीर बढ़ने से श्वास चलना बन्द हो गया तब उसके प्राण ब्रह्माण्ड तोड़कर निकल गये। श्यामसुन्दर सब ग्वालबाल व बछड़ों समेत ज्यों के त्यों बाहर निकल आये। उस समय देवतों ने अति प्रसन्न होकर वृन्दावनविहारी पर फूल बरसाये और राक्षस व दैत्य केशवमूर्ति की यह महिमा देखकर सोच करने लगे। उस अजगर की आत्मा पहिले आकाश में जाकर फिर मोहनप्यारे के मुख में समा गई।

दो० माखनप्रभु परतापते त्रिविधताप मिटि जाहिं। ताहिपाप कैसे रहैं आपजाहिं मुख माहिं॥

हे राजन्! इस तरह उस राक्षस की मुक्ति देखते ही देवतों ने श्रीकृष्णजी को पूर्ण ब्रह्म जानकर उनकी स्तुति की और सब ग्वालबाल श्यामसुन्दर से कहने लगे कि आपने इस राक्षस को मारकर हम लोगों का प्राण बचाया, नहीं तो आज हमारे मरने में कुछ सन्देह नहीं था। यह सुनकर केशवमूर्ति बोले कि हे भाइयो! मैंने तुम्हारी सहायता

से इस राक्षस को मारा। कदाचित् तुम लोग न होते तो यह राक्षस मुझसे मारा न जाता। ऐसा कहकर श्यामसुन्दर ग्वालबालों के साथ खेलने लगे।

दो० गावत खेलत हँसत सब सखावृन्द ले साथ। वृन्दावन के कुञ्ज में वृन्दावन को नाथ॥

उस साँप का शरीर सूखकर पर्वत के समान उस जगह पड़ा रहा। कभी ग्वालबाल उस खाल के भीतर घुसकर और कभी उसके ऊपर चढ़कर खेला करते थे। उस राक्षस ने मरते समय मुरलीमनोहर का ध्यान किया था, इसलिए परमपद को पहुँचा। हे राजन्! यह बात विश्वास करके जानो कि जो लोग मरते समय नारायणजी का ध्यान करते हैं, उनकी मुक्ति होने में कुछ सन्देह नहीं रहता। केशवमूर्ति ने पाँच वर्ष की अवस्था में अघासुर को मारा। वर्ष दिन के उपरांत उसके मरने का हाल ग्वालबालों ने अपने घर में कहा। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे स्वामी! वर्ष दिन तक यह हाल न कहने का क्या कारण था?

तेरहवाँ अध्याय।

ब्रह्मा का ग्वालबाल व बछड़ों को चुरा ले जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! तू बड़ा भाग्यवान है क्योंकि परमेश्वर की कथा में तुझको प्रतिदिन अधिक प्रीति होती जाती है। अघासुर के मरने के उपरान्त मोहनप्यारे ने ग्वालबालों से कहा कि यमुना के किनारे यह ऊँचा साँप का शरीर बहुत अच्छा पड़ा है, इसके ऊपर चढ़कर हम लोगों को खेलने और चरते हुए बछड़ों को देखने का बड़ा सुख हुआ। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उन ग्वालबालों के भाग्य की बड़ाई किसको सामर्थ्य है जो वर्णन कर सके। वे लोग दिन-रात खाना-पीना, उठना-बैठना वृन्दावनविहारी के साथ रखते थे, और सब लोग वृक्षों की छाया में बैठकर अपना शरीर वैकुण्ठनाथ के अंग से स्पर्श करते थे। यह पदवी ब्रह्मादिक देवतों को भी मिलना कठिन है। ग्वालबालों का सुख देखकर देवता उन पर डाह करते थे। जब श्रीकृष्णजी ने अघासुर को मारा

तब ग्वालबाल और बछड़ों समेत आगे जाकर यमुना में स्नान किया, और कदम्ब के नीचे खड़े होकर मुरली बजाई। ग्वालबालों से कहा कि हे भाइयो ! यहाँ अच्छा विमल स्थान है, इसी जगह बैठकर कलेवा कर लो। यह वचन सुनते ही सब ग्वालबाल वहाँ ठहर गये।

दो०तहाँ छाक सब घरनते आई भरिभरि भार। यशुमतिपठयो कान्हकोव्यंजन बहुत प्रकार॥

सब ग्वालबालों ने ढाख के पत्ते लाकर पत्तल व दोना लगाया और अपना-अपना कलेवा निकालकर पत्तल आदि में परोस लिया। बीच में मुरलीमनोहर और उनके चौगिर्द ग्वालबाल खाने के वास्ते बैठे। भोजन करते समय श्यामसुन्दर ने बाँसुरी को कमर में खोंसकर लकुटिया बगल में दबा ली। जब व्रजनाथ ने पहिले आप ग्रास उठाकर मुख में डाला तब पीछे ग्वालबालों ने भोजन करना आरम्भ किया। उस समय मुरलीमनोहर मुकुट साजे, पीताम्बर पहिने, वनमाला गले में डाले, लकुटिया दबाये, अनेक तरह का भोजन बायें हाथ में रखकर हँसते हुए अपना जूठा दाहिने हाथ से सब ग्वालबालों को खिलाने लगे। ग्वाल-बालों के पत्तल पर से उनका जूठा उठाकर आप खाते थे, और उसके खट्टे व मीठे का स्वाद आपस में कहकर ऐसा आनन्द मनाया, जिसका हाल वर्णन नहीं हो सकता।

दो०ग्वाल बाल में बैठके माखन प्रभु व्रजनाथ। माखन-रोटी हाथ ले खात जात इक साथ॥

उस मण्डली में मनहरणप्यारे चन्द्रमा के समान और सब ग्वाल-बाल तारारूप शोभायमान दिखलाई देते थे। उस समय देवता अपने-अपने विमानों पर बैठे हुए यह सुख देखकर आपस में कहने लगे कि धन्य भाग्य इन ग्वालबालों का है, जिनको सच्चिदानन्द परब्रह्म अपना जूठा खिलाकर उनकी जूठन आप खाते हैं। यह सुख हम लोगों को स्वप्न में भी नहीं प्राप्त हो सकता। किसी-किसी मुनि और देवता ने ब्रह्मा से कहा कि महाराज ! हमको बड़ा संदेह मालूम होता है कि हम लोग यज्ञ में बड़ी पवित्रता से सामग्री बनाकर परमेश्वर का भोग लगाते हैं तिस पर भी वैकुण्ठनाथ जल्दी वह भोग अंगीकार नहीं करते और तुम श्रीकृष्णजी को परब्रह्म का अवतार कहते हो, सो देखो यह ग्वालबालों

का जूठा उठाकर खाते हैं, इसलिए हमको तुम्हारे कहने का विश्वास नहीं आता। यह सुनकर परमेश्वर की माया से ब्रह्मा को भी सन्देह उत्पन्न हुआ। तब ब्रह्मा ने कहा कि मैं अभी ग्वालबाल व बछड़े हरकर उनकी परीक्षा लेता हूँ। श्रीकृष्णजी सच्चिदानन्द का अवतार होंगे तो अपनी माया से दूसरे बछड़े व ग्वालबाल बना लेंगे। ऐसा कहकर ब्रह्मा वृन्दावन में आये और चरते हुए बछड़ों को ले जाकर पर्वत की कन्दरा में बन्द कर दिया। जब ग्वालबालों ने बछड़ों को नहीं देखा तब केशव-मूर्ति से कहा कि हम लोग तो बैठे हुए कलेवा करते हैं और बछड़े नहीं दिखलाई देते, न मालूम चरते हुए किधर चले गये। यह सुनकर मुरली-मनोहर ने कहा कि हे भाई! तुम लोग निश्चिन्त होकर भोजन करो, मैं जाकर बछड़ों को घेर लाता हूँ। ऐसा कहकर मोहनप्यारे बछड़े ढूँढ़ने गये। जब वन में जाकर बछड़ों को नहीं देखा तब परब्रह्म परमेश्वर अन्तर्यामी ने मालूम किया कि मेरी परीक्षा लेने के वास्ते ब्रह्मा बछड़ों को हर ले गया है। यह समझते ही वैकुण्ठनाथ ब्रह्मा का सन्देह छुड़ाने के वास्ते अपनी माया से उसी रंग व रूप के दूसरे बछड़े बनाकर वहाँ ले आये। जब उस कदम के तले, जहाँ ग्वालबालों को छोड़ गये थे, पहुँचे तब ग्वाल-बालों को भी वहाँ न देखकर अपनी महिमा से जाना कि ब्रह्मा ने उनको भी हर ले जाकर पर्वत की कन्दरा में छिपा दिया है। ऐसा देखकर केशव-मूर्ति ने मन में कहा कि कदाचित् ग्वालबाल अपने घर न जायँगे तो उनके माता-पिता को बड़ा दुःख होगा। ऐसा विचारकर त्रिलोकीनाथ ने अपनी प्रबल माया से उतने ही ग्वालबाल उसी रूप, उसी बोली, उसी ज्ञान और उसी भूषण-वस्त्र के दूसरे बना लिये। जब संध्यासमय मनहरण-प्यारे सब ग्वालबालों को बछड़ों को, जो अपनी माया से बनाये थे, साथ लिये हँसते व खेलते हुए वृन्दावन में आये तब सब ग्वालबाल बछड़े समेत अपने-अपने घर चले गये। बछड़े अपनी-अपनी माँ का दूध पीने लगे, ग्वालियों ने अपने-अपने बालकों को बड़े प्रेम से उपटन व तेल मलकर स्नान कराया। श्यामसुन्दर की माया से किसी को ग्वालबाल व बछड़े हर जाने का भेद नहीं मालूम हुआ। सब ग्वाल-

बालों के माता-पिता व गौवें अपना-अपना बालक व बछड़ा जानकर प्रतिदिन उनसे अधिक प्रीति करने लगे।

दो० माखन प्रभु रचना रची तनिकबचीनहिंरेख। वही वेष सब देखिए परकछु प्रीतिविशेख ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! ब्रह्माजी ब्रह्मलोक में जाकर ग्वालबालों और बछड़ों के हरने का हाल भूल गये, और वृन्दावनविहारी नित्य मायारूपी ग्वालबालों व बछड़ों समेत वन में जाकर नई-नई लीला करते थे। एक दिन श्यामसुन्दर उन्हीं बछड़ों को गोवर्धन पर्वत के नीचे चराने ले गये, सो उन बछड़ों की माताएँ, जो गोवर्धन पर्वत पर चरती थीं, उन्हें देखते ही ऐसे दौड़ीं जैसे सावन-भादों में नदी का जल बहुत वेग से बहता है। ग्वालों ने लाठी से धमकाकर गौवों को बहुत रोका, पर वे रोके न रुकीं, अपने-अपने बच्चों के पास चली आईं। दूसरा बच्चा उत्पन्न होने पर भी वे मायारूपी बछड़ों को स्तन पिलाने लगीं। ग्वाल लोग भी अपने-अपने बालकों को गोद में उठाकर प्यार करने लगे। यह दशा देखकर बलरामजी ने, जो बछड़े व ग्वालबाल हरने के दिन श्रीकृष्णजी के साथ नहीं थे, विचारा कि हमने ऐसी प्रीति गौ व ग्वालों में कभी नहीं देखी थी, इसमें कुछ परमेश्वर की माया मालूम होती है। ऐसा विचारकर बलभद्रजी ने ध्यान करके देखा तो ग्वालबाल व बछड़े श्रीकृष्णरूप दिखलाई दिये। तब उन्होंने श्यामसुन्दर से पूछा कि हे भाई! पहिले के ग्वालबाल व बछड़े क्या हुए, यह सब ग्वालबाल व बछड़े मुझे कृष्णरूप दिखलाई देते हैं। यह वचन सुनते ही केशवमूर्ति सब वृत्तान्त कहकर बोले—हे भैया! वर्ष दिन से मेरी यही दशा है। हे राजन्! जब इसी तरह एक वर्ष बीत गया तब ब्रह्मा बालक व बछड़े हरने का हाल याद करके बोले कि देखो, मेरा अभी एक क्षण नहीं बीता और मनुष्यों का एक वर्ष हो गया, अब चलकर देखना चाहिए कि बालकों व बछड़ों के बिना श्रीकृष्ण और वृन्दावनवासियों की क्या दशा हुई है। ऐसा विचारकर ब्रह्मा पहिले उस कन्दरा में गये तो ग्वालबालों व बछड़ों को नींद में अचेत देखा, फिर वहाँ से वृन्दावन में आये तो उस रूप के ग्वालबाल व बछड़े श्रीकृष्ण के साथ

दिखलाई पड़े। तब ब्रह्मा ने आश्चर्य मानकर मन में कहा कि कन्दरा में से ग्वालबाल व बछड़े यहाँ किस तरह आये, या श्रीकृष्ण ने अपनी माया से इन्हें उत्पन्न किया है। यह सन्देह छुड़ाने के वास्ते ब्रह्मा फिर कन्दरा की तरफ गये तो उन्होंने ग्वालबाल व बछड़ों को उसी तरह सोये हुए पाया। जब फिर वहाँ से वृन्दावन में आये तो वैकुण्ठनाथ की माया से क्या देखा कि जितने ग्वालबाल श्यामसुन्दर के साथ में थे वे सब चतुर्भुजीरूप, वैजयन्ती माला, किरीट मुकुट व पीताम्बर आदि पहिने विष्णु-भगवान् के सामने विराजते हैं। एक-एक चतुर्भुजी रूप के सामने ब्रह्मा, महादेव और इन्द्रादिक देवता हाथ जोड़े स्तुति करते दिखलाई दिये। आठों सिद्धियाँ व गंगा आदि नदियाँ अपना-अपना रूप धारण किये उनके सामने खड़ी हैं। उनमें कोई ब्रह्मा चार सिर के, कोई आठ मस्तक के और कोई सोलह सिर के दिखलाई दिये। इन्द्र की अप्सराओं को नाचते व गन्धर्वों को गाना सुनाते उनके सामने देखा। ब्रह्मा को वहाँ के सब पशु-पक्षी व वृक्ष चतुर्भुजी रूप दिखलाई दिये। वहाँ बाघ और बकरी आदि जीवों को निर्वैर देखा। हे राजन्! मायारूपी ग्वालबालों की यह महिमा देखते ही ब्रह्मा ने घबराकर अपनी आँखें बन्द कर लीं, चित्र के समान चुपचाप खड़े रहे, ज्ञान-ध्यान व अभिमान सब भूलकर मारे डर के काँपने लगे। जब श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने जाना कि ब्रह्मा अपने कर्तब से लज्जित होकर अति व्याकुल हुए तब उन्होंने मायारूपी ग्वाल आदि को अन्तर्धान कर दिया और आप अकेले कृष्णरूप से मोरमुकुट पहिने खड़े रहे।

दो० मोहविकलअतिदेखिकै सुन्दरश्यामसुजान। प्रकटकियोजनजानिनिजविधिकेउर में ज्ञान।।
सो० हृदय भई तब शुद्धि यह पूरण अवतार हरि। धिक धिक मेरी बुद्धि बैर बढ़ायों कृष्ण सों।।

हे राजन्! जब वैकुण्ठनाथ की कृपा से ब्रह्मा के हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वे हंस पर से उतर पड़े और अपने चारों मस्तक वृन्दावन-विहारी के चरणों पर धर दिये और साष्टांग दण्डवत् करके हाथ जोड़कर बोले—

दो० मैं अपराधी हीन मति तर्चो मोह के जाल। ममकृत दोष न मानिए तुमप्रभु दीनदयाल।।

सो०कह जानो तुव भेव मैं ब्रह्मा तुम्हरो कियो। तुम देवन के देव आदि सनातन अजित अज॥
दो०करुणा करि रोयो महा कहा सके गुणगाय। दृगजल से धोयो मनो माखन प्रभु के पाँय॥

हे राजन्! ब्रह्मा ने रोकर केशवमूर्ति से कहा कि हे दीनानाथ! आपने कृपा करके मेरा अभिमान दूर किया। ऐसा ज्ञान किसी को नहीं है जो तुम्हारे चरित्र व लीला को जाने। सारे संसार को तुम्हारी माया ने मोहि लिया है, दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो आपको मोह सके। आप कर्ता पुरुष हैं, मेरे ऐसे अनेक ब्रह्मा व ब्रह्माण्ड आपके एक-एक रोम में बँधे हैं, मैं किस गिनती में हूँ। हे दीनदयालु, मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

दो०हौंअसाध्यअति हीन मतितुम गतिअगमअगाध। माखनप्रभुपरचोलियोकियोमहाअपराध॥

जब इसी तरह बहुतसी बिनती ब्रह्मा ने की तब ब्रजनाथजी ने हँसकर कहा—हे ब्रह्मा! तुम सब जगत् की रचना करते हो, तिस पर भी मेरी माया तुम्हें लगी है। यह सुनकर ब्रह्मा ने विनय किया कि हे महाप्रभु! तुम्हारा भेद कोई नहीं जान सकता। तुम्हारी माया ऐसी प्रबल है कि उसने किसी को नहीं छोड़ा। दीन वचन सुनते ही श्यामसुन्दर ने ब्रह्मा का सिर अपने चरणों पर से उठाकर छाती में लगा लिया और कृपा करके ब्रह्मा के आँसू अपने हाथ से पोंछ दिया।

दो० यद्यपि लियो उठाय कै माखन प्रभु उरलाय। तद्यपि रहेउलजाय कै दृगअरुशीश नवाय॥

जब ब्रह्मा ने श्रीकृष्णजी की कृपा अपने ऊपर देखी तब सब ग्वालबालों और बछड़ों को वहाँ ला दिया।

—०○०—

चौदहवाँ अध्याय।

ब्रह्मा का श्यामसुन्दर की स्तुति करना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब ब्रह्मा ने श्रीकृष्णजी को अपने ऊपर प्रसन्न देखा तब अपना अपराध क्षमा कराने के लिए हाथ जोड़कर यह स्तुति की कि मैं तुम्हारे श्यामघटा ऐसे स्वरूप को जो बिजली के समान चमकता हुआ पीताम्बर पहिने, मोरमुकुट व फूलों की माला धारण किये हो दण्डवत् करता हूँ। बाँसुरी व लकुटिया

लिये मोहिनी मूर्ति पर न्योछावर होता हूँ। आप जगत् के उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाले हैं। तुम्हारा यह शरीर पाँच तत्त्व से नहीं बना, अपनी इच्छा से यह रूप तुमने धारण किया है। मैं ब्रह्मा होने पर भी तुम्हारे इस रूप की महिमा नहीं जानता, दूसरे को क्या सामर्थ्य है जो आपके अनन्तरूप सगुण का भेद जान सके। भक्ति किये बिना कोई मनुष्य ज्ञान के अभिमान से तुम्हारी महिमा नहीं जान सकता। जो कोई मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारी शरण में रहता है वह तुम्हारे भेद को पहुँचकर मुक्ति पदवी पाता है। मैं अग्नि की चिनगारी के समान हूँ और आप अग्नि का समूह हैं। अपनी अज्ञानता से तुम्हारी माया में फँसकर मैंने बालक व बछड़े चुराये थे, सो मेरा अपराध क्षमा कीजिये। चिनगारी को ऐसी सामर्थ्य नहीं जो अग्नि के ढेर से बराबरी कर सके। आप सबसे रहित हैं। संसारी वस्तु तुम्हारी माया से उत्पन्न होती है। आदि, मध्य व अन्त में तुम्हारी माया का प्रकाश रहता है। आपके सिवा संसारी सब वस्तुओं का नाश हो जाता है। मैंने अपनी अज्ञानता से तुम्हारी परीक्षा लेना चाहा था सो बहुत-से ब्रह्मा व महादेव आदि देवतों को ग्वालबालों के सामने हाथ जोड़े खड़े देखकर अपने दण्ड को पहुँचा। अब तुम्हारी शरण में आया हूँ, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। जिस तरह अज्ञान बालक अपने पिता की गोद में बैठकर बहुत अनुचित करता है, पर पिता उसके प्रेम के कारण बुरा नहीं मानता और पेट में लात मारने से माता विरोध नहीं करती, उसी तरह मुझ अज्ञान अपने बालक का अपराध आप क्षमा कीजिए। तुम्हारे विराट्रूप में चौदहों लोक हैं और अपने छोटे स्वरूप से आप चिउँटी के तनु में व्यापक रहते हैं। मैंने अपने को जगत् का उत्पन्न करनेवाला समझा था, इसी कारण लज्जित हुआ। संसारी व्यवहार स्वप्न के समान झूठा है और आप अविनाशी पुरुष आनन्दमूर्ति सदा स्थिर रहते हैं। सो अपने चरणों की भक्ति मुझे दीजिये। व्रज की गौवों और ग्वालिनियों का धन्य भाग्य है, जिनका दूध आप बछड़ा व बालकरूप होकर पीते हैं। यज्ञ व होम से तुम्हारा पेट नहीं भरा था, सो व्रज की गौवों और अहीरिनियों ने अपना दूध

पिलाकर भर दिया। मेरी क्या सामर्थ्य है जो व्रजवासियों के भाग्य की बड़ाई कर सकूँ।

सो० भक्तन के सुखदान भक्तवच्छल भगवानहरि। नारी पुरुष समान प्रेमभाव के वश सदा॥

हे महाप्रभु! आप ऐसे दीनदयालु हैं कि जिसने अपनी अज्ञानता से तुम्हारा अपराध किया, उस पर भी आपने दयालु होकर ज्ञानरूपी दीपक उसके हृदय में प्रकाशित कर दिया। संसारी जीवों को तुम्हारे स्मरण व भक्ति के बिना भवसागर पार उतरने के वास्ते दूसरा मार्ग उत्तम नहीं है। इसलिए सबको चाहिए कि तुम्हारे सगुणरूप का ध्यान व नाम का स्मरण करके अवतारों की लीला व कथा प्रेम से सुना करें और एक क्षण भी तुम्हें न भुलावें तब उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश होगा। पर तुम्हारी कृपा व दया के विना किसी का चित्त तुम्हारे चरणों नहीं लगता, इसलिए सदा अपने सच्चे मन से तुम्हारी दया व कृपा का भरोसा रखना चाहिए। हे परब्रह्म परमेश्वर! वृन्दावन में जड़ व चैतन्य जितने जीव हैं, उनकी बड़ाई कोई नहीं कर सकता। मनुष्य इस वास्ते तप व जप करते हैं कि जिसमें हम देवता हों। देवतों की यह इच्छा आठों पहर रहती है कि तुम्हारे चरणों की सेवा करें और दिन-रात तुम्हारा चन्द्रमुख देखकर अपने नेत्रों को सुख दें। पर यह बात देवतों को प्राप्त नहीं होती जो तुम्हारी कृपा से वृन्दावन वासियों को सहज में मिली है। देवतों की यह सामर्थ्य नहीं है जो व्रजवासियों की बराबरी कर सकें। तुम्हारे आदि व अन्त को वेद नहीं जानता व बड़े-बड़े योगी व मुनीश्वरों को आपका दर्शन ध्यान में जल्दी नहीं मिलता और हम व महादेव आदि देवता व ऋषीश्वर रात-दिन तुम्हारे चरणों का ध्यान हृदय में धरकर यह अभिलाषा रखते हैं कि तुम्हारे चरणों की रज मिलती तो उसे अपने मस्तक पर लगाते, पर हमें वह जल्दी नहीं प्राप्त होती। यशोदा आपको दिन-रात गोद में खेलाती हैं। ग्वालबालों के साथ आप बछड़े चराकर यह सब लीला हरिभक्तों और सब जीवों के भवसागर पार उतारने के वास्ते करते हैं। कदाचित् मैं जन्मभर वृन्दावनवासियों के भाग्य की बड़ाई करूँ

तो भी उसका वर्णन नहीं हो सकता। सब ब्रजवासी अपना तन-मन-धन आप पर न्यवछावर समझते हैं। केवल मुक्ति देकर तुम उनकी सेवा से उऋण नहीं हो सकते, क्योंकि मोक्ष तो आपने पूतना व अघासुर आदि को, जो तुमको मारने आये थे, दिया है। कदाचित् आप मुझे ब्रज में घास और मिट्टी का भी जन्म देते तो तुम्हारे चरण पड़ने से कृतार्थ होता।

दो०श्रीवृन्दावन सम नहीं तिहूँ लोक में और। माखनप्रभु खेलैं सदा अतिछवि से ता ठौर।।
करिअस्तुतिगदगदवचनदृगजलपुलकशरीर। परेचरणपंकजबहुरिविधिअतिप्रेमअधीर।।
सो०तब हँसि बोले श्याम गर्वप्रहारी भक्तहित। जाहु आपने धाम वचन हमारो मानि अब।।

हे राजन्! जब ब्रह्मा ने अति विनय से वृन्दावनविहारी की यह स्तुति की तब ब्रजनाथजी ने ब्रह्मा का सिर अपने चरणों पर से उठाया और उनसे कहा कि तुम ब्रजभूमि की परिक्रमा करते हुए अपने लोक को जावो। सो ब्रह्मा श्यामसुन्दर से विदा होकर चौरासी कोस वज्रभूमि को दहिनावर्त परिक्रमा करके ब्रह्मलोक चले गये। मनहरणप्यारे पहिले बछड़ों को साथ लिये ग्वालबालों की मण्डली में, जहाँ वे कलेवा कर रहे थे, आ पहुँचे। परन्तु हरिइच्छा से वर्ष दिन बीतने पर भी किसी ग्वालबाल ने अपने हर जाने का भेद नहीं जाना। वे लोग श्यामसुन्दर को देखते ही कहने लगे कि हे भाई, तुम बछड़े तुरन्त खोजकर ले आये, हमने तो अच्छी तरह भोजन भी नहीं किया। यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले कि हे भाइयो! सब बछड़े निकट चरते हुए मिल गये, सो मैं जल्दी से उन्हें बहोरकर ले आया। ऐसा कहकर श्यामसुन्दर ने ग्वाल-बालों के साथ भोजन किया। जब संध्या हुई तब उनसे कहा कि अब घर चलो। यह वचन सुनते ही सब कोई घर को चले। उस समय वृन्दा-वनविहारी ने ऐसी मुरली बजाई कि उसका शब्द सुनकर सब जड़ व चैतन्य मोहित हो गये। जब वृन्दावन के निकट पहुँचे तब सब ब्रजबाला मुरली की ध्वनि सुनकर अपने-अपने घर से दौड़ आईं। मनहरणप्यारे का दर्शन करके अपने-अपने लोचनों को सुख दिया। गोपियों का यह नियम था कि जब वृन्दावनविहारी बछड़े चराने जाते थे तब उनकी चर्चा में दिन काटती थीं और जब संध्या समय केशवमूर्ति वन से आते थे तब

उनके चन्द्रमुख की चमक देखकर अपने हृदय की तपन मिटाती थीं।

दो० माखनप्रभु को रूपरस प्रेम सहित सुख पाय। पीवें व्रजवासी सबैं चितवत तृषा बुझाय॥

हे राजन्! उस दिन ग्वालबालों ने अघासुर के मारे जाने का वृत्तान्त अपने माता-पिता और नन्द-यशोदा से कहा। यह हाल सुनते ही यशोदा पछताकर कहने लगीं कि मेरे बर्जने पर भी कन्हैया वन का जाना नहीं छोड़ता, कई बेर इसके प्राण राक्षसों के हाथ से बचे, तिस पर भी नहीं डरता।

दो० जन्म भयो जब श्याम को तब से यही उपाध। कहाहोयहमरेयतन विधिगति अगम अगाध॥

उस दिन भी यशोदा ने बहुत-सा दान व दक्षिणा केशवमूर्ति से दिलवाकर बड़ी खुशी मनाई। हे राजन्! जो कोई श्यामसुन्दर का बाल-चरित्र, जो पाँच वर्ष की अवस्था तक किया था, सच्चे दिल से कहे व सुने तो कभी कोई चिन्ता उसके पास नहीं आ सकती और संसार में मनोकामना पाकर अन्त समय मुक्ति पाता है। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे शुकदेव स्वामी! इतनी प्रीति गोप व गोपियों को श्यामसुन्दर की किस कारण थी, जो अपने पुत्रों से भी उनको अधिक प्यारे जानते थे। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! संसार में सबको पुत्र व धन पर बहुत प्रीति होती है, परन्तु अपने प्राण को उनसे भी अधिक प्यारा जानते हैं! जिस तरह घर में जब आग लगी हो तो मनुष्य अपनी सामर्थ्य भर पुत्र व धन को बचाता है, जब उनको नहीं बचा सकता तब अपने प्राण लेकर भाग जाता है उसी तरह श्यामसुन्दर सब जीवों के प्राण थे, इसी वास्ते सब व्रजवासी उस मोहनी मूर्ति को अपने प्राण से अधिक प्यारा जानते थे। उन्होंने अपनी माया से सबका चित्त मोह लिया था।

दो० माखनप्रभु भगवान हैं घटघट व्यापक सोय। सबके जीवन प्राण हैं क्यों नहिं प्रीतम होय॥

—:०:—

पन्द्रहवाँ अध्याय।

बलरामजी का धेनुक राक्षस का वध करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब श्यामसुन्दर का आठवाँ वर्ष लगा तब एक दिन उन्होंने यशोदा से कहा कि ऐ मैया! अब मैं वन में गौ चराने

जाऊँगा, सो तुम नन्द बबा से कहो कि वे मुझे जाने दें। जब यशोदा ने यह बात नन्दराय से कही तब उन्होंने शुभ सायत पूछकर दश हजार गौ श्यामसुन्दर से दान कराईं और कार्तिक सुदी अष्टमी को उन्हें गौ चराने के वास्ते भेजा। चलते समय यह बात कही कि ऐ बेटा! तुम वन में ग्वालों के साथ रहना और ग्वालों को बुलाकर समझा दिया कि हे भाइयो! आज से श्याम व बलराम को भी गौ चराने के वास्ते अपने साथ ले जाया करो, पर वन में उनको अकेले न छोड़ना। ऐसा कहकर नन्दजी ने दोनों भाइयों को दही का तिलक लगाकर विदा किया। जब श्यामसुन्दर ग्वाल व गौ समेत वृन्दावन में पहुँचे तब वहाँ पर एक पक्का तालाब निर्मल जल से भरा हुआ अति शोभायमान देखकर गौवों को चरने के वास्ते छोड़ दिया और आप ग्वालबालों के साथ आनन्दपूर्वक खेलने लगे। कभी ग्वालबालों से कहते कि मैं तुम्हारी हथेली पर अपना हाथ मारकर भागता हूँ, तुम मुझे दौड़कर पकड़ो। कभी किसी ग्वालबाल को हाथी व किसी को घोड़ा बनाकर उस पर चढ़कर कहते कि तुम हाथी व घोड़े की बोली बोलो। कभी आप गौवों के पास बाघ की बोली बोलकर उन्हें डराते। इसी तरह अनेक लीला करके सबको सुख देते थे। उस समय वृन्दावनविहारी ने उस वन की शोभा देखकर श्रीदामा आदि ग्वालबालों से कहा कि तुम लोग चैतन्य चोला पाकर बलदाऊजी की महिमा नहीं जानते। देखो, इस सुन्दर स्थान में वृक्ष जड़रूप होकर झुके हुए बलरामजी के चरणों को दण्डवत् करते हैं। इन्हें यह इच्छा है कि जड़रूप से छूटकर मनुष्य का चैतन्य चोला पाते तो तुम्हारी सेवा करके कृतार्थ होते। सदा से संसार में ऐसी रीति है कि जिसके पास जो उत्तम वस्तु होती है वह अपने स्वामी को भेजता है, इसलिए ये सब वृक्ष परोपकारी होकर अपना-अपना फल व फूल बलदाऊजी को भेंट देते हैं। ये भँवरे फूलों पर गूँजते हुए जो देखते हो सो बलदाऊजी का यश गाते हैं। मोर अपना नाच दिखलाते और कोकिला आदि पक्षी अपनी-अपनी बोली उन्हें सुनाते हैं। ये सब वृक्ष अपने फूलों व फलों से राही व बटोहियों की मेहमानी करते हैं, इस वास्ते इनको बड़ा दाता व

परोपकारी समझना चाहिए। तुम लोग जितने जड़ व चैतन्य जीव वृन्दावन में देखते हो, ये सब बलरामजी के चरणों में प्रीति रखने से वैकुण्ठ जाने योग्य हैं। यह चौरासी कोस व्रजभूमि धन्य है, इसकी बड़ाई कोई नहीं कर सकता। इनके चरण इस धरती पर पड़ने से यहाँ सदा वसन्तऋतु बनी रहती है। वृन्दावन के सब जड़ व चैतन्य जीव जीवन्मुक्त हैं। हे राजन्! वृन्दावन की ऐसी बड़ाई करके जब श्यामसुन्दर एक ऊँचे टीले पर चढ़कर बैठे और अपने चौगिर्द उपरना घुमाकर काली, पीली, धौरी, धूमरी गौवों का नाम लेकर पुकारने लगे तब सब गायें दौड़ती व हाँफती हुई केशवमूर्ति के पास आ पहुँचीं। उस समय उनकी ऐसी शोभा मालूम होती थी कि जैसे रंगबिरंग की घटा चन्द्रमा के निकट चारों तरफ से घिर आवे। फिर मनहरणप्यारे ने गौवों को वन में चरने के वास्ते हाँक दिया और आप बलरामजी समेत कलेवा करके कदम की छाया में एक सखा की जंघा पर सिर धरकर सो रहे। जब निद्रा खुली तब बलरामजी से बोले कि हे भाई! हम और तुम अलग-अलग ग्वालों और गाइयों की टोली बाँधकर आपस में फूलों से लड़ें। बलभद्रजी ने कहा कि बहुत अच्छा। तब आधे-आधे ग्वाल व गौ दोनों भाइयों ने बाँट लिये और अनेक रंग के फूल तोड़कर अपनी-अपनी झोली सबों ने भर ली। अनेक भाँति के बाजे मुख से बजाकर एक दूसरे को फल व फूल मारकर आपस में खेल किया। कुछ देर तक इसी तरह खेलकर फिर अपनी-अपनी गौ अलग चराने लगे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जिस परब्रह्म परमेश्वर का दर्शन ब्रह्मा व महादेव आदि देवतों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता, वह वैकुण्ठनाथ मुरैले के संग नाचकर ग्वालबालों के साथ खेलते थे। किसे सामर्थ्य है जो उनकी लीला व महिमा वर्णन कर सके। जब गौ चराते समय बलरामजी सब ग्वालबालों व गायों समेत एक तरफ वन में चले गये और श्यामसुन्दर दूसरे वन में जा निकले उस समय एक ग्वाल ने बलरामजी से कहा कि हे भाई! यहाँ से थोड़ी दूर पर ताड़ का ऐसा बन है जिसमें अमृत के समान मीठे मीठे फल लगे हैं, सो वहाँ पर धेनुक नाम राक्षस गर्दभरूप से उन

फलों की रखवारी करता है और न आप खाता है न दूसरे को खाने देता है। जिस तरह सूम का धन किसी के काम नहीं आता। सो हम लोग तुम्हारी कृपा से वे फल खाया चाहते हैं। यह सुनकर बलरामजी ने कहा कि अभी चलकर खुशी से वे फल खावो, राक्षस तुम्हारा क्या कर सकता है। ऐसा वचन सुनते ही ग्वाल निडर होकर बलदाऊजी के साथ उस वन में चले गये। जब बलभद्रजी ने एक वृक्ष को पकड़कर जोर से हिला दिया और उसके सब फल टूटकर गिर पड़े तब धेनुक राक्षस फल गिरने का शब्द सुनते ही चिल्लाता हुआ दौड़ा। उसे आते देखकर सब ग्वालबाल मारे डर के भाग गये, अकेले बलरामजी वहाँ खड़े रहे। जब उस गदहे ने आते ही एक दुलत्ती संकर्षण को मारी तब बलभद्रजी ने उसकी टाँग पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया। वह फिर लोटपोटकर खड़ा हो गया और धरती सूँघकर कान दबाये हुए बलरामजी को दुलत्तियाँ मारने लगा। तब हलधरजी ने उसकी दोनों टाँगें पकड़कर एक ऊँचे वृक्ष के तने पर ऐसा पटका कि वह उसी साइत मर गया और वृक्ष टूटकर गिर पड़ा। उसको मरा देखकर उसके पार्श्ववर्ती बहुत से राक्षस बलरामजी को मारने के वास्ते आये। सो उन लोगों को भी बलभद्रजी ने पलभर में मार डाला। उस समय देवतों ने बलरामजी पर फूल बरसाकर खुशी के बाजे बजाये। हे राजन्! ब्रह्मा व महादेव आदि देवता ध्यान व पूजा छोड़कर वैकुण्ठनाथ का दर्शन करने वृन्दावन में आया करते थे। धेनुक राक्षस के मरने के उपरान्त ग्वालबालों ने इच्छापूर्वक वे फल खाये और घर लाने के लिए अपनी-अपनी झोली भर ली। फिर वे उस वन में निर्भय होकर गाय चराने लगे।

दो०बल मोहन घर को चले जानि सांझ की वेर। लीन्हीं गायें घेर सब मुरली की धुनि टेर॥

हे राजन्! जब श्याम व बलराम हँसते व खेलते ग्वालबालों और गायों समेत घर आये तब ग्वालों ने ताड़ के फल वृन्दावनवासियों को बाँटकर कहा कि आज बलरामजी ने वन में धेनुकादिक बहुत से राक्षसों को मारा। यह बात सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए। दूसरे दिन श्यामसुन्दर फिर ग्वालों के साथ गौ चराने गये और बलरामजी उस दिन घर पर

रहे। सो वन में चरते समय सब गौ छिटक गईं। जब ग्वाल लोग श्रीकृष्णजी से विलग होकर गौवों को ढूँढ़ने निकले और धूप में व्याकुल होकर अति प्यासे हुए तब उन्होंने गौवों समेत यमुना के किनारे जाकर पानी पिया।

दो०गोप गाय अँचवत भये कालीदह को नीर। निकसत सब अकुलाय कै बैठ गये जलतीर ॥
सो०परे सकल मुरझाय जहाँ तहाँ विष झारते। ग्वालबच्छ अरु गाय भये मनो बिनप्राण सब॥

हे राजन्! जब सब ग्वाल व गौ कालीनाग के विष से, जो यमुना में रहता था, अचेत होकर गिर पड़े और श्यामसुन्दर के पास देर तक नहीं आये तब मनहरणप्यारे ने उन्हें ढूँढ़ते व पुकारते यमुना के किनारे जाकर क्या देखा कि वे सब कालीकुण्ड के किनारे मरे पड़े हैं। उनकी यह दशा देखकर केशवमूर्ति ने विचारा कि कालीदह का जल पीने से इनकी यह दशा हुई है; मैं घर पर जाकर इनके माता-पिता से क्या कहूँगा, इन्हें जिलाना चाहिए। ऐसा विचारकर व्रजनाथजी ने जैसे अमृतरूपी दृष्टि से उनकी ओर देखा, वैसे ही सब ग्वालबाल गायों समेत जी उठे। जिस तरह कोई नींद से जागे, उसी तरह वे लोग उठकर अपनी आँखें मलने लगे। मुरलीमनोहर को वहाँ देखते ही उनके गले में लिपट गये। तब दुखभंजन ने कहा कि तुम लोगों ने मुझसे विलग होकर कालीदह का जल पिया, इसी कारण तुम अचेत हो गये थे, सो परमेश्वर ने तुम्हारे प्राण बचाये। यह सुनकर ग्वालबालों ने कहा कि यमुना का जल पीने से हमारी यह गति हुई थी, सो तुमने आकर हमें जिला दिया, व्रजवासियों की रक्षा करनेवाले आप ही हैं। जब संध्या समय मनहरणप्यारे ग्वालों व गायों को साथ लिये मुरली बजाते हुए वृन्दावन के निकट पहुँचे तब सब व्रजबाला अपने-अपने घर का कामकाज छोड़कर उनके दर्शन के वास्ते दौड़ आईं और उनकी छवि देखकर अपनी-अपनी आँखें ठंढी कीं। ग्वालबालों ने घर पहुँचकर नन्द व यशोदा आदि से कहा कि आज हम लोग कालीदह का जल पीने से गायों समेत मर गये थे, सो श्रीकृष्णजी ने हमें जिला दिया।

दो०अब हम काहू डरत नहिं हरि हैं हमैं सहाय। बल मोहन के बल फिरत वनबनचारतगाय ॥
सो०परत गाढ़ जब आय तबतबहोतसहायहरि। चिरंजीव दोउ भाय यशुमति यह तेरे कुँवर ॥

यशोदा, रोहिणी और गोपियाँ यह हाल सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं। नन्दजी ने कहा कि जो बात गर्गजी कह गये थे वह आँखों से दिखलाई देती है। श्रीकृष्णजी ने कोई अवतार होकर बड़े भाग्य से मेरे यहाँ जन्म लिया है। जब यशोदा ने श्यामसुन्दर को शय्या पर सुलाया तब उन्होंने कालीनाग को यमुनाजल से निकालने का विचार करके यशोदा से कहा कि ऐ मैया! मैंने ऐसा स्वप्न देखा कि जानो किसी ने मुझे यमुनाजल में गिरा दिया। यह सुनते ही नन्द व यशोदा ने मोहनप्यारे के हाथ से कुछ दान कराया और स्वप्न की बात झूठी जानकर अपने मन को धैर्य दिया।

—:o:—

सोलहवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का कालीनाग को यमुनाजल से निकालना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! श्रीकृष्णजी ने यह विचारा कि कालीनाग का यहाँ रखना अच्छा नहीं है, क्योंकि मनुष्य और पशु-पक्षी जो कोई इस दह का जल पीवेगा वह मर जायगा। यहाँ कालीनाग के रहने से यमुना को दोष लगता है, इसलिये इसको यहाँ से निकालना चाहिये। उस नाग के विष की ज्वाला से कालीदाह का जल चार कोस तक खौलता था। कोई जीव पशु-पक्षी आदि वहाँ जा नहीं सकता था। कदाचित् कोई धोखे से भी जाता तो जलकर उस दह में गिर पड़ता था। उस जगह कोई वृक्ष नहीं था। केवल एक कदम का वृक्ष अविनाशी उस जगह पर था। इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने पूछा—हे स्वामी! इसका क्या कारण है जो उस वृक्ष का नाश नहीं हुआ? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! किसी युग में उस वृक्ष पर गरुड़जी अपने मुख में अमृत लिये हुए आ बैठे थे, सो उनकी चोंच से एक बूँद अमृत उस वृक्ष पर गिर पड़ा था, इसलिए वह वृक्ष हरा रहता था, कालीनाग का विष उसमें प्रवेश नहीं कर सकता था। जब श्यामसुन्दर ने कालीनाग के निकालने का विचार किया तब उनकी इच्छानुसार नारद मुनि कंस के पास गये। कंस ने बड़े आदरभाव से नारदजी को दण्डवत्

करके बैठाया और उन्होंने पूछा—हे राजन्! तुम उदास क्यों मालूम देते हो? यह सुनते ही कंस हाथ जोड़कर बोला—महाराज! गोकुल में नन्दजी के यहाँ दो बालक बड़े बलवान् उत्पन्न हुए हैं, उन्होंने अघासुर आदि राक्षसों को मार डाला, उनसे मुझे अपने प्राणों का खटका दिखलाई देता है।

चौ० ये दोउ व्रज में नन्दकुमारा। जानि परत हैं कोउ अवतारा॥
कहत जिन्हैं बलराम कन्हाई। तिनकी गति मति जानि न जाई॥
अब तुम मुनि कछु कहौ विचारा। जेहि विधि मारौं नन्दकुमारा॥
मुनि हरिके गुण नीके जाने। सुनि नृप वचन मनहिं मुसकाने॥
दो० तब मुनि बोले नृपतिसों सत्य कहो तुम बात। वे दोऊ अवतार हैं उन गति जानि न जात॥
सो० हैं वे तुम्हरे काल प्रकट भये व्रज आयकै। नन्दगोप के बाल तुम उनको राखो नहीं॥

ऐसा कहकर नारदमुनि बोले कि हे कंस! मैं एक उपाय बतलाता हूँ, तुम नन्दजी को कालीदह के कमल के फूल भेजने के लिए कहला भेजो। जब वह बालक वहाँ फूल लेने जायगा तब उसको कालीनाग डस लेगा। ऐसा समझाकर नारदमुनि चले गये। कंस ने उसी साइत नंदजी को यह कहला भेजा कि कल्ह एक करोड़ कमल के फूल कालीदह से मँगवाकर हमारे पास भेज दो नहीं तो हम तुम्हारा घर-बार लूटकर व्रज से निकाल देंगे और तुम्हारे बेटों को कैद करेंगे। श्यामसुन्दर अन्तर्यामी यह हाल जानकर उस दिन गौ चराने नहीं गये, ग्वालबालों के साथ खेलते रहे। जब ऐसा संदेश कंस का नन्दराय के पास पहुँचा और उन्होंने घबराकर उपनन्द आदि गोपों से यह हाल कहा तब सब वृन्दावन-वासी चिन्तित होकर आपस में कहने लगे कि हम लोगों से कालीदह के फूल आना बड़ा कठिन है, हमें तो अपने प्राणों का कुछ डर नहीं, कंस मारे चाहे छोड़े, पर यही बड़ा सोच है कि श्याम व बलराम को कैद करेगा। कोई ऐसा ठिकाना देखने में नहीं आता जहाँ इन दोनों बालकों को छिपा रखते। एक ने कहा कि चलो राजा कंस की विनती करें और जितना दण्ड माँगे सो दें। आज तक कंस ने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया था।

दो० मेरेसुत दोउनृपति उर खटकत हैं दिनरात। आज कहेउ ऐसो वचन बलमोहन पर घात॥

सो०चढ़िहैं व्रजपरधायकाल्हि सबनपरकोपकरि। भयो मरण अब आय को राखे कित जाइये॥

हे राजन्! नन्द और यशोदा आदि उसी सोच में बैठे रो रहे थे। मुरलीमनोहर अन्तर्यामी सबको दुःखी देखकर घर पर आये और नंदरानी उन्हें गोद में उठाकर अति विलाप करने लगी। तब श्यामसुन्दर ने पूछा कि ऐ मैया! तू क्यों इतना रोती है? यशोदा बोली कि तू मेरे रोने का हाल जाकर अपने बाप से पूछ ले। यह वचन सुनते ही श्रीकृष्णजी नन्द के पास आये और उन्हें उदास व रोते हुए देखकर पूछा—ऐ बाबा! तुम क्यों इतने व्याकुल हो? यह वचन अपने लाल का सुनकर नन्दजी बोले कि हे बेटा, जब से तुम्हारा जन्म हुआ तब से राजा कंस ने तुम्हारे मारने के वास्ते कैसे-कैसे राक्षसों को भेजा, पर हमारे कुलदेवता सहाय हुए जो तुम्हारे प्राण बचे।

दो० कालीदह के फूल अब पठयो भूप मँगाय। तब से यह गाढ़ी परी अब को करै सहाय॥
सो० जोनहिंआवेंफूल लिख्यौकंसम्वहिंडाटिकै। करौंव्रजहि निरमूल बांधिमँगाओंतुवसुतन॥

ऐ बेटा! वहाँ के फूल आना बहुत कठिन समझकर मुझे सोच हुआ है। यह सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा कि बाबा, जिस देवता ने तुम्हारी सहायता पहले की थी उसी का ध्यान करो, वह फिर तुम्हारी सहायता करेगा। जब उनके समझाने से नन्द आदि व्रजवासियों को कुछ धैर्य हुआ तब अपने-अपने कुलदेवतों का ध्यान हाथ जोड़कर किया। श्यामसुन्दर यमुना के किनारे जाकर ग्वालबालों के साथ गेंद खेलने लगे। खेलते समय केशवमूर्ति ने जानबूझकर श्रीदामा की गेंद कालीदह में फेंक दी। उसने श्यामसुन्दर की कमर में हाथ डालकर कहा कि मेरी गेंद ला दो, गेंद लिये बिना तुमको नहीं छोड़ूँगा, दूसरा ग्वालबाल मुझे मत समझो। मोहनप्यारे ने श्रीदामा से कहा कि मेरी फेंट छोड़ दो, थोड़ी बात के लिए झगड़ा मत बढ़ाओ, तूने छोटे-बड़े का विचार न करके मेरी कमर में हाथ डाल दिया। तू मेरी बराबरी करता है, मेरे प्रताप को नहीं जानता। मैंने तेरे सामने पूतना और बकासुर आदि राक्षसों को मार डाला था, तिस पर भी तू हमसे नहीं डरता। यह बात सुनकर श्रीदामा बोला कि तुम बड़े मनुष्य के बेटा होने से कुछ राजा नहीं हो

गये, यहाँ हम और तुम दोनों बराबर हैं, बिना गेंद दिये हमारी-तुम्हारी नहीं बनेगी। तुमने राक्षसों को मारा तो क्या हुआ, अब राजा कंस ने कालीदह के फूल माँगे हैं, पहुँचाओगे तो मैं जानूँगा। जब कंस कालिह तुमको पकड़ मँगावेगा तब तुम्हारी सामर्थ्य मालूम होगी।

सो०सकलदेव शिरताज पार न पावें ब्रह्मशिव। ताहि गेंद के काज फेंट पकड़ झगड़त सखा।।

हे राजन्! ऐसा कठोर वचन सुनकर वैकुण्ठनाथ ने कहा कि तू मूर्ख सम्हालकर बात नहीं करता। कंस का डर मुझे क्या दिलाता है, मैं फूल लेने के ही वास्ते यहाँ आया हूँ। आज कमल के फूल कंस को भेजकर ब्रजवासियों का सोच मिटाऊँगा। तेरे सामने कंस के सिर के बाल खींचकर उसे मारूँगा। ऐसा कहकर मुरलीमनोहर ने क्रोध से श्रीदामा को धक्का दे दिया और अपनी कमर उससे छुड़ाकर कदम के वृक्ष पर चढ़ गये। तब ग्वालबालों ने हँसी से ताली बजाकर कहा कि श्यामसुन्दर श्रीदामा के डर से भागकर वृक्ष पर चढ़ गये और श्रीदामा रोकर कहने लगा कि मैं जाकर तुम्हारे माता-पिता से गेंद फेंक देने का हाल कहता हूँ। तब ब्रजनाथजी ललकारकर बोले कि मैं तेरा गेंद लाने के लिए जाता हूँ ऐसा कहकर मनहरणप्यारे कालीदह में कूद पड़े।

दो०कोमल तन अति साँवरो साजे नटवर साज। जल भीतर पैठे तहाँ जहँसोवत अहिराज।।

हे राजन्! जब श्यामसुन्दर यमुनाजी में पैठ गये तब सब ग्वालबाल श्रीदामा को गालियाँ देते हुए यमुना के किनारे हाथ फैलाकर रोने लगे और गौवें चारों ओर मुख बाय-बायकर चिल्लाने लगीं। उनमें से दो बालक रोते हुए घर की ओर खबर देने चले। उस समय वृन्दावन में अनेक प्रकार के अशकुन होने से नन्द व यशोदा को बड़ा सोच हुआ। यशोदा ने नन्दराय से कहा कि आज श्रीकृष्ण के साथ बलराम भी नहीं गये, परमेश्वर की कृपा से मेरा प्राणप्यारा कुशल रहे।

दो० चली रसोंई करन मैं छींक भई मोंहिं आज। आगे होंय बिलारि पुनि गई दूसरे भाज।।

हे राजन्! जिस समय नन्द व यशोदा सोच करते व मनहरणप्यारे को ढूँढ़ते हुए चले जाते थे उसी समय उन दोनों ग्वालबालों ने रोते हुए आकर कहा कि ऐ यशोदा माता! नन्दलालजी गेंद खेलते हुए

कदम के वृक्ष पर चढ़ गये थे, सो वहाँ से कालीदह में कूदकर डूब गये। यह वचन सुनते ही नन्द और यशोदा व्याकुल होकर गिर पड़े। यशोदा ने नन्दजी से कहा कि मेरे प्राणप्यारे ने जो रात को स्वप्न देखा था वह बात सत्य हुई। जब वृन्दावन में यह समाचार पहुँचा तब रोहिणी और वृषभानु आदि सब सिर व छाती पीटते हुए नन्द और यशोदा के साथ दौड़े हुए यमुना के किनारे पहुँचे। वहाँ मोहनीमूर्ति को न देखकर बालकों से उनका हाल पूछा। उन्होंने वह जगह बतला दी, जहाँ केशवमूर्ति कूदे थे। तब नन्द और यशोदा व्याकुल होकर यमुनाजल में कूदने दौड़े, सो गोप व गोपियों ने उनको थाम्ह लिया।

दो० सुखदानी देखे बिना विलखानी अति माय। रानी अररानी परै पानी में अकुलाय॥
लोटतअति व्याकुल धरणि जात गिरन जल धाय। कहतश्यामतुमदियोदुखमोकोसमयबुढ़ाय॥

हे राजन्! यशोदा रोते-रोते व्याकुल होकर बौरहों के समान कहती थी कि हे बेटा! तुमने कहाँ विलम्ब लगाई, तुम्हारे खाने के वास्ते माखन और रोटी रक्खी है, जल्दी आकर भोजन करो।

चौ० बैठिय आनि संग दोउ भैया। तुम जेंवौं मैं लेउँ बलैया॥

हे मोहनप्यारे! मैं तेरे विना कैसे जीवोंगी और किसे माखन-रोटी खिलाकर अपना कलेजा ठण्ढा करूँगी। ऐ लालन! जब तू अपनी साँवली सूरति मोहनीमूर्ति दिखलाकर मुझे मीठी-मीठी तोतली बातें सुनाता था तब मैं तीनों लोक का सुख उसके बराबर नहीं समझती थी। अब मैं वह स्वरूप कहाँ देखूँगी। जब-जब हम लोगों पर दुःख पड़ता था तब-तब तुम हमारी रक्षा करते थे। अब हम लोग तुम्हारे विरहरूपी सागर में डूब रहे हैं, क्यों नहीं आकर इसके बाहर निकालते। ऐसी-ऐसी अनेक बातें कहकर यशोदा विलाप करती थी।

चौ० शोकसिन्धु बूड़ी नँदरानी। तन की सुधि बुधि सबै भुलानी॥

दों०व्रजयुवतिन सुनि महरि के वचन प्रेम आधीर। अकुलानी रोवत सबै भई कठिन उरपीर॥

हे राजन्! इसी तरह सब स्त्री-पुरुष, बालक व वृद्ध वृन्दावनवासी अपना-अपना घर छोड़कर कालीदह के किनारे खड़े रोते थे और किसी को तन की सुधि नहीं थी।

चौ० व्रजवासी सब उठे पुकारी। जल भीतर क्या करत मुरारी॥

मात-पिता अति ही दुख पावैं। रोयरोय सब कृष्ण बुलावैं।।

और सब व्रजबाला अपना सिर व छाती पीटकर कहती थीं कि हे मनहरणप्यारे! तुम हम लोगों को इस दुःख में छोड़कर आप जलविहार करने चले गये। तुम्हारे बिना सारा व्रज सूना हो गया। अब हमारा दही व माखन कौन चुराकर खायगा। हम सब गोपियाँ किसका उलाहना देने यशोदा के पास जावेंगी। तुम्हारे विरह में हम लोग मरी जाती हैं, जल्दी बाहर निकलकर हमारे प्राण बचाओ, जल के भीतर बैठे क्या करते हो। नन्दजी विलाप करके कहते थे कि हे बेटा! तू मुझे छोड़कर कहाँ चला गया। तेरे बिना मुझको जगत् अँधियारा मालूम होता है। मैं किस तरह जीऊँगा। इसी दुःख के मारे गोकुल छोड़कर वृन्दावन में आ बसे थे, सो यहाँ भी तुम्हारे प्राण पर घात लगा। ऐ प्राणप्यारे! जिस तरह तुमने बड़े-बड़े राक्षसों को मारकर हमको सुख दिया था उसी तरह आज भी मेरे बुढ़ापे की लज्जा रखकर जल्दी अपनी मोहनीमूर्ति दिखलाओ नहीं तो अब मैं मर जाऊँगा।

सो०लोग उठे सब रोय दीनवचन सुनि नन्द के। कहतविकल सबकोयहरितुमव्रज सूनोकियो।।

जब यशोदा रोते-रोते अचेत हो गई तब बलरामजी ने उस पर जल का छींटा डाला। जब उसे कुछ होश हुआ तब उसने बलरामजी को देखते ही रोकर कहा—हे बेटा! कन्हैया तेरे बिना एक साइत अकेला नहीं रहता था, तूने उसको कहाँ छोड़ दिया। जल्दी मेरे प्राणप्यारे को बुला लाओ। वह बहुत भूखा है, अभी तक उसने कुछ नहीं खाया। जब यह बात कहकर यशोदा कन्हैया कन्हैया पुकारने लगी तब बलरामजी ने उसे धैर्य देकर इस तरह समझाया—हे माता! तुम क्यों इतना सोच करती हो, मोहनप्यारे तुम लोगों को उदास देखकर कमल के फूल लाने के लिए कालीकुण्ड में गये हैं, वे अविनाशी पुरुष त्रिलोकीनाथ हैं, उनको यमुनाजल में डूबने या कालीनाग के काटने का कुछ डर नहीं है। तुम देख चुकी हो कि पूतना को उन्होंने क्षण भर में मार डाला था। मैं तुम्हारी सौगन्द खाकर कहता हूँ कि कोई ऐसा जीव तीनों लोक में नहीं है, जो उनको दुःख दे सके।

दो० मोहिं दोहाई नन्द की अबही आवत श्याम। नाग नाथि ले आवहीं तब कहियो बलराम ॥

जब बलभद्रजी के समझाने से कुछ धैर्य हुआ तब यशोदा ने बलरामजी का हाथ पकड़ लिया और उनको अपने पास बैठाकर बलायें लेने लगीं। सब व्रजवासी यमुनाजी की ओर टकटकी लगाये थे कि देखें मोहनप्यारे कब यमुनाजल से बाहर निकलते हैं। शुकदेवजी ने कहा–हे राजन्! उस दिन जैसा सोच नन्द व यशोदा आदि वृन्दावनवासियों को हुआ उसका हाल कहाँ तक वर्णन करें। अब नन्दलालजी का हाल सुनो। जब वह अपना नटवररूप साजे हुए कालीदह में पहुँचे तब नागिन मोहनीमूर्ति की सुन्दरता देखते ही उस पर मोहित होकर कहने लगी कि तुम ऐसे स्वरूपवान् व कोमलतन किस वास्ते यहाँ आये हो, जल्दी भाग जाओ, अभी कालीनाग सोया है, नहीं तो उसके जागते ही तुम्हारा अंग विष से जल जायगा। केशवमूर्ति यह वचन सुनकर नागपती से बोले कि तू अपने पति को जल्दी जगा दे, हमको राजा कंस ने भेजकर कमल के करोड़ फूल कालीकुण्ड में से माँगे हैं। तब नागिन बोली कि तुम कालीनान से क्या बातें करोगे, उसके एक फुफकार से तुम्हारा शरीर जल जायगा। मुझे तेरा सुन्दर रूप देखकर दया आती है। राजा कंस मर जावे, जिसने तेरी ऐसी मोहनीमूर्ति को यहाँ भेजा और तू मरने के वास्ते अपनी खुशी से यहाँ आया। बालक जानकर तुझे कहती हूँ कि तेरे मरने से तेरे माता-पिता बड़ा दुःख पावेंगे। तू बेचारा लड़का अपने प्राण लेकर यहाँ से चला जा। यह सुनते ही मनहरणप्यारे बोले–

दो० अरी बावरी सर्प सों काह डरावति मोहिं। जैसो मैं बालक प्रकट वही देखावों तोहि ॥
सो० क्यों नहिं देत जगाय देखौं मैं याके बलहिं। यापर कमललदाय लै जैहों यहि नाथि व्रज ॥

हे नागिन! सोये हुए को मारना अधर्म है, इसलिए तुझसे जगाने के वास्ते कहता हूँ। यह वचन सुनकर नागपती बोली कि छोटे मुख बड़ी बात तुझे कहना उचित नहीं है। यह कालीनाग गरुड़जी से लड़ा था, जिसे तुम नाथने के वास्ते कहते हो। मुझे मालूम हुआ कि तेरी मृत्यु तुझे यहाँ ले आई है जो तू मेरा कहना नहीं मानता। तुझे काली-



कालीनाग-मद-मर्दन

नाग से लड़ने की सामर्थ्य हो तो उन्हें आप जगा लें। यह बात सुनते ही वृन्दावनविहारी ने उसको झिड़ककर जैसे अपने पाँव से कालीनाग की पूँछ दबाया वैसे ही वह गरुड़जी के डर से चौंककर उठ खड़ा हुआ। जब उसने देखा कि मेरे सामने एक बालक खड़ा है तब आश्चर्य में आकर कहा कि मेरे विष की गर्मी अक्षयवट नहीं सह सकता और कोसों तक के पशु आदि उस गर्मी से भस्म हो जाते हैं, यह कौन ऐसा बालक है जिसने यहाँ तक जीते पहुँचकर मुझे नींद से जगाया। ऐसा विचारकर कालीनाग क्रोध से पूँछ पटकता हुआ केशवमूर्ति की ओर दौड़ा और अपने एकसौ एक फण से उनको काटने लगा। हे राजन्! उस विष की गर्मी से यमुनाजल अदहन के समान खौलता था, पर वैकुण्ठनाथ को कुछ विष नहीं व्यापता था। तब उस नागिन ने कहा कि यह बालक बड़ा शूरवीर है, कोई मंत्र जानता है इसलिए इसको विष प्रवेश नहीं करता। जब कालीनाग ने देखा कि मेरे काटने से यह बालक नहीं मरता। तब उसने मोहनप्यारे को अपने शरीर से लपेटकर कस लिया। उस समय नागिन ने पछिताकर मन में विचारा कि ऐसा सुन्दर बालक अपनी खुशी से काल के वश यहाँ आया, अब इसका बचना कठिन मालूम होता है। कालीनाग ने अभिमान से केशवमूर्ति से कहा कि तुम मुझे नहीं जानते, मैं सर्पों का राजा हूँ। अब यहाँ से जीते बचकर जावोगे तो देखूँगा। गर्वप्रहारी भगवान् ने यह वचन सुनते ही अपना शरीर ऐसा बढ़ाया कि काली के सब अंग टूटने लगे। जब उसने बहुत दुःखी होकर मोहनीमूर्ति को छोड़ दिया और अलग जाकर खड़ा हो गया तब मुरलीमनोहर ने तुरन्त उसके फण पाँव के नीचे दबाकर उसकी नाक छेद डाला और उसमें डोरी नाथकर उसके सिर पर चढ़ गये।

दो० माखनप्रभु फणगहिलियो दियोव्यालफुफकार। चरणकमलमाथेधरे निरतत हरीमुरार॥

जब वृन्दावनविहारी तीनों लोकों का बोझ अपने शरीर में लेकर कालीनाग के मस्तक पर वंशी बजाते हुए कूद-कूदकर नाचने लगे उस समय देवता, गन्धर्व, अप्सरा और किन्नर आदि अपने-अपने विमानों पर बैठकर यह आनन्दरूपी नाच देखने आये। गन्धर्वों ने अनेक तरह

के बाजे बजाकर वैकुण्ठनाथ का गुणानुवाद ताल व स्वर के साथ गाना और अप्सराओं ने नाचना आरम्भ किया। देवतों ने श्यामसुन्दर पर फूल बरसाये। हे राजन्! उस समय नाचने, गाने और मुरली बजाने की ऐसी शोभा मालूम देती थी, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। जब कालीनाग के मुख से मारे बोझ के लोहू बहने लगा तब वह मरण-तुल्य होकर अपने विष का घमण्ड भूल गया और अपना फण पटक-पटककर मुख से जिह्वा निकाल दिया। अपने जीने से निराश होकर सिर झुका लिया। उस समय कालीनाग को वैकुण्ठनाथ का दर्शन मिलने और उनका चरण माथे पर पड़ने से ज्ञान उत्पन्न हुआ और यह बात स्मरण आई कि मैंने ब्रह्माजी से सुना था कि व्रजगोकुल में कृष्णावतार होगा।

दो० ते गोकुल में अवतरे मैं जान्यों निरधार। ये अविनाशी ब्रह्म हैं व्रज क्रीड़ा अवतार॥

सो यह बालक वही अवतार है, नहीं तो दूसरे की क्या सामर्थ्य थी जो मेरे विष से जीता बचे। इन त्रिलोकीनाथ की बराबरी कोई कर नहीं सकता। बहुत बुरा काम किया, जो परब्रह्म परमेश्वर पर फण चलाया। यह बात मन में समझते ही कालीनाग शरण में पुकारकर बोला—हे महाप्रभु! मैंने तुम्हारा रूप नहीं पहिचाना, अब मुझे जीवन देकर अपनी शरण में लीजिए। यह अधीनता कहकर कालीनाग चुप हो रहा और अपने कर्तव्य की लज्जा से कुछ स्तुति न कर सका। श्रीदीनानाथ ने यह दीन वचन सुनकर समझा कि अब कालीनाग का अभिमान टूट गया, तब उसे अपने चतुर्भुजीरूप का दर्शन दिया। उनका स्वरूप देखते ही कालीनाग की स्त्रियाँ अति विलाप से रुदन करती हुई वहाँ आईं और हाथ जोड़कर इस तरह उनकी स्तुति करने लगीं—हे परब्रह्म परमेश्वर! आप तीनों लोकों और सब जीवों के उत्पन्न करनेवाले हैं, अधर्मियों को मारने और पृथ्वी का भार उतारने के लिए आपने अपनी इच्छा से अवतार लिया है, संसार में जो कोई तुम्हारा ध्यान या भक्ति शत्रुता से करता है वह भी भवसागर पार उतरकर मुक्ति पाता है। जिस तरह अमृत जानकर व अनजान में दोनों तरह पीने से मनुष्य अमर हो जाता है उसी तरह तुम्हारे ध्यान का प्रताप भी समझना चाहिए। हमारे पति

ने अपने अज्ञान व अभिमान से आपको नहीं पहिचाना, सो वह अपने दण्ड को पहुँचा, पर तुम्हारा दर्शन पाकर कृतार्थ हुआ। जिन चरणों का दर्शन दान, यज्ञ, जप, तप करने से जल्दी नहीं मिलता, सो दर्शन इस नाग ने सहज में पाया। हे दीनानाथ! आपने बहुत अच्छा किया जो इस दुःखदायी का घमण्ड तोड़ दिया। इसने पूर्वजन्म में न जाने कैसा भारी तप किया था, जिस तपस्या के फल से तुम्हारे चरण इसके मस्तक पर विराजते हैं, नहीं तो इन चरणों की धूरि मिलने के लिए लक्ष्मीजी, ब्रह्मादिक देवता, योगी और मुनि चाह रखते हैं और जल्दी वह रज उनको नहीं मिलती, सो धूरि कालीनाग के माथे पर चढ़ी। इसके बराबर दूसरे का भाग्य होना बहुत कठिन है। हम ऐसी सामर्थ्य नहीं रखतीं जो उस रज का प्रताप वर्णन कर सकें। नारदजी और सनकादिक उस धूरि की भक्ति अपने हृदय में रखने से इन्द्रासन, अष्ट-सिद्धि, मुक्तिपदवी और तीनों लोकों का सुख उसके सामने कुछ वस्तु नहीं समझते। जिसने पारस पत्थर पाया वह सोने की चाह नहीं रखता। अब यह तुम्हारे भय से मरण-तुल्य हो गया, वीर लोग डरे हुए को नहीं मारते, इसलिए दया करके इसे छोड़ दीजिए, नहीं तो हमको भी इसके साथ मार डालिए। हम पतिव्रता हैं, अपने प्राण इसके अधीन जानती हैं। वेद व शास्त्र में भी ऐसा लिखा है कि पति व्रता स्त्री उसको समझना चाहिए जो अपने पति को कोढ़ी, रोगी, दरिद्री होने पर भी ईश्वर के समान जाने। आज से अपने स्वामी पर हमें अधिक विश्वास हुआ कि उसके प्रताप से हमने तुम्हारा दर्शन पाया। जब इसी तरह नागिन ने बहुत स्तुति की तब मुरलीमनोहर कालीनाग का अपराध क्षमा करके उसके मस्तक पर से कूद पड़े। तब उस सर्प ने दण्डवत् करके हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनानाथ! जो अनजान में मुझसे अपराध हुआ हो, सो दया करके क्षमा कीजिए। मैं विष से भरा हुआ साँप तामसी स्वभाव था, इसलिए तुम्हारे ऊपर अपना फण चलाया। ब्रह्मादिक देवता तुम्हारे भेद को जल्दी नहीं जान सकते, मैं मूर्ख तुम्हें किस तरह पहिचानता। आपने मुझे दर्शन देकर कृतार्थ किया। सब वेद

व पुराण तुम्हारा गुण गाते हैं। आप न्याय करके देखें तो इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है, क्योंकि मेरी जाति का यही स्वभाव आपने बना दिया है। कदाचित् कोई मुझको दूध पिलावे तो मेरे शरीर से विष उत्पन्न होगा। गौ को खाली भूसा खिलाने से दूध होता है। मैंने अपने स्वभाव के अनुसार तुम्हारे ऊपर फण चलाया अब मुझे अपनी शरण में रखिए। मेरा माथा धन्य है, जिस पर तुम्हारे चरण पड़ने से मेरे अनेक जन्म के पाप छूट गये। जिन चरणों को लक्ष्मीजी आठों पहर अपने हृदय में लगाये रहती हैं, ब्रह्मादिक देवता दिन-रात्रि उनका ध्यान करते हैं, उन्हीं चरणों का धोवन गंगाजी हैं, जो तीनों लोकों को कृतार्थ करती हैं, वे तुम्हारे चरण मेरे सिर पर विराजे। शेषनाग के एक मस्तक पर आप शयन करते हैं, सो उसने इतनी बड़ाई पाई और मेरे एक सौ एक शीश पर आपने चरण रखकर नृत्य किया है, इसलिए मैं अपने बराबर किसी दूसरे का भाग्य नहीं समझता। अब मेरा डर छूट गया।

दो०जिन पद पंकज परसते गति पाई मुनिनार। सुरनरमुनि पूजत तिन्हैं सन्तन प्राणअधार॥
सो०फिरत चरावनगाय श्रीवृन्दावन यहचरण। भक्तनके सुखदाय व्रजवासी जनदुखहरण॥

यह स्तुति सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा कि अब तू यहाँ का रहना छोड़कर अपने कुल परिवार समेत रमणक द्वीप में जाकर रह। मैं यहाँ जलक्रीड़ा करूँगा। जो कोई कालीदह में स्नान करके पितरों का तर्पण करेगा उसके जन्म-जन्मांतर के पाप छूट जायँगे। हम तेरा अपराध क्षमा करके अब तुझसे बहुत प्रसन्न हैं। तेरा नाम महाप्रलय तक संसार में स्थिर रहेगा। जो देवता और मनुष्य मेरी व तेरी कथा कहेंं व सुनेंगे उनको साँप काटने का भय नहीं होगा। राजा कंस ने कमल के एक करोड़ फूल कालीकुण्ड के माँगे हैं, सो तू जल्दी अपने ऊपर लादकर व्रज में पहुँचा दे। वैकुण्ठनाथ का यह वचन सुनकर कालीनाग ने डरते व काँपते हुए विनय किया कि हे महाप्रभु! मैं कमल के फूल अभी पहुँचाये देता हूँ। पर रमणक द्वीप में जाने से मुझे गरुड़जी खा जायँगे, उन्हीं के डर से मैं यहाँ भाग आया था। यह सुनकर मनहरणप्यारे बोले—

दो० चरणकमल की छाप है तेरे मस्तक माहिं। अब इस छापप्रताप से गरुड़ बोलिहैं नाहिं॥

ऐसा कहने के उपरांत केशवमूर्ति ने उसी साइत गरुड़ को बुलाकर कालीनाग का भय छुड़ा दिया। तब कालीनाग ने बड़े हर्ष से अपनी स्त्रियों समेत विधिपूर्वक श्रीकृष्णजी की पूजा की और बहुत रत्न व मणि के हार उनको भेंट दिया। तीन करोड़ कमल के फूल अपने ऊपर लाद लिये। तब फिर व्रजनाथ उसके मस्तक पर चढ़कर नाथ पकड़े हुए वहाँ से चले।

सो० फिर यशुमति उरमाहिं उठीलहरि अतिप्रेमकी । कान्हरआयो नाहिं कहतरोयबलरामसों।।

यह वचन सुनकर बलभद्रजी बोले—हे माता! तुम थोड़ी देर और धैर्य धरो, अभी तुम्हारे प्राणप्यारे आते हैं। बलरामजी के समझाने पर भी व्रजवासी लोग फिर व्याकुलता से रोकर कहने लगे—ऐ मनहरण-प्यारे! तुम हमारा मोह छोड़कर कहाँ चले गये। तुम्हारे बिना हमारी यह गति होती है। दो पहर से यमुनाजल में बैठे क्या करते हो, जल्दी क्यों नहीं निकल आते। जिस तरह बिना मणि का साँप तड़फता है, वह दशा नन्द और यशोदा की है। यशोदा रोकर कहने लगी—मुझे धिक्कार है, जो मोहनप्यारा यमुना में डूब जावे और मैं जीती रहूँ।

दो० कहतयशोदा नंदसों धिकधिकबारम्बार। अबकेतिक दिन जियोगे मरत नहीं म्वहिंमार ।।

सो० करिदेखो मनज्ञान ऐसेदुख में मरणसुख । नन्दभयेबिनप्रान मूर्च्छिपरे सुनि प्रिय वचन ।।

जब नन्दराय मूर्च्छित होकर गिर पड़े तब बलरामजी ने उन्हें उठा-कर कहा कि हे पिता! तुम क्यों इतना सोच करके प्राण देते हो, श्याम-सुन्दर को मारनेवाला संसार में कोई नहीं है। वह अविनाशी पुरुष आठों पहर लक्ष्मीजी को साथ लिये क्षीरसमुद्र में रहते हैं। उनके यमुना-जल में कूदने से तुम लोग क्यों डरते हो। इस तरह बलरामजी उन्हें समझा रहे थे कि उसी साइत यमुनाजल में लहरें उठने लगीं। तब बल-भद्रजी बोले—देखो, अब वैकुण्ठनाथ जल से बाहर आते हैं। ऐसा वचन सुनते ही सब व्रजवासी यमुनाजी की ओर देखने लगे। उसी समय नन्दलालजी काली नाग को नाथे हुए जल के ऊपर प्रकट हुए।

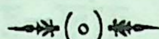
दो० माखन प्रभु गोपालजी बाहर प्रकटे आय । दुःखहरन दानवदलन सन्तन सदा सहाय ।।

हे राजन्! उन्हें देखते ही नन्द और यशोदा आदि व्रजवासी ऐसे प्रसन्न हो गये जैसे मुर्दे के तन में प्राण आ जावें। कालीनाग ने मुरली-मनोहर को यमुना के किनारे उतार दिया।

सो० तटपर कमल धराय काली को आयसु दियो। उरगद्वीप अब जाय करोवास निर्भय सदा ॥

कालीनाग उनकी आज्ञानुसार दण्डवत् करके उसी समय अपने कुल-परिवार समेत रमणक द्वीप को चला गया। श्यामसुन्दर ने सब व्रजवासियों को, जो दुःखसागर में डूबे थे, मिलकर उन्हें सुख दिया। उसी दिन से वहाँ का यमुनाजल जो विष तुल्य था सो अमृत के समान हो गया।

दो० धन्यधन्यप्रभुधन्यकहि मुदितसुमनबरसाय। गयेदेव सब निजसदन हृदय परम सुख छाय ॥



सत्रहवाँ अध्याय।

कालीनाग के रमणकद्वीप छोड़ने की कथा।

राजापरीक्षित ने इतनी कथा सुनकर पूछा—हे स्वामी! रमणकद्वीप उत्तम स्थान छोड़कर कालीनाग यमुनाजी में क्यों आकर रहा? गरुड़जी का कौन अपराध उसने किया था, इसका हाल विधिपूर्वक वर्णन कीजिए। शुकदेवजी बोले—

दो० गरुड़ बली के त्रासते वास कियो व्रज आय। सो लीला विस्तार सों कहों सबै समुझाय ॥

हे राजन्! सुनो, कश्यपजी ब्रह्मा के बेटा हैं, उनके बहुत-सी स्त्रियाँ हैं। उनमें एक कद्रू और दूसरी विनता नाम की है। कद्रू के कालीनाग आदि बहुत से सर्प उत्पन्न हुए और विनता के दो बालक एक गरुड़जी परमेश्वर के वाहन और दूसरा अरुण नाम सूर्य देवता का सारथी हुआ। गरुड़जी और कालीनाग आदि सर्प रमणकद्वीप में रहते थे। एक दिन कद्रू और विनता दोनों सवति बैठी थीं। कद्रू ने विनता से पूछा कि सूर्य के रथ में कौन रंग के घोड़े जुते हैं। विनता ने श्वेतवर्ण और कद्रू ने काले रंग के बतलाये। इसी बात पर दोनों ने आपस में झगड़ा करके यह प्रतिज्ञा की कि जिसका कहना झूठा हो वह सच कहनेवाली की दासी होकर रहे। जब यह समाचार सर्पों ने पाया तब कद्रू से कहा कि हे माता! तुमने हम लोगों से बिना पूछे क्यों ऐसी प्रतिज्ञा की। सूर्य के रथ में श्वेत वर्ण के घोड़े जुते हैं, तू विनता से हार जायगी। यह बात सुनकर कद्रू बोली—ऐ बेटा! मैं वचन हार चुकी हूँ, अब कोई ऐसा उपाय करो जिसमें मेरा कहना सच हो, नहीं तो मुझे विनता की

दासी होना पड़ेगा। तब साँपों ने कहा कि हम लोग जाकर उन घोड़ों के अंग में लपट जाते हैं, इससे वह काले दिखलाई पड़ेंगे, तब तू जीत जायगी। सो काले-काले साँप जाकर उन घोड़ों के शरीर में लपट गये, इसलिये वह काले दिखलाई देने लगे। उसी समय कद्रू विनता को साथ लेकर घोड़े देखने गई। सो साँपों के लपटे रहने से वह काले देख पड़े, इसलिए विनता हार गई।

दो० कद्रू विनतहि जीति कै लै गै घरहि लेवाय। जाकी नीति अनीति है तासों कहा बसाय ॥

जब गरुड़जी ने यह हाल सुना तब कद्रू से जाकर कहा कि तुमने छल करके मेरी माता को दासी बनाने की इच्छा की है सो ऐसा अधर्म करना तुमको उचित नहीं था। अब जो वस्तु माँगो सो हम उसके बदले ला दें, पर मेरी माता को दासी मत बनाओ। यह बात सुनकर सर्पों ने आपस में सम्मत करके गरुड़जी से कहा कि तुम अमृत का कलशा हमें ला दो तो उसे दासी न बनावें। गरुड़जी ने अपनी सामर्थ्य से उसी समय अमृत का कलशा लाकर सर्पों को दे दिया और अपनी माता को साथ लेकर घर चले आये। यह समाचार सुनकर देवतों ने विचार किया कि साँप लोग अमृत पीने सें अमर होकर सब जीवों को अधिक दुःख देंगे तो किस तरह कोई जीता बचेगा। ऐसा विचारकर देवतों ने आकर गरुड़जी से कहा कि तुम अपने वचन प्रमाण अमृत का कलशा कद्रू को देकर अपनी माता को लिवा ले आवो और जैसे छल करके तुम्हारी माता को उन्होंने दासी बनाया था वैसे ही किसी उपाय से तुम भी अमृत का कलशा उनसे ले लो। गरुड़जी ने देवतों की यह बात मान ली और जिस समय सर्प लोग अमृत का कलशा तालाब के किनारे रखकर इस इच्छा से स्नान करने लगे कि पवित्र होकर अमृत पीवें उसी समय गरुड़जी वहाँ पहुँचकर अमृत का कलशा उठा लाये और देवतों को सौंप दिया। देवता अमृत लेकर अपने लोक को चले गये। सर्पों ने इसी कारण गरुड़ से शत्रुता उत्पन्न की। एक दिन गरुड़ ने अपने स्वामी नारायणजी की बहुत स्तुति करके यह वरदान माँगा कि कोई साँप हमको लड़ाई में न जीते और सर्पों को

हम भोजन किया करें, उनका विष हमें न व्यापे। जब परमेश्वर दीन-दयालु ने गरुड़ को इच्छापूर्वक वरदान दिया तब वे बहुत प्रसन्न होकर सर्पों को पकड़कर खाने लगे। जब सर्पों ने गरुड़जी से जीतने की सामर्थ्य अपने में नहीं देखी तब ब्रह्माजी के पास जाकर विनय किया कि हे जगत्कर्ता! हमको और गरुड़ को आपने ही उत्पन्न किया है, सो गरुड़जी वरदान पाने के प्रताप से हम लोगों को खा जाते हैं, ऐसी बरजोरी उनको न करना चाहिए। यह वचन सर्पों का सुनकर ब्रह्माजी ने इस तरह दोनों का मेल करा दिया कि महीने में एक साँप गरुड़जी अपने खाने के वास्ते लिया करें और सबको दुःख न दें। जब गरुड़जी इस बात पर राजी हुए तब वे लोग आपस में पारी बाँधकर हर पूर्णमासी को एक साँप पीपल के वृक्ष पर रख आने लगे। गरुड़जी ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार वही सर्प खाकर दूसरे को दुःख देना छोड़ दिया। जब कुछ दिन इसी तरह बीते और कद्रू के बेटा कालीनाग की पारी आई तब वह अपने विष के घमण्ड से कहने लगा कि हम और गरुड़ कश्यपजी के बेटा हैं, दोनों की माता बहिन-बहिन हैं, मैं उनसे डरकर उन्हें साँप खाने को दूँ तो इसमें मेरी बड़ी हँसी है, इसलिए हम गरुड़जी से लड़ेंगे। यह विचारकर कालीनाग वृक्ष पर साँप नहीं रख आया। गरुड़जी जब उसके द्वार पर आये तो कालीनाग ने गरुड़जी से बड़ा युद्ध किया। गरुड़जी ने उसको अपने पंख व चोंच से मारकर गिरा दिया। लड़ते समय गरुड़जी के पंखों से सामवेद, ऋग्वेद, अथर्वणवेद और यजुर्वेद के स्वर निकलते थे वह शब्द सुनकर साँपों का तेज हीन हो जाता था। जब कालीनाग ने अपने से गरुड़ में अधिक बल देखा तब वह हार मानकर मन में कहने लगा कि अब भागे बिना गरुड़जी के हाथ से मेरे प्राण नहीं बचेंगे, यमुना के किनारे वृन्दावन में जाकर रहूँ तो जीता बचूँगा, क्योंकि गरुड़जी सौभरि ऋषीश्वर के शाप से वहाँ नहीं जा सकते। ऐसा विचारकर कालीनाग अपनी स्त्री व बच्चों समेत रमणक-द्वीप से भागकर यमुनाजल में आ बसा था। दूसरे साँप सौभरि ऋषीश्वर के शाप देने का हाल नहीं जानते थे और कालीनाग ने नारद मुनि से

सुना था। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—महाराज! गरुड़जी वृन्दावन में यमुना के किनारे क्यों नहीं जा सकते थे। शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! किसी समय सौभरि ऋषीश्वर यमुना के किनारे बैठे तप करते थे, वहाँ गरुड़जी ने जाकर एक बहुत बड़ा मत्स्य यमुना से पकड़कर खाया। यह हाल देखते ही सौभरि ऋषीश्वर ने क्रोधित होकर कहा कि हे गरुड़जी, जिस जगह हम परमेश्वर का भजन करें वहाँ किसी को ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो जीवों को दुःख दे। कदाचित् तुमको मेरे कहने का विश्वास न हो तो अपने स्वामी से जाकर पूछ लो। आज तो तुम्हारा अपराध क्षमा किया, पर आगे के लिए यह शाप देता हूँ कि यदि फिर कभी तुम यहाँ आवो तो मर जाओगे।

दो० माखन प्रभु के नेह में मेरो सहज सुभाय। जो आवे मेरी शरण ताकी करत सहाय॥

हे राजन्! इसी शाप के डरसे गरुड़जी वहाँ नहीं जा सकते। जब से कालीनाग उस जगह आ बसा तब से वहाँ का नाम कालीदह हुआ। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! श्रीकृष्णजी ने कालीनाग को बिदाकर दिया और आप लड़कों के समान डरते व काँपते हुए दौड़कर यशोदा की गोद में घुस गये। नन्दरानी ने श्यामसुन्दर को बड़ी प्रीति से गले लगा लिया व मुख चूमने लगी व रोहिणी आदिक सब व्रजबाला उन्हें देखकर परम आनन्द हो गईं व जो गो व बछरे बिना देखे श्यामसुन्दर के रोते थे वह पागुर करने लगे। उस समय बलरामजी यह लीला केशवमूर्ति की देखकर हँसे तब नन्दजी उनको हँसते देखकर क्रोध से बोले—बलभद्र, वसुदेवजी का बालक हमारा-जाति-भाई नहीं है, इसलिए दुःख के समय हँसी व ठट्ठा करता है। यह सुनकर बलरामजी ने कहा—हे पिता, मेरे हँसने का यह कारण समझो, देखो जब श्यामसुन्दर यमुना में कूदकर ऐसे बलवान् साँप को नाथ लाये तब नहीं डरे अब माता की गोद में आकर काँपते हैं। हे नन्दबाबा! केशवमूर्ति किसी का कुछ डर न रखकर सब दुःखदाइयों को दण्ड देनेवाले हैं। यह सुनकर नन्दजी हँसने लगे और उन्होंने मनहरणप्यारे को गले लगाकर कहा—हे बेटा, अब तुम गो चराने न जाकर मेरी आँखों के सामने रहा करो। ऐसा कहकर

नन्दजी ने बहुत गो, सोना आदिक उनसे दान कराया। हे राजन्, उस दिन सब व्रजवासियों ने श्यामसुन्दर का नया जन्म होना विचारकर ऐसी खुशी मनाई जिसका हाल मुझसे वर्णन नहीं हो सकता। यशोदा ने मोहनप्यारे से कहा—हे बेटा, मैं नित्य तुझे मना करती थी कि तू यमुना किनारे मत जाया कर, सो तैंने मेरा कहना नहीं माना व यमुना-जल में कूदकर हम लोगों को इतना दुःख दिया, तब केशवमूर्ति बोले—हे मैया! रात का स्वप्न सत्य हुआ।

दो० मैं गेंदा खेलत यहाँ आयों यमुना तीर। मोहिं डारि काह्न दियो कालीदह के नीर॥

हे माता, जब मैं जल के नीचे चला गया तब साँप को देखके बहुत डरा। जब मैंने उससे कहा कि मुझे राजा कंस ने कमल के फूल लेने के लिए यहाँ भेजा है तब वह राजा के डर से मुझे फूल समेत यहाँ पहुँचा गया। फिर श्रीदामा आदि ग्वालबालों ने मोहनप्यारे से गले मिलकर कहा—हे भाई, जो कुछ तुमने कहा था सो किया। तुम कंस को अवश्य मारोगे, अब हमारा अपराध क्षमा करो। यह वचन सुनते ही केशवमूर्ति हँसकर बोले—हे भाई, तुम मेरे सखा हो, हमारी-तुम्हारी घड़ी भर की लड़ाई थी, अब मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। फिर श्याम व बलराम यह लीला समझकर आपस में हँसने लगे व उस दिन सब वृन्दावनवासी श्यामसुन्दर के विरह में भूखे बैठे थे, इसलिए मुरलीमनोहर ने कहा कि आज की रात सब लोग यहाँ टिके रहो, कल्ह घर को चलेंगे। जब उनकी आज्ञा से सब लोग वहाँ टिके तब नन्दजी ने वृन्दावन से पकवान व मिठाई मँगवाकर सबको भोजन कराया। उसी दिन नन्दजी ने कमल के फूल गाड़ी व बैलों पर लदवाकर ग्वालों के साथ राजा कंस के पास भेज दिया।

दो०बहुत विनय करि कंस को दीन्हों पत्र लिखाय। कहियो मेरी ओर ते नृपसों ऐसो जाय॥

सो० गयो कमल के काज कालीदह मेरो सुवन। तुव प्रताप ते राज आप गयो पहुँचाय अहि॥

हे राजन्! जब ग्वालबालों ने कमल के फूल चिट्ठी समेत कंस के पास पहुँचा दिया तब कंस कमल के फूल देखकर और पत्री बाँचकर बहुत डरा। उसको विश्वास हुआ कि श्रीकृष्णजी परब्रह्म का अवतार हैं,

इनके हाथ से मेरे प्राण न बचेंगे। ऐसा विचारकर मन में बहुत उदास हो गया, पर नन्दजी को शिरोपाँव देकर ग्वालों से बिदा करते समय कहा कि तुम नन्दरायजी से कह देना कि हम एक दिन उसके बेटों को बुलाकर देखेंगे। जब ग्वालों ने आकर वहाँ का संदेशा कहा तब नन्दादिक सब वृन्दावनवासी बहुत प्रसन्न हुए।

दो०कहतश्यामबलरामसोंहँसिहँसिकरियहबात। नृपहमतुमदेखनलिए कहेउबोलावनतात॥

सो०व्रजजनपरमहुलास इक सुख हरि अहिते बचे। मिटो कंसकोत्रास दूजे कमल पठाइ नृप॥

जब रात को सब वृन्दावनवासी यमुना के किनारे सरहरी के वन में सो रहे तब राजा कंस ने यह हाल सुनकर धुन्धक राक्षस को बुलाकर कहा कि तुम आज यमुना के किनारे जाकर सब व्रजवासियों को श्याम व बलराम समेत जला दो तो मैं तुम्हारा बड़ा यश मानूँगा। यह वचन सुनते ही उस राक्षस ने आधी रात के समय वहाँ जाकर चारों ओर से आग लगा दी।

दो०दावानल अतिक्रोधकर लियोचहूँदिशिघेर। उठीअनलज्वाला प्रबल मानौं अचलसुमेर॥

जब पशु-पक्षी व वृक्ष उस आग से जलने लगे तब नन्द व यशोदा आदि व्रजवासियों ने नींद से चौंककर क्या देखा कि चारों ओर से आग दौड़ी चली आती है, कोई राह भागने की दिखलाई नहीं देती। यह दशा देखते ही यशोदा ने घबराकर श्रीकृष्ण से कहा कि हे दुःखभञ्जन! जब-जब हम लोगों पर दुःख पड़ता है तब-तब तुम सहायता करते हो, अब जल्दी इस अग्नि से बचाओ, नहीं तो सब लोग जलकर मर जायँगे। तुम्हारी शरण छोड़कर अग्नि के डर से भाग नहीं सकते। जब श्यामसुन्दर ने अग्नि की ज्वाला से सबको बहुत व्याकुल देखा तब उनको धैर्य देकर बोले कि तुम लोग अपनी आँखें बन्द कर लो, अग्नि बुझ जायगी। जब सब लोगों ने अपनी-अपनी आँखें बंद कीं तब वैकुण्ठनाथ अनेक रूप धरकर सब अग्नि मुख में खा गये। धुन्धक राक्षस को भी मार डाला। उसी साइत परमेश्वर की इच्छानुसार सब अग्नि बुझ गई, जितने पशु-पक्षी व वृक्षादिक जले थे, ज्यों के त्यों हो गये। जब केशवमूर्ति के कहने से वृन्दावनवासियों ने अपनी आँखें खोलीं तब उन्हें

एक चिनगारी भी नहीं दिखलाई दी। यह चरित्र देखकर सब लोग आपस में कहने लगे कि किसी ने जल से भी नहीं बुझाया, यह सब अग्नि क्या हो गई। तब मनहरणप्यारे ने कहा कि खर की आग बहुत जल्दी जलती है, फिर उसको बुझते हुए देर नहीं लगती।

सो० श्याम सहायक जाहि ताको डर है कौन को। यह न बड़ाई ताहि पाँच तत्व जिनके किये॥

जब सब व्रजवासी श्यामसुन्दर की स्तुति करने लगे तब केशवमूर्ति ने अपनी माया उन पर ऐसी फैला दी कि सब किसी ने जाना कि यह अग्नि आपसे बुझ गई। कालीनाग नाथने का हाल भी लोगों को स्वप्न-सा मालूम हुआ।

दो० माखनप्रभु के नेह में कछुक कहूँ डर नाहिं। प्रात होत आनंद सों सब आये घर माहिं॥

उस दिन सब छोटे-बड़ों ने अपने-अपने घर मंगलाचार मनाया और श्यामसुन्दर को बालक जानकर प्रतिदिन उनसे अधिक प्रीति करने लगे।

—:०—

अठारहवाँ अध्याय।

बलरामजी का प्रलम्ब राक्षस को मारना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जिस तरह श्यामसुन्दर ने ग्वाल-बालों के साथ वृन्दावन में खेल खेला था वह कहता हूँ, सुनो। जब ग्रीष्म-ऋतु ज्येष्ठ व आषाढ़ का महीना आया तब सूर्य के तपने से सारा संसार व्याकुल हो गया, पर श्यामसुन्दर की कृपा से वृन्दावन में किसी जीव को गर्मी न व्यापकर वहाँ वसन्त ऋतु-जैसा सुख बना रहा, इसलिए वृन्दावन में फूलों पर झुण्ड के झुण्ड भँवरे गूँजते और आम की डालियों पर कोयल कूकती थी। वृक्षों के नीचे ठंडी छाया में मोर नाचते थे। मन्द सुगन्ध हवा बहती थी, घने वन के निकट यमुनाजी लहरें लेती थीं। वहाँ हर वृन्दावनविहारी व बलरामजी ग्वालबालों समेत गायें चराकर अनेक तरह के खेल खेलते थे। जब कभी चरखी के समान घूमते तब उनको पृथ्वी व आकाश घूमता हुआ मालूम देता था, कभी एक बालक दूसरे बालक के हाथ पर ताली मारकर भागता था, वह उसे पकड़ने दौड़ता था। कभी-कभी आपस में आँखमुँदौवल आदि खेलकर अनेक

तरह के राग गाते थे। मुख से अनेक प्रकार का बाजा बजाते और बाघ, गिद्ध, लोमड़ी आदि की बोली बोलते थे। कभी-कभी केशवमूर्ति वंशी बजाकर अपना गाना ग्वालों को सुनाकर प्रसन्न करते थे।

दो० कबहूँ सारस कोकिला हंस मोर की भाँत। ग्वालबाल बोलैं कभी माखनप्रभु मुसकात॥

हे राजन्! ऐसे आनन्द में राजा कंस का भेजा हुआ प्रलम्ब राक्षस श्यामसुन्दर के मारने के लिए ग्वालरूप बनकर वहाँ आया। केशवमूर्ति के सिवा दूसरे किसी ने उसे नहीं पहचाना। जब उसने बहुत-से ग्वाल-बालों को उठा ले जाकर पहाड़ की कन्दरा में छिपा दिया तब श्याम-सुन्दर ने आँख की सेन से बलरामजी को दिखलाकर कहा कि हे भाई! इस ग्वाल को अपना साथी मत समझो, यह प्रलम्बासुर कपटरूप ग्वाल बनकर मुझे मारने आया है। इसके मारने का कोई उपाय करना चाहिए, ग्वालरूप यह नहीं मारा जायगा, क्योंकि ग्वालरूप मेरे सखा व भाई बन्धु हैं। जब यह राक्षस का रूप धरे तब इसको मार डालना। श्याम-सुन्दर ने बलरामजी से ऐसा कहकर उस कपटरूप ग्वाल को अपने पास बुलाया और उसका हाथ पकड़कर हँसते हुए बोले—हे मित्र! हमें तुम्हारा वेष सबसे अच्छा मालूम होता है, जो लोग मेरे सखा हैं वे कपट नहीं रखते और कपटी मनुष्य को मैं अपना सखा नहीं मानता।

दो०सखाबुलायेनिकटसबतिन्हैंकहेउनँदलाल। फलबुझायअबखेलियेमुदितभये सब ग्वाल॥

फिर श्यामसुन्दर ने प्रलम्बासुर को आधे ग्वालबालों समेत अपनी ओर ले लिया और आधे ग्वालबालों को बलरामजी के साथ देकर फल-बुझौवल खेलने लगे, और यह करार आपस में ठहराया कि जो लड़का फल न बूझ सके उस तरफ के सब ग्वालबाल दूसरी ओर के लड़कों को अपनी पीठ पर चढ़ाकर भाण्डीर वन तक ले जावें और उसी तरह चढ़ाये हुए जहाँ पर दोनों बालक फल बुझानेवाले बैठे हों फिर आवें। एक-एक ग्वालबाल दोनों गोल का अवस्था में बराबर जोट ठहराया। श्यामसुन्दर ने अपना जोट श्रीदामा ग्वाल से और बलभद्रजी का जोट प्रलम्बासुर कपटरूपी ग्वाल से बाँधा। जब खेलते समय बलरामजी जीते और श्रीकृष्णजी हार गये तब बलभद्रजी कपटरूपी ग्वाल की पीठ पर

चढ़े और श्रीदामा श्रीकृष्णजी की पीठ पर चढ़ा। इसी तरह श्यामसुन्दर के साथी सब बालक बलरामजी की ओर वाले ग्वालबालों को अपनी-अपनी पीठ पर चढ़ाकर भांडीर वन को चले तब वह ग्वालरूप राक्षस सब लड़कों से आगे बढ़कर बलरामजी को आकाश की ओर ले उड़ा और एक योजन के प्रमाण अपना राक्षसी रूप बना लिया। उसके काले शरीर पर बलभद्रजी का गोरा तन कैसी शोभा देता था जैसे श्याम घटा में चन्द्रमा शोभित होता है। कानों के कुण्डल बिजली के समान चमकते थे और शरीर का पसीना पानी की तरह बरसता था। उसका राक्षसी तन देखते ही बलदाऊजी ने अपना शरीर ऐसा भारी किया कि प्रलम्बासुर वह भार उठा न सका और उनको लिये हुए पृथ्वी पर गिरा। जब उसने बलरामजी को मारना चाहा तब संकर्षण ने उसके शिर में एक मुका मारा तो उसका मस्तक इस तरह फट गया जिस तरह इन्द्र के वज्र से पर्वत टूट जावे। जब उसके मस्तक से धारा प्रमाण लोहू बहने लगा तब वह राक्षस चिल्लाकर मर गया। उसकी लोथ गिरने से तीन कोस तक के वृक्ष टूट गये।

दो०ग्वालबाल चकित भये दौड़गये बल पास। मृतक असुर तन देखकै सबको भयो हुलास॥

सो०धन्यधन्य बलराम धन्य तुम्हारे मातुपितु। बड़ोकियो यह काम कपटरूप मारचो असुर॥

हे राजन्! ग्वालबालों ने प्रसन्न होकर उनकी बहुत बड़ाई की और देवताओं ने आकाश से बलरामजी पर फूल बरसाये। जिन ग्वालों को वह राक्षस कन्दरा में छिपा आया था उन्हें श्यामसुन्दर निकाल लाये।

उन्नीसवाँ अध्याय।

ग्वालों का मूंज के वन में आग लगने से विकल होना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब ग्वालबाल उस लोथ का तमाशा देखने लगे तब सब गौ चरती हुई मूँज के वन में चली गईं। जब दूर तक श्रीकृष्ण आदि ने उनका पता नहीं पाया तब सब ग्वालबाल अलग-अलग टोली बाँधकर गौवों को ढूँढ़ने लगे। वृक्षों पर चढ़कर डुपट्टा घुमाकर गायों का नाम लेकर पुकारते थे। उसी समय एक ग्वाल ने आकर मुरलीमनोहर से

कहा कि हे भाई, सब गौ मूँज के घने वन में चली गईं और ग्वाल लोग उनकी खोज में भटकते फिरते हैं। यह सुनते ही श्यामसुन्दर ने कदम के वृक्ष पर चढ़कर ऐसी मुरली बजाई कि उनका शब्द सुनते ही सब गायें व ग्वालबाल मूँजवन को चीरते-फाड़ते हुए इस तरह श्यामसुन्दर की ओर चले जिस तरह वर्षाऋतु में नदी व नाले का जल वेग से बहता है। उसी समय राजा कंस का भेजा हुआ एक राक्षस केशवमूर्ति को मारने के लिए उस वन में आया। उसने अपनी माया से ऐसी आँधी चलाई कि चारों ओर धूरि से अँधियारा छा गया और वन में आग लगा दी। जब उस अग्नि के तेज से ग्वालबालों और गौवों का शरीर जलने लगा तब उन्होंने व्याकुलता से श्यामसुन्दर और बलरामजी को पुकारकर कहा—हे वृन्दावनविहारी! हम लोग जले जाते हैं, हमारे प्राण बचाओ। जब-जब हम पर संकट पड़ता है तब-तब तुम रक्षा करते हो। आपके सिवा दूसरा कोई हमारा सहायक नहीं है। जिस तरह नारायणजी संसाररूपी अग्नि से अपने भक्तों को बचाकर उद्धार करते हैं उसी तरह तुम भी हम लोगों को इस आग से बचाओ। अपने सखा ग्वालबालों की यह दशा देखकर केशवमूर्ति ने बलरामजी से कहा—

दो० शरण गही जिन आपकी तात मातु बिसराय। हम औ तुम द्वै भाय बिन इनके कौन सहाय॥

ऐसा कहकर श्यामसुन्दर ने ग्वालबालों को पुकारकर कहा कि तुम लोग अपनी आँखें बन्द कर लो तब इस अग्नि से बचोगे। उनकी आज्ञानुसार सब ग्वालबालों ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। तब श्यामसुन्दर ने उस राक्षस को मार डाला। उसके मरते ही अग्नि बुझ गई और आँधी जाती रही। वैसे ही आँखें बन्द किये हुए सब ग्वालबाल गायें समेत श्यामसुन्दर की महिमा से भाण्डीर वन के पास चले आये तब केशवमूर्ति ने कहा कि तुम लोग आँखें खोल दो। उन्होंने जब आँखें खोलीं तो क्या देखा कि सब अग्नि व आँधी जाती रही और हम लोग भाण्डीर वन के पास चले आये। यह चरित्र देखकर सब ग्वालबालों को बड़ा अचम्भा हुआ। फिर सबों ने वृन्दावनविहारी के साथ यमुना के किनारे जाकर जल पिया और सन्ध्या समय घर को चले।

बस्ती के निकट पहुँचकर मनहरणप्यारे ने वंशी बजाई। मुरली की ध्वनि सुनते ही सब व्रजबाला अपने-अपने घर का काम-काज छोड़कर राह में आ खड़ी हुईं और केशवमूर्ति का दर्शन करके अपनी आँखें ठण्ढी कीं। सब गोपियों का यह प्रण था कि साँवली सूरत को देखे विना दिन भर व्रत रहकर सन्ध्या समय माधुरी मूर्ति का दर्शन करके पारण करती थीं। जब श्रीकृष्णजी अपने घर पर गये तब यशोदा ने उनको गोद में उठाकर बहुत प्यार किया और ग्वालों से पूछा कि आज विलम्ब क्यों हुई। तब उन्होंने राक्षस को मारने और आग लगने का हाल कह दिया। यशोदा व रोहिणी बहुत प्रसन्न हुईं। यह समाचार पाकर सब वृन्दावनवासी श्याम व बलराम को देखने आये और उनकी बड़ाई करके कहने लगे कि हे श्यामसुन्दर! तुम्हारी कृपा से हमारे बालक बचे, नहीं तो आज सब अग्नि में जलकर मर जाते। फिर सबोंने अपने-अपने बालकों से दान व दक्षिणा दिलवाया। परमेश्वर की माया से इस बात का विश्वास किसी को नहीं हुआ कि यह चरित्र श्यामसुन्दर ने किया है। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! इसी तरह केशवमूर्ति नित्य नई लीला करके सबको सुख देते थे और सब व्रजबाला मोहनप्यारे पर ऐसी मोहित थीं कि साँवली सूरत को देखे विना चैन नहीं पड़ती थी। पानी भरने और दही-दूध बेंचने के बहाने यमुना के किनारे व वन में जाकर श्यामसुन्दर का दर्शन करके अपने हृदय की तपन बुझाती थीं। अपनी सासु व माता का समझाना उनको अच्छा नहीं लगता था। मनहरणप्यारे अन्तर्यामी भी अपनी चितवन व मुसकान से उनको सुख दिया करते थे। एक दिन केशवमूर्ति अपना नटवर रूप धरे सब सखों को साथ लिये यमुना किनारे कदम के नीचे खड़े होकर मुरली बजाने लगे। उसी समय राधाप्यारी अपनी सखियों समेत जल भरने के बहाने मोहनप्यारे को देखने चली। जब यमुना तीर ग्वालों की भीड़ उसने देखी तब खड़ी होकर सखियों से बोली कि माखन चोर राह में खड़ा है, हम लोगों को अवश्य छेड़ेगा। जब श्यामसुन्दर उसके दिल का हाल जानकर अपने सखा समेत राह छोड़कर दूसरी ओर चले गये तब

राधिका ने सहेलियों समेत यमुना किनारे जाकर जल भरा और अपना-अपना घड़ा शिर पर लेकर घर को चलीं। राधाप्यारी सखियों के झुण्ड में हंस की सी चाल से चली आती थी, मोहनीमूर्ति ने गोपियों के गोल में आकर राधा की गगरी में एक कंकरी मारी और अपनी मुसकान से राधा आदि सब सखियों का मन हर लिया। तब श्यामा सखियों से बोली—

सो० कियोदृगनमेंधाम सुन्दर नटनागर सुखद। जित देखों तित श्याम पंथ मोहिं सूझै नहीं॥

उनमें जो व्रजबाला चतुर थीं उन्होंने कहा कि हे मोहनीमूर्ति! हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो अपनी मुसक्यान व चितवन से प्राण व ज्ञान दोनों हमारे हर लेते हो। तुम्हारा मोहनीरूप देखने और वंशी की ध्वनि सुनने से हमारा चित्त ठिकाने नहीं रहता। तुमने मन चुराने का उद्यम कब से सीखा है। यह प्रीति भरी हुई बात सुनकर श्यामसुन्दर बोले कि जिस तरह तुम लोगों ने अपनी छवि दिखलाकर मेरा मन चुरा लिया है उसी तरह मुझे भी कहती हो तब गोपियों ने रुखाई से कहा कि तुम किसी का चीर खींचकर धक्का देकर गिरा देते हो, किसी की गगरी कंकरी मारकर फोड़ डालते हो, तुम्हारे मारे कोई यमुना जल भरने नहीं पाता, हम लोग यशोदा के पास जाकर तुम्हें फिर ऊखल में बँधवावेंगी।

दो०यह सुनिहरिरिसकरिउठे इँडुरीलई छिनाय। कहो जाय अबमातसों लीजो मोहिं बँधाय॥

सो०मोहिं कहत ठग चोर आप भई साहुनि सबै। डारी गगरी फोर कहत जाउ चुगुली करन॥

जब श्यामसुन्दर ने ऐसा कहकर इंडुरी यमुना में बहा दी तब गोपियों ने यशोदा के पास जाकर कहा कि नन्दलालजी के मारे हम लोग यमुना जल भरने नहीं पातीं, वह हम लोगों की ऐसी दुर्दशा करते हैं कि उसका हाल लज्जा के मारे कहा नहीं जाता। यह सुनकर यशोदा बोलीं कि जैसा कहो वैसा मैं करूँ। जब मैंने उसको ऊखल से बाँधा था तब तुम्हीं लोग उसकी सिफारिश करती थीं। अब जब कन्हैया घर आवेगा तब मैं उसे मारूँगी। तुम लोग मेरे कहने से आज उसका अपराध क्षमा करो। इस तरह समझाकर यशोदा ने गोपियों को विदा किया। जब मोहनप्यारे डरते हुए घर आये तो ओट में खड़े होकर क्या सुना कि यशोदा गोपियों के उलहने का हाल रोहिणी से कहती थीं कि आज

कन्हैया घर पर आवेगा तो उसे मारूँगी। यह बात सुनकर मनहरण-प्यारे बोले कि हे माता! तुम हमें मारने को कहती हो, गोपियों का चरित्र तुम्हें नहीं मालूम है, जो वे कहती हैं उसे सच मान लेती हो। गोपियाँ मुझे कदम के नीचे से बरजोरी पकड़ ले जाकर मेरे गाल में मुक्का मारती हैं और जब मटककर चलने से उनकी गगरी गिरकर टूट जाती है तब मेरी शिकायत तुमसे आकर करती हैं। यह मीठा वचन सुनकर जैसे यशोदा ने मोहनीमूर्ति का चन्द्रमुख देखा वैसे क्रोध भूलकर कहने लगीं—

दो० कहाँ श्याम मेरो तनिक वे सब यौवन जोर। अब उ रहन लै आवहीं तब पठवहुँ मुख तोर ॥

सो० तू क्यों उन ढिग जात मैं बरजत मानत नहीं। लावत झूठी बात वे सब ढीठ गुवालिनी ॥

ऐसा कहकर यशोदा मोहनप्यारे को गोद में उठाकर प्यार करने लगीं। इसी तरह केशवमूर्ति प्रतिदिन नई लीला करके सब ब्रजवासियों को सुख दिया करते थे।

दो० यह लीला सब करत हरि व्रजयुवतिन के हेत। कृष्ण भजे जा भाव जो वाको तस फल देत ॥

हे राजन्! राधाप्यारी पूर्वजन्म के संस्कार से श्यामसुन्दर पर बड़ी प्रीति रखती थीं, इसलिए मोहनीमूर्ति को देखे विना व्याकुल होकर सखियों से बोलीं—हे बहिन! यमुना किनारे जल भरने के लिए फिर चलो, जिसमें मोहनप्यारे को देखकर आँखें ठंढी करूँ। जब मैं वहाँ जाती हूँ तब वह अपनी मुसकान व चितवन से मेरा मन मोहि लेता है। उस मोहनीमूर्ति को देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ती। लोकलाज के डर से मैं कुछ बोल नहीं सकती। बाहर निकलूँ तो माता-पिता का भय सताता है, घर में बैठने से मेरा तन यहाँ रहता और मन श्यामसुन्दर के पीछे दौड़ता है। मैं अपने चित्त को बहुत समझाती हूँ, पर उस चित्तचोर की ओर से नहीं फिरता।

स० एक सखी मनमोहन की मधुरी मुसकान देखाय दई री।
वह साँवरी सूरत चैनमई सबही चितई हमहूँ चितई री ॥
सब ही सखियाँ अपने-अपने गृह खेलत कूदत बाट लई री ॥
मैं बपुरी वृषभानलली घर आवत पौर पहाड़ भई री ॥

सो ऐ आली! अब मैंने मन में यह बात ठान ली कि केशवमूर्ति

से प्रकट प्रीति करूँगी, इसमें चाहे कोई मेरी निन्दा करे या स्तुति, उस साँवलीमूर्ति के सामने मुझे लोकलाज व कुल-परिवार कुछ अच्छा नहीं लगता। जब मेरे प्राण उसके विरह में निकल जायँगे तो मैं लज्जा को लेकर क्या करूँगी। इसलिए अब मैं मोहनप्यारे को अपना पति बनाया चाहती हूँ, इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है। ललिता आदि सखियाँ भी श्यामसुन्दर पर मोहित थीं, यह बात सुनकर वे बोलीं–

दो० कहु प्यारी कैसे चलें वा यमुना की ओर। गैल न छाँड़त साँवरों रसिया नन्दकिशोर॥

ऐ राधा! हम लोग अपने मन का हाल तुमसे क्या बतलावें, जो गति तेरी है वही दशा हमारी भी है। उसकी छवि देखकर हमारा चित्त ठिकाने नहीं रहता और बाँसुरी की ध्वनि हमें अधिक अचेत कर देती है, न मालूम उसने कैसी मोहिनी हम लोगों पर डाल दी। तूने बहुत अच्छा विचारा, संसार में कौन ऐसा जड़ व चैतन्य जीव है जो उसकी छवि देखकर और मुरली सुनकर मोहि न जावे। वह हमारे पति होकर हमें अंगीकार करें तो लाज भाड़ में पड़े।

सो० मेटि लोककी कानि पतिव्रत राखो श्याम सों। यही बनी अब आनि भलोबुरो कोऊ कहै॥

हे राजन्! राधा आदि सब व्रजबालों की यह दशा थी कि दिन उनके विरह में और मिलने के उपाय में काटकर संध्यासमय उनका दर्शन करके अपने हृदय की तपन बुझाती थीं। अपने घरवालों का कहना और समझाना उनको अच्छा नहीं लगता था।

—:○:—

बीसवाँ अध्याय।

वृन्दावन की स्तुति।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब गरमी अधिक होने से संसारी जीव दुःखी हुए तब बरसात कृपा करके अपनी सेना बादल को लेकर जड़ व चैतन्य सब जीवों को सुख देने और गरमी के साथ युद्ध करने के लिए धूम-धाम से चढ़ आई। उसकी सेना में बादलों की गर्जना मारू बाजे के समान, अनेक रंग की घटा शूरवीरों के समान, बिजुली का चमकना नंगी तलवारों के समान, मोरों की बोली करखा

बोलनेवालों के समान, पानी की बूँद बाणों के समान, मेढक की बोली भाटों के कवित्त पढ़ने के समान, श्वेतवर्ण बगुलों की पाँति ध्वजा के समान मालूम देती थी। ऐसी भारी सेना देखते ही गरमी हार मानकर भाग गई और जल बरसने से पृथ्वी और वृक्ष आदि सब जड़ व चैतन्य जीव सुखी हुए। आठ महीने तक जो जल सूर्य ने सोखा था उसे इस तरह बरसाया जिस तरह राजा लोग गरमी व जाड़े में प्रजा से देन लेकर बरसात में उनका पालन करते हैं। पृथ्वी ने जो आठ महीने तक दुःख उठाया था उसका सोच जल बरसने से छूट गया। अनेक रंग के फल व फूल वृक्षों में लग गये।

दो०बेलि विविधलपटीं ललित फूल रहे बहु रंग। शोभितसहस श्रृँगारजिमि नारिपुरुषकेसंग।।

पृथ्वी पर हरियाली उत्पन्न हो गई, नदी-नालों में जल उमंग से बहने लगा, उसके किनारे अनेक रंग के पक्षी मीठी-मीठी बोली बोलने लगे। हे राजन्! वृन्दावन में ऐसी शोभा मालूम देती थी जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

दो०शोभा वृन्दाविपिन की बरणिसकै कवि कौन। शेषमहेशगणेश विधि पार न पावत तौन।।
सो०महिमा अमित अपार श्रीवृन्दावन धाम की। जहँनित करत बिहार परब्रह्म भगवानहरि।।

हे राजन्! उस सुहावने वन में गोपी व ग्वाल लोग अनेक रंग के वस्त्र पहिने हुए झूला झूलते थे, गोपियाँ मलार आदि बरसात के गीत गाती थीं और उनमें श्याम व बलराम उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिने हुए अनेक लीला करके सबको सुख देते थे। जब इसी तरह आनन्द-पूर्वक बरसात बीतकर शरद्ऋतु आई तब एक दिन श्यामसुन्दर ने बल-रामजी और श्रीदामा आदि ग्वालबालों समेत वृन्दाविपिन में जाकर गौवों को चरने के लिए छोड़ दिया और वृक्ष के नीचे बैठकर कहा कि हे बलदाऊजी! अब शरद्ऋतु के अच्छे दिन आये।

दो०जलअकाश निर्मल भयो वर्षाऋतु के अन्त। जैसे उज्ज्वल चित सदा माखनप्रभु के सन्त।।

इन दिनों भोजन की वस्तु में स्वाद मालूम होता है, सब छोटे-बड़ों को अनेक तरह का सुख मिलता है। गृहस्थ को अपने घर रहने में सुख प्राप्त होता है। राजा इन्हीं दिनों शत्रु पर चढ़ाई करते हैं और व्यापारियों

को माल लादने तथा साधु-वैष्णव को तीर्थयात्रा करने में बहुत सुख प्राप्त होता है। हे भाई! मुझे वृन्दावन का ऐसा सुख तीनों लोकों में नहीं मिलता, इसलिए मनुष्य तन धारण करके व्रज में रहकर वृन्दावन को वैकुण्ठ से प्यारा जानता हूँ। तुम यहाँ के वृक्षों को कल्पतरु से कम न समझो। वृन्दावनवासी सब जड़ व चैतन्य जीव अपने प्राणों से अधिक मेरी प्रीति रखते हैं।

दो०जाके वश मैं रहत हूँ अपनी प्रभुता त्याग। प्रेम भक्ति सो लहत नर वृन्दाबन अनुराग ॥

यह सुनकर बलभद्रजी बोले कि हे दीनानाथ! मैं इतना वरदान तुमसे माँगता हूँ कि जहाँ आप जन्म लें वहाँ मुझे अपनी सेवा में साथ रक्खें। यह सुनकर केशवमूर्ति ने कहा—हे भाई! मैं कभी एक क्षण तुम्हें अपने साथ से नहीं छोड़ूँगा, तुम्हारे कारण तो हम नरतन धरकर व्रज में लीला करते हैं।

दो०मधुर वचनसुनिश्यामकेसखावृन्द सुखपाय। प्रेम पुलकतन मुदित मन रहे सबै गहि पाय॥

सो०धनिधनि२तुमश्यामधनिवृजधनिवृन्दाविपिन। तुम्हरेगुणअभिरामहमसबकछुजानैंनहीं॥

इसी तरह बहुत सी स्तुति करके ग्वालबालों ने श्यामसुन्दर से कहा कि हे मोहनप्यारे! इस समय हम लोगों का मन मुरली सुनने को बहुत चाहता है। यह वचन सुनकर केशवमूर्ति ने हाथ की लकुटिया धर दी और ऐसे प्रेम से मुरली बजाई कि जिसकी ध्वनि सुनते ही सब जड़ व चैतन्य जीव मोहित हो गये। मृगादिक उनके चारों ओर आकर खड़े हो गये। यमुनाजल बहने से थँभि रहा। पक्षियों को उड़ना भूल गया। गायें घास चरना छोड़कर चित्रकारी सी खड़ी हो गईं। झरनों में से पानी गिरना बन्द हो गया। मनहरणप्यारे वंशी में छः राग व छत्तीस रागिनी गाकर उसमें ग्वालबालों का नाम लेने लगे। मुरली बजाते समय अपनी आँख व भौं से ऐसा भाव बतलाया कि देखनेवाले मोहित हो गये। उस समय देवता अपनी-अपनी स्त्रियों समेत विमान पर आकाश में आये। उन्होंने मुरली सुनकर अति प्रसन्न होकर श्यामसुन्दर पर फूल बरसाये और कहा कि धन्य भाग्य व्रजवासियों का है, जो ऐसा सुख देखते हैं।

परमेश्वर हम लोगों को वृन्दावन में वृक्षादिक का जन्म देते तो परब्रह्म परमेश्वर वैकुण्ठनाथ की सेवा करके अपना जन्म सफल करते।

दो०कारणकरण अनन्तगुणनिगमभेदनहिंपाव। सो ग्वालन सँग गावहीं देखो भक्तिप्रभाव॥
सो०सुन्दरश्याम सुजान देतपरमसुख सबन को। वारततनमनप्रानधन्य-धन्यकहिग्वालसब॥
दो०सो धुनि सुनिकर गोपिकालाजकाजबिसराय। माखनप्रभुके दरशकोघरसेनिकलींधाय॥

हे राजन्! जब व्रजबाला वंशी की ध्वनि सुनते ही मोहित होकर वन की ओर चलीं और राह में बैठकर आपस में यह कहने लगीं कि जब व्रजनाथजी का दर्शन मिलेगा तब हमारी आँखें ठंढी होकर मन की इच्छा पूर्ण होगी। अभी तो हमारा चित्त चोर वन में ग्वालों व गायों के साथ नाचता-गाता होगा। यह सुनकर दूसरी गोपी ने कहा कि सुनो सखी, जब मोहनप्यारा सन्ध्या समय वंशी बजाता हुआ आवेगा तब मैं उस मोहनीमूर्ति की छवि देखकर अपना हृदय ठंढा करूँगी। तीसरी सखी बोली कि सुनो प्यारियो, इस बाँस में न मालूम क्या गुण भरा है, जिस बाँसुरी को मोहनप्यारे हमसे सुन्दर व उत्तम समझकर आठों पहर अपने मुखारविन्द व छाती में लगाये रहते हैं और वह वंशी श्यामसुन्दर के होठों का अमृत पीकर बादल के समान बोलती है। चौथी व्रजबाला ने कहा कि मेरे सामने यह बाँस बोया गया था, जिसकी यह मुरली बनी है, सो इसका ऐसा भाग्य चमका कि मेरी सवति होकर केशवमूर्ति की छाती पर दिन-रात चढ़ी रहती है। जिस समय गोपियाँ आपस में ये बातें कर रही थीं उसी समय वृन्दावनबिहारी ग्वालबालों व गायों को साथ लिये मुरली बजाते हुये वहाँ पहुँचे। उस मोहनीमूर्ति की छवि देखते ही सब व्रजबाला प्रसन्न होकर आपस में कहने लगीं—

क० घ० मोर के मुकुट माथे हाथे में लकुट राजे साजे गुंजमाल गले ललित लरनते।
सुन्दर कपोल श्रुति कुण्डल झलक राजे जुलफ अमोल भरे गोरज कनकते॥
गौवन के पाछे आछे काछेकाछनी के काछ राग गौरी गावत गवावत सखनते।
आनँद के कन्द व्रजलोचन चकोर चन्द मन्द मन्द आवत गोविन्द वृन्दावनते॥१॥
जरीदार चीरा में चुन्निन की चमक चारु हार मुक्ता के लर पाँवन लौं परसत।
कुण्डल चमक पीत पट लपटाने कटि दीपक दमक द्युति दामिनी सी दरसत॥
नैनन को फल लेय लोचन सुफल करो यह छवि देखिबे को क्यों न जीव तरसत॥
मन्द मन्द आवत बजावत मधुर वेणु-कुंजन ते आवत रसिक रूप बरसत॥२॥

दूसरी सखी ने कहा कि देखो, यह मुरली केशव मूर्ति के होठ के बीच कैसी सुन्दर मालूम होती है, जिसका अमृतरूपी शब्द कानों की राह पीने से मुर्दे जी उठते हैं। इस मुरली का बाँस जिस वन में उत्पन्न हुआ था वहाँ के वृक्ष अपने को बड़ा भाग्यवान् जानकर कहते हैं कि यह हमारी बाँसुरी जाति-भाई है। इस वंशी की ध्वनि देवतों की स्त्रियाँ अपने विमानों पर से सुनकर ऐसी मोहि जाती हैं कि उनकी कमर से घुँघुरू खुलकर गिर पड़ते हैं और उन्हें सुधि नहीं होती। गौवों को चरना भूल जाता है। हरिण आदि चित्रकारी के समान खड़े होकर उसकी ध्वनि सुनते हैं। बछड़े दूध पीना भूल जाते हैं। वृक्षों में से मद बहने लगता है। दूसरी सखी बोली कि ऐ प्यारी! पहिले इस वंशी ने बाँस के तन में जन्म लेकर धूप, पानी व सरदी का दुःख उठाया और एक पाँव से खड़ी रहकर परमेश्वर का तप किया, फिर इसने अपना पोर-पोर कटवाकर आग की गर्मी अपने ऊपर उठाई, तब टेढ़ी से सीधी हुई। इससे अधिक क्या कोई भगवान् की तपस्या करेगा। यह सुनकर दूसरी ब्रजबाला बोली कि परमेश्वर हमारा जन्म भी बाँस में देते तो मैं भी आठों पहर मोहनीमूर्ति के मुख से लगी रहती और उनके होठों का अमृत पीकर सुख पाती। हे राजन्! नित्य जब तक केशवमूर्ति वन से गौ चराकर नहीं आते थे तब तक यही दशा गोपियों की रहती थी।

दो० जा वन धेनु चरावहीं माखनप्रभु चितचोर। तहाँ आय ठाढ़ी रहैं हरि सम्मुख कर जोर॥
वंशी धुनि सुनिकै सदा सुखपावैं सबलोग। माखनप्रभु मुखसोंलगीक्योंनहिं हो सुखयोग॥

इक्कीसवाँ अध्याय।

गोपियों की प्रीति का वर्णन करना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक दिन फिर ब्रजबालाओं ने जो केशव मूर्ति से सच्ची प्रीति रखती थीं, बाँसुरी सुनकर घर के काम-काज छोड़कर मुरली की ध्वनि पर मोहित हो गईं और आपस में कहने लगीं कि इस वन के जीवों का बड़ा भाग्य है जो प्रतिदिन श्यामसुन्दर की छवि

देखकर प्रसन्न होते हैं। संसार में इन्हीं का जन्म सफल है जो गौ चराते, वंशी बजाते व वनविहार करते हुए केशवमूर्ति का अमृतरूपी स्वरूप आँखों की राह पीकर उस साँवली सूरत का ध्यान अपने हृदय में रखते हैं। जो हरिणियाँ अपने हरिणों समेत मुरली सुनकर मोहनप्यारे की छवि टकटकी लगाकर देखती हैं उनका भाग्य देवकन्याओं से अधिक समझना चाहिए। बड़ा भाग्य उन गाय-बछड़ों का है जिन्हें मुरली-मनोहर प्रेम से चराते हैं। वृन्दावन के पक्षियों का भी बड़ा भाग्य समझना चाहिए जो वृक्षों पर से केशवमूर्ति की छवि देखकर और मुरली सुनकर अपना जन्म सफल करके उनको अपनी सोहावनी बोलियाँ सुनाते हैं। धन्य भाग्य यहाँ की भिल्लियों का समझो जो घास छीलते समय मुरलीमनोहर के अंग का छूटा हुआ केसरि व चन्दन अपने मस्तक पर चढ़ाती हैं। गोवर्धनपर्वत गायें चरती समय वृन्दावनविहारी का दर्शन पाकर कहता है कि मेरे बराबर दूसरे का भाग्य नहीं होगा, क्योंकि वे वैकुण्ठनाथ अपना चरण मेरे ऊपर धरते हैं और मैं कन्दमूलादिक से श्यामसुन्दर व ग्वालबालों का और घास से गौवों का सम्मान करता हूँ। धन्य भाग्य वृन्दावन की नदी व नालों का है, जो बाँसुरी की ध्वनि सुनते ही अपना बहाव भूलकर ठहर जाते हैं। यमुना अपनी लहर से केशवमूर्ति का चरण छूकर कृतार्थ होती है और उसमें मनहरणप्यारे नित्य जलविहार करते हैं। क्या उत्तम भाग्य उन वृक्षों का है जिनकी छाया में नन्दलालजी बैठते हैं। बड़ा भाग्य उस घास व पृथ्वी का समझना चाहिए जिस पर केशवमूर्ति अपना चरण धरकर चलते-फिरते हैं। हम लोगों का भी बड़ा भाग्य समझो जो मोहनीमूर्ति की प्रीति आठों पहर हमारे हृदय में लगी रहती है। हे राजन्! गोपियाँ अपने ज्ञान से केशवमूर्ति को परमेश्वर का अवतार जानती थीं, पर नारा-यण की माया जब उनको व्यापती थी तब उन्हें यशोदा का पुत्र सम-झती थीं। इस तरह वृन्दावनवासी सब स्त्री व पुरुष श्यामसुन्दर से प्रीति रखकर दिनरात उन्हीं का यश गाया करते थे, आठों पहर उनके ध्यान में मग्न रहते थे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! कोई जीव

ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो उनके भेद व महिमा को पहुँच सके। जिस पर वे दया करते हैं वही उनकी महिमा कुछ जान सकता है।

बाईसवाँ अध्याय।

चीरहरण लीला।

इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने कहा—हे शुकदेव स्वामी! श्रीकृष्णजी ने किस तरह उन सब व्रजबालाओं की इच्छा पूर्ण की थी, उसका हाल कहिए। इस लीला के सुनने से मेरा चित्त बहुत प्रसन्न होकर सब सोच छूट जाता है। यह वचन सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब अगहन व पूस का महीना आने से सरदी अधिक पड़ने लगी तब एक गोपी ने सब व्रजबालाओं से कहा कि मैंने बड़े-बूढ़ों के मुख से ऐसा सुना था कि अगहन के महीने में प्रातःसमय यमुनास्नान करने से अनेक जन्म का पाप छूटकर मनोकामना मिलती है, सो हम लोग नियम बाँधकर यमुना स्नान करें तो उसके प्रताप से मोहनप्यारे हमारे पति होंगे। यह बात राधा आदि गोपियों ने निश्चित करके अगहन बदी परिवा से यमुना नहाना आरम्भ किया। नित्य प्रातःसमय राधा आदि सब व्रजबाला उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनकर स्नान करने जातीं और नहाने के उपरान्त सूर्य देवता को अर्घ देकर पार्वतीजी की मूर्ति मट्टी से बनातीं और धूप-दीप, नैवेद्य आदि से विधिपूर्वक पूजन, दण्डवत् व ध्यान करके हाथ जोड़कर यह वरदान माँगती थीं—

स० गोपसुता कहैं गौरि गोसाइन पाँय परों विनती सुनि लीजै।
दीन दयानिधि दासी के ऊपर नेकु सों चित्त दयारस भीजै॥
देइ जो ब्याह उछाह से मोहन मात-पिता कुछहू नहिं कीजै।
सुन्दर साँवरो नन्दकुमार बसै उर जो वर सो वर दीजै॥

इसी तरह नित्य पूजा करने के उपरांत दिन भर व्रत रहकर संध्यासमय दही-चावल भोजन करके पृथ्वी पर सो रहती थीं और मनसा वाचा कर्मणा यह इच्छा उन्हें रहती थी कि जल्दी हमारा मनोरथ मिले। हे राजन्! जब राधाप्यारी ने छोटी अवस्थावाली सोलह हजार व्रजबालाओं के साथ

जिनमें चार तरह की गोपियाँ थीं, एक जनकपुरवाली स्त्रियाँ, दूसरी दण्डकवन की ऋषिपत्नियाँ, जो रामावतार में वैकुण्ठनाथ पर मोहित हुई थीं, तीसरी वेद की ऋचाएँ और चौथी गोलोक की स्त्रियाँ जिन्होंने गोपियों के तन में जन्म लिया था, इसी तरह अगहन भर पूजा व व्रत किया तब केशवमूर्ति अन्तर्यामी उन पर दयालु हुए।

दो० देख नेम यह प्रेम में गोपिन को गोपाल। भये प्रसन्न कृपाल चित जनहित दीनदयाल॥

हे राजन्! एक दिन जिस समय सब व्रजबाला यमुनाजल में स्नान करके केशवमूर्ति की चर्चा आपस में करती थीं उसी समय मनहरण-प्यारे भी अपने सोलह हजार रूप से यमुनाजल में सब गोपियों की पीठ पीछे खड़े होकर मलने लगे। तब सब व्रजबाला उन्हें देखते ही प्रसन्न होकर मन में कहने लगीं कि जिनके मिलने के वास्ते हम लोग ध्यान व पूजा करती थीं उन्होंने दयालु होकर दर्शन दिया। फिर अपना अंग पानी में छिपाकर मोहनप्यारे से कहने लगीं कि तुमको हमें नंगी देखते लज्जा नहीं आती। श्यामसुन्दर की माया से किसी गोपी को दूसरी व्रजबाला का हाल नहीं मालूम होता था कि उसके पीछे भी केशवमूर्ति हैं, इसलिए सब गोपियाँ अपने-अपने मन में प्रसन्न होकर अपना हाल दूसरी सखी से नहीं कहती थीं।

दो० जो माखन प्रभु को भजै प्रेमभक्ति के रंग। दया करें पाछे फिरें छाया सब तेहि संग॥

इसी तरह श्यामसुन्दर जलविहार करके बाहर निकल आये और गोपियों के गहने व कपड़े जो यमुना के किनारे रक्खे थे उसे तोड़-फाड़कर फेंक दिया। जब गोपियों ने जाकर यह हाल यशोदा से कहा तब नन्दरानी बोली—

दो० तुम चाहति हो गगन ते गहन तरैया बाम। सो कैसे वर पाइहो तुम लायक नहिं श्याम॥

सो० मैं बूझी सब बात तुम हमसे कहियो कहा। वृथा फिरत अठिलात मष्ट करो सुनि है जगत॥

तुम्हें ऐसी बात कहते हुए लज्जा नहीं आती और मेरे अज्ञान बालक को पाप की आँख से देखती हो। यह बात सुनकर सब व्रजबाला हर्ष-पूर्वक अपने-अपने घर चली आईं। जब दूसरे दिन फिर सब गोपियाँ यमुना नहाने गईं और—

दो० धरे उतारि उतारि सब तट पर भूषण चीर । नग्न होय स्नान हित पैठीं यमुना नीर॥

तब केशवमूर्ति दीनदयालु ने विचार किया कि मेरे मिलने के वास्ते इन्होंने बड़ा दुःख उठाया है ऐसा विचारकर उस दिन श्यामसुन्दर ने बलरामजी से कहा कि हे भाई! आज तुम गायें वन में चराने ले जाओ, मैं पीछे से कलेवा लेकर आऊँगा। जब बलरामजी सब सखा समेत गौ लेकर चले गये तब वृन्दावनविहारी ने यमुना के किनारे चुपचाप जाकर क्या देखा कि सब व्रजबाला अपना-अपना कपड़ा व गहना किनारे धरकर यमुनाजल में नहातीं और वैकुण्ठनाथ की चर्चा कर रही हैं। केशवमूर्ति उनकी यह प्रीति छिपे-छिपे देखकर बहुत प्रसन्न हुए। हे राजन्! जब सब व्रजबाला सूर्य को अर्घ्य देकर आँख बन्द करके उनका ध्यान करने लगीं तब श्यामसुन्दर ने विचारा कि इन लोगों को यमुना में नंगी नहाने से दोष लगता है, इसलिए आगे के वास्ते इन्हें ज्ञान सिखलाना चाहिए।

दो० प्रेममगन युवती सबै रहीं ध्यान मन लाय। हरि सब भूषण वसन लै चढ़े कदम पर जाय॥

सब कपड़ों की मोटरी बाँधकर अपने सामने धर लिया और उसी जगह खुश होकर बैठ गये। जब गोपियाँ स्नान करके बाहर निकलीं और उन्होंने अपना कपड़ा व गहना यमुना के किनारे नहीं देखा तब चारों ओर ढूँढ़कर आपस में कहने लगीं कि हे सखी, यहाँ तो चिड़िया का पूत भी नहीं आया, न मालूम कौन हमारा भूषण व वस्त्र उठा ले गया। माखन-चोर के सिवा और कौन हमारी वस्तु ले जायगा। ऐसा कहकर दीन वचन से पुकारने लगीं कि कहीं श्यामसुन्दर हों तो अपना दर्शन दें। यह वचन सुनते ही केशवमूर्ति ने एक बेर धीरे से बाँसुरी बजा दी। तब एक सखी ने उस शब्द की ओर आँख उठाकर क्या देखा कि मुरलीमनोहर मुकुट पहिने लकुटिया लिये केशरि का तिलक दिये वनमाला गले में डाले पीताम्बर बाँधे कदम के वृक्ष पर छिपे हुए बैठे हैं। यह हाल देखते ही उस सखी ने सब व्रजबालाओं से पुकारकर कहा—टुक इधर तो देखो, माखनचोर धोतियाँ चुराये हुए मोटरी बाँधकर कदम पर बैठे हैं। यह बात सुनकर जैसे सब व्रजबालाओं ने श्यामसुन्दर को वृक्ष पर बैठे देखा वैसे लज्जित होकर गले

भर पानी में चली गई और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोलीं—हे दीनदयालु, दुःख हरनेवाले ! धोतियाँ हमारी दे डालो।

दो० माखनप्रभुघनश्यामजू तुम्हें उचित यहनाहिं। हमदासी बिनदामकीसमझोतुममनमाहिं॥

यह बात सुनकर मोहनप्यारे बोले कि तुम लोग अपना-अपना गहना व कपड़ा फेंककर स्नान करने लगीं थीं। सो मैंने उसकी रखवारी किया है, बिना चौकीदारी दिये कपड़ा नहीं पावोगी। गोपियों ने कहा कि हम लोगों को जल में जाड़ा मालूम होता है, तुमको दया नहीं आती।

दो० तन मन धन अरप्यो तुम्हैं सो है तुम्हरे पास। अब अम्बर दीजै हमैं जानि आपनी दास॥

सो० तब हँसि कह्यो कन्हाइ जो तनमनमोको दियो। लेहु बसन ह्याँ आइ जो मानो मेरोकह्यो॥

तुम सब एक-एक सुन्दरी जल से निकलकर मेरे पास आवो तब तुम्हारे वस्त्र दूँगा, नहीं तो बाबा नन्द की सौगन्द है जो बिना ऐसा किये धोतियाँ अपनी पावो। यह वचन मनहरणप्यारे का सुनकर राधिका बोली कि हम तरुण स्त्रियाँ तुम्हारे सामने नंगी किस तरह आवें। यह नया ज्ञान तुमको किसने सिखाया जो हमें नंगी देखना चाहते हो।

दो० छाँड़ि देव यह टेक हरि बरु भूषण तुम लेव। शीत मरत हम नीर में चीर हमारो देव॥

सो० दूषण होत अपार जो तिय अँग देखैं पुरुष। ताते नंदकुमार नंगी नारि न देखिये॥

जब इतनी विनय करने पर भी मोहनप्यारे ने उनका वस्त्र नहीं दिया तब सब व्रजबाला रुखाई से बोलीं कि नन्द कहीं के राजा नहीं हैं जो उनकी दोहाई फिर गई हो, तुम हमारी धोतियाँ चुराकर सबको नंगी देखना चाहते हो, यह तुम्हारा चलन हमको अच्छा नहीं लगता। अभी हम लोग अपने-अपने पिता व भाई से जाकर तुम्हारा हाल कहें तो वे लोग आकर तुम्हें चोरी में पकड़ें और नन्द व यशोदा के पास ले जाकर तुमको दण्ड दिलावें। गोपियों का यह कठोर वचन सुनते ही श्यामसुन्दर ने क्रोधित होकर कहा कि अब तुम लोग तभी धोतियाँ पावोगी जब अपने हिमायती को ले आवोगी। उन्हें क्रोध में देखते ही सब व्रजबाला डरती व काँपती हुई बोलीं—हे दीनदयालु ! हमारी पति रखनेवाला तुम्हारे सिवा दूसरा कौन है जिसे हम अपना सहायक बुलावें। तुम्हारे चरण की दासी होने के लिए तो हम लोग यमुनास्नान, व्रत और पूजन

करती हैं, सो तुम निर्दयता छोड़कर अपनी दासियों पर दया करो और हमारे चीर दे डालो। आप त्रिलोकीनाथ हैं, आपके ऊपर हमारा कुछ वश नहीं चलता, न मालूम तुमने कौन-सी मोहनी हम पर डाल दी है जो तुम्हारी साँवली सूरति देखे बिना हम लोगों को अपना घर-दुवार और कुल-परिवार कुछ अच्छा नहीं लगता। हमें अबला अनाथ समझकर दया करो। यह दीन वचन सुनते ही केशवमूर्ति ने क्रोध क्षमा करके कहा कि जो तुम लोग अपने सच्चे मन से मेरे मिलने के लिए व्रत व स्नान करती हो तो लज्जा व कपट को यमुनाजल में डुबाकर वहाँ से नंगी मेरे पास आकर धोतियाँ अपनी ले जाओ। बिना अंग दिखलाये चीर नहीं पावोगी। यह वचन सुनते ही सब गोपियों ने आपस में कहा कि एक मनहरणप्यारे हमें नंगी देखें वह अच्छी बात है या सारा गाँव देखे वह उत्तम होगा। ये तो हमारे अन्तःकरण का सब हाल जानते हैं, इनसे लज्जा करना न चाहिए।

दो०कहत परस्पर मिलि सबै हरि हठछोड़त नाहिं। चीर बिना कैसे बने कौन भाँतिघर जाहिं।।
सो०चलो लीजिये चीर इनहीं को हठ राखिकै। मनमोहन बलवीर जो कछुकहैं सों कीजिए।।

ऐसा कहकर सब गोपियाँ एक हाथ से अपनी भग और दूसरे हाथ से कुचों को छिपाकर यमुनाजल से बाहर निकलीं और केशवमूर्ति के सामने जाकर शिर नीचे करके खड़ी हो गईं। तब मुरलीमनोहर ने कहा कि अभी तक तुम्हें मुझसे कपट बना है, कपटी जीव मेरे पास नहीं पहुँचते, तुम लोग एक-एक करके सामने खड़ी होकर सूर्य देवता को हाथ जोड़ो तब तुम्हारे चीर दूँगा, क्योंकि तुमने व्रत में नंगी स्नान करके सूर्य देवता का अपराध किया है। यह बात सुनकर गोपियों ने कहा कि हे नन्दलालजी! हम लोग सीधी भोली व्रजबालाओं से क्यों कपट करते हो।

दो०माखनप्रभु सों सब कहैं हम आई तुम हेतु। यही तुम्हारो साँच है अबहूँ वस्त्र न देत।।

हम लोग तुम्हारे अधीन हैं जो कहो सो करें। जब ऐसा कहकर सब व्रजबाला छाती पर का हाथ उठाकर एक हाथ से सूर्य को दण्डवत् करने लगीं तब केशवमूर्ति बोले कि एक हाथ से दण्डवत् करना दोष होता है, दोनों हाथों से प्रणाम करो।

दो० जो कहिहौ करिहैं सभी हँसि बोली व्रजवाम। लेहैं पलटो हम कभूँ सुनोश्याम अभिराम।।

जब ऐसा कहकर सब गोपियाँ मोहनप्यारे के प्रेम में मग्न हो गई और लज्जा छोड़कर दोनों हाथों से सूर्य देवता को दण्डवत् किया तब श्यामसुन्दर उनकी निष्कपट भक्ति व प्रीति देखकर बहुत प्रसन्न हुए और वृक्ष पर से उतरकर सब धोतियाँ अपने काँधे पर धर गोपियों से कहा कि अब तुम्हारा बोझा मैंने अपने ऊपर उठा लिया, मनुष्य के तन में जन्म लेने का यही फल है, जो दूसरे का उपकार करे।

दो०सुभग शरीर निहारिकै माखन प्रभु बलबीर। प्रेम प्रीति रस वश भये दिये सबन के चीर॥

हे राजन्! सब व्रजबाला अपना-अपना भूषण व वस्त्र पहिनकर केशवमूर्ति के प्रेम में ऐसी मग्न हो गई कि उनका मन घर जाने को नहीं चाहता था। तब मोहनीमूर्ति ने कहा कि तुम लोग इस बात में खेद मत मानना, तुम्हें आगे के वास्ते मैंने ज्ञान सिखला दिया। जल में वरुण देवता का वास होता है इसलिए नंगी होकर जल में स्नान करने से सब धर्म व पुण्य बहि जाते हैं। अब तुम्हें यमुनास्नान व व्रत करने का फल प्राप्त हुआ। तुम लोग मुझे बहुत प्यारी मालूम होती हो। कुआर सुदी पूर्णमासी को मैं तुम्हारे साथ रासलीला करके तुम लोगों का मनोरथ पूर्ण करूँगा। अब अपने-अपने घर जाकर व्रत रखना छोड़ दो। यह वचन सुनते ही सब व्रजबाला प्रसन्न होकर अपने-अपने घर चली गई और आठों पहर श्यामसुन्दर के ध्यान में लीन रहकर कुआर सुदी पूर्णमासी का दिन गिनने लगीं।

दो०देखिचरितनँदनन्दकेसबीबालमतिभोर। सुधिबुधि मन कछुथिरनहींकहतऔरकीऔर॥

केशवमूर्ति वहाँ से वंशीवट में जाकर ग्वालबालों के साथ गौ चराने लगे। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे स्वामी! श्रीकृष्णजी परब्रह्म का अवतार होकर जिन्हें सब जगत् का परदा ढाँपना चाहिए उन्होंने शास्त्र के विपरीत परस्त्री को क्यों नंगी देखा, यह मेरा संदेह छुड़ा दीजिए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! स्त्री को नंगी होकर नहाने से बड़ा पाप होता है, जब तक उसी तरह जल में से नंगी होकर दूसरे पुरुष के सामने न जावे तब तक उसका वह दोष नहीं छूटता, इसलिए मुरलीमनोहर ने शास्त्रानुसार ऐसा करके उनका पाप छुड़ा दिया।

दो० प्रकटशीतदुखपायकै सब मिलरहीं लजाय। अन्तर्गत अतिसुख भयो आनँद उरनसमाय॥

हे राजन्! जब श्यामसुन्दर वन में पहुँचे तब वृक्षों की ठंढी छाया देखकर श्रीदामा आदि ग्वालों से कहा कि देखो, ये सब वृक्ष सर्दी व गर्मी व बरसात का दुःख अपने ऊपर उठाकर एक पाँव से खड़े रहते हैं और अपनी छाया व फल-फूल से सब जीवों को सुख देते हैं। कोई मनुष्य उनसे विमुख नहीं जाता। मनुष्य इनसे सुख पाने पर भी इनकी डाली व पत्ता तोड़ लेते हैं तब भी यह बुरा नहीं मानते। फल व फूल लगे रहने के समय बटोहियों का सम्मान करते हैं। जब इनमें फल व फूल नहीं रहते तब लज्जा से शिर झुकाकर कहते हैं कि हमसे कुछ सेवा तुम्हारी नहीं बन पड़ती, इसलिए हम लज्जित हैं। धनपात्र व कंगाल दोनों से बराबर प्रीति रखकर योगीश्वरों के समान तप करते हैं। संसार में उसी का जन्म सुफल है जो अपने ऊपर दुःख उठाकर दूसरों का उपकार करे।

दो० महिमा ऐसे द्रुमन की कापै बरणी जाय। प्राण बड़े दातान के इनमें बैठे आय॥

इस तरह वृक्षों की बड़ाई करते हुए मनहरणप्यारे ग्वालों समेत अपने घर आये।

तेईसवाँ अध्याय।

ग्वालों का मथुरा के चौबों से भोजन माँगना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! श्याम व बलराम एक दिन गौ चराने के लिए वन में जाकर ग्वालों के साथ आनन्दपूर्वक खेलते थे। उस समय ग्वालों ने व्रजनाथजी से कहा कि महाराज! जो कलेवा हम लोग अपने घर से लाये थे सो खा गये, पर हमारी भूख नहीं गई, इसलिए कुछ खिलाइए। यह बात सुनकर श्यामसुन्दर अंतर्यामी ने विचारा कि मथुरावासी ब्राह्मणों की स्त्रियाँ मेरे दर्शन की इच्छा रखती हैं, सो आज उनका मनोरथ पूर्ण करना चाहिए। ऐसा विचारकर नन्दलालजी ने ग्वालबालों से कहा कि देखो, वन में जहाँ धुआँ उठता है वहाँ पर मथुरिया ब्राह्मण राजा कंस के डर से छिपकर यज्ञ व होम करते हैं। तुम

लोगों में से पाँच-चार बालक वहाँ जावो और दण्डवत् करके मेरा नाम लेकर उनसे भोजन माँग लावो। यह बात सुनते ही कई ग्वालों ने वहाँ जाकर विनयपूर्वक उनसे कहा–

दो०हाथ जोरि ठाढ़े भये ग्वालबाल यक साथ। भोजन माँगत हैं कह्यो माखनप्रभु व्रजनाथ॥

हे राजन् उन ब्राह्मणों ने जो अपने अज्ञान व कर्म के अभिमान से श्याम व बलराम की महिमा नहीं जानते थे, यह वचन सुनकर ग्वालबालों से कहा कि तुम मूर्ख लोग नहीं जानते कि यह सब भोजन हमने देवतों के नाम पर यज्ञ करने के लिए तैयार किया है, जब तक परमेश्वर का यज्ञ सम्पूर्ण नहीं होगा तब तक भोजन नहीं पावोगे। यज्ञ होने के उपरांत तुमको भी प्रसाद मिलेगा। श्याम व बलराम अहीरों के घर में पले उनसे हम ब्राह्मण लोग उत्तम कुल हैं। ब्राह्मणों का यह कठोर वचन सुनते ही सब ग्वालबाल निराश होकर पछताते हुए केशवमूर्ति के पास जाकर बोले–हे व्रजनाथ! हम लोग अपना मान छोड़कर तुम्हारे कहने से भीख माँगने गये, तिस पर भी भोजन नहीं मिला, अब क्या करें भूख बहुत सताती है। यह बात सुनते ही केशवमूर्ति ने हँसकर बलरामजी से कहा कि वह ब्राह्मण लोग भक्ति के बिना हमारे भेद को नहीं जानते कि यज्ञ व होम का स्वामी कौन है, अपने कर्म के अभिमान में अन्धे हो रहे हैं, बहुत उत्तम है जो वे लोग इसी तरह अज्ञान में पड़े रहें। फिर श्यामसुन्दर ने ग्वालबालों से कहा कि अब तुम लोग उनकी स्त्रियों के पास, जो बड़ी धर्मात्मा व हरिभक्त हैं, जाकर कहो कि श्याम व बलराम ने, जो वन में गौ चराने आये हैं, भूखे होकर तुमसे भोजन माँगा है। वे स्त्रियाँ तुमको बड़े आदर भाव से भोजन देंगी। यह सुनकर ग्वालबालों ने चौबाइनों से जाकर कहा कि हे माता! श्रीकृष्ण व बलरामजी ने तुमसे भोजन माँगा है, सो तुम क्या कहती हो।

दो०ग्वालन के सुनिवचनसब हर्षि उठीं व्रजवाम। कहतहमारो भाग्यधनिभोजनमाँग्योश्याम॥
सो०करतरहींनितध्यान सुनि२जिनकेगुणश्रवण। सुफलजन्मनिजजानतिनकोभोजनलेचलीं॥
दो०अति बड़भागी जीव हैं जिनको व्रज में वास। माखन प्रभु के दरशते पावत परम हुलास॥

उन स्त्रियों के सदा मनसा वाचा यह इच्छा रहती थी कि कोई ऐसा

दिन भी होगा जो हमें केशवमूर्ति के दर्शन मिलेंगे, इसलिए उन्होंने बड़े प्रेम से मेवा, मिठाई, पकवान, पूरी, कचौरी, दूध, दही, माखन आदि सोने व चाँदी की थालियों में रखकर ग्वालों को दिया और कुछ अपने हाथ में लेकर जिस स्थान पर मुरलीमनोहर थे ग्वालबालों के साथ वहाँ को चलीं। उस समय उनके पति आदिकों ने बहुत मना किया कि तुम लोग ग्वालों के साथ मत जाओ, पर उन्होंने किसी का कहना नहीं माना।

सो०जिनके उर नँदलालबसैं लकुट मुरली लिये। तिन्हैं न भययमकालकौन भाँति रोकी रुकैं॥

चौ० तब ग्वालन से पूछत बाला। केतिक दूर अहैं नँदलाला॥
चलो आज हम नयनन देखें। जीवन जन्म सुफल करि लेखें॥

यह वचन सुनकर ग्वाल बोले कि हे माता! थोड़ी दूर हैं। जिस समय वह लोग मोहनीमूर्ति के दर्शन के प्रेम में आनन्द से चली जाती थीं उसी समय एक मथुरिया ब्राह्मण बरजोरी अपनी स्त्री को राह में से पकड़ लाया, तब उसने कहा कि हमको श्यामसुन्दर का दर्शन करने जाने दो, अपने ऊपर अपयश मत लो, मुझे उनके दर्शन की बड़ी लालसा है। वह परब्रह्म परमेश्वर पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लेकर संसारी मनुष्य की तरह लीला करते हैं, तुम लोग वेद पढ़कर यज्ञ व होम करते हो, पर उनको अपने अज्ञान से नहीं पहचानते।

दो०को जन जाने भेव यह यज्ञ करत केहि काज। भोजन माँगत हैं वही माखन प्रभु व्रजराज॥

हे स्वामी! मेरा प्राण तो नन्दलालजी से जा मिला, इस झूठे शरीर को रोककर क्या करोगे। मेरे मरने के उपरान्त पछताने के सिवा तुमको और कुछ हाथ नहीं लगेगा। जिस मनुष्य को परमेश्वर से प्रीति न हो वह किसी काम का नहीं होता। यह सब ज्ञान कहने पर भी उस मथुरिया ने अपनी स्त्री को कोठरी में बन्द करके ताला लगा दिया, उसी समय उसके प्राण केशवमूर्ति के ध्यान में निकल गये और वह इस तरह सब स्त्रियों से पहले वहाँ जा पहुँची जिस तरह पानी तुरन्त बहकर नदी व समुद्र में मिल जाता है।

सो०कठिन प्रेम का पंथ जहाँ नेम की गति नहीं। कहत सकल यह ग्रंथ प्रेम भाव के वश हरी॥

हे राजन्! जब पीछे से वे सब स्त्रियाँ बड़े प्रेम से भोजन लिये हुए

जहाँ केशवमूर्ति वृक्ष की छाया में एक सखा के काँधे पर हाथ दिये, बाँकी सूरत बनाये कमल का फूल हाथ में लिये खड़े थे, जा पहुँचीं और उनका चरण चूमकर भोजन की थालियाँ सामने धर दीं। उस मोहनी-मूर्ति को देखते ही प्रसन्न होकर आपस में कहने लगीं कि हे सखी, यही नन्दलालजी हैं जिनकी बड़ाई हम लोग सदा सुनकर ध्यान किया करती थीं। आज हमारे भाग्य उदय हुए जो इनका दर्शन पाया। अब इस चन्द्रमुख की शीतलता से अपनी-अपनी आँखें ठंढी करो और संसार में जन्म लेने का फल उठाओ। हे राजन्! मुरलीमनोहर की कृपा से उस समय उन स्त्रियों की दिव्यदृष्टि हो गई, उन्होंने मोहनप्यारे को पूर्णब्रह्म जानकर हाथ जोड़कर विनय किया कि हे दीनानाथ! तुम्हारी कृपा के विना इस साँवलीसूरति का दर्शन किसी को नहीं मिलता, न मालूम किस जन्म के हमारे पुण्य उदय हुए जो तुम्हारा दर्शन पाया। अनेक जन्म के हमारे पाप छूट गये। हम लोगों के पति आदि अपने अज्ञान व अभिमान से संसारी माया-मोह में डूबकर ऐसे अन्धे हो गये कि परमेश्वर वैकुण्ठनाथ को, जिनके नाम पर यज्ञ करते हैं, मनुष्य समझकर माँगने पर भी भोजन नहीं दिया। तन व धन वही उत्तम समझना चाहिए जो तुम्हारे काम आवे। जो लोग मनुष्य का तन पाकर तुम्हारी भक्ति व सेवा करते हैं उन्हीं का जन्म सफल है। यज्ञ, तप, ध्यान, ज्ञान वही उत्तम होता है जिसमें तुम्हारा नाम आवे।

दो०जो जन मन वच से करैं माखन प्रभु से हेत। चारि पदारथ देत हैं पाप दुःख हरि लेत॥

यह वचन प्रीति व भक्ति से भरा हुआ सुनते ही केशवमूर्ति उनका कुशल पूछकर बोले—मैं नन्दमहर का बेटा हूँ, तुम लोग ब्राह्मणी होकर मुझे दण्डवत् मत करो, इसमें मुझको दोष लगेगा। जो लोग ब्राह्मणों या उनकी स्त्रियों से अपना काम व टहल लेते हैं वे संसार में कुछ बड़ाई न पाकर पाप के भागी होते हैं। तुमने हमें भूखा जानकर दया करके वन में आकर भोजन दिया, सो मैं इसके बदले तुम्हारा क्या सम्मान करूँ। वृन्दावन मेरा घर यहाँ से दूर है। कदाचित् अपने घर पर होते तो यथाशक्ति तुम्हारा आदर भाव करते। यहाँ मुझसे तुम्हारा कुछ शिष्टा-

चार नहीं बन पड़ा, इस बात का पछताव मेरे मन में रह गया। तुम लोगों को यहाँ आये बहुत विलम्ब हुआ, अब अपने-अपने स्थान को जाओ। ब्राह्मण लोग तुम्हें जोहते होंगे, क्योंकि स्त्री अर्धांगी होती है, तुम्हारे विना ब्राह्मणों का यज्ञ व होम देवता अंगीकार नहीं करेंगे।

सो०सुना वचन निर्बान कर्म धर्म वाणी सुखद। द्विजत्रियपरमसुजान बोलीं सब कर जोरिकै॥

हे वैकुण्ठनाथ! आपका दर्शन करने और आपके चरणकमल की भक्ति व प्रीति रखने से संसारी माया छूट गई। अब हमें घर-दुवार व कुल-परिवार का कुछ मोह नहीं रहा। इसके सिवा हम लोग अपने पति की आज्ञा के विना तुम्हारा दर्शन करने आई हैं। कदाचित् वे लोग हमको अपने घर में न रक्खें तो हम कहाँ जायँगी, इससे यह बात उत्तम है कि हम सब आपके चरणों के पास बनी रहें। तुम्हारी सेवा व टहल करके अपना परलोक बनावें। हे महाप्रभु! एक स्त्री तुम्हारे दर्शनों की इच्छा से हमारे साथ आती थी, सो उसका पति बरजोरी उसे पकड़कर राह में से फेर ले गया, न मालूम उसकी क्या गति हुई। यह बात सुनकर मोहनीमूर्ति ने हँस दिया और उस स्त्री का स्वरूप सबको दिखलाकर कहा कि देखो, यह स्त्री तुम लोगों से पहिले मेरे यहाँ आ पहुँची। जो कोई परमेश्वर में प्रीति रखता है उसका नाश कभी नहीं होता। हे राजन्! उस स्त्री को केशवमूर्ति की सेवा में देखकर पहिले सबको आश्चर्य मालूम हुआ, फिर सब स्त्रियों ने मुरलीमनोहर से विनय किया कि हे व्रजनाथ! आप अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थों के देनेवाले हैं, हमको अपने चरणों से अलग न कीजिए। तुम्हारे चरण छोड़कर अब हम जा नहीं सकतीं। यह सुनकर केशवमूर्ति बोले—सुनो, तुम लोग परमेश्वर के प्रेम में लीन हो, पर गृहस्थ को वेद के अनुसार सब काम करना चाहिए। शास्त्र में लिखा है कि स्त्री अपने पति को परमेश्वर के तुल्य जानकर उसकी आज्ञा का पालन करे, दूसरे पुरुष को पाप की आँख से न देखे। उस पतिव्रता को योगी व ज्ञानी से उत्तम समझना चाहिए। वह स्त्री जो कुछ शुभ या अशुभ अपने मुख से किसी को कहे वह बात सच हो जाती है, और उसको चारों पदार्थ अपने स्वामी से मिल सकते हैं।

दो० यहि विधि ते निश्चय करैं जो नारी मन माहिं । चारि पदारथ सो लहै यामें संशय नाहिं॥

इसलिए तुम लोग अपने पति के पास जाओ, वह तुमसे क्रोध न करके प्रसन्न होंगे। यह वचन सुनते ही सब चौबाइनों ने केशवमूर्ति को अपने हृदय में रखकर उनसे भक्ति का वरदान लेकर दण्डवत् करके अपने स्थान को चलीं। जिस ब्राह्मण ने अपनी स्त्री को कोठरी में बन्द कर दिया था, उसने ताला खोलकर देखा तो उसको मरी हुई पाकर रोने-पीटने लगा। जिस समय उसकी लोथ जलाने का उपाय कर रहा था उसी समय सब स्त्रियाँ अपने स्थान पर पहुँचीं।

दो० माखनप्रभु को दरश ले आईं सुघर सुजान । तिनके दरश प्रताप ते विप्रन पायो ज्ञान ॥

हे राजन्! जाते समय ब्राह्मण लोग अपनी-अपनी स्त्रियों पर क्रोधित हुए थे। जब वे केशवमूर्ति का दर्शन करके फिर आईं तब उनका माथा चमकता हुआ देखकर ब्राह्मण लोग कहने लगे कि देखो, जिनका दर्शन ब्रह्मादिक देवताओं और ऋषीश्वरों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता उन परब्रह्म परमेश्वर का दर्शन इन स्त्रियों ने करके अपना जन्म सफल किया और हम लोगों ने अपने अज्ञान से नहीं पहिचाना कि यज्ञ व होम का स्वामी कौन है। हमने वेद व पुराण में ऐसा सुना था कि परब्रह्म परमेश्वर यदुकुल में अवतार लेकर नन्द व यशोदा को बाललीला का सुख दिखावेंगे, सो यही वैकुण्ठनाथ बाललीला करते हैं। उन्होंने ग्वालबालों को भोजन माँगने के लिए हमारे पास भेजा था, सो हमसे बड़ी चूक हुई जो सच्चिदानंद को भोजन न दिया। जिनको प्रसन्न करने के लिए हम लोग यज्ञ व होम करते हैं, उन्हें मनुष्य समझकर उनके सम्मुख नहीं गये और अपने अज्ञान व अभिमान से हमारे मन में दया भी नहीं आई, सो हमारे यज्ञ व तप करने पर धिक्कार है। हमने परमेश्वर को नहीं पहिचाना। हम लोगों से तो इन स्त्रियों को अच्छा समझना चाहिए, जिन्होंने जप-तप किये बिना और कथा-पुराण सुने बिना अपने ज्ञान से परमेश्वर को पहिचानकर भोग लगाया और उनका दर्शन करके नेत्रों का सुख पाया। इसी तरह ब्राह्मणों ने बहुत पछताकर अपनी-अपनी स्त्रियों से विनयपूर्वक कहा कि तुम्हारी बराबर दूसरों का भाग्य न होगा जो परब्रह्म परमेश्वर के

दर्शन तुमको मिले। फिर ब्राह्मणों ने ध्यान में श्यामसुन्दर को हाथ जोड़-कर विनय किया कि हे दीनानाथ! हम लोगों का अपराध क्षमा कीजिए और हमारे हृदय में जो अज्ञानता की काटि जमी है उसको ज्ञानरूपी अग्नि से जला दीजिए। जब इसी तरह बहुत स्तुति व विनती ब्राह्मणों ने की तब केशवमूर्ति ने उनका अपराध क्षमा कर दिया। सब स्त्रियों ने उस चौबाइन की लोथ देखकर उसके पति से कहा कि हमने तेरी स्त्री को नन्दलालजी की सेवा में देखा था। यह वचन सुनते ही वह मथु-रिया रोकर बोला कि मैं भी अपनी स्त्री को तुम्हारे साथ जाने देता तो क्यों वह मरती। ऐसा कहकर वह मथुरिया रोता हुआ केशवमूर्ति के पास दौड़ा गया और अपनी स्त्री को वहाँ चतुर्भुजी रूप देखकर जब श्याम-सुन्दर के सामने अति विलाप करके रोने लगा तब व्रजनाथजी ने कहा कि अपनी स्त्री की भक्ति के प्रभाव से तू भी चतुर्भुजी स्वरूप हो जा। सो नन्दलालजी ने स्त्री-पुरुष दोनों को विमान पर बैठाकर वैकुण्ठ में भेज दिया। जो कुछ पदार्थ ब्राह्मणों की स्त्रियाँ दे गई थीं उसको बाँटकर ग्वालों समेत आनन्दपूर्वक भोजन किया। उस समय श्रीदामा ने कहा कि हे नन्दलालजी! गायें चरती हुई दूर चली गईं, उनको बहोरना चाहिए। यह बात सुनते ही केशवमूर्ति ने ऐसी मुरली बजाई कि सब गायें आप दौड़कर वहाँ चली आईं।

दो०या विधि मुरली टेर के घेर लई सब गाय। साँझ समय घर को चले हलधर जू के भाय॥

जब केशवमूर्ति वंशी बजाते हुए वृन्दावन के निकट पहुँचे तब सब व्रजबाला उनकी छवि देखकर प्रसन्न होकर बोलीं—

दो०प्रेममगनआनन्द अतिकहतसकलव्रजवाम। देखो सखियशुमतिसुवनशोभितअतिबलराम॥
कहतमुदितमन युवतिजनधनि२सखिवह मोर। जिनके पंखनको मुकुट दीन्होनन्दकिशोर॥

हे राजन्! जिस समय वैकुण्ठनाथजी गायों की पीठ पर हाथ फेर-कर अपने पीताम्बर से उनका शरीर पोंछते थे उस समय स्वर्ग में काम-धेनु गौ पछताकर कहती थी कि परमेश्वर हमारा भी जन्म वृन्दावन में देते तो केशवमूर्ति हमारे ऊपर भी हाथ फेरकर मेरा दूध दुहते।

दो०धनि२व्रजकी धेनुयहचारत त्रिभुवननाथ। झारतपोंछत दुहतनित हितकर अपने हाथ॥

—:○:—

चौबीसवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का गोवर्द्धन पहाड़ की पूजा कराना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जिस तरह श्यामसुन्दर ने गोवर्धन पहाड़ को अपनी कानी अँगुली पर उठाया था वह कथा कहते हैं, सुनो। गोकुल व वृन्दावन में वर्षवें दिन व्रजवासी लोग कार्तिक वदी चतुर्दशी को छत्तीस व्यंजन बनाकर राजा इन्द्र की विधिपूर्वक पूजन किया करते थे। जब वह दिन आया तब वृन्दावनवासियों ने अनेक तरह के पकवान् व मिठाई आदि इन्द्र की पूजा के लिए अपने-अपने घर बनवाया। यशोदा भी बड़ी पवित्रता से सब पदार्थ बनाकर रखती थीं जिसमें कोई जूठा न कर दे।

दो० सैंत २ अति नेम सों धरति अछूते जाति। श्याम कहूँ परसें नहीं यह मन माहिं डराति॥
सो०शंककरतमनमाहिंसुरपति पूजा जानिजिय। यशुमति जानतिनाहिं सब देवनके देवहरि॥

हे राजन्! केशवमूर्ति ने घर-घर यह तैयारी देखकर मन में यह विचारा कि इन्द्र की पूजा छुड़ाकर गोवर्धन पहाड़ को पुजवाना चाहिए। ऐसा विचारकर यशोदा से पूछा कि हे मैया! आज सब व्रजवासियों के घर पकवान व मिठाई तैयार होने का क्या कारण है। यशोदा बोली—हे बेटा! इस समय मुझे बात करने की छुट्टी नहीं है, तू अपने पिता से जाकर पूछ ले। यह बात सुनकर मोहनप्यारे बलरामजी समेत नन्दराय के पास गये।

दो०तब हरि बोले नंदसों मधुर मन्द मुसुकाय। करत पुजाई कौन की बाबा मोहिं बताय॥

हे बाबा! वह कौन देवता हैं जिनकी पूजा करने से भक्ति व मुक्ति मिलती है। उनका नाम व गुण मुझसे वर्णन कीजिए। बड़ों को उचित है कि अपने कुल की रीति छोटों को बतला दें। लड़कपन की सीखी हुई बात बहुत याद रहती है, कभी नहीं भूलती। यह सुनकर नन्दजी बोले—हे बेटा! अब तक तुमने इस पूजा का हाल नहीं सुना। यह सब सामग्री मेघों के राजा इन्द्र की पूजा के लिए बनती है। उनके पूजने से वर्षा अच्छी होती है, घास व अन्न उपजता है, जिससे सब जीव सुख पाते हैं। यह पूजा हमारे कुल में बहुत दिनों से होती है।

दो० माखनप्रभु बोले तभी तात बात सुनि लेहु। जहँ पूजन नहिं होत है तहँ बरसत नहिं मेहु॥

हे बाबा! आज तक जो कुछ हमारे बड़ों ने जान या अजान मेंइन्द्र की पूजा किया सो अच्छा हुआ, पर तुम लोग जान-बूझकर धर्म की राह छोड़कर कुराह पर क्यों चलते हो। संसार में तीन तरह के धर्म और कर्म होते हैं, एक वेद व शास्त्र के अनुसार, दूसरा लोकव्यवहार, तीसरा अपने मन से। सो वेद के प्रमाण करने से उसका फल मिलता है। भला तुम्हीं बताओ, इन्द्र की पूजा करने से क्या मिलेगा। वह किसी को भक्ति, मुक्ति, ऋद्धि, सिद्धि व वरदान नहीं दे सकता। इन्द्र आप सौ यज्ञ करके इन्द्रासन पाता है तब देवता उसे अपना राजा करके मानते हैं। इससे वह परमेश्वर नहीं हो सकता। जब वह दैत्यों से लड़ाई में भागकर कहीं जा छिपता है तब नारायणजी सहायता करके फिर उसे इन्द्रासन पर बैठा देते हैं। ऐसे निर्बल की तुम लोग पूजन क्यों करते हो। अपना धर्म पहिचानकर परमेश्वर की पूजा क्यों नहीं करते। इन्द्र का किया कुछ नहीं हो सकता। जो लोग अपने अज्ञान से नारायणजी को, जो इन्द्रादिक सब देवतों के मालिक हैं, छोड़कर दूसरे देवतों की पूजा करते हैं, उन्हें मूर्ख समझना चाहिए। दुःख और सुख परमेश्वर की इच्छा से होता है, नारायणजी की इच्छा के बिना वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। इन्द्र भी उन्हीं की कृपा से इस पदवी को पहुँचा है। जो बात विधाता ने सबके कर्म में लिख दिया वही होती है, उसमें तिल भर घट-बढ़ नहीं सकता। सुख-सम्पत्ति व परिवार आदि सब अच्छी वस्तुएँ अपने धर्म व कर्म से मिलती हैं। वर्षा का हाल इस तरह समझो कि आठ महीने तक सूर्य देवता पृथ्वी का जो जल सोखते हैं वही जल चार महीने बरसात में बरसता है, उसी से अन्न व घास आदि सब उत्पन्न होती है। ब्रह्मा ने जो चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र संसार में बनाये हैं, उनके लिए एक-एक कर्म इस तरह लगा दिया है कि ब्राह्मण वेद व विद्या पढ़ें, क्षत्रिय सबकी रक्षा करें, वैश्य खेती और व्यापार करें तथा शूद्र इन तीनों वर्णों की सेवा करें। सो हे पिता! हमारा वर्ण वैश्य का है, हमारे यहाँ बहुत सी गौवें इकट्ठी हैं, व्रजगोकुल हमारी

जन्मभूमि है, इसलिए गोप और ग्वाल हम लोगों का नाम पड़ा। हमारा यह कर्म है कि खेती व व्यापार करके गौ-ब्राह्मण की सेवा करें। वेद व शास्त्र की भी ऐसी आज्ञा है कि अपने वर्ण का धर्म न छोड़ें। जो लोग अपना धर्म छोड़कर दूसरे वर्ण का धर्म करते हैं उनको ऐसा समझना चाहिए जिस तरह कुलवन्ती स्त्री अपने पति को छोड़कर दूसरे पुरुष के पास रहे। हे नन्दबाबा! मुझ बालक का कहना सच मानो तो आप लोग इन्द्र का पूजन छोड़कर गोवर्धन पहाड़, गौ-ब्राह्मण और वन की पूजा करो। गोवर्धन पहाड़ यहाँ का राजा है, इस पहाड़ व वन में चरकर सब गौ और हमारे बछवे पलते हैं। उन्हीं का दूध व घी आदि बेचने से हम लोगों की जीविका होती है। जो अपना पालन करे उसे अपना राजा समझकर पूजना चाहिए। इस वास्ते यह सब पकवान व मिठाई आदि जो बना है सो गोवर्धन पहाड़ पर ले चलकर उनका पूजन करो। सब पदार्थ उन्हें भोग लगाकर गौ-ब्राह्मण व कंगालों को खिला दो। और साल से इस संवत् में अधिक वर्षा होगी। यह वचन केशव मूर्ति का सुनकर नन्द, उपनन्द और वृषभानु आदि परमेश्वर की इच्छा से प्रसन्न होकर बोले—

दो० ताते सोई कीजिए कृष्ण कही जो बात । सब व्रजवासी पूजिए गोवर्धन उठि प्रात ॥

जब यह सम्मत आपस में ठीक हो गया तब नन्दराय ने गाँव में ढिंढ़ोरा पिटवा दिया कि कार्तिक सुदी परेवा को हम चलकर गोवर्धन पहाड़ की पूजा करेंगे, सो सब कोई पकवान, मिठाई व सामग्री लेकर गौवों समेत चलना। हे राजन्! यह आज्ञा नन्द व उपनन्द की सुनकर सब लोग प्रसन्न हो गये। ग्वालों ने अपनी-अपनी गायों और बछवों की पूँछ व सींग रँगकर गले में घंटा बाँध दिया और कार्तिक सुदी परेवा को प्रातःसमय व्रजवासियों ने स्नान करके सब सामग्री गाड़ी व बैलों पर लदवा लिया। सब स्त्री व बालक उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनकर नन्द व वृषभानु के साथ बाजे बजाते हुए गोवर्धन पर्वत को पूजने चले।

दो० माखनप्रभु अति चाव सों भूषण वस्त्र मँगाय। गिरि गोवर्धन ले चले गोधन सबै बनाय॥
नन्दमहरउपनन्दसबश्यामरामदोउभाय । पहुँचेगोवर्धननिकटनिरखिशिखरसुखपाय ॥

सो० उतरेसहितसमाजचहुँ ओर ब्रजलोगसब। मधिशोभित गिरिराज कोटिकाम शोभासरस॥

जब श्रीकृष्णजी की आज्ञानुसार सब लोगों ने गोवर्धन पहाड़ का धूप व दीप आदि से विधिपूर्वक पूजन किया और इतना पकवान व मिठाई वहाँ इकट्ठा हुआ कि जिसका ढेर दूसरा पहाड़ मालूम होता था। अनेक रंग के माला, फूल और कपड़े चढ़ाने से गोवर्धन पहाड़ की शोभा ऐसी दिखाई देती थी जिसका वर्णन नहीं हो सकता। उस समय मोहनप्यारे ने व्रजवासियों से कहा कि तुम लोग आँखें बन्द करके गोवर्धनजी का ध्यान करो तो वह प्रत्यक्ष दर्शन देकर भोजन करेंगे। मुरलीमनोहर के कहने से नन्दजी आदि सब व्रजवासी हाथ जोड़कर खड़े हो गये और आँखें बन्द करके गोवर्धन पहाड़ का ध्यान किया। श्यामसुन्दर अपने चतुर्भजी अति सुन्दर तेजवान् विशालरूप से उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिने गोवर्धन पहाड़ पर प्रकट हुए। उस समय अपने श्रीकृष्णरूप से नन्दादिक व्रजवासियों से कहा कि तुम्हारी भक्ति व प्रीति सच्ची देखकर गोवर्धनजी तुम लोगों को दर्शन देने के लिए प्रकट हुए हैं, सो अच्छी तरह दर्शन करो। यह वचन सुनते ही व्रजवासियों ने आँख खोल कर देखा तो उस स्वरूप के दर्शन पाकर बहुत प्रसन्न हुए और उनको दण्डवत् करके आपस में कहने लगे कि जिस तरह आज गोवर्धनजी ने दर्शन दिया इस तरह इन्द्र का दर्शन कभी नहीं हुआ था, न मालूम हमारे पुरखे ऐसे प्रत्यक्ष देवता की पूजन छोड़कर इन्द्र को क्यों पूजते थे।

दो० कहेउ कृष्णतबनन्दसों भोजन लेव मँगाय। गिरिआगे सब राखिकै अर्पौं विनय सुनाय॥

यह वचन सुनते ही गोप व ग्वाल जल्दी से परात व थाली भोग की उठाकर उनके निकट ले गये। तब गोवर्धननाथजी हाथ फैला-फैला कर भोजन करने लगे।

दो० देखन को धाये सभी व्रज के नर अरु वाम। भयो देवता गिरि बड़ो ताहि पुजावत श्याम॥

सो० बड़े महर उपनन्द नन्द आदि ठाढ़े सबै। कहत जो कछु नँदनन्द करत सकल सोई तहाँ॥

दो० इतहि नन्दको करगहेगोपिनसों बतलात। उत अपनो धरि चारभुजरुचिसों भोजनखात॥

सो० श्रीराधासुखपायमुदितविलोकतिश्यामछवि। भक्तनकेसुखदायनितनवकरतविनोदव्रज॥

दो० प्रीतिरीतिके भावसों भोजन सबको खाय। होइप्रसन्न अतिनन्दसों तब बोल्यों गिरिराय॥

सो०लेवनन्दवरदान अब जो तुम हमसों चहौ। मैं लीन्होंसुखमानबहुतकरीतुमभक्तिमम ॥
दो०नन्दगोपअरु नन्दसुत श्रीवृषभानु समेत। बार-बार गिरिराजके चरणपरतअतिहेत ॥
सो०करिसबकोसम्मान दे प्रसाद निजहाथसों। सबनकही घरजानहोइप्रसन्नगिरिराजतब ॥
दो०प्रकट देत हैं दरशगिरिसबकेआगे खात। परम हर्ष नरनारि सब सबके मुखयह बात ॥
सो०महिमाअमितअपारश्रीगोवर्धनअचलकी। जेहिपूजतकरतारशारदविधिनहिंकहि सकें ॥

उस समय ललिता सखी ने राधा से कहा कि यह सब लीला मनहरण-प्यारे की है जो अपना दूसरा स्वरूप पहाड़ में प्रकट करके पकवान व मिठाई चखते हैं। हे राजन्! जब गोवर्धननाथजी भोजन करके अन्तर्धान हो गये तब नन्दजी ने वहाँ होम करने के उपरान्त परिक्रमा कर ब्राह्मणों को बहुत-सा सोना व गौ आदि दान दिया। पहिले ब्राह्मणों, गायों और कंगालों को खिलाकर पीछे से आप सब व्रजवासियों समेत भोजन किया। श्रीकृष्णजी ने एक ग्रास अपने हाथ से उठाकर खाया, सो ब्रह्मा, महादेव और विष्णु आदि सब देवताओं और तीनों लोकों के जीवों का पेट भर गया।

दो० माखन प्रभु हरि देव हैं सब देवनको मूल। मूलहि सींचे होत हैं हरे पात फल फूल ॥

हे राजन्! उस दिन व्रजवासी रात को उसी जगह टिककर बड़े आनंद से रात भर गाते बजाते रहे। दूसरे दिन उसी तरह आनन्द मचाते हुए गायों व बछड़ों समेत अपने घर आये। उसी दिन से अन्नकूट की पूजा संसार में प्रकट हुई।

सो०खेलतनवनितख्यालभक्तपालनँदलालव्रज। दुष्टनकेउरसालसुरनरमुनि मोहत निरखि ॥

पच्चीसवाँ अध्याय।

गोवर्धन पहाड़ को अपनी अँगुली पर श्रीकृष्णजी का उठाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब उस साल व्रजवासियों ने इन्द्र की पूजा नहीं की तब इन्द्र ने, जो श्यामसुन्दर की महिमा नहीं जानता था अपने सभावाले देवतों से पूछा कि कल्ह व्रज में किसने कौन देवता की पूजा किया है। यह वचन सुनकर कोई देवता बोला कि व्रजवासी लोग हर साल तुम्हारी पूजा करते थे, इस साल नन्दमहर के बालक कृष्ण के कहने से व्रजवासियों ने तुम्हारा पूजन छोड़कर गोवर्धन पहाड़ को पूजा

है । यह बात सुनते ही इन्द्र ने क्रोध करके कहा कि व्रजवासियों को धन अधिक होने से अभिमान उत्पन्न हुआ, इसलिए उन्होंने हमारी पूजा करना छोड़ दिया । मैं उन्हें काल के मुख में डालकर दरिद्री कर दूँगा । कृष्ण छोकड़ा जो हमारा शत्रु है उसके कहने से व्रजवासियों ने मेरा अपमान किया, सो मैं उस बालक का गर्व तोड़े देता हूँ । आज तक व्रजवासियों का मैं मालिक था, अब उन्होंने कृष्ण को अपना स्वामी समझा है ।

दो० ऐसे सुरपति क्रोध करि मन में गर्व बढ़ाय । प्रलय काल के मेघ सब लीन्हें तुरत बुलाय ॥

जब मेघों का राजा डरता व काँपता इन्द्र के पास आकर हाथ जोड़कर खड़ा हुआ तब इन्द्र ने उसे आज्ञा दी कि तुम इसी समय सब मेघों को साथ लेकर व्रजमण्डल पर जाओ और इतना पानी व पत्थर बरसाओ कि सब व्रजवासी गोवर्धन पहाड़ समेत बह जावें ।

दो० और ठौर सब छाँड़िकै व्रजमहँ बरसो जाय । व्रजवासी गोधन सहित जल से देव बहाय ॥

इन्द्र ने उनचासों पवन को भी मेघों के साथ कर दिया, जिसमें सरदी व पानी से कोई जीता न बचे । यह आज्ञा पाते ही मेघराजा उन्चासों पवन समेत बड़े-बड़े मेघों को साथ लेकर व्रजमण्डल पर चढ़ दौड़े । उनके आते ही आँधी चलने व बदली छा जाने से वृन्दावन में अँधियारा हो गया । घड़े के समान बूँदों से पानी बरसने और बिजली चमकने लगी । आँधी, पानी और बिजली के सिवा और कुछ वहाँ दिखाई नहीं देता था । तब केशवमूर्ति ने हँसकर बलरामजी से कहा कि देखो, इन्द्र अपनी पूजा न पाने से क्रोध करके महाप्रलय का पानी बरसाता है, उसका यह क्रोध हमारे ऊपर है, क्योंकि मेरे कहने से व्रजवासियों ने उसकी पूजा छोड़कर गोवर्धन पहाड़ को पूजा था, इसलिए उसका गर्व तोड़ना चाहिए । यह दशा देखकर नन्द व यशोदा आदि सब व्रजवासी घबरा गए ।

दो० देखि देखि व्रज की दशा नंदमहर पछितात । कियो निरादर इन्द्रको मन में बहुत डरात ॥

सो० श्यामरामदोउ भाय लिये निकट सोचतमहरि । जुरे गोपतहँआय मनहीमन मुसकातहरि ॥

हे राजन् ! जब सब व्रजवासी प्रलय का सा पानी बरसने से मारे सरदी के बहुत दुःखी हुए तब भीजते व काँपते हुए श्यामसुन्दर की

शरण में आकर पुकार-पुकार कर कहने लगे—हे गोकुलनाथ ! इस प्रलय के पानी से हमारे प्राण बचाइए। तुमने इन्द्र की पूजा छुड़वाकर हम लोगों से गोवर्धन पहाड़ को पुजाया, इसी वास्ते इन्द्र क्रोध करके महाप्रलय का पानी बरसाता है। अब जल्दी गोवर्धन पहाड़ को बुलाओ, आकर हमारी रक्षा करे, नहीं तो एक क्षण में सब मनुष्य गौवों समेत डूबकर मर जायँगे।

दो० जब जब गाढ़ परी हमें तब तुम लियो उबार। यहि अवसर अब राखियो मोहन नन्दकुमार॥

सो० व्रज जनके सुखदान देखि विकल व्रज लोगसब। हँसिबोले तब कान्ह धरौधीरउरडरौमत॥

तुम लोग अपनी-अपनी वस्तुएँ, गायें और बछड़े आदि अपने साथ लेकर गोवर्धन पहाड़ के पास चलो, वह तुम्हारी रक्षा करके इन्द्र का अभिमान तोड़ देंगे। जब श्यामसुन्दर की आज्ञानुसार सब व्रजवासी गोवर्धन पहाड़ के निकट गये तब व्रजनाथजी ने पीताम्बर की कछनी बाँधकर मुरली कमर में खोस लिया और गोवर्धन पहाड़ को अपने बायें हाथ की कानी अँगुली पर फूल के समान उठा लिया। सब व्रजवासी और गौ आदि को उसकी छाया में खड़ा करके सुदर्शनचक्र को आज्ञा दी कि तुम इस पहाड़ के चारों ओर फिरते रहो, जितना पानी बरसे सब अपने तेज से सोखते जाओ। पृथ्वी पर एक बूँद पानी न गिरे। सुदर्शनचक्र ने वैसा ही किया। उस समय सब व्रजवासी केशवमूर्ति की प्रभुता देखकर आपस में कहने लगे कि श्रीकृष्णजी परमेश्वर का अवतार मालूम होते हैं, नहीं तो मनुष्य की सामर्थ्य नहीं है कि पहाड़ को फूल के समान अँगुली पर उठा सके। श्यामसुन्दर पहाड़ उठाए हुए मधुर-मधुर शब्द से मुरली बजाकर सबको प्रसन्न करते थे, जिसमें कोई घबरावे नहीं। यशोदा अपने प्राणप्यारे के प्रेम में घबराकर नन्दजी से कहती थीं कि अपने अज्ञान से इन्द्र का पूजन छोड़कर गोवर्धन पहाड़ को पूजा था, कहीं पहाड़ मोहनप्यारे पर गिर पड़े तो क्या करूँगी।

चौ० दाबति भुजा यशोमति मैया। बार-बार मुख लेत बलैया॥
लखि पहाड़ मन अति दुख पावे। पुनि-पुनि गोवर्धनहि मनावे॥
नाथ आपनो भार सम्हारी। करियो कान्हा की रखवारी॥
पय पकवान मिठाई मेवा। बहुरि पूजिहौं तुमको देवा॥



श्रीकृष्ण जी का गोवर्धन पर्वत को अंगुली पर उठाना

फिर यशोदा ने बलरामजी से कहा कि कन्हैया तुम्हारी सहायता किया करता था, इस समय तुम भी कुछ उसकी सहायता करो। इस तरह नन्दरानी अपने कुलदेवता व परमेश्वर को बारम्बार दण्डवत् करके यह मनाती थी कि मनहरणप्यारे को पहाड़ उठाने में दुःख न पहुँचे।

दो० माखनप्रभु के कारणे जाय वारनी माय। ताके मन की कल्पना केहि विधि वरणी जाय॥

जब श्यामसुन्दर ने अपनी माता व पिता को दुःखी देखा तब उनको धैर्य देने के लिए यह उपाय किया—

चौ० कहेउ नन्द सों निकट बुलाय। तुमहूँ सब मिलि करौ सहाय॥
लै लै लकुट राखि गिरि लेहू। मत राखौ उर में सन्देहू॥
गोवर्धन गिरि भये सहाय। आप कहेउ मोहिं लेहु उठाय॥

दो० यह सुनिजहँ तहँगोपसब रहेलकुटगिरिलाय। कहत श्यामतब नंदसों भलेलिंयो उचकाय॥

सो० ठाढ़ेढिगबलराम देखिदेखि लीला हँसत। कौतुक निधिसुखधाम करतचरित संतनसुखद॥

उस समय गोपियाँ हँसी से मोहनप्यारे से कहती थीं कि तुमने साँझ सबेरे हमारा बहुत सा दूध व माखन आदि चुराकर खाया था, उसी के बल से इतना भारी पहाड़ उठाया है, आज तुम्हारा वह दूध व माखन खाना सुफल हुआ।

चौ० श्रीवृषभानु सुता तहँ आई। कुँवर कान्ह के अति मन भाई॥
गोर अंग सुन्दर सुकुमारी। श्याम संग खेलत नित प्यारी॥
सुनत बोल हँसि उठे मुरारी। तबहीं डोल गयो गिरि भारी॥
नर नारिन को अति भय भाई। धाय छिपाय राधिका लाई॥

जब व्रजबाला पहाड़ गिरने के डर से राधिका को पकड़कर उसकी माता कीर्ति के पास ले गईं तब कीर्ति ने उस पर क्रोध करके उसे अपने पास बैठा रक्खा और फिर केशवमूर्ति के पास नहीं जाने दिया। शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! इधर श्यामसुन्दर पहाड़ को उठाकर व्रजवासियों की रक्षा करते थे उधर राजा मेघ मूसलाधार पानी व पत्थर बरसाता था। बिजली चमकने से सबकी आँखें ढँप जाती थीं। सुदर्शन चक्र इस फुरती से चारों तरफ गोवर्धन पहाड़ के घूमकर सब पानी को अपने तेज से सोख लेता था कि एक बूँद पृथ्वी पर नहीं गिरता था। राजा इन्द्र यह हाल सुनकर आप भी मेघराज की सहायता करने के लिए

चढ़ आया। उसी तरह सात दिन और सात रात पानी बरसता रहा, पर किसी जीव को कुछ दुःख नहीं हुआ। सब लोग आनन्द से गोवर्धन पहाड़ के नीचे घर की तरह बैठे रहे। श्यामसुन्दर हर साइत प्रेमपूर्वक गोप व गोपियों से पूछते थे कि हमारे माता-पिता और सखा लोग किस तरह हैं, कुछ सोच न करें। वे लोग उत्तर देते थे कि सब लोग तुम्हारी कृपा व दया से आनन्दपूर्वक हैं, पानी व बदली का कौतुक देखते हैं। सात दिन तक हर साइत सब व्रजवासी केशवमूर्ति का अमृतरूपी मुखारविन्द आँखों से पीते थे, इसलिए किसी को कुछ भूख व प्यास नहीं लगी। जब मेघराजा का सब पानी चुक गया तब उसने यह हाल इन्द्र से कहा। वह मेघराजा की बात सुनते ही बहुत लज्जित होकर उन लोगों समेत अपने स्थान पर चला गया। जब इन्द्र ने यह सब हाल देवतों से कहा तब देवता बोले—

दो०तुमजानतप्रभुभूमिजबदुखितपुकारीजाय। कहेउ लेन अवतारतब सोइ विहरत व्रजआय॥

सो०कहेउ इन्द्रपछताय मैंभूल्यों जान्यों नहीं। कीन्हीं बहुत ढिठाय भयकरिमन व्याकुल भयौं॥

हे राजन्! देवतों का वचन सुनकर और श्रीकृष्णजी की ऐसी महिमा देखकर इन्द्र को विश्वास हुआ कि नंदलाल आदिपुरुष का अवतार हैं, नहीं तो दूसरे की क्या सामर्थ्य थी जो पहाड़ को अपनी अँगुली पर उठाकर व्रजमण्डल की रक्षा करता। ऐसा विचारकर इन्द्र अपने कर्तब का सोच करके पछताने लगा। जब मेघों के चले जाने से वर्षा बन्द हो गई और धूप निकल आई तब व्रजवासी बोले कि हे व्रजनाथ! तुम्हारे डर से सब मेघराजा भाग गये, अब अपनी अँगुली पर से गिरि को उतार दीजिए। यह वचन सुनकर मोहनप्यारे ने गोवर्धन पहाड़ को उसी स्थान पर रख दिया। उस समय देवतों ने आकाश से उन पर फूल बरसाये, अप्सराओं ने अपने विमानों पर से नाच दिखाया, गंधर्वों ने गाना सुनाया और ऋषीश्वरों ने स्तुति किया। यशोदा ने केशवमूर्ति को गोद में उठाकर बड़े प्रेम से उनका मुख चूम लिया, उनका हाथ और अँगुली बारम्बार मलकर चटकाने लगी और रोकर अपने प्राणप्यारे से पूछा—हे बेटा! सात दिन तक पहाड़ अँगुली पर उठाने से तेरा हाथ

दुखता होगा। तब नंदलालजी बोले—हे मैया! गोवर्धन पहाड़ अपनी प्रसन्नता से तुम लोगों की रक्षा के लिए छाया किये रहा, मैं तरे अपनी अँगुली का थोड़ा सा आश्रय दिये था, इस कारण मेरा हाथ कुछ नहीं दुखता। श्रीदामा आदि ग्वालबालों ने मोहनप्यारे से गले मिलकर पूछा—हे भाई! ऐसे कोमल हाथ पर तुमने किस तरह पहाड़ उठाया, हमें बड़ा अचम्भा मालूम होता है। श्यामसुन्दर बोले कि तुम लोग जो अपनी-अपनी लकुटिया से पहाड़ को उचकाये थे, इसलिए मुझे उसका कुछ बोझा नहीं मालूम देता था। सब व्रजबाला मोहनीमूर्ति की महिमा देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। उसी दिन से श्रीकृष्णजी का नाम गिरिधारी प्रसिद्ध हुआ। उस समय नन्दकिशोर ने व्रजवासियों से कहा—

दो० अबगिरिको पूजौ बहुरि सबसे कहेउ सुनाय। बूड़तते राख्योव्रजहि कीन्हीं बहुतसहाय॥
सो० यहसुनिहर्षबढ़ाय फिरिपूज्योगिरिकोसबन। अतिहर्षित नँदराय दियोदानविप्रनबहुत॥
दो० दूरभयो दुख सोच सबप्रगटो तब आनंद। नंद संग घरको चले माखनप्रभु व्रजचंद॥

नंदजी, श्याम, बलराम और सब व्रजवासी गायों समेत आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थान पर आये।

दो० घरघर व्रज आनंद सब गावत मंगलचार। आये सुरपति जीत हरि गिरिधर नंदकुमार॥

छब्बीसवाँ अध्याय।

व्रजवासियों का श्यामसुन्दर की स्तुति करना।

शुकदेव मुनि ने कहा—हे राजन्! जब नंदलालजी ने गोवर्धन पहाड़ उठाकर अपनी ऐसी महिमा दिखाई तब सब गोप व ग्वाल आश्चर्य मानकर आपस में कहने लगे कि जिस तरह हाथी कमल के फूल को उठा ले उसी तरह श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को उठा लिया। यह मनुष्य का काम नहीं है। आठ वर्ष की अवस्था में नंदकिशोर ने इतना भारी पहाड़ अपनी अँगुली पर उठाकर सात दिन बराबर खड़े रहे। ये परमेश्वर का अवतार मालूम होते हैं, इन्होंने महाप्रलय का जल बरसने से व्रजवासियों के प्राण बचाये। इनको हम लोग किस तरह नन्दजी का पुत्र कहें। लड़का अपने माता-पिता के समान उत्पन्न होता है सो नन्द व यशोदा में ऐसा परा-

क्रम नहीं है, जो श्रीकृष्ण ऐसा प्रतापी पुत्र उनसे उत्पन्न हो। इससे मालूम होता है कि यशोदा से किसी देवता या दैत्य ने भोग किया होगा, इसलिए ऐसा बलवान् व प्रतापी पुत्र उसके उत्पन्न हुआ है। नंदराय के वीर्य का यह बालक नहीं मालूम होता। नन्द व यशोदा को जाति से बाहर कर देना चाहिए। ऐसा विचारकर उपनन्द आदि सब ग्वाल इस बात की पंचाइत करने के लिए नन्दजी के स्थान पर गये। उसमें जो लोग बड़े थे उन्होंने पहिले नन्द व यशोदा से केशवमूर्ति की बहुत बड़ाई करके कहा कि हे नन्दराय! श्रीकृष्ण परमेश्वर की कृपा से सर्वदा अमर रहें। ये विपत्ति में हमारी रक्षा करते हैं। परन्तु ये तुम्हारे पुत्र हमको नहीं मालूम होते। क्योंकि जब ये बहुत छोटे थे तब इन्होंने पूतना राक्षसी को दूध पीते हुए मार डाला। एक वर्ष की अवस्था में तृणावर्त को मारा और जब यशोदा ने इनको ऊखल में बाँधा तब इन्होंने यमलार्जुन दोनों वृक्षों को जड़ से उखाड़ डाला। वत्सासुर, बकासुर और अघासुर राक्षस को मारकर कालीनाग को यमुनाजल से बाहर निकाल दिया। धेनुक और प्रलम्ब राक्षस को मारकर व्रजवासियों को अग्नि में जलने से बचाया। इतना भारी पहाड़ कुकरौंधे के समान पृथ्वी पर से उखाड़कर अपनी अँगुली पर उठा लिया और महाप्रलय के जल से व्रजवासियों की रक्षा करके इन्द्र का अभिमान तोड़ा। जितनी प्रीति मोहनप्यारे में हम लोगों की रहती है उतनी अपने प्राणों और बेटी-बेटे में नहीं है। यह सब आश्चर्य की बातें देखकर श्यामसुन्दर का तुम्हारे वीर्य से उत्पन्न होना हम लोगों के विश्वास में नहीं आता। सो तुम सच बतलाओ कि यशोदा ने किस देवता या दैत्य के वीर्य से इनको उत्पन्न किया है। नहीं तो हम लोग तुम्हें जाति से बाहर निकाल देंगे।

दो० मालिक तीनों लोक के तुम्हरो पुत्र न होय। जन्म मरण जाको नहीं माखन प्रभु हैं सोय।

यह वचन अपने जाति-भाइयों का सुनते ही नन्द व यशोदा ने घबराकर कहा कि सुनो भाइयो! श्रीकृष्ण मेरा बेटा है इसमें कुछ सन्देह मत समझो, पर जो हाल गर्गजी मथुरा से आकर कह गये हैं, उसमें एक बात मैंने छिपाई थी, सो आज कहता हूँ। गर्ग मुनि ने केशवमूर्ति

के नामकरण के समय ऐसा कहा था कि तुम इन्हें अपना जना हुआ मत समझो। तुम्हारे पिछले जन्म के तप के प्रभाव से परब्रह्म परमेश्वर अवतार लेकर यहाँ आये हैं। प्रतिदिन अपनी लीला ये तुमको दिखलावेंगे। ये सब बातें अब हमको आँखों से दिखाई देती हैं। सो मैं भी विश्वास करके जानता हूँ कि मेरा बेटा परमेश्वर का अवतार है, क्योंकि जो-जो काम श्यामसुन्दर ने किये हैं वह मनुष्य नहीं कर सकता। गर्गजी ने यह भी कहा था कि एक बेर इन्होंने वसुदेवजी के यहाँ जन्म लिया है इसलिए इनका नाम वासुदेव भी प्रसिद्ध होगा। गोप-ग्वालों का दुःख ये निवारण करेंगे। जो कोई इनका दर्शन या इनकी लीला व नाम की चर्चा करेगा या इनके चरणों में ध्यान लगावेगा उसे निस्सन्देह मुक्ति मिलेगी।

दो० माखन प्रभु घनश्याम को जो चित धरिहैं नाम। प्रेमभक्ति के धाम में नित करिहैं विश्राम॥

पिछले युगों में इनका रंग श्वेत व लाल था, इस बेर श्यामरूप से इन्होंने अवतार लिया है। जब यह बात सुनकर व्रजवासियों के मन का सन्देह मिट गया तब उन्होंने श्रीकृष्णजी को आदिपुरुष जानकर बड़ी भक्ति व प्रीति से उनकी पूजा की और नन्द व यशोदा के भाग्य की बड़ाई करने लगे। श्यामसुन्दर की जो बातें बालक लोग कहते थे उनका कोई विश्वास नहीं करता था, सो उन बातों को सबों ने सच जाना।

दो० जो माखन प्रभु की कथा कहै सुनै दे चित्त। प्रेम नेम को पद लहै रहै क्षेम सों नित्त॥

---:o:---

सत्ताईसवाँ अध्याय।

इन्द्र का श्रीकृष्णजी की शरण में आना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! इन्द्र ने श्यामसुन्दर के साथ ढिठाई करने से बहुत लज्जित होकर मन में कहा कि मैंने बहुत बुरा काम किया, जो पूर्णब्रह्म को मनुष्य समझकर उनसे वैर बढ़ाया। अब वहाँ चलकर उनसे अपना अपराध क्षमा कराऊँ, जिसमें मेरा कल्याण हो। ऐसा विचारकर राजा ऋषीश्वरों को साथ लेकर ऐरावत हाथी पर चढ़ा और अपराध क्षमा कराने के लिए कामधेनु गो को आगे

लिये हुए वृन्दावन को चला। जब नन्दलालजी अन्तर्यामी ने, जो वन में गो चराते थे, जाना कि इन्द्र अपना अपराध क्षमा कराने के लिए देवतों समेत मेरे पास आता है तब ग्वालबालों से अलग होकर एक ओर वन में जा बैठे। जब राजा इन्द्र ने वहाँ आकर मुरलीमनोहर को दूर से बैठे देखा तब हाथी पर से उतर पड़ा और देवतों को साथ लिये व कामधेनु को आगे किये नंगे पाँव गले में डुपट्टा डाले दाँतों में तिनुका दाबे साष्टांग दण्डवत् करता व काँपता हुआ श्रीवृन्दावनविहारी के चरणों पर जाकर गिर पड़ा और बड़ी अधीनता से रोकर विनय किया कि हे दीनानाथ, निरंजन, निरंकार! मेरी हजारों दण्डवत् आपको पहुँचे, मैंने अपनी अज्ञानता से आपको मनुष्य समझकर आपकी परीक्षा ली थी, सो अपने किये को पहुँचा। जिस तरह अज्ञानी बालक शीशे में अपनी परिछाहीं देखकर उसे पकड़ना चाहता है उसी तरह जो कोई तुम्हारा भेद जानना चाहे उसे अज्ञानी बालक के समान समझना चाहिए। वही हाल मेरा हुआ। जहाँ ब्रह्मा व महादेव आदि देवता व ऋषीश्वर तुम्हारे भेद को नहीं पहुँच सकते वहाँ मेरी क्या सामर्थ्य है जो आपकी महिमा जान सकूँ। मैंने राज्य व धन के अभिमान से अन्धा होकर व्रजवासियों के प्राण लेने के लिए महाप्रलय का पानी व्रजमंडल पर बरसाया था, सो आपने गोवर्धन पहाड़ उठाकर उन लोगों की रक्षा की और मेरे अहंकार को तोड़ दिया। मैं अपने कर्तब से बहुत लज्जित हुआ और अपना अपराध क्षमा कराने के लिए कामधेनु गौ के पीछे-पीछे तुम्हारी शरण में आया हूँ। सो हे व्रजनाथ! मुझ अज्ञानी का अपराध दया करके क्षमा कीजिए। आप सबके ईश्वर, गुरु और परमात्मा हैं तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मालिक तीनों लोकों में नहीं है। ब्रह्मा और महादेव भी आपकी दी हुई बड़ाई पाकर दिन-रात आपके चरणों का ध्यान अपने हृदय में रखते हैं। आप सब जगत् के पिता, उत्पन्न व पालन करनेवाले हैं, लक्ष्मीजी तुम्हारे चरणों की दासी हैं। आपने पृथ्वी का भार उतारने, हरिभक्तों की रक्षा करने और दुष्टों व अधर्मियों को मारने के लिए अपनी इच्छा से अवतार लिया है। जब-जब पृथ्वी अधर्मी

लोगों के पाप से दुःखी होती है तब-तब आप सगुण अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारते हैं। मैं भी आपकी कृपा व दया से देवलोक का राजा हुआ हूँ, पर आपके भेद को नहीं जानता। दूसरे की क्या सामर्थ्य है, जो तुम्हारी महिमा जान सके। मेरा यह अपराध बड़ा दण्ड देने के योग्य है, पर आप ऐसे दीनदयालु हैं कि जो मनुष्य तुम्हारी शरण में आता है, वह कैसा ही अपराध किये हो, आप क्षमा कर देते हैं। मुझे इस अपराध ने भी तप व जप का फल दिया, जिसके कारण तुम्हारे चरणों का दर्शन पाया। दया करके मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

सो०कहत विहारी बार तुम गति अगम अगाध प्रभु। मैं भूल्योसंसार जान्यों व्रजअवतार नहिं॥
दो०माखन प्रभु सम्मुख भये सदा सबै सुखहोय। जो यह सुख से है विमुख भव दुख पावै सोय॥

कामधेनु गौ ने मुरलीमनोहर के सामने हाथ जोड़कर विनय किया कि हे कमलनयन! मैं ब्रह्मा की भेजी हुई तुम्हारे पास आई हूँ, छोटों का अपराध बड़े लोग सदा से क्षमा करते आये हैं, सो आप दीनदयालु कृपालु होकर इन्द्र का अपराध क्षमा कर दीजिए। यह तुम्हारी शरण में आया है। तीनों लोकों में किसे सामर्थ्य है जो तुम्हारे भेद को पहुँच सके। आप सब गौओं और जीवों के मालिक हैं, इसलिए मैं अपने दूध से तुम्हें स्नान कराने आई हूँ और ऐरावत हाथी अपनी सूँड़ में आकाश-गंगा का जल भरकर तुमको स्नान कराने के लिए लाया है, आज्ञा हो तो स्नान करावें। जब राजा इन्द्र और कामधेनु ने बड़ी अधीनता से गिरिधर महाराज की यह स्तुति की तब कृपानिधान ने दयालु होकर कहा—हे इन्द्र! तू कामधेनु गौ को अपने आगे लेकर हमारी शरण में आया है, इसलिए मैंने तेरा अपराध क्षमा किया। सुनो, अभिमान करने से धर्म छूटकर शरीर में अज्ञान आता है, और मूर्खता करने से दुःख के सिवा सुख नहीं मिलता। मनुष्य थोड़ा-सा भी अधिकार व धन पाने से अपने को भूल जाते हैं, तुम तो अर्ब-खर्ब से अधिक धन और इन्द्रासन के मालिक हो, तुमने ऐसा किया तो कौन बड़ी बात है। मैंने दया करके राज्य व धन का अभिमान तोड़ने के लिए तेरा यज्ञ बन्द कराके गोवर्धन पहाड़ को पुजवाया है। जिस पर मेरी कृपा होती है उसका अहंकार मैं तोड़ देता हूँ।

दो०व्याकुलदेखि सुरेशअतिदीनबंधुयदुराय। अभयकियो करमाथधरिभुजगहिलियोउठाय॥
सो०लीनो हृदय लगाय देखि दीनता इन्द्रकी। शिर नहिं सकत उठाय बारबार परसत चरण॥

जब केशवमूर्ति ने इन्द्र का मस्तक अपने चरण पर से उठाकर उसको बहुत धैर्य दिया तब इन्द्र ने प्रसन्न होकर विनय किया।

दो०धन्य बड़ाई नाथ की हौं अनाथ भ्रमसाथ। कमल हाथ प्रभुमाथ धरिकीन्हों मोहिं सनाथ॥

फिर कामधेनु गाय ने अपने दूध से और ऐरावत ने गंगाजल से श्रीकृष्णजी को स्नान कराया। राजा इन्द्र ने उनका चरण धोकर चरणामृत लिया और धूपदीपनैवेद्य आदि से विधिपूर्वक उनकी पूजा की। कामधेनु ने मनहरणप्यारे को गोविन्द नाम पुकारकर चौदहों भुवन का राजा कहा। उस समय देवतों ने श्यामसुन्दर पर फूल बरसाये और नारदमुनि आदि ऋषीश्वरों ने प्रसन्न होकर स्तुति की। अप्सराओं ने अपने-अपने विमानों पर नाच दिखाया। गधर्वों ने गाना सुनाया। यमुना-जल प्रसन्नता से लहरें लेने लगा। उस समय तीनों लोकों में इस तरह का आनन्द हो गया। जिस तरह श्यामसुन्दर के अवतार लेने के समय चौदहों भुवन में खुशी हुई थी। पूजा करने के उपरांत जब इन्द्र वैकुंठ-नाथ के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हुआ तब गिरिधारी महाराज ने इन्द्र से कहा कि तुम कामधेनु गौ समेत अपने स्थान को जाओ, फिर कभी मेरी लीला व कामों में अपना प्रवेश मत करना। इन्द्र, कामधेनु, ऐरावत हाथी, देवता और ऋषीश्वर आदि सब लोग केशवमूर्ति को दण्डवत् करके अपने स्थान को चले गये।

दो० माखन प्रभु के अंग पर वारत कोटि अनंग। सहस नयन देखत चले कामधेनु के संग॥

जब वृन्दावनविहारी इन्द्र को बिदा करके सन्ध्यासमय ग्वालबालों और गौवों समेत मुरली बजाते व मधुर-मधुर गाते हुए अपने घर आये तब नन्द-यशोदा और गोपियों ने मोहनीमूर्ति की छबि देखकर अपनी आँखें ठंढी कीं। हे राजन्! यह गोविंदअभिषेक की कथा सुनने से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थ मिलते हैं। ग्वालबालों को इन्द्र के आने का हाल कुछ नहीं मालूम हुआ।

——:o:——

अट्ठाईसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का वरुणलोक में जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! कार्तिक सुदी दशमी को नन्दजी ने सन्ध्या करके एकादशी व्रत निर्जल रक्खा। दिन भर पूजा व भजन में बिताकर रात को जागरण किया। दूसरे दिन केवल एक घड़ी द्वादशी थी, इसलिए द्वादशी में व्रत का पारण करना अवश्य जानकर पहर राति रहे नन्दजी उठे और उसी समय अकेले यमुनास्नान करने चले गये। जब यमुनाजल में स्नान करने पैठे तब जल की रखवारी करनेवालों ने जाकर वरुण देवता से कहा कि महाराज! एक मनुष्य यमुनाजल में नहाता है। यह बात सुनते ही वरुण ने आज्ञा दी कि उसे जाकर पकड़ लाओ। दूत लोग नन्दजी को नागफाँस में बाँधकर ले गये। उस समय नन्दजी ने श्याम व बलराम का नाम लेकर बहुत पुकारा, पर उन्होंने कुछ नहीं माना।

दो० जल के नीचे ठाँव है जहाँ वरुण को वास। माखन प्रभु के तात को लै राख्यो तिन पास॥

जब नंदजी वरुण देवता के पास पहुँचे तब वरुण उनको वैकुण्ठनाथ का पिता पहिचानते ही यह समझकर बहुत प्रसन्न हुआ कि श्रीकृष्णजी अंतर्यामी अपने पिता को लेने के लिए अवश्य यहाँ आवेंगे तो इसी बहाने उनका दर्शन मिलेगा। ऐसा विचारकर वरुण देवता ने नन्दजी को अपने महल में ले जाकर सम्मानपूर्वक बैठाया और एक बहुत उत्तम सिंहासन श्यामसुन्दर के वास्ते बिछाकर उनके आने की आशा करने लगा। वरुण की स्त्रियों ने नंदराय की स्तुति करके कहा—हे नंदजी! तुम्हारा बड़ा भाग्य है, जो सच्चिदानंद परमेश्वर तुम्हारे पुत्र कहलाते हैं। यहाँ तो नंदराय का आदरभाव देवकन्या करती थीं और वहाँ जब नंदजी स्नान करके घर नहीं आये तब यशोदा ने घबराकर ग्वालों को उनकी सुधि लेने के लिए यमुना किनारे भेजा। जब ग्वालों ने उनको वहाँ न देखकर उनकी धोती व झारी उठा लाये तब यशोदा रोकर कहने लगी कि रात को नहाते समय कोई घड़ियाल आदि उनको खा गया होगा।

दो० अति व्याकुल यशुमति भई उठी रोय अकुलाय। सुनि धाये व्रजलोग सब नंदहि खोजत जाय॥

सो० यमुना तट पुनि नाँव नंदनंद टेरत सबै। ढूंढ़ि फिरे सब ठाँव भये विकल व्रज लोग सब॥

हे राजन्! जब ग्वालों के ढूँढ़ने पर भी नन्दजी का पता कहीं न लगा तब यशोदा और रोहिणी आदि अति विलाप से रोने लगीं। उस समय श्यामसुन्दर ने यशोदा से कहा कि हे मैया! तू मत रो, मैं अभी जाकर नन्दबाबा को ढूँढ़ लाता हूँ। जब उनके कहने से यशोदा आदि को कुछ धैर्य हुआ और वैकुण्ठनाथ अन्तर्यामी ने जाना कि नंदजी को वरुण देवता के दूत पकड़ ले गये हैं और वरुण मेरे दर्शनों की इच्छा से नंदजी को बैठाये हैं तब वरुणलोक में चले गये। उस समय उनका मुखारविंद सहस्र सूर्य के समान चमकने लगा। जब वरुण देवता ने श्रीकृष्णजी को आते देखा तब देवताओं और ऋषीश्वरों समेत दण्डवत् करता हुआ आगे आकर राह में पीताम्बर बिछाता हुआ बड़े आदर-भाव से अपने घर लिवा लाया। रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठाकर उनका चरण धोया और चरणामृत लेकर विधिपूर्वक उनका पूजन किया।

दो० धूप दीप नैवेद्य करि प्रभु पर पुष्प चढ़ाय। करी आरती प्रेम सों घंटा शंख बजाय॥

सो० प्रभुपदनायो माथकरि प्रदक्षिणादण्डवत। तुमत्रिभुवनकेनाथजोरि हाथ अस्तुतिकरत॥

हे महाप्रभु! आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो आपने कृपा करके अपने चरणों का दर्शन दिया। इसी लाभ के लिए मैं नन्दजी को अपने यहाँ बैठाये रहा, नहीं तो उसी क्षण इनको स्थान पर पहुँचा देता। हम लोग आपको तीनों लोकों का पिता जानकर तुम्हारा बाप किसी को नहीं समझते। मेरे दूत नन्दजी को नहाते समय अनजान में यहाँ पकड़ लाये। उन्होंने दण्ड पाने योग्य अपराध किया, पर मैंने उनका बहुत गुण माना, जिस कारण आपका दर्शन मुझे प्राप्त हुआ। मेरी दण्डवत् आप व नंदराय को पहुँचे।

सो० मैं कीन्हों अपराध सो प्रभु उर नहिं लाइए। तुमहो सिंधु अगाधक्षमाकरोनिज जानिजन॥

वरुण की स्त्रियों ने दण्डवत् करने के उपरांत हाथ जोड़कर मुरली-मनोहर से कहा कि नन्द-यशोदा और व्रजवासियों का बड़ा भाग्य है, जिनके यहाँ परब्रह्म परमेश्वर लीला करते हैं। व्रजगोकुल की बड़ाई कोई वर्णन नहीं कर सकता। फिर वरुण देवता नंदराय को श्यामसुन्दर के पास ले आये तब वह उन्हें देखते ही प्रसन्न हो गये।

सो०हर्ष उठे नँदरायदेखिश्याम को शिशुवदन। लखि उनकी प्रभुताय रहे मुदित चकितहिये ॥

जब नन्दजी ने मोहनप्यारे की महिमा इस तरह पर देखी कि देवता लोग अपना सिर उनके चरणों पर धरकर स्तुति करते हैं तब वह मन में कहने लगे कि मेरा बड़ा भाग्य था जो वैकुण्ठनाथ ने मेरे यहाँ अवतार लिया। वरुण देवता ने बहुत से मणि व रत्नादिक श्यामसुन्दर व नंदरायको भेंटदेकर अपना अपराध क्षमा कराया। केशवमूर्ति नन्दजी समेत अपने स्थान पर आये। उस समय यशोदा आदि व्रजवासियों को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। यशोदा ने नंदराय से कहा कि तुम मेरे बरजने पर भी रात को नहाने चले गये थे, परमेश्वर ने आज तुम्हारे प्राण बचाये। नंदराय बोले कि अरी बावरी! तू क्या पछताती है, मैं त्रिलोकीनाथ का पिता हूँ, मुझे कोई दुःख नहीं दे सकता। फिर नन्दजी ने बहुतसा दान व दक्षिणा दिया और यशोदा ने अपने जातिभाइयों में मिठाई बँटवाकर खुशी मनाई। उपनंदादि ने आकर नंदराय से पूछा कि तुमको कौन पकड़ ले गया था। तब नन्दजी बड़े हर्ष से बोले कि मुझे वरुण देवता के दूत रात को नहाते समय पकड़ ले गए थे, सो मोहनप्यारे के पहुँचते ही सब देवतों ने उनका चरणोदक लेकर पूजन किया। बड़े भाग्य से परब्रह्म परमेश्वर ने मेरे घर अवतार लिया है, इनके प्रताप से मुझे देवतों के दर्शन मिले और उनसे रत्नादिक भेंट मिली। जो बात गर्ग मुनि कह गए थे वह सब आँखों से देखा।

दो०नंद कहत हरि नेह में हम ले हैं वह धाम। जन्ममरण जहँ भय नहीं रहत सदा विश्राम ॥

यह सुनकर व्रजवासियों ने कहा कि हे नंदराय! हम लोग उसी दिन श्रीकृष्णजी को परमेश्वर का अवतार समझते थे जिस दिन उन्होंने गोवर्धन पहाड़ उठाकर व्रजमण्डल की रक्षा की थी। हमारे-तुम्हारे पिछले जन्म के पुण्य सहाय हुए, जो सच्चिदानंद परमेश्वर ने तुम्हारे यहाँ अवतार लिया। ऐसा कहकर वृन्दावनवासी केशवमूर्ति के पास गए और हाथ जोड़कर विनय किया कि हे महाप्रभु! आज तक हम लोग तुम्हारी महिमा नहीं जानते थे, अपने अज्ञान से तुमको नंदमहर का पुत्र समझते थे। अब हमें विश्वास हुआ कि आप आदिपुरुष सब जगत् के उत्पन्न करने सुख देने और दुःख हरनेवाले त्रिलोकीनाथ हैं। इसी

तरह बहुत स्तुति करके उन्होंने मन में विचारा कि जिस तरह मुरली-मनोहर ने अपने पिता को वरुणलोक दिखलाया उसी तरह हम लोगों को भी वैकुण्ठ का दर्शन कराते तो अच्छा होता। नन्दकुमार अन्तर्यामी ने उनकी यह इच्छा जानकर रात को जब सब व्रजवासी सोए तब उन लोगों पर अपनी माया ऐसी फैला दी कि उन्हें दिव्यदृष्टि हो गई। स्वप्न में उनको इस तरह वैकुण्ठ का दर्शन हुआ कि वहाँ पृथ्वी सोने की है, सब स्थान रत्नजड़ित बने हैं, बहुत उत्तम-उत्तम तड़ाग व बाग आदि बने हैं, सब स्त्री व पुरुष महासुन्दर भूषण व वस्त्रसंयुक्त चतुर्भुजी दिखलाई दिए, एक बहुत बड़े उत्तम स्थान में रत्नजड़ित सिंहासन पर श्यामसुन्दर को चतुर्भुजी स्वरूप से लक्ष्मीजी समेत बैठे और पार्षदों को चारों ओर खड़े देखा। अप्सराओं को उनके सामने नाचते, गन्धर्वों को गाते, वेदों को अपना रूप धारण किए, तेंतीस करोड़ देवतों को उनके सम्मुख हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए देखा। वैकुण्ठ का यह सुख देखकर व्रजवासियों ने चाहा कि हमलोग मोहनप्यारे के सिंहासन के पास जाकर उनसे कुछ बातें करें, पर किसी ने उनको वहाँ तक जाने नहीं दिया। तब व्रजवासियों ने मन में कहा कि इस वैकुण्ठ से हमारा वृन्दावन बहुत अच्छा स्थान है। वहाँ दिन-रात व्रजनाथजी के साथ रहकर उनसे हँसते-खेलते हैं, यहाँ तो उनके सिंहासन तक भी कोई हमको जाने नहीं देता।

दो० अकुलाने दृग सबन के देखनको तेहिकाल। मोरपंख माथे धरे मुरलीधर गोपाल ॥
सो०व्रजवासिनको ध्यान नटवर वेष गोपाल को। अमितरूप भगवानतदपिउपासनरीतियह॥

हे राजन्! जैसे व्रजवासियों ने नटवररूपमोहनप्यारे का ध्यान किया वैसे ही उनकी निद्रा खुल गई। सब लोग अपने-अपने घर से उठकर केशवमूर्ति के पास गए और वैकुण्ठनाथ का दर्शन करने से उनके हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब सब व्रजवासी नन्दकिशोर के चरणों पर गिर पड़े और हाथ जोड़कर इस तरह उनकी स्तुति करने लगे—हे दीनानाथ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। हम लोग ऐसी सामर्थ्य नहीं रखते जो उसकी बड़ाई कर सकें। परन्तु तुम्हारी कृपा से आज हमको यह मालूम हुआ कि आप परब्रह्म परमेश्वर हैं, पृथ्वी का भार उतारने के लिए तुमने जन्म लिया

है। यह बात सुनते ही श्यामसुन्दर ने फिर अपनी माया उन पर ऐसी फैला दी कि वह ज्ञान भूल गए और उन्होंने इस बात को स्वप्न के समान समझा। सब व्रजवासी प्रसन्न होकर अपने-अपने घर चले आए।

दो० श्रीवैकुण्ठ दिखाय के माखनप्रभु व्रजराय। निज माया विस्तार के दीन्हें गोप भुलाय ॥

नन्दजी ने भी वरुणलोक में जाने का हाल स्वप्नवत् समझकर केशवमूर्ति को अपना पुत्र जाना। वह सब ब्रह्मज्ञान उनको भूल गया।

दो०करतचरित्रविचित्रप्रभुव्रजवासिनकेमाहिं।लखि२शिवब्रह्मादिसुरमुनिजनमनहिंसिहाहिं॥

सो०अतिआनँदव्रजलोगहरिकेनितनवचरितलखि। सबकोसबसुखयोगव्रजवासीप्रभुनंदसुत॥

हे राजन्! श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने गोपियों का सच्चा प्रेम देखकर श्रीदामा आदि अपने सखों से कहा कि सब व्रजबाला सोलहों शृंगार किये वृन्दावन की राह से मथुरा में गोरस बेंचने जाती हैं, सो वन में उनको रोककर उनसे दूध-दही का दान लेना चाहिए।

सो०अब इन संग विहार करो दानदधि लाइकै। यह मनकियो विचार हरि व्रजमोहन लाड़िले॥

ग्वालबालों से यह सम्मत करके नन्दलालजी श्रीदामा आदि पाँच हजार सखा समेत प्रातःसमय वन में जाकर वृक्षों की ओट में छिप रहे। उसी समय सब व्रजबाला सोलहों शृंगार किये मथुरा को गोरस बेंचने चलीं।

दो०हँसत परस्पर आप में चली जायँ सब भोर। पाइ घात में सखनतब घेरलई चहुँ ओर॥

सो०देखिअचानक भीर चकितरहीँचहुदिशिचितै। सहमीकछुकशरीर कितते आयेग्वालसब॥

उस समय नन्दकुमार ने व्रजबालों से कहा कि तुम लोग नित्य गोरस बेंचने जाती हो, सो हमारा दान दे दो तब जाने पावोगी। यह वचन सुनकर गोपियाँ बोलीं कि दण्ड लेना राजों का धर्म है। हम और तुम दोनों राजा कंस की प्रजा हैं, तुम क्यों हमसे दण्ड माँगते हो। नन्दजी तुम्हारे पिता ने आज तक कभी ऐसी बात नहीं की। कल्ह की बात है, तुम हमारा गोरस चुराकर खाते थे। जब कोई पकड़ता था तब रोकर भाग जाते थे। आज वन में स्त्रियों को घेरकर लूटते हो, यह बात अच्छी नहीं है।

चौ० चोरी करि नहिं पेट अघायो। अब वन में दधिदान लगायो॥

यह सुनकर केशवमूर्ति ने कहा कि तुम लोगों ने लड़कपन में हमको बहुत खिझाया था, अब हम सयाने हुए, दण्ड लिए बिना नहीं जाने देंगे।

दो०तब तो हम लड़का हते सही बात अनजान। अब सूबे कहुँ समुझिके छाँड़िदेहु अभिमान ॥
सो०हम माँगत दधिदान तुम उलटी पलटी कहत। करतनंद की आन बिना दिये नहिं जाइयो॥

यह सुनकर गोपियों ने कहा कि कदाचित् तुम दही व दूध के भूखे हो तो थोड़ा-थोड़ा हमसे लेकर खा लो, पर दान हमसे नहीं दिया जायगा। छोटे मुख बड़ी बात कहना अच्छा नहीं होता। अभी हम लोग राजा कंस के पास जाकर यह हाल कहें तो वह तुमको पकड़कर दण्ड दे। हम कौन-सा लवंग व इलाइची लादे हैं जो तुमको दण्ड दें।

सो०लेघ दही बलि जाउँ हमको होत अबेर अब। लिये दान को नाउँ एक बूंद नहिं पाइहौ ॥

यह वचन सुनकर मोहनप्यारे बोले कि तुम लोग राजा कंस से मुझे क्या डराती हो, मैं उसको कुछ नहीं समझता। सीधी तरह दान देवगी तो अच्छा है, नहीं तो तुम्हारा सब दूध व दही छीन लूँगा तो रोती हुई यशोदा के पास जावोगी। बहुत दिनों तक तुमने चोरी से हमारा दान पचाया है, आज सब दिन की कसर लेकर तुम्हें जाने दूँगा।

दो०दान लगत यहँ श्याम को सो अब लेव चुकाय। तब मैं देहौं जान सब मोकों नन्द दुहाय ॥
सो०दधि ले जातप्रभात आवत हौ निशिबेंचिकै। दान मारि नित जात भलीकरतयहबात नहिं॥

यह बात सुनकर गोपियाँ बोलीं कि तुम्हारे बड़ों ने जो काम कभी नहीं किया वह तुम करने लगे तो किस तरह हम लोगों का यहाँ निर्वाह होगा।

दो० हमें कहत हौ चोट्टी आप भये हौ साह। बड़े भये चोरी करत अब लूटत हौ राह॥

यह बात सुनकर मोहनप्यारे बोले कि तुम्हारे धमकाने से मैं कुछ नहीं डरता। तुम वृन्दावन छोड़कर चली जावगी तो क्या होगा, मैं अपना दण्ड छोड़ दूँ।

दो० गाँव हमारो छाँड़ि कै बसियो का पुर माहिं। ऐसो को तिहुँलोकमें जो मेरे वश नाहिं ॥

हे राजन्! इसी तरह कुछ देर तक सब व्रजबाला मोहनप्यारे से प्रकट में झगड़ा करती रहीं, पर अन्तःकरण से उनकी छवि देखकर प्रसन्न होती थीं। जब केशवमूर्ति ने सब गोपियों का गोरस छीनकर ग्वाल-बालों समेत खा लिया और वानरों को खिलाकर शेष पृथ्वी पर गिरा दिया, मटुकी तोड़कर उनका वस्त्र धक्काधुक्की करके फाड़ डाला तब सब गोपियों ने यशोदा के पास जाकर अपने फटे हुए वस्त्र दिखलाकर कहा

कि तुमने अपने बेटे को अच्छा उद्यम सिखलाया है कि वह ग्वालबालों को साथ लिए हुए वन में सब गोपियों को रोककर दही व दूध का दान माँगते हैं। हम लोगों ने नई बात समझकर दण्ड नहीं दिया, इसी वास्ते हमारा सब गोरस छीन लिया और अञ्चल पकड़कर हमारा वस्त्र फाड़ डाला। आज तक तुम्हारे कुल में कोई ऐसा नहीं हुआ था, जिसने दही व दूध का दण्ड लिया हो।

दो०सुनत ग्वालिनिके वचन बोलीं यशुमतिमात। मैं जानी तुम सबन के उर अंतर की बात॥

तुम लोग मोहनप्यारे का पीछा न छोड़कर उसे पाप की दृष्टि से देखती हो और अपने हाथ कपड़ा फाड़कर मुझे झूठा उलाहना देने आती हो।

दो०धन्य-धन्य तुम कहत हो मोकों आवत लाज। माखन माँगत रोय हरि दोष देत बिन काज॥

यह बात सुनकर व्रजबालों ने कहा कि यशोदा माता तुम्हें ऐसा उचित नहीं है जो बिना समझे हमें दोष लगाती हो। दश गौ अधिक रखने से तुम कुछ बढ़ नहीं गई। हम तुम जाति में बराबर हैं। यह चलन तुम्हारा बेटा करेगा तो हम यह गाँव छोड़कर निकल जायँगी। मोहनप्यारे का हाल तुम नहीं जानती, वन में चलकर देखो तो तुम्हें मालूम हो।

दो०सुनों महरि तुम बात हरि सीखे टोना कछू। वनहि तरुण ह्वै जात बालक ह्वै आवत घरे॥

यशोदा ने उनको उत्तर दिया कि तुम लोग गाँव छोड़ने के लिए मुझे क्या धमकाती हो। जहाँ तुम्हारा मन चाहे वहाँ जाकर बसो। तुम्हारे लिए मैं अपने बेटे को नहीं निकाल दूँगी।

दो०कहा करौं तुम आय सब कहतीं अटपट बात। मोंको यह भावे नहीं तरुणिन इहै स्वहात॥

यह बात सुनते ही व्रजबाला लज्जित होकर अपने-अपने घर चली आईं। वृन्दावन में यह चर्चा घर-घर फैल गई कि नन्दकुमार ने गोरस का दण्ड गोपियों पर लगाया है। यह सुनकर और सब व्रजबालों को भी यह इच्छा हुई कि हम लोग भी दही दूध बेचने जावें तो नन्दकिशोर की छवि मन में देखकर अपनी-अपनी आँखें ठण्ढी करें। दूसरे दिन राधा आदि सोलह हजार गोपियाँ गोरस बेचने मथुरा को चलीं। मोहनप्यारे ने सखा समेत जो वृक्षों पर चढ़े हुए छिपे थे, वन में व्रजबालों को घेरकर कहा कि आज दान देकर जाने पावोगी।

दो०हँसि बोली राधाकुँवरि कहा बनिज हम पास। कहो श्यामसोनाम धरिदेहिं दानहमतास॥

अपनी प्यारी का यह वचन सुनकर नन्दलालजी बोले कि आज तुम्हारे यौवन का दान लूँगा। हे राजन्! जब इसी तरह कुछ बेर तक सब व्रजबाला मोहनप्यारे से झगड़ा करती रहीं तब श्यामसुन्दर ने ऐसी माया उन पर फैला दी कि सब गोपियाँ कामरूप मद में मतवाली हो गईं।

दो०व्याकुलह्वै सब मदन में नैनमूँदि धरि ध्यान। कहत कान्ह अब शरण हम लीजै सर्वसदान॥
सो०ऐसो कहि मन माहिं देह दशा भूलीं सबै। लेहु श्याम बलि जाहिं यह धन तुम सब आपनो॥

गोपियों की यह दशा देखकर वैकुण्ठनाथ भक्तहितकारी ने उन लोगों की इच्छा पूर्ण करने के लिए अपने अनेक रूप जो किसी को दिखलाई न दें धारण कर लिये और सब व्रजबालों से ध्यान में भेंट करके उनका कामरूपी रोग छुड़ा दिया। तब उन्होंने हँसकर कहा कि हे प्राणप्यारे! तुमने हमारे यौवन का दान भी लिया, अब आज्ञा दो तो अपने-अपने घर जावें। यह वचन सुनकर केशवमूर्ति बोले कि तुम्हारे यौवन का दान मैंने पाया अब दही-दूध का दण्ड चुका दो तो अपने-अपने घर जाओ। यह वचन सुनते ही व्रजबालों ने प्रसन्न होकर अपना दही-दूध श्यामसुन्दर को ग्वालबालों समेत खिला दिया, पर मोहनप्यारे की माया से उनके बर्तन ज्यों के त्यों भरे रहे। जिस समय गोपियाँ श्यामसुन्दर को ग्वालबालों समेत बैठाकर दही व दूध खिलाती थीं उस समय देवता लोग अपने-अपने विमानों पर से यह आनन्द देखकर व्रजबालों की बड़ाई करके कहते थे कि धन्य भाग व्रज की स्त्रियों का है, जिनसे परब्रह्म परमेश्वर त्रिलोकीनाथ गोरस माँगकर खाते हैं। गोपियाँ उनकी सेवा करके अपना जन्म सफल करती हैं। दही खाते समय मनहरणप्यारे बोले कि मैंने सबके गोरस का स्वाद पाया, पर राधाप्यारी का दही नहीं चीखा। यह वचन सुनते ही राधा ने हँसकर अपना दही अपने हाथ से नन्दकिशोर के मुख में खिला दिया।

सो०प्यारी को दधि खाय बोले यों मोंहन बिहँसि। मधुरे कह्यो सुनाय मीठो है यह सबन तें॥

हे राजन्! गोरस खाने के उपरांत मोहनमूर्ति ने अपनी चितवनि व मुसुकान से उनका मन हर लिया और बोले कि आज अपना दान

लेकर हम तुमसे बहुत प्रसन्न हुए, इसलिए अब तुमसे घाट-बाट पर कोई रोक नहीं करेगा। अब अपने-अपने घर जाओ, विलम्ब होने से तुम्हारे घरवाले चिन्ता करते होंगे। यह वचन सुनकर गोपियों ने कहा कि हे मोहनप्यारे! दान माँगते समय हमने तुमको कठोर वचन कहा है उसका अपराध क्षमा कीजिए और तुम्हारी मोहनीमूर्ति देखे विना हमें चैन नहीं पड़ती, घर किस तरह जावें। तुम्हारी प्रीति के विना धन व परिवार सब वृथा है। यह बात सुनकर नन्दकिशोर बोले कि मैं तुम्हारा प्रेम देखकर एक क्षण तुमसे विलग नहीं रहता। तुम्हारा कठोर वचन मुझे बुरा नहीं मालूम होता। मैं तुम लोगों को प्रसन्न करने के लिए वैकुण्ठ छोड़कर तुम्हारा दुर्वचन अपनी इच्छा से सुनता हूँ। तुमने अपना मन देकर मुझे पाया है। जब अपना चित्त मुझसे फेर लोगी तब मैं तुमसे अलग हो जाऊँगा।

दो०तुम कारणवैकुण्ठ तजिप्रकटत हौं व्रजआय। वृन्दावन तुम्हरो मिलन यहनविसारोजाय॥

ऐसा कहकर श्यामसुन्दर ग्वालबालों को साथ लिये हुए दूसरी ओर वन में चले गये और सब व्रजबाला अपने-अपने घर न जाकर बौरहों की तरह वृक्षों से पूछने लगीं कि तुम गोरस मोल लोगे। कभी दही व दूध के बदले मोहनप्यारे व श्रीकृष्ण व नन्दलाल का नाम बेचने के वास्ते पुकारकर कहतीं थीं।

दो० लीने गोरसदानहरि तुम कहँ रहे छिपाय। डरन तुम्हारे जात नहिं तुम दधि लेत छिनाय॥
सो०लेहुआपनो दान तुम रिसकर उठि धाइहौ। हमैं न देइहौ जान वन में हम ठाढ़ीं सबै॥
दो०श्याम बिना यह कोकरै लायो दधि को दान। तनसुधि भूली तबहिं से बाँकी मृदुमुसुकान॥
सो०मनहरिलीन्हेोश्यामताबिनबनिये कौनविधि। ऐसे कहिसबवामघरको चलन विचारहीं॥

हे राजन्! इसी तरह विपरीत बातें कहती हुई गोपियाँ अपने-अपने घर पहुँचीं, पर श्यामसुन्दर का रूप आठों पहर उनके हृदय व आँखों में बना रहता था। यह दशा देखकर घरवाले बहुत समझाते थे, पर किसी का कहना उन्हें अच्छा नहीं लगता था।

दो०प्रकट्यो पूरण नेह उर जित देख्योउत श्याम। समझाये समझैं नहीं सिखदे थाक्यो ग्राम॥
ऐसो सिखवतमातु-पितु सो नकरतकछु आन। लागत हैं तिनकेवचनउर में बाण समान॥
सो०उन्हैंकहतमनमाहिंधिकधिकउनकीबुद्धिको। जिन्हेंश्यामप्रियनाहिंतिन्हैंबनैत्यागेभले॥

हे राजन्! श्यामसुन्दर राधाप्यारी पर लक्ष्मीजी का अवतार होने से अति प्रीति रखते थे, इसलिए राधिका भी उनके ऊपर अधिक मोहित रहती थी। जब दूसरे दिन गाँव में दही बेचने गई तब शिर पर मटुकी लिये नन्दजी के मकान के चौगिर्द घूमकर बौरहों के समान लोगों से पूछने लगीं कि मेरा चित्त चुरानेवाला नन्दकुमार कहाँ बसता है, मैं उसे बड़ी दूर से ढूँढ़ने आई हूँ। उसका घर इस गाँव में है या नहीं।

दो० जिन्हेंकहतमोहिंनंदघर कहाँसोदेवबताय। जहाँ बसत वहसाँवरोमोहन कुँवर कन्हाय॥

जब राधिका लज्जा छोड़कर दही के बदले नंदकुमार व नंदकिशोर व श्रीकृष्ण व श्यामसुंदर का नाम पुकारने लगी तब उसकी यह दशा देखकर गोपियों ने पूछा कि हे राधिका! तू क्या बेचती है। राधा बोली—

दो०मोहन मूरति श्याम की मो तन रही समाय। ज्यों मेंहदीकेपात में लालीलखी न जाय॥

यह सुनकर एक सखी ने कहा कि ऐ राधिका! तू तो दूसरों को ज्ञान सिखलाती थी, सो आज तेरी क्या दशा हुई। ऐसी निर्लज्जता तुझे न करना चाहिए। इसमें सब गाँववाली स्त्रियाँ तुझे गँवारि कहकर बदनाम करेंगी। तेरे माता-पिता सुनकर तुझको मारेंगे। तू केशवमूर्ति ऐसे रूपवान् पुरुष को पाकर अपनी प्रीति क्यों प्रकट करती है।

दो०कृष्ण प्रेम धन पाइके प्रकटन कीजै बाल। राखोयों उर गोइ के ज्यों मणिराखत व्याल॥

यह वचन सुनकर राधिका बोली कि तू मुझे क्यों समझाती है। मेरा मन मोहनीमूर्ति ने हरकर मेरे हृदय में अपना वास कर लिया, इसलिए माधुरीमूर्ति देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ती। हाथ मेरा वश में नहीं है, घूँघुट कौन काढ़े। यह बात सारे व्रज में फैल चुकी कि मैं श्यामसुन्दर के हाथ बिककर उनकी दासी हो गई।

चौ० मन मान्यो मोहन पर मेरो। जग उपहास करै बहुतेरो॥

दो० बारबारतूकहतक्यामैंनहिं समुझत बात। मोंहि दृगन में बसि गयो वह यशुमतिकोतात॥
सो० रहतनमेरी आन अपनी सी मैं करथकी। तूतौ बड़ी सुजान कहा देत सखि दोषमोंहि॥

हे सखी! मैंने अपना प्रेम नन्दकिशोर से लगाया, इसलिए मुझे किसी की लाज नहीं रही। अब मेरे हृदय में यह बात ठन गई कि जिस तरह दूध पानी में मिल जाता है उसी तरह नन्दलाल से मिलकर संसार में श्याम व श्यामा अपना नाम धराऊँ।

दो०मेरोमनहरिसँगलग्यो लोकलाजकुलत्याग । और ताहिसूझत नहीं भयोजहाज कोकाग ।।

हे सखी ! तू मेरी बड़ी प्यारी है, कदाचित् तुझसे हो सके तो दया करके मेरे चित्तचोर से भेंट करा दे, नहीं तो मेरे प्राण उसके विरह में निकलना चाहते हैं। ऐसा कहकर राधाप्यारी अति विलाप करके पुकारने लगीं–हे यशोदा के लाल ! अपना दर्शन देकर दही का दान ले जाव, अब तुम्हारे वियोग का दुःख मुझसे नहीं सहा जाता।

सो०ऐसे सखी सुनाय मौन गही पुनि नागरी । देह दशा बिसराय मगन भई रस श्याम के ।।

जब उस सखी ने देखा कि राधाप्यारी के रोम-रोम में श्यामरूप बस गया, मेरा कहना व समझना इसे कुछ गुण नहीं करता, श्यामसुन्दर से भेंट किए बिना इसका दुःख नहीं छूटेगा, तब उस सखी ने दया करके केशवमूर्ति से जाकर कहा कि हे मोहनप्यारे ! एक सुन्दरी चन्द्रमा सी गोरी नीली सारी पहिने दही की मटुकी सिर पर लिये तुम्हारा नाम ले लेकर चारों ओर पुकारती व ढूँढ़ती हुई अभी वंशीवट को चली गई है। जल्दी जाकर उस विरहिनी की अग्नि अपनी अमृतरूपी दृष्टि से ठंढी करो, नहीं तो वह तुम्हारे विरह में बौराकर मर जावेगी। केशवमूर्ति ने अपनी प्यारी का यह हाल सुनते ही व्याकुल होकर तुरन्त उस सखी को बिदा कर दिया और आपने उसी समय वंशीवट में पहुँचकर राधा की इच्छा पूर्ण की।

दो०परम हर्ष दोऊ मिले राधा नन्दकुमार । कुंज सदन शोभित मनो तनु धरि छबि शृंगार।।

जब श्यामा का चित्त श्यामसुन्दर के मिलने से ठिकाने हुआ तब उसने कहा कि हे प्राणप्यारे ! जिस दिन तुमने मेरी गौ खरका में दुहि दी थी उसी घड़ी से मेरा मन ऐसा मोहि लिया कि तुम्हारी साँवली सूरत देखे बिना मुझे एक क्षण चैन नहीं पड़ता। गाँववाले मुझको तुम्हारे साथ बदनाम करते हैं, सो मेरे चित्त में अब ऐसा आता है कि माता-पिता आदि अपने कुल-परिवार को छोड़कर तुम्हारे साथ प्रकट प्रीति करूँ।

सो०मैं लीन्हों दृढ़नेम सुनो श्यामसुन्दर सुखद । तुम पदपंकज प्रेम यहीबात अबराखिहौं ।।

यह वचन सुनते ही गिरिधर महाराज ने हँसकर कहा कि हमारी तुम्हारी पिछले जन्म की प्रीति है, उसको प्रकट न करना चाहिए,

जिसमें तेरे माता-पिता के निकट हमारी बदनामी न हो और संसारी लोग तुझे नाम न धरें। मैं तेरे साथ अकेले में भेंट करके तेरी इच्छा पूर्ण कर दिया करूँगा।

सो०सुनत श्याम के बैन हर्ष भई मननागरी। भयो हिये अति चैन प्रीति पुरातनजानिजिय।।
दो०कहत श्याम अब जाव घर तुमको भई अबार। प्रीति पुरातनगुप्तउर करियेजगव्यवहार।।
सो०परम प्रेम उरलाय घरपठई हरि भावती। चली महासुखपाय फिर२चितवतश्याम तन।।
दो०कृष्णराधिकाकेचरितअतिपवित्रसुखखान। कहत सुनत भवभयहरणरसिकजननके प्रान।।

हे राजन्! जब राधिका अपना मनोरथ पाकर घर को चली जाती थी तब राह में वही सखी, जिसने उसका हाल केशवमूर्ति से कहा था, फिर मिली। उसने श्यामा का मुखारविंद प्रसन्न देखकर अपनी बुद्धि से जान लिया कि यह अपनी मनोकामना पा आई है। ऐसा विचारकर उस सखी ने राधिका से पूछा—

दो०फिरतहती व्याकुलअभी जिनके दर्शनलागि। कहाँ मिलेनँदनन्दसों धनिधनितेरोभागि।।
सो०नहिं पावत हैं जाहि योगी जन जप तप किये। वश करि पायो ताहि तैं कैसे कहुनागरी।।

यह बात सुनते ही राधा नाक व भौं चढ़ाकर बोली कि तू मुझे वृथा बदनाम करती है। कदाचित् यह बात कोई जाति-भाई सुन पावें तो मेरा ठिकाना न लगे।

चौ० को नँदनन्द कहत तू जिनको। मैं कबहूँ देख्यों नहिं तिनको।

राधिका का यह चरित्र सुनकर उस सखी ने कहा कि हम तुम दोनों व्रज में रहती हैं, तुम्हारी चतुराई हमसे नहीं छिपेगी। दो घड़ी हुई, तू गली गली नन्दलालजी का नाम लेकर रोती फिरती थी, अब कहती है कि मैं उनको नहीं जानती, ऐसा सयानपन तूने अभी कहाँ से सीख लिया।

दो० निपुण भई उनको मिली वह सुधि गई भुलाय। आवत है वनकुंजते बातें कहत बनाय।।
सो० रीझे श्याम सुजान कहै देत अँग की पलक। मोंसों कहत सयान सँग पग रहे सनेहजल।।

जब राधाप्यारी ने बहुत पूछने पर भी उस सखी से मोहनप्यारे की भेंट होने का हाल नहीं बतलाया तब वह व्रजबाला हँसकर बोली कि बहुत अच्छा, तू मेरे सामने की छोकरी होकर मुझसे छल करती है, अब तू अपने घर जा, मैं तेरा झूठ व सत्य प्रकट कर दूँगी। यह बात कहकर वह सखी अपने घर चली गई और श्यामा अपने घर आई।

चौ० सकुच सहित वृषभानुदुलारी । गईं सदन गुरुजन डर भारी ॥

उसे देखकर कीर्ति ने कहा कि तू दिन भर दही बेचने के बहाने कहाँ रहती है। आज तेरा भाई कहता था कि राधा मोहनप्यारे के प्रेम में उनके पीछे फिरा करती है। तुझको कुछ लज्जा नहीं आती, सब गाँव-वाले तुझे श्यामसुन्दर के साथ बदनाम करते हैं। ऐसी बात मत कर, जिसमें तेरे माता-पिता की हँसी हो। यह वचन सुनकर राधा बोली—

दो० खेलन को मैं जाउँ नहिं कहा कहत री मात । मुझसे जाती सहि नहीं यह सब झूठी बात ॥

सो० घर २ खेलन जात गोपन की सब लड़किनी । तू मोकों रिसियात उनके मात पिता नहीं ॥

ऐसी-ऐसी झूठ-सत्य बात कहकर राधा ने अपनी माता को प्रसन्न कर लिया और अपने मन का भेद किसी से नहीं बतलाया। उस सखी ने जाकर ललिता आदि सब व्रजबालों से कहा कि आज राधिका ने श्यामसुन्दर से भेंट करके अपनी इच्छा पूर्ण की। जब वह वंशीवट से अपना मनोरथ पाकर आती थी तब मैंने उसका मुखारविन्द प्रसन्न देख-कर भेंट होने का हाल पूछा तब वह बोली—

दो० मोसों तब लागी कहन को हरि काको नाँव । कै गोरे कै साँवरे बसत कौन से गाँव ॥

सो० मैं तो जानत नाहिं लेत नाम तुम कौन को । लख्यो न स्वप्नेमाँहिसाँची कहतकिहँसततुम ॥

यह बात सुनकर ललिता आदि ने कहा कि हमारे सामने राधिका की सामर्थ्य नहीं है जो मुकर सके। तब वह सखी बोली कि अब वैसी राधिका नहीं है जो पहिले थी। भेंट करने से उसका हाल तुम्हें मालूम होगा।

दो० बड़े गुरू की बुद्धि पढ़ि कान्ह नहिं पतियात । एकौ बात न मानिहै सौ सौगन्दें खात ॥

जब ललिता आदि सखियाँ इकट्ठी होकर यही बात पूछने के लिए राधिका के स्थान पर आईं तब श्यामा उनके मन का हाल जान गईं कि ये मेरा भेद पूछने आई हैं।

दो० कान्ह को कीन्हों नहीं आदर करि चतुराय । मौन गही बोलत नहीं बैठि रही निठुराय ॥

उसकी यह दशा देखते ही ललिता आदि आपस में उसके पास बैठकर जब इधर-उधर की बातें करने लगीं तब एक सखी ने राधा से कहा कि तुमने मौनव्रत कब से धारण किया है उसका हाल हमें भी बतलाओ। कौन गुरु से यह मंत्र सीखा है, हम लोग भी वह धारण करना चाहती हैं।

दो० अब तुमहीं को हम करैं गुरू देव उपदेश। हमहूँ राखैं मौनव्रत करैं तुम्हैं आदेश ॥
सो० हमको कियो अजान चतुर भई तुम लाड़िली। कहँ सीख्योयहज्ञानऐसीबुधिलागीकरन ॥

यह बात सुनकर राधा ने कहा कि सुनो ललिता, हमारे तुम्हारे बीच में कुछ भेद नहीं है, जो मैं तुमसे कोई बात छिपाती, पर झूठी बात मुझसे सही नहीं जाती। काल्हि राह में मुझसे इस सखी ने कहा कि तेरी भेंट श्यामसुन्दर से हुई है। मैंने आज तक कभी केशवमूर्ति को स्वप्न में भी नहीं देखा और यह मुझको वृथा पाप लगाती है। सो मुझे यह ठिठोली की बात अच्छी नहीं लगती। इसमें मेरे वास्ते बदनामी है। बिना देखे कोई बात नहीं कहना चाहिए। मुझे इसने नन्दलाल से कब भेंट करते देखा था, जो ऐसी बात कही। अभी कोई जाति-भाई सुने तो मेरा ठिकाना न लगे।

दो० और कहै तो मोहि कछु नहिं व्यापै मनमाहिं। तुमहिंकहोजोबातयहतोदुखहोयकिनाहिं ॥
सो० तुमपररिसमोहिंगात याते आदर नहिं कियो। सुनि प्यारी की बातरहींसबैमुखतनचितै ॥

तब ललिता बोली कि हे राधा, मुझसे इस सखी ने कुछ नहीं कहा। कदाचित् यह मुझसे कुछ कहती तो मैं इससे झगड़ा करती। तेरी अलोनी देही पर हम लोग क्यों लोन लगावें। तू बड़ी पतिव्रता है, तेरे श्याम को इसने कहाँ देखा होगा। बिना भाग्य उनका दर्शन मिलना बड़ा कठिन है। तेरे बराबर हम लोगों का भाग्य कहाँ है, जो केशवमूर्ति का दर्शन हमें मिले। यह सुनकर राधिका बोली--

दो० वृथा झौड़मोसो करत कहि कहि झूठी बात। भलो नहीं उपहास यह मैं सकुचत दिनरात ॥

राधा की यह रुखाई देखकर ललिता ने कहा--

सो० जब आवैं इतश्याम तबहम तोहिं बताई हैं। तोहिं देखिहैं वाम हमहूँ हैं अभिलाष अति ॥
दो० ऐसे कह सब हँसि उठी प्यारी बदन निहारि। आई थीं अति गर्वकरि चलींसखी सबहारि ॥
सो० कहत परस्पर जात निडर भईं अब राधिका। कबहूँ तो हम घात पड़िहैं दोऊ आयकै ॥
दो० सब व्रजगोपिन के बसी यही बात मन आन। हरि राधादोऊ मिलैंनिशिवासरयहध्यान ॥
सो० सब सम्मुख यह बात और कछू चरचा नहीं। नन्दमहर कों तात सुता महर वृषभानुकी ॥

जब बहुत पूछने पर भी श्यामा ने मोहनप्यारे से भेंट होने का हाल सखियों से नहीं बतलाया तब वह लोग वहाँ से अपने-अपने घर आकर इस खोज में लगीं कि राधा व मोहन को भेंट करते समय पकड़ना चाहिए। जिसमें श्याम का झूठ बोलना प्रकट हो जावे। राधिका और

कृष्ण में ऐसी प्रीति बढ़ी कि एक क्षण दोनों को बिना देखे चैन नहीं पड़ती थी। श्यामा ने दूसरे दिन मोहनीमूर्ति को देखने की इच्छा से ललिता आदि सखियों के घर जाकर कहा कि चलो बहिन! यमुना-स्नान कर आवें। जब सखियों ने बड़े आदरभाव से राधा को बैठाया तब वह बोली कि आज क्या मैं तुम्हारे घर नये आई हूँ जो इतना आदर करती हो। ललिता बोली कि जैसा अपने गुरु का मन्त्र पढ़कर तुमने हमारे जाने से मौन साध लिया था वैसा हम लोगों को नहीं आता। जैसे सदा हम सब तुम्हारा सम्मान करती थीं वैसे आज भी किया। यह बात सुनते ही राधा ने हँसकर कहा कि उस दिन का बदला आज तुम लोगों ने मुझसे लिया। यह सुनकर सखियाँ हँसने लगीं।

दो०यहिविधिहासहुलासकरिसखिनसंगसुकुमारि। चलिनहाययमुनानदीश्रीवृषभानुदुलारि॥
सो०सकल रूप की रास नव नागरि मृगलोचनी। भरी अनन्दहुलास कृष्ण प्रेम में एकचित॥

जब श्यामा सखियों समेत यमुनाजल से स्नान करके बाहर निकली तब उसने क्या देखा कि केशवमूर्ति नटवररूप साजे कदम के नीचे खड़े हुए वंशी बजाते हैं। उस मोहनीमूर्ति को देखते ही राधा ने मोहित होकर लज्जा छोड़ दिया और नन्दकुमार को टकटकी बाँधकर देखने लगी।

दो० श्यामा नटवररूप को देखत ही सुखपाय। चित्र पूतरी सी रही देह दशा बिसराय॥
सो०उत वह रहे लुभाय नागर नवलकिशोर वर। प्यारी मुख दृगलाय नयन नहीं भटकत कछू॥

यह दशा देखकर ललिता आदि सखियों ने राधा से कहा कि कल्ह तू मोहनप्यारे की भेंट करने से मुकर कर कहती थी कि मैंने उनको स्वप्न में भी नहीं देखा, आज तेरी क्या दशा हुई, जो साँवली सूरत को टकटकी बाँधकर देख रही है। अच्छी तरह इनको देख ले, जिसमें यह मोहनीमूर्ति तुम्हें न भूले। तेरे दिखलाने के वास्ते केशवमूर्ति को हमने यहाँ बुला दिया है।

चौ० राखो चीन्हि इन्हें अब नीके। यह हैं मनभावन सबही के।
दो० भले शकुन आई इहाँ भयो तुम्हारो काज। अब कछु हमको देवगी मिलैं तुम्हें व्रजराज॥

यह बात सुनते ही राधा मन में पछताकर कहने लगी कि कल्ह मैं सखियों से मुकर गई थी आज प्राणप्यारे की छवि देखकर मेरी यह दशा

हो गई। अब मेरी चोरी सखियों ने पकड़ ली। इन लोगों से मैं बहुत लज्जित हुई। जब ऐसा विचारकर राधा का मुख मलीन हो गया तब ललिता बोली कि प्यारी, तुम मत पछताओ।

दो०कियोदरशतुमश्यामकोघरचलिहौकीनाहिं। चीन्हिलेहुमिलिहैंबहुरियहकहिसबमुसकाहिं।।
सो०तब सखियन के साथ चली सदन को नागरी। उर में धरि ब्रजनाथप्रेम मगन बोलै नहीं।।

जब राधाप्यारी मोहनप्यारे का नटवररूप अपने हृदय में रखकर घर को चली तब सखियों ने उससे कहा ऐ प्यारी! तू अपने मन में चोरी प्रकट होने का कुछ सोच मत कर। यह नटवररूप इसी तरह का है, इसे देखकर किसी ब्रजबाला का चित्त ठिकाने नहीं रहता। पिछले जन्म के पुण्य से तेरा बड़ा भाग्य है जो त्रिलोकीनाथ तुम्हें ऐसा प्यार करते हैं। तूने उनको अपने वश कर लिया है। यह सुनकर राधा मन में बहुत प्रसन्न हुई, पर लज्जा से कुछ नहीं बोली।

सो०सखिनकह्योमुसक्यायक्योंप्यारीबोलतनहीं। कीहमसेरिसिआयलियोमौनव्रतआजपुनि।।

यह वचन सुनते ही राधा ने हँसकर कहा कि श्यामसुन्दर का स्वरूप कैसा था, मैंने तो अच्छी तरह नहीं देखा। इसका क्या कारण है, जो तुम्हें दो आँखों से उनका सारा अंग देख पड़ा। मेरी दृष्टि तो उनकी भृकुटी पर गई, सो वह छवि छोड़कर दूसरे अंग पर न जा सकी, जो मैं उस मोहनीमूर्ति का सारा अंग देखती।

दो०मैंतबसे अपने मनहिं यही रही पछिताय। देखन को छवि श्याम की ललचत नयन बनाय।।
दो०बिन पहिचाने कौनविधिकरों श्यामसोंप्रीति। नहिंवहरूपनभाववहक्षणक्षणऔरैरीति।।
सो०मैं जानी यह बात हैं अनंद की खानि हरि। पहिचाने नहिं जात कहा करौं दो लोचनी।।

यह सुनकर गोपियाँ बोलीं कि हे राधा! तेरे बड़े भाग्य हैं जो तू ऐसी प्रीति वैकुण्ठनाथ से रखती है। संसार में दूसरे का भाग्य ऐसा न होगा।

दो० धनि-धनि तेरे मात पित धन्य भक्ति धनिहेत। तैं पहिचाने श्याम को हम सब बाल अचेत।।
सो०धनियौवनधनिरूप धनि धनि भाग सुहाग तुम। तुम मोहन अनुरूप चिरंजीवजोड़ी अचल।।

इस तरह सब गोपियाँ श्यामा से हँसती व बोलती हुई अपने-अपने घर चली आईं, पर राधा व मोहन की प्रीति देखकर सवतिया डाह से आठों पहर उनका रूप आँखों के सामने बसा रहता था। एक दिन

राधिका श्यामसुन्दर के विरह में व्याकुल होकर अकेली पानी भरने के लिए यमुना के किनारे चली। राह में मोहनप्यारे को देखते ही उनका हाथ पकड़कर बोली कि तुमने मेरा मन क्यों चुरा लिया है, उसे फेर दो। मेरा तन घर में रहता है, चंचल मन दिन-रात तुम्हारे पीछे-पीछे फिरा करता है। प्यारी का वचन सुनते ही नन्दकुमार ने उसको गले से लगाकर कहा कि मैं भी तेरे देखने के लिए आठों पहर व्याकुल रहता हूँ। जिस समय श्यामा व श्याम यह प्रीति भरी हुई बातें आपस में कर रहे थे उसी समय ललिता आदि सखियाँ वहाँ आ पहुँचीं। उनको देखते ही केशवमूर्ति अपने ग्वालों को पुकारते हुए दूसरी ओर चले गये। ललिता ने राधा से कहा कि आज तो तेरी चोरी पकड़ी गई। तू नित्य हम लोगों को झूठा बनाकर एकान्त में सुख उठाती थी।

दो० कहत रही जब तब यही हरिसँग देखो मोहिं। तब कहियो जो भावही लीजो बेसरिखोहिं॥
सो० अब हम लई छुड़ाय बेसर देहौ कै नहीं। कै करिहौ चतुराय और कछू हमसे अभी॥

यह बात सुनते ही राधिका लज्जित होकर अपने घर चली आई, पर उसका मन मोहनप्यारे से भेंट करने के लिए व्याकुल रहा, इसलिए उसे रात तारे गिनते बीत गई। प्रातःसमय उसने मोतियों का हार अपने गले से उतारकर धोती के अंचल में बाँध लिया और अपनी माता कीर्ति से कहा कि कल्ह यमुना के किनारे मेरा हार कहीं गिर पड़ा था, सो न मालूम कौन सखी ने उठा लिया।

दो० नेकु नींद नहिं निशि पड़ी तेरी सौं सुनु मात। याही डर से आज मैं उठी बड़े परभात॥
सुन राधा तेरी नहीं अब पतियारी मोहिं। चौकी हार हमेल कछु नहिं पहिरावों तोहिं॥

यह सुनकर श्यामा बोली कि तुम क्रोधित क्यों होती हो, मैं उसे ढूँढ़ने जाती हूँ, मुझको देर लगे तो घबराना मत। ऐसा कहकर राधा अपने घर से निकली और नन्दजी के घर के पिछवारे झूठ-मूठ ललिता सखी का नाम पुकारकर बोली कि मैं वंशीवट में जाती हूँ, तू भी जल्द आव। उस समय नन्दलालजी ने रसोई खाने के वास्ते बैठकर पहिला ग्रास उठाया था, जैसे श्यामा का बोल सुना वैसे ही उठ खड़े हुए। यशोदा ने पूछा कि तुम घबराकर कहाँ चले? तब उनसे कहा कि

एक ग्वाल मुझसे कह गया था कि वन में गौ के बछिया हुई है, सो मैं वहाँ जाता हूँ। ऐसा कहकर मोहनप्यारे वंशीवट को चले गये। उनके सखों ने जो वहाँ बैठे हुए खाते थे, यशोदा से कहा कि वन में बछिया नहीं हुई है, वहाँ राधाप्यारी गई होगी, इस कारण मोहनप्यारे भी उससे भेंट करने चले गये। यशोदा ने उनकी बात का विश्वास नहीं किया, पर केशवमूर्ति के भूखे चले जाने से पछताकर सोच करने लगी। श्यामा व श्याम ने वंशीवट में जाकर आनन्दपूर्वक भोग व विलास किया।

दो०नवलकुंज नवनागरी नवनागर नँदनन्द। प्रेमसिंधु मर्य्याद तजि मिले उमँगि आनन्द ॥

सो०यह अचरज की बात को मानै को कहि सके। गोपसुता के साथ रमत ब्रह्म द्रुम कुंजतर ॥

जब सन्ध्या समय मोहनप्यारे ने राधा से कहा कि अब तुम अपने घर जाओ तब श्यामा बोली कि मुझसे तुम्हें छोड़कर घर जाया नहीं जाता। तुम्हारे वास्ते अपने माता-पिता की गाली व मार नित्य सहती हूँ। नन्दलालजी ने कहा कि तेरे लिए हम अपने हाथ का ग्रास फेंक-कर चले आये। इसी तरह दोनों मनुष्य प्रीति भरी हुई बातें करते अपने घर गये। राधा ने मोती का हार अपनी माता को देकर कहा कि जिसके वास्ते तू सोच करती थी वह मैं यमुना किनारे से ढूँढ़कर ले आई, सो अपना हार ले। कीर्ति ने मन में समझा कि राधा ने श्यामसुन्दर से भेंट करने के लिए हार का यह झूठा चरित्र किया था। श्रीकृष्णजी परमेश्वर का अवतार हैं, इसलिए राधा आदि व्रजबालों को उनके देखे बिना चैन नहीं पड़ता। शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! नन्दकिशोर को भी राधिका की इतनी प्रीति बढ़ी कि नित्य किसी जगह पर उससे भेंट करके अपना चित्त प्रसन्न करते थे। एक दिन श्यामसुन्दर उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनकर घड़ी रात्रि बीते राधा के घर गये और रातभर उसके साथ आनन्दपूर्वक विहार करके प्रातःसमय अपने घर चले आये।

दो०बार बार जियलाड़िली यही सोच पछितात। गये श्याम आलस भरे तनिक न सोये रात ॥

सो० देखैं सखीनकोय श्याम गये मो सदन ते। मैं राख्यो है गोय अब लग यह रस सखिन से ॥

जब ललिता आदि सखियों ने जो आठों पहर राधाकृष्ण के पकड़ने की घात में रहती थीं, श्यामसुन्दर को राधा के घर से निकलते देखा तब

उन लोगों को बड़ी डाह उत्पन्न हुई। केशवमूर्ति के जाने के उपरांत श्यामा ने भी अपने द्वारे पर आकर देखा तो चारों ओर उसे सखियाँ खड़ी हुई दिखलाई पड़ीं, तब उसको विश्वास हुआ कि इन लोगों ने मेरे घर से निकलते समय मोहनप्यारे को अवश्य देखा होगा। ऐसा विचार-कर उसको लज्जा मालूम हुई। उसने मन में कहा कि अभी तक नन्द-लालजी से मेरी प्रीति छिपी थी सो आज प्रकट हो गई। नित्य सखियों से मुकर जाती थी, आज इन्हें क्या उत्तर दूँगी।

दो० ऐसे सोचत लाड़ली कबहूँ प्रभुहिं मनाय। कबहूँ प्रभु को सुखसमुझि प्रेम मगन ह्वै जाय॥

उसी समय ललिता आदि सखियाँ राधा के घर गईं। उनको देखते ही राधाप्यारी ने चतुराई से बिना पूछे कहा कि हे ललिता! आज प्रातः समय वृन्दावनविहारी मेरे द्वारे पर से होकर न मालूम किधर जाते थे, उन्हें देखकर तभी से मैं व्याकुल हो रही हूँ। सखियों ने यह बात सुनते ही आपस में कहा कि देखो, यह बड़ी चतुरी है, हमारे पूछने से पहिले इसने यह बात बनाकर कही, जिसमें हम कुछ पूछ न सकें। ऐसा कह-कर सखियाँ बोलीं कि हे राधा! तू बड़ी सयानी है, अपने मन का भेद हम लोगों से नहीं कहती। रात भर मोहनप्यारे के साथ विहार किया, इस समय हम लोगों को बहकाती हो।

दो०कछु दिन ते तेरी प्रकृति अरी परी यह कौन। निठुर भई मोसों रहत जब तब साधे मौन॥
सो०अपने मन की बात कछु हमसों भाषत नहीं। ऐसे कहि मुसकात प्यारी सों व्रजनागरी॥
दो०सुनिसुनिबानीसखिनकीप्यारीजियअनुराग। पुलकरोमगदगदहियोसमझआपनोभाग॥
सो०बचनकह्योनहिंजायप्रीतिप्रकटचाहतकियो। हरिउररहेसमायबाहरलखतप्रकाशनहिं॥

जब सखियों की बात सुनकर राधिका ने हँस दिया तब ललिता सवतियाडाह से रूखी होकर बोली—

स० तुम जानती हौ जू अजान भई कहि आगे से उत्तर धावती हौ।
बतलाती कछू औ कछू कहती अनुराग की आँखें दुरावती हौ॥
हमैं काह पड़ी जो मने करिहैं कवि बोधा कहैं दुखपावती हौ।
बदनामी की गैल बचाये चलो बड़े बाप की बेटी कहावती हौ॥

तब राधिका ने उत्तर दिया—

स० हमसे मनमोहन सों हित है चुगुली करि कोऊ कहा करिहै।
अब तो बदनाम भईं व्रज में गुरुलोगन जानि कहा ढरिहै॥
कहैं ठाकुर लाल के देखिबे को व्रज भूलो सबै बिसरो घर है।
तुम आपने काम ते काम करो कोउ आपने जानि कुवाँ गिरि है॥

यह बात राधिका की सुनकर सखियाँ अपने-अपने घर चली गईं और राधिका के मन में इस बात का अहंकार उत्पन्न हुआ कि श्यामसुन्दर मेरा बहुत प्यार करते हैं, अब वह किसी दूसरी सखी से बोलेंगे तो मैं उनसे झगड़ा करूँगी। जिस समय राधिका अपने घर बैठी हुई यह विचार कर रही थी उसी समय केशवमूर्ति वहाँ जाकर झरोखे में से ताकने लगे। तब राधा ने उनसे कहा कि तुमको घर-घर झाँकने की कुचाल पड़ी है। यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती। ऐसा कहकर राधिका अपने अभिमान से बैठी रही और मोहनप्यारे को उसने नहीं बुलाया। तब श्रीकृष्णजी गर्वप्रहारी अन्तर्यामी उसके मन की बात जानकर वहाँ से अपने घर चले गये। जब राधा ने देखा कि मोहनप्यारे भीतर नहीं आये तब अपने अभिमान करने से लज्जित होकर द्वारे तक दौड़ आई। जब उनको वहाँ पर नहीं देखा तब विरहसागर में अचेत हो गईं।

दो० भईविकलअति नागरी बिरह बिथा की पीर। खानपानभावै नहीं सुधिबुधि तजी शरीर॥
सो०घर बाहर न सुहायसुखसबदुखदायक भये। रह्योसोचउरछायव्रजवासी प्रभु मिलनको॥

जब उसने देखा कि मोहनीमूर्ति से भेंट किये बिना मेरा चित्त ठिकाने नहीं होगा तब ललिता आदि सखियों के घर इस इच्छा से दौड़ी गई कि वे लोग केशवमूर्ति को समझाकर मेरे पास बुला लावें। ललिता ने उसे उदास देखकर पूछा कि कहो प्यारी, आज तुम किस चिन्ता में हो। राधा ने मुसकराकर कहा—

दो० छिपतछिपायेकौनविधिसखितुमसोंयहबात। देखे बिन नँदनन्दके धीरज धरत न गात॥
नयननतेक्षणटरतनहिंनीकेलख्यो न जात। कहा कहौं तुमसोंसखीयहअचरज की बात॥
सो० मिले मोहिं जब श्याम सुनोसखीतुमसोंकहौं। करिकै उरमें धाम तब से मनमेरोहरयो॥
दो०नहिंजाम्योहरिक्याकियोमन्दमन्दमुसकाय। मनसमुझत रीझतनयनसुककछुकहोनजाय॥
सो० तब से कछु न सुहाय कासों कहियेबात यह। अमल परेउदृग आय देखन को सुन्दर बदन॥

हे बहिन! नन्दकुमार मेरा बहुत प्यार करते थे, सो आज वह मेरे घर

आकर झरोखे से मुझे देखने लगे, पर मैंने अपने अभिमान व अज्ञान से उनको भीतर नहीं बुलाया। इसी वास्ते वह खेद मानकर चले गये। सो तुम लोग कोई ऐसा उपाय करो जिसमें उनका दर्शन मुझको मिले, नहीं तो मेरे प्राण उनके विरह में निकल जायँगे। यह बात सुनकर ललिता आदि सखियों ने सवतियाडाह से राधा को कहा कि जो मोहन-प्यारे तुझसे बिना भेंट किये चले गये तो तुम भी मान करके घर बैठ रहो। कदाचित् उनको तेरी चाहना होगी तो फिर तेरे घर आवेंगे। यह बात सुनकर राधा ने कहा कि एक बेर अभिमान करके मैंने यह फल पाया कि उनके विरह में मेरी यह दशा हुई, अब मुझे मान करने की सामर्थ्य नहीं है जो फिर उनसे मान करूँ।

दो० पुनिपुनिसिखवततुमसखीमानकरनकोमोहि। मनतोमेरेहाथनहिंमानकौन विधि होहि॥
सो० उमँगयहीदिनरातश्यामगहौं अभिलाषकरि। मननहिं मानत बातमानकरों कैसे सखी॥
क० घर तजों वन तजों नागर नगर तजों वंशीराम सब तजि काह्न पै न लजिहौं।
देह तजों गेह तजों नेह कहौ कैसे तजों आज काज राज बीच ऐसी साजसजिहौं॥
बावरे भये हैं लोग बावरी कहत मोको बावरी कहे से मैं हूँ काह्न न बरजिहौं।
कहैया औ सुनैया तजों बाप और भैया तजों दैया तजों मैया पै कन्हैया नाहिं तजिहौं॥

ऐसा कहकर राधा जब अति विलाप करके रोने लगी तब सखियों ने उस पर दया करके आपस में कहा कि इसका दुःख छुड़ाना चाहिए, नहीं तो श्यामसुन्दर के विरह में यह मर जायगी।

सो० लीन्हीं सखियन जान हरिरंग राती लाड़िली। सुन्दरश्याम सुजान रोम रोम याके रमे॥

ऐसा समझकर ललिता सखी ने राधा से कहा कि तू धैर्य धरकर यहाँ बैठी रह, मैं तेरे चित्तचोर को लाकर तुझे मिला देती हूँ। ऐसा कहकर ललिता वंशीवट में चली गई और केशवमूर्ति के पास पहुँचकर बोली कि हे प्राणप्यारे! राधा ने प्रेमवश तुमसे अभिमान किया था, सो उसका अपराध क्षमा करो। इस समय वह तुम्हारे विरह की अग्नि में जल रही है। तुम जल्दी चलकर अपने चन्द्रमुख की शीतलता से उसका हृदय ठंढा करो।

दो० चलोश्यामसुन्दर नवलछैलछबीलेलाल। तुम्हेंमिलनकोनवलवहअतिव्याकुलयहिकाल॥
मैं आई तुमसों कहन चलो देखावों नैन। देखि परम सुखपाइहौ जो मानो मो बैन॥
सो० भरिभरिलोचन नीरश्याम श्याममुखकहि उठत। चलो हरोयहपीर मैं आई लखि धायके॥

यह बात सुनते ही नन्दलालजी व्याकुल होकर उठे और ललिता के घर पहुँचकर क्या देखा कि राधिका अपने कर्तब से लज्जित होकर रो रही है। उसकी यह दशा देखकर केशवमूर्ति ने उसका घूँघट उठाकर अपनी मोहनीमूर्ति उसको दिखला दी। वैसे राधा भी प्रेमवश होकर उनसे लपट गई।

दो० वहचितवनिवहहंसिमिलनिवहशोभासुखभारि। भईविवशललितानिरखियकटकरहीनिहार

जब ललिता ने अपने साथी सखियों को बुलाकर उन दोनों का प्रेम दिखलाया तब वे लोग श्यामा व श्याम की ऐसी प्रीति देखकर राधा के भाग्य की बड़ाई करने लगीं। केशवमूर्ति की छवि देखकर सबों ने अपना-अपना हृदय ठंढा किया। उस समय मोहनप्यारे राधा पर ऐसे मोहित हो गये कि अपना भूषण व वस्त्र व मुरली उस पर बारम्बार न्योछावर करने लगे। उसी प्रेम में श्यामसुन्दर ने राधाप्यारी का सब गहना उतार-कर आप पहिन लिया, उसकी आँखों में से अंजन निकालकर अपने नेत्रों में लगा लिया और अपने पीताम्बर की सारी पहिनकर स्त्री के समान अपना रूप बना लिया। राधाप्यारी श्रीकृष्णजी का किरीट व मुकुट पहिनकर कन्हैयाजी के समान बन गई और बोली कि हे श्याम-सुन्दर! तुम स्त्री की तरह मान करके बैठो, हम तुम्हें विनती करके मनावें। जब स्त्रीरूप मोहनप्यारे रूठकर बैठे तब कृष्णरूप राधा बारम्बार उनके चरणों पर गिरकर मनाने लगीं, पर श्यामसुन्दर ने न मानकर उस समय ऐसी माया राधा पर फैला दी कि उसको इस बात का ज्ञान नहीं रहा कि मैं स्त्री हूँ। तब वह मोहनप्यारे के चरणों पर शिर धरकर रोने लगी। उसकी यह दशा देखकर वैकुण्ठनाथ ने अपनी माया हरकर राधा से कहा कि मैं तेरे कहने से रूठकर बैठा था, तू क्यों घबरा गई। जब राधा का चित्त ठिकाने हुआ और उसने अपना मुख शीशे में देखा तब लज्जित होकर किरीट मुकुट आदि उतार डाला और स्त्रियों का गहना व कपड़ा पहिन लिया। जब थोड़ा-सा दिन रहा तब श्याम और श्यामा दोनों स्त्रीरूप से वंशीवट को चले।

दो० चले हरखि नवकुंज को युगल नारि के रूप। यक गोरी यक साँवरी शोभा परम अनूप॥

जब राह में चन्द्रावली सखी से भेंट हुई तब उसने पहिचाना कि यह

श्याम व श्यामा स्त्रीरूप बनकर वंशीवट में विहार करने जाते हैं। चन्द्रावली ने हँसकर श्यामा से पूछा कि कहो प्यारी! यह नई सखी साँवली सूरति मोहनी मूरति कहाँ से आई, जो तेरे साथ विहार करने जाती है। राधा बोली कि यह सखी मथुरा में रहती है, मैं ललिता के साथ वहाँ दही बेचने गई थी, सो मेरी और इसकी जान-पहिचान हो गई, इसी कारण मुझसे भेंट करने के लिए यहाँ आई है। उस समय मोहनप्यारे ने यह समझकर कि चन्द्रावली के पहिचान लेने से सब सखियाँ मेरी हँसी करेंगी, घूँघट से अपना मुख छिपा लिया। तब चन्द्रावली बोली कि हे राधा! तू इस सखी को भी मथुरा से बुलाकर अपने घर के पास टिका दे, तो तुम और यह दोनों जो महासुन्दरी व तरुण हो श्यामसुन्दर से प्रीति करके उनको सुख देना। इसका मुखारविन्द मुझे भी तो अच्छी तरह दिखलावो, जिसमें मेरी आँखें ठंढी हों।

दो॰ऐसेकहिचन्द्रावलीगह्योश्यामकरजाय। यहअबलों कहिनासुनी तियसोंतिय शरमाय॥

चन्द्रावली मोहनीमूर्ति का घूँघट उठाकर बोली कि तुम मुझसे क्या लज्जा करती हो, मैं तुम्हें आगे से पहिचानती हूँ। जब चन्द्रावली स्त्रीरूप श्यामसुन्दर से आँख लड़ाकर उनका गाल मलने लगी तब केशवमूर्ति ने लज्जित होकर आँख नीची कर लीं। उनका यह हाल देखकर चन्द्रावली बोली कि हे राधाप्यारी! जबसे तूने इस सखी से प्रेम लगाया तब से हम लोगों की प्रीति छोड़ दी। तुम दोनों वृन्दावन के कुञ्ज में जाकर सुख-विहार करो। तुम्हें अपने स्वार्थ के सिवा दूसरे का सुख अच्छा नहीं लगता। जब मोहनप्यारे ने समझा कि यह मुझे पहिचान गई, अब इससे छिपा रखना वृथा है तब हँसकर चन्द्रावली को अपने गले लगा लिया। दाहिने चन्द्रावली और बायें राधा का हाथ पकड़े हुए आनन्द से वंशीवट को चले गये। रातभर वहाँ राधाप्यारी से भोग व विलास किया, प्रातःसमय केशवमूर्ति पुरुषरूप बनकर अपने स्थान पर चले आये और राधा व चन्द्रावली अपने-अपने घर गईं।

दो॰अतिविचित्रनँदलालकीलीलाललितरसाल। जोसुखदुर्लभशिवसनकसोलूटतव्रजबाल॥

एक दिन राधाप्यारी सोलहों शृंगार करके अपना मुख शीशे में देखने

लगी, सो श्यामसुन्दर की माया से उसने अपनी परछाहीं देखकर यह समझा कि कोई दूसरी चन्द्रमुखी कहीं से यहाँ आई है, जो यह व्रज में रहेगी तो मोहनप्यारे मुझे छोड़कर इससे प्रीति करेंगे।

दो० यह आई केहिलोक ते महासुन्दरी नारि। व्रज में तो ऐसी नहीं कोई गोपकुमारि॥

ऐसा बिचारकर राधा ने अपनी परछाहीं से कहा कि तुम कहाँ से आई हो तुरन्त अपने घर चली जाव। इस गाँव में मोहनप्यारा अति ढीठ है, सब व्रजबालों को नंगी कर देता है, यहाँ रहकर उसके हाथ से बहुत दुःख पावोगी।

दो०तेरे हित की कहति हौं मानचाह मतिमान। बिरज बसे दुख पावगी सुन तू सुधर सुजान॥

सो०ऐसोढीठ न आन त्रिभुवन में कोऊ कहूँ। जैसो व्रज में कान मनभायो सबसों करत॥

दो०यह तौ बोलति है नहीं अति गरबीली वाम। देखत ही यहि रीझिहैं छैल चबीले श्याम॥

सो०भईसवति यह आय अब हरि याके वश भये। मोर मरण भो आय उपजायो उरविरहदुख॥

जिस समय राधा बौरहों के समान यह बातें अपनी परछाहीं से कह रही थी उसी समय केशवमूर्ति ने भी वहाँ आकर झरोखे में से उसका यह हाल देखा। राधा को उनका आना नहीं मालूम हुआ।

सो०देखि झरोखे लाय रहे श्याम यकटक निरखि। उरआनन्दबढ़ाय देखत प्यारीकी छविहिं॥

कहत रसीली बात ज्योंज्यों तिय प्रतिबिम्बसों। त्योंत्यों सुनिहर्षातव्रजवासी प्रभुसाँवरो॥

जब वह परछाहीं राधा की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से नहीं गई तब राधा उसको अपनी सवति समझकर चिन्ता करने लगी। मोहन-प्यारे श्यामा का यह हाल देखकर चुपचाप उसके पीछे चले गये और अपने दोनों हाथों से उसकी आँखें बन्द करके शीशा उलट दिया।

सो०लीन्हें सम्मुख आन पानिपकड़ि के लाड़िली। भली करी तुम कान मैं सखियन धोखे रही॥

जब शीशा उलट देने से वह स्त्री राधा को नहीं दिखलाई दी तब उसे परछाहीं समझकर प्रसन्न हो गई और श्यामसुन्दर के साथ विहार करने लगी। कुछ बेर बीते जब मोहनप्यारे अपने घर चले गये और ललिता आदि सखियाँ राधा के मकान पर आईं तब राधा ने उन्हें बड़े आदरभाव से बैठाया। ललिता बोली कि ऐ प्यारी! क्या आज तुझे श्यामसुन्दर मिले हैं, जो इतना आदर हमारा करती हो? यह बात सुन

कर राधा श्रीकृष्णजी के आने और शीशा उलट देने का हाल कहकर बोलीं कि हे ललिता! यह सब सुख मुझे तुम्हारी कृपा से मिलता है। यह सुनकर ललिता उसके भाग्य की बड़ाई करने लगी। जिस समय यह सब प्रेम-भरी हुई बातें राधा सखियन से कर रही थीं उसी समय फिर मोहनप्यारे अपना शृंगार करके नटवररूप साजे वनमाला विराजे मुरली बजाते हुए राधाप्यारी को देखने आये, पर सखियों का जमघट देखकर भीतर नहीं गये। व्रजबालों से आँखें लड़ाते नयन मटकाते हुए दूसरी तरफ जा निकले।

दो०छविसागरसुखकीअवधिगुणमन्दिररसखान। मोहिलियोमनतियनकोरसिकनरेशसुजान॥
सो०मुरली मधुर बजाय प्यारी-प्यारी नाम कहि। सबको चित्त चुराय गये सदन आनंदघन॥

जब सखियों का मन उन्होंने अपनी चितवन से मोहि लिया तब वह सब कामातुर होकर कहने लगीं कि यह सब दोष हमारी आँखों का है जो श्यामसुन्दर की छवि देखते ही मोहित हो गई। हमारा कुल परिवार व लोकलाज छुड़ाकर व्रजगोकुल में हमें बदनाम किया, आप जाकर उनकी छवि देखने से प्रसन्न होती हैं और हमें दिन-रात उनके विरह में दुःख के सिवा कुछ सुख नहीं मिलता।

दो० अब यह लोचन श्याम के सखी हमारे नाहिं। बसे श्याम रसरूप यह श्याम बसे इन माहिं॥
सो०कहा करें सखि श्याम नयनन ही को दोषयह। हठकरि भयेगुलाम नेक मंद मुसकान पर॥
दो०लालचवशज्यों मीन मृग आप बँधावत आय। रूपलालची नयनहू भये श्याम वश जाय॥
अब हम तलफत उन बिना मृत्यु भई अफसोस। पैसा खोंटा आपना परखैया क्या दोस॥

ऐसी-ऐसी बातें सब व्रजबाला आपस में कहती हुई श्यामसुन्दर का नटवररूप हृदय में राखिकर अपने-अपने घर चली गई, पर आठों पहर मोहनीमूर्ति का रूप उनकी आँखों में बसा रहता था।

दो० प्रेम भरे छविसों भरे भरे अनन्दहुलास। युगल माधुरी रस भरे व्रज में करत बिलास॥
सो०करत अनेक विहार रूपराशिगुणनिधि युगल। राधानन्दकुमारव्रजवासी जन सुखकरन॥

उनतीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का मुरली बजाना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जिस तरह श्यामसुन्दर ने कामदेव का अभिमान तोड़ने के लिए गोपियों के साथ रासलीला की थी वह कथा अपनी बुद्धिप्रमाण तुमसे कहते हैं, चित्त लगाकर सुनो। जबसे वृन्दावन-विहारी ने चीर हरने के समय गोपियों से शरदपूनो को रासलीला करने के लिए कहा था तब से सब व्रजबाला उसी इच्छा में एक दिन को वर्ष भर के समान समझकर कहती थीं कि जल्दी कुवार का महीना आवे तो हम लोग प्राणप्यारे से रासलीला करके अपना जन्म सफल करें। जब वर्षा बीतकर शरद ऋतु आई तब मोहनप्यारे ने विचारा कि अपने वचन प्रमाण गोपियों से रासलीला करना चाहिए। ऐसा समझकर कुवार की पूर्णमासी को तीन घड़ी रात बीते मुरलीमनोहर किरीट मुकुट साजे वन-माला विराजे अंग-अंग पर जड़ाऊ गहना पहिने पीताम्बर की कछनी काछे नटवररूप बनाए अपने घर से निकलकर वन में चले गये, तो क्या देखा कि इस समय चन्द्रमा अपनी एक कला जो महादेव के पास रहती है वह भी लाकर सोलहों कला से प्रकाश किये है, यमुनाजल मोती के समान निर्मल हो गया है, कमल फूल रहा है, घटाटोप वृक्षों की हरियाली चाँदनी में अति शोभायमान हो रही है, आकाश में तारे खिल रहे हैं, शीतल मन्द सुगन्ध हवा बहती है और यमुनाजी लहरें ले रही हैं।

दो०श्रीवृन्दावन धाम की शोभा परम पुनीत। बरणि सकै कविकौनविधिमनबुधिवचनसुनीत॥
सो०और सकल सुखधाम वैकुण्ठादिक श्यामके। यह विचार विश्राम याते अति सुन्दर सुखद॥

हे राजन्! उस समय मोहनप्यारे ऐसे सुन्दर मालूम देते थे, जिनके ऊपर हजारों कामदेव को न्योछावर कर डालें। वह शोभा देखते ही नन्दकिशोर ने एक ऊँचे वृक्ष पर बैठकर योगमाया संयुक्त प्रेम से मुरली बजाई और उसकी ध्वनि में राधा व गोपियों का नाम ले लेकर उन्हें अपने पास बुलाने लगे। उस समय केशवमूर्ति ने ऐसी माया कर दी कि जिन व्रजबालों ने उनको पति बनाने की इच्छा से व्रत व पूजन किया था उन्हीं को वह मुरली सुन पड़ी और दूसरे किसी ने नहीं सुनी।

मोहनप्यारे ने वंशी में मन हरने और काम बढ़ानेवाला ऐसा राग गाया, जिसका शब्द सुनते ही श्यामा आदि सोलह हजार व्रजबाला कामातुर होकर मोहित हो गईं और लाज काज सब छोड़कर उलटा-पलटा शृंगार करके इस तरह वृन्दावन को दौड़ीं जिस तरह श्रावण व भादों में नदी व नालों का पानी समुद्र की ओर वेग से बहता है।

दो०अधरमधुरमुरली धरे मुरलीधर सुखदैन। ध्वनि सुनि मोहित गोपिका तनमन प्रकटे मैन॥

सो०रह्यो न मन में धीर बाजी बाजी कहि उठीं। व्याकुलमहाशरीरसुनिमुरलीव्रजकीतरुणि॥

क०बाजी हैं बौरानी बाजी देखिबे को द्वार धाईं बाजी अकुलानी सुनि वंशी वंशीधर की॥
बाजी ना सँभारें चीर बाजी ना धरत धीर बाजिन के उठी पीर बिरहागि भरकी॥
बाजी नाहिं बोलैं बाजी संग माहिं लागि डोलैं बाजिन बिसरि गई सुधि बुधि घर की॥
बाजी कहैं बाजी बाजी बाजी कहैं कहाँ बाजी बाजी कहैं वंशी बाजी साँवरे सुंदर की॥

हे परीक्षित! जो गोपी गौ दुहुती थीं उनके हाथ से दूध का बर्तन गिर पड़ा। जो भोजन करती थीं उन्होंने हाथ भी नहीं धोया। जो रसोई बनाती व दूध आग पर चढ़ाये थीं उन्होंने उसी तरह चूल्हे पर छोड़ दिया। जो सुरमा व काजल लगाती थीं वह दूसरी आँख में विना लगाये उठ दौड़ीं। जो अपने पति के पास अचेत सोई थीं वह उसी तरह नंगी चली गईं। जो बालक को दूध पिलाती थीं वह उसे रोता छोड़कर चल निकलीं। जो अपने पति को भोजन कराती थीं वह बिना खिलाये उठ चलीं। जो व्रजबाला मोहनप्यारे की चर्चा करती थीं वह उसे छोड़कर उठ भागीं। घबराहट से एक ने दूसरी का हाल नहीं पूछा कि तू कहाँ जाती है। व्याकुलता से हाथ का गहना पाँव में और गले का भूषण भुजा पर बाँध लिया। लहँगा की जगह चादर पहिनकर सारी ओढ़ ली। जल्दी के मारे चोली हाथ में लिये हुए उठ धाईं और अपने घरवालों का कहना किसी ने नहीं माना।

दो०प्रीतिलगी हरिनाथसों तनमनकी सुधिनाहिं। जितने भूषणबाँह के पहिरे जाँघनमाहिं॥
याविधिजोजाविधिहतीं सुधिबुधिसबैबिसार। भाजिचलीं व्रजराजपहँलाजकाजधरिद्वार॥

एक गोपी अपने पति के पास सोई थी वह उठकर जब भाग चली और उसके पुरुष ने उसे बरजोरी पकड़कर नहीं जाने दिया तब वह व्रजबाला मुरलीमनोहर के ध्यान में अपना तनु छोड़कर दिव्यरूप से

सब गोपियों के पहिले श्यामसुन्दर के पास जा पहुँची। वैकुण्ठनाथजी ने उसकी प्रीति व भक्ति देखकर उसे मुक्ति दी। इतनी कथा सुनकर परीक्षित बोले कि महाराज! उस गोपी ने श्रीकृष्णजी को परमेश्वर जानकर प्रीति नहीं की, कामदेव के वश होकर अपना प्राण दिया था, फिर किस तरह मुक्ति पाई। यह वचन सुनते ही शुकदेवजी क्रोधित होकर बोले—हे राजन्! कई बेर मैंने तुझे समझाया, पर तू विश्वास नहीं रखता, सुनो। परमेश्वर निर्गुणरूप सब जीवों के मालिक होकर सदा एकरस रहते हैं। जिस तरह पारस पत्थर से लोहा जान या अजान में छूकर सोना हो जाता है और अमृत पीने से मनुष्य नहीं मरता उसी तरह परमेश्वर की ओर मन लगानेवाला जीव मुक्त होता है। देखो, जिस शिशुपाल ने परमेश्वर को ऐसा दुर्वचन कहा और जो पूतना व वत्सासुर आदि दैत्य उनको मारने आये थे उन्हें परमेश्वर ने कैसी गति दी। नारायण शत्रुता व मित्रता से कुछ प्रयोजन नहीं रखते, केवल अपनी ओर मन लगाये रहने से प्रसन्न होते हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ किसी तरह पर उनको याद करे, जो कोई उनका ध्यान व स्मरण मरते समय करता है उसकी मुक्ति होने में कुछ सन्देह नहीं रहता।

दो०जो शिशुपाल महा अधम हरि को निन्दनहार। ताहू को निज पुर दियो ऐसे अधम उधार॥

जो मनुष्य प्रकट में छापा तिलक लगाकर लोगों को दिखाने के वास्ते जप व भजन करते हैं और अन्तःकरण से प्रीति नहीं रखते उनकी मुक्ति होना कठिन है। सच्चे मन से भक्ति व प्रीति रखनेवाले मुक्तिपदवी पर पहुँचते हैं। जो लोग श्रीकृष्णजी की दया से भवसागर पार उतर गये, थोड़ा-सा उनका हाल सुनो। नन्द व यशोदा ने मोहनप्यारे को अपना पुत्र जाना। गोपियों ने उनको महासुन्दर देखकर अपना पति बनाना चाहा। राजा कंस ने अपना शत्रु समझा। ग्वालों ने मित्र जाना। पाण्डव और यदुवंशियों ने अपना नातेदार व भाई-बन्द समझा। योगी व मुनीश्वरों ने परमेश्वर भाव समझा। उन सबको नारायणजी ने कृतार्थ किया। एक गोपी उनसे प्रीति लगाकर मुक्त हुई तो क्या आश्चर्य की बात है। यह वचन सुनते ही परीक्षित ने विनय किया कि महाराज!

अब मेरा सन्देह छूट गया, अब कृपा करके आगे कथा सुनाइए। शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! राधाप्यारी आदि सोलह हजार व्रजबाला बड़े उमंग से केशवमूर्ति के पास जा पहुँचीं। उस समय मनहरणप्यारे की शोभा कैसी मालूम देती थी जैसे तारों में चन्द्रमा रहते हैं। मोहनीमूर्ति की छवि देखते ही सब गोपियाँ उन पर मोहित होकर जब आँखों की राह रूप रस पीने लगीं तब वृन्दावनविहारी ने पहले उनकी कुशल पूछकर फिर रुखाई से कहा कि तुम्हारे आने से मैं प्रसन्न हुआ, जो कुछ कहो सो करूँ। पर रात्रि के समय तुम सब युवती स्त्रियाँ अपने कुल व परिवार की लाज छोड़कर उलटा-पलटा शृंगार किये बौरहों के समान घबराई हुई यहाँ क्या करने आई हो।

दो०तुम अपनो घरछोंड़िकै क्योंआईं बन माहिं। रैनि समय घर की बधू घरतजि कहूँ न जाहिं।।

तुम्हारे घरवाले तुमको ढूँढ़ते होंगे। कदाचित् तुमको चाँदनी रात में भोग व विलास की इच्छा हुई थी तो अपने-अपने पति के साथ करतीं। जो प्रेम की राह मुझे देखने आई हो तो मैं भी अपने साथ प्रीति करने-वाले से नेह रखता हूँ। स्त्री को अपने पति की आज्ञा पालन करना और लोकलाज का डर रखना, जप व तप के बराबर होता है। वेद व शास्त्र में ऐसा लिखते हैं कि जो स्त्री अपने पति को अन्धा, काना, कुबड़ा, कोढ़ी, कुरूप, लूला, लँगड़ा व निर्धन, कुटिल, लम्पट, जुआरी, रोगी कैसा ही अवगुणों से भरा हो परमेश्वर तुल्य समझकर प्रेमपूर्वक उसकी टहल-सेवा करती हैं वह संसार में मनोकामना पाकर अन्त समय मुक्त होती हैं और उन्हें सब कोई कुलवन्ती कहता है। और जो स्त्री अपने पति को परमेश्वर के तुल्य न जानकर उसकी निन्दा करती हैं या उसे दुर्वचन कहकर सेवा में नहीं रहतीं या दूसरे पुरुष से प्रीति रखती हैं उनको लोकनिन्दा का डर लगा रहकर मनवांछित फल नहीं मिलता और मरने के उपरांत नरक में जाकर दुःख भोगना पड़ता है। जैसा हम दूर से तुम्हारी भक्ति व प्रीति करने में प्रसन्न थे वैसा यहाँ आने में खुश नहीं हुए, क्योंकि रात को यहाँ चले आने में तुम्हारे घरवाले खेद मान-कर सब व्रजवासी हमें व तुम्हें बदनाम करेंगे। जो कुछ तुमने किया

सो अच्छा हुआ, अब चाँदनी व वन व यमुना की शोभा देख चुकीं, इसलिए घर जाकर अपने-अपने पति की सेवा व टहल प्रेमपूर्वक करो, जिसमें तुम्हारा कल्याण हो।

दो०निजपतितजिपरपतिभजेतियकुलीननहिंहोय। मरेनरक जीवतजगतभलोकहैनहिंकोय।।

सो०युवतिनको पतिदेव कहत वेद मैं भी कहौं। करो उन्हीं की सेव जो तुम चाहत सुख लहन।।

हे राजन्! ज्ञानरूपी यह वचन सुनते ही सब व्रजबाला सोच में पड़ गईं, उनकी यह दशा हो गई कि शिर नीचा करके ठण्ढी-ठण्ढी श्वास लेकर नख से पृथ्वी खोदने लगीं और चुपचाप चित्रकारी-सी रहकर विरहसागर में डूब गईं। आँसू गिरने से आँखों का सुरमा व काजल बहकर गालों पर चला आया। किसी की बेसर टूटकर गिर पड़ी। पहिले मारे खुशी के जो उनका मुखारविन्द ललित था सो पीला हो गया।

दो०निठुरवचनसुनिश्यामकेयुवतिउठींअकुलाय। चकितभईंमनगुनरहींमुखकछुवचननआय।।

उनमें जो व्रजबाला चतुरी थीं वह विरह की अग्नि में जलकर यों बोलीं—हे श्यामसुन्दर! तुम बड़े ठग हो, पहिले तुमने मुरली बजाते समय सब किसी का नाम लेकर अपने पास बुलाया और अचानक में हमारा ज्ञान, ध्यान, तन, मन तुम्हारी मोहनीमूर्ति व वंशी की ध्वनि ने हर लिया, अब तुम कठोरता से वेद व शास्त्र की बात समझाकर हमारे प्राण लेना चाहते हो। हे मोहनप्यारे! जैसे रात को तुमने हमें बुलाया है वैसे हमारी इच्छा पूर्ण करो। हम लोग वेद-शास्त्र की मर्याद और कुलपरिवार की लोकलाज छोड़कर तुम्हारे चरणों में, जिनका ध्यान देवता व ऋषीश्वर करते हैं, प्रीति लगाया है। आदि पुरुष परमेश्वर को छोड़कर हम ऐसा धर्म नहीं सीखतीं कि संसारी मायाजाल में फँसकर नष्ट होवें। संसारी माया में फँसे रहने से किसी का कल्याण नहीं होता। हमारा मन तुम्हारे प्रेम में उलझ रहा है, इसलिए गृहस्थी के काम में नहीं लगता। तुम्हारे चरण छोड़कर एक पग जाना हमें कठिन है, इतनी दूर घर पर किस तरह जावें।

दो०अबतुमकोयह उचितनहिं सुनोश्याम सुखराश। मनहमरोअपनायकैहमकोकरतनिराश।।

सो० पाप पुण्य कह नाथ यह तो हम जानैं नहीं। बिकीं तुम्हारे हाथ अधरामृत के लोभ से।।

हे महाप्रभु ! हम लोग अबला अनाथ कुछ झूठ व कपट न जानकर तुम्हें अपना पति मनसा वाचा समझती हैं। आपकी मृदु मुसुकान ने सब व्रजबालों को मोह लिया। दूसरे तुम्हारी सहायक मुरली ऐसी मिली है, जिसकी ध्वनि सुनने से हमारा चित्त ठिकाने नहीं रहा। तुम्हारे चरणों की प्रीति करनेवाला मनुष्य कुलपरिवार का प्रेम व लोकनिन्दा का कुछ डर नहीं रखता। सो हे अन्तर्यामी व्रजराज ! शरण आये की लाज तुम्हारे हाथ है। हम ने बड़ों के मुख से ऐसा सुना था कि जो तुमसे प्रीति रखता है उसके साथ तुम भी प्रेम करते हो। सो अब यह वचन झूठ मालूम हुआ, क्योंकि हम लोग तुम्हारे स्नेह से इस समय वन में आईं और तुम अपने पास से हमें देखते हो। ऐसा भी लोग कहते हैं कि एक मन का हाल दूसरा मनुष्य जिससे वह प्रीति करे, जानता है सो यह भी तुमने कहने के वास्ते बना दिया है, नहीं तो हमारी प्रीति की दर्द का हाल तुम जानते। इसके सिवा वेद व शास्त्र के अनुसार जब तक तुम्हारा चाहनेवाला संसारी माया से अपना मन विरक्त नहीं करता तब तक तुम्हारे पास उसका पहुँचना कठिन है। उसी शास्त्र के प्रमाण से हम लोग भी अपने घरवालों की प्रीति छोड़कर तुम्हारे शरण आईं हैं। कदाचित् तुम शास्त्र को झूठा करके हमारे चाहने पर भी हम लोगों से प्रीति नहीं रखते तो हमारा मन जो तुमने हर लिया है सो फेरि देव, नहीं तो अपनी दासी हमें बनाओ। कदाचित् प्रकट में हमें छोड़ दोगे तो हमारा वश नहीं चलता, पर हमारे हृदय में जो तुम्हारा वास आठों पहर रहता है वहाँ से भागकर कहाँ जाओगे।

दो० कर छटकाये जात हौ अबल जानि के मोहिं । हृदयन से जब जाहुगे मर्द बखानों तोहिं ।।

जिस तरह तुम्हारे चरणों की सेवा लक्ष्मीजी वैकुण्ठ में करती हैं उसी तरह हमको तुम्हारे चरणारविन्द प्यारे हैं। जिन चरणन की धूरि मिलने के लिए ब्रह्मा व महादेव आदि सब देवता चाह रखते हैं वे चरणकमल हम किस तरह छोड़ दें। इस मोहनीमूर्ति की हम लोग दासी होकर अपना तन मन धन इस पर न्यौछावर समझती हैं। तीनों लोकों में कौन ऐसा जीव जड़ व चैतन्य है जो तुम्हारी छवि देखने व वंशी की

ध्वनि सुनने से मोहित न हो जावे। हे व्रजनाथ! तुम्हारा नाम दीन-दयालु है इमसे अधिक कोई दूसरा संसार में दीन न होगा, इसलिए दयालु होकर हमारी इच्छा पूर्ण कीजिए, नहीं तो तुम्हारे विरह की अग्नि से अपना तनु जलाकर मरती हैं। मरते समय यह इच्छा करेंगी कि सौ जन्म तक तुम्हारी दासी होकर सेवा किया करें। तब हमारे मरने का तुम्हें दोष होगा।

दो०विरहविकललखिगोपियनकृपासिंधु भगवान।उमँगिउठेदृगभरिलियेदीनवचनसुनिकान।।

जब केशवमूर्ति ने गोपियों की सच्ची प्रीति देखी तब बड़े प्रेम से सब व्रजबालों को अपने पास बैठाकर कहा कि कदाचित् तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो मेरे साथ रासमण्डल करो। यह वचन सुनते ही सब गोपियाँ इस तरह प्रसन्न हो गईं जिस तरह मछली को गर्म बालू पर से उठाकर कोई पानी में डाल दे। फिर वृन्दावनविहारी ने योगमाया को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम हमारी रासलीला करने के वास्ते एक बहुत अच्छा स्थान यमुना के किनारे तय्यार करके वहाँ बनी रहो। इन व्रजबालों को भूषण व वस्त्र आदि जिस वस्तु की इच्छा हो सो देव। यह वचन सुनते ही योगमाया ने उस समय जब एक चबूतरा गोल व बहुत बड़ा रत्नजटित तय्यार कर दिया और उसके चारों ओर केले के खम्भे गाड़कर मोती व फूलों की झालर उसमें लगाया तब मोहनप्यारे ने राधा आदि गोपियों समेत वहाँ जाकर देखा तो उस चबूतरे की शोभा चाँदनी से चौगुनी दिखलाई दी। चारों ओर यमुनाजी की सफेद बालू बिछावन के समान थी। एक ओर वृक्षों की हरियाली बहुत सोहावनी दिखलाई देती थी। उस चबूतरे के निकट हरिइच्छा से अनेक तरह के भूषण व वस्त्र व बाजनों का ढेर लग गया। व्रजबालों ने योगमाया की आज्ञानुसार वहाँ जाकर इच्छापूर्वक गहना व कपड़ा पहन लिया। सोलहों शृंगार करने के उपरांत अनेक तरह के बाजा लेकर श्यामसुन्दर के पास आईं और कामवश होकर उस चबूतरे पर गाने-बजाने लगीं। तब श्रीकृष्णजी ने राधाप्यारी के साथ बीच में अपने निज रूप से रहकर और सब दो-दो गोपियों में अपना एक-एक रूप प्रकट कर दिया। उस समय केशवमूर्ति गोपियों के बीच में इस तरह सुन्दर मालूम देते थे जिस तरह सुनहली

माला के दानों में नीलमणि रहती है। जब श्यामसुन्दर ने व्रजबालों के गले में हाथ डालकर मुख चूमने व गाल छूने के उपरांत उन्हें छाती से लगाया और वंशी बजाकर अनेक राग व रागिनी उनको सुनाया तब गोपियों का कलेजा जो विरह की अग्नि से जल रहा था मोहनप्यारे के चन्द्रमुख के स्पर्श करने से शीतल हो गया। जब घूमते समय वृन्दावन-विहारी व्रजबालों के पीछे-पीछे परछाहीं की तरह फिरते थे तब श्यामा आदि गोपियाँ उनकी छवि व सुन्दरता पर मोहित हो जाती थीं। कभी मुरलीमनोहर अपनी आँख व भौं मटकाकर उन्हें प्रसन्न करते, कभी उनका गाना व बजाना सुनकर आप आनन्द होते थे। कोई व्रजबाला उनकी मुरली छीनकर आप बजातीं और कोई स्वर मिलाकर गाने लगती थीं।

दो० हँसे जभी सुख पाइकै चन्द्रमुखिन की ओर। प्रेम प्रीति रसवशभये प्रीतम नवलकिशोर ॥

हे राजन्! उस समय वहाँ ऐसा आनन्द हो रहा था जिसे ब्रह्मा व महादेव आदि देवता देखकर कहते थे कि व्रजवासियों का बड़ा भाग्य है। देखो, जिस परब्रह्म-परमेश्वर का दर्शन हम लोगों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता वह वैकुण्ठनाथ सब व्रजबालों के साथ रास व विलास करते हैं।

दो०धनिधनिकहिवर्षैं सुमनमुदितसकलसुरनारि। धनिमोहनधनिराधिकाधनिहैंगोपकुमारि॥

हे परीक्षित! जब गोपियों ने मनहरणप्यारे की ऐसी कृपा अपने ऊपर देखी तब अभिमान से कहने लगीं कि हमारे बराबर सुन्दर कोई दूसरी स्त्री न होगी, इस वास्ते नन्दकिशोर हम लोगों के वश होकर हमें बहुत प्यार करते हैं। त्रिलोकीनाथ को हमने ताली बजाकर नचाय दिया। अब हमारी आज्ञा के बिना कुछ नहीं करेंगे। ऐसा विचारकर एक गोपी कटाक्ष करके बोली—हे नन्दलाल! मेरे पाँव नाचते-नाचते दुखने लगे। कोई उनका हाथ पकड़कर बैठ गई और कोई कन्धा थाँभकर खड़ी हो गई।

दो०याहीविधिव्रजसुन्दरिनदेतपरमसुखश्याम। लखिपतिगतिआधीन अतिभईगर्विताबाम ॥

सो०परमप्रेमकीखान रूपशीलगुणआगरी। क्यों न करें अभिमान जिनके वश त्रिभुवनपती ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब गोपियाँ लज्जा व धर्म छोड़कर मुरलीमनोहर को पाप की दृष्टि से देखने लगीं तब गर्वप्रहारी भगवान् ने विचारा कि ये सब व्रजबाला अज्ञान से मुझे

अपना पति समझकर अंग से लपटाती हैं। मुझे अपने भक्तों की और सब बातें उत्तम मालूम होती हैं, पर अभिमान अच्छा नहीं लगता, इसलिए मैं इनको अकेली छोड़कर अंतर्धान हो जाऊँ तब इनका गर्व टूट जायगा। देखें, मेरे जाने के उपरांत ये लोग वन में क्या करती हैं।

दो०उन जान्यो हरि वश कियो लाईं मन अभिमान। प्रभु अन्तर्यामी भये क्षण में अन्तर्धान ॥

सो० यह विचारि जिय जान लै वृषभानु कुमारि सँग। ह्वै गये अन्तर्धान व्रजवासी प्रभुसँगते ॥

—:०:—

तीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का गोपियों करके खोजना।

राजा परीक्षित इतनी कथा सुनकर बोले—श्यामसुन्दर के अन्तर्धान होने पर गोपियों की क्या दशा हुई? शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब रासमण्डल से केशवमूर्ति श्यामा समेत अन्तर्धान हो गये तब सब गोपियों का सुख व विलास स्वप्न के धन के समान जाता रहा और सब व्रजबाला इस तरह व्याकुल हो गईं जिस तरह हरिणी अपने झुण्ड से विलग होने पर घबरा जाती है। जब चित्त ठिकाने हुआ तब आपस में कहने लगीं।

क० बाँसुरी की धुनिसुनि आईं तजि लाज काज सोई व्रजराज साज समय बितै गये।
मन्द मुसकाय के लोभाय मन हाय हाय रूप रस प्यास प्रेम चित्त सो चितै गये ॥
कहैं बलदेव नीच बान सो हैं मारी तान लेके तुम प्रान लाज हमरी रतै गये।
टोह न मिलत कछू चाह न हमारी श्याम मोहनी दिखाय रूप मोहन कितै गये ॥

दूसरी गोपी बोली कि यह चित्तचोर इसी वृन्दावन के कुंजों में कहीं छिपा होगा। यह वचन सुनते ही सब व्रजबाला श्यामसुन्दर का नाम ले-लेकर चारों ओर यमुना के किनारे व वन में पुकारकर कहने लगीं—हे प्राणपति! हमें छोड़कर तुम कहाँ चले गये। जब गोपियाँ उनकी खोज में दौड़ते-दौड़ते थक गईं और रोते-रोते आँखों में अँधेरा छा गया तब उनकी वह दशा हो गई जैसे साँप मणि खो जाने से घबरा जाता है और मछली बिना पानी के तड़फने लगती है।

दो०यहिविधिसबखोजतफिरेंविरहातुरव्रजबाल। भई विकलपावतनहीं कितखोजेंनँदलाल ॥

उस महादुःख के समय एक गोपी बोली—हे सखी! मनहरणप्यारे

मुझे छटकाकर कहाँ चले गये। अभी तो मेरे गले में बाँह डाले खड़े थे। तुम लोगों में से किसी ने उनको जाते देखा है? यह सुनकर दूसरी व्रजबाला, जो विरह की अग्नि में जल रही थी, हाय मारकर कहने लगी—अरी बावरी मैं उनको देखती तो क्यों जाने देती। हम लोग तो उनकी सेवा मनसा वाचा कर्मणा करती थीं न मालूम कौन ऐसा अपराध हुआ जो आधी रात को इस वन में अकेली छोड़कर चले गये। इसी तरह सब व्रजबाला अपना-अपना दुःख एक दूसरी से कहकर बहुत विलापकर बोलीं—हे व्रजनाथ! हम लोग अबला अनाथ को क्यों इतना दुःख देते हो। हमने अपना तन मन दोनों तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर दिया है, इसलिए हम लोगों को बिना दाम की दासी समझकर जल्दी अपना दर्शन दो। जब बहुत ढूँढ़ने और विलाप करने पर भी मोहन-प्यारे का कहीं कुछ पता नहीं मिला तब बड़े शब्द से रुदन करके बोलीं हे परमेश्वर! हम लोग अबला अनाथ कहाँ जाकर उन्हें ढूँढ़े, किससे अपना दुःख कहें और कौन ऐसा उपाय करें, जिसमें हमारा चित्त चुराने-वाला मिल जावे। यहाँ तो कोई बटोही भी नहीं दिखाई देता जिससे उनका पता पूछें। जिस समय गोपियाँ इसी तरह बिलाप कर रही थीं उसी समय एक सखी बोली कि सुनो प्यारियो! इस वन में जितने वृक्ष व पशु-पक्षी देखती हो, यह सब पिछले जन्म के ऋषि व मुनि हैं, इन्होंने कृष्णलीला का सुख देखने के लिए व्रज में जन्म लिया है। इन लोगों ने श्यामसुन्दर को अवश्य देखा होगा, इनसे उनका हाल पूछो तो मालूम हो सकता है। यह सुनकर सब व्रजबाला बौरहों के समान पशु और वृक्षों से पूछने लगीं। अभी श्रीकृष्ण हमारा मन चुराकर मारे डर के भाग गये हैं क्या तुमने देखा था। दूसरी व्रजबाला बोली कि हे गूलर, वट, पीपर, कटहल, बेर, पाकर, मौलसिरी, जामुन, आम, इमली, कदम, बेल, फालसा आदि के वृक्ष! परोपकार के लिए तुम लोग मृत्युलोक में जन्म लेकर अपनी छाया, फल और फूलों से सबको सुख देते हो, सो हम लोगों का मन हरकर नन्दलालजी अन्तर्धान हो गये, तुम्हें दिखाई तो नहीं दिये थे? दूसरी ने कहा कि हे नींब, कचनार, चम्पा के वृक्ष! तुमने कहीं

नन्दकुमार को देखा है? दूसरी ने पूछा कि हे तुलसी! तुम श्यामसुन्दर को बहुत प्यारी होकर वे तेरे बिना भोजन नहीं करते, इसलिए उनका हाल तुझे अवश्य मालूम होगा।

दो० श्रीतुलसी को देखिकै जियकी कहत सुनाय। माखन प्रभु की प्राणप्रिय प्रीतम देव बताय ॥

दूसरी व्रजबाला ने कहा कि हे अनार! तेरे दाँत निकले रहने से मुझे मालूम होता है कि तूने नन्दलाल को अवश्य देखा होगा। दूसरी बोली कि ऐ केला! तेरे नरम-नरम पत्तों पर सदा मनहरणप्यारे भोजन किया करते थे उन्हें देखा हो तो दया करके बतला दे। अब उनके विरह का दुःख हमसे नहीं सहा जाता। दूसरी कहने लगी कि हे अशोक के वृक्ष! तेरा नाम परमेश्वर ने इसी लिए अशोक रक्खा है कि तू दूसरों का शोक मिटा दे। सो हम लोग श्रीकृष्ण के विरहसागर में डूब रही हैं, तूने नन्दकिशोर को देखा हो तो बतलाकर हमारा शोक छुड़ा दे, नहीं तो आज से अपना नाम अशोक मत रख। दूसरी ने कहा कि हे चन्दन! तू नन्दकुमार को बहुत प्यारा है, तुझे वे अपने अंग में लगाते थे, तू उन्हें जानता हो तो बतलाकर यश उठा ले।

दो० माखनप्रभु जिनद्रुमनसों परसत श्यामशरीर। तिनको भेंटत गोपिका मेटत उरकी पीर ॥

दूसरी बोली कि हे जुही, मालती, नेवारी और चमेली के फूल! तुमने इस तरफ कन्हैया को जाते देखा था? तुम्हारा रूप देखने से मालूम होता है कि वे अपना हाथ तुम पर फेरते गये हैं, इसलिए तुम लोग प्रसन्नता से फूले हुए हमारी हँसी करते हो। दूसरी बोली कि ऐ केतकी के फूल! तेरी सुगन्ध लेने के लिए अनेक देश के भौंरे आते हैं, सो हम दुखियों पर दयालु होकर उनसे श्यामसुन्दर का पता पूछकर हमें बतला दे। दूसरी ने कहा कि हे पृथ्वी! तेरे ऊपर केशवमूर्ति सदा से बड़ी प्रीति करते आये हैं। जब तुझको हिरण्याक्ष दैत्य पाताल में ले गया तब वे वाराहरूप धरकर अपने दाँतों पर उठा लाये थे और वामन अवतार लेकर तुझे राजा बलि से दान लिया था, इसलिए तेरे बराबर दूसरे का भाग्य नहीं हो सकता। तुझे उनका पता चरण धरने से अवश्य मालूम होगा, हमें अपने ऊपर न्योछावर समझकर शीघ्र उनका हाल बतला दे।

दो० चरणकमल जगदीश के सदा रहे तुम शीश । माखन ईश बताइकै हमसे लेहु अशीश ॥

हे राजन्! जब बहुत पूछने पर भी किसी ने श्यामसुन्दर का कुछ पता नहीं बताया तब और अधिक विलाप करके चारों ओर उन्हें खोजने लगीं। उनकी दशा देखकर उस वन के सब पशुपक्षी और वृक्ष इतना सोच करते थे जिनका हाल वर्णन नहीं किया जाता। उसी समय एक गोपी ने श्रीकृष्णजी के पाँव का चिह्न देखकर सब व्रजबालों को दिखाया तो वह आकर देखते ही सबों ने वहाँ की धूरि उठाकर अपनी आँखों में लगाया और उस पृथ्वी को चूमकर बोलीं कि भला उस चित्तचोर का पता तो मिला कि इसी ओर को गया है फिर सब गोपियाँ उस चरण का पता देखती हुई आगे चलीं। जब थोड़ी दूर और बढ़ीं तब एक स्त्री के पाँव का चिह्न भी दिखलाई पड़ा। उसे देखकर उन्हें और अधिक डाह उत्पन्न हुई। वे बड़ी करुणा से आपस में कहने लगीं कि देखो, श्यामा उन्हें बहुत प्यारी थी जो उसे अपने साथ ले गये हैं। उसने पिछले जन्म महादेव व पार्वती का बड़ा तप किया था जो अकेले में श्यामसुन्दर के साथ सुख उठाती है और हम लोग उनके विरह में रात को भटकती फिरती हैं। दूसरी सखी बोली कि श्यामसुन्दर का ध्यान व स्मरण करनेवाला मुक्ति पदवी पाता है पर श्यामा की बराबरी वह भी नहीं कर सकता, क्योंकि श्यामा व नन्दकुमार का मुख चूमकर अपना जन्म सफल करती है।

दो० वह ऐसी बड़ भाग्य है सुन्दरि सुघरि सुजान। माखनप्रभु के संग में अधर करै मधुपान ॥

इसी तरह सोच करती हुई थोड़ी दूर और आगे जाकर क्या देखा कि वहाँ राधाप्यारी के पाँव का चिह्न नहीं है, केवल श्यामसुन्दर के चरणों का आकार दिखाई दिया। तब आपस में कहने लगीं कि मालूम होता है कि यहाँ से मोहनप्यारे श्यामा को स्नेहवश कन्धे पर चढ़ाकर ले गये हैं। थोड़ी दूर और आगे जाने पर घास रहने के कारण पाँव का चिह्न नहीं दिखाई दिया। जब अधिक व्याकुल होकर वहाँ से फिरने लगीं तो एक जगह नरम-नरम पत्तों के बिछौने पर राधाप्यारी का जड़ाऊ शीशा पड़ा हुआ पहिचानकर एक गोपी ने कहा कि हे सखी! मन-हरणप्यारे ने यहाँ बैठकर राधा का शृंगार करने के उपरान्त उसकी चोटी

फूलों से अपने हाथ गूँधी थी। उस समय पीछे बैठने से केशवमूर्ति का मुखारविन्द श्यामा को नहीं दिखलाई दिया तब उसने शीशा लेकर देखा था, जिसमें उनकी मोहनीमूर्ति मुझे दिखलाई दे और मेरा चन्द्र-मुख उन्हें देख पड़े। यह बात सुनते ही सब व्रजबाला सवतियाडाह से और अधिक व्याकुल होकर जब मोहनप्यारे को ढूँढ़ती हुई थोड़ी दूर और आगे गईं तो क्या देखा कि राधाप्यारी वन में अकेली खड़ी हाथ पसारे ऐसा रो रही है जैसे साँप मणि खो जाने से विकल हो जावे। उसका विलाप देखकर उस वन के सब पशु-पक्षी और वृक्ष रोते थे। श्यामा रुदन करके कहती थी कि हे प्राणप्यारे! रात को मुझे वन में अकेली छोड़कर कहाँ चले गये, अपनी दासी समझकर मेरी सुधि ले लो। राधा को देखते ही सब व्रजबाला ऐसी प्रसन्न हुईं, जैसे किसी का गया हुआ धन आधा मिल जावे।

दो० जिततिततेधाईं सबैव्रजसुन्दरिअकुलाय। व्याकुललखिअतिलाड़िलीलीन्होंकण्ठलगाय ॥

सो० कहाँ गये गोपाल बारबार पूछत सबै। मूर्च्छि पड़ी तेहि काल मुखते वचन न आवही ॥

जब ललिता आदि गोपियों को देखने से राधा का रोना कुछ कम हुआ तब ठण्ढी साँस लेकर बोलीं—

दो० क्या पूछो मुझसों सखी मोहन की निठुराय। नहिं जानों वह कित गये मोहूँ को छटकाय ॥

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! राधा को छोड़ने का यह कारण था कि जब केशवमूर्ति ने राधा समेत अन्तर्धान होकर फूलों का अनेक गहना बनाकर श्यामा को पहिनाया और उसको भोग व विलास करके बहुत सुख दिया तब राधा ने अभिमान से विचारा कि मेरे बराबर कोई दूसरी स्त्री सुन्दर न होगी। मोहनप्यारे को मैंने वश कर लिया, उन्होंने केवल मेरे लिए व्रजबालों को बुलाकर रासमण्डल किया था। इसी वास्ते सबको छोड़कर मुझे अपने साथ ले आये हैं। ऐसा समझकर श्यामा बोली कि हे मनहरणप्यारे! मेरे पाँव नाचने व राह चलने से दुखने लगे, इसलिए मुझसे पैदल नहीं चला जाता। मुझे अपने कन्धे पर चढ़ाकर ले चलो। यह वचन सुनते ही गर्वप्रहारी भगवान् ने जाना कि इसने मेरी महिमा न जानकर अभिमान किया, इसलिए कुछ दण्ड

इसको देना चाहिए। ऐसा विचारकर श्यामसुन्दर ने अपनी पीठ झुका दी और मुसकराकर राधा से कहा कि आवो, मेरे कन्धे पर चढ़ो। जैसे ही श्यामा ने हाथ पसारकर काँधे पर बैठना चाहा वैसे ही व्रजनाथ अन्तर्धान हो गये और वह उसी तरह हाथ पसारे खड़ी रह गई।

दो०चकितभईजबनागरी गये कहाँभजि श्याम। मनहीमन पछितात अति भूलीतनसुधिवाम॥
सो०मैं कीन्हों अभिमान नारि बुद्धिओछी सदा। वह प्रिय परम सुजान जानलईमम जीय की॥
दो०माखनप्रभु के विरह दुख कासों वरणी जाय। अपनोदोष विचारि कर बारबार पछिताय॥

हे राजन्! जब गोपियों ने धैर्य देकर राधा से पूछा तब उसने अपने अभिमान करने और श्यामसुन्दर के अन्तर्धान होने का हाल ज्यों का त्यों कह सुनाया। व्रजबालों ने श्यामा को भी अपने समान विरह-अग्नि में जलते हुए देखा तब अति विलाप करके बोलीं—हे व्रजनाथ! तुम्हारे वियोग में हमको एक क्षण कल्प के समान मालूम होता है और प्राण निकलने चाहते हैं, इसलिए दयालु होकर दर्शन दो। जब बहुत ढूँढ़ने पर भी कहीं उनका पता न मिला तब निराश होकर अति विलाप करने लगीं।

क० विरहानल बाढ़ी सब डाढ़ी सी गिरीं भूमि गाढ़ी पीर बाढ़ी निज हाथ धुनैं माथहीं॥
मोहन के हेत सों अचेत ह्वै पुकार उठीं अब सुधि लेत न हमारी प्राणनाथहीं॥
कैसी गति कीन दीनसुखद प्रबीन कान्ह कहैं बलदेव मीन जैसे बिन पाथहीं॥
दुसह समोई दोऊ दीनन से खोई अति बिरह में भोईं गोपीं रोईं एक साथहीं॥

उस समय एक गोपी जो चतुरी थी बोली—सुनो प्यारियो! इस रोने व दौड़ने से कुछ अर्थ नहीं निकलता। जब वही करुणानिधान दयालु होकर अपना दर्शन दें तब वह मिल सकते हैं नहीं तो उनका पता लगना कठिन है। इसलिए सब लोग एक जगह बैठकर उनका ध्यान व स्मरण करो तो विश्वास है कि वे दुःखभंजन दयालु होकर दर्शन देंगे। यह वचन सुनते ही सब व्रजबाला यमुना के किनारे जहाँ श्याम-सुन्दर से विलग हुई थीं जाकर उनकी चर्चा आपस में करने लगीं। उस चबूतरे को देखकर बोलीं—हे मनहरणप्यारे! जब से तुमने व्रज में जन्म लिया तब से सदा हमारी रक्षा करके हमें सुख दिया, आज क्यों इतने कठोर व निर्दयी होकर दुःखसागर में डुबाते हो। जो हमारे प्राण

तुमको लेना था तो गोवर्धन पहाड़ हमारे ऊपर क्यों नहीं गिरा दिया। ऐसे जीने से मरना अच्छा है। फिर गोपियों ने योगमाया को जो अनेक तरह का रूप धारण कर लेती थी, अपने साथ ले लिया और आपस में श्यामसुन्दर की बाललीला करना आरम्भ किया। उसमें एक व्रज-बाला ने आप श्रीकृष्ण बनकर योगमाया को पूतना बनाया और दूध पीते समय छाती की राह उसके प्राण निकाल लिया। जब दूसरी गोपी यशोदा बनकर दही मथने लगी और कृष्णरूप व्रजबाला ने दही व मट्ठे का बर्तन तोड़कर ग्वालरूप गोपियों समेत माखन खाना आरम्भ किया तब यशोदा ने क्रोध करके उन्हें ऊखल से बाँध दिया। योगमाया यमलार्जुन बनी थी और कृष्णरूप गोपी ने यमलार्जुन को उखाड़ डाला। जब इसी तरह योगमाया ने वत्सासुर, बकासुर, तृणावर्त, अघासुर राक्षस बनकर कृष्णरूपी व्रजबाला को मारना चाहा तब श्यामरूप गोपी ने उसे मार गिराया। फिर योगमाया ने बहुत-सी गौवें वहाँ प्रकट कर दिया तो कृष्णरूप गोपी उन्हें चराने लगी। जब योगमाया ने काली-नाग बनकर फुफकार मारना आरम्भ किया तब केशवरूप व्रजबाला ने उसको नाथ डाला। जब दूसरी गोपी ने बहुत कपड़ा लपेटकर गोवर्धन पहाड़ बना दिया तब कृष्णरूप व्रजबाला ने उसे अँगुली पर उठा लिया और पानी की जगह उस पहाड़ पर वृक्षों के पत्ते बरसाया। जब वृक्ष हिलने और पत्तों के गिरने से शब्द होता था तब सब व्रजबाला उसे मनहरणप्यारे के पाँव का खटका समझकर कहती थीं कि हे श्यामसुन्दर! देखो, तुम्हारी याद व चर्चा करके हम लोग अपने-अपने मन को धैर्य देती हैं, अब तुम जल्दी अपनी मोहिनीमूर्ति दिखाओ।

दो० माखनप्रभुके रूपगुण ध्यान धरे जो कोइ। मन्द होय दुखसोच सब बहु सुख पावै सोइ॥

हे राजन्! उस समय गोपियों ने श्रीकृष्णजी का बालचरित्र करके उसमें ऐसा मन लीन कर लिया कि अपने तनु व वस्त्र की सुधि भूल गईं।

—:○:—

इकतीसवाँ अध्याय।

केशवमूर्ति के विरह में गोपियों का विलाप करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब फिर गोपियों का चित्त ठिकाने हुआ तब यमुना के किनारे बैठकर कहने लगीं कि हे प्रीतम! जब से तुम व्रज में आये तब से नित्य नये सुख हम लोगों को दिखलाये। जिन हाथों से तुमने लक्ष्मी का दान लेकर उन्हें अपने चरणों में वास दिया है वही हाथ अपनी दासियों के मस्तक पर रक्खो।

क० जाही हाथ धनुष चढ़ायो है जु सीतापति जाही हाथ रावण सँघारि लंक जारी है।
जाही हाथ तारचो औ उबारचो हाथ हाथी गहि जाही हाथ सिंधुमथिलक्ष्मीकोनिकारीहै॥
जाही हाथ गिरवर धारि गिरधारी भयो जाही हाथ नन्दकाज नाथ्यो नाग कारी है।
हौं तो मैं अनाथ हाथ जोरे कहौं दीनानाथ वाही हाथ मेरो हाथ गहिबे की बारी है॥

जिस दिन से हम लोगों ने तुम्हारी मोहनीमूर्ति देखी है उसी दिन से हमारा ध्यान व प्राण तुम्हारे चरणों के पास रहकर संसारी व्यवहार में नहीं लगता। सो हमें महादीन व दुःखी जानकर अपना चन्द्रमुख दिखलाओ। हमारी आँखें जो रोते-रोते जल रही हैं उन्हें ठण्ढी करो। कदाचित् तुम्हें हम लोगों को अपने विरह में मारना था तो राक्षसों के हाथ से, दावानल अग्नि से, कालीनाग के विष से, इन्द्र के कोप से, क्यों बचाया था? जो तुम नन्द व यशोदा के बेटे होते तो ऐसी कठोरता न करते, न मालूम किसके जने हो। तुम्हारे विरह में हमारा हृदय जल रहा है, इसलिए दुःखी होकर यह कठोर वचन तुमको कहती हैं। हमारे मन का हाल तुम्हें अच्छी तरह मालूम होगा।

दो० दही दूध ले जात थे माखनप्रभु व्रजराज। तबहूं तो बरज्यो नहीं बैर करत क्यहि काज॥

यह वचन सुनकर दूसरी गोपी बोली—सुनो प्यारियो! उनको ताना मारने से कभी नहीं पावोगी, केवल विनय करने से वे प्रसन्न होंगे, क्योंकि उनका नाम दीनदयालु है।

दो० तब उन सब गोपिन कह्यो नाहीं और उपाय। माखनप्रभु विनती करौ तबै मिलैंगे आय॥

यह बात विचारकर सब व्रजबालों ने कहा—हे श्यामसुन्दर! तुम केवल नन्द व यशोदा के पुत्र नहीं हो, आपको ब्रह्मा व महादेव आदि

देवता पृथ्वी का भार उतारने व संसारी जीवों की रक्षा करने के लिए क्षीरसागर में से प्रार्थना करके लिवा लाये हैं। सो हे प्राणनाथ! हम लोगों को एक बड़ा अचम्भा मालूम होता है, जब हमारी ऐसी अबला व दुखियों के प्राण लेते हो तो रक्षा किसकी करोगे? हे मनहरणप्यारे! तुम्हारे मन्द-मन्द मुसुकान व तिरछी चितवन व भौंह की मटक व गर्दन की लटक व बातों की चटक जब हम लोगों को याद आती है तब हमारा चित्त ठिकाने नहीं रहता। जब तुम वन में गो चराने जाते थे तब चार पहर दिन तुम्हारे विरह में हमको चार युग के समान बीतते थे, फिर सन्ध्यासमय तुम्हारा चन्द्रमुख देखकर अपनी आँखें ठण्ढी करके कहती थीं कि ब्रह्माजी बड़े मूर्ख हैं जिन्होंने आँखों पर पलक बना दी। पलक भाँजने से उतनी देर तक तुम्हारी मोहनीमूर्ति नहीं दिखाई पड़ती। हे जगत्पालक! जिन चरणों का ध्यान ब्रह्मा व महादेव आदि देवता आठों पहर अपने हृदय में रखते हैं उन्हीं चरणों का दर्शन देकर हमारी इच्छा पूर्ण करो। वे चरण कैसे हैं, जिनके देखने व दण्डवत् करने से अनेक जन्म के पाप छूट जाते हैं और लक्ष्मीजी अपने हाथ उन्हें दाबती हैं। हे श्यामसुन्दर! जब तुम्हारे विरह में हमारे प्राण निकल जायँगे तब पीछे से अमृत पिलाकर क्या करोगे। अब तक केवल तुम्हारे मिलने की आशा पर अपने प्राण राखे हैं, सो अपनी छवि दिखलाकर कामरूपी हमारा दुःख छुड़ावो और वंशी सुनाकर हमारी चिन्ता मिटाओ। रात के समय स्त्रियों को कोई अकेली नहीं छोड़ देता। जिस तरह तुम लक्ष्मीजी को दिन-रात छाती में लगाये रहते हो उसी तरह हम लोगों को भी अपने चरणों से अलग मत करो। निर्दयता छोड़कर शीघ्र अपना दर्शन दो। तुम्हारा नाम संसार में गोपीनाथ प्रसिद्ध है सो अपने नाम की लज्जा करो या अपना नाम गोपीनाथ मत रक्खो। तुम अपने श्याम रंग के समान मन भी काला करके ऐसी निर्दयता करते हो जो हमें विरहसागर से बाहर नहीं निकालते। तुम्हें ढूँढ़ते समय हमारे पाँवों में काँटे चुभते हैं, तिस पर भी तुम्हें दया नहीं आती। हम लोगों को अपने दुःख पाने का तो इतना सोच नहीं है, पर तुम्हारे कमलरूपी चरणों में

रात को भागते समय जो काँटे चुभते हैं वह हमारे कलेजे में सालते हैं, क्योंकि तुम्हारे चरणों का वास हमारे हृदय में है। इसलिए तुम जल्दी यहाँ चले आवो तो तुम्हारे कोमल चरणों को अपनी कोमल छातियों पर मलकर अपना कलेजा ठण्डा करें। या तुम कहीं बैठकर रात बिता दो जिसमें तुमको दुःख न हो। तुम्हें कष्ट पहुँचने से हम लोगों के प्राण निकल जायँगे। अपनी जानकारी में हम लोगों ने तुम्हारा कुछ अपराध नहीं किया, फिर क्यों खेद मानकर इतनी कठोरता करते हो। कदाचित् इस वास्ते हमारे ऊपर क्रोध किये हो कि अपने पतियों की आज्ञा के बिना तुम लोग रात को मेरे पास क्यों चली आईं। सो इस बात में भी हम लोगों का दोष नहीं है, क्योंकि तुम्हारी वंशी सुनकर देवता व ऋषीश्वर आदि का चित्त ठिकाने नहीं रहता, उसकी ध्वनि सुनने से देवकन्या मोहित होकर अपने को नहीं सँभाल सकतीं तो हम लोगों की क्या सामर्थ्य है जो मुरली सुनकर अचेत न हो जावें। कदाचित् आप ऐसा कहें कि तुम्हारी कामरूपी अग्नि अपने-अपने पति से भेंट करने में बुझेगी, सो ऐसा न समझिए, हमारी अग्नि उनसे बुझने योग्य होती तो हम अपने-अपने पति को छोड़कर तुम्हारे पास क्यों आतीं। हे दीनानाथ! यदि हम लोगों की प्रीति मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारे चरणों में हो तो अपना दर्शन देकर हमारा दुःख हरो।

दो० अंग-अंग सबदृग भये मोरपंख की भाँति। माखनप्रभु जो आ मिले सुन्दर मुखमुसुकाति।।

हे राजन्! जब यह सब विनती व विलाप करने पर भी केशवमूर्ति का दर्शन नहीं मिला तब सब व्रजबालों ने व्याकुल होकर मिलने का भरोसा छोड़ दिया और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं, फिर अति विलाप से रोदन करके कहने लगीं—हे माधव, हे मुकुन्द, हे मोहनप्यारे, हे नन्दलाल, हे केशवमूर्ति! अब हम लोग तुम्हारे विरह में अपने प्राण देती हैं, जैसा उचित जानो वैसा करो।

———

बत्तीसवाँ अध्याय।

गोपियों के मध्य में श्यामसुन्दर का प्रकट होना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब इसी तरह सब व्रजबाला विलाप करते-करते मरण तुल्य हो गईं तब उनकी सच्ची प्रीति ने श्यामसुन्दर के अन्तःकरण में प्रवेश किया। जब केशवमूर्ति ने देखा कि अब ये मेरे विरह में मरने चाहती हैं तब अचानक उसी जगह पीताम्बर व वैजयन्ती माला पहिने हुए इस तरह प्रकट होकर दर्शन दिया जिस तरह नट लोग अपने करतब से अन्तर्धान होकर फिर प्रकट हो जाते हैं।

क० राखेंगी न प्रान यह जानिकै कुँवरकान्ह प्रकटे सुजान बीच तान बान मारे हैं।
लखत ही गोपिन के वृन्द में अनंद बाढ़ी मंद मुसुकात व्रजचन्द यों निहारे हैं॥
भनैं बलदेव कहे बानी सुधासानी सुनो सकल सयानी तुम सबै दुःख भारे हैं।
गले माल डारे मुख पीत पटवारे पिय कहत पुकारे हम ऋणियाँ तुम्हारे हैं॥

हे राजन्! अपने चित्तचोर को देखते ही सब व्रजबाला सचेत होकर इस तरह उठ खड़ी हुईं जिस तरह मुर्दे के तनु में प्राण आ जावें। उस समय जैसी प्रसन्नता व्रजबालों को मोहनप्यारे का दर्शन पाने से हुई उसका हाल वर्णन नहीं हो सकता। उस आनन्द का सुख वही मनुष्य कुछ जानता है जिसका बिछुड़ा हुआ मित्र बहुत दिनों पर आ मिले। गोपियाँ कामरूपी साँप के डसने से कुम्हिला गई थीं। जिस तरह अमृत पड़ने से सूखे वृक्ष हरे हो जाते हैं उसी तरह मोहनीमूर्ति की अमृतरूपी दृष्टि पड़ने से उनके तनु में प्राण आ गये। जैसे रात को कमल का फूल मलीन रहता और प्रातः समय सूर्य के प्रकाश से फूल उठता है वैसे ही गोपियाँ वृन्दावनविहारी का सूर्यरूपी कुण्डल देखते ही खुशी से फूल उठीं। जिस तरह डूबता हुआ मनुष्य थाह पाकर खुशी होता है उसी तरह व्रजबालाएँ जो केशवमूर्ति के विरह सागर में गोता खा रही थीं उनको देखते ही किनारे लग गईं और मोहनीमूर्ति को चारों ओर से घेर लिया।

दो० कामतापसे वाम यक लगी श्याम उरजाय। ज्यों चन्दन के वृक्ष में रहत सर्प लपटाय॥

हे राजन्! इसी तरह किसी व्रजबाला ने केशवमूर्ति के अंग से लपटकर अपनी छाती ठंढी किया और किसी ने उनका मुख चूमकर अपने

मनोरथ के फलों से झोल भर लिया। उस समय श्यामा बोली—हे प्राणनाथ! हम लोग तुम्हारे प्रेम में लोकलाज तजकर यहाँ आईं, सो तुम हमें अकेली छोड़कर अन्तर्धान हो गये, यह कौन न्याय की बात है। वृन्दावनविहारी ने कहा कि तुम्हें रात को अपने घर से वन में चला आना उचित नहीं था, तुम लोग वहाँ बैठकर मेरा ध्यान व स्मरण करतीं तो मैं बहुत प्रसन्न होता। ऐसा कहकर मुरलीमनोहर ने राधाप्यारी को गले से लगा लिया और मीठी-मीठी बातें सुनाकर सब व्रजबालों को प्रसन्न किया। एक गोपी ने कमल का फूल मोहनप्यारे के हाथ से छीन लिया। दूसरी व्रजबाला उनका हाथ पकड़कर बड़े प्रेम से बोली—हे चित्तचोर! इतनी देर तक तुम कहाँ रहे। किसी गोपी ने अपना मुँह चन्द्रमुख से मिलाकर उनका जूठा पान प्रेम से खा लिया। कोई व्रजबाला चित्रकारी के समान खड़ी होकर उनका रूप रस आँखों की राह पीने लगी। किसी गोपी ने श्यामसुन्दर के मुख का चुम्बन लेते समय उनका ओंठ अपने ओंठ से दबा दिया। एक सखी बोली कि तुम बहुत भागकर चले जाते थे, अब मेरे हृदय से बाहर जावोगे तो मैं जानूँगी कि तुम बड़े बलवान् हो। दूसरी व्रजबाला अपना हाथ मोहनप्यारे के कन्धे पर रखकर उनकी छवि देखने लगी। जब यह दशा व्रजबालाओं की देखकर श्यामसुन्दर उन्हें यमुना के किनारे ले गये तब एक गोपी ने अपनी ओढ़नी बिछाकर बड़े प्रेम से केशवमूर्ति को उस पर बैठाया और सब व्रजबालाओं ने उनको इस तरह चारों ओर से घेर लिया जिस तरह चंद्रमा के आसपास तारे रहते हैं। कोई गोपी क्रोध से बोली कि तुम कपट से पराया तन व मन हर लेते हो, किसी का गुण नहीं मानते, आज हमारी इच्छा पूर्ण करो, नहीं तो अपने प्राण तुम पर दे दूँगी। जब ऐसा कहकर सब व्रजबालाओं ने उस चाँदनी की शोभा देखने और शीतल मन्द सुगन्ध हवा बहने से कामातुर होकर श्यामसुन्दर से भोग की इच्छा किया तब वैकुण्ठनाथ अन्तर्यामी भक्तहितकारी उनका मनोरथ सिद्ध करने के लिए जितनी गोपियाँ थीं उतने रूप हो गये। व्रजबालाओं ने अपनी-अपनी ओढ़नी उतारकर बालू पर बिछा दिया और उस कोमल बिछौने पर मोहन-

प्यारे को बैठाकर कामरूपी बातें करने लगीं। श्यामसुन्दर ने पहिले बाललीला का सुख उन्हें दिखलाकर फिर अपनी किशोर अवस्था बना लिया और सब गोपियों से अलग-अलग गन्धर्व विवाह करके उनकी मनोकामना पूर्ण किया। उस समय बड़े आनन्द में एक व्रजबाला, जो तिरछी चितवन से देखती थी, बोली—हे प्राणनाथ! तुम बड़े कपटी और निर्दयी हो, सीधी और भोली व्रजबाला तुम्हारे छल में आकर धोखा खाती हैं। मेरा मन तुमसे बोलने को नहीं चाहता, पर क्या करूँ तुम्हारी मोहनीमूर्ति देखकर बिना बोले रहा नहीं जाता। देखो जब तुम अन्तर्धान हो गये थे तब हम लोगों ने तुम्हारे विरह में कितना दुःख उठाया, फिर इस तरह प्रकट हुए मानो कहीं गये ही नहीं थे। सो तुम्हें मन में कपट रखना और गुण को छोड़कर अवगुण की ओर देखना उचित नहीं है। यह वचन सुनकर दूसरी गोपी बोली—ऐ प्यारी! तुम चुप रहो, अपने कहने से कुछ शोभा नहीं होती, देखो मैं श्रीकृष्ण के मुख से उनकी कठोरता का हाल कहलाये देती हूँ। ऐसा कहकर उस महाचञ्चल गोपी ने मुसुकराकर पूछा—हे मोहनप्यारे! संसार में चार तरह के मनुष्य होते हैं, एक वह जो आपस में प्रीति रखकर एक दूसरे के साथ नेकी के बदले भलाई करें, दूसरे वह जो एक ओर से प्रीति होकर दूसरा प्रेम न रक्खे, तीसरे वह कि बुराई करनेवाले के साथ भी भलाई करे, चौथे वह कि नेकी करने पर भी जान बूझकर उसके साथ बुराई करे। बतलाओ, इन चारों में कौन भला है और किसको बुरा कहना चाहिए। ऐसा सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा कि तुमने बहुत अच्छी बात ज्ञान बढ़ानेवाली पूछी है। मैं आप चाहता था कि संसारी मनुष्यों का हाल तुमसे कहूँ, अब अपने प्रश्न का उत्तर मन लगाकर सुनो। जो मनुष्य आपस में नेकी के बदले भलाई करते हैं उनको संसार में अच्छा समझना चाहिए जैसे संसारी लोग विवाह आदि में एक दूसरे के घर बैना व भाजी देते हैं, पर यह प्रीति सदा स्थिर नहीं रहती। दूसरे वह कि एक की ओर से प्रीति होकर दूसरा मनुष्य उनके साथ प्रेम न रक्खे, जैसे माता-पिता पुत्र को बहुत प्यार करते हैं परन्तु पुत्र उतना प्रेम नहीं रखता। तीसरे

जो मनुष्य बिना प्रयोजन सबके साथ भलाई करता है उसे वर्षा के समान समझना चाहिए। जिस तरह पानी बरसकर सब छोटे व बड़ों को सुख देता है और उसके बदले किसी से कुछ नहीं चाहता। यही हाल परमहंस व महात्मा लोगों का भी समझो। वह लोग अपनी सामर्थ्य भर दूसरे का भला करके उससे कुछ चाह नहीं रखते। चौथे जो मनुष्य भलाई के बदले जान-बूझकर उसके साथ बुराई करते हैं उन्हें शत्रु समझना चाहिए। वे मनुष्य कृतघ्न और अधर्मी कहलाते हैं। यह वचन सुनते ही सब व्रजबाला आपस में एक दूसरे का मुख देखकर हँसने लगीं। एक गोपी ने दूसरी सखी से सैन में बतलाया कि श्रीकृष्णजी चौथे मनुष्य की तरह हैं। तब मोहनप्यारे बोले कि तुम लोग मुझे हँसकर क्या कहती हो, मैं निर्गुणरूप आत्माराम इन चारों से रहित रहकर किसी के साथ कुछ प्रीति नहीं रखता। मुझसे जो कोई जिस बात की चाह करता है उसकी इच्छा पूर्ण कर देता हूँ। विश्वम्भर नाम से सब जीवों का पालन करता हूँ, एक क्षण किसी जीव को नहीं भूलता। किसी से कुछ इच्छा न रखकर केवल सच्चा प्रेम उनका चाहता हूँ। ऐ गोपियो! तुम लोग मुझसे प्रीति रखती हो, इसलिए यह बात कहता हूँ। जिस तरह संसारी मनुष्य गाड़े हुए धन को आठों पहर याद रखकर उसका हाल किसी से नहीं कहता इसी तरह जो मनुष्य मुझसे गुप्त प्रीति रखकर मेरे चरणों में अपना मन लगाये रहता है उसे मैं बहुत प्यार करता हूँ।

दो० माखनप्रभु गोपाल सों यहि विधि राखो हेत। ज्यों निर्धन धन पाय के भेद न काहू देत ॥

कदाचित् तुम ऐसा कहो कि मनसा वाचा कर्मणा हम लोग तुम्हारे चरणों में ध्यान लगाये रहती हैं, फिर तुम क्यों हमें छोड़कर अन्तर्धान हो गये थे तो इसका यह कारण है कि हमने तुम्हारी प्रीति की परीक्षा लिया था। तुम लोग इस बात को बुरा न मानकर मेरा कहना सच मानो। मैं प्रेम बढ़ाने के वास्ते तुम लोगों में से अन्तर्धान हो गया था। जिस तरह जाड़े में धूप अच्छी मालूम होती है उसी तरह अपने मित्र से अलग रहने में प्रेम अधिक होता है। ऐ गोपियो! तुम्हारे प्रेम व ध्यान करने से मैं बहुत

प्रसन्न रहता हूँ, पर तुम लोग अपने कुल व परिवार की लज्जा छोड़कर रात को जो यहाँ चली आईं यह अच्छी बात नहीं किया। ऐसा करने से न हम प्रसन्न हुए और न दूसरे को यह बात अच्छी मालूम होगी। जब तक मनुष्य जीता रहे तब तक कोई खोटा काम उपहास का न करे। कदाचित् उसका मन अशुभ कर्म करने के वास्ते चाहे तो भी ज्ञान की राह अपने मन को रोके जिसमें कोई उसे बुरा न कहे। यह भी मैं जानता और समझता हूँ कि कामरूपी प्रेम बढ़ने से लज्जा की बेड़ी टूट जाती है और उसको किसी का समझाना कुछ गुण नहीं करता। तुम लोगों की प्रीति व विलाप करने का हाल मैं आँखों से खड़ा हुआ देखता था। तुम लोगों ने मायारूपी संसार की बेड़ी, जो कभी पुरानी नहीं होती, तोड़कर मेरे साथ ऐसी सच्ची प्रीति किया है जैसे परम दरिद्री बड़ा धन पावे। इसलिए मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता।

चौ० जैसे आई मेरे काज। छाँड़ी लोक वेद की लाज॥
ज्यों वैरागी छाँड़ै गेह। मन दै हरि सों करै सनेह॥
मैं क्या तुम्हरी करौं बड़ाई। हमसे पलटो दियो न जाई॥

हे प्राणप्यारियो! ब्रह्मा के आयु-प्रमाण जीकर एक-एक गोपियों की सेवा जन्म भर करूँ तो भी तुमसे उद्धार नहीं हो सकता, इस वास्ते तुम्हारा ऋणियाँ हूँ।

दो० अब तुम रहो उदास मत मन में करो हुलास। महारास अब साजि कै पूरण करिहौं आस॥

——:०:——

तैंतीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का गोपियों के साथ महारास करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब श्यामसुन्दर ने यह प्रेम भरा वचन कहकर गोपियों को धैर्य दिया तब व्रजबाला बड़े आनन्द से श्यामसुन्दर का हाथ पकड़कर नाचने लगीं। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—महाराज! रासलीला में जिस गोपी का हाथ मुरलीमनोहर पकड़े थे उसका अंग मोहनप्यारे से स्पर्श होता था और सब व्रजबालाओं की कामना किस तरह पूरी हुई थी। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! परब्रह्म



रास लीला

परमेश्वर की महिमा कोई नहीं जान सकता। मुरलीमनोहर ने दो-दो गोपियों के बीच में एक-एक अपना रूप प्रकट करके दाहिने व बायें दोनों गोपियों का हाथ पकड़े हुए मण्डल बाँधकर रासलीला किया था, पर उनकी माया से सब गोपियाँ अनेक रूप धारण करने का हाल न जानकर यह समझती थीं कि केशवमूर्ति हमारे साथ नाचते हैं। इस आनन्दरूपी नाच में हाथ व पैर की ठोकर देकर अंग से अंग रगड़ना, आँख व भौंह मटकाकर कटाक्ष करना, गर्दन टेढ़ी करके कुण्डल हिलाना, जो-जो बातें रास व विहार में चाहिए वह सब मुरलीमनोहर व्रजबालाओं के साथ और गोपियाँ वृन्दावनविहारी से करती थीं। उस समय श्याम-रंग मोहनप्यारे की शोभा गोरी-गोरी गोपियों में कैसी मालूम देती थी जैसे सुनहले दानों की माला में नीलमणि रहती है। नाचते समय उनके कानों के कुण्डल कैसी शोभा देते थे जैसे श्याम घटा में बिजली चमकती है। उस समय ब्रह्मा और महादेव आदि देवताओं व ऋषीश्वरों ने परमेश्वर का ध्यान छोड़ दिया और रासलीला का सुख देखने के लिए अपनी-अपनी स्त्रियों समेत विमानों पर बैठकर वृन्दावन में आये और आकाशमार्ग से श्यामसुन्दर व व्रजबालाओं पर फूल बरसाकर व्रजवासियों के भाग्य की बड़ाई करने लगे। गन्धर्वों ने अनेक तरह के बाजे बजाकर गाना आरम्भ किया। देवकन्याएँ और अप्सराएँ रासलीला की शोभा देखते ही कामरूपी मद में ऐसी मोहित व अचेत हो गईं कि उनके कमर के घुँघुरू खुलकर गिर पड़े और तन-मन की सुधि जाती रही।

दो०देवराज शोभित सरिस इन्द्राणी के संग। माखनप्रभु के दरशको हँसत नयन सब अंग।।

चन्द्रमा व तारागण वह आनन्द देखते ही चित्रकारी से खड़े हो गये, उन्हें आगे चलने की सामर्थ्य नहीं रही। चन्द्रमा ने प्रसन्न होकर अपनी किरणों से रासमंडल पर अमृत बरसाया। चन्द्रमा के खड़े रहने से वह रात छः महीने के बराबर हो गई, पर नारायणजी की महिमा से रात बढ़ने का हाल किसी ने नहीं जाना। उस रात्रि का नाम संसार में प्रेम-रात्रि प्रकट हुआ। हे राजन्! नाचने के परिश्रम से व्रजबालाओं के मुख पर पसीना निकलकर बिखरे हुए बालों में कैसी शोभा देता था जैसे काले

काले साँप ओस की बूँद चाटने आये हों। उस समय श्यामसुन्दर अपने पीताम्बर से उनका पसीना पोंछ देते थे। कोई गोपी नाचते-नाचते थककर केशवमूर्ति का हाथ पकड़े हुए पृथ्वी पर बैठ जाती थी, पर नाच, ताल और स्वर नहीं बिगड़ता था। कोई व्रजबाला अपना हाथ मोहनप्यारे के शिर व कंधे पर रखकर कहती थी कि नाचते-नाचते मेरे पाँव दुखने लगे, तनिक सुस्ताकर फिर नाचूँगी। कोई व्रजबाला मोहनप्यारे की माला चूमकर कहती थी—ऐ प्राणनाथ! तुम्हारे गले में यह हार बहुत सुन्दर मालूम होता है। कोई गोपी घूमते-घूमते थककर श्यामसुन्दर के गले से लपटकर कहती थी कि मैं तुम्हारी शरण आई हूँ, मुझे कभी अपने चरणों से अलग मत करना। कोई सखी मोहनप्यारे के हाथ से कमल का फूल छीनकर उनसे कहती थी कि मेरे कलेजे पर हाथ रखकर देखो, कैसा धड़कता है। आठों पहर तुम मेरे हृदय में रहते हो, इसलिए मैं डरती हूँ कि कलेजा धड़कने से तुमको कुछ दुःख न पहुँचे।

दो० नख शिख से भूषण सजे ब्रजभूषण के हेत। गानकरतअतिचावसोंनिरतत अति छवि देत।।

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इसी तरह श्यामसुन्दर व्रजबालाओं के साथ अनेक तरह के बाजे बजाकर छः राग व छत्तीस रागिनी अलापकर रास व विलास करते थे। कभी वंशी में अनेक तरह की उपज बजाकर व्रजबालाओं का मन अपनी ओर मोहि लेते थे। उस आनन्दरूपी नाच में गोपियाँ कामदेव के मद में ऐसी मोहित हो गईं कि उनको अपने तन व मन की कुछ सुधि नहीं रही। कभी घूमते समय व्रजबालाओं का अंचल उड़ जाता था। कुचों की सुन्दरता देखकर देवता मोहित हो जाते थे। कभी नाचते समय श्यामसुन्दर का मुकुट खुलकर गिरने लगता था। तब गोपियाँ अपने हाथ से उसे बाँध देती थीं। कभी मोतियों का हार व्रजबालाओं के गले से टूटकर गिर जाता और श्यामसुन्दर की वनमाला खुलकर गिर पड़ती थी, उसके उठाने की सुधि कोई नहीं रखता था। कभी कोई सखी मुरलीमनोहर के साथ गाकर ऐसा स्वर मिला देती थी कि वृन्दावनविहारी उसके गाने से मुरली बजाना भूल जाते थे।

दो० माखनप्रभुघनश्यामसंगसुंदरिब्रजकीबाम। दामिनिज्योंशोभितमहानिरततगतिअभिराम

दो० निरतत तहाँ हुलाससो माखनप्रभु सुखरास। आसपास वनिता सबै सुभगसुवासनिवास॥

हे राजन्! जिस तरह बालक अपना मुख शीशे में देखकर भूल जाता है उसी तरह सब व्रजबाला राग व रंग के मद में मोहित होकर अपना गहना व कपड़े एक दूसरी पर न्योछावर करती थीं। उस समय राग व रागिनी का ऐसा समा बँधा था जिसे सुनकर यमुना जल बहने से थँभि-रहा, हवा चलने से ठहर गई, उस वन के सब पशु-पक्षी वह लीला देख-कर मोहित हुए, चरना और उड़ना भूलकर चित्रकारी से खड़े हो गये। केशवमूर्ति व राधाप्यारी जो बीच में नाचते थे उनकी सुन्दरता पर सब व्रजबाला बलायें लेकर आपस में प्रसन्न होती थीं। उस समय एक व्रज-बाला ने आप नन्द बनकर दूसरी सखी को वृषभानु बनाया और श्रीकृष्ण का विवाह राधिका से करके समधियों के समान आपस में शिष्टाचार किया। श्यामा के हाथ में कंकण बाँधकर श्यामसुन्दर से कहा कि खोलो। जब वह कंकण नहीं खुला तब सब व्रजबाला हँसने लगीं और राधा श्रीकृष्ण की विधिपूर्वक पूजा करके बोलीं—

दो० तहँनँदनंदनलाड़ली श्रीवृषभानुकुमारि। दुल्लह दुलहिनि राजही शोभाअमितअपारि॥

सो० दुल्लह नन्दकुमार दुलहिनि श्रीराधाकुँवरि। सन्तन प्राणअधार अचल रहै जोड़ी सदा॥

हे राजन्! यह चरित्र देखकर राधा व कृष्ण बहुत प्रसन्न होते थे। नाचते समय गोपियों के अंग से जो फूल टूटकर गिर पड़ते थे उन पर ऋषी-श्वर व मुनीश्वर भँवररूप धरकर रासलीला का सुख देखने के लिए गूँजते थे। व्रजबालाओं के घुँघुरू, पायजेब व करधनी का शब्द सुनकर वह भौंरे उड़ना भूल गये। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! किसे सामर्थ्य है जो गोपियों की बड़ाई का वर्णन कर सके। अन्त समय सब व्रजबालाओं ने आप मुक्ति पाकर तीन-तीन पीढ़ी अपने माता-पिता को कृतार्थ कर दिया। परमात्मा पुरुष ने अपने भक्तों का मनोरथ पूर्ण करने के लिए व्रजबालारूप जीवात्मा से सच्ची रासलीला करके जैसा सुख उन्हें दिया वह आनन्द का हाल कहा नहीं जाता। जिस तरह अज्ञान बालक शीशे में मुख देखकर अपनी परछाहीं से खेलता है वही गति केशवमूर्ति ने किया। जब अंग के स्पर्श से गोपियों के शरीर का केशर व चंदन

मोहनप्यारे के तनु व वैजयन्ती माला में लग जाता था तब वृन्दावनविहारी गोपियों से कहते थे कि मैंने केशर व चंदन नहीं लगाया। यह सब तुम्हारे शरीर का मेरे अंग में लगकर सुगंध उड़ती है। जब गोपियाँ नाचती व कूदती हुई गिर पड़ती थीं तब वृन्दावनविहारी अनेक रूप से उनका हाथ पकड़कर अपने पास खींच लेते थे। देवता लोग वह सुख देखकर डाह से कहते थे कि हे श्यामसुन्दर! हमारा जन्म भी वृन्दावन में देते तो तुम्हारे साथ रासलीला करके जन्म सफल करते।

दो०धनिवृन्दावनधन्यसुखधन्यश्यामधनिरास। धनिधनिमोहनगोपिकानितनवकरतहुलास॥

हे परीक्षित! रासलीला करते-करते मोहनप्यारे के मन में कुछ तरंग आ गई तो सब व्रजबालाओं को साथ लिये हुए जागने की गर्मी मिटाने के लिए यमुनाजल में पैठ गये। जिस तरह मतवाला हाथी हथिनियों को साथ लेकर जलक्रीड़ा करता है उसी तरह अलग-अलग रूप धरकर राधा आदि गोपियों से जलविहार किया। जब स्नान करने से जागने व नाचने की गर्मी मिटाकर बाहर निकले तब योगमाया ने सब व्रजबालाओं और अनेक रूप श्यामसुन्दर को पहिनने के वास्ते उत्तम भूषण व वस्त्र आदि ला दिया। इत्र आदि सुगन्ध अंग में लगाकर एक-एक गजरा सबके गले में ऐसा पहिनाया जिसका फूल कभी न कुँभिलावे। जब वृन्दावनविहारी श्यामा आदि गोपियों को संग लेकर वनविहार करने लगे तब देवतों ने उन पर फूल बरसाये और उनकी उतारी हुई गीली धोतियाँ आपस में प्रसाद के समान टुकड़े-टुकड़े बाँट लिया। जब वनविहार कर चुके तब श्यामसुन्दर ने गोपियों से कहा कि स्नान करने से तुम्हारी थकन छूट गई, अब चार घड़ी रात्रि बाकी है सो अपने-अपने घर जाओ। यह वचन सुनते ही सब व्रजबाला उदास होकर बोलीं—हे व्रजनाथ! तुम्हारे चरण छोड़कर अपने घर कैसे जावें। वैकुण्ठनाथ ने कहा कि जिस तरह योगी व ऋषीश्वर लोग मेरा ध्यान करते हैं उसी तरह तुम लोग भी अन्तःकरण से मेरी याद रक्खो तो आठों पहर तुम्हारे पास मैं बना रहूँगा। यह बात सुनते ही सब व्रजबाला मन को धैर्य देकर श्यामसुन्दर से बिदा हुईं और अपने-अपने स्थान पर आईं। घरवालों को सोया हुआ देखकर और

अपनी-अपनी मनोकामना पाने से प्रसन्न हुईं। परमेश्वर की माया से यह बात उनके घरवालों ने नहीं जाना कि हमारी स्त्रियाँ रात्रि में कहीं बाहर गई थीं। इसलिए मोहनप्यारे से किसी ग्वाल ने कुछ बुरा नहीं माना। इस तरह कभी-कभी नन्दलालजी गोपियों के साथ रासलीला व वनविहार करते थे। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! एक संदेह मुझे है सो छुड़ा दीजिए, श्रीकृष्णजी ने पृथ्वी का भार उतारने और धर्म को बढ़ाने के लिए अवतार लेकर वेद व शास्त्र के विपरीत परस्त्रियों से क्यों विहार किया? यह वचन सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! मैं तुमसे गोपियों के जन्म लेने का हाल पहले कह चुका हूँ कि वे सब वेद की ऋचाएँ थीं। लक्ष्मीजी ने राधा का अवतार लेकर श्रीकृष्णजी के साथ संसार में लीला की थी, इसलिए उनको श्यामसुन्दर से अलग न समझना चाहिए। जो वृन्दावनविहारि के अनेक रूप सब गोपियों के पास थे उस बात की महिमा कोई नहीं जान सकता, और जिस काम में बुद्धि का प्रवेश न हो उस बात में दोष न लगाना चाहिए। परमेश्वर निर्गुणरूप संसारी बातों से कुछ प्रयोजन नहीं रखते, इसलिए उन्हें दोष लगाना अधर्म होता है। वेद व शास्त्र का वचन सच्चा मानकर उसी के प्रमाण करना चाहिए। वैकुण्ठनाथ की लीला में सन्देह करना उचित नहीं है। जिन परमेश्वर का नाम लेने और ध्यान करने से बड़े-बड़े योगी व मुनि कृतार्थ हो जाते हैं उन आदिपुरुष परमेश्वर को मनुष्य समझकर दोष लगाना बड़ा पाप है। अग्नि में जिस तरह अशुद्ध वस्तु भी जलने से पवित्र हो जाती है उसी तरह समर्थ लोग क्या नहीं करते। यह सब लीला नारायणजी ने संसारी जीवों को भवसागर पार उतरने के लिए जगत् में की थी जिसके पढ़ने व सुनने से कलियुगवासी लोग मुक्ति पावें। वे परब्रह्म परमेश्वर अपने सुख के लिए कुछ नहीं करते। जो कोई उनका भजन व स्मरण करके जिस वस्तु की चाह रखता है उसका मनोरथ पूर्ण करते हैं यह उनका स्वभाव सदा से चला आता है। संसारी व्यवहार से रहित होकर सब वस्तु में वर्तमान रहते हैं, पर ज्ञान प्राप्त हुए बिना किसी को नहीं दिखाई

देते। गोपीनाथ का यश गानेवाले मनुष्य परमपद को पहुँचते हैं। श्यामसुन्दर की लीला सुनने का फल सब तीर्थों में स्नान करने के बराबर होता है। व्रजबालाओं के जो पति थे उनके शरीर में भी श्यामसुन्दर का प्रकाश था, इसलिए सब गोपियों के पति श्रीकृष्णजी को समझना चाहिए। यह पंचाध्यायी की कथा बाँचने व सुननेवाले जीव सब पापों से छूटकर मुक्तिपद पाते हैं। परमेश्वर की कथा में किसी बात का सन्देह न रखकर वेद व पुराण के वचन पर विश्वास करना चाहिए।

दो॰मो मन में अचरज बड़ो तुम सों ज्ञानी होय। माखनप्रभु की कथा में मरम मानिये सोय ॥

हे परीक्षित! आज से ऐसा सन्देह चित्त में कभी मत करना। अज्ञानी मनुष्य को क्या सामर्थ्य है जो परमेश्वर के कामों में अपनी बुद्धि मिला सके।

दो॰माखनप्रभु गोपाल की लीला परम पुनीत। भाग्य उदयजग में वही जो सुनिए करि प्रीति॥

चौंतीसवाँ अध्याय।

नन्दजी की आधी टाँग को अजगर साँप का निगल जाना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जिस तरह श्यामसुन्दर ने सुदर्शन विद्याधर को साँप की योनि से छुड़ाकर शंखचूड़ दैत्य को मारा था उसकी कथा कहते हैं, सुनो। नंदजी ने एक दिन सब ग्वालों और गोपियों से कहा कि हमने श्रीकृष्णजी के जन्मते समय यह मानता मानी थी कि जब मोहनप्यारे बारह वर्ष के होंगे तब मैं अपने सब जाति-भाई व बाजे-गाजे समेत जाकर अम्बिका देवी की पूजा करूँगा। महारानी की कृपा से वह दिन मुझे दिखलाई दिया, इसलिए सबको चलकर उनकी पूजा करनी चाहिए। यह वचन सुनते ही वे लोग प्रसन्न हो गये। एक दिन नन्द, यशोदा, कृष्ण, बलराम, सब ग्वालबाल, गोपी और छोटे बड़ों को साथ लेकर बड़े हर्ष से गाते-बजाते चले। दूध दही मेवा मिठाई आदि पूजा की सामग्री गाड़ी व बैलों पर लदवाये हुए सरस्वती के किनारे पहुँचकर स्नान किया और पुरोहित को बुलाकर विधिपूर्वक देवीजी की पूजा करके हाथ जोड़कर बोले—हे अम्बिका माता! तुम्हारी कृपा से मेरी मनोकामना पूरी हुई। फिर नन्दजी ने बहुत-सी गौवें और सोना

विधिपूर्वक दान देकर हजार ब्राह्मणों को अच्छी तरह भोजन कराया। उस दिन महादेव भी देवतों समेत दर्शन करने आये थे। पूजा, परिक्रमा और ब्राह्मण-भोजन कराने में सारा दिन बीत कर संध्या हुई, नन्दजी आदि सब लोग रात को वहीं सो रहे।

दो० ऐसी विधि सोये सभी सुधि न रही तनु माहिं। बारम्बार पुकारिये तबहूँ जागत नाहिं॥

हे राजन्! उसी निद्रा के समय जब आधी रात को एक अजगर आकर नन्दराय की आधी टाँग निगल गया और उन्होंने जागकर अपने को काल के मुख में फँसे देखा तब श्रीकृष्ण को अपनी रक्षा के लिए पुकारा। नन्दराय का बोल सुनते ही सब ग्वालबाल और गोपियों ने उठकर उजियाला करके देखा तो मालूम हुआ कि एक अजगर नन्दजी की आधी टाँग निगले हुए पड़ा है। यह दशा देखते ही वह लोग जलती हुई लकड़ियों से उस साँप को मारने लगे, पर उसने नन्दजी को नहीं छोड़ा। तब सबों ने हार मानकर श्रीकृष्णजी को जगाया। जब श्यामसुन्दर ने बालकों की तरह आँख मलते हुए उठकर जैसे अपने बाँयें पाँव का अँगूठा छुआया वैसे ही उस अजगर ने नन्दजी का पैर छोड़ दिया और जमुहाई लेकर मनुष्यरूप बहुत सुन्दर भूषण व वस्त्र पहिने राजों के समान हो गया। और नन्दलालजी को दण्डवत् करके उनके सामने खड़ा होकर स्तुति करने लगा। यह हाल देखकर नंद आदि गोप और गोपियों ने अचम्भा माना। श्यामसुन्दर ने उस मनुष्य से पूछा—

दो० तुव स्वरूप सुन्दर महा उपमा कही न जाय। सर्परूप काहे धरेउ हमसे कहो बुझाय॥

यह वचन सुनते ही वह हाथ जोड़कर बोला—हे वैकुण्ठनाथ! आप अन्तर्यामी से कोई बात छिपी नहीं है, परन्तु तुम्हारी आज्ञानुसार अपना हाल कहता हूँ, सुनिये। मैं सुदर्शन नाम विद्याधर हंसपुर में रहता था। धन, सुन्दरता और बुद्धि के अभिमान से अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता था। देवता लोग भी मेरा सम्मान बहुत करते थे। एक दिन विमान पर बैठकर सैर करने निकला। राह में अंगिरा ऋषीश्वर को कुरूप देखकर मुझे हँसी आई और मैं कई बेर अपना विमान उड़ाता हुआ उनके ऊपर ले गया। ऋषीश्वर ने विमान की परछाहीं

ऊपर पड़ने से क्रोधित होकर मुझे शाप दिया कि तू अजगर साँप हो जा। जब यह शाप सुनकर मैंने अपना अपराध क्षमा कराने के लिए अति विनती की तब उन्होंने कहा कि मेरा वचन फिर तो नहीं सकता, पर कुछ दिनों में श्रीकृष्णजी का चरण छूने से तुझे फिर विद्याधर का तनु मिलेगा। मैं तभी से अजगर होकर तुम्हारे चरणों की इच्छा रखता था, इसी वास्ते आज मैंने नन्दजी का पाँव पकड़ा, जिसमें तुम्हारा दर्शन मुझे प्राप्त हो। आपने दया करके मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया। जिन चरणकमल का दर्शन ब्रह्मा, महादेव और इन्द्रादिक देवतों को ध्यान में जल्दी नहीं मिलता उन चरणों को अंगिरा ऋषीश्वर के प्रताप से छूकर मैं पवित्र हुआ।

दो० ताहि शाप कैसे कहौंवह तो भई अशीश। जेहि प्रताप जगदीश के पग लागे मम शीश।।

इसलिए उन ऋषीश्वर के उपकार से मैं जन्म भर उऋण नहीं हो सकता। उन्होंने बुराई के बदले मेरे साथ भलाई की। अच्छे लोग किसी की बुराई नहीं चाहते। यह स्तुति व दण्डवत् करने के उपरान्त वह विद्याधर विमान पर बैठकर अपने लोक को चला गया तब व्रजवासी लोगों ने अचम्भा मानकर यह निश्चय किया कि यह परब्रह्म परमेश्वर का अवतार हैं। प्रातःसमय नन्द आदि गोप व गोपियाँ अम्बिका देवी का दर्शन करके अपने घर आये। हे राजन्! एक दिन श्याम व बलराम चाँदनी रात में व्रजबालाओं के साथ यमुना के किनारे रास व विलास करके बाँसुरी बजाते थे। केशवमूर्ति ने मुरली की ध्वनि से व्रजबालाओं का मन ऐसा मोह लिया कि गोपियाँ बाँसुरी के शब्द पर मोहित होकर श्यामसुन्दर के पीछे-पीछे इस तरह गाती फिरती थीं जिस तरह परछाहीं साथ नहीं छोड़ती। उस समय व्रजबालाओं का चित्त ऐसा अचेत हो गया कि अपने तनु व वस्त्र की कुछ सुधि उन्हें नहीं रही। अचानक उसी समय शंखचूड़ नाम का यक्ष कुबेर देवता का सेवक अति बलवान् तृणावर्त आदि दैत्यों का मित्र, जिसके शिर में बहुत बढ़िया मणि थी, घूमता हुआ वहाँ आया। उसने क्या देखा कि श्याम व बलराम बाँसुरी बजा रहे हैं और वंशी की ध्वनि पर सब व्रजबाला मोहित

हो रही हैं। यह आनन्द उससे देखा नहीं गया, इसलिए कुछ गोपियों को अपने कमन्द में फँसाकर उत्तर की ओर ले चला। जब तक बांसुरी की ध्वनि गोपियों के कान में पहुँचती रही तब तक वे ऐसी अचेत थीं कि उन्हें अपने फँसने की कुछ सुधि मालूम नहीं हुई। जब दूर तक खींच ले जाने से उन्हें वंशी का शब्द सुनाई न दिया तब वे सब चैतन्य होकर अपने को कमन्द में फँसी देखते ही चिल्लाने लगीं।

चौ० पूरणब्रह्म प्रीतिरस पागीं। कृष्ण-कृष्ण करि टेरन लागीं॥
हे भगवन्त सन्त हितकारी। वेगि आय सुधि लेव हमारी॥

यह दीन वचन सुनते ही श्याम व बलराम ने दो वृक्ष उखाड़ लिये और जिस तरह सिंह हाथी को मारने के लिए झपटता है उसी तरह दोनों भाई दौड़कर गोपियों के पास जा पहुँचे और पुकारकर कहा कि अब तुम लोग कुछ चिन्ता मत करो।

दो०तुम्हरे करुणा वचनसुनि मैं आया हूँ धाय। शंखचूड़ शिर चूर करि तुमको लेब छुड़ाय॥

उनकी ललकार सुनते ही वह यक्ष व्रजबालाओं को छोड़कर भागा। केशवमूर्ति ने गोपियों की रक्षा के लिए बलरामजी को वहाँ छोड़ दिया और आप बिजली की तरह दौड़कर शंखचूड़ के ऐसा मुक्का मारा कि वह मर गया। मुरलीमनोहर ने उसके शिर की मणि निकालकर बलरामजी को दे दिया और व्रजबालाओं को साथ लेकर आनन्दपूर्वक अपने घर आये। इसी तरह श्रीकृष्णजी नित्य नई-नई लीला करके वृन्दावन-वासियों को सुख देते थे।

पैंतीसवाँ अध्याय।

गोपियों के विरह की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! एक दिन श्रीकृष्ण ने ग्वालों के संग गौ चराते समय वृन्दावन में वंशी बजाकर ऐसा राग व रागिनी गाया जिसका शब्द सुनते ही ब्रह्मा, महादेव आदि देवता अपनी स्त्रियों समेत मोहित हो गये। वे जैसा राग व रागिनी बांसुरी में गाते थे वैसा गाना ब्रह्मा, महादेव व नारद आदि किसी से नहीं बन पड़ता था।

राधाप्यारी आदि व्रजबाला अपने परिवारवालों के डर से केशवमूर्ति के पास वन में न जाकर नित्य उनके विरह में व्याकुल रहती थीं। घर में एक क्षण उनका चित्त नहीं लगता था। इसलिए अपनी-अपनी गोल बांधकर कुछ व्रजबाला राह में कोई झुण्ड यशोदा के पास, कोई गोल गांव में बैठाकर मोहनप्यारे की याद व चर्चा में अपना दिन काटती थीं। कोई व्रजबाला सूर्य के सामने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहती थी कि महाराज! तुम जल्दी अस्त हो जाओ तो सन्ध्या समय मोहनप्यारे घर पर आवें तब मैं उनका रूप रस पीकर अपने कलेजे की तपनि बुझाऊँ। बाजी गोपी केशवमूर्ति की सुन्दरता वर्णन करके उनके ध्यान में अचेत हो जाती थी। कोई व्रजबाला नंदलालजी का यश गाकर अपना मन प्रसन्न करती और कोई गोपी केशवमूर्ति के विरह में घबराकर रोने लगती थी। तब ज्ञानवान् गोपियाँ उसे समझाकर कहती थीं कि सुनो प्यारी! इस घबराने व रोने से क्या मिलेगा। उत्तम यह है कि हम लोग मनहरणप्यारे के स्मरण व चर्चा में अपने दिन काटें। जब सब व्रजबाला यह बात मानकर श्रीकृष्णजी के बालचरित्र की चर्चा में लीन हुईं तब एक गोपी बोली-हे सखियो! बांसुरी का बड़ा भाग्य समझो जो श्यामसुन्दर के ओठों से लगी रहती है। मोहनप्यारे अपना हाथ लगाकर उसमें ऐसी उपज निकालते हैं कि जिस शब्द के सुनने से जड़ व चैतन्य जीवों का चित्त ठिकाने नहीं रहता।

दो०जारसको हमतपकियो षटऋतुसबव्रजवाम। सोरसमुरलीलेतअब सहजैवशकरिश्याम।।

सो०गावत मीठी तानमुरलीसँग अधरनधरे। अब याके वश कान्ह अवरनवशावह करि रही।।

दूसरी सखी ने कहा क्यों बांसुरी की ऐसी बड़ाई न हो, जिसका हाथ श्यामसुन्दर पकड़ें वह तीनों लोकों का मालिक हो सकता है। मनुष्यों की क्या सामर्थ्य है जो वंशी की ध्वनि सुनकर अचेत न हो जावें। उसके शब्द पर ब्रह्मादिक देवता व ऋषीश्वर मोहित होकर यह इच्छा रखते हैं कि हम लोगों को परमेश्वर मनुष्य का जन्म वृन्दावन में देते तो आठों पहर श्यामसुन्दर का दर्शन करने व मुरली सुनने से आनन्द होकर हरिचरणों की धूरि अपने शिर व आँखों पर लगाते। उसी तरह देवतों की

स्त्रियाँ अपने-अपने पति के साथ रहने पर भी उस बाँसुरी के बोल पर मोहित हो जाती हैं।

दो०माखनप्रभुकी बाँसुरी श्रवणनसदासुहाय। जाकी ध्वनिसुनिकैसबैसुरमुनि रहत लुभाय।।

दूसरी सखी बोली कि मनुष्य और देवता तो ज्ञानवान् हैं वे बाँसुरी की ध्वनि पर मोहित हो गये तो कौन बड़ी बात है, उस मुरली का शब्द सुनकर पशु-पक्षी चरना और उड़ना भूलकर चित्रकारी से खड़े रह जाते हैं, किसी से नहीं भड़कते।

दो०एकसखीयहिविधि कहै सुरनरकी मतिशुद्धि। पशुपक्षीसब होत हैं जिनकी शुद्धिनबुद्धि।।

दूसरी ने कहा कि हे प्यारियो! मुरली के शब्द में ऐसा गुण है कि कोई कैसी ही चिन्ता में बैठा हो उसका बोल सुनते ही प्रसन्न हो जाता है।

दो०फिरिये याकेसंगलगि लोकलाज घरत्यागि। जबजब सोजहँबाजिहैं मोहनके मुखलागि।।

सो० करि है नाना रंग यह जानत टोना कछू। या मुरली के संग देखो हरि कैसे भए।।

दूसरी व्रजबाला ने कहा कि वह बाँसुरी बड़ी चतुरा व कुटनी है। जिस समय श्रीकृष्णजी को किसी की चाह होती है उस समय वह बाँसुरी बजाकर उसे अपने पास बुला लेते हैं। यमुनाजल भी वह शब्द सुनकर बौराय जाता है। इसी वास्ते लहर की बेड़ियाँ उसके पाँव में पड़ी हैं। वृक्षों की डाली जो नीचे-ऊपर लिपटी रहती हैं वह भी बाँसुरी सुनने से अचेत हो गई हैं। कमल का फूल भी उसी शब्द पर मोहित होकर मतवालों की तरह आठों पहर अपना शिर हिलाता है। बादल उसी ध्वनि पर मोहित होकर विरहियों की तरह रोकर आँख से पानी बरसाता है।

सो०हरिकोकरिवशमाहिं मुरली लूटै अधररस। उर डरमानत नाहिं हम सबते बोलत निठुर।।

दूसरी गोपी बोली—मैं जानती थी कि श्यामसुन्दर केवल लड़कपन के खेल में बड़े चतुर हैं, पर अब मुझे मालूम हुआ कि गाने-बजाने में भी कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता। दूसरी व्रजबाला ने कहा कि ब्रह्मा और महादेव आदि देवतों व बड़े-बड़े ऋषीश्वरों व ज्ञानियों का ध्यान वंशी सुनकर इस तरह छूट जाता है जिस तरह कोई नींद से जाग उठे। दूसरी गोपी बोली—मुरली हमारी सवति श्यामसुन्दर को ऐसी प्यारी है कि दिनरात उसको अपनी छाती से लगाये रहते हैं। पिछले जन्म मुरली ने बड़ा भारी

तप किया था जिसके प्रताप से मोहनप्यारे को अपने वश कर लिया।

दो० जैसेहैंगे हरि निठुर वंशी भई सहाय। अब मुरली अरु श्याम की जोड़ी मिली बनाय॥

सो० मेटतपिछले दाग जों वश करि पायो पिया। धनिधनिमुरलीभागअबगरजतअधरनचढ़ी॥

दूसरी सखी ने कहा—हे प्यारियो! मुरली का क्या अपराध है, यह सब कठोरता नन्दलालजी की समझनी चाहिये। उन्होंने नारी प्रीति छोड़ दिया और नीच जाति वंशी को अपनी रानी बनाकर रक्खा। दूसरी व्रज-बाला बोली कि मुरली बाँस के तनु में जन्म पाकर एक पैर से खड़ी रही। बरसात गर्मी सर्दी का दुःख अपने ऊपर उठाकर परमेश्वर का तप किया। फिर अपना पोर-पोर कटवाया और अग्नि की गर्मी सहकर अपने अंग-अंग में छेद कराया। इतना दुःख उठाकर उसने त्रिलोकीनाथ को अपने वश किया है। इसी वास्ते तीनों लोकों के जीव उसके शब्द पर मोहित हो जाते हैं। हम लोगों को क्या सामर्थ्य है जो उसकी बड़ाई व बराबरी कर सकें। जब उसके समान तुम लोग भी तप करो तब मोहनप्यारे तुम्हारे साथ भी वैसी प्रीति कर सकते हैं। उनका पाना सहज मत समझो। जब हम लोगों ने श्यामसुन्दर के मिलने के लिए व्रत किया तब उन्होंने हमारे चीर छिपाकर हमको नंगी देखा था। यह अपने-अपने भाग्य का फल है।

दो० मुरली की सरमतिकरो कहोहमारोमान। धनि-धनिवाहि बखानिये सुनवाको यशकान॥

सो० रहै विश्वभरिजीतिमोहनमुखलगिबाँसुरी। मेटिसकलश्रुतिनीतिरीतिचलावत आपनी॥

दूसरी गोपी ने कहा—मुरली से प्रीति रखने में हमारे लिए भी अच्छा है। उसके साथ वैर करने में कुछ फल नहीं मिलेगा। इसलिए वंशी से डाह न करना चाहिए। हम लोग केशवमूर्ति के साथ बालापन से प्रीति रखती हैं उनके चरणों का स्मरण व ध्यान करने से तुम्हारा अर्थ भी सिद्ध होगा।

सो० हमको हैयह आश वह हैंअन्तर्यामि हरि। करिहैंनहींनिराश उरअन्तर की जानिकै॥

दूसरी व्रजबाला बोली कि वंशी श्यामसुन्दर के ओठों का अमृत पीकर अमर हो गई, इसी वास्ते अपना बोल सुनाकर हम लोगों को ज्ञान सिखलाती है। यह वचन सुनते ही राधाप्यारी श्रीकृष्ण के विरह में डूबकर रोने लगी। तब दूसरी गोपी ने उससे कहा कि तू उदास मत

हो, श्रीकृष्णजी तेरे ऊपर मोहित होकर तेरा नाम बाँसुरी में बजाते हैं। तू रानी है और मुरली तेरी दासी है। हम लोग वृथा बाँसुरी को सवति जानकर उससे वैर रखती हैं। मोहनप्यारे ने मुरली को सब गुणनिधान समझकर उससे प्रीति लगाई है।

दो०अब मुरली छूटै नहीं याके वश भये श्याम। प्रकट कियो सब जगत में मुरलीधर निजनाम॥

दूसरी गोपी ने कहा—हे सखी! मोहनप्यारा चित्तचोर वृन्दावन में ग्वालों के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए गौ चराता फिरता होगा और वंशी की ध्वनि सुनकर सब गौ इकट्ठी हो गई होंगी। दूसरी सखी बोली कि मोहनप्यारे ऐसे सुन्दर हैं, जिनके मुख से हँसते समय फूल झरते हैं। उसका मोहनीरूप देखकर और वंशी सुनकर कामदेव हमारे वश में नहीं रहता। बाँसुरी का शब्द सब जीवों के पैर में ऐसी बेड़ी डाल देता है कि किसी को चलने की सामर्थ्य नहीं रहती।

दो०धनिधनिवंशीबाँसकी धनि याके मृदुबोल। धनि ल्यायेगुण जाँचिकै वनते श्याम अमोल॥

हे परीक्षित! इसी तरह सब गोपियाँ श्यामसुन्दर की चर्चा में दिन काटकर सन्ध्या समय राह पर आ बैठती थीं। केशवमूर्ति अन्तर्यामी उनकी प्रीति जानकर सन्ध्यासमय बलरामजी समेत गौवों और ग्वालों को साथ लिये व मोरपंख की टोपी शिर पर धरे जड़ाऊ कुण्डल कानों में पहिने, बाँसुरी बजाते हुए इस सुन्दरता से घर आते थे कि उनका दर्शन करने से सब छोटे व बड़ों का मन प्रसन्न हो जाता था। गोपियाँ बड़े प्रेम से आगे दौड़कर श्रीकृष्णचन्द्र के मुख की शीतलता से अपने हृदय की अग्नि ठण्ढी करती थीं। श्यासुन्दर के पग की धूरि अपने-अपने अंचल से झाड़कर परिक्रमा लेने के उपरांत अपने घर आती थीं।

दो० हरिस्वरूप के सिंधु में गोपी कूदीं धाय। नयनन पावें दरशरस मन की तृषा बुझाय॥

जब श्याम व बलराम अपने घर पहुँचते थे तो यशोदा और रोहिणी बड़े प्रेम से उबटन लगाकर स्नान कराके छत्तीस प्रकार के व्यंजन खाने के लिए देती थीं। वे ग्वालबालों के साथ प्रसन्न होकर भोजन करते थे। नित्य यही नियम रहता था। एक दिन वृन्दावनविहारी ने ऐसा विचार किया कि हमने रासलीला में अन्तर्धान होकर श्यामा आदि गोपियों

को अपने विरह का बहुत दुःख दिया था उसके बदले अब मुझे उचित है कि राधाप्यारी को, जो लक्ष्मीजी का अवतार हैं, मान कराऊँ और मैं उसके पाँव पकड़कर उसे प्रसन्न करूँ। सब व्रजबालों का दुर्वचन सुनकर उन्हें दुःख देने के बदले मैं उऋण हो जाऊँ। एक दिन राधाप्यारी सोलहों शृंगार किये अपने घर बैठी थी। मोहनप्यारे ने अपनी इच्छानुसार उसके घर जाकर श्यामा को अपने गले लगा लिया और उसकी सुन्दरता पर बलायें लेने लगे। केशवमूर्ति की माया से श्यामा ने अपने मुखारविन्द की परछाहीं मुरलीमनोहर के जड़ाऊ गहने में, जो गले में पहने थे, देखकर क्या समझा कि इस दूसरी सुन्दरी से नन्दलालजी ने प्रीति करके उसको छाती में लगा रक्खा है, सो मुझको दिखलाने के वास्ते ले आये हैं। ऐसा विचारकर राधाप्यारी को सवतिया डाह हुई। तब उसने रोनी सूरत बनाकर कहा—ऐ मोहनप्यारे! मैंने जाना, तुम प्रकट में मेरे साथ प्रीति करते हो और अन्तःकरण से इस महासुन्दरी को ऐसा चाहते हो कि आठों पहर अपनी छाती से लगाये रहते हो, एक क्षण अलग नहीं करते। इस सखी का बड़ा भाग्य समझना चाहिए जो रात-दिन तुम्हारे हृदय में बसती है। अब तुम इसके साथ प्रीति करो मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। यह वचन सुनते ही ज्योतिस्वरूप उसके सामने हाथ जोड़कर बोले—हे प्राणप्यारी! तुम्हारे सिवा और कौन है जिसको हम चाहते हैं। तुम हमारी बात का विश्वास करो, ऐसा मत विचारो। इसी तरह बहुत विनती करके नन्दलालजी ने श्यामा का हाथ पकड़कर अपने पास बैठाना चाहा, पर वह सवतियाडाह से नहीं बैठकर बोली—ऐ केशवमूर्ति! अपनी प्यारी से जिसको हृदय में रखते हो, बोलो, अब हमको तुमसे कुछ प्रयोजन नहीं है। ऐसा कहकर राधा अपनी परछाहीं को गालियाँ देने लगी। मोहनप्यारे ने कई बेर समझाकर कहा कि यह दूसरी स्त्री नहीं है, मेरे जड़ाऊ गहने में तेरी परछाहीं दिखलाई देती है, पर श्यामा को सवतिया डाह से उनकी बात का विश्वास नहीं हुआ। उसी समय एक सखी वहाँ आई और दोनों को उदास देखकर बोली—

दो० वह हरि से पूछत भई कहो न मोहिं बताय । आज दशा कैसी लगत बैठे कहा गँवाय ।।
सो० क्यों तन रह्यो भुलाय अति व्याकुल देखत तुम्हें। रह्योबदनकुम्हिलायऐसोसोचकहा परो।।

यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने कहा—ऐ सखी ! मैंने तो राधा का कुछ अपराध नहीं किया। इसने अपनी परछाहीं मेरे जड़ाऊ गहने में देखकर उसे दूसरी स्त्री समझा है, इस कारण मुझसे रूठकर नहीं बोलती। तू किसी तरह इसका सन्देह मिटाकर प्रसन्न कर दे। जब यह बात कहकर श्यामसुन्दर ने आँखों में आँसू भर लिया तब उस सखी ने मुरलीमनोहर से कहा कि तुम वृन्दावन में चलो, मैं राधाप्यारी को वहाँ लिये आती हूँ। यह सुनकर मोहनप्यारे वृन्दावन के कुंज में चले गये। उस सखी ने राधा के पास जाकर कहा कि तुम्हें गोपीनाथ ने बुलाया है। श्यामा बोली—तू नहीं जानती कि नन्दकुमार ने दूसरी सुन्दरी से प्रीति करके उसको अपने हृदय में बसाया है, अब वह मेरी चाह नहीं रखते, मैं उनके पास जाकर क्या करूँ। तब फिर वह सखी बोली—हे राधा ! तू जिनकी वस्तु मँगनी ले आई है, वह तेरे बदले मोहनप्यारे को वन में घेरे खड़े हैं और तुम यहाँ मचलाकर बैठी हो ऐसा न चाहिए। श्यामा ने कहा कि मैं किसी की वस्तु मँगनी नहीं ले आई हूँ जो घेरे हों, उनका नाम बतला दो। तब वह सखी बोली कि हरिणी की आँख, चीते की कमर, हाथी की चाल, अनार के दाँत तू मँगनी लाई है। वे लोग नन्दलालजी से तगादा करते हैं। यह बात प्रीति भरी हुई सुनकर राधा ने हँस दिया। तब वह सखी बोली कि हे प्यारी ! तू बड़ी अज्ञान है, मोहनप्यारे से वृथा क्रोध करती है। जिस तरह पहिले एक दिन तूने शीशा देखकर अपनी परछाहीं को सवति समझा था उसी तरह आज भी नन्दलालजी के जड़ाऊ गहने में अपनी परछाहीं को दूसरी स्त्री जानकर मोहनप्यारे से क्रोध किया, इसलिए वह तेरे विरह में व्याकुल होकर राधा-राधा पुकारते हैं। तू जल्दी चलकर उनकी चिन्ता छुड़ा दे, जब यह वचन सुनकर श्यामा का चित्त ठिकाने हो गया तब वह पछताकर कहने लगी कि हे सखी ! तुम मोहनप्यारे से जाकर कह दो कि मैं शृंगार करके अभी आती हूँ। जब वह सखी श्यामसुन्दर के पास यह सन्देश कहने गई

तो क्या देखा कि वृन्दावनविहारी राधाप्यारी के विरह में व्याकुल होकर वृक्ष के तले लोट रहे हैं।

सो० बैठत उठत अधीर कोऊ सुधि पावत नहीं। बढ़त विरह की तीर श्रीराधा राधा रटत॥

उनकी यह दशा देखकर वह सखी बोली कि हे प्राणप्यारे! तुम क्यों इतना सोच करते हो, अभी एक क्षण में श्यामा आती है, यह वचन सुनते ही मुरलीमनोहर उठ बैठे, फूलों की शय्या बिछाया और चारों ओर चौंक चौंककर ताकने लगे। जब श्यामा के आने में कुछ देर हुई तब फिर वह सखी राधा के पास जाकर बोली—ऐ श्यामा! मनहरणप्यारे तेरे विरह में रो रहे हैं, तू क्यों नहीं चलती।

सो० मुख नहिं बोलत बैन अति व्याकुल तेरे विरह। भरभर डारतनैन कहा कहूँ उनकीदशा॥

राधा यह वचन सुनते ही बहुत प्रसन्न होकर उस सखी के साथ वन में जा पहुँची। श्यामसुन्दर ने प्यारी को देखते ही आनन्द होकर उस सखी की बड़ाई की और श्यामा को अपने हृदय में लगाकर कामदेव की अग्नि बुझाई।

दो० परमप्रेम दोऊमिले श्रीराधा नंदनन्द। गुणआगर नागरयुगल छबिसागर सुखकन्द॥
गयो श्याम श्यामासदनसखीसहितसुखपाय। मन चरित्र रस खेलकर व्रजवासिन सुखदाय॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! देखो, जिस त्रिलोकीनाथ का दर्शन ब्रह्मा और महादेव आदि देवता व ऋषीश्वर जल्दी ध्यान में नहीं पाते वह परमेश्वर व्रज की स्त्रियों के लिए ऐसा सोच करते थे। उनकी लीला कौन जान सकता है।

सो० जो प्रभु अगम अपार वेद भेद जानत नहीं। सोव्रजकरत विहार मरम न वाको पावहीं॥

एक दिन श्यामसुन्दर ने वृन्दावन की गली में ललिता सखी को आती हुई देखकर रोका। तब ललिता बोली कि तुम झूठी प्रीति मेरे साथ रखकर कभी मुझ गरीबिनी के घर नहीं आते। यह सुनकर नन्दलालजी ने कहा।

दो० तुमकैसे बिसरत प्रियाहँसि बोले घनश्याम। आजु आय सुख लेहिंगे रैनतुम्हारे धाम॥
सो० सुनहर्षीव्रजवाम चली सदन मुसकायकै। लखि सुखपायो श्याम मुदितगयेअपनेसदन॥

हे राजन्! ललिता ने बड़े हर्ष से अपने घर आकर सोलहों शृंगार

किया और शय्या की तैयारी करके श्यामसुन्दर के आने की आशा करने लगी। जब आधी रात बीतने पर भी श्रीकृष्णजी वहाँ न आकर शैला सखी के घर चले गये तब ललिता ने उदास होकर कहा—

दो० कहत श्याम आये नहीं होन लगी अधरात। गये आशदेमोहिं पुनिकहाधरोंजियबात ॥
सो० वे बहुनायक श्याम जायलोभानेअनतकहुँ। मनमनसोचतवाम कारण क्या आये नहीं॥

जब ललिता को इसी सोच विचार में सारी रात जागते बीत गई तब प्रातःसमय नन्दलालजी अपना वचन याद करके ललिता के घर पहुँचे।

दो० तब बोली मुसकाय प्रियकहा काममधाम। ताही के घरजाइये बसे जहाँ निशिश्याम ॥
सो० प्रात देखावनमोहिं आये रंगबनाय के। मैं सुख पायों जोहि भले बने हौ लाल अब ॥

जब यह वचन सुनकर श्यामसुन्दर ने मुसकरा दिया तब ललिता ने उन्हें स्नान कराया।

दो० रुचि भोजन दे सेज पर पौढ़ाये घनश्याम। रसवशकरिनबनागरी किये सुफलमनकाम ॥

थोड़ी देर केशवमूर्ति वहाँ रहकर उसकी इच्छा पूर्ण करने के उपरान्त अपने घर चले आये। इसी तरह मोहनप्यारे कभी श्यामा, कभी चन्द्रावली, कभी सुखमा आदि गोपियों के घर रातभर रहकर उनकी इच्छा पूर्ण करते थे। जब एक व्रजबाला से वचन हारकर दूसरी सखी के घर चले जाते और वह व्रजबाला हठकर मान करती तब बहुत विनती करके उसे मनाते। इसी तरह मोहनप्यारे अपना एक रूप नन्द व यशोदा के पास रखते और अनेकरूप धरकर कभी-कभी व्रजबालों की मनोकामना पूर्ण करते थे।

दो० कबहुँ कहत हरि आइहैं उरमेंहर्ष बढ़ाय। कबहुँबिरहव्याकुलजरतअतिआतुर अकुलाय॥
सो० कबहुँ कहतसुखपायबहुतनारिराखैं पिया। बसे अनत कहुँ जाय मोसों झूठी अवधिकरि॥

एक रात श्यामसुन्दर किसी सखी के घर रहकर जब प्रातःसमय राधा के पास गये तब वह क्रोध करके रूठ बैठी, इसलिए मोहनप्यारे ने बहुत विनती करके सौगन्द खाई कि हे प्राणप्यारी! अब मैं दूसरी गोपी के घर कभी नहीं जाऊँगा तब वह प्रसन्न हुई। पर त्रिलोकी ने, जो सबकी इच्छा पूर्ण करनेवाले थे, सौगन्द खाने पर भी व्रजबालों के घर का जाना नहीं छोड़ा। एक दिन श्यामसुन्दर कौमुन्दा सखी के घर पर रहे और प्रातःकाल वहाँ

से आते थे, उसी समय अचानक राधाप्यारी कौमुन्दा सखी को यमुना-स्नान करने के लिए बुलाने गई। जैसे श्यामा ने केशवमूर्ति को उसके घर से निकलते देखा वैसे ही क्रोधित होकर बिना नहाये अपने घर चली आई। नन्दलालजी उसे देखते ही भय मानकर मन में कहने लगे कि आज हमारी चोरी राधा ने पकड़ लिया। जब मुरलीमनोहर राधाप्यारी से भेंट किये बिना नहीं रह सके तब कई सखियों को साथ लेकर उसे मनाने गये। उन्हें देखते ही श्यामा क्रोध से बोली—

दो० घरघरडोलतफिरतनिशिबोलतलगतनलाज। आयदिखावेंप्रातमोहिंनिशिवासरकेसाज॥
सो० मैंआई अब बाज जित चाहो तितहु फिरौ। इनको यहाँ न काज राज करैं व्रज में सदा॥

जब श्यामसुन्दर के विनती करने और सखियों के समझाने पर भी राधा ने क्रोध क्षमा नहीं किया तब सखियाँ बोलीं कि हे श्यामा! चार दिन के जीवन पर अभिमान मत कर। वृन्दावनविहारी तेरे क्रोध करने से उदास होकर अपना अपराध क्षमा कराने तुम्हारे पास आये हैं, सो तू हँस बोलकर इनका सोच छुड़ा दे।

दो० आदर करि बैठायके पियको कंठ लगाय। घर आये नहिं कीजिये ऐसी विधि निठुराय॥
सो० है तू नागरि वाम मनमें क्या ऐसीधरी। वे ठाढ़े हैं श्याम तू मुख ते बोलत नहीं॥

श्यामा यह सुनकर बोली कि जिसके घर श्यामसुन्दर रातभर रहे हैं वहाँ जावें। मेरे साथ अब इनका क्या काम है। अभी चार दिन हुए इन्होंने मुझसे सौगन्द खाई थी कि अब किसी सखी के घर न जाऊँगा, सो आज मैंने अपनी आँख से इनको कौमुन्दा गोपी के यहाँ से निकलते देखा। मैं इनके योग्य नहीं हूँ, लम्पट मनुष्य से प्रीति करके कौन नष्ट होवे।

दो० ऐसोगुणहरिकोसखी निपटकपटकी खानि। अब इनसों मोसों कभी नहीं बनैगीजानि॥
सो० हैं हरिकपटनिधान बहुनायकसँग रमिरहे। तिनकोकरतबखान जो वामन ह्वैवलिछल्यो॥
दो० ऐसो कहि चुप हो रही मुर बैठी रिस गात। मधुरे वचनन से कहत निपट सखिन सों बात॥
सो० आये हैं करिगौनचतुरनारिसँगनिशिजगे। इनसों मिलि हैं कौन विरहअग्निमेंजलनको॥
सखी कह्यो मुसकाय नहिं मानत मेरो कह्यो। श्याम मनावैं आय मैं जान्यों तब मानिहै॥

जब सखियों के समझाने से राधा नहीं मानी तब उन्होंने श्यामसुन्दर से कहा कि हम लोग समझाते-समझाते हार गईं, पर राधा नहीं मानती, तुम उसे समझाकर मना लो।

दो० मान तजै नहिं लाड़ली थाकीं सबै मनाय । नेकु यत्न कुछ कीजिये रचिये आप उपाय ॥
चलै बनेहै लाल अब और यत्न नहिं कोय । काछकाछिये जौनविधि नाचनाचिये सोय ॥
सो०आपकाजमहकाजबड़ेकहीहैं बात यह । तजौश्यामउरलाज करि विनती प्रियसों मिलौ ॥

जब ऐसा कहकर सब सखियाँ अपने-अपने घर चली गईं तब नन्दकुमार भी वहाँ से बाहर चले आये, पर उनका मन नहीं माना तब स्त्रीरूप बन गये और श्रीकृष्णजी की ओर से राधाजी के पास जाकर यह सँदेशा कहा कि मैं इस समय तुझे देखने के लिए वृन्दावन के कुंज में गई थी सो तुझे उस जगह नहीं पाया, पर श्यामसुन्दर तेरे विरह में वहाँ अतिविलाप करते हैं। उन्होंने मेरे पाँव पकड़कर बहुत विनती से तुझे बुलाया है, सो तू मान छोड़कर मोहनप्यारे के पास चल। यह बात कहकर गोपीरूप मोहनप्यारे श्यामा के चरणों पर गिरकर विनती करने लगे।

दो०क्षणक्षणपरसतचरणकरक्षणक्षणलेतबलाय।कहतप्रियाअबमानतजिपुनिपुनिहाहाखाय॥

जब राधाप्यारी उस स्त्री के विनती करने से प्रसन्न होकर चलने के लिए तैयार हुई तब श्यामसुन्दर ने अपना रूप धरकर श्यामा को गले से लगा लिया। दोनों ने बड़े हर्ष से एक थाली में भोजन किया और अपने-अपने कामदेव की अग्नि भेंटरूपी जल से बुझाई। इसी तरह मोहनप्यारे राधा आदि गोपियों का मनोरथ पूर्ण किया करते थे।

दो०यह लीलाआनन्दमय सकल रसन को सार। भक्तन हितहरि करत हैं गाई तरत संसार ॥
सो०घरघर करत विहार व्रजयुवतिन के संगहरि।गावत हैं श्रुतिचार व्रजवासी हरि कीकथा॥

छत्तीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का वृषासुर राक्षस को मारना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित ! जब वर्षा ऋतु आई तब राधाप्यारी ने श्यामसुन्दर से कहा कि तुम हिंडोला झूलने की लीला करो तो हम सब सखियाँ तुम्हारे साथ झूला झूलकर बरसात के गीत गावें। यह वचन सुनते ही श्यामसुन्दर ने जड़ाऊ झूला कुंजों में डलवा दिया। राधाप्यारी आदि व्रजबाला उत्तम भूषण और अनेक रंग के वस्त्र पहिनकर श्यामसुन्दर के साथ झूलने व गाने लगीं। उस समय वृन्दावनविहारी ने मुरली सुनाकर और अनेक राग-रागिनी से गाकर उन्हें अति प्रसन्न किया। वह

आनन्द देखने के लिए ब्रह्मादिक देवता और गन्धर्व अपनी-अपनी स्त्रियों समेत विमानों पर चढ़कर वृन्दावन में आये। बड़े हर्ष से राधाकृष्ण पर फूल बरसाकर ब्रजबालों के भाग्य की बड़ाई करने लगे। इसी तरह बरसात भर राधा आदि गोपियों के साथ विहार करके उन्हें सुख दिया। जब फागुन का महीना आया तब श्यामा आदि ब्रजबालों ने मोहन-प्यारे से हाथ जोड़कर विनय किया कि महाराज! हम लोगों के साथ होली खेलो। यह वचन सुनकर नन्दलालजी बोले कि तुम लोग अपने-अपने घर जाकर तैयारी करो मैं अपने सखों को साथ लेकर होली खेलने आऊँगा। जब सब ब्रजबालों ने अपने-अपने घर जाकर होली खेलने की तैयारी की तब नन्दकुमार ने ग्वालबालों को बुलाकर केसरिया कपड़ा पहिनाया और रंग अबीर इत्र आदि अपने-अपने शरीर पर डालकर सुगन्धित फूलों के गजरे गले में पहिन लिये। डफ, बाँसुरी व खँझरी बजाकर फगुवा गाते व ब्रजबालों को गालियाँ देते, अबीर उड़ाते, अनेक तरह के स्वांग बनाये, लड़कों को नचाते हुए ब्रज में होली खेलने निकले। जो गोपी राह में दिखलाई देती थी उस पर रंग की पिचकारियाँ मारकर हँसते थे। सब ब्रजबाला कोठों पर से मोहनप्यारे और ग्वाल-बालों पर रंग व अबीर डालकर गालियाँ सुनकर प्रसन्न होती थीं। जब इसी तरह वृन्दावनविहारी होली खेलते हुए राधाप्यारी के घर बरसाने गाँव में पहुँचे तब श्यामा अपनी सखियों समेत सोलहों श्रृंगार किये रंग की पिचकारियाँ लिये गली में जाकर मोहनीमूर्ति के सामने खड़ी हुई। जब दोनों ओर से पिचकारियाँ चलकर अबीर उड़ने लगी तब श्यामा सखियों से बोली कि आज अपने चित्तचोर को पकड़कर चीर हरने का बदला लेना चाहिए।

दो०ललितादिकव्रजनागरीसबसुन्दरिकोसाज। तिनमेंश्रीराधाकुँवरिसब गोपिनशिरताज॥
सो०कर्म रूप को रासगुण आगर नव नागरी। राजत भरी हुलास मनमोहन मन भावती॥
दो०ग्वालबाल के झुण्ड में शोभितयों व्रजनाथ। ज्यों चन्दा आकाश में तारागण लिये साथ॥

जब रंग व अबीर उड़ने से अँधियारा छा गया तब श्यामा ने सखियों से कहा कि मनहरणप्यारे को किसी उपाय से पकड़ो। यह वचन सुनते

ही एक सखी ने बलरामजी का वेष बनाकर धोखे में केशवमूर्ति को पकड़ लिया और राधा आदि व्रजबालों ने उन्हें घेरकर कहा कि तुमने यमुना के किनारे चीर छिपाकर हमको बड़ा दुःख दिया था, आज उस दिन का बदला लिये बिना न छोड़ेंगी। ऐसा कहकर एक गोपी ने श्यामसुन्दर का पीताम्बर छीन लिया, दूसरी ने आँखों में काजल देकर माथे पर सिंदूर व बेंदी लगा दिया, किसी ने भूषण व वस्त्र पहिनाकर उन्हें स्त्रीरूप बनाया।

दो० गयेभागिमोहनतभीसखियनकोछिटकाय। आयमिलेनिज सखन में रहींनारिपछिताय ॥

सो०करमीजत पछितातकहतपरस्पर बात सब । भलीमिली थी घात दाँव लेन पायो नहीं ॥

दो०भाजे-भाजे कहति सब ताली दे व्रजबाल। जो तुम जाये नन्द के ठाढ़े रहौ गुपाल॥

जब उन्हें स्त्रीरूप देखकर सब ग्वालबाल हँसने लगे तब मुरलीमनोहर ने एक ग्वाल को सखीरूप बनाकर राधा के गोल में भेजा और अपना पीताम्बर किसी उपाय से मँगा लिया। उस समय श्यामा बोली कि हे प्राणनाथ! आज तुम चतुराई करके उचकि गये, फिर पकड़ेंगी तो मालूम होगा।

चौ० पकड़ नचावें तुम्हें मुरारी। तब कहियो हमको व्रजनारी ॥

यह बात सुनकर व्रजनाथ ने सखियों से कहा कि मैं तनिक श्यामा का संकोच करता हूँ, नहीं तो अपने ग्वालों को लगाकर अभी तुम्हारी दशा दिखा दूँ। यह सुन गोपियाँ मुसकराकर बोलीं कि तुमको नन्द की सौगन्द है जो ऐसा न करो। तब मोहनप्यारे ने अपने सखा समेत रंग की पिचकारियाँ व्रजबालों पर मारकर अबीर उड़ाने और फगुवा गाकर उन्हें गालियाँ देने लगे। श्यामा ने भी सखियों समेत मोहनप्यारे आदि से अच्छी तरह होली खेली। वह आनन्द देखने के लिए देवता व गन्धर्व अपनी-अपनी स्त्रियों समेत विमानों पर बैठकर वहाँ आये और राधाकृष्ण पर फूल बरसाकर आपस में कहने लगे कि जिस वैकुण्ठनाथ के चरणों का दर्शन ब्रह्मादिक देवतों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता वही परब्रह्म परमेश्वर ग्वालबालों और गोपियों के साथ होली खेलकर उनको सुख देते हैं। जब राधाकृष्ण होली खेल चुके तब ललिता सखी

ने आकर केशवमूर्ति से विनय किया कि कल्ह हम लोग भी तुम्हारे गाँव में होली खेलने आवेंगी।

सो० घरआयेघनश्याम सखनसंगगावत हँसत। गईप्रियानिजधाम सखिनसहितआनँदभरी ॥

उस समय राधिका सखियों से बोली—

क० धाये नन्दलाल वो गुलाल दोऊ एक संग झुमटि गयो जो दृग आनन मढ़े नहीं।
धोय-धोय हारी पदुमाकर तिहारी सौंह अब तो उपाय कोउ चित्त पै चढ़े नहीं ॥
कहा करौं कहाँ जाऊँ कासौं कहौं कौन सुनै कीजिये उपाय जामें दरद बढ़ै नहीं।
एरो मेरी वीर जैसे-तैसे इन आँखिन से कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं ॥

दूसरे दिन प्रातःसमय राधाप्यारी ने सखियों समेत सोलहों शृंगार किया और सोने-चाँदी के बरतनों में रंग, अबीर, गुलाब, इत्र भरवाकर बड़ी तय्यारी से होली खेलने चली। जब श्यामा गाती-बजाती रंग-अबीर उड़ाती हुई नन्दगाँव में जाकर यशोदा का स्थान घेर लिया तब श्याम व बलराम भी अपने सखों समेत फगुवा गाते हुए बाहर निकले और रंग व अबीर से राधा आदि के साथ होली खेलने लगे। जब रंग व अबीर उड़ने से चारों ओर लाल हो गया तब ललिता आदि कई सखियाँ मोहनप्यारे को पकड़ने के लिए दौड़ीं पर नन्दकुमार फुरती से भाग गये, इसलिए बलरामजी को पकड़ ले आईं। श्यामा आदि ने उनको रंग व अबीर से नहलाकर आखों में काजल व माथे पर बेंदी लगा दिया। उनसे विनती कराके छोड़ा। बलरामजी का रूप देखकर श्यामसुन्दर व सखा लोग हँसने लगे। उस समय गोपियों ने घात लगाकर मोहनप्यारे को भी पकड़ा और जब उन्हें अपनी गोल में ले गईं तब चन्द्रावली बोली कि हे चित्तचोर! चीर हरने के बदले आज तुम्हें नंगा करके छोड़ूँगी।

दो० लै आई प्यारी निकट हँसतकहत व्रजबाल। कहौ लाल कैसे फँसे बहुत करत रहे गाल ॥

उस समय ललिता उनकी मुरली छीनकर बजाने लगी और एक सखी ने मोहनप्यारे को रंग व अबीर से नहलाकर आँखों में काजल व माथे पर बेंदी लगाया। दूसरी ने उनका पीताम्बर छीनकर उन्हें लँहगा सारी और अँगिया पहिनाया। एक सखी ने मोतियों से माँग गूँधा

और स्त्रीरूप बनाकर राधा के पास बैठा दिया। श्यामा ने बड़े हर्ष से अपने हाथ से उनके गालों पर इत्र व अबीर लगाकर उनका मुख चूम लिया।

दो०निरखिबदनप्यारीहँसी श्यामरहेसकुचाय। गहि प्यारीनिजहाथसों दीन्हेंपानखिलाय ॥

सो०सखियाँ करत कलोल गाँठि जोरि अंचल दई। व्रजमेंरहै अमोल यह जोड़ीयुगयुग सदा ॥

जब व्रजबालों ने राधाकृष्ण को गाँठिबन्धन किये हुए बीच में बैठाकर रंग व अबीर से नहला दिया और उनकी छवि देखकर प्रेम से गाने लगीं तब यशोदा ने ललिता को घर में बुलाकर कहा कि रसोई खाने का समय हुआ है, इसलिए तू सबको भीतर बुला ले। जब ललिता श्यामा आदि सखियों को भोजन करने के लिए भीतर लिवा ले गई और श्यामसुन्दर व्रजबालों से छूटकर अपने गोल में चले आये तब ग्वालबालों ने बलरामजी को बुलाकर उनका रूप दिखलाया और मोहनप्यारे को सौगन्द धराकर जब उसी तरह उनका हाथ पकड़े हुए नन्द व यशोदा के पास ले गये तब वह अपने लाल को स्त्रीरूप से देखते ही बड़े हर्ष से लिपटाकर बोले—हे बेटा! तुम्हारा यह रूप किसने बनाया। नन्दकुमार ने कहा कि हे बाबा! ललिता आदि राधा की सखियों ने यह भूषण व वस्त्र मुझे पहिनाया है। फिर यशोदा ने श्यामा आदि व्रजबालों को छत्तीस व्यञ्जन खिलाये और पान-इलायची देकर अपने यहाँ से उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र राधा को पहिनाये।

सो०रह्यो नन्द घर छाय होरीको आनन्द अति। कहत यशोमतिमाय फगुवा कहासोदीजिए ॥

यह सुनकर व्रजबालों ने कहा—हे नन्दरानीजी! हम लोग फगुवा के बदले मोहनप्यारे को लेंगी। तब नन्दमहरि व्रजवासियों समेत हँसने लगी। श्यामसुन्दर ने लहँगा आदि उतारकर अपना मुकुट व पीताम्बर पहिन लिया। सब ग्वालबालों और व्रजबालों को साथ लेकर यमुना स्नान करने गये। जब केशवमूर्ति ने नहाकर फूलडोल लीला किया तब देवतों ने आकाश से उन पर फूल बरसाये। इसी तरह केशवमूर्ति नित्य नई लीला करके व्रजवासियों को सुख देते थे। एक दिन राजा कंस ने वृषासुर दैत्य को बुलाकर विनयपूर्वक कहा कि हम तुमको सब दैत्यों से बलवान् समझकर अपना परममित्र जानते हैं। तुम नन्द के बेटे कृष्ण

व राम को मार डालो तो मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँ। यह वचन सुनते ही वृषासुर बैलरूप बहुत बड़ा पर्वत के समान हो गया। दोनों सींग बड़े-बड़े कँगूरा ऐसे बनाकर बादल की तरह गर्जता हुआ लाल-लाल आँखें निकाले व पूँछ फटकारे हुए सन्ध्या समय वृन्दावन में आ पहुँचा। मारे क्रोध के मुख से झाग निकालकर एक बार ऐसा चिल्लाया कि उसका शब्द सुनकर स्त्रियों का गर्भ गिर पड़ा। खुरों से पृथ्वी खोदकर सींगों पर पहाड़ उठाकर उलटने लगा। वृक्षों को सींग से उखाड़कर श्यामसुन्दर को खोजता फिरता था। यह दशा देखकर दिग्पाल व देवता डर गये, पृथ्वी काँपने लगी और ग्वाल लोग उसे अपना काल समझकर श्रीकृष्णजी को पुकारने लगे। सब लोगों ने किवाड़े बन्द कर लिये। उस समय श्याम व बलराम भी ग्वालों समेत गो चराकर जैसे गाँव के निकट पहुँचे वैसे ही गौ व बछवे मारे डर के भागकर इधर-उधर चले गये। ग्वालबाल वृषासुर को देखकर रोने लगे। जब मोहनप्यारे ने ग्वालबालों और व्रजवासियों की यह दशा देखी तब उन्हें धैर्य देकर बोले कि तुम लोग सोच मत करो, मैं अभी इस दुःखदायी को मारे डालता हूँ। ऐसा कहकर वृषासुर के सम्मुख चले गये और ललकारकर बोले कि हे कपटरूपी दैत्य! तू गोपियों और ग्वालों को क्यों डराता है, हमारे सामने आ, तेरे ऐसे बहुत से राक्षसों को मैंने मार डाला है। उन्हें देखते ही वृषासुर ने प्रसन्न होकर मन में कहा कि जिसे मारने की मेरी इच्छा थी, बहुत अच्छा हुआ वह बालक अपने आप मेरे सामने चला आया। अभी इसको मारकर राजा कंस के पास जाता हूँ। ऐसा विचारकर वृषासुर बिजली के समान केशवमूर्ति पर दौड़ा और अपने सींग पृथ्वी में गड़ाकर ऐसा चाहा कि वैकुण्ठनाथ को तीनों लोकों समेत उठा लूँ। तब श्यामसुन्दर ने उसका सींग पकड़कर उसे अठारह पग पीछे हटा दिया। फिर वह भी बल करके मोहनप्यारे को हटाने लगा।

दो० वहआवे हरिओर को प्रभु पाछे ले जाहिं। या विधि जो आयो गयो रही शक्ति कछु नाहिं॥

जब इसी तरह बल करते-करते वह दैत्य थक गया तब मुरलीमनोहर ने एक बेर उसको पृथ्वी पर पटक दिया। जब फिर उसने बड़े क्रोध से

मोहनप्यारे को दोनों सींगों में अड़ाया तब केशवमूर्ति ने फुरती से निकलकर उसके दोनों सींग पकड़ लिये और ऐसा ढकेला कि वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय श्यामसुन्दर ने सींग व पैर पकड़-कर इस तरह उसका शरीर उमेठा जिस तरह कोई गीला कपड़ा निचो-ड़ता है। तब उसके मुख, नाक और मूत्र की राह से लोहू बहने लगा और वह दैत्य मर गया। यह हाल देखते ही देवतों ने आकाश से मुरली-मनोहर पर फूल बरसाये और सब वृन्दावनवासी बड़े हर्ष से उनकी स्तुति करके बोले—हे मोहनप्यारे! हम लोगों ने इस दैत्य को बैल समझा था, बहुत अच्छा हुआ जो मारा गया।

सो० दुष्टदलन गोपाल मुदित कहत नरनारि सब। भक्तन के रछपाल व्रजवासी नँदलाड़िले॥

उस समय राधिका बोली—हे मोहनप्यारे! बैलरूप दैत्य मारने से तुमको पाप लगा, इसलिए सब तीर्थ स्नान करो तब किसी को छूना। यह वचन सुनते ही नन्दकुमार ने दो कुण्ड गोवर्धन पहाड़ के पास खुदवा-कर कहा—हे राधाप्यारी! मैं इसी जगह सब तीर्थों को बुला लेता हूँ। सो उनकी इच्छानुसार उसी समय गंगा, यमुना, सरस्वती आदि सब तीर्थ अपने-अपने रूप से वहाँ आये और अपना-अपना नाम बतलाकर जब दोनों कुण्डों में जल डालकर चले गये तब श्यामसुन्दर ने उसमें स्नान किया। बहुत सी गौवें और सोना देकर वहाँ पर ब्राह्मणों को भोजन कराया। नन्दजी और वृषभानु आदि ने नन्दकुमार पर बहुत सा द्रव्या-दिक न्योछावर करके गरीबों को दिया और आनन्द मनाते हुए अपने-अपने घर आये। उसी दिन से वे तीर्थ राधाकुंड और श्रीकृष्णकुंड नाम से प्रसिद्ध होकर आज तक वृन्दावन में हैं। इतनी कथा सुनाकर शुक-देवजी बोले—हे राजन्! जब वृषासुर के मारे जाने का समाचार कंस को पहुँचा तब उसने बहुत उदास होकर विश्वास कर लिया कि मैं इस बालक के हाथ से अवश्य मारा जाऊँगा। श्यामसुन्दर की इच्छानुसार एक दिन नारदजी कंस के पास आये। जब उसने बड़े आदर-भाव से बैठाया तब नारद मुनि बोले—हे मूर्ख! तूने कुछ जाना कि वृषासुर आदि बड़े-बड़े दैत्यों को किसने मारा है? तू मेरे वचन का विश्वास कर, तूने जो

देवकी की कन्या पत्थर पर पटककर मारी थी, वह कन्यारूपी योगमाया यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी और श्रीकृष्ण ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया था। वसुदेवजी अपना बालक रात्रि को नन्द के घर पहुँचाकर उसके बदले वह कन्या उठा लाये थे। बलराम भी वसुदेव का बेटा है, जिसको योगमाया ने देवकी के पेट से निकालकर रोहिणी के गर्भ में धर दिया था। वसुदेव ने तुझसे गर्भपात होने का हाल कहा, पर उन्होंने तेरे डर से अपनी स्त्री रोहिणी को नंदजी के यहाँ गोकुल में भेजकर रक्खा था। वहाँ बलभद्रजी ने जन्म लिया है। जब देवकी के प्रथम बालक उत्पन्न हुआ तभी हमने तुझसे कह दिया था कि तू वसुदेव के संतान से चैतन्य रहियो। पर इसमें तेरा क्या वश है, भाग्य का लिखा हुआ मिट नहीं सकता। तीन कोस पर तेरा शत्रु है, जो कुछ तुझसे बन पड़े आगे के वास्ते उपाय कर। यह वचन सुनते ही पहिले कंस भय से काँपने लगा, फिर क्रोधित होकर वसुदेव व देवकी को अपने सामने बुलाकर कहा—

दो० प्रथम दियो सुत ल्यायकै मन परतीत बढ़ाय। ज्यों ठग कछू दिखायकै सर्वस लेभगि जाय॥

चौ० मिला रहा कपटी तू मुझे। भला साधु जाना मैं तुझे॥
कृष्ण नन्दघर तू पहुँचाय। देवी हमैं दिखाई आय॥
मन में कछू कहै मुख और। आज तोहिं मारों यहिठौर॥
मित्र सगा सेवक हितकारी। करै कपट सो पापी भारी॥

दो० मुख मीठा मन विषभरा रहै कपट के हेत। आप काज परद्रोहिया उससे भला जो प्रेत॥

जब ऐसा कहकर कंस वसुदेव व देवकी को मारने के लिए नंगी तलवार लेकर दौड़ा तब नारद मुनि ने उसका हाथ पकड़कर कहा—हे राजन्! इनके मारने से तेरा अर्थ नहीं निकलेगा, जिनसे तुझको अपने प्राण का डर है उनके मारने का उपाय करना चाहिए। यह सुनकर कंस ने उनको प्राण से नहीं मारा, पर बेड़ी व हथकड़ी डालकर फिर उन्हें कैद किया। जब नारदजी वहाँ से चले आये तब कंस ने केशी नाम दैत्य को जो बड़ा बलवान् था बुलाकर विनयपूर्वक उससे कहा कि हे केशी! यह समय सहायता करने का है।

चौ० महाबली तू साथी मेरा। बड़ा भरोसा मुझको तेरा॥
एक बार तू व्रज में जावै। राम कृष्ण हति मुझे दिखावै॥

जब केशी दैत्य यह वचन मानकर वृंदावन को चला तब कंस ने

चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल आदि बड़े-बड़े पहलवानों को बुलाकर कहा कि हम श्याम व बलराम वसुदेव के पुत्रों को किसी बहाने यहाँ बुलाते हैं, तुम लोग कुश्ती लड़कर उन्हें मार डालो तो तुमको बहुत द्रव्य देंगे। ऐसा कहकर कंस अपने मंत्रियों से बोला कि तुम लोग कोई ऐसा उपाय करो जिसमें राम व कृष्ण मारे जावें। उन्होंने कहा कि महाराज! आप ऐसे प्रतापी व बलवान् होकर क्यों डरते हो, हमारी सम्मति यह है कि तुम एक बहुत उत्तम रंगभूमि बनवाओ और धनुषयज्ञ के बहाने नन्दादिक को राम-कृष्ण समेत यहाँ बुलवाओ तो कोई मल्ल या कुबलयापीड़ हाथी दोनों भाइयों को मार डालेगा। कंस ने यह सम्मति मानकर कार्तिक सुदी चतुर्दशी को धनुषयज्ञ का मुहूर्त ठहराया और अपने सेवकों को आज्ञा दिया कि तुम लोग तुरन्त रंगभूमि में एक बहुत उत्तम स्थान पहलवानों के लड़ने के लिए बनवाओ और उसमें बहुत ऊँचा व चौड़ा एक मचान मेरे बैठने को ऐसा तैयार कराओ जिसमें किसी का हाथ न पहुँचे। उसी तरह का दूसरा मचान भी मेरे इष्ट व मित्रों के बैठने के लिए बनवाओ। वह लोग भी हमारे पास बैठेंगे। पहिली डेवढ़ी पर महादेवजी का धनुष रखवाओ और विधिपूर्वक उसे पूजकर नगर में ढिंढोरा पिटवा दो कि राजमंदिर पर धनुषयज्ञ की पूजा है। जब राम-कृष्ण धनुष के पास पहुँचे तब हमारे शूरवीर उन दोनों बालकों से कहें कि बिना धनुष चढ़ाये भीतर न जाने पावोगे। जब वह अहंकार से धनुष चढ़ाने के लिए उठावें तब मेरे शूरवीर उनको मार डालें। जो उनको मारेगा उसको मुँहमाँगा धन दूँगा। उनको मारने से मुझे अपनी मृत्यु का खटका मिट जायगा। दूसरे द्वार पर कुबलयापीड़ गजपति को जो दश हजार हाथी का बल रखता है उन लड़कों के मारने के लिए खड़ा कर रक्खो। कदाचित् वह पहिली डेवढ़ी से जीते बचकर भीतर आये तो वह हाथी एक झपेटे में उनको पैर तले दबाकर मार डालेगा। तीसरी डेवढ़ी रंगभूमि के स्थान पर मेरे मंत्री व शूरवीर अनेक शस्त्र लिये हुए चैतन्य बैठे रहें जिसमें दोनों बालक भीतर न आने पावें। राजा कंस यह आज्ञा देकर सभा में आ बैठा और सबकी ओर देखकर विचारने लगा कि राम-

कृष्ण के बुलाने के लिए किसे भेजें। जब उसको अक्रूर से अधिक बुद्धिमान् दूसरा कोई नहीं दिखलाई दिया तब उसने अक्रूर को अकेले में ले जाकर उनकी बड़ाई करके कहा—हे अक्रूर! मैं तुमको बड़ा बुद्धिमान् और अपना मित्र जानकर मन की बात कहता हूँ। मुझे श्याम और बलराम वसुदेव के बेटों से दिनरात अपने प्राण का डर लगा रहता है। यह हाल तुम्हें भी मालूम होगा। जिस तरह विष्णु भगवान् ने देवतों के वास्ते तीन पग पृथ्वी राजा बलि से दान लिया और उसको पाताल में भेजकर सदा इन्द्र की रक्षा करते हैं उसी तरह तुमको भी हमारी सहायता करनी चाहिए। अच्छे लोग आप दुःख उठाकर दूसरे का उपकार करते हैं। इसलिए तुम मेरे भले के वास्ते वृन्दावन में जाओ। आकाशवाणी होने और नारद मुनि के कहने से मैं जानता हूँ कि देवकी का आठवाँ बालक अवश्य मुझे मारेगा। पर मनुष्य को अपने सामर्थ्य भर रोग छूटने व प्राण बचाने के वास्ते औषध करनी चाहिए, आगे होनहार किसी तरह मिट नहीं सकता।

दो० कहत कंस अक्रूर सों मैं जानत मन माहिं। तुम समान या लोक में और दूसरो नाहिं ॥

इसलिए तुम श्याम व बलराम को नन्द व उपनन्द समेत धनुषयज्ञ के बहाने अपने साथ लिवा लाओ। मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा। तुम मेरे रथ पर बैठकर चले जाओ। धनुषयज्ञ के उत्सव का हाल सुनकर वे लोग अवश्य आवेंगे। मैंने उन दोनों बालकों के मारने के लिए जो उपाय विचारा है उसे भी सुनो। पहिली डेवढ़ी में धनुष चढ़ाते समय मेरे शूरवीरों के हाथ से मारे जायँगे। कदाचित् वहाँ बच गये तो दूसरे द्वार पर कुवलयापीड़ हाथी उनको अपने पैरों से रौंदकर मार डालेगा। वहाँ से भी बचकर रंगभूमि में पहुँचे तो चाणूर व मुष्टिक जिनका सामना दिग्पाल हाथी भी नहीं कर सकते उन्हें अवश्य मार डालेंगे। जो उनसे भी बचे तो मैं अपने हाथ से श्याम व बलराम को मारकर अपना काम सँवारूँगा। उनके मारने के उपरांत वसुदेव व देवकी को जो विष की मूल हैं उग्रसेन आदि यदुवंशियों समेत मार डालूँगा और हरिभक्तों की जड़ संसार से उखाड़कर अपने श्वसुर जरासन्ध,

बाणासुर और दन्तवक्त्र आदि राजों समेत जो मेरे मित्र हैं आनन्दपूर्वक राज्य करूँगा। तुम नन्दजी से कह देना कि बकरा व भैंसा आदि यज्ञ करने के लिए भेंट लेकर तुरन्त आवें। मैं इष्टमित्रों को इसी बहाने यहाँ बुलाता हूँ। यह वचन अभिमान भरा हुआ कंस से सुनकर अक्रूर ने कहा—हे राजन्! आप क्रोध करके बुरा न मानें तो मैं कुछ विनय करूँ। कंस बोला—बहुत अच्छा, कहो, हम क्रोध न करेंगे। अक्रूर ने कहा—महाराज! आपने जो आज्ञा दी सो करूँगा। परन्तु रावण मृत्यु को बाँधे रहने पर भी काल से नहीं बचा, जो कोई उत्पन्न हुआ है वह एक दिन अवश्य मरेगा। मनुष्य अपने कल्याण के लिए अनेक उपाय करके मन में कुछ विचारता है और परमेश्वर की इच्छानुसार कर्मों के फल से उसके विपरीत होता है। उसमें तिल भर घट-बढ़ नहीं सकता। जिस तरह अज्ञानी मनुष्य यह सब देखने पर भी नहीं समझते कि होनहार प्रबल होता है, मेरा किया कुछ नहीं होगा उसी तरह तुमने भी आगम बाँधकर यह उपाय विचारा है। इसमें न मालूम परमेश्वर की इच्छा-अनुसार तुम्हारे वास्ते कैसा हो। जिस तरह सब जीव मरते समय हाथ-पाँव पटकते हैं वही हाल तुम्हारा भी मुझे मालूम होता है। मैं तुम्हारी आज्ञानुसार राम व कृष्ण को ले आऊँगा, पर उन दोनों बालकों से शत्रुता करने में तुम्हारे प्राण नहीं बचेंगे।

दो० मैं वृन्दावन जातहौं तेरो भल कछु नाहिं। यहकहि आयो धाम को कंस गयो घर माहिं॥

—:○:—

सैंतीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का केशी व व्योमासुर दैत्य को मारना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जिस तरह श्यामसुन्दर ने केशी दैत्य को मारा और नारदजी ने आकर मोहनप्यारे की स्तुति की और व्योमासुर नन्दलाल के हाथ से मारा गया था वह कथा वर्णन करते हैं, सुनो। जब केशी दैत्य को कंस ने श्याम व बलराम के मारने के लिए भेजा तब वह अपना स्वरूप घोड़े के समान लम्बा व चौड़ा बनाकर प्रातः समय वृन्दावन को चला। अपने स्वामी की आज्ञा पालन करने के वास्ते

बड़े हर्ष से पूँछ फटकारे व आँखें लाल-लाल निकाले टापों से पृथ्वी खोदता हुआ वृन्दावन में पहुँचा। उसका रूप देखते ही गोपी व ग्वालों ने बहुत भय मानकर जाना कि हम लोगों के वास्ते महाप्रलय आया, इस घोड़े के हाथ से हमारे प्राण नहीं बचेंगे। व्रजवासियों ने जब यह दशा देखी तब श्रीकृष्णजी के पास जाकर सब वृत्तान्त कहा—

दो० व्रजआयो केशी असुर जानि लियो नँदलाल । सम्मुख उसके हर्ष से चले कंस के काल ॥

श्यामसुन्दर ने चलते समय सब व्रजवासियों से कहा कि तुम लोग कुछ मत डरो, मैं अभी उसको मारकर तुम्हारा सोच छुड़ा देता हूँ। ऐसा कहकर मोहनप्यारे ने काछा अपना बाँध लिया और केशी के सम्मुख जाकर ललकारा—हे कपटरूप राक्षस! जो तू मुझे मारने के लिए आया है तो औरों को क्यों धमकाता है। मुझसे आकर लड़ तो तेरा बल व पराक्रम देखूँ। जिस तरह दीपक के ऊपर पतंगे आकर जल मरते हैं उसी तरह तू भी यहाँ मरने के लिए आया है। अब मेरे हाथ से जीता बचकर न जायगा। यह वचन सुनते ही केशी दैत्य क्रोधित होकर मोहनप्यारे की ओर दौड़ा। जब उसने अगले दोनों पैर उठाकर उनको टाप मारना चाहा तब मुरलीमनोहर ने उसके दोनों पाँव पकड़ लिया और इस तरह घुमाकर फेंका जिस तरह गरुड़जी सर्प को उठाकर फेंक देते हैं। जब वह घोड़ा दो सौ पग पर जा गिरा और थोड़ी देर अचेत रहकर चैतन्य हुआ तब वह अपना मुख फैलाकर इस इच्छा से नन्दलालजी पर झपटा कि उनको निगल जावे। उस समय मोहनप्यारे ने अपना हाथ लोहे के समान कड़ा बनाकर इस तरह उसके मुख में डाल दिया जिस तरह साँप बिल में घुस जावे। जब बहुत काटने पर भी गिरिधारीलाल के हाथ में कुछ घाव न हुआ और उसके सब दाँत टूट गये तब श्यामसुन्दर ने अपना हाथ उसके मुख में ऐसा मोटा किया कि उसे श्वास लेने की जगह न रही और प्राण निकलने लगे। उस समय केशी दैत्य ने मन में कहा कि जैसे मछली वंशी को निगलकर प्राण देती है उसी तरह मैंने केशवमूर्ति का हाथ पकड़कर अपने प्राण खोया ऐसा विचारकर केशी ने श्यामसुन्दर का हाथ अपने मुख मे निकालने के लिये बहुत चाहा। जब उनका

हाथ नहीं निकाला तब वह घोड़ा चिल्लाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसका पेट खरबूजे के समान फट गया, प्राण निकल गये, रुधिर नदी की तरह बहने लगा तब देवतों ने उसके मारे जाने से प्रसन्न होकर श्यामसुन्दर पर फूल बरसाये। वृन्दावनवासी यह हाल देखकर बोले—हे नंन्दलाल! तुमने इस दुष्ट को मारकर हम लोगों के प्राण बचाये। नंद व यशोदा ने मोहनप्यारे को गोद में उठाकर उनका मुख चूम लिया और बहुत सा दान व दक्षिणा उनके हाथ से दिलवाया।

सो०बलमोहन दोउ भाव चिरंजीय जोड़ी युगल। देत अशीश मनाय व्रजवासी प्रभुको सबै॥

जब राजा कंस ने केशी के मारे जाने का हाल सुना तब वह मारे सोच के अचेत हो गया। श्रीकृष्णजी कपटरूप घोड़े को मारकर थोड़ी दूर आगे जाकर कदम के नीचे खड़े हुए। उसी समय नारदजी ने वहाँ आकर इस तरह उनकी स्तुति की—हे त्रिलोकीनाथ! बहुत अच्छा हुआ, जो आपने केशी को मार डाला। हे जगदात्मन्, परब्रह्म, परमेश्वर! हे ज्योतिस्वरूप भगवन्! हे आदिपुरुष, निरञ्जन, निराकार! चाणूर, मुष्टिक, शल तोशल पहलवान और राजा कंस अपने भाइयों समेत तथा दन्तवक्त्र आदि उसके मित्र मुझे मृतक दिखलाई देते हैं। मेरी दण्डवत् आपको अंगीकार हो। हे दीनदयालु, दुष्टदलन! हे केशवमूर्ति, भक्तवत्सल! हे जगन्नाथ, जगज्जीवन! हे माधव, मुकुन्द, अविनाशी! हे वैकुण्ठनाथ, लक्ष्मीरमण! जरासन्ध और शिशुपाल आदि अधर्मी राजाओं व राक्षसों को आप मारकर अठारह अक्षौहिणी दल का महाभारत में नाश करावेंगे। मेरी दण्डवत् अंगीकार कीजिए हे कल्याण, केशव, गिरिधारी, हे दीनदयालु, गोपीनाथ! आप समुद्र में द्वारकापुरी बसाकर पाण्डवों को लोक व परलोक का सुख देंगे। मैं नमस्कार करता हूँ। हे दीनदयालु, दैत्यसंहारण! कालयवन व भौमासुर आदि को आप मारेंगे और सोलह हजार एकसौ कन्याएँ जो उसने अपना विवाह करने के लिए इकट्ठी किया है उन्हें विवाहेंगे। रुक्मिणी की इच्छा पूरी करने के लिए शिशुपाल आदि राजों को जीतकर उससे विवाह करेंगे। आज के तीसरे दिन राजा कंस को तुम्हारे हाथ से मरा हुआ देखूँगा। इन्द्रपुरी से आप

पारिजात का वृक्ष लाकर सत्यभामा के घर में रक्खेंगे। राजा नृग को गिरगिट की योनि से छुड़ाकर मुक्ति देंगे। स्यमन्तकमणि समेत जाम्बवती कन्या जाम्बवान् भालू के यहाँ से लाकर उसके साथ अपना विवाह करेंगे। हे महाप्रभो! अब कंस के अधर्म करने से सब यदुवंशी और गौ-ब्राह्मण को पृथ्वी पर बड़ा दुःख होता है, सो कृपा करके पृथ्वी का भार उतारिए। हे सीतापते! मैं आपकी दया से आपको पहिचान कर शरणागत हुआ, नहीं तो आपकी अपरम्पार लीला का चरित्र कोई नहीं वर्णन कर सकता। मैं आपकी दया से इतना जानता हूँ कि आप हरि-भक्तों को सुख देने, गौ व ब्राह्मण की रक्षा करने और दैत्यों व अधर्मी राजों को मारने के वास्ते बारम्बार संसार में सगुण अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारते हैं।

चौ० या विधि से तुमको पहिचानी। निशिदिन शरण तुम्हारी जानी॥
सदा फिरों तुम्हरे रँग राता। हितसों गुण गावों दिनराता॥
कृपा करो मेरो भ्रम टारो। भवसागर ते पार उतारो॥
बार बार बहु विनती कीन्हों। नमस्कार करि आयसु लीन्हों॥

दो० कालरूप शिशुपाल के माखन प्रभु गोपाल। नित नव लीला करत हैं व्रज में मोहनलाल॥

जब इसी तरह तीनों काल के जाननेवाले नारदजी ने बहुत स्तुति की और उनसे बिदा होकर ब्रह्मलोक को चले गये तब वृन्दावनविहारी ग्वालबालों को साथ लिये भाण्डीरवट के नीचे बैठकर आप राजा बने और कुछ ग्वालबालों को मंत्री, किसी को दीवान, किसी को सेनापति, किसी को सिपाही बनाकर फलबुझौवल खेलने लगे। राजा कंस जब चैतन्य हुआ तब उसने व्योमासुर को बुलाकर कहा—सुनो मित्र! मुझे श्याम व बलराम से अपने प्राण का खटका दिन-रात रहता है, सो मैंने जितने दैत्य उनके मारने के वास्ते भेजे, सबको उन्होंने मार डाला। अब तुम्हारे समान कोई दूसरा शूरवीर मुझे दिखलाई नहीं देता, इसलिए तुम मेरे वास्ते वृन्दावन में जाकर श्याम व बलराम को मार आवो तो तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा। यह सुनकर व्योमासुर बोला—महाराज! मैं अपना तनु तुम्हारे ऊपर न्योछावर समझकर अपनी सामर्थ्य भर तुम्हारी आज्ञा पालन करूँगा। जो सेवक अपने स्वामी की आज्ञा पालन

करे उसका लोक व परलोक दोनों बनता है। ऐसा कहकर व्योमासुर कंस से बिदा हुआ और ग्वालरूप धरकर जहाँ केशवमूर्ति खेलते थे वहाँ आया। उसने हाथ जोड़कर मोहनप्यारे से विनय किया—महाराज! मैं भी तुम्हारे साथ खेलना चाहता हूँ। यह वचन सुनते ही श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने उस कपटरूपी ग्वाल को पहिचानकर कहा—तुम अपना संदेह छोड़कर जिस खेल के वास्ते कहो वही खेल हम तुमसे खेलें। कपट-रूपी ग्वाल बोला—जिस तरह भेड़िया अपनी पीठ पर भेड़ उठाकर भाग जाता है उसी तरह एक लड़का दूसरे बालक को पीठ पर चढ़ाकर दौड़े, यही खेल खेलो। मुरलीमनोहर ने कहा—बहुत अच्छा। जब मोहनप्यारे व्योमासुर को साथ लेकर फलबुझौवल व आँखमुदौवल खेलने लगे तब वह कपटरूपी ग्वाल बहुत लड़कों को, जो उसे नहीं पहिचानते थे, छिपते समय एक-एक को उठाकर पर्वत की कंदरा में रख आया और उस कंदरा के द्वार पर शिला धर दी। जब सब ग्वालों को कंदरा में छिपा आया और श्यामसुन्दर अकेले रह गये तब कपटरूपी ग्वाल ललकारकर बोला—हे मोहनप्यारे! आज तुमको सब यदुवंशियों और व्रजवासियों समेत मारकर राजा कंस की आज्ञा पालन करूँगा। जब व्योमासुर ग्वाल तन छोड़कर अपने निज रूप से श्रीकृष्णजी को मारने के लिए झपटा तब दैत्यसंहारण ने उसका गला दबाकर पशु की तरह लात व मुक्कों से मार डाला और ग्वालबालों को कंदरा से निकाल लाये। उस समय देवताओं व विद्याधरों ने श्यामसुन्दर पर फूल बरसाकर बड़ा आनन्द मनाया। सन्ध्या समय केशवमूर्ति गौवों और ग्वालबालों समेत मुरली बजाते, आनन्द मनाते हुए अपने घर आये। उसी दिन रात को नन्दरानी ने ऐसा स्वप्न देखा कि आज श्याम व बलराम वृन्दावन में नहीं हैं, कहीं चले गये। यह स्वप्न देखते ही पहिले नन्द व यशोदा ने बड़ा सोच किया फिर स्वप्न की बात झूठी समझकर अपने मन को धैर्य दिया।

———

अड़तीसवाँ अध्याय।

अक्रूर का श्याम व बलराम को ले जाने के लिए वृन्दावन में पहुँचना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! कार्त्तिक बदी द्वादशी को केशी और व्योमासुर दैत्य मारे गये। उसी दिन प्रातःसमय जब अक्रूर कंस के रथ पर चढ़कर वृन्दावन को चले तो वे राह में विचारने लगे कि इस जन्म में तो मुझसे कोई शुभ कर्म नहीं हुआ। आज तक मेरा जन्म कंस अधर्मी की संगति में बीता। पिछले जन्म में न मालूम कौन ऐसा यज्ञ व तप मैंने किया था जिस पुण्य से उस चरणों का दर्शन पाऊँगा, जिन चरणों का ध्यान ब्रह्मादिक देवता व सनकादिक ऋषीश्वर आठों पहर अपने हृदय में धरकर उनकी रज मिलने के वास्ते दिन-रात चाहना रखते हैं। वही धूरि अपने मस्तक पर चढ़ाकर भवसागर पार उतर जाऊँगा।

दो० शिलाशापमोचनकरणहरण भक्त उरपीर। आज देखिहौं वह चरण सकलसुखनकेहीर॥

जिस तरह पापी लोग सत्संग करने से कृतार्थ हो जाते हैं उसी तरह मेरा भाग्य भी उदय हुआ, जो कंस ने मुझे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को लेने के वास्ते भेजा। इसी बहाने मैं भी मोहनीमूर्ति की छवि देखकर अनेक जन्म के पापों से छूटकर लोचनों का फल पाऊँगा, नहीं तो मुझ ऐसे पापी संसारी मायाजाल में फँसे हुए लोभी को उन परब्रह्म परमेश्वर का दर्शन कहाँ मिलता। यह सब उन्हीं वैकुण्ठनाथ की कृपा से संयोग हुआ है। राजा कंस ने मेरे ऊपर बड़ी दया की जो इस काम के लिए मुझे भेजा। जिस आदिपुरुष भगवान् ने कालीनाग को नाथकर उसके मस्तक पर नृत्य किया, नन्द की गौ चराकर गोपियों के साथ रासमण्डल खेला, देवतों के लिए तीन पग पृथ्वी राजा बलि से दान लिया, देवलोक का राज्य इन्द्रादिक देवतों को दे डाला, वही वैकुण्ठनाथ अपना बालचरित्र व्रजवासियों को दिखलाकर अनेक तरह का सुख उन्हें देते हैं। जिन चरणों के दर्शन के लिए लक्ष्मी, नारदमुनि, मार्कण्डेय और अम्बरीष आदि बड़े-बड़े ऋषीश्वर व महात्मा चाह रखते हैं उन चरणों का दर्शन व स्पर्श सहज में ग्वालबाल व गोपियों को प्राप्त होता है। इसलिए वृन्दावनवासियों का बड़ा भाग्य समझना चाहिए।

दो० निराकार निरलेप के भेद न जानै कोय। जो करता सब जगत के माखनप्रभु हैं सोय ॥

आज मुझको अच्छे-अच्छे सगुन दिखलाई देते हैं। हरिण मेरे दाहिनी ओर से बायें चले आते हैं। इसलिए अवश्य मुझे नारायणजी का दर्शन मिलेगा। हे मन, वह आदिपुरुष अविनाशी सबसे पहिले थे और महाप्रलय होने के उपरांत भी वही स्थिर रहेंगे। कदाचित् तुझे इस बात का सन्देह हो कि आदिज्योति भगवान् ने क्यों संसार में जन्म लिया तो कभी ऐसा मत समझना। उन्होंने केवल अपने भक्तों को सुख देने, संसारी जीवों को भवसागर पार उतारने, दैत्यों और अधर्मियों को मारकर पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी इच्छा से जन्म लिया है। उनके भेद व महिमा को कोई पहुँच नहीं सकता। वह अन्तर्यामी सब भले व बुरे को उत्पन्न करनेवाले हैं। संसारी माया से रहित हैं, उनको सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण नहीं व्यापता। वृन्दावन की महिमा वैकुंठ से अधिक जानना चाहिए और ग्वालबालों को ब्रह्मा व महादेव से छोटा न समझना चाहिए।

क० एक रज रेणुका पै चिन्तामणि वारि डारों लोकन को वारों सेवाकुंज के बिहार पै ॥
लतन के पातन पै कल्पवृक्ष वारि डारों रमाहू को वारि डारों गोपिन के द्वार पै ॥
व्रज की पनिहारिन पै सची रती वारि डारों वैकुंठहू को वारि डारों कालिन्दी के घाट पै ॥
कहैं अभयराम एक राधाजू को जानत हौं देवन को वारि डारों नन्द के कुमार पै ॥

दैत्य लोगों को बड़ा भाग्यवान् समझकर परमेश्वर की दया उन पर भी जाननी चाहिए, क्योंकि जब नारायणजी उनका वध करते हैं तब उनको वैकुंठ में रहने के वास्ते स्थान मिलता है। हजारों वर्ष तपस्या करने पर भी मनुष्य वहाँ नहीं पहुँच सकता। रावण और हिरण्याक्ष की कथाएँ इस बात की साक्षी हैं। श्यामसुन्दर के शत्रुओं को दिन-रात अपने प्राणों का भय लगा रहता है, किसी क्षण उनका रूप चित्त से नहीं उतरता, इसी कारण वे लोग मुक्ति पाते हैं। मेरा भाग्य उदय हुआ, जिस रूप को देखने के लिए बड़े-बड़े योगीश्वर व महात्मा चाह रखते हैं उस मोहनीमूर्ति को देखकर अपना जन्म सफल करूँगा। पहिले ग्वालबालों को, जो दिन-रात श्यामसुन्दर का दर्शन करते हैं, दण्डवत् करूँगा, फिर अपना शिर उन चरणों पर धरकर वह रज अपने मस्तक

पर चढ़ाऊँगा, जो धूरि ब्रह्मादिक देवतों को जल्दी नहीं मिलती। जब वह दीनानाथ जगत् को मुक्ति देनेवाले दया से अपना हाथ मेरे मस्तक पर धरकर मुझे उठावेंगे तब अपने बराबर किसी तपस्वी व ज्ञानी का भाग्य नहीं समझूँगा। पर मैं एक बात से बहुत डरता हूँ, कदाचित् मुझे कंस का भेजा हुआ जानकर ऐसा न करें। सो यह सन्देह न करना चाहिए। जिस तरह मैं मनसा वाचा कर्मणा उनकी भक्ति रखकर उन्हें अपना स्वामी जानता हूँ उसी तरह वह अन्तर्यामी भी मुझे अपना दास जानकर दया करेंगे।

दो० हरिदासन को दासहौं मन में करि विश्वास। कंसदूत नहिं जानिहैं माखन प्रभु सुखरास ॥

जब वह करुणानिधान मेरा हाथ पकड़कर घर में ले जायँगे तब मैं अपने समान किसी को न समझकर कंस का सच्चा-सच्चा सब हाल उनसे बतला दूँगा। संसारी जीवों को मायारूपी रस्सी में बँधे रहने से मुक्ति होना कठिन है, पर वही दीनदयालु मुझे अपना जातिभाई समझकर अवश्य भवसागर पार उतार देंगे। जिस समय वह अपनी कृपा से मुझे चाचा कहकर पुकारेंगे उस समय बड़े-बड़े महात्मा मेरे ऊपर डाह करेंगे।

दो० हे मन तू मत सोच कर है उनहीं को लाज। आपुहि काज सँवारिहैं माखनप्रभु ब्रजराज ॥

जब अक्रूर इसी तरह विचार करता हुआ तीन कोस रस्ता दिन भर में काटकर संध्या समय वृन्दावन के निकट पहुँचा और वहाँ पृथ्वी पर श्रीकृष्णजी के चरणों का आकार, जिसमें गदा, पद्म, शंख, चक्र और ध्वजा के चिह्न थे, देखा तब रथ से उतरकर उन चरणों की धूरि अपने सिर व आँखों में लगाई। उस जगह दण्डवत् करके बोला—जहाँ पर तुम्हारे चरणों का आकार रहता है वहाँ बड़े-बड़े ज्ञानी व ऋषीश्वर सदा दण्डवत् किया करते हैं। जब अक्रूर को इसी विचार में प्रेम उत्पन्न होकर आँखों से आँसू बहने लगे तब सब गोप व ग्वाल उसकी सच्ची प्रीति देखकर अपने-अपने प्रेम का घमण्ड भूल गये। पर अपना बड़ा भाग्य समझकर आपस में कहने लगे कि जिन चरणों की धूरि अक्रूर अपने मस्तक पर चढ़ाते हैं उन चरणों की सेवा हम लोग दिनरात करते हैं। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उसी समय मुरलीमनोहर

पीताम्बर पहिने, फूलों का गजरा गले में डाले, बलरामजी और ग्वालबालों समेत वन से गौ चराकर हँसते हुए वृन्दावन के निकट पहुँचे।

दो० माखन प्रभुमुख देखिके रोम-रोम सुखपाय । प्रेमभाव से मगन ह्वै परेउ चरण पर धाय ।।

हे परीक्षित ! अक्रूर ने कभी श्याम और कभी बलराम के चरणों पर सिर रखकर इस तरह आँसू से उनका चरण धोया जिस तरह संसारी जीव ऋषीश्वरों और महात्माओं के आने से उनके पाँव धोते हैं। जब थोड़ी देर बीते अक्रूर का रोना कम हुआ तब उसने हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज ! मैं अक्रूर यादव तुम्हारा दास हूँ। यह वचन सुनते ही श्यामसुन्दर उसे अपना बड़ा समझकर उसका सिर पैर पर से उठाने लगे, पर वह उनके प्रेम में ऐसा मगन था कि उसको अपने तनु की सुधि नहीं रही, सिर कौन उठावे। इसलिए श्याम व बलराम ने प्रीतिपूर्वक अपने हाथों से उसका सिर पकड़कर उठाया और उसको चाचा कहकर बड़े आदर से भीतर ले गये। नंदराय अक्रूर के गले मिले। जब मोहन-प्यारे बड़े प्रेम से आसन पर बैठाकर अपने हाथ से उनके चरण धोने लगे तब वह लज्जावश होकर अपने पैर मुरलीमनोहर की ओर से खींचने लगा, पर श्यामसुन्दर उनका पाँव न छोड़कर बोले—हे चाचा! तुम हमारे पिता की जगह हो, इसलिए तुम्हारी सेवा करना हमको उचित है। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने अक्रूर का चरण धोया और उनके शरीर में इत्र व चन्दन लगाकर बड़े प्रेम से छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन खिलाया। हाथ धुलाकर पान व इलायची दिया। जब अक्रूर भोजन करके पलँग पर लेटे तब श्याम व बलराम उनके पाँव दबाने लगे। नंद व उपनंद आदि ने अक्रूरजी के पास आकर पूछा—कहो, वसुदेव व देवकी कैसे हैं ? राजा कंस किस तरह प्रजा का पालन करता है ? हमारी समझ में जब तक कंस अधर्मी जीवेगा तब तक गौ-ब्राह्मण और प्रजा को सुख नहीं मिलेगा। जहाँ का राजा निर्दयी व अधर्मी हो वहाँ की प्रजा सुख से नहीं रहती। जिस कंस ने अपनी बहिन के छः बालक बिना अपराध मार डाले उसको वधिक से अधिक समझना चाहिए। यह सुनकर अक्रूर बोले—जबसे कंस उत्पन्न हुआ तब से यदुवंशी और प्रजा लोग दुःख पाते हैं। जिस तरह बकरी

के गोल में एक भेड़िया रहने से उनको अपने प्राण का डर लगा रहता है उसी तरह मथुरावासियों को कंस के जीने तक सुख नहीं मिलेगा। उसका हाल सब तुम्हें मालूम है, और हम क्या कहें।

—:o:—

उन्तालीसवाँ अध्याय।

अक्रूर के साथ श्याम व बलराम का मथुरा में जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब नन्द और उपनन्द अक्रूर से मथुरा का हाल पूछकर अपने-अपने स्थान पर गये तब श्याम व बलराम ने जैसा विचार राह में अक्रूरजी करते जाते थे वैसा सम्मान करके पूछा—हे चाचा! आप दया करके हमको देखने आये, सो आपने बहुत अच्छा किया, पर आपने हमारे चरणों पर, जो तुम्हारे लड़कों के समान हैं, क्यों गिरकर हमें दोष लगाया। हमको आपकी सेवा करनी चाहिए। भला यह तो बताओ कि मथुरावासियों के दिन किस तरह कटते हैं। वसुदेव व देवकी हमारे माता-पिता अच्छी तरह हैं? मेरा मामा राजा कंस यदुकुल में बड़ा पापी उत्पन्न हुआ है, गो-ब्राह्मण और यदुवंशियों को दुःख देता है। हमें वसुदेव व देवकी के फिर कैद होने का समाचार सुनकर बड़ा शोक हुआ। सच पूछो तो वह लोग हमारे वास्ते इतना दुःख पाते हैं। हमको गोकुल में ले आकर न छिपाते तो इतना कष्ट क्यों पाते। जब वह हमारी याद करते होंगे तब उनको बहुत दुःख होता होगा। बड़ा आश्चर्य है कि देवकी के छः पुत्र मारने और इतना पाप बटोरने पर भी कंस का मन अधर्म करने की ओर से नहीं फिरा। अब यह बतलाइये कि आपका आना यहाँ किस कारण हुआ? चलते समय राजा कंस ने आपसे क्या कहा था? यह वचन सुनते ही अक्रूर ने खड़े होकर हाथ जोड़कर विनय किया—हे वैकुण्ठनाथ, अन्तर्यामी! कंस के अनीति करने का हाल आपको मालूम है, मैं क्या कहूँ। कंस वसुदेव और उग्रसेन के प्राण लेने की नित्य इच्छा रखता है, पर वह लोग आज तक तुम्हारी कृपा से बचे जाते हैं। कंस का हाल जो कुछ आपने सुना सो ठीक है। जब वृषासुर दैत्य आपके हाथ से मारा गया तब नारद मुनि ने आकर कंस

से कहा कि तेरी मृत्यु श्रीकृष्णजी के हाथ है और वह नन्द व यशोदा के बालक नहीं, वसुदेव-देवकी के पुत्र हैं। यह हाल सुनकर कंस ने वसुदेव और देवकी को फिर कैद किया। उसी दिन से तुमको मारने के उपाय में रहता है। धनुषयज्ञ के बहाने तुम दोनों भाइयों और नन्दजी आदि को बुलाने के लिए मुझे भेजा है। यह बात सुनते ही श्यामसुन्दर ने बलरामजी की ओर देखकर हँस दिया और नन्दराय से कहा कि हे बाबा! अक्रूरजी यदुकुल में बड़े महात्मा हैं, कंस की आज्ञानुसार धनुषयज्ञ का उत्सव देखने के लिए हम लोगों को बुलाने आये हैं। इनके साथ जाने में बहुत अच्छा होगा। तुम भी गोपग्वालों समेत घी, दही और माखन आदि भेंट लेकर चलो।

दो० माखनप्रभु कीबातयहसुनिकैगोपीग्वाल। गये सकल मुरझाय तनु भये विकलतेहिकाल ॥

हे राजन्! नन्दराय श्रीकृष्णजी के वचन की कई बेर परीक्षा ले चुके थे, इसलिए उनके वचन का दुलखना उचित नहीं जाना। नन्द व यशोदा स्वप्न की बात याद करके सोच करने लगे, पर श्यामसुन्दर की इच्छानुसार नन्दजी ने वृन्दावन में ढिंढोरा पिटवाकर सब ग्वालबालों को कहला भेजा कि राजा कंस ने धनुषयज्ञ का उत्सव देखने के लिए हम लोगों को बुलाया है, सो कल प्रातःसमय सब ग्वालबाल दूध, दही, घी और माखन आदि लेकर मथुरा को चलें। जब यह समाचार गोपियों ने सुना कि श्यामसुन्दर मथुरा को जाते हैं तब वह सब मोहनप्यारे का वियोग समझकर मृतक के समान हो गईं। उनके घरों में ऐसा रोना-पीटना होने लगा कि जैसे किसी का प्राणी मर जावे।

दो० ठौर-ठौर ऐसी दशा कहत न आवै बैन। बढ़ी श्याम बिछुरन व्यथा ढुरत उमँगि जलनैन ॥
सो० फिरतविकलसबग्वाल पूछतएकहिएकसों। चलनचहतनँदलाल मनमलीन व्याकुलसबै ॥

फिर सब गोपियाँ ठौर-ठौर बैठकर आपस में कहने लगीं कि यह क्या प्रलय हमारे ऊपर आया। एक क्षण मोहनप्यारे का विरह हमसे सहा नहीं जाता। उनको देखे बिना चैन नहीं पड़ती, सो अब वह मथुरा जाते हैं। उनके वियोग में हमारे प्राण कैसे बचेंगे। इस अक्रूर मूर्ख को क्या प्रयोजन था जो हम लोगों के प्राण लेने के लिए आया। सच पूछो तो श्रीकृष्णजी

ने हमारी प्रीति से अपना मन खींच लिया, नहीं तो उनको मथुरा जाने का क्या प्रयोजन है। नन्दलालजी न जावें तो राजा कंस उनका क्या करेगा। दूसरी गोपी बोली कि परमेश्वर की दया से आज कोई बड़ा मनुष्य वृन्दावन में मर जाता या कोई दूसरा कारण हो जाता तो हमारा चित्त चुरानेवाला कल मथुरा को न जाता। एक गोपी छाती पीटकर कहने लगी कि बड़ा सोच है, जो प्राणप्यारा मुझसे अलग होगा।

चौ० अब हरि जब मथुरा को जैहैं। तनु बिनु प्राण कौन विधि रैहैं॥

दूसरी गोपी बोली—मुझे केशवमूर्ति के देखने से तीनों लोकों का सुख प्राप्त होता था, अब उनको देखे बिना किस तरह चैन पड़ेगी। दूसरी बोली कि जब वह एक बेर आँख उठाकर मेरी ओर देखते थे तब मैं बहुत प्रसन्न होकर अपने बराबर किसी को नहीं समझती थी, उनके जाने पर मेरी क्या दशा होगी। दूसरी ने कहा—हे ब्रह्मन्! तुम बड़े कठोर हो, जो पहिले मोहनप्यारे से प्रीति लगाकर अब उनके विरहसागर में मुझे डुबाना चाहते हो। जिस तरह दूर से कोई प्यासा पानी देखकर पीने के लिए जावे और वहाँ उसे बालू दिखाई दे, वही गति हमारी हुई। राम व कृष्ण दोनों नेत्र हमारे चले जाएँगे तो हम लोग बिना आँख के जीकर क्या करेंगी। श्याम व बलराम बिना एक क्षण हमारा जीना कठिन है।

दो० जो राजन के राज हैं माखन प्रभु व्रजराज। अब जीवें कैसे सखी बह छूटत हैं आज॥

हे राजन्! इसी तरह सब व्रजबाला विरह की माती हुई अपने-अपने मन का हाल एक दूसरी से कहकर विलाप करती थीं। रात उनको मछली के समान तड़पते बीत गई। प्रातःसमय सब गोप व ग्वाल वृन्दावन-वासियों ने गोरस आदि गाड़ियों व बैलों पर लदवा दिया और भैंसा, भेंड़ा व बकरा भेंट के लिए लेकर नन्दजी के द्वार पर आये। जिस जगह अक्रूरजी श्याम व बलराम को अपने आगे बैठाये चलने की तैयारी करते थे वहाँ पर सब स्त्री-पुरुष, बालक-बूढ़े आकर मोहनप्यारे के वियोग में आँखों से जल की धारा बहाने लगे। वे इतना रोये कि उनके आँसुओं से वहाँ की पृथ्वी कीचड़ के समान हो गई। उन लोगों ने आपस में कहा कि कंस अधर्मी के राज्य में सुख व आनन्द स्वप्न हो गया। सब

व्रजबाला उनके चौगिर्द खड़ी होकर बड़ी करुणा से कहने लगीं—हे व्रजनाथ! तुम क्यों इन अबला अनाथाओं को अपने विरहसागर में डुबाकर प्राण लेना चाहते हो। वृन्दावनवासियों का जीवन तुम्हारे अधीन है। जिस तरह हाथ की रेखाएँ कभी नहीं मिटतीं उसी तरह भले मनुष्य की प्रीति कभी नहीं घटती और जैसे बालू की भीति नहीं ठहरती वैसे ही मूर्ख की प्रीति नहीं निबहती। हे गोपीनाथ! हम लोगों ने तुम्हारा क्या अपराध किया, जो हमें पीठ दिखलाकर चले जाते हो।

दो० एक सखी ऐसे कहै मैं सोचत मन माहिं। ये सुत यशुदा नन्द के हमैं छोड़िहैं नाहिं॥

गोपियाँ श्रीकृष्णजी से ऐसा कहकर अक्रूर से बोलीं—हे अक्रूर! तुम हम लोगों का दुःख न जानकर, जिसके अधीन हमारे प्राण हैं, उसे अपने साथ ले चले। अब हमारा जीवन कैसे होगा। क्यों ऐसा करते हो? ऐसे जीने से तुम हमारा वध कर डालते तो अच्छा था। अक्रूर दयावान् को कहते हैं, सो तुम अपने नाम के विपरीत कठोरता करते हो। जैसा दुःख राजा कंस ने हम लोगों को दिया उसका बदला श्यामसुन्दर से पावेगा। दूसरी ने कहा कि ब्रह्मा हमको स्त्री का तनु देकर हमारे ऊपर कुछ दया नहीं करते। भँवररूपी हम लोगों की आँखें कमलरूपी मोहन-प्यारे का मुखारविन्द देखने के लिए दिन-रात चाह रखती हैं, कहो अब किस तरह इन नयनों को साँवली सूरति मोहनी मूरति देखे बिना चैन मिलेगा।

दो० माखन प्रभुकोरूपरस पियतरहींजो नित्त। अब खारीजलकूपको किहिविधिआवैचित्त॥

दूसरी सखी बोली—सच पूछो तो ब्रह्मा व अक्रूर का क्या दोष है, यह सब कठोरता श्यामसुन्दर की समझना चाहिए। उनका चित्त भी शरीर के समान काला है। हम लोगों ने कुल की लाज छोड़कर उनसे प्रेम किया था, सो अब वह हमें इस दुःखसागर में छोड़कर चले जाते हैं। मथुरानगर की स्त्रियाँ दिन-रात मोहनप्यारे से भेंट होने की इच्छा रख-कर परमेश्वर से वरदान माँगती थीं, सो अब नारायणजी ने उनकी विनय सुनी। दूसरी ने कहा कि वहाँ की स्त्रियाँ रूप व गुण से भरी हैं, श्यामसुन्दर उनकी प्रीति में फँसकर वहाँ रह जायँगे। हम लोगों को भूलकर यहाँ क्यों आवेंगे। उन स्त्रियों का बड़ा भाग्य है जो मनहरण

प्यारे के साथ सुख उठावेंगी। न मालूम हमारे तप में क्या भूल पड़ी कि हमसे नंदलालजी बिछुड़ते हैं। दूसरी बोली कि आज अच्छे शकुन मथुरा की स्त्रियों को हुए होंगे। वे लोग श्यामसुन्दर का दर्शन पाकर अपने लोचनों का फल प्राप्त करेंगी। दूसरी ने कहा कि श्रीकृष्ण को किसी ने मथुरा में नहीं बुलाया, उनका मन वहाँ की स्त्रियाँ देखना चाहती हैं, इसीलिए यह बहाना करके जाते हैं। दूसरी ने कहा कि इस चित्त-चोर ने हम लोगों के साथ कौन भलाई की है और वहाँ की स्त्रियों के साथ क्या करेंगे। रूपवान् लोग अपनी सुन्दरता के अभिमान से किसी को कुछ नहीं समझते। दूसरी व्रजबाला बोली कि वृन्दावनवासियों के बुरे दिन आये और मथुरावासियों का भाग्य उदय हुआ, इसी वास्ते मोहनप्यारे वहाँ जाते हैं। दूसरी ने कहा कि यह अक्रूर हमारे वास्ते यमराज का दूत बनकर आया है। जिस तरह किसी भूखे के आगे से ग्रास उठाते समय कोई भोजन की थाली खींच ले उसी तरह वह श्यामसुन्दर को हमसे विलग करता है। यह कौन न्याय की बात है, जो मछलियों को पानी से निकालकर गर्म बालू पर डाल दे। कदाचित् हमें दुःख देने से उसको कुछ मिलता होगा, इसलिए ऐसा करता है।

दो० जो दुख देवै जीव को महाकष्ट वह पाय। बोवै बीज बबूल को आम कहाँ ते खाय।।

दूसरी ने कहा कि हे प्राणप्यारी! इसमें किसी को दोष न देना चाहिए, हमारे खोटे दिन आने से प्राणप्यारे जाते हैं। हमारा भाग्य अच्छा होता तो अक्रूर क्यों आता। जिस समय गोपियाँ अपने-अपने विरह का दुःख एक दूसरी से कह रही थीं उसी समय श्याम व बलराम चलने के लिए रथ पर चढ़े। तब व्रजबालाओं ने कहा कि देखती हो, श्रीकृष्णजी हमारे रोने व विलाप करने पर कुछ दया न करके मथुरा जाने को तैयार हो गये।

दो० माखन प्रभु आनन्द सों चढ़बैठे रथ माहिं। बहुत भलो है सारथी अबहूँ हाँकत नाहिं।।

दूसरी बोली कि हम लोग अपने कुल की लज्जा छोड़ चुकी हैं, जब रथ यहाँ से चले तब श्यामसुन्दर की फेंट पकड़कर रोक रक्खो, जिसमें वह जाने न पावें। यह सुनकर दूसरी ने कहा कि प्यारी! तू सच कहती

है, जब मेरे प्राण केशवमूर्ति ने हर लिया तब उन्हें किस तरह जाने देंगी। जिस लाज के मारे परमेश्वर का वियोग हो उसे भरसाईं में डार दें। इस समय लज्जा करने में पीछे बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। दूसरी बोली कि हम लोग बौरही होकर पड़ी रहें और वह मथुरा की स्त्रियों से जाकर चैन उड़ावें, यह बात कैसे होने पावेगी। हमें लाज से कुछ काम नहीं है, अपना काम साधना चाहिए। दूसरी ने कहा कि हम लोगों को इस मोहनीमूर्ति के देखने से सुख मिलता था, सो अब जाते हैं। भले दिनभर तो हम समझेंगी कि गौ चराने वन में गये हैं, सन्ध्या को उनके बिना हमारे प्राण कैसे बचेंगे। दूसरी बोली कि हे सखी! उस दिन देखो रात की बात तुझे याद है या नहीं, जब श्यामसुन्दर ने हम लोगों के साथ रासलीला करके हमें सुख दिया था। दूसरी ने कहा कि हे सखी! जो कोई इनकी लीला भुला देवे उसे पशु समझना चाहिए। दूसरी बोली कि जब सन्ध्या समय वृन्दावनविहारी वन में गौ चराकर घर आते थे तब उनके घूँघरवाले बालों पर धूरि पड़ी हुई कैसी शोभा देती थी। हम लोग मार्ग में बैठकर उनका दर्शन पाती थीं। उनकी छवि देखकर और वंशी सुन-कर कैसा आनन्द मिलता था। बताओ अब वह सुख किस तरह प्राप्त होगा। हे राजन्! इसी तरह सब व्रजबाला बौरहों के समान अपने-अपने विरह का हाल श्याम व बलराम व अक्रूर को सुनाकर विलाप करती थीं और लाज छोड़कर बारम्बार कहती थीं—हे माधव, हे मुकुन्द, हे गोविन्द, हे दीनदयालु, हे केशवमूर्ति, हे गोपीनाथ, हे श्यामसुन्दर, हे मुरलीमनोहर, हे श्रीकृष्ण, हे व्रजनाथ, हे दुःखभञ्जन! परमेश्वर के ये नाम पुकारकर उन्हें अपना दुःख सुनाती थीं। उस समय उनका विलाप देखकर कौन ऐसा चैतन्य जीव वहाँ था जिसने आँसू की धारा न बहाई हो। जब जड़-रूप वृक्षों से भी उनका दुःख नहीं देखा गया तब जड़ से डाली तक मारे सोच के हिलने लगे। अक्रूर उन लोगों की यह दशा देखकर राजा कंस की आज्ञा और अपने तनु की सुधि भूल गया। जब उनका विलाप उससे नहीं देखा गया तब उसने रथ पर चढ़कर हाँकना चाहा। उस समय व्रज-बालाओं ने दौड़कर रथ पकड़ लिया और बड़ी करुणा से विनय किया—

हे गोपीनाथ! तुम क्यों हम अबला अनाथाओं को अपने विरहसागर में डुबाकर प्राण लेना चाहते हो। हमें भी अपने साथ ले चलो तो धनुषयज्ञ का उत्सव व राजा कंस को देख आवें। हम लोगों ने अपना कुल-परिवार व लोकलाज छोड़कर तुमसे प्रीति लगाई, तुम क्यों ऐसे निर्दयी होकर हमारे प्राण लेते हो। तुम अक्रूर के साथ न जाओ तो कंस तुम्हारा क्या करेगा। अक्रूर अपना मुख काला करके लौट जायगा। हे राजन्! उस समय एक ओर तो गोपियों की यह दशा थी दूसरी ओर से यशोदा रोती हुई आकर बोलीं—हे अक्रूर! तुम मेरे प्राणप्यारों को क्यों लिये जाते हो, इनके बिना मैं कैसे जीऊँगी।

दो०कहाधनुषयहदेखिहैंबालकअतिअज्ञान । कियोनृपतिकछुकपटयह पड़तमोहिं यों जान ॥
सो०मैं नहिंदेहौंजान मो निर्धन के श्याम धन । लेहि कंस वरुप्रान कों जीवे नँदनन्द बिनु ॥
क० प्राण के अधारे मेरे बारे ये पधारे चाहैं भूप के अखारे जहाँ भारे सजे शूरमें ।
पीर है बड़ी शरीर डूबते वियोग नीर कैसे कैसे धरौं धीर प्रेम के अधीरमें ॥
डारै बरु कंस कारागार में जँजीर भरी येरी बीर जरि जाव धन धाम चूरमें ।
जोपै ये कन्हैया बलभैया दोऊ लाल मेरे खेलें करि मैया बैन नैन के हजूरमें ॥

रोहिणी रोकर कहने लगी कि श्याम व बलराम व्रजगोकुल के जीवन अधार हैं, इनके जाने से हम लोग कैसे जीवेंगी। फिर यशोदा बहुत विलाप करके बोली—हे मोहनप्यारे! तुम हमारी प्रीति छोड़कर क्यों जाते हो। मैं तुम्हारे ऊपर न्योछावर होकर कहती हूँ कि अपनी जननी को छोड़कर मत जावो। तुमको देखे बिना मुझसे एक क्षण नहीं रहा जायगा। जब यशोदा के यह सब कहने पर भी केशवमूर्ति रथ से नहीं उतरे तब वह पृथ्वी पर गिर पड़ी और अतिविलाप करके कहने लगी—हे प्राणप्यारे! तुम कठोर होकर मेरा प्राण लिया चाहते हो। अक्रूर मुझे मारने के लिए वृन्दावन में आकर मेरी बुढ़ौती के समय लकुटिया छीने लिये जाता है। हे बेटा! तुमको भी कुछ दया नहीं आती, जो मुझे इस तरह छोड़े चले जाते हो। हे राजन्! जब इसी तरह यशोदा, रोहिणी और गोपियाँ रथ पकड़कर रोने लगीं तब मोहनप्यारे हँसते हुए रथ पर से उतरकर बोले—तुम लोग चिन्ता न करो, एक मनुष्य तुम्हारे पास भेजूँगा। उस समय यशोदा श्यामसुन्दर को गले लगाकर बड़ी करुणा से बोलीं—हे बेटा! तुम

जल्दी धनुषयज्ञ देखकर चले आना । वहाँ किसी से प्रीति लगाकर अपनी जननी को भूल मत जाना । यह सुनकर मुरलीमनोहर ने यशोदा को बहुत धैर्य दिया और श्रीदामा ग्वाल से कहा कि तुम गोपियों से कह दो कि सोच न करें, मैं फिर मिलूँगा । जब मोहनप्यारे इसी तरह सबको धैर्य देकर और माता को दण्डवत् करके रथ पर चढ़े तब नन्दजी ने यशोदा और गोपियों से कहा कि तुम लोग उदास मत हो, मैं श्याम व बलराम को धनुषयज्ञ दिखलाकर अपने साथ ले आऊँगा, पर मुझे इस बात का डर है कि राजा कंस बलराम व कृष्ण से कुछ कपट न करे। यह बात सुनकर एक बूढ़े ज्ञानी मनुष्य ने कहा कि हे नन्दजी ! श्याम-सुन्दर परब्रह्म परमेश्वर का अवतार हैं, इन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए जन्म लिया है । यह राजा कंस को क्या समझते हैं, काल की भी मृत्यु इनके हाथ है । यह वचन सुनकर नन्दादिक को धैर्य हुआ । इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ ! बड़ा आश्चर्य है कि अक्रूर ने यशोदा व गोपियों की यह दशा देखकर उन्हें कुछ धैर्य नहीं दिया । शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! उस समय अक्रूर ने इतना गोपियों से कहा था कि श्यामसुन्दर फिर भेंट करके तुम्हें सुख देंगे । जब अक्रूर ने सबको रोते छोड़कर श्याम व बलराम का रथ मथुरा की ओर हाँका और नन्दजी ग्वालबालों समेत गाड़ी आदि पर बैठकर उसके साथ चले तब यशोदा बड़े विलाप से कहने लगीं—

चौ० मोहन इधर देख तो लीजै । बिछुरत लाब हमैं कछु दीजै ॥
लेहु निहारि जन्म को खेरो । बहुरि बिरज में होत अँधेरो ॥
यह कहि ग्वाल सखन को फेरो । अपनी गाय जाय के घेरो ॥
ऐसे कहि यशुमति बिलखाई । किये यत्न बहु प्राण न जाई ॥
तलफत विकल राम महतारी । अति व्याकुल सब व्रज की नारी ॥

दो०देखि दुखितव्रजलोगसबऔरयशोदामाय । तब हरियहकहिसुखदियो बहुरिमिलैंगे आय॥

जब तक रथकी ध्वजा व धूरि उड़ती हुई यशोदा व व्रजवासियों को देख पड़ी तब तक उन्हें आशा बनी थी कि अब भी हमारे प्राणनाथ लौट आवेंगे, इसलिए वे रथ की ओर टकटकी बाँधकर देखती रहीं । जब दूर जाने से रथ की धूरि नहीं दिखलाई दी और गोपियों का तन व्रज में

रहकर मन धूरि की तरह उड़ता हुआ श्यामसुन्दर के पीछे-पीछे चला गया तब अचेत होकर यशोदा समेत गोपियाँ गिर पड़ीं। जब फिर वे चैतन्य हुईं तब रोती-पीटती घर को चलीं, पर उन्हें केशवमूर्ति के विरह में राह नहीं सूझती थी। तब एक सखी यशोदा से बोली—

सो० कहाकरें व्रज जाय मन हरि ले गयो साँवरो। परत न आगे पाँय पाछे ही लोचन लखत॥

दो०यों व्रजतिय पछिताय सब देखि यशोदादीन। सब आईं अपने घरन क्लेशितवदनमलीन॥

सो०सबव्र जपरमउदासबिरहिनदुखसम्पतिसपन।रहेप्राणयहिआसश्यामकह्योमिलिहैंबहुरि॥

क० कुटिल अक्रूर क्रूर बैरी काह्न जनम को चेटक सी डार सर लैके व्रज मूरिगो।
व्याकुल बिहाल बाल वंशीधर श्याम बिनु मीन सी तलफ मानो प्रेम रस झूरिगो॥
चरण उठाय सब चकित चितौत ऊँचे धाम चढ़ि चिन्तामणि चैन सब चूरिगो।
बारबार कहत बिसूरि जल पूरि नैन धूरि न उड़ात आली अब रथ दूरिगो॥

हे राजन्! इसी तरह यशोदा और गोपियाँ श्यामसुन्दर के विरह में व्याकुल रहकर उनकी चर्चा में अपने दिन काटने लगीं। अक्रूर ने मन में उदास होकर कहा कि मैंने अधर्मी राजा कंस के कहने से बहुत बुरा काम किया कि श्याम व बलराम के मारे जाने का उपाय सुनने व देखने पर भी इन्हें अपने साथ लिये जाता हूँ। मेरे बराबर कोई दूसरा पापी संसार में न होगा। यदि कंस बलराम व कृष्ण को मार डालेगा तो सब व्रजबाला, जिनको मैं रोते व विलाप करते छोड़ आया हूँ, बहुत दुःख पावेंगी। इस अधर्म के बदले मुझे न मालूम कौन नरक भोगना पड़ेगा। श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने अक्रूर के मन का हाल जानकर विचारा कि अक्रूर ऐसा ज्ञानी होकर मुझे लड़का समझकर मेरे मारे जाने का सोच करता है, इसलिए अपनी महिमा दिखाकर इसका यह सोच छुड़ा देना चाहिए। जब अक्रूर यमुना के किनारे पहुँचे और अपना रथ वृक्ष के नीचे श्याम व बलराम समेत खड़ा करके नहाने गये तब मोहनप्यारे ने नन्दराय से कहा कि तुम ग्वालबालों को साथ लेकर आगे चलो, अक्रूरजी स्नान व पूजा कर लें तो मैं भी पीछे आता हूँ। यह बात सुनकर नन्दजी ग्वालबाल समेत आगे बढ़े। अक्रूर ने जैसे यमुनाजल में गोता मारा वैसे ही नन्द-लालजी को पानी के भीतर देखा। जब आश्चर्य मानकर अपना सिर बाहर निकाला तब वह रथ पर बैठे दिखलाई दिये। दूसरे बेर फिर गोता मारा

तो वही हाल देखकर जब तीसरा गोता लगाया तब क्या देखा कि श्रीकृष्णजी साँवली सूरत लक्ष्मीसमेत जड़ाऊ गहना अंग-अंग पर पहिने केशर व चन्दन का तिलक लगाये कौस्तुभमणि वैजयन्ती माला-वनमाला गले में डाले पीताम्बर व जनेऊ का जोड़ा पहने रेशमी उपरना ओढ़े चतुर्भुजी स्वरूप से शंख चक्र गदा पद्म धारण किये हुए शेषजी के ऊपर विराजते हैं। श्वेतवर्ण शेषजी अपने हजार मस्तक पर जड़ाऊ मुकुट बाँधे नीलाम्बर पहिने हुए बहुत शोभायमान दिखाई दिये। श्यामसुन्दर घूँघुरवाले बालों पर क्रीटमुकुट जड़ाऊ साजे व मकराकृत कुण्डल पहने सुन्दर नासिका कपोल कमलनयन तिरछी चितवन दाँत बिजली के समान चमकते हुए मन्द-मन्द मुसकाते भुजा व छाती अति विशाल गहरी नाभि पतली कमर मोटी जंघा पाँव के नख चमकते हुए ऐसे महासुन्दर दिखाई दिये जिसका वर्णन नहीं हो सकता। यव, अंकुश और वज्रादिक के चिह्न पैर के तलवे में दिखाई दिये। फिर क्या देखा कि ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि देवता और नव योगीश्वर, नारदमुनि, मार्कण्डेय, भृगु आदि ऋषीश्वर, सनकादिक, गरुड़, आठ वसुदेवता, काल, चौबीस तत्त्व, ध्रुव, प्रह्लाद आदि भक्त, वेदव्यास, उंचास पवन, आठों दिग्पाल, सातों द्वीप, अग्नि, सातों समुद्र, बारहों सूर्य, चन्द्रमा, बालखिल्य ऋषीश्वर, धर्मराज, कामधेनु, कामदेव, सातों पुरी, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, दिव्य पितर, गंगा, सरस्वती आदि नदियाँ, अरुधन्ती, वशिष्ठ, यक्ष, राक्षस, कंस, देवकन्या, सब व्रत, तीर्थ, कल्प-वृक्ष आदि अपना-अपना रूप धारण किये श्रीकृष्णजी के सामने हाथ जोड़े हुए स्तुति करते हैं। अप्सरा उन्हें नाच दिखाती और गन्धर्व गाना सुनाते हैं। ब्रह्मादिक देवता स्तुति करने के उपरान्त केशवमूर्ति के तेज से कुछ बोलने की सामर्थ्य न रखकर चित्रकारी से चुपचाप खड़े उनका मुख निहारते हैं। जिसकी ओर नन्दलालजी ने आँख उठाकर दया से देखा वह प्रसन्न होकर उनका गुणानुवाद गाने लगा। उनमें कोई मोहनप्यारे के चँवर हिलाते, कोई उनके धूप-दीप करके सुगंधित फूलों का गजरा पहिनाते, कोई अनेक प्रकार की वस्तुएँ उन्हें भेंट देकर बारम्बार दण्डवत् करते थे।

दो० माखनप्रभु व्रजनाथ के सभी देवता साथ। हाथ जोड़ि अस्तुति करें धरे चरण पर माथ॥

जब अक्रूर को श्यामसुन्दर की यह सब महिमा यमुनाजल में देखकर विश्वास हुआ कि श्रीकृष्ण परब्रह्म परमेश्वर का अवतार हैं तब वह अपना सोच छोड़कर चतुर्भुजी रूप के पास गया और चरणों पर गिरकर हाथ जोड़कर विनय किया।

दो० तनमनरहो भुलायके देखिरूप अभिराम। माखनप्रभु घनश्याम को लाग्योकरन प्रणाम॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जो कोई इस अध्याय को प्रीति से कहे व सुने, उसको श्यामसुन्दर के दर्शन प्राप्त होने का फल मिले।

—०—

चालीसवाँ अध्याय।

अक्रूर का यमुनाजल में चतुर्भुजीरूप श्रीकृष्णजी की स्तुति करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब अक्रूर ने यमुनाजल में श्रीकृष्णजी की महिमा देखकर उन्हें पूर्ण ब्रह्म जाना तब उसी जगह इस तरह उनकी स्तुति की—हे नाथ! हे निरंजन! आप तीनों लोकों के मालिक, आवागमन से रहित हैं। कोई ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो तुम्हारी लीला व आदि-अन्त का भेद जान सके। मेरी दण्डवत् आपको पहुँचे। यह बात सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! जब परब्रह्म परमेश्वर के भेद को कोई नहीं पहुँच सकता तो उनकी महिमा जाननेवाला किसको कहना चाहिए? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उनकी महिमा जानना बहुत कठिन है, पर तुम जितने जड़ व चैतन्य जीव देखते हो सबमें उन्हीं के तेज का प्रकाश समझो। जो कुछ संसार में दिखलाई देता है वह सब परमेश्वर की इच्छा व महिमा से उत्पन्न होकर उन्हीं का रूप है। संसार में कोई-कोई ज्ञानी व तपस्वी परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करने से कुछ-कुछ उनका भेद जान सकते हैं।

दो० माखन प्रभु कर्तार को जानो या विधि लोग। घट घट में व्यापक सदा हैं सब करने योग॥

हे राजन्! अक्रूर ने श्रीकृष्णजी से यमुनाजल में विनय किया—हे महाराज! आप ब्रह्मा व महादेव आदि देवताओं और तीनों लोकों के मालिक हैं। जिस तरह सब नदी व नालों का पानी बहकर समुद्र में मिल

जाता है उसी तरह संसारी मनुष्य जो दूसरे देवतों के नाम पर पूजा व दान व स्मरण करते हैं वह सब आपको पहुँचता है और मरने के उपरान्त सब जीव तुम्हारे रूप में समा जाते हैं। ब्रह्मादिक देवता आपके गुण व महिमा को नहीं जान सकते तो दूसरे को क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारी महिमा जान सके। हे आदि पुरुष, निराकार! चारों वेद आपके श्वासा होकर भी आपका आदि-अन्त नहीं जानते। तुम्हारे विराट्रूप के रोम-रोम में अनेक ब्रह्माण्ड हैं, मैं उस विराट्रूप को नमस्कार करता हूँ। हे पूर्णब्रह्मन्! आप निर्मलरूप, चौदहों भुवन के कर्ता-धर्ता, केवल गौ-ब्राह्मण व हरिभक्तों का उद्धार करने और अधर्मियों को मारने के लिए संसार में अवतार धारण करते हैं।

चौ० हंसरूप धरके अवतारा। नीर क्षीर तुम करो नियारा।

हे ज्योतिस्स्वरूप दीनानाथ! आपने मत्स्यरूप धरकर वेद को पाताल से निकाला, हयग्रीव अवतार लेकर मधुकैटभ दैत्य को मारा, समुद्र मथने और चौदहों रत्न निकालने के लिए कच्छप अवतार धरकर मन्दराचल पहाड़ को अपनी पीठ पर उठाया, वाराह अवतार लेकर हिरण्याक्ष दैत्य को मारकर पृथ्वी को पाताल से निकाल लाये। नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु को मारकर अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की, देवतों के भले के लिए वामन अवतार लेकर तीन पग पृथ्वी राजा बलि से दान लिया, परशुराम अवतार धरकर क्षत्रियों का वध किया, रामचन्द्र अवतार से अधर्मी रावण को मारकर विभीषण को लंका का राज्य दिया। गंगाजी तुम्हारे चरण का धोवन हैं। तीनों लोकों के जीवों को तारती हैं। बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तुम्हारे रूप हैं, मैं तुम्हारे सब अवतारों को दण्डवत् करता हूँ। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—महाराज! उस समय तक अनिरुद्ध और प्रद्युम्न उत्पन्न नहीं हुए थे, अक्रूर ने उनका नाम किस तरह जाना? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उद्धव और अक्रूर श्रीकृष्णजी के भक्तों में थे, उनकी दया से तीनों कालों का हाल जानते थे। जिस तरह नारद मुनि को भूत, भविष्यत् व वर्तमान का हाल मालूम रहता है उसी तरह और हरिभक्त लोग भी तीनों कालों

का हाल जानते हैं। फिर अक्रूर ने कहा कि आप बौद्ध अवतार लेकर दैत्यों को यज्ञ करने से बरजेंगे और कलियुग के अन्त में कलकी अवतार धरकर नये सिरे से सतयुग के धर्म का प्रचार करेंगे। कोई मनुष्य आपका तप व ध्यान करने से भवसागर पार उतर जाते हैं और किसी को आप संसारी मायाजाल में फँसाकर उनका कौतुक इस तरह देखते हैं जिस तरह कोई मनुष्य अपना मुख शीशे में देखे। तुम्हारी कृपा के बिना इस मायाजाल से छूटना बहुत कठिन है। आपकी पूजा कई प्रकार से होती है। बाजे मनुष्य तुम्हारी मूर्ति बनाकर पूजते हैं, कोई तुम्हारे रूप व चरणों का ध्यान अपने हृदय में रखते हैं, बाजे तुम्हारे नाम पर यज्ञ व होम करते हैं, ज्ञानी आपको सब जीवों में एक रूप देखता है, बाजे मनुष्य विरक्त होकर वन में तुम्हारा तप व ध्यान करते हैं, कोई गृहस्थी में रहने पर भी मन से तुम्हारा स्मरण व ध्यान रखकर भवसागर पार उतर जाता है, बाजे लोग तुम्हारे सिवा दूसरे देवता से प्रीति न करके बारम्बार तुम्हें दण्डवत् करते और संसारी व्यवहार को स्वप्नवत् समझते हैं। तुम्हारी पूजा, स्मरण व गुणों का वर्णन बड़े-बड़े योगीश्वर, ज्ञानी, शेष, महेश, शारदा और गणेश नहीं कर सकते। मुझ अज्ञान को क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारी महिमा वर्णन कर सकूँ। आपका नाम दीनदयालु है, इसलिए मुझे दीन व अपना दास जानकर मेरे अज्ञान व अभिमान को ज्ञानरूपी अग्नि से जला दीजिए। मुझे आठों पहर अपने चरणों के पास रखकर ऐसा ज्ञान उपदेश कीजिए जिसमें आपको अपना उत्पन्न करनेवाला जानकर तुम्हारी सेवा व चर्चा में दिन-रात लीन रहूँ।

दो० मैंअजानतुमशरणहौं माखनप्रभु भगवान। ऐसी बुद्धिमोहिं दीजिए तुम्हैं सकौं पहिचान॥

—:०:—

इकतालीसवाँ अध्याय।

अक्रूर का श्याम व बलराम समेत मथुरा में पहुँचना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब श्रीकृष्णजी ने यमुनाजल में यह सब स्तुति अक्रूर से सुनकर अपना चतुर्भुजी स्वरूप देवतों समेत अन्तर्धान कर लिया तब अक्रूर इस बात का अचम्भा मानकर पानी से

बाहर आया और श्याम व बलराम को रथ पर बैठे देखकर डरता व काँपता हुआ उनके पास पहुँचा। उसकी यह दशा देखकर केशवमूर्ति ने पूछा—हे चाचा! तुम इस समय घबराये क्यों हो? और नहाते समय सिर पानी से बारम्बार निकालकर हमारी ओर क्या देखते थे और चलने को भूलकर इतनी देर तक तुम क्या करते रहे? तुमने यमुनाजल में कुछ आश्चर्य की बातें तो नहीं देखीं? यह वचन सुनते ही अक्रूर ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे नाथ, निरंजन, अन्तर्यामी! जो कुछ पानी के भीतर मैंने तुम्हारी महिमा देखी सो वर्णन नहीं हो सकती।

चौ० भलो दरश दीन्हों जलमाहीं। कृष्णचरित्रकोअचरज नाहीं॥
मोहिं भरोसो भयो तुम्हारो। वेगि नाथ मथुरा पग धारो॥
दो०अबमोसों पूछत कहातुम त्रिभुवन के नाथ। कर्ता हर्ताजगत के सकल तुम्हारे हाथ॥
माखन प्रभुकरतारकी लीला कही न जाय। सर्व जीव संसार के जामें रहे लुभाय॥

यह सुनते ही श्रीकृष्णजी ने हँसकर कहा—आवो, रथ पर चढ़ो, रास्ता चलना है। तब अक्रूर ने पहिले अपना सिर उनके चरणों पर रख दिया, फिर बैठकर रथ चलाया। नन्दादिक ग्वाल जो आगे गये थे मथुरा के निकट बाग में डेरा करके श्याम व बलराम की आशा देखने लगे। श्रीकृष्णजी भी वहाँ पहुँचकर रथ से उतरे। अक्रूर ने हाथ जोड़-कर उनसे विनय किया—हे दीनानाथ! मैं चाहता हूँ कि आज की रात मेरी कुटी अपने चरणों से पवित्र कीजिए। जिसके घर आपके चरण जावें उसके पुरुषा स्वर्ग को पहुँचते हैं। जिन पाँवों ने गौतम ऋषीश्वर की स्त्री अहल्या को शाप से छुड़ाया और बलि को सुतल लोक का राज्य दिया, जिन चरणों के धोवन गंगाजी को भगीरथ बड़े तप से अपने पुरुषों को तारने के वास्ते मर्त्यलोक में लाये और शिवजी ने अपने मस्तक पर रक्खा, वही चरण धोकर चरणोदक पीने और सिर पर चढ़ाने से अपने परिवार समेत कृतार्थ होना चाहता हूँ।

चौ० ऐसे चरण सरोज तुम्हारे। तिन को सदा प्रणाम हमारे॥
दो०माखन प्रभु के नामगुण कहै सुनैज्यहि ठौर। सुरनर रज उस ठौर की धरैंशीशज्योंमौर॥

हे महाराज! मैं तुम्हारा दास इन चरणों को छोड़कर कहीं न जाऊँगा। यह बात सुनते ही श्यामसुन्दर ने अक्रूर का हाथ बड़े प्रेम से पकड़कर

उनसे कहा—हे चाचा! आज रात को हम यहाँ रहेंगे, कल राजा कंस को मारकर बलराम समेत फिर तुम्हारे स्थान पर आवेंगे। आज सबको यहाँ छोड़कर जाना उचित नहीं है। जब अक्रूर ने यह सुना तब उनसे बिदा होकर राजा कंस की सभा में चला गया। कंस ने बड़े आदर से अपने पास सिंहासन पर बैठाकर पूछा—जहाँ गये थे वहाँ का हाल कहो।

चौ० सुनि अक्रूर कहै समुझाई। व्रज की महिमा कही न जाई॥
कहा नन्द की करों बड़ाई। बात तुम्हारी शीश चढ़ाई॥
राम कृष्ण दोऊ हैं आये। भेंट सबै व्रजवासी लाये॥

आज वे बहुत ग्वालबाल संग रहने से नगर के बाहर टिके हैं, कल राजसभा में आवेंगे। यह सुनकर राजा कंस बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—हे अक्रूरजी! आज तुमने हमारा बड़ा काम किया जो राम व कृष्ण को ले आये, अब अपने घर जाकर आराम करो। अक्रूर यह आज्ञा पाते ही अपने स्थान पर आये और कंस श्याम व बलराम के मारने का उपाय सोचने लगा। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! इधर श्याम व बलराम ने नन्द से पूछा—हे बाबा! तुम्हारी आज्ञा हो तो हम मथुरापुरी देख आवें। नन्दराय ने कुछ पकवान व मिठाई दोनों भाइयों को खिलाकर कहा—बहुत अच्छा, तुम जाकर देख आवो, पर विलम्ब मत करना। यह वचन सुनते ही उसी रोज चार घड़ी दिन बाकी रहे श्याम व बलराम ग्वालबालों को साथ लेकर चले। मथुरानगर में किला व स्थान बिल्लौर के बने हुए बहुत उत्तम दिखलाई दिये। सुनहले रत्नजटित द्वारों पर मोतियों की झालरें बँधी थीं। किले के चारों ओर ऐसी गहरी खाईं खुदी थी जिसमें बारहों महीने पानी भरा रहता था। किले की दीवार पर ताख व झरोखे में कबूतर, तोते और कोकिला आदि अनेक रंग के पक्षी मीठी-मीठी बोलियाँ बोलते थे। नगर की गली और सड़कें बहुत साफ थीं, गुलाबजल और चन्दन का छिड़काव हो रहा था। महलों की दीवारें ऐसी चमकती थीं जिनमें मुख दिखाई देता था। सब स्थानों में छोटे-छोटे और नगर के चारों ओर बड़े-बड़े बहुत बाग थे। उनमें उत्तम-उत्तम फूल व फल लगे थे, बैठने के लिए अच्छे-अच्छे

स्थान बने थे। वृक्षों पर अनेक रंग के पक्षी बोलते थे। अच्छे-अच्छे तड़ाग, बावली और कुण्डों में मोती के समान पानी भरा था। कमल फूले थे और उन फूलों पर भँवरे गूँजते थे। तालाब के किनारे अनेक रंग के पशु-पक्षी कलोल करते थे। फूलों की क्यारियाँ कोसों तक फूली थीं। मन्द सुगन्ध हवा बहती थी।

दो० शोभा मथुरा नगर की कासों बरणीजाय। जहाँ श्याम त्रिभवनपती जन्म लियो है आय ॥

जब श्याम व बलराम ऐसी शोभा देखते हुए मथुरापुरी में पहुँचे तब उनका दर्शन पाकर मथुरावासी अपने-अपने लोचनों का फल प्राप्त करने लगे।

चौ० जो-जो छवि देखैं मगमाहीं। सो करुणा करिकै पछताहीं ॥
असुर कंस है बड़ो कसाई। अब इनको होइहै दुखदाई ॥

दो० बड़ी धूम मथुरानगर आवत नन्दकुमार। सुनि धाये पुर लोग सब गृह के काज बिसार ॥

जब मथुरा की स्त्रियों ने श्याम व बलराम के आने का हाल सुना तब उनमें बहुत-सी वृन्दावनविहारी को देखने के लिए घर से बाहर निकल आईं। अनेक स्त्रियाँ अपने कोठे, खिड़की और झरोखों पर आ बैठीं।

दो० माखनप्रभु आवत सुने मन में भयो हुलास। मारग में टाढ़ीं भईं हरिदर्शन की आस ॥

सड़कों और गलियों में खड़ी हुई स्त्रियाँ एक दूसरी से कहती थीं कि यही श्याम व बलराम हैं जिनको अक्रूर लेने गये थे। इन मोहनीमूर्ति को अच्छी तरह देखकर अपनी-अपनी आँखें ठंढी करो।

चौ० यहि विधि जहाँ तहाँ खड़िनारी। प्रभुहिं बतावें हाथ पसारी ॥
नील वसन गोरे बलरामा। पीताम्बर ओढ़े घनश्यामा ॥
सुनत हती पुरुषारथ जिनको। देख्यो रूप नयन भरि तिनको ॥

यही दोनों बालक कंस के भानजे हैं, जिन्होंने केशी आदि दैत्यों को मारा और गोकुल व वृन्दावन में अनेक लीलाएँ कीं। पिछले जन्म में हम लोगों ने बड़े शुभ कर्म किये थे जिनके प्रताप से वैकुण्ठनाथ का दर्शन पाया। जो स्त्री उनका समाचार पाती थी वह उलटा-पलटा शृंगार करके गोद का बालक रोता छोड़कर ऐसी जल्दी बाहर चली आती थी कि उसको अपने तन व वस्त्र की सुधि नहीं रहती थी।

दो० माखनप्रभु के दरशको यहिविधिदौड़ीनारि। ज्योंसरिता सागरमिलनचलतवेगसोंवारि ॥

जब मथुरावासी स्त्रियाँ मोहनीमूर्ति का रूपरस आँखों की राह पीने लगीं तब केशवमूर्ति ने अपनी मृदु मुसकान व तिरछी चितवन से उनका मन हर लिया। वे स्त्रियाँ श्यामसुन्दर को देखते ही उन पर मोहित हो गईं।

दो० कहत सकलबड़भागि हैं वृन्दावनकी नारि। जोसुखपावति हैं सदा माखनप्रभुहिनिहारि ॥

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! इसी तरह मथुरावासी सब स्त्री-पुरुष मोहनप्यारे के दर्शन से प्रसन्न होकर उनके बालचरित्र की चर्चा करते थे। ब्राह्मण लोग श्याम व बलराम के माथे पर तिलक लगाकर उन्हें आशीर्वाद देते थे। जिस गली, सड़क और चौराहे से श्याम व बलराम जाते थे वहाँ सब स्त्री व पुरुष उनके दर्शन से अपना जन्म सफल करते थे। मोती और रत्नादिक न्योछावर करके अक्षत, लावा, फल उन पर बरसाते थे। उस नगर की शोभा और बहुत भीड़ देखकर केशवमूर्ति ने अपने साथी ग्वालबालों से कहा कि राह मत भूलना, यदि कोई भूल जाय तो जहाँ डेरा है वहाँ चला जावे। उस समय मोहनप्यारे ने राह में क्या देखा कि राजा कंस का धोबी, जो कपड़ों को रँगता भी था, मदिरा पान किये, कई लादी कपड़ा लिये, कंस का यश गाता हुआ उसी ओर चला आता है। उसको देखकर श्यामसुन्दर ने बलरामजी से कहा कि कहो तो इसके कपड़े छीनकर हम और तुम दोनों भाई ग्वालबालों समेत पहिन लें और जो कुछ बचें उन्हें लुटा दें। बलरामजी ने कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा हो। यह वचन सुनते ही श्रीकृष्णजी ने, जो सब धोबियों में मालिक था, उससे कहा कि तुम कुछ कपड़े हमें पहिनने के लिए दो तो राजा कंस से भेंट करके तुम्हें फेर देंगे और जो कुछ राजा के यहाँ से मुझे मिलेगा उसमें से तुमको भी देंगे।

दो० हँस्यो वचन सुनि श्याम के कह्यो गर्वकरि बैन। बलि के बकरा ह्वै रह्यो आयो है पटलैन ॥

सो० राखी घरी बनाय ह्वै आवो नृप द्वार से। तब लीजों पट आय जो भावै सो दीजियो ॥

ऐसा कहकर वह धोबी केशवमूर्ति से बोला कि तुम लोग गँवार मनुष्य वन के रहनेवाले, सदा इसी तरह के कपड़े पहिना करते थे जो

माँगने आये हो ? तुम नहीं जानते कि ये सब कपड़े राजा कंस के हैं। ऐसी बात फिर कहोगे तो राजा तुम्हें दंड देगा।

चौ० बनबन फिरत चरावत गैया। अहिर जाति कामरी ओढ़ैया ॥
नट को वेष बनाकर आये। नृप अम्बर पहिरन मन भाये ॥
जुरिकै चले नृपति के पासा। पहिरावन लेने की आसा ॥
नेक आश जीवन की जोऊ। खोवन चहत अभी तुम सोऊ ॥

यह सुनकर मोहनप्यारे ने कहा कि हम सीधी तरह वस्त्र माँगते हैं, तुम उलटी-पलटी बातें क्यों कहते हो। मँगनी कपड़ा देने में तुम्हारी कुछ हानि नहीं है, सदा तुम्हारा यश संसार में बना रहेगा। यह सुनते ही वह धोबी क्रोध से बोला—हे बालक! तूने अभी तक राजा कंस को नहीं देखा और उसके प्रताप का हाल भी नहीं सुना। गँवार लोग राजसी व्यवहार नहीं जानते। तेरा मुख यह कपड़े पहिनने योग्य है। ऐसी तृष्णा छोड़कर मेरे सामने से चला जा, नहीं तो अभी तुझको मार डालता हूँ। जब श्यामसुन्दर ने धोबी का यह दुर्वचन सुना तो क्रोधित होकर उसके गले में ऐसा हाथ मारा कि उसका शिर भुट्टा-सा कटकर गिर पड़ा। मालिक की यह दशा देखकर उसके साथी लादी व पेटारी आदि छोड़कर भाग गये और राजा कंस के पास जाकर वह सब वृत्तान्त कह दिया। मोहनप्यारे ने अपने, बलरामजी के और ग्वालबालों के पहिनने के वास्ते कपड़े निकालकर बाकी सब लुटा दिये। ग्वालबाल वस्त्र पहिनना नहीं जानते थे, इसलिए दामन में हाथ और अँगरखे में पाँव डालने लगे। केशवमूर्ति ने भी उलटा-पलटा कपड़ा पहिन लिया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! कदाचित् तुझे इस बात का सन्देह हो कि सब वस्तुओं का ज्ञान तो श्रीकृष्णजी की कृपा से उत्पन्न हुआ है, वह कपड़ा पहिनना क्यों नहीं जानते थे। सो उनके भेद व लीला का हाल कोई जान नहीं सकता। वह परब्रह्म परमेश्वर संसारी सुख की कुछ इच्छा नहीं रखते। उनके भक्त व सेवक प्रीति से जो कुछ उन्हें भोग लगाकर भूषण व वस्त्र पहिना देते हैं उसे वह दया करके अंगीकार करते हैं। इसलिए वह अपने को वस्त्र पहिनने से अज्ञान

बनाकर चाहते थे कि कोई मेरा भक्त आकर मुझे पहिना दे। सो उनकी इच्छानुसार उसी जगह बायक नाम का दरजी हरिभक्त आ पहुँचा और श्यामसुन्दर से हाथ जोड़कर बोला—महाराज! प्रकट में मुझे राजा कंस का सेवक कहते हैं, पर मैं अपने मन से आठों पहर तुम्हारे चरणों का ध्यान रखता हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए तो मैं आप लोगों को वस्त्र पहिना दूँ। मुरलीमनोहर ने उसे अपना दास जानकर कहा कि बहुत अच्छा। यह वचन सुनते ही उस दरजी ने बड़ी प्रीति से छोटे-बड़े कपड़ों को काट-छाँटकर श्याम बलराम और सब ग्वालबालों को पहिना दिया और हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो गया। तब मुरलीमनोहर बोले—हे बायक! हम तुमसे बहुत प्रसन्न हुए, तू सदा धनवान् रहेगा और मरने के उपरांत मुक्ति पावेगा। तेरे वंश में सब हरिभक्त उत्पन्न होंगे। ऐसा वरदान देकर फिर केशवमूर्ति ने उस दरजी से कहा कि हे बायक! जैसी सेवा तूने की वैसा फल मैंने तुझको नहीं दिया, इसलिए तुझसे लज्जित हूँ। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—महाराज! थोड़ी सेवा करने के बदले श्यामसुन्दर ने उसको ऐसा वरदान दिया और फिर लज्जित रहने का कारण क्या था? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! वैकुंठ-नाथ ने समझा कि कपड़े पहिनाते समय इसने सब तरफ से अपना मन हटाकर मेरे काम में लगाया और हमारी सेवा की, इसलिए मैंने जो इसको दिया वह उस सेवा की बराबरी नहीं रखता। हे परीक्षित! देखो, एक बेर कपड़ा पहिनाने के बदले वह दरजी इस पदवी को पहुँचा। जो लोग नित्य श्रीकृष्णजी को भूषण व वस्त्र पहिनाकर उनकी पूजा व सेवा करते हैं वह न मालूम कैसा फल पावेंगे। जब श्याम व बलराम वहाँ से आगे चले तब हरिभक्त सुदामा नाम का माली आकर केशव-मूर्ति के चरणों पर गिर पड़ा और बड़े प्रेम से श्याम व बलराम को ग्वालबालों समेत अपने घर ले जाकर उत्तम आसन पर बैठाया और उनके चरण धोकर चरणामृत लिया। विधिपूर्वक पूजा करके सुगन्धित फूलों की माला पहिनाकर इस तरह उनकी स्तुति की—

चौ० दयासिन्धु तुम दीनदयाला। कृपावन्त सब के प्रतिपाला॥

ऐसे चरण सरोज तुम्हारे। मित्र शत्रु जन सबै उधारे।
मोपर कृपा करो हरि देवा। आयसु देव करौं कछु सेवा॥

जब वृन्दावनविहारी ने माली से यह स्तुति सुनी तब उसकी सच्ची भक्ति व प्रीति देखकर कहा—हे सुदामा! हम तेरे ऊपर प्रसन्न हैं, जो इच्छा हो सो वरदान माँग। यह वचन सुनकर माली ने विनय किया कि मैं यही चाहता हूँ कि तुम्हारे चरणों की भक्ति सदा मेरे हृदय में बनी रहे और मुझे ज्ञानियों व ऋषीश्वरों का सतसंग रहे। श्यामसुन्दर ने उसे मुख माँगा वरदान देकर कहा कि तू सदा धनवान् व सुखी रहेगा। तेरे वंश में भी सब धनवान् होकर मेरी भक्ति करेंगे। यह कहकर श्रीकृष्णजी वहाँ से उठे।

दो॰या विधि दया जनाइकै माली कियो सनाथ। आनँद सों आगे चले माखनप्रभु व्रजनाथ॥

बयालीसवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर को महादेवजी का धनुष तोड़ना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब श्यामसुन्दर सुदामा माली को वरदान देकर बाजार में गये तब क्या देखा कि कुब्जा मालिनि कटोरियों में चन्दन थाली में रक्खे हुए चली जाती है। श्यामसुन्दर ने उसे देखकर हँसी से पूछा कि तुम किसकी स्त्री बहुत सुन्दरी हो, यह चन्दन कहाँ ले जाती हो, हमें दोगी। यह वचन सुनकर कुबड़ी ने विनय किया—हे मोहनीमूर्ति! मैं कुब्जा नाम कंस की दासी हूँ, नित्य उसके चन्दन लगाने के वास्ते ले जाती हूँ और वह इस सेवा से बहुत प्रसन्न होकर मेरा पालन करता है। पर तुम्हारे चरणों का ध्यान सदा अपने हृदय में रखकर आपका गुणानुवाद गाया करती थी, सो आज तुम्हारा दर्शन पाने से मेरा जन्म सफल हुआ और लोचनों का फल मिला। राजा कंस के चन्दन लगाने से मेरा परलोक नहीं बनता, इसलिए मेरी यह इच्छा है कि आपकी आज्ञा पाऊँ तो अपने हाथ से आपके चन्दन लगाकर कृतार्थ हो जाऊँ।

दो॰माखनप्रभु सो कूबरी यहि बिधि कहत सुनाय। मोहनमूरतिश्यामकी मनमें रही लुभाय॥

नन्दकुमार ने कुब्जा की सच्ची भक्ति व प्रीति देखकर उससे कहा कि

बहुत अच्छा। यह वचन सुनते ही कुबड़ी ने बड़े प्रेम से श्याम व बलराम के मस्तक व अंग पर विधिपूर्वक चन्दन लगाया। श्यामसुन्दर ने प्रसन्न होकर बलरामजी से कहा कि इस सेवा के बदले कुब्जा का अंग सीधा कर देना चाहिए। ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी ने अपना पाँव कुबड़ी के पैर पर रखकर दो अँगुलियाँ उसकी ठोढ़ी में लगाकर उसे उचका दिया तो उसका कूबड़ बैठ गया और वह सीधी व अतिसुन्दरी हो गई।

सो०को करि सकै बखान जाहि बनाई आप हरि। भई रूप गुणखान कुब्जामनआनन्द अति ॥

हे परीक्षित! जब कुबड़ी ने अपने को महासुन्दरी देखा तब वह अंचल से अपना मुख ढाँपकर मुसकराती हुई विनयपूर्वक बोली—हे प्रीतम! जिस तरह तुमने दयालु होकर मुझे रूप व तरुणाई दी उसी तरह मुझ दासी के घर चलकर मेरी इच्छा पूर्ण कीजिए। यह वचन सुनते ही मोहन-प्यारे ने उसका हाथ पकड़कर प्रेमपूर्वक कहा—तू धैर्य रख, जिस तरह चन्दन लगाकर तूने हमारी छाती ठण्ढी की उसी तरह हम भी तेरी इच्छा पूर्ण करेंगे।

दो०कंस नृपति को देखिकै हम ऐहैं तुव धाम। यह कहकर आगे चले माखनप्रभु घनश्याम ॥

कुब्जा ने यह वरदान पाते ही आनन्द से अपने घर जाकर केसरि व चन्दन का चौक पुरवाया और अपना घर अच्छी तरह अलंकृत करके मोहनप्यारे के आने की आशा देखने लगी। जब मथुरावासी स्त्रियाँ यह हाल सुनकर उसके घर गईं तब उसका रूप व तरुणाई देखकर बोलीं—

चौ० धनि-धनि कुब्जा तेरो भाग। जाको विधिना दियो सुहाग ॥
ऐसो कहा कठिन तप कीन्हों। गोपीनाथ भेंट भुज लीन्हों ॥

हे कुब्जा रानी! जब श्यामसुन्दर तेरे घर आवें तब हमको भी उनका दर्शन कराना। इसी तरह मथुरावासी स्त्रियाँ कुब्जा की बड़ाई करती थीं और श्यायम व बलराम ग्वालबालों समेत हँसते हुए चले जाते थे। बाजार में जो मनुष्य जिस वस्तु का रोजगार करता था वह रत्न, वस्त्र, पान, मिठाई आदि सोने व चाँदी की थालियों में रखकर उन्हें भेंट देते थे। श्रीकृष्णजी उनका क्षेम-कुशल पूछकर मीठी बातों से उन्हें प्रसन्न करते थे।

चौ० मारग में जो दर्शन पावैं। रामकृष्ण की कुशल मनावैं ॥
काम स्वरूप श्याम तनु सोहैं। मथुरा की कामिनि सब मोहैं ॥

मथुरा की स्त्रियाँ अपना गहना व कपड़ा श्यामसुन्दर पर निछावर करके कहती थीं कि इनके वियोग में न मालूम गोपियों की क्या दशा हुई होगी। जब इसी तरह घूमते हुए श्याम व बलराम रंगभूमि के पहिले द्वार पर, जहाँ महादेव का धनुष रक्खा था, पहुँचे तब राजा कंस के दश हजार शूरवीरों ने, जो धनुष की रखवारी करते थे, श्यामसुन्दर को देखते ही दूर से ललकारकर कहा—यहाँ मत आवो, दूर खड़े रहो। मोहन-प्यारे उनके बर्जने पर भी न मानकर बेधड़क वहाँ चले गये और महादेव का धनुष, जो तीन ताड़ लंबा, मोटा, भारी ऊँचे चबूतरे पर रक्खा था, बायें हाथ से उठाकर इस तरह सहज में दो टुकड़े कर दिये जिस तरह हाथी ऊख को तोड़ डालता है। जब धनुष टूटने का शब्द राजा कंस ने सुना तब श्रीकृष्णजी को अति बलवान् समझकर उनके डर से काँपने लगा। वे सब शूरवीर राम व कृष्ण से लड़ने लगे तब दोनों भाइयों ने उसी धनुष के टुकड़ों से मारकर उन्हें गिरा दिया। उस समय देवतों ने प्रसन्न होकर श्याम व बलराम पर फूल बरसाये। जब कोई उनके सामने लड़नेवाला नहीं रहा तब केशवमूर्ति ने बलरामजी से कहा कि हम लोगों को डेरा छोड़े बहुत विलम्ब हुआ, नन्द बाबा चिन्ता करते होंगे, सो चलना चाहिए। ऐसा कहकर श्यामसुन्दर ग्वालबालों समेत अपने डेरे पर आये। मथुरावासी धनुष तोड़ने और शूरवीरों के मारे जाने का वृत्तांत सुनकर आपस में कहने लगे कि ये दोनों बालक मनुष्य नहीं हैं, कोई देवता मालूम होते हैं जो ऐसे-ऐसे काम इन्होंने किये। होनहार प्रबल होता है, राजा कंस ने घर बैठे अपनी मृत्यु बुलाई है। इनके हाथ से वह जीता नहीं बचेगा। नन्दराय ने श्याम व बलराम आदि को अच्छे-अच्छे कपड़े पहिने देखकर जाना कि कन्हैया ने यह सब किसी से छीन लिये हैं। ऐसा समझकर बोले—हे बेटा! तुम यहाँ भी उत्पात करते हो, यह वृन्दावन हमारा गाँव नहीं है, जो ग्वालिनियों का दही छीनकर खा जाते थे। मथुरापुरी में ऐसे उपद्रव करोगे तो अच्छा न होगा। यह सुनकर श्यामसुन्दर बोले—हे बाबा! हमने नगर में बहुत उत्सव देखा, अब भूख लगी है, भोजन दो। यह वचन सुनते ही नन्दजी ने दूध, दही, माखन, पकवान, मिठाई आदि निकाल दिया।

दो० विविध भाँति भोजन कियो सब ग्वालन के साथ। रैनगँवाई चैनसों माखनप्रभु व्रजनाथ ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! जब कंस ने अपने शूरवीरों के मारे जाने का हाल सुना तब वह मन में बहुत उदास होकर कहने लगा कि मुझे बड़े बलवान् शत्रु से काम पड़ा है, अब मेरे प्राण नहीं बचेंगे। इसी सोच में राजा कंस भीतर ही भीतर जलकर इस तरह निर्बल हो गया जिस तरह काठ घुनों के खा जाने से भीतर खुखला होकर ऊपर ज्यों का त्यों बना रहता है। मारे लज्जा के अपने मन का हाल किसी से न कहकर उसी चिन्ता में पलँग पर जाकर लेट रहा। जब करवट लेते लेते पहर रात रहे उसकी आँख लग गई तब उसे स्वप्न में अपना शरीर बिना सिर का देख पड़ा, चन्द्रमा के दो टुकड़े दिखलाई दिये, अपनी परछाहीं में छेद मालूम हुआ, सूर्य के प्रकाश झरोखों में से देख पड़ा, सोने के समान वृक्ष दिखलाई दिये, लाल फूलों का हार अपने गले में देखा, अपने को नंगे शरीर रेत में नहाते, तेल अंग पर मले, गदहे पर चढ़े, श्मशान में भूत व प्रेत के साथ, मुर्दों से गले मिलते देखा। वृक्षों में अग्नि लगी हुई दिखलाई दी। यह बुरा स्वप्न देखते ही कंस घबराकर उठ बैठा। उसे केशवमूर्ति के डर से नींद नहीं आई। तिस पर भी वह प्रातःसमय सभा में बैठकर अपने सेवकों से बोला कि रंगभूमि में बिछौने बिछवाकर, सब राजों को जो धनुषयज्ञ देखने आये हैं, बुलाओ और व्रजवासी नन्दादिक व यदुवंशियों को बुलाकर यथायोग्य सबको बैठाओ। कुश्ती लड़ने का अखाड़ा तैयार करो, मैं भी वहाँ आता हूँ।

दो० योधा सभी बुलायकै तिन सों कहेउ सुनाय। अबहीं रचो बनायकै रंगभूमि तुम जाय ॥

यह आज्ञा पाते ही उन लोगों ने रंगभूमि की रचना करके सब किसी को बुला भेजा और यथायोग्य स्थान पर उन्हें बैठा दिया। चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल, कूट आदि पहलवान अपने-अपने चेलों समेत अखाड़े में आकर इकट्ठे हुए और घमण्ड से ढोल बजाकर ताल ठोंकने लगे। राजा कंस भी अभिमानपूर्वक वहाँ आकर बहुत ऊँचे मचान पर जहाँ जड़ाऊ सिंहासन बिछा था, बैठ गया। नन्द, उपनन्द आदि राजा कंस को भेंट देकर ग्वालबालों समेत एक मचान पर बैठे। उस समय कंस ने चाणूर

व मुष्टिक आदि पहलवानों को बुलाकर कहा कि आज तुम लोग श्याम व बलराम को कुश्ती लड़कर मार डालो तो हम तुम्हें बहुत-सा द्रव्य देंगे। पहलवानों ने हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज! हम लोग सामर्थ्य भर धोखा न करेंगे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेव स्वामी बोले—हे राजन्! उस समय ब्रह्मा व महादेव आदि देवता वैकुंठनाथ का दर्शन करने और विजय देखने के वास्ते अपने-अपने विमानों पर चढ़कर आकाश में आ पहुँचे और मथुरावासी स्त्री व पुरुष इतने वहाँ इकट्ठे हुए जिनकी गिनती नहीं हो सकती।

दो० माखन प्रभु के दर्श की सबके मन में चाय। परफुल्लित ठाढ़े भये रंगभूमि में आय॥

तैंतालीसवाँ अध्याय।

श्याम व बलराम का कुबलयापीड़ हाथी को मारना।

शुकदेवजी ने कहा—जब प्रातःसमय राजा कंस रंगभूमि में जाकर बैठा और वे सब लोग वहाँ आकर इकट्ठे हुए तब श्याम व बलरामजी ग्वालबालों समेत रंगभूमि के द्वार पर, जहाँ कुबलयापीड़ हाथी झूम रहा था, पहुँचे।

चौ० देखि मतंग द्वार मतवारो। गजपालहि बलराम पुकारो॥
सुनो महावत बात हमारी। लेहु द्वार ते गज तुम टारी॥

तुमसे यह बात हम कहते हैं कि अपना हाथी हटाकर हमें राजा कंस के पास जाने दो, नहीं तो अभी हाथी समेत तुझे मार डालेंगे। तू श्यामसुन्दर को बालक न जानकर तीनों लोकों का मालिक समझ। दुष्टों को मारने और पृथ्वी का भार उतारने के वास्ते इन्होंने जन्म लिया है। यह वचन सुनते ही हाथीवान हँसकर बोला कि तुम गौ चराने से त्रिभुवनपति नहीं हो गये। शूरवीरों की तरह बातें करते हो, मैं जानता हूँ कि तुमको दैत्यों के मारने और धनुष तोड़ने से अभिमान उत्पन्न हुआ है। जब तक इस गज से, जो दश हजार हाथी का बल रखता है, न लड़ोगे तब तक राजसभा में न जाने पावोगे। तुम ऐसे सुन्दर होकर क्यों अपने प्राण देने के लिए यहाँ आये हो। किसी शूरवीर को ऐसी सामर्थ्य नहीं है, जो इस हाथी से लड़ सके। इन्हीं दिनों के लिए कंस ने यह

हाथी पाल रक्खा था। आज इसके हाथ से तुम्हारे प्राण बचना कठिन है। यह बात सुनते ही केशवमूर्ति ने बालों का जूड़ा लपेटकर रेशमी उपरना कमर से बाँध लिया।

दो०तभी कोपि हलधर कह्योसुनुरे मूढ़कुजात। गज समेत पटकों अभी मुख सँभाल कहुबात ।।

यह सुनते ही जैसे गजपाल ने हाथी को अंकुश देकर बलराम की ओर झोंका वैसे ही कुबलयापीड़ बादल के समान गर्जता हुआ उन पर दौड़ा। उस समय बलभद्र ने एक ऐसा मुक्का उस हाथी के मारा कि वह सूँड़ सिकोड़कर चिल्लाता हुआ पीछे को हट गया। ऐसा बल रेवती-रमण का देखते ही बड़े-बड़े शूरवीर, जो वहाँ खड़े थे, अपने मन में हार मानकर कहने लगे कि इन दोनों बालकों को कौन जीत सकेगा। गज-पाल ने भी डरकर विचार किया कि यदि ये लड़के हाथी से नहीं मारे जायँगे तो राजा कंस मुझे जीता न छोड़ेगा। ऐसा समझकर गजपाल ने हाथी को बड़े जोर से अंकुश मारकर श्याम व बलराम की ओर बढ़ाया। जब हाथी ने झपटकर मोहनप्यारे को सूँड़ से लपेट लिया और पृथ्वी पर पटककर दोनों दाँतों से दबाया, उस समय देवता व ग्वालबाल व मथुरावासी यह हाल देखकर परमेश्वर से श्यामसुन्दर की कुशल मनाने लगे। केशवमूर्ति ने छोटा रूप बनाकर दोनों दाँतों के बीच में चले जाने से अपने को बचा लिया और वहाँ से कूदकर सम्मुख खड़े हो गये। फिर ताल ठोंककर हाथी को ललकारा। श्यामसुन्दर की यह फुरती देखते ही सब छोटे-बड़े बेडर होकर हँसने लगे। जब हाथी ललकार सुनकर फिर उनकी ओर दौड़ा तब वृन्दावनबिहारी पेट के तले से निकलकर पीछे चले गये और उसकी पूँछ पकड़कर सौ पग तक इस तरह हाथी को पीछे घसीटा जिस तरह गरुड़जी सर्प को घसीट ले जाते हैं। जब वह हाथी मुरलीमनोहर की ओर फिरा तब बलरामजी ने उसकी पूँछ पकड़-कर खींच लिया। फिर दोनों भाई उस हाथी को कभी पूँछ, कभी सूँड़, कभी मुक्का मारकर ऐसे खेलाने लगे जैसे बिल्ली चूहे को खेल खेलाकर मारती है। जब वह हाथी एक भाई पर झपटता तब दूसरा भाई उसे मुक्का मारकर छिटक जाता था। कभी श्याम व बलराम उसके नीचे, कभी

पीछे, कभी दोनों दाँतों के बीच में, कभी सामने जाकर मुक्का व तमाचा मारकर अलग हो जाते थे। कभी उसके दोनों दाँत पकड़कर पीछे हटा देते और कभी पूँछ पकड़कर खींच ले जाते थे।

दो० यद्यपि धावै कोपिकै सूड़ हिलावत जाय। माखनप्रभु गोपाल सों तदपि न कछू बसाय ।।

जब वह हाथी दौड़ते-दौड़ते और मुक्का तमाचा खाते-खाते निर्बल हो गया तब श्यामसुन्दर ने सूँड़ पकड़कर ऐसा झटका मारा कि हाथी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय श्यामसुन्दर ने उसकी छाती पर पाँव रखकर उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये और वही दाँत उसके मस्तक पर ऐसे मारे कि वह मर गया तब एक दाँत आप लेकर दूसरा बलरामजी को दे दिया। यह हाल देखकर जब हाथीवान और राजा कंस के शूरवीर लड़ने के लिए सम्मुख आये तब श्याम व बलराम ने उन्हीं दाँतों से उनको भी मार डाला। उस समय देवतों ने आकाश से दोनों भाइयों पर फूल बरसाये और मथुरावासियों ने प्रसन्न होकर कहा कि कंस अधर्मी ने बिना अपराध इन दोनों बालकों के मारने के वास्ते हाथी खड़ा किया था, सो बहुत अच्छा हुआ जो हाथी मारा गया।

दो० जो भूपति मनसा करी सो कछु ह्वै है नाहिं। प्रकट कंस के काल हैं आये मथुरा माहिं।।

उस समय हाथी के लोहू का छींटा श्याम व बलराम के कपड़ों पर पड़ा हुआ कैसा सुन्दर मालूम होता था जैसे बरसात में वीरबहूटी पृथ्वी पर शोभा देती है। उनके मुखारविंद पर पसीना ऐसा दिखलाई देता था, जिस तरह कमल के फूलों पर ओस की बूँदें रहती हैं। जब श्याम व बलराम हाथी के मारने के उपरांत ग्वालबालों समेत हँसते हुए धीरे-धीरे रंगभूमि के बीच जाकर खड़े हुए तो सभावालों ने उनको अपनी-अपनी इच्छानुसार देखा।

चौ० जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ।।

हे परीक्षित! श्रीकृष्णजी ने गीता में अर्जुन से कहा है कि मेरे जिस रूप का ध्यान कोई करे मैं उसी रूप का दर्शन उसको देता हूँ। सो चाणूर आदि पहलवानों को श्याम व बलराम महा शूरवीर दिखलाई दिये, मथुरा की स्त्रियों को कामरूप अति सुन्दर देख पड़े, ग्वालबाल उनके साथियों

ने अपना मित्र व भाई-बन्धु जाना, नन्दादिक ग्वालों ने अपना लड़का समझा। जो राजा कंस के मित्र वहाँ पर थे वे लोग श्याम व बलराम को शत्रुरूप देखकर डर गये। राजा कंस उन्हें अपना काल जानकर भय से काँपने लगा। यदुवंशियों ने उनको अपनी रक्षा करनेवाला समझा। योगियों और ज्ञानियों को पूर्णब्रह्म दिखलाई दिये। दूसरे लोगों ने केशव-मूर्ति को देखकर जाना कि यह वही बालक है जिसने छोटी अवस्था में पूतना राक्षसी को मारा, यमलार्जुन को जड़ से उखाड़ डाला और गोवर्द्धन पहाड़ अपनी अँगुली पर उठाकर राजा इन्द्र का अभिमान तोड़ा। अघासुर, धेनुक, प्रलम्ब, केशी आदि दैत्यों को मारकर कालीनाग को यमुना से निकाल दिया। गोकुल व वृन्दावन में ऐसे-ऐसे कठिन काम किये जिसका हाल सुनकर आश्चर्य मालूम होता है। आज कुवलयापीड़ हाथी को लड़कों के खेल के समान मार डाला। कुछ लोग उनको बालक देखकर सोच करके कहते थे कि कंस बड़ा निर्दयी और बड़ा अधर्मी है, जो छोटे-छोटे कोमल बदन बालकों को बरजोरी पहलवानों से कुश्ती लड़ाकर इनके प्राण लेना चाहता है। यहाँ से उठ चलो, यह अधर्म न देखना चाहिए।

दो० रीति अनीति निहारिकै कहैं परस्पर लोग । अब यह ठौर अधर्म को नहीं बैठने यौग ।।

जब ऐसा विचारकर बाजे उनमें से उठ गये और बाजे अपना अंचल फैला-फैलाकर परमेश्वर से यों वरदान माँगने लगे कि जिस तरह श्यामसुन्दर ने महादेव का धनुष तोड़कर हाथी को मारा है उसी तरह ये पहलवान भी इनके हाथ से मारे जावें। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जिस समय मोहनप्यारे उस अखाड़े में जाकर खड़े हुए उस समय चाणूर और मुष्टिक आदि पहलवानों ने अनेक रंग की जाँघिया पहिने हुए चारों ओर से आकर उन्हें घेर लिया। चाणूर पहलवान ने निकट जाकर वैकुण्ठनाथ से कहा कि आज मेरे राजा का चित्त उदास है। मन बहलाने के वास्ते मुझे तुम्हारे साथ कुश्ती लड़ाकर देखा चाहते हैं, इसी वास्ते तुम्हें यहाँ बुलाया है। नौकरों को अपने मालिक की आज्ञा माननी चाहिए। सो आओ हम और तुम कुश्ती लड़कर राजा को प्रसन्न करें।

दो०रीति धर्मअरुनीति की सब जानतमनमाहिं। स्वामिकाजतेजगत में औ कछु उत्तमनाहिं।।

हमने सुना है कि तुम कुश्ती लड़ना अच्छा जानते हो, वन में ग्वालबालों के साथ लड़ा करते थे। सो आज मैं तुम्हारे बल की परीक्षा लेना चाहता हूँ। किसी बात का डर अपने मन में मत रक्खो। यह सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा कि हे चाणूर! हम ऐसे प्रतापी राजों को क्या प्रसन्न करेंगे, पर तू अपने स्वामी की आज्ञा पालन करना चाहता है तो मैं तेरे साथ लड़ूँगा।

चौ० यद्यपि तू बल को अधिकारा। मैं अहीर बालक सुकुमारा ॥
तद्यपि एक बार मैं लरिहौं। युद्ध विषे तोसों नहिं टरिहौं ॥

तुम्हारे राजा ने बड़ी दया करके मुझे बुलाया है, पर न्याय सब किसी को करना चाहिए। तुम्हारा राजा अधर्मी और बेदर्द है, तुम उससे अधिक निर्दयी मालूम होते हो, क्योंकि मुझ बालक से तुमको कुश्ती लड़ना, जो तरुण व बलवान् हो, शोभा नहीं देता। वैर, प्रीति, विवाह और कुश्ती बराबरवाले से करना चाहिए, पर राजा कंस से हमारा कुछ वश नहीं चलता, इसलिए तुमसे लड़ेंगे। पर हमको बचाकर कुश्ती लड़ना, जोर से पटककर मेरे हाथ-पैर मत तोड़ डालना, जिसमें हमारा व तुम्हारा धर्म बना रहे और राजा कंस भी प्रसन्न हो। यह बात सुनकर चाणूर बोला कि देखने में तुम बालक दिखाई देते हो, परन्तु तुम्हारी कीर्ति व काम सुनकर और कुबलयापीड़ हाथी का मारना देखकर तुम कोई अवतार मालूम होते हो, इसलिए मुझे तुम्हारे साथ कुश्ती लड़ना उचित नहीं है, पर क्या करूँ, अपने स्वामी की आज्ञा न मानूँ तो मेरा धर्म जाता है।

चौ० फिर चाणूर कह्यो हरषाई। तुम्हरी गति जानी नहिं जाई ॥
तुम बालक मानुष नहिं दोऊ। कीन्हें कपट रूप सुर कोऊ ॥
खेलत धनुष खण्ड द्वै करे। मार्यो तुरत कुबलया तरे ॥
तुमसे लड़े हानि नहिं होय। ये बातैं जानै सब कोय ॥

चवालीसवाँ अध्याय।

श्याम व बलराम का चाणूर आदि पहलवानों और राजा कंस को मारना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब ऐसी बातें कहकर मोहनप्यारे चाणूर से और बलभद्रजी मुष्टिक पहलवान से कुश्ती लड़ने लगे तब मथुरावासियों ने बालक व जवान की कुश्ती देखकर आपस में कहा कि राजा कंस को इस कुश्ती लड़ाने से मना करें तो वह अधर्मी हमें मार डालेगा और इस जगह बैठे रहने में हमारा धर्म नहीं रहता, इसलिए यहाँ से उठ जाना उचित है।

दो० जो अनीति देखै नहीं ताको पाप न होय। जो जैसी करणी करै वह फल पावत सोय॥

हे राजन्! जो मनुष्य श्यामसुन्दर को बालक जानते थे वह ऐसा विचारकर वहाँ से बाहर चले गये और जाते समय कंस को शाप देकर कहने लगे कि यह अपने अधर्म का दण्ड अवश्य पावेगा। मुरली-मनोहर ने लड़ते समय अपनी महिमा से अपना शरीर हीरे के समान ऐसा कड़ा बना लिया जिसे कोई अस्त्र भी काट न सके। जब श्याम-सुन्दर ने हाथ से हाथ शिर से शिर छाती से छाती ठोढ़ी से ठोढ़ी पैर से पैर चाणूर से मिलाया तब चाणूर ने अनेक दाँव पेंच लगाकर श्याम-सुन्दर को पकड़ना चाहा, पर वे उसके हाथ नहीं आये। तब चाणूर ने उदास होकर कहा कि हमने बहुत पहलवानों को एक दाँव पेंच से मार डाला था, न मालूम इस बालक के कितना बल है, जिस पर मेरा कुछ वश नहीं चलता, और यह लड़का एक अँगुली भी मुझे मारता है तो मैं घबरा जाता हूँ। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जिस परब्रह्म परमेश्वर को महादेव व ब्रह्मा नहीं पकड़ सकते, जिन्होंने अपने दो पग में चौदहों लोक नाप लिये थे उनको चाणूर पहलवान किस तरह पकड़ सकता है। चाणूर व मुष्टिक श्याम व बलराम की महिमा नहीं जानते थे, पर उन्होंने पिछले जन्म बड़ा तप किया था जिसके प्रताप से उनका शरीर वैकुण्ठनाथ के अंग में स्पर्श होता था। यह बात ब्रह्मा-दिक देवतों को भी जल्दी नहीं प्राप्त होती। जब चाणूर अपने छल-बल से केशवमूर्ति पर झपटता था तब वह पीछे कूदकर बचाते थे।

दो० मोहन मुखपर शरमजल सोहैं अति सुखदाय। ज्यों फूलनके पातपर रहै ओस लपटाय॥

जब चाणूर ने पीछे हटकर एक मुक्का श्यामसुन्दर की छाती पर बड़े जोर से मारा और उनके अंग पर फूलसी भी चोट नहीं लगी तब नन्दलालजी ने उसके दोनों हाथ पकड़कर अपने शिर के चारों ओर घुमाया और ऐसा पृथ्वी पर पटका कि उसका शरीर अखाड़े की मिट्टी में धँस गया और प्राण निकल गये। जिस तरह बालक चिउँटी को पकड़कर मार डाले उसी तरह बलरामजी ने भी मुष्टिक पहलवान को कुश्ती लड़कर मार डाला। दोनों पहलवानों का चैतन्यात्मा वैकुण्ठ में पहुँचा। जब उसके मारने के उपरांत शल, तोशल और कूट पहलवान खड्ग लेकर श्यामसुन्दर से लड़ने के लिए आये तब केशवमूर्ति ने बायें पैर से लात मारकर शल व तोशल को और बलरामजी ने बायें हाथ के मुक्का से कूट पहलवान को मार डाला। इन पाँचों के मरते ही बाकी पहलवान जो उनके साथी व चेले वहाँ थे, अपने प्राण लेकर भाग गये। यह दशा देखते ही मथुरावासी व हरिभक्त लोग प्रसन्न होकर आपस में कहने लगे कि बड़ा भाग्य उस पृथ्वी का समझना चाहिए जहाँ इन लड़कों के चरण पड़ते हैं। गोप व ग्वालबालों की बराबरी कोई नहीं कर सकता, जो इनके साथ दिन-रात रहकर अपना जन्म सफल करते हैं। गोपियाँ धन्य हैं जो आठों पहर मोहनीमूर्ति का ध्यान अपने हृदय में रखकर इनके साथ प्रीति करती हैं। जो जीव व्रजगोकुल में जन्म लेकर श्यामसुन्दर का दर्शन करता है उसको देवतों से उत्तम समझना चाहिए

दो०व्रजवासिन के भाग्यकी महिमा कही न जाय। जिनके चितमेंनितबसें माखनप्रभुयदुराय॥

राजा कंस ने पापी होने पर भी हमारे साथ बड़ी भलाई की जिसके बुलाने से हम लोगों ने वैकुण्ठनाथ का दर्शन पाया, नहीं तो इनका दर्शन मिलना देवतों को कठिन है। हे राजन्! उस समय मथुरावासियों ने इसी तरह श्याम व बलराम की बहुत स्तुति की। देवतों ने आकाश से उन पर फूल बरसाये। मथुरापुरी में यह समाचार सुनकर सब छोटे-बड़े आनन्द हो गये। राजा कंस के सिवा और जितने लोग रंगभूमि में थे, सब प्रसन्न होकर रामकृष्ण की जयजयकार करने लगे। राजा

कंस चाणूर आदि पहलवानों के मारे जाने से बहुत उदास होकर मथुरा-वासियों से कहने लगा कि तुम लोग श्रीकृष्णजी की विजय होने से प्रसन्न होकर बाजा बजाते हो ? जब उसकी बात का किसी ने उत्तर नहीं दिया तब उसने क्रोध से चिल्लाकर अपने साथी दैत्यों और बीरों से कहा कि तुम लोग इन लड़कों को बाहर ले जाकर खड्ग से मार डालो और गोपग्वालों को बाँध लो। वसुदेव देवकी को उग्रसेन समेत मार डालो। रंगभूमि का फाटक भीतर से बन्द कर दो। यह वचन सुनते ही जब उन्होंने नंगी तलवार लेकर श्याम व बलराम को जा घेर लिया तब दोनों भाइयों ने एक क्षण में बहुत से दैत्यों को मार डाला। बाकी दैत्य मुरलीमनोहर के भय से अपने प्राण लेकर भाग गये। जब वसुदेव व देवकी ने श्याम व बलराम के आने का हाल सुना तब वे व्याकुल होकर परमेश्वर से उनकी कुशल मनाने लगे।

दो० बार-बार करुणा करैं धरैं धरणि पर शीश। मम पुत्रन के ह्वजियो रक्षपाल जगदीश ॥

जब मोहनप्यारे अन्तर्यामी ने माता-पिता को दुःखी जानकर कंस का यह वचन सुना तब यह प्रण किया कि आज कंस को मारकर वसु-देव व देवकी को छुड़ाना चाहिए। ऐसा विचारकर श्यामसुन्दर ने अपना छोटा रूप बना लिया और इस तरह कूदकर कंस के मचान पर चढ़ गये जिस तरह बाज कबूतर पर झपटता है। उन्हें देखते ही पहिले कंस ने विचारा कि भाग जाऊँ। फिर मन में धैर्य धरकर जब उन पर खड्ग चलाने लगा तब नन्दलालजी उसका वार बचाकर उसे खेल खेलाने लगे। उस समय देवतों ने विमानों पर आकर आकाश में विनय किया—हे परब्रह्म परमेश्वर ! कंस महापापी को तुरन्त मार डालो, इसके मारने में बिलम्ब न करो। यह बात सुनते ही श्यामसुन्दर ने ऐसा प्रकाश अपने शरीर में प्रकट किया जिसकी चमक न सहकर कंस ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। मोहनप्यारे ने पैर के ठोकर से उसका मुकुट गिरा दिया और शिर के बाल पकड़कर मचान से पृथ्वी पर पटककर तीनों लोकों का बोझा अपने शरीर में लिए हुए उसके ऊपर कूद पड़े।

दो० जब धरणी में आयकै परचो उतानो भूप। उर ऊपर दर्शन दियो श्याम चतुर्भुज रूप ॥

हे राजन्! वैकुण्ठनाथ के कूदते ही कंस के प्राण निकल गये। आठों प्रहर सोते-जागते, बैठते-उठते खाते-पीते, चलते-फिरते श्यामसुन्दर का रूप उसकी आँखों में बसा रहता था, इसलिए मुक्तिपदवी पर पहुँचा।

दो० माखनप्रभु के रूप की महिमा अगम अपार। जाके सुमिरन ध्यान ते तरत सकल संसार॥

देखो, कैसा बड़ा भाग्य उन मनुष्यों का है जो लोग नित्य परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करते हैं। जब कंस को मरा देखकर उसके आठ भाई अपना-अपना हथियार लिये हुए गोपीनाथ को मारने के लिए दौड़े और बलरामजी ने हल-मूशल ले उन सबको मार डाला तब सब लोगों ने बड़े शब्द से श्याम व बलराम का जयजयकार किया। यह समाचार सुनकर सब छोटे-बड़े मथुरावासी प्रसन्न हो गये। देवतों ने दुन्दुभी बजाकर नन्दनबाग के पुष्प दोनों भाइयों पर बरसाये। नन्द व उपनन्द आदि यह सब चरित्र स्वप्नवत् समझकर अपने डेरे पर चले आये। केशवमूर्ति मारे क्रोध के अपने हाथ से कंस के शिर के बाल पकड़कर इस तरह उसकी लोथ सड़क पर घसीटते हुए यमुना के किनारे ले गये जिस तरह हाथी को मारकर सिंह घसीट ले जाता है। कंस ने वसुदेव व देवकी को कैद करके बहुत दुःख दिया था, इसी वास्ते मोहनप्यारे ने उसकी लोथ घसीटा। यमुना के किनारे लोथ पहुँचाकर थोड़ी देर मुरलीमनोहर उस जगह बैठे थे, इसलिए वहाँ का नाम विश्रामघाट प्रसिद्ध हुआ। जब यह समाचार रनिवास में पहुँचा तब कंस की रानियाँ रोती-पीटती हुई यमुना के किनारे पहुँचीं।

दो० सब धाईं सुधि पायकै आईं जहाँ नरेश। तोड़े हार श्रृंगार सब छोड़े शिर के केश॥

हे राजन्! उन स्त्रियों ने अपने पति का मुख देखकर उनका शिर गोद में रख लिया और अति विलाप से रोकर यों कहने लगीं—हे कंस! तू ऐसा प्रतापी राजा होने पर भी इस दुर्दशा से मारा हुआ पृथ्वी पर पड़ा है। जो तू श्यामसुन्दर व बड़ों से बिना अपराध वैर न करता तो क्यों तेरी यह गति होती। हरिभक्त व महात्मों को दुःख देना अच्छा नहीं होता। ये सब हाथी-घोड़े व द्रव्य छोड़कर तू चला जाता है। हमारे रोने पर कुछ ध्यान नहीं करता। तेरे वियोग से हम लोगों की क्या गति

होगी। संसार में अपने बराबर तू किसी को नहीं समझता था, अब तेरा वह सब घमण्ड क्या हुआ जो इस तरह पृथ्वी पर बिना कफन के पड़ा है। तेरे जड़ाऊ सिंहासन पर कौन बैठकर मथुरावासियों का न्याय करेगा।

दो०यह मन्दिर सुन्दर महा जिनके सम नहिं और । तुम बिन ऐसो कौन है जो बैठे यहि ठौर ।।

जब इसी तरह अनेक बातें कहकर सब रानियाँ महाविलाप करने लगीं तब श्यामसुन्दर करुणानिधान उन पर दयालु होकर बोले—हे मामीजी! जो कुछ भाग्य में लिखा होता है वह किसी तरह नहीं मिटता। जैसे पाप कंस ने किये वे सब तुमने देखे हैं। परमेश्वर की ऐसी ही इच्छा जानकर धैर्य धरो। मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करूँगा। अब इन लोगों की क्रिया-कर्म करना उचित है।

चौ० मामी सुनो शोक नहिं कीजै। मामाजी को पानी दीजै ।।
सदा न कोऊ जीता रहै। झूठा वह जो अपना कहै ।।

श्यामसुन्दर के समझाने से सब स्त्रियों ने अपने-अपने पुरुषों की लोथ जलाकर क्रिया-कर्म किया। श्यामसुन्दर ने कंस का क्रिया-कर्म उग्रसेन के हाथ से कराया।

दो०कंस हतन लीला सुनै मन चित दे जो कोय । माखन प्रभु के नेह में ताको भय नहिं होय ।।

—:०:—

पैंतालीसवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब कंस आदि की लोथ जलाकर सब अपने-अपने घर गये तब श्यामसुन्दर व बलरामजी अक्रूर को साथ लेकर कैदखाने में वसुदेव-देवकी के पास आये। माता-पिता की बेड़ी व हथकड़ी कटवाकर दोनों भाइयों ने उनके चरणों पर शिर रख दिया। देवकी रोकर बोली—ऐ प्राणप्यारे! तुम बारह वर्ष तक कहाँ रहे, मैंने आज तक तुमको गोद में नहीं खिलाया।

दो०सुनिजननी के वचनप्रभु कृपासिंधुयदुराय। भये प्रेमवश दुखित लखि बोले अतिसकुचाय।।

हे माता-पिता! मैं कैसा अभागी तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ, जो मेरे कारण तुम लोगों ने इतना दुःख उठाया। इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं

है, क्योंकि जब से आप हमको गोकुल में नन्दजी के घर पहुँचा आये तब से मैं परवश था, इसलिए तुम्हारे पास नहीं आ सका। मुझे सदा यह इच्छा बनी रहती थी कि जिसके पेट में दश महीने रहकर जन्म लिया उसने हमारा बालचरित्र नहीं देखा और हमने लड़कपन में माता-पिता का कुछ सुख नहीं पाया। दूसरे के घर रहकर वृथा इतने दिन गँवाये। जिन्होंने हमारे वास्ते इतना दुःख उठाया उनकी कुछ सेवा हमसे नहीं बन पड़ी। हमें तुम्हारी सेवा करना और बाललीला का सुख दिखलाना उचित था सो यह सब सुख नन्द व यशोदा को प्राप्त हुआ।

दो० सबै जीव सन्तान से सुख पावत दिन रैन। तुम्हें हमारे जन्म से बहुतै भये कुचैन ॥

हे माता! जिस पुत्र से उनके मा-बाप दुःख पाते हैं वह बेटा अवश्य नरक भोगता है। संसार में उन्हीं को सामर्थी पुरुष समझना चाहिए जो अपने माता-पिता की सेवा मनसा वाचा कर्मणा करते हैं। मनुष्यतनु में जो कोई अपने मा-बाप, गुरु और बड़े-बूढ़ों की सेवा तथा स्त्री व बालकों का पालन नहीं करता उसके लोक व परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं।

दो० तात-मात सों प्राणधन कपट करै जो कोय। ताको तीनों लोक में कभी भलो नहिं होय ॥

हे पिता! मैं ब्रह्मा की आयु पाकर जन्म भर तुम्हारी सेवा करूँ तो भी आपसे उऋण नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हारा ऋणियाँ होकर यह विनय करता हूँ कि मेरा अपराध क्षमा कीजिए और सब दुःख व सुख अपने कर्मानुसार समझिए। हे माता! अब तुम सोच छोड़कर आनन्द मनावो। मैं तुम्हारी आज्ञानुसार स्वर्ग व पाताल जाने से नहीं डरूँगा और अष्टसिद्धि नवनिधि तुम्हारी दासी बनी रहेंगी।

दो० यद्यपि हम अवगुण भरे प्रकटे महाअसाध। तद्यपि सुत हित जानिकै क्षमा करो अपराध ॥

जब यह बात सुनकर वसुदेव व देवकी को ज्ञान प्राप्त हुआ तब उन्होंने समझा कि यह हमारे पुत्र नहीं, त्रिभुवनपति हैं। इन्होंने अपनी इच्छा से पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लेकर जो-जो काम किया है वह मनुष्य नहीं कर सकता। ऐसा समझकर वह दोनों मोहन-प्यारे की स्तुति करने लगे। श्रीकृष्णजी और बहुतसी लीलाएँ संसार में करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने उनका वह ब्रह्मज्ञान हर लिया। तब

वसुदेव व देवकी उन्हें अपना बेटा जानकर गोद में बैठाकर प्यार करने लगे। उनका माथा व मुख चूमकर प्रसन्न होकर पिछला दुःख भूल गये और श्याम व बलराम को साथ लेकर बड़े हर्ष से अपने घर पर आये।

चौ० परम हुलास नयन उर पेखैं। अपनो जन्म सुफल करि लेखैं॥
अति आनन्द भयो मन माहीं। सो लिखि सकत शारदा नाहीं॥

हे राजन्! वसुदेवजी ने घर पहुँचकर उसी समय दश हजार गौ विधिपूर्वक, जो श्यामसुन्दर के जन्म के समय मन में संकल्प किया था, ब्राह्मणों को दान दिया और दोनों भाइयों को ग्वालबालों समेत छत्तीस प्रकार के व्यंजन भोजन कराके उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाया। तब मुरलीमनोहर ने बलरामजी से कहा कि राजा के बिना प्रजा को दुःख होगा और वसुदेव को राजगद्दी पर बैठाने से लोग यह कहेंगे कि राज्य लेने के लालच से कंस को मार डाला, इसलिए उग्रसेन को, जिनका राज्य कंस ने छीन लिया था, राज्य देना चाहिए। ऐसा विचारकर श्यामसुन्दर और बलराम वसुदेवजी समेत उग्रसेन के पास गये। उन्हें दण्डवत् करके बहुत धैर्य देकर बोले—हे नानाजी! आप राजसिंहासन पर बैठकर प्रजा का पालन कीजिए। और हमें अपना दास जानकर मन में किसी बात का सन्देह न लाइए। पृथ्वी भर के राजा अपने-अपने देश का रुपया देकर तुम्हारे अधीन रहेंगे।

चौ० जो जन तुम्हरी आन न मानैं। क्षण में तिन्हैं बाँधि हम आनैं॥
निर्भय राज्य करो जग माहीं। अब तुमको संशय कछु नाहीं॥

यह वचन सुनते ही उग्रसेन हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोले—महाराज! आपने बहुत अच्छा किया जो राजा कंस और उसके भाइयों को मारकर यदुवंशियों का दुःख छुड़ाया। जिस तरह तुमने दैत्यों, राक्षसों और अधर्मियों को मारकर हरिभक्तों को सुख दिया उसी तरह राजसिंहासन पर बैठकर प्रजा का पालन कीजिए। यह बात सुनकर मोहनप्यारे बोले कि आपने सुना होगा कि राजा ययाति के शाप से यदु आदि उनके बेटों ने राजगद्दी नहीं पाई थी। हम उसी कुल में उत्पन्न हुए हैं, इसलिए मुझे राजसिंहासन पर बैठना न चाहिए।

सो०करो बैठि तुम राज दूरि करौ संदेह सब। हम करिहैं सब काज जो आयसु दीजै हमैं ॥

हे नानाजी! आप सिंहासन पर बैठकर गौ-ब्राह्मण व हरिभक्तों को सुख दीजिए और जो यदुवंशी कंस के डर से अपनी जन्मभूमि मथुरापुरी को छोड़कर दूसरे देश में जा बसे हैं उनको बुलाकर यहाँ बसाइए। प्रजा से अधिक कर लेने का लोभ न रखकर किसी को बिना अपराध दण्ड न दीजिए। जब उग्रसेन ने श्यामसुन्दर का कहना मान लिया तब श्रीकृष्णजी भक्तहितकारी ने उग्रसेन को राजसिंहासन पर बैठाकर विधिपूर्वक राजगद्दी का तिलक लगा दिया और श्याम व बलराम ने अपने हाथ से उनका चँवर हिलाया। सब छोटे व बड़ों ने मंगलाचार मनाया। मथुरावासी आनंदित होकर श्यामसुन्दर की स्तुति करने लगे। देवतों ने आकाश से उन पर फूल बरसाये। राजा उग्रसेन की आज्ञा से सब यदुवंशी मथुरा में फिर आ बसे। जब मोहनप्यारे ने उन्हें बहुत दुःखी व कंगाल देखा तब द्रव्य, वस्त्र, भूषण, गाँव व स्थान आदि जिसको जिस वस्तु की चाह थी उसे वह पदार्थ देकर ऐसा प्रसन्न कर दिया कि उनको फिर कुछ इच्छा नहीं रही। वसुदेव व देवकी परम आनन्दित हुए। जो यदुवंशी बूढ़े व निर्बल थे वे लोग श्यामसुन्दर की अमृतरूपी दृष्टि पड़ने से तरुण व बलवान् हो गये।

दो०उग्रसेन के राज्य में सुख को सदा समाज। सभी काम कीन्हें जहाँ माखनप्रभु व्रजराज ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेव स्वामी बोले—हे परीक्षित! श्यामसुन्दर ने इसी तरह सबको सुख देकर बलरामजी से कहा कि यशोदा ने हम दोनों भाइयों को बड़ी प्रीति से पालन करके इतना बड़ा किया, सो वह हमारे लिए बहुत सोच करती होंगी। नन्दराय व्रजवासियों समेत मेरे चलने की आशा से बाग में टिके हैं, चलकर उनको बिदा करना चाहिए।

चौ० बहुत हेत हमसों उन कीन्हों। विबिध भाँति हमको सुख दीन्हों।
सकुचत हौं अपने मनमाहीं। उनसे उऋण कबहुँ हम नाहीं ॥
पलटो नहीं उन्हें जो दीजै। अब चलि बिदा उन्हैं व्रज कीजै ॥

ऐसा कहकर मोहनप्यारे ने बहुत सा द्रव्य, रत्न, भूषण व वस्त्र अपने साथ लिया और राजा उग्रसेन व वसुदेवजी को संग लेकर जहाँ नंदादिक टिके थे वहाँ को चले। नन्दजी अपने डेरे पर बैठे हुए यह विचार कर रहे थे

कि कई दिन वृन्दावन से आये हो चुके, श्याम व बलराम आवें तो चलें।

सो०अबकैसे व्रजजाहिं बलमोहन दोऊ बिना। अति व्याकुल उरमाहिं कबलौंनयनन देखिये॥

उसी समय मोहनप्यारे ने वहाँ पहुँचकर नन्दजी के चरणों पर शिर धर दिया। नन्द ने उनका शिर उठाकर छाती से लगा लिया और वसुदेव व राजा उग्रसेन प्रेमपूर्वक नन्दराय के गले मिलकर सब लोग वहाँ बैठे। नन्दराय मन में समझे कि अब श्यामसुन्दर हमारे साथ वृन्दावन को चलेंगे। केशवमूर्ति ने सब वस्तुएँ नन्दराय के सामने रखकर विनय किया कि हे बाबा! मैं आपसे किसी तरह उऋण नहीं हो सकता, आपने मेरा बड़ा प्रतिपालन किया।

दो०चौंकिउठेनँदरायसुनि तूक्याकहतगुपाल। मोसोंकहत कि आनसों किनकीन्होंप्रतिपाल॥

यह वचन सुनते ही केशवमूर्ति ने कहा कि बाबा, हमको कहते हुए संकोच मालूम देता है। आपने गर्ग पुरोहित का कहना सच न मानकर मुझे अपने बेटे के समान पालन करके बड़ा सुख दिया। मैं कहीं रहूँ, पर तुम्हारा कहलाऊँगा। हमारे पिता ने मेरी माता रोहिणी को बड़ी विपत्ति में तुम्हारे घर पहुँचा दिया था सो तुमने सम्मानपूर्वक उसको अपने यहाँ रक्खा। मैंने व्रजवासियों का गोरस आदि खाकर अनेक उपद्रव किया, सो सब आपने दया करके क्षमा कर दिया। मेरे शत्रु राजा कंस से तुम लोगों ने न डरकर मेरा पालन किया। यशोदा ने मुझे पुत्र जानकर पाला, सो अब तुम्हें व यशोदा को अपने माता-पिता से अधिक जानकर तुमसे उऋण नहीं हो सकते। पर एक बात कहता हूँ कि तुम कुछ खेद मत मानना। अब हम थोड़े दिन मथुरा में यदुवंशी आदि जाति-भाइयों के साथ रहकर अपने माता-पिता को सुख देंगे। आज तक उन्होंने हमारे लिए बड़ा दुःख पाया है। जो वह हमको तुम्हारे यहाँ न पहुँचाते तो क्यों इतना दुःख उठाते। तुम घर जाकर यशोदा माता और सब वृन्दावनवासियों को धैर्य दो। यशोमति मैया से कह देना कि जिस तरह मेरे लिए माखन रख छोड़ा करती थीं उसी तरह अब भी घर रक्खा करें। प्रकट में हम तुमसे बिलग होते हैं, पर अन्तःकरण से सदा तुम्हारे पास रहेंगे। मेरे ऊपर दया रखकर कभी मुझे मत भूलना।

चौ० मैया से पालागन कहियो। हमसे प्रेम करे तुम रहियो ॥
होंगी दुखित यशोमति मैया। मोहिं बिनु व्रज तिरिया सब गैया ॥
ताते बेगि गमन व्रज कीजै। जाय सबन को धीरज दीजै ॥
मोरी सुरति न उरते टारो। मैं तुमसे कबहूँ नहिं न्यारो ॥
दो० निठुरवचनसुनिश्यामके भयेविकलअतिनन्द। उमँगिनीर नयननचलेपड़गये दुखके फन्द ॥

यह बात श्यामसुन्दर के मुख से निकलते ही नन्दराय इतना विलाप करके रोये कि उनको हिचकी लग गई और अचेत होकर गिर पड़े। ग्वालबाल उदास होकर आपस में कहने लगे कि नन्दकिशोर हम लोगों से कपट करके यहाँ रह जाना चाहते हैं। नहीं तो ऐसा कठोर वचन न कहते। ऐसा विचारकर श्रीदामा ग्वाल ने कहा—हे मोहनप्यारे! अब मथुरा में तुम्हारा क्या काम है, जो ऐसे निर्दयी होकर रोते हुए अपने बूढ़े बाप को बिदा करके यहाँ रहना चाहते हो। राजा कंस को तुमने मारा तो अच्छा किया, अब वृन्दावन में चलकर वहाँ का राज्य करो। मथुरा की राजधानी देखकर लोभ करना न चाहिए। हाथी, घोड़ा, द्रव्य व राज्य देखकर मूर्ख लोग लोभ करते हैं। तुमको वृन्दावन के समान सुख कहीं नहीं मिलेगा। हे भाई! तुम वृन्दावन छोड़कर दूसरी जगह मत रहो। कदाचित् निर्दयी होकर यहाँ रह जावोगे तो राधा आदि सोलह हजार गोपियाँ जो दिन-रात तुम्हारा चन्द्रमुख देखकर अपनी आँखें ठण्ढी करती थीं और पाँच हजार ग्वालबाल जो तुम्हारे साथ गौ चराते समय मुरली की ध्वनि सुनकर अपना जन्म सफल जानते थे वे सब तुम्हारे बिना कैसे जीवेंगे। हे नन्दकिशोर! तुम मेरा कहना न मानकर हम लोगों की प्रीति छोड़ दोगे तो यहाँ रहने में तुमको क्या यश मिलेगा। जिस उग्रसेन को तुमने राज्य दिया है, रात-दिन उसकी सेवा करनी पड़ेगी। यह अपमान तुमसे किस तरह सहा जायगा, इसलिए वृन्दावन को चलो।

चौ० व्रज वन नदी विहार विचारो। गायन को मन ते न बिसारो ॥
नहिं छोड़ें तुमको व्रजनाथा। चलिहैं सभी तुम्हारे साथा ॥

इसी तरह ग्वालबालों ने श्यामसुन्दर से अनेक बातें कहीं, पर उन्होंने नहीं माना। तब कुछ ग्वालबाल श्याम व बलराम के साथ मथुरा में रहने के लिए तैयार होकर नन्दराय से बोले कि आप निश्चिन्त होकर घर

को चलिए। हम लोग पीछे से इनको साथ लेकर वृन्दावन में पहुँचते हैं। यह वचन सुनते ही नन्दजी विरहसागर में डूबकर चित्र के समान चुपचाप खड़े होकर मोहनप्यारे का मुख देखने लगे और मारे सोच के ऐसा घबरा गये, जिस तरह साँप काटने से मनुष्य व्याकुल हो जाता है।

दो० विरहव्यथाकष्टितमहा जान तहौसबकोय। जासोंबिछुरत प्राणपति ताकी गति कह होय।।

यह उनकी दशा देखकर बलरामजी ने नन्दराय से कहा कि आप इतना सोच क्यों करते हैं थोड़े दिन में हम लोग यहाँ का काम करके तुमसे आ मिलेंगे।

चौ० हरि प्रकटे भूभार उतारण। कह्यो गर्ग तुमसों सब कारण।।
मातु पिता हमरो नहिं कोऊ। तुम्हरे पुत्र कहावैं दोऊ।।

हे बाबा! वृन्दावन का ऐसा सुख दूसरी जगह मिलना कठिन है, इसलिए तुम्हारा घर छोड़कर कहीं न जाऊँगा। हमारी माता अकेली वहाँ व्याकुल होती होगी, इसलिए आपको यहाँ से विदा करते हैं जिसमें तुम्हारे जाने से उनको धैर्य हो। यह वचन सुनते ही नन्दजी महा व्याकुल होकर श्यामसुन्दर के चरणों पर गिर पड़े और रोकर बोले—हे बेटा, एक बार तुम दोनों भाई मेरे साथ चलकर अपनी माता आदि को धैर्य देकर फिर चले आना, मैं तुम्हारा चरण छोड़कर वृन्दावन नहीं जा सकता। तुम्हारी माता माखन-रोटी तैयार करके बैठी हुई राह देखती होगी। मैं उससे क्या कहूँगा, तुम जल्दी घर को चलो।

चौ० क्यों जीवें बिनु दर्शन पाये। भये निठुर मथुरा क्यों आये।।

हे बेटा! हमने बारह वर्ष तक पालनकर तुमको सयाना किया, पर तुम्हारे प्रताप व महिमा को नहीं जाना। अब वसुदेवजी के बेटा होकर तुमने गर्गजी का वचन सच्चा किया। जब-जब हम पर दुःख पड़ता था तब-तब तुम हमारी रक्षा करते थे। तुमको अपने वियोग में हम लोगों को मारना था तो उसी दिन गोवर्धन हमारे ऊपर क्यों नहीं गिरा दिया। उसके तले हम सब लोग दबकर मर जाते तो आज यह दशा क्यों देखनी पड़ती।

दो० देखिप्रीतिअति नन्दकीमनवसुदेव सिहात। सकुचिरहेसब प्रेमवशकहिनसकतकछुबात।।

जब इसी तरह नन्दादिक रोने व विलाप करने लगे तो मोहनप्यारे

ने उनकी दशा देखकर विचारा कि ये लोग हमारे वियोग में जीते न बचेंगे। तब उन्होंने अपनी माया उन पर फैला दी और हँसकर कहा—हे बाबा! तुम क्यों उदास होते हो, मैं तुमसे कहीं दूर न जाकर तीन कोस पर यहाँ रहूँगा। मेरी माता यशोदा और सब स्त्री-पुरुष वृन्दावनवासी हमारे वास्ते सोच करते होंगे, इसलिए उनको धैर्य देने के लिए तुमको बिदा करता हूँ। जब परमेश्वर की माया व्यापने से नन्दराय को कुछ धैर्य हुआ तब वह हाथ जोड़कर बोले—हे जगन्नाथ! तुम मथुरा में रहना चाहते हो तो मेरा क्या वश है, हम तुम्हारी आज्ञा से वृन्दावन को जाते हैं, पर व्रजवासियों को मत भूलना।

दो० मेटि दियो सन्ताप सब कियो सुकृत की खान। भरसाखा चौदहभुवनसुरमुनि वेदपुरान॥

यह वचन सुनते ही वसुदेवजी नन्दराय को बहुत द्रव्य व रत्नादिक देकर विनयपूर्वक बोले—हे नन्दजी! जो उपकार तुमने मुझ पर किया है उससे मैं उऋण नहीं हो सकता। इन दोनों बालकों को अपना जानकर यहाँ वहाँ रहने में कुछ भेद मत समझना। हे राजन्! यह बात सुनकर नन्दराय ने श्यामसुन्दर को दण्डवत की, पाँच सात ग्वालबालों को वहाँ छोड़ दिया और सबको साथ लेकर रोते-पीटते वृन्दावन को चले। सब लोग मथुरा की ओर पीछे फिरकर देखते जाते थे।

चौ० चले सकल मग सोचत भारी। हारे सरवस मनहुँ जुवारी॥
काहू सुधि काहू सुधि नाहीं। लटपट चरण परत मगमाहीं॥

जब श्यामसुन्दर नन्दजी आदि को बिदा करके राजा उग्रसेन और वसुदेव समेत राजमंदिर पर पहुँचे तब यदुवंशी लोग व्रजवासियों की प्रीति देखकर आपस में उनकी बड़ाई करने लगे। रास्ते में नन्दजी मोहनप्यारे की महिमा याद करके व्रजवासियों से कहते जाते थे कि हमने बड़ा अपराध किया जो परब्रह्म परमेश्वर से अपनी गौवें चरवाईं। थोड़ा सा दही व मक्खन गिराने व खिलाने के कारण यशोदा ने उनको ऊखल से बाँध दिया तिस पर भी उन्होंने अपनी बड़ाई नहीं छोड़ी। गोवर्धन पहाड़ उठाकर व्रजवासियों की रक्षा की। मेरे लेने के वास्ते वरुणलोक में दौड़े गये। हम लोगों ने अपने अज्ञान से उन्हें नहीं पहि-

चाना। जब नन्दराय ऐसी ऐसी बातें अपने साथियों से कहते और पछि-ताते हुए वृन्दावन के निकट पहुँचे तब मोहनप्यारे के विरह में अचेत होकर गिर पड़े। यशोदा जो आठों पहर मथुरा की राह निहारा करती थीं। जब उन्होंने देखा कि गोप व ग्वाल वृन्दावन की ओर चले आते हैं तब वे बड़े हर्ष से इस तरह दौड़कर श्याम व बलराम को देखने चलीं जिस तरह बछड़े को देखकर गौ दौड़ती है।

दो० धाई अति हर्षित भई सुनत रोहिणी माय। दर्श आश धाईं सबै व्रज तिरिया हुलसाय ॥

जब उन्होंने नन्दराय के पास पहुँचकर श्याम व बलराम को नहीं देखा तब यशोदा ने घबराकर नन्दजी से पूछा—हे कन्त! तुम मेरे राम व कृष्ण को कहाँ खोकर उनके बदले यह गहना व कपड़ा ले आये। जिस तरह अन्धा मनुष्य पारस पत्थर नहीं पहिचानता और उसे फेंक-कर पीछे रोने व पछिताने के सिवा कुछ हाथ नहीं आता उसी तरह तुम मेरे अनमोल लाल को अपने हाथ से खोकर यह सब काँच उठा लाये हो। उनके विना यह सब द्रव्य व रत्न लेकर क्या करोगे। हे मूर्ख! जिनके क्षणभर अलग होने से छाती फटती थी अब उनके बिना हमारा दिन कैसे कटेगा, मेरे बर्जने पर भी तुम उन्हें बरजोरी लिवा ले गये। अब उनके बिना हम लोग अन्धे होकर किस तरह जीवेंगे। यह वचन यशोदा का सुनते ही नन्दजी आँखें नीचे किये हुए रोकर बोले—हे प्रिया! सत्य है, यह सब भूषण व वस्त्रादिक श्रीकृष्ण ने मुझे दिये, पर यह सुधि नहीं है कि किसने लिये। श्यामसुन्दर की बातें तुझसे क्या कहूँ, उनकी कठोरता सुनकर तुझे बड़ा दुःख होगा। जब वे कंस को मारकर मेरे पास आये तब अपने को वसुदेवजी का बेटा बतलाकर प्रीति-हरण बातें कहने लगे। उनका वचन सुनते ही जब मैं अचम्भा मानकर रोने लगा तब मुझे बहुत धैर्य देकर बिदा कर दिया। हे प्रिया! हमने तो तभी गर्ग मुनि के कहने से उनको नारायण जाना था, पर मायावश होकर उनको पुत्र समझते थे। अब पुत्रभाव छोड़कर परमेश्वर के समान उनका भजन करना चाहिए। जब यशोदा ने यह सब हाल नन्दराय से सुना तब वह और अधिक मायावश होकर रोने लगी। श्यामसुन्दर

को अपना बेटा जानकर नन्दराय से बोलीं—हे कन्त! तुमको धिक्कार है, जो उनके मुख से आधी बात सुनकर चले आये। श्याम-बलराम को मथुरा में छोड़कर यहाँ मुख दिखलाते हो। राम व कृष्ण के बिना जीकर क्या सुख पावोगे।

चौ० मारगसूझि परयो किहि भाँती। बिदा होत फाटी नहिं छाती।

दो० कैसे प्राण रहे हिये बिछुरत आनँदकन्द। सुनि नहीं दशरथ कथा कहूँ श्रवण मतिमन्द॥

सो० मैं मथुरा में जाय रहिहौं हरि की धाय बनि। लीजै ठोंक बजाय अब अपनो व्रज नन्द यह॥

हे मूर्ख! तुम मेरे दोनों प्राणप्यारों को कहाँ छोड़ आये। मैं अभागी अपने लाल के साथ न जाकर तुम लोगों के कहने से घर बैठ रही। मैं भी साथ जाती तो क्यों उनको छोड़ आती।

चौ० जीवनप्राण सकल व्रज प्यारो। छीन लियो वसुदेव हमारो॥
सुफलकसुत बैरी भो भारी। लैगो जीवनमूल हमारी॥
पूछत बिलखि यशोमति मैया। कहो नन्द क्या कह्यो कन्हैया॥
तुमको बिदा व्रजहि जब कीन्हों। फिरि कछु मोहिं सँदेशो दीन्हों॥
तुम कछु हरिसों विनय न भाखी। कहा श्याम मन में यह राखी॥

यह सुनकर नन्दजी बोले—

दो० मैं अपने सों बहु कियो वे प्रभु त्रिभुवननाथ। जो चाहैं सोई करैं कहा बसै मो हाथ॥

सो० कहिकैतोहिंप्रणाम बहुरि श्याम ऐसे कह्यो। करिकैकछु सुरकाम मिलिहौंतुमसेआयव्रज॥

बलरामजी ने ऐसा कहा है कि मेरी माता दुःखी होने न पावे, तुम जाकर उसको धैर्य देना। कुछ दिनों में हम भी आकर उससे मिलेंगे। यशोदा यह सन्देशा अपने लाल का सुनते ही सोच में डूब गई। नंद व यशोदा आदि सब व्रजवासी मुरलीमनोहर का बालचरित्र याद करके रोते-पीटते हुए अपने-अपने घर आये, पर बिना श्याम व बलराम उनको वृन्दावन उजाड़-सा मालूम देता था। नन्द व यशोदा कभी गोपीनाथ को अपना बेटा जानकर उनकी याद में रोते, कभी ईश्वर भाव समझकर उनके चरणों का ध्यान करते थे। केशवमूर्ति के विरह में सब पशु-पक्षी, ग्वाल और गौ आदि व्याकुल रहते थे, कुंजों के फल-फूल कुम्हिला गये। जब श्यामसुन्दर ने उन ग्वालबालों को जो मथुरा में रह गये थे, कुछ दिन उपरान्त भूषण व वस्त्रादिक देकर बिदा किया और उन लोगों ने

वृन्दावन में आकर नंदलालजी का सब चरित्र, जो उन्होंने कुब्जा आदि के साथ किया था, ब्रजवासियों से कहा तब गोपियों ने कुबड़ी का समाचार सुनते ही सवतियाडाह से बड़ा सोच किया और विश्वास माना कि अब नन्दलालजी वृन्दावन नहीं आवेंगे। यह बात समझते ही ब्रजबाला इकट्ठी होकर एक दूसरी से कहने लगीं–देखो, श्यामसुन्दर ने त्रिलोकीनाथ होकर ऊँच-नीच जाति का कुछ विचार नहीं किया और कुब्जा को सुन्दररूप देखकर अपनी रानी बना लिया। दूसरी बोली कि कुब्जा ने मोहनप्यारे को ऐसा वश में किया है कि उसकी आज्ञा बिना कोई काम नहीं करते। अब वह उनको क्यों यहाँ आने देगी। अक्रूर ने आकर हमारे चित्तचोर से कुबड़ी का सन्देशा कहा था, इसी वास्ते वे मथुरा जाकर बसे हैं। दूसरी ने एक गोपी से पूछा कि तूने कुब्जा को देखा है या नहीं। वह बोली कि मैं दही बेचने मथुरा गई थी तब उसको देखा था। वह मालिन की बेटी बहुत ठेढ़ी थी। उसको देखकर सब लोग हँसा करते थे। श्यामसुन्दर ने लाज व धर्म छोड़कर दासी को अपनी रानी बनाया। यह बात सुनकर हम लोगों को लज्जा आती है। दूसरी बोली कि हे सखी, तुमने यह बात नहीं सुनी–

चौ० कुब्जा सदा श्याम की प्यारी। वे भर्ता उनकी वह नारी॥
रूप रत्न कूबड़ में राख्यो। ज्यों मोती सीपन से भाख्यो॥
ब्रजवनिता छाँड़ी अब यातें। बूझी सकल श्याम की बातें॥

दूसरी ने कहा–हे प्यारी! वे दिन नन्दलालजी को भूल गये जब राजा कंस के डर से भागकर ब्रज में आये और ग्वालवेष बनाकर यहाँ छिपे थे और घर-घर माखन चुराकर खाया करते थे।

दो० देव मनावत दिन गये बड़े होन की आस। बड़े भये तब यह कियो बसे कूबरी पास॥
सो० यशुमति लाड़ लड़ाय बारे ते सेवा करी। ताहू को बिसराय भये देवकी पुत्र अब॥

दूसरी ने कहा कि जैसे कोयल का अण्डा कौवा सेवै तो बच्चा उत्पन्न होकर अपने जाति-भाइयों में मिल जाता है वैसे ही मोहनप्यारे नन्द व यशोदा और हम लोगों की यह दशा करके वसुदेव व देवकी के पास चले गये। दूसरी सखी बोली कि अब वे राजा के पास सिंहासन पर

बैठते हैं, इसलिए उनको व्रजवासी व मुरली का नाम लेने व मोरपंख देखने से लज्जा आती है।

दो० भयो नयो अब राज वह नये मात पितु गेह। नई नारि कुब्जा मिली नये सखा नव नेह ॥
सो० भूले व्रज की बात कुब्ज केलि रस रास को। भये आपनी घात दिन दिन सुख दूनो भयो॥

दूसरी ने कहा कि अब तुम लोग उनकी चर्चा क्या करती हो। अपने मन में विचारकर देखो तो वह हमारे जाति-भाई नहीं हैं। यहाँ उनका नाम गोपीनाथ, नंदलाल, कन्हैया और श्रीकृष्ण था, अब वहाँ वासुदेव नाम हुआ। थोड़े दिन के वास्ते उन्होंने व्रजवासियों से प्रीति करके पानी बरसने व आग लगने से सबकी रक्षा की। हे राजन्! जिस तरह मछली बिना पानी के तड़फती है उसी तरह सब व्रजबाला दिन-रात व्याकुल रहकर मोहनप्यारे की चर्चा करती थीं।

दो० देखो नहीं सुहात कछु घर वन बिननँदनन्द। विरह व्यथाजारतनहीं भयो तपनअतिचन्द॥
कहँ लगि कहिये हेसखी मनमोहन के खेल। उनबिन योंगोकुल भयोज्यों दीपक बिन तेल ॥
सो० रहतनयनजलछाय सुमिरिसुमिरिगुणश्यामके। कहियेकिसेसुनाय भयेपरायेकान्ह अब ॥

दूसरी गोपी बोली कि कोई मनुष्य मथुरा में जाकर मोहनप्यारे से कहता कि सब व्रजबाला तुम्हारे विरहसागर में डूब रही हैं सो तुम जल्दी पहुँचकर उन्हें अथाह जल से बाहर निकालो और तुम वृन्दावन में फिर आकर बसो। तुमसे गौ चराने के लिए कोई नहीं कहेगा और तुम्हें माखन व दही चुराने से नहीं बर्जेंगी।

दो० माँगत दान न वर्जिहैं अबनहिंकरिहैंमान। आयदर्शपुनि दीजिए तुम बिननिकसतप्रान ॥
सो० ऐसे कहि गहि पाँय लावें फेरि मनायहरि। बसें बहुरिव्रजआय तब नंदनन्दन साँवरो ॥

दूसरी ने कहा कि अब मोहनप्यारे को क्या प्रयोजन है जो राजसी सुख व विलास छोड़कर यहाँ ग्वाल कहलावें। हाथी, घोड़ा व सुखपाल की सवारी तजकर यहाँ गौ चरावें। दूसरी ने कहा—हे प्यारियो! वह मोहनीमूर्ति मुझे एक क्षण नहीं भूलती।

दो० सपनेहूँ में देखियेनींद पड़त जो नैन। कीन्हों बहुत उपाय मन आँख खुलत नहिंचैन ॥

दूसरी बोली कि हे सखी! श्यामसुन्दर के बिना मुझे अपना घर व गाँव उजाड़ मालूम होता है, वृन्दावन की कुंज देखने से रोना आता है। वहाँ के जो फल अमृत का स्वाद देते थे वे अब विष के समान मालूम

होते हैं। जिन पक्षियों का शब्द सुनकर मन प्रसन्न होता था उनका बोलना अब हृदय में गाँसी ऐसा लगता है।

चौ० जब से बिछुरे कुँवर कन्हाई। तब से भये सबै दुखदाई॥

हे राजन्! इसी तरह सब व्रजबाला आठों पहर बौरहों के समान व्याकुल रहकर जो पथिक उस राह से जाता था उसके पाँव पकड़कर कहती थीं—हे बटोही! श्यामसुन्दर हम लोगों का मन चुराकर मथुरा में जाकर राजा हुए हैं, उनसे हमारा यह संदेशा कह देना कि जिन व्रजबालों के प्राण तुमने इन्द्र के पानी बरसाने से गोवर्धन पहाड़ उठाकर बचाया था, वे सब उसी तरह तुम्हारे विरह में आठों पहर अपनी आँखों से आँसू जल के समान बरसाती हैं और जैसे उस समय आँधी बहती थी वैसे उनका ऊर्ध्व श्वास चलता है। वह लोग विरहसागर में डूबकर मर जाना चाहती हैं। केवल तुम्हारे मिलने की आशा पर अब तक जीती हैं, सो तुम उनको दीन व अपनी दासी जानकर जल्दी चले आवो और हम दुखियों को डूबने से बचाकर हमारे हृदय की तपन अपनी अमृतरूपी दृष्टि से बुझाओ। जब विरहसागर में हम लोग डूबकर मर जावेंगी तो पीछे से आकर क्या करोगे।

दो०एक बार फिर आनकर दीजै दर्शनश्याम। तुम बिन व्रजऐसो लगत ज्योंदीपकबिनधाम॥

दूसरी सखी ने कहा—हे बटोहियो! तुम्हें नारायणजी की सौगन्द है जो ऐसा न कहो और यह भी मोहनप्यारे से कह देना कि राधाप्यारी तुम्हारे वियोग में ऐसी दुबली हो गई है कि उठने-बैठने की सामर्थ्य नहीं रही। वह अब पहिचानी नहीं जाती। दो-चार दिन में मर जावे तो आश्चर्य नहीं, भला पिछली प्रीति समझकर तो उसके प्राण बचाओ।

दो०सुधिबुधिसबतनकीगई रह्यौविरहदुखछाय। मरणनिकटपहुँचीअभी बेगिखबरल्योआय॥
सो०ऐसे निज निज हेत कहत सँदेशोश्याम को। पथिक चलननहिं देत होतसाँझताको वहाँ॥

जब पपीहा वृन्दावन में बोलता था तब उसकी बोली सुनकर वे सब विरहिनी कहती थीं—हम लोग तो अपने दुःख में वैसे ही व्याकुल हैं, तिस पर तू ऐसा शब्द बोलकर क्यों हमारे हृदय की दबी दबाई अग्नि सुलगाता है।

चौ० करत कहाँ इतनी कठिनाई । हरि बिन बोलत व्रज में आई ।।
उपजावत बिरहिनि उर आरत । काहे अगिलो जन्म बिगारत ।।
एक कहत चाहत से टेरी । हे पक्षी मैं चेरी तेरी ।।
लेटे होयँ जहाँ सुखदाई । ऊँची टेर सुनावो जाई ।।
दो० मानेंगे तेरो कहो मेरे हित घनश्याम । लेहु सुयश चातक बड़ो लै आवो सुखधाम ।।

जिस तरह पपीहा स्वाती के बूँद के लिए चाह रखता है उसी तरह सब व्रजबाला मोहनप्यारे से मिलने के लिए व्याकुल रहती थीं ।

दो०कोऊ ऐसेकहि उठत व्रज में बोलत मोर । रह्यो पड़त नहिं टेर सुनि बिन श्रीनन्दकिशोर ।।
सो० बोलत करत विहाल मोर सखी बैरी भये । बसे विदेश गुपाल यह बन से मारे टरैं ।।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन् ! इसी तरह सब वृन्दावनवासी श्याम-सुन्दर के ध्यान व चर्चा में अपना दिन काटते थे ।

चौ० धन्य जन्म जो हरि के दासा । सबविधि धन्य जिन्हैं हरि आसा ।।
दो०नन्दयशोमतिगोपिकन निशिवासर यहध्यान । व्रजवासीप्रभुदर्शको आशलगीरहप्रान ।।
सो०बिसरेसबब्यवहार अवरनदूजीगतिकछू । अन्धलकुट आधार एक सुरति नँदनन्द की ।।

हे राजन् ! मुझे ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो व्रजवासियों के विरह का सब हाल वर्णन कर सकूँ, इसलिए अब मथुरा की बात कहता हूँ, सुनो । जब श्याम व बलराम नन्दजी आदि को विदा करके अपने घर आये तब वसुदेव व देवकी ने दोनों भाइयों को देखकर ऐसा सुख पाया जैसे कोई तप करनेवाला अपना मनोरथ पाकर प्रसन्न होता है । मथुरापुरी में उसी दिन से मंगलाचार होने लगे । वसुदेवजी ने देवकी से कहा कि श्याम व बलराम अहीरों की संगति में रहने से अपने जाति व कुल का व्यवहार नहीं जानते सो इनका यज्ञोपवीत आदि करना चाहिए । देवकी बोली, बहुत अच्छा । वसुदेव ने गर्ग पुरोहित और अपने जाति-भाइयों को बुलाकर सब हाल कहा । गर्गजी बोले, इनको गायत्री मंत्र देकर क्षत्रिय बनाना चाहिए ।

दो०याते इनको प्रीति करि दीजे यज्ञपवीत । जाते सीखैं सकल विधि जो यदुकुल की रीति ।।

यह वचन सुनते ही वसुदेवजी ने इष्टमित्रों और यदुवंशियों को नेवता भेजकर अपने यहाँ बुलाया और सब तीर्थों का जल मँगाकर श्याम व बलराम को स्नान कराया । शास्त्रानुसार दोनों भाइयों को यज्ञोपवीत पहिनाकर पुरोहित ने गायत्री मंत्र का उपदेश किया । वसुदेवजी ने

विधिपूर्वक बहुत सी गौ, सोना और रत्नादिक ब्राह्मणों को दान दिया और अपने जाति-भाइयों तथा ब्राह्मणों को छत्तीस प्रकार के व्यंजन खिलाकर सम्मानपूर्वक बिदा किया। जो मंगलामुखी व कंगाल लोग वहाँ आये थे सबको मुँहमाँगा द्रव्य देकर धनीपात्र बना दिया। उस समय देवतों ने आकाश से राम व कृष्ण पर फूल बरसाये और स्त्रियों ने मंगल गीत गाये। वैकुण्ठनाथ की इच्छा व दया से मथुरा में लक्ष्मी का वास होकर सब छोटे व बड़े धनवान् हो गये।

सो०अन्त न पावें शेष वेद श्वास जाकी सकल। ताहि दियो उपदेश गायत्री गुरु गर्ग मुनि ॥

हे राजन्! वसुदेवजी ने श्याम व बलराम का जनेऊ करके दोनों भाइयों को रथ पर बैठाकर सांदीपन पण्डित के पास, जो काशीपुरी से उज्जैन में जा बसे थे, विद्या पढ़ने के लिए भेज दिया। राह में केशवमूर्ति ने सुदामा ब्राह्मण को देखकर पूछा कि तुम कहाँ जाते हो? उसने कहा कि विद्या पढ़ने जाता हूँ। मुरलीमनोहर ने उसको भी रथ पर बैठा लिया। उज्जैन में सांदीपन पण्डित के पास जा पहुँचे और हाथ जोड़कर उनसे विनय किया—

चौ० हम पर कृपा करो मुनिराय। विद्या दान देहु मन लाय ॥

जब दोनों भाइयों ने इस तरह अधीन होकर गुरु से कहा तब पण्डितजी बड़ी कृपा व दया से श्याम व बलराम को अपने घर में रखकर विद्या पढ़ाने लगे। एक दिन पण्डिताइन ने श्यामसुन्दर व सुदामा को चना कलेवा देकर लकड़ी तोड़ने के लिए वन में भेजा। श्रीकृष्णजी के हिस्से का कलेवा भी सुदामा अपने पास बाँधे था। जब वे दोनों वन से लकड़ी का बोझा लेकर आने लगे तब आँधी चलकर ऐसा पानी बरसा कि घर तक न पहुँचकर रात को वन में रह गये। जब सुदामा को बहुत भूख मालूम हुई तब उसने श्यामसुन्दर का कलेवा भी उन्हें न देकर आप खा लिया। चना खाते समय कुड़ुर-कुड़ुर शब्द सुनकर केशवमूर्ति ने सुदामा से पूछा कि हे भाई, तुम क्या खाते हो, हमें भी दो तो अपनी भूख मिटावें। सुदामा ने लालच के वश परब्रह्म परमेश्वर से झूठ कहा कि मैं कुछ नहीं खाता, मारे सरदी के हमारे दाँत कटकटाते हैं। इसी

झूठ बोलने के पाप से सुदामा महादरिद्री हुआ था। श्याम बलराम ने अपनी सेवा से गुरु को ऐसा प्रसन्न किया कि चौंसठ दिन में चारों वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण, राजनीति, मंत्र, यंत्र, तंत्र, ज्योतिष, वैद्यक, कोक और बाणविद्या आदि सब गुण दोनों भाइयों को याद हो गये। सांदीपन गुरु ने मन में कहा कि मनुष्य वर्ष दिन में भी एक विद्या नहीं पढ़ सकता, सो ये दोनों बालक कोई अवतार मालूम होते हैं। दो महीने चार दिन में चौदहों विद्या व चौंसठ कला पढ़ लिया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले कि हे राजन्! देखो, जिस परब्रह्म परमेश्वर के श्वास से चारों वेद उत्पन्न हुए, उन्होंने सब विद्या गुरु से पढ़ी। उनकी लीला व महिमा कोई नहीं जान सकता। जब विद्या पढ़ने के उपरान्त केशवमूर्ति ने गुरु से हाथ जोड़कर विनय किया कि आपकी दया से मैं सब विद्या पढ़ चुका और अपने मनोरथ को पहुँचा। हम अनेक जन्म अवतार लेकर तुम्हारी सेवा करें तो भी विद्या पढ़ाने के बदले से उऋण नहीं हो सकते। अब आप जो कुछ आज्ञा कीजिए वह गुरुदक्षिणा आपकी भेंट करें और आपका आशीर्वाद लेकर अपने घर जावें, जिसमें विद्या पढ़ने का फल हमें मिले। यह वचन सुनकर सांदीपन गुरु ने कहा कि मुझे तो कुछ इच्छा नहीं है, पर तुम्हारी गुरुआइन से पूछें उसे जो चाह हो वह वस्तु तुमसे माँगे। ऐसा कहकर सांदीपन अपनी स्त्री के पास जाकर बोले कि ये राम व कृष्ण दोनों बालक जिन्होंने चौंसठ दिन में सब विद्याएँ मुझसे पढ़ लिया, परमेश्वर का अवतार मालूम होते हैं। इनसे जो गुरुदक्षिणा माँगी जावे इनको देना सहज है। तब पण्डिताइन ने हाथ जोड़कर कहा कि हे स्वामी! ये बालक नारायण के अवतार हैं तो मेरा बेटा जो समुद्र में डूब गया है उसको ला देवें, जिसके सोच से मैं सदा दुःखी रहती हूँ। यही गुरुदक्षिणा इनसे माँगो।

दो०सम्पति तो तबहीं भली जोसुत हो घर माहिं। सम्पति लै क्या कीजिए जो घर में सुत नाहिं॥

जब सांदीपन को भी यह बात भली मालूम हुई तब स्त्री-पुरुष दोनों मनुष्यों ने श्याम व बलराम के पास जाकर कहा—हे वैकुण्ठनाथ! हमारे एक पुत्र के सिवा दूसरा पुत्र नहीं था, सो एक पर्व में उसे साथ लेकर

समुद्र किनारे स्नान करने गये थे। जब हम लोग जल में पैठकर नहाने लगे तब वह बालक समुद्र में डूब गया। तब से एक क्षण उसका सोच नहीं भूलता। जो तुम हमारी इच्छा पूर्वक गुरुदक्षिणा दिया चाहते हो तो हमारा वही बेटा ला दो। यह वचन सुनते ही श्यामसुन्दर उनकी बात अंगीकार करके उसी समय दोनों भाई रथ पर चढ़े और सांदीपन पण्डिताइन को दण्डवत् करके एक क्षण में समुद्र के किनारे पहुँचे। समुद्र मनुष्य का रूप धरकर डरता व काँपता हुआ पानी से बाहर निकला और बहुत सी मणि व रत्नादिक श्यामसुन्दर को भेंट देकर दण्डवत् करके विनय किया—हे परब्रह्म, परमेश्वर, चौदहों भुवन के उत्पन्न करनेवाले! मेरी दण्डवत् आपको पहुँचे। गंगाजी तुम्हारे चरण का धोवन होकर तीनों लोकों को कृतार्थ करती हैं। तुम अपनी दया से नित्य राजा बलि के द्वार पर बने रहते हो। पृथ्वी का भार उतारने और हरिभक्तों को सुख देने के लिए सगुण अवतार धारण करते हो। शेषनाग की छाती पर सदा शयन करते हो। सब गुण और विद्या जानते हो। शेषनाग दो हजार जिह्वा से दिन-रात तुम्हारी स्तुति करते हैं, तिस पर भी आपका आदि व अन्त नहीं जानते। गरुड़जी आपके वाहन हैं। ज्ञानी व ऋषीश्वर व वेद भी तुम्हारी महिमा व भेद को नहीं पहुँच सकते, मेरी क्या सामर्थ्य है जो आपकी स्तुति कर सकूँ। मेरे बड़े भाग्य हैं जो तुमने दयालु होकर दर्शन दिया। तुम्हारे चरण देखने से मैं कृतार्थ हुआ।

दो०आज्ञा हो सो करहुं अब मन चित दे वह काज। सब दासन को दासहौं तुमराजनके राज।।

यह स्तुति सुनते ही केशवमूर्ति ने प्रसन्न होकर समुद्र से कहा कि सांदीपन हमारे गुरु अपने कुटुम्बसमेत यहाँ स्नान करने आये थे, सो तू अपनी लहर से उनका बेटा बहा ले गया है, जल्दी ला दे। गुरु की आज्ञा से मैं उसे लेने आया हूँ। समुद्र हाथ जोड़कर बोला—हे महाप्रभु अन्तर्यामी! वह बालक मेरे पास नहीं है, पांचजन्य नाम का दैत्य बड़ा बलवान् शंखरूप से पानी में रहकर सब जीवों को बहुत दुःख देता है, वह उस बालक को नहाते समय उठा ले गया हो तो मैं नहीं जानता। यह वचन सुनते ही श्रीकृष्णजी बलराम समेत पानी में कूद पड़े। जब

शंखासुर के मारने पर भी उस बालक का पता नहीं लगा तब पछताकर बलरामजी से कहा कि हे भाई! हमने वृथा इस दैत्य को मारा, उस बालक का पता नहीं लगा। यह बात सुनकर बलरामजी बोले—हे दीनानाथ! यह चिन्ता छोड़कर इस दैत्य का उद्धार कर दीजिए। केशवमूर्ति ने उसे मुक्ति देकर उसका तनु बजाने के वास्ते उठा लिया और उसी समय यमपुरी के द्वार पर जाकर वह शंख बजाया। जैसे ही वह शब्द नरकवासियों ने सुना वैसे ही वे लोग नरक से निकलकर वैकुण्ठ को चले गये। धर्मराज दौड़े हुए बाहर आकर हरिचरणों पर गिर पड़े और बड़े आदर से श्याम व बलराम को अपने घर ले जाकर जड़ाऊ सिंहासन पर बैठाया और उनका चरण धोकर चरणामृत लिया। विधिपूर्वक उनकी पूजा की और सुगन्धित फूलों के गजरा, मोती व रत्नादिक की माला दोनों भाइयों को पहिनाया। परिक्रमा करके चँवर हिलाने लगा और बड़े प्रेम से हाथ जोड़कर इस तरह श्यामसुन्दर की स्तुति की—हे परब्रह्म, परमेश्वर! आप सदा आनन्दमूर्ति रहते हैं, तुम्हें कभी कुछ चिन्ता नहीं व्यापती। लक्ष्मीजी आठों पहर तुम्हारी सेवा में बनी रहती हैं। आप हरिभक्तों की सब इच्छाएँ पूर्ण करते हैं। बहुत से अधर्मियों को मुक्ति दिया है। तुम्हारी नाभि से कमल का फूल निकला उसमे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। आपकी दया से ब्रह्मा ने तीनों लोकों की रचना की, पर तुम्हारे भेद, आदि व अन्त का हाल वे भी नहीं जान सकते। तुम सब जीवों के उत्पन्न व पालन करनेवाले हो, अपनी इच्छा से बालकरूप प्रकट किया है, सो मेरी दण्डवत् आपको पहुँचे। जहाँ शेष, महेश व गणेश तुम्हारी स्तुति नहीं कर सकते वहाँ मुझे क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारा गुण वर्णन कर सकूँ। जिस तरह पिछले जन्म के पुण्य उदय होने से आपने दयालु होकर मुझको दर्शन दिया उसी तरह अपने आने का कारण वर्णन कीजिए। यह सुनकर श्यामसुन्दर बोले कि मेरे गुरु का बेटा जो समुद्र में डूबकर मर गया है उसे फेर देना चाहिए। कदाचित् तुम ऐसा कहो कि मरा हुआ जीव यमपुरी से फिरकर नहीं जाता सो यह मर्याद भी मैंने बाँधा था, इसलिए तुझे मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए। यह

वचन सुनते ही धर्मराज ने सांदीपन का पुत्र वहाँ लाकर विनय किया—हे दीनानाथ! मुझे पहिले से मालूम था कि आप गुरुपुत्र लेने के वास्ते आवेंगे, इसलिए इस बालक को हमने आज तक बड़े यत्न से रखकर दूसरे तन में जन्म नहीं दिया। यह वचन सुनते ही मुरलीमनोहर धर्मराज को भक्ति का वरदान देकर बलरामजी व उस बालक समेत वहाँ से चले आये और गुरु के पास उस बालक को लाकर बोले—आपने बड़ी दया करके हमें विद्या पढ़ाया और हमसे कुछ सेवा नहीं बन पड़ी, और जो कुछ आज्ञा कीजिए सो करें। सांदीपन अपना बेटा देखते ही श्यामसुन्दर को परब्रह्म का अवतार समझकर बहुत स्तुति करके बोले—हे त्रिलोकीनाथ! जिस किसी के तुम्हारे ऐसा शिष्य हो उसे कौन इच्छा बाकी रहेगी, मैं प्रसन्न होकर तुम्हें यह आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी विद्या सदा नई बनी रहे और संसार में तुम्हारा यश छाया रहे। सांदीपन और पण्डिताइन ने श्याम व बलराम को आनन्दपूर्वक बिदा किया। दोनों भाई उन्हें दण्डवत् करके मथुरा को आये। उनके आने का समाचार पाते ही वसुदेव व राजा उग्रसेन यदुवंशियों समेत आगे आकर गाते व बजाते सम्मानपूर्वक उन्हें राजमंदिर पर ले गये। सब छोटे व बड़ों ने मंगलाचार किया।

दो० गुरुकी आज्ञा पायकै माखनप्रभु व्रजचन्द। आये मथुरा नगर में सबके आनन्दकन्द ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! देखो गुरु के वास्ते श्रीकृष्णजी वैकुण्ठनाथ होकर यमपुरी में चले गये थे। गुरु की इतनी बड़ी पदवी समझना चाहिए। संसार में तीन तरह के गुरु होते हैं। एक जो मंत्र-उपदेश करे दूसरा जो विद्या पढ़ावे, तीसरा जो धर्म की बात सिखलावे। इन तीनों को ईश्वर के समान मानकर उनकी सेवा करना उचित है।

—:o:—

छियालीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का उद्धव को गोपियों के ज्ञान सिखलाने के वास्ते भेजना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जिस तरह श्यामसुन्दर ने नन्द व यशोदा व व्रजबालों को ज्ञान सिखलाने के वास्ते उद्धव को भेजा था वह कथा कहते हैं, सुनो। एक दिन मुरलीमनोहर नन्द व यशोदा व

श्यामा आदि गोपियों की बातें उद्धव से कहते थे तब वह अपने ज्ञान के अभिमान से मित्रता की राह उनकी हँसी करते थे, इस वास्ते गर्व-प्रहारी भगवान् ने एक दिन रासलीला आदि व्रजवासियों की चर्चा छेड़कर बलरामजी से कहा—हे भाई! मैंने अपने वचन प्रमाण कोई मनुष्य वृन्दावन में नहीं भेजा, इसलिए वे लोग मेरे वास्ते चिन्ता करते होंगे, सो किसी को भेजकर उन्हें धैर्य देना चाहिए।

चौ० कहाँ नवल व्रजगोपकुमारी। कहँ राधा वृषभानुदुलारी ॥
दो० कहाँ यशोदानन्दसे सुखद तात औमात। कहँ वह सुखव्रजधाम को नहिं बिसरत दिनरात॥
सो० कहाँ सखन को संग कहाँ खेल वृन्दाविपिन। कहँ वह प्रेमतरंग वंशीवट यमुना निकट ॥

जब बलभद्रजी को यह बात भली मालूम हुई तब केशवमूर्ति ने मन में विचारा कि उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान रहता है, इसलिए गोपियों को ज्ञान सिखलाने के वास्ते उसको भेजकर देखें कि व्रजबालों को मेरी प्रीति के सामने ज्ञान प्रवेश करता है या नहीं। उद्धव का अभिमान भी वहाँ जाने से टूट जायगा।

दो० ऐसे हरि बैठे करत अपने मन अनुमान। उद्धव के मन से करौं दूर ज्ञान अभिमान ॥
सो० आयगये तेहिकाल उद्धवजीहरिकेनिकट। बिहँसिमिलेनँदलाल सखासखाकहि अंकभरि॥

उसी समय श्यामसुन्दर ने उद्धव से प्रेमपूर्वक कहा—हे मित्र जब मैंने श्यामा आदि व्रजबालों के साथ रासलीला किया था उस समय महादेव आदि देवतों को ऐसा कामदेव ने सताया कि शिवजी गोपेश्वर और चन्द्रमा चन्द्रकलारूप स्त्री होकर मेरे साथ रासमण्डल खेलने आये थे। और भी अनेक देवतों ने स्त्री का तनु धरकर वहाँ सुख उठाया था। सो नन्द-यशोदा व राधा आदि सब व्रजबाला मेरे विरह में बड़ा दुःख पाते हैं। हम उनसे कह आये थे कि वृन्दावन में फिर आवेंगे, उसी आशा से उनके प्राण आज तक बचे हैं।

दो० वे सब मेरे विरह में अति हैं महामलीन। कल न परत क्षण रैन दिन जैसे जल बिन मीन ॥

सो हे मित्र! मेरा मन भी उनकी सच्ची प्रीति देखकर यहाँ नहीं लगता और व्रज का सुख एक क्षण भी नहीं भूलता, इसलिए तुमको बड़ा ज्ञानी व शान्तस्वभाव व अपना परम मित्र जानकर वृन्दावन में भेजना चाहता हूँ। तुम वहाँ जाकर नन्द व यशोदा व गोपियों को ऐसा

ज्ञान समझावो कि जिसमें वे लोग मेरे वियोग का सोच छोड़कर धैर्य धरें और रोहिणी माता को अपने साथ ले आओ। यह सुनकर उद्धव ने मोहनप्यारे को समझाया कि हे दीनानाथ! संसारी झूठी प्रीति स्वप्नवत् समझकर परमेश्वर अविनाशी पुरुष का ध्यान करना उचित है। यह ज्ञान भरी हुई बातें सुनते ही मुरलीमनोहर हँसकर बोले—हे उद्धव! जो बात तुमने कही सो सच है, पर क्या करूँ गोपियाँ मेरे विरह में बड़ा दुःख पाती हैं, सो तुम ऐसा ज्ञान उनको उपदेश करना जिसमें कन्तभाव छोड़कर परमेश्वर समान मेरा भजन करें। पहिले नन्द व यशोदा को इस तरह समझाना कि वे मुझे पुत्रभाव तजकर ईश्वर समान समझें।

दो० यक प्रवीन अरु सखा मम तुमसों ज्ञानी कौन। सो कीजै जो व्रजवधू साधन सीखैं मौन ॥
सो० ज्यों सुख पावैं नारि ज्ञानयोग उपदेश से। डारें मोंहि बिसारि ब्रह्म अलख परचो करैं॥

यह वचन सुनकर उद्धव ने विनय किया कि बहुत अच्छा, मैं तुम्हारी आज्ञानुसार वहाँ जाकर सबको ज्ञान समझाऊँगा, पर वे लोग मेरे कहने से न मानें तो लाचार हूँ। यह सुनकर श्यामसुन्दर बोले—

दो० वचन कहत ही समझिहैं वह हैं परम प्रबीन। ह्वै हैं शीतल विरह से ज्यों जल पाये मीन॥

ऐसा कहकर श्याम व बलराम ने अनेक तरह के भूषण और वस्त्र नन्द, यशोदा, ग्वालबाल, राधा आदि व्रजबालों को देने के लिए उद्धव को दिया और एक चिट्ठी में बड़ों को दण्डवत् व छोटों को अशीष व व्रजवालों को योग व ज्ञान लिखा। वह चिट्ठी उद्धव को देकर बोले—तुम आप पढ़कर इसका हाल सबको सुना देना और जैसे बन पड़े उन्हें धैर्य देकर जल्दी चले आना।

दो० उद्धव व्रजमें जायकैबिलमिनरहियो जाय। तुमविनहमअकुलाहिंगे श्यामकरतचतुराय ॥
सो० तुमहौसखाप्रबीन बार-बार सिखवों कहा। जिये ज्यों जलबिन मीन सोईमतोबिचारियो॥

फिर गोपीनाथ ने अपने पहिनने का भूषण व वस्त्र उद्धव को पहिनाकर रथ पर बैठाकर वृन्दावन को बिदा किया। चलते समय आँखों में आँसू भरकर बोले—हे उद्धव! तुम इतना सन्देशा और यशोदा माता से कह देना।

चौ० नीकी रहो यशोमति मैया। कछु दिन में अइहैं दोउ भैया।
दो० कहा कहौं जा दिवस से जननी बिछुरेउँ तोहिं। ता दिनसे कोऊ नहीं कहत कन्हैयामोहिं ॥

सो०कहोसँदेश न जात अति दुखपायो मातु तुम। अब मोंको निजतात वासुदेव देवकि कहत॥
क० कामरी लकुट मोहिं भूलत न ऐको पल घुँघुची न बिसारै जोपै लाल उरधारे हैं।
जा दिन ते छाकैं छूट गईं ग्वालबालन की तादिन ते भोजन न पावत सकारे हैं॥
भनै यदुवंश यह नेह नन्दवंश ही सों वंशी न बिसारै जोपै बंश बिस्तारे हैं।
ऊधो ब्रज जाय मेरो लाइयो चौगान गेंद मैया ते कहियो हम ऋणियाँ तुम्हारे हैं॥
कौन विधि पावै यह कर्मबलवान उदै छाछ छछुआ की व्रजभामिनि को भात हैं।
मुक्तहु पदारथ सो दे चुके बाकी को अब देऊँ जननी को कहा याते पछितात हैं॥
विधि ने बनाई आह कौन विधि मेटै ताह ऐसे करि सोचत रहत दिन रात हैं।
ऊधो व्रज जैयो मेरी मैया से बुझाय कहियो जापैऋण बाढ़ै सो विदेश उठि जात हैं॥

बलभद्रजी रोकर बोले—हे उद्धव! मेरी ओर से नन्द व यशोदा से हाथ जोड़कर कह देना कि व्रज का सुख हमें कभी नहीं भूलता, इसलिए वहाँ आकर तुमसे भेंट करूँगा। हम दोनों भाइयों को अपना पुत्र जानकर कभी मत भूलना। जब वसुदेवजी ने उद्धव के जाने का हाल सुना तब बहुत सी सौगात नन्द व यशोदा के वास्ते देकर ऐसी चिट्ठी लिख दी कि तुमने हमारे बेटों को जो पालन किया है इस उपकार के बदले में अनेक जन्म उऋण नहीं हो सकता। तुम श्याम व बलराम के लिए क्यों चिन्ता करते हो, यहाँ आकर देख क्यों नहीं जाते। जिस समय उद्धवजी मथुरा से वृन्दावन को चले उसी समय व्रजबालों ने अन्तःकरण की शुद्धता से मालूम किया कि आज मोहनप्यारे का संदेशा लेकर कोई आदमी आता है या वह आवेंगे। ऐसा विचारकर एक गोपी अपने आँगन में कौवा बोलता हुआ देखकर कहने लगी—

दो०जो हरि गोकुल आवहीं तो तू उड़ रे काग। दूध दही तोहिं देहिंगे अरु अंचल की पाग॥

दूसरी गोपी ने कहा—आज मुझे बाईं आँख फड़कने से मालूम होता है कि मोहनप्यारे चित्तचोर यहाँ आया चाहते हैं, सो तुम लोग सोच छोड़कर हर्ष मनाओ। मोहनप्यारे का चन्द्रमुख देखकर अपनी-अपनी आँखें ठंढी करना।

दो०घरघरशकुनविचारहीं व्रजतिरिया बड़भाग। व्रजवासी प्रभुदर्शको सबके मन अनुराग॥

हे राजन्! सन्ध्या समय उद्धव ने वृन्दावन में पहुँचकर क्या देखा कि घने-घने वृक्षों पर अनेक तरह के पक्षी सोहावनी बोली बोलकर धवरी धुमरी काली पीली गायें चारों तरफ घूम रही हैं।

दो०वृन्दावन शोभितमहा यमुनाजल चहुँओर। द्रुमबेलीप्रफुलितसदा बोलत कोकिलमोर॥

सच है, जिस स्थान पर वैकुण्ठनाथ ने विहार किया हो वहाँ क्यों ऐसी शोभा न रहे। अब तक भी वह स्थान देखने से चित्त मोह जाता है। उद्धव ने उस वन को श्यामसुन्दर की लीला का स्थान समझकर दण्ड-वत् किया। जब वह सब आनन्द देखते हुए उद्धव गाँव के निकट पहुँचे तब नन्दराय आदि दूर से रथ और श्यामसुन्दर का भेष देखते ही उनको मुरलीमनोहर समझकर मिलने के लिए दौड़े और केशवमूर्ति को न देखकर मन में उदास हो गये। उद्धव को मोहनप्यारे का भेजा हुआ जानकर बड़े आदर भाव से अपने घर लिवा लाये और उनके पाँव धोकर छत्तीस प्रकार के व्यंजन भोजन कराये। पान इलायची देकर उत्तम शय्या उनके आराम करने के वास्ते बिछा दी। जब उद्धव थोड़ी देर तक सोकर उठे तब नन्द और यशोदा वसुदेव, देवकी और श्याम, बलराम की कुशल पूछकर बोले—

दो०नंदगोप कर जोरिकै पूछत शीश नवाय। माखनप्रभु गोपाल की कहो कथा समुझाय॥
करत हमारी सुधि कभी कहुउद्धव बलबीर। पुलकगात गद्गद वचन पूछतनंद अधीर॥
सो०चूक पड़ी अनजान कह पछताने आजुके। घर आये भगवान जाने हम न अहीर कर॥

हे उद्धव! वसुदेव व देवकी का भाग्य बड़ा बलवान् है, जो श्याम व बलराम उनके बेटे बनकर हमें बिराना समझते हैं। बहुत अच्छा हुआ जो कंस अधर्मी अपने भाइयों समेत मारा गया। वसुदेव और देवकी ने कैद से छुट्टी पाई। भला यह तो बतलाओ कि कभी राम व कृष्ण मुझे व यशोदा को याद करते हैं या नहीं। जिस दिन से मोहनप्यारे ने मुझे विदा कर दिया तब से मेरा खाना, पहिनना, हँसना, बोलना सब सुख जाता रहा। उसी दिन से यशोदा दिन-रात उन्हीं की चर्चा व ध्यान में रहकर माखन व रोटी लिये उनकी आशा किया करती है।

दो०जेहिविधि तब खेलतहतेग्वालबालकेसाथ। सो कबहूँ सुधि करत हैं माखनप्रभु व्रजनाथ॥

हे उद्धव! मैं नित्य इच्छा करता हूँ कि मथुरा जाकर उन्हें देख आऊँ, पर क्या करूँ काम से छुट्टी नहीं मिलती। जब वन में जाकर मोहनी-मूर्ति के चरण का चिह्न पृथ्वी पर देखता हूँ तब मुझे यह संदेह होता है कि वह कहीं कुंजों में भूल गये हैं। जब ढूँढ़ते समय उनको नहीं पाता

तब हार मानकर घर चला आता हूँ और उनकी मुरली व लकुटिया देखकर जो दशा मेरी होती है वह हाल वर्णन नहीं कर सकता। मदन-मोहन ने मुझसे फिर वृन्दावन आने का करार किया था, सो बतलाओ यहाँ आवेंगे या नहीं। देखें हमारा भाग्य उदय होकर कब उनका दर्शन मिलता है। हे उद्धव! मैं श्यामसुन्दर को अपना पुत्र जानता था और वह मुझे पिता कहते थे, और उन्होंने बड़े-बड़े आपत्काल में व्रजवासियों की रक्षा की।

दो० सहसनयनदुखमानिकैकोपकियोजेहिकाल।हमकारणगिरिनखधरचोमाखनप्रभुगोपाल॥

हे उद्धव! उन्होंने लड़कपन में पूतना राक्षसी और वत्सासुर आदि बड़े-बड़े राक्षसों को मारकर कालीनाग को यमुनाजल से निकाल दिया। गोपियों का गोरस चुराकर उनके साथ रासलीला की और अनेक बाल-चरित्र हम लोगों को दिखलाकर बड़ा सुख दिया। बतलाओ, कभी इन बातों की चर्चा वसुदेव व देवकी से करते हैं या नहीं।

दो० उद्धव तुमसे क्या कहौं मनमोहन की बात। जो लीला व्रज में करी सों वरणी नहिं जात॥

हे उद्धव! मैं गर्ग मुनि के कहने से जानता हूँ कि वह परब्रह्म परमेश्वर हैं और पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी इच्छा से उन्होंने अवतार लिया है।

दो० याते यह निश्चय कियो हम अपने मन माहिं। आदि पुरुष भगवान हैं पुत्र हमारे नाहिं॥

यशोदा रोकर उद्धव से बोली—

चौ० कुशल हमारे सुत की कहौ। जिनके साथ सदा तुम रहौ॥
कबहूँ वह सुधि करत हमारी। उन बिन हम दुख पावत भारी॥
सबहिन से आवन कहि गये। बीती अवधि बहुत दिन भये॥

हे उद्धव! जिन आदिज्योति नारायणजी का दर्शन ब्रह्मादिक देवतों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता, वह हमारे घर आये और हमने अपने अज्ञान से उनको पुत्र जाना।

चौ० फाटत नहीं वज्र की छाती। अब यह समुझि हृदय पछताती॥
वैसो भाग्य कभी अब पैहौं। फेरि श्याम को गोद खिलैहौं॥

दो० ग्वाल सखा संग जोड़ अब गौवें कोलेजाय। को आवे संध्या समय वन ते गऊ चराय॥

हे उद्धव! अब मैं अपने अंचल से किसकी धूर झाड़कर छाती में लगाऊँ और किसका मुख चूमकर बलैया लेऊँ। क्षण भर वह साँवली

मूर्ति मुझे नहीं भूलती, कैसे धैर्य धरों। भला तुम सच कहो मनहरण-प्यारे वहाँ किस तरह सीधे रहते हैं। यहाँ तो व्रजबालों के साथ अनेक उपाधि किया करते थे, वहाँ किसके साथ खेलते होंगे। मुझे तो उनको देखे बिना एक क्षण युग के समान बीतता है। वह इतने दिन मेरे बिना क्योंकर वहाँ रहे। मैं गोवर्धन पहाड़ आदिक उनके लीलास्थान देखकर समझती हूँ कि अभी आया चाहते हैं, सो बतलावो कब तक यहाँ आवेंगे। जब इसी तरह नन्द और यशोदा अनेक बातें कहकर मोहनप्यारे के विरह में रोते-रोते व्याकुल हो गये तब उद्धव उन्हें धैर्य देने के लिए बोले—तुम लोग उदास मत हो, पीछे से श्यामसुन्दर भी आते हैं। जब यह वचन सुनते ही वे दोनों प्रसन्न हो गये तब उद्धव ने मुरलीमनोहर और वसुदेवजी की भेजी हुई सौगात उनके सामने रखकर चिट्ठी पढ़कर सुना दी।

दो०नन्द गोप तलफै महा माखनप्रभु के हेत। बुद्धिमान उद्धव तिन्हैं या विधि उत्तर देत॥

हे नन्दराय! जिनके घर आदिपुरुष भगवान् ने आकर बाललीला का सुख दिखलाया उनकी स्तुति कौन वर्णन कर सकता है। तुम बड़े भाग्यवान् हो जो आठों पहर तुम्हें वैकुण्ठनाथ की याद व प्रीति बनी रहती है, इसलिए वे भी एक क्षण तुमसे विलग नहीं होते। मैं तुमको जीवन्मुक्त समझता हूँ।

दो०माखनप्रभु को रैन-दिन ध्यान धरै जो कोय। प्रभुता तीनों लोक की ताको प्रापत होय॥

यशोदा बड़े प्रेम से वह चिट्ठी शिर व आँखों में लगाकर रोती हुई बोली—हे उद्धव! यह ज्ञान भरी हुई बातें छोड़कर सच बतलाओ कि मोहनप्यारे यहाँ कब आवेंगे। भला मुझको अपनी माय समझकर एक बार फिर दर्शन दे जाते तो उनका बड़ा उपकार मानती।

दो०ऊद्धवयद्यपि हमैं सब समुझावत व्रजलोग। उठतशूल तद्यपि निरखि माखनप्रभुमुख योग॥

हे उद्धव! मैं नित्य प्रातःसमय माखन रोटी अपने कन्हैया को खिलाती थी। वहाँ यह हाल जाने विना कौन उसे सबेरे भोजन देता होगा और वह लज्जावश किसी से न माँगकर भूखे रहते होंगे। इस बात की चिन्ता मुझे अधिक लगी रहती है कि वह खाने बिना दुःख पाकर दुबला हो गया होगा। यह बात सुनकर उद्धव ने कहा कि तुम लोग श्यामसुन्दर को

आदि पुरुष जानकर मेरी बात का विश्वास मानो। जिस तरह आग लकड़ी में छिपी रहकर दिखलाई नहीं देती उसी तरह उन निर्गुणरूप का प्रकाश सबके तन में होकर वह जगदात्मा सब जगह बने रहते हैं, पर ज्ञान प्राप्त हुए बिना दिखलाई नहीं देते। इसलिए तुम लोग भी उन्हें आठों पहर अपने निकट जानकर उनके वास्ते चिन्ता मत करो। वह केवल अपने भक्तों को सुख देने और पृथ्वी का भार उतारने के लिए सगुण अवतार लेकर संसारी मनुष्यों को धर्म का रास्ता दिखलाने के लिए लीला करते हैं। जैसे भृंगीकीट को देखकर दूसरा कीड़ा उसी के रंग का हो जाता है वैसे ही प्रीतिपूर्वक परमेश्वर से ध्यान लगानेवाले उन्हीं का रूप हो जाते हैं। तुम लोग भी उनको घट-घट व्यापक समझकर अपने अन्तःकरण में उनका ध्यान लगाओ तो उन्हीं के समान तुम्हारा स्वरूप भी हो जायगा। वे किसी के पुत्र नहीं हैं, उनका कोई माता-पिता नहीं है। तुम्हारे पिछले जन्म का पुण्य उदय हुआ जो उनके साथ इतनी प्रीति रखते हो।

दो० पहिले ब्रह्मा भेष धरि सिरजत सब संसार। विष्णुरूप से पालकर शिव ह्वै करत सँहार ॥

इसलिए तुम जितने स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र आदि संसार में देखते हो सबमें उन्हीं का प्रकाश समझो।

दो० मत जानो सुत करि तिन्हें वे सबके करतार। तात मात तिनके नहीं भक्तन हित अवतार ॥

सो० हम सब हैं अज्ञान प्रभु महिमा जाने नहीं। वह प्रभु पुरुषपुराण जन्ममरण से हैं रहित ॥

हे नन्द और यशोदा ! तुम मोहनप्यारे अन्तर्यामी को ईश्वर जानकर भजो तो वह अपना दर्शन ध्यान में देकर तुम्हारा दुःख छुड़ा देंगे। यह वचन सुनकर यशोदा बोली—उद्धव ! मैं अपने मन को बहुत समझाती हूँ, पर मेरा चित्त नहीं मानता।

दो० नन्द यशोदा गोपसों माखनप्रभु की बात। ऐसी विधि उद्धव कहत बीती सगरी रात ॥

जब चार घड़ी रात रही तब उद्धव नन्दराय से पूछकर यमुनास्नान करने गये। राह में क्या देखा कि सब गोपियाँ अपने-अपने घर में दीपक जलाकर श्रीकृष्णजी का बालचरित्र व गुणानुवाद गाती हुई दही मथती हैं। उद्धव जिस द्वार पर होकर जाते थे उस घर के स्त्री व पुरुषों को श्यामसुन्दर की चर्चा करते सुनकर उन्हें बड़ा हर्ष होता था। जब उद्धवजी

यमुना के किनारे पहुँचकर स्नान करने के उपरान्त नित्य-नियम करने लगे तब प्रातःसमय गोपियाँ चौका-झाड़ू आदि गृहस्थी के काम काज से छुट्टी पाकर यमुनाजल भरने के लिए घड़ा लिये हुई झुण्ड का झुण्ड निकलीं। उस समय आपस में इस तरह मोहनप्यारे की चर्चा करती हुई चलीं—

चौ० एक कहै मोहिं मिले कन्हाई। एक कहै वह छिपे लुकाई॥
पीछे से पकड़ी मोरि बाँह। वह ठाढ़े हरि वट की छाँह॥
कहत एक गो दूहत देखे। बोली एक भोर ही पेखे॥
एक कहै वह धेनु चरावें। सुनो कान दै बीन बजावें॥
या मारग हम जायँ न माई। दान माँगिहैं कुँवर कन्हाई॥
एक कहत हरि कीन्हों काज। वैरी मार्‍यो लीन्हों राज॥
काहे को वृन्दावन आवें। राज छाँड़ि क्यों गाय चरावें॥
छाँड़ो सखी अवधि की आश। चिन्ता छूटे भये निराश॥
एक नारि बोली अकुलाय। कृष्ण आश क्यों छोड़ी जाय॥
ऐसी कहत चलीं व्रजनारी। कृष्णवियोग विकल तन भारी॥

दो० दुखसागर यह व्रज भयो नाम नाव निरधार। डूबे विरह वियोगजल श्याम करैं कब पार॥

इसी तरह सब व्रजबाला श्यामसुन्दर की चर्चा करती हुई यमुना के किनारे चली जाती थीं, राह में नन्दजी के द्वार पर रथ खड़ा देखकर बोलीं—मालूम होता है अक्रूर फिर आया, एक बेर तो उसने हमारे प्राण-नाथ को अपने साथ ले जाकर राजा कंस को मरवा डाला, अब न जाने क्या करेगा। दूसरी सखी बोली कि कदाचित् मनहरणप्यारे ने हमारी सुधि लेने के लिए किसी को भेजा हो।

दो० तिनसों और सखी कहै तुम्हैं नहीं कुछ ज्ञान। अब हमसों अरु कान्हसों काहे की पहिचान॥

जब इसी तरह सब गोपियाँ आपस में बातें करती हुई यमुना के किनारे पहुँचीं तब उद्धवजी उनकी प्रीति भरी हुई बातें सुनकर मन में कहने लगे—

चौ० जिनके प्राण प्राणपति पाहीं। लाज काज पति की सुधि नाहीं॥

दो० माखनप्रभु को विरह दुख कासों बरणो जाय। जासों बिछुरे प्राणपति ताको कहा सुहाय॥

—:०:—

सैंतालीसवाँ अध्याय ।

उद्धव का गोपियों को ज्ञान सिखलाना ।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! जब उद्धव पूजा से सुचित्त होकर नन्द के घर आने लगे तब गोपियों ने उद्धव को श्यामसुन्दर का पीताम्बर व मुकुट व वनमाला पहिने देखकर आपस में कहा कि मोहनप्यारे मथुरा जाते समय एक मनुष्य भेजने के लिए कह गये थे, सो यह उन्हीं का भेजा हुआ मालूम होता है। जब यह हाल जानने के लिए गोपियाँ एक वृक्ष के नीचे खड़ी हो गईं तब एक सखी बोली—यह मनुष्य मुरली मनोहर का भेष बनाये हमारी ओर देखता हुआ आता है। दूसरी ने कहा कि यह उद्धवजी कल्ह से मोहनीमूर्ति का संदेशा लेकर नंदराय के घर टिके हैं। यह वचन सुनते ही जब राधा आदि गोपियों ने उद्धव को श्यामसुन्दर का भेजा हुआ जानकर बड़े आदर से बैठने के लिए कहा और वे भी उन लोगों की सच्ची प्रीति देखकर बैठ गये तब सब व्रजबाला उनके चारों ओर बैठकर कुशल पूछने के उपरांत बोलीं—हे उद्धव ! हमें मालूम हुआ कि तुमको वृन्दावनविहारी ने नन्द व यशोदा को धैर्य देने के लिए भेजा है।

चौ० भली करी उद्धव तुम आये । समाचार माधव के लाये ॥
पठयो मात पिता के हेत । और न काहू की सुधि लेत ।
सर्वस दीनों उनके हाथ । उरझे प्राण चरण के साथ ॥

एक सखी ने कहा—हे उद्धव ! उन्हें हम लोगों पर दया क्यों होगी जो हमारी सुधि लें। कदाचित् ऐसा कहो कि तुम लोग उनकी चर्चा क्यों करती हो तो इसका यह कारण है—

दो० हरिके सुमिरण ध्यान में रहत सकल संसार। याते हमहूँ करत हैं देखिजगत व्यवहार॥

दूसरी गोपी बोली—हे उद्धव ! मोहनप्यारा बड़ा कपटी और निर्दयी है। जिस तरह वेश्या स्त्री द्रव्य लेने से प्रयोजन रखती है किसी पुरुष से सच्ची प्रीति नहीं करती, पक्षी फूले-फले वृक्ष पर बैठकर सूखे वृक्ष से कुछ प्रयोजन नहीं रखते, भँवरा फूलों का रस लेकर उड़ जाता है, दण्डी भिक्षा लेने के उपरान्त देनेवाले के पास खड़ा नहीं रहता, उसी तरह

श्यामसुन्दर भी मर्त्यलोक में जन्म लेने से संसारी मनुष्य के समान जब तक यहाँ रहकर हमारे साथ रास व विलास करते थे तब तक उन्हें हम लोगों का प्रेम था। अब उनको क्या प्रयोजन है जो हमारी सुधि लें। जैसे उनकी मृदु मुसकान, तिरछी चितवन, अमृतरूपी मीठी-मीठी बातों पर लक्ष्मीजी और देवकन्या मोहित हो जाती हैं वैसे ही हम लोगों की भँवररूपी आँखें भी मोहनीमूर्ति के कमलरूपी चन्द्रमुख का रस पीकर उसी मद में आठों पहर मतवाली बनी रहती हैं।

दो० लीलामोहनलाल की सदा चैनसुख दैन। ताही सुमिरण ध्यान में जीवत हैं दिन-रैन ॥

हे राजन्! श्यामसुन्दर की चर्चा में गोपियाँ ऐसी लीन हो गईं कि उनको अपने तनु व वस्त्र की सुधि नहीं रही। उस समय एक श्यामरंग भँवर उड़ता हुआ वहाँ आया। उसे देखकर एक गोपी बोली—हे सखियो! जो संदेशा उद्धव से कहती हो वही समाचार इस भँवरे से, जो श्रीकृष्णजी के समान काला है, उन्हें कहला भेजना चाहिए। जो बातें गोपियों ने मधुकर से कही थीं उनको भँवरगीत कहते हैं।

दो० माखनप्रभुकेविरह में गोपिन को नहिंचैन। भँवर सुनाकर कहत हैं उद्धव से सब बैन ॥

उस व्रजबाला की बात सुनकर दूसरी ने उत्तर दिया कि हे प्यारी! तुझे विश्वास होता है कि भँवरा हमारा दूत होकर मोहनप्यारे को संदेशा पहुँचावेगा, सो मेरे निकट जितने श्यामवर्ण हैं उनसे अपने स्वार्थ की आशा न रखनी चाहिए।

दो० कहैएकत्रियसुन सखी कारे सब यकतार। इनसेप्रीति न कीजिये कपटिन कोटकसार ॥

सो० देखाकरि अनुमान कारेअहि कारे जलद। कविजनकरतबखान भँवर कागकोयलकपट॥

दूसरी बोली—हे भँवरा! मुझे किसी श्याम रंग का विश्वास नहीं आता, पर क्या करूँ, उस चित्तचोर की बातें व सुन्दरता याद आने से मेरा चित्त ठिकाने नहीं रहता।

दो० मृदुमुसकनि विषडारिके गये भुजँगलौं भाग। नन्दयशोदा यों तजे ज्यों कोयलसुतकाग ॥

जब वह भँवरा गोपियों की सुगन्ध शरीर, जो चन्दन व केशर व इत्र मले हुए थीं, सूँघकर उनके पास आया तब एक सखी ने कहा—हे भँवरा! तू हमारे निकट मत आ, जो तेरे समान श्यामवर्ण होकर मथुरा की स्त्रियों से विहार करता है वहाँ जा।

दो०कामिनि मथुरानगर की माखनप्रभु के हेत। विविध सुगन्धलगावहीं वह सुवासनहिं लेत॥

दूसरी बोली—इस भँवरे की नाक मथुरावासी स्त्रियों के अंग की सुगन्ध सूँघकर भर गई है, इसलिए बेपरवाह रहकर कहीं नहीं बैठता। दूसरी ने कहा—हे भँवरा! तू मथुरा में जाकर यह संदेशा हमारे चित्तचोर से कह देना कि अपने चाहनेवालों की प्रीति छोड़कर उन्हें दुःख देना कौन न्याय है। जिस तरह भँवरा एक क्षण से अधिक किसी फूल पर नहीं बैठता वही हाल तुम्हारा भी समझना चाहिए। लक्ष्मीजी तुम्हारा स्वभाव न जानकर अपनी अज्ञानता से तुम पर मोहित हैं। वह तुम्हारी कठोरता का हाल जानतीं तो कभी तुमसे प्रीति न करतीं। मथुरा की स्त्रियाँ भी तुम्हारे निर्दयीपन का हाल न जानकर मायाजाल में फँसी हैं।

दूसरी ने कहा जो हमारा प्राण हरकर चला गया और कुछ सुधि नहीं लेता, ऐसे कपटी को तू क्या संदेशा भेजती है। दूसरी ने कहा कि हे भँवरा! तुम हमारी ओर से मथुरा की रानियों को कह देना कि अभी तक तुमको श्यामसुन्दर की कठोरता का हाल नहीं मालूम है, परमेश्वर तुम्हारी प्रीति और उनका निर्दयीपन प्रतिदिन अधिक करे जिसमें हमारी सी गति तुम्हारी भी हो जावे। दूसरी बोली—हे सखियो! श्यामसुन्दर सब गुणों से भरे हैं और जैसा उनका स्वरूप है वैसा रूपवान् तीनों लोकों में कोई न होगा। इसलिए स्वर्ग व मर्त्यलोक की सब स्त्रियाँ उन पर मोहि जाती हैं, हम गँवारियों की कौन गिनती है। दूसरी ने कहा—हे भँवरा! तैंने माधव के चरणकमल का रस पिया है, इससे तेरा नाम मधुकर हुआ। तू कपटी मोहनप्यारे का मित्र और दूत होकर हमारे पास आया है। श्यामवर्ण सब कपटी होते हैं, इसलिए तू हमको मत छू। दूसरी ने कहा—हे भँवरा! तू कुब्जा के अंग का केशर अपने मस्तक पर लगाकर श्यामसुन्दर की आज्ञानुसार जो मुझे लेने आया है सो मैं केवल तेरे विनती करने से जा नहीं सकती। जब मैं कुबड़ी दासी के बराबर भी नहीं हूँ तो वहाँ जाकर क्या करूँ। इसलिए तुम मथुरा में जाकर उन्हीं के सामने कृष्ण व कुबड़ी का यश गावो। जिस तरह बहेलिया अलगोजा बजाकर हरिण को पकड़ लेता है उसी

तरह मोहनप्यारे ने मुरली बजाकर हम लोगों को भी अपने प्रेम के जाल में फँसा लिया।

दो० जो मैं ऐसा जानती प्रीति किये दुख होय। नगर ढिंढोरा फेरती प्रीति करै जनि कोय ॥

जिस समय वह गोपी भँवरे से यह बातें कह रही थी उसी समय ललिता सखी बोली—सुनो प्यारियो, श्रीकृष्णजी ने कुछ इसी जन्म में कठोरपन नहीं किया, वे सदा इसी तरह कपट करते आये हैं। रामावतार में बालि वानर को बिना अपराध मार डाला और रावण की बहिन शूर्पणखा की, जो उन पर मोहित हुई थी, नाक कटवा लिया। वामन-अवतार में राजा बलि के पास जाकर तीन पग पृथ्वी दान माँगी, जब उसने ब्राह्मण समझकर संकल्प दिया तब विराट्रूप धरकर दो पग में चौदहों भुवन नाप लिया और तीसरे पग के बदले राजा बलि जैसे धर्मात्मा को बाँधकर पाताल में भेज दिया। इसके सिवा और जो कपट के काम उन्होंने किया है वह हाल कहाँ तक तुमसे कहूँ जिसकी कुछ गिनती नहीं हो सकती। कदाचित् तू कहे कि ऐसे कपटी मनुष्य से प्रीति करके क्यों इतना दुःख उठाती है, सो सुन। मैं किस गिनती में हूँ बड़े-बड़े राजा उनकी स्तुति व कथा सुनने से घर-द्वार, राज-पाट, स्त्री व पुत्रों की प्रीति छोड़कर मुक्त होने के लिए वन में चले जाते हैं और उस मोहनी-मूर्ति की छवि देखकर देवकन्याओं का चित्त ठिकाने नहीं रहता, यह सब हाल तुम अपनी आँखों से देख चुकी हो। दूसरी ने कहा कि मैं नहीं जानती कि श्यामसुन्दर को अपने वियोग में हमारे प्राण लेने से क्या गुण निकलेगा जो ऐसा करते हैं। दूसरी ने कहा कि हे भँवरा! हम लोगों ने मोहनप्यारे से इस वास्ते प्रीति लगाई थी कि कुछ रोज निबहेगी, सो वे अपनी मृदु मुसकान से हम लोगों के मन चुराकर इस तरह बिलग हो गये कि मानो कभी की जान-पहिचान नहीं थी। कदाचित् मैं उनको ऐसा कठोर जानती तो कभी प्रीति न करती। दूसरी बोली—हे सखी! तूने नहीं सुना, जो कुबजा दैत्यों का जूठन खाकर दासी कहलाती थी उसे अब श्यामसुन्दर ने पटरानी बनाया है। यह बात सुनकर हम लोगों से लज्जावश किसी को मुख नहीं दिखलाया जाता।

दो०अब खेलत दोउ लाज तजि बारहमासी फाग। लौंड़ी की डौंड़ी बजी हाँसी औ अनुराग ॥

दूसरी ने कहा—देखो, जिसे नारायण व दीनदयालु कहते हैं वह धर्म व दया भुलाकर ऐसा निर्दयी हो गया है कि तीन कोस राह चलकर हमारा दुःख छुड़ाने के लिए नहीं आता, केवल संदेशा भेजकर हम दुखियों के घाव पर नोन छिड़कता है।

दो०एक सखी या विधि कहै पगी श्याम की प्रीति। हमहूँ सीखा आज ते पत्र लिखन की रीति ॥

दूसरी सखी बोली—ऐ भँवरा! तू अवश्य उस चित्तचोर से पूछियो कि भला यह कठोरता छोड़कर कभी अपना दर्शन देंगे या नहीं। दूसरी ने पूछा—हे उद्धव! श्याम व बलराम बालापन की प्रीति समझकर कभी हम लोगों को याद करते हैं या नहीं। यह सुनकर दूसरी गोपी ने उसे उत्तर दिया—हे सखी! अब श्याम व बलराम मथुरावासी महासुन्दरी व चतुर स्त्रियों के वश होकर वहाँ विहार करते हैं, हम गँवारियों को क्यों याद करेंगे। हम लोग पहिले ऐसा जानतीं तो क्यों वहाँ उनको जाने देतीं।

दो०आछे दिन पाछे गये हरिसे कियो न हेत। अब पछताये होत क्या चिड़ियाँ चुनि गईं खेत ॥

जिस तरह आठ महीने तक पृथ्वी, वन व पर्वत मेघ की आशा पर तपने का दुःख उठाकर बैठे रहते हैं और बरसात में मेघ राजा पानी बरसाने से उनको ठण्ढा करता है उसी तरह श्यामसुन्दर भी आकर अपने चन्द्रमुख की शीतलता से हमारे हृदय की तपन बुझावेंगे। दूसरी बोली—हे सखियो! इन वृथा बातों से कुछ प्रयोजन नहीं निकलता, तुम्हें उद्धव से यहाँ आने का कारण पूछना चाहिए। यह वचन सुनकर दूसरी बोली—हे उद्धव! तुम क्यों यहाँ आये हो? कभी वह भी इस ओर आना चाहते हैं या नहीं? दूसरी ने कहा—यह क्यों नहीं पूछती कि राम व कृष्ण ने गुरु के यहाँ कपट के सिवा कुछ धर्म व दया भी पढ़ा है या नहीं। दूसरी बोली—हे प्यारियो! वसुदेवजी ने श्याम व बलराम को यहाँ अहीरों की संगति में रहने से तीर्थजल से स्नान कराकर उन्हें जनेऊ पहिनाया, अब वे क्यों उनको यहाँ आने देंगे। दूसरी गोपी, जो विरहसागर में डूब रही थी, झुँझलाकर बोली कि जब वह निर्दयी हमारी सुधि नहीं लेता तो तुम लोग क्यों बारम्बार उसका हाल पूछती हो। यह कठोर वचन सुन-

कर दूसरी बोली—हे उद्धव! इस गँवारी के मुख में आग लगे जो ऐसी बात कहती है, तुम सच बतलाओ वे कब यहाँ आवेंगे।

चौ० ता दिन उइहैं भाग्य हमारे। जा दिन मिलिहैं नन्ददुलारे॥

दूसरी बोली—हे उद्धव! तुम हमारे प्राणनाथ के भेजे हुए यहाँ आये हो, इसलिए जहाँ तुम्हारे चरण पड़ते हैं वहाँ की धूर हम लोगों को अपनी आँखों में लगाना उचित है। उद्धव गोपियों की यह दशा देखकर मन में कहने लगे कि संसार में इनके बराबर दूसरे किसी को वैकुण्ठनाथ की भक्ति व प्रीति न होगी। ऐसा समझकर आनन्दरूप उद्धव ने राधा-प्यारी को, जो अलग खड़ी हुई यह सब बातें सुनती थी, दण्डवत् किया और रत्नों की माला जो श्यामसुन्दर ने भेजा था उसे देकर कहा—हे गोपियो! तुम्हारे समान दूसरे का भाग्य होना बहुत कठिन है जो आठों पहर श्यामसुन्दर से ऐसी प्रीति रखती हो। पिछले जन्म के पुण्य से मैंने तुम्हारा दर्शन पाया। संसारी मनुष्य वेद व पुराण सुनकर यज्ञ, होम, दान, व्रत, तीर्थ इसी आशा पर करते हैं जिसमें हरिचरणों की भक्ति उत्पन्न हो, पर तुम्हारे समान पदवी वे नहीं पा सकते। मुझको ऐसा आशीर्वाद दो जिसमें मुझे भी तुम्हारे समान हरिचरणों में प्रीति हो।

दो० महिमा तुम्हरे भाग्यकी कासों बरणी जाय। जिनके चितमें नितबसैं माखनप्रभु यदुराय॥

हे व्रजबालो! श्रीकृष्णजी ने मेरे ऊपर बड़ी दया करके यहाँ भेजा कि मैं तुम्हारा दर्शन पाकर कृतार्थ हुआ। अब जो चिट्ठी व संन्देशा प्राणनाथ का लाया हूँ मन लगाकर सुनो। जब उद्धव ने श्याम व बल-राम की कुशल कहकर गोपियों को चिट्ठी दी तब राधाप्यारी आदिक सब व्रजबालों ने उसे अपनी-अपनी छाती में लगाया।

दो०अतिहितपाती श्यामकीसबमिलिमिलिसुखपाय। उद्धवकरदीन्हीबहुरिदीजैबाँचिसुनाय॥

जब उद्धवजी चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगे तब गोपियों ने क्या देखा कि चिट्ठी में कुब्जा नाम लिखकर हरताल से मारने के उपरांत वहाँ गोपिका बनाया था। यह देखकर गोपियाँ बोलीं—देखो मोहनप्यारे का मन आठों पहर कुब्जा में लगा रहता है, इसी वास्ते उन्होंने गोपिका की जगह उसका नाम लिखकर उस पर हरताल ऐसा लगाया, मानो

अपना पीताम्बर उसको ओढ़ाया है। हे राजन्! उद्धव चिट्ठी सुनाकर गोपियों से बोले कि श्यामसुन्दर ने मुझको तुम्हारे पास आत्मज्ञान समझाने के लिए भेजकर ऐसा कहा है कि तुम लोग मुझसे भोग की आशा छोड़कर योग साधो तो तुम्हें वियोग का दुःख न होगा। तुम लोग मेरा ध्यान जो दिनरात करती हो इसलिए मैं तुम्हारे समान दूसरे को प्यारा नहीं जानता सो ऐ गोपियो! तुम्हें श्रीकृष्णजी आदिपुरुष को जो तीनों लोक के उत्पत्ति व पालन करनेवाले हैं अपना पति न समझना चाहिए। हवा, पानी, मिट्टी, अग्नि और आकाश पाँचतत्त्व से मनुष्य का शरीर बनकर उस तनु में उन्हीं का प्रकाश रहने से मनुष्य को चलने, फिरने, बोलने और शुभ-अशुभ कर्म करने की सामर्थ्य रहती है, पर नारायणजी की माया से उनका वह रूप किसी को दिखलाई नहीं देता। इसलिए निर्गुणरूप का स्मरण व ध्यान किया करो तो वह आठों पहर तुम्हारे पास बने रहेंगे। सगुणरूप पास रहने से ज्ञान व ध्यान में विघ्न समझकर श्यामसुन्दर तुम्हारे कल्याण के लिए मथुरा जाकर अलग बसे हैं। सो तुम लोग मोहनप्यारे का चमत्कार स्त्री-पुरुष, गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी, ग्वाल व गायों में एकसा जानकर सब जड़ व चैतन्य जीव को उन्हीं का रूप समझो। जो मनुष्य इस तरह आदिपुरुष भगवान् को सब जगह व्यापक जानता है उसे कुछ वियोग का दुःख नहीं होता।

चौ० योग समाधि ब्रह्म चित लावै। परमानन्द तबहिं सुख पावै॥

दो० आतम ही से देखिये परम आतमारूप। सबमें पूरण एकरस अद्भुत महाअनूप॥

हे गोपियो! वह उत्पन्न होने, मरने, घटने और बढ़ने से रहित हैं, आकाश के समान सब जगत् पर अपनी छाया रखते हैं। जिस तरह किसी स्त्री का पुरुष परदेश गया हो और वह अपने पति को सोते व जागते, उठते व बैठते, खाते व पीते ध्यान में अपने पास देखती रहे तो उसको पुरुष से अलग न कहना चाहिए। उसी तरह तुम लोग भी जो ऋषीश्वरों व योगीश्वरों से अधिक पदवी रखती हो उनके ध्यान में लीन रहकर उन्हें अपने से विलग मत समझो तो वियोग का दुःख तुम्हें न होगा।

दो०ताहीसुमिरणध्यानमेंरहोसबहिचितलाय। याहीविधितुमसों कह्योमाखनप्रभुसमुझाय॥

और यह भी केशवमूर्ति ने कहा है कि जब तुम लोगों ने रासलीला करती समय पुरुषभाव समझकर पापदृष्टि से मुझे देखा तब मैं अन्तर्धान हो गया जब तुमने ज्ञान की राह मुझे परमेश्वर जानकर मेरा ध्यान किया तब मैंने तुम्हारी भक्ति देखकर फिर तुमको दर्शन दिया। सो उसी तरह मेरे निर्गुणरूप का ध्यान करो तो आठों पहर तुम्हारे पास बना रहूँगा।

दो०सुनतहि उद्धव के वचन रहीसबैं शिरनाय। मानहुँ माँगत सुधारस दीन्हों गरल पिलाय॥

यह ज्ञान भरी हुई बातें सुनकर श्यामा ने कहा—हे उद्धव! जहाँ से यह सब रत्नादिक व मोती की माला ले आये हो वह अनमोल लाल मेरा कहाँ है। उनके बिना हमें तीनों लोकों की सम्पत्ति अच्छी नहीं लगती। इसलिए यह सब गहना उसी को जाकर फेर दो। मेरे काम का नहीं, मैं केवल उस मोहनीमूर्ति का दर्शन चाहती हूँ।

क० धर्म के सँघाती एक बाती न कहत बनै थिर में थहराती जो लहाती हित राम के।
जाके पूत नाती करैं प्रीति अबिहाती यह काहू न सोहाती वश भये ऐसे वाम के॥
मोहन कुजाती कुबिजाती संग जाती अब हमसों कहाती वे हमारे कौन काम के।
छाती दाहिबे को यह पाती ले सिधारे ऊधो घाती करी तुमहूँ सँघाती सखा श्याम के॥

दूसरी गोपी बोली—हे उद्धव, यह कौन न्याय की बात है, जो हम लोगों को योग साधने के लिए कहकर आप कुब्जा आदिक मथुरा की स्त्रियों से भोग-विलास करते हैं। भला यह तो बतलाओ कि कभी उस आनन्द व खुशी की सभा में हमारी चर्चा भी होती है या नहीं।

दो० यह सब दोष लगैहमैंकर्मरेख को जान। प्रेम सुधारस सानिकै अब लिखि पठयो ज्ञान॥

दूसरी ने कहा—हम लोग दिन-रात मोहनप्यारे के ध्यान में रहकर रोने के सिवा दूसरा कुछ काम नहीं करतीं, तिस पर वह योग व वैराग्य लिखकर हमारे कलेजे की दबी-दबाई अग्नि सुलगाते हैं।

चौ० ज्ञान योग विधि हमैं सुनावें। ध्यान छोड़ आकाश बतावें॥
जिनको मन लीला में रहै। उनको को नारायण कहै॥
बालकपन से जिन सुख दयो। सो क्यों अलख अगोचर भयो॥
जो तनु में प्रिय प्राण हमारे। सो क्यों सुनि हैं वचन तुम्हारे॥
एक सखी उठ कहै विचारी। उद्धव की करिये मनुहारी॥

इनसे सखी कछू नहिं कहिये। सुनिकर वचन मौन धरि रहिये ॥
एक कहै अपराध न याको। यह आयो भेजो कुब्जा को ॥
अब कुब्जा जो जाहि सिखावै। सोई वाको गायो गावै ॥
कबहूँ श्याम कही नहिं ऐसी। कही आय व्रज में इन जैसी ॥
ऐसी बात सुनै को माई। उठत शूल सुनि सही न जाई ॥
कहत भोग तजि योग अराधो। ऐसी कैसे कहि हैं माधो ॥
जप तप संयम नियम अपारा। यह सब विधवा को व्यवहारा ॥
युग-युग जीवें कुँवर कन्हाई। शीश हमारे पर सुखदाई ॥
हमको नियम धर्म व्रत येहा। नँदनन्दनपद सदा सनेहा ॥
उद्धव तुम्हैं दोष को लावे। यह सब कुब्जा नाच नचावे ॥

दो० रहन देव ऐसे हमैं अवधि आशकी थाह। फिरि हमको पावें नहीं डारें सिंधु अथाह ॥

सो०लायोयुवतिनयोगजोयोगिनकेभोगतुम। हमतनुभरचोवियोगभयोअधिकदुखश्रवणसुनि॥

उसी समय राधिका बोली—

स० जो हरि जाय बसे मथुरा हमरे जिय प्रीति बनी रहि सोऊ।
ऊधो बड़ो सुख येहू हमैं अरु नीके रहैं वह मूरति दोऊ ॥
हमरे नाम की छाप पड़ी अरु अंतर बीच कहै नहिं कोऊ।
श्रीराधाकृष्ण सबै तौ कहैं अरु कूबरीकृष्ण कहै नहिं कोऊ ॥

दूसरी बोली—हे उद्धव! अब तक हम लोगों को श्यामसुन्दर के आने की आशा बनी थी सो तुमने यह योग व वैराग्य का सन्देशा सुनाकर हमें निराश किया! हम गँवारी अहीरियाँ गोरस बेचने के सिवा योग साधने का हाल क्या जानें। तुम दया की राह हमें अबला अनाथ समझकर अपने साथ श्यामसुन्दर के पास ले चलो।

दो०अधरअरुणमुरली धरे लोचन कमल विशाल। क्यों बिसरतउद्धवहमें मोहनमदनगोपाल॥

क० ऊधो तुम सुघर सिखावत हौ नीके योग हौं तो गति चाहत न काशी अविनाशी की।
ब्रह्मा की इन्द्र की उपेन्द्र की न चाहौं भूति वारिधि धनेश की दिनेश की न पाशी की ॥
तन मन नयन में पूरि रहे प्यारेलाल बाल कहा जानै गति शंकर उदासी की।
नाशी लोकलाज वृन्दावन के मवासी संग मेरी मति दासी भई कान्ह व्रजवासी की ॥

उद्धव व्रजबालों का वचन सुनते ही अपने ज्ञान का अभिमान भूलकर उन्हें उत्तर नहीं दे सके।

दो०योगकथायुवतिनकही मनही मन पछिताय। प्रेमवचनतिनके सुनत रहिगयेशीश नवाय॥

सो०तब जान्यो मनमाँह ये गुण हैं सब श्यामके। भेज्यो सुघर सुजान याही कारण के लिये ॥

उद्धव ने फिर ज्ञान की राह कहा—हे व्रजबालो! जिस तरह पानी पर

रेखा खींच देने से स्थित नहीं रहती उसी तरह संसारी व्यवहार स्वप्न के समान झूठा होता है, इसलिए तुम लोगों को चाहिए कि अपनी-अपनी आँखें बन्द करके हृदय में चतुर्भुजीरूप नारायणजी का ध्यान मन लगाकर करो तो तुमको परमेश्वर का दर्शन प्राप्त होगा। यह बात सुनकर एक गोपी ने कहा—हे उद्धव ! कदाचित् नन्दलालजी रूप व रेखा नहीं रखते थे तो यशोदा ने उनको किस तरह पालने में झुलाया, ऊखल से क्योंकर बाँधे गये थे, हमारा गोरस किस तरह चुराकर खाया। तुम्हारे झूठे ज्ञान को लेकर ओढ़ें या बिछावें। तुम अपने अज्ञान से हम सब अबला अनाथिनियों को योग व वैराग्य सिखलाते हो, तुम्हें कुछ लज्जा नहीं आती। दूसरी बोली—हे उद्धव ! एक तो हम श्यामसुन्दर के विरह में व्याकुल हो रही हैं, दूसरे तुम और ऐसी-ऐसी झूठी बातें सिखलाकर हमारे घाव पर नोन छिड़कते हो। मोहनप्यारे ने हम लोगों को इस तरह तज दिया कि जिस तरह साँप केंचुलि छोड़कर फिर उससे कुछ प्रयोजन नहीं रखता। दूसरी ने कहा—हे उद्धव ! कन्हैया ने दावानल, इंद्र के कोप और दैत्यों के हाथ से हमारे प्राण बचाकर यहाँ अनेक लीलाएँ कीं। उन्होंने परब्रह्म परमेश्वर का अवतार होकर राजा कंस की दासी को अपनी रानी बनाई, यह बात सुनकर हम लोगों को लज्जा आती है।

चौ० उद्धव कहाँ कंस की दासी। यह सुनि होत सकल व्रज हासी ॥

दो० गावत सब जग गीत अब वा चेरी के काज। उद्धव यह अनुचित बड़ो चेरीपति व्रजराज ॥

सो० हमें देत वैराग आपु तो दासी वश भये। चतुर चिचोड़त आग उद्धव यह अचरज बड़ो ॥

दूसरी बोली—हे उद्धव ! कदाचित् मोहनप्यारे को कूबड़ प्यारा हो तो हम लोग भी कुबड़ी बनकर मथुरा में चलें। अपनी टेढ़ी चाल दिखलाकर उन्हें फिर यहाँ ले आवें जिसमें कुबड़ी उनसे छूटे। हे उद्धव ! फिर कोई ऐसा दिन होगा जो मोहनप्यारे यहाँ आकर हम लोगों का दुःख छुड़ावेंगे। दूसरी बोली—अब मुझे वृन्दावन आने की आशा जाती रही।

दो० यहाँ चरावत थे सदा नन्दमहर की गाय। वहाँ जाय राजा भये माखनप्रभु यदुराय ॥

दूसरी ने कहा—हे उद्धव ! जब मोहनप्यारे ने हम गोपियों को छोड़ दिया तो अपना नाम गोपीनाथ किस वास्ते धराया और जब उन्होंने

कुबड़ी से प्रीति की तब फिर जग को दिखाने के लिए चिट्ठी व संदेशा भेजकर हमारे हृदय की दबी-दबाई आग क्यों सुलगाते हैं।

सो० उद्धव कहियो जाय अबहूँ चेरी को तजो। यह दुख सह्यो न जाय सवति कहावति कूबड़ी ॥

हे उद्धव ! इतनी बात मेरी ओर से कुब्जा को अवश्य कह देना कि श्यामसुन्दर की नई प्रीति पर तू मोहित हुई है, पर उनकी कठोरता का हाल भी सुन रख।

क० जाकी कोख जायो ताको कैद करवाय आयो धायकर मारी नारि निठुर मुरारि हैं।
जेती व्रजनारी तेती मिलिमिलि मारी अनमिलिहूँ मारी जो मिलिहैं ताहि मारि हैं ॥
सुनरी ए चेरी मैं तो तेरी सौं कहति वे तो सरस नयन हरि आँशुवनि ढारि हैं।
बड़े हैं शिकारी पर इन्हें न संभारी नारि मारिबे को नवल कन्हैया तलवारि हैं ॥

दूसरी बोली—हे उद्धव ! हम लोग अपना दुःख तुमसे कहाँ तक कहें। कदाचित् वह प्रथम से वसुदेव व देवकी के पास रहकर यहाँ न आते तो हम लोगों को क्यों इतना दुःख उठाना पड़ता।

चौ० करिकै ऐसी प्रीति कन्हाई। अब चितधरी महानिठुराई ॥
जब से व्रज तजि गये विहारी। तब से ऐसी दशा हमारी ॥

हे उद्धव ! उसी दिन से हम लोगों का खाना-पीना, हँसना-बोलना, सब सुख छूट गया। दिनभर उनके आने का रास्ता देखते और रात को तारे गिनते बीत जाता है। उस मोहनीमूर्ति की चर्चा व ध्यान के सिवा दूसरी बात हमें अच्छी नहीं लगती। ऐसे जीने से हम लोग मर जातीं तो उत्तम था।

दो० कहँलगिकहियेनिजव्यथाऔहरिकीनिठुराय। तापरलायेयोगतुमअबलन करनसहाय ॥
सो० कठिनविरहकी पीर जेहिव्यापैसोजानिहै। क्यों धरि हैं मन धीर सुनिकरवचनभयावने ॥

दूसरी बोली—हे उद्धव ! पहिले अक्रूर आकर श्यामसुन्दर को यहाँ से मथुरा में ले गया, सो उनके विरह में हम लोगों की यह गति हुई, अब तुम सगुणरूप की प्रीति छुड़ाकर इस तरह निर्गुणरूप का ध्यान करने के वास्ते हमें सिखलाते हो, जिस तरह कोई भूखे के आगे से भोजन की थाली छीनकर उसे मिट्टी खाने को कहे। जो श्यामसुन्दर को ज्ञान सिखाना था तो क्यों रात को वंशी बजाकर हम लोगों को घर से बुलाया और रासविलास करके हमारा तन व मन हर लिया। अब मथुरा में

जाकर ज्ञानी हुए हैं। जब तुम्हारा और श्यामसुन्दर का एक मत है तो तुम हमारी सहायता क्यों करोगे।

दो० मन की मनही में रही कहिये कहा विचार। हम गोहार जितते चहैं उतते आई धार ॥

सो० जानत हैं सब कोय जैसी हम सेवा करी। हम सहि लीनो सोय पावोगे अपनो कियो ॥

दूसरी ने कहा—हे उद्धव! शास्त्रानुसार गुरु अपने चेलों के कान में मंत्रोपदेश करते हैं, दूसरे से मंत्र नहीं कहला भेजते, कदाचित् उन्हें हम लोगों से योग सधवाना है तो आप यहाँ आकर वृन्दावन के कुंजों में ज्ञान सिखलावें।

दो० तब खेलतसौगन्द दे राख्यो कछुनबचाय। अब सीखे यह योग कहँ उद्धव कहियो जाय ॥

सो० हमको निर्गुण ज्ञान जहँ स्वारथतहँसगुणहैं। लिखिभेज्योनिरवान चाटैं सहतलगायकर ॥

दूसरी बोली—हे उद्धव! जिन सखियों के बालों में श्यामसुन्दर अपने हाथ से फुलेल डालकर फूलों से शिर गूँधते व अच्छा-अच्छा गहना व कपड़ा पहिनाकर उनके अंग पर अतर लगाते थे उन्हीं लोगों के अंग में भस्म लगाने, शिर पर जटा रखने और योग साधने के वास्ते कहला भेजा है। जिन कानों में अपने हाथ जड़ाऊ कर्णफूल पहिनाकर प्रसन्न होते थे उन्हीं कानों में अब मिट्टी की मुद्रा डालने को कहा है। जिस तनु पर हम लोगों को गोटे व किनारी की रँगी हुई सारियाँ पहिनाते थे उसी अंग पर गेरुआ वस्त्र पहिनने के वास्ते कहा है। जिस गले में श्यामसुन्दर अपना हाथ डालकर गले लगाते थे उस गले में अब सेल्ही पहिनने को आज्ञा दी है। यह कौन न्याय करते हैं।

दो० वहिगोकुलवहिकुञ्जवनवहीसखावहिठौर। यकउद्धवव्रजराज बिन भईं और की और ॥

क० याही कुञ्ज कुञ्जन मैं गुञ्जत भँवरभीर याही कुञ्ज कुञ्जन में अब सिर धुनत हैं ॥
याही रसना ते करी रस की रसीली बातें याही रसना ते अब गुनगन गुनत हैं।
आलम विहारी बिन हृदय अचेत भये येहो दई हित कहत कैसे बनत हैं ॥
जेही कान्ह नयनन के तारे हुए निशि दिन तेही कान्ह कानन कहानी अब सुनत हैं ॥

दूसरी ने कहा—

क० ओढ़िबे को कन्था अरु भसम रमाइबे को कानों के कुण्डल कर टोपियाँ बनावैंगी ॥
हाथ में कमण्डलु औ खप्पर भराइबे को आदेश आदेश करि शृंगियाँ बजावैंगी ॥
ऋद्धि दीनी कुब्जा को सिद्धि दीनी गोपिन को फिरैंगी दुआरद्वार अलख जगावैंगी ॥
एक बात उद्धवजी मन में विचार देखो येती व्रजबाला मृगछाला कहाँ पावैंगी ॥

दूसरी बोली—ऐ उद्धव ! जिस तरह ठग लोग पहिले बटोहियों के साथ लगकर विनयपूर्वक उससे प्रीति करके पीछे उसका सब धन लूट लेते हैं उसी तरह मोहनप्यारे ने प्रथम हम लोगों से प्रीति लगाकर हमारा तन व मन हर लिया, अब योग वैराग की छुरी मारकर हमारे प्राण लेना चाहते हैं।

दो० हरि हमसे ऐसी करी कपट प्रीति विस्तार। मुख से कुछनहिंकहिसकेंसमुझतबारम्बार।।

दूसरी बोली—ऐ उद्धव ! एक तो श्यामसुन्दर पहले से बड़े निर्दयी थे दूसरे तुम्हारे ऐसे कठोर सखा मिले, फिर क्यों ऐसा संदेशा न भेजें। तुम हम लोगों को ज्ञान-विज्ञान समझाकर योग साधने के वास्ते जो कहते हो सो हमें इन बातों से क्या प्रयोजन है, यह कर्म योगियों को चाहिए। और यह जो तुमने कहा कि सबके तनु में उन्हीं का प्रकाश रहता है, इस कारण तुम भी वही हो, फिर जिस तरह श्रीकृष्णजी ने गोवर्धन पहाड़ अपनी अँगुली पर उठाया था उसी तरह तुम भी यह पर्वत उठाकर मुरली बजाओ। जब तुम ऐसा नहीं कर सकते तो फिर क्यों तुमको उनके समान जानकर तुम्हारा ज्ञान सच्चा मानें। इसलिए हम लोग अच्छी तरह जानती हैं कि उनके समान कोई दूसरा नहीं है। तुम क्यों झूठ कहकर हम लोगों को धोखा देते हो। तुमसे हो सके तो उस चित्तचोर को यहाँ लिवा लावो। हमारा हृदय उस मोहनीमूर्ति के प्रेम से भर रहा है। दूसरी वस्तु योग व ज्ञान की वहाँ समा नहीं सकती, इसलिए हम लोगों से योग व वैराग्य साधा नहीं जायगा। यह चिट्ठी जहाँ से लाये हो उन्हीं को जाकर फेर दो। योग व वैराग्य वहीं साधकर यह सब ज्ञान कुब्जारानी को पढ़ावें। जिस तरह अंधे को शीशा देखने और ज्वर के रोगी को भोजन करने से कुछ सुख व गुण नहीं होता उसी तरह हमको योग सिखलाने से तुम्हारा कुछ अर्थ नहीं निकलेगा।

सो० देख मूढ़ चितलायकहँ परमारथकहँ विरह। राजरोग कफ जाय ताहिखवावत हौ दही।।

दूसरी बोली—हे उद्धव ! पहिले तुम व्रजबालों की दशा देखकर तब उन्हें योग व वैराग्य सिखलावो। जिस तरह डूबता हुआ मनुष्य पानी पर की फेन पकड़ने से नहीं बचता उसी तरह हम लोगों को जो

मोहनीमूर्ति के विरहसागर में गोता खा रही हैं, तुम्हारा ज्ञान उपदेश अच्छा नहीं लगता।

दो० हमबिरहिन बिरहाजरीं तुममति जारो अंग। सुखतो तबहीं पाइहैं जब नाचै हरिसंग॥

क० आयो-आयो भयो ऊधो अब व्रजमण्डल में राग में कुरागयोग रीति को सुनायो है॥
झोली झण्डा गुदड़ी औ भस्म मुद्रा कानन में हाथन में खप्पर ये स्वाँग ले दिखायो है॥
संयम नियम ध्यान धारना दृढ़ावत हो ब्रह्म को प्रकाश रसरास दरशायो है॥
कुबरी पै पढ़ि आयो वेद को पढ़ाय आयो रथ चढ़ि आयो अनरथ गढ़ि लायो है॥

दूसरी सखी बोली—हे उद्धवजी। तुम योग और ज्ञान की गठरी बाँध कर मथुरा से जो अपने शिर पर यहाँ ले आये हो, सो व्रजवासियों को योग व ज्ञान लेने की इच्छा नहीं है। तुम यह गठरी काशी में ले जाकर वहाँ के लोगों को, जो मुक्ति की चाह बहुत रखते हैं, दे आवो।

चौ० क्या हम करैं मुक्ति ले रूखी। अबला श्याम संग की भूखी॥

जिस तरह पियासा मनुष्य जब तक पेट भर पानी नहीं पीता तब तक उसकी पियास ओस चाटने से नहीं जाती उसी तरह मोहनप्यारे को देखे बिना हमारी आँखें नहीं मानतीं।

चौ० फिरि वह रूप प्रकट जब देखैं। जीवन सुफल तभी करि लेखैं॥

हे उद्धव! जब यह हमारा एक मन श्यामसुन्दर के चरणों में अटक गया तब योग व वैराग्य कौन साधे। मैं तुमको मोहनप्यारे का भक्त जानती थी, पर तुम्हारे ज्ञान सिखलाने से जो सगुणरूप व लीला छोड़-कर निर्गुणरूप व आकाश-पाताल का हाल बतलाते हो, मुझे जान पड़ा कि तुमको श्रीकृष्णजी की कुछ भक्ति व प्रीति नहीं है।

चौ० उद्धव हरि हैं ईश हमारे। सो अब कैसे जात बिसारे॥

दो० योग दीजिए लै तिन्हैं जिनकेमन दशबीस। कित डारत निर्गुण यहाँ उद्धव व्रज में खीस॥
योग कथा अब मति कहो उद्धव बारम्बार। भजे और नँदनंद तजि वाको है धिक्कार॥

जिस तरह हाथी कमल की नाल में नहीं बाँधा जाता उसी तरह समुद्ररूपी हमारा विरह चिनगारीरूप तुम्हारे ज्ञान से सूख नहीं सकता। देखो, जहाँ छः महीने की रात रासविलास में श्यामसुन्दर के साथ पल भर मालूम हुई थी वहाँ अब एक क्षण उनके वियोग में युग समान बीतता है। हमसे उन्होंने वृन्दावन आने के वास्ते कहा था, उसी आशा पर हम लोग जीती हैं।

चौ० उद्धव हृदय कठोर हमारे। फटे न बिछुरत नन्ददुलारे ॥

हमसे मछलियों को उत्तम समझना चाहिए, जो पानी से बिछुड़ते ही अपना प्राण छोड़ देती हैं।

दो०कहँ लगि कहिये आपनी उद्धव तुमसे चूक। श्यामविरह तनुजरत है सुनत न कोई कूक ॥

सो० उद्धव कहिये जाय मोहन मदनगुपाल सों। नयनन देखें आय एक बार ब्रज की दशा ॥

इसी तरह अनेक बातें कहकर गोपियों ने आँसुओं से उद्धव का चरण धोया और विलाप करके कहने लगीं—हे श्यामसुंदर! अब तुम्हारे विरह का दुःख हमसे सहा नहीं जाता, इसलिए अपनी मोहनीमूर्ति दिखलाकर हमारी चिन्ता हरो, नहीं तो हम लोगों के प्राण ले लो। आशा दुःखदायी होती है, निराश हो जाने से शोच नहीं रहता। ऐसा कहकर गोपियों ने उद्धव का हाथ पकड़ लिया और रासमण्डल का स्थान उन्हें दिखलाकर बोलीं—हे उद्धव! यह सब स्थान देखकर हमें एक क्षण वह मोहनीमूर्ति नहीं भूलती, सो तुम हमारा इतना संदेशा विनयपूर्वक मोहनप्यारे से कह देना कि तुम्हारे विरहसागर की लहर से शरीररूपी हमारा घर गिरने चाहता है, जल्दी आकर इसकी रक्षा करो।

दो०तुम हौ महा प्रवीण कहैं कहा समुझाय। माखनप्रभु से सबन की विनती कहियो जाय ॥

जब यह संदेशा कहती हुई सब व्रजबाला बौरहों के समान अचेत हो गईं तब उद्धव यह दशा देखते ही उन्हें दण्डवत् करके बोले—हे व्रजबालाओ! मनुष्यतनु पाने का फल तुम्हीं को प्राप्त है, जो आठों पहर उन आदि पुरुष, जिनके चरणों का ध्यान ब्रह्मादिक देवता अपने हृदय में रखते हैं, करती हो। तुम्हारी बड़ाई कोई नहीं कर सकता। वेद व शास्त्र में स्त्री को निषिद्ध कहते हैं, पर तुम्हारा ज्ञान देवतों से भी उत्तम है। वैकुण्ठनाथ जितनी प्रीति तुम लोगों से रखते हैं उतनी लक्ष्मीजी पर नहीं करते।

दो० जाविधि सुखतुमको दियो वृन्दावन के माहिं। स्वप्नेहू में लक्ष्मी वह सुख पावत नाहिं ॥

हे व्रजबालाओ! परमेश्वर मुझे भी एक गोपी का जन्म देते तो क्या अच्छी बात होती। अब मैं वृक्षादिक का जन्म लेकर यहाँ रहना चाहता हूँ, जिसमें तुम्हारे चरणों की धूरि मेरे शिर पर चढ़ा करे। तुम्हारा प्रेम देखकर देवता मोहित हो जाते हैं, मेरी क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारी स्तुति

कर सकूँ। जिस तरह श्रीकृष्णजी को परमेश्वर समान जानता हूँ उसी तरह तुम लोगों को भी उनसे विलग नहीं समझता। जो पदवी ब्रह्मादिक देवता बड़े परिश्रम से पाते हैं वह तुम लोगों को सहज में प्राप्त हुई, इसलिए तुम्हें उन्हीं का रूप समझना चाहिए।

दो० महा धन्य तुम गोपिका धन्य तुम्हारो नेम। माखनप्रभु गोपाल सों जिनको बाढ़ो प्रेम ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! इस बात में कुछ सन्देह मत समझो, जो मनुष्य अपना मन प्रेमपूर्वक परमेश्वर में लगावे वह उन्हीं का रूप होता है। देखो, गोपियाँ ब्राह्मण व क्षत्रिय कुल में नहीं थीं, उन्होंने वेद व पुराण नहीं सुना, किसी तीर्थ का स्नान करके कभी तप व जप भी नहीं किया, केवल श्रीकृष्णजी के चरणों में प्रीति रखने से इतनी बड़ी पदवी को पहुँच गईं। जिस तरह रुई का ढेर एक चिनगारी से जल जाता है उसी तरह उद्धव का ज्ञान व्रजबालों के सामने भूल गया। तब उद्धव बारम्बार अपना शिर गोपियों के चरणों पर रखकर कहने लगे—मैं तुम्हारे दर्शन से कृतार्थ हुआ। मनुष्य एक क्षण श्यामसुन्दर का स्मरण करने से मुक्ति पाता है, तुम लोग तो आठों पहर उनके ध्यान में रहती हो। मैं तुमको ज्ञान बतलाने आया था, सो तुमसे परम भक्ति सीख लिया। मुझे अपना दास समझकर मेरी सुधि करती रहना। हे राजन्! उस समय उद्धव प्रेम में डूबकर व्रजभूमि पर लोटने लगे और वृन्दावन के वृक्षों से गले मिलकर कहा कि तुम सब वृक्षों और पक्षियों का बड़ा भाग्य है जो तुमने यहाँ जन्म पाया। जिन परब्रह्म परमेश्वर का दर्शन ब्रह्मा व महादेव को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता सो उन्होंने व्रजभूमि में आकर तुम लोगों को बाललीला का सुख दिखलाकर अपना दर्शन दिया। इसी तरह उद्धवजी गोपियों के साथ जहाँ-जहाँ वृन्दावनविहारी ने लीला की थी वहाँ पर दो-दो, चार-चार दिन हरिचर्चा में मग्न रहे।

दो० ऊधो मन आनन्द अति लखिके प्रेम विलास। आया था दिन दोयको बीत गये षटमास ॥

सो० तब उपज्योमनसोचवचनकृष्ण के याद करि। मनमें भयोसँकोच श्यामबुलायेबेगिम्वहिं॥

यह सुनकर गोपियों ने कहा—हे उद्धव! तुमने हमारे भले के वास्ते ज्ञान

सिखलाया और हम लोगों ने प्रेमवश तुमको दुर्वचन कहा, सो बड़े लोग छोटों पर सदा से दया करते आये हैं, इस कारण हमारा अपराध क्षमा करके ऐसा उपाय करना जिसमें श्यामसुन्दर हम लोगों को दर्शन दें। हम लोगों की दशा तुम अपनी आँखों से देखे जाते हो, जैसा उचित जानना वैसा करना। यह भी मोहनप्यारे से कह देना कि हमारा अपराध क्षमा करके बाँह पकड़े की लज्जा रक्खें।

दो०प्रभु दीननपति दीनहित यही हमारी आस। कबहूँ दर्श दिखाय के हरिहैं लोचन प्यास॥

ऐसा कहकर जब राधा आदि गोपियाँ उद्धव को बड़े प्रेम से अपने घर लिवा ले आईं तब उद्धव ने भी उनका सच्चा प्रेम वैकुण्ठनाथ में देख कर उनके घर भोजन किया। उस समय गोपियाँ बोलीं—हे उद्धव! तुम वहाँ जाकर श्यामसुन्दर से कहना कि पहले तो तुम हमारा हाथ पकड़कर वृन्दावन की कुंजों में लिये फिरते थे अब राजगद्दी पाकर कुब्जा के कहने से हमें योग व वैराग्य लिख भेजा है, हम लोग आज तक गुरुमुख भी नहीं हुईं। योग व ज्ञान का हाल क्या जानें।

चौ० उनसे बालापन की प्रीति। जानैं कहा योग की रीति॥
उद्धव यों कहियो समुझाय। प्राण जात हैं राखैं आय॥

सो०ऐसे कहि व्रजवाम भईं विरहसागर मगन। उद्धव करि परणाम आये यशुमति नन्द के॥

फिर उद्धव ने नन्द व यशोदा से कहा कि तुम सब व्रजवासी धन्य हो, जो त्रिलोकीनाथ ने तुमको बाललीला का सुख दिखलाया और मैं भी तुम लोगों का प्रेम देखकर इतने दिन यहाँ रहा, अब मुझे विदा करो तो वहाँ जाकर तुम्हारा संदेशा मोहनप्यारे से कहूँ। यह वचन सुनते ही यशोदा माखन, घी, मिठाई आदि अनेक वस्तुएँ श्याम व बलराम के लिए देकर बोलीं, हे उद्धव! तुम देवकी बहिन से यों कहना कि मेरे राम व कृष्ण को फुसलाकर वहाँ रख न छोड़ें, जल्दी यहाँ भेज दें। मैं उनको देखे बिना दिन-रात व्याकुल रहती हूँ। मोहनप्यारे को बहुत आशिश देकर मेरी ओर से यह कह देना कि तुम्हारे बिना यशोदा बड़ा दुःख पाती है।

चौ० इतनी दया मातु पर कीजै। एक बार फिर दर्शन दीजै॥

सो०दई यशोमतिमाय मुरली ललित गुपालकी। उद्धव दीजौजाय प्यारी यह अति लालकी॥

नन्दजी ने कहा—हे उद्धव! तुम आप बुद्धिमान् होकर यहाँ की दशा

देखे जाते हो, हम अधिक क्या कहें, पर मेरी ओर से मोहनप्यारे से इतना कह देना कि एक बेर दर्शन देकर ब्रजवासियों का दुःख हरें।

दो०मातु यशोदा नन्दजू तनिकधरतनहिं धीर। कहत संदेशो श्यामको भरत नयन में नीर॥
नन्द दोहनी भरि दई कहेउ नयनभरिनीर। वा धवरी को दूध यह जों भावतबलबीर॥

यह संदेशा कहकर नन्द और यशोदा रोने लगे और उद्धव उन्हें धैर्य देकर रोहिणी को साथ लेकर वहाँ से चले। सब ग्वालबालों और गोपियों ने राम व कृष्ण के लिए अनेक वस्तुएँ देकर कहा कि हे उद्धव! तुम हमारी ओर से दोनों भाइयों को हाथ जोड़कर इतना संदेशा कह देना कि आठों पहर हमारा मन तुम्हारे चरणों में लगा रहता है इसलिए दयालु होकर ऐसा वरदान दीजिए कि जन्म-जन्मान्तर हमारे हृदय से तुम्हारा ध्यान न छूटे। यह सुनकर उद्धव बोले कि हे ब्रजवासियों! तुम्हें ऐसी सच्ची प्रीति व भक्ति परमेश्वर की है कि संसारी मनुष्य तुम्हारा नाम लेने व दर्शन करने से भवसागर पार उतर जावें, तुम्हारी मुक्ति होने में कुछ संदेह नहीं, तुम लोग जीवन्मुक्त हो। इसी तरह उद्धवजी सब छोटे बड़ों को समझा-बुझाकर आशा-भरोसा देकर मथुरा में पहुँचे और मोहनप्यारे को दण्डवत् करके मुरली आदि सब वस्तुएँ उनके सामने रख दीं। श्याम व बलराम उनको देखकर उठ खड़े हुए और बड़े प्रेम से गले मिलकर बोले—हे उद्धव! तुमने वृन्दावन में बहुत दिन लगाये। कहो, सब ब्रजवासी आनन्द से हैं, कभी हमारी याद करते हैं या नहीं।

चौ० नन्दबबा अरु यशुमति माय। कहौं कौनविधि देख्यो जाय॥
बसत प्राण मेरे में जिनके। कैसे दिन बीतत हैं तिनके॥
कहो दशा ब्रज गोपिन केरी। जिनको प्रीति निरन्तर मेरी॥
उद्धव समुझत ब्रज की बाता। भये प्रेमवश पुलकित गाता॥

यह सुनते ही उद्धव ने श्यामसुन्दर से हाथ जोड़कर विनय किया—हे वैकुण्ठनाथ! वृन्दावन की महिमा व ब्रजवासियों का प्रेम मुझसे कुछ कहा नहीं जाता। आपने बड़ी दया करके मुझे वृन्दावन में भेजा, उनका दर्शन पाकर कृतार्थ हो आया। सब गोपी व ग्वाल आठों पहर तुम्हारे चरणों का ध्यान अपने हृदय में रखकर केवल अवधि की आशा पर जीते हैं। हे दीनानाथ! जब मैं सन्ध्या समय वृन्दावन में पहुँचा तब ग्वाल-

बाल दूर से मेरा रथ देखते ही तुम्हें समझकर दौड़े हुए मेरे पास आये। जब मुझे रथ पर बैठे देखा तब आँखों में आँसू भरकर चुप हो रहे। यशोदा तुम्हारे विरह में आठों पहर यही पछिताती हैं कि मैंने श्यामसुन्दर त्रिलोकीनाथ को नहीं पहिचानकर ऊखल से बाँध दिया था, सो अब मनहरणप्यारे बिना सारा व्रज सूना हो गया।

चौ० दशरथ प्राण तजे सुत लागी। मैं देखत ही रही अभागी ॥

दो० यद्यपिमैंबाँध्योबहुत तुमबिनकछुनसोहात। उनकीदशाविलोकिम्वहिंयुगसमबीतीरात ॥

जब प्रातःसमय यमुना किनारे स्नान करने गया तब राधा आदि गोपियों ने मुझे आपका सेवक समझते ही बड़े आदर से बैठाकर तुम्हारी कुशल पूछी और मैंने तुम्हारी चिट्ठी सुनाकर उनको ज्ञान व योग अच्छी तरह समझाया, पर उन्होंने मेरा कहना सच न मानकर सब दोष कुब्जा को लगाया और सब व्रजबाला तुम्हारे प्रेम में डूबकर इस तरह बौरहों के समान रोने लगीं कि मेरा सब ज्ञान व योग उनके सामने भूल गया और प्रेमभक्ति मैंने उनसे पाई।

दो० गही एकही बात उनमेटि वेदविधि नीति। गोप वेष भजि साँवरे रहैं विश्वभर जीति ॥

सो०नहिं सीखें कछुज्ञान जो विधि जाहिं सिखावने। तुमहूँबड़े सुजान वहाँ जाव तो जानिहो ॥

जिस तरह हरिण अपने गोल से अलग होकर चौकड़ी भूल जाता है उसी तरह उन का प्रेम देखकर मेरे ज्ञान का अभिमान टूट गया। मैंने छःमहीने रहकर वहाँ का हाल देखा तो सब वृन्दावनवासियों को तुम्हारे ध्यान व चर्चा में लीन पाया। वहाँ जाने से मैं भी उनके समान होकर यहाँ का आना भूल गया। हे वासुदेव महाराज! आपने क्यों ऐसी कठोरता उनसे की है। तुम्हारी माया को तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं जान सकता।

दो०निगमकहत वश भक्त केपूरणसबसुखसाज। करि सुदृष्टिव्रज देखिये बाँह गहे की लाज ॥

सो०बहुत दुखिततनुछीनव्रजवासीतुमविरहवश। तुमतनमनहरिलीनरटतचातकी लौं सबै ॥

हे महाप्रभु! राधिका की दशा आपसे क्या कहूँ। वह सब शृंगार छोड़कर मैली धोती पहिने हुए दिन-रात तुम्हारे विरह में रोया करती है। बहुत दुबली हो गई है, पहिचानी नहीं जाती। बौरहों के समान कभी श्रीकृष्ण को पुकारती, कभी नख से पृथ्वी खोदती है। उसके घरवाले अनेक तरह से समझाते हैं, पर किसी का कहना उसके हृदय में प्रवेश

नहीं करता। उसके प्राण निकलने में सन्देह नहीं, पर तुम जो कह आये हो कि हम फिर आवेंगे, उसी आशा पर वह आज तक जीती हैं।

चौ० अचरज मोहिं बड़ो यह आवै। प्रभु तुमको कैसे यह भावै॥
करुणामय प्रभु अन्तर्यामी। भक्तनहित धारेउ तनु स्वामी॥
बेगि कृपा करि दर्शन दीजै। व्रजजन मरत जिला सब लीजै॥

दो० यहमुरलीदै बिलखिकै कहेउ यशोमतिमाय। एक बार हित नन्दके दर्श दिखावो आय॥

सो० जिन गौवन को श्यामआपचराई प्रीतिकरि। बहुरि न आँईधामबिडरीकुंजन में फिरत॥

हे दीनदयालु! मैं अधिक कहाँ तक कहूँ आप अन्तर्यामी सबके मन का हाल जानते हैं। जब यह बात सुनकर श्यामसुन्दर को व्रजवासियों की प्रीति याद आई तब आँखों में आँसू भरकर रोने लगे।

दो० व्रजवासिन के प्रेम में माखन प्रभु बलवीर। भरत उश्वास उदास चित भरे नयन में नीर॥

केशवमूर्ति ने मुरली को उठाकर छाती से लगा लिया और आँखें बन्द करके व्रजवासियों के ध्यान में डूब गये। फिर व्रज का नाम लेकर ठण्ढी श्वासें लेते और पीताम्बर से आँसू पोंछते हुए बोले—हे उद्धव! तुम अच्छी तरह सबको ज्ञान सिखा आये?

चौ० मनमें यों प्रभु कियो विचारा। व्रजभक्तन मम रूप अधारा॥
मेरे मुक्ति बड़ी निधि जोई। सो व्रजवासी लेत न कोई॥
ताते जों जिनके मन भावै। सोई मोहिं करत बनि आवै॥
भक्ताधीन जो परम हमारे। सो व्रजवासी हमको अति प्यारे॥
सदा बसत याते व्रज माहीं। इन सम मोहिं और हित नाहीं॥

दो० मनकरि हरिव्रजमें रहैं मिलिव्रजवासिन साथ। तन धरि देवनकाजहित भये द्वारकानाथ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उस समय ब्रह्मा ने नारद से कहा देखो, जिस परब्रह्म परमेश्वर के दर्शन शिवजी के ध्यान में जल्दी नहीं मिलते वही त्रिलोकीनाथ व्रजनारियों के लिए रोते हैं। वेद की ऋचाओं ने आकर गोपियों का जन्म लिया था।

दो० परसै उनकी चरणरजवृन्दावन के माहिं। सोऊगति उनकी लहै यामें संशय नाहिं॥

हे राजन्! उनका बड़ा भाग्य समझना चाहिए जो लोग वृन्दावन की रज अपने माथे पर चढ़ाते हैं। जब व्रज का हाल सुनकर श्यामसुन्दर व बलराम उदास हो गये तब उद्धव श्यामसुन्दर से विदा होकर वसुदेव-देवकी के पास पहुँचे और नन्द व यशोदा का संदेशा उनसे कहकर

अपने घर गये। रोहिणीजी श्याम व बलराम से भेंट करके राजमन्दिर में गईं। राम व कृष्ण ने उस दूध व मक्खन आदि को, जो नन्द व यशोदा ने भेजा था, बड़ी प्रीति से खाया और उद्धवजी को भी उसमें से भेजवा दिया।

अड़तालीसवाँ अध्याय।

कुब्जा और अक्रूर के घर पर श्यामसुन्दर का जाना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जिस दिन से मुरलीमनोहर ने कुब्जा के घर जाने का करार किया था उसी दिन से वह नित्य फूलों की शय्या बिछाकर मोहनप्यारे की आशा देखा करती थी। एक दिन श्रीकृष्णजी भक्तवत्सल अन्तर्यामी ने उसका प्रेम देखकर विचारा कि हमने कुब्जा से कहा था कि कंस को मारकर तेरे घर आवेंगे सो अभी तक वह वचन पूरा नहीं हुआ, इसलिए वहाँ जाना चाहिए। ऐसा विचारकर उद्धव को साथ लेकर कुब्जा के घर गये।

चौ० जब कुब्जा जान्यो हरि आये। पीताम्बर पाँवड़े बिछाये।
अति आनन्द गई उठि आगे। पूरबजन्म पुण्य सब जागे॥

जब श्रीकृष्णजी सूर्य से अधिक तेजवान् रूप बनाये हुए कुब्जा के घर पहुँचे तब उनके प्रकाश से वह रत्नजटित स्थान जगमगाने लगा। कुब्जा ने बड़ी भक्ति व प्रीति से उनको जड़ाऊ चौकी पर बैठाया और उद्धव को बैठने के लिए आसन दिया। कुब्जा मोहनप्यारे के कमलरूपी चरण गोद में लेकर बड़े प्रेम से दाबने लगी।

दो० आसपास सज साजि के महाराज के काज। आनँद सों मन में कहैं धन्य भाग्य है आज॥

फिर कुब्जा ने केशवमूर्ति के चरण धोकर चरणामृत लिया और बहुत उत्तम भूषण व वस्त्र जो बनवा रक्खे थे उन्हें पहिनाकर इतर व चन्दन उनके अंग में मल दिया। छत्तीस प्रकार के व्यंजन उनको खिलाकर पान व इलायची सामने रक्खा। फिर श्यामसुन्दर को रत्नजटित पुष्पों की शय्या पर ले जाकर बैठाया।

दो० फिर कुब्जा अस्नानकरिपहिरचोचीरसुरंग। रत्नजटित भूषणसजेनखशिखलौंसबअंग॥

जब वह सोलहों शृंगार करके बड़े प्रेम से श्यामसुन्दर के निकट आई

तब श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्दकन्द सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाले कुब्जा का हाथ प्रीतिपूर्वक धरकर अपनी शय्या पर लेटा लिया और उसकी इच्छा पूर्ण करके लोक व परलोक दोनों जगह का सुख उसे दिया।

दो० टेढ़ी से सीधी करी दियो रूप अभिराम। दासी से रानी भई पूजी सब मन काम॥

हे राजन्! देखो जिस पदवी को योगी और ऋषीश्वर बड़े तप व जप करने से भी जल्दी नहीं पहुँच सकते वह फल कुब्जा ने एक दिन के चन्दन लगाने से सहज में पाया। जो लोग नित्य विधिपूर्वक नारायणजी का पूजन करते हैं उनको न मालूम कैसी पदवी मिलेगी। अपना मनोरथ प्राप्त होने के उपरांत कुब्जा ने श्यामसुन्दर से हाथ जोड़कर विनय किया—हे त्रिलोकीनाथ! तुम्हारी मोहनीमूर्ति देखने की मुझे आठों पहर अभिलाषा बनी रहती है, इसलिए मैं चाहती हूँ कि कुछ दिन यहाँ रहकर मुझे सुख दीजिए। केशवमूर्ति बोले कि तू धैर्य रख, जब मुझे याद करेगी तब मैं तेरे घर आया करूँगा।

चौ० फिर उठि उद्धव के ढिग आये। भये लाजवश नयन नवाये॥

जब मोहनप्यारे उद्धव समेत अपने स्थान पर गये तब मथुरावासियों ने यह हाल सुनकर कुब्जा के भाग्य की बड़ाई की।

चौ० धनि धनि कुब्जा हरि की रानी। धनि धनि कृष्ण प्रीति करि मानी॥
सदा रहै हरि की यह रीती। मानत एक भक्त से प्रीती॥
धनि धनि चन्दन अंग लगायो। धनि धनि भवन जहाँ हरि आयो॥

फिर एक दिन केशवमूर्ति ने उद्धव से कहा कि तुम स्त्री की भक्ति देख चुके, अब चलो एक पुरुष का प्रेम दिखलावें। ऐसा कहकर मोहन-प्यारे बलरामजी से बोले—हे भाई! हमने अक्रूर के घर जाने के लिए करार किया था, सो आज तक नहीं गये। अब वहाँ चलकर अक्रूर को हस्तिनापुर भेजकर युधिष्ठिर आदि अपने भाइयों की सुधि मँगाना चाहिए ऐसा कहकर बलभद्र व उद्धव समेत अक्रूर के स्थान पर गये। उन्हें देखते ही अक्रूर ने आगे से आकर अपना शिर हरिचरणों पर रख दिया और मुरलीमनोहर ने उसका शिर उठाकर अपनी छाती में लगा लिया। फिर अक्रूर अपना भाग्य उदय समझकर बड़े प्रेम व भक्ति से श्याम व

बलराम व उद्धव को घर के भीतर लिवा ले गये और दोनों भाइयों को जड़ाऊ चौकी पर बैठाकर उनके चरण धोये और अपनी स्त्री समेत चरणामृत लेकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की। सुगन्ध के लिए अगर आदि अपने घर में जला दिया। छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन सोनहली थालियों में लाकर उनके सामने रक्खा। जब श्यामसुन्दर ने उसकी सच्ची भक्ति व प्रीति देखकर बलरामजी व उद्धव समेत आनन्दपूर्वक भोजन किया तब अक्रूर पान व इलायची उनके सामने रखकर दोनों भाइयों के चमर हिलाने लगा। उस समय मोहनीमूर्ति को टकटकी बाँधकर देखने से अक्रूर को ऐसा प्रेम उत्पन्न हुआ कि वह वृन्दावनविहारी का चरण पकड़कर अपनी आँखों में मलने लगा। जिस तरह परम दरिद्री बहुत धन पाकर प्रसन्न होता है उसी तरह अक्रूर को मोहनप्यारे के आने से परम हर्ष प्राप्त हुआ और प्रेम के आँसू बहने लगे।

दो०तब अक्रूर कर जोरिकै अस्तुति कही सुनाय। तुमतो पुरुष प्रधानहौ माखनप्रभु यदुराय॥

फिर अक्रूर ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनानाथ! तुम उत्पन्न होने और मरने से रहित हो। तुम्हारे आदि अन्त का भेद कोई नहीं जान सकता, सो मेरी दण्डवत् आपको पहुँचे। तुम रजोगुण से संसार की उत्पत्ति, सतोगुण से पालन तमोगुण से नाश करते हो। तीनों लोकों का व्यवहार अपनी माया से प्रकट करके तुम उससे विलग रहते हो। संसारी मायामोह में फँसनेवाला मनुष्य भवसागर पार नहीं उतरता। तुम्हारी कृपा के बिना मुक्ति मिलना बहुत कठिन है। नारद मुनि, सनकादिक ऋषीश्वर, ध्रुव, प्रह्लाद और अम्बरीष आदि हरिभक्त केवल तुम्हारी दया से इतनी बड़ी पदवी को पहुँचे हैं। गरुड़ सब पक्षियों के राजा तुम्हारे वाहन हैं। तुम सदा शेषनाग के मस्तक पर विराजते हो। गंगाजी तुम्हारे चरण का धोवन हैं वे तीनों लोकों को तारती हैं। पाँचों तत्त्व तुमसे उत्पन्न हुए हैं। चारों वेद तुम्हारी श्वास हैं। तुम्हारी दया के बिना तुमको कोई पहिचान नहीं सकता। तुमने केवल पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी इच्छा से सगुण अवतार लेकर अनेक दैत्यों और राक्षसों को मारा है। और भी बहुत से दैत्यों व अधर्मी राजों को सेना

समेत मारोगे। मैं तुम्हारा पूजन व स्तुति करने की सामर्थ्य नहीं रखता, पर अपने भाग्य को धन्य समझता हूँ जो आपने दया करके मुझे दर्शन दिया और इस झोपड़ी को अपने चरणों से पवित्र किया। जो कोई विरक्त होकर तुम्हारा ध्यान व स्मरण प्रीति के साथ करता है उस पर तुम दयालु होकर अर्थ धर्म काम मोक्ष उसे देते हो।

दो० माखनप्रभु गोपाल सों जो राखत हैं हेत। अपने चारों हाथ सों चार पदारथ देत ॥

जैसे कुब्जा के रूप को देखकर उसकी इच्छा पूर्ण की वैसे मुझ पर भी दयालु होकर ऐसा ज्ञान दो कि मैं आठों पहर तुम्हारे चरणों का ध्यान रखकर आवागमन से छूट जाऊँ। जब यह स्तुति सुनकर केशवमूर्ति ने अक्रूर से वरदान माँगने के लिए कहा तब वह हाथ जोड़कर बोला—महाराज! मैं यही चाहता हूँ कि स्त्री व पुत्रों की प्रीति मेरे मन से छूटकर तुम्हारे चरणों में भक्ति उत्पन्न हो। श्यामसुन्दर ने उसे इच्छापूर्वक वरदान देकर कहा कि साधु व महात्मा की संगत करने से तुम्हारा चित्त शुद्ध हो जायगा। फिर मोहनप्यारे अपनी माया से अक्रूर का ब्रह्मज्ञान हरकर बोले—हे चचा! तुम यदुकुल में श्रेष्ठ और हमारे पिता के तुल्य हो। इतनी विनय हमारी क्यों करते हो। तुम्हारी सेवा व स्तुति करना हमको उचित है। मैं आपके दर्शन के लिए आया हूँ। जब यह मायारूपी वचन सुनकर अक्रूर का ज्ञान भूल गया तब उसने श्याम व बलराम को वसुदेवजी का पुत्र जानकर बड़े प्रेम से गोद में उठा लिया और बड़े हर्ष से उन्हें प्यार करने लगा। तब मोहनीमूर्ति बोले—हे चचा! तुम्हारे पुण्य व प्रताप से दैत्य लोग मारे गये, पर एक बात का सोच मुझे बना है सो आप दया करके छुड़ा दीजिए। मैं सुनता हूँ कि जब से राजा पाण्डु हमारे फूफा वैकुण्ठ को सिधारे तब से राजा दुर्योधन युधिष्ठिर आदि मेरे भाइयों और कुन्ती मेरी फूफू को बहुत दुःख देता है, सो आप हस्तिनापुर जाइए और उनको धैर्य देकर वहाँ की कुशल ले आइए। हमारा मन उनके लिए बहुत उदास रहता है। जब अक्रूर उनकी आज्ञानुसार हस्तिनापुर को गया तब श्याम व बलराम उद्धव समेत अपने घर आये।

उंचासवाँ अध्याय।

अक्रूर का हस्तिनापुर में पहुँचना और पाण्डवों का समाचार ले आना।

शुकदेवजी ने कहा हे—परीक्षित! जब श्यामसुन्दर ने बहुत-सी वस्तुएँ कुन्ती और युधिष्ठिर आदि के वास्ते देकर अक्रूर को विदा किया तब वह रथ पर बैठकर कई दिन में हस्तिनापुर पहुँचे। नगर के बाहर राजा पाण्डु और उनके पुरुषों के बनवाये हुए तालाब, बावली, बाग और देवस्थान देखकर बहुत प्रसन्न हुए। जब वह रथ से उतरकर राजा दुर्योधन व विदुर के पास गये तब सब लोगों ने अक्रूर को यादवकुल में श्रेष्ठ समझकर सम्मानपूर्वक बैठाया। उस समय अभिमानी दुर्योधन ने अक्रूर से यह व्यंग्य वचन कहा—

चौ० नीके शूरसेन वसुदेव। नीके हैं मोहन बलदेव॥
उग्रसेन राजा के हेत। और न काहू की सुधि लेत॥
बेटा मारि करत हैं राज। तिन्हैं न काहू से है काज॥

यह सुनकर अक्रूर चुप हो रहा। उसने मन में विचारा कि इन अधर्मियों की सभा में मुझसे दुर्योधन का कठोर वचन नहीं सहा जायगा, इसलिए यहाँ बैठना न चाहिए। ऐसा विचारकर अक्रूर वहाँ से उठ खड़ा हुआ और विदुरजी को साथ लेकर युधिष्ठिर के घर चला गया। वहाँ क्या देखा कि कुन्ती अपने पति राजा पाण्डु के सोच में उदास बैठी है। अक्रूर ने कुन्ती के चरणों पर शिर रखकर श्यामसुन्दर की भेजी हुई सौगात सामने धर दी और युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों को गोद में उठाकर बहुत प्यार किया। जब कुन्ती ने आदरपूर्वक अक्रूर को अपने पास बैठाया तब अक्रूर ने कुन्ती से कहा कि विधाता से किसी का कुछ वश नहीं चलता। सदा कोई अमर नहीं रहता। संसार में जन्म लेकर दुःख व सुख दोनों भोगने पड़ते हैं, इसलिए सोच करने से कुछ लाभ नहीं है। केवल शरीर दुःख पाता है, यह सुनकर कुन्ती ने अपने मन को धैर्य दिया और वसुदेव आदि की कुशल पूछकर बोले—हे अक्रूर! कभी श्याम व बलराम मुझे व युधिष्ठिर आदि अपने पाँचों भाइयों को याद करते हैं या नहीं। मेरे बेटों की रक्षा, जो यहाँ दुःखसागर में पड़े हैं, कब आकर करेंगे।

दो० मम पुत्रन को तेज बल वर्णंत सब संसार। दुर्योधन सुनिकै कुढ़ै दुर्मति अधम गँवार॥

इसलिए अब मुझसे अन्धे धृतराष्ट्र का दुःख देना, जो अपने पुत्र दुर्योधन की सम्मति से काम करता है, सहा नहीं जाता। दुर्योधन दिन रात मेरे बेटों के प्राण लेने के उपाय में रहता है। एक बेर उसने भीमसेन को विष का लड्डू खाने के लिए भेजा, फिर उन्हें लाह के कोट में रखकर आग लगवा दी। पर नारायणजी की दया से दोनों बेर उनके प्राण बचे। जब कौरव लोग इस तरह मेरे बेटों से शत्रुता रखते हैं तो वह उनके हाथ से किस तरह जीते बचेंगे। यही सोच आठों पहर मुझे लगा रहता है। जिस तरह बकरी भेड़ियों के गोल में अपने प्राण के लिए डरा करती है, हरिणी अपने झुण्ड से विलग होकर सुख नहीं पाती, साँप घर में रहने से भय बना रहता है, वही दशा मेरी रहती है। यहाँ से भाग भी नहीं सकती। श्रीकृष्णजी त्रिलोकीनाथ ने सब जीवों का दुःख दूर करने के लिए सगुण अवतार लिया है, फिर मेरे पुत्रों का दुःख, जो बिना बाप के हैं, क्यों नहीं हरते हैं। आज तक अपने को बिना वारिस के समझती थी, पर अब श्यामसुन्दर के सुधि लेने से मुझे मालूम हुआ कि मेरा भी कोई सहायक है। जिस तरह मोहनप्यारे ने कंसादिक अधर्मियों को मारकर अपने माता-पिता को सुख दिया उसी तरह मेरी रक्षा भी वही करेंगे। हे अक्रूर! अपना दुःख कहना किसी से अच्छा नहीं होता, मैं तुमको अपना जानकर सब हाल कहती हूँ। जिस तरह ग्रहण लगते समय राहु व केतु चन्द्रमा व सूर्य को ग्रस लेते हैं उसी तरह मेरे पुत्र दुर्योधन आदि अधर्मियों के घेरे में पड़े हैं। हे अक्रूर! तुम मेरी और कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को अशीश देकर कह देना कि यह बड़े सोच की बात है, जो मैं तुमसा भतीजा पाकर संसारी दुःख से छुट्टी न पाऊँ। मुझे महादुःखी व दीन जानकर मेरा कष्ट हरो।

दो० मेरी औ मम सुतन की तुमहीं को है लाज। और शरणसूझै नहीं माखनप्रभु व्रजराज॥

हे राजन्! अक्रूर हरिभजन के प्रताप से होनहार के जाननेवाले यह बात सुनते ही आँखों में आँसू भरकर बोले—तुम किसी बात का शोच मत करो, तुम्हारे पाँचों पुत्र श्रीकृष्णजी की दया से अपने शत्रुओं को जीत

कर बड़े प्रतापी राजा होंगे। श्याम व बलराम ने यह संदेशा तुम्हें कहा है कि फूफू किसी बात की चिन्ता न करें, मैं जल्दी उनके पास आता हूँ।

दो०कुन्ती सों याविधि कह्योसोचोमतिमनमाहिं । माखनप्रभु जा ओरहैं ताको भय कछु नाहिं ।।

जब अक्रूर इसी तरह कुन्ती व युधिष्ठिर आदि को धैर्य देकर वहाँ से विदा हुए और विदुर को साथ लिये हुए हस्तिनापुरवासियों से युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों का चलन व व्यवहार पूछने लगे तो सबका मत यह पाया कि राजगद्दी युधिष्ठिर को हो। फिर अक्रूर ने विदुर समेत धृतराष्ट्र के पास जाकर कहा—महाराज! तुमने कौरवकुल में श्रेष्ठ होकर अपनी बड़ाई क्यों खो दी। राजा पाण्डु अपने भाई की गद्दी लेकर युधिष्ठिर आदि अपने भतीजों को, जो बिना बाप के हैं, क्यों दुःख देते हो। तुम ज्ञानवान् होकर दुर्योधन आदि अपने अधर्मी बेटों की सम्मति से क्यों ऐसा पाप करते हो। मनुष्य अकेला उत्पन्न होता है और मरते समय कोई उसके साथ नहीं जाता। जिनके लिए यह सब पाप बटोरते हो वह परलोक में तुम्हारे काम न आवेंगे और इस अधर्म करने के बदले तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा।

चौ० लोचन गये न सूझै हिये। कुल बहि जाय पाप के किये ।।

हे धृतराष्ट्र! तुमने नहीं सुना कि जो राजा अपनी प्रजा व परिवार को समान न देखकर सबका पालन बराबर नहीं करता वह अवश्य नरक भोगता है। संसारी व्यवहार स्वप्न के समान झूठा है। मरने के उपरान्त केवल भलाई व बुराई रह जाती है। जो लोग संसारी व्यवहार झूठा समझकर किसी जीव को दुःख नहीं देते वही लोग जगत् में यश पाकर अन्त समय मुक्त होते हैं। इसलिए तुम्हें अपने बेटे व भतीजों में कुछ भेद न समझकर युधिष्ठिर आदि को दुःख देना न चाहिए। तुम्हारे बेटे तुमको स्वर्ग में न ले जायेंगे और भतीजे नरक में न ढकेलेंगे। नरक व स्वर्ग अपनी करणी से मिलता है। मैं तुम्हारे कल्याण के लिए धर्म की बात कहे देता हूँ। इसी के अनुसार करने में तुम्हारा यश होगा। कदाचित् ऐसा नहीं करोगे तो पीछे से तुम्हें पछताना पड़ेगा।

दो०याते तजोअधर्मसबचलो धर्म की रीति। जिनकी नीति अनीति है तिनकी होय न जीति ।।

यह सुनते ही धृतराष्ट्र अक्रूर का हाथ पकड़कर बोले—हे भाई! तुम

यह अमृतरूपी व मंगलकारी बात हमारे लिए बहुत अच्छी कहते हो, और मैं भी समझता हूँ कि श्रीकृष्णजी ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए जन्म लिया है। भला व बुरा करने की सामर्थ्य उनमें है। जो वे चाहेंगे सो होगा, उनकी इच्छा प्रबल है, पर मैं क्या करूँ, तुम्हारा उपदेश हृदय में नहीं ठहरता, बिजली की तरह चमककर निकल जाता है। दुर्योधन आदि हमारा कहना नहीं मानते, अपने मन का काम करते हैं, इसलिए मैं उनकी बातों में कुछ नहीं बोलता। अकेला बैठा हुआ परमेश्वर का भजन करता हूँ। तुम मेरी दण्डवत् श्रीकृष्णजी को कह देना। यह सुनकर अक्रूर ने कहा—हे धृतराष्ट्र! परमेश्वर की माया बड़ी बलवान् है, जो मेरा उपदेश तुम्हें नहीं लगता, न मालूम वैकुण्ठनाथ की क्या इच्छा है। ऐसा कहकर अक्रूर धृतराष्ट्र को दण्डवत् करके उठ खड़ा हुआ और कुन्ती के घर चला गया। उसे धैर्य देकर रथ पर चढ़ा और मथुरा को चला।

दो० विदुरभक्त से विदा ह्वै कुन्ती सों करजोर। पाण्डुसुतनको देखिकै चले मधुपुरी ओर ॥

अक्रूर ने मथुरा में पहुँचते ही राजा उग्रसेन व वसुदेवजी के सामने श्याम व बलराम से हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनानाथ! मैंने हस्तिनापुर में जाकर देखा तो तुम्हारी फूफू व युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों को दुर्योधन के हाथ से बहुत दुःखी पाया। मैं अधिक क्या कहूँ, आप अन्तर्यामी सब हाल जानते हैं। कौरवों का अधर्म आपसे छिपा नहीं है। जब ऐसा कहकर अक्रूर अपने घर चला गया तब श्रीकृष्णचन्द्र वैकुण्ठनाथ संसारी मनुष्यों की तरह पहिले उदास हो गये, फिर बलभद्रजी से सम्मत करके उसी समय प्रण किया कि महाभारत कराके पृथ्वी का भार उतारूँगा। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जो मैंने वृन्दावन व मथुरा की लीला तुझको सुनाई यह पूर्वार्ध कथा कही है अब उत्तरार्ध कथा श्रीद्वारकानाथ की कृपा से सुनाऊँगा।

पचासवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर व जरासन्ध से युद्ध होना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जिस तरह श्यामसुन्दर ने जरासन्ध की सेना मारकर कालयवन का नाश किया व राजा मुचुकुन्द को भवसागर पार उतारकर द्वारका में जा बसे वह हाल कहता हूँ, सुनो। राजा उग्रसेन धर्मपूर्वक मथुरा का राज्य करते थे और भक्तहितकारी श्याम व बलराम उनकी आज्ञा का पालन करते थे। उस राज्य में कोई दुःखी नहीं था, पर अस्ति और प्राप्ति नाम की राजा कंस की दोनों स्त्री अपने पति के सोच में बहुत उदास रहा करती थीं। एक दिन दोनों बहिन आपस में रोकर कहने लगीं कि अब यहाँ अनाथ पड़े रहने से अपने पिता के घर चलकर रहना उचित है। यह विचारकर दोनों बहिन रथ पर चढ़कर जरासंध के घर चली गईं और जिस तरह श्याम व बलराम ने राजा कंस को दैत्यों समेत मारकर उग्रसेन को राज्य दिया था वह सब हाल रो-रोकर अपने पिता से कहा। यह समाचार सुनते ही अभिमानी जरासन्ध बड़ा क्रोध करके अपने सभावालों से बोला कि ऐसा कौन वीर यदुकुल में उत्पन्न हुआ है जिसने कंस ऐसे महाबली को दैत्यों समेत मार डाला, अब मैं यह प्रण करता हूँ कि कंस के बदले मथुरापुरी को यदुवंशियों समेत जलाकर राम व कृष्ण को जीता बाँध न ले आऊँ तो अपना नाम जरासन्ध न रक्खूँ। अभिमानी जरासन्ध श्याम व बलराम की महिमा नहीं जानता था, वह बोला कि यदुवंशी लोग इस योग्य नहीं हैं जो मैं सेना लेकर उनसे लड़ने जाऊँ, इसी जगह से एक गदा फेंककर उन्हें मार डालूँगा।

दो० रामकृष्ण को मारिकै वैर कंस का लेउँ। कोऊ यादववंश के कुल में रहन न देउँ॥

जरासन्ध वरदान पाने के प्रताप से जै बेर गदा सिर के चारों ओर घुमाकर जहाँ फेंकता था उतने ही योजन पर वह गदा जाकर शत्रुओं को मारती थी। जब जरासन्ध ने उसी घमण्ड से हजार मन की गदा सौ बेर घुमाकर मथुरापुरी पर, जो चार सौ कोस मगधदेश से थी, फेंकी, तब श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने अपनी गदा चलाकर उसकी गदा मथुरापुरी

के निकट गिरा दी। वह गदा बिना काम किये मगधदेश में फिर आई तब जरासन्ध ने अचम्भा मानकर मन में कहा कि जिसने मेरी गदा को रोक दिया वह बिना युद्ध किये नहीं मारा जायगा। ऐसा विचार-कर उसने सब राजों को, जो उसकी आज्ञा में रहते थे, बुला भेजा और तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लेकर मथुरापुरी पर चढ़ आया। दशहजार आठ सौ हाथी, तीस हजार आठ सौ सत्तर रथ, छासठ हजार घोड़े के सवार, एक लाख नौ हजार साढ़े तीन सौ पैदल सिपाही, इस तरह सब दो लाख आठ हजार तीस मनुष्यों की सेना एक अक्षौहिणी दल कहलाता है।

जरासन्ध ने इसी हिसाब से तेईस अक्षौहिणी दल और बड़े-बड़े शूर-वीरों को साथ लिये हुए कई दिन में वहाँ पहुँचकर मथुरापुरी को चारों ओर से घेर लिया। तब दशो दिक्पाल और सब देवता मारे डर के काँप उठे। पृथ्वी कम्पायमान हो गई। इतनी भारी सेना देखते ही सब मथुरा-वासी अपने प्राण के डर से घबरा गये और श्यामसुन्दर से विनय करने लगे कि हे दीनानाथ! जरासन्ध ने आकर नगर को चारों ओर से घेर लिया, अब हम लोग कहाँ भागकर जावें जिसमें प्राण बचें। यह सुन-कर मुरलीमनोहर अपने मन में कुछ विचार करने लगे तब बलरामजी बोले कि महाराज! आपने पृथ्वी का भार उतारने और हरिभक्तों को सुख देने के लिए अवतार लिया है, सो अग्निरूप धरकर दैत्यों की सब सेना जला दीजिये। यह बात सुनकर वैकुण्ठनाथ ने कहा—हे भाई! इन लोगों का मारना कुछ कठिन नहीं है, परन्तु मुझे बहुत से काम संसार में करने हैं, इसलिए जरासन्ध के वध का उपाय पीछे किया जायगा। ऐसा कहकर श्यामसुन्दर बलरामजी समेत राजा उग्रसेन के पास गये और बोले कि महाराज! मुझे आज्ञा दीजिये तो जरासन्ध से जाकर लड़ूँ और आप यदुवंशियों को साथ लेकर नगर की रक्षा कीजिए। उग्रसेन ने कहा कि बहुत अच्छा। श्याम व बलराम उनसे आज्ञा पाते ही नगर के बाहर आये। उस समय उनकी इच्छानुसार दो जड़ाऊ रथ अति उत्तम सूर्य व चन्द्रमा के समान चमकते हुए आकाश से उतर-कर श्याम व बलराम के सामने खड़े हो गये। मुरलीमनोहर के रथ

पर सुदर्शनचक्र, शार्ङ्ग धनुष, बाणों से भरा हुआ तरकस, नन्दक तलवार, कौमोदकी गदा रक्खी थी। ध्वजा पर गरुड़ की मूर्ति बनी थी। शैव, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम के चार घोड़े अति सुन्दर उस रथ में जुते हुए थे। दारुक नाम का सारथी उस पर बैठा था। बलभद्रजी के रथ पर उनका हल व मूशल रक्खा था। ध्वजा में ताड़ के वृक्ष का चिह्न बना था। उसे देखते ही दोनों भाई अपने-अपने रथ पर बैठे और थोड़ी सी सेना साथ लेकर रणभूमि में आये। जैसे ही श्यामसुन्दर ने जरासन्ध की सेना में मारू बाजा बजते सुनकर अपना पांचजन्य शंख बजाया वैसे ही पृथ्वी व आकाश मारे डर के काँप उठा। जरासन्ध के शूरवीरों का हृदय धड़कने लगा। जब जरासन्ध अपना रथ बढ़ाकर श्रीकृष्णजी के सामने ले आया तब श्याम व बलराम भी अपना रथ बड़े बेग से उसके सामने ले गये। जरासन्ध ने अभिमान से श्रीकृष्णजी से कहा कि तू अपने मामा को मारकर मेरे सामने लड़ने आया है, तू बालक है, इसलिए तेरे ऊपर शस्त्र नहीं चलाऊँगा, तू यहाँ से भाग जा, इसी में तेरा कल्याण है।

चौ० महाअधम पापी जग माहीं। तेरो मुख देखत हम नाहीं॥
जिन अपने मामा को मारेउ। पाप पुण्य कछु नहीं विचारेउ॥
तासों युद्ध कवन विधि कीजै। जासों नेम धर्म सब छीजै॥
दो० तोहिं बालक सों युद्ध करत आवत है मोहिं लाज। याते हम बलभद्रसों युद्ध करैंगे आज॥

जरासन्ध यह वचन मुरलीमनोहर से कहकर बोला—हे बलभद्र! तुझे अपना प्राण प्यारा न हो तो मेरे साथ लड़। अभी तुझको मारूँगा। तू नहीं जानता कि मैं जरासन्ध हूँ। तेरा मारना मेरे निकट क्या बड़ी बात है। यह वचन सुनकर श्यामसुन्दर बोले—हे जरासन्ध अज्ञानी! अपनी बड़ाई करना अच्छा नहीं होता। शूरवीर अपनी स्तुति आप नहीं करते। सबसे अधीन रहकर समय पर अपना पुरुषार्थ दिखलाते हैं। जो अपनी बड़ाई आप करता है उसे जगत् में कोई भला नहीं कहता, इसलिए तेरी भुजा में जो कुछ सामर्थ्य हो सो दिखला। तूने अभी तक बलभद्र का पराक्रम नहीं देखा। जिसकी मृत्यु निकट आती है उसे भली-बुरी बात कहने का विचार नहीं रहता। तू मुझको मामा का मारनेवाला जो कहता

है सो जिस तरह वह अपने अधर्म करने के दण्ड को पहुँचा उसी तरह तेरी भी गति होगी। यह वचन सुनते ही जरासन्ध बड़े क्रोध से अपनी सेनासमेत श्याम व बलराम पर दौड़ा और उन्हें बाण मारता हुआ पुकार-कर बोला—बहुत दिन तक तुम्हारे प्राण बचे, अब मेरे आगे से जीते फिरकर जाने न पावोगे। जहाँ राजा कंस व सब दैत्य गये हैं वहाँ सब यदुवंशियों समेत तुमको भी भेजूँगा। यह बात कहकर जरासंध और उसके सेनावालों ने ऐसे बाण और अनेक तरह के शस्त्र बलराम पर चलाये जैसे सावन-भादों की बूँदें बरसती हैं। उस समय राम व कृष्ण के रथ इस तरह से छिप गये जिस तरह सूर्य बदली में दिखलाई नहीं देते। जब मथुरा नगर की स्त्रियाँ, जो अपनी-अपनी अटारियों पर चढ़कर उस युद्ध का कौतुक देखती थीं, श्याम व बलराम का रथ नहीं देखा तब दुखित होकर रोने लगीं।

दो० माखनप्रभु परताप ते जीतत सब संसार। ता प्रभु सों जीतो चहै मूरख अधम गँवार॥

जब जरासन्ध आदि ने मोहनप्यारे की सेना को मारना चाहा तब राम व कृष्ण अपना-अपना रथ दौड़ाकर उसकी सेना पर ऐसे टूटे जिस तरह सिंह हाथियों के गोल में झपटता है। जब श्याम व बलराम चाक के समान अपना रथ घुमाकर युद्ध करने लगे तब शूरवीर लोग मार-मार कहकर प्राण देते और कायर लोग मारे डर के पीछे भागकर गिर पड़ते थे। उस समय जरासन्ध की सेना चारों ओर से घटा के समान घेरे थी और दोनों भाइयों के कुण्डल बिजली के समान चमकते थे। देवता आकाश से यह कौतुक देखकर मुरलीमनोहर की विजय मनाते थे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने मथुरा-वासियों को चिन्ता करते देखा तब धनुष चढ़ाकर एक ऐसा बाण छोड़ा कि प्रभु की माया से लाखों तीर होकर जरासन्ध की सेना में शूरवीर दैत्यों के लगे। बलराम ने महाक्रोध से अपना हल व मूशल उठाकर मारना आरम्भ किया। दोनों भाइयों ने, जो अपनी भृकुटी फेरने से तीनों लोकों का नाश कर सकते थे, मनुष्य तन धरने के कारण अढ़ाई घड़ी में जरा-सन्ध की सेना वाहनों समेत मार डाली और जरासन्ध के सिवा कोई जीता नहीं बचा। रणभूमि में लोहू नदी के समान बहने लगा। हाथियों के

शरीर व मस्तक से रुधिर बहता हुआ कैसा मालूम देता था जैसे काले पहाड़ों में झरना झरते हैं। रथियों के मारे जाने से खाली रथ उजड़े हुए घर मालूम होते थे और नौका के समान उसी नदी में बहते थे। कटे हुए शिर कछुये की तरह बहते थे। काटे हुए हाथ साँप व मछली के समान दिखलाई देते थे। हाथियों का शरीर पुल ऐसा मालूम होता था। धनुष गिरी हुई लहर के समान दिखलाई देता था। टूटे हुए पहिया भँवर ऐसे मालूम होते थे। सेनापतियों के रत्नजटित भूषण ऐसे चमकते थे जैसे नदी के किनारे बालू चमकती है।

दो० मणिमुक्तनकीमाल बहु टूटिपड़ीं तेहिखेत। वह सब याविधि देखिये ज्यों जलभीतर रेत॥

उस समय केशवमूर्ति को रणभूमि में महादेवजी भूत व प्रेत की सेना अपने साथ लिये मुण्डों की माला पहिने हुए दिखलाई दिये। और क्या देखा कि भूतिनियाँ व योगिनियाँ खप्पर भरकर लोहू पीती हैं। गिद्ध, कौवे, गीदड़ लोथों पर बैठे हुए मांस खाकर एक दूसरे से झगड़ते हैं। उसी समय कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की महिमा से क्षण भर में हवा ने उन सब लोथों को बटोरकर एक जगह ढेर लगा दिया और अग्नि ने सबको जलाकर भस्म कर डाला। मेघ ने पानी बरसाकर सब राख और हड्डी आदि को बहा दिया। जिन पाँचों तत्त्वों से पुतला तैयार होता है वह पाँचों अपने-अपने रूप में मिल गये। उस सेना को आते सबने देखा, फिर किसी ने न जाना कि क्या हो गई। जब रणभूमि में अकेला जरासन्ध खड़ा रहकर बलरामजी से गदायुद्ध करने लगा तब बलभद्र ने उसके गले में हल डालकर पकड़ लिया और उसका वध करना विचारकर श्यामसुन्दर से पूछा—आज्ञा दीजिए तो इस अधर्मी को मार डालूँ। श्रीकृष्णजी ने कहा कि अभी इसके मारने का समय नहीं है। भाई, मैंने पृथ्वी का भार उतारने और दैत्यों व अधर्मी राजों को मारने के लिए अवतार लिया है। तुम जरासन्ध को जीता छोड़ दो, यह कई बेर दैत्यों और अधर्मी राजों को बटोरकर मुझसे लड़ने आवेगा तब हम उन सबको मारकर पृथ्वी का भार उतारेंगे। जब यह बात सुनकर बलरामजी ने जरासन्ध को जीता छोड़ दिया तब वह अति लज्जित होकर अपने देश

को चला गया। उसने चाहा कि राजगद्दी छोड़कर वन में चला जाऊँ, इतने इष्ट व मित्र के मारे जाने का सोच कैसे छूटेगा। दूसरे राजा लोग, जो उसके मित्र थे, जरासन्ध का हाल सुनकर वहाँ आये और उसे धैर्य देकर समझाया कि लड़ाई में जीत व हार सदा से होती है, इसलिए शूरवीर व ज्ञानियों का दोनों बात में हर्ष व विषाद करना उचित न होकर धैर्य रखना चाहिए, क्योंकि फिर सेना बटोरकर शत्रु से युद्ध करना कुछ मना नहीं है। परमेश्वर की दया से कृष्ण व बलराम को यदुवंशियों समेत मारकर कंस के पास भेज देंगे। यह वचन सुनते ही जरासन्ध धैर्य धरकर सेना बटोरने लगा। श्याम व बलराम की सेना में किसी के घाव भी नहीं लगा था, आनन्दपूर्वक राजमन्दिर पर आये। उस समय देवतों ने दोनों भाइयों पर फूल बरसाये।

दो० माखनप्रभु या भाँति सों जरासन्ध को जीत। आये मथुरानगरमें सब सन्तन के मीत ।।

जिस समय श्रीदुःखभंजन भक्तहितकारी नगर में पहुँचे उस समय सब मथुरावासियों ने बड़े हर्ष से अपने-अपने घर मंगलाचार मनाया। ब्राह्मणों ने वेद पढ़ना आरम्भ किया। स्त्रियाँ कोरे बर्तन में दही सगुन के वास्ते लेकर अपने-अपने द्वार पर खड़ी हो गईं। अनेक स्त्रियाँ अपनी-अपनी अटारियों पर से उन पर फूल बरसाने लगीं। इस तरह श्याम व बलराम सबको आनन्द देते हुए राजा उग्रसेन के पास जाकर उनके चरणों पर गिर पड़े और विनय किया—हे पृथ्वीनाथ! हमने तुम्हारे पुण्य व प्रताप से शत्रुओं को मारकर भगा दिया। अब आनन्दपूर्वक राज्य करके प्रजा को सुख दीजिए। यह वचन सुनकर उग्रसेन बड़े हर्ष से राज्य करने लगे। हे राजन्! जब इसी तरह सत्रह बेर जरासन्ध तेईस-तेईस अक्षौहिणी दल साथ लेकर मथुरा में लड़ने के लिए आया और श्याम व बलराम ने उसकी वही गति की तब जरासन्ध ने अति लज्जित होकर मन में कहा कि अब अपने देश में जाकर क्या मुख दिखलाऊँ, उत्तम यह है कि वन में तप करके किसी देवता का वरदान लेकर राम व कृष्ण से फिर लड़ूँ। परमेश्वर की दया से एक बेर भी कृष्णचन्द्र मेरे सामने से युद्ध से भाग जावें तो मैं उसको बड़ी विजय जानूँ। जब ऐसा विचारकर जरासन्ध

वन की ओर चला तब परमेश्वर की इच्छानुसार नारद मुनि ने राह में उसे मिलकर पूछा—हे राजन् ! तुम किसलिए उदास हो ? जरासन्ध ने दण्डवत् करके विनय किया—महाराज ! मैं सत्रह बेर श्याम व बलराम से युद्ध में हार गया, इसलिए मारे लज्जा के मुझसे किसी को अपना मुख नहीं दिखलाया जाता। एक बेर वह भी मेरे सामने से भाग जावें तो मेरी इच्छा पूर्ण हो। यह वचन सुनकर नारदजी बोले कि हे जरासन्ध ! काबुल में कालयमन नाम का म्लेच्छ राजा बड़ा बलवान् रहता है। वह अकेला युद्ध करने की इच्छा रखता है, सो तुम लड़ने का उद्यम न छोड़कर उसे अपनी सहायता के लिए बुलाओ और उसको साथ लेकर तुम दोनों मनुष्य श्याम व बलराम से लड़ो तो तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। यह वचन सुनकर जरासन्ध ने विनय किया कि महाराज ! काबुल यहाँ से बड़ी दूर है, इसलिए दूत संदेशा लेकर बहुत दिनों में पहुँचेगा और आप एक क्षणभर में पहुँच सकते हैं, सो दयालु होकर मेरी सहायता के लिए उसे बुला ले आइये तो बड़ा उपकार मानूँगा। यह दीन वचन सुनकर नारदजी कालयमन के यहाँ गये और जरासन्ध अपनी राजगद्दी पर आकर सेना बटोरने लगा। जब नारद मुनि क्षण भर में कालयमन की सभा में पहुँचे तब उसने दण्डवत् करके सम्मानपूर्वक नारद मुनि को अपने पास सिंहासन पर बैठाया और हाथ जोड़कर विनय किया—हे मुनिनाथ ! जिस तरह आपने दयालु होकर दर्शन दिया उसी तरह कृपा करके अपने आने का कारण कहिए। नारद मुनि बोले कि हमको राजा जरासन्ध ने तुम्हारे पास भेजकर यह संदेशा कहा है कि मथुरा में श्रीकृष्ण व बलराम दोनों भाई बड़े बलवान् व प्रतापी उत्पन्न हुए हैं। सत्रह बेर मैं उनसे युद्ध में हार गया हूँ, अब अठारहवीं बेर उनके साथ युद्ध करने के लिए तुम्हारी सहायता चाहता हूँ। इस बात का जो उत्तर दो वह उससे जाकर कह दूँ। कृष्ण जिनका नाम है वे मेघवर्ण चन्द्रमुख कमलनयन अति सुन्दर पीताम्बर पहिने व उपरना ओढ़े रहते हैं। तुम बिना मारे उनका पीछा मत छोड़ना। यह बात सुनते ही कालयमन जो जरासन्ध का नाम व प्रताप पाहिले से जानता था, बहुत प्रसन्न

होकर मनमें कहने लगा कि देखो इतने बड़े प्रतापी राजा ने हमसे सहायता माँगी है, इसलिए उसका संग देना चाहिए। ऐसा विचारकर कालयमन बोला—हे नारदजी! आप मेरी ओर से जाकर जरासन्ध से कह देना कि मैं तुरन्त अपनी सेना समेत इधर से मथुरा को पहुँचता हूँ, वह जल्दी अपनी सेना लेकर उधर से मथुरा में आवें। ऐसा कहकर कालयमन अपनी सेना साजने लगा और नारदजी वहाँ से जरासन्ध के पास आये और यह हाल उससे कहकर ब्रह्मलोक को चले गये। कालयमन तीन करोड़ म्लेच्छों की सेना, जो बहुत मोटे, बड़े-बड़े दाँत व लाल आँखवाले भयानकरूप, मैले कपड़े पहिने हुए थे, अपने साथ लेकर मथुरा को चला। थोड़े दिनों में वहाँ पहुँचकर अपनी सेना से मथुरापुरी को घेर लिया। राजा जरासन्ध भी तेईस अक्षौहिणी समेत मथुरा को चला। जब मथुरावासी कालयमन की सेना देखकर मारे डर के काँपने लगे तब श्यामसुन्दर ने द्वारकापुरी बसाना विचारकर बलरामजी से कहा कि अब क्या उपाय करना चाहिए। कालयमन ने अपनी सेना से नगर को घेर लिया और जरासन्ध भी अपनी सेना समेत आज-कल में आया चाहता है। एक से युद्ध करूँगा तो दूसरा राजा मथुरापुरी को लूटकर प्रजा को बहुत दुःख देगा।

दो० याते एक उपाय यह आया है मन माहिं। इन्हैं अवर कहिं राखिकै युद्ध करन हम जाहिं ।।

बलरामजी ने कहा, जैसा उचित हो वैसा कीजिए। यह वचन सुनकर जैसे वृन्दावनविहारी ने समुद्र को याद किया वैसे वह उनके निकट चला आया। मुरलीमनोहर ने समुद्र से कहा कि तुम बारह योजन पृथ्वी अभी पानी से खाली कर दो, वहाँ हम एक पुरी बसावेंगे। समुद्र ने उनकी आज्ञानुसार उसी समय बारह योजन पृथ्वी पानी से खाली कर दिया। श्यामसुन्दर ने उसी क्षण विश्वकर्मा को बुलाकर कहा कि तुम समुद्र के टापू पर इसी समय एक नगर इस तरह का रचो जिसमें सब यदुवंशी आदि मथुरावासी सुख से रहें। यह आज्ञा पाते ही विश्वकर्मा ने उसी समय समुद्र के टापू में जाकर एक कोट सुनहला बारह योजन के घेरे में बनाया। उसके भीतर अनेक मन्दिर सुनहले बहुत उत्तम बनाकर उनमें रत्नादिक जड़ दिये और जड़ाऊ किंवाड़े लगाकर सब द्वारों पर मोतियों

की झालर लटका दिया। कोट के कँगूरे जड़ाऊ बनाकर अति उत्तम बाजार रच दिया और सोलह हजार एक सौ आठ महल बहुत उत्तम श्यामसुन्दर के रहने के लिए बनाकर उनमें ऐसे बढ़िया रत्नादिक जड़ दिया कि जिसकी चमक हजार सूर्य से अधिक दिखलाई पड़ती थी। सब स्थानों में अनेक रंग के फूल व फल लगे हुए बाग बनाकर कुण्ड व बावली को गुलाबजल से भर दिया। सब महलों में बड़े-बड़े आँगन तैयार करके हाथी, घोड़े, गौ, बैल बाँधने और रथ, गाड़ी आदि रखने के स्थान विलग-विलग बना दिये। सब मन्दिरों के द्वार पर नौबत झरने व द्वारपालकों के रहने के लिए विलग-विलग स्थान बनाकर कोट के चारों ओर उत्तम-उत्तम वाटिका लगा दी। जितनी वस्तु गृहस्थी की होती है वह सब स्थानों में रखकर चारों वर्णों के रहने के लिए अलग-अलग मुहल्ले बना दिये। हे परीक्षित! जब विश्वकर्मा ने वैकुण्ठनाथ की दया से यह सब मुहूर्त भर में तैयार करके द्वारकापुरी उसका नाम रक्खा तब वरुण देवता ने श्यामकर्ण घोड़े, कुबेर देवता ने उत्तम-उत्तम रथ व रत्नादिक, इन्द्र ने सुधर्मा सभा द्वारका में पहुँचा दी। इसी तरह अनेक देवता बहुत उत्तम-उत्तम वस्तु जिनका नाम कहाँ तक वर्णन किया जावे। वहाँ ले आकर रख गये। जब विश्वकर्मा ने द्वारकापुरी, जहाँ जाने से काम, क्रोध, मोह व लोभ नहीं व्यापते थे, रचकर श्यामसुन्दर से खबर की तब कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने उसी क्षण योगमाया को बुलाकर कहा कि तुम अभी मथुरावासियों को गौ, घोड़े, हाथी आदि सब वस्तुओं समेत रातोरात मथुरा से ले जाकर द्वारका में पहुँचा दो। कोई मनुष्य यह भेद न जाने। योगमाया ने उनकी आज्ञानुसार उसी क्षण राजा उग्रसेन और वसुदेव आदि सब मथुरावासियों को, जो नींद में सोये थे, वहाँ से उठा ले जाकर द्वारकापुरी में पहुँचा दिया। जब मथुरावासी समुद्र का शब्द सुनकर नींद से चौंक उठे तब अचम्भा मानकर आपस में कहने लगे कि यहाँ समुद्र कहाँ से आया। जब उन्होंने अच्छी तरह विचार किया तो मालूम हुआ कि यह दूसरा नगर वासुदेव की इच्छा से समुद्र में बसा है। जब उन्होंने मथुरा से उत्तम स्थान में अपने को देखा

और गृहस्थी की सब वस्तुएँ वहाँ पाईं तब स्त्री व पुरुष प्रसन्न होकर मोहन-प्यारे की बड़ाई करने लगे।

——:०:——

इक्यावनवाँ अध्याय।

कालयमन व राजा मुचकुन्द की कथा।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब श्यामसुन्दर मथुरावासियों को द्वारका भेज चुके तब बलभद्रजी को मथुरा में छोड़कर आप प्रातःसमय अकेले चतुर्भुजी रूप धारण किये जड़ाऊ मुकुट सूर्य से अधिक चमकता हुआ शिर पर बाँधे कुण्डल व पीताम्बर पहिने कौस्तुभमणि व मोतियों का हार वैजयन्ती माला गले में डाले रेशमी उपरना ओढ़े अंग-अंग में रत्नजटित भूषण साजे शंख, चक्र, गदा, पद्म चारों हाथ में लिये केशर का तिलक लगाये तापहारिणी चितवन मन्द-मन्द मुसकराते हुए काल-यमन के सम्मुख गये।

दो० जाय कृष्ण दर्शन दियो धरे चतुर्भुज रूप। अंग-अंग बहुरंग छवि शोभित परम अनूप॥

जब कालयमन ने नारद मुनि के कहने के अनुसार उनमें सब लक्षण देखे तब श्यामसुन्दर को अति बलवान् समझकर मन में कहा कि राजा कंस और जरासन्ध की सेना को इसी पुरुष ने मारा था, पर इस समय यह कुछ शस्त्र न लेकर पैदल मेरे सम्मुख लड़ने आया, सो इसके साथ शस्त्र लिये रथ पर चढ़े हुए युद्ध करना धर्म नहीं है। ऐसा विचारकर कालयमन रथ से कूद पड़ा और पुकारकर अपनी सेनावालों से कहा कि कोई मनुष्य इस मोहनीमूर्ति पर शस्त्र मत चलावो। ऐसा कहकर कालयमन अकेला श्यामसुन्दर के निकट आया। मोहनप्यारे ने एक तो म्लेच्छ का अंग छूना उचित नहीं जाना, दूसरे उन्हें देवतों का वरदान सत्य करने के लिए राजा मुचकुन्द को अपना दर्शन देकर भवसागर पार उतारना था, इसलिए वैकुण्ठनाथ उसके सामने से भागे। कालयमन उनको पकड़ने के लिए पीछे दौड़कर अभिमान से बोला—

चौ० कालयमन यों कहै पुकारि। काहे भागे जात मुरारि॥
आय परयो अब मोसों काम। ठाढ़े रहो करो संग्राम॥

मुझको राजा कंस व जरासन्ध मत समझना, मैं यदुवंशियों का

वीर्य संसार में नहीं रक्खूँगा। क्षत्रिय व शूरवीरों को युद्ध से भागना मरणतुल्य होता है।

दो० रिपु सम्मुख ते भाजिबो क्षत्रिय को है लाज। प्रकट पिता वसुदेव को दोष लगायो आज।।

हे श्याममूर्ति! मैं तुमको बड़ा शूरवीर सुनकर तुम्हारे साथ लड़ने आया हूँ, सो एक क्षण ठहरकर मेरे साथ युद्ध करो। श्यामसुन्दर उसकी बात का कुछ उत्तर न देकर एक हाथ का अन्तर देते हुए इस तरह भागे जाते थे जिसमें वह निराश न हो और पकड़ भी न पावे। जब कालयमन बहुत दूर तक पीछे दौड़ा चला गया तब केशवमूर्ति गन्धमादन पहाड़ की कन्दरा में, जहाँ राजा मुचकुन्द सोया हुआ था, घुस गये और अपना पीताम्बर उसको ओढ़ाकर आप उसी जगह एक कोने में खड़े हो गये जब पीछे से कालयमन दौड़ता व हाँफता हुआ उसी कंदरा में पहुँचा तब उसने मुचकुन्द को पीताम्बर ओढ़े देखकर क्या जाना कि यह वही पुरुष है जो भागा आता था, मेरे डर से पीताम्बर ओढ़कर सो रहा है। ऐसा विचारकर कालयमन बड़े क्रोध से एक लात राजा मुचकुन्द को मारकर बोला—यह कौन शूरता है, जो रणभूमि से भागकर यहाँ सो रहा। उठ, अभी तुझे मार डालूँ। जब ऐसा कहकर कालयमन ने वह पीताम्बर मुचकुन्द के शरीर पर से खींच लिया तब वह लात लगने और पीताम्बर झटकने से जाग उठा।

दो० ताकी दृष्टि प्रभाव ते अग्नि उठी तन वाहिं। देखत ही जर के भयो यमन भस्म क्षणमाहिं।।

हे राजन्! कालयमन ने मरते समय वैकुण्ठनाथ का दर्शन पाया था, इसलिए वह सब पापों से छूटकर मुक्ति पदवी पर पहुँचा। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! मुचकुन्द कौन महा तेजवान् था और किस कारण कन्दरा में सोया था, जिसकी दृष्टि पड़ने से कालयमन ऐसा प्रतापी राजा जल गया? शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! मुचकुन्द राजा इक्ष्वाकुकुल में युवनाश्व का पौत्र और मान्धाता का पुत्र बड़ा प्रतापी व चक्रवर्ती राजा होकर अपने धर्म व तप के बल से सब राजों को अधीन किये था। उन्हीं दिनों दैत्यों ने देवतों को लड़ाई में जीतकर उनका राजसिंहासन छीन लिया। तब इन्द्र और वरुण आदि

देवता राजा मुचकुन्द की शूरता व बड़ाई सुनकर मर्त्यलोक में आये और उससे विनय किया कि हम लोग दैत्यों के हाथ से बहुत दुःख पाकर तुम्हारी शरण में आये हैं, सो सहायता करके दैत्यों से हमारा राज्य दिलवा दीजिए। यह बात सदा से होती आई है कि जब देवताओं, ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों को दुःख पड़ता है तब क्षत्रिय लोग उनकी रक्षा करते हैं। यह दीन वचन सुनकर राजा मुचकुन्द ने देवतों का सहायक होकर दैत्यों से युद्ध किया और दैत्यों को जीतकर देवतों का राज्य दे दिया। जब-जब देवतों को दैत्य लोग दुःख देते थे तब-तब राजा मुचकुन्द देवतों की सहायता करके दैत्यों को भगा देता था। एक बार मुचकुन्द को दैत्यों से लड़ते हुए कई युग बीत गये तब स्वामिकार्त्तिकेयजी देवतों की सहायता करने आये। उस समय देवतों ने राजा मुचकुन्द से कहा कि अब हम लोगों की सहायता स्वामिकार्त्तिकेयजी करेंगे, तुमने हमारे लिए बड़ा परिश्रम किया है, इसलिए मुक्ति के सिवा जो वरदान माँगो सो तुमको दें।

दो० अर्थ धर्म अरु कामना ये सब हैं मम हाथ। एक पदारथ मुक्ति को देहैं श्रीव्रजनाथ॥

यह सुनकर मुचकुन्द ने कहा कि बहुत दिन हुए मैं अपने घर-द्वार व बाल-बच्चों से विलग पड़ा हूँ, आज्ञा हो तो जाकर उन्हें देखूँ। देवतों ने उत्तर दिया कि तुम्हारे वंश में अब कोई नहीं रहा, सब मर गये। यह वचन सुनकर मुचकुन्द बोले कि यही हाल है तो बहुत दिन से नींद भर सोया नहीं, तुम लोग कोई ऐसी एकान्त जगह मुझे बतलाओ जहाँ जाकर सोऊँ और कोई मुझे न जगावे। देवतों ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम गन्धमादन पहाड़ की कन्दरा में जाकर शयन करो, हम लोग ऐसा वरदान देते हैं कि जो कोई वहाँ जाकर तुमको जगावे, उसी समय तुम्हारी दृष्टि पड़ने से जलकर भस्म हो जावे। हमारे आशीर्वाद से तुम्हें परब्रह्म परमेश्वर का दर्शन प्राप्त होगा। राजा मुचकुन्द त्रेता युग से यह वरदान पाकर उस कन्दरा में सोया था। श्यामसुन्दर अन्तर्यामी यह सब भेद जानते थे, इसलिए उन्होंने देवतों का वरदान सत्य करने के लिए कालयमन को वहाँ ले जाकर मुचकुन्द की दृष्टि से मरवा डाला। उसके जलने के

उपरांत वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी ने चतुर्भुजीरूप से मेघवर्ण चन्द्रमुख कमलनयन शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये किरीट मुकुट साजे वनमाला विराजे पीताम्बर पहिने तीनों लोकों की सुन्दरता धारण किये हुये राजा मुचकुन्द को दर्शन दिया। जब उनके चन्द्रमुख के प्रकाश से उस अँधियारी कन्दरा में उजियाला हो गया तब राजा मुचकुन्द ने उनको देखकर साष्टांग दण्डवत् किया।

दो० माखन प्रभु के दर्श ते भयो सरस आनन्द। जोरि हाथ व्रजनाथ से पूछत है मुचकुन्द ॥

हे दीनानाथ! तुम्हारे बराबर तीनों लोकों में कोई सुन्दर न होगा। जैसे आपने दयालु होकर दर्शन दिया वैसे ही कृपा करके अपना हाल वर्णन कीजिए। मेरी समझ में आप सूर्य या चन्द्रमा या कोई लोकपाल या ब्रह्मा व विष्णु व महेश तीनों बड़े देवतों में मालूम होते हैं। तुम्हारे आने से यह कन्दरा प्रकाशित हो गई। आपके ये कोमल चरण फूलों से भी अधिक नरम हैं, इस पहाड़ व काँटों में किस तरह विराजे, अपना नाम व गोत्र बतलाइए। कदाचित् आप मुझसे पूछें कि तू कौन है, सो मैं राजा मान्धाता का बेटा मुचकुन्द हूँ। दैत्यों से लड़ते समय परिश्रम करने में देवतों ने मुझे ऐसा वरदान दिया था कि तुम निश्चिन्त होकर सोवो, तुम्हें जगानेवाला तुम्हारी दृष्टि पड़ने से जलकर मर जायगा, इसीलिए यह मनुष्य जिसने मुझे जगाया था, जलकर भस्म हो गया। यह सुनकर वृन्दावनविहारी ने कहा—हे मुचकुन्द! मैं अपना कौन सा नाम तुझे बतलाऊँ मेरे नामों की कुछ गिनती नहीं है। मैंने बहुत बेर संसार में अवतार लेकर बहुत से काम किये हैं। बालू की रेणुका और पानी की बूँदें चाहे कोई गिन लेवे, पर मेरे अवतारों और कामों की गिनती करना बहुत कठिन है, इसलिए अपने पिछले अवतारों का हाल तुझसे नहीं कह सकता। इस बेर पृथ्वी का भार उतारने के लिए वसुदेव व देवकी के घर यदुकुल में अवतार लिया है, इसलिए मुझे वासुदेव भी कहते हैं। हमने मथुरा में राजा कंस को दैत्यों समेत मारकर पृथ्वी का बोझ उतारा और सत्रह बेर तेईस-तेईस अक्षौहिणी दल साथ लेकर राजा जरासन्ध मथुरा पर चढ़ आया, सो वह भी मुझसे हार गया। अठारहवीं बेर उसकी सहायता के लिये यह कालयमन

म्लेच्छों की तीन करोड़ सेना साथ लेकर मुझसे लड़ने आया था, सो तुम्हारी दृष्टि से जलकर मर गया। कदाचित् तुम कहो कि कालयमन को अपने हाथ से तुमने क्यों नहीं मारा, सो इसका यह कारण है कि देवतों का वरदान सत्य करने के लिए मुझे तुमको अपना दर्शन देकर भवसागर पार उतारना था, इसलिए मैंने कालयमन को तेरी दृष्टि से जलाकर अपना दर्शन तुझे दिया। पिछले जन्म तूने मेरा बहुत भारी तप किया था उसका फल आज पाकर तू जन्म व मरण से छूट गया। अब तुझे जो इच्छा हो सो वरदान माँग। वैकुण्ठनाथ का दर्शन मिलने से मुचकुन्द के मन में ज्ञान उत्पन्न होकर उसको याद आई कि गर्गमुनि ने मेरी जन्मपत्री देखकर कहा था कि तुझे परमेश्वर का दर्शन मिलेगा, वह बात आँखों से दिखाई दी।

दो०सोई द्विजको वचन हरि सत्य भयो है आज। प्रकट आइ दरशन दियो माखनप्रभु व्रजराज।।

जब मुचकुन्द को विश्वास हुआ कि यह चतुर्भुजीरूप भगवान् हैं तब उसने श्यामसुन्दर के सम्मुख हाथ जोड़कर विनय किया—हे महा-प्रभु ? आप निर्गुण निराकार अविनाशी पुरुष होकर केवल हरिभक्तों को सुख देने के लिए सगुण अवतार धरते हो। तुम्हारे आदि अंत को कोई नहीं जानता। सारा संसार आपकी माया में लपट रहा है, इसलिए किसी का ज्ञान ठिकाने न रहकर सब मनुष्य काम, क्रोध, मोह, लोभ में ऐसा फँस रहे हैं कि किसी तरह मायारूपी जाल से छूट नहीं सकते।

चौ० करत कर्म सब सुख के हेत। याते भारी दुःख सहि लेत।।

जिस तरह कुत्ता सूखी हड्डी चबाते समय अपने मुख के लोहू का स्वाद पाकर अज्ञानता से उस स्वाद को हाड़ से निकला हुआ समझता है उसी तरह मनुष्य स्त्रीप्रसंग करते समय अपने वीर्य गिरने का क्षणभर सुख पाकर अज्ञानता से जानते हैं कि स्त्री से यह आनन्द हमें मिलता है। जो अज्ञानी मनुष्य इस झूठे सुख को अच्छा जानकर कामदेव के मद में पर-स्त्री गमन करके अपना परलोक बिगाड़ देते हैं और ऐसा काम नहीं करते कि जिसमें आवागमन से छूट जावें उन्हें कुत्ते से भी निकृष्ट समझना चाहिये। हे दीनानाथ! संसारी जीवों को तुम्हारी कृपा के बिना

इस मायारूपी अँधियारे कूप से बाहर निकलना बहुत कठिन है। जो मनुष्य तुम्हारी शरण में रहकर तुम्हारा ध्यान व स्मरण करे वह माया-जाल से छूटकर परमगति को पहुँच सकता है। मैं आज तक राज्य व धन के मद में तुम्हारे भजन व स्मरण से विमुख रहा और जिन स्त्री व पुत्रों की प्रीति में फँसकर हाथी व घोड़े आदि संसारी सुख को अपना जानता था वह सब नाश होकर केवल मेरा यह तनु रह गया। सो यह भी किसी काम का नहीं है, क्योंकि यह तनु मरने के उपरांत सियार आदि के खा जाने से विष्ठा हो जाता है, पड़े रहने व सड़ जाने से कीड़े पड़ जाते हैं, जला देने से राख हो जाता है, इसलिए जो लोग अपने तनु व बल का अभिमान करते हैं उन्हें मूर्ख समझना चाहिए। मनुष्य तनु पाकर परमेश्वर का भजन व स्मरण करने के सिवा संसारी व्यवहार में मन लगाना अच्छा नहीं होता, पर अज्ञानी मनुष्य शुभकर्म में एक क्षण मन नहीं लगाते, आठों पहर स्त्री व पुत्र की माया में फँसे रहकर संसारी झूठे व्यवहार को सच्चा जानते हैं। जो कोई बिना इच्छा केवल तुमको प्रसन्न करने के लिए तुम्हारा ध्यान व स्मरण करता है उसे बड़ा भाग्यवान् समझना चाहिए, पर ऐसे मनुष्य संसार में कम हैं। मुझ अज्ञानी व अभिमानी को अपने भवसागर पार उतरने का बड़ा सोच लगा था, सो मेरे पिछले जन्म के पुण्य सहाय हुए जो कमलरूपी तुम्हारे चरणों में जिनका ध्यान ब्रह्मादिक देवता व बड़े-बड़े योगी व ऋषीश्वर दिन-रात अपने हृदय में रखते हैं अपना दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया। इसलिए मैं इन चरणों की भक्ति के सिवा दूसरी कोई संसारी वस्तु माया-मोह में फँसनेवाली नहीं चाहता।

दो० मैं जप तप नहिं कुछ कियो नहिं चीन्हें महराज। एक तुम्हारी कृपा ते दर्शन पायों आज॥

हे महाप्रभु! तुम अपने भक्तों को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ देनेवाले हो, इसलिए यह इच्छा रखता हूँ कि तुम्हारी कृपा से भवसागर पार उतर जाऊँ। मैं आपके शरणागत हूँ। जब राजा मुचकुन्द ने यह सब स्तुति की तब श्यामसुन्दर ने हँसकर कहा—हे मुचकुन्द! तेरा ज्ञान धन्य है, तूने सच्ची बात कही। तू सदा से मेरा परम भक्त है। पिछले जन्म

तुमने बहुतसा तप करके हमारा दर्शन चाहा था उसका फल आज मिला। तेरी कामना पूर्ण हुई। हमको तूने पहिचाना। हमने तुमको वरदान देने को ललचाया था, सो तुमने किसी वस्तु के लेने की इच्छा न रखकर केवल मेरे चरणों की भक्ति माँगी। इस तरह का ज्ञान सबको प्राप्त नहीं होता। अब तेरे भवसागर पार उतरने का उपाय बतलाता हूँ सो तू कर, क्योंकि तूने पृथ्वी लेने और परस्त्रीगमन करने में बहुत पाप किया है, वह पाप बिना तप किये नहीं छूटेगा। इसलिए तू उत्तर दिशा में जाकर मेरे स्मरण व ध्यान में लीन हो, यह तनु छोड़ने के उपरांत ब्राह्मण के घर जन्म लेकर मेरी भक्ति करेगा तब वह तनु छोड़कर मेरी ज्योति में समा जायगा।

दो०यदपिपदारथमुक्तिको राजनदीजतनाहिं। तद्यपिहमतुमको दियो जानि प्रीति मन माहिं।।

यह बात सुनते ही मुचकुन्द वैकुण्ठनाथ के चरणों पर गिर पड़ा। जब उन्हें साष्टांग दण्डवत् करके कन्दरा से बाहर निकला तब उसने मनुष्य व वृक्षों का छोटा रूप देखकर जाना कि कलियुग का लक्षण निकट पहुँचा। ऐसा विचारकर उसी समय राजा मुचकुन्द बदरिकाश्रम में तप व जप करने के लिए चला गया व सच्चे मन से परमेश्वर का तप करने लगा। गरमी, सरदी और वर्षाऋतु को बराबर जानकर हर्ष व सोच को एकसा समझा। जब वह तनु छोड़कर ब्राह्मण के यहाँ जन्म पाया तब हरिभक्ति के प्रताप से मरने के उपरान्त परब्रह्म परमेश्वर के रूप में लीन हो गया। कालयमन ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न हुआ था, इसलिए मुरलीमनोहर ने उसको अपने हाथ से नहीं मारा। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! कालयमन म्लेच्छ ने ब्राह्मण के वीर्य से किस तरह जन्म पाया? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक दिन गौड़ ब्राह्मण गर्गमुनि के साले ने ठट्ठे से उन्हें कहा कि तुम नपुंसक हो। जब यही बात सुनकर यदुवंशी लोग हँसी की राह गर्ग ऋषीश्वर को हिजड़ा कहने लगे तब उन्होंने यदुवंशियों को नीचा दिखाने के लिए महादेव का तप करना आरंभ किया। शिवजी ने प्रसन्न होकर उनसे वरदान माँगने को कहा। गर्ग मुनि ने हाथ जोड़कर विनय किया कि मुझे ऐसा पुत्र दीजिए जिसमें सब यदुवंशी डरकर भाग जावें। महादेव ने उन्हें एक फल देकर

कहा—यह फल स्त्री को खिला देने से वैसा पुत्र उत्पन्न होगा। गर्ग ब्राह्मण ने वह फल लेकर अपने पास रख छोड़ा। तालजंघ नामक क्षत्रिय काबुल में बड़ा प्रतापी राजा था, उसके कोई संतान नहीं थी, उसने पुत्र उत्पन्न होने के लिए गर्ग ऋषीश्वर की बहुत सेवा की। ऋषीश्वर महाराज ने उसकी स्त्री को वीर्यदान देकर वह फल खाने के लिए दिया। उसने परमेश्वर की इच्छानुसार अपनी सौतों के डर से जल्दी में वह फल बिना स्नान किए खा लिया। तब गर्गमुनि ने कहा कि तेरा पुत्र बड़ा प्रतापी बलवान् उत्पन्न होकर म्लेच्छों का कर्म करेगा। इसी कारण तालजंघ क्षत्रिय का बेटा कालयमन म्लेच्छ हो गया था। यह हाल सुनकर परीक्षित का सन्देह मिट गया।

बावनवाँ अध्याय।

श्याम व बलराम का जरासन्ध के सामने से उसका मनोरथ पूर्ण करने के लिए भागना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! श्यामसुन्दर मुचकुन्द को बिदा करके मथुरा में चले आये। उन्होंने बलरामजी से कहा कि हमने राजा मुचकुन्द की दृष्टि से कालयमन का नाश कराके मुचकुन्द को बदरीकेदार में तप करने के लिए भेज दिया, अब चलो कालयमन की सेना मारकर पृथ्वी का भार उतारें। ऐसा कहकर दैत्यसंहारण बलराम समेत मथुरा से बाहर निकले और कालयमन की सेना में चले गए।

दो० संकर्षण को साथ ले माखनप्रभु करतार। कालयमन की सेन सब हती एक ही बार ॥

जब क्षणभर में श्याम व बलराम हल व मूसल व बाणों से म्लेच्छों को मारकर चले तब राजा जरासन्ध ने अपनी सेना समेत पहुँचकर उन्हें घेर लिया। उस समय वैकुण्ठनाथ भक्तवत्सल ने जरासन्ध का मनोरथ पूर्ण करने के लिए बलराम समेत उसके सामने से पैदल भागे। तब जरासन्ध के मंत्री ने कहा कि महाराज! तुम्हारे प्रताप के सामने कौन ऐसा शूरवीर है जो ठहर सके। देखो, राम व कृष्ण दोनों भाई घर-दुवार छोड़कर आपके डर से नंगे पाँव भागे जाते हैं। जब जरासन्ध ने भी दोनों भाइयों को अपनी आँखों से भागते हुए देखा तब अपनी सेना समेत उनके पीछे दौड़ा और पुकारकर यों कहा—

चौ० काहे डरके भागे जात। ठाढ़े रहौ करौ कछु बात ॥
गिरत उठत कम्पत क्यों भारी। आई है ढिग मृत्यु तुम्हारी ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब श्याम व बलराम नारदजी का वचन सत्य करने के लिए लोकव्यवहार दिखलाकर जरासन्ध के सम्मुख से भागे तब वह बड़े हर्ष से उनके पीछे दौड़ा। उसमें सिवा एक रास्ते से दूसरी राह नहीं थी, चढ़ गये और पहाड़ के ऊपर जाकर खड़े हुए।

चौ० देखि जरासँध कहै पुकारी। शिखर चढ़े बलभद्र मुरारी ॥
अब यह कैसे जायँ पराय। इस पर्वत को देव जलाय ॥

ऐसी आज्ञा पाते ही उसके सेवकों ने उस पहाड़ को जहाँ सदा पानी बरसता था, लकड़ियों का ढेर चारों ओर इकट्ठा करके उसमें आग लगा दी और जो राह पहाड़ पर चढ़ने की थी वहाँ जरासन्ध आप खड़ा हो गया। जब थोड़ी देर में वह अग्नि पर्वत के शिखर तक जाकर बुझ गई तब वह उस अग्नि में दोनों भाइयों का मरना समझकर मथुरापुरी को चला आया और वहाँ ढिंढोरा पिटवा दिया। जितने स्थान राजा उग्रसेन व वसुदेवजी के उस नगर में थे सब खोदवाकर उस जगह नये स्थान बनवा दिये और अपना कारोबार वहाँ छोड़कर सेना समेत हर्षपूर्वक मगध देश में आया। श्यामसुन्दर ने बलरामजी से कहा कि बड़े सोच की बात है जो हमारे चरण आने पर भी यह पहाड़ जल जावे। ऐसा कहकर वैकुण्ठनाथ ने उस पहाड़ को अपने चरणों से ऐसा दबा दिया कि पाताल में चला गया और आग बुझने के उपरांत फिर उसी तरह उठा दिया।

दो० ता गिरिवर ते कूदिके माखनप्रभु यदुराय। राम सहित श्रीद्वारका पल में पहुँचे जाय ॥

उन्हें देखते ही सब द्वारकावासी प्रसन्न हो गये और मुरलीमनोहर की दया से आनन्दपूर्वक वहाँ रहने लगे। कुछ दिन बीते राजा रेवत ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार रेवती नाम की अपनी चन्द्रमुखी व मृगलोचनी कन्या को द्वारकापुरी में लाकर बलरामजी से विवाह दिया। श्यामसुन्दर बलरामजी समेत कुण्डिनपुर में जाकर रुक्मिणी नाम की राजा भीष्मक की कन्या जो शिशुपाल को माँगी गई थी अनेक राजों में से बरजोरी

हर ले आये और अपने घर लाकर उसके साथ विवाह किया। यह सुनकर परीक्षित ने विनय किया कि कृष्णचन्द्र रुक्मिणी को बहुत राजों में से किस तरह जीतकर ले आये थे।

दो० माखनप्रभु के कर्म गुण सुने महासुखहोय। जो कोई ऋषिमुनिसे सुनेबड़ीभाग्य है सोय।।

यह वचन सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! बड़ा प्रतापी विदर्भदेश का राजा भीष्मक कुण्डिनपुर में रहकर धर्मपूर्वक राज्य करता था। रुक्माग्रज आदि पाँच पुत्र उसके हुए। जब रुक्मिणी नाम की कन्या महासुन्दरी राजा भीष्मक के यहाँ उत्पन्न हुई तब उसने मंगलाचार मनाकर ज्योतिषियों से उसके जन्म-लग्न का फल पूछा। पण्डितों ने कहा कि हमारे विचार में यह गुण व रूप व शील की सागर होकर आदिपुरुष भगवान् से विवाही जायगी। यह सुनकर राजा ने बड़े हर्ष से पण्डितों को सम्मानपूर्वक बिदा किया। जब राजकुमारी प्रतिदिन चन्द्रकला सी बढ़कर कुछ सयानी हुई तब एक दिन नारदमुनि कुण्डिनपुर में गये और उसका हाथ देखकर रुक्मिणी से कहा कि तेरा विवाह कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द वैकुण्ठनाथ के साथ होगा। यह बात सुनकर रुक्मिणी बहुत प्रसन्न हुई। नारदमुनि ने द्वारकापुरी में जाकर कहा—हे वैकुण्ठनाथ! राजा भीष्मक के एक कन्या रुक्मिणी नाम लक्ष्मी के समान अतिसुन्दरी उत्पन्न हुई है, तुम्हारे विवाहने योग्य है। यह बात सुनते ही केशवमूर्ति अन्तर्यामी को भी उसकी चाह हुई। उन्हीं दिनों में याचकों ने कुण्डिनपुर में जाकर मुरलीमनोहर का यश, और जो-जो काम उन्होंने गोकुल व वृन्दावन व मथुरा में किये थे, गाया। तब वहाँ के लोगों को श्यामसुन्दर के दर्शन की इच्छा हुई। जब इस बात की चर्चा होते-होते राजा भीष्मक को खबर पहुँची और उसने भी उन याचकों को राजमंदिर पर बुलवाकर श्यामसुन्दर का यश गवाया तब राजा व रानी आदि उनकी लीला सुनकर अति प्रसन्न हुए।

चौ० चढ़ी अटा रुक्मिणि सुन्दरी। हरि चरित्र ध्वनि श्रवणन परी।।
अचरज करे भूलि मन रहै। फेरि उचकिकर देखन चहै।।
सुनिकर कुँवरि रही मनलाय। प्रेमलता उर उपजी आय।।
अति आनँदमय भई सुन्दरी। उसकी सुधि बुधि हरिगुणहरी।।

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! पहिले रुक्मिणी नारदमुनि से मुरलीमनोहर का गुण सुन चुकी थी। जब उसने याचकों से भी उनकी बड़ाई सुनी तब उसे उनके साथ विवाह करने की अधिक इच्छा हुई। उसी दिन से रुक्मिणी आठों पहर खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते साँवली सूरत मोहनप्यारे का ध्यान प्रेमपूर्वक करने लगी और उनके मिलने के वास्ते प्रतिदिन पार्वतीजी का पूजन कर यह वरदान माँगती थी—

चौ० मुझ पर गौरि कृपा तुम करो। यदुपति पति दे मम दुःख हरो॥
दो० कमलनयन के ध्यान में मग्न रहै दिन रैन। खान पान की को कहै लहै नहीं क्षण चैन॥

जब रुक्मिणी ने दिन-रात मोहनीमूर्ति का ध्यान रखकर अपने मन में यह प्रण किया कि श्यामसुन्दर के सिवा दूसरे से विवाह नहीं करूँगी तब उसके माता-पिता भी यह हाल जानकर इसी बात में प्रसन्न थे। जब कभी रुक्मिणी मनहरणप्यारे के विरह में उदास होकर रोने लगती थी तब उसकी सहेलियाँ नन्दलालजी के बालचरित्र की चर्चा करके उसे प्रसन्न कर देती थीं।

दो०याविधि लीला कृष्णकी गावैं सबदिन रैन। सो सुनिके श्रीरुक्मिणी लही सदा सुख चैन॥

एक दिन रुक्मिणी सहेलियों के साथ खेलती हुई राजा के पास आई। तब भीष्मक ने उसे विवाहने योग्य देखकर मन में कहा कि अब इसका विवाह जल्दी नहीं करता तो संसारी लोग मेरी निन्दा करेंगे। जिसके घर कुमारी कन्या तरुण हो जाती है उसे दान व पुण्य जप आदिक शुभ कर्म करने का फल नहीं मिलता। ऐसा विचारकर राजा ने अपने पाँचों बेटे, मंत्री, और इष्ट-मित्रों को सभा में बैठाकर कहा कि अब रुक्मिणी सयानी हुई, इसलिए कोई राजकुमार जो कुलीन व सब गुणों से भरा हो ठहराना चाहिए। यह बात सुनकर सभावालों ने अनेक राज-कुमारों का नाम बतलाकर उनके रूप व गुण का वर्णन किया, पर राजा के मन में कोई नहीं भाया। रुक्माग्रज उसके बड़े बेटे ने कहा कि हे पृथ्वीनाथ ! चँदेली नगर में राजा शिशुपाल कुलीन व बलवान् है, रुक्मिणी उसे विवाहकर संसार में यश लीजिए। जब राजा उसकी बात पर भी नहीं बोले तब राजा के छोटे पुत्र रुक्मकेश ने कहा—

चौ० रुक्मिणि पिता कृष्ण को दीजै। वासुदेव से नाता कीजै॥
यह सुनि भीष्मक हर्षे गाता। कह्यो पूत तुम अच्छी बाता॥
तू बालक सबसे बढ़ ज्ञानी। तेरी बात भली हम मानी॥
दो०तरुण छोटसों पूछके कीजै मन परतीति। सार वचन गहि लीजिए यही जगत की रीति॥

यदुवंशियों में राजा शूरसेन बड़े प्रतापी हैं। उनके पुत्र वसुदेवजी ऐसे धर्मात्मा हैं जिनके घर आदिपुरुष भगवान् ने श्रीकृष्ण नाम से अवतार लिया और राजा कंस आदि अधर्मियों को मारकर सब यदुवंशी व प्रजा को बड़ा सुख देते हैं। ऐसे द्वारकानाथ को रुक्मिणी देकर संसार में यश व बड़ाई लेना उचित है। यह वचन सुनकर राजा के तीनों छोटे पुत्र और मंत्री आदि सभावालों ने प्रसन्न होकर कहा—महाराज! आपने बहुत अच्छा विचारा है, ऐसा वर व घर दूसरा नहीं मिलेगा। यह बात सुनते ही राजा का बड़ा पुत्र रुक्माग्रज, जिसके सम्मत से राजकाज होता था, सब सभा वालों पर झुँझलाकर बोला—

चौ० समुझि न बोलत महा गँवार। जानत नहीं कृष्णव्यवहार॥
बारह वर्ष नन्द के रह्यो। तब अहीर सब काहू कह्यो॥
दो०जन्म भयो यदुवंश में बस्यो नन्दघर आय। काँधकमरिया कर लकुट फिरे चरावत गाय॥

हे पिता! वह ग्वाल गँवार उसकी जाति-पाँति का क्या ठिकाना है। उसे कोई नंदजी का बेटा जानता और कोई वसुदेव का बालक कहता है। आज तक यह भेद अच्छी तरह नहीं खुला कि किसका बेटा है। यदुवंशी कुछ प्राचीन राजा नहीं हैं, थोड़े दिनों से बढ़ गये हैं इससे उनकी गिनती तिलकधारी राजों में नहीं हो सकती। कदाचित् श्रीकृष्ण वसुदेव यादव का पुत्र समझा जावे तो भी यादव लोग हमारे बराबर कुलीन नहीं हैं। वे अपनी कन्या हमको दें तो उचित है। इसके सिवा श्रीकृष्ण राजा उग्रसेन का सेवक कहलाता है, उसे रुक्मिणी विवाहकर संसार में क्या यश पावेंगे। वैर व विवाह बराबरवाले से करना चाहिए। रुक्मिणी का विवाह कृष्ण के साथ करने से सब लोग मुझे ग्वाल का साला कहेंगे। मैं अपना मुँह लोगों को कैसे दिखलाऊँगा।

चौ० या विधि औगुण भरे कन्हाई। तासों हम नहिं करत सगाई॥

इसलिए तिलकधारी राजा शिशुपाल से, जिसके प्रताप व डर से

दूसरे राजा थर-थर काँपते हैं, रुक्मिणी का विवाह कर दीजिए और कृष्ण का नाम मेरे सामने मत लीजिए। जब यह वचन सुनकर सब सभा-वाले अपने-अपने मन में पछिताकर चुप हो रहे और राजा भीष्मक बड़ा पुत्र समझकर कुछ नहीं बोले तब राजकुमार ने उसी समय ज्योतिषियों से शुभलग्न पूछकर एक ब्राह्मण के हाथ रुक्मिणी के विवाह का तिलक राजा शिशुपाल के पास भेज दिया। वह ब्राह्मण तिलक लेकर चंदेली नगर में राजमन्दिर पर पहुँचा और शिशुपाल ने बड़े हर्ष से तिलक लेकर उस ब्राह्मण को सम्मानपूर्वक विदा किया। वह ब्राह्मण कुण्डिनपुर में चला आया और राजा भीष्मक व रुक्माग्रज से तिलक लेने का हाल कहकर बोला—राजा शिशुपाल बड़े धूमधाम से बरात साजकर विवाहने आते हैं, आप अपने यहाँ तैयारी कीजिए। यह बात सुनकर पहिले राजा भीष्मक बहुत उदास हो गये, फिर अपने मन को धैर्य देकर रानी से यह सब हाल कहा। रुक्मिणी के विवाह का मंगलाचार होने लगा। राजा ने अपने मंत्रियों को विवाह की तैयारी करने के लिए आज्ञा दी। कुण्डिनपुर में यह चर्चा घर-घर होने लगी कि राजा रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्णजी से करते थे पर रुक्माग्रज दुष्ट ने नहीं होने दिया, अब शिशुपाल के साथ उसका विवाह होगा। इतनी कथा सुनाकर शुक-देवजी बोले—हे राजन्! राजमन्दिर में केले के खम्भे गाड़कर सोने का कलश धरने के उपरांत मँड़वा तैयार हुआ और स्त्रियाँ मंगलाचार गीत गाकर अपने कुल की रीति करने लगीं। राजा ने न्योता भेजकर अपने इष्ट-मित्रों को बुलाया। नाच रंग आदि अनेक तरह का मंगलाचार वहाँ होने लगा तब दो-चार सखियों ने आकर रुक्मिणी से कहा कि तेरा विवाह रुक्माग्रज ने राजा शिशुपाल के साथ ठहराया है, सो अब तू रानी होगी। यह बात सुनते ही रुक्मिणी अपने मन में बहुत उदास होकर बोली—हे प्यारी! मेरे स्वामी मनसा वाचा कर्मणा श्यामसुन्दर वैकुण्ठनाथ हैं, उनके सिवा मैं दूसरे को अपना पति बनाना नहीं चाहती। ऐसा कहकर रुक्मिणी सोच विचार करने लगी।

चौ० सोचत महा करे दुख भारी। मिलैं कौन विधि कृष्णमुरारी ॥

दो० माखनप्रभुके दरश को किहि विधिकरों उपाय। पुरीद्वारकादूर अति कछु नहिं बनै बनाय॥

रुक्मिणी ने बहुत सोच विचारकर मन में यह बात ठहराई कि किसी को मुरलीमनोहर के पास भेजकर अपनी इच्छा उनसे प्रकट करना चाहिए। जब रुक्मिणी ने इसके सिवा दूसरा कुछ उपाय उत्तम नहीं देखा तब एक बुद्धिमान् ब्राह्मण को अपने माता-पिता व भाई से छिपाकर बुलाया और अपना मनोरथ कहने व चिट्ठी देने के उपरान्त हाथ जोड़कर उससे विनय किया—महाराज! आप कृपा करके तुरन्त यह चिट्ठी द्वारका में ले जाइए और श्रीकृष्णजी के हाथ देकर मेरा सन्देशा कहने के उपरान्त उन्हें अपने साथ यहाँ ले आइए तो जन्म भर आपका गुण मानकर यह समझूँगी कि तुम्हारी दया से मैंने द्वारकानाथ को स्वामी पाया। यह वचन सुनते ही वह ब्राह्मण रुक्मिणी से बिदा होकर मुरलीमनोहर का ध्यान करता हुआ द्वारका को चला। वैकुण्ठनाथ की कृपा से तुरन्त वहाँ पहुँचकर द्वारकापुरी की शोभा इस तरह पर देखी कि रत्न जटित स्थान वहाँ बने हैं, घर-घर मंगलाचार व कथा-पुराण हो रहा है। जब वह ब्राह्मण यह सब शोभा व आनन्द देखता हुआ श्यामसुन्दर की डेवढ़ी पर, जहाँ हजारों द्वारपालक खड़े थे जा पहुँचा व मारे डर के भीतर जा नहीं सका तब द्वारपालकों ने उस ब्राह्मण से पूछा—

चौ० को हो आप कहाँ से आये। कौन देश की पाती लाये॥

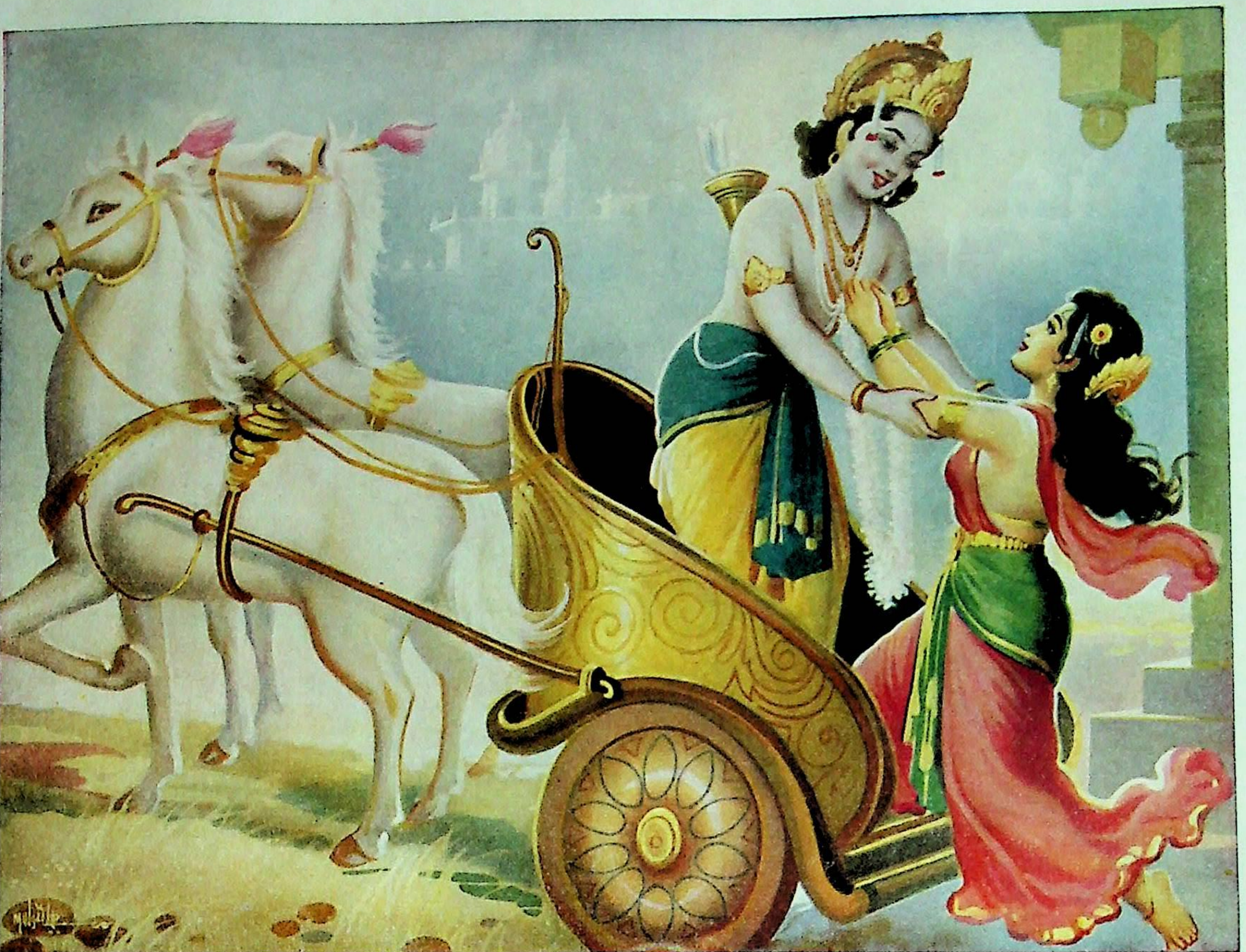
दो० सकल व्यवस्था आपनी तिनसों कही जनाय। कुण्डिनपुर कों विप्रहौं अबहीं पहुँचो आय॥

उस ब्राह्मण का हाल सुनकर एक द्वारपालक बोला—महाराज! तुम किस वास्ते यहाँ खड़े हो, हमारे स्वामी के स्थान में किसी ब्राह्मण को जाने के लिए मना नहीं है। आप बेधड़क भीतर चले जाइए। श्यामसुन्दर सामने सिंहासन पर बैठे हैं, वे तुम्हारा बड़ा आदर करेंगे। यह वचन सुनते ही जब वह ब्राह्मण कृष्णचन्द्र के सामने, जहाँ वे जड़ाऊ सिंहासन पर पीताम्बर पहिने बैठे थे, चला गया तब त्रिलोकीनाथ ने ब्राह्मण को देखते ही सिंहासन से उतरकर दण्डवत् की, सम्मानपूर्वक अपने पास बैठाया और बड़े प्रेम से पूछा—महाराज! आप कहाँ से आये हैं? जीस देश में आप रहते हैं वहाँ का राजा अपने कर्म-धर्म से रहकर प्रजा का पालन और ब्राह्मणों की सेवा अच्छी तरह करता है या नहीं।

चौ० कौन काज यहँ आवन भयो। दरश दिखाय हमें सुख दयो॥

दो०कहत वचन द्विजराज सों माखन प्रभु या भाँत। देखत हरिकी दीनता यादवसब मुसकात॥

यह वचन सुनते ही वह ब्राह्मण रुक्मिणी की चिट्ठी उनके आगे रखकर बोला—हे कृपानिधान! मेरे आने का यह कारण है कि कुण्डिनपुर में राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी आपका नाम व गुण सुनकर दिन-रात यह इच्छा रखती है कि तुम्हारे चरणों की दासी हो। उसका पिता उसे तुम्हारे साथ विवाहना चाहता था, परन्तु बड़े राजकुमार रुक्माग्रज ने यह बात न मानकर उसकी सगाई शिशुपाल से की है, इसलिए वह बहुत राजों को साथ लेकर बड़े धूमधाम से कुण्डिनपुर में विवाह करने आवेगा। रुक्मिणी मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारे चरणों में प्रीति रखकर उसके साथ विवाह करना नहीं चाहती। इसी वास्ते राजकुमारी ने व्याकुलता से चिट्ठी भेजकर तुम्हें बुलाया है। यह वचन सुनते ही केशवमूर्ति भक्त-हितकारी ने बड़े हर्ष से वह चिट्ठी उसी ब्राह्मण को देकर कहा कि तुम इसको पढ़ो। ब्राह्मण वह चिट्ठी पढ़कर सुनाने लगा। उसमें रुक्मिणी ने लिखा था—हे त्रिलोकीनाथ अविनाशी पुरुष! तुम्हारे बराबर कोई दूसरा सुन्दर नहीं है, सो मेरी विनय सुनिए। हे परब्रह्म परमेश्वर! मैं आपकी स्तुति सुनकर मनसा वाचा कर्मणा अपने को तुम्हारी दासी समझती हूँ। तुम्हारे सिवा दूसरे को नहीं चाहती। आप भी दयालु होकर मुझे अपने चरणों के पास रखिए। यद्यपि मैं आपके योग्य नहीं हूँ, पर आपकी दासियों में रहूँगी। मेरा बड़ा भाई बरजोरी मुझे शिशुपाल से विवाहना चाहता है, पर मैं यह बात न चाहकर प्रेमपूर्वक यह इच्छा रखती हूँ कि तुम्हारी सेवा करके अपना जन्म सफल करूँ। कदाचित् आप ऐसा कहें कि कुलवन्ती कन्या ऐसा कर्म नहीं करती कि अपने विवाह का सन्देशा आप भेजे, सो हे दीनानाथ! इसका यह कारण समझिए कि तुम्हारी स्तुति, जो संसार में प्रकट है, सुनकर मेरी लज्जा छूट गई। तुम्हारे चरणों की रज मिलने के लिए ब्रह्मा व महादेव आदि देवता व बड़े-बड़े योगी व मुनि इच्छा रखते हैं, पर वह धूरि उनको जल्दी नहीं मिलती। मैं मनसा वाचा कर्मणा यह इच्छा रखती हूँ कि उन चरणों की सेवा



[कापीराइट सुरक्षित]

रुक्मिणी हरण

करके वह रज अपने मस्तक पर लगाऊँ। कदाचित् वह धूरि मुझे नहीं मिलेगी तो उन चरणों में ध्यान लगाकर यह तनु छोड़ दूँगी।

चौ० जाको शिव सनकादिक ध्यावें। वेद पुराण भेद नहिं पावें।
ताही चरण-कमल की आस। मन मधुकर है कीन्हों वास॥

दो० तुम चाहो या मति चहो माखनप्रभु यदुराय। मैं चाहति हूँ आपको प्रेमप्रीति के भाय॥

हे महाप्रभु! अब शिशुपाल बरात साजकर कुण्डिनपुर में मुझे ब्याहने आवेगा, सो तुम वेग आकर शत्रुओं को जीतकर मुझे यहाँ से ले जाओ। कदाचित् आप नहीं आवेंगे तो मैं अपने प्राण तुम्हारे चरणों पर न्योछावर कर दूँगी और दूसरे जन्म में तुम्हारा भजन करके हरिचरणों के पास पहुँचूँगी।

चौ० हौं तुम्हरी चेरी की चेरी। तुमको सकल लाज है मेरी॥
कृपा करो मोहन यदुनाथा। रथ चढ़ि चलो विप्र के साथा॥

हे दीनदयालु! ऐसा मत करना कि सिंह का आहार गीदड़ ले जावे। कदाचित् आप ऐसा कहें कि हम राजमन्दिर में से तुझे किस तरह हर ले जायँगे, सो मैं विवाह से एक दिन पहले देवीजी की पूजा करने के लिए नगर के बाहर जाऊँगी, जब वहाँ से फिरकर घर आने लगूँ तब आप राह में से मुझे अपने साथ ले जाना। संसार में तुम्हारा नाम दीनदयालु प्रकट है, इसलिए मुझे महादीन जानकर दयालु होना।

चौ० जो तुम वेगि न पहुँचो आय। तो मोहि असुर ब्याहि लै जाय॥

दो० याविधि पातीश्रवणकरिमाखनप्रभु कर्तार। कुण्डिनपुरकेचलनकोमनमें कियो विचार॥

तिरपनवाँ अध्याय।

रुक्मिणी को श्यामसुन्दर का हर ले आना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! श्यामसुन्दर ने वह चिट्ठी सुनते ही बड़ी प्रसन्नता से उस ब्राह्मण का हाथ पकड़ लिया और उसको अकेले में ले जाकर कहा—हे ब्रह्ममूर्ति! जिस दिन से मैंने रुक्मिणी के रूप व गुण का हाल नारदजी के मुख से सुना है उसी दिन से मैं भी उसके मिलने की चाह रखता हूँ और यह भी मुझको मालूम है कि रुक्माग्रज मेरे साथ शत्रुता रखकर उसका विवाह मुझसे होने नहीं देता।

तुम आज रात्रि को यहाँ रहो, कल्ह प्रातःसमय तुम्हारे साथ चलकर रुक्मिणी की इच्छा पूर्ण करूँगा। जिस तरह काठ में काठ रगड़ने से आग उत्पन्न होकर सारा वन जल जाता है उसी तरह शत्रुओं को सेना समेत जीतकर रुक्मिणी को ले आऊँगा। यह बात सुनकर ब्राह्मण देवता को धैर्य हुआ। मुरलीमनोहर ने दारुक सारथी को बुलाकर कहा कि कल्ह प्रातःसमय रथ तैयार करके ले आना। प्रातःकाल दारुक सारथी उनका रथ साजकर ले आया। श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द उस ब्राह्मण समेत रथ पर चढ़कर कुण्डिनपुर को चले। जब वह सारथी रथ दौड़ाकर नगर से बाहर ले गया तब प्राणनाथ ने क्या देखा कि दाहिनी ओर हरिणों का झुण्ड चला जाता है। यह शकुन देखकर उस ब्राह्मण ने केशवमूर्ति से कहा कि महाराज! अच्छे शकुन मिलने से मेरे विचार में ऐसा आता है कि जिस काम के लिए आप चलते हैं वह काम तुरन्त सिद्ध होगा। श्यामसुन्दर बोले कि आपकी कृपा से मेरा मनोरथ मिलेगा। यह बात कहकर रथ आगे को बढ़ाया। जब बलभद्र ने सुना कि मुरलीमनोहर अकेले कुण्डिनपुर को गये तब उन्होंने जाकर राजा उग्रसेन से कहा कि महाराज! हमने सुना है कि राजा शिशुपाल जरासन्ध आदि बहुत से राजों को अपने साथ बरात में लेकर रुक्मिणी से विवाह करने के लिए कुण्डिनपुर को आता है और मोहनप्यारे यहाँ से अकेले चले गये हैं, इसलिए हमको मालूम होता है कि वहाँ श्यामसुन्दर और उन लोगों से बड़ा युद्ध होगा। आप आज्ञा दीजिए तो हम लोग भी जावें। यह बात सुनते ही उग्रसेन ने बलराम से कहा कि तुम मेरी सब सेना साथ लेकर ऐसी जल्दी कुण्डिनपुर में जाओ कि वासुदेव वहाँ पहुँचने न पावें, राह में उनसे मिलकर उन्हें अपने साथ यहाँ ले आवो। यह वचन सुनते ही बलरामजी ने उसी समय दो अक्षौहिणी दल और बहुत शूरवीरों को अपने साथ लेकर कुण्डिनपुर को कूच किया। राह में श्रीकृष्णजी से मिलकर बोले कि हे भाई! मुझे भी साथ न लेकर अकेले क्यों चले आये। श्यामसुन्दर भाई को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। रुक्मिणीजी की व्याकुलता का हाल जानकर महीने का रास्ता एक दिन और एक रात में चले और जिस

दिन शिशुपाल की बरात कुण्डिनपुर में आनेवाली थी उसी दिन वहाँ जा पहुँचे। वहाँ क्या देखा कि उस नगर में घर-घर मंगलाचार हो रहा है, गली व चौराहों में गुलाब जल व चन्दन का छिड़काव हो रहा है, सब छोटे-बड़े कुण्डिनपुरवासी अच्छा-अच्छा गहना व कपड़ा पहिने हुए अपने-अपने द्वारे व चौराहों पर बरात देखने के लिए हर्षपूर्वक बैठे हैं।

दो०कुण्डिनपुर की छबिमहा वर्णि सकै कवि कौन। जाकीशोभादेखिकै सुखपावत ऋषिमौन॥

वहाँ की यह सब शोभा देखते हुए श्यामसुन्दर ने अपना रथ राजा भीष्मक के बाग में ले जाकर खड़ा किया और उस ब्राह्मण से बोले कि महाराज! हम अपना डेरा यहाँ करते हैं, तुम जाकर हमारे आने का हाल रुक्मिणी से कह दो जिसमें उसको धैर्य हो और वहाँ का समाचार फिर आकर हमसे कहो तो उसका उपाय किया जावे। यह वचन सुन-कर वह ब्राह्मण राजमन्दिर को चला। उस दिन राजा भीष्मक बरात निकट आने का हाल सुनकर अपनी सेना को साथ लिए हुए बरातियों को आगे से लेने गया और सम्मानपूर्वक उन्हें अपने साथ ले आकर यथायोग्य स्थान में जनवास दिया और भोजन के अनेक पदार्थ जो जिसे चाहिए था उनके स्थान पर भेज दिया। बरात पहुँचने की खबर सुनकर राजमन्दिर में स्त्रियाँ मंगलाचार करने लगीं और पुरोहित ने रुक्मिणी से सोना व गोदान दिलवाकर मोतियों का कँगना उसके हाथ में बँधवा दिया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द कुण्डिनपुर में पहुँच चुके थे, पर रुक्मिणी को उनके आने का हाल नहीं मालूम था, इसलिए वह यह सब चरित्र देख-कर अपने मन में चिन्ता करके कहने लगी कि श्यामसुन्दर चिट्ठी भेजने से मुझे निर्लज्ज समझकर अभी तक नहीं आये और उस ब्राह्मण ने भी अब तक फिरकर कुछ सँदेशा नहीं दिया कि प्राणनाथ आते हैं या नहीं, इससे मालूम होता है कि वैकुण्ठनाथ अन्तर्यामी ने मुझे कुरूप समझकर कृपा नहीं किया या वह ब्राह्मण रास्ता भूलकर द्वारका को नहीं गया या बरात के साथ जरासन्ध का आना सुनकर नहीं आये।

चौ० मेरी कछुक चूक मन आनी। याते नहिं जाये सुखदानी॥

अजहूँ नहिं आये नँदलाला। आय मोहिं बरिहै शिशुपाला॥

हे महाप्रभो! जब शिशुपाल कल्ह मुझे विवाहने के उपरांत हाथ पकड़कर ले जावेगा तब मैं अबला अनाथ क्या करूँगी। इस समय मेरे तप व जप व देवीजी की पूजा ने भी कुछ सहायता नहीं की। हे परमेश्वर! मैं क्या करूँ, किधर भाग जाऊँ या अपना प्राण दे डालूँ। अब तुम्हारे बिना किसी का भरोसा नहीं रखती। रुक्मिणी अनेक बातें मन में विचारकर किसी के पाँव का खटका सुनती तो उस ब्राह्मण का आना जानकर चारों ओर देखने लगती थी। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश प्रातःसमय मलीन हो जाता है वैसे ही रुक्मिणी का चन्द्रमुख उसी सोच में उदास हो गया था। जिस तरह पारा एक जगह नहीं ठहरता उसी तरह घबराहट से कभी कोठे पर, कभी द्वारे पर, कभी खिड़कियों में जाकर उस ब्राह्मण के आने की राह निहारा करती थी और लज्जावश अपने मन का भेद किसी से नहीं कहती थी।

दो० माखनप्रभु के ध्यान में प्राणनकी सुधि नाहिं। तबहीफड़केनयनभुज मुदित भई मनमाहि॥

रुक्मिणी की यह दशा देखकर एक सखी जो सब भेद जानती थी, बोली—हे प्यारी! तुम इतना घबराकर क्यों अपने प्राण देती हो, वह अपने पिता व भाई से पूछे बिना किस तरह आवेंगे। दूसरी सखी ने कहा कि वे दीनदयालु अन्तर्यामी तुम्हारे मन का हाल जानकर बिना आये न रहेंगे, तुम अपने मन को धैर्य देकर व्याकुल मत हो, मेरी समझ में वह कुण्डिनपुर में पहुँच चुके हैं। उसका वचन सुनकर रुक्मिणी ने कहा कि इस समय मेरी बाईं आँख व भुजा फड़कती है। वह सखी बोली कि इसे बहुत अच्छा शकुन समझो। अभी कोई आकर ऐसी खबर देगा कि श्यामसुन्दर आये हैं। जिस समय रुक्मिणी अपनी सखियों से यह चर्चा कर रही थी उसी समय उस ब्राह्मण ने पहुँचकर रुक्मिणी को अशीश देने के उपरान्त कहा कि केशवमूर्ति ने बलरामजी व सेना समेत यहाँ आकर राजा के बाग में डेरा किया है।

दो० रुक्मिणि विप्र हि देखिकेकीन्हों बहुत हुलास। कहत तुम्हारे धर्म से अब पूजी मम आस॥

उस समय रुक्मिणी को ऐसी प्रसन्नता हुई कि जैसे मृतक के तनु में

प्राण आ जावें और तप करनेवाला अपना मनोरथ पाकर प्रसन्न होवे। उसने हाथ जोड़कर ब्राह्मण से विनय किया—हे द्विजराज! तुमने वैकुण्ठ-नाथ के आने का हाल सुनाकर मुझे जीवदान दिया, मैं इसके बदले तुमको तीनों लोक की सम्पदा दूँ तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकती। यह बात कहकर जैसे रुक्मिणी ने कृपादृष्टि से उस ब्राह्मण की ओर देखा वैसे ही उसके घर लक्ष्मीजी का वास हो गया। फिर वह ब्राह्मण आशीर्वाद देकर राजा भीष्मक के पास चला गया और श्यामसुन्दर के आने का समाचार ज्यों का त्यों राजा से कह दिया। जब राजा ने सुना कि श्रीकृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्द मेरे यहाँ विवाह करने के लिए आकर बाग में टिके हैं तब वह उसी क्षण बड़े हर्ष से बहुत रत्नादिक साथ लेकर अपने चारों छोटे बेटों समेत वाटिका में गया। उसने दूर से राम व कृष्ण दोनों भाइयों को बैठे हुए देखा और सवारी पर से उतरकर पैदल उनके निकट गया और रत्नादिक उन्हें भेंट देकर विनयपूर्वक बोला—

चौ० मेरे मन वच तुमहौ हरी। कहा कहों जो दुष्टन करी॥

हे महाप्रभो! आपने दयालु होकर मुझे दर्शन दिया और मैं कृतार्थ होकर अपने मनोरथ को पहुँचा। फिर राजा भीष्मक बहुत अच्छे स्थान में श्याम व बलराम को टिकाकर राजमन्दिर पर चला आया और सब पदार्थ भोजनादिक का उनके यहाँ भेजकर यों कहने लगा कि रुक्मिणी श्रीकृष्णजी के साथ विवाहने योग्य है, पर क्या करूँ मेरा कुछ वश नहीं चलता।

चौ० हरिचरित्र जानै नहिं कोय। क्या जानैं अब कैसी होय॥

जब कुण्डिनपुरवासियों ने दोनों भाइयों के आने का हाल सुना तब सब छोटे-बड़ों ने उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनकर झुंड के झुंड उनके दर्शन के लिए वहाँ पहुँचे और उन्हें दण्डवत् करके अपने-अपने लोचनों का फल प्राप्त किया। वे बड़े हर्ष से आपस में कहने लगे—

दो० हैं अतिसुन्दर श्यामवर कहैं परस्पर लोग। यह शिशुपाल महा अधम नहीं रुक्मिणी योग॥

परमेश्वर की दया से रुक्मिणी का विवाह मुरलीमनोहर के साथ हो और श्याम व बलराम दोनों भाइयों की जोड़ी चिरंजीव रहे। हे राजन्!

जब चार घड़ी दिन रहा तब राम व कृष्ण रथ पर बैठकर कुण्डिनपुर की शोभा देखने निकले। जिस गली व बाजार व चौराहे पर उनकी सवारी पहुँचती थी वहाँ के सब स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी खिड़की व द्वारों पर से दोनों भाइयों पर पुष्प आदि बरसाकर आपस में यों कहते थे।

चौ० नीलाम्बर ओढ़े बलराम। पीताम्बर पहिने घनश्याम॥
कुण्डल चपल मुकुट शिरधरे। कमलनयन माधव मनहरे॥

जब श्याम व बलराम नगर की शोभा व राजा शिशुपालादिक की सेना देखते हुए अपने डेरे पर पहुँचे तब रुक्माग्रज उनके आने का हाल सुनते ही बड़े क्रोध से अपने बाप के पास जाकर बोला—तुम सच बतलावो कि श्रीकृष्ण हमारे यहाँ विवाह में विघ्न करने के लिए किसके बुलाने से आये हैं। राजा भीष्मक ने कहा—मैंने उनको नहीं बुलाया। तब वह जनवासे में जाकर शिशुपाल व जरासन्ध से बोला कि कुण्डिनपुर में श्याम व बलराम भी आये हैं, सो तुम अपने सेनापतियों से कह दो कि सावधान रहें। उन दोनों भाइयों का नाम सुनते ही राजा शिशुपाल मारे डर के चित्रकारि सा चुपचाप रहकर कुछ नहीं बोला, पर जरासन्ध ने रुक्म से कहा कि सुनो मित्र! इन्हीं दोनों भाइयों ने राजा कंसादिक बड़े-बड़े शूरवीरों को सहज में मार लिया था, यहाँ जो आये हैं तो अवश्य कुछ उपद्रव करेंगे। इन्हें तुम बालक मत समझो, यह बड़े प्रतापी हैं। आज तक किसी से नहीं हारे। सत्रह बेर मेरा तेईस-तेईस अक्षौहिणी दल इन दोनों भाइयों ने लड़कर मार डाला। जब अठारहवीं बेर मैं सेना लेकर इन पर चढ़ा तब यह दोनों भाई बिना लड़े मेरे सामने से भागकर पर्वत पर चढ़ गये। जब मैंने उस पहाड़ के चारों ओर आग लगवा दी तब वहाँ से कूदकर द्वारका में जा बसे।

चौ० इनको काहू भेद न पायो। करन उपद्रव यहँ भी आयो॥
यह हैं छली महाछल करैं। काहू को नहिं जानो परैं॥

इसलिए अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि हम लोगों की लाज रहे। यह बात सुनकर रुक्माग्रज अभिमान से बोला कि श्याम व बलराम क्या वस्तु हैं जिनसे तुम इतना डरते हो। मैं उनको अच्छी तरह जानता हूँ। वृन्दावन में नाच-गाकर गौवें चराया करते थे। वे गँवार

बालक युद्ध का हाल क्या जानते हैं, तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। कृष्ण-बलराम को यदुवंशियों समेत हम अकेले हटा देंगे। हे राजन्! उस दिन रुक्म इस तरह उन्हें बोध देकर अपने घर चला आया और शिशुपाल व जरासन्ध ने आपस में अनेक उपाय विचारकर बड़ी चिन्ता से वह रात काटी। प्रातःसमय वह दोनों इधर बरात निकालने की तैयारी करने लगे और उधर राजा भीष्मक के यहाँ मंगलाचार व विवाह का उद्योग होने लगा। जाति-भाइयों की स्त्रियों ने रुक्मिणी को उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाकर दुलहिनों के समान बनाया। जब चार घड़ी दिन रहे बहुत-सी ब्राह्मणी, जो उस रोज मौनव्रत रक्खे थीं, रुक्मिणी को हजार सहेलियों समेत साथ लेकर गाती-बजाती देवीपूजा करने चलीं तब राजा शिशुपाल ने यह समाचार सुनकर इस डर से कि कदाचित् मोहनप्यारे रुक्मिणी को बरजोरी उठा न ले जावें पचास हजार शूरवीर उसकी रक्षा करने के लिए संग कर दिये। वे लोग अनेक तरह के शस्त्र लेकर राजकुमारी के साथ चले। उस समय रुक्मिणी सहेलियों के झुण्ड में धीरे-धीरे हंसरूपी चाल चलती हुई कैसी सुन्दर मालूम होती थी, जैसे चन्द्रमा तारों में शोभा देता है। शिशुपाल व जरासन्ध के शूरवीर काले-काले कपड़े पहिने उसको चारों ओर घेरे हुए श्याम घटा के समान मालूम होते थे। रुक्मिणीजी ने मन्दिर में पहुँचकर देवीजी का चरण धोया और विधिपूर्वक पूजन करके हाथ जोड़कर विनय किया—

दो०बालापन ते करति हौं बहुविधान ते सेव। जो तुम साँची गौरिहौ मनमानत फल देव ॥

यह वचन सुनते ही दूसरी स्त्रियों ने भी, जो उसके साथ में थीं, हाथ जोड़कर कहा—हे अम्बिके! ऐसी कृपा करो कि राजदुलारी का मनोरथ पूर्ण हो। पूजा और परिक्रमा करके ब्राह्मणों को भोजन कराने के उपरान्त वह चन्द्रमुखी मन्दिर से बाहर निकली।

दो० वा दिन रुक्मिणिप्राततेधरेहती व्रत मौन। पूजाकरि छविसोंचलीवरणिसकैकविकौन ॥

हे राजन्! जिस समय वह महासुन्दरी श्याम मिलन की आशा लगाये गजरूपी चाल से धीरे-धीरे सहेलियों समेत राजमन्दिर पर आने

लगी उसी समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द भी तीनों लोकों की सुन्दरता धारण किये अकेले रथ पर बैठे हुए वहाँ आ पहुँचे।

दो॰पूजि गौरि जबहीं चली एक कहत अकुलाय। सुन प्यारी आये हरी देख ध्वजा फहराय॥

यह वचन सुनते ही जैसे राजकुमारी ने घूँघट उठाकर मुसुकराती हुई रथ की ओर देखा वैसे ही सब शूरवीर रखवारी करनेवाले वह तिरछी चितवन व मन्द मुसकान देखते ही ऐसे अचेत हो गये कि उनके शस्त्र हाथ से गिर पड़े!

उसी समय वृन्दावनविहारी ने अपना रथ सखियों के झुण्ड में ले जाकर रुक्मिणी के पास खड़ा कर दिया। जैसे राजकुमारी ने लजाती हुई हाथ बढ़ाकर मोहनप्यारे से मिलना चाहा वैसे ही श्यामसुन्दर ने बायें हाथ से रुक्मिणी का हाथ पकड़कर अपने रथ पर बैठा लिया और शंख बजाकर वहाँ से अपना रथ हाँका।

चौ॰ काँपत गात सकुच मन भारी। छाँड़ि सबै हरि संग सिधारी॥
ज्यों बैरागी छाँड़ै गेह। कृष्ण चरण से करै सनेह॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! रुक्मिणी अपने व्रत व पूजा का फल पाकर पिछला सब सोच भूल गई। राजा जरासन्ध व शिशुपाल के शूरवीरों से कुछ नहीं बन पड़ा। श्रीकृष्णजी इस तरह उन लोगों के बीच में से रुक्मिणी को लेकर चले गये जिस तरह सिंह सियारों के गोल में से अपना आहार लेकर निर्भय चला जाता है। जब वहाँ से बारह कोस पर मुरलीमनोहर का रथ जा पहुँचा तब वे शूरवीर सचेत होकर उनके पीछे दौड़े।

दो॰ऐसी विधि कन्या हरी भई प्रगट यह बात। सब राजा सुनकर कुढ़े मन ही मन पछितात॥

जब बलरामजी ने देखा कि श्यामसुन्दर रुक्मिणी को रथ पर बैठाकर द्वारका की ओर चले जाते हैं तब वह भी अपनी सेना लेकर शत्रुओं से लड़ने के लिए श्रीकृष्णजी के पास चले आये। मुरलीमनोहर ने रुक्मिणी को डर से घबराई हुई देखकर कहा—हे प्राणप्यारी! अब तू किसी बात का सोच मत कर। द्वारका में पहुँचते ही शास्त्रानुसार तुझसे विवाह करके तेरा मनोरथ पूर्ण करूँगा। जब श्यामसुन्दर इस तरह धैर्य देकर अपने गले की माला रुक्मिणी को पहिना दी तब उसका भय छूट गया।

चौवनवाँ अध्याय।

जरासन्ध व रुक्माग्रज आदि को श्याम व बलराम से युद्ध करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब मुरलीमनोहर रुक्मिणी को इस तरह हर ले गये और यह समाचार शिशुपाल ने सुना तब जरासन्ध व दन्तवक्र आदि सब बरातवाले राजा अपनी-अपनी सेना साथ लेकर श्यामसुन्दर के पीछे चढ़ दौड़े और आपस में कहने लगे कि बड़ी लज्जा की बात है कि हम लोगों के रहने पर भी यादव का बेटा रुक्मिणी को बरजोरी हर ले जावे। जब इसी तरह की चर्चा आपस में करते हुए श्यामसुन्दर के रथ के पास पहुँचे तब उन लोगों ने ललकारकर कहा कि तुम दोनों भाई कहाँ भागे जाते हो, खड़े होकर हमारे साथ लड़ाई करो। जो शूरवीर क्षत्रिय हैं वह युद्ध विषे पीठ नहीं दिखाते। यह वचन सुनते ही बलरामजी ने अपनी सेना समेत फिरकर उन लोगों से ऐसा युद्ध किया कि दोनों ओर से अनेक शस्त्र चलकर नदीरूपी रुधिर बह निकला। ऐसा भारी युद्ध देखकर रुक्मिणी घबरा गई और बड़े सोच से मन में कहने लगी कि मेरे लिए श्याम व बलराम इतना दुःख पाते हैं। हे परमेश्वर! यह सब शत्रु कब तक लड़ेंगे और इतनी सेना किस तरह मारी जायगी। जब रुक्मिणी इसी तरह अनेक बातें विचारकर मारे डर के काँपने लगी तब वैकुण्ठनाथ अन्तर्यामी ने उससे कहा कि तू मेरी महिमा जानकर भी इतना क्यों डरती है। धैर्य रख, अभी एक क्षण में यह सब शत्रु इस तरह मारे जायँगे जिस तरह सूर्य निकलने से तारे दिखलाई नहीं देते। जब मुरलीमनोहर के समझाने पर भी राजदुलारी का डर नहीं छूटा तब उन्होंने लड़ना उचित नहीं समझा और अपना रथ रणभूमि से अलग ले जाकर खड़ा कर दिया और युद्ध का कौतुक देखने लगे।

दो० यादव असुरन से लड़त होत महा संग्राम। ठाढ़े देखत कृष्ण हैं करत युद्ध बलराम॥

उस समय बलरामजी ने क्रोधित होकर अपना हल व मूसल उठा लिया और बड़े-बड़े शूरवीर, हाथी व घोड़ों को मारने लगे। जिस तरह किसान लोग खेत काट डालते हैं उसी तरह बलभद्रजी ने क्षण भर में बहुत सी

सेना शत्रुओं की मार गिराई। जब जरासन्ध आदि राजों ने यह दशा अपनी सेना की देखी तब रणभूमि से भागकर शिशुपाल के पास चले आये। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! उस समय देवता अपने विमानों पर से बलरामजी पर पुष्प बरसाकर उनकी स्तुति करने लगे। जब शिशुपाल ने अपने साथी राजों की यह दुर्दशा देखी तब मारे सोच व लज्जा से उसका मुख पीला हो गया और जरासन्ध से रोकर कहा—महाराज! रुक्मिणी को श्रीकृष्णचन्द्र बरजोरी उठा ले गये और लड़ाई में भी हम लोगों से कुछ नहीं बन पड़ा, इसलिए लज्जावश मुझसे अपना मुख किसी को दिखाया नहीं जाता। यह कलंक जन्मभर नहीं छूटेगा, इससे कहो तो मैं भी लड़कर मर जाऊँ।

चौ० नहिं इत रहों करों वनवासा। लेइहौं योग छाँड़ि सब आसा॥

यह बात सुनकर जरासन्ध ने कहा—महाराज! आप ऐसे ज्ञानी को मैं क्या समझाऊँ। बुद्धिमान् लोग हानि व लाभ में हर्ष व विषाद न करके सब बातों को परमेश्वर के अधीन समझते हैं। जिस तरह काठ की पुतली को मदारी नचाते हैं उसी तरह सब जीवों के कर्ता धर्ता नारायणजी जो चाहते हैं, सो होता है, इसलिए दुःख व सुख को एक सा जानकर संसारी व्यवहार स्वप्नवत् समझना चाहिए। देखो, इसी तरह मैं भी सत्रह बेर इनसे हार गया था, पर कुछ उदास नहीं हुआ। जब अठारहवीं बेर ये दोनों भाई मेरे सामने से भाग गये तब मैंने कुछ हर्ष भी नहीं किया। न मालूम यह दोनों कौन अवतार ऐसे बलवान् व प्रतापी हैं जिनसे कोई जीत नहीं सकता।

दो० सुख पाछे दुख होत हैं यही जगत की रीति। कबहूँ रण में हारिहै कबहूँ लीजै जीति॥

इसलिए यह समय टाल देना उचित है। जिस तरह अठारहवीं बेर मेरा मनोरथ मिला था उसी तरह आप भी जीते रहेंगे तो एक दिन आपकी इच्छा पूर्ण हो जायगी। जब इस तरह समझाने से शिशुपाल को धैर्य हुआ तब वह और उसके साथी सब राजा सेना समेत, जो जीते व घायल बच गये थे अपने-अपने देश को चले गये।

दो० लज्जित होके फिर चल्यो हारमानि शिशुपाल। सबराजनको जीतिकैकूचकियोनँदलाल॥

जब रुक्माग्रज ने जरासन्ध आदि के भाग आने का समाचार सुना तब

बहुत क्रोधित होकर अपनी सभा में आ बैठा और सब लोगों को सुनाकर कहने लगा कि बड़े आश्चर्य की बात है जो मेरी बहिन को बरजोरी कृष्णचन्द्र उठा ले जावें । जब तक मेरे तनु में प्राण हैं तब तक रुक्मिणी को नहीं ले जाने दूँगा । अब मैं यह प्रण करता हूँ कि अभी जाकर दोनों भाइयों को जीतकर रुक्मिणी को न ले आऊँ तो अपना नाम रुक्म न रखकर कुण्डिनपुर में किसी को अपना मुख न दिखलाऊँ । ऐसा कहकर एक अक्षौहिणी सेना लेकर उनके पीछे चढ़ दौड़ा और रास्ते में अपने सेनापतियों से कहा कि तुम लोग यादववंशियों को मारो, मैं अपना रथ आगे बढ़ाकर कृष्ण को जीता पकड़ लाता हूँ । यह वचन सुनते ही उसकी सेना यदुवंशियों से, जो बलरामजी के साथ में थे, लड़ने लगी और रुक्म ने अपना रथ आगे बढ़ाकर श्यामसुन्दर से ललकारकर कहा—हे यादव ! कहाँ भागा जाता है, तुझे सामर्थ्य हो तो एक क्षण ठहर कर मेरे साथ युद्ध कर । मुझे शिशुपाल व जरासन्ध आदि मत समझना । जिस तरह गोकुल व वृन्दावन में अहीरियों का गोरस चुराकर खाया करते थे, उसी तरह मुझको भी व्रजवासी अहीर समझकर मेरी बहिन चुरा ले भागे । तुझे इस बात का कुछ भय नहीं हुआ कि रुक्मिणी मुझ ऐसे शूरवीर व प्रतापी की बहिन को बरजोरी उठा ले चला । आज तक तुमने राजा भीष्मक का नाम भी नहीं सुना था जो ऐसी अनीति की । जो लोग तुम्हारे सम्मुख से भाग गये हैं, वे क्षत्रिय नहीं थे । अब मेरे सामने से तुमको जीते बचकर जाना बहुत कठिन है । जब इसी तरह की अनेक बातें अभिमानपूर्वक रुक्म ने कहकर बहुत से तीर श्यामसुन्दर पर चलाये तब द्वारकानाथ ने अपने बाण से वे सब तीर काट डाले । फिर केशवमूर्ति ने चार बाण से चारों घोड़ों को मारकर एक तीर से सारथी को अचेत किया । एक बाण से रथ की ध्वजा गिराकर दूसरे तीर से उसका धनुष काट डाला । जब रुक्म ने छोटे-छोटे गदा आदि अनेक शस्त्र मुरलीमनोहर पर चलाये और उन अस्त्रों को भी श्यामसुन्दर ने अपने बाणों से काट डाला, उसका कोई अस्त्र मोहनप्यारे के नहीं लगा तब इस तरह क्रोध करके ढाल-तलवार हाथ में लिए हुए रथ से कूदकर वृन्दावनविहारी

पर झपटा जिस तरह पतंग जलने के लिए दीपक पर जा गिरता है या जैसे बौरहा गीदड़ हाथी पर झपटे। तब मुरलीमनोहर ने उसकी ढाल-तलवार भी बाण से काटकर गिरा दिया।

दो०तेहि अवसर कोपित भये माखन प्रभु ब्रजनाथ। रुक्म हतन के कारने लिये खड्ग निज हाथ॥

जब श्रीकृष्णचंद्र ने नंगी तलवार लिये हुए रथ से कूदकर रुक्म का शिर काटना चाहा तब रुक्मिणी अपने भाई की यह दशा देखकर डरती व काँपती हुई हरिचरणों पर गिर पड़ी और रोती हुई हाथ जोड़कर बोली—

चौ० मारो मत भाई है मेरो। छाँड़ो नाथ तुम्हारों चेरो॥
मूरख अन्ध कहा यह जानै। लक्ष्मीपति को मानुष मानै॥
नहिं जानै कोइ तुम्हरो अन्त। भक्त हेतु प्रकटे भगवन्त॥
यह जड़ कहा तुम्हैं पहिचानें। दीनदयालु जग तुम्हैं बखानैं॥

मैं दीन होकर कहती हूँ, हे दीनानाथ! जिस तरह आप बलभद्रजी को प्यारा जानते हैं उसी तरह मेरा भाई मुझको भी प्यारा है। जिस तरह ज्ञानी लोग बालक व बौरहे व मूर्ख के अपराध पर कुछ ध्यान नहीं करते, उनके दुर्वचनों को कुत्ते के भूकने समान समझते हैं उसी तरह आप भी मेरे भाई को मूर्ख समझकर इसके प्राण मुझे दान दीजिए। कदाचित् आप इसको मार डालेंगे तो मेरे पिता को, जो तुम्हारा भक्त है, बड़ा दुःख होगा। और यह बात संसार में प्रकट है कि जहाँ तुम्हारे चरण जाते हैं वहाँ सबको सुख मिलता है, सो यह बड़ा आश्चर्य समझना चाहिए कि भीष्मक तुम्हारा श्वशुर होकर पुत्र का शोक उठावे।

चौ० बन्धु भीख प्रभु मोको दीजै। इतनो यश तुम जग में लीजै॥

दो०जो तुम याको मारिहौ माखनप्रभु ब्रजराज। तो मोकों सब सृष्टि में अपयश ह्वै है आज॥

हे राजन्! यह बात सुनकर और रुक्मिणी की दशा देखकर श्यामसुन्दर ने रुक्म का प्राण लेना उचित न समझा, उसकी पगड़ी उतारकर, उसकी भुजा बाँधकर अपने रथ में बाँध लिया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! उधर श्रीकृष्णजी ने रुक्म की यह दुर्दशा की, इधर बलरामजी उसकी सेना मार व भगाकर यदुवंशियों को साथ लिये इस तरह बड़े हर्ष से केशवमूर्ति के पास पहुँचे जिस तरह ऐरावत हाथी कमलवन को रौंदकर तोड़ता चला आता है। जब रुक्म

को बाँधा देखकर सब यदुवंशी हँसने लगे तब बलभद्रजी ने मुरलीमनोहर से कहा कि हे भाई! रुक्म से तो भूल हुई थी, पर आपने भी अच्छा नहीं किया जो अपने साले को बाँध रक्खा है, इस तरह के जीने से रुक्म का मरना उत्तम था। कदाचित् यह युद्ध में सम्मुख मारा जाता तो अप्सराएँ हाथों हाथ इसे उठाकर स्वर्ग में ले जातीं। जिस समय रुक्म तुम्हारे सामने लड़ने आया था उसी समय उसको समझाकर विदा कर देना उचित था। इष्ट-मित्रों व सम्बन्धियों को अपराध करने पर भी मारना व बाँधना न चाहिए। आपने प्राण लेने से भी अधिक दण्ड इसको दिया। अब इसे बाँधकर रखने से क्या लाभ होगा। अपने भाई का यह वचन सुनते ही श्रीकृष्णजी ने रुक्म को छोड़ दिया। बलदाऊजी ने उसे बहुत संतोष देकर जाने के लिए कहा और रुक्मिणीजी से बोले—ऐ राजकन्या! तुम्हारे भाई की जो यह गति हुई इसमें श्यामसुन्दर का कुछ दोष नहीं है। यह सब इसके पिछले जन्म के कर्मों का फल था। क्षत्रियों का यह धर्म है कि पृथ्वी व द्रव्य व स्त्री के लिए आपस में झगड़ा करते हैं। जब दो मनुष्य लड़ेंगे तो उसमें से एक की जीत होगी और दूसरा अवश्य हारेगा। कर्म का लिखा हुआ किसी तरह नहीं मिटता। जो कुछ रुक्म के भाग्य में लिखा था सो हुआ। संसार में जिसने जन्म पाया वह अवश्य दुःख व सुख उठाता है। जीवात्मा सदा अमर रहकर कभी नहीं मरता और यह शरीर सदा बनता-बिगड़ता रहता है, इसलिए अंग की दुर्दशा होने से जीवात्मा की निन्दा नहीं होती। तुम रोना छोड़कर यह सब दुःख रुक्म के प्रारब्धाधीन समझो। यह बात समझाने से रुक्मिणी अपने मन को धैर्य देकर चुप हो रही। रुक्म ने विदा होते समय अपना शिर श्यामसुन्दर के चरणों पर रखकर विनय किया—हे दीनानाथ! मैं तुम्हारी महिमा नहीं जानता था, इसलिए मुझसे अपराध हुआ। अब दयालु होकर उसे क्षमा कीजिए। जब ब्रह्मा व महादेव आदि देवता आपको नहीं पहिचान सकते तो मेरी क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारी महिमा जान सकूँ। इसी तरह बहुत विनती व स्तुति करके रुक्म वहाँ से विदा हुआ।

दो० कहै सुन्दरी सैन में किये जेठ की लाज। अब विलम्ब क्यों करत हौ हाँकौ रथ व्रजराज ॥

रुक्मिणी की यह मनसा समझकर श्रीकृष्णजी ने अपना रथ द्वारका की ओर हाँक दिया। रुक्म अपनी प्रतिज्ञानुसार राजमन्दिर पर नहीं गया, कुण्डिनपुर के निकट भोजकट नाम दूसरा नगर बसाकर वहाँ रहा। राजा भीष्मक से मन में शत्रुता रखकर अपनी स्त्री व पुत्रों को वहाँ बुला भेजा। जब रामकृष्ण द्वारकापुरी के निकट पहुँचे तब राजा उग्रसेन व वसुदेव आदि बड़े हर्ष से नगर के बाहर आकर सम्मानपूर्वक उनको लिवा ले गये। सब द्वारकावासियों ने अपने-अपने द्वार पर मंगलाचार करके उनकी आरती की।

दो० प्रिया सहित श्रीद्वारका यदुपति पहुँचे आय। पुरवासी प्रफुलित भये आनँद उर न समाय॥

जब केशवमूर्ति इसी तरह सबको सुख देते हुए अपने द्वार पर पहुँचे तब देवकीजी ने बहुत स्त्रियों समेत वहाँ आकर अपने कुल की रीति की। रुक्मिणी की सुन्दरता देखकर बड़े हर्ष से उसे व मोहनप्यारे को महल में ले गईं। राजा उग्रसेन व वसुदेवजी ने उसी दिन गर्ग पुरोहित को बुलाकर विवाह का मुहूर्त पूछा। जब गर्ग मुनि ने शुभ लग्न विवाह का बतलाया तब राजा उग्रसेन ने अपने मंत्रियों को विवाह की तैयारी करने के लिए आज्ञा देकर दुर्योधन आदि अनेक राजों के यहाँ नेवता भेज दिया। राजा भीष्मक ने, जो अपनी कन्या श्यामसुन्दर को विवाहना चाहता था, द्वारका में विवाह होने की तैयारी सुना तब उसने बड़े हर्ष से अपने मन में कन्यादान का संकल्प किया और बहुत से रत्नादिक, भूषण, वस्त्र, हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी, दासी व दास अपने पुरोहित सहित द्वारकापुरी में वसुदेवजी के पास भेज दिया। जब द्वारका में उधर देश-देश के राजा नेवता करने के लिए आकर इकट्ठे हुए तब इधर से यह ब्राह्मण दहेज की सब वस्तुएँ लेकर वहाँ पहुँचा। ऐसी भीड़ व शोभा द्वाराका में हुई जिसका हाल वर्णन नहीं हो सकता। गर्ग पुरोहित ने शास्त्रानुसार श्यामसुन्दर का विवाह रुक्मिणी के साथ करा दिया।

चौ० पण्डित तहाँ वेदध्वनि करैं। रुक्मिणिसँग प्रभु भाँवरि फिरैं॥
ढोल नफीरी बहुत बजावें। हरषैं देव सुमन बरसावें॥
सिद्ध साध्य चारण गन्धर्व। अन्तरिक्ष ह्वै देखैं सर्व॥
चढ़िविमान सब माथ झुकावें। देववधू सब मंगल गावें॥

हाथ धरे प्रभु भाँवरि पारी । वामअंग रुक्मिणि बैठारी ॥
खोलत कंकण कृष्णमुरारी । ऐसे रस्म रीति सब कारी ॥
अति आनन्द रचो जगदीशा । हर्षि हर्षि सब देहिं अशीशा ॥
कृष्ण रुक्मिणी जोड़ी जीवें । यह चरित्र सुनि अमृत पीवें ॥

उस समय स्त्रियाँ मंगलाचार गीत गाकर और अप्सराएँ आकाश में विमानों पर नाच नाचकर प्रसन्न होती थीं। गंधर्व गाना सुनाकर देवता लोग अनेक तरह के रत्नजटित भूषण दुल्लह व दुलहिन को पहिनाकर आनन्द मनाते थे। जब विवाह हो चुका तब राजा उग्रसेन ने ब्राह्मणों को बहुतसा दान व दक्षिणा देकर सम्मानपूर्वक विदा किया। याचकों ने मंगनों को मुँहमाँगा द्रव्यादिक इतना दान दिया कि उनको दूसरी जगह माँगने की इच्छा नहीं रही। राजा उग्रसेन ने सब राजाओं और ब्राह्मणों को यथायोग्य सम्मानपूर्वक विदा किया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उस दिन द्वारकापुरी व तीनों लोकों में ऐसा आनन्द सबको प्राप्त हुआ जिसका हाल वर्णन नहीं हो सकता। रुक्मिणीजी के द्वारका में आने से सब छोटे-बड़ों के घर में लक्ष्मीजी का वास हो गया। सब राजा उनके अधीन रहकर अपने-अपने देश की सौगात श्याम व बलराम को भेजने लगे। जो कोई यह कथा रुक्मिणीमंगल की सच्चे मन से कहे व सुने उसको भुक्ति-मुक्ति और सब तीर्थस्नान करने का फल मिलता है।

—०◯०—

पचपनवाँ अध्याय।

प्रद्युम्न के जन्म की कथा।

इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! कामदेव को शिव-जी ने किस तरह जला दिया था वह कथा वर्णन कीजिए। शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! एक दिन महादेवजी कैलास पर्वत पर परमेश्वर के ध्यान में बैठे थे, उस समय अचानक में कामदेव ने आकर उन्हें ऐसा सताया कि उनका ध्यान खुल गया। तब उन्होंने क्रोध से अपनी तीसरी आँख खोलकर कामदेव की ओर देखा तो वह जलकर राख हो गया।

दो०कामबलीजबशिवदहेउतबरतिधरतनधीर।पतिबिनुअतितलफतखड़ीविह्वलविकलशरीर॥
चौ० कामनारि यों लोटत फिरै। कन्त कन्त कहि चाहत मरै॥

जब शिवजी ने उसकी यह दशा देखी तब प्रसन्न होकर कहा—हे रते! तू सोच मत कर, कुछ दिन बीते कामदेव कृष्ण अवतार में रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर शम्बरासुर के घर आवेगा। तू शम्बर दैत्य के यहाँ जाकर रसोई बनाने के लिए रह। वहाँ तेरा स्वामी तुझे मिलकर सुख देगा। जब यह सुनकर रति को धैर्य हुआ तब वह मायावती नाम वृद्धा स्त्री का रूप धरकर उस दैत्य के यहाँ चली गई और रसोई बनानेवालों में मुखिया बनकर अपने पति के मिलने की आशा में रहने लगी। परमेश्वर की आज्ञानुसार कामदेव ने रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लिया। वह बालक श्रीकृष्णजी के रूप के समान ऐसा सुन्दर उत्पन्न हुआ जिसे देखकर सूर्यदेवता लज्जित हो जाते थे। जब राजा उग्रसेन व वसुदेवजी ने ज्योतिषियों से जन्मलग्न का हाल पूछा तब पण्डितों ने उसकी जन्मकुण्डली बनाकर कहा कि महाराज, हमारे विचार में ऐसा मालूम होता है कि यह बालक सुन्दरता, बल व गुण में श्रीकृष्ण ऐसा होगा और कुछ दिन जलवास करने व शत्रु को मारने के उपरांत अपने माता-पिता से आ मिलेगा। जब ब्राह्मण लोग उस बालक का नाम प्रद्युम्न रखकर दक्षिणा लेकर अपने-अपने घर चले गये तब वसुदेवजी ने अपने कुल की रीति करके मंगलाचार मनाया। परमेश्वर की इच्छानुसार नारदमुनि ने शम्बर दैत्य से जाकर कहा कि तू नहीं जानता, कामदेव तेरे शत्रु ने प्रद्युम्न नाम से कृष्णचन्द्र के यहाँ जन्म लिया है। बारह वर्ष की अवस्था में वह तुझे मारेगा। जब नारदमुनि ऐसा कहकर ब्रह्मलोक को चले गये तब शम्बर दैत्य ने विचार किया कि मैं अभी प्रद्युम्न को उठा ले आकर समुद्र में डाल दूँ तो मेरे मन की चिन्ता छूट जावे। ऐसा विचारते ही शम्बर हवारूप बनकर द्वारका में आया और रुक्मिणी के मंदिर में घुस गया। प्रद्युम्न अठारह दिन का था उसे उठाकर ले उड़ा। किसी ने उसे ले जाते नहीं देखा। जब रुक्मिणी अपना बालक शय्या पर न देखकर रोने लगी तब सब स्त्रियों ने इस बात का आश्चर्य माना। शम्बर दैत्य प्रद्युम्न को समुद्र में डालकर अपने घर चला आया। श्यामसुन्दर की इच्छानुसार प्रद्युम्न को एक मछली ने निगलकर तीन वर्ष तक पालन किया। जब

एक केवट उसी मछली को जाल में फँसाकर शम्बर दैत्य के यहाँ भेंट ले गया तब उसने वह मछली अपने रसोई बनानेवालों के पास भेज दिया। जब उन्होंने उस मछली का पेट चीरा तब उसमें से एक बालक श्यामरंग बहुत सुन्दर जीता हुआ निकला। वे लोग अचम्भा मानकर उसे मायावती के पास ले गये। उसने बड़े हर्ष से बालक को ले लिया और शम्बरदैत्य से छिपाकर उसे पालने लगी। कुछ दिन बीते शम्बरासुर ने भी उसे देखा तो उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर मायावती से कहा कि तू इसे अच्छी तरह पालन कर। उन्हीं दिनों नारदमुनि मायावती के पास जाकर बोले कि यह बालक कामदेव नामक तेरा पति है, इसकी माता रुक्मिणी और पिता श्रीकृष्णजी द्वारका में रहते हैं। शम्बरासुर ने इसको चुराकर समुद्र में डाल दिया था, सो महादेवजी के आशीर्वाद से तेरे पास पहुँचा है। अपना बालापन यहाँ बिताकर शम्बरदैत्य को मारकर तुझे द्वारका में ले जायगा। यह बात कहकर नारदमुनि चले गये। रति यह हाल सुनते ही बहुत प्रसन्न होकर बड़े प्रेम से उसको पालने लगी। ज्यों-ज्यों वह बालक सयाना होता था त्यों-त्यों रति को अपने पति के मिलने की आशा होती थी। वह यों कहती थी—

चौ० ऐसो प्रभु संयोग बनायो। मछली माहिं कान्त मैं पायो॥

जब प्रद्युम्न पाँच वर्ष का हुआ तब रति उसको उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाकर उसे देख-देख अपनी आँखों को सुख देने लगी। प्रद्युम्न उसको अपनी माता समझकर लड़कों की तरह मैया-मैया कहता था और मायावती उसके साथ कान्तभाव रखकर दुलार व प्यार करती थी।

दो० ऐसे ही पालत रही बहुत दिना चितलाय। भयो तरुण सुन्दर महा शोभा कही न जाय॥

जब प्रद्युम्न नव-दस वर्ष का होकर सब भला व बुरा समझने लगा तब उसने एक दिन मायावती से, जो अपना शृंगार करके उसके साथ कटाक्ष करती थी, कहा—तुम हमारी माता होकर मुझे पतिभाव से देखती हो। यह बात सुनकर रति मुसकराती हुई बोली—हे कान्त! तुम यह क्या बात कहते हो, मैं रति तुम्हारी स्त्री हूँ।

दो०जन्म लियो श्रीद्वारकाशम्बर लियो चुराय। और अवस्था जो हती सो सब कही बुझाय॥

जब प्रद्युम्न ने मायावती से सब हाल अपने जलने व अवतार लेने व समुद्र में डालने व मछली निगलने का सुना तब उसने रति को अपनी स्त्री जानकर शम्बरासुर को अपना शत्रु समझा। उस समय मायावती बोली—हे कान्त! शिवजी के आशीर्वाद से मैं तो अपने मनोरथ को पहुँची, पर तुम्हारी माता रुक्मिणी ऐसा दुःख पाती है जैसे बछड़े के बिछुड़ने में गौ को सुख नहीं मिलता। इसलिए अब तुम्हें शम्बर दैत्य को मारकर द्वारका में चलकर अपने माता-पिता को सुख देना चाहिए। पर यह दैत्य मायायुद्ध बहुत जानता है और तुमने अभी तक युद्ध की विद्या कुछ नहीं पढ़ी, इसलिए वह विद्या मुझसे सीख लो।

दो० मैं याकी विद्या सकल तुमको देउँ बताय। जाते शम्बर असुर खल तुम सों जीतो जाय॥

जब प्रद्युम्न ने बारह वर्ष की अवस्था तक सब बाणविद्या व मायायुद्ध मायावती से सीख लिया तब अपने मन में युद्ध करने की सामर्थ्य पाकर शम्बरदैत्य को दुर्वचन कहने लगा जिसमें उससे युद्ध हो। जब एक दिन प्रद्युम्न खेलता हुआ शम्बरासुर की सभा में चला गया तब उस दैत्य ने किसी दूसरे से कहा कि मैंने इस बालक को अपना बेटा करके पाला है। यह वचन सुनकर प्रद्युम्न ताल ठोंककर बड़े क्रोध से बोला—मुझे अपना लड़का मत समझो, मैं तुम्हारा शत्रु हूँ, मुझसे लड़कर मेरा बल देख लो। यह वचन सुनकर शम्बरासुर हँसता हुआ अपने सभावालों से बोला कि देखो भाई! जैसे मैंने दूध पिलाकर साँप को पाला वैसे यह मेरे लिए दूसरा प्रद्युम्न उत्पन्न हुआ। ऐसा कहकर शम्बरदैत्य प्रद्युम्न से बोला—हे बेटा! तुम्हारी क्या मृत्यु आई है जो ऐसी कठोर बातें मुझसे कहते हो। उसने उत्तर दिया कि मेरा ही नाम प्रद्युम्न है। तुमने तो मुझको समुद्र में फेंककर मेरे प्राण लेना चाहा था, पर नारायणजी की दया से जीता बचकर आज तुमसे अपना वैर लेने आया हूँ। जिस तरह तुमने अपना काल घर में पाला था उसी तरह अब मुझसे लड़ाई करो। कोई किसी का बाप व बेटा नहीं होता। संसार की गति सदा से इसी तरह चली आती है। यह बात सुनकर शम्बरासुर बड़ा सोच व क्रोध करके अपनी सेना समेत प्रद्युम्न से लड़ने के लिए नगर के बाहर निकला।

गदा हाथ में लेकर प्रद्युम्न से ललकार कर बोला—देखें अब तेरा प्राण कौन बचाता है। ऐसा कहकर शम्बरदैत्य ने उन पर गदा चलाई, प्रद्युम्न ने अपनी गदा मारकर उसकी गदा गिरा दी। शम्बरासुर ने अग्निबाण उसके ऊपर छोड़ा। जब उसे भी प्रद्युम्न ने जलबाण मारकर बुझा दिया तब शम्बरासुर ने झुँझलाकर अनेक तरह के शस्त्र उस पर चलाये। प्रद्युम्न ने उसको भी काटकर गिरा दिया। दोनों मनुष्य आपस में लपटकर मल्लयुद्ध करने लगे। जब कुश्ती में प्रद्युम्न नहीं हारा तब शम्बरदैत्य मंत्र की विद्या से उस पर पत्थर बरसाने लगा। प्रद्युम्न ने अपने मंत्र से पत्थर बरसना बन्द कर दिया। शम्बरासुर माया के बल से प्रद्युम्न को उठाकर आकाश की ओर ले उड़ा। उस समय प्रद्युम्न ने क्रोध करके एक तलवार शम्बरदैत्य के ऐसी मारी कि उसका शिर भुट्टा-सा कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और क्षण भर में उसकी सेना भी काट डाली। देवतों ने प्रसन्न होकर आकाश से उन पर फूल बरसाये। संसारि लोग, जो उसके डर से यज्ञ व होम नहीं करने पाते थे, प्रसन्न हो गये और प्रद्युम्न की बहुत स्तुति करके बोले—श्रीकृष्णजी वैकुण्ठनाथ का सामना कोई नहीं कर सकता। अब उनका पुत्र भी ऐसा बलवान् उत्पन्न हुआ जिसके बराबर कोई दूसरा शूरवीर संसार में दिखलाई नहीं देता।

दो० जो ऐसे बल देखते निज सुत को भगवान। करते मन में मुदित ह्वै तिहूँ लोक को दान॥

जब प्रद्युम्न ने शम्बरासुर को मारकर श्यामसुन्दर की दुहाई उस नगर में फेर दी तब मायावती ने प्रसन्न होकर निजरूप रति का महासुन्दर बारह वर्ष की अवस्था बना लिया और उड़नखटोलने पर अपने पतिसमेत बैठकर द्वारका को गई। उस समय श्यामरंग प्रद्युम्न और चन्द्रमुखी रति दोनों आकाश में कैसे सुन्दर मालूम देते थे जैसे काली घटा में बिजली शोभा देती है। जब वे रुक्मिणी के आँगन में उड़नखटोलने से उतरकर खड़े हुए तब श्यामसुन्दर की सब स्त्रियाँ जो प्रद्युम्न के हरने के उपरान्त ब्याही गई थीं, प्रद्युम्न को केशवमूर्ति के रूप के समान देखकर चौंक उठीं और उनके मन में इस बात का संदेह हुआ कि मुरलीमनोहर यह नई सुन्दरी और कहीं से लाये हैं। उन्होंने उसकी सुन्दरता देखने के लिए चारों

ओर से आकर घेर लिया। यह भेद किसी ने नहीं जाना कि यह प्रद्युम्न है। उस समय श्रीकृष्णकुमार ने सब स्त्रियों से पूछा कि हमारे माता-पिता कहाँ हैं। जब यह बात सुनकर सब स्त्रियों को अचम्भा मालूम हुआ तब उन्होंने प्रद्युम्न की ओर आँख उठाकर देखा तो भृगुलता का चिह्न उनकी छाती पर नहीं दिखाई दिया। तब उन्होंने समझा कि यह श्रीकृष्ण न होकर कोई दूसरा पुरुष है। रुक्मिणी ने प्रद्युम्न का मुखारविन्द देखकर अपनी सहेलियों से कहा कि बड़ा भाग्य उस स्त्री का समझना चाहिये जिसने ऐसा सुन्दर पुत्र जना और यह स्त्री भी सुन्दरता में इस बालक की बराबर है। मेरा बेटा भी जो कोई चुरा ले गया इसी रूप का था। परमेश्वर की दया व मेरे भाग्य से जीता होकर यह वही बालक आया हो तो आश्चर्य नहीं। मेरा बेटा भी रहता तो इसी अवस्था का होता। ऐसा विचारकर रुक्मिणी ने प्रद्युम्न से पूछा--

दो०जन्म भयोकिहि गाँव मैं कहा तुम्हारो नाँव। कौन तुम्हारे मातु पितु क्यों आयो यहि ठाँव॥

यह वचन कहते ही रुक्मिणी को प्रेम हुआ और उसकी छाती से दूध बह निकला, बायाँ अंग फड़कने लगा तब उसे विश्वास हुआ कि यह मेरा पुत्र है, यह बात समझते ही रुक्मिणी ने चाहा कि मैं उसको गोद में उठाकर प्यार करूँ, पर अपने स्वामी की आज्ञा बिना ऐसा उचित न जानकर मन में सोच विचार कर रही थी कि उसी समय वसुदेव व देवकी व कृष्णचन्द्र ने वहाँ पहुँचकर यह हाल देखा। जब श्यामसुन्दर ने सब भेद जानने पर भी प्रद्युम्न का कुछ हाल किसी से नहीं कहा तब उनकी इच्छानुसार उसी क्षण नारदमुनि ने वहाँ आकर प्रद्युम्न का सब हाल ज्यों का त्यों कह सुनाया और रुक्मिणी से बोले कि यह तेरा बेटा है। यह वचन सुनते ही रुक्मिणी ने दौड़कर प्रद्युम्न को गोद में उठा लिया। उसका शिर व मुख चूमकर बलायें लेने लगी। जिस तरह बिछुड़ा हुआ बेटा मिलने से माता-पिता को हर्ष होता है उसी तरह रुक्मिणी को आनन्द प्राप्त हुआ। उसने रति को अपनी गोद में बैठाकर बहुत प्यार किया।

श्रीकृष्णजी भी अपने पुत्र व पतोहू को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। श्यामसुन्दर अन्तर्यामी सब हाल जानते थे कि मेरा बेटा शम्बरासुर के

यहाँ है, पर इतने दिन तक उन्होंने यह भेद रुक्मिणी से नहीं कहा था। बहुत-सा द्रव्यादिक प्रद्युम्न के हाथ से दान दिलवाया और सब द्वारका-वासी अपने-अपने घर मंगलाचार मनाकर कहने लगे कि वसुदेवनन्दन का बड़ा भाग्य है जो खोया हुआ पुत्र एक महासुन्दरी स्त्री अपने साथ लेकर उनके घर चला आया।

दो० नर नारी मोहे सबै देखि प्रद्युमन रूप। बिनु देखे क्षण ना रहैं ऐसो रूप अनूप ॥

वसुदेवजी ने शुभ लग्न में बड़ी धूमधाम से प्रद्युम्न का विवाह रति के साथ कर दिया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस तरह कामदेव ने प्रद्युम्न का जन्म लेकर अपनी स्त्री रति को सुख दिया।

(०)

छप्पनवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का जाम्बवती व सत्यभामा से विवाह करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जिन दिनों प्रद्युम्न शम्बरासुर के यहाँ था उन्हीं दिनों सत्राजित यादव ने पहिले श्रीकृष्णजी को मणि की झूठी चोरी लगाई, पीछे से लज्जित होकर अपनी कन्या उन्हें विवाह दी। यह सुनकर परीक्षित ने विनय किया कि हे कृपानिधान! सत्राजित ने वह मणि कहाँ से पाकर किस तरह श्यामसुन्दर को उसकी चोरी लगाई और फिर क्योंकर अपनी कन्या उन्हें विवाह दी। शुकदेवजी बोले—सत्राजित नाम का यादव द्वारकापुरी में रहता था। जब उसने बहुत दिनों तक सूर्य देवता का तप व ध्यान सच्चे मन से किया तब सूर्य भगवान् ने प्रसन्न होकर उसको दर्शन दिया और स्यमंतक मणि उसे देकर बोले कि तुम इस मणि को मेरे समान जानकर नित्य विधिपूर्वक इसका पूजन करना तो सुख से रहोगे। जिस नगर व घर में यह मणि रहेगी वहाँ रोग व दरिद्र किसी को न होगा। अनाज की महँगी नहीं पड़ेगी। जो कोई सच्चे मन से इसकी पूजा करेगा उसके घर ऋद्धि-सिद्धि बनी रहेगी। ऐसा कहकर सूर्य देवता अन्तर्धान हो गये और सत्राजित वह मणि गले में डालकर अपने घर चला आया। ज्योतिषियों से शुभ-मुहूर्त पूछकर उस मणि को बहुत अच्छे जड़ाऊ सिंहासन पर रक्खा और

अपने नियम व धर्म से रहकर विधिपूर्वक प्रतिदिन उसका पूजन करने लगा। उस मणि का प्रभाव यह था कि जो कोई शास्त्रानुसार उसकी पूजा किया करे उसे बीस मन सोना वह मणि नित्य देती थी। जब सत्राजित यादव उस मणि के प्रताप से थोड़े दिनों में बड़ा धनाढ्य हो गया तब द्रव्य के अभिमान से किसी को अपने बराबर नहीं समझने लगा। एक दिन वह अभिमानपूर्वक स्यमन्तक मणि अपने गले में पहिनकर श्रीकृष्णजी की सभा में चला गया। जब यदुवंशियों ने जो वहाँ बैठे थे, उस मणि का प्रकाश सूर्य के समान देखा तब वे लोग उसे सूर्य समझकर बोले कि द्वारकानाथ! आपका प्रताप व यश सुनकर सूर्य देवता तुम्हारे दर्शन के वास्ते आते हैं। यदुवंशियों का यह वचन सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा कि यह सूर्य देवता नहीं हैं, सत्राजित यादव ने सूर्य भगवान् का तप करके स्यमन्तक मणि उनसे पाई थी, वही मणि अपने गले में बाँधे हुए चला आता है। जब सत्राजित सभा में पहुँचकर जहाँ पर यादव लोग चौपड़ खेल रहे थे बैठा और केशवमूर्ति व यदुवंशी उस मणि की ओर देखने लगे तब वह मन में कुछ समझकर तुरन्त अपने घर चला गया। इस तरह कभी-कभी सत्राजित वह मणि अपने गले में पहिनकर वहाँ जाया करता था। एक दिन यदुवंशियों ने मुरलीमनोहर से कहा कि महाराज! यह मणि सत्राजित से लेकर राजा उग्रसेन को दे दीजिए, उसे शोभा नहीं देती। यह सुनकर किसी समय श्रीकृष्णजी ने सत्राजित की परीक्षा लेने के लिए हँसते-हँसते उससे कहा कि राजा लोग सबमें श्रेष्ठ होते हैं, इसलिए जिसके पास जो अच्छा पदार्थ हो उसे वह वस्तु उन्हें भेंट देना चाहिए। ऐसी बात करने से लोक व परलोक दोनों बनते हैं, इसलिए तुम यह मणि राजा उग्रसेन को जिन्हें हम भी अपना बड़ा जानते हैं भेंट देकर संसार में यश प्राप्त करो। यह बात सुनते ही सत्राजित यादव लालचवश उदास हो गया, इस बात का कुछ उत्तर न देकर चुप हो रहा और उन्हें दण्डवत् करके अपने घर चला आया। वृन्दावनविहारी की इच्छानुसार उसी दिन से जितना गुण उस मणि में था वह जाता रहा। सत्राजित ने घर जाकर अपने भाई प्रसेन से कहा कि श्याम-

सुन्दर ने मुझे यह मणि राजा उग्रसेन को देने के लिए कहा था सो मैंने नहीं दिया। यह वचन सुनते ही मूर्ख प्रसेन ने द्वारकानाथ अन्तर्यामी पर क्रोध किया और वह मणि सत्राजित से लेकर अपने गले में बाँध लिया और घोड़े पर चढ़कर वन में अहेर खेलने चला गया। वहाँ एक हरिण के पीछे घोड़ा जो दौड़ाया तो अपने साथवालों से विलग होकर पहाड़ की एक कन्दरा के पास जा पहुँचा। वहाँ एक शेर रहता था। शेर ने घोड़े की टाप सुनी तो वह बाहर निकलकर प्रसेन को घोड़े व हरिण समेत मार डाला। जब वह शेर प्रसेन के गले से मणि लेकर अपनी कन्दरा में घुसने लगा तब श्रीरामचन्द्रजी के भक्त जाम्बवन्त भालू ने वहाँ पहुँचकर उस शेर को कन्दरा के द्वार पर मार डाला और वह मणि ले ली।

दो० वाकी इक कन्या हती महासुन्दरी रूप। ताके खेलन को दियो सो मणि महा अनूप॥

उस मणि के प्रकाश से जाम्बवान् का स्थान जो अँधियारी कन्दरा में था आठों पहर दिन के समान उजियाला रहने लगा। जब प्रसेन के साथवालों ने आकर सत्राजित से कहा कि तुम्हारे भाई ने वन में एक हरिण के पीछे घोड़ा दौड़ाया तो फिर उसका पता बहुत ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला, इसलिए हम लोग लाचार होकर चले आये। यह बात सुनते ही सत्राजित ने बड़ा सोच करके मन में संदेह किया कि श्यामसुन्दर ने स्यमन्तकमणि राजा उग्रसेन को देने के लिए मुझसे कहा था सो मैंने नहीं दिया इसलिए उन्होंने मेरे भाई को वन में मारकर वह मणि ले लिया होगा। सत्राजित इस बात का सन्देह अपने मन में रखकर दिन-रात उदास रहने लगा, पर श्रीकृष्णजी के भय से यह बात कह नहीं सकता था। एक दिन रात्रि को शय्या पर सत्राजित की स्त्री ने उसे उदास देखकर पूछा—

चौ० कहा कन्त मन सोचत भारी। मुझसे भेद बताओ सारी॥

यह बात सुनकर सत्राजित ने कहा कि हे प्राणप्यारी! स्त्री के पेट में कोई बात नहीं पचती, वह अपने घर का सब हाल दूसरे से कह देती है, अपना भला बुरा नहीं समझती, इसलिए अपने मन का भेद जिस बात में खटकता हो स्त्री से कहना न चाहिए। यह वचन सुनते ही वह झुँझलाकर बोली कि मैंने कौन सी बात तुम्हारी सुनकर बाहर कह दी थी

जो ऐसा कहते हो । क्या सब स्त्रियाँ एक तरह की होती हैं । जब तक तुम अपने मन का हाल मुझसे न बतलावोगे तब तक मैं अन्न जल नहीं करूँगी । यह बात सुनकर सत्राजित ने लाचारी से कहा कि झूठ सच का हाल तो परमेश्वर जाने पर मेरे मन में एक बात का सन्देह है सो तुझसे कहता हूँ, तू किसी के सामने इस बात की चर्चा मत कीजियो । जब उसने कहा कि बहुत अच्छा, किसी से नहीं कहूँगी, तब सत्राजित बोला कि एक दिन श्यामसुन्दर ने मुझसे स्यमन्तकमणि राजा उग्रसेन को देने के लिए कहा था सो मैंने नहीं दिया, इसलिए मुझे ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने प्रसेन को वन में मारकर वह मणि ले लिया होगा । दूसरे की सामर्थ्य नहीं है जो मेरे भाई को मार सकता । सत्राजित तो यह बात अपनी स्त्री से कहकर सो रहा, पर उसकी स्त्री रातभर सोच विचार में जागती रही । जब प्रातःसमय उठी तब उसने अपनी सखी व दासियों से कहा कि श्रीकृष्णजी ने प्रसेन को मारकर स्यमन्तकमणि ले लिया है । यह बात रात को मेरे स्वामी ने मुझसे कही थी, परन्तु तुम लोग किसी के सामने यह चर्चा मत करना । हे राजन् ! स्त्रियों के पेट में कोई बात नहीं पचती । जब यह चर्चा होते-होते फैल गई तब श्यामसुन्दर के महल में किसी स्त्री ने जाकर कहा कि ऐसी बात सत्राजित की स्त्री कहती थी । जब यह झूठा कलंक सुनकर मुरलीमनोहर की स्त्रियाँ आपस में यह सोच करने लगीं तब उनमें किसी ने वृन्दावनविहारी से कहा कि महाराज ! आपको सत्राजित प्रसेन के मारने व स्यमन्तकमणि लेने का कलंक लगाते हैं ।

दो० चहुँदिशिफैली बात यह जानत राजारंक । सो उपाय अब कीजिये जामें मिटै कलंक ॥

श्यामसुन्दर यह झूठा कलंक सुनकर पाहिले तो अपने मन में उदास हो गये, फिर कुछ सोच विचारकर राजा उग्रसेन के पास, जहाँ वसुदेव व बलरामजी आदि अनेक यदुवंशी बैठे थे, जाकर कहा कि महाराज ! सब लोग यह झूठा कलंक लगाते हैं कि कृष्ण ने प्रसेन को वन में मारकर स्यमन्तकमणि ले लिया है, आप आज्ञा दीजिए तो मैं प्रसेन व उस मणि का पता लगाकर अपना कलंक छुड़ाऊँ । जब उग्रसेन यह बात सुनकर कुछ नहीं बोले तब श्यामसुन्दर दश-पन्द्रह यादववंशी व

प्रसेन के सेवकों को जो अहेर खेलते समय उसके संग थे अपने साथ लेकर उसे ढूँढने निकले। जहाँ प्रसेन ने हरिण के पीछे घोड़ा दौड़ाया था वहाँ घोड़े के पैर का चिह्न देखते हुए चले। जहाँ प्रसेन व घोड़े की लोथ पड़ी थी जब वहाँ पहुँचे तो शेर के पाँव का चिह्न देखकर मालूम किया कि शेर ने उसको मार डाला, पर उस मणि का पता वहाँ नहीं मिला। इसलिए मोहनप्यारे यदुवंशियों समेत शेर के पैर का चिह्न देखते हुए जब उस कन्दरा के द्वार पर, जहाँ जाम्बवन्त रहता था पहुँचे तब वहाँ क्या देखा कि शेर मरा हुआ पड़ा है, पर मणि वहाँ भी दिखलाई नहीं दी। यह अचम्भा देखकर यदुवंशियों ने श्यामसुन्दर से कहा कि महाराज ! इस वन में ऐसा बलवान् मनुष्य व पशु कहाँ से आया जो शेर को मारकर मणि लेकर इस कन्दरा में घुस गया। हम लोगों ने अपनी सामर्थ्य भर ढूँढा, प्रसेन के मारने का अपयश इस शेर को लगा, अब तुम्हारा झूठा कलंक छूट गया, इसलिए लौट चलिए। यह सुनकर दैत्यसंहारण ने कहा कि चलो इस कन्दरा में घुसकर देखें, शेर को मारकर मणि कौन ले गया है। यदुवंशी बोले कि महाराज ! हमें इस अँधियारी कन्दरा का मुख देखने से भय मालूम होता है, इसमें जाकर अपने प्राण क्यों देवें। आपसे भी विनय करते हैं कि इस भयानक गुफा में न जाकर द्वारका को चलिए। हम सब लोग वहाँ चलकर कहेंगे कि प्रसेन को शेर ने मारकर स्यमन्तकमणि ले लिया और उस शेर को न मालूम कौन मारकर वह मणि कंदरा के भीतर ले गया, यह हाल हम लोग अपनी आँख से देख आये हैं। इस बात के कहने से तुम्हारा कलंक छूट जायगा। जब मारे डर के कोई उस गुफा में नहीं गया तब श्याम-सुन्दर ने अपने साथियों से कहा कि मेरा चित्त स्यमन्तकमणि में लगा है, इसलिए मैं किसी का कुछ डर न रखकर अकेला इसी कन्दरा में जाता हूँ। तुम लोग बारह दिन तक मेरी आशा यहाँ देखना। इस अवधि तक कन्दरा से बाहर आये तो अच्छा है, नहीं तो यहाँ का हाल घर पर जाकर कह देना।

दो० द्वादश दिन की अवधि करि गये तहाँ यदुराय। यादव जितने संग थे रहे द्वार पर छाय॥

हे राजन्! केशवमूर्ति ने उस अँधियारी कन्दरा में थोड़ी दूर जाकर क्या देखा कि एक स्थान व बाग बहुत अच्छा जाम्बवंत के रहने का वहाँ बना है और उसकी महासुन्दरी कन्या जाम्बवती वह मणि हाथ में लिये पालने में झूल रही है। जाम्बवन्त सो रहा है और एक दासी उस पालने के पास बैठी है जैसे ही कृष्ण चन्द्र ने हाथ बढ़ाकर स्यमन्तक-मणि लेना चाहा वैसे ही दासी ने जाम्बवन्त को पुकारा। जाम्बवन्त नींद से जागकर मुरलीमनोहर के साथ कुश्ती लड़ने लगा। सत्ताईस दिन तक बराबर दिन रात जाम्बवन्त ने श्यामसुन्दर से मल्लयुद्ध करके अनेक दाँव व पेंच किये। जब उसका कोई दाँव वृन्दावनविहारी पर नहीं लगा और लड़ते-लड़ते मारे भूख व प्यास के उसका बल घट गया तब दैत्यसंहारन ने एक ऐसा मूका जाम्बवंत के मारा कि वह घुटने के बल बैठ गया। उस समय वह अपने मन में विचार करने लगा कि रामचन्द्र व लक्ष्मणजी के सिवा कोई संसारी मनुष्य इतनी सामर्थ्य नहीं रखता जो सत्ताईस दिन तक मेरे साथ लड़कर मुझसे जीत सके, इसलिए मेरे जान में यह श्यामरूप रामचन्द्रजी का अवतार मालूम होता है, जिनके साथ लड़ने से मेरी यह दशा हो गई। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब जाम्बवंत के हृदय में ज्ञान का प्रकाश होकर उसे विश्वास हुआ कि ये रामचन्द्रजी का अवतार हैं तब श्यामसुन्दर भक्त-हितकारी अन्तर्यामी ने प्रसन्न होकर उसी समय रघुनाथ रूप धारण करके धनुष-बाण लिये हुए उसको अपना दर्शन दिया। जाम्बवन्त यह स्वरूप देखते ही साष्टांग दण्डवत् करके हरिचरणों पर गिर पड़ा और परिक्रमा करके उनके सामने खड़ा हो गया। वह बड़े प्रेम से आँखों में आँसू भरे हुए हाथ जोड़कर विनय करने लगा—हे दीनानाथ! सब जगत् की उत्पत्ति व पालन करनेवाले अन्तर्यामी आपने बड़ी दया की, जो पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लेकर मुझे अपना दर्शन दिया। नारद मुनि मुझसे कह गये थे कि रामचन्द्रजी वासुदेव अवतार धरकर तेरे स्थान पर आवेंगे, इसलिए मैं त्रेतायुग से यहाँ रहकर तुम्हारे दर्शनों की आशा करता था, सो आज अपने मनोरथ को पहुँचा। आप तीनों लोकों के

उत्पन्न व पालन करनेवाले हैं। आप सबसे पहिले थे और महाप्रलय होने के उपरांत भी तुम्हारे सिवा दूसरा कोई स्थित नहीं रहेगा। आप राजा दशरथ के पुत्र हैं, अयोध्यापुरी और सब जगत् के राजा हैं तुम्हारा आदि व अन्त वेद भी नहीं जान सकते। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आपके शस्त्र हैं। सब तरह का सुख तुम्हारी कृपा से जीवों को प्राप्त होता है। आप सदा आनन्दमूर्ति रहते हैं। किसी बात का शोच आपको नहीं व्यापता। आप सबका मनोरथपूर्ण करनेवाले हैं। तीनों लोक में किसी को ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो तुम्हारी महिमा व भेद को जान सके। आप सीतापति हैं। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के बड़े भाई हैं, ऐसे सुन्दर हैं कि कामदेव भी तुम्हारे रूप पर मोहित हो जाता है। आप सदा शेषनाग की छाती पर शयन करते हैं। आपने अपने पिता राजा दशरथ की आज्ञा से राज्य छोड़कर लक्ष्मण व सीताजी समेत चौदह वर्ष तक वनवास किया और वन में अनेक राक्षसों को मारकर ऋषीश्वर व हरिभक्तों को सुख दिया। जब आपने शूर्पणखा की नाक काटकर खरदूषण व त्रिशिरा आदि को मार डाला तब रावण योगी का वेष बनाकर पंचवटी में आया और सीताजी को अकेली देखकर छल से हर ले गया। जब सुग्रीव वानर जो अपने भाई बालि के डर से विकल था तुम्हारी शरण में आया तब आपने अधर्मी बालि को मारकर सुग्रीव की इच्छा पूर्ण की और हनुमान्‌जी को अपना भक्त व सेवक समझकर उन्हें यश दिया। जब आप भालू और वानरों की बड़ी भारी सेना अपने साथ लेकर समुद्र के किनारे पहुँचे तब रावण का भाई विभीषण तुम्हारी शरण में आया। आपने उसे लंकापति कहा। जब समुद्र अज्ञान व अभिमान के कारण तुम्हारे पास नहीं आया तब आपके क्रोध करने से समुद्र का पानी सूखने लगा और जल के सब जीव व्याकुल हो गये। यह दशा देखते ही समुद्र विनय-पूर्वक आकर तुम्हारे चरणों पर गिर पड़ा और अपना अपराध क्षमा कराने के लिए हाथ जोड़कर बोला—महराज! आपने दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया। यह दीन वचन सुनकर आप उस पर दयालु हुए। फिर आप समुद्र में पुल बँधवाकर भालु व वानरों की सेनासहित पार उतर

गये और रावण को परिवार व सेना समेत मारकर विभीषण को लंका का राज्य दिया। सीता को साथ लेकर अयोध्यापुरी में आये और ग्यारह हजार वर्ष वहाँ का राज्य किया। उन दिनों त्रेतायुग था। तब से आज मैं तुम्हारा दर्शन पाकर, जो ब्रह्मादिक देवतों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता, अपने बराबर किसी दूसरे का भाग्य नहीं समझता। हे दीनानाथ! जिस तरह आप दया करके अपने चरण यहाँ ले आये उसी तरह दयालु होकर आने का कारण बतलाइए। यह वचन सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा कि हे जाम्बवन्त! हम तेरी स्तुति सुनने से बहुत प्रसन्न हुए। जो मणि तेरी कन्या हाथ में लिये खेलती है इसी मणि की चोरी मुझे सत्राजित यादव ने लगाई। इसलिए मैं अपना कलंक छुड़ाने के लिए यही मणि लेने आया हूँ, यह मुझे दे दो। यह वचन सुनते ही जाम्बवन्त ने मनसा वाचा कर्मणा प्रसन्न होकर विनय किया—हे महाप्रभु! मेरे यहाँ एक स्यमन्तक और दूसरी जाम्बवती कन्या दो मणि हैं, यह दोनों तुम्हारी भेंट करता हूँ, आप दया करके अंगीकार कीजिए जिसमें मेरा उद्धार हो। यह सुनकर केशवमूर्ति बोले—बहुत अच्छा, मैंने तेरा कहना माना। जैसे यह वचन जाम्बवन्त ने सुना वैसे हर्षपूर्वक अपनी कन्या श्रीकृष्णजी को ब्याहकर वह मणि दहेज में दे दिया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! इधर तो मोहनप्यारे सत्ताइसवें दिन जाम्बवन्त से विदा होकर स्यमन्तकमणि व जाम्बवती को साथ लिये अपने घर चले, उधर यदुवंशी चौबीस दिन तक उनकी आशा देखकर निराश होकर वहाँ से रोते-पीटते द्वारका में आये। जब राजा उग्रसेन व वसुदेवजी आदि द्वारकावासियों ने यह हाल सुना तब सब छोटे-बड़े स्त्री व पुरुष अन्न-जल छोड़कर अति विलाप करने लगे। सब लोगों ने सत्राजित को गालियाँ देकर अनेक दुर्वचन कहा और बहुत लोगों ने सत्राजित को मारना चाहा, पर बलरामजी ने उन्हें मारने से बर्जकर समझाया कि तुम लोग कुछ चिन्ता मत करो, दैत्यसंहारण स्यमन्तकमणि लिये हुए आते हैं। तीनों लोकों में कोई ऐसा नहीं है जो उनको मार सके। जब उनके समझाने पर भी किसी को धैर्य नहीं हुआ तब रुक्मिणी आदि

सब स्त्रियाँ रोते-रोते घबराकर अपने महल से बाहर निकलीं और इकट्ठी होकर द्वारकावासियों समेत मोहनमूर्ति को ढूँढ़ने चलीं।

दो०माखनप्रभुबलवीरबिनु धरैं नहीं मनधीर। सब मिलकर खोजत चलीं ब्याकुलमहाशरीर॥

हे राजन्! नगर के बाहर जो देवस्थान उन्हें दिखलाई देता था वहाँ मानता मानकर आगे चली जाती थीं। जब नगर से एक कोस बाहर देवी के मन्दिर पर पहुँचीं तब विधिपूर्वक पूजा करने के उपरान्त हाथ जोड़कर बोलीं—हे अम्बिका माता! तुम सबकी इच्छा पूर्ण करती हो, इसलिए हम लोग तुमसे यह बरदान माँगती हैं कि हमारे प्राणनाथ जल्दी दर्शन देकर हम लोगों का दुःख हरैं। जिस समय द्वारकानाथ की स्त्रियाँ देवीजी से यह वरदान माँग रही थीं और राजा उग्रसेन यदु-वंशियों समेत अपनी सभा में बैठे हुए सोच कर रहे थे उसी समय मुरलीमनोहर स्यमन्तकमणि व जाम्बवती को अपने साथ लिये हँसते हुए राजा उग्रसेन की सभा में जाकर खड़े हो गये। उनका चन्द्रमुख देखते ही वसुदेव आदि ने अति प्रसन्न होकर बहुत द्रव्यादिक उनके हाथ से दान व दक्षिणा दिलवाया और यह समाचार सुनकर रुक्मिणी आदि स्त्रियाँ बड़े हर्ष से गाती-बजाती अपने-अपने मन्दिर में आईं। एक यदु-वंशी ने हँसी में मोहनप्यारे से कहा—

दो०मणिकारण कछु कहिगये जाम्बवन्तकेधाम। ब्याहकरनपहुँचेवहाँ माखनप्रभु घनश्याम॥

केशवमूर्ति ने यह बात सुनकर हँस दिया। उसी समय सत्राजित को बुला भेजा और स्यमन्तकमणि उसे देकर कहा कि तुमने हमको मणि लेने और प्रसेन को मारने का झूठा कलंक लगाया था। तुम्हारे भाई को शेर ने मारकर मणि ले लिया और उस शेर को जाम्बवन्त भालू मारकर मणि ले गया था। जाम्बवन्त ने अपनी बेटी मुझे ब्याह कर यह मणि दहेज में दिया है, सो अपना मणि तुम लो। जब सत्राजित ने वह मणि देखकर सब हाल सुना तब अति लज्जित हो गया। उस समय तो वह श्यामसुन्दर की आज्ञानुसार मणि लेकर अपने घर चला आया, पर मन में बहुत उदास होकर कहने लगा कि देखो मैंने बड़ा पाप किया जो झूठा कलंक वैकुंण्ठनाथ को लगाया। अब मुझे उचित है

कि अपनी कन्या सत्यभामा उन्हें ब्याह कर यह मणि दहेज में दे डालूँ तो मेरा अपराध छूट जावे।

दो० यह कन्या जगमोहनी सुन्दर महा अनूप। श्रीयदुपति को दीजिये ऐसी रत्नस्वरूप ॥

जब ऐसा विचारकर सत्राजित ने अपनी स्त्री से पूछा तब वह बोली कि हे स्वामिन्! तुमने बहुत अच्छा विचारा है, सत्यभामा श्रीकृष्णजी को देकर जगत् में यश लीजिए। यह वचन सुनते ही सत्राजित ने शुभ लग्न ठहराकर तिलक की सब वस्तुएँ अपने पुरोहित से वसुदेवजी के यहाँ भेज दिया। राजा उग्रसेन ने वह तिलक बड़े हर्ष से ले लिया और धूमधाम से बरात साजकर श्यामसुन्दर को ब्याहने आये। सत्राजित ने शास्त्रानुसार अपनी कन्या मुरलीमनोहर को ब्याहकर वही मणि और अनेक रत्नादिक दहेज में दिया। श्रीकृष्णचन्द्र ने और सब दहेज ले लिया, पर वह मणि उसे फेरकर कहा कि यह मणि हमारे काम की नहीं है, हमसे इसकी पूजा नहीं बन पड़ेगी। यह मणि तुम अपने यहाँ रक्खो। जब तुमने अपनी कन्या हमको विवाह दी तब तुम्हारे घर का सब धन हमारा हुआ। जो तुमने हमें कलंक लगाया था उस बात का भी कुछ अपने मन में सोच मत करो। अब हम तुमसे कुछ क्रोध नहीं रखते। जिसकी वस्तु खो जाती है उसका सन्देह अनेक मनुष्यों पर होता है। यह सुनते ही सत्राजित ने लज्जित होकर वह मणि ले लिया और श्यामसुन्दर सत्यभामा को साथ लेकर बाजे-गाजे समेत अपने घर आये। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे स्वामिन्! कृष्णचन्द्र वैकुंठनाथ को झूठा कलंक क्योंकर लगा? शुकदेवजी बोले कि मुरलीमनोहर ने भादौं सुदी चौथ का चन्द्र देखा था, इसलिए उनको झूठी चोरी लगी थी।

दो० भादौं शुक्ला चौथ को चन्द्र निहारै जोय। यह प्रसंग श्रवणन सुनै तो कलंक नहिं होय ॥

सत्तावनवाँ अध्याय।

सत्राजित व शतधन्वा का मारा जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जिस तरह शतधन्वा यादव ने सत्राजित को मारकर उसकी स्यमन्तकमणि ले लिया और मुरलीमनोहर के भय से द्वारका छोड़कर भागा था वह हाल कहते हैं, सुनो। एक दिन

किसी ने द्वारका में आकर श्याम व बलराम से यह संदेशा कहा कि युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों को दुर्योधन ने लाक्षागिरि के कोट में रखकर आधी रात को चारों ओर से आग लगवा दी, सो वह लोग अपनी माता समेत जल गये। यह हाल सुनते ही दोनों भाइयों को ऐसा सोच हुआ कि उसी समय रथ पर चढ़कर अपनी फूफू व भाइयों की सुधि लेने के लिए हस्तिनापुर को चले गये। जब श्याम व बलराम राजा दुर्योधन की सभा में पहुँचे तब क्या देखा कि राजा दुर्योधन व धृतराष्ट्र आदि सब छोटे बड़े उदास बैठे हैं और भीष्मपितामह व द्रोणाचार्य की आँखों से आँसू बह रहे हैं। गांधारी और कौरवों की स्त्रियाँ पाँचों भाइयों को याद करके रो रही हैं। जब यह दशा देखकर श्याम व बलरामजी भी उनके पास जा बैठे और युधिष्ठिर का हाल उनसे पूछा तो किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु विदुर ने श्यामसुन्दर के निकट जाकर धीरे से कह दिया कि दुर्योधन आदि ने तो पाँचों भाइयों के प्राण लेने में कुछ उठा नहीं रक्खा था, पर तुम्हारी दया से वह लोग बच गये हैं। यह हाल सुनकर केशवमूर्ति वहाँ से बाग में अपने डेरे पर चले आये। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब श्याम व बलराम हस्तिनापुर चले गये तब उनके पीछे द्वारका में यह हाल हुआ कि द्वारकावासी शतधन्वा यादव के यहाँ, जिससे पहिले सत्यभामा की मँगनी हुई थी, अक्रूर व कृतवर्मा ने जाकर कहा कि एक तो सत्राजित ने मणि चुराने का झूठा कलंक द्वारकानाथ को लगाया, दूसरे अपनी बेटी की मँगनी पहिले तुमसे करके फिर श्रीकृष्ण को विवाह दी, इसलिए तुम्हारी नामधराई जाति-भाइयों में हुई। इन दिनों श्याम व बलराम हस्तिनापुर गये हैं सो तू उसे मारकर अपना वैर क्यों नहीं लेता। हमारे निकट यह बात उत्तम है कि रात को हम तीनों मनुष्य सत्राजित के घर पर चलकर उसे मार डालें और इतने दिनों तक उसने जो सोना स्यमन्तकमणि के प्रताप से इकट्ठा किया है वह छीन लें। यह बात मानकर शतधन्वा रात को अक्रूर व कृतवर्मा के साथ सत्राजित के स्थान पर गया। अक्रूर व कृतवर्मा को द्वार पर खड़ा कर दिया और आप अकेला घर के भीतर जाकर सत्राजित को,

जो नींद में सोया था, मार डाला और स्यमन्तकमणि व जो कुछ सोना, उसके घर में था लेकर बाहर चला आया। जब सत्राजित को मारकर तीनों मनुष्य अपने-अपने घर चले आये तब शतधन्वा अकेला अपने घर बैठकर सोच करने लगा कि मैंने अक्रूर व कृतवर्मा का कहना मानकर श्रीकृष्ण जी वैकुण्ठनाथ से वैर किया, अब न मालूम वह मेरी क्या दशा करेंगे।

दो०कृतवर्मा अक्रूर मिलि मता दियो म्वहिं आय। साधु कहै जो कपट की तासों कहा बसाय॥

जब सत्राजित की स्त्री यह दशा अपने पति की देखकर रोने-पीटने लगी और सत्यभामा ने यह हाल सुनते ही वहाँ जाकर अपने पिता की यह गति देखी तब उसने पहिले बड़ा विलाप किया फिर अपनी माता को धैर्य देकर सत्राजित की लोथ को तेल में रखवा दिया और उसी समय आप रथ पर चढ़कर दैत्यसंहारण के पास हस्तिनापुर को गई।

चौ० देखत ही उठि बोले हरी। घर है कुशलक्षेम सुन्दरी॥
सत्यभामा कह जोरे हाथ। तुम बिन कुशल कहाँ यदुनाथ॥

हे महाप्रभो! शतधन्वा रात्रि को सोते समय मेरे पिता को मारकर स्यमन्तकमणि ले गया।

चौ० धरे तेल में श्वसुर तुम्हारे। दूर करो सब सोच हमारे॥

ऐसा कहकर जब सत्यभामा श्याम व बलराम के सामने अति विलाप करने लगी तब द्वारकानाथ ने भी बलराम समेत आँखों में आँसू भरकर सत्यभामा से कहा कि तू अपने मन में धैर्य धर जो कुछ होना था सो हो चुका। अब तेरा पिता जी तो सकता नहीं, पर जिसने तेरे बाप को मारा है उसे हम मारकर बदला लेंगे। जब तक शतधन्वा को न मारूँगा तब तक दूसरा काम नहीं करूँगा। जब यह बात सुनकर सत्यभामा को कुछ धैर्य हुआ तब वृन्दावनविहारी उसी समय बलरामजी व सत्यभामा को साथ लेकर द्वारका की ओर चले। जब शतधन्वा ने सुना कि श्याम व बलराम हस्तिनापुर से आते हैं तब वह अपना द्वारका में रहना उचित न जानकर स्यमन्तक मणि लिये हुए कृतवर्मा व अक्रूर के पास चला गया और हाथ जोड़कर बोला—सुनो भाई! मैंने तुम्हारे कहने से सत्राजित को मारकर वैकुण्ठनाथ से शत्रुता की, सो अब श्याम व बलराम

के हाथ से मेरे प्राण बचना कठिन हैं, इसलिए तुम्हारी शरण में आया हूँ । अपने कहने की लाज रखकर जहाँ बतलाओ वहाँ छिपकर रहूँ ।

चौ० मोपर क्रोध कियो यदुनाथा । आवत लिये सुदर्शन हाथा ॥
मोको जीवदान अब दीजै । अपने शरण राखि अब लीजै ॥

नहीं तो हे अक्रूर, तुम हमारा रथ हाँको हम श्रीकृष्णजी से लड़ेंगे ।

दो० शतधन्वा से तुरत ही उत्तर कहो सुनाय । अपराधी यदुनाथ को कापै राख्यो जाय ॥

हे शतधन्वा ! तुम अपने अज्ञान से यह बात हमें कहने आये हो । पहिले तुमने नहीं समझ लिया था कि सत्राजित को मारने में श्रीकृष्णजी सत्यभामा की सहायता करेंगे । हमसे तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती । जहाँ तुम्हारा मन चाहे वहाँ भाग जावो । हम वैकुण्ठनाथ के सेवक होकर ऐसी सामर्थ्य नहीं रखते जो तुम्हारा साथ देकर उनके हाथ से अपने प्राण खोवें । उनसे वैर करके कोई जीता बच नहीं सकता । जिन्होंने गोवर्धन पहाड़ अपनी अँगुली पर उठा लिया और बड़े-बड़े योद्धा राक्षसों को क्षण भर में मार डाला उनसे कौन लड़ सकता है । संसारी लोग अपने मतलब के लिए बहुत बातें कहते हैं, पर बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि अपनी हानि व लाभ समझकर वह काम करे, जिसमें पीछे से दुख न पावे । हे राजन् ! जब अक्रूर व कृतवर्मा ने ऐसी रूखी-रूखी बातें शतधन्वा को सुनाईं तब उसने अपने जी से निराश होकर वह मणि अक्रूर के सामने फेंक दी और आप एक घोड़े पर, जो चार सौ कोस एक दिन में जाता था, चढ़कर जनकपुर की ओर भागा । उसी दिन श्यामसुन्दर ने द्वारका में पहुँचकर उसके भागने का हाल सुना तब अपने स्थान पर भी न जाकर सत्यभामा को महल में भेज दिया और श्याम व बलराम दोनों भाइयों ने अपना रथ शतधन्वा के पीछे दौड़ाया तो जनकपुर के निकट उसको जा घेरा । उसी जगह शतधन्वा का घोड़ा मर गया । मुरलीमनोहर के रथ की आहट पाकर वह पैदल भागा । जैसे दैत्यसंहारण ने उसको भागते देखा वैसे ही बलरामजी को रथपर छोड़कर आप उसके पीछे दौड़े और निकट पहुँचकर सुदर्शन चक्र से उसका शिर काट लिया । जब वह मणि उसके पास नहीं मिली तब बलरामजी से आकर कहा कि हे

भाई! मैंने शतधन्वा को वृथा मारा, क्योंकि स्यमन्तक मणि उसके पास नहीं मिली। शतधन्वा को मारते समय बलरामजी उनके साथ नहीं थे इसलिए परमेश्वर की माया से बलरामजी के मन में यह संदेह हुआ कि श्यामसुन्दर ने वह मणि सत्यभामा को देने के लिए हमसे छिपाया है। उन्होंने केशवमूर्ति से कहा कि हे भाई! वह मणि किसी दूसरे के पास है। तुम द्वारका में जाकर ढूँढ़ो, एक दिन आप प्रकट हो जायगी। मैं मिथिलापुर देखता हुआ पीछे से आऊँगा। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! श्यामसुन्दर अन्तर्यामी बलरामजी के मन का हाल जानकर वहाँ से द्वारकापुरी को गये और बलरामजी मिथिलापुरी में आये। जब जनकपुर के राजा ने उनके आने का हाल सुना तब सम्मानपूर्वक उन्हें राजमन्दिर पर लिवा ले गया और बड़े आदरभाव से उनको अपने यहाँ रक्खा। जब राजा दुर्योधन ने, जो बलरामजी से प्रीति रखता था यह हाल सुना कि इन दिनों बलभद्रजी कृष्णचन्द्र से क्रोध करके जनकपुर में टिके हैं तब वह मिथिलापुरी में आया और बलरामजी के पास जाकर उन्हें बड़े आदरभाव से अपने घर लिवा ले गया। वह विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बोला—मुझे बड़े भाग्य से आपका दर्शन प्राप्त हुआ, अब मेरी यह इच्छा है कि आप कृपा करके थोड़े दिन यहाँ रहिए और मुझको अपना शिष्य बनाकर गदायुद्ध सिखलाइए। यह बात सुनकर और उसकी सच्ची प्रीति देखकर बलदाऊजी दुर्योधन को शिष्य बनाकर वहाँ गदायुद्ध सिखाने लगे। श्यामसुन्दर ने द्वारका में पहुँचकर सत्यभामा से कहा कि सत्राजित के बदले शतधन्वा को मैंने मार डाला, पर वह मणि उसके पास नहीं मिला। सत्यभामा को इस बात का विश्वास न हुआ। उसके मन में यह सन्देह हुआ कि मुरलीमनोहर वह मणि बलरामजी को देकर मुझसे बहाना करते हैं। जब अक्रूर व कृतवर्मा ने शतधन्वा के मारे जाने का हाल सुना तब वे भी अपने प्राणों के डर से द्वारका से भागे। कृतवर्मा दक्षिण दिशा में चला गया और अक्रूरजी प्रयागक्षेत्र में चले आये। वहाँ स्नान-दान करने के उपरान्त गयाजी में जाकर पितरों का श्राद्ध किया और वहाँ से काशीजी में आकर

रहने लगे। अक्रूर प्रति दिन बीस मन सोना स्यमन्तकमणि से पाकर दानादिक शुभ कर्म में खर्च कर डालता था। श्यामसुन्दर अन्तर्यामी यह सब हाल जानते थे, पर उन्होंने यह भेद किसी से नहीं कहा कि अक्रूर स्यमन्तकमणि लेकर काशीजी में टिका है। सब द्वारकावासी यह समझते थे कि अक्रूर व कृतवर्मा ने सत्राजित को मारने की सम्मति दिया था, इसलिए श्रीकृष्ण के डर से वे दोनों भाग गये हैं। जब बलरामजी कुछ दिन बीते दुर्योधन को गदायुद्ध सिखलाकर द्वारका में आये तब मुरलीमनोहर ने यदुवंशियों को साथ लेकर सत्राजित की लोथ तेल में से निकलवाया और उसका क्रिया कर्म किया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवमुनि बोले—हे राजन्! अक्रूरजी जिस देश व गाँव में रहते थे उस जगह हरिइच्छा से प्रजा की इच्छानुसार पानी बरसता था और अन्न महँगा नहीं होता था। वहाँ कोई रोग महामारी आदि का नहीं होता था। सब छोटे-बड़े आनन्दपूर्वक रहते थे। जब वैकुण्ठनाथ की यह इच्छा हुई कि फिर अक्रूर को बुलाना चाहिए तब द्वारकापुरी में अवर्षण होकर रोग व महँगी से प्रजा लोग दुःख पाने लगे। अपने देश की यह दशा देखते ही यदुवंशियों ने घबराकर श्यामसुन्दर से कहा—

चौ०हमतो शरण तुम्हारे रहैं। महाकष्ट अब क्योंकर सहैं॥

महाराज! न मालूम परमेश्वर की क्या इच्छा है जो पानी नहीं बरसता। हम लोग तुम्हें छोड़कर अपना दुःख किससे कहें। आप दया करके कोई ऐसा उपाय कीजिए जिसमें हमारा दुःख छूट जाय। यह अधीन वचन सुनकर द्वारकानाथ ने कहा कि जिस जगह से साधु व महात्मा चला जाता है वहाँ के लोग अनेक तरह के दुःख पाते हैं। जब से अक्रूर द्वारका छोड़कर चले गये तब से यहाँ अन्न की महँगी और रोग की अधिकता है। यह वचन सुनकर यदुवंशी बोले कि हे कृपानिधान! आपने सच कहा, हम लोग भी यह बात समझते हैं, पर तुम्हारे डर से कह नहीं सकते थे, अक्रूरजी यदुवंशियों में श्रेष्ठ हैं, तुम्हारे डर से भागे हैं। जब तक वह द्वारका में रहे तब तक हम लोगों ने दुःख नहीं पाया, सो आप दया करके अक्रूर को यहाँ बुलाइए जिसमें सब कोई सुख पावें।

यह बात सुनकर श्रीकृष्णजी ने कहा कि बहुत अच्छा, तुम लोग अक्रूर को ढूँढ़कर सम्मानपूर्वक यहाँ लिवा ले आवो। यह वचन सुनते ही पाँच-सात यदुवंशी मिलकर अक्रूर को ढूँढ़ने निकले। जब काशीजी में पहुँचकर उनका पता पाया तब उनके पास जाकर विनय किया कि हे अक्रूरजी! तुम्हारे बिना द्वारकावासियों ने बड़ा दुःख पाया। मुरलीमनोहर के रहने पर भी वहाँ अवर्षण होकर अकाल पड़ा, इसलिए श्यामसुंदर ने तुमसे कहा है कि तुम मेरी भक्ति रखते हो तो निस्संदेह चले आवो।

चौ० साधुन के वश श्रीपति रहै। तिनसे सब सुख सम्पति लहै॥

यह बात सुनते ही अक्रूरजी बड़े हर्ष से उसी समय स्यमन्तकमणि लेकर यदुवंशियों के साथ द्वारका को चले। जब अक्रूरजी नगर के निकट पहुँचे तब श्याम व बलराम आगे आकर उनको सम्मानपूर्वक लिवा ले गये। जैसे अक्रूर द्वारकापुरी में पहुँचे वैसे ही परमेश्वर की इच्छा से पानी बरसा, अन्न सस्ता हो गया और सबका रोग छूट गया। एक दिन वृन्दावनविहारी ने अक्रूर को बुलाकर कहा कि हे चाचा! अब तुम उदासी छोड़कर प्रसन्न रहा करो, हमने तुम्हारा अपराध क्षमा किया। तुम्हारे पास जो स्यमन्तकमणि है उसे किसी के सामने हमारे पास ले आवो, जिसमें बलरामजी व सत्यभामा का सन्देह छूट जावे। जिसकी वस्तु हो उसको देनी चाहिए, जब वह न रहे तो उसके पुत्र को दे, बेटा भी न हो तो उसकी स्त्री को दे, स्त्री भी न हो तो कन्या के पुत्र को दे, वह भी न हो तो उसके भाई को दे डाले। जब भाई भी न रहे तो उसके परिवार में जो कोई हो उसे देना चाहिए। जिसके कुल में कोई भी न हो तो उसके गुरु को दे डाले, वह भी न हो तो उसके गुरु के पुत्र को सौंप दे। जब वह भी न रहे तो वह वस्तु ब्राह्मण को दे देवे। दूसरे का धन कभी न लेना चाहिए। सत्राजित के पुत्र नहीं है, इसलिए सत्यभामा का बेटा यह मणि लेगा। यह वचन सुनते ही अक्रूर ने वह मणि राजा उग्रसेन की सभा में जहाँ बलभद्र आदि सब यदुवंशी बैठे थे, लाकर श्यामसुंदर के सामने रख दिया और हाथ जोड़कर विनय किया कि हे दीनानाथ! यह मणि लेकर मेरा अपराध क्षमा कीजिए। आज तक

जितना सोना इस मणि ने मुझको दिया था वह सब मैंने शुभकर्म में खर्च कर डाला। जब उसे देखकर बलरामजी व सत्यभामा का संदेह छूट गया तब वे दोनों बहुत लज्जित होकर मोहनप्यारे के चरणों पर गिर पड़े। बलदाऊजी ने रोकर कहा कि हे दीनानाथ! मुझसे बड़ा अपराध हुआ जो तुम्हारे ऊपर झूठा संदेह किया, इसलिए वन में जाकर मर जाऊँगा। अब मैं इस योग्य नहीं रहा कि अपना मुँह आपको दिखलाऊँ। जब गोपीनाथ ने बलभद्रजी की यह दशा देखी तब उनको अपनी छाती से लगा लिया और बहुत धैर्य देकर कहा कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, मैंने तुम्हारे संदेह करने से कुछ खेद नहीं माना। संसार में मायारूपी स्त्री व द्रव्य दोनों बहुत बुरी हैं, स्त्री-पुरुष और पिता-पुत्र में विरोध करा देती हैं, इसलिए ज्ञानी मनुष्य को इन दोनों से अधिक प्रीति रखना न चाहिए। जब श्यामसुन्दर ने इसी तरह उन्हें बहुत धैर्य देकर स्यमन्तक-मणि सत्यभामा को सौंप दिया तब उसके मन का सोच छूट गया। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! जब अक्रूर ऐसा गुणवान् था तो उसने सत्राजित को मारने की सलाह क्यों दी और आप क्यों द्वारका से भाग गया? शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जिस दिन से अक्रूर ने शतधन्वा को सत्राजित के मारने की सम्मति दी थी उसी दिन से उसके सब गुण जाते रहे। यह बात सुनकर परीक्षित बोले—महाराज! आपने सच कहा, कुसंगति करने से हानि के सिवा कुछ लाभ नहीं होता। अक्रूर का सुलक्षण जाता रहा तो कौन आश्चर्य है, पर आप यह बताइए कि अक्रूर में ये सब गुण किस तरह प्रकट हुए थे? शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! एक समय काशीजी में अवर्षण हुआ और बड़ी महँगी पड़ी। उन्हीं दिनों सुफल्क यादव बड़ा धर्मात्मा व सत्यवादी व हरिभक्त किसी संयोग से वहाँ जा पहुँचा। जब उसके जाते ही हरिइच्छा से बड़ा पानी बरसा और सब लोगों ने सुख पाया तब काशी-नरेश ने प्रसन्न होकर गांदिनी नाम की अपनी कन्या उसको विवाह दी। उसी कन्या से अक्रूर उत्पन्न हुआ और सुफल्क का गुण उसमें प्रकट हो गया।

दो० मणि लीला अद्भुत महा कहै सुनै जो कोय। ताको कबहूँ जगत में कछु कलंक नहिं होय।।

अट्ठावनवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर को कालिन्दी, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा आदि से विवाह करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! श्यामसुन्दर सत्राजित का मरना सुनकर युधिष्ठिर आदि को बिना देखे हस्तिनापुर से चले आये थे, सो उनका मन अर्जुन आदि से भेंट करने के लिए चाहता था। जब राजा दुर्योधन ने पाँचों भाई पाण्डवों और उनकी माता कुन्ती को लाख के कोट में रखकर आग लगवा दी तब वे लोग सुरंग की राह, जो विदुरजी ने पहिले से बनवा रक्खा था, बाहर निकल आये और संन्यासीवेष में अपने को छिपाकर कहीं रहने लगे। एक भिल्लनि अपने पाँच बेटों समेत जो उसी कोट में जलकर मर गई थी उनकी हड्डी देखने से दुर्योधन को विश्वास हुआ कि युधिष्ठिर आदि जल गये। उन्हीं दिनों में राजा द्रुपद ने अपनी कन्या का स्वयंवर रचा, सो वहाँ पर दुर्योधन आदि सब राजा इकट्ठे हुए। वेदव्यास व धूम्र ऋषीश्वर के कह जाने से अर्जुन आदि पाँचों भाई भी अपनी माता को किसी जगह छोड़कर संन्यासी वेष बनाये हुए उस स्वयंवर में पहुँचे। जिस समय द्रौपदी चन्द्रमुखी सोलहों शृंगार किये अङ्ग-अङ्ग पर जड़ाऊ गहना पहिने फूलों का गजरा हाथ में लिये, जहाँ सब राजा बैठे थे, आकर खड़ी हुई तो उसकी सुन्दरता देखकर सब लोग मोहित हो गये। उस समय धृष्टद्युम्न द्रौपदी के भाई ने पुकारकर कहा कि जो कोई कड़ाह में मछली की परछाईं देखकर शिर नीचे किये हुए बाण से मच्छ को बेधे उसे यह कन्या विवाह दूँगा। यह वचन सुनते ही राजा शिशुपाल ने उठकर वह धनुष, जो मछली बेधने के लिए राजा द्रुपद ने वहाँ रखवाया था, उठाना चाहा। जब वह धनुष उससे नहीं उठा तब वह लज्जित होकर बैठ गया। यही दशा राजा जरासन्ध की भी हुई। तब कर्ण ने उस धनुष को चढ़ाकर मच्छ बेधना चाहा। उस समय द्रौपदी कर्ण से बोली कि तू सूत पुत्र होकर ऐसा सामर्थ्य नहीं रखता जो मुझे विवाह ले जावे। यह वचन सुनते ही कर्ण ने द्रौपदी की ओर देखकर वह धनुष पृथ्वी पर धर दिया और अपनी जगह पर आ बैठा। उन लोगों की यह दशा देखकर दूसरे राजा मच्छ बेधने से

निराश हो गये तब अर्जुन ने बड़े भाई युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर जैसे उस मच्छ को अपने बाण से बेध डाला वैसे ही द्रौपदी ने उनके गले में जयमाल पहिना दिया। यह हाल देखते ही दूसरे राजों ने डाह से आपस में कहा कि बड़े सोच व लज्जा की बात है जो हम लोगों के सामने से यह संन्यासी राजकन्या को ले जावे। जब ऐसा विचारकर मूर्ख राजों ने अर्जुन का सामना किया तब पाँचों भाई पाण्डव उन्हें युद्ध में जीतकर द्रौपदी को अपनी माता के पास ले आये। कुन्ती माता की आज्ञानुसार अर्जुन आदि पाँचों भाइयों ने उसे अपनी स्त्री बनाकर रक्खा। जब यह हाल दुर्योधन को मालूम हुआ कि युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई नहीं जले और जीते बच गये हैं तब विदुर को भेजकर उन्हें बुलाया और आधा राज्य उनको बाँट दिया। जब युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों ने आधा राज्य पाया तब वे हस्तिनापुर के निकट इन्द्रप्रस्थ नाम का एक नगर बसाकर आनन्द-पूर्वक राज्य करने लगे और अनेक राजों को जीतकर अपने वश में कर लिया। यह समाचार पाते ही मोहनप्यारे कई यदुवंशियों को साथ लेकर इन्द्रप्रस्थ को गये। जब देवकीनन्दन उस नगर के निकट पहुँचे तब युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई यह समाचार सुनते ही आगे आकर सम्मानपूर्वक उन्हें राजमन्दिर पर लिवा ले गये। श्रीकृष्णजी ने कुन्ती के पास जाकर उनके चरणों पर शिर रख दिया। कुन्ती ने श्यामसुन्दर को गोद में बैठा-कर बहुत प्यार किया। जब द्रौपदी कुन्ती की आज्ञानुसार घूँघट काढ़े हुए हरिचरणों पर गिर पड़ी तब मुरलीमनोहर ने उसके शिर पर हाथ रख-कर उसे अशीश दिया। फिर कुन्ती ने श्यामसुन्दर को जड़ाऊ चौकी पर बैठाकर प्रसन्नता से उनकी आरती की और छत्तीस प्रकार के व्यंजन बनाकर उन्हें खिलाया। कुन्ती ने वसुदेव, शूरसेन व बलरामजी आदि की कुशल पूछकर उनसे कहा कि महाराज! तुम्हारी कृपा का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ, पहिले अक्रूर को मेरी सुधि लेने के लिए भेजा था और अब दूसरी बेर तुम स्वयं आये।

दो० जब तुम प्यारे प्रीति करि पठयो श्रीअक्रूर। तबहीं मन धीरज भयो गयो कष्ट सब दूर॥

हे दीनानाथ! उसी दिन से मैंने जाना कि आप मेरे सहायक हैं।

जब आप त्रिलोकीनाथ मेरी रक्षा करनेवाले हैं तो मैं किसी का डर नहीं रखती। मुझे इस बात का विश्वास है कि जो कोई तुम्हारी शरण में आया उसे कुछ दुःख नहीं होता। जिस तरह तुम अपने भक्तों व तीनों लोकों का दुःख छुड़ा देते हो उसी तरह मेरे बेटों को भी अपने शरणागत जानकर उनकी रक्षा करो।

चौ० जब जब विपति परी हरि भारी। तब तब रक्षा करी हमारी ॥
अहो कृष्ण तुम पर दुख हरणा। पाँचों भाय तुम्हारी शरणा ॥

जिस तरह हरिणी अपने झुण्ड से विलग होकर भेड़ियों का डर रखती है उसी तरह मेरे पाँचों पुत्र दुर्योधन आदि से अपने प्राण का भय रखते हैं। जब कुन्ती यह कह चुकी तब युधिष्ठिर ने श्यामसुन्दर के आगे हाथ जोड़कर विनय किया—हे त्रिलोकीनाथ! मैं जानता हूँ कि पिछले जन्म कोई शुभ कर्म मुझसे हुआ था जिसके प्रताप से तुम्हारे चरण जिनका दर्शन ब्रह्मादिक देवतों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता, सो मेरे घर आये।

दो० जिन चरणन की रेणुसों मम घर भयोपुनीत। केहि मुखसोंवर्णन करौं माखन प्रभु सुनीत॥

हे महाप्रभो! हम लोग अनाथ हैं, तुम्हारी कृपा के सिवा दूसरे का भरोसा नहीं रखते। मुझे ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो आप वैकुण्ठनाथ की स्तुति वर्णन कर सकूँ। जिस तरह आपने मुझको अपना दास जानकर दया करके यहाँ आने की कृपा की है उसी तरह चार महीने बरसात भर यहाँ रहकर अपने दासों को सुख दीजिए। कुन्ती व युधिष्ठिर का यह दीन वचन सुनकर वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी ने उनको बहुत धैर्य दिया और चार महीने वहाँ रहकर प्रतिदिन नये-नये सुख उन्हें देने लगे। एक दिन श्यामसुन्दर व अर्जुन राजा युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर रथ पर बैठकर वन में अहेर खेलने गये, सो अर्जुन ने कई शेर, चीता, भालू, शूकर, हरिण, साबर, रीछ आदि का शिकार मारा और हरिण व साबर का मांस राजमन्दिर पर भेज दिया। जब बहुत परिश्रम करने से मुरलीमनोहर व अर्जुन को प्यास मालूम हुई तब दोनों ने यमुना के किनारे जाकर पानी पिया और वृक्ष की छाया में सो गये।

दो० श्रीयमुनाशोभित महा जामें उठत तरंग। शीतल पवन बहै सदा फूले कमल सुरंग ॥

जब अर्जुन थोड़ी देर सोकर टहलता हुआ यमुना के किनारे गया तब उसने क्या देखा कि यमुनाजल में सुनहला जड़ाऊ मन्दिर बना है और उसमें एक कन्या महासुन्दरी बैठी हुई तप करती है। यह चरित्र देखते ही अर्जुन ने उस कन्या से पूछा कि तुम किसकी बेटी हो, तुम्हारा क्या नाम है, यहाँ किस कारण अकेली बैठी तप करती हो।

दो० यह सुनकर बोली तभी महामनोहर वाम। पिता हमारे सूर्य हैं कालिन्दी मम नाम॥

जिन दिनों कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावन में विहार करते थे तभी से मैं उस मोहनीमूर्ति पर मोहित होकर उन्हें अपना पति बनाया चाहती हूँ। मैंने मनसा वाचा कर्मणा यह प्रण किया है कि वैकुण्ठनाथ के सिवा दूसरे से विवाह नहीं करूँगी। सूर्य देवता ने मेरी इच्छा जानकर यह मंदिर रहने के लिए बनवा दिया, सो अपने पिता की आज्ञानुसार दिन-रात यहाँ रहकर हरिचरणों का ध्यान व स्मरण करती हूँ। पर मैंने सुना है कि श्यामसुन्दर पर अनेक महासुन्दरी स्त्रियाँ मोहित होकर आठों पहर उनकी सेवा में रहती हैं, इसलिए मुझ गरीब बिचारी का उनके पास द्वारिका में पहुँचना बहुत कठिन है। कदाचित् वे दयालु होकर अपना दर्शन दें तो मेरी कामना पूर्ण हो सकती है।

चौ० वे सबके मनकी गति जानें। दासन की विनती नित मानें॥
जबलों नहिं पूजै मम आसा। तबलों जल में करों निवासा॥

अर्जुन यह बात सुनते ही वहाँ से हँसता हुआ श्यामसुन्दर के पास आकर बोला—महाराज! यमुनाजल में एक महासुन्दरी तुम्हें अपना पति बनाने के लिए तप करती है। तुम ऐसे भाग्यवान् हो कि तुम्हारे पीछे पीछे महासुन्दरी स्त्रियाँ दौड़ा करती हैं। यह सुनते ही श्यामसुन्दर वहाँ से उठकर यमुना के किनारे गये। अर्जुन ने पहिले से जाकर उस चन्द्रमुखी से कहा कि जिन्हें तुम अपना पति बनाया चाहती हो वही द्वारकानाथ अविनाशी पुरुष यहाँ आते हैं। जैसे यह वचन कालिन्दी ने सुना वैसे ही मारे हर्ष के आगे दौड़कर हरिचरणों पर गिर पड़ी और परिक्रमा करके हाथ जोड़कर सम्मुख खड़ी हो गई। जब मुरलीमनोहर ने उसकी सच्ची प्रीति देखकर हँसते हुए उसका हाथ पकड़ लिया तब कालिन्दी ने विनय

पूर्वक कहा—हे प्राणनाथ! मैं मनसा वाचा कर्मणा आपकी दासी होकर तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ, पर संसारी व्यवहार व वेदशास्त्र की मर्याद जो कुछ आपने बना दिया है उसके अनुसार चलना चाहिए। यह वचन सुनकर केशवमूर्ति ने उसी समय सूर्य देवता के पास जाकर कहा कि तुम अपनी कन्या हमें दे दो। सूर्य देवता ने उसी क्षण वहाँ आकर वह कन्या श्रीकृष्णजी को संकल्प दी। श्यामसुन्दर उसे रथ पर चढ़ाकर इन्द्रप्रस्थ में आये। वहाँ पर विश्वकर्मा ने पहिले से ही वैकुण्ठ-नाथ की इच्छानुसार एक बहुत अच्छा स्थान बना रक्खा था। उसी में कालिन्दी को उतारकर अपना एक रूप उसके पास रक्खा और दूसरे स्वरूप से अर्जुन को साथ लिये कुन्ती के घर चले गये। एक दिन राजा युधिष्ठिर ने केशवमूर्ति से विनय किया—हे महाप्रभो! ऐसी दया कीजिए कि जिसमें मेरे रहने के लिए एक बहुत अच्छा स्थान तैयार हो जावे। यह वचन सुनते ही गोपीनाथ से विश्वकर्मा को आज्ञा दी तो उसने जैसे उत्तम स्थान द्वारकापुरी में बनाये थे वैसे ही युधिष्ठिर आदि के रहने के लिए बना दिये। जब पाँचों भाई उसमें हर्षपूर्वक रहने लगे तब एक दिन रात को जहाँ मुरलीमनोहर व अर्जुन बैठे थे, अग्निदेवता ने आकर कृष्णचन्द्र से विनय किया कि महाराज! मुझे अजीर्ण का रोग उत्पन्न हुआ है, सो किसी तरह नहीं जाता। मैं नन्दनवन को जहाँ अनेक जड़ी-बूटी लगी हैं जला दूँ तो मेरा रोग छूट जावे—श्यामसुन्दर ने कहा कि बहुत अच्छा, तुम जाकर उसे जला दो। अग्नि हाथ जोड़कर बोले—हे दीनानाथ! उस बाग की रक्षा इन्द्र करता है, मैं अकेला जाऊँ तो इन्द्र पानी बरसाकर मेरी ज्वाला ठंढी कर देगा। यह बात सुनकर लक्ष्मीपति ने अर्जुन से कहा—हे भाई! तुम अग्नि के साथ जाकर नन्दनवन इसे जलाने दो, जिससे इसका रोग छूट जावे। अर्जुन उनकी आज्ञा-नुसार धनुष-बाण उठाकर अग्नि के साथ चला गया और उस बाग में पहुँचकर अग्नि से कहा कि तुम अपनी इच्छानुसार इस बाग को जला दो, मैं तुम्हारी रक्षा करने के लिए खड़ा हूँ। जब अग्नि देवता आम इमली बेर पीपल पाकर महुआ जामुन खिरनी कचनार गूलर आदि वृक्ष

चारों तरफ से जलाने लगे और सब पशु-पक्षी वहाँ से अपने प्राण लेकर इधर-उधर भागे और धुवाँ आकाश में पहुँचा तब इन्द्र राजा ने मेघपति को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम अभी जाकर ऐसा पानी नन्दन बाग पर बरसावो कि सब अग्नि बुझ जाय और कोई पशु-पक्षी जलने न पावे। यह आज्ञा पाते ही मेघराज ने बादल की सेना साथ लिए हुए नन्दन बाग पर जाकर पानी बरसाया तब अर्जुन ने पवन बाण मारकर बादलों को इस तरह उड़ा दिया जिस तरह हवा से रुई के फूहे उड़ जाते हैं। बाणों से नन्दन बाग के चारों ओर ऐसा पिंजरा बना दिया जिसमें कोई वहाँ का पशु-पक्षी बाहर न जावे और पानी की बूँदें उस जगह पहुँच न सकें। जब अग्नि देवता आनन्दपूर्वक बाग जलाते हुए मय दानव के स्थान के निकट पहुँचे तब उस दानव ने जलने के डर से अर्जुन के पास आकर विनय किया—हे राजकुमार! मुझे अपनी शरणागत समझकर मेरे प्राण इस अग्नि से बचाओ। यह दीन वचन सुनते ही अर्जुन ने प्रसन्न होकर अग्नि से कह दिया कि तुम मय दानव का घर मत जलाओ। जब अग्नि देवता ने अर्जुन की आज्ञा से मय दानव का स्थान छोड़कर और सब नन्दन बाग को जला दिया तब मय दानव ने अर्जुन का उपकार मानकर उससे मित्रता की और अपनी माया से सभा का एक बहुत उत्तम स्थान युधिष्ठिर आदि के बैठने के लिए इन्द्रप्रस्थ में बना दिया, जिसे देखकर सब लोग मोहित हो जाते थे। उसमें कई जगह बिल्लौर के ऐसे साफ कुण्ड बने थे जिनको देखकर पानी भरा हुआ मालूम होता था और किसी जगह पानी भरे हुए कुण्ड सूखे दिखलाई देते थे। एक दिन राजा दुर्योधन वह स्थान देखने के लिए गया। जब पानी में भीगने के सन्देह से अपना जामा उठाया तब भीमसेन हँसने लगा, इसलिए दुर्योधन बहुत लज्जित होकर अपने घर चला आया। उसी दिन से दुर्योधन ने पाण्डवों के साथ अधिक शत्रुता बढ़ाई। जब अग्नि देवता का रोग अर्जुन की सहायता करने से छूट गया तब उसने बहुत प्रसन्न होकर गांडीव धनुष, दिव्य कवच, एक रथ, चार श्वेतवर्ण घोड़े, दो तरकस जिसके बाण कभी नहीं घटते थे, एक तलवार, एक अति उत्तम ढाल अर्जुन को दिया।

दो० कालिन्दी सुख देन को पांडुसुतन के काज। अग्निभार उपजाय के रहे तहाँ यदुराज ॥

जब श्यामसुन्दर ने चार महीने इन्द्रप्रस्थ में रहकर राजा युधिष्ठिर से बिदा चाही तब पाँचों भाई पाण्डव, कुन्ती और द्रौपदी आदि बहुत उदास हो गये। वसुदेवनन्दन उन्हें धैर्य देने के उपरान्त अर्जुन व कालिन्दी को साथ लेकर जब कई दिन में आनन्दपूर्वक द्वारकापुरी पहुँचे तब उनके दर्शन से सब छोटे-बड़ों ने सुख पाया। कई दिन बीते कृष्णचन्द्रजी ने राजा उग्रसेन से कहा कि महाराज! कालिंदी सूर्यदेवता की बेटी जो हमारे संग आई है उसका विवाह मेरे साथ कर दीजिए। यह वचन सुनते ही उग्रसेन ने शुभ लग्न में श्यामसुन्दर व कालिंदी का विवाह बड़े धूमधाम से कर दिया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जिस तरह मुरलीमनोहर मित्रबिंदा को विवाह लाये थे उसका हाल सुनो। श्यामसुन्दर की फुआ राजदेवी नाम उज्जैन के राजा से विवाही गई थी। जब उसकी मित्रबिंदा कन्या अति सुंदरी व चन्द्रमुखी उत्पन्न होकर विवाहने योग्य हुई तब राजा मित्रसेन उसके भाई ने उसका स्वयंवर रचकर सब जगह नेवता भेजा, सो अनेक देश के राजा वहाँ आकर इकट्ठे हुए। यह हाल सुनकर वसुदेवनंदन अन्तर्यामी भी जिनकी चाह व भक्ति वह कन्या हृदय में रखती थी, अर्जुन समेत उज्जैन को गये। वहाँ देश-देश के प्रतापी राजा स्वयंवर में बैठे थे। उसी समय मित्र-बिंदा ने सोलहों शृंगार किये हाथ में जयमाल लिये उस स्थान पर आकर जैसे मोहनी मूर्ति को देखा वैसे उन पर मोहित होकर वह माला उनके गले में डाल दी। यह हाल देखकर सब राजा अपने-अपने मन में पछि-ताने लगे। राजा दुर्योधन भी अपने भाइयों समेत वहाँ गया था, वह डाह करके मित्रसेन व बिंदसेन राजकन्या के भाइयों से बोला कि कृष्ण तुम्हारे मामा का बेटा राजकन्या को विवाह ले जायगा तो संसार में लोग तुम्हारी हँसी करेंगे इसलिए, तुम अपनी बहिन को जाकर समझा दो कि वह इनसे अपना विवाह न करे, नहीं तो सब राजों में तुम्हारी हँसी होगी। यह वचन सुनते ही जैसे मित्रसेन ने अपनी बहिन को समझाया वैसे वह श्यामसुन्दर के निकट से हटकर अलग खड़ी हो गई।

तब अर्जुन ने श्रीकृष्णजी के कान में कहा कि महाराज! इस समय आप किसी का संकोच करेंगे तो बात बिगड़ जायगी, जो कुछ करना हो तुरन्त कीजिए। यह बात सुनते ही वृन्दावनविहारी ने झपटकर सभा के बीच में मित्रबिन्दा का हाथ पकड़ लिया और उसको अपने रथ पर बैठाकर द्वारका को चले। यह हाल देखते ही दूसरे राजा जो वहाँ थे अपने-अपने रथ व घोड़ों पर चढ़कर उनके पीछे दौड़े और चारों ओर से उनको घेर लिया। जब दैत्यसंहारण ने देखा कि बिना लड़े ये लोग नहीं पीछा छोड़ेंगे तब उन्होंने कई बाण ऐसे मारे कि सब राजा इधर-उधर भाग गये। वृन्दावनविहारी ने आनन्दपूर्वक द्वारका में पहुँचकर शास्त्रानुसार उसके साथ विवाह किया।

दो० ताके अंगप्रसंग ते मुदित भयो यदुराय। महिमा घाके भाग्य की कासों बरणी जाय॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! अब जिस तरह श्यामसुन्दर ने सत्या नाम की राजकुमारी से विवाह किया था उसका हाल सुनो। नग्नजित अयोध्या के नृपति ने अपनी कन्या सत्या का स्वयंवर रचकर यह प्रण किया था कि जो आदमी मेरे सातों बैलों की नाक एक बेर नाथ डाले उसको अपनी बेटी विवाह दूँगा। इसलिए जो राजा स्वयंवर का हाल सुनकर वहाँ जाते थे वे उन बैलों का स्वरूप देखकर कोई उनकी नाक छेदना अंगीकार नहीं करता था। यह सुनते ही मुरलीमनोहर अर्जुन को सेनासमेत साथ लेकर राजकन्या से विवाह करने के लिए अयोध्यापुरी में गये। जब उनके आने का हाल राजा नग्नजित ने सुना तब वह आगे जाकर हरिचरणों पर गिर पड़ा और अनेक वस्तुएँ उन्हें भेंट देकर सम्मानपूर्वक अपने घर लिवा लाया। जड़ाऊ चौकी पर बैठाकर चरण धोने के उपरांत चरणामृत लिया और विधिपूर्वक पूजा करके बहुत अच्छा भोजन कराया। फिर मोतियों की माला पहिनाकर पीताम्बर ओढ़ाया और सच्चे मन से हाथ जोड़कर इस तरह विनय किया—हे महाप्रभो! आप सब गुणों से भरे हैं, तुम्हारे चरणों की धूरि ब्रह्मादिक देवता, योगी व ऋषीश्वर अपने शिर पर चढ़ाते हैं। जब शेषनागजी दो हजार जिह्वा से आपकी स्तुति नहीं कर सकते तो

दूसरे की क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारे गुणों का वर्णन कर सके। लक्ष्मी दिन-रात तुम्हारा पाँव दाबती हैं, नारदजी आठों पहर आपके गुण गाया करते हैं। हे वैकुण्ठनाथ! सब जगत् तुम्हारी छाया में रहता है। आज मेरा बड़ा भाग्य था जो आपके चरण तीनों लोकों को तारनेवाले मेरे घर आये और मैंने उन चरणों को अपने हाथ से धोया। इन्हीं चरणों का धोवन गंगाजी हैं, जिनकी महिमा का वर्णन नहीं हो सकता।

दो० चरणाम्बुज हरिकेचहैंशिवविरंचि मुनिईश। धन्य भाग्यजोधरतहैंउनचरणनपरशीश।।
उदयभयो सब आयकेआज हमारो भाग। माखनप्रभु दर्शन दियो कियो बहुत अनुराग।।

जब राजा ने इसी तरह बहुत स्तुति करके उस दिन मुरलीमनोहर को अपने यहाँ टिकाया तब सत्या नाम की राजकुमारी जो अति सुन्दरी व चन्द्रमुखी थी, मोहनीमूर्ति को देखते ही उन पर मोहित होकर अपने मन में कहने लगी कि हे परमेश्वर! मुझसे कोई शुभ कर्म पिछले जन्म में हुआ हो तो कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को स्वामी पाकर अपना जन्म सफल करूँ। ऐसा विचारकर उसने अपनी सखियों से कहा कि हे प्यारियो! मेरा मन इस श्याममूर्ति ने मोह लिया।

चौ० यद्यपि ये त्रिभुवन के स्वामी। सकल विश्व के अन्तर्यामी।।
सदा विरक्त रहैं मनमाहीं। इस्त्रिन की इच्छा कछु नाहीं।।
तद्यपि जो इनसे मन लावै। प्रेम रीति की प्रीति लगावै।।
तासों प्रीति करत सुखदाई। हरिजू की यह रीति सदाई।।
जब मैं हरिचरणन को पाऊँ। हरिदासन में नाम धराऊँ।।
दो० जिनके मन में प्रीति है सो सब देव अशीश। श्रीयदुपति मोको बरैं सब ईशन के ईश।।

जब दूसरे दिन प्रातःसमय श्यामसुन्दर उठे तब राजा नग्नजित ने हाथ जोड़कर विनय किया कि हे करुणानिधान! मुझसे तुम्हारी कुछ सेवा नहीं बन पड़ी, इसलिए लज्जित हूँ और जो आज्ञा दीजिए सो अपनी सामर्थ्य भर तुम्हारी सेवा करूँ। श्यामसुन्दर अन्तर्यामी को उस कन्या का सच्चा प्रेम मालूम हुआ था, इसलिए उन्होंने हँसकर कहा कि हे राजन्! तुम्हारी बड़ाई सुनकर हमारा मन तुमसे भेंट करने को बहुत चाहता था, सो तुम्हें देखकर बड़ा सुख हुआ। माँगना क्षत्रियों का धर्म नहीं है, परन्तु तुम्हारी भक्ति व प्रीति देखकर मैं चाहता हूँ कि अपनी

कन्या सत्या का विवाह हमारे साथ कर दो। यह वचन सुनकर राजा ने बड़े हर्ष से विनय किया—हे वैकुण्ठनाथ! जहाँ लक्ष्मीजी आठों पहर तुम्हारी सेवा में रहती हैं, वहाँ मेरी बेटी उनके सामने क्या वस्तु है। केवल मेरी भक्ति देखकर दया करके आप ऐसा कहते हैं। सो मेरा बड़ा भाग्य है जो मेरी कन्या आपकी दासियों में रहे, पर मैंने इस कन्या के विवाह के लिए यह प्रण किया है कि जो आदमी मेरे सात बैलों को एक बेर नाथ दे उसे अपनी बेटी विवाह दूँ। अनेक राजकुमारों ने आकर ऐसी इच्छा की, पर किसी से वह काम पूरा नहीं हुआ। उनमें कितने तो बैलों के सींगों से घायल होकर अपने घर चले गये और बहुत राजकुमार अभी तक यहाँ घायल पड़े हैं। आपसे मेरा प्रण पूरा हो सके तो यह कन्या विवाह ले जाइए। तुम्हारे सिवा दूसरे से यह काम नहीं होगा। यह सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा कि बहुत अच्छा, मैं सातों बैलों की नाक छेदकर उन्हें नाथ दूँगा। यह वचन सुनते ही जब राजा उन सातों बैलों को, जो हाथी के समान बलवान् थे, उनके सम्मुख ले आया, तब श्यामसुन्दर ने उठकर अपनी कमर बाँधी और अपने सात रूप, जो दूसरे को दिखलाई न दें, धारण करके सातों बैलों की नाक एक बेर में छेद डाली। उन सातों को एक रस्सी में नाथ दिया।

दो०माखनप्रभु ज्ञानी महा कीन्हों चरित अनूप। सातवृषभके कारणे धरचो सप्त निजरूप ॥

हे परीक्षित! जिनकी आज्ञा में तीनों लोकों के जीव रहते हैं उनके निकट सात बैलों का एक बेर में नाथ लेना कौन कठिन है। जब राजा नग्नजित यह चरित्र देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और राजकन्या की इच्छा पूर्ण हुई तब सब छोटे-बड़े नगरवासियों ने यह चरित्र देखकर अचम्भा माना। सब लोग द्वारकानाथ की स्तुति करने लगे। राजा ने उसी समय पुरोहित से शुभ लग्न पूछकर अपने यहाँ विवाह की तैयारी करके शास्त्रा-नुसार सत्या का विवाह मुरलीमनोहर से कर दिया। दश हजार गौ, तीन हजार दासी अति सुन्दरी भूषण व वस्त्र समेत, नव लाख हाथी, नव करोड़ घोड़ा, नव लाख रथ, नब्बे हजार दास, असंख्य रत्न व द्रव्या-दिक दहेज में श्यामसुन्दर को देकर अपनी कन्या समेत विदा किया। दूसरे

राजा जो उस स्वयंवर में इकट्ठे हुए थे, क्रोधित व लज्जित होकर आपस में कहने लगे कि यादव को क्या सामर्थ्य है जो हमारे ऐसे प्रतापी राजों के सामने राजकुमारी को ले जावे। जब वे लोग ऐसा विचारकर अपनी-अपनी सेना समेत चढ़ दौड़े और चारों ओर से द्वारकानाथ को राह में घेर लिया तब अर्जुन ने गाण्डीव धनुष चढ़ाकर उन राजों को ऐसे बाण मारे कि वे लोग हार मानकर इधर-उधर भाग गये। जब केशव-मूर्ति आनन्दपूर्वक द्वारका में आये तब राजा उग्रसेन आदि सब छोटे-बड़े आगे आकर गाते-बजाते उनको राजमन्दिर पर लिवा ले गये।

दो०तहाँ बहुत उत्सव भयो कासों बरणो जाय। नर नारी हर्षे सभी आनँद उर न समाय ॥

दहेज की वस्तुएँ देखकर सब द्वारकावासी राजा नग्नजित की बड़ाई करने लगे। श्याम व बलराम ने उसी समय वह सब दहेज जो नग्नजित से पाया था, अर्जुन को देकर संसार में यश उठाया। इतनी कथा सुना-कर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जिस तरह वसुदेवनंदन भद्रा को विवाह ले आये थे अब उसका हाल सुनो। गय नामक नगर में राजा ऋतुसुकृत ने अपनी बेटी भद्रा का स्वयंवर रचकर बहुत से राजों को इकट्ठा किया। मोहनीमूर्ति भी अर्जुन को साथ लिये हुए वहाँ जाकर खड़े हो गये। चन्द्रमुखी राजकन्या जयमाल हाथ में लिये सब राजों को देखती हुई श्यामसुन्दर के निकट आई। उसने साँवली मूरत पर मोहित होकर उनके गले में जयमाल डाल दिया। तब राजा ऋतुसुकृत ने बड़े हर्ष से अपनी कन्या मुरलीमनोहर को विवाह दी और बहुत सा दहेज देकर अपनी कन्या समेत विदा किया। जब श्रीकृष्णजी भद्रा को लेकर द्वारका में आये तब घर-घर मंगलाचार होने लगा। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जिस तरह श्रीकृष्णजी ने लक्ष्मणा को विवाहा था वह कथा सुनो। भद्र देश के राजा ने अपनी कन्या लक्ष्मणा का स्वयंवर रचकर बहुत से राजों को नेवता भेजा। जब चारों ओर के राजा अपनी-अपनी सेना साथ लिये बड़ी धूम-धाम से वहाँ आकर इकट्ठे हुए और वृन्दावनविहारी भी अर्जुन को साथ लेकर उसी स्वयंवर में पहुँचे तब राजकुमारी ने सोलहों शृंगार किये जयमाल लिये राजसभा

में आकर जैसे वसुदेवनंदन को देखा वैसे ही उन पर मोहित होकर वह माला उनके गले में पहिना दी। राजा ने यह हाल देखते ही बड़े हर्ष से अपनी कन्या उन्हें विवाह दी और बहुत सा दहेज देकर कन्या समेत विदा किया। दूसरे राजा जो उसके स्वयंवर में आये थे, डाह से अपनी सेना लेकर द्वारका की राह में जा खड़े हुए। जब श्रीकृष्णजी लक्ष्मणा को साथ लेकर अर्जुन समेत द्वारका को चले तब उन राजों ने उनसे युद्ध किया। उस समय दैत्यसंहारण व अर्जुन ने ऐसे बाण चलाये कि सब राजा हार मानकर भाग गये और श्यामसुंदर हर्षपूर्वक द्वारका में पहुँचे। द्वारकावासियों ने अपने-अपने घर मंगलाचार मनाया। हे परीक्षित! इसी तरह श्यामसुन्दर अपना विवाह करके आठों पहर रानियों समेत आनन्दपूर्वक द्वारकापुरी में रहने लगे। सब स्त्रियाँ प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करती थीं। रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रबिंदा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा ये आठ स्त्रियाँ पटरानी कहलाती थीं।

दो० माखनप्रभुकीनायिका आठों कही सुनाय। सोलहसहस कुमारिका अब कहिहौं समुझाय॥

——:०:——

उनसठवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का भौमासुर को मारना और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओं से विवाह करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! एक दिन नारद मुनि ने कल्पवृक्ष का फूल, जिसकी सुगन्ध बहुत अच्छी होती है, नन्दन बाग से ले आकर श्यामसुन्दर को दिया। जब मुरलीमनोहर ने वह फूल रुक्मिणी को दे दिया तब नारद मुनि सत्यभामा के पास जाकर बोले कि आज मुझे मालूम हुआ कि वसुदेवनन्दन तुमसे रुक्मिणी को अधिक प्यार करते हैं। उन्होंने कल्पवृक्ष का फूल, जो राजा इन्द्र की बाग में होता है, रुक्मिणी को दे दिया। उनको तेरी प्रीति अधिक होती तो तुझे देते। जब यह झगड़ा लगाकर नारद मुनि चले गये तब सत्यभामा उदास होकर कोपभवन में जा बैठी। जब मुरलीमनोहर ने उसे मनाकर यह इकरार किया कि मैं कल्पवृक्ष को इन्द्रलोक से लाकर तेरे आँगन में लगा दूँगा तब सत्यभामा प्रसन्न होकर उनके साथ विहार करने लगी। हे राजन्!

एक समय पृथ्वी स्त्रीरूप बनकर तप करने लगी तब ब्रह्मा व विष्णु व महादेव उसे दर्शन देकर बोले कि तूने इतना दुःख उठाकर कौन मनोरथ मिलने के लिए तप किया है ? स्त्रीरूप धरती ने उन तीनों देवताओं को दण्डवत् करके विनय किया—महाराज ! दया करके मुझे एक बेटा ऐसा बलवान् व प्रतापी दीजिए जिसका सामना तीनों लोकों में कोई न कर सके और किसी के हाथ से वह मारा न जावे। यह बात सुनते ही तीनों देवताओं ने प्रसन्न होकर कहा कि तेरा पुत्र नरकासुर जिसे लोग भौमासुर कहेंगे, बड़ा प्रतापी उत्पन्न होकर पृथ्वी के सब राजों को लड़ाई में जीत लेगा और स्वर्गलोक में जाकर सब देवतों को जीतने के उपरांत अदिति के कानों के कुण्डल लेकर आप पहिनेगा। इन्द्र का छत्र अपनी भुजा की सामर्थ्य से छीनकर अपने शिर पर धरेगा। संसारी राजों की सोलह हजार एकसौ अतिसुन्दरी कन्याएँ बरजोरी ले आकर बिना विवाही अपने घर रक्खेगा। जब श्रीकृष्णजी वैकुण्ठनाथ उसके साथ लड़ने आवेंगे और तू अपने मुख से कहेगी कि मेरे बेटे को मारो तब वे उसे मारकर सब राजकन्या द्वारकापुरी में ले जायँगे। यह वरदान देकर तीनों देवता अन्तर्धान हो गये। पृथ्वी ने विचार किया कि मैं अपने पुत्रको मारने के लिए क्यों कहूँगी। यह वरदान पाकर पृथ्वी ने तप करना छोड़ दिया। कुछ दिन बीते उसके नरकासुर नाम का बालक बड़ा बलवान् उत्पन्न होकर प्राग्ज्योतिषपुर में सात किले के भीतर राज्य करने लगा। सब पृथ्वी के राजों को जीतकर अपने अधीन कर लिया और सोलह हजार एकसौ राजकन्या बिना विवाही जिसमें एक से एक सुन्दरी थी चलते-फिरते, खाते-पीते बरजोरी उठा ले आया और अपने यहाँ एक स्थान में रखकर ऐसा प्रण किया कि जब बीस हजार कन्या पूरी होंगी तब एक साथ उनसे अपना विवाह करूँगा। एक दिन सब कन्याएँ आपस में बातें करती हुई रोने लगीं। उसी समय परमेश्वर की इच्छानुसार नारद मुनि ने वहाँ जाकर उनसे कहा कि तुम लोग कुछ चिन्ता मत करो। श्यामसुन्दर त्रिलोकीनाथ तुम्हें यहाँ से छुड़ाकर तुम्हारे साथ अपना विवाह करेंगे। यह वचन सुनते ही सब राजकन्याएँ प्रसन्न होकर उस

दिन से नित्य हरिचरणों का ध्यान करने लगीं। एक दिन भौमासुर क्रोध करके, भूपविमान जो लङ्का से ले आया था, उस पर बैठकर इन्द्रादिक देवतों से युद्ध करने गया। जब स्वर्ग में जाकर देवतों को दुःख देने लगा और देवता लोग उसके हाथ से अपने प्राण का बचाव न देखकर इधर-उधर भाग गये तब उसने अदिति के कुण्डल व इन्द्र के शिर का छत्र छीन लिया और अपने नगर में आकर ऋषीश्वरों व हरिभक्तों को दुःख देने लगा। जब देवता व हरिभक्त आदि उसके हाथ से बहुत दुःखी हुए तब एक दिन राजा इन्द्र द्वारकापुरी में श्यामसुन्दर की सभा में आकर हरिचरणों पर गिर पड़ा और परिक्रमा व स्तुति करके हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनानाथ! भौमासुर दैत्य ऐसा बलवान् उत्पन्न हुआ कि जिसने मेरी माता के कुण्डल व मेरा छत्र छीनकर सब देवतों को स्वर्ग से बाहर निकाल दिया और हरिभक्तों को दुःख देता है, इसलिए तुम्हारी शरण में आकर यह चाहता हूँ कि आप उसे मारकर देवतों व हरिभक्तों की रक्षा कीजिए। तुम्हारे सिवा दूसरे का भरोसा नहीं है। यह दीन वचन सुनते ही वसुदेवनन्दन ने इन्द्र को धैर्य देकर कहा कि तू अपने स्थान पर जा, मैं भौमासुर को मारकर तेरा दुःख हरूँगा। जब इन्द्र मुरलीमनोहर को दण्डवत् करके अपने स्थान पर चला गया तब दैत्यसंहारण गरुड़ पर चढ़कर सत्यभामा से बोले कि चलो तुमको भौमासुर का युद्ध दिखलावें और इन्द्रलोक से कल्पवृक्ष लाकर तेरे आँगन में लगा दें। तू मुझे उस वृक्ष के साथ नारद मुनि को दान कर दीजियो, फिर गो व सुवर्ण आदि शास्त्रानुसार उन्हें देकर मुझको उनसे मोल ले लीजियो तब मैं तेरे वश में रहकर सब स्त्रियों से तेरी अधिक प्रीति करूँगा। इसी तरह इन्द्राणी ने इन्द्र को व अदिति ने कश्यपजी अपने पति को दान देकर फिर मोल ले लिया था। जब यह वचन सुनते ही सत्यभामा बड़े हर्ष से चलने को तैयार हो गई तब श्यामसुन्दर ने उसे अपने पीछे बैठाकर गरुड़ को उड़ाया।

दो० या विधिसतभामासहितमाखनप्रभुयदुराय। भौमासुर के नगर को क्षणमें पहुँचे जाय ॥

हे राजन्! भौमासुर का नगर छः किले के भीतर इस उपाय से बना था कि पहिला किला पहाड़ का था, उसके भीतर दूसरा किला अनेक

शस्त्रों से बना था, तीसरा किला पानी से भरा था, चौथे किले में चारों ओर आग जलती थी, पाँचवाँ किला वायु का था, छठा किला रस्सों के जाल का बना था, सातवें अष्टधाती किले में नरकासुर के रहने का स्थान था। श्यामसुन्दर की आज्ञानुसार सुदर्शनचक्र व कौमोदकी गदा व गरुड़जी ने क्षणभर में पहाड़, पत्थर व शस्त्रों को तोड़कर पानी सुखा डाला। आग बुझाकर वायु को उड़ाकर रस्सों के जाल को काटकर रास्ता बना दिया। जब वृन्दावनविहारी सातवें किले के द्वार पर पहुँचे तब लाख शूरवीर द्वारपालक युद्ध करने के लिए उनके सामने आये। गरुड़जी ने उनको अपने पंख व चोंच से मारकर गिरा दिया और दैत्यसंहारण ने किले के भीतर जाकर पाञ्चजन्य शंख बजाया।

दो० भौमासुर के श्रवण में शब्द परचो जब जाय। तबहीं सोवत से जग्यो मन में बहुत रिसाय॥

हमने तीनों लोकों में किसी को ऐसा नहीं छोड़ा जो मेरे साथ लड़ने की सामर्थ्य रखता हो, यह कौन पुरुष है जिसने यहाँ आकर आज मुझे नींद से जगाया, उसे चलकर देखना चाहिए। जिस समय भौमासुर यह विचार कर रहा था उसी समय मुर नाम दैत्य उसके मंत्री ने द्वारपालकों का मरना सुनते ही नरकासुर के पास जाकर विनय किया—महाराज! मेरे रहते आपको परिश्रम करना उचित नहीं है। मैं जाकर देखता हूँ जो हाल होगा वह सब तुमसे कहूँगा।

दो० तुमसों कौनमहाबली तिहूँ लोक में आज। कौन काज श्रम करत हौ सब राजन के राज॥

यह बात कहकर मुर वहाँ से विदा हुआ और हाथ में त्रिशूल लेकर श्यामसुन्दर के सामने आया। क्रोध से लाल-लाल आँखें निकालकर दाँत पीसता हुआ बोला—देखूँ मुझसे कौन बली है जो यहाँ लड़ने आया है। जब ऐसा कहकर उसने केशवमूर्ति पर त्रिशूल व गदा आदि अनेक शस्त्र चलाये और वसुदेवनन्दन ने उसके शस्त्र सुदर्शनचक्र से काट डाले तब वह दैत्य, जो पाँच शिर का था, झुँझलाकर अपने पाँचों मुँह बाये हुए इस इच्छा से उनकी ओर दौड़ा कि वैकुण्ठनाथ को निगल जाऊँ। उस समय त्रिभुवनपति ने सत्यभामा को घबराई हुई देखकर सुदर्शनचक्र से उसके पाँचों शिर काट डाले। उसी दिन से संसार में उनका

नाम मुरारि प्रसिद्ध हुआ। जब मुर दैत्य के ताम्र आदि सातों बेटों ने अपने बाप का मरना सुना तब वे लोग अनेक तरह के शस्त्र बाँधे हुए बहुत सी सेना साथ लेकर मोहनप्यारे के सामने आये और उन पर शस्त्र चलाने लगे। वृन्दावनविहारी ने सुदर्शनचक्र से उन लोगों को भी सेना समेत एक क्षण में मारकर गिरा दिया। जब भौमासुर ने सुना कि मेरा मंत्री मुरदैत्य अपने सातों बेटों व सेना समेत मारा गया तब वह क्रोधित होकर बहुत से शूरवीर व हाथी साथ लिए हुए श्यामसुन्दर पर चढ़ दौड़ा।

दो०तभी चल्यो अति कोपकै असुर महा बलवन्त। गजमतंग आगे करे जिनके लम्दे दन्त॥
योधा बहुत हते तहाँ भौमासुर के संग। कोउ हस्ती कोउ रथन में कोउ चढ़े तुरंग॥

जब नरकासुर त्रिभुवनपति के सामने आकर गदा व त्रिशूल व भुशुण्डी आदि अनेक तरह के शस्त्र उन पर चलाने लगा और दैत्यसंहारण सुदर्शनचक्र से उसके शस्त्र काटने लगे तब भौमासुर ने खिझलाकर एक तलवार मुरलीमनोहर पर बड़े वेग से चलाई और ललकारकर बोला कि आज तुम मेरे हाथ से जीते बचकर नहीं जा सकते। जब उसकी तलवार ने भी कुछ काम नहीं किया और उसकी सब सेना दैत्यसंहारण व गरुड़जी ने क्षणभर में मार डाली और उसने अपने को अकेला देखा तब वह अपने घर से एक बड़ा भारी त्रिशूल लेकर फिर वृन्दावनविहारी को मारने झपटा। उस समय सत्यभामा ने श्यामसुन्दर से कहा कि इस पापी को मार डालो। इतनी बात उसके मुख से निकलते ही वसुदेवनंदन ने उसका शिर सुदर्शनचक्र से काटकर गिरा दिया।

चौ० कुण्डल मुकुट सहित शिर परचो। धड़के गिरत शेष थरथरचो।
तिहुँलोक में आनँद भये। दुख चिन्ता सबही के गये॥
तासु ज्योति हरिमुखहि समानी। जय जय शब्द करें सुर ज्ञानी॥
चढ़े विमान पुष्प बरसावैं। वेद बखानि देव यश गावैं॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! महादेव आदि का वरदान सत्य करने के लिए जब सत्यभामा ने, जो पृथ्वी का अवतार थी, अपने मुख से भौमासुर को मारने के लिए कहा तब श्यामसुन्दर ने सुदर्शनचक्र से उसका शिर काट लिया। जब भौमासुर मर गया तब उसकी माता पृथ्वी अपनी पतोहू और भगदत्त पोते को साथ लेकर

द्वारकानाथ के पास आई। छत्र व कुण्डल जो भौमासुर इन्द्रलोक से छीन लाया था और बहुत से रत्नादिक उन्हें भेंट देकर अपना शिर हरिचरणों पर रख दिया। उसने हाथ जोड़कर विनय किया—हे ज्योतिस्स्वरूप भक्त-हितकारि! तुम्हारी महिमा व लीला अपरम्पार है। आपका भेद व आदि अन्त कोई नहीं जान सकता। तुम अविनाशी पुरुष तीनों काल के जाननेवाले किसी से कुछ भय नहीं रखते। आप देवता व मनुष्य आदि तीनों लोक उत्पन्न करनेवाले हैं। आदि व अन्त व मध्य में केवल तुम्हारा प्रकाश रहता है। आप अन्तर्यामी, सबमें व्यापक, सबसे विलग रहकर संसारी वस्तु की कुछ चाह नहीं रखते। लक्ष्मीजी तुम्हारी दासी होकर आपके चरणकमल आठों पहर अपने हृदय में लगाये रहती हैं। ब्रह्मादिक देवता व बड़े-बड़े ऋषीश्वर व मुनि तुम्हारे चरणों का ध्यान दिन-रात अपने हृदय में रखकर तुम्हें अपना उत्पन्न व पालन करनेवाला जानते हैं। जब आप महाप्रलय में शेषनाग की छाती पर शयन करते थे तब आपकी नाभि से कमल का फूल निकला। उसी पुष्प से उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने तीनों लोकों की रचना की, इसलिए चौदहों भुवन की जड़ आप ही हैं। मिट्टी, हवा, पानी, अग्नि व आकाश पाँचों तत्त्व व दशों इन्द्रियों को प्रकट करके रजोगुण से संसार की उत्पत्ति, सतोगुण से पालन, तमोगुण से नाश करते हो। गरुड़जी तुम्हारे वाहन हैं। सब किसी को बल व यश आपकी दया से प्राप्त होता है। तुम हरिभक्तों की रक्षा करने के लिए संसार में मनुष्यरूप अवतार लेकर सबको सुख देते हो, जिसमें संसारी लोग उस रूप का ध्यान व पूजा व नाम का स्मरण करें और तुम्हारी लीला की चर्चा करके भवसागर पार उतर जावें। तुम्हारा निर्गुण रूप किसी को दिखलाई नहीं देता, इसलिए उस रूप से, जो कुछ चिह्न व रेखा नहीं रखता, प्रीति उत्पन्न होना कठिन है। संसारी लोग अपने वर्ण व धर्म के अनुसार तुम्हारी पूजा कई तरह पर करके अपना मनोरथ पाते हैं। तुम्हारी स्तुति शारदादेवी व शेष महेश व गणेश से नहीं हो सकती तो मुझ अज्ञानी की क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारा गुण वर्णन कर सकूँ। तुम जिस पर कृपा करो वह अवश्य तुम्हें पहिचान सकता है, सो मेरी दण्डवत आपको अंगीकार हो।

चौ० जय जय कमल नाभ जलशायी । कमलनयन कमला सुखदायी ।।
नाम स्वरूप अनन्त तुम्हारे । गावें निशि दिन सन्त मुरारे ।।
दो० सब देवन के देव तुम कोऊ लहै न भेव। तुमहीं जग करतार हौ माखनप्रभु हरि देव ।।

पृथ्वी ने इसी तरह से बहुत स्तुति करके अपने पोते भगदत्त को हरि चरणों पर गिराकर विनय किया—हे दीनानाथ! कृपासिन्धु! आपने मुझे यह वरदान दिया था कि बिना तेरे कहे भौमासुर को न मारूँगा फिर क्यों आज उसका वध किया? यह वचन सुनते ही केशवमूर्ति ने सत्यभामा की ओर संकेत करके कहा कि यह पृथ्वी का अवतार है इसके कहने से मैंने नरकासुर को मारा है। जब पृथ्वी ने सत्यभामा को देखा तब लज्जित होकर बोली कि हे नाथ! मेरा पुत्र आपको न पहिचानकर, अधर्म करने लगा, सो वह अपने दण्ड को पहुँचा। अब उसके बालक को, जो तुम्हारी शरण में है, अभय कीजिए। जब यह दीन वचन सुनते ही श्यामसुन्दर ने अपना हाथ भगदत्त के शिर व पीठ पर फेरकर उसे बहुत धैर्य दिया तब भौमासुर की स्त्री हाथ जोड़कर बोली—हे जगत्पालक! जिस तरह आपने कृपा करके अपना दर्शन हमें दिया उसी तरह अपने चरणों से मेरा घर पवित्र कीजिए। जब वसुदेवनन्दन सच्ची प्रीति उन लोगों की देखकर राजमन्दिर पर गये तब भगदत्त व उसकी माता ने बड़े हर्ष से राह में पीताम्बर बिछाते हुए वृन्दावनविहारी व सत्यभामा को अपने घर ले जाकर जड़ाऊ सिंहासन पर बैठाया और चरण धोने के उपरान्त चरणामृत लेकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की। सुगन्धादिक उनके अंग में लगाकर छत्तीस प्रकार के व्यंजन खिलाये। सुनहरी झारी से हाथ धुलाकर पान, इलायची, उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाकर चमर हिलाने लगी। भगदत्त की माता ने बड़े प्रेम से हाथ जोड़कर विनय किया—हे वैकुण्ठनाथ! बहुत अच्छा हुआ, जो आपने भौमासुर देवता व हरिभक्तों के दुःख देनेवाले को मार डाला। रावण और कंसादिक जिस किसी ने परमेश्वर से विरोध किया उसका जगत् में नाश हुआ। अब भगदत्त को अपना सेवक जानिए। सोलह हजार एकसौ राजकन्याएँ जो इसके बाप ने बिना विवाही इकट्ठी की हैं, उनको दया करके अंगीकार

कीजिए। यह वचन सुनते ही वृन्दावनविहारी उस स्थान पर गये, जहाँ वे सब श्यामसुन्दर को अपना पति बनाने के लिए हरिचरणों का ध्यान करती थीं। वहाँ क्या देखा कि सब राजकन्याएँ मैले वस्त्र पहिने हुए सोच में बैठी हैं। जैसे साँवली सूरत मोहनीमूर्ति पर उनकी दृष्टि पड़ी वैसे ही प्रसन्न होकर प्राणनाथ के सामने खड़ी हो गईं और हाथ जोड़कर विनय किया—हे द्वारकानाथ! हम लोगों को तुम्हारी कृपा के बिना यहाँ से छूटना बहुत कठिन है। हे महाप्रभु! जिस तरह आप अन्तर्यामी परब्रह्म परमेश्वर ने हम लोगों को अबला अनाथ दुःखी जानकर अपना दर्शन दिया उसी तरह हम दुःखियों को साथ ले चलकर अपनी दासी बनाइए, जिसमें तुम्हारी सेवा करने से हमारा जन्म सफल हो। यह दीन वचन सुनते ही श्रीकृष्णजी ने उनको बहुत धैर्य देकर कहा कि तुम लोग अपने-अपने घर जाना चाहो तो तुमको पहुँचा दें। उन्होंने विनय किया कि महाराज! अब हम लोगों को तुम्हारे कमलरूपी चरण छोड़कर घर जाना अंगीकार नहीं है, हमें अपनी सेवा में रखिए। जब केशवमूर्ति ने उनकी सच्ची प्रीति देखकर सब राजकन्याओं को अपने साथ द्वारका में ले चलने के लिए उस मकान से बाहर निकाला और भगदत्त को भौमासुर के सिंहासन पर बैठाकर अपने हाथ से राजतिलक लगाया तब भगदत्त ने अनेक रत्न, रथ, घोड़े व साठ हाथी श्वेत वर्ण चार दाँतवाले, जो ऐरावत के वंश के थे, श्यामसुन्दर को भेंट दिये और उन सब राजकन्याओं को उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाकर पालकी आदि पर चढ़ाकर मुरलीमनोहर के साथ अपनी सेना समेत विदा किया। जिस समय वृन्दावनविहारी सोलह हजार एकसौ राजकन्याओं को जड़ाऊ पालकी, सुखपाल व रथ आदि पर साथ लेकर द्वारका को चले उस समय ऐसी शोभा मोहनप्यारे की मालूम होती थी जैसे तारों में चन्द्रमा सुन्दर दिखलाई देता है। श्यामसुन्दर ने सब राजकन्याओं को सेना समेत द्वारकापुरी में भेज दिया और आप सत्यभामा को गरुड़ पर बैठाकर वह छत्र व कुण्डल लिये हुए इन्द्रपुरी को चले गये। इन्द्र भौमासुर के मारे जाने का समाचार सुनकर आनन्द मना रहा था, मुरलीमनोहर के

आने का हाल सुनकर देवतों समेत आगे जाकर अपना शिर हरिचरणों पर रख दिया और वसुदेवनन्दन को बड़े आदर भाव से अपने घर ले जाकर इन्द्रासन पर बैठाया। उनके चरण धोकर चरणामृत लिया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की।

दो० हाथ जोड़ बिनती करै धरै चरण पर माथ। हरिदासन के दास हौं तुम नाथन के नाथ ॥

इन्द्र के स्तुति करने से वैकुण्ठनाथ ने प्रसन्न होकर छत्र व कुण्डल इन्द्र व अदिति का दे दिया। जब यह हाल सुनकर नारदजी इन्द्रपुरी में श्याम-सुन्दर के पास आये तब मुरलीमनोहर ने नारद मुनि से दण्डवत् करके कहा कि महाराज! तुम जाकर इन्द्र से कहो कि सत्यभामा तुमसे कल्प-वृक्ष माँगती हैं। जैसा वह कहें वैसा हमको आकर उत्तर दो। यह वचन सुनते ही नारदमुनि ने इन्द्र के पास जाकर कहा कि सत्यभामा तुम्हारी भौजाई ने कल्पवृक्ष माँगा है। यह वचन सुनकर इन्द्र चुप हो रहा। उसने जाकर अपनी स्त्री से यह हाल कहा। इन्द्राणी क्रोधित होकर अपने पति से बोली कि तुम्हें यह बात याद है या नहीं कि इसी कृष्ण ने व्रज में तुम्हारी पूजा छुड़ाकर व्रजवासियों से गोवर्धन पहाड़ पुजवाया और छल करके सब पकवान व मिठाई आप खाया। सात दिन व सात रात्रि गोवर्धन पर्वत उठाकर तुम्हारा अभिमान तोड़ा था। तुम्हें उस बात की लज्जा है या नहीं। देखो, वह अपनी स्त्री की आज्ञा मानकर यहाँ कल्प-वृक्ष लेने आया है और तुम मेरा कहना कुछ नहीं मानते। यह वचन अपनी स्त्री का सुनते ही इन्द्र अज्ञानी नारदजी के पास जाकर बोला कि महाराज! तुम श्यामसुन्दर से मेरी ओर से जाकर कह दो कि कल्पवृक्ष नन्दन बाग छोड़कर दूसरी जगह जा नहीं सकता। कदाचित् ले जायँगे तो किसी तरह न रहेगा और यह भी उनसे कह देना कि व्रज का सा विरोध मुझसे न करें। बरजोरी कल्पवृक्ष ले जायँगे तो मेरा उनका बड़ा युद्ध होगा। जब नारदमुनि ने आकर यह सन्देशा केशवमूर्ति से कहा तब गर्वप्रहारी भगवान् ने उसी समय नन्दन बाग में जाकर रखवारों को मारकर भगा दिया और कल्पवृक्ष जिसे पारिजातक भी कहते हैं, नन्दन बाग से उखाड़ लिया और गरुड़ की पीठ पर रखकर द्वारिका को

चले आये। जब इन्द्र कल्पवृक्ष ले जाने का हाल सुनकर बड़े क्रोध से ऐरावत हाथी पर चढ़ा और वज्र हाथ में लेकर देवतों समेत दैत्यसंहारण से लड़ने चला तब नारदमुनि ने उसके पास जाकर कहा कि हे इन्द्र! तू बड़ा मूर्ख है जो अपनी स्त्री के कहने से वैकुण्ठनाथ से लड़ने को तैयार हुआ, तुझे कुछ लज्जा नहीं आती। जो ऐसी सामर्थ्य थी तो भौमासुर से छत्र व कुण्डल क्यों नहीं फेर लाया। वृन्दावनविहारी परब्रह्म परमेश्वर ने तेरे विनय करने से नरकासुर को मारकर तेरा छत्र व कुंडल ला दिया, उन्हीं को तू अपना बल दिखाने चला। वह दिन तुझे भूल गया जब वृन्दावन में श्रीकृष्णजी के पाँव पर गिरकर अपना अपराध उनसे क्षमा कराया था। यह वचन सुनते ही इन्द्र लज्जित होकर हाथी पर से उतर पड़ा और युद्ध करने नहीं गया। श्यामसुन्दर ने आनन्दपूर्वक द्वारकापुरी में पहुँचकर कल्पवृक्ष सत्यभामा के आँगन में लगा दिया और राजा उग्रसेन से आज्ञा लेकर सोलह हजार एक सौ राजकन्याओं से विधिपूर्वक अपना विवाह किया। उन सबको पृथक्-पृथक् महल में, जो विश्वकर्मा ने तैयार किये थे, रक्खा और आप उतने रूप धरकर उनके साथ विलग-विलग संसारी सुख उठाने लगे।

दो० तिनसों हरिजू प्रीति करि अमृत बैन सुनाय। प्रेम रीति समुझाइकै दीन्हीं लाज छुड़ाय॥

वे लोग आठों पहर प्राणनाथ को अपने पास देखकर एक दूसरी से डाह नहीं करती थीं। सब स्त्रियों के घर में सैकड़ों दासी थीं, तिस पर भी उन लोगों का यह प्रण था कि प्रातःसमय श्यामसुन्दर का चरणोदक लेकर अपने हाथ उनकी सेवा व टहल करती थीं। पर वैकुण्ठनाथ किसी स्त्री के वश में नहीं होते थे। उन स्त्रियों की सुन्दरता का हाल कोई वर्णन नहीं कर सकता। वे ऐसी सुन्दरी थीं जिनके सामने सूर्य व चन्द्रमा का तेज धूमिल हो जाता था। एक दिन महादेवजी ने द्वारकापुरी में जाकर उन स्त्रियों को देखा तो कामदेव के जला देने पर भी उनका रूप देखकर मोहित हो गये।

दो० ऐसी सुन्दरिनारिसों माखनप्रभु यदुनाथ। काम कलोल करैं सदा खान पान यक साथ॥

साठवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का रुक्मिणीजी से हँसी करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! एक दिन श्रीकृष्णजी रुक्मिणी के मन्दिर में थे। वह स्थान सोनहला जड़ाऊ बहुत उत्तम बना था। उसमें मखमली बिछौने बिछे थे। सब जगह चँदवे बँधे थे और मोतियों की झालरें द्वारों पर लटकी थीं। पारिजातक फूल के गजरे अनेक जगह लटकते थे और धूप व चन्दनादिक की सुगन्ध उड़ती थी।

दो० कल्पवृक्ष के फूल की कहिये कहा सुवास। जासों वन उपवन सभी भये सुवास निवास॥

मंद सुगंध शीतल हवा बहने से सबको सुख मिलता था। नहर व झरने बहते थे। मोर नाचते थे। ऐसे लाल व रत्न वहाँ जड़े थे जिनकी चमक से आठों पहर उजियाला रहता था, दीपक जलाने का प्रयोजन नहीं पड़ता था। उस स्थान में एक शय्या रत्नजटित सब सामग्री समेत बिछी थी। उस शय्या पर श्यामसुन्दर लेटे थे। उनके भूषण, वस्त्र व रूप की छवि देखकर सबका चित्त मोहित हो जाता था।

दो० शोभा त्रिभुवननाथ की कासों बरणी जाय। कामरूपकी छवि महा वह भी रहै लुभाय॥

चौ० तहाँ रुक्मिणी सुन्दरि बाला। सभी श्रृंगार सजे त्यहि काला॥
अंग-अंग भूषण छबि छाजै। महा मधुर स्वर नूपुर बाजै॥
सो ध्वनि सुनि मोहित पुरवासी। मानो लगी काम की फाँसी॥

दो० या विधिसों श्रीरुक्मिणी माखनप्रभु के पास। पवन डुलावैं प्रेमसों मन में बहुत हुलास॥

उस समय परमेश्वर की माया से रुक्मिणी को अभिमान हुआ कि वसुदेवनन्दन की सब स्त्रियों से मैं अतिसुन्दरी हूँ, इसलिए मोहनप्यारे मुझे बहुत चाहते हैं। वैकुण्ठनाथ अन्तर्यामी ने यह हाल जानकर विचारा कि रुक्मिणी को क्रोध दिलाकर प्रेम की परीक्षा लूँ कि उसको अपने रूप का अभिमान है या मेरी प्रीति अधिक है। ऐसा विचारकर बोले कि हे रुक्मिणी! तू ऐसी सुन्दरी, और राजा भीष्मक की कन्या है, मेरे साथ विवाह करना उचित नहीं था। वैर, विवाह व प्रीति बराबरवाले से करना चाहिए। मैं किसी देश का तिलकधारी राजा नहीं हूँ, जरासन्ध के भय से भागा हुआ यहाँ टापू में बसा हूँ। जब से मैंने जन्म लिया तब से कोई शुभ कर्म नहीं किया। जो कोई मेरा भजन व स्मरण करता है उसे विरक्त

व निर्धन कर देता हूँ, इसलिए मेरे भक्त को संसारी सुख नहीं मिलता। मैं किसी के साथ प्रीति न रखकर सबसे अपना मन मोटा रखता हूँ। बालापन में याचकों को कुछ द्रव्यादिक दिया करता था, वही यश सुनकर तुमने मेरे साथ विवाह करके धोखा उठाया। शिशुपाल चंदेली के राजा को जो तिलकधारी व बलवान् होकर जरासन्धादिक बड़े-बड़े राजों को अपने साथ बरात में लाया था अंगीकार नहीं किया।

दो० रुक्म दई शिशुपाल को बाँध्यो कंकण हाथ। आयो साजि बरात वह सब राजन ले साथ॥

हे रुक्मिणी! तुझसे बड़ी चूक हुई, जो तूने राजा शिशुपाल को, जिसके साथ तेरी मँगनी रुक्माग्रज ने की थी, छोड़कर मुझ गो चराने वाले से अपना विवाह किया और उत्तम-मध्यम का विचार न करके अपने कुल में कलंक लगाया।

चौ० कहिये कहा कुबुद्धि तिहारी। भली भाँति मन में न बिचारी॥
रुक्मभ्रात की लाज गँवाई। तात मात को लीक लगाई॥
छाँड़ि नृपति मोसों हित कीनो। निगुण महा जाति को हीनो॥
याते सच्च बात हम मानी। उलटी बुद्धि त्रियन की जानी॥
जो तुम कहो लिखो विधि जोई। कर्म प्रमाण होत है सोई॥

दो० ऐसी झूठी बात को मानै मूरख होय। अपने यश अरु चैन को यत्न करत सब कोय॥

इसके सिवा जिस बात में लड़कियों को लज्जा है वह तूने किया। ब्राह्मण को पत्री देकर अपने विवाह का संदेशा मेरे पास भेजा। सच है, स्त्रियाँ निर्बुद्धि होती हैं।

चौ० जो तुम कहौ हमें क्यों लाये। कौन काज कुण्डिनपुर आये॥
साँच बात समझो मन माहीं। तुम सों मोह हमैं कछु नाहीं॥
बहु नरेश आये वहि ठाहीं। बड़ो गर्व जिनके मन माहीं॥
त्यहि कारण कुण्डिनपुर आये। उन्हैं भगाय तुम्हें हरि लाये॥
नातो मैं विरक्त मन माहीं। कबहूँ मोह होत मम नाहीं॥
सदा उदास रहौं चित माहीं। नारिन की कछु इच्छा नाहीं॥

हे रुक्मिणी! तेरे बुला भेजने से वहाँ जाकर तेरा प्रण पूरा किया, सो परमेश्वर ने इतने राजों के सामने मेरी लज्जा रक्खी। बलरामजी ने वहाँ जैसा पराक्रम किया वह तूने अपनी आँखों से देखा। मैं तुझे अपनी इच्छा से नहीं लाया, इसलिए तुझे आज्ञा देता हूँ कि अब भी तेरा मन

चाहे तो मुझे छोड़कर किसी तिलकधारी राजा के पास, जो तेरे समान कुलीन हो, जाकर रह मैं कुछ बुरा नहीं मानूँगा।

चौ० नारिन में सोइ नारि सुभागी। जाको पुरुष होय बड़ भागी॥
या कारण ढूंढो तुम सोई। जामें लोक महा यश होई॥

यह कठोर वचन सुनते ही रुक्मिणी रोने लगी, उसका मुख पीला हो गया। श्यामसुन्दर की बातों का कुछ उत्तर न देकर अति सोच से सिर नीचे कर लिया और नख से पृथ्वी खोदने लगी। उसका चित्त ठिकाने न रहा और शरीर काँपने लगा।

चौ० चिन्ता बहुत बढ़ी उर माहीं। काहू विधि समझे मन नाहीं॥
दो०ऐसीविधिअकुलायके पड़ी धरणि मुरझाय। तनुकी सुधिभूली उसे मरणनिकट भइ आय॥

जब वृन्दावनविहारी ने देखा कि अति सोच से प्राणप्यारी मरने चाहती है तब उसे उठाकर अपनी सेज पर बैठा लिया और चतुर्भुजी रूप धर कर एक हाथ से उसके बाल सँवारने लगे, दूसरे हाथ से उसके आँसू पोंछा, तीसरे हाथ से पंखा हिलाना आरम्भ किया, चौथा हाथ कमल के समान उसके हृदय पर रखकर उसे गले में लगा लिया। जब उनका प्रेम देखकर रुक्मिणी का चित्त कुछ ठिकाने हुआ तब केशवमूर्ति बोले—हे प्राणप्यारी! गृहस्थों के पास कुछ पृथ्वी आदि अवश्य रहनी चाहिए, जिसमें वे आनन्दपूर्वक अपना कुटुम्ब पालें। मेरे पास कुछ नहीं है, इसलिए तुझसे हँसी की थी। तूने सत्य मानकर इतना दुःख उठाया। मैं तुझसे अधिक किसी का प्यार नहीं करता। तू यह बात सच मानकर उदासी छोड़ दे। तेरा अंग अति कोमल है, इसलिए घबरा गई। तूने जाना कि ये मुझे छोड़ देंगे। अब तू धैर्य धरकर हमसे हँस बोल।

दो०अमृत बैन सुनाय कै माखन प्रभु यदुराय। लीन्ही प्रिया मनायकै दीन्ही रिस बिसराय॥

श्यामसुन्दर की प्रेमपूर्वक बातें सुनकर रुक्मिणी का सोच छूट गया। वह अपने को श्यामसुन्दर की गोद में देखकर लज्जा से उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़कर विनय की—हे वैकुण्ठनाथ! आपने क्या विचारकर ऐसा कठोर वचन मुझसे कहा। मैं अपने को मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारी दासी जानती हूँ। आप मुझे तिलकधारी राजा के पास रहने को कहते हैं, सो तुमसे प्रतापी तीनों लोकों में दूसरा कौन है जिसके पास

जाकर रहूँ। तुम्हारे समान किसी दूसरे को न देखकर तुम्हें त्रिलोकीनाथ समझती हूँ। ब्रह्मा व महादेव आदि देवता तुम्हारे चरणों का ध्यान सदा रखकर उन चरणों की रज अपने मस्तक पर चढ़ाते हैं और तुम्हारी दया से उन्हें यह सामर्थ्य है कि जिसे चाहें उसे वरदान देकर तिलकधारी राजा बना दें।

दो० तुम चरणन की रेणुका वे चाहत दिन रैन। जिनके दर्शन देखके सुख पावत हैं नैन॥

हे महाप्रभु! तुम्हारा ध्यान व स्मरण करने से राजगद्दी आदि अनेक तरह का सुख प्राप्त होता है। बड़े-बड़े राजा संसारी सुख व राज्य छोड़कर तुम्हारा भजन करके भवसागर पार उतर जाते हैं। तुम रजोगुण व तमोगुण से कुछ प्रयोजन न रखकर आठों पहर क्षीरसागर में शयन करते हो। जब दैत्यों के अधर्म करने से पृथ्वी दुःखी होकर तुम्हारी शरण में जाती है या गौ-ब्राह्मण व हरिभक्त लोग दुःख पाते हैं तब आप सगुण अवतार से पृथ्वी का भार उतारकर गो-ब्राह्मण को सुख देते हैं। मुझे ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो आपका गुण वर्णन कर सकूँ। आपने कोई दोष मुझमें देखकर ऐसा वचन कहा है, इसलिए चाहती हूँ कि आप दीनदयालु जगत् के पर्दा ढाँकनेवाले मेरा अवगुण छिपाकर क्षमा कीजिए। बड़े लोग सदा से छोटों पर दया करते आये हैं। हे दीनानाथ! मैंने अपनी आँखों से देखा कि जरासन्ध व शिशुपाल आदि बड़े-बड़े राजों को जो अपने बल का घमण्ड रखते थे आपने एक क्षण में भगा दिया। इससे मैं जानती हूँ कि तीनों लोकों में कोई दूसरा तुमसे बलिष्ठ नहीं है। जो तुम अपने भक्तों को कंगाल रखते हो उसका कारण यह है कि संसारी मनुष्य धन व राज्य के मद में अन्धे होकर अपना धर्म-कर्म व तुम्हारा ध्यान-स्मरण छोड़ देते हैं, इसलिए तुम अपनी कृपा से उनको कंगाल बनाकर हरिभजन कराते हो जिसमें भवसागर पार उतर जावे। संसारी सुख सदा स्थिर नहीं रहता और हरिभजन के प्रताप से महाप्रलय तक सुख मिलता है। जैसा हरिभजन गरीबी में बन पड़ता है वैसा धनपात्र होने में नहीं हो सकता इसीलिए संसारी सुख व व्यवहार को झूठ समझकर अम्बरीष, प्रह्लाद, ऋषभदेव, प्रियव्रत, जड़भरत आदि ज्ञानी राजों ने सातों द्वीपों का राज्य

व परिवार छोड़ दिया और विरक्त होकर तुम्हारे चरणों का ध्यान लगाया, सो आज तक उनका यश छा रहा है। जो तुमने यह कहा कि हम कुछ चाह न रखकर तेरी इच्छा से तुझको यहाँ ले आये हैं सो सच है, जहाँ लक्ष्मीजी तुम्हारि दासी होकर दिनरात सेवा में रहती हैं वहाँ मेरी कौन गिनती है जो आपके योग्य होऊँ। आप दीनदयालु ने मुझे दीन जानकर मेरी इच्छा पूर्ण की। हे जगत्पालक! चँदेली का राजा शिशुपाल भी तुम्हारा उत्पन्न किया है, तुम्हारी सेवा छोड़कर उसे अंगीकार करती तो आवागमन में फँसी रहती। जिस तरह राजा अम्बरीष आदि हरिभजन करके मुक्त हुए हैं उसी तरह मैं भी तुम्हारा चरण धोकर भवसागर पार उतर जाऊँगी और तुम्हारी दया से मेरा नाम भी सदा स्थिर रहेगा।

दो० जैसी विधि शोभा रची नगर द्वारिका माहिं। देश चँदेली को कहै स्वर्गलोक में नाहिं॥

हे वैकुण्ठनाथ! जो स्त्रियाँ तुम्हारे भजन व कथा से विमुख हों उन्हें शिशुपाल व दन्तवक्रादिक पति मिलें। जिस तरह अम्बा नाम की काशीनरेश की कन्या राजा शाल्व को चाहती थी इसी कारण विचित्रवीर्य ने उसे छोड़ दिया उसी तरह आपने भी विचार किया कि यह राजा शिशुपाल को चाहती है, सो मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारी दासी होकर उसे अपना शत्रु समझती हूँ। जो स्त्री निष्कपट अपने पति की सेवा करती है उसकी मनोकामना संसार में मिलकर अन्त समय मुक्त होती है। हे प्राणनाथ! जैसे राजा इन्द्रदमन की कन्या ने तप करके शिखण्डी का जन्म लेकर भीष्मपितामह से बदला लिया था वैसा मैं नहीं कर सकती क्योंकि मैं तुम्हारी अनेक जन्म की दासी हूँ। आपने जो यह कहा कि तूने याचकों के मुख से सुनकर धोखा खाया, सो तुम्हारी स्तुति वेद व शास्त्र में लिखी है और ब्रह्मादिक देवता व नारदमुनि आठों पहर तुम्हारा गुण गाया करते हैं, वह बड़ाई सुनकर मैंने ब्राह्मण को तुम्हारे पास भेजा था, सो आप दयालु होकर इस दासी को ले आये। अब मैं यही चाहती हूँ कि जन्मजन्मांतर तुम्हारी दासी होकर मेरा प्रेम व अनुराग आपके चरणों में बना रहे।

दो० पूरणपुरुष पुराणहौ अलख निरंजननाम। तुम्हरे चरणनको सदा हितसों करौं प्रणाम॥
तुमतो जानतहो पिया प्रेम प्रीति की रीति। अन्तर्यामी होय के क्यों ठानत अनरीति॥

दीनदयालु कृपालु हौ बढ़ै तुम्हारो लाल। निठुर वचन कैसे कह्यो माखनप्रभु गोपाल ।।
याही विधि हाँसी करौ निज नारिनके साथ। जैसी तुम हमसे करी माखनप्रभु व्रजनाथ ।।

यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले—हे प्राणप्यारी! तेरा प्रेम व विश्वास बहुत है, मैंने ऐसा कठोर वचन कहकर केवल तेरी प्रीति की परीक्षा ली थी, सो तेरा प्रेम सच्चा पाया। जिस तरह मेरे निष्काम भक्त होते हैं उसी तरह तुझे भी देखा। मेरा कठोर वचन सुनने से तेरा रंग पीला हो गया, पर अन्तःकरण से प्रेम नहीं घटा। सो हे प्राणप्यारी! तू अपनी बड़ाई इस तरह समझ कि मनुष्य मेरी स्तुति करके अपना जन्म सफल करते हैं। मैं तेरे गुण की बड़ाई करता हूँ। जिस समय मैंने तेरे भाई का शिर मुड़वाकर उसके हाथ बँधवाये थे उस समय भी तूने अधीनता के सिवा मुझसे कुछ नहीं कहा। पतिव्रता स्त्रियों का यही धर्म है कि अपने पति की आज्ञानुसार चलें। मैं तेरी सुन्दरता सुनकर कुण्डिनपुर नहीं गया था, केवल तेरा सच्चा प्रेम देखकर तुझे ले आया। अब तू कुछ चिन्ता न करके सदा प्रसन्न रहा कर। जो कोई यह अध्याय सच्चे मन से कहे व सुनेगा, इसी तरह उसकी भी स्त्री व पुरुष में प्रीति होगी। हे परीक्षित! यह वचन श्यामसुन्दर का सुनकर रुक्मिणी हर्ष से उनकी सेवा करने लगी।

दो०जैसी यह लीला करी माखनप्रभु यदुनाथ। याही विधि क्रीड़ा करैं सब नारिन के साथ ।।

—(०)—

इकसठवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी के वंश की कथा।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! इसी तरह श्रीकृष्णजी द्वारकापुरी में सोलह हजार एकसौ आठ स्त्रियों से भोग व विलास करके गृहस्थाश्रम का धर्म शास्त्रानुसार रखते थे। सब स्त्रियाँ पतिव्रताधर्म से आठों पहर उनकी सेवा करती थीं। हरिइच्छा से सब स्त्रियों के दश-दश पुत्र श्यामरंग कमलनयन अति बलवान् व एक-एक कन्या महासुन्दरी उत्पन्न हुई। वे सब अपने बालचरित्र का सुख माता व पिता को दिखलाते थे। उनके माता-पिता उत्तमोत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाकर प्रसन्न होते थे। सब एक लाख इकसठ हजार अस्सी पुत्र व सोलह हजार एकसौ आठ कन्या

वसुदेवनन्दन के उत्पन्न हुईं। फिर उनसे इतनी सन्तान बढ़ी कि उनकी गिन्ती नहीं हो सकती।

दो० शोभा आठों रानियन कासों बरणीजाय। शिव विरंचि सनकादिमुनि देखत रहे लुभाय॥

हे परीक्षित! सब स्त्रियाँ आठों पहर केशवमूर्ति को अपने पास देखकर अति प्रसन्न होती थीं उनकी जो सन्तानें हुई थीं उनके नाम कहते हैं, सुनो। प्रद्युम्न आदि रुक्मिणी के, भान आदि सत्यभामा के, साम्ब आदि जाम्बवती के, सूरति आदि कालिन्दी के, श्रीमान् आदि सत्या के, बरघोष आदि लक्ष्मणा के, बरक आदि मित्रविन्दा के, संग्रामजित् आदि भद्रा के बेटों का नाम था। ताम्रकेतु व दत्तमान दो भाई बलरामजी के रेवती से हुए थे। प्रद्युम्न के अनिरुद्ध हुए, अनिरुद्ध से बलराम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। रुक्माग्रज ने मुरलीमनोहर के यहाँ प्रद्युम्न आदि पुत्र होने का हाल सुनकर अपनी स्त्री से कहा कि रुक्मवती मेरी कन्या जो कृतवर्मा के पुत्र से माँगी गई है उसे वहाँ न विवाहकर उसका स्वयंवर रचूँगा। तू चिट्ठी भेजकर मेरी बहिन रुक्मिणी को उसके बेटों समेत बुला भेज। यह वचन सुनते ही उसने पत्री लिखकर ब्राह्मण के हाथ रुक्मिणी के पास भेज दी। रुक्मिणीजी यह समाचार पाते ही वसुदेवनन्दन से आज्ञा लेकर प्रद्युम्न समेत भोजकट नगर में गईं। रुक्म अपनी बहिन को देखकर अति प्रसन्न हुआ, पर उसने पिछली बात याद करके लज्जा से अपना सिर नीचा कर लिया। उसकी स्त्री ने पैरों पर सिर रखकर रुक्मिणी से कहा कि जब से मेरा नन्दोई तुम्हें हर ले गया तब से आज तुम्हारा दर्शन पाया, सो तुम हमारे ऊपर कृपा करके प्रद्युम्न का विवाह मेरी कन्या से करो। यह सुनकर रुक्मिणी बोली—भैया का हाल तुमको मालूम है, क्या फिर झगड़ा कराओगी। ऐसी बात कहते व सुनते मुझे डर मालूम होता है। जब रुक्म ने यह वृत्तान्त अपनी स्त्री से सुना तब वह रुक्मिणी से बोला कि हे बहिन! अब तुम कुछ मत डरो, वेद की आज्ञानुसार भानजे को कन्यादान देते हैं, रुक्मवती का विवाह प्रद्युम्न से करके श्रीकृष्णजी के साथ नई नातेदारी करूँगा जिसमें पिछला वैर मिट जावे। जब यह बात कहकर रुक्माग्रज अपनी सभा में जहाँ अनेक

राजा उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिने बैठे थे, जा बैठा तब प्रद्युम्न भी अपनी माता से आज्ञा लेकर वहाँ जाकर खड़ा हुआ। जब रुक्मवती जयमाल हाथ में लिए सब राजों को देखती हुई प्रद्युम्न के पास पहुँची तब उसने साँवली सूरत पर मोहित होकर जयमाल उसके गले में डाल दिया। यह हाल देखते ही सब राजों ने आपस में यह सम्मत किया कि जब प्रद्युम्न राजकुमारी को लेकर यहाँ से चले तब राह में छीन लें। ऐसी इच्छा से सब राजा द्वारका के रास्ते पर जा खड़े हुए। रुक्म ने विधिपूर्वक रुक्मवती का प्रद्युम्न से ब्याह कर बहुत सा द्रव्य व रत्नादिक दहेज में दिया। जब रुक्मिणीजी अपने भाई व भौजाइयों से विदा होकर बेटा व पतोहू समेत द्वारका को चलीं और राह में उन सब राजों ने आकर घेर लिया तब प्रद्युम्न ने बाण मारकर क्षण भर में सब राजों को भगा दिया। जब रुक्मिणीजी दुल्लह व दुलहिन को साथ लिए आनन्दपूर्वक द्वारका में पहुँचीं तब वसुदेव व देवकी आदि रीति व रस्म करके दुल्लह व दुलहिन को राजमन्दिर में लिवा ले गये और घर-घर मंगलाचार होने लगा। जब कई वर्ष उपरान्त प्रद्युम्न के रुक्मवती के पेट से एक लड़का महासुन्दर व तेजस्वी उत्पन्न हुआ तब श्यामसुन्दर ने मंगलाचार मनाकर मुख माँगा दान व दक्षिणा ब्राह्मणों और याचकों को दिया। ज्योतिषियों को बुलाकर उसका जन्मलग्न पूछा तो ब्राह्मणों ने उस बालक का नाम अनिरुद्ध रखकर कहा—महाराज! यह पुत्र अति सुन्दर व बलवान् व चौदहों विद्यानिधान होगा। यह बात सुनकर वसुदेवनन्दन ने ज्योतिषियों को सम्मानपूर्वक विदा किया। वह बालक प्रतिदिन चन्द्रकला सा बढ़ने लगा। जब रुक्म ने यह हाल सुना कि मेरे नाती उत्पन्न हुआ तब उसने बड़े हर्ष से भूषण व वस्त्र भेजकर ऐसी चिट्ठी श्रीकृष्णजी को लिखी कि मैं अपनी पोती का विवाह तुम्हारे पौत्र से करूँगा। जब रुक्म ने यह पत्री भेज कर थोड़े दिन उपरान्त एक ब्राह्मण के हाथ तिलक की सामग्री द्वारका में भेज दी तब श्यामसुन्दर ने बड़े हर्ष से अनिरुद्ध का तिलक चढ़ाया और उस ब्राह्मण को द्रव्यादिक देकर विदा किया। राजा उग्रसेन से आज्ञा लेकर श्याम व बलराम बड़ी धूमधाम से अनिरुद्ध को ब्याहने गये।

जब बरात भोजकट नगर के निकट पहुँची तब रुक्माग्रज दूसरे राजों समेत आगे लेने गये और सब बरातियों को बड़े आदरभाव से नगर में ले जाकर जनवासा दिया। यथायोग्य सबका सम्मान करके दुल्लह को मड़ये में ले गया। जब विधिपूर्वक पोती का कन्यादान देकर रुक्म ने बहुत-सा द्रव्यादिक दहेज में श्यामसुन्दर को दिया तब राजा भीष्मक ने जनवासे में जाकर श्रीकृष्णजी से कहा—महाराज! विवाह हो चुका, अब यहाँ अधिक रहना उचित नहीं है, क्योंकि रुक्म ने जिन राजों को अपने यहाँ नेवते में बुलाया है वह आपसे शत्रुता रखते हैं, ऐसा न हो कि कोई उत्पात करें। यह कहकर राजा भीष्मक अपने घर चले गये। केशवमूर्ति ने रुक्मिणी को सब वृत्तान्त सुनाकर चलने के लिए कहा। तब वह रुक्म से बोली—हे भाई! तुम्हारे नेवतेवाले राजा तेरे प्राणनाथ से शत्रुता रखते हैं, इसलिए हमको विदा कर दो, नहीं तो शुभकार्य में विघ्न होने का भय है। यह सुनकर रुक्म बोला—हे बहिन! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो मैं पहिले नेवतेवाले राजों को विदा कर आऊँ, पीछे जो तुम कहोगी सो करूँगा। जब ऐसा कहकर रुक्म सब राजों को विदा करने के लिए उनके डेरों पर गया तब कलिंग देश के नृपति और कई राजों ने रुक्म से कहा कि देखो तुमने श्याम व बलराम को इतना द्रव्य दहेज में दिया, पर उन्होंने अभिमान से उसे कुछ नहीं समझा। एक तो इस बात का माख हम लोगों को है दूसरे उस दिन की कसक हमारे मन से नहीं भूलती, जो बलरामजी ने रुक्मिणीहरण में तुम्हारी गति की थी। हम लोग यादववंशियों को युद्ध में जीत नहीं सकते इसलिए तुम बलदाऊजी को हमारे स्थान पर बुला दो तो चौपड़ में उनका सब धन जीत लें, श्यामसुन्दर से बिगाड़ करने का कुछ प्रयोजन नहीं है। जब यह वचन सुनकर रुक्म को पिछली बात याद करके क्रोध उत्पन्न हुआ तब वहाँ से उठकर कुछ सोच-विचार करता हुआ बलभद्रजी के पास जाकर बोला—महाराज! आपको सब राजों ने दण्डवत् करके चौपड़ खेलने के लिए बुलाया है। यह बात सुनकर जब बलदाऊजी रुक्म के साथ राजों की सभा में आये तब उन्होंने सम्मानपूर्वक बैठाकर उनसे

कहा कि हम लोग आपसे चौपड़ खेलना चाहते हैं। इतना कहकर उन्होंने चौपड़ बिछा दिया और रुक्म व बलराम खेलने लगे। जब पहिले रुक्म ने दश बाजी बलभद्र से जीत लिया और वह बहुत द्रव्य हार गये तब रुक्म ने अभिमानपूर्वक बलराम से कहा कि सब धन हार गये अब काहे से खेलोगे। कलिंग देश का राजा भी यह बात कहकर हँसने लगा तब बलरामजी लज्जित होकर दश करोड़ रूपये की बाजी लगाकर बोले-

दो०कह्यो हमारे मनविषे जोनहिं कपट कुभाव। तौ अबकी हमजीति हैं निश्चयकरियहदाँव॥

जब वह बाजी रेवतीरमण जीतकर रुपया उठाने लगे तब सब राजा अधर्म से बोले कि रुक्म ने बाजी जीती है। यह बात सुनकर बलरामजी ने वह रुपया रुक्म को दे डाला। दूसरी बाजी अर्ब रुपये की लगाकर बलदाऊजी ने पाँसा फेंका। जब वह बाजी भी संकर्षण जीते तब फिर सब राजा झूठ बोलकर कहने लगे कि रुक्म ने जीता है। कलिंग देश का राजा हँसने लगा। सबका यह अधर्म देखकर जब बलरामजी को क्रोध हुआ तब रुक्म अभिमान से चिल्लाकर बोला-सुनो बलभद्रजी! तुम सच कहने से क्यों क्रोध करते हो, तुमने ग्वालों के साथ वन में रहकर अपना जीवन बिताया, राजसी खेल चौपड़ खेलना तुम क्या जानो। जुआ खेलना व शत्रुओं से लड़ना राजाओं का धर्म है।

दो० बसे नन्दघर जाय कै रहे चरावत गाय। हम राजन की सभा को जानत नहीं स्वभाय॥

यह वचन सुनकर रेवतीरमण को ऐसा क्रोध हुआ जैसे पूर्णिमा को समुद्र की लहर बढ़ती है, पर उन्होंने रुक्मिणी के संकोच से अपना क्रोध क्षमा किया और सात अर्ब रुपये की फिर बाजी लगाकर खेले। जब वह बाजी भी बलदाऊजी ने जीती और सब राजा झूठ बोलकर रुक्म का जीतना बतलाने लगे तब यह आकाशवाणी हुई कि बाजी संकर्षणजी ने जीती है तुम सब क्यों झूठ बोलते हो। जब आकाशवाणी होने पर भी सब लोग अधर्म से बलभद्रजी को झूठा बनाने लगे तब बलदाऊजी महाक्रोधित होकर रुक्म से बोले कि तूने नातेदारी करने पर भी हमसे शत्रुता नहीं छोड़ी, अब चाहे भौजाई बुरा मानें या भला, तुमको बिना मारे नहीं छोड़ूँगा। यह बात कहकर रेवतीरमण ने सब राजों के सामने

अपने हल व मूशल से रुक्म को मार डाला। जब कलिंगदेश का राजा यह हाल देखकर वहाँ से भाग चला तब उसको भी पछाड़कर घुस्सों से दाँत तोड़ डाले। दूसरे राजा जो उस सभा में झूठ बोलकर बलरामजी को हँसते थे उनमें किसी का हाथ, किसी का पैर, किसी की नाक मारे घुस्सों के तोड़ दिया। यह दशा देखते ही और सब राजा अपने प्राण के डर से भाग गये। जब बलदाऊजी ने श्यामसुन्दर के पास जाकर वहाँ का सब वृत्तान्त सुनाया तब केशवमूर्ति अन्तर्यामी ने रुक्म का अधर्म समझकर अपने भाई को कुछ नहीं कहा और वहाँ से दुल्लह व दुलहिन को रुक्मिणी व बरातियों समेत अपने साथ लेकर द्वारका को चले।

दो० या विधि पौत्रविवाहि के माखनप्रभु यदुनाथ। आनँदसों पहुँचेसदन सकलसेन लै साथ ॥

जब उनके आने का समाचार द्वारकावासियों ने सुना तब सब छोटे-बड़े गाते-बजाते आगे आकर दुल्लह व दुलहिन को राजमन्दिर में ले गये और घर-घर मंगलाचार होने लगा। श्याम व बलराम ने राजा उग्रसेन से हाथ जोड़कर कहा—महाराज! तुम्हारे पुण्य प्रताप से अनिरुद्ध का ब्याह कर लाये और रुक्माग्रज को, जो बड़ा अधर्मी था, मार डाला। यह बात सुनकर राजा उग्रसेन अति प्रसन्न हुए।

बासठवाँ अध्याय।

अनिरुद्ध व ऊषा की कथा।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर शुकदेवजी से विनय किया—हे महाराज! दयालु होकर अब अनिरुद्धहरण की कथा सुनाइए।

दो० कहौ प्रकट समझायकै सकलऋषिनके राय। श्रीमाखनप्रभुकी कथा श्रवणनसदा सुहाय॥

यह सुनकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! द्वारकानाथ की दया से ऊषा व अनिरुद्ध की कथा कहता हूँ, सुनो। ब्रह्माजी के वंश में कश्यपजी हुए, उनका पुत्र हिरण्यकशिपु बड़ा बलवान् हुआ। उसके यहाँ प्रह्लाद भक्त ने जन्म लिया। प्रह्लाद का बेटा बैरोचन और उसके यहाँ राजा बलि ऐसा धर्मात्मा हुआ जिसका यश आज तक संसार में छा रहा है। राजा बलि के सौ पुत्र हुए। उसका बड़ा बेटा बाणासुर महाबली व सत्यवादी

व धर्मात्मा था। वह शोणितपुर में ब्रह्मचर्य से राज्य करके नित्य कैलास पर्वत पर जाकर महादेवजी की पूजा व तप प्रेमपूर्वक करता था। एक दिन बाणासुर मृदंग लेकर बड़े प्रेम से महादेवजी के सामने नाचने व गाने लगा। भोलानाथ ने प्रसन्न होकर पार्वती समेत उसे दर्शन देकर कहा—हे बेटा! तेरा प्रेम देखकर मैं अति प्रसन्न हुआ, जो इच्छा हो सो वरदान माँग। बाणासुर ने उनको साष्टांग दण्डवत् करके विनय किया—हे महाप्रभु! आपने दयालु होकर दर्शन दिया तो मुझे पहिले अमर कर दीजिए, फिर चौदहों लोकों का राज्य देकर ऐसा पराक्रम दीजिए कि कोई देवता आदि कभी मुझे जीत न सकें।

दो०बहुत भाँति विनती करूँ हौं दासन को दास। तुम ठाकुर तिहुँलोक के पुरवत सबकी आस॥

यह वचन सुनते ही शिवजी ने हजार भुजा बाणासुर को देकर कहा कि हमने तुझे इच्छापूर्वक वरदान दिया। अब तू अचल राज्य कर, तुझे कोई नहीं जीत सकेगा। जब महादेव का वर पाने से बाणासुर के हजार भुजा हो गईं तब वह उनसे विदा होकर हँसता हुआ राजमन्दिर पर आया और अपनी भुजाओं के बल से संसारी राजों व सब देवतों को जीतकर तीनों लोकों का राज्य करने लगा। वह नित्य कैलास पर्वत पर जाकर विधिपूर्वक महादेवजी का पूजन करता था। सब देवता उसके अधीन रहते थे। शिवजी ने बाणासुर से यह कहा था कि हम तेरे नगर की रक्षा करेंगे, इसलिए महादेव के गण शोणितपुर में रक्षा करने के लिए रहते थे। जब बाणासुर से कोई शत्रु लड़नेवाला नहीं ठहरा और उसकी हजार भुजा विना लड़े खुजलाने लगीं तब वह बड़े-बड़े पर्वत उठाकर दूसरे पहाड़ों पर पटककर चूर करने लगा। फिर भी उसको बोध नहीं हुआ तब उसने विचारा कि बिना युद्ध किये सब भुजा मुझको बोझ मालूम देती हैं, इसलिए महादेवजी के पास चलकर किसी शत्रु का पता पूछूँ। ऐसा विचारकर कैलास पर्वत पर चला गया और शिवजी से विनय किया—हे महाप्रभु! तीनों लोकों में कोई ऐसा बलवान् दिखाई नहीं देता जो मेरे साथ लड़ सके। जब मैं दिग्पाल हाथियों से लड़ने गया और वह भी हमसे हार मान गये तब मैंने बड़े-बड़े पहाड़ों को मुक्का मारकर चूर कर

डाला। युद्ध किये बिना सब भुजाएँ बोझ मालूम होती हैं। कोई लड़नेवाला बतलाइए जिससे युद्ध करूँ।

चौ० यद्यपि यह जानों मनमाहीं। तुमसों और बली कोउ नाहीं॥
त्यहि कारण त्रिभुवन के नाथा। तुमहीं युद्ध करौ मम साथा॥

यह अहंकार सुनकर महादेवजी ने विचारा कि मैंने तो इसको भक्त जानकर ऐसा वरदान दिया था, सो यह अज्ञानी मुझी से लड़ने आया, इसलिए इसका अभिमान तोड़ना उचित है। ऐसा विचारकर शिवजी बोले—हे मूर्ख अभिमानी! तू मत घबरा, अभी तक तो तीनों लोकों में ऐसा कोई बलवान् नहीं है जो तेरे साथ लड़ सके, पर थोड़े दिनों में श्रीकृष्णजी अवतार लेकर तुझसे लड़ेंगे। यह वचन सुनते ही बाणासुर ने प्रसन्न होकर महादेवजी से पूछा—महाराज! मुझे उनके अवतार लेने का हाल किस तरह मालूम होगा। तब भोलानाथ ने एक ध्वजा बाणासुर को देकर कहा कि तू इस ध्वजा को ले जाकर अपने राजमन्दिर पर खड़ी कर दे, जिस दिन यह ध्वजा आपसे टूटकर गिर पड़े उस दिन जानना कि मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ। बाणासुर वह ध्वजा लेकर बड़े हर्ष से अपने मकान पर चला आया और उसे राजमन्दिर पर खड़ा कर दिया। सदा उसे देखकर अपना शत्रु उत्पन्न होने की इच्छा रखता था, जब कई वर्ष बीतने पर बाणासुर के बाणावती बड़ी स्त्री से एक कन्या ऊषा नामक अतिसुन्दरी उत्पन्न हुई तब उसने प्रसन्न होकर ब्राह्मणों व याचकों को बहुत-सा दान व दक्षिणा दिया। जब ऊषा सात वर्ष की हुई तब बाणासुर ने उसको सहेलियों समेत कैलाश पर्वत पर नहादेव व पार्वती के पास विद्या पढ़ने के लिए भेज दिया। ऊषा ने वहाँ जाकर भोलानाथ व पार्वती को दण्डवत करके विनय किया—हे त्रिलोकीनाथ! इस दासी को विद्या दान देकर संसार में यश लीजिए, तब महादेव उसे विद्या पढ़ाने लगे। कुछ दिनों में ऊषा उनकी कृपा से सब शास्त्र व गाने-बजाने में ऐसी निपुण हो गई कि अनेक तरह का बाजा बजाकर छः राग व छत्तीस रागिनी गाने लगी। एक दिन ऊषा वीणा बजाकर पार्वतीजी के साथ सांगीत राग गाती थी उसी समय शिवजी ने पार्वती से कहा—हे प्राण-

प्यारी! जिस कामदेव को मैंने जला दिया था उसने श्रीकृष्णजी के यहाँ प्रद्युम्न नाम से जन्म लिया है। ऐसा कहकर शिवजी पार्वती को साथ लिये गंगा किनारे चले गये और बड़े प्रेम से उनके साथ स्नान व जल-विहार किया। पार्वतीजी को अपने हाथ से उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाये। जब जगन्माता वीणा बजाकर सांगीत राग उनको सुनाने लगीं उस समय महादेवजी प्रसन्न होकर बड़े प्रेम से पार्वतीजी को गले लगा लिया। यह हाल देखकर ऊषा को भी इस बात की चाह हुई कि मेरा ब्याह भी हुआ होता तो इसी तरह अपने पति से विहार करती। जैसे रात्रि के बिना चन्द्रमा की शोभा नहीं होती वैसे ही पुरुष के बिना स्त्री अच्छी नहीं मालूम होती। उसके मन का हाल पार्वती ने जानकर उसे अपने पास बुलाया और धैर्य देकर कहा—हे बेटी! तेरा स्वामी तुझे स्वप्न में आकर मिलेगा, तू उसे ढुँढ़वाकर भोग व विलास करना। जब ऐसा कहकर पार्वतीजी ने उसको विदा किया और ऊषा उन्हें दण्डवत् करके राजमन्दिर पर आई तब बाणासुर ने एक रत्नजटित स्थान में उसको सहेलियों समेत रक्खा। जिस तरह चन्द्रमा का प्रकाश द्वितीया से पूर्णमासी तक बढ़ता है उसी तरह ऊषा बारह वर्ष तक बढ़कर ऐसी सुन्दरी व तरुणी हुई कि जिसके सामने पूर्णमासी का चन्द्रमा धूमिल दिखलाई देने लगा। एक दिन ऊषा ने सोरहों शृंगार किये सहेलियों को साथ लिये अपने माता-पिता के पास जाकर दण्डवत् किया। बाणासुर ने उसे विवाहने योग्य देखकर विचारा कि अब यह ब्याहने योग्य हुई। यह समझकर उसने बहुत दैत्यों व राक्षसों को उसके महल की रक्षा करने के लिए बैठा दिया, जिसमें कोई पुरुष वहाँ जा न सके। ऊषा अपने स्वामी के मिलने के लिए आठों पहर पार्वतीजी का ध्यान करने लगी। एक दिन ऊषा ने रात्रि को शय्या पर अकेली बैठी हुई यह विचारा कि देखें राजा मेरा विवाह कब करते हैं। जब वह इसी तरह विचारती हुई सो गई तो स्वप्न में क्या देखा कि एक पुरुष किशोर अवस्था श्यामरंग चन्द्रमुख कमलनयन अति सुन्दर जड़ाऊ मुकुट शिर पर धरे किरीट कुण्डल व पीताम्बर पहिने अंग-अंग पर गहना जड़ाऊ साजे मोतियों की माला

गले में डाले रेशमी उपरना ओढ़े सामने आकर खड़ा है। ऊषा वह मूर्ति देखते ही लज्जित हो गई। जब उस पुरुष ने प्रेमपूर्वक बातों से उसकी लज्जा छुड़ाकर अपने गले लगा लिया तब वह सुन्दरी उस मोहनीमूर्ति को अपनी शय्या पर बैठाकर प्रेम की वार्ता करने लगी। जैसे ऊषा ने हाथ फैलाकर कमलनयन से मिलना चाहा वैसे ही उसकी आँख खुल गई और मन की इच्छा मन ही में रह गई।

दो०जागपड़ीसोचतखड़ी भयोपरमदुख ताहि। कहाँगयोवहप्राणपति देखतचहुँदिशिजाहि॥

जब ऊषा ने जागने पर उस पुरुष को नहीं देखा तब व्याकुल होकर कहने लगी कि अब मैं अपने प्राणप्यारे को किस तरह देखूँ। मैं न जागती तो किस तरह वह मेरा मन चुराकर भाग जाता। अब जो रात बाकी है वह कैसे कटेगी।

चौ० बिन प्रीतम जिय निपट अचैन। देखे बिन तरसत हैं नैन॥
कान सुनो चाहत हैं बैन। कहाँ गये प्रीतम सुखदैन॥
जो स्वप्ने में फिर लखि लेऊँ। प्राण साथ उनके करि देऊँ॥

जब ऊषा इस तरह अनिरुद्ध को स्वप्न में देखकर उस पर मोहित हो गई तब उस रूप का ध्यान हृदय में रखकर शय्या पर पड़ रही और उसी सोच में निद्रा उसे न आई। जब पहर दिन चढ़े तक नहीं उठी तब उसकी सहेलियाँ आपस में कहने लगीं कि आज क्या कारण है जो राजकन्या सोकर नहीं उठी। जब वे सब घबराकर ऊषा का समाचार लेने गईं तब उसे रोती हुई व्याकुल देखकर बहुत समझाया, पर वह विरह की मारी हुई नहीं उठी। जब सहेलियों से कुम्भाण्ड की बेटी चित्ररेखा ने ऊषा का हाल सुना तब उसने राजकन्या के यहाँ जाकर क्या देखा कि ऊषा छपरखट में लेटी हुई रो रही है। उसकी यह दशा देखते ही चित्ररेखा ने घबराकर पूछा—हे प्यारी! आज तुमको क्या दुःख हुआ जो इतना रोती हो, अपना भेद मुझे बतलाओ तो उसका उपाय करूँ। मुझे तुम्हारी दया से यह सामर्थ्य है कि चौदहों लोकों में जाकर जो काम किसी से न हो वह कर लाऊँ। ब्रह्मा के वरदान देने से शारदा देवी आठों पहर मेरे साथ रहती हैं। उनकी कृपा से ब्रह्मादिक देवतों को वश में कर सकती

हूँ। मेरा गुण अब तक तुमको नहीं मालूम था, आज तुम्हारी यह दशा देखकर अपना हाल तुमसे कहा—

चौ० अब तू कह सब अपनी बात। कैसी कटी आज की रात॥
मुझसे कपट करो मत प्यारी। पूरण करिहौं आश तुम्हारी॥

दो० अंग-अंग व्याकुल महा मानो लगो है प्रेत, कहो कपट समझायकै कासों बाढ़्यो हेत॥

ऊषा यह प्रेमपूर्वक बात सुनकर छपरखट से उतर पड़ी और लज्जा-संयुक्त उसके निकट आकर धीरे से बोली—हे सखी! मैं तुझे परम मित्र जानकर रात का हाल कहती हूँ, तू यह बात अपने मन में रखकर जो उपाय तुझसे बन पड़े सो कीजियो। आज रात को एक पुरुष श्याम-वर्ण कमलनयन अतिसुन्दर मेरी शय्या पर आ बैठा। जब उसने प्रेम-पूर्वक बातें कहकर मेरा मन हर लिया तब मैंने भी लज्जा छोड़कर उसको गले लगाने के लिए हाथ पसारा तो जाग उठने से फिर उसको नहीं देखा। पर वह मोहनीरूप आँखों में बस रहा है, उसका नाम व घर मैं कुछ भी नहीं जानती।

चौ० वाकी छवि वरणी नहिं जाय। मेरो चित लै गयो चुराय॥
मन लाग्यो त्यहि सूरत माहीं। इक क्षण कबहूँ भूलत नाहीं॥

जब मैं कैलास पर्वत पर विद्या पढ़ती थी तब मुझे पार्वतीजी ने कहा था कि तेरा स्वामी तुझको स्वप्न में आकर मिलेगा। तू उसको ढुँढ़वा लेना। वही पति आज रात मुझे स्वप्न में मिला था, पर मैं उसे कहाँ ढुँढ़वाऊँ और अपना दुःख किसे सुनाऊँ।

दो० पड़ै नींद नयननहीं धरै नहीं चितचैन। वह मूरति सुखधाम की ढूँढति हौं दिन रैन॥

जब ऊषा ने अपना यह हाल कहकर ठण्डी श्वास लेने लगी तब चित्र रेखा ने कहा—हे प्यारी! अब तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारे चित्तचोर को जहाँ होगा वहाँ से लाकर मिला दूँगी। तुम मुझे आज्ञा दो तो तीनों लोकों में जितने सुन्दर पुरुष हैं सबकी तसवीर खींच-कर तुम्हें दिखला दूँ। तुम उनसे से अपने चित्तचोर को पहिचानकर मुझे बतला दो, फिर उसका ले आना मेरा काम है। यह बात सुनते ही ऊषा प्रसन्न होकर बोली—बहुत अच्छा, मैं अपने चित्तचोर को पहिचान लूँगी। यह बात सुनते ही चित्ररेखा ने गणेशजी व शारदा देवी को

मनाकर तसवीर खींचना आरम्भ किया। देवता व किन्नर आदि के करोड़ों चित्र खींचकर उसे दिखलाया जब ऊषा ने उनमें अपने चित्तचोर को नहीं पहिचाना तब उसने श्रीकृष्णजी व प्रद्युम्न की तसवीर लिखकर ऊषा को दिखलाया। वे दोनों चित्र देखते ही ऊषा इस तरह लज्जित हो गई जिस तरह स्त्री अपने श्वसुर आदि को देखकर लज्जित हो जाती है। वह चित्र रेखा से बोली कि मेरा चित्तचोर इन्हीं के वंश में होगा। यह वचन सुनते ही चित्ररेखा ने जैसे ही अनिरुद्ध की तसवीर खींचकर राजदुलारी को दिखलाई वैसे ही ऊषा अचेत हो गई। जब उसका चित्त ठिकाने हुआ तब चित्ररेखा से बोली कि स्वप्ने में यही पुरुष मेरा मन चुरा ले गया है, अब ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें यह मुझे मिले, नहीं तो मेरे प्राण इसके विरह में निकलना चाहते हैं। यह बात सुनकर चित्ररेखा बोली कि ऐ प्राणप्यारी! अब यह पुरुष मेरे हाथ से बचकर नहीं जा सकता। यह यदुवंशीकुल में श्रीकृष्णजी का पोता और प्रद्युम्न का बेटा अनिरुद्ध नाम द्वारकापुरी में रहता है। सुदर्शनचक्र के रक्षा करने से कोई मनुष्य, दैत्य व राक्षस श्रीकृष्णजी की आज्ञा बिना वहाँ जा नहीं सकता। यह बात सुनते ही ऊषा उदास होकर बोली—वहाँ का पहुँचना ऐसा कठिन है तो मेरे प्राणनाथ को किस तरह ले आवोगी। चित्ररेखा ने कहा कि तू चिन्ता न कर, मैं तेरे लिए एक बेर उपाय करती हूँ। जब ऐसा कहने के उपरांत चित्ररेखा चीलहरूप बनकर वहाँ से उड़ती हुई द्वारकापुरी के निकट पहुँची तब उसने क्या देखा कि सुदर्शनचक्र चारों ओर घूमकर उस पुरी की रक्षा करता है और उसकी आज्ञा के बिना द्वारकापुरी में कोई जा नहीं सकता। जब यह दशा देखकर वह खड़ी हो गई तब परमेश्वर की इच्छानुसार नारद मुनि ने वहाँ आकर चित्ररेखा से पूछा कि तू यहाँ किस वास्ते आई है। जब चित्ररेखा ने नारद मुनि को दण्डवत् करके अपने आने का सब कारण उनसे वर्णन किया तब नारद मुनि ने उसे एक मंत्र बतलाकर कहा कि तू साधु का वेष बनाकर द्वारका में जा तो सुदर्शनचक्र तुझे नहीं रोकेगा। जब ऐसा कहकर नारद मुनि चले गये तब चित्ररेखा ने उसी समय वैष्णव का रूप सांगोपांग बना

लिया और अँधियारी रात में श्यामघटा के साथ बिजली सी चमकती हुई द्वारकापुरी में चली गई। सुदर्शनचक्र ने वैष्णव समझकर नहीं रोका। वह ढूँढ़ती हुई अनिरुद्ध के महल में, जहाँ वह शय्या पर अकेला सोया हुआ स्वप्न में ऊषा के साथ विहार कर रहा था, जा पहुँची और उनको शय्या समेत उठाकर ले उड़ी। एक क्षण में उसका पलँग ऊषा के महल में ले जाकर रख दिया और ऊषा से बोली कि मैंने तुम्हारे चित्तचोर को यहाँ लाकर पहुँचा दिया, अब तुम इसके साथ विहार करो। ऊषा यह हाल देखकर चित्ररेखा के पाँव पर गिर पड़ी और हाथ जोड़कर कहने लगी कि तू धन्य है, जो मेरे चित्तचोर को क्षणभर में यहाँ लाकर अपना प्रण पूरा किया। मैं जन्म भर तेरा गुण न भूलूँगी। यह सुनकर चित्र-रेखा बोली कि संसार में परोपकार से उत्तम दूसरी बात नहीं होती। अब तुम अपने प्राणपति को जगाकर इच्छा पूरी करो। ऐसा कहकर चित्र-रेखा अपने घर चली गई और ऊषा डर व लज्जा से मन में कहने लगी कि किस तरह इनको जगाकर अपना मनोरथ पूर्ण करूँ। फिर कुछ सोच-विचारकर जब राजकुमारी मीठे स्वरों से बीन बजाने लगी तब अनिरुद्ध ने जागकर चारों ओर देखा तो अपने को दूसरे स्थान में पाकर मन में कहा कि मुझको यहाँ कौन पलँग समेत ले आया।

दो० पहिले श्रीप्रद्युम्न की सुनी हती उन बात। ताही विधि मोको भयो जानो कछु उत्पात॥

अनिरुद्ध तो यह सोच-विचार कर रहा था और ऊषा अपने प्राणनाथ को जागते देखकर उनका रूपरस आँखों की राह पीने लगी। अनिरुद्ध ने उस सुन्दरी को देखकर कहा—हे प्राणप्यारी! तुम कौन हो, मुझे क्यों यहाँ उठा ले आई हो। जब ऊषा इस बात का कुछ उत्तर न देकर लज्जा से कोने में सिमिट गई तब अनिरुद्ध ने उसका हाथ पकड़कर अपनी शय्या पर बैठा लिया और प्रेमभरी बातें कहकर उसकी लज्जा छुड़ा दिया। जब दोनों ने आपस में गन्धर्व विवाह करके अपने मन की इच्छा पूरी की तब अनिरुद्ध ने ऊषा से हँसकर पूछा—हे प्राणप्यारी! तूने मुझे किस तरह देखकर यहाँ मँगाया? यह सुनकर ऊषा बोली कि मैं तुम्हें स्वप्न में देखकर अति मोहित हो गई थी सो चित्ररेखा तुम्हारे विरह में मुझे व्याकुल देख-

कर न मालूम तुमको यहाँ किस तरह ले आई। यह बात सुनकर अनिरुद्ध बोले कि हे प्राणप्यारी! आज मैं भी तुझे स्वप्न में देखकर तेरे साथ विहार कर रहा था, सो न मालूम कौन मुझे यहाँ उठा लाया। जब मैं वीणा का शब्द सुनकर जागा तब तुझे देखा। जब इसी तरह सुख व विलास करते हुए सबेरा हो गया तब ऊषा ने अनिरुद्ध को अपनी सखी व सहेलियों से छिपाकर कहीं अलग रक्खा और उसकी सेवा आप करने लगी। कई दिन बीतने पर अनिरुद्ध का हाल सब सहेलियों को प्रकट हो गया। ऊषा उन्हें छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन खिलाकर उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाने लगी।

दो० मैनपुत्र सुखदैन का प्रेम लगै दिन रैन। काम कलोल करैं सदा बोलत अमृत बैन ॥

एक दिन ऊषा व अनिरुद्ध आपस में चौपड़ खेल रहे थे उसी समय ऊषा की माता अपनी कन्या को देखने आई तो अनिरुद्ध की सुन्दरता देखते ही अति प्रसन्न होकर दबे पाँव फिर गई और ऊषा व अनिरुद्ध यह भेद न जानकर ज्यों के त्यों खेलते रहे। चार महीने अनिरुद्ध के रहने का हाल छिपा रहा। एक दिन ऊषा ने अनिरुद्ध को सोया हुआ देखकर यह बिचारा कि मेरे बाहर न जाने से सब लोग सन्देह करेंगे। ऐसा विचार-कर ऊषा अपने रंगमहल का द्वार खोलकर बाहर निकली और क्षण भर में फिर बन्द करके भीतर चली गई। यह देखकर उस महल के चौकीदारों ने आपस में कहा कि देखो भाई आज क्या कारण है जो राजकन्या इतने दिनों पर बाहर निकलकर फिर उलटे पैर महल में चली गई। यह बात सुनकर दूसरा द्वारपालक बोला कि मैं कई दिन से ऊषा का रंगमहल आठों पहर बन्द देखकर वहाँ किसी पुरुष के बोलने व चौपड़ खेलने का शब्द सुनता हूँ। यह सुनकर दूसरे ने कहा कि यह बात सच है तो चलो बाणासुर से कह दें। दूसरा बोला कि राजकन्या की चुगली खाना न चाहिए, चुपचाप बैठे रहो, होनेवाली बात आप प्रकट हो जायगी। जिस समय द्वारपालक आपस में यह चर्चा कर रहे थे उसी समय राजा बाणासुर अनेक शूरवीरों समेत टहलता हुआ वहाँ आ निकला और महादेवजी की दी हुई ध्वजा महल पर न देखकर चौकीदारों से उसका हाल पूछा तो द्वारपालकों ने कहा कि महाराज! बहुत दिन हुए वह ध्वजा आपसे टूट-

कर गिर पड़ी। यह बात सुनते ही बाणासुर प्रसन्न होकर शिवजी का वचन याद करके बोला कि ध्वजा गिरने से मालूम होता है कि मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ। यह वचन बाणासुर के मुख से निकलते ही एक चौकीदार ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे पृथ्वीनाथ! राजकन्या के महल में कई दिन से एक पुरुष के हँसने व बोलने का शब्द सुनता हूँ पर यह नहीं जानता कि वह कौन है और किस राह से आया। यह सुनते ही बाणासुर क्रोधित होकर शस्त्र लिये हुए दबे पाँव ऊषा के महल में चला गया तो क्या देखा कि एक पुरुष श्यामरंग अति सुन्दर ऊषा के पास पलँग पर सो रहा है। उसका रूप देखते ही बाणासुर ने प्रसन्न होकर कहा कि यह ऊषा के ब्याह करने योग्य है, पर इस बात की लज्जा समझकर महल से बाहर चला आया और अपने साथियों से बोला कि मेरा शत्रु अभी सो रहा है। सोते हुए को मारना न चाहिए तुम लोग यह महल घेरे खड़े रहो जिसमें वह भाग न पावे। जब सोकर उठे तब मुझसे आकर कहना। यह आज्ञा देकर बाणासुर अपनी सभा में चला आया और बहुतसी सेना ऊषा का मकान घेरने के लिए भेजकर उनसे कहा कि तुम लोग चलो मैं भी वहाँ आता हूँ। उसकी आज्ञा पाते ही हजारों योद्धाओं ने जाकर ऊषा का रंगमहल घेर लिया। अनिरुद्ध और ऊषा जागकर आपस में चौपड़ खेलने लगे। एक चौकीदार ने जाकर बाणासुर से कहा कि तुम्हारा शत्रु नींद से जागा है। यह समाचार पाते ही उसने तलवार व त्रिशूल लिये हुए ऊषा के द्वारे पर आकर ललकारा—तू कौन चोर राजमन्दिर में घुसा है, जल्दी निकलकर मेरे सामने आ तो तुझे दण्ड दूँ। अब तू यहाँ से जीता बचकर अपने घर जा नहीं सकता। जब ऊषा ने बाणासुर का शब्द सुना तब डरती व काँपती हुई अनिरुद्ध से बोली—हे प्राणनाथ! मेरा पिता बहुत दैत्यों को साथ लेकर तुमको पकड़ने के लिए आया है, अब तुम उसके हाथ से किस तरह बचोगे। यह बात सुनते ही अनिरुद्ध ऊषा को धैर्य देकर बोले—हे प्राणप्यारी! तुम देखती रहो मैं एक क्षण में सब दैत्यों को मार डालूँगा। ऐसा कहकर जैसे ही अनिरुद्ध ने कुछ मंत्र पढ़ा वैसे ही एक सौ आठ हाथ का पत्थर उनके पास आ पहुँचा। अनिरुद्धजी ने

वह शिला हाथ में ली और बाहर निकलकर बाणासुर को ललकारा। वह अपने शूरवीरों समेत इस तरह अनिरुद्ध पर झपटा जिस तरह शहद की मक्खियाँ छत्ता उड़ानेवाले पर झुण्ड का झुण्ड झपटती हैं।

दो० तिन्हें देखि कोपे तभी महाबली अनिरुद्ध। उन सों औ योधान सों भयो परस्पर युद्ध ।।

जब बाणासुर की आज्ञा पाकर सब दैत्य अपना-अपना शस्त्र अनिरुद्ध पर चलाने लगे तब उन्होंने क्रोधित होकर उसी शिला से दैत्यों को मारना आरम्भ किया। उसकी चोट से बहुत दैत्य मर गये, कुछ घायल होकर गिर पड़े और बाकी अपने प्राण लेकर भाग गये। जब बाणासुर ने देखा कि यह पुरुष महाबली है, इसने मेरी सब सेना मारकर हटा दी तब उसने नागफाँस, जो महादेवजी ने उसे दी थी, फेंककर अनिरुद्ध को फाँस लिया और उसी तरह बाँधे हुए अपनी सभा में ले जाकर कहा—हे बालक! अब तेरा प्राण लूँगा, जो तेरा सहायक हो उसको अपनी रक्षा के लिए बुला। अनिरुद्ध ने यह सुनकर विचारा कि मैं अपने बल से नागफाँस को तोड़कर बाहर निकल जाऊँ तो शिवजी का अपमान होगा, इसलिए मुझे दुःख हो तो कुछ चिन्ता नहीं, पर महादेवजी का वचन झूठा न करना चाहिए, जो परमेश्वर की इच्छा होगी सो होगा। इधर अनिरुद्ध पड़ा हुआ अनेक तरह के सोच-विचार कर रहा था और उधर ऊषा उसका समाचार पाते ही व्याकुल होकर चित्ररेखा से बोली—हे सखी! ऐसे जीने पर धिक्कार है, जो मेरा प्राणप्यारा दुःख उठावे और मैं सुख से रहूँ! मेरे प्राण निकल जावें तो अच्छा है। जब ऐसा कहकर ऊषा अति विलाप करने लगी तब चित्ररेखा उसे धैर्य देकर बोली कि तू कुछ चिन्ता मत कर, तेरे पति का कोई कुछ नहीं कर सकता। अभी श्याम व बलरामजी यदुवंशियों को साथ लेकर शोणितपुर में आवेंगे और सब दैत्यों को मारकर तुझे अनिरुद्ध समेत द्वारकापुरी को ले जायँगे। वे जिस राजकन्या को सुन्दरी सुनते हैं उसे बिना ले गये नहीं रहते। अनिरुद्ध उन्हीं श्रीकृष्णजी का पोता है, जो कुण्डिनपुर से शिशुपाल व जरासंध आदि बड़े-बड़े प्रतापी राजाओं को जीतकर राजा भीष्मक की बेटी रुक्मिणी को हर ले गये थे। चित्ररेखा की यह बात

सुनकर ऊषा बोली—हे सखी! अपने प्राणनाथ को नागफाँस में बँधे सुनकर मेरा कलेजा जला जाता है। मुझे खाना-पीना और सोना-बैठना कुछ अच्छा नहीं लगता। बाणासुर चाहे मुझको भी अनिरुद्ध के साथ मार डाले तो अच्छा है, पर इस महादुःख में मुझसे उनका साथ छोड़ा नहीं जाता। ऐसा कहकर ऊषा महल से बाहर चली गई और लज्जा छोड़कर राजसभा में अनिरुद्ध के पास जा बैठी। यह हाल सुनते ही बाणासुर ने अपने बेटे स्कन्द को बुलाकर कहा कि तुम अपनी बहिन को यहाँ से ले जाकर घर में बैठा रक्खो, उसको बाहर मत निकलने दो। यह वचन सुनते ही स्कन्ध ने ऊषा के पास जाकर क्रोध से कहा कि तूने लोकलाज छोड़कर अपने माता-पिता का नाम डुबाया। मैं तुझे अभी मार डालता, पर क्या करूँ, पाप होने को डरता हूँ। ऊषा ने उत्तर दिया—हे भाई! जो चाहो सो कहो और करो, मैंने तो पार्वतीजी के वरदान से यह पति पाया है, अब इनको छोड़कर दूसरे से विवाह करूँ तो संसार में अपने को कलंक लगाऊँ। विधाता ने जो वर मेरे भाग्य में लिख दिया था वह मुझे मिला। इनके साथ चाहे मेरा भला हो या बुरा इनके सिवा मैं दूसरे को नहीं चाहती। जब स्कन्द ने ऊषा की यह बात सुनी तब बरजोरी उसका हाथ पकड़कर महल में ले गया और उस पर चौकी पहरा रखकर फिर उसे अनिरुद्ध के पास जाने नहीं दिया। अनिरुद्ध को वहाँ से दूसरे मकान में ले जाकर हथकड़ी व बेड़ी डालकर कैद रक्खा। इधर तो अनिरुद्धजी ऊषा के विरह में व्याकुल रहने लगे और उधर ऊषा ने भी उनके विरहसागर में डूबकर खाना-पीना छोड़ दिया। जब कई दिन उपरांत अनिरुद्ध ने चित्ररेखा का कहना याद करके नारद मुनि का ध्यान किया तब नारदजी ने उसी समय पहुँचकर अनिरुद्ध से कहा—हे बेटा! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, श्रीकृष्णजी आनन्दकन्द व बलरामजी यदुवंशियों समेत यहाँ आकर तुझे छुड़ा ले जायँगे। अनिरुद्ध को ऐसा धैर्य देने के उपरान्त नारद मुनि ने बाणासुर से जाकर कहा कि हे राजन्! जिसको तुम बाँध-कर अपने यहाँ कैद रक्खे हो वह अनिरुद्ध नामक प्रद्युम्न का बेटा और

श्रीकृष्णजी का पोता है। तुम यदुवंशियों का प्रताप अच्छी तरह जानते हो, जैसा उचित हो वैसा करो मैं तुम्हारे कल्याण के लिए यह कहने आया हूँ। बाणासुर यह वचन सुनकर अभिमान से बोला—हे मुनिनाथ ! मैं सबको जानता हूँ, तुम्हारे आशीर्वाद से उन्हें देख लूँगा। नारद मुनि उसका कुछ उत्तर न देकर वहाँ से चले गये।

तिरसठवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर और बाणासुर का युद्ध।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! जब अनिरुद्ध को चार महीने से अधिक हो गये और उनका पता नहीं मिला तब एक दिन प्रद्युम्न आदि यदुवंशी श्याम व बलराम के पास बैठकर बड़ी उदासी से अनिरुद्ध की चर्चा करने लगे। मुरलीमनोहर ने सब वृत्तान्त जानने पर भी उनका कुछ हाल अपने बेटे व पतोहू से नहीं बतलाया। परन्तु उनकी इच्छा से उसी समय नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। उनको देखते ही सब छोटे-बड़ों ने दण्डवत् करके सम्मानपूर्वक बैठाया। तब नारदजी ने प्रद्युम्न आदि को उदास देखकर पूछा कि आज तुम लोग मलीन क्यों दिखलाई देते हो ? यह बात सुनते ही श्रीकृष्णजी ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे मुनिनाथ ! आप चारों ओर घूमते हैं। कुछ हाल अनिरुद्ध का मालूम हो तो बतलाइए जिसमें हम लोगों का सोच छूट जाय। उसको पलँग समेत कोई उठा ले गया उसका कुछ पता नहीं लगता यह वचन सुनकर नारद मुनि बोले कि तुम लोग चिन्ता मत करो अनिरुद्धजी शोणितपुर में जीते हैं। उन्होंने वहाँ जाकर बाणासुर की बेटी से भोग किया था, इसी वास्ते राजा ने नागफाँस से उनको बाँधकर अपने यहाँ कैद रक्खा है। बिना युद्ध किये अनिरुद्ध को नहीं छोड़ेगा उसका ठिकाना हमने तुमसे बतला दिया आगे जैसा उचित जानो वैसा करो। जब नारदमुनि यह कहकर ब्रह्मलोक को चले गये तब श्याम व बलराम ने राजा उग्रसेन के पास जाकर सब हाल वर्णन किया। राजा बोले कि तुम हमारी सब सेना अपने साथ लेकर अभी शोणितपुर को जावो और जिस तरह बन पड़े उस तरह अनिरुद्ध

को मेरे पास अभी ले आवो। यह आज्ञा पाते ही श्यामसुन्दर प्रद्युम्न समेत गरुड़ पर बैठकर शोणितपुर को चले और बलरामजी ने बारह अक्षौहिणी सेना साथ लेकर शोणितपुर पर चढ़ाई की उस समय ऐसी शोभा उनकी मालूम देती थी जिसका हाल तुमसे कहाँ तक वर्णन करूँ। बलदाऊजी राह में बाणासुर के सब किला व नगर तोड़ते व लूटते हुए शोणितपुर में पहुँचे और श्यामसुन्दर व प्रद्युम्न भी उनसे आ मिले। बाणासुर के सेवक ने दैत्यसंहारण की सेना देखते ही अपने स्वामी के पास जाकर विनय किया—महाराज! श्याम व बलराम तुम्हारा नगर लूटते व उजाड़ते हुए बड़ी भारी सेना साथ लेकर चढ़ आये हैं और शोणितपुर को उन्होंने चारों ओर से घेर लिया है। अब तुम्हारी क्या आज्ञा होती है। यह वचन सुनते ही बाणासुर ने अपने सेनापतियों को आज्ञा दी कि तुम लोग अपने शूरवीरों को साथ लेकर श्रीकृष्णजी के सम्मुख जाकर खड़े हो, मैं भी पीछे से आता हूँ। यह वचन सुनते ही बाणासुर का मन्त्री बारह अक्षौहिणी सेना लेकर नगर से बाहर निकला और बाणासुर भी शिवजी की पूजा व ध्यान करके अपनी सेना में आ मिला। बाणासुर के ध्यान करते ही महादेवजी को मालूम हुआ कि इस समय मेरे भक्त पर कुछ दुःख पड़ा है, इसलिए वहाँ चलकर उसकी सहायता करनी चाहिए। ऐसा विचारकर भोलानाथ ने पार्वती को कैलाश पर्वत पर अकेली छोड़ दी और आप जटा बाँधने व विभूति लगाने के उपरान्त भाँग व धतूरा खाकर श्वेत नागों का जनेऊ व मुण्डमाला पहिन लिया व बाघम्बर ओढ़कर त्रिशूल व धनुषबाण व खप्पर हाथ में ले लिया और नन्दी बैल पर बैठकर भूत व प्रेत व पिशाचादिकों को साथ लिये हुए शोणितपुर को चले। जब भोलानाथ कानों में गजमुक्ता व मुद्रा डाले व मस्तक पर चन्द्रमा व शिर पर गंगाजी धारण किये व लाल-लाल नेत्र निकाले गाते-बजाते अपनी सेना को नचाते हुए बाणासुर के निकट क्षणभर में आ पहुँचे तो उनको देखते ही बाणासुर चरणों पर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर बोला—हे कृपानिधान! इस महाकष्ट में आपके बिना कौन मेरी सुधि ले। तुम्हारे प्रताप के सामने यादव लोग अब मेरा क्या कर सकते

हैं। यह बात शिवजी से कहकर बाणासुर ने श्याम व बलराम की सेना में कहला भेजा कि हमारा तुम्हारा अकेला धर्मयुद्ध हो। यह बात वैकुंठ-नाथ ने मानकर एक-एक मनुष्य का युद्ध दोनों ओर से ठहराया। श्याम-सुन्दर व भोलानाथ से और बाणासुर व सात्यकी से युद्ध होने लगा।

दो० स्वामिकार्त्तिक अति बली जिनको जगमें नाम। तिनसों औ प्रद्युम्नसों होन लग्यो संग्राम॥

बलरामजी व कुम्भाण्डमन्त्री से, बाणासुर के बेटे स्कन्द व मुरली-मनोहर के पुत्र चारुदेष्ण से और बाणासुर के दूसरे मन्त्री कुम्भकर्ण व साम्ब से युद्ध हुआ। जब इसी तरह सब शूरवीर अपनी-अपनी जोड़ी से अनेक शस्त्र लेकर लड़ने लगे, दोनों सेना में मारू बाजा बजने लगा, ब्रह्मादिक देवता अपने-अपने विमानों पर बैठकर युद्ध देखने के लिए आये तब शिवजी ने जैसे ही पिनाक धनुष पर ब्रह्मबाण रखकर चलाया वैसे ही द्वारकानाथ ने शार्ङ्ग कमान से तीर मारकर उनका बाण काट डाला। जब शिवजी ने बाण चलाकर बड़ी आँधी प्रकट की तब वृन्दावन-विहारी ने अपनी महिमा से उस आँधी को मिटा दिया। फिर कैलास-पति ने यादववंशियों की सेना में अग्निबाण चलाया तो श्यामसुन्दर ने जल बरसाकर उस बाण की अग्नि बुझा दी और एक बाण अग्नि के समान ऐसा छोड़ा कि महादेव की सेना में सबका शरीर मूँछ-दाढ़ी समेत जलने लगा। तब भोलानाथ ने अपनी महिमा से पानी बरसाकर जले व अधजले भूत व प्रेतों को ठण्ढा किया और क्रोधित होकर नारायणी बाण चलाने के लिए तरकस से बाहर निकाला। फिर कुछ सोच-विचार कर रख दिया। उस समय दैत्यसंहारण आलस्य बाण छोड़कर शत्रु की सेना को इस तरह काटने लगे जिस तरह किसान लोग जुआर का खेत काट डालते हैं। यह दशा देखकर जब महादेवजी ने तीन बाण श्याम-सुन्दर पर चलाये तब लक्ष्मीपति ने उन तीरों को भी काटकर एक तीर ऐसा मारा कि जिसके लगने से शिवजी गिर पड़े और जमुहाई लेने लगे।

दो० बाणासुरकेकाजशिव कीन्ह्यो बहुत उपाय। माखनप्रभु भगवानसेकिहिविधिजीतो जाय॥

जब स्वामिकार्त्तिक ने बड़ा भारी युद्ध प्रद्युम्न से किया तब प्रद्युम्नजी ने तीन बाण उस मुरैले के, जिस पर स्वामिकार्त्तिक चढ़े थे, ऐसे मारे

कि वह मुरैला रणभूमि छोड़कर आकाश में उड़ गया। जब स्वामिकार्त्तिक आकाश से यदुवंशियों को तीर मारने लगे तब प्रद्युम्नजी ने मुरलीमनोहर से आज्ञा लेकर मारे तीरों के उस मुरैले को स्वामिकार्त्तिक समेत पृथ्वी पर गिराकर अचेत कर दिया। बलरामजी व साम्ब ने बाणासुर के दोनों मन्त्री मार डाले। यह दशा देखते ही बाणासुर सात्यकी से लड़ना छोड़ कर केशवमूर्ति के सामने आया और पाँचसौ कमान जो अपने हाथ में लिये था दो दो बाण एक एक धनुष पर रख कर सावन भादों की बूँदों के समान श्यामसुन्दर पर बरसाने लगा। उस समय वैकुण्ठनाथ ने अपने तीर से उसके सब बाण काटकर एक ऐसा तीर मारा कि बाणासुर के पाँचसौ कमान कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े और उसका सारथी घोड़ों समेत मर गया। यह दशा देखते ही जब बाणासुर रणभूमि छोड़कर पैदल भागा और दैत्यसंहारण ने अपना रथ उसके पीछे दौड़ाकर पांचजन्य शंख विजय का बजाया तब बाणासुर की माता कोटरा बेटे के भागने का हाल सुनकर अपने पुत्र को बचाने के लिए राजमन्दिर से नंगे पैर दौड़ती हुई रणभूमि में आई।

दो० तुरत आइ ठाढ़ी भई माखनप्रभु के तीर। पुत्रहेतु व्याकुल महा कीन्हे नग्न शरीर ॥

नंगी स्त्री का देखना मना है। धर्मशास्त्र में लिखा है कि एक बेर पर स्त्री को नंगी देखकर जब तक तीन बेर कड़वे तेल से आँखें न धोवे तब तक उसका दोष नहीं छूटता, इसलिए श्रीकृष्णजी ने कोटरा को नंगी देखना उचित न जानकर अपना शिर नीचे करके आँखें बन्द कर लिया। तब बाणासुर भागकर नगर में चला आया और फिर एक अक्षौहिणी सेना लेकर वसुदेवनन्दन के सामने लड़ने गया। जब कोटरा अपने बेटे को सेना समेत देखकर राजमन्दिर पर चली गई और दैत्यसंहारण ने एक क्षण में बाणासुर की वह सेना भी मार डाली तब बाणासुर भागकर शिवजी की शरण में गया। भोलानाथ ने अपने भक्त को अति व्याकुल व आरत देखा तो क्रोधित होकर विषमज्वर काला रंग जिसके तीन शिर व तीन पैर व तीन आँखें व छः हाथ थे, श्यामसुन्दर की सेना में छोड़ा। जब वह तप बड़े तेज से द्वारकानाथ की सेना में

आकर सबको जलाने लगा तब प्रद्युम्न व सात्यकी आदि यदुवंशी लोग उसके भय से थरथर काँपते व जलते हुए साँवली सूरति के पास जाकर बोले—महाराज! शिवजी के तप ने हम लोगों को जलाकर मरणतुल्य कर दिया, इसके हाथ से प्राण बचाइए, नहीं तो क्षणभर में सब लोग मरने चाहते हैं। यह दशा देखकर श्यामसुन्दर ने शीतज्वर को जैसे ही छोड़ दिया वैसे ही दोनों तप आपस में लड़ने लगे। जब शीतज्वर को अग्नि तप उठा नहीं सका तब अपने प्राण के भय से भागा हुआ महादेव के पास जाकर बोला—हे दीनानाथ! मुझे अपनी शरण में रखिए, नहीं तो शीतज्वर मेरा प्राण लिया चाहता है। यह सुनकर भोलानाथ ने कहा कि श्यामसुन्दर के सिवा दूसरा कोई ऐसा त्रिभुवन में नहीं है जो इस तप से तेरे प्राण बचा सके, इसलिए उन्हीं की शरण में जा, वही भक्तहितकारी दयालु होकर तुझे बचावेंगे। यह वचन सुनते ही अग्नितप श्रीकृष्णजी के चरणों पर गिर पड़ा और अधीनता से विनय किया कि हे कृपासिंधु! पतितपावन! मेरा अपराध क्षमा करके अपने तप के हाथ से प्राण बचाइए। आपका आदि-अन्त कोई नहीं जानता। तुम्हारा नाश कभी नहीं होता। तुमने ब्रह्मा व महादेव आदि सब देवतों के ईश्वर होकर अपनी इच्छा से हरिभक्तों को सुख देने और अधर्मियों को मारकर पृथ्वी का बोझा उतारने के लिए अवतार लिया है। ऋषीश्वर व योगी लोग तुम्हारे स्मरण व ध्यान के प्रताप से जो कुछ शुभ व अशुभ किसी को कहते हैं वह बात उसी समय हो जाती है, पर वे लोग भी तुम्हारा भेद नहीं जानते। आप सब लीला संसारी जीवों को भवसागर पार उतारने के लिए करते हैं। आप लक्ष्मीपति व सबसे उत्तम होकर तीनों लोकों को उत्पन्न, पालन व नाश करनेवाले हैं।

दो० माखनप्रभु भगवान की अस्तुति कही न जाय। सर्व रूप सर्वातमा सब घट रह्यो समाय॥

हे दीनानाथ! आप जिस तरह शरण आये पर दयालु होकर अपराध क्षमा करते हैं उसी तरह मुझे बड़ा दुःखी व दीन जानकर शीतज्वर के हाथ से मेरे प्राण बचाइए। तीनों लोकों में तुम्हारे सिवा कोई दूसरा मुझे अपनी रक्षा करनेवाला दिखलाई नहीं देता।

दो० माखनप्रभु करतार की महिमा अमित अपार। तप्तशीत व्यापै तहाँ जहाँ न नामतुम्हार॥

यह दीन वचन सुनकर वसुदेवनन्दन ने कहा कि अब मेरी शरण में आने से तेरा प्राण बचा और तेरा अपराध मैंने क्षमा किया, पर आज से हमारे सेवक व हरिभक्तों को कभी दुःख न देना। जो कोई यह कथा मेरी व तेरी सच्चे मन से कहे व सुनेगा उसको किसी तरह का तप हो तो छूट जायगा। अब महादेवजी के पास चला जा। यह बात सुनते ही अग्निज्वर श्यामसुन्दर से विदा होकर भोलानाथ के पास चला आया। यदुवंशी लोग अच्छे हो गये। बाणासुर जो भाग गया था, फिर अनेक शस्त्र अपने हजार हाथ में लेकर श्यामसुन्दर के सम्मुख आया और ललकारकर कहने लगा कि अभी तक युद्ध करने से मेरा मन नहीं भरा, तुम सावधान होकर मेरे साथ लड़ो। जब वह अभिमानी ऐसा कहकर मुरलीमनोहर पर शस्त्र चलाने लगा तब दैत्यसंहारण ने क्रोधित होकर सुदर्शनचक्र से कहा कि चार हाथ बाणासुर के छोड़कर और सब भुजाएँ काट डालो। यह आज्ञा पाते ही सुदर्शनचक्र बाणासुर की भुजाएँ इस तरह काटकर गिराने लगा जिस तरह कोई मनुष्य क्षण भर में वृक्ष की पतली-पतली डाली काट डालता है। जब बाणासुर की यह दशा होकर उसके अंग से नदीरूपी लोहू बहने लगा तब उसने लज्जित होकर शिवजी से विनय किया कि हे भोलानाथ! मैंने अपने अभिमान का दण्ड पाया, अब तुम्हारे सिवा कोई दूसरा मेरे प्राण बचा नहीं सकता। यह दीन वचन सुनकर महादेवजी ने विचारा कि अब इसका गर्व टूट गया, इसलिए अपने भक्त के प्राण बचाना चाहिए। ऐसा विचारते ही कैलासपति बाणासुर को साथ लेकर वेदस्तुति करते हुए द्वारकानाथ के पास गये और बाणासुर को उनके चरणों पर गिरा दिया।

दो० हाथ जोड़ ठाढ़े भये हरि के सम्मुख जाय। बाणासुर के काज शिव स्तुति करें सुनाय॥

हे दीनदयालु! त्रिलोकीनाथ! तुम जड़ व चैतन्य के मालिक होकर सब जीवों की उत्पत्ति व पालन व नाश करते हो। तुम्हारी लीला व कामों की कोई गिनती नहीं कर सकता। तुम केवल पृथ्वी का भार उतारने, हरिभक्तों को सुख देने और अधर्मियों को मारने के लिए अपनी

इच्छा से सगुण अवतार लेते हो। तुम्हारे विराट्रूप में चौदहों लोकों का व्यवहार रहता है, मैं उस रूप को दण्डवत् करता हूँ।

दो०तुम्हरीशक्ति अनन्तहै अन्त न पाया जाय। प्रकट गुप्त देखतसदा रह्यो विश्वभरि छाय॥

जिसने संसार में मनुष्य तनु पाकर तुम्हारा स्मरण नहीं किया उसने अमृत छोड़कर विष पिया। जिस तरह सूर्य बदली में छिपे रहते हैं उसी तरह तुम अपने को संसार में छिपाकर मनुष्य के समान लीला करते हो, जो मनुष्य तुम्हारा ध्यान छोड़कर संसारी जाल में फँसता है उसे बड़ा मूर्ख समझना चाहिए। हम, ब्रह्मा और इन्द्रादिक देवता तुम्हारे दास होकर तुम्हारा भेद नहीं जान सकते। संसारी मनुष्य को क्या सामर्थ्य है जो तुम्हें पहिचान सके। जिस पर तुम दयालु होकर अपने ध्यान व पूजा की राह दिखलाते हो वह तुम्हारी महिमा कुछ जानकर सत्संग करने से भवसागर पार उतर सकता है।

दो०जैसे बूड़त जल विषे शीश निकालै कोय। श्वास लेत ही एक क्षण महाचैन सुख होय॥

हे महाप्रभु! जिस तरह डूबता हुआ मनुष्य श्वास लेने से सुख पाता है उससे अधिक आनन्द हरिभजन में समझना चाहिए, परन्तु हरिभजन में चित्त लगाना बहुत कठिन है। संसारी जीव झूठे माया-मोह में ऐसे फँस रहे हैं कि उनका मन तुम्हारी ओर एक क्षण नहीं लगता। उनमें जो कोई संसारी सुख चाहने के लिए तुम्हारा भजन व ध्यान करता है, उसे हम व ब्रह्मा वरदान देते हैं, पर उसका मनोरथ पूर्ण होना व हमारा वचन सच करना तुम्हारे अधीन रहता है। हे कृपासिन्धु! किसी को ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो तुम्हारी अपरम्पार महिमा का गुण वर्णन कर सके। बाणासुर ने अज्ञान के कारण तुमसे शत्रुता की है, अब मुझे आपके पास सिफारिश करने के लिए ले आया है, सो मुझ पर दयालु होकर इसका अपराध क्षमा कीजिए और इसको अपने भक्त प्रह्लाद के कुल में जानकर अभयदान दीजिए।

दो०आज्ञा कीजै चक्र को माखनप्रभु व्रजनाथ। और भुजा सब काटिकै राखै चारौं हाथ॥

जब महादेवजी ने इस तरह विनयपूर्वक श्यामसुन्दर की स्तुति की तब वसुदेवनन्दन हँसकर बोले—हे भोलानाथ! मेरे तुम्हारे में भेद समझने

वाला मनुष्य अवश्य नरक भोगेगा। तुम्हारा ध्यान करनेवाला अंत समय मुझे पावेगा। तुम्हारे कहने से हमने बाणासुर को चतुर्भुजीरूप बनाया। जिसको तुमने वरदान दिया उसका निर्वाह मैंने किया और सदा करूँगा।

दो०आयसु दीन्ही चक्रको ऐसी विधि हरिनाथ। बाणासुर भुज काटिकै राखो चारों हाथ॥

हे कैलासपति! मैंने बाणासुर के परदादा प्रह्लादभक्त से यह प्रतिज्ञा की थी कि तेरे वंश को अभयदान किया, इसलिए तुम न कहते तो भी इसका प्राण न लेता, पर बाणासुर अति अभिमान करके किसी को अपने तुल्य नहीं समझता था, इसलिए मैंने उसकी सब भुजाएँ काटकर उसे चतुर्भुजी बना दिया और उसके सब अपराध क्षमा करके तुम्हारा पार्षद उसे किया। यह वचन सुनते ही शिवजी प्रसन्न होकर कैलास पर्वत पर चले गये। तब बाणासुर ने हाथ जोड़कर विनय की—हे वैकुण्ठनाथ! जिस तरह आपने कृपा करके अपना दर्शन दिया उसी तरह अपने चरणों से मेरा घर पवित्र कीजिए और अनिरुद्ध को ऊषा से विवाह कर अपने साथ ले जाइए। यह बात सुनकर जब वृन्दावनविहारी भक्तहितकारि प्रद्युम्न समेत बाणासुर के घर चले तब वह बड़े हर्ष से पीताम्बर राह में बिछाता हुआ द्वारकानाथ को राजमन्दिर पर ले जाकर जड़ाऊ सिंहासन पर बैठाया, उनके चरण धोकर चरणामृत लिया और हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनानाथ! जिन चरणों का दर्शन ब्रह्मा व महादेव आदि देवता व सनकादिक ऋषीश्वरों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता उन चरणों के धोने से आज मैं अपने परिवार समेत कृतार्थ हुआ। हे महाप्रभु! इन्हीं चरणों को धोकर ब्रह्मा ने वह जल अपने कमण्डलु में रक्खा, महादेवजी ने वही जल अपने शिर पर चढ़ाया और भगीरथ ने बड़ी तपस्या से अपने पुरुषों को तारने के लिए मर्त्यलोक में लाकर संसारी जीवों का उद्धार किया। संसार में वही जल गंगाजी के नाम से प्रसिद्ध हुआ, उनका दर्शन, स्नान व जलपान करने से अनेक जन्म के पाप छूटकर संसारी मनुष्य मुक्ति पाते हैं। यह स्तुति करके बाणासुर ने ऊषा को राजमन्दिर से बुला भेजा और अनिरुद्ध की बेड़ी व हथकड़ी काटकर उसे स्नान कराया। अच्छे-अच्छे भूषण व वस्त्र पहिना-

कर विधिपूर्वक अनिरुद्ध का विवाह किया और बहुतसा सोना, चाँदी, कपड़ा, बरतन, गहना, गौ, रथ, हाथी, घोड़ा जिसकी कुछ गिनती नहीं हो सकती, दहेज में देकर द्वारकानाथ को ऊषा व अनिरुद्धसमेत बिदा किया। तब श्यामसुन्दर ने बाणासुर को धैर्य देकर अपनी ओर से राजगद्दी पर बैठा दिया और दुल्लह-दुलहिन को साथ लेकर आनन्द से द्वारका को चले। उनका समाचार पाते ही यदुवंशी लोग आगे आकर मंगलाचार करते हुए राजमन्दिर पर लिवा लाये। रुक्मिणीजी अपने कुलानुसार रीति व रस्म करके अनिरुद्ध को दुलहिन समेत महल में ले गईं। सब द्वारकावासियों ने घर-घर मंगलाचार मनाया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जो कोई नित्य प्रातःसमय इस अध्याय का ध्यान व स्मरण किया करे वह युद्ध में अपने शत्रु से कभी नहीं हारेगा।

दो०यह लीला अद्भुत महा कहै सुनै जो कोय। लहै सदा सुख सम्पदा ज्वर की व्यथा न होय॥

—:०:—

चौंसठवाँ अध्याय।

राजा नृग की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! नागकुल में नृग नाम का राजा बड़ा प्रतापी व धर्मात्मा होकर असंख्य गौ विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान देता था। कोई चाहे तो गंगा की रेणुका व वर्षा की बूँदें व आकाश के तारे गिन ले पर उसके गोदान की गिनती करना बहुत कठिन है। ऐसा धर्मात्मा राजा अनजान में थोड़ा पाप करने से गिरगिट हो गया था। उसको श्यामसुन्दर ने अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने विनय किया—हे मुनिनाथ! ऐसा धर्मात्मा राजा कौन अपराध करने से इस दशा को पहुँचा, उसकी कथा कहिए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! राजा नृग नित्य नियम करके प्रतिदिन हजारों गौ विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान देकर भोजन करता था। एक दिन कोई गौ उसकी दान दी हुई भागकर बिना दान की हुई गौवों में मिल गई, सो राजा ने अनजान में वह गौ दूसरे ब्राह्मण को दान कर दिया और वह ब्राह्मण गौ लेकर अपने घर चला। प्रथम दान लेनेवाले ब्राह्मण ने अपनी गौ

पहिचानकर उसे राह में रोका, तब दोनों आपस में झगड़ा करते हुए गौ समेत राजा के पास आये। राजा नृग ने दोनों ब्राह्मणों से हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—

चौ० कोऊ लाख रुपैया लेव। गैया इक काहू को देव॥

यह वचन सुनते ही वह ब्राह्मण क्रोधित होकर राजा से बोला कि जो गौ स्वस्ति बोलकर हमने दान लिया उसको करोड़ रुपया पाने से भी न देंगे, यह गौ हमारे प्राण के साथ है। यह सुनकर राजा ने विनयपूर्वक उनसे कहा कि महाराज! यह अपराध मुझसे अनजान में हुआ है, एक गौ के बदले लाख गौ लेकर अपना क्रोध क्षमा करो। जब लाख गौ व लाख रुपये देने पर भी दोनों ब्राह्मणों ने नहीं माना और वह गौ छोड़कर अपने घर चले गये तब राजा ने बहुत उदास होकर कहा कि अनजान में मुझसे यह पाप हो गया सो कैसे छूटेगा। ऐसा विचारकर राजा ने उस अधर्म छुड़ाने के लिए और बहुत-सा दान ब्राह्मणों को दिया, पर उसका सन्देह न छूटा। कुछ दिन बीते जब राजा मर गया और यमदूत उसे धर्मराज के पास ले गये तब धर्मराज ने उसको आदरपूर्वक अपने पास सिंहासन पर बैठाकर कहा—हे राजन्, तुम्हारा पुण्य बहुत होकर थोड़ा-सा पाप भी है, सो तुम प्रथम अपने पुण्य का फल भोगोगे या पाप का दुःख। यह सुनकर राजा बोला—महाराज! पहिले अपने अपराध का दण्ड भोगकर पीछे से पुण्य का फल भोगूँगा। यह सुनकर धर्मराज ने कहा कि तुमने अनजान में जो दान की हुई गौ फिर दूसरे ब्राह्मण को संकल्प दिया था, उसी पाप से तुमको गिरगिट होकर कुछ दिन अँधियारे कुयें में रहना पड़ेगा। जब द्वापर के अन्त में श्रीकृष्णजी अवतार लेकर तुमको अपना दर्शन देंगे तब तुम्हारी मुक्ति होगी। यह वचन धर्मराज के मुख से निकलते ही राजा गिरगिट होकर गिर पड़ा और समुद्र के निकट अँधियारे कुयें में रहने लगा। जिन दिनों में श्रीकृष्णजी बाणासुर को जीतकर द्वारका में पहुँचे उन्हीं दिनों में प्रद्युम्न व साम्ब आदि यदुवंशी उसी कुयें की ओर अहेर खेलने गये। एक बालक प्यासा होकर उसी कुयें पर पानी भरने गया तो क्या देखा कि एक गिरगिट से

कुआँ भरा है। यह आश्चर्य देखकर उस बालक ने अपने साथी लड़कों को बुलाकर वह गिरगिट दिखलाया।

दो० दयावान हरिपुत्र सब कीन्हों यही विचार। या गिरगिट को कूपते हम काढ़ें इकबार॥

जब लड़कों के अनेक उपाय करने पर भी वह गिरगिट कूप से नहीं निकला तब उन्होंने आकर श्रीकृष्णजी से यह हाल कहकर विनय किया कि महाराज! आप दया करके चलकर उसे निकालिये। श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने यह वचन सुनते ही उस कुयें पर जाकर जैसे अपना चरण गिरगिट को छुआ दिया वैसे वह गिरगिट भूषण व वस्त्र पहिने हुए दिव्यरूप राजों के समान हो गया।

दो० ताके माथे मुकुट की शोभा कही न जाय। मानो आभा सूर्य की रही चहूँ दिशि छाय॥

वह कुयें से निकलकर हरिचरणों पर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर बोला—हे वैकुण्ठनाथ! आपने मुझे महा विपत्ति में दर्शन देकर कृतार्थ किया। तुम्हारे सिवा मुझ ऐसे अधर्मी को सुख देनेवाला तीनों लोकों में कोई नहीं है। जब इसी तरह राजा नृग श्यामसुन्दर की बहुत स्तुति करने लगा तब प्रद्युम्न आदि लड़कों ने यह अचम्भा देखकर मुरलीमनोहर से पूछा—हे महाप्रभु! यह कौन है और किस अपराध से गिरगिट हुआ था? इसका भेद कहिए जिसमें हमारा सन्देह छूट जाय। यह वचन वृन्दावनविहारी ने सुनकर राजा नृग से पूछा—तुम कोई देवता व किसी देश के राजा होकर गिरगिट तनु में क्यों पड़े थे? नृग ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे अन्तर्यामी! तुमसे कुछ छिपा नहीं है, पर तुम्हारी आज्ञा से अपना वृत्तान्त कहता हूँ, सुनिये। मैं पूर्वजन्म में राजा इक्ष्वाकु का बेटा नृग नाम बड़ा प्रतापी होकर नित्य दश हजार गौ विधिपूर्वक गृहस्थ व वेदपाठी ब्राह्मणों को दान देता था। गौ के सिवा बहुत से मकान बनवाकर सब वस्तु संयुक्त संकल्प देकर ब्राह्मणों की कन्याओं का विवाह करा दिया करता था। बड़े-बड़े ढेर अन्न व मिठाई के ब्राह्मणों को दान देकर बहुत से देवस्थान व जलाशय संसारी जीवों को पानी पीने के लिए बनवा दिये थे। जगत् में मेरे दान व शुभकर्म करने की ऐसी कीर्ति फैली जिसका वर्णन नहीं कर सकता। एक दिन ऐसा संयोग हुआ

कि एक गौ मेरी दान दी हुई ब्राह्मण के यहाँ से भाग आई और जो गौवें मैंने दूसरे दिन दान देने को मँगवाई थीं उनमें मिल गई। जब प्रातःसमय अनजान से वह गौ मैंने दूसरे ब्राह्मण को संकल्प कर दिया और प्रथम दान देनेवाले ब्राह्मण ने राह में उस गौ को पहिचाना तब दोनों ब्राह्मण झगड़ते हुए गौ समेत मेरे पास आये। मैंने उनसे हाथ जोड़कर कहा कि मुझसे लाख रुपैया या लाख गौ उसके बदले लेकर अपना झगड़ा छोड़ दो, पर उन दोनों ने नहीं माना और गौ छोड़कर अपने घर चले गये। जाते समय मुझे शाप दिया कि तू गिरगिट के समान सिर हिलाता है, इसलिए गिरगिट हो जा। जब कुछ दिन बीते मैं मर गया तब उसी शाप से धर्मराज ने मुझे गिरगिट तनु देकर इस कुयें में डाल दिया और विनय करने पर यह कहा कि श्रीकृष्णजी के दर्शन पाने से तेरी मुक्ति होगी। उसी दिन से तुम्हारे दर्शनों की अभिलाषा रखता था, सो आज आपने कमलरूपी चरणों का दर्शन देकर मेरा उद्धार किया। जिस तरह आपने मुझ ऐसे अधर्मी को अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया उसी तरह दयालु होकर ऐसा वरदान दीजिए कि तुम्हारे चरणों की भक्ति मुझे बनी रहे। जब द्वारकानाथ ने राजा नृग को इच्छापूर्वक वरदान देकर विदा किया और वह उत्तम विमान पर बैठकर देवलोक को चला गया तब श्यामसुन्दर ने अपने पुत्रों और यदुवंशियों से, जो वहाँ पर खड़े थे, कहा कि देखो ब्राह्मणों की महिमा इतनी बड़ी है कि बिना अपराध भी ब्राह्मण किसी पर क्रोध करें तो उसके लिए अच्छा नहीं होता। ज्ञानी को चाहिए कि किसी ब्राह्मण का धन न ले। जिस तरह अग्नि के खाने से मुख जलता है उसी तरह ब्रह्मअंश लेनेवाले की गति समझना चाहिए। विष खाने से एक मनुष्य मरता है और ब्रह्मअंश लेनेवाले के कुल परिवार का पता नहीं लगता। विष खानेवाला औषध करने से अच्छा भी हो जाता है, पर ब्रह्मअंश लेनेवाले का दुःख छूटने के वास्ते कोई औषध काम नहीं करती। जो मनुष्य अनजान में भी ब्राह्मण का धन या पृथ्वी लेता है उसके तीन पुरुषा नरक में पड़ते हैं और जो कोई ब्राह्मण की वस्तु बरजोरी छीन लेता है उसके दश पुरुष माता व पिता को नरक

भोगना पड़ता है। जो लोग दिया हुआ दान ब्राह्मण से फेर लेते हैं उनको साठहजार वर्ष नरक का कीड़ा होकर फिर नीच जाति में जन्म मिलता है। कई बार गर्भपात होकर जब उत्पन्न होते हैं तब कंगाल व रोगी रहकर उनका जन्म बीतता है। राजा नृग की दशा देखकर यह बात सत्य समझना चाहिए।

दो० दानदेत द्विजराज को विघ्नकरै जो कोय। सो होवै अति पातकी नरकवास तिहि होय॥

कदाचित् ब्राह्मण तलवार खींचकर मारने आये तो अपना शिर उसके चरणों पर रख देना उचित है। अधीनता के सिवा उन्हें कठोर वचन कहना न चाहिए। मेरे ऊपर क्रोध करे या दुर्वचन कहे तो मैं कुछ बुरा न मानकर और उसकी सेवा करता हूँ। तुम लोगों ने सुना होगा कि भृगु ऋषीश्वर ने बिना अपराध सोते समय मेरी छाती में लात मारी थी तब मैं उनका पैर यह समझकर दाबने लगा कि मेरी छाती की चोट उनके न लगी हो। यह समझकर ब्राह्मण का सम्मान करना उचित है। ब्राह्मण के प्रसन्न होने से लोक व परलोक दोनों बनता है। ब्राह्मण से झूठ बोलना और ब्याज लेना न चाहिए। जो लोग ब्राह्मण को मेरे समान न जानकर कुछ भेद समझते हैं उन्हें अवश्य नरक भोगना पड़ता है। ब्राह्मणों को मारनेवाले मेरे चरणों की भक्ति पाकर परमपद को पहुँचते हैं, इसलिए तुम लोग मेरे कहने का प्रमाण किया करो।

दो० ऐसी विधि समझाय के माखनप्रभु यदुराय। यदुवंशिन को साथ ले मन्दिर पहुँचे आय॥

जब श्यामसुन्दर ने राजा उग्रसेन से यह सब हाल कहा तब उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत उत्तम जानकर दण्डवत् किया। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! राजा नृग ऐसे धर्मात्मा ने अनजान में थोड़ा पाप करने से क्यों इतना दण्ड पाया? शुकदेवजी बोले—राजा नृग को अपने दान-धर्म करने का अभिमान रहता था, इसलिए उसकी यह गति हुई थी। दान व धर्म में गर्व करना न चाहिए।

—:o:—

पैंसठवाँ अध्याय।

बलरामजी का वृन्दावन में जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित। एक दिन श्याम व बलरामजी दोनों भाई राजमन्दिर में बैठे थे, उस समय बलभद्रजी ने वृन्दावन व गोकुल का सुख व आनन्द व यशोदा का प्रेम वर्णन करके श्रीकृष्णजी से कहा कि वृन्दावन से आते समय हम दोनों भाइयों ने यशोदा व गोपियों से करार किया था कि फिर आकर तुमसे मिलेंगे सो वहाँ जाने का संयोग नहीं हुआ। हम लोग द्वारका में आ बसे, सब व्रजवासी हमारे विरह में चिन्ता करते होंगे, आप आज्ञा दीजिए तो हम वहाँ जाकर सबको धैर्य दे आवें। केशवमूर्ति बोले कि बहुत अच्छा। यह वचन सुनते ही बलरामजी ने मुरलीमनोहर व अपने माता-पिता से बिदा होकर अपना हल व मूशल उठा लिया और रथ पर बैठकर वृन्दावन को चले। जिस-जिस देश व नगर में बलदाऊजी पहुँचते थे वहाँ के राजा आगे आकर सम्मानपूर्वक उन्हें अपने घर ले जाते थे और छत्तीस प्रकार के व्यंजन खिलाकर अनेक तरह की वस्तुएँ उन्हें भेंट देते थे। इसी तरह रेवतीरमण सब राजाओं से भेंट करते व उनको सुख देते हुए उज्जैन में अपने गुरु सांदीपन के स्थान पर पहुँचे। गुरुनारायण व उनकी स्त्री को साष्टांग दण्डवत् करके उनका आशीर्वाद लिया। जब दश दिन वहाँ रहकर फिर वृन्दावन में आये तो क्या देखा कि जिन गायों को श्यामसुन्दर चराया करते थे वे सब गौ श्यामसुन्दर का ध्यान करके वन में चारों ओर बिड़री फिरती हैं और मुँह बाय-बायकर चिल्लाने के सिवा घास चरने की चाह नहीं रखतीं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल श्यामसुन्दर का यश गाते व प्रेमरंग राते चले जाते हैं। ठौर-ठौर व्रजवासी लोग मोहनप्यारे का बालचरित्र आपस में कहकर उसी चर्चा में अपना जन्म काटते हैं। जब बलरामजी ने यह दशा देखते ही आँखों में आँसू भर कर अपना रथ खड़ा किया तब नन्द व यशोदा आदि सब गोपियाँ व ग्वाल उनके आने का समाचार सुनकर बड़े प्रेम से मिलने के लिए दौड़े और बलरामजी को देखकर अति प्रसन्न हुए।

दो० नन्द तात देखे तभी और यशोदा माय। बलदाऊ अति प्रेम सों गिरे चरण पर धाय॥

नन्द व यशोदा ने बलरामजी को अपने चरणों पर से उठाकर छाती में लगा लिया और मुख चूमकर प्यार किया। जब बलरामजी ने ग्वालबालों के गले मिलकर उनकी कुशल पूछी तब व्रजवासी लोगों ने श्याम व बलराम का बालचरित्र याद करके आँखों में प्रेम के आँसू भर लिये। नन्द व यशोदा ने बलदाऊजी को बड़े प्रेम से घर ले जाकर कहा—बेटा! हम लोगों को तुम्हारे विरह में एक क्षण वर्ष के समान बीतता है, तुम अपना हाल बतलाओ, हमारे बिना इतने दिन वहाँ क्योंकर रहे। तुम धन्य हो जो इतने दिन पर आकर हमारी सुधि ली और अपना चन्द्रमुख दिखलाकर हमारी आत्मा ठण्ढी की। कहो, मोहनप्यारे व राजा उग्रसेन व वसुदेव आदि यदुवंशी कभी हमको याद करते हैं या नहीं। बलरामजी बोले—हे नन्दबाबा! तुम्हारी कृपा से मुरलीमनोहर सब यदुवंशियों समेत प्रसन्न होकर दिन-रात आपका यश गाते हैं। यह सुनकर यशोदा बोली—हे बलरामजी! जब से मोहनप्यारे हम लोगों की प्रीति छोड़कर मथुरा में चले गये तब से हमारी आँखों के सामने अँधेरा सा छाया रहता है। आठों पहर उन्हीं की याद व चर्चा में दिन बीतता है। कदाचित् मथुरा में रहते तो कभी-कभी उनको देख आती, इतनी दूर द्वारका में जा नहीं सकती।

चौ० कहिये कहा कृष्ण की बाता। जिनको हम चाहैं दिन राता॥
वे हमको चाहत कछु नाहीं। ऐसे निठुर भये मन माहीं॥

हे बलदाऊजी! वह ऐसा निर्मोही है कि कभी अपना संदेशा भी नहीं भेजता। सच पूछो तो अब वे द्वारिकापुरी के राजा होकर हम गरीबों को क्यों याद करेंगे।

दो० अब तो महाधनी भये सब राजन के राज। ग्वालन की सुधि करत ही उनको आवत लाज॥

हे बलरामजी! भला यह बतलाओ कि कन्हैया कभी मेरी व राधा आदि गोपियों की सुधि करता है या नहीं। मेरे निकट वह यहाँ से वहाँ अधिक सुख पाता है, पर हम लोगों को उसके देखे बिना चैन नहीं पड़ती। देखो, रोहिणी ने भी हमारी प्रीति छोड़कर श्यामसुन्दर को ऐसा वश कर लिया कि उसने कभी अपना दर्शन नहीं दिया। जब यशोदा इसी तरह अनेक बातें कहकर रोने लगी तब बलदाऊजी ने उसको समझाकर धैर्य दिया।

जब बलभद्रजी संध्यासमय वृन्दावन गाँव में निकले तो क्या देखा कि राधा आदि सब व्रजबाला तनु क्षीण मन मलीन श्यामसुन्दर के ध्यान में इधर-उधर फिरती हैं। मोहनप्यारे के बाल चरित्र की चर्चा के सिवा दूसरा कुछ प्रयोजन उनको नहीं है। जैसे राधा आदि गोपियों ने बलदाऊजी को अकेले में देखा वैसे झुण्ड का झुण्ड उनके पास आकर दण्डवत् करके पूछने लगीं—कहो बलरामजी! तुम कब आये, हमारे प्राणनाथ कभी हम लोगों को याद करते हैं या नहीं। जब से हमें वृन्दावन में छोड़कर आप मथुरा गये तब से एक बेर उद्धव के हाथ योग साधने का संदेशा हमको भेजा था, फिर कुछ सुधि नहीं लिया। अब सुना है कि समुद्र के टापू में द्वारकापुरी बसाकर वहाँ रहते हैं। अब हम गरीबिनियों को क्यों याद करेंगे। यह सुनकर दूसरी सखी बोली—ऐ प्यारी! अब उन्हें क्या प्रयोजन है, जो राजगद्दी छोड़कर यहाँ आवें।

चौ० वह काहू के नाहीं मीत। मात पिता की छोड़ी प्रीत॥
राधा बिन नहिं रहते घड़ी। सो वह हैं बरसाने पड़ी॥

दूसरी व्रजबाला ने कहा—ऐ प्यारियो! हम लोगों ने लोकलाज व कुल परिवार छोड़कर उससे प्रीति लगाकर क्या सुख पाया। उससे कोई अपनी भलाई की आशा मत रक्खो। दूसरी गोपी बोली कि द्वारका की स्त्रियाँ उनका विश्वास किस तरह करती होंगी। दूसरी ने कहा कि मैं ऐसा सुनती हूँ कि उन्होंने द्वारकापुरी में जाकर सोलह हजार एकसौ आठ महासुन्दरी राजकन्याओं से अपना विवाह किया है, उनके साथ आठों पहर प्रीति करते हैं अब उन्हें छोड़कर हम गँवारियों के पास क्यों आवेंगे।

दो० सोरह सहस कुमारिका सुन्दर रूपनिधान। दश दश सुत जिनके भये श्रीयदुनाथ समान॥

दूसरी गोपी बोली—ऐ सखी! अब श्यामसुन्दर का पछितावा करना उचित नहीं है और उद्धवजी जो निर्गुणरूप का ध्यान बतला गये हैं उसी पर विश्वास रखकर धैर्य धरो। दूसरी सखी ठण्ढी श्वास लेकर बोली—हे प्यारी! मुझे वह साँवली सूरति व मुरली की धुनि नहीं भूलती, किस तरह धैर्य धरूँ।

दो० नहिं जानों सखि ज्ञानकी कौन देशकी रीति। मानहुँ कबहुँ नहिं हतीव्रज वासिनसों प्रीति॥

दूसरी सखी विरह की माती हुई बोली—ऐ बलदाऊजी ! देखो, मोहन प्यारे ने इतने दिन बीतने पर भी यह नहीं विचारा कि हमारे विरह में गोपियों की क्या दशा होती होगी । संसार में जो कोई पशु-पक्षी पालता है उसको भी इस तरह नहीं भूलता । यह कठोरता उनकी देखकर मैंने जाना कि उनका अन्तःकरण भी उन्हीं के समान काला है, नहीं तो वह दीनदयालु व गोपीनाथ कहलाकर ऐसा कठोरपन न करते । जब गोपियाँ इसी तरह अनेक बातें कहकर रोते-रोते अचेत हो गईं तब रेवती-रमण ने उन्हें बहुत धैर्य देकर कहा कि इतना रुदन क्यों करती हो, श्यामसुन्दर तुम्हारी अति प्रीति रखकर तुमको आठों पहर याद किया करते हैं । यह वचन सुनते ही सब व्रजबाला चैतन्य हो गईं, उनमें से एक सखी बोली—ऐ प्यारियो ! रोना छोड़कर जो मैं कहूँ सो करो ।

चौ० हलधरजू के परसो पाँव । सदा रहो इन्हीं की छाँव ॥
यह हैं गौर श्याम नहिं गाता । करिहैं नहीं कपट की बाता ॥
सुनि संकर्षण उत्तर दियो । तुम्हरे हेतु गमन हम कियो ॥
आवन हम तुमसे कहि गये । ता कारण हम आवत भये ॥
रहि दो मास करेंगे रासा । पुरवेंगे सब तुम्हरी आसा ॥

जब बलरामजी गोपियों से प्रेमपूर्वक बातें कहकर उनका मन बहलाने लगे तब एक व्रजबाला ने कहा—हे बलभद्रजी ! तुम्हारा भाई बड़ा कठोर है, हम लोग ऐसा जानतीं तो कभी उससे प्रीति न करतीं । दूसरी बोली—हे बलदाऊजी ! वह चित्तचोर यहाँ गाय चराता था और मक्खन-दही चुराकर खाता था, अब वहाँ द्वारकापुरी का राजा हुआ, हम गरीबिनियों की याद क्यों करेगा । हमारा नाम लेने से उसे लज्जा आती होगी । दूसरी सखी जो विरह में व्याकुल थी वह झुंझलाकर बोली—अब मैंने अपना मन श्रीकृष्णजी के समान कठोर कर लिया, उन्हें धन व स्त्री प्रतिदिन अधिक मिलें, मैं इसी दुःखसागर में प्रसन्न हूँ । दूसरी गोपी ने कहा—मैं सुनती हूँ कि श्यामसुन्दर का प्रद्युम्न बेटा अपने पिता के समान सुन्दर व बलवान् हुआ है । सोलह हजार एकसौ आठ उनकी स्त्रियाँ और सब सन्तान चिरंजीव रहें । दूसरी ने कहा कि अक्रूर निर्दयी जो यहाँ आकर हमारे प्राणनाथ को ले गया और उद्धवजी जो

हम लोगों से योग सधवाने आया था वे दोनों अच्छी तरह हैं? दूसरी गोपी बोली—ऐ बलराम! तुम हमारी बातों को हँसी न मानकर सच-सच बतलाओ कि श्यामसुन्दर की स्त्रियाँ उनकी बात का विश्वास करती हैं या नहीं। दूसरी व्रजबाला ने कहा कि उनमें जो बुद्धिमान् होंगी वह कभी उनकी बात का विश्वास न करेंगी। दूसरी सखी ने कहा—हे बलदाऊजी! कभी नन्दलालजी उन स्त्रियों के सम्मुख हमारी भी चर्चा व याद करते हैं या नहीं। भला तुम्हीं न्याय करो कि जिसके लिए हम लोग लाज छोड़कर इतना दुःख पाती हैं उसने हमें इस तरह छोड़ दिया जैसे सर्प केचुल तजकर फिर उससे कुछ वास्ता नहीं रखता। उस निर्दयी की बात कहते हुए मेरी छाती फट जाती है। जब इसी तरह सब व्रजबाला अनेक बातें कहकर ठण्ठी श्वास लेने लगीं तब बलदाऊजी ने उन्हें धैर्य देकर कहा कि आज पौर्णमासी की चाँदनी रात में तुम लोग शृंगार करके आओ तो हम तुम्हारे साथ रासलीला करें। यह बात सुनते ही सब व्रजबालों ने अपने-अपने घर जाकर शृंगार किया। जब संध्या-समय बलभद्रजी अति उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनकर वृन्दावन की कुंजों में गये तब राधा आदि गोपियाँ भी पहुँचीं।

चौ० ठाढ़ी भईं सबै शिरनाय। हलधर छबि बरणी नहिं जाय॥
कनकवरण नीलाम्बर धरे। शशिमुख कमलनयन मन हरे॥
अंग अंग सब भूषण साजे। देखत कामदेव अति लाजै॥

रेवतीरमण की छवि देखते ही सब व्रजबालों ने उनके चरणों पर गिरकर विनय किया—हे दीनानाथ! अपने वचन के प्रमाण रासलीला कीजिए। यह सुनते ही जैसे बलरामजी ने हूँ किया वैसे ही रासलीला का स्थान यमुना के किनारे तैयार होकर शीतल मन्द सुगन्ध हवा बहने लगी और अनेक रंग के बाजे, भूषण व वस्त्रादिक वहाँ प्रकट हो गये। तब सब व्रजबालों ने लाज छोड़कर मृदंग व करताल आदि बाजा उठा लिया और गति नाचकर गाने-बजाने व भाव बतलाने से बलदाऊजी को रिझाने लगीं। जब रेवतीरमण भी उनका सच्चा प्रेम देखकर उनके साथ गाने और नाचने लगे तब वरुण देवता ने उत्तम वारुणी उनके

पीने के लिए भेज दी सो बलदाऊजी गोपियों समेत पीकर आनन्द मचाने लगे। उस समय देवतों ने अपने-अपने विमानों पर से बलदाऊजी पर फूल बरसाये और चन्द्रमा ने तारागण समेत रासमण्डल का सुख देखकर उन पर अमृत की वर्षा की। जितने जड़ व चैतन्य जीव वहाँ पर थे वे परमानन्द देखकर अति प्रसन्न हुए। रासलीला देखने के लिए यमुना-जल बहने से थम गया। हवा का चलना बन्द हो गया। उसी आनन्द में रेवतीरमण ने जलविहार करना बिचारकर यमुनाजी को पुकारकर कहा कि तुम हमारे निकट आकर हमें स्नान कराओ। जब यमुनाजी ने उनकी आज्ञा नहीं मानी तब बलरामजी ने क्रोध से अपना हल यमुनाजी में डालकर उसका पानी अपने पास खींच लिया और उसमें जलविहार करके जागने का परिश्रम मिटाया। उस समय यमुनाजी ने स्त्रीरूप डरती व काँपती हुई हलधरजी के पास आकर विनय किया—हे महाप्रभु! मैंने तुमको नहीं पहिचाना कि आप शेषजी का अवतार हैं, मेरा अपराध आप क्षमा करके अभयदान दीजिए। जब इसी तरह यमुनाजी ने बलदाऊजी की बहुत स्तुति की तब उसका अपराध क्षमा करके गोपियों समेत इस तरह यमुनाजल में विहार करते रहे जिस तरह हाथी पानी में हथिनियों के साथ नहाकर प्रसन्न होता है।

दो० कबहूँ निर्मल जल विषे कबहूँ यमुना तीर। गोपिन सँग क्रीड़ा करें श्रीबलराम सुधीर॥

जब रेवतीरमण जलविहार करके गोपियों समेत बाहर आये तब वरुणादिक देवतों ने उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र व मोतियों की माला का वहाँ ढेर लगा दिया, सो बलरामजी व गोपियों ने मनमाना भूषण व वस्त्र पहिन लिया और गले में फूलों के गजरे डालकर वनविहार किया। उसी दिन से वहाँ पर यमुनाजल टेढ़ा बहता है। जब इसी तरह बलदाऊजी ने दो महीने चैत्र व वैशाख वृन्दावन में रहकर नित्य व्रजबालों के साथ रासविलास व जलविहार करके उन्हें सुख दिया और दिनभर नन्द व यशोदा आदि को श्यामसुन्दर की चर्चा से सुख देकर द्वारका जाने की इच्छा की, तब नन्दादिक अनेक तरह की वस्तुएँ श्यामसुन्दर के लिए देकर रेवतीरमण को विदा किया। उस समय गोपियाँ रोकर

कहने लगीं—हे बलदाऊजी! हमें भी अपने साथ ले चलो। रेवतीरमण उन लोगों को धैर्य देकर द्वारका को चले और थोड़े दिनों आनन्दपूर्वक द्वारका में पहुँचकर वहाँ का सब हाल केशवमूर्ति से कह दिया।

छासठवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का राजा पुण्डरीक मिथ्या वासुदेव को मारना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! उन्हीं दिनों पुंडरीक नाम कांतित-देश का राजा बड़ा प्रतापी होकर काशीपुरी में रहता था। जब उसे यह इच्छा हुई कि मैं अपने को वासुदेव नाम चतुर्भुजी रूप बनाकर संसारी जीवों से अपनी पूजा कराऊँ तब उसने काठ की दो भुजा अपने अंग में लगा लिया और पीताम्बर व वैजयन्ती माला व कुण्डल व वनमाला श्याम-सुन्दर के समान पहिनने लगा। शंख चक्र गदा पद्म उनके शस्त्र बाँधकर काठ का गरुड़ चढ़ने के लिए बनवाया। जो राजा व प्रजा पुण्डरीक का डर मानकर उसे वासुदेव के समान पूजते थे उन पर वह प्रसन्न होता था और जो लोग अपना धर्म विचारकर उसकी पूजा नहीं करते थे उनको दुःख देता था। उसकी यह दशा देखकर संसारी लोग आपस में यह चर्चा करते थे कि एक वासुदेव तो श्रीकृष्ण नाम यदुकुल में अवतार लेकर द्वारकापुरी में बिराजते हैं, दूसरे यह राजा अपने को वासुदेवरूप बनाकर पुजवाना चाहता है, इन दोनों में हम लोग किसे सच्चा समझें किसे झूठा। जब राजा पुण्डरीक को अपनी पूजा कराने से अभिमान उत्पन्न हुआ तब एक दिन अपनी सभा में बैठकर बोला कि श्रीकृष्ण नाम का कौन द्वारका में रहता है जिसे लोग वासुदेव कहते हैं? देखो, मैं पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लेकर लीला करता हूँ और वसुदेव यादव का बेटा मेरा वेष बनाकर संसारी जीवों से अपनी पूजा कराता है, इसलिए उसके साथ लड़ना चाहिए। ऐसा कहकर राजा पुण्डरीक ने एक ब्राह्मण को बुलाकर कहा कि तुम द्वारका में जाकर श्रीकृष्णजी से कह दो कि मेरा वेष छोड़कर हमारी आज्ञा पालन करें, नहीं तो हमारे साथ आकर लड़ें। जब यह संदेशा लेकर वह ब्राह्मण द्वारका में पहुँचा और राजा

उग्रसेन के सामने खड़ा हुआ तब द्वारकानाथ ने उस ब्राह्मण को दण्डवत् करके पूछा कि कहो द्विजराज! कहाँ से आये, अपने समाचार बतलाओ? यह वचन सुनते ही उस ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर कहा कि हे महाप्रभु! मैं राजा पुण्डरीक का कुछ सन्देशा कहने के लिए काशी से आया हूँ, पर वह कहते हुए लज्जा मालूम होती है। दूत को संदेशा छिपाना न चाहिए, इसलिए अपने प्राण की रक्षा पाऊँ तो कहूँ। श्यामसुन्दर बोले कि तुम निस्सन्देह कहो, इसमें तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है। यह वचन सुनकर ब्राह्मण देवता ने कहा कि हे दीनानाथ! राजा पुण्डरीक ने आपको यह सन्देशा कहला भेजा है कि त्रिभुवनपति जगत् का उत्पत्ति करनेवाला मैं होकर आठ पटरानी से भोग व विलास करता हूँ। मैंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लिया है। शंख चक्र गदा पद्म मेरे पास हैं। मैं गरुड़जी पर चढ़ता हूँ। तुम मेरा वेष बनाये रहकर अपने को वासुदेव नाम क्यों प्रकट करते हो। तुम त्रिभुवनपति होते तो राजा जरासन्ध के डर से भागकर द्वारका में क्यों रहते। अब तुमको उचित है कि शंख चक्र गदा पद्मादिक शस्त्र बाँधना और वासुदेव नाम प्रकट करना छोड़-कर मेरी आज्ञा में रहो, नहीं तो यदुवंशियों समेत तुम्हें मारकर पृथ्वी का भार उतारूँगा, तब तुम जानोगे कि सच्चा वासुदेव कौन है और झूठा वेष किसने बनाया है। तुम आज तक नहीं जानते कि अलख अगोचर निरंजन का रूप त्रिलोकीनाथ मैं हूँ। सब ऋषि व मुनि मेरे नाम पर यज्ञ व दान, जप व तप करके बड़ाई पाते हैं। मैं ब्रह्मारूप होकर उत्पत्ति व विष्णुरूप से पालन व महादेवरूप होकर जगत् का नाश करता हूँ। हमने मच्छरूप होकर वेद को समुद्र से बाहर निकाला, कच्छपरूप से मन्द-राचल पर्वत अपनी पीठ पर उठाया, वाराहरूप धरकर पृथ्वी पाताल से निकाल लाये, नरसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु दैत्य को मारा, वामनरूप धरकर राजा बलि से पृथ्वीदान लिया, राम अवतार लेकर रावण का वध किया। मेरा यही काम है कि जब दैत्य व अधर्मी राजा हरिभक्तों को दुःख देते हैं तब मैं अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारता हूँ इसी वास्ते अब भी अवतार लिया है। कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द बड़े हर्ष

से उसका संदेशा सुनते थे, पर दूसरे यादववंशी यह मिथ्या वचन सुनकर उस ब्राह्मण को हँसने लगे। एक यादववंशी क्रोधित होकर बोला कि हे ब्राह्मण देवता! तुम यह क्या मिथ्या बात कहते हो। कोई दूसरा यह झूठी बात आकर कहता तो बिना मारे न छोड़ते। यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने यादववंशियों से कहा कि सुनो भाई! दूत पर क्रोध न करना चाहिए।

दो० राजसभा में बैठकर कबहूँ हँसिये नाहिं। या समान अवगुण नहीं लिख्यो पुराणन माहिं॥

यदुवंशियों से ऐसा कहकर श्यामसुन्दर उस ब्राह्मण से बोले—हे द्विज राज! तुम अपने राजा से जाकर कह दो कि हम तुम्हारा संदेशा सुनकर अति प्रसन्न हुए। वह अपने यहाँ युद्ध की तैयारी करें, मैं आकर अपना वेष छोड़ दूँगा या उससे वासुदेव वेष से छुड़ाकर उसका मांस कौवे व कुत्तों को खिलाऊँगा। यह वचन सुनते ही ब्राह्मण ने काशी में आकर सब हाल राजा पुण्डरीक से कहा। जब कुछ दिन बीते श्यामसुन्दर ने यदुवंशियों समेत काशीपुरी के निकट पहुँचकर पांचजन्य शङ्ख बजाया तब राजा पुण्ड-रीक वह शब्द सुनते ही दो अक्षौहिणी दल संग लेकर दैत्यसंहारण के सामने आया। जब पारसंग्रह भौमासुर के भाई व मित्र काशीनरेश ने, जो प्रयाग में राजा था, यह हाल सुना तब वह भी तीन अक्षौहिणी सेना साथ लेकर उसकी सहायता करने के लिए काशीजी में आ पहुँचा। जिस समय दोनों दल में मारू बाजा बजकर तीर व तलवार आदि अनेक तरह के शस्त्र चलने लगे उस समय शूरवीर मार-मार कहकर अपने प्राण देते और कायर लोग पीछे को भागकर गिर पड़ते थे। जब रणभूमि में राजा पुण्ड-रीक ने चतुर्भुजी रूप बनाये हुए श्यामसुन्दर के सामने आकर उन्हें ललकारा तब वैकुण्ठनाथ ने हँसते हुए उसका मुकुट उतारकर कहा कि अब सच बतलाओ किसका पाखण्डीरूप है। हे राजन्! जो संदेशा हमको तुमने कहला भेजा था वह याद होगा, उसी प्रमाण हम तुम्हारे पास आये हैं। अब भी मेरा वेश अपने अंग से उतारकर तुम यह बात कहो कि हमसे अपराध हुआ जो ऐसा संदेशा भेजा तो तुम्हारे प्राण छुड़ा देंगे, नहीं तो तुम्हारा शिर काट लेंगे। जब उस अज्ञानी राजा ने श्यामसुन्दर का कहना नहीं माना तब दैत्यसंहारण ने सुदर्शनचक्र से कहा कि तुम अभी

जाकर अपनी ज्वाला से सब हाथी, घोड़े, रथ, सवार व पैदल आदि जो दोनों राजों की सेना में हैं, जला दो। यह आज्ञा पाते ही सुदर्शनचक्र ने दोनों राजों की सेना में जाकर इस तरह अपनी अग्नि से सब मनुष्यों व हाथी आदि को जला दिया जिस तरह प्रलयकाल की अग्नि सब जगह को भस्म कर डालती है। जब केवल पुण्डरीक व भौमासुर का भाई दोनों राजा रह गये तब यदुवंशियों ने कहा—हे द्वारकानाथ! पुण्डरीक को इस रूप से हम लोग नहीं मार सकते। यह वचन सुनकर मुरलीमनोहर बोले कि तुम लोग धैर्य रक्खो, यह अभी अपने दण्ड को पहुँचता है। जब ऐसा कहकर दैत्यसंहारण ने सुदर्शनचक्र को उन दोनों राजों के शिर काटने की आज्ञा दी तब सुदर्शनचक्र ने जाकर पहिले दोनों भुजा काठ की जो पुण्डरीक लगाये था उखाड़ डालीं। यह दशा देखते ही जैसे पुण्डरीक अपना प्राण लेकर भागा वैसे सुदर्शचक्र ने दोनों राजों का शिर काट लिया। मुरलीमनोहर की इच्छानुसार काशीनरेश का शिर नगर के द्वार पर आ गिरा और चैतन्य आत्मा ने मुक्ति पदवी पाई।

दो॰ वैर कियो हरिनाथसों रह्योसदा चितलाय। दीनीतेहिसायुज्यगति दयासिन्धु यदुराय॥

जब नगरवासियों ने राजा पुण्डरीक का शिर पहिचानकर राजमन्दिर में यह हाल कहा तब रानियाँ अतिविलाप से रोकर कहने लगीं कि तुम तो अपने को अजर-अमर कहते थे, सो क्षणभर में किस तरह तुम्हारा प्राण निकल गया। जब सब रानियाँ उसी शिर के साथ सती हो गईं तब पुण्डरीक का बेटा सुदक्षिण क्रोधित होकर बोला कि जिसने मेरे पिता का बध किया है उसे बिना मारे नहीं छोड़ूँगा। इसी इच्छा से राजकुमार महादेवजी का तप करने लगा और श्यामसुन्दर विजय करके यदुवंशियों समेत आनन्दपूर्वक द्वारका चले आये। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब कुछ दिनों तक सुदक्षिण ने प्रेमपूर्वक शिवशंकर का तप व ध्यान किया तब भोलानाथ उसे दर्शन देकर बोले—तू क्या चाहता है? राजकुमार ने शिवजी को दण्डवत् करके विनय किया—हे दीनानाथ! मैं अपने पिता के मारनेवाले से बदला लेना चाहता हूँ। यह सुनकर महादेवजी बोले कि पुण्डरीक का पलटा लिया

चाहता है तो वेद के मंत्र उलटे पढ़कर दक्षिणाग्नि में होम कर, उस अग्निकुण्ड से एक राक्षसी निकलकर तेरी आज्ञा पालन करेगी, पर जो लोग परमेश्वर व ब्राह्मण की भक्ति नहीं रखते उन पर तेरा बल चलेगा और हरिभक्त व महात्मा से विरोध करने में तेरा प्राण जाता रहेगा। जब ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये तब सुदक्षिण यज्ञ कराने लगा जब उसका यज्ञ उनकी आज्ञानुसार पूर्ण हुआ तब कृत्या नाम की राक्षसी काले-काले व बड़े-बड़े दाँतवाली त्रिशूल हाथ में लिये डरावनी सूरति बनाये ओठ चाटती हुई अग्निकुण्ड से निकलकर बोली—हे सुदक्षिण! तेरा शत्रु कहाँ है, बताओ। यह सुनकर राजकुमार ने कहा कि मेरा वैरी वासुदेव द्वारकापुरी में है, तू अभी जाकर उसे मार डाल। यह वचन सुनते ही कृत्या उसी समय चलकर राह में नगर व वन जलाती हुई द्वारका पहुँची। जब वह अपने तेज से द्वारकापुरी को जलाने लगी तब द्वारकावासियों ने घबराकर वसुदेवनन्दन के पास जाकर विनय किया—हे दैत्यसंहारण! एक राक्षसी न मालूम कहाँ से आकर नगर को जलाती है, इसके हाथ से हमारे प्राण बचाइए। यह सुनकर द्वारकानाथ बोले कि तुम लोग मत घबराओ, अभी इस राक्षसी को निकाले देता हूँ। इस तरह उन्हें धैर्य देकर श्यामसुन्दर ने सुदर्शनचक्र से कहा कि तुम कृत्या को मारकर यहाँ से भगा दो और काशीपुरी को जलाकर चले आवो। यह वचन सुनते ही जब सुदर्शन ने कोटि सूर्य के समान तेज बढ़ाकर उस राक्षसी को खेदा तब कृत्या वहाँ से भागी। उसने काशी में आकर सुदक्षिण को सब ब्राह्मणों समेत, जो यज्ञ कराते थे, मार डाला। सुदर्शनचक्र ने भी पहुँचकर अपने तेज से काशीपुरी को जला दिया। उस समय सब प्रजा दुःखी होकर सुदक्षिण को गालियाँ देने लगी। सुदर्शनचक्र अपनी ज्वाला मणिकर्णिका कुण्ड में ठंढी करके द्वारकापुरी को चले आये और वहाँ का सब हाल वैकुण्ठनाथ से कह दिया।

दो० यह प्रसंग चितलायकै कहै सुनै जो कोय। रहै सदा सुख चैन सों लहै नहीं दुख सोय॥

सरसठवाँ अध्याय।

बलरामजी का द्विविद वानर को मारना।

परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर विनय किया—हे मुनिनाथ! कुछ लीला बलरामजी की और वर्णन कीजिए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जिस तरह बलदाऊजी ने द्विविद वानर को मारा था वह कथा कहते हैं, सुनो। द्विविद नाम का वानर सुग्रीव का मित्र किष्किन्धापुर में रहता था। वह दशहजार हाथी का बल रखता था। जब उसने अपने मित्र भौमासुर के मारे जाने का समाचार पाया तब वह उसका बदला लेने के लिए बड़े क्रोध से द्वारकापुरी को चला। जो नगर व गाँव राह में उसे मिलते थे उन्हें उजाड़ता और पहाड़ व वृक्षों को उखाड़कर बस्ती आदि पर फेंकता हुआ चला जाता था। कभी अपने मंत्र व माया से आग, पानी व पत्थर बरसाकर अनेक तरह का दुःख देता और कभी छोटे-छोटे लड़कों को कन्दरा में छिपाकर भारी पत्थर उसके मुख पर रख आता। कभी वृक्षों को उखाड़कर उससे संसारी जीवों को वध करता और कभी लोगों को उठा ले जाकर समुद्र में डाल देता। जहाँ ऋषि व हरिभक्तों को बैठा देखता वहाँ मल-मूत्र, लोहू व पीब बरसाकर उन्हें सताता था।

चौ० कबहूँ नारिन को लै आवै। आन पुरुष के संग सुलावै॥
कबहूँ लै पत्थर अति भारी। धरे लायकर द्वार मँझारी॥

दो० कबहूँ पैठि समुद्र में जल डारे झकझोर। बूड़ि जात तिहिं नीरसों बहुत लोग चहुँ ओर॥

जब वह इसी तरह लोगों को दुःख देता हुआ द्वारका में पहुँचा और छोटा रूप बनाकर श्यामसुन्दर के महल पर जा बैठा तब उसके डर से मुरलीमनोहर की सब रानियाँ अपना-अपना द्वार बन्द करके भीतर छिप गईं। उन दिनों बलरामजी रैवत पर्वत पर गन्धर्व व गन्धर्विनियों के साथ क्रीड़ा व विहार करने गये थे। द्विविद वानर ने यह हाल सुनकर विचार किया कि पहिले हलधर को मारकर पीछे से श्रीकृष्णजी का प्राण लूँगा। ऐसा विचारते ही उसने रैवत पहाड़ पर जाकर क्या देखा कि बलदाऊजी गन्धर्विनियों के साथ मदिरा पीकर एक तालाब में जलविहार व गान-विद्या कर रहे थे। सो द्विविद वानर छोटा रूप बनाकर एक वृक्ष पर, जो

तालाब के किनारे था, चढ़ गया और किलकारियाँ मारकर एक डाली से दूसरी डाली पर कूदने लगा। मल व मूत्र से गन्धर्विनियों के वस्त्र, जो तालाब के किनारे रक्खे थे, नष्ट कर दिये।

दो० कबहुँ शाखा तोड़ के डारत चारों ओर। कबहुँ भूमि पर उतर के करै शब्द अति घोर ॥

जब उस वानर ने पत्थर मारकर मदिरा का घड़ा जो रक्खा था तोड़ डाला तब स्त्रियों ने पुकारकर बलरामजी से उसका सब हाल कहा। यह वचन सुनते ही रेवतीरमण ने तालाब में से निकलकर एक ढेला उस वानर पर चलाया तब उसने वृक्ष के नीचे आकर स्त्रियों के सब वस्त्र फाड़ डाले और इधर-उधर फेंक दिये। यह हाल देखते ही बलदाऊजी ने दौड़-कर उस वानर को पकड़ लिया। तब वह अपना छोटा रूप बनाकर हाथ से बाहर निकल गया और फिर पहाड़ के समान रूप धरकर बल-दाऊजी से लड़ने के लिए सम्मुख आया। बड़े-बड़े वृक्ष व पर्वत पृथ्वी से उखाड़कर उनको मारने लगा। जब रेवतीरमण बड़े क्रोध से अपना हल मूसल उठाकर मारने दौड़े तब द्विविद ने बहुत बड़ा एक वृक्ष जड़ से उखाड़कर संकर्षण पर चलाया। बलदाऊजी ने उसे बचाकर एक मूसल वानर के शिर पर मारा। उसका शिर फटकर इस तरह लोहू बहने लगा जिस तरह बरसात में गेरू के पहाड़ से लाल पानी बहता है। पर उस वानर ने शिर फटने पर भी दूसरा वृक्ष उखाड़कर बलदाऊजी को मारा तो रेवतीरमण ने अपना मूसल मारकर वह वृक्ष तोड़ डाला। जब इसी तरह लड़ते-लड़ते कोई वृक्ष या पत्थर वहाँ नहीं रहा तब दोनों आदमी इस तरह बेधड़क होकर आपस में कुश्ती व मुक्का से लड़ने लगे कि देखने वाले डर गये। जब बहुत देर तक द्विविद वानर ने बलरामजी से युद्ध करके दो-चार मुक्का उन्हें मारा तब बलरामजी ने सब स्त्रियों को उदास व घबराई हुई देखकर द्विविद के गले का हँसवा ऐसा दबा दिया कि उसके नाक, आँख व कान से लोहू बहकर वह मर गया। जब उसकी लोथ गिरने से पृथ्वी काँपने लगी तब देवतों ने बलरामजी के ऊपर पुष्प बरसाये और उनकी स्तुति व बड़ाई करते हुए अपने-अपने लोक को चले गये।

दो० आनँद सों श्रीद्वारका हलधर पहुँचे आय। पुरवासी प्रफुलित भये ज्यों निर्धन धन पाय ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! द्विविद वानर त्रेतायुग से किष्किंधा में रहता था, सो रेवतीरमण ने मारकर उसका उद्धार किया।

—०—

अरसठवाँ अध्याय।

साम्ब का लक्ष्मणा से विवाह होना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित ! जिस तरह श्रीकृष्णजी का बेटा साम्ब राजा दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा को हस्तिनापुर से विवाह लाया था वह कथा कहते हैं, सुनो। राजा दुर्योधन की कन्या जब विवाहने योग्य हुई तब दुर्योधन ने उसका स्वयंवर रचकर अनेक राजों को अपने यहाँ इकट्ठा किया। जब मुरलीमनोहर का बेटा साम्ब भी यह हाल सुनकर हस्तिनापुर में गया तो वहाँ क्या देखा कि अनेक राजा उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिने व शस्त्र लिये राजा दुर्योधन की सभा में बैठे हैं। अनेक प्रकार का मंगलाचार वहाँ हो रहा है। उसी समय राजकन्या अति सुन्दरी व चन्द्रमुखी रत्नजटित भूषण व वस्त्र पहिने जयमाला हाथ में लिये सब राजों को देखती हुई हंसरूपी चाल से साम्ब के निकट पहुँची। उसका रूप देखते ही साम्ब ने मोहित होकर विचार किया कि ईश्वर जाने यह कन्या किस के गले में जयमाल डाल दे तो फिर इसका हाथ आना कठिन होगा, इसलिए बरजोरी इसको रथ पर बैठाकर द्वारका ले चलना चाहिए। ऐसा विचारते ही साम्ब ने लज्जा व भय छोड़कर लक्ष्मणा का हाथ पकड़ लिया और तुरन्त उसे रथ पर बैठाकर द्वारका को चला। यह हाल देखकर सब राजा, जो स्वयंवर में आये थे, लज्जित हो गये और दुर्योधन आदि कौरव लज्जित होकर बड़े क्रोध से आपस में कहने लगे कि देखो, साम्ब ने हम लोगों का कुछ भय न मानकर ऐसा अंधेर किया कि राजकन्या को स्वयंवर में से बरजोरी ले गया। कदाचित् इन तिलकधारी राजों में से कोई ऐसा करता तो कुछ संदेह नहीं था, यादव लोग सदा से अपनी कन्या हमारे घराने में देते आये हैं, यह बड़ी लज्जा की बात है कि उनका बेटा, जो भालू का नाती है, हम लोगों के सामने से राजदुलारी को उठा ले जावे। यह हमारा अपयश कभी न छूटेगा।

हमारी जान में श्रीकृष्णजी अपने पुत्र का अपराध समझकर उसकी सहायता नहीं करेंगे। कदाचित् अधर्म की राह लड़ने भी आवें तो इस तरह हार जायँगे जिस तरह कामी पुरुष रोग उत्पन्न होने से तुरन्त मर जाते हैं। जब हम लोग श्यामसुन्दर को लड़ते समय पकड़ लेंगे तब दूसरे यादववंशी हमारा क्या कर सकते हैं। यह बात सुनकर कर्ण बोला कि यदुवंशियों का सदा से यह चलन है कि दूसरी जगह शुभ कार्य में जाकर विघ्न करते हैं।

चौ० जातिहीन अबहीं यह बढ़े। राज पाय माथे पर चढ़े॥

जब धृतराष्ट्र ने यह बात सुनकर बड़े क्रोध से दुर्योधन को साम्ब के पकड़ लाने को कहा तब वह कर्ण, विकर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु महा शूरवीर व सेना को साथ लेकर चढ़ दौड़े। आपस में कहते थे कि वह कैसा बली है जो हमें जीतकर राजकन्या को ले जायगा। जब दुर्योधन आदि ने रथ दौड़ाकर साम्ब को चारों ओर से घेर लिया तब साम्ब अपना रथ खड़ा करके धनुषबाण लेकर दुर्योधन व कर्ण से बोला कि तुम लोग मेरे माता के कुल पर जाति हीन मत समझो, मैं श्रीकृष्णजी वैकुण्ठनाथ के वीर्य से उत्पन्न हुआ हूँ, इसलिये युद्ध में तुमसे नहीं हारूँगा। चाहे तुम लोग अकेले अकेला मुझसे लड़ाई कर लो चाहे सब लोग मिलकर लड़ो।

दो०यद्यपि तुम्हरो तेज बल प्रकटभयो जगमाहिं। तद्यपि हमको या समय पकड़ सकोगे नाहिं॥

यह वचन सुनते ही कर्ण ने साम्ब के सम्मुख जाकर कहा कि मैं जानता हूँ कि तू जल्दी हमसे नहीं हारेगा, पर हम लोगों से जीतकर तुझे द्वारका जाना कठिन है। चैतन्य रह, हम तुझे बाण मारते हैं। जब ऐसा कहकर कर्ण साम्ब पर बाण चलाने लगा तब साम्ब ने उसका वार बचाकर अपने बाणों से चारों घोड़ा व सारथी कर्ण के रथ के मार डाले और दश-दश बाण दुर्योधनादिक सेनापतियों को मारे। वे लोग अपनी विद्या से उसके बाण बचाकर साम्ब की बड़ाई करने लगे। जब दुर्योधनादिक ने देखा कि साम्ब अकेली अकेला हम लोगों से नहीं मारा जायगा तब छओं शूरवीर एक साथ साम्ब पर अपने-अपने शस्त्र चलाने लगे। उस

समय साम्ब ने मुरलीमनोहर के चरणों का ध्यान धरकर ऐसे बाण चलाये कि छओं महारथियों को व्याकुल कर दिया और उनके घोड़े सारथी समेत मार डाला। जब दुर्योधनादिक ने अपनी यह दशा देखी तब छओं महारथियों ने एक साथ अधर्म की राह तीर मारकर, एक ने चारों घोड़ा और दूसरे ने साम्ब का सारथी मार डाला। तीसरे ने धनुष काट डाला और चौथे ने रथ पर से ध्वजा गिरा दी। जब सारथी व घोड़ों के मारे जाने से साम्ब रथ पर से कूदकर पैदल लड़ने लगा तब कर्ण ने पहुँचकर साम्ब को पकड़ लिया और अपने रथ पर बैठाकर हस्तिनापुर को ले आया। दुर्योधन ने साम्ब को अपनी सभा में खड़ा करके कहा कि हे यादव! तेरा वह पराक्रम क्या हुआ, जिस घमण्ड से तू राजकन्या को बरजोरी उठा ले गया था। जब यह सुनकर साम्ब लज्जा से चुप हो रहा तब भीष्मपितामह ने दुर्योधन से कहा कि इसका ब्याह लक्ष्मणा से करके विदा कर देना चाहिए। जब दुर्योधन ने भीष्मपितामह का कहना न मानकर साम्ब को कैद किया तब नारदजी ने हस्तिनापुर में आकर दुर्योधन व कर्ण आदि से कहा कि साम्ब द्वारकानाथ के पुत्र से तो चूक हुई थी, पर तुम लोगों को उसे कैद करना उचित नहीं था। इसका समाचार सुनकर बलरामजी यहाँ आवेंगे तब तुम लोग अपना-अपना बल उनके सामने प्रकट करना। जो कुछ होना था सो हुआ, पर साम्ब को किसी बात का दुःख मत देना। जब नारद मुनि के कहने पर भी दुर्योधन ने साम्ब को नहीं छोड़ा तब नारदजी द्वारका में गये और साम्ब की दशा कहकर राजा उग्रसेन से बोले कि दुर्योधनादिक कौरव साम्ब को अपने यहाँ कैद करके बड़ा दुःख देते हैं, जल्दी जाकर उनकी सुधि लो, नहीं तो साम्ब के प्राण बचना कठिन हैं।

चौ० गर्व भयो कौरव को भारी। लाज सकोच न करी तुम्हारी॥
बालक को उन बाँध्यो ऐसे। शत्रुन को बाँधे कोउ जैसे॥

यह बात सुनते ही राजा उग्रसेन ने श्यामसुन्दर व यदुवंशियों को बुलाकर कहा कि तुम लोग अभी मेरी सेना साथ लेकर हस्तिनापुर में जावो और कौरवों को मारकर साम्ब को छुड़ा लाओ। जब उग्रसेन की आज्ञानुसार

दैत्यसंहारण सेना समेत हस्तिनापुर जाने को तैयार हुए तब बलरामजी ने, जो दुर्योधन के साथ मित्रता रखते थे, मुरलीमनोहर से विनय किया कि हे महाप्रभु! कौरव हमारे पुराने सम्बन्धी हैं, थोड़ी बात के लिए सेना ले जाकर उनसे विरोध करना न चाहिए। मुझे आज्ञा दीजिए तो वहाँ जाकर सहज में साम्ब को छुड़ा लाऊँ। कदाचित् वे लोग मेरे समझाने से न मानेंगे तो मैं अकेला उनको दण्ड देने योग्य बहुत हूँ। जब श्रीकृष्णजी ने यह बात मानकर उन्हें जाने की आज्ञा दी तब बलभद्रजी उद्धव और अक्रूरादिक कई यदुवंशियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों को अपने साथ लेकर द्वारका से चले। कुछ दिन बीते हस्तिनापुर के निकट पहुँचकर एक बाग में डेरा किया। और अपने आने का समाचार अक्रूर से दुर्योधनादिक को कहला भेजा। जब अक्रूर ने राजा धृतराष्ट्र की सभा में जाकर बलभद्रजी के आने का हाल कहा तब दुर्योधन, जो बलरामजी का चेला था, बड़े हर्ष से भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र व युधिष्ठिर आदि को साथ लेकर उन्हें अपने मन्दिर पर लाने के लिए बाग में गया और रेवतीरमण के चरणों पर गिरकर विनय किया—हे महाप्रभु! जिस तरह आपने दयालु होकर दर्शन दिया उसी तरह आने का कारण कहकर अपने चरणों से मेरा घर पवित्र कीजिए। यह सुनकर बलदाऊजी बोले कि मैं राजा उग्रसेन का संदेशा कहने के लिए यहाँ आया हूँ, सुनो। जब साम्ब के कैद करने का समाचार द्वारकापुरी में पहुँचा तब महाराज उग्रसेन की आज्ञा से कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने सेना समेत तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करने की तैयारी की। मैंने यह हाल सुनकर मुरलीमनोहर से कहा कि महाराज! कौरव लोग हमारे सम्बन्धी हैं, इसलिए उनसे अभी लड़ने के लिए जाना उचित नहीं है। मैं अकेला जाकर साम्ब को छुड़ा लाता हूँ। सो हे दुर्योधन व धृतराष्ट्र व भीष्मपितामह! राजा उग्रसेन ने तुम लोगों को यह संदेशा भेजा है कि उस बालक को छः महारथियों ने मिलकर अधर्म की राह पकड़ लिया, जब उस अकेले कुँअर ने छहों आदमियों को युद्ध में व्याकुल कर दिया तब तुमने यह नहीं समझा कि उसके सब घरवाले पहुँचकर तुम्हारी क्या गति करेंगे। हे धृतराष्ट्र!

यद्यपि उस बालक अज्ञान से अपराध हुआ कि राजकन्या को स्वयंवर में से उठा ले गया पर तुम लोगों को सम्बन्धी होकर उसे कैद करना उचित नहीं था। लड़कियों को अपनी नातेदारी में देना चाहिए इससे और क्या उत्तम हो सकता है। अब भी उचित है कि साम्ब को कैद से छोड़कर लक्ष्मणा का विवाह उसके साथ कर दो।

दो०यद्यपि उस अज्ञान ने कीन्हों काज असाधि। तद्यपि तुम पुरुषा हते करते नहीं उपाधि ॥

बलरामजी का यह वचन सुनते ही दुर्योधन सब कौरवों की सम्मति से क्रोधित होकर बोला—हे बलरामजी! आप चुप रहिए, अब अधिक बड़ाई उग्रसेन की न कीजिए। हम लोगों से यह नहीं सुना जाता। अभी चार दिन की बात है कि उग्रसेन को संसार में कोई नहीं जानता था। जबसे उसने हमारे साथ नातेदारी की तब से उसकी पदवी बढ़ी। उग्रसेन ने हमारे अधीन होने पर भी अभिमान से इस तरह हमको संदेशा कहला भेजा है जिस तरह कोई राजा अपने प्रजा पर आज्ञा करे। बड़ा आश्चर्य है, जो पाँव की जूती शिर पर चढ़ने लगीं। यादववंशियों को हमने चँवर व छत्र देकर राजा बनाया था, सो उनको ऐसी बात कहते हुए लज्जा नहीं आती। द्वारकापुरी का राज्य पाकर अपनी पिछली बात भूल गये, जो मथुरा में ग्वाल व अहीरों के साथ रहते थे। जब हमने उनको अपने साथ खिलाकर राजगद्दी दिलवाई तब उनकी गिनती राजों में हुई। जैसी भलाई हमने उनके साथ की वैसा फल पाया। किसी दूसरे के साथ ऐसा करते तो जन्म भर हमारा यश मानता। बड़े लाज की बात है कि यादव लोग सदा से हमारे अधीन रहकर अब हमारी बेटी ब्याहना चाहते हैं।

दो०तिनको यह पदवी भई हमसों करत विवाह। कालिह परों माँगत हते आज भये हैं साह ॥

आकाश से पानी की जगह पत्थर नहीं बरस सकते। यह सब हमारी नातेदारी करने का कारण हैं, जो दूसरे राजा लोग हमारे नाम पर उनका आदर करते हैं, नहीं तो उन्हें कौन पूछता था। साम्ब की निर्लज्जता व ढिठाई देखो, जिसने स्वयंवर में से मेरी कन्या ले जाने की इच्छा की। हमें उचित था कि साम्ब को मार डालते जिसमें फिर कोई ऐसा न

करता, पर नातेदारी होने से ऐसा नहीं किया, इसीलिए बलदाऊजी उसकी सिफारिश लेकर हमारे यहाँ आये हैं। आज राजा इन्द्र भी ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो मेरे, भीष्मपितामह व द्रोणाचार्य के सम्मुख आकर लड़ सके। जब कालयमन व जरासन्ध के घेर लेने से मथुरा छोड़कर भाग गये थे, तब यह सब घमण्ड व बल उनका कहाँ गया था, जो आज हमारे ऊपर आज्ञा चलाते हैं। यह सब दोष भीष्मपितामह व धृतराष्ट्र का है, जिन्होंने यादववंशियों का सम्मान करके उन्हें इतना ढीठ किया, नहीं तो ऐसा क्यों कहला भेजते। दुर्योधन यह कठोर वचन उग्रसेन आदि को कहकर सभा में से उठ गया।

दो०तबजान्यो बलरामजी निश्चयकरि मनमाहिं। सूधीबात कुटिलजन कबहूँ समझत नाहिं॥

ऐसा विचारते ही बलदाऊजी हँसकर उद्धव आदि अपने साथियों से बोले कि देखो, कौरवों को अपने राज्य का इतना अभिमान हुआ जो हम लोगों को चरण की जूती जानकर अपने को शिर समझते हैं। जब श्यामसुन्दर वैकुण्ठनाथ ब्रह्मा व महादेव आदि देवतों के मालिक होकर राजा उग्रसेन को दण्डवत् करते हैं तब उनको महाराज होने में क्या सन्देह है। आज मुरलीमनोहर की दया से इन्द्रादिक देवतों की यह सामर्थ्य नहीं है जो राजा उग्रसेन को दुर्वचन कह सकें, सो उन्हीं को दुर्योधन ने हमारे सामने ऐसी बातें कहीं। मेरा नाम बलदाऊ है अभी नगर समेत इन लोगों को यमुनाजल में डुबाकर नाश कर डालूँगा, नहीं तो आज से अपना नाम बलराम न रक्खूँगा। यह बात अपने साथियों से कहकर रेवतीरमण ने क्रोध में आकर भीष्मपितामह व धृत-राष्ट्र से कहा कि दुर्योधन अज्ञानी को यहाँ बुलावो तो अपनी बातों का उत्तर हमसे सुने। मैंने जाना कि अब नातेदारी की प्रीति छोड़कर युद्ध करना पड़ेगा। जब भीष्मपितामह के बुला भेजने से दुर्योधन फिर सभा में आकर बैठा तब रेवतीरमण ने कहा—हे दुर्योधन! ज्ञानी व अज्ञानी मनुष्य इस तरह पहिचाना जाता है कि ज्ञानी लोग सब बात का आगम विचारकर वह काम करते हैं जिसमें लज्जित न होना पड़े और मूर्ख मनुष्य बिना समझे काम करने से पीछे अपने दंड को पहुँचते हैं।

दो०ज्ञानी जो कारज करै समझ लेत मनमाहिं। कारज बिन समझे करे ताहि ज्ञान कछु नाहिं॥

जिस तरह नया घोड़ा जब तक सवार के हाथ का कोड़ा नहीं खाता तब तक सीधा नहीं चलता। उसी तरह तुमने अभिमान भरी बातें कहकर यह विचार नहीं किया कि कैसा वचन कहता हूँ। ये सब बातें तुमको कहना उचित नहीं था, क्योंकि मैंने प्रेम व प्रीति भरी बातें तुमसे कही थीं, उनका उत्तर तुमने ऐसा दिया जैसा कोई सेवक को भी नहीं कहता। मैं चाहता था कि हमसे और तुमसे युद्ध न हो, सो तुमने दुर्वचन कहकर हमको क्रोध दिलाया और भलमंसी का कहना तुमको अच्छा नहीं मालूम हुआ। इसलिए तुम अपने कर्तब का दण्ड पाकर लज्जित होगे। तुमने नहीं समझा कि अपनी स्तुति व दूसरे की निन्दा करना अच्छा नहीं होता। तुझे अपनी कन्या श्रीकृष्णजी के बेटे को देने से लज्जा मालूम होती है। तू उन वैकुण्ठनाथ की पदवी नहीं जानता जिनके चरणों की धूरि इन्द्रादिक देवता शिर पर चढ़ाने से अपनी बड़ाई समझते हैं।

दो०जिनकाध्यानधरें सदा शिवविरञ्चि चितलाय। चरणकमल सेवतरहैं श्री कमलासुखपाय॥

हे दुर्योधन! भला तू बतला, यह पदवी तेरे कुल में किसको प्राप्त है जो तूने अभिमान भरी बातें कहीं। ऐसा कहकर बलदाऊजी ने क्रोध से अपना हल पृथ्वी में गाड़ दिया और हस्तिनापुर को पृथ्वी समेत हल से उठाकर जैसे यमुनाजल में डुबाना चाहा वैसे एक कोना पृथ्वी का उठा हुआ देखकर भीष्मपितामह, धृतराष्ट्र, ब्राह्मण व ऋषीश्वरादिक जो उस सभा में बैठे थे उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक रेवतीरमण से कहा कि हे दीनानाथ! आप ईश्वररूप व धर्म की वृद्धि करनेवाले होकर अपना क्रोध क्षमा कीजिए। दुर्योधन अज्ञानी के दुर्वचन कहने पर हस्तिनापुर को डुबाकर बिना अपराध करोड़ों के प्राण न लीजिए। आज से हम लोग सदा राजा उग्रसेन की आज्ञा पालन करेंगे।

दो०हमसबमिलिबहुभाँतिसों बिनतीकरी सुनाय। दयावन्त बलरामजीदीन्हींरिसबिसराय॥

जब बलदाऊजी ने भीष्मपितामह आदि के विनय करने से क्रोध क्षमा करके अपना हल जो हस्तिनापुर को उलटने के लिए पृथ्वी में धँसाया था, निकाल लिया तब दुर्योधन साम्ब को बहुत अच्छा गहना

व कपड़ा पहिनाकर अपनी कन्या लक्ष्मणा समेत बलरामजी के पास ले आया और हाथ जोड़कर बोला—

चौ० तुमहौ अलख शेष अवतारा। धरत शीश धरणी का भारा॥
हम असाधु अति हैं अज्ञानी। तुम्हरी गति अगाध नहिं जानी॥
इतनो दण्ड जो हमको दीन्हों। सो तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों॥
दो०अपनी शक्ति जनाय कै कीन्हों हमैं सनाथ। हम दासन के दास हैं तुम नाथन के नाथ॥

इसी तरह दुर्योधन ने बहुत स्तुति करके विधिपूर्वक लक्ष्मणा का विवाह साम्ब से कर दिया और बारह हजार हाथी, दश हजार घोड़े, छः हजार जड़ाऊ रथ, हजार दासी अति सुन्दरी भूषण, वस्त्रसंयुक्त व अनेक वस्तु दहेज में देकर जब दुल्लह व दुलहिन को विदा किया तब बलरामजी साम्ब को लक्ष्मणा समेत अपने साथ लेकर हर्षपूर्वक द्वारका में पहुँचे और वहाँ का सब हाल राजा उग्रसेन व श्यामसुन्दर से कह दिया। कौरवों के गर्व टूटने का हाल सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! अभी तक हस्तिनापुर दक्षिण की ओर ऊँचा और उत्तर की ओर नीचा दिखलाई देता है।

—:o:—

उनहत्तरवाँ अध्याय।

नारद मुनि को श्रीकृष्णजी के सब महलों में रहने का सन्देह करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! एक दिन नारदजी ने अमरावती पुरी में क्या देखा कि राजा इन्द्र की दोनों स्त्रियाँ आपस में झगड़ा कर रही हैं, तब उन्होंने विचार किया कि दो सवति होने से यह दशा है, श्रीकृष्णजी के सोलह हजार एकसौ आठ स्त्री हैं उनमें किस तरह बनती होगी। न मालूम गोपीनाथ उनको इकट्ठे बुलाते हैं, या पारी बाँधकर उनके पास जाते हैं, यह हाल देखना चाहिए। ऐसा विचारकर नारदजी द्वारका में आये तो क्या देखा कि वहाँ अच्छे-अच्छे बाग उत्तम-उत्तम पुष्प व फल लगे होकर उनमें अनेक पक्षी बोलते हैं। अनगिनती तड़ाग व बावली में कमल फूले हैं उन पर भौंरों का गूँजना बहुत शोभा देता है। सुनहले किले के चारों ओर समुद्र लहरें ले रहा है। माली लोग मीठे-मीठे स्वरों से गाते हुए क्यारियाँ सींच रहे हैं। पनघट पर झुण्ड की झुण्ड

महासुन्दरी स्त्रियाँ अच्छा-अच्छा गहना व कपड़ा पहिने दिखलाई दीं। जब नारद मुनि यह सब शोभा देखते हुए नगर में गये तो क्या देखा कि महल व मकान रत्नजटित होकर उन पर अनेक रंग की कलशियाँ लगी हैं।

दो० तिनमें मन्दिर मध्य की महिमा कही न जाय। मानो रत्नजड़ाव में माणिक धरो बनाय॥

उस नगर की सब दुकानें व सड़कें उत्तम हैं। घर-घर कथा व हरि-चर्चा हो रही है। यदुवंशी लोग अनेक जगह राजा इन्द्र के समान आपस में बैठे हुए श्यामसुन्दर का यश गाते हैं। द्वारकावासी अपने-अपने घर होम व यज्ञादिक शुभ कर्म करके अच्छा-अच्छा पदार्थ बड़े प्रेम से ब्राह्मणों को खिलाते हैं। जब नारद मुनि यह आनन्द देखते हुए रुक्मिणीजी के महल में गये तो वहाँ ऐसा रत्नजटित स्थान देखा जिसके सामने आँख नहीं ठहर सकती थी। मोतियों की झालर द्वार पर लटकाई थी। पारि-जातक फूल की सुगन्ध चारों ओर उड़ती थी।

चौ० सुन्दर बालक खेलत डोलैं। मधुर मनोहर वाणी बोलैं॥
रूपवन्ति दासी मन हरैं। निज स्वामी की सेवा करैं॥

दो० यह शोभा ऋषि देखिकै भूलि गये सब ज्ञान। दासी औ ठकुरानियाँ नहीं सके पहिचान॥

नारद मुनि ने वहाँ क्या देखा कि श्यामसुन्दर उत्तम शय्या पर जड़ाऊ मुकुट पहिने जर्द पीताम्बर बाँधे, रेशमी उपरना ओढ़े, घूँघुरवाली जुलफें छोड़े, माथे पर केसर का तिलक लगाये, जड़ाऊ कुण्डल कानों में डाले, वनमाला, वैजयन्ती माला और मोतियों का हार पहिने, नटवररूप बनाये हुए बैठे हँसते हैं। हजारों दासियाँ रहने पर भी रुक्मिणीजी आप खड़ी हुई पंखा हाँकती हैं। जैसे द्वारकानाथ ने नारद मुनि को आते हुए देखा वैसे ही उठकर उन्हें दण्डवत् करके जड़ाऊ सिंहासन पर बैठाया और अपने हाथ से उनके चरण धोया, चरणोदक लेकर विधिपूर्वक उनका पूजन किया और हाथ जोड़कर बोले—हे मुनिनाथ! आपने दयालु होकर मुझे दर्शन दिया, नहीं तो संसारी मनुष्यों को तुम्हारा दर्शन मिलना दुर्लभ है। हम क्या सेवा करें जिसमें हमारा कल्याण हो।

चौ० जा घर चरण साधु के जावैं। वे नर सुख सम्पति सब पावैं॥

यह वचन सुनकर नारद मुनि ने विनय किया—हे आदिपुरुष भगवान्!

मैं तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ। तुम्हारी दया के बिना संसारी मनुष्य भवसागर पार नहीं उतर सकते। गंगाजी तुम्हारे चरण का धोवन होकर सब जीवों को सुख देती हैं। मैं कंगाल ब्राह्मण कौन गिनती में हूँ, जो तुम्हारी स्तुति कर सकूँ। मुझ पर दयालु होकर ऐसा वरदान दीजिए जिसमें तुम्हारा स्मरण व ज्ञान मुझसे न छूटे।

चौ० मैं सेवक तुम सबके राजा। मोहिं प्रणाम कियो किहि काजा॥
जग में लियो मनुज अवतारा। याते करत जगत व्यवहारा॥
न तो हम चरणन की रेना। शिव विरंचि चाहैं दिन रैना॥
मैं उनकी पदवी कहँ पावों। दासन में यक दास कहावों॥
तुम्हरो नाम जपै जन कोई। तापर कृपा तुम्हारी होई॥
यह तुम्हरे मन में जिन आवै। नारद हमसे पाँव धुवावै॥
याही विधि हम पुत्र तुम्हारे। कृपावन्त तुम तात हमारे॥
जापर कृपा तुम्हारी होई। अन्धकूप सों निकसै सोई॥

दो० भक्तन के दुखहरण को धरणि उतारन भार।लीन्ह्यो तुम अवतार है माखनप्रभु करतार॥

जब इस तरह स्तुति करके नारद मुनि वहाँ से विदा होकर सत्यभामा के घर गये तो क्या देखा कि उद्धवजी वहाँ पर मुरलीमनोहर से चौपड़ खेलते हैं।

चौ० ऋषि को देखि उठे घनश्यामा। वाही भाँति करो परनामा॥
कह्यो धन्य हैं भाग्य हमारे। जो तुम से ऋषिराज पधारे॥
कृपा करो द्विजराज गुसाईं। केतिक दिवस रहे यहि ठाईं॥

यह वचन सुनते ही नारद मुनि वहाँ से भी श्यामसुन्दर को आशीर्वाद देकर जाम्बवती के यहाँ गये। तब वैकुण्ठनाथ को अंग में उबटन व फुलेल मलवाते देखकर बिना भेंट किये फिर आये, क्योंकि शास्त्र में तेल लगाते समय दण्डवत् करना व आशीर्वाद देना वर्जित है। फिर नारदजी ने कालिन्दी के महल में जाकर देखा तो श्यामसुन्दर को पलँग पर सोये हुए पाया। जब कालिन्दी ने नारद मुनि को देखते ही मुरलीमनोहर का चरण दबाकर जगा दिया तब त्रिभुवनपति दण्डवत् करके बोले—हे मुनिनाथ! तीर्थरूपी साधुओं के चरण आने से संसारी जीवों का घर पवित्र हो जाता है, आपने दया करके अपने दर्शन से मुझे कृतार्थ किया। जब नारद मुनि वहाँ से आशीर्वाद देकर मित्रबिन्दा के महल में गये तो क्या देखा कि श्यामसुन्दर ब्राह्मणों को जिवाँते हैं। नारद मुनि

को देखते ही हाथ जोड़कर बोले—हे द्विजराज ! आपने बड़ी दया की जो इस समय आये, आप भी भोजन करके अपनी जूठन मुझे दीजिए तो उसे खाकर पवित्र हो जाऊँ। नारद मुनि ने कहा—हे महाप्रभु ! आप ब्राह्मणों को भोजन कराइए, मैं फिर आकर प्रसाद पाऊँगा। यह वचन कहकर नारद मुनि सत्या के महल में गये तो क्या देखा कि वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी आनन्दपूर्वक विहार कर रहे हैं। यह कौतुक देखते ही वहाँ से उलटे पाँव फिरकर भद्रा के मन्दिर में आये तो द्वारकानाथ को भोजन करते पाया। वहाँ से लक्ष्मणा के घर जाकर वैकुण्ठनाथ को स्नान करते देखा। इसी तरह नारद मुनि अनेक महलों में वैकुण्ठनाथ की परीक्षा लेने के लिए गये तो उनको कहीं पूजा व ध्यान करते, किसी जगह होम पर बैठे, कहीं स्त्रियों के साथ फूल बरसाकर खेलते, किसी जगह तड़ागादिक में स्त्रियों के साथ नहाते, कहीं घोड़े-रथों पर बैठे, किसी महल में कथा व पुराण सुनते, कहीं गौ-ब्राह्मण को दान देते, किसी जगह हाथियों का युद्ध देखते, कहीं द्रव्यादिक गिनवाते, किसी महल में सन्तान के विवाह की चर्चा करते, कहीं लड़का खिलाते, कहीं बलरामजी के पास बैठे हुए अधर्मियों के मारने की सम्मति करते, किसी जगह बावली तड़ागादिक खोदने के लिए रुपया देते, किसी जगह वसुदेव व देवकी के पास बैठे हुए भोजन कराने के लिए आज्ञा लेते, कहीं लड़कियों को विदा करते, किसी महल में भाटों से कवित्त सुनते और कहीं अहेर खेलने के लिए बैठे देखा।

चौ० कहुँ नारिन को कौतुक देखैं। कहुँ नारिन सों खेलत पेखैं ॥
कहुँ नारिन सों करत ठिठोली। बोलत विविध भाँति की बोली ॥
कहुँ नारिन में कलह करावैं। कहुँ अनमनी नारि मनावैं ॥

दो० कहूँ पुत्रको ब्याह के लाये बहू समेत। तहाँ करत उत्सव बहुत लोगन को धन देत॥
या विधि जिसजिसमहलमें नारद पहुँचे जाय। प्रिया सहित देखे तहाँ माखनप्रभु यदुराय॥

चौ० नारद के संशय मन माहीं। श्याम बिना कोऊ गृह नाहीं ॥
जिस घर जाऊँ तहाँ विहारी। ऐसी प्रभु लीला बिस्तारी ॥

नारदजी ने श्यामसुन्दर की यह महिमा देखते ही लज्जित होकर कहा कि त्रिभुवनपति ने मेरा चरण धोकर चरणामृत लिया और मैंने अपने

अज्ञान से उनकी परीक्षा लेने की इच्छा की, सो मुझसे बड़ा अपराध हुआ। जब ऐसा विचारकर नारद मुनि भय से काँपने लगे तब मुरली-मनोहर हँसकर बोले—हे मुनिनाथ! आज तुम्हारी क्या दशा है? जैसे वह वचन नारदजी ने सुना वैसे ही हरिचरणों पर गिर पड़े और हाथ जोड़कर विनय किया—हे दीनानाथ! मैं अज्ञानता से तुम्हारी परीक्षा लेना चाहता था, सो लज्जित होकर उसका फल पाया। अब मुझ दीन पर दयालु होकर मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

चौ० मैं तुम्हरो भिक्षुक यदुनाथा। गावों सदा नाम-गुणगाथा ॥
तुम्हरी माया सब जगजानी। तिहि सों मेरी मति भरमानी ॥
तुम्हरो नाम जपै जो कोई। परमधाम पावत है सोई ॥
कृपा करो मेरो भ्रम टारो। भवसागर से पार उतारो ॥

यह स्तुति सुनकर वैकुण्ठनाथ बोले—हे मुनिनाथ! तुम कुछ संदेह अपने मन में न लाकर मेरी माया को अति बलवान् समझो। जब वह माया सब जगत् को मोहकर मुझे भी नहीं छोड़ती तो दूसरे को क्या सामर्थ्य है जो संसार में उत्पन्न होकर उसके वश न हो। हे नारद मुनि! मेरे भेद व कामों को पहुँचना बहुत कठिन है। कोई स्थान मुझसे खाली नहीं रहता। सब जीवों के उत्पन्न व रक्षा करने और चारों वर्ण व चारों आश्रम के धर्म का रखनेवाला मैं हूँ। सगुण अवतार मैं इस-वास्ते लेता हूँ जिसमें संसारी जीव मुझे शुभकर्म करते देखकर उसी तरह अच्छा काम किया करें। तुम मेरे कामों की परीक्षा लेने में न रहकर हरिभजन किया करो।

दो० केहि कारण भ्रम में परे करो आपनो काज। लोगन के पातक हरो दर्शन दे ऋषिराज ॥

यह सुनते ही नारद मुनि वसुदेवनन्दन से अपना अपराध क्षमा कराके बोले—हे महाप्रभु! आप दयालु होकर ऐसा वरदान मुझे दीजिए जिसमें तुम्हारे चरणों की भक्ति सदा बनी रहकर संसारी माया मेरे ऊपर न व्यापे। जब केशवमूर्ति ने नारद मुनि को इच्छापूर्वक वरदान देकर विदा किया तब वह दण्डवत् करके वीणा बजाते व हरिगुण गाते हुए सत्यभामा के पास जाकर बोले कि हे सत्यभामा! तू पृथ्वी का अवतार है, तुमसे मुरलीमनोहर रुक्मिणी को अधिक प्यार करते हैं, इसलिए

तुम श्यामसुन्दर को मुझे दान देकर मोल ले लो तो वह तेरे अधीन रहेंगे। यह वचन सुनते ही सत्यभामा ने प्राणनाथ से आज्ञा लेकर उन्हें पारिजातक समेत नारदजी को संकल्प दिया। जब नारद मुनि मुरली-मनोहर को अपने साथ ले चले तब सत्यभामा उनके बराबर सोना देने लगी सो नारदजी ने सोने के बदले तुलसीदल लेकर मुरलीमनोहर को फेर दिया और आप आनन्दपूर्वक ब्रह्मलोक को चले गये। श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द उसी दिन से सत्यभामा पर अधिक प्रीति करने लगे।

चौ० श्रीभगवान महा सुखकारी। रहैं सदा जैसे गृहचारी॥
सकल पुत्र दारा सब रहईं। और कुटुम्ब कहाँ लौं कहईं॥
रक्षा करि सबको दुख हरें। इच्छा उनकी पूरण करें॥
कृष्णनारि यों मन में जानें। मोसों बहुत प्रीति हरि मानें॥
यह लीला अद्भुत सुखदाई। जो जन कहै सुनैं चितलाई॥

दो० लहैं महासुख सम्पदा दुख पावैं कछु नाहिं। निर्मल यश प्रकटै सदा रहै वंश जग माहिं॥

——:०:——

सत्तरवाँ अध्याय।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! श्यामसुन्दर संसारी जीवों को राह दिखलाने के लिए जिस समय जो काम करते थे उसका हाल कहता हूँ, सुनो। जब दो घरी रात रहे पक्षी बोलने लगते थे उसी समय वसुदेव-नन्दन सब महलों में से उठकर स्नान करके संसारी मनुष्यों की तरह अपनी आत्मा का ध्यान करते थे।

दो०जबै उठैंहरिसेजतेहोहिं बिकल सब नारि। पक्षिनदोषबिचारिकै देहिंसबन मिलि गारि॥

जब सूर्य निकलने के उपरान्त वसुदेवनन्दन सब महलों में जाकर जड़ाऊ चौकी पर बैठते थे और उनके अंग पर स्त्रियाँ फुलेल व उबटन मलकर गरम पानी से स्नान कराती थीं तब वह तुलसी चौरे के पास बैठकर सन्ध्या व तर्पण करके गायत्री जपते थे। जब चार घड़ी दिन चढ़ता था तब नित्य एक-एक महल में चौदह-चौदह हजार गौ दूध देनेवाली विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान देकर उनका आशीर्वाद लेकर भोजन करते थे।

दो०खानपान भूषण वसन विविध सुगन्ध लगाय। पहिले विप्रन अर्पिकै आप लेत यदुराय॥
यद्यपि श्रीभगवान को कर्म लगै कछु नाहिं। तद्यपि कर्मकियोचहैं लियो जन्म जगमाहिं॥

जब मुरलीमनोहर अनेक रूपों से एकरूप होकर उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनकर द्वार पर आते और बन्दीगणों से स्तुति सुनकर सम्मानपूर्वक उन्हें विदा करते थे तब दारुक रथवान द्वार पर जड़ाऊ रथ ले जाकर खड़ा करता था।

दो०दर्श पाय हर्षे सबै तभी झुकावैं माथ। कृपादृष्टि तिन पर करैं माखनप्रभु यदुनाथ॥

जब द्वारकानाथ उस रथ पर उद्धव समेत बैठकर घूमने फिरने जाते थे तब सात्यकी यादव पीछे बैठकर पंखा व चँवर मोहनीमूर्ति के हिलाता था। जब श्यामसुन्दर का रथ धीरे-धीरे राजसी विभव से चलता था तब उनकी स्त्रियाँ अपने-अपने महल की खिड़कियों में से उनकी छवि देखकर अपने-अपने भाग्य की बड़ाई करती थीं। जब थोड़ी देर उपरान्त कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द सुधर्मा सभा में आते थे उस समय सब यादववंशी खड़े होकर सम्मानपूर्वक रत्नसिंहासन पर उनको बैठाते थे। कुछ देर केशवमूर्ति राजा उग्रसेन के पास बैठकर कथा व पुराण सुनते थे। कभी कभी नट व भानुमती आदिक का कौतुक देखकर प्रसन्न होते थे। वैकुंठनाथ की दया से द्वारकापुरी में कोई रोग किसी को नहीं व्यापता था, इसलिए सब छोटे-बड़े परमानन्द रहते थे। जब वसुदेवनन्दन सुधर्मा सभा से उठकर अनेक रूप धारण करके सब महलों में जाते थे तब छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन भोजन करते थे और उसमें अच्छा-अच्छा पदार्थ उद्धव व अक्रूर आदिक हरिभक्तों को भी मिलता था। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! देखो, श्यामसुन्दर त्रिभुवनपति गृहस्थ होने पर भी विरक्त रहकर संसारी जीवों को राह दिखलाने के लिए ये सब कर्म करते थे। एक दिन वैकुण्ठनाथ सुधर्मा सभा में रत्नसिंहासन पर बैठे हुए यदुवंशियों के साथ बातें करते थे उसी समय एक ब्राह्मण द्वारकापुरी में आया और द्वारपालकों से कहा कि तुम श्रीकृष्णजी से जाकर कह दो कि एक ब्राह्मण तुम्हारे दर्शन की इच्छा से द्वार पर खड़ा है, आज्ञा हो तो भीतर आकर अपना मनोरथ पूर्ण करे। जैसे द्वारकानाथ ने यह संदेशा द्वारपालक से सुनकर उस ब्राह्मण को बुला भेजा और वह ब्राह्मण उनके सामने भीतर गया वैसे ही त्रिभुवनपति ने नीचे उतर-

कर उस ब्राह्मण को दण्डवत् किया और अपने पास सिंहासन पर बैठाकर कोमल वचन से पूछा—हे महाराज! आप कहाँ से किस कारण यहाँ आये? यह मधुर वचन सुनते ही वह ब्राह्मण हाथ जोड़कर बोला—हे महाप्रभो! राजा जरासन्ध जो अपने बल व प्रताप का घमण्ड रखता है, दिग्विजय के लिए निकला था, सो जिन राजों ने उसकी आज्ञा पालन की उनका देश उसने छोड़ दिया और जो राजा अपने अभिमान से उसके पास नहीं आये उनको युद्ध में जीतकर अपने यहाँ कैद किया। बीस हजार आठ सौ राजा जो उसके यहाँ कैद हैं उनका संदेशा लेकर आया हूँ। श्यामसुन्दर की आज्ञा पाकर उस ब्राह्मण ने कहा—महाराज! उन सब राजों ने दण्डवत् करके यह विनय किया है कि हे वैकुण्ठनाथ! आपका सदा से यह प्रण है कि जब दैत्य व अधर्मी राजा हरिभक्तों को दुःख देते हैं तब आप सगुण अवतार से अधर्मियों को मारकर अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। जिस तरह आपने हिरण्यकशिपु को मारकर प्रह्लाद के प्राण बचाये और ग्राह से गजेंद्र को छुड़ाया उसी तरह हम लोगों को भी महा दुःखी व दीन जानकर हमारा कष्ट छुड़ाइए। जैसे कर्मरूपी फाँसी में सारा जगत् बँधा रहकर नष्ट होता है वैसे ही जरासन्ध की कैद में हम लोग फँसकर बड़ा दुःख पाते हैं, इसलिए दिन-रात तुम्हारे दर्शनों की इच्छा बनी रहती है।

चौ० दुष्टदलन है नाम तुम्हारो। तुमहीं सबको कष्ट निवारो॥
हमको परो दुःख अतिभारी। बेग आय सुधि लेव हमारी॥
जैसे कृपा जनन पर करो। तैसे कष्ट हमारो हरो॥

दो० रैन दिवस हैं बन्दि में परै नहीं क्षण चैन। हमको आय छुड़ाइए माखनप्रभु सुखदैन॥

हे महाप्रभो! राजा जरासन्ध अपने अज्ञान और राज्य के घमण्ड से ऐसा मतवाला व अन्धा हो रहा है कि सत्रह बेर तुम्हारे सामने से भागने पर भी लज्जित न हुआ। सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाले तुम जो एक बेर भागे थे, इसलिए वह बड़ा अहंकार करके अपनी बराबर किसी को नहीं समझता। आपने पृथ्वी का बोझ उतारने के लिए अवतार लिया है, इसलिए उसका घमण्ड तोड़कर हमारा दुःख छुड़ाना चाहिए। हम लोग किसी दूसरे का भरोसा नहीं रखते।

दो० तिहि कारण हमसबन की है तुमहीं को लाज। तुम बिन को रक्षा करै माखनप्रभुयदुराज ॥

चौ० हम जो महा अधम अज्ञानी। धर्म कर्म की बात न जानी ॥
दयासिन्धु है नाम तुम्हारो। हम दीनन की ओर निहारो ॥
जबलों तुम्हरी कृपा न होई। तब लों ज्ञान न पावत कोई ॥
विषय भोग लोगन अति भावै। तुम्हैं छोड़ उनसों मन लावै ॥
संकट आन परै जिहि काला। तुम्हरो नाम जपै नँदलाला ॥
जब तन में कछु व्यथा जनावै। तात मात की सुधि तब आवै ॥
ताही विधि तुमको हम जानैं। सबके तात मात पहिचानैं ॥
दीनबन्धु बिनती सुनि लीजै। जीवदान दीनन को दीजै ॥

दो० यद्यपि सुन्दर बदन को दर्शन पायों नाहिं। तद्यपि चरणसरोजकोध्यान धरत मन माहिं ॥

यह दीन वचन सुनते ही दुःखभञ्जन ने दयापूर्वक उस ब्राह्मण से कहा कि तुम धैर्य रक्खो मैं सब राजों का दुःख छुड़ा दूँगा।

चौ० धीरज बिन कारज नहिं होई। यह निश्चय जानो सब कोई ॥

यह वचन सुनते ही वह ब्राह्मण प्रसन्न होकर वसुदेवनन्दन को आशीर्वाद देने लगा। उसी समय नारद मुनि वीणा बजाते व हरिगुण गाते हुए द्वारकापुरी में पहुँचे। श्यामसुन्दर ने दण्डवत् करके उनको बड़े सम्मान से अपने पास सिंहासन पर बैठालकर पूछा—हे मुनिनाथ! कुछ नई बात हो तो सुनावो। राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डवों का कुछ हाल तुम्हें मालूम हो तो बतलावो। इन दिनों वह लोग क्या करते हैं? बहुत दिनों से हमने उनका समाचार नहीं पाया। यह बात सुनकर नारदजी बोले—हे महाप्रभो! अन्तर्यामिन्! आप सब जगत् का हाल जानकर दया की राह मुझसे पूछते हैं, तो सुनिए मैं अभी पाण्डवों के पास होकर चला आता हूँ। राजा युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई रात-दिन तुम्हारे ध्यान में रहकर इन दिनों राजसूय यज्ञ करने की इच्छा रखते हैं, पर उसका सम्पूर्ण होना तुम्हारे अधीन समझकर आठों पहर उनको यह अभिलाषा बनी रहती है कि द्वारकानाथ दयालु होकर आवें तो हमारा मनोरथ पूर्ण हो।

दो० याते बिलम न कीजिए अबहीं पहुँचो जाय। भक्तन को कारज करो माखनप्रभु यदुराय ॥

उसी समय राजा युधिष्ठिर के नेवता की चिट्ठी इस समाचार से मुरलीमनोहर के पास पहुँची कि हे महाप्रभो! ब्राह्मणों ने मुझसे राजसूय यज्ञ का संकल्प तो करा दिया, पर आपके बिना मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हो

सकता। मेरी लज्जा तुम्हारे हाथ है। जब श्यामसुन्दर ने पाण्डवों का संदेशा नारद मुनि से सुनकर उनकी चिट्ठी पढ़ी तब यदुवंशियों से पूछा कि सुनो भाई! जरासंध के कैदी राजों ने अपने छुड़ाने का संदेशा मुझे कहला भेजा है और नारदजी पाण्डवों के यहाँ जाने के लिए कहते हैं, इन दोनों बातों में पहिले क्या करना चाहिए। उनमें कोई यदुवंशी बोला कि महाराज! पहिले राजों की बंदी छुड़ाना उचित है। दूसरे ने कहा कि प्रथम पाण्डवों के मकान पर जाकर उनका यह यज्ञ सम्पूर्ण कराना चाहिए। यह सुनते ही वसुदेवनन्दन ने उद्धव से कहा—

चौ० उद्धव तुम हौ सखा हमारे। मन आँखिन से नहीं नियारे॥
दोउ ओर की भारी भीर। पहिले कहाँ चलें कहु बीर॥
उत राजा संकट में भारी। दुख पावत हैं आस हमारी॥
इत पांडव मिलि यज्ञ रचायो। ऐसे ही प्रभु बचन सुनायो॥

यह बात सुनते ही उद्धव ने श्यामसुन्दर से हाथ जोड़कर विनय किया—हे महाप्रभो! मेरा बड़ा भाग्य है, जो आप अन्तर्यामी होकर दया की राह मुझसे पूछते हैं।

—:०:—

इकहत्तरवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का पाण्डवों के स्थान पर जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! उद्धव भक्त तीनों काल के जानने-वाले बोले—हे दीनानाथ! मेरे निकट पहिले पाण्डवों के पास चलकर उन्हें धैर्य देना उचित है। फिर वहाँ से भीमसेन व अर्जुन को साथ लेकर जरासंध को मारने के लिए जाना चाहिए, क्योंकि जरासंध दश हजार हाथी का बल रखता है, इसलिए अपने बराबर किसी को नहीं समझता। भीमसेन जरासंध के साथ कुश्ती लड़कर तुम्हारी कृपा से उसे मार डालेगा। मेरी समझ में जरासंध की मृत्यु भीमसेन के हाथ है।

दो० जरासन्ध को मार के राजन लेहु छुड़ाय। पांडुसुतन के यज्ञ को दूजो नहीं उपाय॥

हे वैकुण्ठनाथ! जब कैदी राजों के बालक रोकर अपने बाप को याद करते हैं तब उनकी माता धैर्य देकर उनसे कहती हैं कि हे बेटा! तुम मत रुदन करो, श्रीकृष्णजी आदिपुरुष भगवान् ने पृथ्वी का भार उतारने

के लिए अवतार लिया है। जिस तरह उन्होंने रामावतार में जानकी माता को रावण अधर्मी के यहाँ से छुड़ा लिया था उसी तरह जरासंध पापी को मारकर तुम्हारे पिता को छुड़ावेंगे। यह वही वैकुण्ठनाथ हैं, जो गजेन्द्र को ग्राह से और शंखचूड़ से गोपियों को छुड़ा लाये थे।

चौ० कंस भूप उनही पुनि मारचो। तात मात को कष्ट निवारचो॥
वे प्रभु हैं सबके सुखकारी। उनहीं को है लाज हमारी॥
दो० कष्ट सकल संसार को दूर करत क्षण माहि। तिन्हें तुम्हारो दुख हरत बार लागि है नाहिं॥
चौ० जो तुमको ऐसी विधि ध्यावैं। रैन दिवस तुम्हरो गुण गावैं॥
तिन्हपर कृपा वेगि प्रभु कीजै। तहाँ जाय उनकी सुधि लीजै॥
दो० रक्षपाल सब जगत के तुमहीं हौ गोपाल। मैंहू तुम्हरे शरण हूँ माखनप्रभु नँदलाल॥

हे दीनदयालो! उन सब राजों को जरासंध की बन्दी से छुड़ाना चाहिए। पर राजा युधिष्ठिर ने केवल तुम्हारे भरोसे पर राजसूय यज्ञ करने की इच्छा की है, नहीं तो पहिले वह अपने पराक्रम से सब राजों को अधीन कर लेते तब ऐसे कठिन यज्ञ का संकल्प करते।

चौ० तद्यपि उनपर कृपा तुम्हारी। वह है परम भक्त हितकारी॥
त्यहि कारण निश्चय मन आनै। कारज कठिन सहजकर मानै॥
दो० याते बेगि सिधारि कै कीजै उनको काज। तुमहीं को सब लाज है माखनप्रभु व्रजराज॥

जब तक जरासंध मारा न जावे या हार न माने तब तक राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता। उसके मारे जाने में दो अर्थ समझिए, एक तो राजा युधिष्ठिर का यज्ञ अच्छी तरह सम्पूर्ण होगा, दूसरे बीस हजार आठ सौ राजा बन्दी से छूटकर तुम्हारी कृपा से सुख पावेंगे। यह दोनों काम होने से तुम्हारा यश संसार में स्थिर रहेगा। राजसूय यज्ञ में सब काम राजों के सिवा दूसरा कोई नहीं कर सकता, सो वही राजा लोग छूटकर बड़े प्रेम से यज्ञ का काम करेंगे। इतने राजा इकट्ठे दूसरी जगह मिलना बहुत कठिन है। कोई मनुष्य लड़कर दशों दिशा जीत आवे तो भी इतने राजा इकट्ठे नहीं हो सकते। इसलिए पहिले इन्द्रप्रस्थ में चलिए और पाण्डवों से भेंट करके जैसा जानिए वैसा कीजिए। राजा जरासंध ऐसा गौ व ब्राह्मण का भक्त व दाता है कि उसके द्वार पर से कोई विमुख नहीं फिरता और जो बात कहता है उसे नहीं बदलता।

चौ० या कारण तुम वेगि सिधारो। शुभ कारज में बिलम न डारो॥
दो० जरासन्ध यह जानि है अपने मनमें भाव। पांडवसुत के काज को आये श्री यदुराव॥

उद्धव की यह सम्मति सुनकर जब श्यामसुन्दर व नारदजी व यदुवंशियों ने पसंद किया तब मुरलीमनोहर ने नारद मुनि से कहा—महाराज! तुम हमारी तरफ से जाकर पांडवों को कह देना कि हम तुम्हारे यहाँ आते हैं। उस ब्राह्मण को विदा करते समय कहा कि तुम सब राजों से कह दो कि वे लोग धैर्य रक्खें, हम जल्दी वहाँ पहुँचकर उन्हें बन्दी से छुड़ा देंगे।

दो० ऐसे अमृत बैन सुनि मन में भये हुलास। आयसु ले तबहीं चल्यो निज राजन के पास॥

जब उस ब्राह्मण ने सब राजों के पास पहुँचकर मुरलीमनोहर का संदेशा कह दिया तब वे सब प्रसन्न होकर चरणों का ध्यान करने लगे। नारदजी ने इन्द्रप्रस्थ में जाकर मुरलीमनोहर का संदेशा युधिष्ठिर से कहा। केशवमूर्ति ने राजा उग्रसेन के पास जाकर पाण्डवों के यहाँ जाने की उनसे आज्ञा ली और द्वारका की रक्षा के लिए बलरामजी को वहाँ छोड़ दिया। आप बहुत से यदुवंशी शूरवीर व सेना साथ लेकर इन्द्रप्रस्थ को कूच किया। पहले आठों पटरानियों को उत्तम-उत्तम पालकी व झप्पान पर बैठाकर और कई हजार हाथी जड़ाऊ हौदा व अम्बारी कसे हुए साथ में ले लिये। आप द्वारकानाथ जड़ाऊ रथ पर, जिसमें अति उत्तम घोड़े जुते हुए थे, बैठकर चले। हे परीक्षित! उस समय कई हजार घोड़े जड़ाऊ साज पहिने व अनेक सिंहासन व जड़ाऊ रथ कोतल इनके साथ चले जाते थे। उनकी शोभा कहाँ तक वर्णन करूँ। राह में जहाँ वह टिकते थे वहाँ बहुत अच्छा बाजार उनके साथ का लग जाता था। उस देश के राजा व प्रजा मोहनीमूर्ति का दर्शन मिलने से अपने-अपने लोचनों का फल पाते थे। जब वे लोग अनेक तरह की वस्तु मुरलीमनोहर को भेंट देते तब केशवमूर्ति उन लोगों को सम्मानपूर्वक विदा करते थे। जब इसी तरह श्यामसुन्दर सब छोटे व बड़ों को सुख देते हुए बन्दर व सूरत की राह से तीसरे दिन राजा युधिष्ठिर के सिवाने में पहुँचे तब किसी ने राजा युधिष्ठिर से आकर कहा कि महाराज! कोई राजा सेना लेकर तुम्हारे ऊपर चढ़ा आता है यह बात सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने

नकुल व सहदेव को समाचार लाने के लिए भेजा। जब नकुल व सहदेव को श्यामसुन्दर के आने का हाल मालूम हुआ और उन्होंने बड़े हर्ष से फिरकर यह समाचार राजा युधिष्ठिर को दिया तब वह बड़े आनन्द से अर्जुन व भीमसेन आदिक अपने चारों भाइयों, ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों को साथ लेकर आगे गये।

चौ० श्रीमुख देखि महा सुख पायो। तिहि सुख से सब दुख बिसरायो॥
हरि दर्शन की शीतलताई। तासों मन की तपन बुझाई॥

दो०रोम-रोम हर्षित भये कहत युधिष्ठिर राज। सुफल भयो संसार में जन्म हमारो आज॥

जैसे राजा युधिष्ठिर ने निकट पहुँचकर मुरलीमनोहर के चरणों पर गिरना चाहा वैसे ही द्वारकानाथ ने उनको अपने गले लगा लिया। श्यामसुन्दर राजा युधिष्ठिर को अपना बड़ा जानकर उनके चरणों पर गिर पड़े। ऐसी कृपा त्रिभुवनपति की देखते ही राजा युधिष्ठिर बड़े प्रेम से मोहनप्यारे को गोद में उठाकर प्यार करने लगे और बड़े हर्ष से विधिपूर्वक उनकी पूजा की।

दो० रूपअनूपमदेखिकै मुदितभयेमनमाहिं। नयननिमिषलागे नहीं तनकी सुधि कछु नाहिं॥

वसुदेवनन्दन ने भीमसेन व अर्जुन से गले मिलकर उन्हें सुख दिया और नकुल व सहदेवजी मुरलीमनोहर के चरणों पर गिरे। उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया।

चौ० पुनि विप्रन को माथ नवायो। कुशल पूछ के हर्ष बढ़ायो॥

जब राजा युधिष्ठिर पीताम्बर बिछाते चन्दन व गुलाब छिड़काते सोने व चाँदी के फूल लुटाते अनेक तरह के बाजन बजाते हुए बड़े हर्ष से श्यामसुन्दर को नगर में लिवा ले गये तब वहाँ के रहनेवाले स्त्री व पुरुष अपने अपने द्वार व खिड़की व कोठों पर बैठे हुए श्यामसुन्दर के दर्शन के लिए अभिलाषा रखते थे। उन्होंने मोहनीमूर्ति की छवि देखकर अपने लोचनों का फल पाया। सुगन्धित पुष्प व रत्नादिक द्वारकानाथ पर निछावर करके एक स्त्री दूसरी से कहने लगी कि बड़ा भाग्य श्यामसुन्दर की स्त्रियों का है जो रात-दिन इनके साथ भोग-विलास करके अपना जन्म सफल करती हैं। ब्राह्मणों ने वैकुण्ठनाथ को आशीर्वाद के साथ

यज्ञोपवीत दिया। दूसरे नगरवासियों ने अपने-अपने वित्तानुसार रत्नादिक उनको भेंट दिया। वसुदेवनन्दन ने यथायोग्य सबका सम्मान किया। जब त्रिभुवनपति सब छोटे व बड़ों को आनन्द देते हुए राजा युधिष्ठिर के रत्नजटित महल में गये तब कुन्ती प्रेम से उनको देखने के लिए दौड़ी। मोहनीमूर्ति का चन्द्रमुख देखते ही प्रसन्न हो गई। जब श्याम सुन्दर ने अपना शिर कुन्ती के चरणों पर रखकर दण्डवत् किया तब उसने उनका शिर उठाकर छाती से लगा लिया और उन्हें गोद में बैठाकर प्रेम के आँसू बहाने लगी। जब द्रौपदी ने आकर द्वारकानाथ के चरणों पर शिर रक्खा तब मुरलीमनोहर ने अपना हाथ उसके शिर पर रखकर उसे व अपनी बहिन सुभद्रा को अशीश दिया। जब रुक्मिणी आदि आठों पटरानियों ने कुन्ती के चरणों पर अपना शिर रक्खा तब कुन्ती माता ने उनको बड़ी प्रीति से छाती में लगाकर अपने पास बैठाया।

चौ० बड़ी देर लौं भेंटत रहे। बहुत नीर नयनन ते बहे।
बारंबार धरें जगदीशा। कुन्ती के चरणन पर शीशा॥
वह उठायके कंठ लगावैं। रोम-रोम बहु आनँद पावैं॥
द्रोणाकृपाचार्य की नारी। परम पुनीत महा शुभकारी॥
हरिजू तिन्हें नवायो शीशा। ह्वै प्रसन्न उन दई अशीशा॥

जब सब कोई श्यामसुन्दर व रुक्मिणी आदि से भेंट कर चुके तब कुन्ती ने द्रौपदी व सुभद्रा से कहा कि तुम लोग आदरपूर्वक नित्य आठों पटरानियों का शिष्टाचार किया करो। राजा युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई अन्तःकरण में वसुदेवनन्दन की भक्ति रखते थे, प्रेम से उनका सम्मान करने लगे। उन पाँचों में अर्जुन बड़ी मित्रता व प्रीति कृष्णचन्द्र से रखकर सदा उनके साथ एक रथ पर अहेर खेलने जाया करता था। हे परीक्षित्! इन्द्रप्रस्थ में वसुदेवनन्दन के आने से ऐसा सुख व आनन्द वहाँ के लोगों को प्राप्त हुआ जिसका हाल मुझसे वर्णन नहीं हो सकता। जिस तरह चन्द्रमा का प्रकाश राजा व कंगाल दोनों के घर में एकसा रहता है उसी तरह इन्द्रप्रस्थ में श्यामसुन्दर की दया से छोटे-बड़ों के घर में प्रतिदिन नये-नये सुख व आनन्द होने लगे।

दो०या विधि परम हुलास सों कीन्हों तहाँ निवास। पाँडुसुतनके काजको माखनप्रभुसुखरास॥

बहत्तरवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का जरासन्ध को मारने के लिए जाना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! जब इसी तरह कई महीने श्यामसुन्दर को आनन्दपूर्वक वहाँ बीत गये और यज्ञ की कुछ चर्चा नहीं आई तब एक दिन राजा युधिष्ठिर अपनी सभा में जहाँ पर बहुत से क्षत्रिय, ऋषीश्वर व ब्राह्मण बैठे थे उठकर श्यामसुन्दर के सम्मुख खड़े हो गये और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे कहा—हे त्रिभुवनपते ! ब्रह्मा व महादेव आदि सब देवताओं के मालिक ! तुम्हारे चरणों का दर्शन बड़े-बड़े योगियों व ऋषीश्वरों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता, सो आपने मुझे अपना दास जानकर घर बैठे दर्शन दिया।

चौ० तुम ऐसी प्रभु लीला करो। काहू से नहिं जाने परो॥
माया में भूला संसार। तुमसे करत लोकव्यवहार॥
जो तुमको सुमिरत जगदीश। उसको जानो अपना ईश॥

हे दीनानाथ ! तुम्हारी दया से जगत् में मेरी सब इच्छा पूर्ण हुई, पर एक अभिलाषा और रखता हूँ, आज्ञा हो तो विनय करूँ। श्यामसुन्दर बोले—हे राजन् ! जो इच्छा तुमको हो सो बतलाओ, वह भी पूरी हो जायगी। यह वचन सुनते ही राजा युधिष्ठिर प्रसन्न होकर बोले—हे द्वारकानाथ ! राजसूय यज्ञ करने की इच्छा रखता हूँ। सब मुनियों व ऋषीश्वरों को भी इसमें प्रसन्नता है, पर तुम्हारी कृपा के बिना यह कठिन यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हो सकता। जिस तरह आपने कई बेर महाविपत्ति में हमारी सुधि लेकर मेरा मनोरथ पूर्ण किया उसी तरह अब भी अपनी दया से यज्ञ अच्छी तरह सम्पूर्ण करा दीजिए तो उसका फल तुम्हारे अर्पण करके भवसागर पार उतर जाऊँ। संसार में हम पाँचों भाई तुम्हारे दास कहलाते हैं, इसलिए संसारी लोग ऐसा कहेंगे कि श्यामसुन्दर की दया से पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया था। यह भी तुम्हारे चरणों का ही प्रताप है, जो मुझे यह इच्छा हुई। मैं इस बात का विश्वास रखता हूँ कि जो तुम्हारे शरण में आया उसका कोई मनोरथ बाकी नहीं रहता।

चौ० जाविधि मन्त्र देहु यदुराजा। आयसु मानि करौं स्वइ काजा॥

दो०तुमहीं सब काजन विषे हमको होत सहाय। और हमारे कौन है माखनप्रभु यदुराय॥

यह अधीन वचन सुनते ही लक्ष्मीपति ने हँसकर कहा—हे राजन्! तुम्हारा कहना मैंने मान लिया। यह काम बहुत उत्तम है। सब देवता, पितर, ऋषीश्वर व मुनि तुमसे इस यज्ञ कराने की चाह रखते हैं। जब तुमने अपने प्रेम से मुझे वश कर लिया तब तुमको राजसूय यज्ञ या इससे भी कोई बड़ा काम करना कौन कठिन है। जिसके अधीन मैं हुआ उसकी कुछ इच्छा बाकी नहीं रहती। अर्जुनादि तुम्हारे चारों भाई ऐसे बलवान् हैं जिनसे कोई दूसरा राजा युद्ध नहीं कर सकता। लोकपालों को भी ऐसी सामर्थ्य नहीं है जो मेरे सामने उनसे लड़ सकें। इसलिए तुम अपने भाइयों को आज्ञा दो कि चारों दिशाओं में जाकर सब राजों को जीतने के उपरांत बहुत सा द्रव्य ले आवें तब तुम आनन्द से यज्ञ करो। यह वचन सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने बहुत सी सेना साथ लेकर अर्जुन को उत्तर, भीमसेन को पूर्व, सहदेव को दक्षिण, नकुल को पश्चिम दिशा में जाने की आज्ञा दी। लोग उनकी आज्ञानुसार चारों दिशा में गये। जब चारों भाई कुछ दिन में वैकुण्ठनाथ के प्रताप से सातों द्वीप, नवखण्ड व दशों दिशाओं के राजों को जीतकर बहुतसा द्रव्य ले आये तब राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर वसुदेवनन्दन से विनय किया—हे महाप्रभो! यह कार्य तो तुम्हारी कृपा से पूर्ण हुआ, अब क्या आज्ञा होती है? यह वचन सुनकर उद्धव भक्त ने राजा युधिष्ठिर से कहा—महाराज! सब देश के राजों को तुम्हारे भाई जीत आये। पर जब तक मगधपति राजा जरासन्ध आपके अधीन न होगा तब तक तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हो सकता और वह ऐसा बलवान् व धर्मात्मा है जिसे कोई संसार में जीत नहीं सकता।

चौ० जो तुम युद्ध करो रणमाहीं। वासों जीति सकोगे नाहीं॥
एक बात अपने मन ल्याऊँ। सो अब तुमसे कहि समझाऊँ॥
विप्रवेष धरिकै हरि जाहीं। अर्जुन भीमसंग तिहि पाहीं॥
जरासन्ध दाता अति भारी। जाको यश तिहुँलोक मँझारी॥
वासे जो माँगे कछु भिक्षा। देत वही जो मन की इच्छा॥
यद्यपि शीशहु माँगै कोई। देत बार लाइहि नहि सोई॥

विप्ररूप जब वापै जैहैं। युद्धदान ताही क्षण पैहैं ॥

दो० राजन इस संसार में सुस्थिर है कछु नाहिं। तद्यपि दाता पुरुष को नाम रहै जग माहिं॥

जब यह वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर उदास हो गये तब त्रिभुवनपति उन्हें धैर्य देकर बोले—हे राजन्! तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। उद्धव के कहने प्रमाण भीमसेन व अर्जुन अपने दोनों भाइयों को हमारे साथ कर दो किसी तरह बल व छल से हम लोग राजा जरासन्ध को मार आवेंगे। जब यह बात सुनकर युधिष्ठिर ने भीमसेन व अर्जुन को मुरलीमनोहर के साथ जाने की आज्ञा दी तब लक्ष्मीपति उन दोनों को साथ लेकर ब्राह्मण वेष में मगधदेश को गये। वे तीनों ब्राह्मणरूप अति सुन्दर ऐसे तेजवान् मालूम देते थे जैसे सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण अपना तन धारण किये हों। जब कई दिन में वे लोग मध्याह्न समय ब्राह्मणरूप से, जो अतिथि के भोजन कराने का समय है, राजा जरासन्ध के द्वार पर जाकर खड़े हुए तब एक द्वारपालक ने उनको देखते ही राजा के पास जाकर कहा—महाराज! तीन ब्राह्मण अति तेजवान् आपसे भेंट करने के लिए आकर द्वार पर खड़े हैं। आज्ञा हो तो भीतर आवें। यह वचन सुनते ही जरासन्ध बहुत प्रसन्न होकर आप द्वार पर चला आया और श्यामसुन्दर आदिक ब्राह्मणरूप को दण्डवत् करके भीतर ले गया। सम्मानपूर्वक अपने सिंहासन पर बैठाकर उसने कहा—महाराज! जिस तरह आप लोगों ने दया करके यहाँ आकर मुझे कृतार्थ किया उसी तरह चल कर भोजन कीजिए तो तुम्हारा चरण धोकर अपना परलोक बनाऊँ।

चौ० विप्रन की सेवा जो करै। भवसागर से जल्दी तरै ॥

जरासन्ध की यह बात सुनकर श्यामसुन्दर बोले—हे राजन्! हम लोग बहुत दूर से आपका यश सुनकर यहाँ आये हैं, जो हमको इच्छा है सो दीजिए। शूरवीरों को अपना शिर और दानियों को अपना प्राण तक दे डालने में कुछ लोभ नहीं रहता। देखो, एक कबूतर व्याधा के लिए इस तरह अपना प्राण देकर तर गया था। एक व्याधा माघ महीने में पक्षी बझाने वन में गया। पानी बरसने व आँधी चलने से कोई पक्षी

उसको नहीं मिला। जब सरदी व भूख से अति व्याकुल होकर अपने घर आने लगा तब उसने एक कबूतरी का, जो सरदी से अचेत होकर पृथ्वी पर पड़ी थी, उठा लिया और रात हो जाने से अपने घर न पहुँचकर एक बरगद के नीचे बैठ रहा। जब आधीरात को उस कबूतरी का पति जो उसी वृक्ष पर रहता था अपनी स्त्री को याद करके पुकारने लगा तब उस कबूतरी ने चैतन्य होकर कहा—हे स्वामिन्! अब तुमको मेरे लिए सोच करना उचित नहीं है। अतिथि का दुःख जो सरदी व भूख से व्याकुल है धर्म की राह छोड़ाना चाहिए। जब यह सुनकर कबूतर को ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वह कहीं से अग्नि अपनी चोंच में ले आया और लकड़ी अपने खोते से गिराकर वहाँ आग लगा दी तो उस व्याधा की सरदी छूट गई। फिर वह कबूतर अपनी इच्छा से आग में गिर पड़ा और बहेलिये ने उसको खा लिया। तब वह कबूतरी बहेलिये से बोली कि अब मुझे भी भूँजकर खा ले, बिना पुरुष की स्त्री का जीना अच्छा नहीं होता। जब बहेलिये ने कबूतरी को भी खाकर अपनी भूख मिटाई तब परमेश्वर ने उन दोनों पक्षियों का ऐसा धर्म देखकर उनको वैकुंठ में बुलाने के लिए विमान भेज दिया। वे दोनों पक्षी पार्षदों से विनय करके उस बहेलिये को भी अपने विमान पर बैठाकर परमपद को ले गये। इसके सिवा तुमने सुना होगा कि राजा हरिश्चन्द्र ऐसा धर्मात्मा हुआ जिसने सब राज्य व धन अपना नारायणजी के नाम पर ब्राह्मणों को दे डाला था सो आज तक उसकी कीर्ति संसार में छा रही है। विस्तारपूर्वक उसकी कथा कहते हैं, सुनो। एक समय राजा हरिश्चन्द्र के नगर में काल पड़ने से प्रजा लोग भूखों मरने लगे। तब उसने भूषण व वस्त्रादिक अपनी वस्तु बेंचकर प्रजा का पालन किया। उन्हीं दिनों राजा हरिश्चन्द्र संध्या समय अपनी स्त्रीसमेत भूखे बैठे थे। उसी समय विश्वामित्र ऋषीश्वर ने राजा के धर्म की परीक्षा लेने के लिए वहाँ आकर कहा कि हे राजन्! मुझे इच्छापूर्वक द्रव्य देकर कन्यादान का फल लो। यह बात सुनते ही हरिश्चन्द्र ने घर में ढूँढ़ा तो जो कुछ भूषण व वस्त्रादिक उनके स्त्री व पुत्र का बचा था वह लाकर ऋषीश्वर को दे दिया। उसे

देखकर विश्वामित्र बोले—महाराज! इतने में मेरा काम नहीं होगा। यह सुनते ही राजा ने दासी व दास जो कुछ बचे थे उन्हें भी बेचकर ऋषीश्वर के पास ले आये। केवल एक-एक धोती अपनी स्त्री व पुत्र के पास रख लिया। तब फिर विश्वामित्र बोले कि इतने द्रव्य से मेरा अर्थ नहीं होगा। मुझे कोई दूसरा तेरे समान धर्मात्मा संसार में दिखलाई नहीं देता जिसके पास जाकर माँगू। एक डोम धर्मपात्र है आज्ञा हो तो उससे जाकर माँगूँ, पर वहाँ जाते मुझे लज्जा मालूम होती है कि तुम समान दानी राजा को छोड़कर उससे क्या माँगूँ। यह बात सुनकर हरिश्चन्द्र ने ऋषीश्वर को अपने साथ लिवा लिया और उस डोम चांडाल के घर जाकर कहा कि हे भाई! तुम हमको अपने यहाँ गिरों रक्खो और इन ऋषीश्वर को इच्छापूर्वक द्रव्य दो। यह बात सुनकर वह डोम बोला—

चौ० कैसे टहल हमारी करिहौ। राजस तामस मन से हरिहौ॥
तुम हौ नृपति तेज बलधारी। महा नीच है टहल हमारी॥

हे राजन्! तुमको श्मशान पर रहकर मुर्दा जलानेवालों से पैसा लेकर हमारे घर पहुँचाना होगा और हमारे मकान की चौकीदारी करनी पड़ेगी। तुमसे ये दोनों काम हो सकें तो हम इस ब्राह्मण को मुहँमाँगा द्रव्य देकर तुम्हें गिरों रक्खें। यह वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र ने कहा—बहुत अच्छा, हम वर्षदिन तक ये दोनों काम तुम्हारे कर देंगे। यह वचन सुनते ही उस डोम ने इच्छापूर्वक विश्वामित्र को द्रव्य देकर विदा किया। तब राजा हरिश्चन्द्र वहाँ रहकर उनके दोनों काम करने लगे और उनकी रानी पुत्र समेत उसी नगर में किसी गृहस्थ के यहाँ रहकर सेवकाई से अपना दिन बिताने लगी। परमेश्वर की इच्छा से कुछ दिन बीते राजा हरिश्चन्द्र का बेटा मर गया और रानी ने उसकी लोथ गङ्गा के किनारे ले जाकर जलाने की इच्छा की। तब हरिश्चन्द्र ने आकर अपनी स्त्री से कहा कि तुम इस मुर्दे का पैसा दे दो तो लोथ जलाओ। यह वचन सुनते ही रानी रोकर बोली—महाराज! यह तुम्हारे पुत्र की लोथ जलाने को लाई हूँ, मेरे पास सिवा एक धोती के और कुछ नहीं है। यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बोले—हे प्रिय! मैं पैसा न लूँ

तो मेरा धर्म जाता रहे, इसलिए अपने पुत्र को भी बिना पैसा लिये नहीं जलाने दूँगा। यह धर्मरूपी बात सुनते ही जैसे रानी ने अपना अंचल फाड़कर पैसे के बदले देना चाहा वैसे ही नारायणजी करुणानिधान ने ऐसा धर्म व सत्य राजा हरिश्चन्द्र का देखकर एक जड़ाऊ विमान उसके लिए श्मशान पर भेज दिया और पीछे से आप भी वहाँ गये। राजा को दर्शन देकर उसके बेटे रोहिताश्व को अपनी महिमा से जिला दिया। राजा हरिश्चन्द्र को उसकी रानी समेत विमान पर बैठाकर कहा कि वैकुण्ठ में चलो। तब हरिश्चन्द्र ने त्रिभुवनपति से हाथ जोड़कर कहा—हे महाप्रभु! पतितपावन! जिस तरह आपने मुझे अपना दास जानकर दर्शन दिया उसी तरह मेरे स्वामी डोम को वैकुण्ठ में ले चलिये तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो। यह वचन अपने भक्त का सुनते ही लक्ष्मीपति उस चाण्डाल डोम को भी परिवार समेत उसी विमान पर बैठाकर वैकुण्ठ में ले चले। राजा हरिश्चन्द्र को अमर पदवी दी। राजा रन्तिदेव ऐसा धर्मात्मा हुआ जिसने अड़तालीसवें दिन कुछ अनाज भोजन करने के लिए पाया था, वह भी ब्राह्मण को खिलाकर आप भूखा रह गया। उसी धर्म से मुक्ति पदवी पर पहुँचा। राजा बलि जब वामन महाराज को अपना सब राज्य व धन देकर शरीर देने के लिए तैयार हुआ तब उसने सुतललोक का राज्य पाया, जिसका यश आज तक संसार में छा रहा है। राजा शिवि ने कबूतर के बदले अपने शरीर का मांस काटकर दे डाला। उद्दालक ऋषीश्वर ने जो छठवें महीने भोजन करते थे, आप न खाकर वह भोजन अतिथि को खिला दिया और आप भूखे रह गये, उस अन्नदान के प्रताप से विमान पर बैठकर वैकुण्ठधाम को पहुँचे। दधीचि ऋषीश्वर ने अपना हाड़ इन्द्रादिक देवताओं को दे डाला था।

चौ० ऐसे दाता भये अपार। जिनका यश गावत संसार॥

हे राजन्! इन लोगों के सिवा और बहुत ऐसे दानी हुए जिन्होंने अपना धन व प्राण देने में कुछ लोभ नहीं किया। उनका हाल कहाँ तक तुमसे वर्णन करूँ। जिस तरह पिछले युगों में वे लोग धर्मात्मा होते आये हैं उसी तरह तुम भी इस युग में दानी उत्पन्न हुए। हमारी इच्छा

पूर्ण करोगे तो तुम्हारा यश भी संसार में स्थिर रहेगा। यह वचन सुनकर और उनके चन्द्रमुख देखकर जरासन्ध ने समझा ये लोग ब्राह्मण नहीं हैं, राजकुँवर मालूम होते हैं, इसलिए प्राण भी माँगें तो देना चाहिए जिसमें मेरा धर्म बना रहे। राजा बलि ने शुक्र पुरोहित के बर्जने पर भी वामनजी को तीनों लोकों का राज्य दे डाला था, सो आज तक उसका यश छा रहा है। अपना शरीर पालन करने में बड़ाई नहीं मिलती, परोपकार करने से ही यश प्राप्त होता है। ऐसा विचारकर जरासंध श्यामसुन्दर से बोला—ऐ द्विजराज! पहिले तुम लोग अपना नाम निष्कपट बतलाकर जिस वस्तु की इच्छा रखते हो सो माँगो, अपने प्राण तक देने में भी लोभ नहीं करूँगा। यह वचन सुनकर श्रीकृष्णजी बोले—हे राजन्! तुम सच पूछते हो तो मैं यदुवंशी श्रीकृष्ण हूँ, ये दोनों भीमसेन व अर्जुन हमारे फूफा के बेटे हैं। मेरी व तुम्हारी पहिले भी मथुरा में भेंट हुई थी, तुम मुझको पहिचानते होगे। मैं तुम्हारे यहाँ भिक्षा लेने नहीं आया, अकेली अकेला युद्धदान माँगने आया हूँ, इसके सिवा और कुछ नहीं चाहता। यह सुनते ही जरासन्ध प्रसन्न होकर बोला—बहुत अच्छा, मैंने तुम्हारा कहना माना, पर तुम मेरे सामने से भागकर द्वारका जा बसे हो, इसलिए तुमसे लड़ते हुए मुझे लज्जा आती है। अर्जुन की अवस्था छोटी है और यह वर्ष दिन तक हिजड़ा बनकर राजा विराट के यहाँ रहा था, इससे क्या लड़ूँ। भीमसेन के साथ, जो मेरे बराबर का है, लड़ूँगा। पहिले आप लोग मेरे यहाँ भोजन करके पीछे से धर्मयुद्ध कीजिए। जब श्यामसुन्दर ने भीमसेन व अर्जुन समेत राजा जरासन्ध के यहाँ छत्तीस प्रकार के व्यंजन भोजन किया तब राजा जरासन्ध ने दो गदा लोहे की मँगवाई और भीमसेन को ब्राह्मण का वेष छुड़ाकर एक गदा उसको दी और एक आप ली। जब दोनों शूरवीर, जो दश-दश हजार हाथी का बल रखते थे, नगर के बाहर जाकर अखाड़े में खड़े हुए तब जरासन्ध ने कहा—हे भीमसेन! तुम मेरे मकान पर ब्राह्मणरूप से आये थे, इसलिए पहिले तुम गदा चलाओ। यह सुनकर भीमसेन बोला—हे राजन्! अब धर्मयुद्ध में ज्ञान चर्चा उचित नहीं है, जो चाहे सो गदा चलावे। जब ऐसा कहकर दोनों

वीर गदायुद्ध करने लगे तब एक दूसरे का वार गदा पर रोककर अपना अंग बचा लेता था। लड़ते समय भीमसेन का श्वास पवन के पुत्र होने से नहीं फूलता था, पर जरासंध गदायुद्ध उससे अच्छा जानता था और फुरती रखता था। जब इसी तरह युद्ध करते हुए संध्या हो गई और कोई नहीं हारा तब दोनों वीर राजमंदिर पर चले आये और एक साथ भोजन करके सो रहे। प्रातःसमय फिर उठकर उसी तरह गदायुद्ध किया। जब लड़ते-लड़ते दोनों गदा टूटकर चूर हो जाती थी तब वह दूसरी गदा मँगाकर लड़ते थे।

दो० दिनमें काज करें नहीं बिना युद्ध कछु और। रैनि समय मिल बैठकर खान पान यक ठौर॥

जब इसी तरह लड़ते-लड़ते सब गदा टूट गईं तब मल्लयुद्ध करने लगे। छब्बीसवें दिन जरासंध ने एक मुक्का भीमसेन की छाती में ऐसा मारा कि वह व्याकुल हो गया। तब उसने रात को कृष्णचन्द्र से विनय किया—महाराज! जरासन्ध बड़ा बलवान् है, अब मैं उससे लड़ने की सामर्थ्य नहीं रखता, कल्ह भाग जाऊँगा, मेरी लज्जा तुम्हारे हाथ है। यह वचन सुनकर जैसे ही द्वारकानाथ ने अपना हाथ भीमसेन की छाती पर फेर दिया वैसे ही उसकी सब पीड़ा दूर हो गई और उसको छाती में लगा लिया। कुछ बल अपना देकर उससे कहा कि लड़ते समय तुम मेरा संकेत समझकर जरासन्ध को मार डालना। जब सत्ताइसवें दिन फिर दोनों शूरवीर लड़ने लगे तब दैत्यसंहारण ने भीमसेन को एक तिनका दिखलाकर बीच में से चीर डाला। पवनसुत ने उसका भेद समझकर श्यामसुन्दर के बल देने से जरासन्ध को उठाकर पटक दिया और एक जंघा उसकी पैर से दबाकर दूसरी जंघा पकड़कर चीर डाला। उसका शरीर बीच में जोड़ा हुआ था, आधोआध होकर वह मर गया। जरासन्ध के मरते ही देवताओं ने प्रसन्न होकर भीमसेन आदि पर फूल बरसाये और अनेक बाजे बजाकर जयजयकार करने लगे। श्यामसुन्दर व अर्जुन ने भीमसेन की भुजा पूजकर उसकी बड़ाई की।

दो० जरासन्ध या विधि हत्यो भीमसेन के हाथ। सबलोगनको सुख दियो माखनप्रभु यदुनाथ॥

जब जरासन्ध के मरने का समाचार नगर में पहुँचा तब उसकी रानी

रोती पीटती हुई आकर श्यामसुन्दर से बोली–महाराज ! तुम धन्य हो जो ऐसा कर्म तुमने किया। जिसने तुमको सर्वस्व दिया उसका प्राण तुमने लिया। जो कोई अपना तन व धन तुम्हारे भेंट करता है उसके साथ तुम ऐसी भलाई करते हो जैसी राजा बलि के साथ किया था। जब रानी ने अपने पति के लिए अति विलाप किया तब श्यामसुन्दर ने उसे धैर्य देकर विदा कर दिया। मगधपति का बेटा सहदेव वसुदेव-नन्दन को परमेश्वर जानकर उनकी शरण में आया तब द्वारकानाथ ने जरासन्ध की क्रिया-कर्म होने के उपरांत सहदेव को राजगद्दी पर बैठाकर अपने हाथ से तिलक लगाया और धैर्य देकर बोले–हे बेटा ! तुम धर्मपूर्वक राज्य करके गौ-ब्राह्मण व प्रजा का पालन करो।

दो०जो नरेश हैं बन्दि में ते सब देव छुड़ाय। आनँद सों निज देश में राज्य करो चितलाय॥

तिहत्तरवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का बीसहजार आठसौ राजाओं का छुड़ाना।

शुकदेवजी ने कहा–हे परीक्षित ! जब श्यामसुन्दर सहदेव को राज्य-गद्दी देकर उसे अपने साथ लिये हुए जहाँ पर सब राजा कैद थे आये तो क्या देखा कि एक गड़हा पहाड़ की खोह के समान खोदा हुआ है। उसमें सब राजा बंद हैं और एक भारी पत्थर उसके द्वार पर रक्खा है। सहदेव ने मुरलीमनोहर की आज्ञानुसार सब राजाओं को खोह से बाहर निकलवाकर उनके सामने खड़ा किया। वे लोग बेड़ी व हथकड़ी पहिनने और नख व बाल बढ़ने से बहुत दुःखी थे। नया जन्म पाकर हरि-चरणों पर गिर पड़े और मोहनीमूर्ति का दर्शन पाते ही अपना सब दुःख भूल गये। बड़े प्रेम से हाथ जोड़कर विनय किया–हे दीनानाथ ! आपने दयालु होकर बड़ी कृपा की, जो यहाँ आकर हमारी सुधि ली, नहीं तो इस कैद से छूटना बहुत कठिन था। अब तुम्हारे दर्शन पाने से हम लोगों का पिछला दुःख भूल गया।

दो०ऐसी विधि राजा सबै बार बार बलि जाहिं। माखनप्रभु की लाज से शीश उठावैं नाहिं॥

वृन्दावनविहारी यह दशा उन राजाओं की देखते ही दयालु होकर

जैसे संकेत से बतलाया वैसे ही सहदेव ने उन लोगों की हथकड़ी व बेड़ी कटवाकर क्षौरकर्म कराके स्नान कराया, छत्तीस प्रकार के व्यंजन खिलाकर उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाये और अनेक तरह के हथियार बँधवाकर श्यामसुन्दर के पास ले आया। उस समय द्वारकानाथ ने अपने चतुर्भुजीरूप से शंख चक्र गदा, पद्म लिये हुए जैसे उन लोगों को दर्शन दिया वैसे ही उन लोगों के हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो गया। तब उन राजाओं ने वैकुण्ठनाथ के सामने हाथ जोड़कर बड़े प्रेम से आँसू बहाते हुए विनय किया—हे दीनानाथ! त्रिभुवनपति! सब जीवों के उत्पत्ति व पालन करनेवाले! तुम्हारे आदि व अन्त को कोई नहीं जानता। हम लोग संसारी जीवों का, जो भवजाल में फँस रहे हैं, तुम्हारे सिवा कोई दूसरा इस फन्दे से बाहर निकालनेवाला नहीं है। आप चाहते तो द्वारका में बैठे हुए अपनी इच्छा से राजा जरासन्ध को मारकर हमें छुड़ा देते। केवल अपनी कृपा से यहाँ आकर हमें कृतार्थ किया, नहीं तो तुम्हारे चरणों का दर्शन बड़े-बड़े देवता व ऋषीश्वरों को तप व जप करने पर भी जल्दी ध्यान में नहीं मिलता। हे महाप्रभु! आपको हमारी दण्डवत् पहुँचे। अब हम लोगों का मन राज्य करने को न चाहकर यह इच्छा रखते हैं कि आठों पहर आपके नाम का स्मरण व चरणों का ध्यान करके तुम्हारी लीला व कथा सुना करें, जिसमें इस अँधियारे कुएँ, माया-मोह, स्त्री व पुत्र से बाहर निकलकर भवसागर पार उतर जावें। जरासन्ध ने हमारे साथ बड़ा सलूक करके अपने यहाँ कैद किया था, जिस कारण हम लोगों को तप व योग का फल मिलकर तुम्हारे चरणों का दर्शन प्राप्त हुआ।

दो० परब्रह्म तुम ब्रह्म हौ वासुदेव घनश्याम। माखनप्रभु गोविन्द को हित सों करें प्रणाम ॥

यह ज्ञान भरा हुआ वचन सुनकर लक्ष्मीपति बोले कि अभिमानी राजाओं को इसी तरह दुःख मिलता है जिस तरह तुमने पाया। जिसके मन में दया, धर्म और मेरे चरणों की भक्ति रहती है वे लोग संसार में यश पाकर अन्त समय मुक्त होते हैं। बन्ध व मोक्ष अपने कर्मानुसार मिलता है। जो कोई क्रोध लोभ मोह को अपने वश रखकर कुकर्म न

करे उसे घर व वन दोनों जगह का रहना बराबर है। पिछले युगों में अभिमान ने राजा नहुष, वेणु, रावण आदि को राजगद्दी से खो दिया। जिन्होंने अहंकार छोड़कर मेरी शरण पकड़ी वे लोग विभीषण, हनुमान्, अम्बरीष व प्रह्लाद के समान अपनी मनोकामना को पहुँचकर मेरे पास बने रहते हैं। अभिमानी मनुष्य बहुत नहीं जीता। राजा सहस्राबाहु को अपने बल व हजार भुजों का अभिमान हुआ था, सो परशुरामजी ने उसकी भुजाएँ फरसे से काटकर मार डाला, भौमासुर, बाणासुर व कंसादिक अनेक अभिमानी राजा नष्ट हुए हैं।

चौ० सो मति गर्व करो जनि कोई। छूटै गर्व तौ निर्भय होई॥

इसलिए तुम लोग दुःख व सुख को समान समझकर सदा मेरे स्मरण व ध्यान में मग्न रहो तो तुम्हें दुख नहीं होगा।

चौ० जो जन चित लावै मो माहीं। हमहूँ सदा रहैं त्यहि पाहीं॥
जौं सब जन्म पाप में रहै। फिर वह शरण हमारी गहै॥

दो० ताको मैं अति प्रीति कर देत आपनो धाम। यामें दुख व्यापै नहीं रहे सदा विश्राम॥

यह सुनकर सब राजाओं ने विनय किया कि आप दयालु होकर हमें अपने जप व पूजा की विधि बतला दीजिए तो उसी तरह तुम्हारे स्मरण व ध्यान में लीन रहकर भवसागर पार उतर जावें। यह सुनकर वसुदेव-नन्दन ने कहा कि सब वेद व शास्त्र का मुख्य ज्ञान यह है कि किसी क्षण मुझे न भूलकर मेरी कथा व लीला सुना करो। संसारी व्यवहार स्वप्नवत् समझकर मेरे नाम पर यज्ञ व होम किया करो। प्रजा का पालन ब्राह्मण, साधु व महात्माओं की सेवा करो, झूठ मत बोलो। काम, क्रोध, मोह व लोभ को अपने वश रखकर कुकर्म से रहित रहो तो तुम लोगों को राज्य भोगने पर भी किसी तरह का दुःख न होकर अन्त समय वैकुण्ठ धाम मिलेगा।

चौ० जग में बुद्धिमान है सोई। जाके मोह लोभ नहिं होई॥

दो० ज्ञानीजन न्यारो रहै ऐसी विधि जग माहिं। ज्यों अम्बुज जलमें बसै जलको परसत नाहिं॥

अब तुम लोग अपने-अपने घर जाकर बालबच्चों का सुख देखो। राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का आरम्भ करके तुम लोगों को नेवता दिया है, सो हमारे पहुँचने से पहिले हस्तिनापुर में जावो। जब उनकी आज्ञा

नुसार सब राजा लोग अपने-अपने घर जाने को तैयार हुए तब सहदेव ने रथ, घोड़े, डेरे व सेवकादिक अपने यहाँ से उनके संग कर दिये। वैकुण्ठनाथ ने सबके गले में एक एक माला मोतियों की अपने हाथ से पहिनाई। जब वे सब राजा बड़े हर्ष से श्यामसुन्दर का यश गाते हुए अपने देश को गये और सहदेव ने त्रिभुवनपति, भीमसेन व अर्जुन का पूजन विधिपूर्वक किया तब श्रीकृष्णजी सहदेव को साथ लेकर मगध-देश से इन्द्रप्रस्थ को चले। जब हस्तिनापुर के निकट पहुँचकर वसुदेव-नन्दन ने पाञ्चजन्य, भीमसेन ने पुण्डरीक और अर्जुन ने देवदत्त शंख अपना-अपना बजाया तब उस शंख का शब्द सुनते ही राजा युधिष्ठिर बड़े हर्ष से नकुल व सहदेव अपने भाई व सेनापतियों समेत आगे आकर लक्ष्मीपति को सम्मानपूर्वक अपने घर लिवा ले गये। राजा दुर्योधन शंख का शब्द सुनकर बहुत उदास हो गया, जब वसुदेवनन्दन, अर्जुन व भीनसेन राजा युधिष्ठिर के चरणों पर गिरे तब उन्होंने उनको अपनी छाती से लगाकर प्रेम के आँसू बहाये और जरासन्ध के मारे जाने का समाचार सुनकर अति प्रसन्न हुए।

चौहत्तरवाँ अध्याय।

राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में सब राजाओं का आना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! राजा युधिष्ठिर ने ज्ञान की राह श्यामसुन्दर के सामने हाथ जोड़कर विनय किया—हे त्रिभुवनपति! आपने ब्रह्मा व महादेव आदि सब देवतों के मालिक होकर मेरे वास्ते ब्राह्मणरूप धरकर भीख माँगना अंगीकार किया, इसलिए मैं अपने बराबर किसी दूसरे का भाग्य नहीं समझता। जिन चरणों का दर्शन बड़े-बड़े योगी व ऋषीश्वर व देवतों को जप व तप करने से भी जल्दी ध्यान में नहीं मिलता उन्हीं चरणों से तुमने मुझे अपना भक्त जानकर मेरा घर पवित्र किया। जिनके चरणों का धोवन गंगाजी होकर तीनों लोकों को तारती हैं वही परब्रह्म परमेश्वर तुम मेरी आज्ञा पालन करते हो। यह सब तुम्हारी दया भक्तवत्सलता की राह से है, नहीं तो ब्रह्मा व महादेव

आदि ऐसी सामर्थ्य नहीं रखते जो तुम्हारे ऊपर आज्ञा करें। संसारी मनुष्य राज्य व धन पाने से किसी को अपने बराबर नहीं समझता। आप त्रिभुवनपति होकर मेरे यहाँ कोई काम छोटा या बड़ा करने में कुछ अभिमान नहीं रखते।

दो०तुम्हरे सुमिरणध्यान में पावन होत शरीर। याते सुमिरत हौं सदा माखन प्रभु बलवीर ॥

कुन्ती ने जरासन्ध का मारना सुनकर श्यामसुन्दर से विनय किया—हे महाप्रभु! अब तुम्हारी कृपा से राजसूय यज्ञ अच्छी तरह सम्पूर्ण होगा। यह वचन सुनते ही भीमसेन हँसकर बोले—हे माता! तुम झूठी स्तुति मुरलीमनोहर की क्या करती हो, जरासन्ध को मैंने मारा है।

दो० एक ओर बैठे रहे आनँद सों घनश्याम। जरासन्ध बलवान सों मैं कीन्ह्यों संग्राम ॥

यह बात सुनकर केशवमूर्ति बोले—हे माता! भीमसेन सत्य कहते हैं, पर मैंने इनको सैन से बतला दिया था कि जरासन्ध की दोनों टाँगें चीरकर मार डालो। उसी उपाय से वह मारा गया। यह सुनकर युधिष्ठिर आदि सब लोग हँसने लगे। सातों द्वीप नवों खण्ड के चन्द्रवंशी व सूर्यवंशी राजा अपनी-अपनी स्त्रियों समेत द्रव्य व रत्नादिक भेंट देने के वास्ते साथ लेकर हस्तिनापुर में आये। राजा युधिष्ठिर ने उनकी भेंट लेकर नगर के चारों तरफ उन लोगों को डेरा दिया और यथायोग्य सबका सम्मान किया। उनमें जो राजा जरासन्ध की कैद से छूटकर आये थे वे लोग बड़े हर्ष से यज्ञ का सब काम करने लगे। सब नेवतहारी राजाओं ने श्यामसुन्दर व रुक्मिणी आदिक आठों पटरानियों का दर्शन प्रेम से करके लोचनों का फल पाया। नकुल जाकर भीष्मपितामह व दुर्योधन आदिक कौरवों को अपने यहाँ लिवा लाया। शुकदेव, वेदव्यास, नारद मुनि, कश्यप, वशिष्ठ, वामदेव, अत्रि, परशुराम, धूम्र, भरद्वाज, च्यवन, कण्व-मैत्रेय आदिक बहुत से ऋषीश्वर और ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, लोकपालादिक सब देवता व महात्मा लोग अपनी-अपनी स्त्रियों समेत राजा युधिष्ठिर का नेवता व वैकुण्ठनाथ के दर्शन करने के लिए उस यज्ञ में आये। उन्होंने त्रिभुवनपति का दर्शन करके अपना-अपना जन्म सफल किया। राजा युधिष्ठिर ने देवताओं व ऋषीश्वरों का पूजन

विधिपूर्वक करके उन्हें जड़ाऊ सिंहासन पर बैठाया। उनके सिवा और बहुत से अनगिनत चारों वर्ण जो अनेक देशों से वहाँ आये थे उन लोगों का सन्मान यथायोग्य किया। श्यामसुन्दर की आज्ञानुसार यज्ञ का एक-एक काम सब राजों को बाँट दिया। जब यज्ञ करने का मुहूर्त आया तब द्वारकानाथ ने हँसकर राजा युधिष्ठिर से कहा कि अब तुम यज्ञ करने के लिए बैठो, हम व अर्जुन आदि सब लोगों का सम्मान करेंगे। यह सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने सब कपड़े उतारकर नई धोती पहिन ली और शुभ लग्न में सुवर्ण के हल से अपने हाथ यज्ञ करने के लिए पृथ्वी जोतकर तैयार की। साकल्य आदि यज्ञ की सब वस्तुएँ मँगाकर सुवर्ण के बर्तनों में ऋषीश्वरों के पास रखवा दी।

जब ब्राह्मणों व ऋषीश्वरों ने वेदी व अग्निकुण्ड बनाकर वेदमंत्र पढ़ना आरम्भ किया तब राजा युधिष्ठिर द्रौपदी से गाँठ जोड़कर यज्ञशाला में आये और आसन पर बैठकर अग्निकुण्ड में आहुति देने लगे। उस समय देवतों ने वैकुण्ठनाथ की आज्ञानुसार प्रत्यक्ष अपना-अपना हाथ फैलाकर यज्ञ का भाग लिया। राजा युधिष्ठिर ने सब ब्राह्मणों के हाथ में सोने की स्रुवा होम करने के वास्ते दिया था और सब सुनहले बर्तन यज्ञ के देखकर नेवतेवाले आश्चर्य मानकर कहते थे कि इतना द्रव्य राजा ने कहाँ से पाया जो ऐसी तैयारी की। उनमें ज्ञानी लोग उत्तर देते थे कि जिस पर लक्ष्मीपति आप सहायक हैं उनको क्या कमी है। यह वचन उन लोगों का सुनते ही राजा युधिष्ठिर हँसकर श्यामसुन्दर से बोले—

दो० कहत तुम्हारे नाम ते सिद्ध होत सब काज। नमस्कार तुमको करों यज्ञपुरुष यदुराज॥

जब राजा युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ अच्छी तरह सम्पूर्ण हुआ तब सब देवता व गन्धर्वादिक राजा युधिष्ठिर के भाग्य की बड़ाई करने लगे और दुन्दुभी बजाकर उन पर पुष्पों की वर्षा की। उस समय राजा युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह व दूसरे छत्रधारी राजाओं से जो वहाँ बैठे थे पूछा—

चौ० जग में जो कुछ कारज कीजै। निज पुरुषन से याज्ञा लीजै॥
तो वह काज सदा शुभ होय। यह निश्चय जानो सब कोय॥
याते हमैं मंत्र यक दीजै। पूजा प्रथम कौन की कीजै॥
कौन बड़े देवन के ईश। ताही पूजि नवावैं शीश॥

यह बात सुनकर अभी तक किसी ने उत्तर नहीं दिया था कि जरासन्ध के पुत्र सहदेव ने उठकर राजा युधिष्ठिर से विनय किया—महाराज ! आप जान-बूझकर क्या पूछते हैं, द्वारकानाथ त्रिभुवनपति के सिवा दूसरा कौन पूजने योग्य है जिसका पूजन करोगे। श्यामसुन्दर ने सब जगत् की उत्पत्ति व पालन व नाश करनेवाले होकर पृथ्वी का भार उतारने व अधर्मियों को मारने के लिए अपनी इच्छा से अवतार लिया है, इसलिए उन्हीं को अग्निरूप व यज्ञपुरुष जानना चाहिए। जिस तरह वृक्ष की जड़ में पानी देने से सब डाली व पत्तों को वह जल गुण करता है उसी तरह कृष्णचन्द्र की पूजा करने से सब देवता तृप्त होंगे। वसुदेवनन्दन का भेद कोई नहीं जानता। जितनी वस्तुएँ संसार में देखते हो सब उन्हीं की उत्पत्ति की हुई हैं। गंगाजी इनके चरणों का धोवन होकर तीनों लोकों को तारती हैं। इनका स्मरण व ध्यान करने व कथा सुनने से सब पाप छूटकर मुक्ति मिलती है। जिस जगह आप साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर विराजते हैं वहाँ दूसरे की पूजा नहीं हो सकती। यह सब परमेश्वर की माया है, जो हम लोग अपना भाई-बन्धु व यदुवंशी इनको समझते हैं।

चौ० सब संसार शरीर समाना। प्राणरूप हैं यह भगवाना॥
सर्व आत्मा इनको जानो। पूरण शांतरूप पहिचानो॥
दो० हरिजू की पूजा करै मन चित दै जो कोय। मानो पूजे देव सब सुफल कामना होय॥

सहदेव का वचन सुनकर श्यामसुन्दर उसे सैन से बर्जने लगे कि तुम कुछ मत कहो, पर जितने देवता व ऋषीश्वर व ज्ञानी राजा जो उस यज्ञ में बैठे थे यह बात सुनते ही बोल उठे—हे सहदेव ! तेरी बुद्धि और तेरे माता-पिता व गुरु को धन्य है, जिन्होंने तुमको ऐसा ज्ञान सिखाया। तुम्हारे पुरुषा इसी तरह के धर्मात्मा व ज्ञानी होते आये हैं। जब राजा युधिष्ठिर ने यह बात सहदेव व ज्ञानी राजाओं की अपनी इच्छानुसार सुनी तब बड़े हर्ष से जड़ाऊ सिंहासन मँगवाकर द्वारकानाथ को रुक्मिणी आदि आठों पटरानियों समेत उस पर बैठाया और उनका चरण धोकर चरणामृत लिया। वह जल अपने परिवारसमेत शिर व आँखों में लगाया। सब देवता व राजाओं ने वह चरणामृत पीकर अपना-

अपना जन्म सफल किया। राजा युधिष्ठिर ने वैकुण्ठनाथ को पीताम्बर पहिनाया और केसरि व रक्त चन्दन का तिलक लगाकर रेशमी उपर्ना ओढ़ाया। रत्नजटित उत्तम-उत्तम भूषण अंग-अंग में पहिनाकर जड़ाऊ किरीट व मुकुट शिर पर बाँधा और रत्न व मोतियों का हार व सुगन्धित पुष्पों की माला गले में पहिना दी। विधिपूर्वक पूजा करके बहुत-सा रत्न व द्रव्यादिक उनके आगे भेंट रखकर विनय किया—हे लक्ष्मीपति! आप तीनों लोकों व सब वस्तुओं के मालिक हैं, इसलिए मुझे तुमको भेंट देते हुए लज्जा आती है। यह आनंद देखते ही देवताओं ने श्यामसुन्दर को दण्ड-वत् करके उन पर फूल बरसाये और वसुदेवनन्दन की बड़ाई करने लगे।

दो०ऐसी विधि पूजे जभी माखनप्रभु जगदीश। भये लोल आनन्द सब राजहि देत अशीश॥

उस समय द्वारकानाथ ऐसे सुन्दर मालूम देते थे जिनकी उपमा कही नहीं जाती। कोई राजा अच्छी तरह आँख उठाकर इस कारण उनकी ओर देख नहीं सकता था जिसमें उन्हें दृष्टि न लगे। इतनी कथा सुनाकर शुक-देवजी बोले—हे परीक्षित! श्यामसुन्दर की पूजा करने से जितने छोटे व बड़े वहाँ पर थे सब प्रसन्न हुए, पर शिशुपाल चंदेली के राजा को यह बात अच्छी नहीं मालूम हुई। वह थोड़ी देर नहीं बोला, फिर कुछ सोच-विचार कर अपनी मृत्यु निकट पहुँचने से उठ खड़ा हुआ और क्रोध से सभा में हाथ उठाकर बोला—हे राजा युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, भीष्मपितामह व दुर्योधन आदि! तुम लोग बड़े-बड़े ज्ञानी व धर्मात्मा होकर ऐसे मूर्ख हो गये कि एक बालक के कहने से श्रीकृष्णजी की पूजा इस तरह की जिस तरह कोई मनुष्य यज्ञ व होम करने की खीर काक को खिला दे। तुम लोग नहीं जानते कि वसुदेवनन्दन ने बहुत दिन तक वन में गौ चराकर अहीरों के संग रोटी खाई, परस्त्रियों के साथ रासलीला करके भोगविलास किया। आज तक यह बात अच्छी तरह नहीं मालूम हुई कि ये वसुदेव यादव के बेटे हैं या नन्द के, तब इनका कौन वर्ण व किसका बालक कहा जावे। यह बड़ा आश्चर्य है, जो तुम लोग ऐसे आदमी को, जिसके माता-पिता का ठिकाना नहीं लगता, अलख अगोचर समझते हो। इन्हीं श्रीकृष्ण ने राजा इन्द्र की पूजा छुड़ाकर गोवर्धन पहाड़ को पुज-

वाया था। ये शास्त्र के अनुसार न चलकर जो कुछ इनके मन में आता है सो करते हैं। सिवा दूध व दही आदिक चुराने व अधर्म करने के कोई शुभ काम इन्होंने नहीं किया। देखो, ये शत्रु के भय से अपनी जन्मभूमि छोड़कर समुद्र के किनारे जा बसे हैं, इसलिए व्रजवासियों को इनके विरह में अति दुःख होता है, तिस पर भी ये कुछ ध्यान नहीं करते। वृन्दावन में रहकर इन्होंने गोपियों का चीर चुराया था। और यदुवंशी लोग राजा ययाति के शाप से तिलकधारी राजा न होकर थोड़े दिनों से बढ़ गये हैं। फिर तुम लोगों ने क्या समझकर इनकी पूजा की। मैं परमेश्वर की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, ये सब बातें कहने से मुझे कुछ अपनी पूजा कराने की इच्छा नहीं है, जो सच था सो कह दिया। जहाँ वेदव्यास, नारद मुनि, पराशर आदि बड़े-बड़े ऋषीश्वर और ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र आदि सब देवता बैठे हैं वहाँ श्रीकृष्ण की पूजा करना इस तरह समझना चाहिए जिस तरह होम की सामग्री कोई कुत्ते को खिला दे। राजा युधिष्ठिर श्यामसुन्दर की जो बड़ाई करते हैं तो इसका यह कारण है कि जिस तरह कुन्ती ने अपने पति को छोड़कर दूसरों के वीर्य से युधिष्ठिर आदि को उत्पन्न किया उसी तरह श्रीकृष्णजी के बाप का ठिकाना नहीं लगता। अपने बराबरवालों की सब चाह करते हैं। केशवमूर्ति शिशुपाल की बात का कुछ उत्तर न देकर एक-एक दुर्वचन कहने पर रेखा खींचते जाते थे।

दो० मथुरा गया प्रयाग तजि गयो और ही देश। खारी जल ऊपर बस्यौ किये ठगन को भेश॥

जब इसी तरह अनेक दुर्वचन शिशुपाल द्वारकानाथ को कहने लगा तब ज्ञानी लोग परमेश्वर की निंदा सुनने में अधर्म समझकर वहाँ से उठ गये। भीमसेन, द्रोणाचार्य व अर्जुन ने क्रोधित होकर शिशुपाल से कहा—हे मूर्ख, अभिमानी! तू हमारे सम्मुख त्रिभुवनपति की निन्दा करता है, चुप रह, नहीं तो अभी तुझे मार डालते हैं। जब ऐसा कहकर भीमसेन शिशुपाल को मारने दौड़ा तब शिशुपाल भी उसके सम्मुख जाकर ऐसा ललकारा कि सभावाले डर गये उस समय श्यामसुन्दर ने सिंहासन से उतरकर भीमसेन आदि को समझाया कि तुम लोग शिशुपाल पर शस्त्र मत चलाओ, दुर्वचन कहने से मत

बर्जो, जो यह चाहे सो कहे, देखो क्षणभर में यह आप मारा जायगा।

दो० भीमादिकसबसे कह्योक्रोध न कीजै आज। निज भ्राता के यज्ञ में विघ्न करो केहि काज॥

जब वैकुण्ठनाथ के बर्जने से भीमसेन ने शिशुपाल को नहीं मारा तब राजा युधिष्ठिर उससे बोले—देखो, शिशुपाल, मेरी सभा में वैकुण्ठनाथ को तू ऐसा दुर्वचन कहता है, पर क्या करूँ, त्रिभुवनपति की आज्ञा बिना कुछ कह नहीं सकता जब इसी तरह शिशुपाल ने एकसौ एक कठोर वचन श्यामसुन्दर को कहे और उनके भक्त युधिष्ठिर को भी दुर्वचन सुनाया तब वसुदेवनन्दन ने क्रोधवश होकर पूजा की थाली को अपने मंत्र से सुदर्शनचक्र बनाकर शिशुपाल का शिर काट डाला। उसके धड़ से एक ज्योति निकलकर पहले आकाश में जाकर फिर श्रीकृष्णजी के मुख में समा गई। यह चरित्र देखकर देवताओं ने श्यामसुन्दर पर फूल बरसाये और ऋषीश्वर लोग उनकी स्तुति करने लगे। दूसरे राजाओं ने शिशुपाल ऐसे अधर्मी की मुक्ति देखकर बहुत आश्चर्य माना। इतनी कथा सुनकर परीक्षित ने पूछा—हे मुनिनाथ! श्रीकृष्णजी ने शिशुपाल को ऐसे कठोर वचन कहने पर किस तरह मुक्ति दी और एकसौ एक रेखा खींचकर उसे मारने का क्या कारण था। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यह हाल इस तरह है कि जय व विजय ने सनकादिक के शाप देने से तीन बेर संसार में जन्म लिया और तीन बेर परमेश्वर से शत्रुता करके मुक्ति पाई। जब पहले उन दोनों ने हिरण्याक्ष व हिरण्यकशिपु होकर देवतों को दुःख दिया तब नारायणजी ने वाराह व नृसिंह अवतार लेकर उनका वध किया। दूसरी बेर जब वे रावण व कुम्भकर्ण का जन्म पाकर गौ-ब्राह्मणों को दुःख देने लगे तब वैकुण्ठनाथ ने श्रीरामचन्द्रजी का अवतार लेकर उनको मार डाला।

दो० अब यह तीजे जन्म में भयो एक शिशुपाल। दन्तवक्त्र है दूसरो असुरन को भूपाल॥

हे राजन्! शिशुपाल व दन्तवक्त्र मुरलीमनोहर को अपना शत्रु जानकर दिन-रात उनका ध्यान करते थे, इसी वास्ते श्रीकृष्णजी परब्रह्म अवतार ने शाप की अवधि बीतने पर शिशुपाल व दन्तवक्त्र का शिर सुदर्शनचक्र से काटकर उनको वैकुण्ठ में भेज दिया। सौ रेखा खींचने का कारण यह है

कि महादेवी नाम वसुदेवजी की बहिन दमघोष राजा चन्देली को ब्याही गई थी। जब उसके पेट से शिशुपाल जिसके तीन आँखें व चार भुजायें थीं उत्पन्न हुआ और राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर उसकी जन्मकुण्डली का फल पूछा तब ब्राह्मणों ने विचारकर कहा—महाराज! यह बालक अति बलवान् व प्रतापी होकर उस मनुष्य के हाथ से मारा जायगा जिसके गले मिलने से एक आँख व दो भुजा इसकी गुप्त हो जायँगी। संसार में दूसरा कोई इसको मार नहीं सकता। जब ज्योतिषियों का यह वचन महादेवी ने सुना तब वह इस बात की परीक्षा लेने के लिए अपने बेटे शिशुपाल को सबकी गोद में देकर गले लगाने लगी। एक बेर महादेवी शिशुपाल समेत द्वारका में अपने बाप शूरसेन के यहाँ जाकर थोड़े दिन रही। जब उसने ज्योतिषियों का वचन याद करके अपने बेटे को यदुवंशियों के साथ गले मिलवाया तब श्यामसुन्दर से गले मिलते ही शिशुपाल की दो भुजा व एक आँख लोप हो गई। यह दशा देखते ही महादेवी ने विनयपूर्वक कहा—हे द्वारकानाथ! मैं तुमसे यह भीख माँगती हूँ कि अपनी फुवा के बेटे शिशुपाल को भाई समझकर कभी मत मारना। यह वचन सुनकर त्रिभुवनपति बोले—हे फुवा! मैं तेरे बेटे के सौ अपराध क्षमा करूँगा, अधिक अपराध करेगा तो बिना मारे न छोड़ूँगा। इस बात का वचन महादेवी लक्ष्मीपति से लेकर अपने घर चली गई। उसने यह विचारकर अपने मन को धैर्य दिया कि मेरा बालक वसुदेवनन्दन के सौ अपराध क्यों करेगा। इसी वास्ते श्यामसुन्दर ने सौ कठोर वचन शिशुपाल के सहकर उसे मारा और वही गुप्त बात द्वारकानाथ ने राजसूययज्ञ में कहकर सब राजाओं का सन्देह छुड़ाया था। यह सुनकर परीक्षित ने कहा—हे मुनिनाथ! अब आगे कथा सुनाइए। शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब राजा युधिष्ठिर का यज्ञ अच्छी तरह सम्पूर्ण हुआ तब उन्होंने न्योतहारी राजाओं को उनकी स्त्रियों समेत यथा योग्य उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र देकर विदा किया और वे लोग आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर को गये। जितने छोटे-बड़े उस यज्ञ में आये थे वे लोग राजा युधिष्ठिर से ऐसे प्रसन्न हुए कि किसी का मन घर जाने को नहीं चाहता था। पर राजा

दुर्योधन को धर्मपुत्र की बड़ाई सुनकर और प्रताप देखकर ऐसी डाह हुई कि क्रोधित होकर अपने घर चला गया।

पचहत्तरवाँ अध्याय।

राजा युधिष्ठिर के स्थान की शोभा वर्णन करना।

राजा परीक्षित इतनी कथा सुनकर बोले—हे मुनिनाथ! जहाँ सब राजा उस यज्ञ करने से प्रसन्न हुए थे वहाँ दुर्योधन ने क्यों खेद किया और यज्ञ का काम किस तरह सबको बाँटा गया था, यह कथा कहिए। शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! तुम धन्य हो, जो हरिकथा सुनने से तृप्त नहीं होते। सुनो, अर्जुन आदि चारों भाई राजा युधिष्ठिर की आज्ञा आनन्दपूर्वक मानकर किसी छोटे-बड़े काम करने में लज्जा नहीं रखते थे। पर सब बातों के मालिक श्यामसुन्दर थे, इसलिए उन्होंने यथायोग्य सब काम राजाओं को सौंप दिया। भीमसेन को भोजन कराने का काम सौंपा। उसको बाँट देने का काम धृष्टद्युम्न के अधीन किया। द्रव्यादिक का कोष राजा दुर्योधन को सौंपा। उसका खर्च करना कर्ण के जिम्मे किया था, जिसका दान आज तक संसार में प्रकट है। न्योतेवाले राजाओं का सम्मान करना व सुधि लेना अर्जुन को सौंपा। सभा को अलंकृत करना विदुर के अधीन हुआ था। देवता व ब्राह्मण व ऋषीश्वरों की पूजा व सेवा करना सहदेव को सौंपा और द्रव्यादिक सब वस्तुओं को इकट्ठी कर लाना नकुल के जिम्मे किया। श्रीकृष्णजी ने ब्राह्मणों के पैर धोना और उनकी जूठी पत्तल उठाना अपने जिम्मे रक्खा था। द्रौपदी रुक्मिणी आदिक का शिष्टाचार अन्तःकरण से करती थीं। इसी तरह राजा युधिष्ठिर ने मुरलीमनोहर की आज्ञानुसार जो काम यज्ञ का जिस राजा को सौंप दिया था वे लोग उस काम को बड़े प्रेम से करते थे। पर राजा दुर्योधन ने कपट की राह एक रुपये की जगह दश रुपया इस कारण लोगों को दे डाला था, जिसमें द्रव्य बँट जावे तो राजा युधिष्ठिर की हँसी हो। सो वैकुण्ठनाथ की दया से इस तरह बहुत देने में राजा का अधिक यश व धर्म होता था। दुर्योधन के हाथ में चक्र रहने से ऐसा प्रभाव

था कि जिस भंडारे से वह एक रुपया खर्च करे उसमें दश गुणा बढ़ जावे। इस कारण द्वारकानाथ अन्तर्यामी ने उसे कोष सौंपा था। पर दुर्योधन को यह महिमा नहीं मालूम थी। हे परीक्षित! जब अच्छी तरह यशपूर्वक राजा युधिष्ठिर का यज्ञ सम्पूर्ण हुआ तब धर्मराज ने असंख्य द्रव्य व रत्न व भूषण व वस्त्रादिक यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणों व ऋषीश्वरों व उनकी स्त्रियों को इच्छापूर्वक देकर प्रसन्न किया। सब छोटे-बड़ों को साथ लिए हुए गंगा के किनारे जाकर वहाँ द्रौपदी समेत विधिपूर्वक स्नान किया। उस समय ब्राह्मणों व ऋषीश्वरों ने वेद पढ़ा और देवतों ने राजा युधिष्ठिर पर फूल बरसाये और कहा कि धन्य भाग्य धर्मराज का है, जिसने ऐसा कठिन यज्ञ सम्पूर्ण किया। अप्सराएँ अपने-अपने विमानों पर नाचने लगीं और गन्धर्वों ने गाना सुनाया।

चौ० या विधि सकल स्वर्ग के वासी। देखि यज्ञविधि भये हुलासी॥

दो० नर-नारी छोटे-बड़े कहत धन्य यदुराज। जिनकी कृपा सुदृष्टि से भयो यज्ञ को काज॥

उस समय सब हस्तिनापुरवासी उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिने हुए शोभा देखने के लिए अपने-अपने कोठे व खिड़कियों पर बैठकर राजा युधिष्ठिर के भाग्य की बड़ाई करते थे। उनका रूप व नगर की शोभा देखकर सब यदुवंशी आपस में कहने लगे कि हम लोग जानते थे कि द्वारकापुरी के बराबर दूसरा नगर संसार में न होगा, पर हस्तिनापुर उससे भी उत्तम दिखलाई दिया। जब राजा युधिष्ठिर स्नान करके अपने स्थान पर आये तब जितने ब्राह्मण व याचक व भिखारी वहाँ इकट्ठे हुए थे उनको मुँह-माँगा दान व दक्षिणा देकर आनन्दपूर्वक बिदा किया। जब ऐसी दातव्य युधिष्ठिर की देखकर सब छोटे-बड़े उनका यश गाने लगे तब दुर्योधन को युधिष्ठिर की बड़ाई सुनने व सब राजाओं को उनके सामने दण्डवत् करते देखने से बहुत डाह उत्पन्न हुई।

दो० यज्ञ कथा शिशुपालवध कहै सुनै जो कोय। पावत फल वह यज्ञ को लहै मुक्ति फल सोय॥

श्यामसुन्दर अपनी पटरानियों को नित्य समझाया करते थे कि तुम लोग कुन्ती व द्रौपदी की सेवा अच्छी तरह करना, जिसमें वे किसी बात का खेद न मानें। पटरानियों की सुन्दरता और भूषण-वस्त्र की शोभा देख

कर और घुँघुरू का शब्द सुनकर देवताओं का चित्त ठिकाने नहीं रहता था, मनुष्य कौन गिनती में है। जब राजा युधिष्ठिर अपने उत्तम स्थान में, जो मय नाम दानव ने बना दिया था, जड़ाऊ सिंहासन पर द्रौपदी समेत बैठे तब द्वारकानाथ की इच्छानुसार अप्सराओं व गन्धर्वों ने देव-लोक से आकर वहाँ नाचना व गाना आरम्भ किया। उस समय धर्मराज की शोभा ऐसी मालूम देती थी जैसे इन्द्र अमरावतीपुरी में अपनी स्त्री को साथ लेकर इन्द्रासन पर बैठे हों। पर राजा युधिष्ठिर ऐसे सुख व यश मिलने पर भी कुछ अभिमान न लाकर यह समझते थे कि श्यामसुन्दर के प्रताप से मेरा यज्ञ सम्पूर्ण होकर यह यश मिलता है। जिस समय राजा युधिष्ठिर इन्द्र के समान राजसभा में बैठे हुए अप्सराओं का नाच देख रहे थे उसी समय राजा दुर्योधन बहुत सेना साथ लिए अभिमानपूर्वक वहाँ आकर स्थान देखने चला। उसमें बिल्लौर व रत्नादिक जड़े थे। कई जगह बिल्लौर के ऐसे कुण्ड बने थे जिसमें पानी भरा हुआ मालूम होता था। कई जगह जल भरे हुए कुण्ड सूखे दिखलाई देते थे। जब दुर्योधन ने धोखे से सूखे आँगन में पानी समझकर अपना जामा उठाया और दूसरी जगह सूखा स्थान जानकर पानी में कपड़ों समेत चला गया तब रुक्मिणी व द्रौपदी आदि स्त्रियाँ खिड़कियों में से यह दशा देखकर हँसने लगीं। भीमसेन खिलखिलाकर बोला—हे धृतराष्ट्र के बेटा! आगे चलो। यह दशा दुर्योधन की देखकर राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन को हँसने से बहुत बर्जा, पर वह उनके बर्जने पर भी खिलखिलाकर हँसता रहा। तब दुर्योधन अति लज्जित होकर मन में कहने लगा कि ये लोग मुझे अन्धा बनाकर मेरी हँसी करते हैं। जब ऐसा विचारकर दुर्योधन क्रोधवश बिना स्थान देखे उसी जगह से अपने घर चला गया तब राजा युधिष्ठिर बहुत सोच करने लगे, पर भीमसेन व श्यामसुन्दर प्रसन्न हुए। दुर्योधन अपनी सभा में बैठकर मंत्रियों से बोला कि श्रीकृष्ण का बल पाकर युधिष्ठिर को ऐसा अभिमान हो गया कि आज सभा में भीमसेन ने मेरी हँसी की। इस बात का बदला उनसे न लूँ तो आज से अपना नाम दुर्योधन न रक्खूँ। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! दुर्योधन से

अधिक शत्रुता होने का यही कारण था। उसी दिन से दुर्योधन ने युधिष्ठिर आदि के पीछे पड़कर उन्हें वनवास दिया। विस्तारपूर्वक उसका हाल महाभारत में लिखा है। श्रीकृष्णजी परब्रह्म परमेश्वर महाभारत कराके बड़े-बड़े शूरवीरों का नाश कराना चाहते थे, इसलिए उनकी इच्छानुसार कौरवों व पांडवों में शत्रुता हुई थी।

दो० जो प्रकटे संसार में भार उतारन काज। भारत चाहत हैं करन माखनप्रभु यदुराज॥

छिहत्तरवाँ अध्याय।

राजा शाल्व का द्वारका में युद्ध करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जिस दिन राजा शाल्व शिशुपाल की बरात में कुंडिनपुर जाकर श्याम व बलराम से हार मानकर भाग आया था उसी दिन उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं यदुवंशियों का वंश संसार में जीता छोड़ूँ तो आज से क्षत्रिय न कहलाऊँ।

दो०मारयोजबशिशुपालकोमाखनप्रभुगोपाल।शाल्वनृपतिअतिदुखितभोसुनतमित्रकोकाल॥

शिशुपाल का मरना सुनते ही राजा शाल्व ने विचार किया कि यदुवंशियों को, जो बड़े बलिष्ठ हैं, बिना किसी देवता का वरदान पाये जीतना कठिन है। जब ऐसा विचारकर राजा शाल्व शिशुपाल का बदला लेने के लिए महादेवजी का तप व ध्यान सच्चे मन से करने लगा और वर्ष दिन तक बराबर केवल मुट्ठी भर राख सन्ध्यासमय खाकर रहा तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया और कहा कि तुझे जो इच्छा हो सो वरदान माँग।

दो०महामुदित कर जोरिकै बोल्यो शाल्वनरेश। शत्रु वैर मोहिं दीजिये भोलानाथ महेश॥

हे महाप्रभु! मुझे ऐसा विमान आकाश में उड़नेवाला दीजिए जिसे देखकर यदुवंशी लोग डर जावें और कोई शस्त्र देवता व दैत्य का भी उस विमान पर न लगे। यह वचन सुनते ही शिवजी ने मय नाम दानव को बुला कर कहा कि तू एक विमान बहुत बड़ा व चौड़ा राजा शाल्व के लिए ऐसा बना दे जिसमें कोई शस्त्र न लगे और जहाँ चाहे वहाँ उड़ाता हुआ क्षणभर में ले जावे। जब मय दानव ने महादेवजी की आज्ञानुसार एक विमान अष्टधाती

बहुत लम्बा व चौड़ा अपनी माया से तैयार कर दिया तब राजा शाल्व अपने शूरवीर व सेना को शस्त्रसमेत उस विमान में बैठाकर द्वारका की ओर गया। उन दिनों श्यामसुन्दर प्रद्युम्न आदिक को यज्ञ होने के उपरान्त द्वारका में भेजकर आप राजा युधिष्ठिर के प्रेम से बलराम समेत इन्द्रप्रस्थ में रह गये थे। जब उनके पीछे राजा शाल्व ने पहुँचकर द्वारकापुरी को चारों ओर से घेर लिया और वहाँ के वृक्षों को जड़ से उखाड़कर गिराने लगा और उसकी माया से द्वारकापुरी में प्रलयकाल की आँधी चलकर आग व पत्थर बरसने लगे तब द्वारकावासियों ने घबराकर राजा उग्रसेन से यह हाल कहा। राजा ने प्रद्युम्न व शाम्ब को बुलाकर आज्ञा दी कि श्याम व बलराम का न रहना सुनकर राजा शाल्व हम लोगों को दुःख देने आया है, इसलिए तुम दोनों भाई हमारी सब सेना साथ लेकर उससे युद्ध करो। यह वचन सुनते ही जब प्रद्युम्नजी ने द्वारकावासियों को धैर्य दिया और शाम्ब, सात्यकी, कृतवर्मादिक शूरवीर व बहुत सेना अपने साथ लेकर नगर के बाहर लड़ने आये तब राजा शाल्व ने प्रद्युम्न को देखकर ऐसे बाण चलाये कि चारों तरफ घटारूपी अँधियारा छा गया। उस समय प्रद्युम्न ने जैसे द्युतिवन्त शस्त्र अपना छोड़ा वैसे ही अँधियारा दूर होकर इस तरह उजियाला हो गया जिस तरह सूर्य निकलने से कुहिरा नहीं रह जाता। जब शाल्व का रथ सम्मुख आया तब प्रद्युम्न ने एक तीर से रथ की ध्वजा काटकर दूसरे बाण से सारथी को मार डाला और तीसरे तीर से रथ के घोड़ों को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। बहुत शूरवीर उसके साथियों को अपने बाण से घायल कर डाला। जब राजा शाल्व ऐसी शूरता प्रद्युम्न की देखकर घबरा गया तब सम्मुख लड़ने की सामर्थ्य न रखकर मायायुद्ध करने लगा। कभी बड़ा स्वरूप बनाकर सामने आता और कभी छोटा रूप बनाकर आकाश से आग व पत्थर बरसाता था।

दो० ऐसी विधि माया बहुत करी मूढ़ रणमाहिं। श्रीप्रद्युम्न प्रताप से दूर होत क्षणमाहिं॥

इधर तो शाल्व अपने मायायुद्ध से यदुवंशियों को दुःख दे रहा था उधर देवमान उसके मंत्री ने प्रद्युम्न पर बाण चलाना आरम्भ किया। उस समय कामरूप प्रद्युम्न ने अपने तीरों से उसका बाण काटकर एक तीर

उसके ऐसा मारा कि देवमान अचेत हो गया। जब थोड़ी देर में देवमान का चित्त ठिकाने हुआ तब उसने क्रोधित होकर एक गदा ऐसे जोर से प्रद्युम्न के शिर पर मारी कि वे मूर्च्छा खाकर रथ में गिर पड़े तब देवमान चिल्लाकर बोला कि मैंने प्रद्युम्न को मार डाला। जब यह वचन सुनकर सब यदुवंशी घबरा गये और धर्मपति रथवान् पुत्र दारुक सारथी ने कृष्ण-कुमार को बहुत अचेत देखा तब वह उनका रथ रणभूमि से अलग ले गया। जब थोड़ी देर बीते प्रद्युम्न चैतन्य हुए तब उन्होंने अपना रथ रण-भूमि में न देखकर बड़े क्रोध से सारथी से कहा—तूने बहुत बुरा किया जो मुझे रणभूमि से अलग ले आया।

चौ० ऐसो नहीं उचित है तोहिं। जानि अचेत भगायो मोहिं॥
यदुकुल में ऐसो नहिं कोई। खेत छोड़ि जो भागा होई॥

हे धर्मपति! तूने मुझे कभी युद्ध से भागते देखा था जो आज रण-भूमि से भगाकर मेरे माथे पर कलंक का तिलक लगाया। अब मैं श्याम व बलराम को अपना मुँह क्या दिखलाऊँगा। संसारी लोग मेरी हँसी करके भाई लोग मुझे नपुंसक कहेंगे। रुक्मिणी माता मेरे उत्पन्न होने का दुःख मानेगी। भौजाइयाँ मुझे लज्जित करेंगी कि तूने यह काम करके अपने बाप का नाम धराया और जगत् में हँसी कराई।

चौ० रण में मरे परमपद पावै। जीत होय तो शूर कहावै॥
दो० रामकृष्णसुनिहैं जबै पछितैहैं मनमाहिं। कहिहैं प्रकटचो प्रद्युमन महा कपूतन माहिं॥

जब धर्मपति ने यह सब बात प्रद्युम्न की सुनी तब रथ से उतर हाथ जोड़कर विनय की—हे दीनदयालु! आपसे कुछ हाल राजनीति का छिपा नहीं है। मेरे गुरु ने ऐसा बतलाया है कि जब महारथी लड़ते समय अचेत हो जावे तब उसके सारथी को चाहिए कि उसका रथ रणभूमि से अलग लेकर खड़ा रक्खे। सारथी घायल हो जावे तो महारथी को उसकी रक्षा करनी उचित है, इसलिए जब तुम गदा लगने से अचेत हो गये तब मैंने तुम्हारा रथ रणभूमि से विलग लाकर खड़ा कर दिया।

दो० गुरु की आज्ञा जानकर मैं कीन्ह्यो यह काज। मोहिं दोष लागै नहीं यदुकुल के शिरताज॥

हे महाप्रभु! दौड़ाते समय मेरा रथ पीछे रहकर रस्सी या पहिया उसका टूट जाता तो मैं दोषी होता। बिना अपराध सेवक पर क्रोध करना

न चाहिए। थोड़ी देर आराम कर चुके अब चलकर संग्राम कीजिए। यह वचन सुनकर प्रद्युम्न बोले—हे धर्मपति! तुमने तो अपने गुरु की आज्ञानुसार यह काम किया, पर इसमें मेरी नामधराई हुई, इसलिए तुम सौगन्द खावो कि यह हाल किसी से हम नहीं कहेंगे। जब धर्मपति ने सौगन्द खाकर प्रद्युम्न का सोच छुड़ाया तब उन्होंने हाथ-मुँह धोकर धनुर्बाण अपना उठा लिया और अपना रथ रणभूमि में ले गये।

—(०)—

सतहत्तरवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का द्वारिका में आना और राजा शाल्व को मारना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जो यदुवंशी प्रद्युम्न को अचेत देखकर उदास हो गये थे वे लोग कामरूप का रथ देखते ही ऐसे प्रसन्न हो गये जैसे मुर्दे के तनु में प्राण आ जावे। उस समय कृष्णकुमार ने अपने साथियों को धैर्य देकर धर्मपति से कहा कि तुम जल्दी मेरा रथ देवमान के पास, जहाँ वह यदुवंशियों को मार रहा है, ले चलो। जब यह बात सुनकर सारथी ने प्रद्युम्न का रथ देवमान मन्त्री के सम्मुख पहुँचा दिया तब कृष्णकुमार ने उसे ललकारकर कहा कि तू इधर-उधर गरीबों को क्या मारता है, हमसे आकर युद्ध कर। यह वचन सुनते ही देवमान यदुवंशियों से लड़ना छोड़कर प्रद्युम्न पर बाण चलाने लगा। कामरूप ने चार तीर से उसके रथ के चारों घोड़े मारकर एक बाण से सारथी को मार डाला। दो तीर से ध्वजा व क्षत्र, और एक बाण से धनुष काटकर तीन तीर से देवमान को मार गिराया। उस समय शाम्ब भी इस तरह शाल्व की सेना मारकर गिराने लगा जिस तरह किसान लोग जुआर का खेत काट डालते हैं। जब ऐसा युद्ध प्रद्युम्न व शाम्ब का देखकर बहुत साथी राजा शाल्व के भाग चले तब अनेक मनुष्य भागते समय समुद्र में डूबकर मर गये। जब इसी तरह सत्ताईस दिन बराबर राजा शाल्व प्रद्युम्न आदि से लड़ता रहा तब यदुवंशियों ने ऐसी सामर्थ्य व वीरता उसकी देखकर आपस में कहा कि यह कोई बड़ा शूरवीर है जो इतने दिन हमारे सामने युद्ध में ठहरा, नहीं तो श्यामसुन्दर की दया से आज

तक कोई शूरवीर पाँच दिन से अधिक हमारे सम्मुख नहीं लड़ा। हे परीक्षित! जब इसी तरह राजा शाल्व मायायुद्ध करके यदुवंशियों को दुःख देने लगा तब इन्द्रप्रस्थ में वासुदेव ने स्वप्न देखा कि द्वारकापुरी को किसी ने जलाकर समुद्र में डुबा दिया और यदुवंशी लोग रणभूमि में मरे पड़े हैं। तब उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—महाराज! अशुभ स्वप्न देखने से मुझे ऐसा मालूम होता है कि शिशुपाल के साथी दैत्य द्वारका में यदुवंशियों को मारकर नाश किया चाहते हैं, आज्ञा हो तो वहाँ जाकर उनकी रक्षा करें। राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे महाप्रभु! मुझे आपका कहना टालना नहीं है। यह वचन सुनते ही जब श्याम व बलराम रथ पर बैठकर द्वारका को चले तब नगर के बाहर आकर क्या देखा कि एक हरिणी बाईं ओर से निकल गई और कुत्ता सम्मुख खड़ा हुआ शिर झाड़ता है। ये दोनों अशकुन देखते ही मुरलीमनोहर अन्तर्यामी द्वारका की सब दशा जानकर सारथी से बोले कि रथ जल्दी ले चलो।

दो० दारुक रथ हाँक्यो तभी हरि की आज्ञा पाय। बाणरूप दूजे दिवस रण में पहुँचे जाय॥

केशवमूर्ति ने राजा शाल्व का युद्ध देखकर बलदाऊजी से कहा—हे भाई! तुम द्वारका में जाकर राजा उग्रसेन व प्रजा की रक्षा करो, मैं शाल्व को मारकर वहाँ आऊँगा। जब रेवतीरमण यह आज्ञा पाकर द्वारका को गये तब दैत्यसंहारण ने दारुक से कहा कि जल्दी मेरा रथ शाल्व के सम्मुख ले चल। जैसे रथ वह मुरलीमनोहर का दौड़ाकर उसके सामने पहुँचा वैसे ही राजा शाल्व ने वैकुण्ठनाथ के रथ की ध्वजा पहिचानकर एक सांग दारुक रथवान् पर चलाई। लक्ष्मीपति ने तीर से उसकी सांग काटकर सोलह बाण ऐसे मारे कि राजा शाल्व का विमान कुम्हार के चाक के समान घूमने लगा। उस समय शाल्व ने एक भाला बड़े वेग से श्यामसुन्दर पर चलाया। तब द्वारकानाथ उसको भी अपने तीर से काटकर इस तरह बाण मारने लगे कि राजा शाल्व घबरा गया। पर उसने फुरती से ऐसा बाण श्यामसुन्दर की बाईं भुजा में मारा कि शार्ङ्ग-धनुष उनके हाथ से गिर पड़ा। जब उसके गिरने का शब्द तीनों लोकों में पहुँचा तब देवता व यदुवंशी लोग डरकर उदास हो गये। राजा शाल्व

अज्ञानी ने अपनी जीत समझकर चिल्लाकर कहा—हे कृष्णचन्द्र! तुम रुक्मिणी को, जिसकी मँगनी शिशुपाल मेरे मित्र से हुई थी, बरजोरी उठा ले आये और राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में तुमने शिशुपाल को मार डाला, दो घड़ी मेरे सम्मुख खड़े रहकर भाग न जावोगे तो आज अपने मित्र का बदला तुमसे लूँगा। मुझे भौमासुर व शकटासुर आदि दैत्य, जिनको बल व छल से तुमने मार डाला था, मत समझना। यह वचन सुनकर दैत्य-संहारण बोले—हे शाल्व! शूरवीर लोग अपनी बड़ाई आप नहीं करते। संसार में अपना यश गानेवाले को कोई अच्छा नहीं कहता, इसलिए जो कुछ बल रखता हो सो दिखला। जिसकी मृत्यु निकट पहुँचती है उसको भली बुरी बात कहने का कुछ विचार नहीं रहता। जिस तरह शिशुपाल मारा गया उसी तरह एक क्षण में तेरी भी वही दशा होगी। ऐसा कहकर मुरलीमनोहर ने एक गदा शाल्व के शिर पर इस वेग से मारी कि मुँह से लोहू गिरकर उसका अङ्ग काँप उठा, पर वह अन्तर्धान होकर मायायुद्ध करके अग्नि बरसाने लगा। तब वसुदेवनन्दन ने ऐसे बाण मारे कि सब माया छूटकर राजा शाल्व विमान समेत पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब फिर उठकर उसने एक गदा श्यामसुन्दर पर चलाई तब लक्ष्मी-पति ने वह गदा काटकर एक गदा उसको ऐसी मारी कि वह अचेत हो गया। जब थोड़ी देर में वह चैतन्य हुआ तब मन्त्र के बल से अपने को दूत बनाकर शिर व मुँह में धूर लपेटे पसीना बहाता हुआ श्यामसुन्दर के सम्मुख आया और रुदन करके बोला—हे त्रिभुवनपति! मुझे तुम्हारी माता देवकी ने भेजकर कहा है कि राजा शाल्व तुम्हारे पिता वसुदेव को मारने के लिए पकड़ ले गया, तुम उनकी सुधि क्यों नहीं लेते। दूत का यह वचन सुनते ही एक क्षण मुरलीमनोहर ने चिन्तित होकर फिर विचार किया कि बलरामजी के सामने से, जिनको कोई देवता भी जीत नहीं सकता, राजा शाल्व वसुदेव को किस तरह पकड़ ले गया होगा। जिस समय केशवमूर्ति इसी तरह का सोच व विचार कर रहे थे उसी समय शाल्व मायारूपी वसुदेव बनाकर उनके बाल पकड़े हुए श्रीकृष्णजी के सम्मुख ले आया। तब मायारूपी वसुदेव तड़फता हुआ श्यामसुन्दर

से बोला—हे बेटा ! हम तुमको उत्पन्न व पालन व रक्षा करनेवाला संसार का जानते हैं, सो राजा शाल्व मुझे तुम्हारे सामने लाकर प्राण लेना चाहता है, इसके हाथ से जल्दी छुटाओ। यह बड़े लज्जा की बात समझना चाहिए। मैं तुम्हारे ऐसा बेटा त्रिभुवनपति पाकर इतना दुःख पाऊँ। जिस समय मायारूपी वसुदेव इस तरह विलाप कर रहा था उसी समय शाल्व ने ललकारकर फिर श्यामसुन्दर से कहा कि देखो, हम वसुदेव को पकड़कर तुम्हारे सामने मारते हैं, तुम्हें बल हो तो छुड़ाओ। ऐसा कहकर राजा शाल्व ने मायारूपी वसुदेव का शिर तलवार से काटकर बरछी की नोक पर उठा लिया और सब लोगों को दिखलाकर बोला—हे श्रीकृष्ण ! तुमने देखा, जिस तरह तुम्हारे बाप को मैंने मार डाला उसी तरह यदुवंशियों को मारकर समुद्र में डाल दूँगा। यह हाल देखकर एक क्षण मुरलीमनोहर को मूर्च्छा आ गई, फिर उन्होंने ध्यान धरकर देखा तो मालूम हुआ कि यह मायारूपी वसुदेव बना है। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! जिस समय मायारूपी दूत ने आकर देवकी का संदेशा कहा और शाल्व ने मायारूपी वसुदेव का शिर काट लिया उस समय लक्ष्मीपति को कुछ संदेह हुआ था। यह हाल सुनकर ऋषीश्वर व ज्ञानी लोग ऐसा कहते हैं कि जिन परमेश्वर का नाम लेने से संदेह छूटकर मन शुद्ध हो जाता है उनके कामों में संदेह करना न चाहिए।

चौ० जो प्रभु केवल ब्रह्म कहावें। केहि कारण इतनो भ्रम पावें।
जग में मनुष देहधरि आये। तेहि कारण इतनो भ्रम पाये॥
दो०माखनप्रभु भगवानको कबहुँ भ्रम कछु नाहिं। तद्यपि यह लीलाकरी जानिलेहु मन माहिं॥

जब केशवमूर्ति ने समझा कि शाल्व ने मायारूपी वसुदेव बनाकर शिर काटा है तब पांचजन्य शंख बजाकर बड़े क्रोध से अपना रथ उसके पीछे दौड़ाया और एक गदा ऐसी मारी कि राजा शाल्व का विमान सौ टुकड़े होकर समुद्र में गिर पड़ा। उस समय शाल्व ने विमान पर से कूदकर एक गदा वसुदेवनन्दन पर चलाई, सो दैत्यसंहारण ने अपनी गदा से उसकी गदा तोड़ डाली।

चौ० सोई गदा वज्रसम भारी। केतिक बार शाल्व पर मारी॥
दो०वाको बल कहियेकहा युद्ध करै अति घोर। श्रीमाखनप्रभु की गदा क्षण में डारै तोर॥

जब इसी तरह देर तक राजा शाल्व द्वारकानाथ से गदायुद्ध करता रहा तब वृन्दावनविहारी ने बाण से उसकी भुजा काटकर गदा समेत गिरा दिया और सुदर्शनचक्र मारकर इस तरह उसका शिर काट लिया जिस तरह इन्द्र ने वृत्रासुर दैत्य को मारा था। जब शाल्व के धड़ से एक ज्योति निकलकर वसुदेवनन्दन के मुख में समा गई तब देवताओं ने राजा शाल्व का मरना देखकर दुन्दुभी बजाई और दैत्यसंहारण पर फूल बरसाकर उनकी स्तुति करने लगे।

अठहत्तरवाँ अध्याय।

राजा दन्तवक्त्र व विदूरथ दोनों भाइयों का श्यामसुन्दर से लड़ने के लिए आना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जिस तरह दन्तवक्त्र व विदूरथ दोनों भाई शिशुपाल के मारे गये थे उनका हाल कहते हैं, सुनो। जिस दिन राजा शिशुपाल युधिष्ठिर के यज्ञ में मारा गया उसी दिन से वे दोनों कृष्णजी से अपने भाई का बदला लेने का विचार किया करते थे। जब उन्होंने सुना कि हमारे भाई का मित्र राजा शाल्व द्वारका में जाकर लड़ रहा है तब उन दोनों ने भी बहुत सेना साथ लेकर द्वारकापुरी पर लड़ने के लिए चढ़ाई की।

दो० गजरथ पैदल तुरँग की सेन लिये निज साथ। चले द्वारका ओर को सब असुरन के नाथ॥

श्यामसुन्दर राजा शिशुपाल को मारकर अभी तक द्वारकापुरी में नहीं पहुँचे थे कि उसी समय दन्तवक्त्र व विदूरथ दोनों भाइयों ने अपनी सेनासमेत वहाँ पहुँचकर मुरलीमनोहर को घेर लिया। जब उन्हें देखकर सब यदुवंशी घबरा गये तब दन्तवक्त्र वासुदेव के सम्मुख जाकर अभिमान से बोला—तुमने मेरे भाई व मित्र को मारा है इसलिए आज तुमको यदुवंशियों समेत यमपुरी भेजकर उनका बदला लूँगा। पहिले तुम अपना शस्त्र मेरे ऊपर चला लो, पीछे हम तुमको मारेंगे, जिसमें तुमको यह अभिलाषा न रह जावे कि हमने दन्तवक्त्र पर शस्त्र नहीं चलाया। तुमने बड़े-बड़े शूरवीर युद्ध में मारे हैं, पर आज मेरे हाथ से जीते बचकर तुमको अपने घर जाना बहुत कठिन है।

चौ० कहत सुनो मोहन गोपाला। धनि भ्राता मेरो शिशुपाला ॥
जेहि के बैर काज ह्याँ आयों। दर्शन महाराज को पायों ॥
जाको दरस तुम्हारो होई। भवसागर से उतरत सोई ॥
अब मोको चिन्ता कछु नाहीं। दुहूँ भाँति निर्भय मनमाहीं ॥
जो मैं मरों तुम्हारे हाथा। होइहौं स्वर्गलोक को नाथा ॥

दो०अरुजो तुमको मारकर जियत रहौं जग माहिं। तौ राजन कौ राजहौं यामे संशय नाहिं ॥

जब इसी तरह अनेक बातें कहकर दन्तवक्त्र ने एक गदा श्रीकृष्ण पर चलाई तब दैत्यसंहारण अपनी गदा से उसकी गदा गिराकर बोले-हे दन्तवक्त्र! जितना बल तेरे अंग में था वह सब तूने गदा चलाकर पूरा किया, अब चैतन्य हो, हमारी पारी है। यह कहकर द्वारकानाथ ने कौमोदकी नामक अपनी गदा इस वेग से दन्तवक्त्र की छाती पर मारी कि वह वमन करके उसी क्षण मर गया।

दो०प्राण ज्योति वाकी निकस चढ़ी स्वर्ग की छाहँ। फेरसमानीआनकरमाखनप्रभु मुखमाहँ॥

यह दशा देखकर दन्तवक्त्र का भाई विदूरथ ढाल-तलवार लिये हुए मुरलीमनोहर के सम्मुख आया। लक्ष्मीपति ने उसका शिर सुदर्शनचक्र से काटकर मुकुट व कुण्डलसमेत पृथ्वी पर गिरा दिया। जब उन दोनों के मरते ही उनकी सब सेना भाग गई तब तीनों लोकों में हर्ष हो गया। देवताओं ने श्यामसुन्दर पर फूल बरसाये और दुन्दुभी बजाकर स्तुति करके बोले-हे दीनानाथ! तुम्हारी लीला अपरम्पार है। कोई उसका भेद नहीं जान सकता। जय व विजय आपके द्वारपालक सनकादिक के शाप देने से प्रथम हिरण्याक्ष व हिरण्यकाशिपु हुए, दूसरी बेर रावण व कुम्भकर्ण हुए और तीसरे जन्म शिशुपाल व दन्तवक्त्र हुए। वे शत्रुता वश तुम्हारा भजन व स्मरण करते थे। आपने उनका उद्धार करने के लिए तीन बेर सगुण अवतार धारण किया और अपने हाथ से उनको मारकर फिर वैकुण्ठ में भेज दिया। ऐसा दीनदयालु व अपने भक्त की रक्षा करनेवाला दूसरा कौन होगा। जब सब देवता यह स्तुति करके और श्यामसुन्दर को दण्डवत् करके अपने-अपने लोक को चले गये तब वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी ने जैसे घायल व मरे हुए यदुवंशियों को अमृतरूपी दृष्टि से देखा वैसे ही मरे हुए जी उठे और घायल लोग

अच्छे हो गये। जब यह महिमा वैकुण्ठनाथ की देखकर सब छोटे बड़े उनका यश गाने लगे तब लक्ष्मीपति सब यदुवंशियों को साथ लेकर आनन्दपूर्वक दुन्दुभी बजाते हुए द्वारका में आये और राजा शाल्व आदि की जो वस्तु लूट लाये थे वह सब उग्रसेन को दी। उनको देखते ही सब छोटे-बड़ों ने प्रसन्न होकर अपने-अपने घर मंगलाचार मनाया। वैकुण्ठनाथ की आज्ञा से विश्वकर्मा ने, जो स्थान दैत्यों ने तोड़ डाले थे, क्षणभर में ज्यों के त्यों बना दिये। श्रीकृष्णजी ने उसी दिन युद्ध करना छोड़कर यह प्रतिज्ञा की कि अब शस्त्र धारण न करूँगा। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब कुछ दिन बीते राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डवों व दुर्योधन आदि कौरवों से महाभारत की तैयारी हुई-तब श्यामसुन्दर राजा उग्रसेन से यह समाचार कहकर बलरामजी से बोले—हे भाई! महाभारत में मुझे क्या करना चाहिए। यह बात सुनकर बलदाऊजी ने मन में विचारा कि मुरलीमनोहर पाण्डवों की इच्छा पूर्ण करने के लिए महाभारत कराया चाहते हैं, मैं वहाँ रहकर दुर्योधन अपने चेले की सहायता करूँगा तो केशवमूर्ति खेद मानेंगे और श्यामसुन्दर की आज्ञा पालन करने में दुर्योधन बुरा मानेगा। इसलिए हस्तिनापुर न जाकर तीर्थयात्रा करने चला जाता हूँ, आगे जो इच्छा वैकुण्ठनाथ की होगी वैसा करेंगे। यह बात विचारकर रेवतीरमण ने श्रीकृष्णजी से विनय किया—हे महाप्रभो! आप हस्तिनापुर में जाकर जैसा उचित हो वैसा कीजिए, मैं तीर्थयात्रा करता हुआ वहाँ आकर पहुँचूँगा। यह वचन सुनकर केशवमूर्ति ने महाभारत कराने की इच्छा से बलदाऊजी को बर्जना उचित नहीं जाना। जब वसुदेवनन्दन कुरुक्षेत्र में, जहाँ अठारह अक्षौहिणी दल महाभारत करने के लिए इकट्ठा हुआ था, गये तब बलदाऊजी भी प्रभासक्षेत्र, सरस्वती, गंगा व यमुना आदिक बहुत तीर्थों पर स्नान, दान व यात्रा करते हुए नीमसार व मिश्रिख में पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने क्या देखा कि एक स्थान पर बहुत से ऋषीश्वर व मुनि इकट्ठे होकर यज्ञ करते हैं, दूसरी जगह रोमहर्षण सूत पौराणिक चेला वेदव्यासजी का सिंहासन पर बैठा हुआ शौनकादिक ऋषीश्वरों को कथा सुनाता है। बलदाऊजी को देखते ही

शौनकादिक सब ऋषीश्वर सम्मान करने के लिए उठ खड़े हुए, पर रोमहर्षण विद्या के अभिमान से नहीं उठा। तब रेवतीरमण क्रोधित होकर बोले—इस मूर्ख को किसने व्यासगद्दी दी है, हरिकथा बाँचने के लिए ऐसा ज्ञानी व हरिभक्त चाहिए जिसके लोभ व अहंकार न हो। आप ऋषीश्वर लोग देखते हैं कि यह पौराणिक विद्या पढ़ने पर भी शास्त्रानुसार न चलकर अभिमान के मद में अन्धा हो रहा है। जिस तरह कलियुग के ब्राह्मण दूसरों को उपदेश देकर आप मर्यादापूर्वक नहीं चलते उसी तरह यह काम, क्रोध, मोह व लोभ के वश होकर छोटे-बड़ों को नहीं पहचानता। हमारा अवतार केवल अधर्मी व कुचालियों को मारने के लिए हुआ है, इसलिए जो कोई हमारे सामने कुमार्ग चले उसका अपराध हम क्षमा नहीं कर सकते। ऐसा कहकर शेषावतार ने एक कुशा मंत्र पढ़कर क्रोध से भूत की तरफ फेंका तो वह कुशा लगते ही रोमहर्षण का शिर कटकर गिर पड़ा। यह हाल देखते ही शौनकादिक ऋषीश्वरों ने चिल्लाकर बलभद्रजी से कहा—महाराज! यह सूत हरिचरित्र सुनाकर अपने व सुननेवालों को कृतार्थ करता था, उसे व्यासगद्दी पर बैठे हुए तुमने मार डाला सो अच्छा नहीं किया। हम लोग जानते हैं कि आपने अपनी इच्छा से अवतार लिया है, पर इसको जो वैश्य व ब्राह्मण से उत्पन्न होकर हमारी आज्ञानुसार व्यासगद्दी पर बैठा था, तुमने जो मारा इसलिए तुमको ब्रह्महत्या लगी। अब तुमको प्रायश्चित्त करना चाहिए। कदाचित् तुम ऐसा नहीं करोगे तो दूसरा कोई ब्रह्महत्या से क्यों डरेगा। जब श्यामसुन्दर तुम्हारे छोटे भाई परब्रह्म परमेश्वर को भृगु ऋषीश्वर ने बिना अपराध लात मारी थी तब उन्होंने ऋषीश्वर का पाँव हाथ से दबाकर कहा था कि मेरे कठोर हृदय से आपके कोमल चरणों में चोट तो नहीं लगी। इससे ब्राह्मणों की पदवी समझना चाहिए। यह ज्ञानरूपी वचन सुनकर बलरामजी का क्रोध शान्त हुआ तब उन्होंने ऋषीश्वरों से कहा—महाराज! आप लोग सच कहते हैं, मुझसे अपराध हुआ, जो मैंने क्रोधवश ब्राह्मण को मार डाला। आप इसका कोई प्रायश्चित्त बतलाइए जिसमें हमारा शरीर शुद्ध हो जावे। इस सूत का कोई पुत्र हो तो बुलावो उसे हम व्यासगद्दी पर बैठा दें।

दो० हमहूँ को दूषण लगे जो कछु करें अनीति। औरन की कहिए कहा कठिन कर्म की रीति॥

यह सुनकर ऋषीश्वर बोले—तीर्थों में स्नान करने से तुम्हारा पाप छूट जावेगा। जब शौनकादिकों ने रोमहर्षण के बेटा उग्रशर्मा को वहाँ बुला भेजा तब शेषावतार ने उग्रशर्मा को उसके बाप की जगह व्यास-गद्दी पर बैठाकर ऐसा वरदान दिया कि तुझे बिना पढ़े सब विद्या याद हो जावें। जैसे ही यह वचन रेवतीरमण के मुख से निकला वैसे ही सूतपुत्र को छहों शास्त्र व अठारहों पुराण बिना पढ़े कण्ठ हो गये। तब वह व्यासगद्दी पर बैठकर कथा बाँचने लगा। बलरामजी की यह महिमा देखते ही सब ऋषीश्वर प्रसन्न होकर बोले—महाराज! तुम्हारी दया से सूत के मरने का सोच तो छूटा, पर इल्वल दैत्य वानररूप से पूर्णमासी व अमावस्या व द्वादशी को आकर हमारे यज्ञ व होम में पीब व रक्त व हड्डी फेंक देता है, इसलिए हम लोग बड़ा दुःख पाते हैं। आप तीर्थवासियों पर दयालु होकर उस वानर को मार डालिये तो हम लोग निर्भय होकर यज्ञ व होम किया करें। यह वचन सुनकर बलरामजी बोले—बहुत अच्छा, हम उस वानर को मारकर तुम्हारा दुःख छुड़ावेंगे।

उन्नासीवाँ अध्याय।

बलरामजी का वानररूप इल्वल दैत्य को मारना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! रेवतीरमण ऋषीश्वरों के कहने से इल्वल दैत्य को मारने के लिए कई दिन तक नीमषार मिश्रिख में टिके रहे। पूर्णमासी के दिन बड़ी आँधी चलकर पानी व रक्त व पीब बरसने लगा। उस समय ऋषीश्वरों ने बलरामजी से कहा—महाराज! ये सब लक्षण उस वानर के आने के हैं। यह वचन सुनकर बलदाऊजी ने जैसे ही हल व मूसल अपने शस्त्र को याद किया वैसे ही वे दोनों उनके पास आ पहुँचे। जब वह वानररूपी दैत्य श्यामरङ्ग पहाड़ ऐसा लम्बा व चौड़ा बड़े-बड़े दाँत व लाल-लाल आँख निकाले डरावनी सूरत बनाये त्रिशूल लिये बादल के समान गर्जता हुआ वहाँ आया तब बलदाऊजी अपना हल व मूसल उठाकर उसकी तरफ चले।

दो० उनहूँ रामहिं देखिकै जान लियो मन माहिं। इन समान योधाबली तिहूँलोक में नाहिं।।

जब उस वानर ने बलरामजी को अपने से बलवान् देखा तब वह मन्त्र के बल से अन्तर्धान होकर मल व मूत्र बरसाने लगा। यह दशा देखते ही रेवतीरमण ने उस वानर को हल की नोक से उठाकर पृथ्वी पर पटक दिया और एक मूसल ऐसा उसके शिर पर मारा कि उसके प्राण निकल गये। उस दैत्य का मरना देखकर सब ऋषीश्वर इस तरह प्रसन्न हो गये जिस तरह वृत्रासुर दैत्य के मरने से देवता आनन्दित हुए थे। उसी समय ऋषीश्वरों ने रेवतीरमण को आशीर्वाद देकर ऐसी सुगन्धित पुष्पों की माला गले में पहिना दी जिसका फूल कभी न कुम्हिलावे। देवताओं ने बलदाऊजी पर फूल बरसाकर दुन्दुभी बजाई।

दो० तहँ लाये सब देवता भूषण बसन बनाय। पहिराये बलराम को शोभा कही न जाय।।

जब ऋषीश्वरों ने दैत्य के मारे जाने से निर्भय होकर बलदाऊजी को विदा किया तब रेवतीरमण गढ़मुक्तेश्वर, गोमती, गण्डक, गंगा, व्यास, कौशिकी, सरयू, पुलहाश्रम, शोणभद्र, प्रयाग, काशी आदि तीर्थों में गये और वहाँ पर स्नान व दान किया। फिर वहाँ से गयाजी, गंगासागर, गोदावरी, भागीरथी, सिंहलद्वीप, भीमरथी, सेतुबन्ध रामेश्वर, विंध्यक्षेत्र, श्रीशैल आदि तीर्थों में जाकर स्नान करके दश-दश हजार गौ विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान दिया। फिर वहाँ से स्वामिकार्त्तिक, अगस्त्य मुनि, परशुरामजी और अर्जुनबाला का दर्शन करते व राह में सब लोगों को सुख देते हुए वर्षवें दिन पृथ्वी का परिक्रमा करके हरद्वार में आये।

दो०तहाँ सुनी बलरामजू लोगन से यह बात। पाण्डुसुतन अरु कौरवन युद्ध होत दिनरात।।

यह हाल सुनते ही रेवतीरमण कुरुक्षेत्र चले। जिस समय राजा दुर्योधन व भीमसेन महाभारत के आठवें दिन आपस में गदायुद्ध कर रहे थे, उसी समय वहाँ पहुँचे। जब उनको देखकर युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई व दुर्योधन ने दण्डवत् किया तब बलदाऊजी उन लोगों को आशीर्वाद देकर बोले—बड़े सोच की बात है कि श्यामसुन्दर त्रिभुवनपति के रहने पर भी कौरवों व पाण्डवों ने रजोगुण व तमोगुण के वश होकर अपने भाई, बन्धु आदि लाखों मनुष्यों का नाश किया। भीमसेन व

दुर्योधन दोनों मनुष्य बल में बराबर हैं, पर भीमसेन का श्वास लड़ते समय नहीं फूलता और दुर्योधन गदायुद्ध उससे अच्छा जानता है। उनकी यह दशा देखकर बलदाऊजी ने भीमसेन व दुर्योधन से कहा कि तुम लोग लड़ना छोड़ दो, जिसमें तुम्हारा वंश रहे। महाभारत करने में इतना परिवार तुम्हारा मारा गया तिस पर भी तुमको अपना भला व बुरा नहीं सूझ पड़ता। यह वचन सुनते ही परमेश्वर की इच्छानुसार दोनों वीरों ने बलदाऊजी से हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज! अब रण पर चढ़कर हम लोगों से उतरा नहीं जाता।

दो० यद्यपि बरजै रामजू युद्ध करो मति कोय। तद्यपि उन मान्यो नहीं भावी परबल होय ॥

जब रेवतीरमण के समझाने पर भी उन दोनों ने लड़ना नहीं छोड़ा तब बलदाऊजी वैकुण्ठनाथ की इच्छा समझकर चुप हो रहे। उसी समय भीमसेन ने एक गदा दुर्योधन की जंघा में ऐसी मारी कि उसकी जंघा टूट गई और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब दुर्योधन ने बलरामजी से रोकर कहा—हे महाप्रभु! आप मेरे गुरु हैं, मैं तुमसे झूठ नहीं कहता, इस महाभारत में सब मनुष्य तुम्हारे भाई श्रीकृष्ण के सम्मत से मारे गये। पाण्डव लोग उन्हीं के बल से लड़ते हैं, नहीं तो इनको क्या सामर्थ्य थी जो कौरवों से लड़ते। युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई इस तरह श्यामसुन्दर के वश हो रहे हैं जिस तरह काठ की पुतली को नट अपने अधीन रखकर जिधर चाहे उधर नचावे। द्वारकानाथ को ऐसा उचित नहीं था, जो पांडवों की सहायता करके हमारे साथ शत्रुता करें। देखो, भीमसेन ने दुश्शासन की भुजा उखाड़कर उसे मार डाला और हम लोगों के सम्मुख उसका रक्त पिया। अधर्म की राह मेरी जंघा में गदा मारकर मुझे पृथ्वी पर गिरा दिया। मैं इससे अधिक पाण्डवों के अधर्म का हाल आपसे कहाँ तक वर्णन करूँ। जो कुछ मेरे भाग्य में लिखा था, सो हुआ। जिस तरह इस महादुःख में आपने दयालु होकर दर्शन दिया उसी तरह मेरे लिए जो उचित हो सो कीजिए। जब यह अधीन वचन दुर्योधन से बलदाऊजी ने सुना तब श्रीकृष्णजी के पास जाकर बोले—हे भाई! तुमने यह कैसी माया फैलाई, जो इतने मनुष्य महाभारत में तुम्हारे सामने मारे

गये। दुश्शासन की भुजा उखड़वाकर दुर्योधन की जंघा तोड़वाई। यह धर्मयुद्ध की बात नहीं है कि कोई बलवान् मनुष्य किसी की भुजा उखाड़कर कमर के नीचे गदा चलावे। धर्मयुद्ध में एक-एक मनुष्य अपने बराबरवाले को ललकारकर लड़ते हैं। यह सुनकर वसुदेवनन्दन बोले—हे भाई! तुम नहीं जानते, कौरव लोग बड़े अधर्मी और पापी हैं। उनका हाल कुछ कहा नहीं जाता। देखो, पहिले दुर्योधन ने दुश्शासन व शकुनी के कहने से कपट जुआ खेलकर सब देश व धन युधिष्ठिर आदि का जीत लिया और उनको तेरह वर्ष वनवास दिया। फिर दुश्शासन ने शिर के बाल पकड़े हुए द्रौपदी को राजसभा में लाकर नंगी करना चाहा। जिस समय दुर्योधन ने द्रौपदी ऐसी पतिव्रता को अपनी जंघा पर बैठाने के लिए कहा, उसी समय भीमसेन ने सौगन्द खाकर यह प्रतिज्ञा की थी कि दुश्शासन की भुजा उखाड़कर दुर्योधन की जंघा अपनी गदा से तोड़ूँगा। वही प्रण भीमसेन ने अपना पूरा किया। इसके सिवा और जो-जो अधर्म व पाप कौरवों ने युधिष्ठिर आदि से किये हैं उसका हाल कहाँ तक तुमसे कहूँ। यह महाभारत की आग जो प्रज्वलित हो रही है किसी तरह बुझ नहीं सकती। तुम इस बात का कुछ सोच मत करो। जब बलदाऊजी ने यह वचन मुरलीमनोहर के मुख से सुना तब उनकी इच्छा इसी तरह जानकर कुरुक्षेत्र से द्वारकापुरी में चले आये और वहाँ से अपनी स्त्री रेवती और कई यदुवंशियों को साथ लेकर फिर नीमषार मिश्रिख में इस इच्छा से गये जिसमें ब्रह्महत्या का पाप जो तीर्थस्नान करने से छूट गया था, वह ऋषीश्वरों को दिखला आवें। जैसे शौनकादिक ऋषीश्वरों ने बलदाऊजी को देखा वैसे ही अति प्रसन्नता से आशिष देकर कहा—अब तुम्हारी ब्रह्महत्या छूट गई। जब यह वचन बलदाऊजी ने सुना तब बड़े हर्ष से वहाँ स्नान, दान और यज्ञादिक शुभ कर्म किया। ऋषीश्वरों को ज्ञान-उपदेश देकर यदुवंशियों समेत द्वारकापुरी में चले आये और अपने जाति भाइयों का सम्मान किया।

दो० रामकथा पावन सदा कहै सुनै जो कोय।
ताको श्रीभगवान सों प्रेम प्रीति अति होय॥

अस्सीवाँ अध्याय।

सुदामा ब्राह्मण की कथा।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर शुकदेवजी से विनय किया—महाराज! आप समझते होंगे कि परमेश्वर की कथा व लीला सुनकर इसे सन्तोष हुआ होगा, सो मेरा मन अभी तक हरिकथा सुनने से नहीं भरा। सत्संग भाग्य के बिना नहीं मिलता, इससे मैं जानता हूँ कि मेरे पिछले जन्म का पुण्य सहाय हुआ, जो मैंने अन्त समय गंगा किनारे आकर तुम्हारा दर्शन पाया। जिस जगह परमेश्वर की कथा होकर सत्संग रहता है वहाँ पर देवता स्वर्ग से आते हैं। देखो, जो नारद मुनि दिन-रात फिरते रहकर कहीं नहीं ठहरते वे भी सत्संग में आकर बैठते हैं। हमारे पितरों ने अपने कर्मानुसार वैकुण्ठ से भी उत्तम स्थान पाया होगा, पर तुम्हारे मुखारविंद से जो मैंने श्रीमद्भागवत सुना है, इसलिए हमारे पितर लोग उत्तम से भी उत्तम स्थान रहने के लिए पावेंगे। जिस मनुष्य के मुख से परमेश्वर का नाम नहीं निकलता, उसको पशु से भी निषिद्ध समझना चाहिए। जो कानों से भगवान् की स्तुति व कथा नहीं सुनता, उसके कान सर्प व बिच्छू के बिल के समान हैं। जो शिर हरिमन्दिर व देवस्थान पर साधु व ब्राह्मण के सम्मुख दण्डवत् नहीं करता वह मस्तक अंग पर बोझ के समान समझना उचित है। जो आँख श्यामसुन्दर का दर्शन प्रकट व ध्यान में नहीं करती वह आँख मोरपंख के समान समझनी चाहिए। जो गृहस्थ वैकुण्ठनाथ का प्रेम रखकर अपने वर्ण का धर्म करते हैं उनको योगी, संन्यासी और परमहंसों से उत्तम जानना चाहिए। इसलिए मनुष्य को उचित है कि मनुष्यतनु पाकर हरिभजन व सत्संग में अपना जन्म बितावे। हे शुकदेव स्वामी! तुम्हारे ऊपर भगवान् की बड़ी कृपा है, इसलिए चाहता हूँ कि मुझे कुछ और हरिचरित्र सुनाइए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तेरी बुद्धि धन्य है, जो तुम हरिकथा सुनने से ऐसी प्रीति रखते हो।

दो० जो या विधि चितदै सुनै हरि की कथा पुरान। कृपा करत हैंताहिपर माखनप्रभु भगवान॥

हे परीक्षित! अब हम सुदामा ब्राह्मण की कथा कहते हैं, जिसका

दरिद्र श्यामसुन्दर ने छुड़ाया और उसे कुबेर देवता के समान द्रव्य व इन्द्र का ऐसा सुख दिया था। दक्षिण दिशा द्राविड़ देश में विदर्भ नाम का एक नगर था। वहाँ के राजा व प्रजा अपने कर्म व धर्म से रहकर साधु व ब्राह्मण की सेवा किया करते थे। उसी नगर में सुदामा ब्राह्मण वेद व शास्त्र का पढ़ा हुआ, श्रीकृष्णजी का गुरुभाई रहता था। वह ऐसी गरीबी से अपना जन्म काटता था कि उसे तनुभर कपड़ा व पेट-भर भोजन नहीं मिलता था। कभी-कभी उपास हो जाते थे। तिस पर भी वह मन अपना विरक्त रखकर आठों पहर मग्न रहता था। उसकी स्त्री सुशीला भोजन व वस्त्र का दुःख पाने पर भी प्रेमपूर्वक अपने पति की सेवा करती थी। दोनों स्त्री-पुरुष संसारी सुख स्वप्नवत् समझकर दिन-रात परमेश्वर का स्मरण व ध्यान किया करते थे। बिना माँगे जो कुछ मिलता था उसे खाकर प्रसन्न रहते थे। एक बेर ऐसा संयोग हुआ कि सुदामा ब्राह्मण को स्त्री व चारों बेटों समेत दो उपास हो गये। जब तीसरे दिन दो बालक भूख से अति व्याकुल होकर रोने लगे और सुशीला से बेटों का कलपना देखा नहीं गया तब उसने डरती व काँपती हुई अपने स्वामी से हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज! मैंने सुना है कि श्रीकृष्णजी लक्ष्मीपति तुम्हारे मित्र व गुरुभाई हैं। उन्होंने केवल ब्राह्मणों की रक्षा करने व हरिभक्तों का दुःख छुड़ाने के लिए अवतार लिया है। आप उनके पास क्यों नहीं जाते, जिसमें तुम्हारा दुःख व दरिद्र छूट जावे। तुमको गृहस्थ ब्राह्मण समझकर वे इतना द्रव्य देंगे कि फिर तुम्हें कुछ संसारी इच्छा न रहेगी। यह सुनकर सुदामा ने कहा—हे प्रिये, तेरा ज्ञान कहाँ जाता रहा, जो तुझे इतनी तृष्णा उत्पन्न हुई। ब्राह्मणों को लालच करना अच्छा नहीं होता। तृष्णा रखने में ब्रह्मतेज नहीं रहता। जैसे तीन पन हमारे बीत गये वैसे ही चौथापन भी परमेश्वर की दया से बीत जायगा। इस समय लालच करके वहाँ जाऊँ, कहीं रास्ते में बुढ़ापे से गिर पड़ूँ तो संसारी लोग कहेंगे कि सुदामा ने बुढ़ौती समय लालचवश होकर अपना हाथ पैर तोड़ा। यह बात सुन-कर सुशीला बोली—हे महाप्रभु! मैं आपको लालच की राह वहाँ जाने

की सम्मति न देकर इसलिए कहती हूँ कि महात्मा व बड़े लोगों का दर्शन करने से सब दुःख छूटकर सुख प्राप्त होता है। श्यामसुन्दर त्रिभुवनपति ब्राह्मणों पर बड़ी दया रखते हैं, वहाँ जाने से तुमको सुख के सिवा कुछ दुःख प्राप्त न होगा।

दो० तिहिकारण बिनतीकरत चितदेसुनिये कन्त । उनपेक्योंनहिंजातहौ जिनकी कृपाअनंत ।।

यह सुनकर सुदामा ने कहा—हे प्राणप्यारी! सच है, मैं श्रीकृष्णजी से मित्रता व जान-पहिचान रखकर अपने को उनका सेवक समझता हूँ। जब मैं उनके पास भेंट करने जाऊँगा तब वे मुझे कंगाल जानकर द्रव्यादिक संसारी सुख भोगने के लिए देंगे, इसलिए मेरे निकट उन त्रिभुवनपति से जो अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थों के देनेवाले हैं, द्रव्यादिक जो सदा स्थिर नहीं रहता लेना उचित नहीं है। क्योंकि जब उनकी दया से मुझे धन मिलेगा तब हमसे उनका ध्यान व स्मरण जैसा गरीबी में बन पड़ता है वैसा नहीं हो सकेगा। संसारी सुख में लपट जाने से परलोक का सोच भूल जायगा। मैंने पूर्वजन्म किसी को कुछ दान दिया होता तो इस जन्म में मुझे मिलता। बिना दिये कोई नहीं पाता। इस बात में तुम मुझे कुछ दुःख मत दो। हमारे दिन बहुत अच्छे बीतते हैं। यह सुनकर जब सुशीला ने जाना कि मेरे स्वामी संसारी सुख को स्वप्नवत् समझकर कुछ इच्छा नहीं रखते तब फिर हाथ जोड़कर बोली—हे महाप्रभु! मैं कुछ धन की इच्छा न रखकर इस कारण कहती हूँ कि उन परब्रह्म परमेश्वर का दर्शन करने से तुम्हारी मुक्ति होगी। यह सुनकर सुदामा बोले—ऐ प्राणप्यारी! गुरु व महात्मा के यहाँ बिना कुछ भेंट लिये जाना उचित नहीं है, और मैं ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो कुछ वस्तु उनके वास्ते ले जाऊँ। यह बात सुनते ही सुशीला प्रसन्न होकर चार मूठी चावल अपने चार परोसियों से माँग ले आई। पुरानी धोती के लत्ते में बाँधकर अपने स्वामी को देकर कहा—महाराज! हम कंगालों की थोड़ी सी भेंट त्रिभुवनपति बड़ी प्रसन्नता से लेंगे। जब सुदामा ने चावल भेंट देने के लिए पाया तब वह पोटली काँख में दबाकर लोटा-डोरी काँधे पर धर ली और गणेशजी को मनाकर लाठी लिये राह में यह

विचार करता द्वारका को चला कि मेरे भाग्य में द्रव्य मिलना तो नहीं लिखा है, पर कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द का दर्शन पाकर अपना जन्म सफल करूँगा। परन्तु एक बात की चिन्ता मुझे है कि श्यामसुन्दर त्रिभुवन-पति सोलहहजार एकसौ आठ महलों में रानियों के पास रहते हैं, वहाँ बड़े-बड़े राजाओं का पहुँचना कठिन है, मुझ कंगाल मनुष्य को कौन जाने देगा, मेरी खबर उनको किस तरह पहुँचेगी।

दो० यह मन में सोचत चल्यो मैं तो दीन अनाथ। कैसे म्वहिं पहिचानि हैं वे त्रिभुवन के नाथ।।

अब मैं लज्जावश अपने घर को भी लौट नहीं सकता। बड़े सोच की बात है, जो अपनी झोपड़ी को, जिसमें भीख माँगकर आनंदपूर्वक दिन काटता था, हाथ से खोई। श्यामसुन्दर के पास पहुँचना कठिन दिखलाई देता है। जब सुदामा ब्राह्मण इसी तरह सोच-विचार करता हुआ तीन पहर में द्वारकापुरी के निकट पहुँचा तब उसने क्या देखा कि चारों ओर उस पुरी के समुद्र लहरें मार रहा है। उत्तम-उत्तम रत्नजटित स्थान बने हैं। सब छोटे-बड़ों के घरों में मंगलाचार व हरिचर्चा हो रही है। जब सुदामा ब्राह्मण यह सब आनंद देखता हुआ श्यामसुन्दर की ड्योढ़ी पर पहुँचा तब इस भय से कि मुझको कोई भीतर जाने से रोक न दे बारंबार पीछे देखता हुआ आगे को चला। वृंदावनविहारी की आज्ञानुसार ब्राह्मणों को किसी समय महल में जाने की मनहाई नहीं थी, इसलिए किसी द्वारपालक ने उसको भीतर जाने से नहीं बर्जा। जब सुदामा ब्राह्मण तीन ड्योढ़ी नाँघकर चौथे द्वार पर, जहाँ द्वारकानाथ जड़ाऊ सिंहासन पर बैठे हुए रुक्मिणी के साथ चौपड़ खेलते थे, पहुँचा तब द्वारपालक ने उसका हाल पूछकर मुरलीमनोहर के पास जाकर विनय किया—

स० शीश पगा न झगा तनुमें नहिं जानि को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटीसी लटी दुपटी अरु पाँव उपानह की नहिं सामा।।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकिसो वसुधा अभिरामा।।
पूछत दीनदयालु को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा।।

यह वचन सुनते ही केशवमूर्ति चौपड़ खेलना छोड़कर सिंहासन से उतर पड़े और आँखों में आँसू भरकर मिलने के लिए दौड़े। जब सुदामा ने श्रीकृष्णचन्द्र को आते देखा तो दौड़कर उनके चरणों पर गिर पड़ा।

श्यामसुन्दर ने सुदामा को बड़े प्रेम से उठाकर अपनी छाती में लगा लिया। इतनी कृपा द्वारकानाथ की अपने ऊपर देखकर सुदामा मन में कहने लगा—हे परमेश्वर! मैं यह हाल प्रकट देखता हूँ या स्वप्न में। द्वारकानाथ ने सुदामा का हाथ पकड़े हुए उसे सिंहासन पर ले जाकर बैठाया और अपने हाथ से उसकी धूरि झाड़कर पैर के काँटे निकाले। फिर उसके चरण धोने के लिए रुक्मिणी से जल माँगा और सुदामा से कहा—

स० काहे बिहाल बिवाइन ते पग कँटकजाल गड़े पुनि जोये।
हाय महा दुख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोये॥
देखि सुदामा कि दीनदशा करुणा करिकै करुणामय रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल से पग धोये॥

जब चरण धोते समय सुदामा अतिलज्जा से ज्यों ज्यों अपना पैर सिकोरे लेता था त्यों त्यों वैकुण्ठनाथ उसपर अधिक दयालु होकर अपने हाथ उसका चरण धोते थे। यह बात देखकर रुक्मिणी आदि आठों पटरानी चाहती थीं कि सुदामा की सेवा हम लोग अपने हाथ से करें, जिसमें हमारे प्राणपति को श्रम न हो, पर त्रिभुवनपति ने यह बात न मानकर अपने हाथ से सुदामा के अंग पर चन्दन लगाया और देवता के समान विधिपूर्वक उसका पूजन किया। छत्तीस प्रकार के व्यंजन खिलाकर पान व इलायची देकर फूलों का गजरा पहिनाया। रुक्मिणी आदि आठों पटरानियों से कहा कि तुम लोग जितनी सेवा हमारे मित्र सुदामा की प्रेमपूर्वक करोगी उतना हम तुम लोगों से प्रसन्न होंगे। जिस समय रुक्मिणीजी सुदामा के चँवर हिलाने लगीं उस समय देवता लोग अपने-अपने विमानों पर से यह हाल देखकर सुदामा के भाग्य की बड़ाई करने लगे।

दो०या विधि विप्रहिं पूजिकै माखन प्रभु यदुराय। कुशल क्षेम पूछन लगे अमृत बैन सुनाय॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! यह चरित्र देखते ही रुक्मिणी व सत्यभामा आदि द्वारकानाथ की सब स्त्रियाँ और जो यदुवंशी वहाँ पर थे अचम्भा मानकर आपस में कहने लगे कि रूपवान् व धनपात्र का सब लोग आदर करते हैं, इस दरिद्री बूढ़े ब्राह्मण ने न मालूम पिछले जन्म कौन ऐसा भारी तप किया था और क्या गुण इसमें भरा है, जिसके कारण त्रिभुवनपति अपने हाथ से इसकी इतनी सेवा करते हैं।

चौ० याहि कृष्ण पूजत हैं जैसे । निज पूजन मानत हैं तैसे ॥
दो०या विरंचिसनकादि हैं या नारदऋषि आहि । या शिव गौरीनाथ हैं हरि पूजत हैं ताहि ॥

उस समय सत्यभामा ने, जो बड़ी बोलनेवाली थी, दूसरी स्त्रियों से कहा कि श्रीकृष्णजी सदा हम लोगों के साथ अभिमान भरी हुई बातें किया करते हैं, अब उनके मित्र को देखो, जिसने जन्म भर नया कपड़ा कभी स्वप्न में भी नहीं देखा, पहिनने की कौन कहे। न मालूम ये ब्राह्मण देवता किस नगर में रहते हैं, जिन पर ऐसा दरिद्र छा रहा है। पर इसका बड़ा भाग्य समझना चाहिए, जिसने वैकुण्ठनाथ को ऐसा वश कर लिया। पहिले मैंने नन्द व यशोदा इनके माता-पिता के गौ चराने का हाल सुना था और आप दही-मक्खन चुराकर खाया करते थे, अब इनके मित्र को देख कर मुझे विश्वास हुआ कि वे सब बातें सत्य हैं। जब सुदामा ने ऐसी कृपा श्यामसुन्दर की अपने ऊपर देखी तब उसने मन में समझा कि केशव-मूर्ति ने मुझे नहीं पहिचाना, किसी दूसरे के धोखे से मेरी सेवा करते हैं। मैं इस योग्य नहीं हूँ। वैकुण्ठनाव अन्तर्यामी ने यह हाल जानकर उसका संदेह छुड़ाने के लिए कहा—हे मित्र! तुमको याद होगा, जब हम और तुम दोनों मनुष्य एक साथ सांदीपन गुरु के यहाँ विद्या पढ़ते थे और उन्हीं दिनों तुम्हारा विवाह हुआ था, सो बतलाओ हमारी भौजाई अच्छी तरह हैं। तुम राह में क्षेम कुशल से यहाँ तक आये। मुझको तुम्हारे देखने की बहुत चाह लगी थी, तुमने बड़ी दया की जो अपने चरणों से मेरा स्थान पवित्र करके मुझे दर्शन दिया। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम उन दिनों में भी अपना मन विरक्त रखते थे। बताओ, अब किस तरह बीतती है। जिस तरह सोलह हजार एक सौ आठ स्त्री रहने पर भी मैं किसी के अधीन नहीं रहता उसी तरह ज्ञानी लोग संसार में रहकर अपना मन विरक्त रखते हैं।

दो०सकलवस्तु संसार की कबहूँ सुस्थिर नाहिं। त्यहिकारण ज्ञानीपुरुष चितनधरतधनमाहिं॥

हे सुदामा! जैसी प्रीति व दया से महात्मा पुरुष सांदीपन गुरु ने सब विद्या हमको पढ़ाई थी उसमें से एक अक्षर पढ़ने के बदले हम जन्म-भर उऋण नहीं हो सकते। जो कोई गुरु को परमेश्वर के समान जान-

कर उनकी सेवा करता है, जितना हम उससे प्रसन्न होते हैं उतना यज्ञ व तप व दान करनेवालों से खुश नहीं होते।

दो० गुरुसेवा दुर्लभ महा चित दे करै जु कोय। जो मन में इच्छा करै सो सब पूरण होय॥

हे सुदामा! तुमने पढ़ने-लिखने में हमारी बड़ी सहायता की थी और मेरे बदले गुरु की सेवा करते थे। यह बात तुमको याद होगी कि जब एक दिन गुरु की स्त्री ने हमें व तुम्हें वन में लकड़ी ले आने के लिए भेजा तब तुमने हमारे बदले भी लकड़ी तोड़कर कहा था कि तुम्हारे हाथ कोमल हैं, लकड़ी तोड़ने में दुःख होगा। जब लकड़ी का बोझ शिर पर लेकर दोनों आदमी घर को चले तब ऐसी आँधी चलकर पानी बरसने लगा कि दश पग रास्ता चलना कठिन हो गया।

दो० पवन झकोरै तेज सों शीत भयो दुखदाय। काठ भार मस्तक धरे हमको लियो छिपाय॥
बहुत भाँति रक्षा करी आप रहे दुख माहिं। तुम्हरी प्रीति अनन्त है उऋण होत मैं नाहिं॥

जब उस दिन हम और तुम आँधी चलने व पानी बरसने से घर तक न पहुँचकर रात को वन में रह गये तब गुरुजी अपनी स्त्री पर बहुत क्रोधित होकर प्रातःसमय हम दोनों को वन में ढूँढ़ने आये और व्याकुलता से हमारा व तुम्हारा नाम पुकारकर कहने लगे कि तुम लोग जहाँ पर हो वहाँ से बोलो जिसमें मुझे धैर्य हो, नहीं तो तुम्हारे सोच में मेरे प्राण निकलने चाहते हैं। जब गुरुजी ने रोते व चिल्लाते हमारे पास पहुँचकर हमको सर्दी से काँपते हुए देखा तब दौड़कर प्रेम से उठा लिया और हमारा शिर व मुँह चूमकर बोले—तुम लोगों ने अपनी सेवा से मुझे बहुत प्रसन्न किया, इसलिए तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि सब विद्या तुमको याद होकर कभी न भूलें और गुरु के चरणों में तुम्हारी निष्कपट प्रीति बनी रहे। हे सुदामा! जब से विद्या पढ़कर हम और तुम विलग हुए तब से आज तुमको देखकर मुझे ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ, मानों सांदीपन गुरु का दर्शन पाया। जब यह सुनकर सुदामा का सन्देह छूट गया तब उसने नम्रता से हाथ जोड़कर विनय किया—हे स्वामी! तुम त्रिभुवनपति होकर मुझे क्यों इतना लज्जित करते हो। चारों वेद आपके श्वास से निकलते हैं तीनों लोकों के जीव तुम्हारा पूजन करते हैं, आपने केवल

संसारी जीवों को राह दिखलाने के लिए गुरु से विद्या पढ़ी है, आपके आदि अन्त को कोई नहीं जान सकता। आप सब जगत् के माता-पिता अविनाशी पुरुष होकर संसारी व्यवहार अपनी इच्छा से करते हैं। आपका नाश कभी नहीं होता। जो लोग प्रेमपूर्वक आपका नाम जपकर तुम्हारी कथा व कीर्तन सुनते हैं उनको संसार में यश प्राप्त होकर अन्त समय मुक्ति मिलती है। जब शेषनाग हजार मुख से दिन-रात आपकी चर्चा रखने पर भी तुम्हारे भेद को नहीं पहुँच सकते तब देवता व संसारी जीवों की क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारा आदि व अन्त जान सकें। आप पलक भाँजते भर में चौदहों भुवन उत्पन्न व नाश करने की सामर्थ्य रखकर सब जीवों का पालन करते हैं। आप सदा एक रस रहकर घटने बढ़ने से कुछ प्रयोजन नहीं रखते। तुम्हारा चमत्कार सब जीवों में है। आप अपने तेज से प्रकाशित रहते हैं। तुम अपनी इच्छा से मनुष्य तनु धरकर जो काम मनुष्यों को करना चाहिए वह बात संसारी जीवों को राह दिखलाने के लिए करते हो, नहीं तो आप जन्म मरण से रहित हैं। तुम्हारे काम व अवतार की गिन्ती कोई नहीं कर सकता। हे दीनानाथ! जिस चतुर्भुजी मूर्त्ति से आप जर्द पीताम्बर व वैजयन्ती माला पहिने शंख चक्र गदा पद्म धारण किये गरुड़ पर बैठते हैं उस रूप को मैं हजारों दण्डवत् करता हूँ। सब छोटे बड़ों को अपना बालक समझकर आप गरीबों पर अधिक दया करते हैं तीनों लोकों में किसी का डर न रखकर अभिमानियों का अहंकार तोड़ देते हैं। तुम्हरा श्यामवर्ण अंग ऐसा सुन्दर और कोमल, कमलरूपी आँखें हँसते हुए मुखारविन्द पर ऐसी शोभा देती हैं, जिनका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। मेरे पूर्वजन्म का पुण्य सहाय हुआ, जो तुम्हारे चरणों का दर्शन पाया। अब मैं कुछ इच्छा न रखकर यही चाहता हूँ कि आठों पहर तुम्हारे स्मरण व ध्यान में लीन रहकर संसारी व्यवहार स्वप्न के समान समझूँ।

—: • :—

इक्यासीवाँ अध्याय ।

सुदामा ब्राह्मण का श्रीकृष्णजी से विदा होना ।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! जब सुदामा ने इसी तरह बहुत स्तुति श्यामसुन्दर की प्रेमपूर्वक की तब द्वारकानाथ अन्तर्यामी ने हँसकर कहा—हे मित्र! हम तुम्हारी अमृतरूपी बातों से बहुत प्रसन्न हुए, अब जो सौगात हमारी भौजाई ने भेजी है सो हमें दो। यह वचन सुनते ही सुदामा ने पछिताकर मन में कहा कि बड़े सोच की बात है, जो मूठी भर तण्डुल त्रिभुवनपति को भेंट दूँ। जब ऐसा विचारकर सुदामा लज्जा से चावल की पोटली काँख में छिपाने लगा और उसका मुख मलीन हो गया तब वसुदेवनन्दन ने मन में कहा कि एक बेर हमारा कलेवा छिपाकर सुदामा इस दरिद्रता को पहुँचा तिस पर भी वही बात करता है। फिर केशवमूर्ति ने वह पोटली उसकी बगल से खींचकर खोल डाली और बड़े प्रेम से भूसी मिला हुआ दो मुट्ठी चावल खाकर बोले—हे सुदामा ! जितना प्रीति सहित एक फूल व तुलसीदल चढ़ाने से मैं प्रसन्न होता हूँ उतना बिना भक्ति लाखों मन मिठाई व जड़ाऊ भूषण से खुशी नहीं होता।

चौ० दुर्योधन बहु पाक बनाये। प्रीति बिना मोको नहिं भाये ॥
विदुरभक्त की प्रीति जु जानी। बासी साग बहुत रुचि मानी ॥
विविध भाँति मिष्ठान्न जू लावै। बिना प्रीति कछु काज न आवै ॥
जो कुछ तुम लाये हम पाहीं। थोड़ी मति जानौ मन माहीं ॥

दो०सागपात भी प्रीतिसों हमको देय जु कोय। त्यहि समान सबसृष्टिमेंकछुकस्वादनहिंहोय॥
तण्डुल की महिमा कहत माखनप्रभुयदुराज। सुर नर मुनि तिहुँलोक के तृप्त भये हैं आज॥

पोटली खोलते समय थोड़े से चावल पृथ्वी पर गिर पड़े सो उसे मुरलीमनोहर अपने हाथ उठाने लगे और रुक्मिणी आदि आठों पटरानियों से कहा कि एक-एक दाना चावल का चुनकर मुझे उठा दो, जिसमें कोई दाना पैर के नीचे न आवे। चावल खाते समय द्वारकानाथ बोले—जैसा स्वाद इस तण्डुल में मिलता है वैसा भोजन आज तक यशोदा व देवकी ने मुझे नहीं खिलाया था। ऐसा कहकर जैसे श्यामसुन्दर ने तीसरी मुट्ठी चावल उठाकर खाना चाहा वैसे ही रुक्मिणीजी उनका हाथ

पकड़कर बोलीं–बस कीजिए, हम लोग भी तुम्हारे चरणों के अधीन हैं, कुछ हमारे खाने के लिए भी रक्खोगे या नहीं।

स० हाथ गहे प्रभु को कमला कह नाथ कहा तुमने चित धारी।
तण्डुल खाय मुठी दुई दीन कियो तुमने दुइ लोक बिहारी॥
खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहाँ निज बास की आस बिचारी।
रंकहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी॥

यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने कहा–

स० क्यों रस में विष वाम कियो अब और न खान दियो एक फंका।
विप्रहि लोक तृतीयक देत करी तुम क्यों अपने मन शंका॥
भामिनि मोहिं जिवाँइ भली विधि कौन रह्यो जग में नर रंका॥
लोग कहैं हरिमित्र दुखी हमसे न सह्यो यह जात कलंका॥

यह सुनकर रुक्मिणीजी बोलीं–

स० भार्गव ह्वै तुम जीति धरा दय विप्रन को अति ही सुख मानो।
विप्रन काढ़ि दियो तुमको निशि ता दिन को बिसरो खिसियानो॥
सिन्धु हटाय करी तुम ठौर द्विजन्म सुभाव भली विधि जानो।
सो तुम देत द्विजै सब लोक कियो तुमने अब कौन टिकानो॥

यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने उत्तर दिया–

स० भामिनि देउँ द्विजै सब लोक तजो हठ मोरे यही मन भाई।
लोक चतुर्दश की सुख सम्पति लागत विप्र बिना दुखदाई॥
जाय बसों उनके गृह में करिहौं द्विजदम्पति की सेवकाई।
तौ मन माँह रुचै न रुचै सो रुचै हमको यहि ठौर सुहाई॥

यह वचन सुनकर रुक्मिणीजी बोलीं–

स० नेक न कानि करैं द्विज ये नृग से नृप को निरयीं करि डारचो।
शाप दियो पुनि शंकर को अबलौं मखते शिवभाग बिसारचो॥
विप्रन फेरि विजय जय को तुम देखत घोर कुयोनि में डारचो।
सो तुम जानि सबै गुणदोष करो फिरहु द्विज को पतियारचो॥

यह सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा–

स० विप्रन के मुख ते सुर जेंवत विप्र रची श्रुतिरीति सुहाई।
विप्र बिना जग अन्ध पशू बिन विप्र नहीं गुण दोष लखाई॥
विप्रहि मोहिं रुचै निशि वासर विप्रन ही मम शाक चलाई।
विप्रन ते न उऋण कभूँ हठ छोड़ि प्रिया करु विप्र भलाई॥

यह सुनकर रुक्मिणीजी बोलीं—

स० तातहिं छार कलंक भरा तब नाथ हत्यों उर लात प्रहारी।
शालत सो अजहूँ उर में हम संग कुरीत सदा द्विज पारी॥
ब्राह्मण ह्वै तुमहूँ बलि पै पिय जाति सुभाव दया परिहारी।
सो तुम जानि सबै गुण दोष पड़ो द्विज हाथन श्याममुरारी॥

यह सुनकर मुरलीमनोहर ने उत्तर दिया—

स० भामिनि क्यों बिसरी अबहीं निज ब्याह समै द्विज की हितुआई।
सोच लियो द्विज की करनी जिसके कर सों पतिया पठवाई॥
विप्र सहाय भयो तिहि औसर को द्विज के सम है सुखदाई।
योग नहीं अर्द्धांगिनि है तुमको द्विज हेत इती निठुराई॥

जब त्रिभुवनपति ने देखा कि तीसरी मुट्ठी खाने से रुक्मिणी उदास हो जायगी तब वह न खाकर रुक्मिणी से कहा—हे प्राणप्यारी! यह ब्राह्मण मेरा बड़ा मित्र होकर संसार में सुख व दुःख को बराबर जानता है। आठों पहर मेरे स्मरण व ध्यान में रहकर संसारी सुख की कुछ चाह नहीं रखता। जब मुरलीमनोहर ने इसी तरह अनेक बातें समझाकर रुक्मिणी का बोध किया तब वसुदेव, देवकी, उद्धव आदि यदुवंशी, जो वहाँ बैठे थे, यह हाल देखकर आपस में हँसी से कहने लगे कि देखो, इस ब्राह्मण के समान कोई दूसरा गरीब संसार में न होगा, जो इतनी दूर से मुट्ठी भर तंडुल सौगात लाया है। और कृष्णचन्द्र को ब्राह्मण से भी अधिक कंगाल समझना चाहिए जो अकेले उस चावल को खाकर उसकी बड़ाई करते हैं। उनकी बात सुनकर वसुदेवनन्दन ने उत्तर दिया कि तुम लोग इस तंडुल का स्वाद क्या जानो, तुम्हारा भाग्य उदय हुआ, जो इस ब्राह्मण के चरणों का दर्श पाया।

दो० इन तंडुल के स्वाद को जानतहैनहिं कोय। हम बिनु ऐसो कौन है जाको प्रापत होय॥

जब पहर रात बीते द्वारकानाथ ने सुदामा को महल में ले जाकर अपने पलँग के पास दूसरे छपरखट पर सुलाया तब मुरलीमनोहर की आज्ञानुसार रुक्मिणीजी ने सुदामा का पैर दाबा और श्यामसुन्दर आधी-रात तक अपने मित्र से लड़कपन की बातें करते रहे। जब सुदामाजी सो गये तब केशवमूर्ति अन्तर्यामी ने विचारा कि यह ब्राह्मण द्रव्य की चाह

नहीं रखता, पर इसकी स्त्री ने संसारी सुख व लक्ष्मी मिलने के लिए इच्छा रखकर इसे बरजोरी मेरे पास भेजा है, इसलिए सुदामा को इतना धन देना चाहिए जो देवताओं को भी प्राप्त न हो। ऐसा विचारकर वैकुण्ठनाथ ने उसी समय विश्वकर्मा को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम अभी सुदामापुरी में जाकर उसके रहने के लिए ऐसा रत्नजटित स्थान बना दो, जिसके बराबर चौदहों भुवन में दिखलाई न दे। आठों सिद्धि व नवों निधि वहाँ बनी रहें, जिसमें कोई कामना सुदामा की बाकी न रहे।

दो० तबहिं विश्वकर्मा चल्यो प्रभु की आज्ञा पाय। मंदिर रत्नजड़ाय के क्षण में दियो बनाय ।।

जब सुदामा की निद्रा में एक करवँट से दूसरी करवँट लेता था तब वसुदेव-नन्दन प्रेम से उसके अंग पर हाथ फेरकर बड़ाई करते थे। जब तीसरे दिन सुदामा प्रातःसमय नित्य नियम करके श्यामसुन्दर से विदा होने गया तब देवकीनन्दन ने ड्योढ़ी तक सुदामा के साथ जाकर आँसू भरके कहा—हे भाई! तुमने बड़ी दया की, जो अपना दर्शन मुझे दिया। मैं तुमसे यही माँगता हूँ कि हमको भूल मत जाना। जब सुदामा मोहनीमूर्ति को दण्डवत् करके अपने घर चला तब वह आँखों की राह वृन्दावनविहारी का स्वरूप हृदय में रखकर कहने लगा कि देखो, श्रीकृष्णजी ने मेरे ऊपर इतनी दया की, जिसका पलटा मैं कई जन्म तक नहीं दे सकता, पर कुछ द्रव्य मुझे नहीं दिया, जिससे मेरा दरिद्र छूट जाता। जिस तरह कंगालरूप अपने घर से आया था उसी तरह खाली हाथ लौट रहा हूँ।

चौ० फिर वह द्विज समझयो मन माहीं। विघ्न अनेक होत धन माहीं ।।

दो० याही कारण कृपा करि मित्र आपनो जान। मोहिं द्रव्य दीन्हों नहीं माखनप्रभु भगवान ।।

मेरे लिए यह गरीबी बहुत अच्छी है, जिसमें परमेश्वर का भजन आनन्द से बन पड़ता है। धन रखनेवाले सदा खटके में रहते हैं। इससे अधिक क्या धन होगा, जो त्रिभुवनपति के चरणों का दर्शन मुझे प्राप्त हुआ। बहुत अच्छी बात मैंने की जो द्वारकानाथ से कुछ नहीं माँगा। माँगने से धन तो मिलता, पर मुझे लोभी समझते। अब मैं अपने घर जाकर ब्राह्मणी को समझा लूँगा। जब सुदामा इसी तरह सोच-विचार करता हुआ अपने गाँव के निकट पहुँचा तब उसने वहाँ अपनी झोपड़ी का पता न

पाकर क्या देखा कि उस जगह एक स्थान रत्नजटित बना है और उसके चारों ओर अनेक तरह के फल व फूल बागों में लगे होकर वृक्षों पर तोता, कोकिला और मोर आदि सुन्दर पक्षी बैठे हुए मीठी-मीठी बोली बोल रहे हैं। पुष्पों पर भँवरे रस चूसने के लिए गूँजते हैं। महल के द्वार पर चोपदार व सिपाही लोग बैठे हैं। अनेक दासी व दास अपना-अपना काम करते हैं। सुदामा यह देखकर आश्चर्य से कहने लगा—हे परमेश्वर! थोड़े दिन में ऐसा सुन्दर स्थान यहाँ किसने बनाया, या मैं राह भूलकर कहीं दूसरी जगह चला आया। मुझे यह हाल प्रकट दिखाई देता है या स्वप्न में, न मालूम मेरी पुरानी झोपड़ी क्या हो गई, वह पतिव्रता स्त्री कहाँ चली गई। बड़े सोच की बात है, जो मैंने लोभवश बाहर निकलकर अपने घर व स्त्री को भी हाथ से खोया। नारायण! अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, एक तो गरीबी के दुःख में पड़ा था, दूसरे स्त्री खोजने का सोच और अधिक हुआ। अब मैं उसे कहाँ जाकर ढूँढ़ूँ। जिस समय सुदामा इसी सोच विचार में खड़ा था उसी समय सुशीला अपने स्वामी को देखने के लिए कोठे पर चढ़ी। जैसे उसने सुदामा को द्वार पर खड़े देखा वैसे ही दासियों को आज्ञा दी कि हमारे पति द्वार पर खड़े हैं, उनको सम्मान-पूर्वक भीतर लिवा लाओ। द्वारपालक और दासियों ने यह आज्ञा पाते ही सुदामा के पास जाकर दण्डवत् करके उनको भीतर चलने के लिए कहा। कोई शरीर की धूरि झाड़कर पंखा हिलाने लगा। सुदामा उनके आदरभाव करने से घबराकर बोला कि मुझ गरीब ब्राह्मण को राजाओं के घर में क्यों लिए जाते हो। यह सुनकर द्वारपालकों ने विनय किया—महाराज! यह स्थान आप ही का है, निस्सन्देह भीतर चलिए। जब सुदामा उनकी बात का विश्वास न मानकर डर से काँपने लगा तब सुशीला सोरहों श्रृंगार किये सखियों को साथ लिए, उनकी आरती करने के लिए द्वारे पर आई और सुदामा के चरणों पर गिरकर परिक्रमा किया और आरती करके हाथ जोड़कर विनय किया—

चौ० ठाढ़े क्यों मंदिर पग धारो। मनते सोच करो तुम न्यारो॥
तुम पाछे विश्वकर्मा आये। तिन मंदिर पल माहिं बनाये॥

भूषण व वस्त्र पहिनने से सुशीला का रूप बदल गया था, इसलिए कुछ क्षण बीते उसे पहिचानकर ध्यान में श्रीकृष्णजी को दण्डवत् किया और उसके साथ भीतर जाकर क्या देखा कि मखमली परदे, जिनमें मोतियों की झालरें लगी हैं, सब द्वारों में लटकाये हैं। रत्नजटित चौकी व शय्या बिछी हैं। सब स्थानों में अगर व चन्दन आदि जलने से सुगन्ध उड़ रही है। ऐसी मणि व रत्नादिक वहाँ रक्खे थे जिनके प्रकाश से रात को उजियाला रहता था, दीपक जलाने का प्रयोजन नहीं पड़ता था।

दो० रत्नजटित घरदेखिकै चकित भयो मनमाहिं। ज्यहि समानतिहुँलोकमें औरठौरकहुँनाहिं॥

यह सब राजसी विभव देखकर जब सुदामा का मुख मलीन हो गया तब सुशीला ने आश्चर्य मानकर पूछा—हे स्वामी! धन मिलने से संसारी लोग प्रसन्न होते हैं, आप यह सब इन्द्रपुरी का सुख व इतना धन पाकर क्यों उदास हो गये, इसका भेद बतलाइए। यह सुनकर सुदामा बोले—हे प्राणप्यारी! यह धन परमेश्वर की जड़रूपी माया बहुत बलवान् होकर सब जगत् को मोह लेती है, इसीलिए जैसा गरीबी में मुझसे हरिभजन बन पड़ता था वैसा धन का सुख पाने से नहीं हो सकेगा। यही समझकर मेरा मुख मलीन हो गया। श्यामसुन्दर ने बिना माँगे इतना धन मुझको दिया, पर थोड़ा समझकर मुख से कुछ नहीं कहा, इसलिए मैं यह सब विभव मिलने का हाल कुछ न जानकर अपनी टूटी झोपड़ी के लिए पछिताता था। सच है, बड़े लोग किसी को कोई वस्तु देते हैं तो मुख से नहीं कहते। मुझे इस बात का बड़ा सोच है कि इतने दिनों तक त्रिभुवनपति का दर्शन न करके अपनी अवस्था वृथा खोई। हे प्रिये, तुम इस धन को अपना न जानकर आठों पहर यह समझती रहना कि सब सुख व धन मुझे द्वारकानाथ की कृपा से मिला है, जिसमें तुझे अभिमान न हो। मैं त्रिभुवनपति से दिन-रात यही माँगता हूँ कि जन्म-जन्मान्तर परमेश्वर का दास व सेवक होकर उसकी सेवा व टहल में बना रहूँ।

दो० जबलौं सुमिरे ना हरी जो संतन के मीत। वे दिन गिनती में नहीं गये वृथा सब बीत॥

यह बात सुनकर सुशीला ने मन में कहा कि देखो, श्यामसुन्दर अन्तर्यामी ने बिना माँगे मेरी इच्छा पूर्ण की। फिर वह बोली—हे स्वामी!

अब तुम निश्चिन्त होकर हरिभजन किया करो। ऐसा समझाकर सुशीला ने सुदामा को उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाये और सुगन्धादिक उनके अंग में लगाकर हरिभजन संयुक्त उनके साथ संसारी सुख भोगने लगीं। तन छोड़ने के उपरांत वे वैकुण्ठ में जाकर लक्ष्मी नारायण के दासी व दास हुए। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! देखो, चार मुट्ठी चावल परमेश्वर को देने से सुदामा ऐसी सुन्दर गति को पहुँचा। जो लोग सदा प्रेमपूर्वक छत्तीस व्यंजन नारायणजी को भोग लगाते हैं, उनको न मालूम कैसा सुख मिलेगा। सुदामा का स्थान ऐसा उत्तम विश्वकर्मा ने बनाया था जिसे देखकर इन्द्रादिक देवता मोहित हो जाते थे।

दो० यह चरित्र अद्‌भुत महा चित दै सुनै जु कोय। रहै सदा सुख चैन सों अन्त मुक्तिफल होय॥

—:०:—

बयासीवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का सूर्यग्रहणस्नान करने के लिए कुरुक्षेत्र में जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! अब हम श्रीकृष्णजी के कुरुक्षेत्र-यात्रा की कथा कहते हैं, सुनो। एक बेर सूर्यग्रहण लगने में श्यामसुन्दर व बलरामजी ने राजा उग्रसेन से कहा कि महाराज! कुरुक्षेत्र में सूर्य-ग्रहणस्नान का बड़ा माहात्म्य है। जो वस्तु वहाँ दान करे उसका हजार गुणा फल मिलता है। यह सुनकर यदुवंशियों ने पूछा—हे महाप्रभु! ऐसा माहात्म्य वहाँ का किस तरह हुआ? केशवमूर्ति ने कहा—वह स्थान बहुत पुराना व पवित्र है। पहिले उसका नाम स्यमन्तकक्षेत्र था। जब से परशुरामजी ने क्षत्रियों को मारकर वहाँ रक्त की नदी बहाई और उसी रुधिर से पितरों का तर्पण किया, ऋषीश्वरों ने उस स्थान पर परमेश्वर का तप व ध्यान किया तब से वहाँ का नाम कुरुक्षेत्र प्रकट होकर सूर्यग्रहण नहाने का बड़ा माहात्म्य हुआ। यह वचन सुनते ही जब राजा उग्रसेन व यदुवंशी लोग प्रसन्न होकर वहाँ चलने को तैयार हुए तब मुरलीमनोहर ने अपने माता-पिता और रुक्मिणी आदि सब स्त्रियों को साथ ले लिया और बड़े विभव से राजा उग्रसेन व यदुवंशियों समेत कुरुक्षेत्र को कूच किया। अनिरुद्ध अपने पोता और कृतवर्मा यादव को द्वारकापुरी में छोड़

दिया। जब यदुवंशी लोग अनगिन्ती हाथी व घोड़े व रथों पर बैठकर चले और रानियों के चंडोल व नालकी आदि नगर से बाहर निकलीं उस समय ऐसी शोभा मनहरणप्यारे की मालूम होती थी जैसे ताराओं में चन्द्रमा शोभा देते हैं।

दो० चले कटक सब साजिकै माखनप्रभुयदुराज। विविध भाँति बाजे बजे सुखको भयोसमाज॥

जब श्यामसुन्दर यदुवंशियों समेत कुरुक्षेत्र के निकट पहुँचे और वहाँ से तीर्थ दिखलाई देने लगा तब सब छोटे-बड़े सवारियों पर से उतर कर पैदल चले। वेद व शास्त्र में ऐसा लिखा है कि तीर्थ जाते समय सम्पूर्ण रास्ता पैदल न चल सके तो जहाँ से तीर्थ का स्थान दिखलाई दे वहाँ से अवश्य पैदल चलना चाहिए। द्वारकानाथ ने सबको साथ लिये हुए पहिले ब्रह्मकुण्ड पर, जिसमें से वेद निकला था, जाकर स्नान किया, फिर बहुत सी गौ, सुवर्ण, द्रव्य, हाथी, घोड़े आदिक अनेक तरह की वस्तुएँ विधिपूर्वक तीर्थवासी ब्राह्मणों को दान दिया। अपने साथियों से कहा कि तुम लोग यहाँ तीर्थ में ब्राह्मणों का सम्मान करके किसी को दुर्वचन मत कहना। श्यामसुन्दर ने जिस जगह ऋषीश्वर व महापुरुषों के आने व रहने का समाचार पाया वहाँ आप जाकर उनका दर्शन किया और अपने सेवकों को आज्ञा दी—

दो० तात हमारे नन्दजू और यशोदा माय। उनकी सुधि जो कुछ मिलै हमसों कहियो आय॥

जब दुर्योधन आदि अनेक देश के राजाओं ने, जो ग्रहणस्नान करने वहाँ आये थे, मुरलीमनोहर के यहाँ आकर उनका दर्शन करके अपना जन्म सफल जाना तब धृतराष्ट्र आदिक बड़े-बड़े नृपति व भीष्मपितामह ने राजा उग्रसेन की बहुत स्तुति करके उनसे विनय किया—महाराज! तुम्हारा बड़ा भाग्य है, जिस परब्रह्म परमेश्वर का दर्शन ब्रह्मा व महादेव आदि देवताओं को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता वही त्रिभुवनपति दिन-रात तुम्हारी आज्ञा में रहकर बिना पूछे कोई काम नहीं करते। सबके ईश्वर होकर तुम्हें दण्डवत् करते हैं। ऐसी पदवी किसी देवता को नहीं मिल सकती। यह वचन सुनकर राजा उग्रसेन ने सम्मानपूर्वक उनको विदा किया। राजा भीष्मक व नग्नजित् आदि वसुदेवनन्दन के श्वशुर

व सालों का हाल, जो वहाँ ग्रहणस्नान करने आये थे, सुनकर मुरली-मनोहर की स्त्रियाँ उनसे भेंट करने गईं। वे लोग उन्हें देखकर अति प्रसन्न हुए। उन्होंने बहुत सी सौगात अपने-अपने देश की मुरलीमनोहर को भेंट देकर उनका दर्शन प्रेमपूर्वक किया। कुन्ती ने श्रीकृष्णजी से कहा कि मैं जानती थी कि मेरे बेटों पर तुम दया रखते हो। तुम्हारे भाइयों ने दुर्योधन के हाथ से इतना दुःख उठाया, पर तुमने कुछ सुधि नहीं ली, इस बात का मुझे बड़ा पछतावा है। यह वचन सुनकर लक्ष्मीपति ने कहा—हे फुआ! इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है, सब दुःख-सुख अपने प्रारब्ध से मिलता है। जिस तरह आँधी चलने से कोई तिनुका बिना उड़े नहीं रह सकता उसी तरह सब जीव परमेश्वर के अधीन रहकर अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं, उसमें तिलभर घट बढ़ नहीं सकता। यह सुनकर कुन्ती ने वसुदेवजी से कहा—हे भाई! जब से तुमने मेरा विवाह कर दिया तब से कुछ सुधि नहीं ली। मैंने जैसा दुःख दुर्योधन के हाथ से पाया उसका हाल परमेश्वर जानता है। श्याम व बलराम ने भी हरिभक्तों का दुःख छुड़ाने के लिए संसार में अवतार लेकर मेरे ऊपर कुछ दया नहीं की। इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। यह बात सच है कि जब खोटे दिन आने से परमेश्वर विमुख होते हैं तब बाप व भाई आदि किसी की सहायता कुछ काम नहीं करती। यह सुनते ही वसुदेवजी ने रोकर कहा—हे बहिन! हरिइच्छा बलवान् होकर कर्म की गति जानी नहीं जाती। जिस समय दुर्योधन ने तुमको दुःख दिया था, उन्हीं दिनों में कंस ने मुझे कैद रखकर मेरे बेटों को मारने के जो-जो उपाय किये थे उनको तुमने सुना होगा। जब परमेश्वर की दया से दोनों बालक किसी तरह बचे तब राजा जरासन्ध आकर ऐसा लड़ा जिसके डर से अपना देश छोड़कर टापू में जा बसे। इसी कारण तुम्हारी कुछ सुधि नहीं ले सके। इसी तरह अनेक बातें कहकर वसुदेवजी ने कुन्ती को बोध किया। नन्द व यशोदा आदि भी ग्रहणस्नान करने आये थे और श्यामसुन्दर के डेरे से तीन कोस पर टिके थे। जब यह हाल सुना कि मोहनप्यारे अपने कुटुम्ब समेत यहाँ आये हैं तब वे लोग उनसे भेंट करने के लिए

व्याकुल होकर आपस में कहने लगे कि अब वृन्दावनविहारी सब राजाओं के शिरताज हुए हैं, इसलिये उनको हमारी तरफ देखते लज्जा मालूम होगी। जहाँ अनेक ड्योढ़ीदार रहने से राजाओं का पहुँचना कठिन है वहाँ हम गँवारों को कौन जाने देगा।

दो० जिस जागह नरपति धनी बैठन पावत नाहिं। हम सब ग्वाल गँवार जन कैसे अब तहँ जाहिं॥

जब नन्द व यशोदा आदिक व्रजवासियों से बिना देखे मुरलीमनोहर के नहीं रहा गया तब वे लोग घबराकर श्यामसुन्दर का डेरा पूछते हुए वहाँ से दौड़े। उसी समय किसी ने आकर श्रीकृष्णजी से कहा कि नन्द व यशोदा आदि भी ग्रहण नहाने के लिए यहाँ आकर टिके हैं। यह वचन सुनते ही मोहनप्यारे उनके प्रेम से रोने लगे। उनकी यह दशा देखकर देवकी माता घबरा गईं और अपने अंचल से उनके आँसू पोछकर बोलीं—हे लालन! जहाँ तुम्हारा नाम लेने से जगत् का दुःख छूट जाता है वहाँ तुम्हें कौन ऐसा दुःख प्राप्त हुआ जो इतना रोते हो। यह सुनकर त्रिभुवन-पति ने कहा—हे माता। जब से मैंने नन्द व यशोदा के आने का समाचार सुना है तब से मेरा मन उनके चरण देखने के लिए व्याकुल हो रहा है। मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। तुम जल्दी रथ आदि भेजकर उनको यहाँ बुलवावो तो मुझे उनके दर्शन मिलने से धैर्य हो। हम बहुत अच्छी शुभ सायत में द्वारका से चले थे जो तीर्थस्नान करने का फल पाकर व्रजवासियों से भेंट हुई। यह वचन सुनते ही वसुदेवजी ने रथ, पालकी, हाथी, घोड़े आदि वाहन व्रजवासियों को लाने के लिए भेजकर कहा—हे बेटा! आज बड़ी खुशी का दिन है, इसलिए तुमसे कुछ लेकर तब नन्द व यशोदा को तुम्हारे पास आने देंगे। यह सुनकर वृन्दावनविहारी ने कहा—हे पिता! संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो मैं तुमको भेंट करूँ। मेरा शरीर तुम्हारे ऊपर न्योछावर है।

दो० यह सुनकर वसुदेवजी मुदित कहत सुख पाय। तुमसे पूत सपूत की महिमा कही न जाय॥

जब एक सखी ने श्रीकृष्णचन्द्र को रोते हुए देखकर रुक्मिणी आदिक पटरानियों से यह हाल कहा तब वे सब घबराकर वैकुण्ठनाथ के पास आईं और देवकी से उनके रोने का कारण पूछने लगीं।

चौ० यह सुनि कहत देवकी माता । श्रीयदुनाथ प्रेम की बाता ॥
नन्द यशोदा व्रज ते आये । जिन याको हैं लाड़ लड़ाये ॥
याते इनकी यह गति भई । सुधि बुधि सकल भूलि तनु गई ॥

दो०कंस कुटिल के त्रासते वासकियो जिनपास । उनके गुणनहिं कहि सकैं जोमुख होयँपचास॥

यह वचन सुनते ही रुक्मिणी आदि पटरानियाँ हँसकर आपस में कहने लगीं कि आज हमारे प्राणनाथ राधा आदिक गोपियों से भेंट करके अपना कलेजा ठंढा करेंगे। बालापन की प्रीति समझकर व्रजबालाओं को भी बहुत सुख मिलेगा । हम लोग राधाप्यारी की सुन्दरता जो सुना करती थीं अब उसे देखकर मालूम होगा कि वह कैसी सुन्दरी है । जब ग्वालबालों की संगति में नन्दलालजी मोरपंख शिर पर रखकर नाचें और गावेंगे तब वह आनन्द देखकर हम लोगों को भी बड़ा सुख प्राप्त होगा ।

दो०धन्य यशोदा नन्द धनि धन्य नन्द के नन्द । धनि हम सब जो देखिहैं व्रजजन आनँदकन्द ॥

यह वचन रुक्मिणी आदि का सुनकर श्यामसुन्दर ने रोते-रोते मुसकरा दिया और घबराकर नन्द व यशोदा आदि को आगे से लेने के लिए चले । जब यशोदा ने वृन्दावनविहारी को आते हुए देखा और अपना जन्म सफल जानकर उनको उठाने के लिए दौड़ी तब मोहनप्यारे गोपियों के गोल में घुसकर जैसे यशोदा माता के चरणों पर गिर पड़े, वैसे ही नन्दरानी ने उनको उठाकर छाती से लगा लिया और बारंबार उनका मुँह चूमकर बलायें लेने लगी ।

दो०माखनप्रभुहि निहारिकै मुदित यशोमतिमाय । राजचिह्न सब देखिकै फूलीअँग न समाय॥

जब केशवमूर्ति नन्दबाबा को देखकर बड़े प्रेम से रोते हुए उनके चरणों पर गिर पड़े तब नन्दराय ने आँसू भरकर उन्हें गोद में उठा लिया और अपने लाल का आँसू पोंछकर बहुत प्यार किया । फिर श्यामसुन्दर ने श्रीदामा ग्वालबालों के गले मिलकर उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र उनको दिया और जो सौगात वे लोग इनके लिए लाये थे उसको बड़े प्रेम से लिया ।

दो० हेमवर्ण पीताम्बर ग्वालबाल सब लेहिं । ताके पलटे कान्ह को कारी कामरि देहिं ॥

जब ललिता आदि सखियों और वृषभानुदुलारी को देखकर जैसे आँखों में आँसू भरकर उनके निकट पहुँचे वैसे ही श्यामा उनको देखते ही प्रेमवश रोते-रोते व्याकुल हो गई ।

दो० अंग-अंग व्याकुलमहा परी धरणिमुरझाय। यहगतिदेखतकुँवरिकी लीन्ही धायउठाय ।।

जब यह दशा लाड़िली की देखकर ललिता आदि ने उनको बहुत समझाया तब राधाप्यारी ने सचेत होकर घूँघट निकाल लिया। उस समय श्यामसुन्दर का मुखारविन्द देखने से व्रजवासियों को जैसा आनन्द हुआ वह मुझसे वर्णन नहीं हो सकता। फिर वसुदेवजी ने नन्दराय से गले मिलकर कुशल पूछने के उपरान्त कहा—तुम्हारी दया से यह सब सुख मुझे मिला है। व्रज की गौवों ने, जो नन्दराय के साथ आई थीं, श्यामसुन्दर को देखकर आँखों में आँसू भरकर पूँछ उठाये हुए मुरलीमनोहर के पास दौड़ी चली आई। केशवमूर्ति ने बड़े प्रेम से उनकी पीठ पर हाथ फेरकर प्यार किया और ग्वालबालों से सब गायों का हाल नाम ले लेकर पूछने लगे।

दो० गायन की बातैं कहत माखनप्रभु यदुराय। त्यों-त्यों हर्षित होतसब आनँद उर न समाय ।।

जब श्याम व बलराम बड़े प्रेम से नन्द व यशोदा आदि ब्रजवासियों को साथ लेकर अपने डेरे में आये तब देवकी व रोहिणी ने यशोदा के गले मिलकर कुशल पूछने के उपरांत कहा—हे नन्दरानीजी ! हम लोग जन्मभर तुम्हारी सेवा करें तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकतीं क्योंकि हमारे लड़कों का प्राण तुम्हारी कृपा से बचा है। नहीं तो कंस पापी के हाथ से इनका बचना कठिन था। यह सुनकर यशोदा बोलीं—मैं तो अपने को मोहनप्यारे की धाय समझती हूँ। कन्हैया ने अपना बालचरित्र दिखलाकर जैसा सुख मुझे दिया है वह आनन्द दूसरे को स्वप्न में भी नहीं मिल सकता। उसके वियोग में जितना दुःख मैंने उठाया उसका हाल परमेश्वर जानता है। आज तुम्हारी कृपा से कान्हर को देखकर मेरा सब शोक छूट गया। जब राधा आदि गोपियों ने देवकी माता के चरणों पर शिर रखकर दण्डवत् की तब देवकी ने उन्हें आशिष देकर श्यामा को गले लगा लिया। वह पटरानियों से भी अधिक सुन्दरी थी, उसका रूप देखकर मन में कहा कि ऐसी महासुन्दरी स्त्री मेरे प्राणप्यारे से किस तरह छोड़ी गई। जब रुक्मिणी आदि स्त्रियों ने यशोदा से मिलने के लिए आकर श्यामा का रूप देखा तब अपनी सुन्दरता का अभिमान भूल गईं। उस समय रुक्मिणी ने वसुदेवनन्दन से हाथ जोड़कर विनय

किया—हे व्रजनाथ! तुम्हारी आज्ञा पाऊँ तो आज राधाप्यारी को अपने यहाँ ले जाकर शिष्टाचार करूँ।

दो० माखनप्रभु आज्ञा दई ले जाइय निज धाम। राधाकुँवरि जेंवाइकै पूरण कीजै काम ॥

यह वचन सुनते ही रुक्मिणी ने श्यामा के पास आकर उसका हाथ पकड़ लिया और बड़े प्रेम से अपने यहाँ ले जाकर छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन खिलाया। अपने यहाँ से उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्रादिक उसे पहिनाकर सोरहों शृंगार करके बैठा दिया। सत्यभामा आदिक स्त्रियाँ श्यामा का रूप देखकर मोहित हो गईं। सबों ने लज्जा से आँखें नीचे कर लीं। उस समय वृन्दावनविहारी ने जाकर वृषभानदुलारी की शोभा देखी तो रुक्मिणी आदि से कहा—

दो० जो चाहै मोहिं बश करन तिहूँ लोक में कोय। श्रीवृषभानुकुमारि को हितसों सेवे सोय ॥

यह बात मुरलीमनोहर की सुनते ही राधा प्रसन्न होकर मुस्कराने लगी। रुक्मिणी आदिक ने समझा कि वैकुण्ठनाथ वृषभानुदुलारी का हम सबसे अधिक प्यार करते हैं। जिस समय द्वारकानाथ ने नन्द व यशोदा आदिक व्रजवासियों को एक ओर बैठाकर बड़े प्रेम से सुनहली थालियों में छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन उनके सामने परोस दिये और दूसरी ओर आप यदुवंशियों समेत बैठकर भोजन करने लगे उस समय सब छोटे-बड़े वह आनन्द देखकर प्रसन्न हो गये। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! श्यामसुन्दर जितना प्रेम व्रजवासियों के साथ रखते थे उसका हाल मुझसे कहा नहीं जाता। जब सब लोग भोजन करके सुचित्त हुए तब वसुदेवनन्दन ने व्रजवासियों को पान, इलायची व इत्र देकर नन्दजी से विनय किया—हे बाबा! मेरी भक्ति करनेवाले भवसागर पार उतर जाते हैं, सो तुम लोगों ने अपना तन-मन-धन मेरे ऊपर न्योछावर करके मुझसे प्रीति लगाई, इसलिए तुम्हारे बराबर कोई दूसरा भाग्यवान् नहीं है। देखो, जहाँ ब्रह्मादिक देवता व बड़े-बड़े ऋषीश्वर जल्दी मेरा दर्शन ध्यान में नहीं पाते वहाँ मैं तुम लोगों की भक्ति व प्रीति देखकर दिनरात तुम्हारे पास बना रहता हूँ, इसलिए मेरा प्रकाश घट-घट व्यापक समझकर तुम्हें मेरे वियोग का सोच न करना चाहिए।

जब कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने इसी तरह नन्द व यशोदा आदि को बहुत समझाकर धैर्य दिया तब वे लोग आपस में बैठकर मोहनप्यारे का बालचरित्र व यश कहने लगे। फिर केशवमूर्ति सब गोपियों को, जो उनसे बहुत प्रीति रखती थीं, एकान्त में बैठाकर जब प्रेम की बातें उनसे करने लगे तब व्रजवासियों ने मोहनीमूर्ति की छवि देखकर अपनी-अपनी आँखें ठंढी कीं। उस समय एक गोपी बालापन की प्रीति समझकर निर्भय होकर बोली—हे नन्दलाल! तुमने इतना धन व विभव कहाँ से पाया और सब हाथी व घोड़े किसी के मँगनी ले आये हो कि तुम्हारे हैं। तुमको यह बात याद होगी कि हम सब व्रजबाला तुम्हारे एक विवाह होने के लिए हँसा करती थीं, सो अब तुम सोलह हजार एकसौ आठ स्त्री से विवाह करके उनके साथ भोग-विलास करते हो। भला यह तो बताओ तुमको हमारा दूध-दही चुराकर खाने, ऊखल से बाँधे जाने और वन में गोपियों को रोककर दधिदान लेने की सुधि है या नहीं। हम लोगों को तुम्हारे वियोग में एक दिन वर्ष समान बीतता था, तुमने इतने दिन हमारे बिना किस तरह काटा। जैसी कठोरता तुमने हमारे साथ की, ऐसा निर्मोही संसार में कोई न होगा। जब वृन्दावनविहारी ने ऐसी-ऐसी अनेक बातें गोपियों की सुनीं तब विनयपूर्वक उनसे बोले—हे प्राणप्यारियो! जो सुख व विलास मैंने तुम्हारे साथ किया है वह आनन्द यह सब विभव रहने पर भी नहीं मिलता। जो कोई प्रेमपूर्वक मेरा ध्यान व स्मरण किया करता है उससे मैं क्षणभर भी विलग नहीं रहता। मैं ग्रहण-स्नान करने के बहाने केवल तुम लोगों से भेंट करने यहाँ आया हूँ।

चौ० हमको तुम सुमिरौ मन माहीं। हमहूँ सदा रहैं तुम पाहीं ॥
सर्व आतमा हमको जानो। सब जीवन के जीव बखानो ॥
आतम ही सो आतम देखो। यह अध्यातम ज्ञान विशेखो ॥
राजन ऐसी विधि वहि ठाईं। हरिजू सब गोपिन समझाईं ॥
सफल जन्म ताको जग माहीं। जाको मन हरिचरणन पाहीं ॥

यह सुनकर गोपियों ने कहा—हे प्रभु! ज्ञान उपदेश करते समय हम लोगों को उद्धव का कहना अच्छा नहीं मालूम हुआ था, पर अब उस ज्ञान का गुण जानकर हम लोग अपने को तुमसे विलग नहीं समझतीं।

तुम्हारा ध्यान रखने से अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थ मिलकर जो सुख हमें प्राप्त होता है वह आनन्द बड़े-बड़े योगीश्वरों को भी जल्दी मिल नहीं सकता। हम लोगों का आना तुम्हारे दर्शनों की इच्छा से यहाँ हुआ है, सो दयालु होकर ऐसा वरदान दो कि दिन-रात तुम्हारे कमल-रूपी चरणों का ध्यान हमारे हृदय में बना रहकर प्रतिदिन तुमसे अधिक प्रीति हो। श्यामसुन्दर उन्हें इच्छापूर्वक वरदान देकर बहुत देर तक उनसे लकड़पन की बातें करते रहे, फिर वहाँ से उठकर राधाप्यारी के पास चले गये।

दो०श्रीवृषभानुकुमारि सँग लागे करन हुलास। भूलि गये रनिवासु सब माखनप्रभु सुखरास॥

एक दिन रुक्मिणी आदि पटरानियाँ आपस में बैठकर अभिमान से कहने लगीं कि जितनी प्रीति श्यामसुन्दर की हम लोग करती हैं, उतना प्रेम गोपियों को होना कठिन है। मुरलीमनोहर अन्तर्यामी ने यह हाल जानकर उनका गर्व तोड़ने के लिए अपनी स्त्रियों व व्रजबालों को एक जगह बैठाकर कहा कि तुम लोगों में जिनको मेरी अधिक प्रीति होगी उनके हृदय में मेरा वास रहता होगा। यह वचन सुनते ही सब व्रजबाला व स्त्रियों ने अपना-अपना अंचल उठाकर देखा तो रुक्मिणी आदि को अपने तनु में कुछ चिह्न नहीं दिखलाई दिया और गोपियों के हृदय में श्यामरंग छोटा-सा नटवर वेष त्रिभुवनपति का देख पड़ा। यह महिमा व्रजबालों की देखते ही वे लोग अपने प्रेम का घमण्ड भूलकर मन में कहने लगीं कि जितनी प्रीति गोपियाँ श्यामसुन्दर की रखती हैं उतना प्रेम हमें होना बड़ा दुर्लभ है।

दो०गोपरूप भगवान को देखत अति सुखपाय। हरिचरण पर गिर पड़ीं मनमें बहुत लजाय॥

जब केशवमूर्ति लोकाचार करने के लिए दूसरे राजाओं के डेरे पर, जो वहाँ टिके थे, गये तब उन्होंने आगे आकर साष्टांग दण्डवत् किया और सम्मानपूर्वक ले जाकर जड़ाऊ सिंहासन पर बैठाया और अनेक तरह की वस्तुएँ भेंट देकर विनय किया—हे महाप्रभु! हम लोग सदा तुम्हारी स्तुति सुनकर दर्शनों की इच्छा रखते थे, सो अब आपके चरण देखने से अपने समान किसी का भाग्य नहीं समझते। जिस तरह आपने

दयालु होकर हमें कृतार्थ किया, उसी तरह कृपा करके ऐसा वरदान दीजिए कि तुम्हारे चरणों की भक्ति व प्रीति सदा हमारे हृदय में बनी रहे। वैकुण्ठनाथ उन्हें वरदान व धैर्य देकर अपने स्थान पर चले आये।

——:०:——

तिरासीवाँ अध्याय।

द्रौपदी व रुक्मिणी आदि का आपस में बातचीत करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जिस तरह द्रौपदी व रुक्मिणी आदि ने आपस में अपने-अपने विवाह की बातचीत की थी वह कथा कहते हैं, सुनो। एक दिन युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई व कौरव बहुत राजाओं समेत त्रिभुनपति की सभा में बैठे हुए इस तरह उनकी स्तुसि करने लगे।

चौ० परमहंस है नाम तुम्हारो। तुमसे प्रकट वेद है चारो॥
विप्र धेनु रक्षा के काजा। तुम अवतार लियो यदुराजा॥
आदि अंत तुम पूरण कामा। तुमको हित से करें प्रणामा॥

दो०ऐसी विधि अस्तुति करी सब राजन सुखपाय। पातकतजिपावन भये परसत प्रभु के पाँय॥

उसी दिन कुन्ती व द्रौपदी, जिनकी महिमा सब जगत् जानता है, रुक्मिणी आदि पटरानियों के पास बैठकर इधर-उधर की बातें करने लगीं। कुन्ती ने रुक्मिणी से हँसकर कहा कि तुमने अभी तक अपने विवाह का नेग मुझे नहीं दिया, सो देना चाहिए। रुक्मिणी हाथ जोड़कर बोली—हे माता! मेरा तनु व धनु सब तुम्हारी भेंट है। फिर द्रौपदी बोली—हे रुक्मिणी बहिन! जिस तरह श्यामसुन्दर तुम लोगों को विवाह लाये थे वह हाल सुनने की बहुत इच्छा रखती हूँ, सो दया करके अपने-अपने विवाह होने की कथा सुनाओ। यह बात सुनकर रुक्मिणीजी बोलीं—

चौ० जो तुम हँसो नहीं गुणज्ञाता। तौ हम कहैं ब्याह की बाता॥
देश चँदेली सब जग जानो। तहँ शिशुपाल नरेश बखानो॥
पहिले तिहि सों भई सगाई। सकल विवाह की सोज मँगाई॥

दो०सो नरेश आयो तभी बहु राजा लै साथ। रीति भाँति कुल की करी कंकण बाँध्यो हाथ॥

मुझे मनसा वाचा कर्मणा यह चाहना थी कि द्वारकानाथ की दासी होकर रहूँ, इसलिए त्रिभुवनपति अन्तर्यामी कुंडिनपुर में आये और सब राजाओं को जीतकर मुझे हर ले गये। सो उनकी सेवा में रहकर अपना

जन्म सफल करती हूँ। फिर सत्यभामा ने अपने विवाह होने का हाल वर्णन किया और जाम्बवती ने अपने विवाह का वृत्तान्त कह सुनाया।

चौ० फिर बोली कालिन्दी रानी। चित दे सुनु द्रौपदी सयानी ॥
मैं धरि हरिचरणन की आशा। बहुदिन जल में कियो निवासा ॥

दो० एकदिवस अर्जुनसहित आये श्रीभगवान। हाथ पकड़ म्वहिं लायके दीन्हों पद निर्वान ॥

मित्रबिन्दा ने कहा—हे द्रौपदी रानी! श्यामसुन्दर की स्तुति सुनकर मुझे यह अभिलाषा हुई कि मोहनप्यारे के सिवा दूसरे से अपना विवाह न करूँगी। मेरे भाइयों ने यह हाल जानकर मेरा विवाह त्रिभुवनपति के साथ कर दिया। अब मुझे दिन रात यही इच्छा रहती है कि जन्मजन्मांतर वैकुण्ठनाथ की दासी होकर रहूँ। फिर सत्या ने अपना हाल, जिस तरह द्वारकानाथ उसे ब्याह लाये थे कह दिया।

चौ० भद्रा कहत सुनो तुम बानी। लोगन अस्तुति श्याम बखानी ॥
तबते नेम कियो मन माहीं। उन बिन और भजौं मैं नाहीं ॥
याते पिता कृष्ण को दीन्हीं। मम इच्छा सब पूरण कीन्हीं ॥

दो० चरणकमलश्रीकृष्णकेजो सेवै चितलाय। सुभग भाग्यतिहिनारि की कासोंबरणी जाय ॥

चौ० बोली बहुरि लक्ष्मणा रानी। निज विवाह की कथा बखानी ॥
मेरो पिता स्वयंवर कीनो। मेरो मन हरि के रसभीनो ॥
तहाँ आय मोहन सुखदाई। पाणिग्रहण करि दया जनाई ॥
तबसे भई कृष्ण की दासी। रैनि दिवस नित रहत हुलासी ॥
अब तुम मोको देव अशीशा। जन्म जन्म सेऊँ जगदीशा ॥

जब आठों पटरानी अपने-अपने विवाह का हाल कह चुकीं तब सोलह हजार एकसौ राजकन्या बोलीं—हे द्रौपदी! हम लोगों को भौमासुर दैत्य ने बरजोरी उठा लाकर अपना विवाह करने के लिए एक स्थान में रक्खा था।

चौ० जब हम शरण कृष्ण की आईं। बिनती बहुत करी उनपाईं ॥
हरि अंतर्यामी सुखदानी। अपनी समझ दया मन आनी ॥

दो० तुरत आय पहुँचे तहाँ माखनप्रभु यदुराय। भौमासुर को मारकर लीन्हों हमैं छुड़ाय ॥

उसी दिन से हम लोग मुरलीमनोहर की सेवा में रहकर अपने को पटरानियों की दासी समझती हैं। सो हे द्रौपदी! तुम हमें ऐसा आशीर्वाद दो कि सदा श्यामसुन्दर की सेवा में बनी रहें। जब द्रौपदी, गांधारी, कुन्ती, यशोदा आदि ने श्यामसुन्दर के सब विवाहों का हाल सुना तब

प्रसन्नता से उन्हें आशीर्वाद देकर रुक्मिणी आदि के भाग्य की बड़ाई करने लगीं।

चौ० फिर सतभामा पूँछन लागी। सुनौ द्रौपदी परम सुभागी ।।
हम अपनी सब कथा सुनाई। अब तुम हमसों कहौ जनाई ।।

दो०पाँचजनमसेकौनविधि तुम्हरो भयो विवाह। अद्‌भुत लीलासुननकीमनमें बड़ी उछाह ।।

यह बात सुनकर द्रौपदी बोली—हे प्यारियो! हमारे पिता ने मेरा स्वयंवर रचकर यह प्रण किया था कि जो कोई तेल में कराह में परछाहीं देखकर अपने बाण से मत्स्य बेधे, उसी को अपनी कन्या विवाह दूँगा। जब दुर्योधन व जरासंध आदि बहुत राजाओं ने आकर मत्स्य बेधने में लज्जा उठाई और अर्जुन ने वह मत्स्य बेधकर मेरे पिता का प्रण पूरा किया तब मैंने उनके गले में जयमाला डाल दी। यह हाल देखकर सब छोटे-बड़े प्रसन्न हुए, पर दुर्योधन आदि अधर्मी राजाओं ने लज्जित होकर पाँचों भाइयों से युद्ध किया, सो हार मानकर भाग गये। जब अर्जुन ने मुझे घर ले जाकर अपनी माता से कहा कि हम एक सौगात लाये हैं तब कुन्तीजी खाने की वस्तु समझकर बोलीं कि पाँचों भाई आपस में बाँट लो।

दो० याते पाँचों पाण्डवन लीन्हों मोहिं विवाहि। प्रकट देह से पाँच हैं जीव एक ही आहि ।।

यह बात सुनकर रुक्मिणी आदि द्रौपदी की बड़ाई करने लगीं। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! एक दिन श्यामसुन्दर की सभा में युधिष्ठिर आदि पाण्डव, सब यदुवंशी और बहुत से राजा बैठे थे, उसी समय नारदमुनि, वेदव्यास, विश्वामित्र, देवल, च्यवन, सतानन्द, भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, भृगु, अत्रि, मार्कण्डेय, अगस्त्य, वामदेव, पराशर और परशुराम आदि बहुत से ऋषीश्वर वैकुण्ठनाथ के दर्शन के लिए वहाँ आये। उनको देखते ही श्यामसुन्दर ने सब राजाओं समेत खड़े होकर सम्मानपूर्वक सब ऋषीश्वरों को आसन पर बैठाया और उनके चरण धोकर चरणामृत लिया। विधिपूर्वक उनका पूजन करके हाथ जोड़कर यह स्तुति की—

चौ० ऋषिदर्शन दुर्लभ जग माहीं। देवनहूँ की प्रापत नाहीं ।।
आज सुफल है जन्म हमारो। जो हम पायो दरश तुम्हारो ।।

दो०हरिभक्तनके दरश की महिमा कही न जाय। जन्म जन्म के पाप सब क्षण में जात नशाय ।।

चौरासीवाँ अध्याय।

वसुदेवजी का यज्ञ करना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जब श्यामसुन्दर ऋषीश्वरों की पूजा व स्तुति कर चुके तब उन्होंने कौरव व पाण्डव आदि राजाओं से, जो वहाँ पर थे, कहा कि हम लोगों का बड़ा भाग्य समझना चाहिए जो इन ऋषीश्वरों ने दयालु होकर घर बैठे अपना दर्शन दिया। विरक्त साधुओं के चरण देखने से गंगास्नान का फल प्राप्त होकर मरने के उपरांत ऐसा उत्तम स्थान मिलता है जहाँ पर बड़े योगी व ज्ञानी नहीं पहुँच सकते, इसलिए ऋषीश्वरों का सत्संग मिलना सब तीर्थ नहाने व देवस्थान दर्शन से उत्तम है। इनकी पूजा परमेश्वर के समान जानना चाहिए। जो लोग ऋषीश्वरों और मुनियों को नहीं मानते, उन्हें गदहे व बैलों के समान समझना चाहिए।

दो० चरण साधु के प्रीतिकरि पूजत है जो कोय। संसारी सुख भोग करि अन्त मुक्तपद होय ॥

जब ऋषीश्वर लोग यह वचन त्रिभुवनपति का सुनकर लज्जित हो गये तब नारद मुनि द्वारकानाथ से हाथ जोड़कर बोले—हे महाप्रभु! हम लोग इस योग्य नहीं हैं, जैसा आपने अपने मुखारविन्द से कहा। आपने केवल संसारी जीवों को उपदेश करने के लिए इतनी बड़ाई हमारी की है, जिसमें वे लोग ब्राह्मणों को बड़ा जानकर उनका सम्मान करें, नहीं तो हम लोग कौन गिनती में हैं। हमारा कल्याण इसी में है कि तुम्हारे चरणों का ध्यान किसी समय हमें न भूले। जिस कुल में आपने अवतार लिया है, वे यदुवंशी लोग आपको न पहचानकर अपना कुटुम्बी समझते हैं। तब दूसरे को क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारे भेद को समझ सके। आप केवल हरिभक्तों को सुख देने और दुष्टों को मारने के लिए बारंबार अवतार लेते हैं, नहीं तो जन्ममरण से तुम रहित हो।

चौ० तुम जगजीवन जगत निवासा। हम तुम्हरे दासन के दासा ॥
तुम जो अस्तुति करत हमारी। हमको भरम होत है भारी ॥
जगतगुरू जगदीश गुसाईं। तुमसे सृष्टि होत सब ठाईं ॥
तुमहीं सब देवन के देवा। तुम्हरो हम नहिं जानें भेवा ॥
तुम्हरी माया सब जग छाई। लोगन की सुधि बुधि बिसराई ॥
ताते विविध भाँति भ्रम मानें। तुम्हरो भेद कौन विधि जानें ॥

दो० तुम्हरी अद्भुत शक्ति है घटघट रही समाय। फिर सबते न्यारे रहो माखन प्रभु यदुराय॥

चौ० कोऊ तुम्हें पिता करि जानै। कोऊ पुत्र भाव मन आनै॥
तुमहीं सबके पालनहारे। को कहि सकै चरित्र तुम्हारे॥
तुम्हरो दर्शन बहुसुखदाता। तिहि प्रताप जानै यह बाता॥
धरतीभार उतारन काजा। भक्तन हित प्रकटे यदुराजा॥
वेद कहत हैं तुम्हरी बानी। तुम्हरी गति उनहूँ नहिं जानी॥
तुम्हरी भक्ति सकल सुखराशा। कोऊ जन नहिं होत निराशा॥
तुम दयालु प्रभु पूरणकामा। तुमको हम सब करत प्रणामा॥

दो० तुम तौ पूरणब्रह्म हौ सकल धर्म के धाम। विप्रनकी अस्तुतिकरततिहिकारणघनश्याम॥

हे वैकुण्ठनाथ! हम लोग तुम्हारी कृपा से यह चाह रखते हैं कि आठों पहर आपके चरणों का ध्यान हमारे हृदय में बना रहकर हरिकथा सुनने से कभी प्रीति न घटे। जब ऋषीश्वर लोग यह स्तुति करके अपनी अपनी कुटी पर जाने लगे तब वसुदेवजी ने उनके सामने हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज! कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिसमें आवागमन से छूटकर भवसागर पार उतर जाऊँ। यह वचन सुनकर जैसे सब ऋषीश्वरों ने नारदजी की ओर देखा, वैसे ही नारदमुनि हँसकर बोले—हे ऋषीश्वरों! वैकुण्ठनाथ की माया ऐसी प्रबल है कि जिसने सब संसार को मोहकर अपने वश में कर लिया। जिस तरह गंगा के किनारे रहनेवाले उनका माहात्म्य न जानकर कूपजल से स्नान करते हैं, उसी तरह वसुदेवजी संसारी माया में लपटने से श्यामसुन्दर त्रिभुवनपति जगत्कर्ता को अपना पुत्र जानकर मुक्त होने की राह हम लोगों से पूछते हैं। वही गति सब यदुवंशियों की है। अपने अज्ञान से कोई उनको नहीं पहिचानता। यह बात ऋषीश्वरों से कहकर नारद मुनि बोले—

चौ० कहत सुनो वसुदेव सुजाना। तुम्हरे घर में श्रीभगवाना॥
तिन्हैं छाँड़ि तुमसे गुणज्ञाता। हमसे कह पूछत हौ बाता॥

हे वसुदेवजी! अभी तुम्हारे सामने सब ऋषीश्वरों ने श्यामसुन्दर की स्तुति की, तिस पर भी तुमने उनको नहीं पहिचाना। इस बात का हमें बड़ा आश्चर्य मालूम होता है जो तुम्हारे ऐसा ज्ञानी होकर ईश्वर को न पहिचाने। पर इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं है, यह बात सच समझना चाहिए कि त्रिभुवनपति की कृपा के बिना देवता आदि भी उनको नहीं पहिचान

सकते। संसारी मनुष्य कौन गिनती में है जो उनके भेद को पहिचान सके।

दो० कोऊजन जानै नहीं माखनप्रभु के भेव। इन गति अगम अपार है सब देवन के देव।।

इसलिए वेदानुसार एक बात कहता हूँ कि तुम कुरुक्षेत्र में विधिपूर्वक यज्ञ करके उसका फल श्रीकृष्णजी को अर्पण कर दो तो तुम्हारे हृदय से अज्ञानता की काटि छूटकर मुक्ति मिलेगी।

चौ० पाप नाश बिन धर्म न होई। यह जानै निश्चय सब कोई।।
जो हरिसेवा में चित धरै। मन मैं कछु इच्छा नहिं करै।।
तिहि को पाप कटै क्षण माहीं। मुक्त होय कछु संशय नाहीं।।

दो० श्रीमाखनप्रभु पूजिकैफलचाहै जो कोय। तिनको कर्म कटै नहीं मुक्ति कौन विधि होय।।

चौ० हरि के काम कर्म शुभ कीजै। ताको फल उनहीं को दीजै।।
या विधि कर्म करै जो कोई। भबसागर से उतरै सोई।।
जो तुम कहौ कि हम गृहचारी। योगरीतिके नहिं अधिकारी।।
तो तुमको यक बात जनाऊँ। कर्मयोग की राह बताऊँ।।
जो कछु पुण्यदान तुम करो। नेम धर्म व्रत मन में धरो।।
उसका फल हरिजू को दीजै। मन में कछु इच्छा नहिं कीजै।।
वे हरि तुमसे न्यारे नाहीं। सदा बसें तुम्हरे घर माहीं।।

दो० या विधि नारद का बचन सुनकर श्रीवसुदेव। महामुदितमनमें भये जब जान्यो यह भेव।।

यह वचन सुनते ही वसुदेवजी ने नारद मुनि आदि ऋषीश्वरों से हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज! आप लोग दयालु होकर ऐसा यज्ञ करा दीजिए जिसमें मेरा मनोरथ पूर्ण हो। यह सुनकर नारदजी बोले—बहुत अच्छा, तुम तैयारी करो, हम लोग तुमको सोमयज्ञ करा देंगे। यह सुनकर वसुदेवजी ने सब सामग्री मँगाकर पवित्र स्थान कुरुक्षेत्र में यज्ञ की तैयारी की। जब यज्ञशाला में सब ऋषीश्वर व यदुवंशी व राजा लोग आकर इकट्ठे हुए तब वसुदेवजी शुभ सायत में ब्रह्मचर्य से मृगछाला पहिनकर देवकी आदि अठारहों रानियों समेत यज्ञ करने के लिए जा बैठे। उस समय अनेक राजा व यदुवंशी लोग अपनी-अपनी स्त्रियों समेत बड़े प्रेम से यज्ञ की टहल करने लगे। वसुदेवजी ने नारद मुनि आदि ऋषीश्वरों को वरण देकर कुण्ड में आहुति डालना आरम्भ किया। श्यामसुन्दर की इच्छानुसार देवता लोग अग्निकुण्ड से प्रत्यक्ष निकलकर अपना-अपना भाग लेने लगे। उस समय उर्वशी आदि

अप्सराओं ने आकर अपना-अपना नाच दिखलाया, गन्धर्वों ने गाना सुनाया, देवताओं ने दुन्दुभी बजाकर आकाश से फूल बरसाये और सब छोटे-बड़े जो वहाँ पर थे गा-बजाकर मंगलाचार मनाया। ब्राह्मणों ने वेद उच्चारण किया, भाटों ने कवित्त सुनाये। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! उस समय जैसा आनन्द वहाँ पर हुआ था वह मुझसे वर्णन नहीं हो सकता। जब वैकुण्ठनाथ की दया से यज्ञ अच्छी तरह सम्पूर्ण हुआ तब वसुदेवजी ने उसका फल मुरलीमनोहर को संकल्प देकर विधिपूर्वक उनका पूजन किया और यज्ञ करानेवाले ऋषीश्वरों को पीताम्बर, सोना, गौ, रत्नादिक दान व दक्षिणा दी। ऋषीश्वरों के सिवा और जितने ब्राह्मण व याचक व मंगन वहाँ पर थे उनको इतना मुँह माँगा द्रव्यादिक दिया कि फिर उनको कुछ इच्छा न रही। जब ऋषीश्वर व ब्राह्मण लोग वसुदेवजी आदि को आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थान पर चले गये तब श्यामसुन्दर ने कौरवों, पाँडवों और दूसरे राजाओं को यथायोग्य भूषण व वस्त्र देकर सम्मानपूर्वक विदा किया। उस समय वसुदेवजी ने रोकर नन्दराय से कहा—हे भाई! तुमने श्याम व बलराम को पालकर उनकी रक्षा की है, इसलिए मैं जन्मभर तुमसे उऋण नहीं हो सकता। मुझसे आज तक कोई टहल तुम्हारी नहीं बन पड़ी जो उससे उऋण होता। इसलिए मैं चाहता हूँ कि थोड़े दिन आप यहाँ व्रजवासियों समेत रहते तो मैं भी तुम्हारी सेवा करके उऋण होता। जब नन्दराय यह सुनकर बड़े हर्ष से चार महीने व्रजवासियों समेत कुरुक्षेत्र में टिके रहे तब वसुदेवजी ने प्रतिदिन उनका नया शिष्टाचार और श्याम व बलराम ने उनकी सेवा प्रेमपूर्वक की।

दो० महिमा त्रिभुवननाथ की कासों बरणी जाय। व्रजवासिन अति सुख दियो आनँद उर न समाय॥

जब चार महीने कुरुक्षेत्र में रहकर राजा उग्रसेन ने द्वारकापुरी को चलने की तैयारी की तब श्यामसुन्दर ने नन्द व यशोदा से रोकर कहा-मुझसे तुम्हारा चरण छोड़ा नहीं जाता, पर लाचारी से विनय करता हूँ कि आप भी वृन्दावन जाकर गायों की सुधि लीजिए। यह वचन सुनते ही नन्द व यशोदा व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और ग्वाल

बाल व गोपियों ने रुदन करके कहा—हे नन्दकिशोर! हम लोग तुम्हारा चरण छोड़कर वृन्दावन न जावेंगी। हमको भी अपने साथ द्वारकापुरी ले चलो। जैसी कठोरता तुमने पहिले मथुरा में रहकर की थी वही बात अब भी करना चाहते हो। यशोदा अति विलाप करके बोली—हे देवकी बहिन! तुम मुझे श्यामसुन्दर की दूध पिलानेवाली समझकर अपने साथ ले चलो। मोहनीमूर्ति का दर्शन करने के सिवा तुमसे भोजन व वस्त्र न लूँगी।

दो० मेरे घर गोधन सबै जो चाहो सो लेव। मनमोहन को नयन भरि प्रतिदिन देखन देव॥

जब राधाप्यारी ने सुना कि श्यामसुन्दर हम लोगों को विदा करके आप द्वारका जाना चाहते हैं तब वह अति विलाप करके मुरलीमनोहर से बोली—एक बेर तुम मुझे वृन्दावन छोड़कर मथुरा चले गये थे, सो मेरी यह दशा हुई, अब फिर उसी तरह मेरे प्राण लेना चाहते हो, इसलिए अब मैं तुम्हारे चरण नहीं छोड़ूँगी। दूध का जला हुआ छाछ फूँककर पीता है। जिस तरह सोलह हजार एकसौ आठ स्त्रियाँ तुम्हारी सेवा करती हैं, उसी तरह मुझको भी दासी समझकर अपनी सेवा में रक्खो। जब त्रिभुवनपति ने व्रजवासियों की यह दशा देखकर समझा कि ये लोग मेरा पीछा न छोड़कर द्वारका को चलना चाहते हैं तब अपनी माया फैलाकर उन लोगों का मन इस तरह फेर दिया कि समझाने बुझाने से वृन्दावन जाने के लिए राजी हुए। उस समय श्यामसुन्दर ने नन्द व यशोदा आदि सब छोटे-बड़ों को अनेक तरह का भूषण-वस्त्र व रत्नादिक देकर विदा किया।

चौ० श्रीवसुदेव महा सुरज्ञानी। व्रजवासिन से बोलत बानी॥
तुम तो प्राण समान हमारे। तुमसे कैसे होहुँ नियारे॥
या विधि कहत प्रेम की बाता। नयन नीर भीजे सब गाता॥

दो० व्रजवासी व्रज को चले सब गोधन ले साथ। गृह आये आनन्द सों माखनप्रभु यदुनाथ॥

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! विदा होते समय जैसा विलाप नन्द, यशोदा, राधा आदि ने किया था वह मुझसे कहा नहीं जाता। जब केशवमूर्ति द्वारकापुरी में पहुँचे तब सब छोटे-बड़ों ने प्रसन्न होकर मंगलाचार मनाया। देवताओं ने आकाश से द्वारकापुरी पर फूल बरसाये।

—:o:—

पचासीवाँ अध्याय।

वसुदेवजी का श्यामसुन्दर की स्तुति करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जिस तरह श्याम व बलराम अपने मरे हुए भाइयों को लिवा लाये थे वह कथा कहते हैं, सुनो। एक दिन राम व कृष्ण दोनों भाई प्रातःकाल उठकर जैसे माता व पिता के चरणों को दण्डवत् करने गये वैसे ही वसुदेवजी ने अपना शिर श्यामसुन्दर के चरणों पर धर दिया। यह हाल देखकर मुरलीमनोहर बोले—हे पिता! आप मेरे चरणों पर गिरकर मुझे क्यों दोष लगाते हैं। तब वसुदेवजी ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे कृष्ण! तुम परब्रह्म परमेश्वर का अवतार होकर जन्म व मरण से कुछ प्रयोजन नहीं रखते। तुम्हारे आदि व अन्त को कोई पहुँच नहीं सकता। आज तक मैं तुम्हारी महिमा नहीं जानता था, अब ऋषीश्वरों के कहने से मुझे विश्वास हुआ कि आप त्रिलोकीनाथ हैं और सब जीवों में तुम्हारा प्रकाश रहता है। सूर्य देवता तुम्हारे तेज से प्रकाशित रहकर सब जगत् में उजियाला करते हैं। जिस जल से सब जड़ व चैतन्य जीवों का पालन होता है उसे तुम्हारा रूप समझना चाहिए। चन्द्रमा जो अपनी किरणों से अमृत वर्षाकर संसारी जीवों व वृक्षों को सुख देते हैं, वायु चलने से जीवों को आराम मिलता है, पर्वत अपने बोझ से पृथ्वी को दबाये रहकर हिलने नहीं देते, गंगा व समुद्रादिक कभी नहीं सूखते, सो उनको भी केवल तुम्हारी कृपा से यह सामर्थ्य हुई है। जितने जड़ व चैतन्य जीव संसार में दिखलाई देते हैं, उन सबको तुम्हारी आज्ञा व इच्छा से ब्रह्मा ने उत्पन्न किया है। विष्णु भगवान् पालन करके महादेवजी उनका नाश करते हैं। आप आदिपुरुष भगवान् का अवतार ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी श्रेष्ठ हैं। आपकी माया ऐसी बलवान् है जिसने सब जगत् को मोह लिया, इसलिए तुमको कोई पहिचान नहीं सकता। बिना तुम्हारे शरण आये मनुष्य को संसारी माया-जाल से छूटना कठिन है। जिस तरह बाजा बजानेवाला मनमाना राग व रागिनी उसमें से निकालता है, उसी तरह आप संसारी जीवों की बुद्धि अपने अधीन रखकर जैसा चाहते हो वैसा कर्म उनसे कराते हो। तुम्हारे

एक-एक रोम में हजारों ब्रह्माण्ड बँधे हैं। तुम्हारे भेद को कोई जान नहीं सकता। आज तक मैं अपने अज्ञान से तुमको पुत्र समझता था, अब नारद मुनि के कहने से मुझे विश्वास हुआ कि आप किसी के पुत्र व पिता व भाई व मित्र नहीं हैं, केवल पृथ्वी का बोझ उतारने व दैत्यों व अधर्मी राजाओं को मारने व हरिभक्तों को सुख देने के लिए यदुकुल में अवतार लिया है, अब मुझे ऐसा ज्ञान दो जिसमें तुमको अपना पुत्र न जानकर आदिपुरुष समझूँ। जिस तरह आपने अजामिल ऐसे बहुत पापियों को तारकर मुक्ति दी है, उसी तरह मुझ पर भी दयालु होकर भव-सागर पार उतार दीजिए। जब तक संसार में जीता रहूँ तब तक तुम्हारे ध्यान व स्मरण के सिवा माया-जाल में न फँसूँ।

चौ० तुमहीं सबके सिरजनहारे। पाँच तत्त्व हैं अंश तुम्हारे॥

दो० जन्मसमय जान्यो हत्यों ब्रह्मरूप मनमाहिं। सो माया के मोह में ज्ञान रह्यो कछु नाहिं॥

जब श्यामसुन्दर ने अपनी यह स्तुति सुनी तब हँसकर बोले—हे पिता! तुमको जो बात जाननी उचित थी वह तुमने समझकर कही अब अपने कहने पर स्थिर रहकर मेरा प्रकाश सब जीवों में एकसा समझा करो तो मेरी माया तुम पर नहीं व्यापेगी। यह बात सुनकर वसुदेवजी को ऐसा ज्ञान हुआ कि उसी दिन से श्याम व बलराम को पुत्रभाव छोड़कर ईश्वररूप समझने लगे और हरिचरणों में लीन होकर जीवन्मुक्त हो गये। फिर एक दिन मुरलीमनोहर ने देवकी से कहा—हे माता! तुम्हारा ऋण मेरे ऊपर बहुत है, इसलिए जो कुछ माँगो सो दें। यह वचन सुनते ही देवकी ने रोकर कहा—हे बेटा! तुम परब्रह्म परमेश्वर का अवतार हो। जिस तरह तुमने अपने गुरु का मरा हुआ बेटा ला दिया था उसी तरह मेरे छवों बालक, जो कंस अधर्मी ने मार डाले हैं, ला दो तो मेरा सोच छूट जावे।

दो० तिहि कारण जान्यों तुम्हें अपने मन विश्वास। कर्त्ता हौ सब सृष्टि के माखनप्रभु सुखरास॥

चौ० यह सुनि बोले कृष्णमुरारी। सुनो मातु तुम बात हमारी॥
जो इच्छा तुम्हरे मन माहीं। प्रभु पूरण करि हैं क्षण माहीं॥

ऐसा कहकर श्याम व बलराम सुतललोक में गये। उनको देखते ही राजा बलि आगे आकर दोनों भाइयों के चरणों पर गिर पड़ा और राह में पीताम्बर बिछाता हुआ बड़े आदरभाव से अपने घर ले जाकर जड़ाऊ सिंहासन पर

बैठाया। दोनों भाइयों के चरण धोकर चरणामृत लिया और वह जल अपने सिर व आँखों में लगाकर सब घरवालों पर छिड़क दिया।

दो० बलि राजा चाहत हतो हरि चरणन की रैन। श्रीमाखनप्रभु दर्शते तन मन पायो चैन ।।

राजा बलि ने विधिपूर्वक श्याम व बलराम की पूजा करके सुगन्धादिक उनके अंग पर लगाया और पुष्पों का गजरा व मोतियों की माला गले में पहिनाकर छतीस प्रकार के व्यंजन भोजन कराया। वह बड़े हर्ष से राम व कृष्ण के चँवर हिलाने लगा और हाथ जोड़कर इस तरह स्तुति की—हे दीनानाथ! जिन चरणों का दर्शन ब्रह्मादिक देवता, बड़े-बड़े योगी और ऋषीश्वरों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता, सो आपने दयालु होकर उन्हीं चरणों से मुझ गरीब की झोपड़ी पवित्र की, इसलिए मैं अपने बराबर दूसरे का भाग्य नहीं समझता। जब मेरा दादा प्रह्लाद व शेषनागजी तुम्हारे भेद को नहीं जानते तो मुझ अज्ञान को क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारि महिमा व स्तुति वर्णन कर सकूँ। जिस तरह आपने दयालु होकर घर बैठे अपने चरणों का दर्शन दिया उसी तरह मेरी स्त्री व लड़के बालों को घर व धन समेत, जो मैं भेंट करता हूँ, लीजिए और मुझे अपना दास समझकर अपने आने का कारण वर्णन कीजिए। यह अधीन वचन सुनकर केशवमूर्ति ने कहा—हे राजा बलि! एक दिन मरीचि ऋषीश्वर के छवों पुत्रों ने तरुणाई के गर्व से ब्रह्माजी की हँसी की थी, इसलिए ब्रह्मा ने क्रोधित होकर उनको यह शाप दिया कि तुम लोग दैत्ययोनि में जन्म लो। उसी कारण उन छवों बालकों ने पहिले हिरण्याक्ष व हिरण्यकशिपु के यहाँ उत्पन्न होकर फिर मेरी माता के पेट से जन्म पाया। जब राजा कंस ने उन छवों बालकों को मार डाला तब वे तुम्हारे घर आकर उत्पन्न हुए। अब देवकी माता हमारे भाइयों के लिए बहुत सोच करती है, इसलिए मैं उनको लेने आया हूँ। यह वचन सुनते ही राजा बलि ने बड़े हर्ष से उन छवों बालकों को ला दिया और त्रिभुवनपति उन्हें अपने साथ लेकर द्वारका को चले आये। जब देवकी ने छवों बेटों को देखा तब बड़े प्रेम से उठाकर दूध पिलाने लगी।

चौ० बारबार निज कंठ लगावै। रामकृष्ण को हाँसी आवै ।।

उस समय वसुदेवजी और देवकी को विश्वास हुआ कि श्याम व बलराम परब्रह्म परमेश्वर का अवतार हैं। यह समझकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। श्यामसुन्दर की इच्छानुसार उन छवों बालकों को ज्ञान उत्पन्न होकर अपने पूर्वजन्म की सुधि आई तब वे अपनी माता व श्याम व बलराम को दण्डवत् करके उसी समय देवलोक को चले गये। यह दशा देखकर देवकी को बड़ा सोच हुआ, पर श्याम व बलराम के समझाने से संसारी व्यवहार झूठा समझकर मन को धैर्य दिया और हरिचरणों में ध्यान लगाकर अपना मन संसारी माया से विरक्त कर लिया।

दो० यह चरित्र चितलाय कै कहै सुनै जो कोय। श्रीमाखनप्रभु चरण से कबहूँ विलग न होय ॥

—:o:—

छियासीवाँ अध्याय।

अर्जुन का सुभद्रा को बरजोरी उठा ले जाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जिस तरह अर्जुन का विवाह श्यामसुन्दर की बहिन सुभद्रा से हुआ था वह हाल कहते हैं, सुनो। जब द्रौपदी कुन्ती माता की आज्ञा से युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों की स्त्री होकर रहने लगी तब नारद मुनि ने आकर युधिष्ठिर आदि से कहा कि स्त्री व धन के लिए बाप-बेटा व भाई-भाई में सदा से झगड़ा होता आया है, इस-लिए एक उपाय बतलाये देता हूँ उसके करने से तुम पाँचों भाइयों में द्रौपदी के लिए विरोध न होगा। यह सुनकर युधिष्ठिर आदि ने कहा—हे मुनिनाथ! जो आप कहें सो करें। यह सुनकर नारद मुनि बोले कि एक वर्ष में तीनसौ साठ दिन होते हैं, सो तुम पाँचों भाई बहत्तर-बहत्तर दिन की पारी बाँधकर इस प्रण से द्रौपदी को अपने पास रक्खा करो। जब एक भाई की पारी में दूसरा भाई द्रौपदी के महल में जावे तो बारह वर्ष तक वन-वास करे। नारद मुनि का यह वचन पाँचों भाई मानकर उसी तरह द्रौपदी को अपने पास रखते थे। एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि द्रौपदी आधी रात को राजा युधिष्ठिर के मन्दिर में थी। उस दिन अर्जुन का धनुष-बाण राजा युधिष्ठिर के स्थान में रक्खा था। उसी समय एक ब्राह्मण ने आकर अर्जुन से कहा कि मेरी गौ चोर लिये जाता है, सो दिला दीजिए।

यह सुनकर अर्जुन ने विचार किया कि इस समय राजा युधिष्ठिर के महल में अपना धनुष-बाण लेने जाता हूँ तो बारह वर्ष तक वन में रहना पड़ेगा और चोर को मारकर ब्राह्मण की गौ नहीं ला देता तो क्षत्रिय का धर्म नहीं रहता, इसलिए धर्म छोड़ने से वन में रहना उत्तम है। ऐसा विचारकर अर्जुन उसी समय राजा युधिष्ठिर के महल में जाकर अपना धनुष-बाण ले आया और चोर को मारकर ब्राह्मण की गौ दिलवा दी। प्रातःसमय अपने वचन प्रमाण संन्यासीरूप धरकर वन में चला गया। उसने तीर्थयात्रा करते हुए द्वारका में पहुँचकर क्या सुना कि सुभद्रा वसुदेवजी की कन्या महासुन्दरी विवाहने योग्य हुई है, उसका विवाह रेवतीरमण दुर्योधन से करना चाहते हैं और श्यामसुन्दर की इच्छा मुझे देने की है। यह सुनकर अर्जुन ने चाहा कि मेरा विवाह उसके साथ होता तो बहुत अच्छी बात थी, अर्जुन इसी इच्छा से चार महीना वर्षाऋतु में अपने को संन्यासी वेष में छिपाकर राजमंदिर के निकट मृगछाला बिछाये बैठा रहा। द्वारकावासी उसे महापुरुष जानकर अपने घर रसोई खिलाने ले जाने लगे। यह सुनकर एक दिन बलरामजी ने उसको राजमंदिर में बुला भेजा और चरण धोकर बड़े प्रेम से छत्तीस प्रकार के व्यंजन खिलाये। अर्जुन ने जब सुभद्रा मृगनयनी को देखा तो उस चन्द्रमुखी पर मोहित होकर उसके मिलने के लिए देवता व पितर मनाने लगा। सुभद्रा भी उसके रूप पर मोहित होकर मन में कहने लगी कि यह संन्यासी नहीं है, कोई राजकुमार मालूम होता है। परमेश्वर इसको मेरा पति बनाते तो अच्छा होता।

दो०अर्जुनभोजन करिचलौमनतोरह्यो लुभाय। कुँवरि सुभद्रा मिलनको लाग्योकरन उपाय॥

श्यामसुन्दर अन्तर्यामी को अपने भक्त अर्जुन और सुभद्रा के मनका हाल जानकर यह इच्छा थी कि हमारी बहिन अर्जुन से विवाही जाय पर उन्होंने रेवतीरमण के डर से यह बात प्रकट करनी उचित नहीं जानी। जब एक दिन कथा सुनने के बहाने अर्जुन के पास गये तब उसने त्रिभुवनपति को बड़े आदरभाव से बैठाकर विनय किया—हे दीनानाथ! मुझे सुभद्रा से विवाह करने की बड़ी इच्छा है, जिस तरह आप मेरे सब

मनोरथ पूर्ण करते आये हैं, उसी तरह दयालु होकर यह कामना भी पूरी कीजिए। यह सुनकर द्वारकानाथ ने कहा—हे अर्जुन! तुम थोड़े दिन यहाँ टिको, शिवरात्रि को सब द्वारकावासी सुभद्रा समेत रेवत पहाड़ पर महादेवजी की पूजा करने जायँगे, उस दिन तुम भी मेरे रथ पर बैठकर वहाँ जाना। जब अवसर मिले तब सुभद्रा को उठाकर अपने रथ पर बैठा लेना और रथ दौड़ाकर हस्तिनापुर को चले जाना। कदाचित् कोई सामना करे तो तुम भी उसके साथ लड़ना, मेरे क्रोध करने का भय न करना। यह सुनते ही अर्जुन प्रसन्न होकर वहाँ टिका रहा। जब शिवरात्रि को सब स्त्री व पुरुष द्वारकावासी सुभद्रासमेत रेवत पहाड़ पर पूजा करने गये तब संन्यासीरूप अर्जुन भी मुरलीमनोहर के रथ पर बैठकर वहाँ गया और धनुष-बाण लेकर रास्ते में खड़ा हुआ। जैसे सुभद्रा पूजा करके अपनी सहेलियों को साथ लिये फिरी, वैसे अर्जुन ने लाज व संकोच छोड़कर सुभद्रा का हाथ पकड़ लिया और रथ पर बैठाकर हस्तिनापुर को चला। यह बात यदुवंशियों ने सुनकर रेवतीरमण से कहा तो बलरामजी क्रोधित होकर बोले—

चौ० अभी जाय परलय मैं करिहौं। भूमि उठाय माथ पर धरिहौं॥
मेरी बहिन सुभद्रा प्यारी। ताको कैसे हरै भिखारी॥
महादण्ड अर्जुन को दैहौं। कुँवरि सुभद्रा को लै ऐहौं॥

बलरामजी बड़े क्रोध से बहुत यदुवंशियों को साथ लेकर अर्जुन के पीछे जाने को तैयार हुए। तब श्यामसुन्दर ने रेवतीरमण के पास जाकर समझाया कि सुनो भाई, अर्जुन हमारी फुआ का बेटा, परम मित्र, जाति व कुल में उत्तम है, बाणविद्या अच्छी जानता है, यदुवंशियों में मुझे कोई ऐसा नहीं दिखाई देता जो उसका सामना कर सके। अर्जुन ने अनुचित किया, पर हमको उसके साथ लड़ना उचित नहीं है। बेटी अपनी जातिवाले को ही देनी चाहिये, इससे क्या उत्तम है जो अर्जुन पुराने नातेदार को दी जावे। इसलिए आप दयालु होकर अपना क्रोध क्षमा कीजिए। अब इस बात की चर्चा करना उचित नहीं है। दहेज की सामग्री हस्तिनापुर में भेज देनी चाहिए। यह सुनते ही बलदाऊजी ने झुँझलाकर हल व मूसल अपना पटक दिया और यदुवंशियों से कहा कि यह

सब काम मुरलीमनोहर का है, जो आग लगाकर पानी को दौड़ते हैं। इनको अपने भक्तों की प्रसन्नता के सामने लाज का विचार नहीं रहता। इन्होंने सिखला दिया होगा इसी से अर्जुन सुभद्रा को उठा ले गया, नहीं तो उसकी क्या सामर्थ्य थी जो ऐसा अनुचित काम करता। मैं अपने भाई की आज्ञा टाल नहीं सकता, इसलिए जैसा यह कहते हैं वैसा करो। यह कहकर बलरामजी ने बहुत सा द्रव्य, भूषण, वस्त्र, हाथी, घोड़ा, रथ, दासी व दासादिक संकल्प करके हस्तिनापुर में दहेज भेज दिया और अर्जुन अपने घर पहुँचकर वेदानुसार सुभद्रा से विवाह करके संसारी सुख उठाने लगा। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! देखो, नारायणजी अपने भक्तों का ऐसा मान रखते हैं। इतनी क्षमा संसारी मनुष्य भी नहीं कर सकता। अब मैं दूसरा हाल उनकी महिमा का कहता हूँ, सुनो। मिथिला नगरी में बहुलाश्व नाम का राजा परमभक्त मनसा वाचा कर्मणा अपने को लक्ष्मीपति का दास समझता था। उसी नगर में श्रुतदेव नाम का ब्राह्मण हरिभक्त आठों पहर उनके स्मरण व ध्यान में मग्न रहता था। बिना माँगे जो कुछ मिलता उसी में सन्तोष रखकर किसी से कुछ नहीं माँगता था। नित्य रात को दोनों परमभक्त बैठकर आपस में यह विचार किया करते थे कि कल्ह वैकुण्ठनाथ के दर्शन के लिए द्वारका में चलकर अपना जन्म सफल करेंगे। प्रातःसमय वहाँ न जाकर कहते थे कि श्यामसुन्दर अन्तर्यामी दीनदयालु आप ही यहाँ आकर दर्शन देते तो बहुत अच्छा होता। जब उन दोनों की सच्ची भक्ति त्रिभुवनपति ने देखी तब वे मुझे व नारद मुनि, वेदव्यास, वशिष्ठ, अगस्त्य, देवल, वामदेव, अत्रि, परशुरामजी आदि ऋषीश्वरों को अपने साथ रथ पर बैठाकर मिथिलानगरी को चले। रास्ते में जो देश व नगर मिलता था वहाँ के राजा आगे आकर अनेक तरह की सौगात देते और उनके दर्शन से अपना-अपना जन्म सफल करते थे।

दो० मारवाड़ पंचाल ह्वै माखनप्रभु यदुराय। पहुँचे अति आनन्द सों मिथिला नगरी जाय॥

जब श्यामसुन्दर के आने का समाचार राजा बहुलाश्व व श्रुतदेव ब्राह्मण ने सुना तब आगे जाकर उन्हें दण्डवत की। जिस स्थान पर चरण केशव-

मूर्ति का पड़ता था वहाँ की धूर उठाकर वे दोनों परमभक्त अपने शिर व आँखों में लगाते थे। हे परीक्षित! उस दिन कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द का दर्शन पाकर सब छोटे-बड़े मिथिलापुरवासियों को ऐसा सुख मिला जिसका हाल मुझसे कहा नहीं जाता। राजा व ब्राह्मण ने लक्ष्मीपति के सामने हाथ जोड़कर विनय किया—हे महाप्रभु! जिस तरह आपने दयालु होकर अपना दर्शन दिया उसी तरह अपने चरणों से हमारा घर पवित्र कीजिए। यह सुनकर मुरलीमनोहर ने विचारा कि राजा व ब्राह्मण दोनों मेरे भक्त हैं, इन्हीं की प्रसन्नता के लिए यहाँ आया हूँ, इसलिए दोनों के घर जाकर इनका मान रखना चाहिए। पहिले राजा के घर जाने से ब्राह्मण कहेगा कि मुझे कंगाल जानकर मेरे घर नहीं आये, राजा धनपात्र को मुझसे अच्छा जाना और ब्राह्मण के घर प्रथम जाता हूँ तो राजा खेद मानकर कहेंगे कि श्यामसुन्दर मेरा अपमान करके प्रथम ब्राह्मण के घर चले गये, इसलिए ऐसा करना चाहिए जिसमें दोनों प्रसन्न रहें। ऐसा विचारकर त्रिभुवनपति अपने दो स्वरूप, दो रथ व ऋषीश्वरों समेत बनाकर राजा व ब्राह्मण दोनों के स्थान पर चले गये। श्यामसुन्दर की माया से बहुलाश्व राजा ने समझा कि केवल मेरे घर द्वारकानाथ आये हैं और ब्राह्मण ने जाना कि मुरलीमनोहर ने राजमन्दिर न जाकर हमारे यहाँ कृपा की है। जब केशवमूर्ति राजमन्दिर पर पहुँचे तब उसने द्वारकानाथ को जड़ाऊ सिंहासन पर बैठाकर उनका चरण अपने हाथ से धोया और चरणामृत लेकर वह जल शिर व आँखों में लगाया और अपने घरवालों पर छिड़क दिया। सब ऋषीश्वरों को विलग-विलग सिंहासन पर बैठाकर विधिपूर्वक श्यामसुन्दर व ऋषीश्वरों की पूजा की। बहुत से रत्नादिक लक्ष्मीपति को भेंट देकर उनका चरण प्रेमपूर्वक दाबने लगा और बड़े हर्ष से बोला—आज मैं अपने बराबर किसी दूसरे का भाग्य नहीं समझता। जिन चरणों का दर्शन महादेव आदि देवताओं व बड़े-बड़े योगीश्वरों को जल्दी ध्यान में नहीं मिलता वही चरण आज मेरी गोद में विराजते हैं। वैकुण्ठनाथ ने मुझे अपना दास समझकर अपने चरणों से मेरा घर पवित्र किया, इसी तरह बहुत स्तुति करके राजा

बहुलाश्व ने श्यामसुन्दर व ऋषीश्वरों को छत्तीस प्रकार के व्यंजन खिलाया। वसुदेवनन्दन को उत्तम-उत्तम भूषण व वस्त्र पहिनाकर चँवर हिलाते समय उनसे विनय किया—

चौ० मोहिं सनाथ कियो यदुनाथा। दर्शन दियो ऋषिन के साथा।।

दो०तुमतो जगतनिवासहो माखनप्रभु सुखरास। निजदासनके घरबिषे कछु दिनकरो निवास।।

यह दीन वचन सुनकर त्रिभुवनपति अपने भक्त का मनोरथ पूर्ण करने के लिए इक्कीस दिन वहाँ रहे। उसे ब्रह्मज्ञान उपदेश किया। जब श्यामसुन्दर उस कंगाल ब्राह्मण के घर गये तब श्रुतदेव ने कुशा के आसन पर अँगौछा बिछाकर मुरलीमनोहर को बैठा दिया और अपनी स्त्री समेत उनके प्रेम में डूबकर बड़े हर्ष से नाचने लगा। मुरलीमनोहर का चरण धोकर चरणामृत लिया और गंगाजी की मिट्टी का तिलक वसुदेवनन्दन के लगाकर तुलसीदल चढ़ाया। इमली, बड़हर, आँवला आदि खट्टे-मीठे फल, मोटे चावल और साग-पात लाकर बड़े प्रेम से त्रिभुवनपति व ऋषीश्वरों के सामने रख दिया। खस की मिट्टी से गंगा-जल सुगन्धित बनाकर पीने को ले आया। वैकुण्ठनाथ ने ऋषीश्वरों समेत आनन्दपूर्वक भोजन किया। जब श्रुतदेव वृन्दावनविहारी व ऋषी-श्वरों के हाथ-मुँह धुलाकर सुचित्त हुआ तब मुरलीमनोहर के सामने हाथ जोड़कर विनय किया—हे महाप्रभु! जब से बाल अवस्था भोगकर सयाना हुआ तब से सिवा स्मरण व ध्यान तुम्हारे चरणों के दूसरा उद्यम नहीं रखता। आज आपने कमलरूपी चरणों का दर्शन देकर मुझ कंगाल की इच्छा पूर्ण की। जो लोग संसारी जाल में फँसे रहकर धन व परिवार का अभिमान रखते हैं उनको तुम्हारे चरणों का दर्शन स्वप्न में भी नहीं मिलता और जो तुम्हारे स्मरण, ध्यान, पूजा, हरिचर्चा व कथा सुनने में प्रीति रखते हैं वह संसार में अपनी कामना पाकर अन्त समय मुक्त होते हैं। इसलिए आपको हजारों दण्डवत् करता हूँ। जो आज्ञा हो सो करूँ।

दो०हाथ जोड़ विनती करों धरों चरण पर माथ। म्वहिंअनाथ को दरशदेकीन्ह्योनाथसनाथ।।

उस ब्राह्मण की ऐसी प्रीति व भक्ति देखकर श्यामसुन्दर ने कहा—हे द्विजराज! हम तुमको अपना निज भक्त व मित्र जानकर बहुत प्यारा

समझते हैं। जो मनुष्य वेद व शास्त्र पढ़े हुए ब्राह्मणों की पूजा करता है उसका मनोरथ हम तुरन्त पूर्ण कर देते हैं। सब ऋषीश्वर तुम पर दयालु होकर अपना दर्शन देने यहाँ आये हैं। जिस तरह तीर्थ नहाने व देवस्थान का दर्शन करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है उसी तरह इन ऋषीश्वरों का दर्शन करने से शरीर में पाप नहीं रहता। तुम इनकी सेवा अच्छी तरह करो। मैं अपने तनु से भी ब्राह्मण को अधिक प्यारा जानता हूँ। जो मनुष्य ब्राह्मण की सेवा नहीं करता उसे मूर्ख समझना चाहिए। ज्ञानी लोग ब्राह्मण को परमेश्वर तुल्य जानते हैं। मनुष्यतनु में जो शुभ काम बन बड़े उसी को उत्तम समझना चाहिए। यह शरीर एक दिन नष्ट होकर कुछ काम नहीं आता। तुमको वेदानुसार हमारे स्मरण व पूजन में रहना चाहिए। त्रिभुवनपति इक्कीस दिन श्रुतदेव ब्राह्मण के घर में ऋषीश्वरों समेत रहकर ज्ञान समझाने के उपरान्त द्वारकापुरी को चले। राह में उन सब ऋषीश्वरों को विदा कर दिया।

दो॰ निज गृह पहुँचे आनकर माखनप्रभुयदुराय। पुरवासी प्रफुलित भये दरश परशसुखपाय॥

—:o:—

सत्तासीवाँ अध्याय।

त्रिभुवनपति की स्तुति।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनाकर पूछा—हे शुकदेव स्वामी! द्वारकानाथ ने श्रुतदेव ब्राह्मण से कहा कि तुम शास्त्रानुसार मेरा ध्यान व पूजन किया करो, सो मुझे यह बड़ा सन्देह है कि परब्रह्म निराकार रूप की स्तुति, जो कुछ रूप व रेख न रहकर देखने में नहीं आते, वेद ने किस तरह की होगी, विस्तार से कहकर मेरा सन्देह छुड़ा दीजिए। यह बात सुनकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! वेद में वैकुण्ठनाथ की स्तुति बहुत लिखी है, मैं इतनी सामर्थ्य नहीं रखता जो उनके सब गुण वर्णन कर सकूँ, पर थोड़ा सा हाल जो मुझे मालूम है सो कहता हूँ, सुनो। जिस आदि निराकार ज्योति ने बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को बनाया है वह महाप्रभु सदा निर्गुणरूप रहकर ब्रह्माण्ड रचते समय विराट्रूप धारण करके शेषनाग पर शयन करते हैं।

उनकी कथा इस तरह है कि सनक, सनन्दन, सनातन व सनत्कुमार चारों भाई परमेश्वर का अवतार सृष्टि होने से पहिले ब्रह्मा की इच्छानुसार उत्पन्न हुए हैं। उनके स्वभाव में राजस व तामस का प्रवेश न होकर सदा वह सतोगुणरूप रहते हैं। उनमें एक परमेश्वर की लीला व कथा कहता है और तीन भाई सुनते हैं। जो कुछ स्तुति आदिज्योति भगवान् की उन्होंने की है वही बात नरनारायण ने नारद मुनि से सतयुग में की थी। वही कथा हम तुमसे कहते हैं, सुनो। जिस तरह मकड़ी अपने मुख से जाला निकालकर फिर उसे खा जाती है उसी तरह तीनों लोकों के सब जीव जड़ व चैतन्य परमेश्वर की इच्छा से पलक भाँजने भर में उत्पन्न होकर फिर उन्हीं के रूप में समा जाते हैं उस समय महाप्रलय होने से चारों ओर पानी दिखलाई देता है, केवल आदिज्योति भगवान् रह जाते हैं। जब उनको संसार रचने की फिर इच्छा होती है तब उनकी श्वासा से चारों वेद उत्पन्न होकर जिस तरह प्रातःसमय वन्दीगण राजाओं की स्तुति करके जगाते हैं उसी तरह वह वेद दिव्यरूप चतुर्भुजी स्वरूप के सामने हाथ जोड़कर जगाने के लिए विनय करते हैं।

दो०त्यागो निद्रा योगकी जागो हरी मुरार। निज माया विस्तारि कै सिरजोपुनि संसार॥

हे परब्रह्म अविनाशी पुरुष! तुम जन्म लेने, मरने, जागने, सोने से रहित निर्दोष रहकर आठों पहर चैतन्य रहते हो। चौदहों भुवन तुम्हारी माया से उत्पन्न होते हैं, वह माया तुमको नहीं व्यापती। तुम्हारा आदि व अन्त व मध्य न रहकर तुम्हारी महिमा को कोई पहुँच नहीं सकता। तीनों लोकों में तुम्हारे समान कोई सुन्दर नहीं है। आप सदा प्रसन्न रहते हैं। सब जीवों की उत्पत्ति व पालन व नाश तुम्हारी इच्छा से होता है। जितनी दया तुम अपने भक्तों पर रखते हो उतनी प्रीति व रक्षा कोई देवता अपने भक्त की नहीं कर सकता। तुम सबमें संयुक्त व सब वस्तु से अलग रहकर रजोगुण व तमोगुण व सतोगुण से कुछ प्रयोजन नहीं रखते। केवल तुम्हारे स्मरण व ध्यान करने से संसारी जीव मुक्तपदवी पर पहुँचते हैं। तुम्हारा नाम जपने के तुल्य यज्ञ, तीर्थ, दान, जप, तप, आचार व कोई धर्म नहीं होता। ब्रह्मा व महादेव आदि सब देवता

तुम्हारे कमलरूपी चरण के ध्यान में आठों पहर लीन रहते हैं। इसी कारण उन्होंने ऐसी पदवी पाई। चौदहों लोकों में तुम्हारे समान कोई नहीं है। आपकी कृपा बिना संसारी मायाजाल से कोई छूट नहीं सकता। जब बड़े-बड़े योगी व ऋषीश्वर सब इन्द्रियों को अपने वश रखकर तुम्हारा स्मरण व ध्यान सच्चे मन से करते हैं तब आपकी दया से उनकी मुक्ति होती है।

दो०आदि अन्त सब जगत के तुमहीं पुरुष अनन्त। सदा एकरस रहत हौ माखनप्रभु भगवन्त॥

हे दीनानाथ! शिशुपाल, कंस, रावण, हिरण्यकशिपु आदि ने तुम्हारे साथ शत्रुता की थी, सो वे लोग अपने प्राण के डर से तुम्हारा ध्यान करने में भवसागर पार उतर गये। बहुत जीव तुम्हारी कथा व कीर्तन की चर्चा आपस में रखकर अपना जन्म सफल करते हैं। उनमें उत्तम उसी को समझना चाहिए जो आठों पहर तुम्हारे चरण-कमल का ध्यान रखकर संसारी माया से विरक्त रहता है। भक्ति के सिवा मुक्ति की भी चाह नहीं रखता। सत्संग के बराबर दूसरी वस्तु अच्छी नहीं समझता। साधु वैष्णव की सेवा व सत्संग प्रेमपूर्वक करता है। वह मनुष्य तुम्हारी माया का कुछ डर न रखकर सीधा वैकुण्ठ में, जहाँ सूर्य व चन्द्रमा का प्रवेश नहीं रहता, विमान पर बैठकर चला जाता है।

दो०वह जन परम पुनीत है पावत पद निर्वान। अंतकाल तुमको मिलत माखनप्रभु भगवान॥

हे वैकुण्ठनाथ! जो मनुष्य अपने अज्ञान से तुम्हारा स्मरण व ध्यान छोड़कर दूसरे देवता को पूजता है वह आवागमन में फँसा रहकर मुक्ति पदवी नहीं पाता। आपके रोम-रोम में हजारों ब्रह्माण्ड बँधे रहकर किसी जीव का हाल तुमसे छिपा नहीं रहता। जिस तरह सोने का अनेक गहना बनाने से विलग-विलग नाम होकर सब गहना गलाने पर केवल सोना रह जाता है उसी तरह तुम्हारा प्रकाश सबके तनु में रहकर देवतादिक जो पूजते हैं वह पूजा भी आपको पहुँचती है। इसलिए जो लोग ज्ञान की दृष्टि से जड़-चैतन्य में तुम्हारा रूप एकसा देखकर संसारी तृष्णा छोड़ देते हैं उन्हीं का कल्याण होता है।

दो०यद्यपि ज्ञानप्रकाश ते बहुविधि करैं बखान। भक्ति बिना पावैं नहीं कबहूँ पद निर्वान॥

हे दीनानाथ! ब्रह्मा भी तुम्हारी शक्ति व आज्ञा के बिना संसार रचने

की सामर्थ्य नहीं रखते। जगत् में सब व्यवहार झूठा होकर केवल तुम्हारा नाम सच्चा है। जिस तरह अग्नि का ढेर एक जगह रहकर उसमें से चिनगारियाँ उड़ती हैं उसी तरह अग्निरूपी ढेर होकर सब जीवों को चिनगारी के समान समझना चाहिए। जैसा एक चिनगारी सुलगाने से बहुत आग हो जाती है वैसे ही चिनगारीरूप जीव आपकी भक्ति करने से तुम्हारे तुल्य हो जाता है।

चौ० योगेश्वर जो तुमको ध्यावैं। श्वास रोक ब्रह्माण्ड चढ़ावैं॥
हृदय कमल में तुमको देखैं। अद्भुत रूप अनूपम पेखैं॥
भक्त तुम्हारे पढ़त पुराना। वे तुमको पावत भगवाना॥
तुम्हरी भक्ति धरैं मनमाहीं। चार पदारथ चाहत नाहीं॥

दो० हँसत तुम्हारे ध्यान में रोम-रोम हर्षाय। देखि दशा संसार की रुदन करत पछिताय॥

चौ० जो तुम कहो सन्त हितकारी। हमसे उत्पति भई तुम्हारी॥
तुम हमको कैसी विधि जानो। जो अस्तुति यहि भांति बखानो॥
अहो नाथ यह कृपा तुम्हारी। ना तो केतिक बुद्धि हमारी॥
हमहूँ यद्यपि वेद कहावैं। तदपि तुम्हारो भेद न पावैं॥
तुम्हरो रूप न देखो जाई। पन्थ तुम्हारो देत बताई॥
ज्ञान भक्ति वैराग जु होय। तब तुमको पहिचानत कोय॥
जो जन विषयभोग परिहरै। भक्तियोग निज मन में धरै॥

दो० तुम चरणन के ध्यान में मगन रहै दिन रैन। तुम्हरी अमृतकथा सुनि लहै सदा सुख चैन॥

हे वैकुण्ठनाथ! जो मनुष्य संसार में मनुष्यतनु पाकर इन्द्रियों के वश रहता है और स्त्री-पुत्र के प्रेम में फँसकर तुम्हारी भक्ति नहीं करता उसे अभागी व मुर्दे के समान समझना चाहिए। वह मनुष्य चौरासीलाख योनि में जन्म पाकर बड़ा दुःख पाता है। सब जीव अपने कर्मानुसार अनेक तनु में दुःख व सुख भोगते हैं। जिस तरह तालाब का पानी प्रतिदिन कम हो जाता है उसी तरह गृहस्थ की बुद्धि व सामर्थ्य घटती जाती है।

दो० याही विधि प्राणी सबै बूड़त माया माहिं। नाहीं तो वह आपसे काहू व्यापत नाहिं॥

चौ० मनुष्य जन्म दुर्लभ जग माहीं। देवन हूँ को प्रापत नाहीं॥
सकल देव यह मनसा करैं। मानुष ह्वै भवसागर तरैं॥
नरशरीर नौकासम जानों। वेदपुराण डाँड़ ही मानो॥
केवटरूप गुरू है सोई। नौका पार लगावत जोई॥
या विधि सों जो पार न होई। आतमघाती समझो सोई॥
जब तक भक्ति करै नहिं कोई। भवसागर से पार न होई॥

दो०याते कीजै शुभ करम यही धर्म की रीति । माखनप्रभु करतार सों जब लौं उपजै प्रीति ।।
अष्टसिद्धि को देखि के लोभ करै जो कोय । ताहि पदारथ भक्ति को कैसे प्रापत होय ।।
यह अस्तुति वेदन कही अपनी बुद्धि प्रमान । निर्गुण रूप अनूप को कैसे करे बखान ।।

इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित ! यही स्तुति कहकर चारों वेद चतुर्भुजी भगवान् को सृष्टि रचने के लिए जगाते हैं और सनकादिक आठों पहर यही चर्चा आपस में रखते हैं। यही बात नरनारायण ने नारदजी से कही थी और नारद मुनि ने हमारे पिता वेदव्यास से कही। उन्होंने विस्तारपूर्वक मुझे पढ़ाई और मैंने वही हाल जो सब वेद व शास्त्र का सार है, तुमको सुनाया। यही ज्ञान श्यामसुन्दर ने राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मण को बतलाया था।

दो०यह अस्तुति जो रैन दिन कहै सुनै चितलाय । ताके पाप रहैं नहीं विष्णुलोक वह जाय ।।

अट्ठासीवाँ अध्याय।

भस्मासुर दैत्य की कथा।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर शुकदेवजी से विनय किया—हे मुनिनाथ ! मुझे संसार में यह बात उलटी दिखलाई देती है कि नारायण वैकुण्ठनाथ लक्ष्मीपति होकर अपने भक्तों को ऐसा कंगाल रखते हैं कि उनको अच्छी तरह भोजन व वस्त्र भी नहीं मिलता और महादेवजी अवघड़ों की तरह अपना वेष रखकर सर्पों की सेल्ही व मुण्डमाला गले में पहिने रहते हैं और उनके भक्त व सेवक धनपात्र होकर बड़े आनन्द से अपना जन्म बिताते हैं। इसका क्या कारण है, यह मेरा सन्देह छुड़ा दीजिए। यह बात सुनकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित ! यह तुमने बहुत अच्छी बात पूछी, इसका हाल सुनो।

दो०सदा तीनपन बसत हैं शिव की मूरति माहिं। सकल कामना देत हैं एक मुक्ति को नाहिं ।।

हे राजन् ! त्रिभुवनपति भगवान् विरक्त रहकर संसारी किसी वस्तु की चाह नहीं रखते, इसलिए उनके भक्त लोग भी नाश होनेवाली संसारी वस्तु को नहीं चाहते। लक्ष्मीपति ऐसी इच्छा नहीं करते कि हमारे भक्त संसारी मायाजाल में फँसकर नष्ट होवें। तुमने सुना होगा कि कई मनुष्य महादेव के भक्तों ने उनसे वरदान पाकर उन्हीं के साथ शत्रुता की थी।

इसी कारण परब्रह्म परमेश्वर मायारूपी धन, जिसके मद में मनुष्य अन्धा होकर अनेक कुकर्म करता है, अपने भक्तों को नहीं देते। हे राजन्! जो प्रश्न तुमने हमसे किया है, यही बात एक बेर राजा युधिष्ठिर तुम्हारे दादा ने श्रीकृष्णजी से पूछी थी। तब श्यामसुन्दर ने कहा—हे राजन्! मायारूपी लक्ष्मी मिलने से, जिसमें बहुत विकार भरा है, मनुष्य संसारी सुख में लपट जाते हैं और जब तक मुझे याद नहीं करते तब तक आवागमन से नहीं छूटते। इसलिए अपने भक्तों को नहीं देता, जिसमें वे लोग संसारी सुख में फँसकर परलोक का सोच भूल न जावें। जो मनुष्य मेरी शरण में आता है उसका धन व अभिमान कृपा की राह हर लेता हूँ। जब निर्धन होने से स्त्री, पुत्र, भाई आदि सब परिवारवाले उसका निरादर करते हैं तब वह उनका प्रेम छोड़कर आनन्द से साधु व वैष्णव का सत्संग करता है। जब महापुरुषों की संगति से ज्ञान पाकर मेरे भजन व स्मरण में ध्यान लगाता है तब हम उसको मुक्ति पदवी देते हैं। ब्रह्मादिक दूसरे देवताओं की पूजा करने से जो लोग स्वर्गादिक में जाते हैं वह सुख सदा स्थिर नहीं रहता। मेरी भक्ति व पूजा करनेवाले विभीषण, अर्जुन, सुग्रीव, प्रह्लाद, अम्बरीष आदि संसारिसुख भोगकर अटल पदवी पाते हैं। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! महादेव आदि दूसरे देवता अपनी पूजा करने से प्रसन्न होते हैं और छोड़ देने में खेद मानते हैं। वैकुण्ठनाथ सदा से सात्त्विकी स्वभाव रहकर किसी को शाप नहीं देते।

दो० बहुअसुरन को रुद्रजू दिये तुरत वरदान। तिन सन्तन सों आपही पायो कष्ट निदान॥

हे परीक्षित! बाणासुर की कथा तुम सुन चुके हो कि शिवशंकर से वरदान पाकर उन्हीं के साथ लड़ने आया था। अब हम दूसरे दैत्यों का हाल कहते हैं, सुनो। एक दिन शकुनी का बेटा महामूर्ख वृकासुरदैत्य तप करने की इच्छा से घर से बाहर निकला। जब उसने राह में नारद मुनि को आते देखा तब दण्डवत् करके पूछा—हे मुनिनाथ! मुझे तप करने की इच्छा है, सो तुम दयालु होकर बतलाओ कि ब्रह्मा, विष्णु व महेश तीनों देवताओं में जो तुरन्त प्रसन्न होकर वरदान देते हों उनका तप करूँ। यह बात सुनकर नारदजी बोले—हे वृकासुर! इन तीनों देवताओं

में महादेवजी तुरन्त वरदान देते हैं और थोड़ासा अपराध करने में अपना क्रोध क्षमा नहीं करते। उन्होंने सहस्रार्जुन के तप करने से प्रसन्न होकर उसको हजार भुजा दी थीं, इसलिए तुम शिवजी का तप करो तो जल्दी फल मिलेगा। जब नारद मुनि यह बात कहकर चले गये तब वृकासुर उसी समय केदारेश्वर की ओर गया।

दो० शिवकी मूरति थापिकरि अग्निकुण्ड के तीर। बैठ्यो आसन मार के होमन लग्यो शरीर॥

जब सात दिन व सात रात में उसने अपने अंग का सब मांस छुरी से काटकर हवन कर दिया और आठवें दिन स्नान करके अपना शिर काटना चाहा तब भोलानाथ ने अग्निकुण्ड से निकलकर उसका हाथ पकड़ लिया और अपने कमण्डलु का जल उस पर छिड़क दिया। जब उसके प्रताप से वृकासुर का अंग दिव्य रूप होकर कुन्दन के समान चमकने लगा तब शिवजी ने कहा—हे वृकासुर! हम तेरी पूजा से प्रसन्न हुए, अब तुझे जो इच्छा हो वरदान माँग। यह वचन सुनते ही वृकासुर ने हाथ जोड़कर विनय किया—हे महाप्रभु! मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि जिसके शिर पर अपना हाथ रख दूँ वह उसी समय जलकर राख हो जावे। यह बात सुनकर शिवजी ने विचारा कि यह अधर्मी दैत्य ऐसा वरदान माँगकर संसारी जीवों को जो दुःख देना चाहता है, पर क्या करूँ, वचन दे चुका। यह समझकर महादेवजी बोले—बहुत अच्छा, हमने मुँहमाँगा वरदान तुमको दिया। जब वह दैत्य यह वरदान पाकर प्रसन्न हुआ तब उस अधर्मी ने पार्वतीजी का रूप देखकर विचार किया कि इससे दूसरी बात उत्तम नहीं, जो मैं अपना हाथ भोलानाथ के शिर पर धरकर उन्हें जला दूँ और पार्वती को अपने घर ले जाऊँ। जब वह पापी ऐसा विचारकर शिवजी के मस्तक पर हाथ रखने चला तब महादेवजी सब लोकों और दशों दिशाओं में भागते फिरे, पर उस दैत्य ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। जब ब्रह्मादिक कोई देवता शिवजी की रक्षा नहीं कर सके तब वे व्याकुल होकर वैकुण्ठनाथ के सामने दौड़े चले गये और दण्डवत् करके हाथ जोड़कर विनय किया—हे त्रिभुवनपति! मैंने यह दुःख अपने ऊपर आप उठाया है। जिस उपाय से इस पापी दैत्य के हाथ से मेरे प्राण

बचें वह उपाय कीजिए। यह दीन वचन सुनते ही नारायणजी भक्त-हितकारी ने महादेवजी से कहा—तुम धैर्य रक्खो, मैं इसका यत्न करता हूँ। ऐसा कहकर वैकुण्ठनाथ ने उसी समय अपने को ब्राह्मणरूप बना लिया और ऋषीश्वरों की तरह कमण्डलु व मृगछाला लिये हुए वृकासुर के पास जाकर उससे कहा—हे वृकासुर! तू इतना घबराया हुआ कहाँ भागा जाता है, अपना समाचार हमसे तो बतलाओ। जब उस दैत्य ने वरदान पाने और अपनी इच्छा का हाल त्रिभुवनपति से कहा तब वैकुण्ठ-नाथ ऋषीश्वररूप बोले—तू बड़ा अज्ञानी है जो महादेवजी की बात, जो विष व धतूरा खाये, भूतों को साथ लिये, मुण्डमाल व सर्पों का हार पहिने नंगे फिरा करते हैं शास्त्रानुसार नहीं चलते, श्मशान पर बैठे हुए बौरहों की तरह हँसते और नाचते हैं, उनको सच्चा मानकर इतना दुःख उठाता है। जब दक्षप्रजापति ने महादेव को शाप दिया तब से सब बातें उनकी सच्ची नहीं होतीं। इसलिए तुम अपने शिर पर हाथ रखकर पहिले उस वरदान की परीक्षा कर लो। जब तुम्हारे निकट उनका वचन सच ठहर जावे तब जो चाहना हो सो उनके साथ करना। यह सुनते ही वृकासुर ने परमेश्वर की माया से वह वचन सच्चा मानकर जैसे अपने शिर पर हाथ रक्खा वैसे ही जलकर राख का ढेर हो गया। यह चरित्र देखते ही भोलानाथ प्रसन्न होकर नाचने लगे। देवताओं ने आकाश से त्रिभुवनपति पर फूल बरसाये। अप्सराएँ नाचने लगीं, गन्धर्वों ने गाना सुनाया। उस समय आदि-पुरुष भगवान् ने महादेवजी से कहा कि ऐसे अधर्मी दैत्य को इस तरह का वरदान देना उचित नहीं है। जगद्गुरु का अपराध करने से वह अपने दण्ड को पहुँचा। यह बात सुनकर शिवजी ने विनय किया—हे महाप्रभु! तुम हमारी रक्षा करने-वाले हो, इसलिए हमसे अपराध भी हो जाता है। जब भोलानाथ इसी तरह बहुत स्तुति वैकुण्ठनाथ की कर चुके तब त्रिभुवनपति ने उनको धैर्य देकर विदा किया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—

चौ० रुद्रमोक्ष लीला सुखदाई। जो जन कहै सुनै चितलाई॥

दो० रहै सदा सुख चैन से दुख पावै वह नाहिं। सब पापन से छूटकर मुक्त होत क्षण माहिं॥

—०—

नवासीवाँ अध्याय।

भृगु ऋषीश्वर का लक्ष्मीपति की छाती पर लात मारना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! एक समय भृगु आदिक सातों ऋषीश्वर सरस्वती के किनारे बैठे हुए आपस में ज्ञान चर्चा कर रहे थे, उस समय कई ऋषीश्वरों ने भृगुजी से पूछा कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं में कौन बड़ा है? यह बात सुनकर किसी ने महादेव को, किसी ने विष्णु को, किसी ने ब्रह्मा को बड़ा बतलाया। भृगु ऋषीश्वर ने कहा कि इन तीनों देवताओं में जो क्रोध क्षमा करके बुराई के बदले भलाई करे उसी को उत्तम समझना चाहिए, सो मैं जाकर उनकी परीक्षा लेता हूँ। ऐसा कहकर भृगु ऋषीश्वर ब्रह्माजी की सभा में गये और बिना दण्डवत् किये उनके सामने जा बैठे। यह देखकर सब ऋषीश्वरों व ब्राह्मणों ने, जो वहाँ बैठे थे, अचम्भा माना और ब्रह्मा ने क्रोध से भृगु की ओर देखकर शाप देना चाहा, पर बेटा जानकर कुछ नहीं बोले।

दो०पुत्र आपनो जानकर भये कोप ते शान्ति। प्रथम परीक्षा पिता की सुत लीन्हीं यहि भाँति॥

जब भृगु ऋषीश्वर ने रजोगुणवश ब्रह्मा को अपने ऊपर क्रोधित देखा तब वहाँ से उठकर कैलास पर्वत पर, जहाँ गौरीशंकर विराजते थे, गये। जैसे भोलानाथ ने अपने भाई भृगु ऋषीश्वर को आते देखा वैसे ही खड़े हो गये और हाथ पसार कर गले मिलना चाहा। तब ऋषीश्वर ने महादेवजी से कहा कि तुम अपना कर्म व धर्म छोड़कर श्मशान पर बैठे रहते हो, इसलिए मुझे मत छुओ। यह अभिमानपूर्वक वचन सुनते ही जब गौरीपति ने क्रोध से त्रिशूल उठाकर भृगु ऋषीश्वर को मारना चाहा तब पार्वतीजी ने शिवजी से हाथ जोड़कर विनय किया—महाराज! यह ऋषीश्वर तुम्हारा छोटा भाई है इसका अपराध क्षमा कीजिए। पार्वती के कहने से भृगु ऋषीश्वर के प्राण बचे तब भोलानाथ को तमोगुणवश देखकर वहाँ से विष्णु भगवान की परीक्षा लेने के लिए वैकुण्ठ को गये। वह वैकुण्ठ कैसा है कि जहाँ सूर्य व चन्द्रमा का प्रकाश दिन-रात बराबर बना रहता है। वहाँ सब पृथ्वी सोनहली व रत्नजटित है। बारहों महीने तुलसी के वृक्ष व सुगन्धित फूल व उत्तम-उत्तम फल लगे रहते हैं। अच्छे-अच्छे तड़ाग व बावली आदि बने हैं। उसके

किनारे अनेक रंग के पक्षी बोलते हैं। जब भृगु ऋषीश्वर ने बेधड़क बीच महल में, जहाँ वे जड़ाऊ पलँग पर सो गये थे और लक्ष्मीजी उनका पैर दाबती थीं, घुसकर एक लात बाईं ओर छाती में मारी तब वैकुण्ठनाथ नींद से चौंककर ऋषीश्वर को देखते ही उनका पैर दबाने लगे और चरणों पर गिरकर विनयपूर्वक बोले—हे द्विजराज! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मेरी छाती बड़ी कड़ी है, आपके कोमल चरण को अवश्य दुःख पहुँचा होगा। मुझे तुम्हारे आने का समाचार मालूम होता तो आगे से पहुँचता। आपने दया करके मेरा लोक पवित्र किया। यह जो लात मारी है, इस चरण का चिह्न सदा अपनी छाती पर बना रहने दूँगा। इसमें मुझे कुछ लज्जा नहीं है। जब भृगु ऋषीश्वर ने ऐसी क्षमा त्रिभुवनपति में देखकर मीठा वचन सुना तब लज्जित होकर उनकी स्तुति करने लगे। लक्ष्मीजी ने लात मारते समय मन में क्रोध किया था, पर वैकुण्ठनाथ के डर से ऋषीश्वर को कुछ शाप नहीं दिया। जब त्रिभुवनपति ने भृगु ऋषीश्वर का पूजन करके उन्हें बिदा किया तब उन्होंने सरस्वती के किनारे जाकर तीनों देवताओं का हाल अपने साथियों से कह दिया। यह समाचार पाते ही सब ऋषीश्वर दूसरे देवताओं का पूजन छोड़कर विष्णु भगवान् का स्मरण व ध्यान सच्चे मन से करने लगे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! एक दूसरी महिमा श्यामसुन्दर की कहते हैं, सुनो। द्वारकापुरी में एक ब्राह्मण बहुत शीलवान् अपने कर्म व धर्म से रहता था। जब उस ब्राह्मण के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न होकर मर गया तब वह अपने बालक की लोथ राजा उग्रसेन के पास ले जाकर कहने लगा कि तुम्हारे अधर्म करने से मेरा पुत्र पिता के सामने मर गया। प्रजा लोग दुःख पाते हैं। द्वापर में कलियुग का लक्षण राजा के पाप से होता है। वह ब्राह्मण अनेक दुर्वचन कहने के उपरान्त मरा हुआ बेटा उग्रसेन के द्वारे पर रखकर अपने घर चला आया। इसी तरह सात बालक और उस ब्राह्मण के घर उत्पन्न होकर मर गये, सो वह ब्राह्मण उनकी लोथ उसी तरह राजा के यहाँ रख आया। जब नवईं बेर उसकी स्त्री के गर्भ रहा तब उस ब्राह्मण ने राजसभा में जाकर श्याम व बलराम के सामने

अति विलाप करके कहा—हे दीनानाथ! पहिले राजा उग्रसेन पापी को धिक्कार है, जिसके राज्य में प्रजा दुःख पाते हैं, दूसरे उन लोगों को धिक्कार है जो इस अधर्मी की सेवा में रहते हैं, तीसरे मुझे धिक्कार है जो ऐसे पापियों के देश में रहता हूँ, जिनके अधर्म से मेरे पुत्र नहीं जीते। तुम क्षत्रिय होकर ब्राह्मण का दुःख नहीं छुड़ाते। जब उस ब्राह्मण ने राजसभा में खड़े होकर अनेक बातें इसी तरह कहीं और श्याम, बलराम, प्रद्युम्न आदि किसी यदुवंशी ने उसको उत्तर नहीं दिया तब अर्जुन जो उस समय वहाँ बैठा था, बाणविद्या का घमण्ड रखकर अभिमानपूर्वक बोला कि बड़े लज्जा की बात है, जो उग्रसेन महाराज कहलाकर ब्राह्मण का दुःख निवारण नहीं करते। जिस राजा के देश में गो-ब्राह्मण कष्ट पाते हैं उसका यश व धर्म नहीं रहता। ऐसा कहकर अर्जुन उस ब्राह्मण से बोला—हे द्विजराज! तुम क्यों इतना रोकर दुःख उठाते हो, इन दिनों राजा स्वार्थी होकर गो-ब्राह्मण की रक्षा नहीं करते।

चौ० तुम्हरे पुत्र जन्मते मरैं। पुर के लोग यत्न नहिं करैं॥

दो० यद्यपि बहु योधा बसैं नगर द्वारका माहिं। तद्यपि विद्या धनुष की जानत कोऊ नाहिं॥

हे ब्राह्मण देवता! अब तुम धैर्य धरकर अपने घर बैठो। जब तुम्हारी स्त्री के बालक उत्पन्न होने का समय आये तब तुम मुझसे आकर कह देना। मैं उस बालक की रक्षा करूँगा। यह सुनकर उस ब्राह्मण ने अर्जुन से कहा कि जहाँ श्याम, बलराम, व प्रद्युम्न ऐसे शूरवीर बैठे हैं, कुछ नहीं बोलते, वहाँ ऐसे अभिमानपूर्वक वचन तुम कहते हो, तुम्हारी क्या सामर्थ्य है जो मेरे बालक को मरने से बचाओगे। यह वचन सुनकर अर्जुन बोले—मुझे श्रीकृष्ण, बलभद्र व प्रद्युम्न मत समझो, मैं अर्जुन गांडीव धनुष का बाँधनेवाला हूँ। मेरे सामने मृत्यु की सामर्थ्य नहीं है जो तेरा पुत्र मार सके।

चौ० शिव से युद्ध कियो यकबारी। महाप्रसन्न भयो त्रिपुरारी॥
मेरो वचन साँच तुम जानो। कछु संदेह न मन में आनो॥
तुम्हरे सुत की रक्षा करिहौं। नातो अग्निमाहँ मैं जरिहौं॥

यह बात सुनकर ब्राह्मण अपने घर चला गया। जब उस ब्राह्मण की स्त्री के बालक उत्पन्न होने का समय पहुँचा और उसने अर्जुन के पास जाकर यह हाल कह दिया तब अर्जुन महादेव को नमस्कार करके धनुर्बाण

लिये हुए ब्राह्मण के घर चला गया और बाणों का ऐसा कोट चारों ओर बना दिया कि जिसमें हवा भी ब्राह्मण के घर में न जा सके और आप धनुर्बाण लेकर उस बालक को बचाने के लिए चारों ओर फिरने लगा। जब उस ब्राह्मण का बालक उत्पन्न होकर बिना रोये न मालूम कहाँ अन्तर्धान हो गया तब उसकी स्त्री अपने स्वामी से बोली—महाराज! तुमने अर्जुन की बहुत बड़ाई की थी कि वह मेरे बालक की रक्षा करेगा, पहिले पुत्र को तो क्षण दो क्षण रोते हुए भी देखती थी, इस बेर तो मैंने उसको अच्छी तरह आँखों से भी नहीं देखा, न मालूम कहाँ उसकी लोथ गुप्त हो गई। यह वचन अपनी स्त्री का सुनते ही उस ब्राह्मण ने अर्जुन के पास जाकर ऐसा दुर्वचन उसे सुनाया कि वह अति लज्जित होकर राजा उग्रसेन की सभा में चला गया और उसके पीछे ब्राह्मण ने भी वहाँ पहुँचकर सभा वालों के सामने कहा—हे अर्जुन! तूने मेरा पुत्र बचाने का प्रण किया था, सो तेरा अभिमान क्या हुआ। तुझे धिक्कार है। कुछ लज्जा रखता हो तो चुल्लू भर पानी में डूब मर, किसी को अपना मुख मत दिखला और आज से धनुर्बाण रखना व झूठ बोलना छोड़कर वन में चला जा। तूने राजा विराट् के यहाँ हिजड़ा बनकर वर्षरोज अपने दिन काटा है, तुझसे क्या शूरता होगी। जब इसी तरह उस ब्राह्मण ने अनेक दुर्वचन राजसभा में अर्जुन को कहा तब वह बहुत लज्जित होकर बोला—हे द्विजराज! तुम ये बातें सच कहते हो, अब तुमसे यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि तीनों लोकों में से तुम्हारे मरे हुए बालक को ढूँढ़कर ला दूँगा, नहीं तो धनुर्बाण समेत अग्नि में जलकर मर जाऊँगा। यह बात ब्राह्मण से कहकर अर्जुन ने स्नान किया और धनुर्बाण उठाकर उन लड़कों को ढूँढ़ने के लिए स्वर्ग व पाताल में चला गया। जब अर्जुन ने चौदहों लोक व यमपुरी व धर्मराज का स्थान खोजने पर भी उसका पता नहीं पाया तब सोच करता हुआ द्वारकापुरी में आकर अपने सेवकों से बोला—

चौ० बहुत काठ लावो यहि ठाईं। अग्नि लगाय देव चौठाईं॥
दो०करिहौं अग्निप्रवेश मैं जरिहौं धनुष समेत। वचन हारि संसार में पति धरिहौं केहि हेत॥

जब अर्जुन चिता तैयार करके अग्नि में कूदने लगा तब श्यामसुन्दर

गर्वप्रहारी भक्तहितकारी ने अर्जुन के पास जाकर कहा--हे भाई ! तुम्हारी शूरता में कुछ सन्देह नहीं है। अभी तुम क्यों जलते हो, हमारे साथ चलो, जहाँ ब्राह्मण पुत्र होंगे वहाँ से ढूँढ़ लाकर तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। ऐसा कहकर त्रिभुवनपति अर्जुन समेत अपने रथ पर चढ़े और पूर्व ओर सातों द्वीप व समुद्र व लोकालोक पर्वत के पार जाकर ऐसी जगह पहुँचे जहाँ सिवा अँधेरे के कुछ दिखलाई नहीं देता था। तब श्रीकृष्णजी ने सुदर्शनचक्र को आज्ञा दी कि तुम अपने प्रकाश से रास्ता दिखलाते चलो। यह वचन सुनते ही सुदर्शनचक्र हजार सूर्य से अधिक अपना तेज बढ़ाकर आगे-आगे चला।

डो०तेज सुदर्शनचक्र को रह्यो चहूँदिशि छाय। अर्जुन देखि सके नहीं राख्यो नयन छिपाय ॥

इसी तरह बहुत दूर तक वह रथ चला गया। वहाँ इस वेग से पानी लहर मारता हुआ दिखलाई दिया जिस तरह दो पर्वत आपस में लड़ते हों। जब श्यामसुन्दर ने अपना रथ पानी में डाल दिया तब अर्जुन ने आँखें खोलीं तो उसे वहाँ एक महल रत्नजटित बहुत लम्बा व चौड़ा चमकता हुआ दिखलाई दिया। जब रथ से उतरकर दोनों भीतर गये तब उस मकान में क्या देखा कि शेषनागजी अपने कोमल अंग पर नीलाम्बर पहिने व हजार मुकुट व दो हजार कुण्डल जड़ाऊ धारण किये लेटे हैं। परमेश्वर के नाम लेने के सिवा दूसरा कुछ प्रयोजन नहीं रखते। शेषनाग की छाती पर विष्णु भगवान् मोहनीमूर्ति कमलनयन अष्टभुजी स्वरूप से मुकुट व जड़ाऊ गहना अंग-अंग पर साजे जनेऊ का जोड़ा व वैजयन्ती माला व कौस्तुभमणि गले में डाले पीताम्बर पहिने व रेशमी उपरना ओढ़े सुन्दरता से विराजते हैं। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म चारों शस्त्र अपना-अपना रूप धारण किये नन्द, सुनन्द, पुण्य, शील, सुशील, गरुड़, विशुक, सेन, सनाभ नवों मंत्री उनके चारों ओर बैठे हैं। ब्रह्मा व महादेव आदि देवता सामने खड़े हुए स्तुति करते हैं। जब अर्जुन यह चरित्र देखकर सब अभिमान अपना भूल गया तब श्यामसुन्दर ने अर्जुन समेत अष्टभुजी स्वरूप के सामने जाकर इस तरह उन्हें नमस्कार किया जिस तरह कोई अपनी परछाहीं को दण्डवत् करे। उस स्वरूप ने श्यामसुन्दर को

देखते ही हँसकर कहा कि तुमने एकसौ पच्चीस वर्ष मर्त्यलोक में रहकर पृथ्वी का बोझा उतारा और मेरी शक्ति से अवतार लेकर बहुत दैत्य व अधर्मियों को मारा। देवता, ब्राह्मण व हरिभक्तों को सुख देकर मुझे प्रसन्न किया। इन दिनों मेरा मन तुम्हें देखने को बहुत चाहता था, इसलिए मैंने ब्राह्मण के बालक यहाँ मँगाकर अर्जुन से अभिमानपूर्वक वचन कहला दिया कि उसकी प्रतिज्ञा रखने के लिए तुम अवश्य यहाँ आवोगे। वे सब बालक यहाँ पर हैं, उनको ले जावो। ऐसा कहकर जब अष्टभुजी स्वरूप भगवान ने श्यामसुन्दर को विदा किया तब वे आपस में नमस्कार करके ब्राह्मण के लड़कों को लेकर अर्जुन समेत द्वारकापुरी में आये। अर्जुन ने वे सब बालक उस ब्राह्मण को देकर अपनी लज्जा छुड़ाई और अपना शिर मुरलीमनोहर के चरणों पर रखकर समझा कि वसुदेवनन्दन की दया से मैंने महाभारत किया था, नहीं तो मुझे क्या सामर्थ्य है जो कर्ण व भीष्मपितामह आदि वीरों को जीत सकता। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—

चौ० जो यह कथा सुनै धरि ध्याना। उसके पुत्र रहै कल्याना॥

—(०)—

नब्बेवाँ अध्याय।

त्रिभुवनपति के सन्तानों की कथा।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! कोई ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो श्यामसुन्दर का सब गुण वर्णन कर सके, पर मैं उन ज्योतिस्वरूप को हजारों दण्डवत् करता हूँ, जिनकी दया से हम व तुम इस अमृतरूप कथा के कहने व सुनने से मुक्ति पदवी पावेंगे। थोड़ी-सी महिमा उनकी और कहते हैं, सुनो। वैकुण्ठनाथ ने केवल पृथ्वी का बोझा उतारने के लिए यदुकुल में सगुण अवतार लेकर ये सब लीलाएँ की थीं। उनकी इच्छा से द्वारका कंचनपुरी में सब स्थान व बाग जड़ाऊ तैयार होकर अनेक रंग के सुगन्धित पुष्प व फल बारहों महीने लगे रहते थे। तालाब व बावली के किनारे अनेक भाँति के पक्षी मीठी-मीठी बोलियों में द्वारका-नाथ की स्तुति करते थे। कई हजार हाथी द्वार पर बाँधे होकर अनेक पहलवान चाणूर व मुष्टिक ऐसे मल्लयुद्ध करने के लिए सदा वहाँ बने

रहते थे। सब सड़क व गली व चौराहों पर चन्दन व गुलाबजल से छिड़काव होकर अनेक देश के व्यापारी सब तरह की वस्तुएँ वहाँ बेचने आते थे। यदुवंशियों के घर ऋद्धि व सिद्धि बनी रहकर उनकी स्त्रियाँ जड़ाऊ गहना व कपड़ा पहिने इत्र व फुलेल लगाये हुए नित्य मंगलाचार मनाया करती थीं। सब छोटे-बड़े द्वारकावासी हरिकथा सुनने व साधु-ब्राह्मण की सेवा में प्रीति रखकर अपने कर्म व धर्म से रहते थे।

दो० तहाँ नारि सब यादवन अतिसुन्दरसुकुमारि। जिनको रूप निहारिके सकुचावेंसुरनारि॥

श्यामसुन्दर की सोलहहजार एकसौ आठ स्त्रियाँ अपने-अपने जड़ाऊ महल व बागों में त्रिभुवनपति के साथ भोगविलास करके अपना जन्म सफल करती थीं। इन्द्रपुरी से अप्सराएँ नाच दिखाने के लिए द्वारका में आती थीं। गन्धर्व लोग गाना सुनाते थे। श्यामसुन्दर अपने सोलहहजार एकसौ आठ स्वरूप से सब स्त्रियों के पास रहकर उनकी इच्छा पूर्ण करते थे। वे स्त्रियाँ आठों पहर द्वारकानाथ की सेवा में रहकर ऐसा उन पर मोहित थीं कि श्यामसुन्दर को देखे बिना उनको एक क्षण चैन नहीं पड़ता था। किसी समय मोहनप्यारे के रहने पर भी व्याकुल होकर पक्षियों से पूछती थीं कि हमारे प्राणनाथ कहाँ चले गये। फिर चैतन्य होकर उनको देखने से अपने बराबर किसी दूसरे का भाग्य नहीं समझती थीं। एक दिन मुरलीमनोहर ने सब स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करना विचारकर जैसे समुद्र को आज्ञा दी वैसे घुटने भर पानी वहाँ हो गया।

दो० पूरणमासी रात को सब नारिन के साथ। जलविहार लागे करन माखनप्रभु यदुनाथ॥

जिस समय श्यामसुन्दर ने चाँदनी रात में सोलहहजार एकसौ आठ स्त्रियों के साथ विलग-विलग रूप धरकर विहार किया उस समय समुद्र में ऐसी शोभा मालूम होती थी जिसका हाल वर्णन नहीं हो सकता।

चौ० तबै टिटिहिरी बोली बानी। तासों कहन लगी यक रानी॥
कारण कौन शब्द तू करै। हरि संयोग वियोग मन धरै॥
चकई बोलि उठी तेहि काला। ऐसी विधि बोली यक बाला॥
तेरो भेव जानि हम लीन्हों। पतिवियोग ते अति दुख कीन्हों॥
क्यों हरि काज शब्द तू करै। सगरी रैन चैन नहिं परै॥
फिर उन सुनी सिंधु की बानी। तेहि अवसर बोली यक रानी॥

कहै एक श्रीकृष्ण मुरारी। शयन करत हैं सिंधु मँझारी ।।
तेही काज शब्द अति करै। श्रीव्रजराज प्रीति उर धरै ।।
फिर उन देखि चन्द्रकीकाँति। सखी एक बोली यहि भाँति ।।
तोहिं कृष्ण कों दरसन भयो। तेरो क्षयी रोग सब गयो ।।
रैवतगिरि देखा तिहि काला। या विधि बोलि उठी यक बाला ।।
तू दिन रैन तपस्या करै। मन में ध्यान कृष्ण को धरै ।।
राजन ऐसी विधि सब बाला। कहैं मनोहर बचन रसाला ।।
दो० अष्टनायका आदि दै सब नारिन के साथ। ऐसी विधि क्रीड़ा करैं माखनप्रभु यदुनाथ ।।

श्यामसुन्दर की सन्तान इतनी बढ़ी थी कि तीन करोड़ अड़तालीस हजार तीन सौ ब्राह्मण उन लड़कों को विद्या पढ़ाने के लिए रहते थे। इसलिए यदुवंशियों की गिन्ती नहीं हो सकती। देखो, जो श्यामसुन्दर अपने वंश की रक्षा के लिए नित्य असंख्य द्रव्य व गौ ब्राह्मणों को दान दिया करते थे वही त्रिभुवनपति इतना प्रेम रखने पर भी दुर्वासा ऋषीश्वर के शाप से सब यदुवंशियों का नाश कराके वैकुण्ठ में चले गये। श्रीकृष्णजी के वंश में केवल वज्रनाभ अनिरुद्ध का बेटा जीता बचा था, सो मथुरा व इन्द्रप्रस्थ का राजा हुआ। उसके कुल में व्रतबाहु व सत्यसेन आदि सब राजा बड़े प्रतापी व हरिभक्त व धर्मात्मा हुए थे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जो मनुष्य दशमस्कन्ध की कथा सच्चे मन व प्रीति से कहता व सुनता है उसको बड़ा भाग्यवान समझना चाहिए। वह मनुष्य संसार में मनोकामना पाकर अन्त समय मुक्त होता है।

ग्यारहवाँ स्कन्ध ।

—:○:—

नारद मुनि का वसुदेवजी को ज्ञान समझाना ।

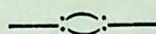
पहिला अध्याय ।

दुर्वासा आदि ऋषीश्वरों का द्वारका में आना ।

राजा परीक्षित ने दशमस्कन्ध की कथा सुनकर शुकदेवजी से विनय किया—हे मुनिनाथ ! यादव लोग धर्मात्मा व हरिभक्त थे, उनको दुर्वासा ऋषीश्वर ने क्यों शाप दिया ? यह सुनकर शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! इसका हाल इस तरह है कि एक दिन श्यामसुन्दर ने मन में विचारा कि हमने पृथ्वी का भार उतारने व हरिभक्तों की रक्षा करने के लिए अवतार लिया था, जिसमें संसारी जीव मेरी कथा व लीला कह-सुनकर भव-सागर पार उतर जावें। बड़े-बड़े दैत्यों, कंस व जरासन्ध आदि अधर्मी राजाओं को मारा और कौरवों व पाण्डवों से महाभारत कराके पृथ्वी का भार उतारा, पर छप्पन करोड़ यदुवंशी जो बड़े बलिष्ठ व धनपात्र हैं, उनका भार अभी बना है। यह सब मेरी सन्तान व भाई-बन्धु हैं, मैंने इनका पालन किया है, इसलिए इनको अपने हाथ से मारने में पाप होगा, किसी ब्राह्मण से शाप दिलवाकर मरवा डालना चाहिए। ऐसा विचारकर उनकी इच्छानुसार दुर्वासा व वशिष्ठ आदि बहुत से ऋषीश्वर तीर्थयात्रा करते हुए द्वारकापुरी में आये। जगत्पति ने उनका पूजन व आदरभाव करके हाथ जोड़कर विनय किया कि जिस तरह आप लोगों ने दयालु होकर अपना दर्शन दिया उसी तरह थोड़े दिन यहाँ रहकर हमारी इच्छा पूर्ण कीजिए। यह वचन सुनकर ऋषीश्वरों ने कहा—महाराज ! यहाँ विधिपूर्वक हमारा तप व जप नहीं बन पड़ता। केशव-मूर्ति बोले कि तुम लोग पिण्डारक क्षेत्र में, जो यहाँ से निकट है, रहकर स्मरण व ध्यान करो। यह बात मानकर सब ऋषीश्वर पिण्डारकक्षेत्र में चले गये और वहाँ परमेश्वर का तप विधिपूर्वक करने लगे। एक दिन

श्यामसुन्दर की माया से प्रद्युम्न व साम्ब आदि उसी ओर अहेर खेलने गये। उन्होंने ऋषीश्वरों को तप व स्मरण करते हुए देखकर आपस में कहा कि ये सब ब्राह्मण संसारी लोगों को ठगने के लिए झूठी समाधि लगाये बैठे हैं। ये लोग सच्चे महापुरुष होंगे तो इनको भूत, भविष्य व वर्तमान तीनों काल की बात मालूम होगी। यह वचन सुनकर साम्ब ने प्रद्युम्न आदि अपने साथियों से कहा कि तुम लोग मुझे स्त्रियों का वस्त्र पहिनाकर कुछ वस्तु मेरे पेट में बाँध दो और इन ऋषीश्वरों के पास ले जाकर पूछो कि इस गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा या कन्या? देखो वे लोग क्या कहते हैं। जब होनहार के वश होकर प्रद्युम्न आदि ने उसी तरह ऋषीश्वरों से पूछा, तब उन्होंने कहा कि तुम लोगों को श्यामसुन्दर के पुत्र व पोता होकर ब्राह्मणों से ठट्ठा करना उचित नहीं है। जब उन लड़कों ने ऋषीश्वरों के वर्जने पर भी उस बात का उत्तर देने के लिए बहुत हठ किया तब दुर्वासा ऋषीश्वर ने हरिइच्छा से क्रोधित होकर ऐसा शाप दिया कि इसके पेट से एक मूसल उत्पन्न होगा वह श्याम व बलराम के सिवा तुम्हारे सब कुल का नाश करेगा। यह वचन सुनते ही प्रद्युम्न आदि उदास होकर आपस में कहने लगे कि हम लोगों ने बहुत बुरा काम किया, जो ब्राह्मणों को दुःख देकर उनका शाप अपने ऊपर लिया। जब यह बात कहकर प्रद्युम्न ने साम्ब के पेट में कपड़ा जो बाँधा था खोला तो उस कपड़े के भीतर से एक लोहे का छोटा सा मूसल निकला। यह अचम्भा देखते ही वे सब घबराकर चले आये और राजा उग्रसेन की सभा में, जहाँ श्याम व बलराम यदुवंशियों समेत बैठे थे, वह मूसल दिखलाकर शाप देने का समाचार कह दिया। यह बात सुनकर राजा उग्रसेन व यदुवंशियों ने सोच करके आपस में सम्मत किया कि मूसल को लोहारों से सोहन कराके इसका चूर समुद्र में डाल देना चाहिए जिसमें इस शाप की जड़ न रहे। यह बात ठहराकर राजा उग्रसेन ने श्यामसुन्दर से पूछा कि तुम क्या कहते हो। जगत्पति आगमजानी ने साप का हाल सुनते ही मन में प्रसन्न होकर कहा कि बहुत अच्छा, जैसा यदुवंशी लोग कहते हैं वैसा करो। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! वैकुण्ठनाथ को वह शाप छुड़ा देना कुछ कठिन नहीं

था, पर यह बात उनकी इच्छा से हुई थी, इसलिए उन्होंने उसका कुछ उपाय नहीं किया। यदुवंशियों ने उस मूसल को समुद्र के किनारे ले जाकर सोहन कराके उसका चूर समुद्र में डाल दिया। एक टुकड़ा छोटा सा सोहन करते समय जो बच गया था उसको समुद्र में फेंककर अपने घर चले आये। श्यामसुन्दर की इच्छा से वह टुकड़ा एक मछली निगल गई और उस मछली को एक केवट ने जाल में फँसाकर जब उसका पेट चीरते समय वह टुकड़ा पाया तब उसे तीर की गाँसी बनाकर अपने पास रक्खा। जिस जगह लुहारों ने उस मूसल का सोहन किया था वहाँ पर समुद्र के किनारे एक घास सरपत, जिसकी चटाई बनाते हैं, उत्पन्न हुई।



दूसरा अध्याय।

वसुदेवजी को नारद मुनि का ज्ञान सिखलाना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब दुर्वासा ऋषीश्वर के शाप देने से द्वारकापुरी में अनेक अशकुन होने लगे तब श्रीकृष्णजी ने विचारा कि ये सब यादव दुर्वासा ऋषीश्वर के शाप से थोड़े दिनों में मारे जावेंगे, इसलिए चाहिए कि वसुदेव व देवकी अपने माता-पिता को ज्ञान समझा-कर मुक्त करूँ। पर वे लोग मुझे अपना बेटा जानकर मेरे कहने से विश्वास नहीं करेंगे, नारदजी आकर उपदेश करते तो उनके लिए उत्तम होता। ऐसा विचारकर त्रिभुवनपति ने नारद मुनि को याद किया और वह उसी समय उनके पास आये। तब द्वारकानाथ ने दण्डवत् करके कहा—हे मुनिनाथ! तुम थोड़े दिन यहाँ रहते तो बहुत अच्छा था। नारद मुनि ने विनय किया—हे दीनानाथ! आपको मालूम है कि दक्षप्रजा-पति के शाप से मैं दो घड़ी से अधिक एक जगह ठहर नहीं सकता। श्रीकृष्णजी ने कहा कि तुम द्वारका में निस्सन्देह रहो, यहाँ शाप नहीं व्यापेगा। यह बरदान पाकर नारदजी बड़ी प्रसन्नता से वहाँ रहे। जब एक दिन नारद मुनि बीणा बजाते व हरिगुण गाते हुए वसुदेव को देखने गये तब वसुदेवजी ने आदरपूर्वक उन्हें बैठाया और विधिपूर्वक पूजन करके हाथ जोड़कर विनय किया—हे मुनिनाथ! मेरा बड़ा भाग्य

है जो आपके चरण यहाँ आये। हम लोग संसारी मनुष्य मायारूपी अँधियारे कुएँ में स्त्री-लड़कों के मोह में पड़े रहते हैं। ज्ञानरूपी रस्सी मिले बिना इस कुएँ से बाहर निकलना कठिन है। कदाचित् आप ऐसा कहें कि तुम बड़े भाग्यवान् हो जो परब्रह्म परमेश्वर ने तुम्हारे घर अवतार लिया, सो हे नारद मुनि! मुझसे बड़ी भूल हुई जो पूर्वजन्म मैंने तप करते समय परमेश्वर का दर्शन पाकर उनसे यह वरदान माँगा कि तुम मेरे पुत्र हो। मुझे अपनी मुक्ति माँगना उचित था। इसलिए अब चाहता हूँ कि तुम्हारे मुखारविन्द से भागवतधर्म सुनकर भवसागर पार उतर जाऊँ। यह सुनकर नारद मुनि ने कहा—हे वसुदेवजी! भागवतधर्म नवो योगीश्वरों ने राजा जनक को सुनाया था, वही पुराना इतिहास कहते हैं, सुनो। ऋषभदेवजी के सौ पुत्र जयंती नाम स्त्री से उत्पन्न होकर उनमें नव बालक नवखण्ड के राजा हुए। इक्यासी बेटों ने वेद व शास्त्र पढ़ा। भरत नामक बड़ा पुत्र अपने बाप की जगह सिंहासन पर बैठा। नवों बेटे, जो नव योगीश्वर कहलाते हैं, परमज्ञानी व बालयती व महात्मा होकर जहाँ उनका मन चाहता था वहाँ फिरा करते थे। हरिभजन के प्रताप से उनको ऐसी सामर्थ्य थी कि जहाँ चाहें वहाँ क्षण भर में चले जावें। एक दिन ये नवो योगीश्वर घूमते हुए राजा जनक की सभा में, जहाँ बहुत से पण्डित व ज्ञानी लोग बैठे थे, चले गये। उनके मुखारविंद का प्रकाश, जो सूर्य से अधिक चमकता था, देखते ही राजा जनक ने सभावालों समेत उठकर एक साथ नवो योगीश्वरों को दण्डवत् किया और परिक्रमा लेकर हाथ जोड़कर बोले—आप लोग वैकुण्ठ से आते हैं, इसलिए मैं तुमको विष्णु भगवान् का पार्षद समझता हूँ। मेरे पूर्वजन्म के पुण्य सहाय हुए जो तुम्हारा दर्शन पाया। संसारी मनुष्य की मृत्यु का ठिकाना नहीं रहता, यही समझकर मैंने आपको एक साथ दण्डवत् किया। जिस तरह आपने दयालु होकर अपने चरणों से मेरा घर पवित्र किया उसी तरह जो बात मैं पूँछूँ उसका सन्देह छुड़ा दीजिए। यह सुनकर वे योगीश्वर बोले—हे राजन्! जो कुछ तुम्हें इच्छा हो, सो पूछो। राजा जनक ने कहा—हे महाराज! संसार में कौन ऐसी वस्तु है जो सदा

स्थिर रहकर उसका वियोग नहीं होता। कदाचित् यह कहा जावे कि जो कोई अपने घर में बहुत धन, स्त्री व पुत्र आज्ञाकारी रखता है उसे कुछ सोच नहीं होता सो मेरे जान में उसे सदा सुख नहीं रहता। क्योंकि जब उस घर में कुछ हानि होकर स्त्री व लड़के मर जाते हैं तब वह बहुत सोच करता है। सुख उसे कहना चाहिए जो सदा स्थिर रहे, प्रतिदिन अधिक होकर उसमें कभी न घटे। सो आप लोग बतलाइये कि वह कौन वस्तु है जिसका नाश नहीं होता। यह सुनकर योगीश्वरों में से कश्यप नाम बड़े भाई ने कहा—हे राजन्! सुख उन्हीं को प्राप्त है जो आठों पहर अपना मन आदिपुरुष भगवान् के स्मरण व ध्यान में लगाये रहते हैं और धन, स्त्री, पुत्रादिक नाश होनेवाली वस्तु से कुछ प्रीति नहीं रखते। पर संसारी जीवों की यह प्रकृति है कि धन मिलने, स्त्री व पुत्र आज्ञाकारी होने से समझते हैं कि हमारे बराबर दूसरा कोई सुखी न होगा। जब उनके धन की कुछ हानि होती है अथवा कोई मनुष्य घरवाला मर जाता है तब उसके शोक में ऐसे व्याकुल हो जाते हैं कि उनका चित्त ठिकाने नहीं रहता। इसलिए संसारी मनुष्य से जो कोई पूछे कि तुम्हें धैर्य है या नहीं तो उन दोनों को मूर्ख समझना चाहिए, क्योंकि जो सुख सदा स्थिर नहीं रहता उसका होना व न होना दोनों बराबर हैं। हे राजन्! तुम इस बात का विश्वास मानो कि जो मनुष्य परमेश्वर से विमुख रहकर अपने परलोक का सोच नहीं करता उसे कभी सुख नहीं मिलता। धर्म वही समझना चाहिए जो श्रीकृष्णजी ने अपने मुखारविन्द से गीता में अर्जुन से कहा था। उस ज्ञान का सारांश यह है कि मनुष्य आठों पहर अपना मन नारायणजी के स्मरण में लगाये रखकर किसी काम को ऐसा न समझे कि यह मैंने किया। दिन-रात यह जानता रहे कि सब काम परमेश्वर की इच्छा से होते हैं। नारायणजी तप, स्मरण, ध्यान और भजन किये बिना, जिसको भक्ति कहते हैं, मिल नहीं सकते। इसलिए उनका प्रेम उत्पन्न होने की पहिली राह जो सहज है, बतलाते हैं, सुनो। जिसमें संसारी जीव वह रास्ता चलकर अपने सुख के स्थान पर पहुँच जावें। जिस तरह परब्रह्म परमेश्वर ने कृष्णावतार लेकर गोवर्धन

पहाड़ अपनी अँगुली पर उठा लिया। कंस व जरासन्ध आदि अधर्मी राजाओं को मारकर गोपियों के साथ रासमण्डल किया। रामचन्द्र व वामन आदि अनेक अवतार धरकर जो लीला संसार में की हैं वह कथा सच्चे मन से कह व सुनकर इस बात का अभिमान न रक्खे कि एक बेर यह कथा सुन चुके हैं फिर सुनकर क्या करेंगे। वह मनुष्य हरिचरित्र कहने व सुनने के प्रताप से विरक्त होकर अन्त समय परमेश्वर के चरणों में पहुँचता है। ज्ञानी को चाहिए कि सब स्थान पर नारायणजी को एकसा देखकर यह समझता रहे कि आदि पुरुष भगवान् केवल इसी वास्ते सगुण अवतार धारण करते हैं कि संसारी मनुष्य उनकी लीला व कथा सुनकर भवसागर पार उतर जावें। इसलिए मनुष्यतन पाकर उनके ध्यान व स्मरण से क्षण भर भी विमुख रहना न चाहिए। कदाचित् मनुष्य का चंचल मन एक बेर परमेश्वर के चरणों में न लगे तो थोड़ा-थोड़ा प्रेम उनसे नित्य बढ़ावे। जिस तरह संसारी मनुष्य किसी नगर व देश को जाने की इच्छा से नित्य एक-एक पग भी उस राह पर चले तो कुछ दिनों में उस स्थान पर पहुँच सकता है उसी तरह सूर्यरूपी हरिचरणों का ध्यान व प्रेम धीरे-धीरे बढ़ाने से उसके हृदय में ज्ञान का दीपक प्रज्वलित होकर अज्ञान का अँधियारा छूट जाता है। जो कोई अपने घर से नहीं चलता उसको दूसरे स्थान पर पहुँचना बहुत कठिन है। जिस तरह तीन दिन के भूखे मनुष्य को भोजन देखने से धैर्य होकर ज्यों-ज्यों वह ग्रास उठाकर खाता है त्यों-त्यों उसे सामर्थ्य होती जाती है उसी तरह परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करते-करते मनुष्य के मन से प्रति दिन संसारी माया छूटकर हरिचरणों में अधिक प्रेम बढ़ता जाता है। जब वे योगीश्वर यह सब ज्ञान कह चुके तब राजा जनक उठ खड़े हुए और फिर दण्डवत् करके उनसे पूछा—महाराज! जो मनुष्य भागवतधर्म से रहकर उसी तरह सब काम करते हैं उनका रूप किस तरह का होता है और किन लक्षणों से उनको पहिचानना चाहिए। यह सुनकर हरि नामक दूसरे भाई ने कहा—हे राजन्! परम धर्म रखनेवाले मनुष्य कभी हँसते और कभी रो देते हैं। उनके हँसने का यह कारण है कि किसी समय

प्रसन्न होकर कहते हैं कि हे परमेश्वर! तुम्हारा निराकाररूप किसी को दिखलाई नहीं देता, इसलिए आप हरिभक्तों पर दयालु होकर सगुण अवतार धारण करते हैं, जिसमें संसारी जीव तुम्हारा स्मरण व ध्यान करके मुक्त पदवी पावें और यह बात समझकर वे लोग रो देते हैं कि हमारी इतनी अवस्था परमेश्वर का स्मरण व ध्यान किये बिना वृथा व्यतीत हुई। नारायणजी के भक्त तीन तरह के होते हैं—उत्तम, मध्यम, निकृष्ट। उत्तम भक्त के ये लक्षण हैं कि वे जड़ व चैतन्य सब जीवों में परमेश्वर की शक्ति बराबर समझकर किसी से मित्रता व शत्रुता नहीं रखते। आठों पहर हरिचरणों के ध्यान व स्मरण में लीन व मग्न रहते हैं। जिस तरह मद पिये हुए मनुष्य अचेत होकर अपने तनु व वस्त्र की सुधि नहीं रखते उसी तरह उत्तम भक्त अपने शरीर की सुधि न रखकर ईश्वर के ध्यान में मग्न रहते हैं। परमेश्वर के विराट्रूप में सब संसारी जीवों को एकसा देखकर हरिभक्त व महात्मा लोगों से प्रीति रखते हैं। अपने व दूसरे में कुछ भेद न जानकर स्त्री, पुत्र व धन आदिक संसारी सुख से कुछ प्रीति नहीं रखते। तीनों लोकों का राज्य सत्संग व भक्ति के समान नहीं समझते। मध्यम भक्त के लक्षण ये हैं कि वे लोग साधु व महात्माओं से प्रीति रखकर कुसङ्गति में नहीं बैठते। किसी का बुरा न चाहकर संसारि जीवों पर दया रखते हैं, पर ज्ञानी होने से परमेश्वर की शक्ति सब जीवों में बराबर नहीं समझते। निकृष्ट भक्त के लक्षण सुनो, वे लोग संसारि माया-मोह में फँसे रहकर किसी समय पूजा व स्मरण परमेश्वर का भी कर लेते हैं। जब तक मनुष्य तृष्णा नहीं छोड़ता तब तक उसका मन संसारी माया से विरक्त नहीं होता

तीसरा अध्याय।

तीन योगीश्वरों का राजा जनक को ज्ञान उपदेश करना।

शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! राजा जनक ने तीनों तरह के भक्तों का हाल सुनकर उन योगीश्वरों से पूछा—महाराज! माया परमेश्वर से अलग है या नारायणजी में मिली है, सो वर्णन कीजिए। यह सुनकर

अन्तरिक्ष नामक तीसरे भाई ने कहा—हे राजन्! उत्पन्न होना व मरना सब जीवों का परमेश्वर की माया से होता है। उस माया को हरिइच्छा समझना चाहिए। माया के तीन गुण सात्त्विक, राजस व तामस से उत्पत्ति पालन व नाश संसारि जीवों का होता है। अपने कर्मानुसार सब जीव फल पाते हैं। संसारि मनुष्य मायावश होकर सदा काम क्रोध लोभ मोह में फँसा रहता है, परमेश्वर का स्मरण व ध्यान नहीं करता जिसमें आवागमन से छूटकर भवसागर पार उतर जावे। नारायणजी की दया व कृपा के बिना कोई मनुष्य मायारूपी जाल से छूट नहीं सकता। जब आदिपुरुष भगवान् को महाप्रलय होने के उपरान्त फिर संसार रचने की इच्छा होती है तब वे माया की ओर आँख उठाकर देखते हैं। उसी समय माया से महत्तत्व प्रकट होकर सब जगत् को उत्पन्न करता है। जब त्रिभुवनपति संसार का नाश करना चाहते हैं तब उनकी इच्छानुसार उसी माया से महाप्रलय होकर ऐसा मूसलाधार पानी बरसता है कि जल के सिवा पृथ्वी पर कुछ नहीं रहता। इसलिए ज्ञानी मनुष्य जगत् का उत्पन्न व नाश मायारूपी खिलौना समझकर आठों पहर अपने भवसागर पार उतरने का उपाय करता रहे। यह सुनकर राजा जनक ने पूछा—जब आप लोग माया को परमेश्वर की इच्छा बतलाते हैं तब संसारी मनुष्य उस माया जाल से किस तरह छूट सकता है, इसका कोई उपाय बतलाइए। यह वचन सुनकर प्रबुद्ध नामक चौथे योगीश्वर ने कहा—हे राजन्! जब इस बात का विश्वास हुआ कि माया नारायणजी की इच्छा है और परमेश्वर की आज्ञा के बिना कोई काम पूरा नहीं होता तब मनुष्य को उचित है कि सब काम में त्रिभुवनपति को कर्ता व धर्ता जानकर अपने को उन माया का खिलौना समझे और जो कर्म आरम्भ करे उसे परमेश्वर की इच्छा पर छोड़कर मन में यह विश्वास रक्खे कि वैकुण्ठनाथ चाहेंगे तो यह काम पूरा होगा। अपने को वह काम करनेवाला न जाने। किसी के गाली देने से खेद न माने और बिना प्रयोजन अधिक न बोले। जड़ व चैतन्य सब जीवों में परमेश्वर का चमत्कार बराबर समझकर उन पर दया रक्खे। किसी जीव को दुःख न दे। दूसरे की स्त्री

माता के समान जाने। थोड़ा या बहुत जो कुछ अपने भाग्य से मिले उस पर सन्तोष रखकर अधिक मिलने की चाह न करे। अकेले में बैठकर हरिचरणों का स्मरण व ध्यान करता रहे। जब दूसरों के पास बैठे तब परमेश्वर की चर्चा व कथा के सिवा वृथा बातें न करे। इस तरह अभ्यास रखने से संसारी माया से छूटकर उसका मन हरिचरणों में लग जाता है। कदाचित् कोई ऐसा कहे कि बहुत मनुष्य उपाय व उद्यम करके अपनी कामना को पहुँचकर सदा प्रसन्न रहते हैं, सो हे राजन्! तुम इस बात का विश्वास मानो कि परमेश्वर की इच्छा के बिना किसी का मनोरथ नहीं मिलता। सब तरह की हानि व लाभ त्रिभुवनपति की इच्छानुसार होता है। देखो, संसार में जो उत्पन्न हुए हैं वे एक दिन अवश्य मरेंगे। मरते समय कोई उनसे यह बात नहीं कहेगा कि तुम स्त्री, पुत्र, हाथी व घोड़ा आदि का नाम लो। सब इष्ट व मित्र यही कहेंगे कि इस समय परमेश्वर का नाम लेकर उन्हें याद करो, जिसमें तुम्हारा परलोक बने। फिर पहिले से उस परमेश्वर को क्यों नहीं याद करता, जिससे अन्त समय काम रहता है, दूसरा कोई सहायता कर नहीं सकता। कदाचित् तुम ऐसा कहो कि अब संसारी सुख उठाकर मरते समय परमेश्वर को याद कर लेंगे सो तुम विश्वास करके जानो कि जब तुम्हारा मन पहिले से स्त्री, पुत्र व द्रव्यादिक के प्रेम में लगा रहेगा तब मरते समय परमेश्वर में मन लगना बहुत कठिन है। इसलिए मनुष्य का तनु पाकर पहिले से उनके स्मरण व ध्यान में चित्त लगाना चाहिए। जो अन्त समय काम आवे। जिस तरह द्रव्य गाड़कर रखने से आठों पहर उस जगह का ध्यान मन में बना रहता है और चोर आदिक के डर से कभी-कभी जाकर उस स्थान को देख आता है और किसी दूसरे से द्रव्य गाड़ने का हाल नहीं कहता, उसी तरह उसे दिन-रात वैकुण्ठनाथ को याद रखकर प्रेम रखने का हाल किसी से कहना न चाहिए। यह ज्ञान सुनकर राजा जनक ने विनय किया कि आपने जो कहा कि परमेश्वर की लीला व कथा सुनने व ध्यान करने से संसारी माया छूट जाती है, इसलिए थोड़ी स्तुति नारायणजी की सुना चाहता हूँ सो दयालु होकर कहिए। यह सुनकर पिप्पलायन पाँचवें

भाई ने कहा—हे राजन्! उत्पन्न, पालन व नाश करनेवाले तीनों लोकों के वही वैकुण्ठनाथ हैं। उन्हीं का प्रकाश चौरासी लाख योनि में रहता है, पर किसी जीव के मरने से उसका नाश नहीं होता। किसी जीव के उत्पन्न होने से वे जन्म भी नहीं लेते। वे अविनाशी पुरुष अपने तेज से प्रकाशित रहकर सदा एक तरह पर सब वस्तुओं में मिले व सबसे विलग रहते हैं। सब जीवों में चलने-फिरने की सामर्थ्य व मनुष्य को भली व बुरी बात का ज्ञान उन्हीं की शक्ति से होता है। उनका प्रकाश किसी को दिखलाई नहीं देता। वे इस तरह हृदय के बीच में छिपे रहते हैं जिस तरह पत्थर व लकड़ी में अग्नि दिखलाई नहीं देती। जैसे उपाय करने पर पत्थर व लकड़ी में से अग्नि निकलती है वैसे ही ज्ञान की राह उनकी शक्ति को भी शरीर में देखना चाहिए। जिस तरह गूलर के फल में हजारों मच्छर भरे रहते हैं उसी तरह करोड़ों ब्रह्माण्ड परमेश्वर के रोम-रोम में बँधे हैं। सब जीवों का वे पालन करते हैं। ऐसे त्रिभुवनपति का पहिचानना बहुत कठिन है। उनकी भक्ति व प्रीति सच्चे मन से करे तब उनकी महिमा जान सकता है। मनुष्य की दशा चार तरह की होती है—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। जाग्रत् जागने को और स्वप्न नींद को कहते हैं। सुषुप्ति उसे समझना चाहिए जिस तरह किसी समय मनुष्य नींद से उठकर कहता है कि हम ऐसा सोये कि नींद में अचेत होकर सोते रहे। तुरीय उसको कहते हैं जैसे कोई परमेश्वर के ध्यान में लीन होकर बैठा रहे और अपने तनु व वस्त्र की कुछ सुधि न रक्खे। चारों अवस्था में परमेश्वर का प्रकाश शरीर में रहता है। उन्हीं की शक्ति से मनुष्य शुभ व अशुभ सब कर्म करते हैं। यह बात इस तरह समझना चाहिए कि जब परमेश्वर अपना चमत्कार अंग में से खींच लेते हैं तब वह मर जाता है और उससे कोई काम नहीं हो सकता। कदाचित् कोई ऐसा कहे कि परमेश्वर सब जगह वर्तमान हैं तो दिखलाई क्यों नहीं देते। उसे यह उत्तर देना चाहिए कि मूर्ख को दिखलाई नहीं देते और ज्ञानी से वे छिपे नहीं रहते।

———

चौथा अध्याय।

अवतारों की कथा।

नारद मुनि ने कहा—हे वसुदेव! इतनी कथा सुनकर राजा जनकजी बोले—हे ऋषिराज! जिन दिनों मैं बालक था उन दिनों एक बेर सनकादिक मेरे पिता के पास आये थे। जब मैंने हाथ जोड़कर उनसे पूछा कि महाराज! परमेश्वर की भक्ति व तपस्या किस तरह करनी चाहिए तब उन्होंने कुछ उत्तर न देकर हँस दिया और मुझे वह ज्ञान सुनने योग्य नहीं समझा। यह वचन राजा जनक का सुनकर उपविरहोत्र नामक छठे योगीश्वर ने कहा—हे राजन्! तुम ज्ञान सुनने योग्य हो, पर उन दिनों अज्ञान बालक थे, इसलिए सनत्कुमार आदि ने तुमसे कुछ ज्ञान नहीं बतलाया। अब हम कहते हैं, सुनो। कर्म तीन तरह के होते हैं। कर्म, विकर्म, अकर्म। कर्म उसे कहना चाहिए कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चारों वर्ण अपने-अपने धर्म पर जैसा उनके लिए वेद व शास्त्र में लिखा है, स्थिर रहें। विकर्म वह है कि एक वर्ण का धर्म दूसरा वर्ण करे। अकर्म उसे समझना चाहिए कि जानबूझकर चोरी व कुकर्म आदि करके संसारी जीवों को दुःख दे इसलिए मनुष्य को उचित है कि नित्य रामचन्द्र श्रीकृष्ण और नृसिंहजी आदि किसी अवतार का पूजा, ध्यान अपने गुरु की आज्ञानुसार किया करे। परमेश्वर का स्मरण व ध्यान चौबीसों अवतारों में से जिस पर उसका मन चाहे उसी स्वरूप की पूजा व भक्ति करे। यह सुनकर राजा जनक बोले—महाराज! जिस तरह आपने पूजा करने के लिए कहा उसी तरह दयालु होकर अवतारों की कथा वर्णन कीजिए। दुर्मिल नामक सातवें योगीश्वर बोले—हे राजन्! कोई ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो परमेश्वर के सब अवतार वर्णन कर सके। जो ऐसा विचार करे उसे मूर्ख समझना चाहिए। कदाचित् कोई चाहे तो आकाश के तारे, बालू की रेणुका व बरसते हुए पानी की बूँदें गिन ले, पर वैकुण्ठनाथ के अवतार नहीं गिन सकता। पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, दशों दिशाएँ, चौदहों भुवन, चौरासी लाख योनि आदि परमेश्वर के विराट्‌रूप में हैं। सब संसारी वस्तुओं के मालिक व उत्पन्न करनेवाले वही हैं। जब विराट्‌रूप की

नाभि से कमल का फूल निकलता है तब उस फूल से ब्रह्मा उत्पन्न होकर तीनों लोकों की रचना करते हैं। नर नारायण का अवतार लेकर बदरी केदार में बैठे हुए केवल इसलिए तपस्या करते हैं, जिसमें संसारी लोग उनको तप करते देखकर परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करके भवसागर पार उतर जावें। जब इन्द्र को त्रिभुवनपति की महिमा न जानने से यह भय हुआ कि मेरा इन्द्रासन लेने के लिए ये तपस्या करते हैं तब उसने उनका तप भंग करने की इच्छा से कामदेव, वसंत ऋतु, दश अप्सराएँ, मंद सुगंध शीतल वायु को वहाँ भेजा। जैसे ही वे सब नर-नारायण के तपस्या करने के स्थान में पहुँचे वैसे ही वसंतऋतु ने एक बगीचा उत्तम-उत्तम फूल व फल लगा हुआ सब सामग्री भोगविलास समेत वहाँ प्रकट कर दिया और मंद सुगंध शीतल हवा चलकर उस बाग में अप्सराएँ नाचने लगीं। कामदेव कोकिलारूप से वृक्ष पर बैठकर काम बढ़ानेवाली बोली बोलने लगा। तब नरनारायण ने, जिनका मुखारविन्द सूर्य से अधिक चमकता था, जैसे ही आँख उठाकर उन लोगों की तरफ देखा वैसे ही कामदेव आदि मारे डर के सूख गये और मन में कहने लगे कि ऐसा न हो जो ये महापुरुष शाप देकर हमें भस्म कर दें। उनकी यह दशा देखकर त्रिभुवनपति अन्तर्यामी ने हँसकर कामदेवादि से कहा कि तुम लोग मत डरो, इसमें तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है, इन्द्र ने तुमको अपना राज्य छूटने के डर से यहाँ भेजा है, सो मैं इन्द्रलोक की कुछ चाह नहीं रखता। यह वचन सुनते ही कामदेव व वसंन्तऋतु आदि ने नर-नारायण के सामने हाथ जोड़कर विनय किया—हे वैकुण्ठनाथ! संसारी जीव कोई ऐसा नहीं है, जो हमारे फंदे में न आवे, पर हम लोग आपको जो आदि पुरुष का अवतार हैं, कुछ धोखा नहीं दे सके। जब तुम्हारा भजन व स्मरण करनेवाले अपने बल से हमारे शिर पर लात धरकर सीधे वैकुण्ठ को चले जाते हैं तब आप पर किसका वश चल सकता है। संसार में बहुत मनुष्य भूख-प्यास और कामदेव को अपने वश रखकर संसारी सुख की चाह नहीं करते, पर क्रोध ऐसा बलवान् है कि उसके अधीन होकर वे लोग भी अपने शुभकर्म व तपस्या का फल क्षणभर में खो

देते हैं। आप में क्रोध का प्रवेश नहीं हो सकता। तुम्हारी भक्ति व प्रीति करनेवाले भी काम व क्रोध के वश नहीं होते इसलिए आपको हम लोग हजारों दण्डवत् करते हैं। यह वचन सुनते ही नरनारायण ने उसी समय अपनी माया से हजार सुंदरी स्त्रियाँ जिनके सामने रम्भा आदि अप्सराएँ कुछ वस्तु नहीं हैं, कोसों तक उनके अंग की सुगंध उड़ती थी, प्रकट कर दिया, और वे सब लक्ष्मीपति की सेवा करने के लिए हाथ जोड़कर चारों तरफ खड़ी हो गईं। उनका रूप देखते ही कामदेवादिक लज्जित होकर अपना-अपना अभिमान भूल गये और उन स्त्रियों पर मोहित होकर आपस में कहने लगे कि हम लोगों ने ऐसी रूपवती स्त्रियाँ कभी इन्द्रलोक में भी नहीं देखी थीं। यह सुनकर त्रिभुवनपति के कामदेवादिक से कहा कि तुम लोग इन सब स्त्रियों को इंद्रपुरी में ले जावो। काम देव ने विनय किया—महाराज! इनको इसी जगह रहने दीजिए, वहाँ ले जाने से सब देवता आपस में लड़कर मर जायँगे। यह बात सुनकर नरनारायण ने कहा कि इन सबमें तुम्हारे निकट जो कुरूप हो उसे ले जावो। जब कामदेवादिक उर्वशी नामक को नरनारायण की आज्ञानुसार अपने साथ लेकर वहाँ से विदा हुए और उन्होंने इन्द्रलोक में पहुँचकर नरनारायण की सब महिमा कही तब इन्द्र उन्हें पूर्णब्रह्म जानकर उनकी स्तुति करने लगे। उर्वशी का रंग व रूप देखते ही अति प्रसन्न होकर उसे सब अप्सराओं का मालिक बनाया। फिर हंसरूपी पक्षी का अवतार लेकर सनत्कुमार को उत्तर दिया। हयग्रीव अवतार धरकर मधुकैटभ दैत्य का वध किया और पाताल से वेद लाकर ब्रह्मा को दिया। मत्स्य अवतार लेकर राजा सत्यव्रत को ज्ञान सिखलाया। कच्छप अवतार धरकर मन्दराचल पहाड़ अपनी पीठ पर उठाया। मोहनी अवतार लेकर देवताओं को अमृत पिलाया। वाराह अवतार धरकर पृथ्वी को पाताल से निकाल लाये। वामन अवतार होकर राजा बलि से पृथ्वी दान ली। कपिलदेव अवतार धरकर अपनी माता देवहूती को सांख्योग ज्ञान उपदेश किया। परशुराम अवतार होकर सहस्रबाहु आदिक अनेक क्षत्रियों का वध किया। रामचन्द्र का अवतार धरकर लंकापति रावण को मारा। नृसिंह अवतार होकर प्रह्लाद भक्त की

रक्षा की। श्रीकृष्ण अवतार धरकर कंसादिक राजाओं और अनेक दैत्यों को मार डाला और कौरवों व पांडवों से महाभारत कराके पृथ्वी का भार उतारा। बौद्ध अवतार धरकर दैत्यों को यज्ञ करने से बरजा। जब कलियुग के अन्त में कुछ धर्म नहीं रहेगा तब कलंकी अवतार लेकर सत्ययुग का धर्म व कर्म चलावेंगे। इन अवतारों में जिस पर मन चाहे उसी स्वरूप का पूजन व ध्यान करने से मनोकामना मिलकर अन्त समय मुक्ति होती है।

पाँचवाँ अध्याय।

आठवें व नवें योगीश्वरों का ज्ञान कहना।

राजा जनक ने इतनी कथा सुनकर पूछा—महाराज! जो लोग परमेश्वर के स्मरण व ध्यान से विमुख रहते हैं उनकी मरने के उपरान्त क्या दशा होती है? चमस नामक आठवें योगीश्वर ने कहा—हे राजन्! चौरासी लाख जीव जड़ व चैतन्य नारायणजी की इच्छा से उत्पन्न होकर मरने के उपरान्त सबका जीवात्मा फिर परमेश्वर के रूप में मिल जाता है। सब जीवों का पालन करने व सुख देनेवाले वही आदिपुरुष भगवान् हैं। जो कोई उनको तीनों लोकों का उत्पन्न, पालन व नाश करनेवाला जानकर दिन-रात उनके स्मरण व ध्यान में लीन रहकर कहता है कि हे वैकुण्ठनाथ! महादेव व ब्रह्मादिक देवता तुम्हारे भजन व स्मरण के प्रताप से जो कुछ आशीर्वाद व शाप किसी को देते हैं, वह बात सच होकर हरिभक्तों का सब दुःख आपकी दया से छूट जाता है, इसलिए संसाररूपी समुद्र पार उतरने के लिए तुम्हारे चरणों का ध्यान जहाज के समान समझना चाहिए। हे राजन्! इस तरह का ज्ञान व ध्यान रखनेवाले मनुष्य मुक्तिपदवी पर पहुँचते हैं। जो लोग मनुष्यतनु पाकर चारों वर्ण व चारों आश्रम में परमेश्वर का भजन व स्मरण नहीं करते, हरिकथा सुनने में प्रीति न रखकर संसारी माया में फँसे रहते हैं, अधर्म की कमाई से अपने कुटुम्ब व शरीर का पालन करके परमेश्वर का चमत्कार सब जीवों में बराबर नहीं समझते, बिना प्रयोजन दूसरों के साथ शत्रुता करते हैं, परस्त्री व धन लेने की इच्छा रखकर जीवहिंसा करते

हैं, उनका कभी कल्याण नहीं होता । वे मनुष्य बहुत दिनों तक नरक भोगने के उपरान्त चौरासी लाख योनि में जन्म पाकर अनेक तरह का दुःख पाते हैं । जो मनुष्य अपने उत्पन्न व पालन व नाश करनेवाले को नहीं मानता उसे अधर्मी समझना चाहिए । जिस तरह मल व मूत्र पेट से विलग होकर अशुद्ध हो जाता है उसी तरह परमेश्वर से विमुख रहनेवाले मनुष्य स्थानभ्रष्ट होकर नरक में जाते हैं । जो ब्राह्मण अपने लाभ के लिए दूसरों को वशीकरण, मारण व उच्चाटन बतलाकर मुक्त होने की राह नहीं सिखलाते उनको पाखण्डी व अधर्मी समझना उचित है । जो लोग सन्त, महात्मा व हरिभक्तों को तुच्छ जानकर सब जीवों में परमेश्वर का रूप बराबर नहीं देखते और वेदानुसार राह न चलकर केवल अपना स्वार्थ समझते हैं और धन पाकर धर्म नहीं करते उन्हें अभागी व पापी समझना चाहिए । धर्म करने से ज्ञान प्राप्त होकर तृष्णा छूट जाती है । विरक्त होने से मुक्तिपदवी पाते हैं । देखो, जब मरते समय अपना शरीर, स्त्री, पुत्र, सेवक आदि कोई रक्षा नहीं कर सकता तब उनके प्रेम में फँसकर नष्ट होना वृथा है । जिस तरह मनुष्य अपना शरीर पुष्ट करने के लिए पशु-पक्षी आदि मारकर खाता है उसी तरह दूसरे जन्म में वह पशु-पक्षी उसे मारकर अपना बदला लेते हैं । मदिरा पीने और साधु, ब्राह्मण व परमेश्वर से विमुख रहनेवालों को यमदूत बरजोरी नरक में डालकर बड़ा दुःख देते हैं । इतनी कथा सुनकर राजा जनक ने पूछा—महाराज ! सब युगों में आदिपुरुष भगवान् का अवतार किस तरह हुआ था ? करभाजन नामक नवें योगीश्वर ने कहा कि सतयुग में परमेश्वर का अवतार चतुर्भुजी और चन्द्रमा के समान श्वेत हुआ था । सत-युग में सब मनुष्य धर्मात्मा, सच्चे और हरिभक्त थे । धर्म के चारों पैर बने रहकर अन्त समय सबको वैकुण्ठधाम मिलता था । त्रेतायुग में परमेश्वर का अवतार अग्निरूपी लाल हुआ था और अपना भेष ब्रह्मचारी के समान रखते थे । धर्म के तीन पाँव रहकर वासुदेव नाम का चर्चा रहता था । द्वापरयुग में नारायणजी का अवतार श्यामरंग नीलमणि के समान चमकता था । धर्म के दो पाँव थे । जड़ाऊ मुकुट शिर पर रखकर परमेश्वर

की पूजा होती थी। कलियुग में लक्ष्मीपति का अवतार श्यामरंग सूर्य के समान चमकता होगा। धर्म का एक चरण रह जाता है। कलियुग के मनुष्य निर्धन रहते हैं। धनपात्र भी सूम होकर जैसा चाहिए वैसा दान व धर्म नहीं करते। इसलिए कलियुग में मनुष्य केवल परमेश्वर का नाम जपने, हरिचरणों में ध्यान लगाने और उनकी कथा व लीला सुनने से भवसागर पार उतर जाते हैं। परमेश्वर की शरण में जानेवाले किसी देवता का डर न रखकर देवऋण पितृऋण ऋषिऋण से उऋण हो जाते हैं। हरिभक्तों पर परमेश्वर की छाया रहने में कोई उनको कुछ दुःख दे नहीं सकता। नारायणजी अपने भक्तों पर दयालु होकर उनको कुकर्म करने से बचाये रहते हैं। हे राजन्! कलियुग में जो कोई नित्य यह श्लोक पढ़कर परमेश्वर की दण्डवत् करेगा उसे नारायणजी वांछित फल देकर अन्त समय उसका उद्धार करेंगे। उस श्लोक का अर्थ यह है—हे श्रीनारायणजी महाराज! मैं तुम्हारे कमलरूपी चरणों का ध्यान, जो फूल से भी अधिक कोमल हैं, हृदय में रखता हूँ। तुम्हारे चरण छोड़कर दूसरा कोई ध्यान करने योग्य नहीं है। जो कोई उन चरणों का स्मरण करता है वह भाग्यवान् होता है। उसको किसी देवता, दैत्य, मनुष्य और पशु आदि का कुछ भय नहीं रहता। तुम्हारे चरणों का ध्यान करने के प्रताप से मेरा मन काम क्रोध लोभ मोह में, जो कि अधर्म की जड़ हैं, नहीं फँसता। जिस समय तुम्हारे कमलरूपी चरणों का स्मरण व ध्यान करता हूँ उस समय मेरे सब मनोरथ पूर्ण होकर कोई इच्छा नहीं रहती। गंगा, यमुना, नर्मदा, सरस्वती आदि सब तीर्थ आपके चरणों में रहते हैं। तुम्हारे चरण अपने भक्तों के सब दुःख दूर कर देते हैं। मैं आपको तीनों लोकों का उत्पन्न, पालन व नाश करनेवाला जानकर दण्डवत् करता हूँ। यह सुनाकर नवें योगीश्वर ने कहा—हे राजन्! सतयुग में दश हजार वर्ष तप करने से परमेश्वर प्रसन्न होते थे। त्रेता में हजार वर्ष तप करने से मनुष्य फल पाता था। द्वापर में सौ वर्ष पूजा व ध्यान करने से मनुष्य का मनोरथ पूर्ण होता था। कलियुग में यदि एक दिन-रात मनुष्य परमेश्वर को सच्चे मन से एकाग्रचित्त होकर स्मरण व ध्यान करे तो नारायणजी प्रसन्न होकर

उसकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं। इसलिए तप व जप करनेवाले योगियों और मुनियों की यह इच्छा रहती है कि एक बेर हमारा जन्म भी कलियुग में भरतखण्ड में होता तो थोड़ा परिश्रम करने में परमेश्वर का दर्शन पाते। हे राजन्! हमको इस बात का बड़ा पछितावा है कि कलियुग के मनुष्य ऐसे सहज में मिलनेवाले परमेश्वर का स्मरण नहीं करते। वैकुण्ठनाथ ने गीता में अपने मुखारविन्द से कहा है कि जो कोई अपने को मनसा वाचा कर्मणा मुझे सौंप दे उसको संसार में किसी तरह का दुःख व भय नहीं होता। इतनी कथा सुनाकर नारद मुनि ने कहा—हे वसुदेव! जब योगीश्वर ने यह सब ज्ञान राजा जनक से कहा तब राजा ने विधिपूर्वक उन योगीश्वरों की पूजा व परिक्रमा करके विदा किया और अपने मन से राज्य, परिवार और धन की प्रीति छोड़कर उसी ज्ञान के प्रताप से सदेह वैकुण्ठ में गया। तुम भी इसी ज्ञान पर विश्वास रखकर हरिचरणों का ध्यान करो, तुम्हारी मुक्ति हो जावेगी। हे वसुदेव! जब वैकुण्ठनाथ ने तुम्हारे घर पुत्र होकर अवतार लिया और तुम अपने प्राण से अधिक उनको चाहते हो तो तुम्हारे भवसागर पार उतरने में क्या सन्देह है। पर उनको अपना बेटा जानना छोड़कर आदिपुरुष भगवान् समझो। उन्होंने केवल पृथ्वी का भार उतारने और हरिभक्तों को सुख देने के लिए संसार में अवतार लिया है। मैं उन्हीं का दर्शन करने के लिए सदा यहाँ आता हूँ। जब यह ज्ञान नारद मुनि से सुनकर वसुदेव व देवकी को विश्वास हुआ कि श्रीकृष्णजी परब्रह्म परमेश्वर का अवतार हैं तब दोनों मनुष्य उनके चरणों पर गिर पड़े और पुत्र भाव छोड़कर परमेश्वर के समान उनको समझने लगे। नारदमुनि वैकुण्ठनाथ से विदा होकर ब्रह्मलोक को चले गये। शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! जो कोई इस अध्याय को विधिपूर्वक कहे व सुनेगा वह सब पापों से छूटकर मुक्ति पदवी पर पहुँचेगा।

छठा अध्याय।

ब्रह्मादिक देवताओं का श्रीकृष्णजी के पास आना।

शुकदेजी ने कहा—हे परीक्षित! नारद मुनि के जाने के उपरान्त एक दिन श्रीकृष्णजी सुधर्मा सभा में बैठे थे। उस समय ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र,

कुबेर, वरुण, दक्षप्रजापति आदि देवता व ऋषीश्वर श्यामसुन्दर सगुणरूप का दर्शन करने के लिए आकाशमार्ग से द्वारका में आये और नन्दन बाग के फूल उन पर बरसाये। दण्डवत् करके हाथ जोड़कर श्रीकृष्णजी से विनय किया—हे महाप्रभु! जिन चरणों का ध्यान बड़े-बड़े योगी व ऋषीश्वर आठों पहर अपने हृदय में रखकर मुक्तिपदवी पाते हैं उन्हीं तीर्थरूपी चरणों का दर्शन करने के लिए हम लोग आकर भवसागर पार उतरना चाहते हैं। हे निर्गुण निराकार! आप सब जगत् के उत्पन्न व पालन व नाश करनेवाले हैं। संसारी लोग यज्ञ, तप, ध्यान और तीर्थ करने पर भी हरिचरणों की भक्ति किये बिना संसार व परलोक का सुख नहीं पाते। जब तक तुम्हारी दया से पूर्वजन्म का पुण्य सहाय नहीं होता तब तक तुम्हारे चरणों में प्रीति न होकर हरिकथा में चित्त नहीं लगता। हम लोगों के विनय करने से आपने मर्त्यलोक में सगुण अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारा, एक सौ पचीस वर्ष संसार में रहकर साधु व वैष्णवों को सुख दिया, अधर्मी व दुखदायी राजाओं को मारकर धर्म की रक्षा की। हे त्रिभुवनपति! अब दुर्वासा ऋषीश्वर के शाप से छप्पन करोड़ यदुवंशी इस तरह जल रहे हैं जिस तरह वृक्ष सूखकर भीतर से खोखला हो जाता है। आप सब जीवों के मालिक हैं, जैसा उचित हो वैसा कीजिए। यह सुनकर श्यामसुन्दर बोले—हे ब्रह्मा! मैंने तुम्हारी इच्छा जान ली। कंस, जरासन्ध, कालयमन आदि अधर्मी राजाओं और दैत्यों को मारकर कौरवों व पाण्डवों से महाभारत कराके पृथ्वी का भार उतार चुका हूँ, केवल यदुवंशियों का नाश करना और रह गया है, सो थोड़े दिनों में उनका भी नाश कराके वैकुण्ठ में आ पहुँचता हूँ। तुम लोग अपने-अपने स्थान पर चलो यह सुनकर ब्रह्मादिक देवता उनसे विदा होकर अपने-अपने लोक को चले गये। त्रिभुवनपति ने गोलोक को जाने का विचार करके एक दिन राजा उग्रसेन की सभा में यदुवंशियों से कहा कि इन दिनों ब्राह्मण के शाप देने से द्वारकापुरी में नित्य नये-नये अशकुन होते जाते हैं, इसलिए सब लोगों को प्रभासक्षेत्र में चलकर वहाँ स्नान, दान, यज्ञ और होम करके यह दोष छुड़ाना चाहिए। जिस तरह समुद्र में रहने

से चन्द्रमा का क्षयीरोग छूट गया था उसी तरह प्रभासक्षेत्र में नहाने व दान करने से तुम्हारा दोष भी छूट जायगा। जब राजा उग्रसेन आदि सब यदुवंशी श्यामसुन्दर की आज्ञानुसार प्रभासक्षेत्र में जाने की तैयारी करने लगे तब उद्धव भक्त ने, जो लड़कपन से उनका मित्र व सेवक था, दण्डवत् व परिक्रमा करने के उपरान्त आँखों में आँसू भरकर त्रिभुवन-पति से विनय किया—हे महाप्रभु! यदुवंशियों को प्रभासक्षेत्र में ले जाने से मैं जानता हूँ कि आप उनका वहाँ नाश कराके वैकुण्ठ को पधारेंगे, नहीं तो तुम्हारे तीर्थरूपी चरणों का ध्यान करने से हजारों शाप छूट जाते हैं, उनको वहाँ भेजने का क्या प्रयोजन है। जिस तरह बालापन से मैं आज तक तुम्हारी सेवा में रहा उसी तरह मुझे अपने चरणों से विलग न करके साथ ले चलो और ऐसा वरदान दो कि जिस किसी योनि में मेरा जन्म हो, तुम्हारे कमलरूपी चरणों की भक्ति व प्रीति मेरे हृदय में बनी रहे।

सातवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का उद्धव से ज्ञान कहना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जब उद्धव ने श्यामसुन्दर के साथ चलने के लिए बहुत विनती की तब जगत्पाल ने उसे अपना भक्त व मित्र जानकर कहा—हे उद्धव! सच है, यदुवंशी लोग दुर्वासा ऋषीश्वर के शाप से जल रहे हैं, आज के सातवें दिन सब यदुवंशियों का नाश होकर द्वारका समुद्र में डूब जायगी। ब्रह्मादिक देवता मुझे बुलाने आये थे, इसलिए मैं भी योगाभ्यास के साथ अपना तनु त्यागकर वैकुंठ को चला जाऊँगा। तुमको भी उचित है कि पहिले से विरक्त होकर मेरे चरणों में ध्यान लगावो। मैंने दुर्वासा के शाप से तुम्हें छुड़ा दिया। हे उद्धव! मेरे जाने के उपरान्त संसार से धर्म उठ जायगा। यह वचन सुनते ही उद्धव रोकर बोला—हे त्रिभुवनपति! मैंने बिना ज्ञान पाये संसारी मोह छोड़ दिया तो विरक्त होने से क्या लाभ होगा, इसलिए दयालु होकर ऐसा ज्ञान उपदेश कीजिए जो मरते समय तक न भूले।

यह सुनकर द्वारकानाथ ने कहा—हे उद्धव! संसार में जो तुम देखते व सुनते हो सबको झूठा व्यवहार समझकर अपना मन हमारे चरणों में लगावो। जब तुम नाश होनेवाली संसारी वस्तुओं से प्रेम तोड़-कर मेरे अविनाशी रूप का ध्यान सच्चे मन से करोगे तब तुम्हें मेरी माया नहीं व्यापेगी और तुम मुझे आठों पहर अपने पास देखोगे। जिस तरह पौशाले पर अनेक मनुष्य इकट्ठे होकर पानी पीने के उपरान्त विलग-विलग हो जाते हैं उसी तरह माता, पिता, स्त्री, पुत्र थोड़े दिन साथ रहकर अन्त समय चार पग भी मरनेवाले के साथ नहीं जाते। अपने स्वार्थ व जगत् को दिखलाने के लिए चार दिन रो लेते हैं, इसलिए उनका प्रेम स्वप्न के समान झूठा समझना चाहिए। केवल ज्ञान, वैराग्य, पाप, पुण्य अपने साथ जाता है, उसी से दुःख व सुख प्राप्त होता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपना मरना आठों पहर याद रखकर कुकर्मों से डरता रहे। सब जड़ व चैतन्य में मेरा प्रकाश बराबर समझ-कर किसी जीव को दुःख न दे। जिस तरह दिन-रात बदला करते हैं उसी तरह संसार में उत्पन्न होने व मरने की गति है। यह बात कोई नहीं जानता कि मरने के उपरांत किस योनि में हमारा जन्म होगा। यह ज्ञान सुनकर उद्धव ने विनय किया—हे वैकुण्ठनाथ अन्तर्यामी! स्त्री व पुत्र का मोह छोड़कर विरक्त होना बहुत कठिन है। मुझ अज्ञान पर दयालु होकर कोई ऐसा सहज उपाय बतलाइए जिसमें संसारी माया छूटकर तुम्हारे चरणों में भक्ति उत्पन्न हो। मुझे ज्ञानरूपी नौका पर बैठाकर भवसागर पार उतार दीजिए। यह सुनकर श्यामसुन्दर बोले—हे उद्धव! जिस तरह हवा किसी वस्तु से मिलावट न रखकर विलग रहती है उसी तरह तुम भी सब भली व बुरी वस्तु को इस शरीर से अलग समझकर संसारी माया छोड़ दो। देखो, जैसे चन्द्रमा की कला नित्य घटती-बढ़ती है वैसे ही यह शरीर बालापन, तरुणाई और बुढ़ापा भोगकर सदा एक तरह पर नहीं रहता। जिस तरह सूर्यदेवता अपना प्रकाश पृथ्वी, पहाड़ और पानी पर बराबर रखकर किसी के साथ कुछ प्रेम नहीं रखते उसी तरह तुम भी सबकी प्रीति छोड़कर अपना मन विरक्त कर लो। जैसे कबूतर व कबूतरी अपने

बच्चों की प्रीति में फँसकर नष्ट हुए थे वैसे ही संसारी लोग भी स्त्री-पुत्र का प्रेम रखने से दुःख उठाते हैं। यह सुनकर उद्धव ने विनय किया—महाराज ! उन दोनों पक्षियों की कथा विस्तारपूर्वक कहिए। केशवमूर्ति ने कहा—हे उद्धव ! एक कबूतर अपनी मादी व बच्चों समेत वृक्ष पर रहता था। जिस तरह राजा इन्द्र इन्द्राणी से विलास करता है उसी तरह वह भी अपनी मादी से खोते में भोग करके सुख उठाता था। जब एक दिन वह कबूतर अपने बच्चे अकेले छोड़कर मादी समेत चारा लेने चला गया तब बहेलिये ने वहाँ आकर उन बच्चों को जाल में फँसा लिया। जब वह कबूतर व कबूतरी बच्चों का यह हाल देखकर प्रेमवश आप भी उस जाल में कूद पड़े तब वह बहेलिया सबको फँसाकर अपने घर ले गया। देखो, जिस तरह उन दोनों ने बच्चों की प्रीति से जाल में कूदकर अपने प्राण दिया और बच्चों ने उनकी कुछ सहायता नहीं की उसी तरह संसारी लोग स्त्री-पुत्र के मोह में फँसकर नरक भोगते हैं तब वहाँ कोई उनकी सहायता नहीं करता। उन लोगों के लिए, जो दुःख में कुछ काम नहीं आते, दुःख उठाना व अपना परलोक बिगाड़ना उचित नहीं है। हे उद्धव ! पिछले युग में यदु नाम का राजा ज्ञान सीखने की अभिलाषा से अनेक योगियों और ऋषीश्वरों के पास जाया करता था। एक दिन उसी चाह में गोदावरी के किनारे चला गया। वहाँ अति तेजवान् दत्तात्रेय नामक ब्राह्मण को बैठे देखकर सुखपाल से उतर पड़ा व दण्डवत् व परिक्रमा करने के उपरान्त हाथ जोड़कर विनय किया—हे ईश्वर को पहुँचे हुए महात्मा पुरुष ! इस तरुणाई में इतनी पदवी तुमने कहाँ से पाई। तुम्हारा तेज देखने से मालूम होता है कि आप बड़े ज्ञानी होकर अपने गुण को छिपाये हैं। संसार में रहने पर भी कुछ वस्तु अपने पास न रखकर इस तरह संसार से विरक्त दिखलाई देते हैं जिस तरह कमल का फूल पानी में उत्पन्न होकर जल से विलग रहता है। संसारी मनुष्यों को देखता हूँ कि काम क्रोध मोह लोभ की अग्नि में जलकर एक क्षण सुख से नहीं रहते। आप इस तरह आनन्दमूर्ति दिखलाई देते हैं जिस तरह हाथी ज्येष्ठ महीने की धूप का मारा हुआ जल में जाकर ठण्ढा व मग्न हो जाता है। इसलिए तुमसे

विनय करता हूँ कि जो कुछ ज्ञान व परमेश्वर की महिमा आपको मालूम हो, सो दयालु होकर मुझे बतलाइए। यह वचन सुनते ही दत्तात्रेय ने उसकी ओर देखा और हँसकर कहा—हे राजन्! मैंने चौबीस गुरु अपने समझकर जो कुछ ज्ञान उनसे सीखा है वह कहता हूँ, सुनो। पचीसवाँ गुरु मेरा यह शरीर है। जब मैंने अपने शरीर को विचारकर देखा तब मालूम हुआ कि इस तनु में मल, मूत्र, रक्त, मांस अशुद्ध वस्तुएँ भरी हैं। परमेश्वर का नाम लेने और शुभ कर्म करने के सिवा दूसरी वस्तु उत्तम नहीं है। संसारी माया में फँसकर क्यों अपना जन्म वृथा बिताऊँ। जब यह समझकर परमेश्वर का भजन व स्मरण करने के लिए अकेला अपने घर से बाहर निकला और बौरहों के समान चारों ओर फिरने लगा तब लड़कों ने मुझे बौरहा समझकर पीछे-पीछे फिरना, पत्थर मारना और गाली देना आरम्भ किया। जिसने मुझे गायत्री मंत्र का उपदेश किया था उसे चौबीस गुरुओं से बिलग समझना चाहिए। पहला गुरु मेरा पृथ्वी है, उससे मैंने तीन बातें सीखी हैं। मैंने एक पहाड़ को देखा कि धरती से ऊँचा रहकर अनगिनत मनुष्यों और पशु-पक्षी आदि जीवों को अपने ऊपर रहने देता है। आँधी चलने और पानी बरसने पर वह अपने स्थान से नहीं हिलता। तब मैंने विचारा कि ज्ञानी को भी संसारी माया व चाह में, जो हवा व पानी के समान है, फँसकर अपनी जगह से हिलना न चाहिए, क्योंकि मनुष्य का तनु, मुट्ठी भर मिट्टी का बना है, आयु हवा के समान बीती जाती है। वृक्षों को देखा तो पृथ्वी में उत्पन्न होकर अपनी छाया व फल व फूल से सब जीवों को सुख देते हैं और एक पैर से खड़े रहकर वर्षा, गर्मी व सर्दी का दुःख उठाने पर भी अपने स्थान से नहीं हिलते। एक दिन मैंने घर से निकलकर क्या देखा कि बहुत मनुष्य वृक्ष की छाया में बैठे थे। जब वहाँ से ठंढे होकर जाने लगे तब किसी ने उसकी डाली और किसी ने पत्ता व फल तोड़ लिया, पर वह वृक्ष कुछ नहीं बोला। यह हाल देखकर मैंने अपने मन में कहा कि ज्ञानी मनुष्यों को अपना तनु व धन परोपकार के लिए समझकर अपने प्राण तक देने में मुकरना न चाहिए, क्योंकि यह शरीर मिट्टी का पुतला सदा बनता

व बिगड़ता रहता है। इससे क्या उत्तम जो दूसरे के काम आवे। हमने पृथ्वी को देखा कि संसारी लोग उसकी छाती पर लात रखते हैं, पर वह किसी को भला व बुरा नहीं कहती। सो हमने विचारा कि ज्ञानी मनुष्य को भी किसी की स्तुति करने से प्रसन्न होना व दुर्वचन कहने से खेद मानना न चाहिए। दूसरा गुरु मेरा हवा है, मैंने हवा को सुगन्धित फूल व लहसुन आदि दुर्गन्ध दोनों में बहते हुए देखकर अपने मन में कहा कि ज्ञानी मनुष्य को भी, जो कुछ मीठा व कड़ुवा कर्मानुसार मिले, उसे खाकर आनन्दपूर्वक परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करना चाहिए। कुछ स्तुति व निन्दा उसकी न करे। तीसरा गुरु मेरा आकाश है। जिस तरह गूलर का फल भीतर से खोखला होकर उसमें छोटे-छोटे मच्छर भरे रहते हैं उसी तरह पृथ्वी व आकाश गोल होकर उसके भीतर सब जीव जड़ व चैतन्य वास करते हैं। सो हमने इस ब्रह्माण्ड में क्या देखा कि सूर्य का प्रकाश चाँदी, सोना और मिट्टी के पानी भरे हुए बर्तन में बराबर पड़ता है, उसको किसी से मिलावट व आश्रय नहीं रहता। बर्तन तोड़ने व पानी गिराने से वह प्रकाश फिर सूर्य में मिल जाता है। बर्तनों में छाया पड़ने से उनका तेज घट नहीं जाता। यह हाल देखकर हमने जाना कि परमात्मा पुरुष को, जिनकी शक्ति चौरासी लाख योनियों में रहती है, आकाश के प्रमाण समझना चाहिए। जीवों के मरने में उनकी कुछ हानि नहीं होती। वे अपने तेज से एक जगह प्रकाशित रहते हैं। उनकी शक्ति सब जीवों में रहने से उनका तेज कम नहीं हो जाता। चौथा मेरा गुरु पानी मोती के समान उज्ज्वल है। किसी जगह जो मैला दिखाई देता है, वह मिट्टी व राख आदि मिलने के कारण समझना चाहिए, नहीं तो वह उज्ज्वल व पवित्र होकर सब जगत् को शुद्ध कर देता है। उसे देखकर हमने समझा कि ज्ञानी को भी पानी के समान शुद्ध रहकर अपने पास बैठनेवालों को ज्ञान उपदेश करके पवित्र कर देना चाहिए, जिसमें सब छोटे-बड़े उसको अच्छा कहें। पाँचवाँ मेरा गुरु अग्नि है। जिसमें सब वस्तु डालने से जल जाती हैं, दूसरे दिन के लिए कुछ नहीं रहतीं। जो लोग अग्नि में यज्ञ व होम करते हैं उनका

पाप जलकर छूट जाता है उसी तरह ज्ञानी को भी चाहिए कि जो कुछ उसको मिले उसी दिन सब खर्च कर डाले, दूसरे दिन के लिए कुछ न रक्खे। जो कोई उसे खिला दे वह खाकर अपने आशीर्वाद से खिलाने वाले का पाप छुड़ा दे। छठा मेरा गुरु चन्द्रमा है। जिस तरह चन्द्रमा सदा एकरूप रहकर सूर्य के समीप व दूर होने से उसका तेज घटता व बढ़ता है उसी तरह संसार में जन्म लेना व मरना है। वह परमात्मा पुरुष जिसका प्रकाश चौरासी लाख योनि में रहता है सबसे विलग व सदा एकरस रहता है, इसलिए हमने अपना गुरु परमात्मा को भी समझा। सातवाँ गुरु सूर्य को मानकर उनसे दो वस्तुएँ मैंने पाईं। एक तो जिस तरह आठ महीने तक सूर्य देवता समुद्र व नदी आदि का पानी सुखाकर चार महीने वर्षाऋतु में वह पानी बरसा देते हैं उसी तरह ज्ञानी को चाहिए कि जो कुछ मिले उस वस्तु पर तृष्णा न रखकर किसी को दे डाले। दूसरे यह कि बहुत से बर्तन पानी भरकर धूप में धर दे तो सूर्य-रूपी परछाहीं उन सब बर्तनों में दिखलाई देती है, पर अनेक सूर्य दिखलाई देने से सूर्य देवता बहुत नहीं हो जाते। इसलिए मैंने जाना कि परमात्मा पुरुष एक होकर केवल उनकी छाया सब जीवों में रहती है। आठवाँ गुरु मेरा कपोत नाम पक्षी है। जब वह अपने बच्चों के लिए जाल में दाना चुगाने गया और बहेलिया उस जाल को उठाकर अपने घर चला आया तब हमने मन में कहा कि देखो जिस तरह यह पक्षी अपने बच्चों के लिए जाल में फँसकर नष्ट हुआ उसी तरह ज्ञानी मनुष्य संसारी प्रीति रखने से दुःख पावेगा। जितना कष्ट उस पक्षी ने एक दिन में उठाया उतना सुख हजार वर्ष में भी उसको प्राप्त नहीं होता। इसलिए मैं स्त्री व पुत्र का प्रेम छोड़कर अकेला बहुत प्रसन्न रहता हूँ।

आठवाँ अध्याय।

दत्तात्रेय का राजा यदु से ज्ञान कहना।

दत्तात्रेय ने कहा—हे राजन्! नवाँ गुरु मेरा अजदहा सर्प है। जब से उसने जन्म पाया तब से उसी जगह रहकर कहीं भोजन ढूढ़ने नहीं गया। जब

हरिणादिक पशु आकर अपना सींग उसके अंग में चुभाते थे तब वह एक दो को उठाकर निगल जाता था। इसी तरह नित्य विष्णु भगवान् उसका पालन करते थे और वह साँप किसी दिन भूखे रह जाने पर भी सन्तोष रखता था। उसे देखकर मैंने समझा कि ज्ञानी को भी गृहस्थों के द्वारे माँगने जाना अपनी पति खोना है। उसी दिन से मैं किसी के घर पर भोजन माँगने नहीं जाता। जो कुछ परमेश्वर बिना माँगे भेज देते हैं उसे खाकर प्रसन्न रहता हूँ और उत्तम मध्यम भोजन का स्वाद जिह्वा तक रहकर पेट में जाने से मल हो जाता है। दशवाँ मेरा गुरु समुद्र है। वर्षाऋतु में अनेक नदियों के मिलने से वह नहीं बढ़ता और गर्मी व जाड़े में भी नहीं सूखता। सदा एकरूप रहता है। उसके आदि अन्त को कोई नहीं देखता। उसे देखकर मैंने विचारा कि ज्ञानी को भी समुद्र की तरह निश्चिन्त रहना उचित है। लाभ व हानि होने से कुछ हर्ष व खेद न करना चाहिए। ग्यारहवाँ मेरा गुरु पतंग है। जिस तरह वह दीपक पर मोहित होकर उससे मिलने के लिए बेधड़क जल मरता है उसी तरह संसारी जीव अपनी स्त्री, पुत्र और धन के मोह में फँसकर अन्त समय नरक भोगते हैं। इसलिए ज्ञानी को स्त्री से प्रीति न रखकर पतंग के समान परमेश्वर से प्रेम करके अपना प्राण देना चाहिए, जिसमें मुक्ति पदार्थ मिले। जब स्त्री से प्रीति करने में दोनों पंख ज्ञान व वैराग्य के जल जाते हैं तब वह पंगुल हो जाने से वैकुण्ठ में नहीं पहुँच सकता, नरक में पड़कर अनेक तरह का दुःख भोगता है। इसलिए मायारूपी स्त्री से अलग रहकर कभी उसके पास अकेले में बैठना न चाहिए। स्त्री व धन से सुख चाहनेवाले लोग पतंग के समान जलकर नष्ट हो जाते हैं। स्त्री के पास बैठने में ज्ञानी मनुष्य ऐसे अन्धे व बहिरे हो जाते हैं कि उनको अपना भला व बुरा न सूझकर किसी की लज्जा नहीं रहती। यही बात समझकर मैंने स्त्री की संगति छोड़ दी। बारहवाँ मेरा गुरु शहद की मक्खी है। एक बेर मैंने क्या देखा कि उसने बड़े परिश्रम से जो शहद छत्ते में इकट्ठा किया और कृपणता से आप उसे न खाकर किसी दूसरे को भी नहीं दिया था। वह शहद एक मुसहर सब मक्खियों को जलाकर छत्ते से निकाल ले गया। वह हाल देखकर मैंने

विचार किया कि द्रव्य बटोरनेवालों की यही दशा होती है । उस दिन से दूसरे रोज के वास्ते कुछ न रखकर सब खर्च कर डालता हूँ । ज्ञानी मनुष्य को अपने भोजन प्रमाण माँगकर अधिक लेना न चाहिए। धन बटोरने से मक्खियों की तरह दुःख प्राप्त होता है । तेरहवाँ मेरा गुरु हाथी है । मैंने देखा कि हाथी फाँसनेवालों ने वन में गड़हा खोदकर उसको सरहरी से पाटा और काले कागज का हाथी व हथिनी बनाकर उस पर खड़ा कर दिया । जब एक जंगली हाथी उसे सच्ची हथिनी समझकर कामवश वहीं दौड़ता हुआ जाकर गड़हे में गिर पड़ा तब हाथी फाँसनेवालों ने रस्सा से बाँधकर उसको पकड़ लिया । यह दशा हाथी की देखकर मैंने विचार किया कि ज्ञानी को स्त्री की चाह करना उचित नहीं है । कठपुतली से भी प्रीति रखना न चाहिए । जिस तरह हाथी ने हथिनी के लिए गड़हे में गिरकर दुःख उठाया था उसी तरह परस्त्रीगमन करनेवाले नरक में पड़कर बहुत कष्ट पाते हैं । चौदहवाँ मेरा गुरु मक्खी के छत्ते से शहद निकालनेवाला मधुहा है । जो शहद मक्खियाँ बहुत दिनों में इकट्ठा करती हैं उसको वह एक बेर में निकाल ले जाता है । उसे देखकर मैंने विचारा कि मक्खियाँ उस शहद को खा जातीं तो वह किस तरह लेने पाता । इकट्ठा करनेवालों को दुःख के सिवा कुछ सुख नहीं होता । इसलिए ज्ञानी को चाहिए कि जो गृहस्थ बहुत लड़के-बाले रखकर अपने यहाँ द्रव्य बटोरे हो उसके यहाँ से अपने प्रयोजन भर माँग लाकर भोजन कर ले । झोली बाँधकर ले चलने से राह में कोई छीन लेगा । पन्द्रहवाँ मेरा गुरु हरिण है । जिस तरह वह राग सुनने के लिए जाकर बाण लगने से घायल होता है उसी तरह संसारी मनुष्य मायारूपी स्त्री का गाना व वचन सुनकर उसके वश हो जाते हैं । इसलिए ज्ञानी को अपने स्थान से उठकर दूसरी जगह जाना व स्त्री का गाना सुनना उचित नहीं है । सोलहवाँ मेरा गुरु मछली है । जो कटिया में लगे हुए थोड़े से मांसादिक के लालच से अपने प्राण देती हैं । एक मछली को कटिया में फँसे हुए देखकर मैंने समझा कि ज्ञानी मनुष्य को भी उत्तम भोजन ढूँढ़ना उचित नहीं है, जो कुछ भला-बुरा परमेश्वर की

इच्छा से मिल जावे उसे खाकर पंचभूतात्मा और अपनी जिह्वा को वश में रक्खे जिसमें उसको बड़ाई मिले। सत्रहवाँ मेरा गुरु पिंगला नाम वेश्या है। एक दिन हमने राजा जनक के नगर में जाकर क्या देखा कि पिंगला वेश्या संध्या के समय सोलहों शृंगार करके किसी व्यसनी के आने की प्रतीक्षा में आधी रात तक अपने द्वारे पर बैठी रही, पर कोई उसका चाहनेवाला नहीं आया तब वह बहुत उदासी से अपने भीतर जाकर शय्या पर लेट रही, पर कामरूपी मद में उसको नींद न आकर ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ जैसा किसी को दसहजार वर्ष तक ध्यान करने से भी नहीं मिलता। उस वेश्या ने मन में विचारा कि बड़े सोच की बात है कि मैंने अपना जन्म वृथा खोकर त्रिभुवनपति जगत्पालक का स्मरण व ध्यान नहीं किया। सच्चे मित्र परमात्मा पुरुष का प्रेम छोड़कर संसारी मनुष्य झूठे चाहनेवालों से प्रीति लगाई। मेरे बराबर कोई दूसरा मूर्ख न होगा। जैसा मैंने अपने साथ किया वैसा कोई अन्धा भी नहीं करता। अपने मालिक को जो शरीर में वर्त्तमान है भूलकर नहीं देखा। जिस तरह यह शरीर हवा, पानी, मिट्टी, हड्डी, मांस से बनकर नसरूपी रस्सियों से बँधा है उसी तरह चरखा काठ का डोरा से बँधा रहकर घूमता है। जैसे मकान में अनेक द्वार रहते हैं वैसे ही शरीर में भी नवद्वार नाक-कान आदि हैं। हरएक द्वार से अशुद्ध वस्तु निकलती है। मैंने चाहा कि इस घर में प्रसन्न रहूँ। अब मैंने जाना कि इस झूठे संसार में दुःख के सिवा कुछ सुख प्राप्त नहीं होता। केवल परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करने और कथा सुनने से लोक व परलोक बनता है। जितना मैं रुपया लेने के लिए जो मरने के उपरांत काम नहीं आता, अपने व्यसनी को रिझाती थी, उतना शृंगार करके त्रिभुवनपति को लोभाती तो मेरा परलोक बन जाता। जो लोग मायारूपी रस्सी से बँधे रहकर अपने दुःख में आप व्याकुल हैं उनसे मूर्खता के कारण अपना सुख चाहकर संसारी बन्धन काटनेवाले ज्ञान व वैराग्य से प्रीति नहीं लगाई। आज मैंने संसारी माया छोड़कर यह प्रण किया कि आदिपुरुष भगवान् से, जो वैकुण्ठ का सुख देनेवाले हैं, प्रीति लगाकर उनके साथ विहार करूँ और संसारी मनुष्य की ओर

जो विपत्ति में काम नहीं आते आँख उठाकर न देखूँ। परमेश्वर के सिवा और किसी से कुछ वस्तु न माँगूँ। महात्मा लोगों ने ऐसा कहा है कि मनुष्य जिस वस्तु की इच्छा रखता हो, नारायणजी से माँगे और दूसरे किसी से कुछ इच्छा न करे। परमेश्वर सब वस्तु अपने यहाँ रखकर यह चाहते हैं कि कोई हमसे कुछ माँगे। संसारी मनुष्य ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो सबकी इच्छा पूर्ण कर सके। कदाचित् ऐसा कहूँ कि कोई व्यसनी न आने व द्रव्य न मिलने से यह ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ, सो इस तरह कई बेर मेरे स्थान पर व्यसनी नहीं आये और मुझे उपास हो गया था। न मालूम कौन जन्म का पुण्य सहाय होने से आज यह ज्ञान मेरे मन में आया। हे राजन्! वह वेश्या तीन पहर रात बीते तक ज्ञानभरी बातें विचार करती हुई शय्या पर सो रही। उसी दिन से अपना उद्यम छोड़ कर हरिचरणों का स्मरण व ध्यान करने लगी। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! यह सब ज्ञान उस वेश्या को दत्तात्रेय के दर्शन मिलने से प्राप्त हुआ था, पर वह यह बात नहीं जानती थी। दत्तात्रेय ने कहा—हे राजन्! पिंगला का यह हाल देखते ही मैं भी उसी दिन से संसारी माया छोड़कर परमेश्वर के ध्यान में मग्न रहता हूँ। संसारी वस्तु की चाह रखने से बड़ा दुःख होता है और तृष्णा छोड़ देने व हरिभजन करने से इस तरह सुख व मुक्ति पदार्थ मिलता है जिस तरह वह वेश्या अपने व्यसनी की प्रीति छोड़कर भवसागर पार उतर गई।

—:o:—

नवाँ अध्याय।

राजा यदु से दत्तात्रेय का ज्ञान कहना।

दत्तात्रेय ने कहा कि अठारहवाँ मेरा गुरु चील्ह है। एक दिन हमने देखा कि एक चील्ह मांस का टुकड़ा अपने चंगुल में लिए उड़ी जाती थी। जब दूसरी कई चील्हें टुकड़ा छीनने के लिए उसको चोंच व चंगुल से मारने लगीं तब उस चील्ह ने मन में कहा कि मुझे इन चील्हों से कुछ शत्रुता नहीं है, केवल मांस के टुकड़े के लिए यह सब मुझे मारती हैं। ऐसा समझकर जब उसने वह टुकड़ा गिरा दिया तब दूसरी चील्हें

जो मारती थीं, चली गईं और वह चील्ह आनन्द से एक वृक्ष पर बैठ रही। उसे देखकर हमने विचार किया कि धनादिक रखने से परिवारवाले व चोर व ठग मेरे साथ शत्रुता करेंगे, इसलिए कोई वस्तु अपने पास न रखकर आनन्दपूर्वक परमेश्वर का भजन करता रहूँ। उन्नीसवाँ मेरा गुरु अज्ञान बालक है। वह काम क्रोध मोह लोभ के वश न होकर इतना विरक्त रहता है कि वह हाथ में मणि लिए हो और कोई मनुष्य मेवा व मिठाई के बदले उससे वह रत्न माँगे तो दे डाले। खेलने के सिवा दूसरा उद्यम नहीं रखता। अपने घर-द्वार से कुछ प्रीति न रखकर ज्ञानियों की तरह विरक्त रहता है। उसको देखकर मैंने समझा कि ज्ञानी को भी निर्लोभ रहकर कुछ तृष्णा न रखनी चाहिए। संसार में दो मनुष्य एक अज्ञान बालक और दूसरा ब्रह्मज्ञानी प्रसन्न रहते हैं और सब लोग दुःख व सुख में फँसे रहते हैं। बीसवाँ मेरा गुरु कुमारी कन्या है। एक दिन मैंने गृहस्थ ब्राह्मण के घर भीख माँगने के लिए जाकर क्या देखा कि अकेली कुमारी कन्या वहाँ बैठी है और सब घरवाले कहीं बाहर गये थे उसी समय तीन मनुष्य दूसरे नगर से उसके विवाह का संदेशा लेकर वहाँ आये। उस बालिका ने सबको बड़े सम्मान से बैठाया और चावल न तैयार रहने से आप कोठरी में जाकर मेहमानों के लिए धान कूटने लगी। जब उस समय उसकी चूड़ियाँ बोलीं तब उसने विचारा कि ये लोग चूड़ियों का बोलना सुनकर कहेंगे कि इनके घर में एक दिन खाने के लिए भी चावल नहीं हैं। इस बात में लज्जा समझकर उसने दो-दो चूड़ी हाथ में रख लीं और सब चूड़ी एक-एक करके तोड़ डालीं। तिसपर भी उनका बोलना बन्द नहीं हुआ। जब उसने एक-एक और तोड़कर अकेली चूड़ी रहने दी तब चूड़ी का बोलना बन्द होने से धान कूटकर मेहमानों को भोजन खिलाया। यह हाल देखकर मैंने समझा कि बहुत लोगों की संगति करने से आपस में झगड़ा होता है। दो मनुष्य साथ रहने से भी अनेक वार्ता होकर हरिभजन नहीं बन पड़ता। इसलिए ज्ञानी को किसी से संगति व प्रीति करनी उचित नहीं है। अकेले हरिभजन करना चाहिए। इक्कीसवाँ गुरु मेरा तीर बनानेवाला है। एक दिन हमने बाजार में तीर बनानेवाले की दूकान पर खड़े होकर क्या

देखा कि वह तीर बना रहा था। उसी समय राजा की सवारि बड़े धूमधाम से उस दूकान के समाने होकर दूसरी ओर चली गई। थोड़ी देर उपरान्त राजा के एक नौकर ने, जो पीछे रह गया था, आकर तीर बनानेवाले से पूछा कि राजा की सवारी किधर गई है ? उसने उत्तर दिया कि मैंने राजा की सवारि नहीं देखी। यह बात सुनकर हमने तीर बनानेवाले से कहा कि अभी राजा की सवारी धूमधाम से तुम्हारे सामने से होकर चली गई है, क्यों झूठ बोलते हो। तब वह बोला कि हम तीर बनाने में लगे थे, इसलिए सवारि का कुछ ध्यान नहीं किया। उस समय हमने अपने मन से कहा कि तुझे भी सब इन्द्रियों को वश में रखकर इसी तरह नारायणजी का ध्यान करना चाहिए। बाईसवाँ गुरु मेरा साँप है, जो अपने रहने के लिए घर नहीं बनाता, चूहों के बिल में रह जाता है। उसे देखकर मैंने विचार किया कि ज्ञानी साधु को भी घर बनाना उचित नहीं है, जहाँ रात हो जावे वहीं अपना स्थान समझना चाहिए। तेईसवाँ मेरा गुरु मकड़ी है, जो सूत के समान तार अपने मुख से निकालकर फिर उसे खा जाती है। उसको देखकर मैंने विचार किया कि परमेश्वर को भी इसी तरह जानना चाहिए कि चौरासी लाख योनि उनसे उत्पन्न व पालन होकर अन्त समय सबका जीवात्मा उनके रूप में समा जाता है। इसलिए ज्ञानी को मनसा वाचा कर्मणा घट-घट व्यापक भगवान् के स्मरण व ध्यान में लीन रहना उचित है। चौबीसवाँ गुरु मेरा भृंगी कीड़ा है, जिसके डर से दूसरे कीड़े उसी का रूप हो जाते हैं। उसको देखकर मैंने कहा कि ज्ञानी को भी चाहिए कि परमेश्वर में इस तरह मन लगावे जिसमें उन्हीं का स्वरूप हो जावे। यह सब ज्ञान कहकर दत्तात्रेय बोले कि जो कुछ ज्ञान इन चौबीसों गुरुओं से हमने सीखा था वह तुमको सुना दिया। इस ज्ञान को तुम समझकर नारायणजी का स्मरण व ध्यान करो। तुम्हारी मुक्ति हो जावेगी। हे राजन्! चौरासी लाख योनि में बहुत दुःख उठाकर बड़ी कठिनता से मनुष्य का तनु मिलता है, इसलिए यह तनु पाकर संसारी माया मोह में फँसना उचित नहीं है। केवल परमेश्वर का तप व ध्यान करने के लिए मनुष्य का तनु मिलता है। इस चोले के

सिवा दूसरी योनि में परमेश्वर नहीं मिल सकते। जो कोई मनुष्यतनु पाकर हरिभजन नहीं करता वह फिर चौरासी लाख योनि में जन्म लेकर बड़ा दुःख पाता है। जब इस जीव ने मनुष्यतनु पाया तो ऐसा समझना चाहिए कि वह अपना एक पैर भवसागर पार उतरने की नौका पर रख चुका। जिसने इस शरीर में शुभ कर्म किया वह दूसरा पाँव भी उस नौका पर रखकर भवसागर पार उतर जाता है, नहीं तो उस नाव से चौरासी लाख योनि में गिरकर बहुत दुःख पावेगा। यह शरीर कभी दुबला रहता, कभी मोटा हो जाता है, इसलिए नाश होनेवाले तनु का कुछ मोह न करना चाहिए। जो लोग स्त्री, पुत्र, द्रव्य, हाथी, घोड़ा आदि को अपना जानकर यह समझते हैं कि अन्त समय यह सब मेरी सहायता करेंगे उनको अवश्य नरक भोगना पड़ता है। यह चंचल मन अपने वश नहीं रहता, इसे अवश्य अपने अधीन रखना चाहिए, नहीं तो जिस तरह छः चोरों ने एक रत्न चुराकर भाग न लगने से आपस में झगड़ा करके फाँसी पाई उसी तरह सब इन्द्रियाँ अपना-अपना सुख भोगने के लिए मन को अपनी ओर खींचकर उसे नरक में डाल देती हैं। अज्ञानी मनुष्य उनके वश होकर बहुत दुःख पाता है। जिस तरह संसार में कई स्त्री रखनेवाले नष्ट होते हैं उसी तरह चंचल मन नाक, जिह्वा, लिंगादिक इन्द्रियों के वश होकर दुःख पाता है। पहिले परमेश्वर ने पशु पक्षी वृक्षादिक उत्पन्न करने से सन्तुष्ट न होकर जब मनुष्य का तनु बनाया तब प्रसन्न होकर कहा कि इस शरीर में ज्ञान प्राप्त होने से जीवन्मुक्त पदवी पर पहुँचेगा। इसलिए मनुष्यतनु केवल भगवत् भजन करने के लिए है। मनुष्य को संसारी माया में न फँसना चाहिए। पेट भरना व भोग करना दूसरी योनि में भी प्राप्त हो सकता है। पहिले से भरा हुआ पानी आग बुझावने के काम आता है। आग लगने के समय कुआँ खोदकर पानी भरने से वह आग बुझ नहीं सकती। हे राजन्! मैं परमेश्वर का चमत्कार सब जीवों में बराबर समझकर प्रसन्न रहता हूँ। तुम्हें और सब संसारी जीवों को भी इस तनु में मुक्ति मिलने का उपाय करना उचित है, नहीं तो पीछे पछिताने के सिवा कुछ हाथ नहीं लगेगा।

हे उद्धव ! दत्तात्रेय यह सब ज्ञान राजा से कहकर तीर्थयात्रा करने चले गये और राजा यदु उसी ज्ञान के प्रताप से मुक्त पदवी पर पहुँचा। तुम भी वही ज्ञान मन में दृढ़ रखकर संसारी प्रीति छोड़ दो।

दसवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का उद्धव को ज्ञान सिखलाना।

श्रीकृष्णजी ने कहा—हे उद्धव ! संसारी मनुष्य को चाहिए कि अपने वर्ण व आश्रम का धर्म शास्त्रानुसार रखकर किसी वस्तु की चाह न करे। यज्ञ व श्राद्धादिक देवकर्म व पितृकर्म करके गुरु की सेवा में प्रीति रखकर गुरु का वचन सच्चा माने। जब तुम अपना मन संसारी माया से बटोरकर एकाग्र करोगे तब गुरु का उपदेश तुम्हारे हृदय में प्रवेश करेगा। देखो, यह शरीर शुभ व अशुभ कर्म करके अनेक जन्म पाता है, इसलिए मनुष्यतनु में आत्मा को शरीर से अलग समझकर संसारी सुख व व्यवहार को झूठा समझना चाहिए। हरिभक्ति किये बिना और आत्मा को अंग से विलग जाने बिना मुक्ति नहीं हो सकती। बालापन, तरुणाई, बुढ़ापा तीन अवस्था शरीर में होतीं हैं। आत्मा सदा एकरूप रहता है। मनुष्य अपने अज्ञान से दुःख मानकर सुख प्राप्त होने का उपाय नहीं करता। यज्ञ व तीर्थ आदि शुभ कर्म करने के फल से संसारी जीव देवलोक में जाकर सुख भोगते हैं और अवधि बीतने के उपरांत फिर मृत्युलोक में जन्म पाकर अधर्म करने के बदले नरक भोगना पड़ता है। जब तक मुक्ति प्राप्त नहीं होती तब तक वह जीव आवागमन में फँसा रहने से अनेक तरह के दुःख पाता है। भवसागर पार उतरने के लिए हरिभजन व सत्संग के सिवा दूसरा उपाय उत्तम नहीं होता। जो तुम कहते हो कि हमको अपने साथ ले चलो, जिसमें तुमसे विलग न हों, सो हे उद्धव ! ज्ञान प्राप्त होने से वियोग का दुःख नहीं होता। तुम संसार में इन जीवों को जो देखते हो, ब्रह्मा से लेकर चींटी तक, ये सब मृत्यु का ग्रास हैं। मैं जन्म व मरण से रहित होकर जब पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लेता हूँ तब मुझे भी निर्गुणरूप त्याग करना पड़ता है। इसलिए तुम्हें

चाहिए कि सदा अपना मन मेरे भजन व स्मरण में लगाये रहकर हरि-चरणों के ध्यान में लीन रहो तो वियोग का दुःख तुम्हारे हृदय में नहीं रहेगा। हे उद्धव! जो लोग ज्ञानी हैं वे इस शरीर को वृक्ष के समान जानकर उस पर दो पक्षी बैठे हुए समझते हैं। उनमें एक पक्षी थोड़ा भोजन करके अधिक सामर्थ्य रखता है उसे परमात्मा समझना चाहिए। वह काम, क्रोध, मोह और इन्द्रियों के सुख से कुछ प्रयोजन नहीं रखता। दूसरा पक्षी बहुत खाने पर भी निर्बल रहकर संसारी सुख में प्रसन्न रहता है उसे जीवात्मा समझना चाहिए। स्त्री, द्रव्य और सुख मिलने से प्रसन्न होता और उनके वियोग में दुःख पाता है। यह नहीं समझता कि हानि, लाभ, दुःख, सुख परमेश्वर की इच्छानुसार होता है, उसमें दूसरे का कुछ वश नहीं चलता। हे उद्धव! संसारी मनुष्य को भवसागर पार उतरने के लिए जो उपाय करना चाहिए, सो कहते हैं, सुनो। मन में किसी बात का अभिमान रखना, दुर्वचन कहना, दूसरे को धनपात्र देखकर डाह करना, बिना प्रयोजन अधिक बोलना, स्त्री, पुत्रों से बहुत प्रीति करना उचित नहीं है। परमात्मा को शरीर से अलग समझना न चाहिए। जिस तरह काठ में आग छिपी रहकर उपाय करने से प्रकट होती है और काठ जला देने से वह अग्नि उससे विलग होकर फिर उसके साथ नहीं रहती उसी तरह परमेश्वर का प्रकाश सब जीवों में रहकर जब वे अपनी शक्ति शरीर से खींच लेते हैं तब मर जाता है। वह लोथ जला देने से आत्मा को कुछ दुःख नहीं पहुँचता। परमात्मा का प्रकाश सब जीवों के तनु में एकसा देखने से कुछ डर नहीं होता, भेद समझने में अनेक तरह का भय लगा रहता है। इसलिए आत्मा को सब जगह बराबर जानकर संसारी माया से छूटने का आठों पहर उपाय करना चाहिए। हे उद्धव! इस तरह का ज्ञान रखनेवाला मनुष्य अवश्य मुक्त होता है।

—:o:—

ग्यारहवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का उद्धव को ज्ञान सिखलाना।

केशवमूर्ति ने कहा—हे उद्धव! संसार में दुःख व सुख माया के गुणों से होता है। मुझे वह माया नहीं व्याप सकती। जिस तरह स्वप्न में कोई

मनुष्य अनेक तरह के हर्ष व विषाद देखकर जागने पर सब झूठा समझता है उसी तरह संसारी व्यवहार झूठा होकर परमेश्वर की माया से सच मालूम होता है। जीवात्मा सबके तनु में मेरी शक्ति होकर जब तक वह जीव मुझे नहीं पहिचानता तब तक मुझसे विलग रहता है। मेरा भेद जाननेवाले इस तरह मेरे स्वरूप में लीन हो जाते हैं जिस तरह शीशे में अपनी परछाहीं दिखलाई देकर उसको उलटने से फिर वह रूप नहीं देख पड़ता। मूर्ख मनुष्य अपने को मुझसे विलग समझते हैं। ज्ञानी लोग गृहस्थाश्रम में रहने और सब जगत् का काम करने पर भी अपना मन विरक्त रखकर संसारी जाल में नहीं फँसते। ज्ञान व वैराग्य दोनों मुक्ति देनेवाले हैं। अज्ञानी मनुष्य को दुःख के सिवा कुछ सुख नहीं मिलता। परमेश्वर की शरण में जाने से ज्ञान प्राप्त होता है और उनसे विमुख रहनेवाले ज्ञान नहीं पाते। जिस तरह हवा सुगन्ध व दुर्गन्ध दोनों तरह की वस्तु में होकर बहती है, पर दोनों से विलग रहकर कुछ सुगन्ध व दुर्गन्ध का प्रवेश उसमें नहीं होता उसी तरह ज्ञानी को भी बड़ाई करने से प्रसन्न होना और दुर्वचन कहने से खेद मानना न चाहिए। जो लोग अपनी स्त्री, पुत्र, हाथी, घोड़ा आदि का रोग देखकर मेरी माया के वश सोच करते हैं उनको मूर्ख समझना चाहिए, क्योंकि उनके सोच करने से कुछ लाभ नहीं होता। सबको अपने कर्मानुसार दुःख व सुख मिलता है। इसलिए ज्ञानी को चाहिए कि हानि, लाभ, दुःख, सुख परमेश्वर की इच्छा पर जानकर अपने को किसी बात में अगुआ न समझे। जो कोई वेद व शास्त्र पढ़कर नारायणजी की भक्ति नहीं रखता उसका पढ़ना व्यर्थ है। बूढ़ी व बाँझ गाय का रखना व कर्कशा स्त्री व अधर्मी सन्तान का पालन करना धर्म है, क्योंकि उनसे कुछ प्राप्त नहीं होता। जो लोग धन पाकर दान व धर्म आदि शुभ कर्म में खर्च नहीं करते और उसको अपना समझकर रख छोड़ते हैं उस द्रव्य का होना न होना दोनों बराबर हैं। इसलिए ज्ञानी को धन पाकर यज्ञ, तीर्थ, दान व धर्म में खर्च करके उसका फल परमेश्वर को अर्पण कर देना चाहिए जिसमें लोक व परलोक दोनों बनें। इतना ज्ञान सुनकर उद्धव ने विनय किया—महाराज! आपने त्रिभुवन-

पति होकर केवल हरिभक्तों को भवसागर पार उतारने के लिए नरतनु धारण किया है, सो दयालु होकर मुक्ति होने का उपाय बतलाइए। यह वचन सुनकर वैकुण्ठनाथ ने कहा—हे उद्धव! जो गृहस्थ संसारी काम करने पर भी अपना मन मेरी तरफ लगाये रहे और मुझे अपना मालिक व उत्पन्न करनेवाला समझे। किसी का बुरा न चाहकर अधिक तृष्णा न रक्खे। अपने शरीर के समान मुझे प्यारा जानकर गुरु का बताया हुआ मंत्र जपे। हर्ष व शोक को बराबर समझकर काम, क्रोध, मोह, लोभ, भूख व प्यास के वश न होवे। हरिभक्ति के सिवा दूसरी चाह न रखकर ठाकुरपूजा व भजन में प्रीति करे। किसी के गाली देने से खेद न माने। मेरी शक्ति सब जीवों में बराबर समझे। अपनी सामर्थ्य भर परोपकार करके परमेश्वर की लीला व कथा सुनने में मग्न रहे। सगुणरूप मेरे स्मरण व ध्यान के सिवा दूसरा कुछ उद्यम न रक्खे। उत्तम देवस्थान बनवाकर ठाकुर को पुष्प चढ़ाने के लिए वाटिका लगवा देवे। जो कुछ धन घर में हो उसे परमेश्वर का जानकर अपना न कहे, जो कुछ अच्छी वस्तु भोजन के लिए मिले वह पहिले ठाकुर को भोग लगावे, फिर उसमें ब्राह्मण आदि चारों वर्णों और अपने परिवारवालों को थोड़ा-थोड़ा देने के उपरान्त आप खावे। प्रतिदिन सूर्य को दण्डवत् और अग्नि में होम करके ब्राह्मण को इच्छाभोजन करावे। अपनी सामर्थ्य भर दान व दक्षिणा दिया करे। गौ की सेवा करे। जल, पृथ्वी, आकाश आदि सब स्थानों में हमारा चतुर्भुजी स्वरूप ध्यान में देखे। प्रतिदिन देवताओं के नाम होम और पितरों के नाम तर्पण करे। तालाब, बावली, कुयें, धर्मशाला आदि जीवों के सुख पाने के लिए बनवा देवे। गरीब मनुष्यों और ब्राह्मणों को रहने के स्थान बनवा दे। उनकी कन्या विवाहने के लिए आप द्रव्य देवे। साधु महात्माओं की सुधि खाने व पहिनने की लेता रहे। इस बात का अभिमान मन में न लावे कि यह शुभकर्म हमने किया, दूसरे के सामने इसकी चर्चा और अपनी बड़ाई न करे। जो लोग शुभकर्म करके अपने मुख से कहते हैं, जिह्वा में अग्नि देवता का वास रहने से उनका पुण्य जल जाता है। हे उद्धव! इस तरह का धर्म व कर्म

रखनेवाले मनुष्य से मैं बहुत प्रसन्न रहता हूँ, पर बिना सत्संग किये यह सब ज्ञान प्राप्त नहीं होता। साधु-महात्मा की संगति करने और मेरा ध्यान धरने से मनुष्य ज्ञान पाकर भवसागर पार उतर जाता है।



बारहवाँ अध्याय ।

वैकुंठनाथ का उद्धव से सत्संग का माहात्म्य कहना ।

श्रीकृष्णजी ने कहा—हे उद्धव! मैंने यज्ञ, तप, दान, धर्म, वैराग्य आदि का हाल तुमको सुनाया, अब सत्संग की महिमा, जिससे भक्ति उत्पन्न होती है, कहता हूँ सुनो। जैसा मुझे सत्संग प्यारा है और भक्ति करने से जल्दी प्रसन्न होता हूँ वैसा वेद पढ़ने व योगाभ्यास साधने व व्रत आदि रखने-वालों से प्रसन्न नहीं होता। केवल सत्संग करने से मेरे चरणों में भक्ति उत्पन्न होकर संसारी जीव मुझे पहिचानते हैं और वे लोग जगत् में अपनी मनोकामना पाकर अन्त समय आवागमन से छूट जाते हैं। देखो, राजा बलि, बाणासुर, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवन्त, जटायु, कुब्जा और व्रजवासी आदि अनेक जीव मेरी भक्ति व दर्शन करने से भवसागर पार उतर गये। शबरी और निषाद आदि नीच-ऊँच जाति के अनेक जीव भक्ति करने से मुक्ति पदवी पर पहुँचे। गोपियों ने कुछ वेद व शास्त्र न पढ़ने, तीर्थ व्रत न करने और मेरी महिमा न जानने पर भी मुझे पतिभाव समझकर ऐसी प्रीति मेरे साथ की कि हमारे वियोग में उनको क्षण भर एक कल्प के समान मालूम होता है, मेरे संग रास करते समय छः महीने की रात एक पल-भर जान पड़ी थी, सो उन्होंने उसी प्रीति व भक्ति के प्रताप से लक्ष्मीरूप होकर वैकुण्ठवास पाया। जिस तरह कोई जान व अनजान में अमृत पीने से अमर होता है, उत्तम औषध खाने से सदा तरुण बना रहता है उसी तरह जाने व बिना जाने मेरी भक्ति व प्रीति करनेवाले मनुष्य संसार में सुख पाकर जन्म व मरण से छूट जाते हैं। जैसे तागे में काठ व रुद्राक्ष व सोने आदि के दाने पिरोकर माला बनती है उसी तरह संसारी जीव मेरे स्वरूप में रहते हैं, पर यह बात गुरु के बताये बिना व सुने बिना व कथा-सत्संग किये बिना मालूम नहीं होती, इसलिए संसारी मनुष्य को

गुरु की सेवा और भक्ति करके ज्ञानरूपी तलवार से मायारूपी संदेह काट-कर सब जीवों में परमेश्वर की शक्ति बराबर समझना चाहिए। यह सब ज्ञान सुनकर उद्धव ने विनय किया—हे दीनानाथ! जब भक्ति की इतनी बड़ी पदवी है तब आपने यज्ञ और तप आदि अनेक तरह के धर्म क्यों बनाये हैं? श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! यज्ञ, तप आदि कर्म करना भी उत्तम है, इससे हरिचरणों में भक्ति उत्पन्न होती है। जिसने भक्ति पदार्थ पाया उसे दूसरा धर्म व कर्म करना न चाहिए।

—:०:—

तेरहवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का उद्धव को ज्ञान बतलाना।

श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! सात्त्विक, राजस और तामस तीन गुण माया के हैं। परमात्मा इन तीनों से विलग रहता है। जिस समय शरीर में सात्त्विक अधिक होता है उस समय धर्म व शुभकर्म की ओर मनुष्य का मन लगता है। सात्त्विकी स्वभाववाले को संसार में सब लोग अच्छा कहते हैं। जो मनुष्य क्रोध अधिक रखकर कुछ कर्म किया करे उसे तामसी समझना चाहिए। जिनके शरीर में राजस अधिक होता है वे लोग सुख की चाह बहुत रखते हैं। इसलिए ज्ञानी मनुष्य को उचित है कि आठों पहर अपना मन सात्त्विक की ओर लगाये रखकर ऐसा कर्म व धर्म करता रहे जिसमें मेरी याद उसको न भूले। यह सुनकर उद्धव ने विनय किया—हे महाप्रभु! जब मनुष्य ने जाना कि यह कर्म बुरा है और इसके करने से मुझे दुःख होगा तब वह जान-बूझकर कष्ट देनेवाला काम करके गर्भ व नरक में सदा क्यों दुःख उठाता है? वैसा कर्म क्यों नहीं करता जिसमें जन्म व मरण से छूट जावे। उसका ज्ञान फेरकर कुकर्म की ओर कौन लगा देता है। यह सुनकर त्रिभुवनपति ने कहा—हे उद्धव! उसकी बुद्धि नष्ट करनेवाली दो वस्तुएँ हैं। उनमें एक तृष्णा है, जब मनुष्य को किसी वस्तु के पाने की चाह हुई और दूसरा कोई उसमें बाधक हुआ तब क्रोध उत्पन्न होता है और यही दोनों तृष्णा व क्रोध सब जीवों से अशुभ कर्म कराते हैं, मुझसे विमुख

रखकर उनका परलोक बनने नहीं देते। जिस तरह चोर व लम्पट द्रव्य लेने और परस्त्रीगमन करने के लिए दूसरे के घर जाकर पकड़े जाते हैं उसी तरह जब तक मनुष्य मुक्ति पदवी पर नहीं पहुँचता तब तक चाह व क्रोध के वश में रहकर जन्म व मरण का दुःख उठाता है। जिसने काम व क्रोध को जीतकर मुझे अपना मालिक व उत्पन्न करनेवाला जाना उसको ज्ञानी व मेरा भक्त समझना चाहिए। यह सुनकर उद्धव ने विनय किया—महाराज! आपने सब यदुवंशियों को क्यों मुक्ति नहीं दी, एक पर दया करना और दूसरे को अभागी छोड़ने का क्या कारण है? श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! हम पहिले तुझसे कह चुके हैं कि ज्ञान व अज्ञान के दो मार्ग हैं। कदाचित् एक होता तो किसी मनुष्य को पूजा भजन शुभ अशुभ नरक स्वर्ग का सोच व डर न रहता। हे उद्धव! संसार में दो तरह के मनुष्य एक आत्माराम व दूसरे दयाराम होते हैं। आत्माराम उसको कहना चाहिए जो आठों पहर परमेश्वर के स्मरण व ध्यान में लीन रहकर धन व संसारी सुख मिलने में हर्ष व उसकी हानि होने से कुछ विषाद नहीं करता। दयाराम उसको समझना उचित है जो संसार में द्रव्य व सुन्दर स्त्री व आज्ञाकारी पुत्र मिलने से प्रसन्न रह कर उन सबके वियोग होने में सोच करते हैं। इसलिए ज्ञानी मनुष्य को चाहिए कि अपने वर्ण व आश्रम के धर्मानुसार चले, अपनी क्रिया कभी न छोड़े। अपने धर्म से फिरने में ब्रह्महत्या के समान पाप होता है। हे उद्धव! एक बेर सनत्कुमार आदिक ने ज्ञान का अभिमान करके ब्रह्मा से यह बात पूछी थी कि संसारी मनुष्य का मन पंचभूत आत्मा से क्योंकर विलग होता है? हमने सब तीर्थों का स्नान किया, आठों पहर कथा व लीला परमेश्वर की आपस में कहते व सुनते रहते हैं, तिस पर भी हमारा मन आज तक संसारी चाह से विरक्त नहीं हुआ, इसका क्या कारण है। जब ब्रह्मा उसका उत्तर नहीं दे सके और दूसरे देवता जो वहाँ बैठे थे, ब्रह्मा को हँसने लगे तब ब्रह्मा ने बहुत लज्जित होकर मुझे याद किया। उस समय मैं उनकी बात रखने के लिए वहाँ जाकर ब्रह्मा के वाहन श्वेतवर्ण हंस पक्षी के तनु में प्रवेश करके सनकादिक

के निकट चला गया और उन लोगों का अभिमान तोड़ने के लिए बोला कि तुम क्या पूछते हो। यह बात सुनकर सनत्कुमार ने कहा कि तुम कौन हो। तब मैंने उत्तर दिया कि हम और तुम विलग नहीं हैं। शरीर के अलग रहने पर भी पंचभूत आत्मा, जिसको प्राण कहते हैं, हमारे तुम्हारे अङ्ग में एक है। इसलिए तुम्हारा पूछना वृथा है। जब तुम अज्ञान बालक की तरह प्रश्न करते हो तब ब्रह्माजी तीनों लोकों की रचना करनेवाले तुमको क्या उत्तर दें। हे सनत्कुमार! जिस तरह अज्ञानी मनुष्य मन में मनसूबा विचारकर संसार के सब सुख भोग लेते हैं, पर वह सुख उनको प्राप्त नहीं होता, उसी तरह संसारी व्यवहार और यह शरीर झूठा होकर परमेश्वर की माया से चार दिन के लिए सच मालूम होता है। जैसे अँधेरे में रस्सी पड़ी हुई देखकर साँप का सन्देह हो जाता है वैसे ही अनेक शरीर नाश होनेवाले जीवात्मा विलग-विलग दिखलाई देकर चौरासी लाख योनि में मेरा प्रकाश रहता है। इसलिए शरीर को रस्सीरूपी झूठा साँप समझकर इस नाश होनेवाली वस्तु से प्रीति रखनी न चाहिए। मेरी शक्ति निकल जाने से यह शरीर कुछ काम नहीं आता। जिस तरह बादल समुद्र का जल सोखकर बरसाते हैं तो फिर वह पानी नदी व नाले की राह बहकर समुद्र में मिल जाता है उसी तरह जितने जीव जड़ व चैतन्य संसार में दिखलाई देते हैं वे सब मेरी इच्छा से उत्पन्न होकर मरने के उपरान्त सबका जीवात्मा फिर मेरे रूप में समा जाता है। जो लोग संसारी व्यवहार झूठा समझकर मायारूपी जाल में नहीं फँसते और विरक्त होकर हरिचरणों में सच्ची प्रीति करते हैं उन्हें तुरन्त मेरा दर्शन होकर वैकुण्ठ का सुख मिलता है। जिस तरह मदिरा के नशे में मनुष्य मतवाला होकर अपने तनु व वस्त्र की सुधि नहीं लेता उसी तरह हरिभक्त लोग भी मेरे ध्यान में लीन रहकर अपने शरीर की सुधि नहीं रखते। मैं यज्ञ और तप आदि शुभ कर्मों का फल देनेवाला हूँ। सबको उसके कर्मानुसार जन्मभर भोजन व वस्त्र देता हूँ। हे सनत्कुमार! मन इच्छा से कभी नहीं विलग होता, इसलिए हमने मत्स्यावतार धारण करके राजा सत्यव्रत को ज्ञान उपदेश किया था, जिसमें संसारी मनुष्य

हमारी कथा व लीला सुनकर उसी ज्ञान के प्रमाण मेरा स्मरण व ध्यान करें। संसारी तृष्णा छोड़कर हरिचरणों में प्रीति लगावें। जिस तरह संसार में पूर्व व पश्चिम आदि चारों ओर जाने की राहें बनी हैं उसी तरह यज्ञ, तप, दान, धर्म, तीर्थ, व्रत, सत्संग और भक्ति आदि मेरे पास पहुँचने के रास्ते बने हैं, जो मनुष्य जिस मार्ग पर चाहे उस पर सच्चे मन से चले, मेरे निकट पहुँच जायगा। सनत्कुमार आदि यह ज्ञान सुनते ही बहुत लज्जित होकर अपना अभिमान भूल गये और अपने मन का सन्देह छोड़कर हंसरूपी भगवान् को दण्डवत् किया। बहुत स्तुति करने के उपरान्त उनसे बिदा होकर अपने स्थान पर चले गये और हम उनका अभिमान तोड़कर वैकुण्ठ में चले आये।

चौदहवाँ अध्याय।

उद्धव को वेद व शास्त्र का हाल श्रीकृष्णजी से पूछना।

उद्धव ने इतनी कथा सुनकर श्यामसुन्दर से विनय किया—हे दीनानाथ! अनेक मुनियों और योगीश्वरों ने वेद व शास्त्र में आपके मिलने के लिए यज्ञ व तप आदि अनेक राहें लिखी हैं, सो तुम्हारे निकट पहुँचने का जो रास्ता सहज हो वह बतलाइए। श्रीकृष्णजी ने कहा—हे उद्धव! जब ब्रह्मा कमल के फूल से उत्पन्न हुए तब उन्होंने वेद, जो मेरे श्वासा हैं, मेरी इच्छा से पाकर भृगु ऋषीश्वर आदि अपने पुत्रों को पढ़ाया। ऋषीश्वरों ने उसका अर्थ देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदि को सिखलाया। उनमें जिनको जितना ज्ञान था उसने वह समझकर संसार में फैलाया, पर उस वेद के अर्थ को कोई नहीं पहुँचा। बाजे मनुष्य काम, क्रोध, स्त्री, पुत्र और कोई यज्ञ, तप और बाजे तीर्थ व व्रत और कोई दान व धर्म को उत्तम मानते हैं। पर इन सब कर्मों से मनुष्य भवसागर पार उतर नहीं सकता। जितनी वस्तु संसार में दिखलाई देती है, एक दिन इन सबका नाश अवश्य होगा। जो लोग परमेश्वर का स्मरण व ध्यान उत्तम समझकर उसमें अपना मन लगाये रहते हैं और संसारी वस्तु की कुछ चाह न रखकर इन्द्रलोक

आदि का सुख भी कुछ नहीं समझते, हरिचरणों की भक्ति के सिवा मुक्ति पदार्थ भी नहीं चाहते। जो मनुष्य बिना इच्छा मेरी भक्ति व सेवा करते हैं और सबको अपना मित्र जानकर किसी के साथ शत्रुता नहीं रखते उन भक्तों के लक्षण कहते हैं, सुनो। वे लोग आठों सिद्धियाँ प्राप्त रहने पर भी उनकी ओर न देखकर आठों पहर अपना मन मेरी ओर लगाये रहते हैं। मैं उनको सातों द्वीपों और तीनों लोकों का राज्य व मुक्ति पदार्थ देता हूँ सो भी नहीं लेते, इसलिए उनसे लज्जित रहकर उनके पीछे-पीछे फिरकर दिन-रात यही विचार करता हूँ कि कौन वस्तु इन्हें देकर इनकी सेवा से उऋण हो जाऊँ। जिस जगह वे भक्त चरण रखते हैं वहाँ की धूरि उठाकर इस कारण अपने अंग पर मल लेता हूँ जिसमें करोड़ों ब्रह्माण्ड के जीव जो मेरे शरीर में रहते हैं उसके लगने से पवित्र हो जावें। हे उद्धव! उन भक्तों के बराबर मैं अपने शरीर व लक्ष्मी व महादेवजी को प्यारा न जानकर सबसे उनको उत्तम समझता हूँ। जब मेरा कोई भक्त संसारी माया में फँसकर नष्ट होना चाहता है तब मैं उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश करके कुकर्म करने से बचा लेता हूँ। जो हरि-कथा वार्त्ता सुनते समय मेरे प्रेम में डूबकर रो देते हैं, उनका पाप आँसू की राह बहकर अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। मच्छड़ आदि अनजान में मर जाने का दोष उनको नहीं लगता। जैसा भक्ति करने से मैं तुरन्त मिलता हूँ वैसी दूसरी राह सहज में मेरे निकट पहुँचने की नहीं है। जिस तरह आग में डाल देने से सोने का सब मैल छूट जाता है, उसी तरह भक्ति करने से शरीर में पाप नहीं रहता। पर ये सब बातें चित्त के अधीन हैं। यही मन संसारी माया में फँसने से नष्ट होता है। मेरी ओर ध्यान लगानेवाले मनुष्य संसार में अपनी मनोकामना पाकर अन्त समय वैकुण्ठवास पाते हैं। इसलिए मनुष्य को स्त्री व लम्पट पुरुष की संगति से अलग रहकर मेरी ओर मन लगाना चाहिए। जैसा उनकी संगति करने से तुरन्त मनुष्य का ज्ञान छूट जाता है वैसा दूसरी तरह नहीं बिगड़ता। अब हम तुमको परमेश्वर की ओर मन लगाने का रास्ता बतलाते हैं, सुनो। अकेले बैठकर पहिले अपना मन एकाग्र करे, फिर

अपने कमलरूपी हृदय में मेरे चतुर्भुजी स्वरूप का ध्यान लगावे। जिस तरह आम की गुठली बोते हैं तो उसके फुनगा को बकरी आदि के खाने का भय लगा रहता है और जब रक्षा करने से वह वृक्ष तैयार हो जाता है तब हाथी भी उसको उखाड़ नहीं सकता उसी तरह जब प्रतिदिन मेरा ध्यान व स्मरण करने से संसारी माया छूटकर वृक्षरूपी भक्ति हृदय में जड़ पकड़ लेती है तब फिर कम नहीं होती। योगाभ्यास साधने और इन्द्रियों को वश में करने से अष्टसिद्धियाँ बनी रहती हैं। सो हे उद्धव! तुम हरिभक्तों की बड़ी पदवी समझकर मेरी भक्ति सच्चे मन से किया करो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा।

पन्द्रहवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी को उद्धव से अष्टसिद्धियों का हाल कहना।

इतनी कथा सुनकर उद्धव ने विनय किया—हे महाप्रभु! आपने कहा कि योग साधने और इन्द्रियों को वश करने से अष्टसिद्धियाँ बनी रहती हैं, सो उनमें क्या गुण है। श्यामसुन्दर बोले—हे उद्धव! आठ सिद्धि बड़ी और दस सिद्धि छोटी हैं। उनमें एक सिद्धि ऐसा गुण रखती है कि बूढ़ा मनुष्य चाहे तो अपने को लड़का बना लेवे। दूसरी छोटे शरीर को बड़ा बना सकती है। तीसरी ऐसी सामर्थ्य रखती है कि अपना शरीर रुई के समान हलका बनाकर जहाँ चाहे वहाँ उड़ता हुआ चला जावे। चौथी हलके से भारी बनाने की सामर्थ्य रखती है। पाँचवीं में ऐसा गुण है कि हजारों कोस का हाल बैठा हुआ देख लेवे। छठी सिद्धि से हजारों कोस की बात सुन सकते हैं। सातवीं में ऐसा गुण है कि जो वस्तु जहाँ से चाहे मँगा ले। आठवीं से सब देवता वश हो जाते हैं। यह सामर्थ्य आठों बड़ी सिद्धि में है। नवीं सिद्धि से अंग पर बुढ़ापा प्राप्त नहीं होता। दसवीं में यह सामर्थ्य है कि जिस जगह मन दौड़ावे वहाँ एक क्षण में पहुँच जावे। ग्यारहवीं से दूसरे का स्वरूप आप बना सकता है। बारहवीं में यह सामर्थ्य है कि अपने प्राण को दूसरे तनु में प्रवेश कर दे। तेरहवीं सिद्धि से जब चाहे तब मरे। चौदहवीं सिद्धि में यह सामर्थ्य

है कि जिसके वास्ते मन चाहे वहाँ जाकर उसके संग विहार करे। पन्द्रहवीं सिद्धि से जिस वस्तु की चाह मन में उत्पन्न हो वह उसी समय आकर प्राप्त हो जावे। सोलहवीं से जिसको जो आज्ञा दे वह मानकर भूत व भविष्यत् व वर्तमान तीनों कालों का हाल जान लेवे। सत्रहवीं सिद्धि से दूसरे के मन की बात जान ले और गर्मी, सर्दी उसको न व्यापे। अठारहवीं से जलती हुई आग व बढ़ता हुआ पानी रोक दे और जिसे चाहे उसको विष की गर्मी प्रवेश करने न देवे। इन अठारह सिद्धियों के सिवा जन्म, औषध, तप और मंत्र चार और सिद्धियाँ योग साधने से मिलती हैं। जन्मसिद्धिवाला जहाँ चाहे वहाँ जन्म लेवे। औषधसिद्धिवाला जिसे जो औषध देवे वह अमृत के समान गुण करे। मंत्रसिद्धिवाला मंत्र पढ़कर जो बात कहे वह सच हो जावे। तपसिद्धि-वाले के तप में कोई विघ्न नहीं कर सकता। हे उद्धव! ये सब सिद्धियाँ एक-एक गुण रखती हैं। मैं सब सिद्धियों का फल देनेवाला हूँ। उन सिद्धियों को वश में करने का यह उपाय है, सुनो। अग्नि में गर्मी, जल में सर्दी, पृथ्वी पर कड़ाई, हवा को स्पर्श और आकाश में शब्द, ये पाँचों बातें मेरी कृपा से हैं। जो कोई इन पाँचों वस्तुओं में मेरा ध्यान लगाकर सच्चे मन से मेरी महिमा समझे उसको पहिली सिद्धि मिलती है। पाँचों भूतात्मा, आकाश और अग्नि आदि का जो ध्यान करे वह दूसरी सिद्धि पावे। मेरे विराट्रूप का ध्यान करने से तीसरी सिद्धि, चतुर्भुजी व छोटे रूप का ध्यान करने से चौथी सिद्धि, महत्तत्त्वरूप का ध्यान करने से पाँचवीं सिद्धि, अहंकाररूप का ध्यान करने से छठी सिद्धि, विष्णुरूप का ध्यान लगाने से सातवीं सिद्धि, वासुदेवरूप का ध्यान धरने से आठवीं सिद्धि प्राप्त होती है। निराकाररूप का ध्यान करनेवाले संसारी चाह छोड़कर परम आनन्द से रहते हैं। परमेश्वर के श्वेतरूप का ध्यान धरने में मनुष्य कभी बूढ़ा नहीं होता। अपने शरीर में परमात्मा का ध्यान करने से दूसरी बात सुनाई देती है। सूर्यरूपी परमेश्वर में ध्यान लगाने से हजारों कोस की वस्तु दिखलाई देती है। वायुरूपी परमेश्वर का ध्यान करने से एक क्षण में जहाँ चाहे वहाँ चला जावे। योगाभ्यास करके

अग्नि में मन लगावे तो अपना रूप जैसा चाहे वैसा बना लेवे। अपने हृदय में आत्मा का ध्यान रखने से दूसरे तनु में अपना जीव प्रवेश करने की सामर्थ्य हो जाती है। सतोगुण का ध्यान करने से जिसके संग चाहे उसके साथ विहार करता फिरे। मनुष्य आठों पहर अपने मन में यह विचार करता रहे कि सब बातें परमेश्वर की आज्ञा से होती हैं, उसको सब छोटे-बड़े मानते हैं। योगाभ्यास के साथ अपना श्वास ब्रह्माण्ड में चढ़ाने से भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल की बातें मालूम होती हैं। अग्नि व जल आदि पाँचों तत्त्व का ध्यान करनेवाले जलती हुई आग व बढ़ता हुआ पानी रोक सकते हैं। जो मनुष्य इन्द्रियों को अपने वश में रखकर सच्चे मन से मेरे चरणों का ध्यान करता है उसके सामने अठारहों सिद्धियाँ हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं, पर उन सिद्धियों के सुख में फँसनेवाला मनुष्य नष्ट हो जाता है, मुझे नहीं पाता। जो लोग मेरे चरणों में ध्यान लगाये रहकर उस सुख को कुछ नहीं समझते वह संसार में अपनी मनो-कामना पाकर अन्त समय चतुर्भुजीरूप से वैकुण्ठवास करते हैं।

—:o:—

सोलहवाँ अध्याय।

उद्धवजी से श्रीकृष्णजी को भगवद्गीता का मुख्य ज्ञान कहना।

उद्धव ने अठारहों सिद्धियों का हाल सुनकर त्रिभुवनपति से पूछा—हे दीनानाथ! आप देवताओं और वृक्षादिक में कहाँ-कहाँ विराजते हैं? श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! जिस समय महाभारत होने के लिए अठारह अक्षौहिणी दल कुरुक्षेत्र में इकट्ठा हुआ और अर्जुन ने द्रोणा-चार्य व भीष्मपितामह आदि अपने गुरु व परिवारवालों को दुर्योधन की ओर देखकर युद्ध करना अंगीकार नहीं किया उस समम मैंने अपनी थोड़ी सी महिमा अर्जुन से कहकर अपना विराट् रूप उसे दिखलाया और उसका मोह छुड़ाकर महाभारत कराया था वही हाल तुमसे कहता हूँ, सुनो। जो मनुष्य अज्ञानवश सब जीवों में मेरा प्रकाश देख न सके तो इन सब जगह, जो नाम हम सुनाते हैं, अवश्य मेरा चमत्कार समझे। सब जीवों में आत्मा बोलता पुरुष मैं हूँ। आदि मध्य अन्त मुझे जानना

चाहिए। सूर्य देवता की बारह कला हैं। हर महीने में वह अपने नये स्वरूप से प्रकाश करते हैं। उसमें विष्णु नाम स्वरूप, उनचास पवन में मरीचि नाम वायु, तारागणों में चन्द्रमा, चारों वेदों में सामवेद, देवताओं में ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, स्वामिकार्त्तिक, यमराज, ग्यारहों रुद्रों में शंकर नाम महादेव, पाँचों तत्त्वों में अग्नि, पहाड़ों में सुमेरु, गौवों में कामधेनु, दिव्य पितरों में अर्यमा नाम पितर, प्रजापतियों में दक्ष, चारों वर्णों में ब्राह्मण, चारों आश्रमों में संन्यासी, नदियों में गंगा, रागों में दीपक, धातुओं में सुवर्ण, हाथियों में ऐरावत, घोड़ों में उच्चैःश्रवा, यज्ञों में ज्ञानयज्ञ, पुरोहितों में वशिष्ठ, स्त्रियों में शतरूपा, राजऋषीश्वरों में स्वायंभुवमनु, युगों में सतयुग, सेवकों में हनुमान्, कथा बाँचनेवालों में वेदव्यास, दानियों में राजा बलि, रत्नों में कौस्तुभमणि, घासों में कुशा, पंचगव्यों में घृत, दसों इन्द्रियों में ग्यारहवाँ मन, नवग्रहों में बृहस्पति, ऋषीश्वरों में भृगु, मंत्रों में ओंकार, वृक्षों में पीपल, देवऋषीश्वरों में नारद मुनि व सनत्कुमार, वैष्णवों में कपिलदेव, सातों समुद्रों में क्षीरसागर, मनुष्यतनु में राजा, सर्पों में वासुकि, नागों में शेषनाग, दैत्यों में प्रह्लाद भक्त, पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड़, शूरवीरों में परशुराम, वेद व शास्त्र में गायत्री, बारहों मास में अगहन, ऋतुओं में वसन्तऋतु, पुष्पों में गुलाब, सच बोलनेवालों में सचाई, गन्धर्वों में विश्वावसु नाम गन्धर्व, अप्सराओं में पूर्वचित्ती नाम अप्सरा, पाँचों भाई पांडवों में अर्जुन, विद्या जाननेवालों में शुक्राचार्य, यदुवंशियों में वासुदेव मैं हूँ। और वह काम जिसमें मनुष्य सन्तान उत्पन्न होने की इच्छा रखकर अपनी स्त्री से भोग करता है, मुझे समझना चाहिए। जो लोग अपनी बड़ाई की चाहना रखकर ज्ञान से शुभ कर्म करते हैं वह इच्छा व ज्ञान मैं हूँ। जितनी बातें छल की हैं उनमें श्रेष्ठ जुआ व मायारूपी लक्ष्मी मैं हूँ। सब जीवों की जड़ मैं हूँ। मेरी शक्ति के बिना कोई जीव चलने व हिलने की सामर्थ्य नहीं रखता। कदाचित् कोई चाहे तो रेणुका, तारे व वर्षा की बूँदें गिन लेवे पर मेरी विभूतियों की गिनती नहीं कर सकता। हे उद्धव! संसार की उत्पत्ति, पालन व नाश मेरी विभूतियों से होता है। तुम जितनी वस्तु

संसार में देखते हो सबमें मैं हूँ, इसलिए मेरे भेद व महिमा को पहुँचना बहुत कठिन है। देखो संसारी मनुष्य बहुत सा अन्न व घृत आदि जो अग्नि में होम करते हैं उसके करने से यह उत्तम है कि अपनी इच्छाओं को, जो काम, क्रोध, मोह, लोभ के वश होकर कुकर्मों की ओर दौड़ती हैं, ज्ञानरूपी अग्नि में जला देवे। ज्ञानी उसको कहना चाहिए जो अपने गुण को आदरपूर्वक एक जगह लिये बैठा रहे, द्वारे-द्वारे फिरकर अपना अपमान न करावे। बहुत द्रव्य रखनेवालों को धनीपात्र जानना उचित नहीं है, जो मेरी भक्ति व प्रीति रखता हो उसे धनवान् समझना चाहिए। जो लोग अपनी स्त्री को पर्दे में रखते हैं उनको लज्जावान् न जानकर कुकर्मों से रहित रहनेवाले को श्रेष्ठ समझना उचित है। जो मनुष्य रणभूमि में बाण व खड्गादिक के घाव सहकर बहुत युद्ध करते हैं उनको शूरवीर समझना वृथा है, रणधीर उसे जानना चाहिए जो अपने काम, क्रोध, मोह, लोभ, इन्द्रिय, मन अति बलवान् शत्रुओं को जीतकर उनके वश न होवे। हे उद्धव! मैंने तुझे अपना भक्त जानकर थोड़ा सा हाल सुना दिया, तुम अपने मन व इन्द्रियों को वश में रखकर मेरा ध्यान करो, अठारहों सिद्धियाँ तुम्हारे पास बनी रहेंगी।

——:०:——

सत्रहवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का उद्धव से चारों युगों का हाल कहना।

उद्धव ने त्रिभुवनपति की यह सब महिमा सुनकर पूछा—हे दीनानाथ! चारों युगों में कौन धर्म बड़ा है और किस तरह लोग रहते थे। श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! सत्ययुग में श्वेतवर्ण स्वरूप और एक वेद था, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चारों वर्ण उसी रूप का ध्यान और वेदानुसार सब काम करते थे। त्रेता में यज्ञावतार का ध्यान लगाकर यज्ञ होता था। एक वेद से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, चार वेद तैयार हुए। ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद के अनुसार यज्ञ करते थे और अथर्वणवेद केवल मंत्र व शस्त्रविद्या जानने के लिए है। ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य, पाँव से शूद्र, चारों वर्ण उत्पन्न

किये थे। संन्यासी मेरे शिर से, ब्रह्मचारी हृदय से, वानप्रस्थ पसुली से और गृहस्थ जंघा से प्रकट हुए। ब्राह्मण का यह धर्म है कि अपने मन व इन्द्रियों को वश में रखकर आचार से पवित्र रहे। जो कुछ थोड़ा या बहुत धर्म की कमाई से मिले उस पर सन्तोष रखकर मेरा तप व ध्यान किया करे। किसी के दुर्वचन कहने से खेद न मानकर अधिक तृष्णा न रक्खे। हरिभक्त होकर झूठ न बोले। जिसमें इतने लक्षण हों उस ब्राह्मण को अपने कर्म व धर्म पर स्थिर समझना चाहिए। क्षत्रिय के लक्षण यह हैं कि उसका मुखारविन्द तेजवान् और शरीर बलवान् हो, मन में धैर्य रक्खे, शूरता ऐसी रखता हो कि घाव लगने से घबरा न जावे। चाकरी व जमींदारी से अपना कुटुम्ब पालकर सामर्थ्य भर दान व दक्षिणा देवे। साधु व ब्राह्मण की भक्ति रखकर सच्चे मन से उनकी सेवा करे। वैश्य का धर्म यह है कि व्यापार, खेती व महाजनी से अपना परिवार पाले। द्रव्य उत्पन्न करने की चाह आठों पहर मन में रक्खे। सामर्थ्य भर दान व दक्षिणा देकर साधु व ब्राह्मण की सेवा किया करे। शूद्र का धर्म यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों की सेवा करने से जो कुछ मिले उसमें अपने दिन काटकर अधिक तृष्णा न बढ़ावे। चारों वर्णों को उचित है कि जीवहिंसा, चोरी, कुकर्म आदि से रहित रहकर झूठ न बोलें। काम क्रोध मोह लोभ को अपने वश में रखकर ऐसा काम करें जिसमें संसारी जीव उनसे प्रसन्न रहें। कोई उनको बुरा न कहे। चारों आश्रम का धर्म यह है कि ब्रह्मचारी को चाहिए कि गुरु के घर रहकर मनसा वाचा कर्मणा उनकी सेवा व आज्ञापालन करे। गुरु को मनुष्य न जानकर परमेश्वर भाव समझे। स्त्री का अंग न छूकर उसके पास न बैठे। क्षौर न करावे। जो कुछ भीख मांग लावे सब गुरु के सामने धरकर उनका दिया हुआ खावे। कदाचित् गुरु भोजन न देवे तो मांगना उचित नहीं है। कामदेव को ऐसा अपने वश रक्खे जिसमें वीर्य न गिरे। कभी स्वप्ने में वीर्य गिर जावे तो स्नान करके दशहजार गायत्री मंत्र जपे। अपना तन, मन, धन, गुरु पर निछावर समझे। कोई अशुद्ध वस्तु न खावे। विद्या पढ़ने व गुरुदक्षिणा देने के उपरान्त गुरु से विदा होवे।

गृहस्थी करना चाहे तो अच्छे कुल में अपने से छोटी अवस्था की कन्या विवाहे। जब वह महीने भर उपरान्त स्त्री धर्म से होवे तब चौथे दिन एक बेर उससे प्रसंग किया करे। गृहस्थधर्म रखकर जो अभ्यागत व संन्यासी द्वारे पर आवे उसको कुछ भोजन व वस्त्र देकर प्रसन्न करना चाहिए, खाली फेर देना अच्छा नहीं होता। गृहस्थाश्रम ब्राह्मण का उत्तम धर्म यह है कि विद्या पढ़ाने व कथा बाँचने व यज्ञ कराने से अपनी जीविका करे। जब ब्राह्मण पर विपत्ति पड़े तब हार मानकर खेती व व्यापार व चाकरी करके अपना कुटुम्ब पाले। ब्राह्मण को अपने से छोटे वर्ण की सेवा करना न चाहिए। ब्रह्मचारी को विद्या पढ़ने के उपरान्त गृहस्थी की चाह न हो तो वन में जाकर परमेश्वर का तप व भजन करे। जो क्षत्रिय व वैश्य मेरे प्राणरूपी गरीब ब्राह्मण को भोजन व वस्त्र देकर सच्चे मन से उनकी सेवा करते हैं उन पर मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ, मुँहमाँगा द्रव्य और सन्तान देता हूँ। क्षत्रिय राजा अपनी प्रजा को पुत्र के समान पालन करने और उनका दुःख छुड़ाने से संसार में यश पाते हैं और मरने के उपरान्त भवसागर पार उतर जाते हैं। जब क्षत्रिय को विपत्ति पड़े तब वह व्यापार करके या वन में अहेर खेलकर अपनी जीविका करे और लाचारी से भीख माँगकर अपना पेट पाले। वैश्यवर्ण विपत्ति पड़ने से शूद्र का काम करे और शूद्र को विपत्ति पड़े तो चटाई आदि बनाकर अपने दिन काटे। ब्राह्मण को वेदानुसार अपने धर्म से रहकर प्रतिदिन संध्या-तर्पण, ठाकुरपूजन औरश्राद्ध करना, अतिथि व सन्यासी को भोजन व वस्त्र देना उचित है। स्त्री व पुत्रों से अधिक प्रीति न रक्खे। मेरे चरणों का ध्यान करता रहे। इस तरह कर्म व धर्म रखनेवाले चारों वर्ण व चारों आश्रम को मैं उद्धार कर देता हूँ। जो लोग संसारी माया में फँसकर धर्म व अधर्म का विचार नहीं करते उनको अवश्य नरक भोगना पड़ता है।

(०)

अठारहवाँ अध्याय।

उद्धव से श्रीकृष्णजी का वानप्रस्थ आदि का धर्म कहना।

श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! वानप्रस्थ का धर्म यह है कि जब पचास वर्ष से अधिक अवस्था होने पर उसका मन वैराग्य करने के लिए

चाहे तो अपनी स्त्री समेत या अकेला वन में जाकर परमेश्वर का भजन व स्मरण करे। शिर पर जटा बढ़ाकर केले के पत्ते से कोपीन बनावे। प्रातः, मध्याह्न व सन्ध्या तीनों काल स्नान करके पृथ्वी पर सोवे। गर्मी में पञ्चाग्नि तापे और जाड़े में गले भर पानी में खड़ा रहे। बरसात में मैदान के बीच में बैठकर तप करे। पृथ्वी का बोया हुआ अनाज न खावे। जब इस तरह तप करने से शरीर निर्बल होकर बुढ़ापा आ जावे तब संन्यास लेकर सिवा दण्ड व कमण्डलु व कोपीन के और कुछ वस्तु अपने पास न रक्खे। सात घर से अपने खाने भर को भोजन माँग ले आवे। राह चलते समय पृथ्वी की ओर देखता रहे जिसमें चिउँटी आदि कोई छोटा जीव पाँव के नीचे दब न जावे। अपने मन व इन्द्रियों को वश में रखकर अपना चित्त किसी स्त्री की व अच्छी वस्तु की ओर न दौड़ावे। भोजन में स्वाद की चाह न रक्खे। जहाँ से अच्छा भोजन मिले वहाँ फिर न जावे। कभी झूठ न बोले। संसारी सुख को स्वप्न के समान झूठा समझे। आठों पहर अकेले में परमात्मा का ध्यान करता रहे। एक जगह अधिक न रहे तीर्थों में फिरा करे। पाखण्डी मनुष्यों की संगति न करे। किसी का डर न माने। सदा प्रसन्नचित्त रहे। अपने सुख के लिए किसी के साथ शत्रुता व मित्रता न रक्खे। अपना स्वभाव कोमल बनाये रहे। ऐसा मीठा वचन बोले जिसमें कोई दूसरा उससे न डरे। हानि-लाभ होने का कुछ हर्ष व विषाद न करे। केवल भिक्षा लेने के लिए नगर व गाँव में जावे। बस्ती से बाहर रहकर जिस तरह गुरु ने बतलाया हो उसी तरह आठों पहर परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करता रहे। जब तक मेरे निर्गुण रूप का ध्यान उसके मन में न आवे तब तक सगुणरूप की उपासना किया करे। जब निर्गुणरूप ध्यान में आ जावे तब सगुणरूप का स्मरण छोड़कर सब जीवों में मेरा प्रकाश एकसा समझे। इस तरह के कर्म व धर्म रखनेवाले को संन्यास जानना चाहिए। केवल दण्ड व कमण्डलु धारण करने से संन्यासधर्म का फल नहीं मिलता। हरि-भजन करने में इन्द्रादिक देवता विघ्न करते हैं, इसलिए तप व स्मरण करते समय मन को स्थिर रखना उचित है। जो लोग अपने धर्म व कर्म

से रहते हैं उन्हें निस्सन्देह मुक्ति मिलती है। अपना धर्म छोड़ देनेवाले को चोर व ठग की तरह नरक में दण्ड मिलता है, इसलिए मेरी भक्ति चारों वर्णों व चारों आश्रमों को करनी चाहिए।

——:०:——

उन्नीसवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का उद्धव से चार तरह के भक्तों की कथा कहना।

उद्धव ने इतना ज्ञान सुनकर पूछा—हे दीनानाथ! जिस तरह संसारी मनुष्य कालरूपी साँप के मुख में पड़े रहकर प्रतिदिन अपना सुख चाहते हैं उसी तरह मुझे भी समझाकर कोई सहज राह भवसागर पार उतारने के लिए वर्णन कीजिए। श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! जो ज्ञान भीष्मपितामह ने राजा युधिष्ठिर से कहा था वही तुमसे कहते हैं, सुनो। संसारी मनुष्यों को चार तरह से ज्ञान प्राप्त होता है। एक कथा-पुराण सुनने से, दूसरे लोगों का मरना देखकर अपनी मृत्यु विचारने से, तीसरे साधु व महात्मा विरक्त पुरुषों की संगति करने से और चौथे संसारी व्यवहार झूठा समझने से ज्ञान प्राप्त होता है। परन्तु कथा को प्रेमपूर्वक सुनकर उसमें विश्वास रखना चाहिए। हे उद्धव! मेरे निर्गुणरूप का ध्यान करनेवालों को जीवन्मुक्त समझो और उनके लक्षण सुनो। वे लोग जिस धर्म करने से मुझे पाते हैं उस कर्म का फल मुझे देकर कुछ चाह नहीं रखते। संसार में चार तरह के भक्त होते हैं, एक विपत्ति पड़ने या रोगी होने से मेरी भक्ति करता है। दूसरे ज्ञान प्राप्त करने व भवसागर पार उतरने की इच्छा रखकर, तीसरे द्रव्य, सन्तान व संसारी सुख पाने के लिए मेरा ध्यान करते हैं, चौथे ज्ञानी जो मुझे परमेश्वर जानकर भक्ति करते हैं और उसके बदले कुछ इच्छा नहीं रखते उनको मैं उन तीनों से अधिक प्यारा जानता हूँ। हे उद्धव! यज्ञ, तप, दान, धर्म, तीर्थ व्रत आदिक सब शुभकर्म अच्छे होते हैं, परन्तु भक्ति व ज्ञान के बराबर, जिससे मुझे उत्पन्न करनेवाला व मालिक जानता है, यज्ञादिक नहीं होते। सो तुम भी ज्ञान की राह संसारी चाहना छोड़कर मेरी भक्ति रखते हो, इस लिए अपनी मुक्ति में कुछ सन्देह मत समझो। इसके सिवा थोड़ा-सा

मुख्य ज्ञान और कहते हैं, सुनो। मनुष्य को अपनी बड़ाई करना उचित नहीं है। अहङ्कार छोड़ देना चाहिए। देखो नाक, कान, जिह्वा, आँख, त्वचा, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और हाथ, पाँव, वाक्, लिंग, गुदा, पाँच कर्म-इन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन है। जो मनुष्य उनको संसारी सुख की ओर लगाता है उसे अज्ञानी समझना चाहिए। ज्ञानी को उचित है कि अपने मन व इन्द्रियों को संसारी माया से विरक्त रखकर मेरी ओर व ठाकुर का पूजन करने में लगावे। संसार के आदि, मध्य व अन्त में परमेश्वर का चरित्र जानकर मेरी कथा व लीला प्रेम से सुने। जो वस्तु खाने व पहिनने के लिए किसी तरह की मिले उसको पहिले मेरे नाम पर अर्पण करके पीछे आप खाय व पहिने। जो तड़ाग, बावली, कुआँ व बाग आदि धर्म की राह बनवावे सबका फल मुझे देकर अपने मन में इस बात का अभिमान न रक्खे कि यह शुभकर्म मैंने किया है। इतनी कथा सुनकर उद्धव ने पूछा—हे वैकुण्ठनाथ! तप, दान, नियम, संयम का हाल वर्णन कीजिए। ज्ञानी किसको कहते हैं और मूर्ख कौन कहलाता है। शुभ व अशुभ कर्म करने, स्वर्ग जानेवाले, नरक, धनीपात्र, कंगाल, दाता और सूम का हाल बतलाइए। श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! जीवहिंसा व चोरी आदि कुकर्मों से बचे रहकर सच बोलना, गुरु और भगवान् में प्रीति रखकर वेद व शास्त्र का वचन सच जानना, बिना प्रयोजन अधिक न बोलकर सब जीवों पर दया रखना, यह संयम है। हाथ-पाँव मिट्टी से मलकर धोना, स्नान, सन्ध्या, पूजा, यज्ञ, तप श्राद्ध, तीर्थ, व्रत करना, यह नियम समझना चाहिए। दान उसका नाम है कि विरक्त मनुष्य को कर्म छोड़कर मनसा वाचा कर्मणा किसी का बुरा न चाहे। गृहस्थाश्रमी भोजन, वस्त्र, पृथ्वी, सोना आदि वस्तु ब्राह्मणों को दान करे। तप यह है कि स्त्री भोग करने का सुख छोड़ देवे। ज्ञानी वह है जो शास्त्रानुसार राह चलकर अपनी मुक्ति का सोच रक्खे। जो कोई परमेश्वर को भूलकर अपना शरीर पालन करता है उसे मूर्ख समझना चाहिए। मेरे वचन प्रमाण सब काम करना उत्तम राह है, उसके विपरीत चलना कुमार्ग जानो। जो मनुष्य संसार में किसी वस्तु की

चाह नहीं रखते और प्रेमपूर्वक मेरे चरणों का ध्यान करते हैं उन्हें स्वर्ग पहुँचनेवाला समझो। संसारी प्रीति रखनेवाले, लोभी और झूठे मनुष्यों को नरक जानेवाला जानना चाहिए। जो लोग ज्ञानी होकर मेरी भक्ति सच्चे मन से करते हैं उनको धनीपात्र और जिसको सन्तोष न होवे उसे दरिद्री जानना उचित है। जो कोई मूर्ख मनुष्य को सिखलाकर उसके भवसागर पार उतरने का सोच रक्खे उसे दाता समझो। जो लोग अपने मन व इन्द्रियों को न जीतकर उनके वश हो रहे हैं उनको सूम जानना चाहिए। हे ऊद्धव! जो जो बातें तुमने पूछीं, सबका उत्तर हमने दे दिया। जो कोई हमारा वचन सच जानकर उसी का प्रमाण करेगा उसके लिए संसार व परलोक में दोनों जगह अच्छा है।

बीसवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का उद्धवजी से माया छूटने का उपाय कहना।

उद्धव ने विनय किया—हे यदुनाथ! आपसे सब ज्ञान सुनकर उसका अर्थ मैंने यह समझा कि संसारी मायामोह में फँसना बुरा है और विरक्त रहना उत्तम है। कोई उपाय ऐसा बतलाइए जिसमें मनुष्य संसारी माया में न फँसे। यह बात सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! हमने तीन तरह की राह भवसागर पार उतरने के लिए तुमसे कहा। एक ज्ञान, दूसरा कर्म, तीसरी भक्ति। जिसको ज्ञान प्राप्त होता है वह संसारि माया में नहीं फँसता और संसार की प्रीति में जो फँसा है उसको शुभकर्म करना चाहिए। जो लोग अपना मन ज्ञान की ओर कुछ लगाये रहकर संसारि माया में भी लपटे हैं उनको भक्ति करनी उचित है। जब तक मेरी कथा सुनने में प्रीति न होकर उसका मन संसारी माया से विरक्त न हो, तब तक शास्त्रानुसार कर्म करता रहे। जो धर्म स्वर्ग जाने के लिए शास्त्रों में लिखे हैं वे धर्म करे। संसारी सुख व स्वर्ग जाने की कुछ चाह न रक्खे तब कर्म करने से बिना इच्छा भी वह सुख मिलेगा। इसलिए मनुष्य को आठों पहर परमेश्वर का ध्यान रखकर पहिले शुभकर्म करना चाहिए जब तक हाथ, पाँव, नाक, कान व आँख आदि सब इन्द्रियों में सामर्थ्य

रहती है तब तक सब कर्म अच्छी तरह बन पड़ते हैं। बुढ़ापे के समय इन्द्रियों की सामर्थ्य घट जाने से कोई कर्म विधिपूर्वक नहीं बन पड़ता। इसलिए कभी ऐसा विचार करना न चाहिए कि अभी तरुणाई में संसारी सुख उठा लें बुढ़ापे के समय परलोक का सोच कर लेंगे। मनुष्य का शरीर वृक्ष के समान है, कालरूपी लुहार उस वृक्ष को काटने के लिए दिन-रात उस पर कुल्हाड़ा चलाता है, न मालूम किस समय यह शरीर-रूपी वृक्ष गिर पड़ेगा, इसलिए मनुष्य को संसारी प्रीति से विरक्त रहकर दिन-रात अपनी मृत्यु की याद और मेरे चरणों का ध्यान करना चाहिए जिसमें उसकी मुक्ति हो। दूसरा ज्ञान सुनो, एक वृक्ष पर दो पक्षी खोता लगाकर रहते थे। जब उस वृक्ष को लुहार काटने लगा तब एक पक्षी ने कहा कि यहाँ से उड़ चलो। दूसरा पक्षी बोला कि बैठे रहो। जिस तरह उड़ जानेवाला पक्षी जीता बच जाता है और बैठे रहने में दुःख पाता है उसी तरह संसारी माया छोड़ देने से मुक्ति प्राप्त होती है और उसके साथ लिपटे रहने में आवागमन से नहीं छूटता। तीसरे मनुष्यतनु नौकारूपी जानकर गुरु को माँझी के समान समझना चाहिए। वह नाव समुद्र में पड़ी रहकर हवारूपी मेरे चरणों का ध्यान उसे किनारे पहुँचानेवाला है। जो कोई नौकारूपी मनुष्यतनु पाकर भवसागर पार उतरने का उपाय नहीं करता उसे बड़ा मूर्ख व आत्मघाती जानना उचित है। जब तक मनुष्य ज्ञान की राह अपने मन को कुमार्ग में चलने से नहीं रोकता तब तक उसको अनेक तरह के दुःख प्राप्त होते हैं। इसलिए चंचल मन को कुमार्ग पर चलने से धीरे-धीरे रोके तो कुछ दिन ऐसा साधन करने से उसका चित्त विरक्त हो जाता है। जब मनुष्य का मन विरक्त होकर मेरी ओर लगा तब फिर संसारी माया में नहीं लपटता और प्रतिदिन उसे मेरी भक्ति अधिक उत्पन्न होती है। जो कोई अपने वर्ण व आश्रम के धर्म और मेरे चरणों में प्रीति रखकर मन में इस बात का विश्वास जाने कि हरिचरणों का ध्यान करने के प्रताप से संसारी माया छूट जावेगी वह मनुष्य अवश्य मुक्त होता है। हे उद्धव! भवसागर पार उतरने के लिए भक्ति के बराबर दूसरा कोई उपाय उत्तम नहीं है। मेरे भक्त मुक्ति की भी

चाह नहीं रखते। चारों तरह की मुक्ति मुझसे न लेकर भक्ति को उससे अच्छा जानते हैं। जिस पर मैं बड़ी कृपा करता हूँ उसे भक्ति प्राप्त होती है। ब्रह्मादिक देवता उसके दर्शन की चाह रखते हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का उद्धवजी से भक्ति उत्पन्न होने का ज्ञान कहना।

श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! जो मनुष्य भक्ति व ज्ञान का यह सब सुमार्ग जो हमने तुमसे कहा है, छोड़कर दूसरी ओर अपना मन लगाता है वह कुकर्म करने से चौरासी लाख योनि व नरक में बहुत दुःख पाकर आवागमन से नहीं छूटता। जो लोग मनुष्यतनु पाकर परमेश्वर का भजन व स्मरण नहीं करते उनको बड़ा अभागी व मूर्ख समझना चाहिए और जो मनुष्य आठों पहर अपना मरना याद रखकर शास्त्रानुसार अपने वर्ण का धर्म रखते हैं, संसार में उन्हीं का जन्म लेना सफल है। अपना धर्म छोड़ने के बराबर दूसरा पाप अधिक नहीं होता। जैसा धर्म चारों वर्णों और चारों आश्रमों के वास्ते वेद में लिखा है वैसा कर्म करके अपने आचार व चलन से रहे तो प्रतिदिन ज्ञान व धर्म बढ़कर उसको मेरे मिलने की राह दिखलाई देती है। नियम व आचार धनी व कङ्गाल दोनों से निबह सकता है। सामर्थ्यवाला मल-मूत्र करने के उपरान्त दूसरी धोती पहिन लेवे और कङ्गाल मनुष्य जिसके पास दूसरा वस्त्र न हो वह गीली धोती पहिनकर अपना नियम रक्खे। सूखा अन्न हवा लगने से पवित्र रहता है। वह चाण्डाल के छूने से भी अशुद्ध नहीं होता। सूती कपड़ा धोने से पवित्र होता है। रेशमी वस्त्र को जब तक पहिनकर दिशा फिरने न जावे और भोजन करते समय व सूतक में न पहिने तब तक शुद्ध रहता है। उसे धोने का प्रयोजन नहीं होता। ताँबे व पीतल का बर्तन खटाई व राख से माँजने, चाँदी का धोने और सोने का हवा लगने से पवित्र होता है। कदाचित् किसी बर्तन या कपड़े में मल-मूत्र लग जावे तो जब तक उसकी दुर्गन्ध व रङ्ग न छूटे तब तक वह पवित्र नहीं होता। मनुष्य का शरीर प्रतिदिन स्नान, सन्ध्या-तर्पण

व होम करने से शुद्ध रहता है। ज्ञानी मनुष्य को सब वस्तु ठाकुर को भोग लगाकर भोजन करना चाहिए। बिना भोग लगाये कोई वस्तु अपने मांस के बराबर होता है। मनुष्य को भोजन बनाते समय अपना नाम लेना उचित नहीं है, यह बात कहनी चाहिए कि ठाकुरजी के भोग लगाने के वास्ते रसोई तैयार करो। इस तरह का अभ्यास रखने से सब पापों की जड़ अहङ्कार छूट जाता है। अज्ञान बालक को नियम व आचार रखना उचित नहीं है। पाँच वर्ष की अवस्था तक कुछ पाप व पुण्य किसी बात का उसे नहीं लगता। छठे वर्ष से लेकर बारह वर्ष की अवस्था तक कुछ हत्या आदि हो जावे तो उसका प्रायश्चित्त पिता को करना चाहिए। उसके उपरांत जो कुछ पाप करे तो उसका प्रायश्चित्त आप करना उचित है। विपत्ति पड़ने से कोई अधर्म करके भी अपना पेट पाले तो दोष नहीं लगता। सामर्थ्य रखकर धर्म छोड़ देने में पाप होता है जिस तरह सब धर्मों का विचार करना ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य उत्तम वर्ण को उचित है, नीच जाति के वास्ते कुछ आचार-विचार नहीं रहता उसी तरह कोठे पर सोनेवाले मनुष्य को नीचे गिरने का डर है, पृथ्वी पर सोनेवाला गिरने से नहीं डरता। इसलिए जहाँ तक बन पड़े वहाँ तक अपने को अधर्म करने से बचाये रहे जितना पाप कम करेगा उतना प्रतिदिन उसके लिए अच्छा होगा। संसारी चाह सब दुःख की जड़ है उसको छोड़ देनेवाले बहुत प्रसन्न रहते हैं। जिस तरह संसार में चाहना सबको दुःख देती है उसी तरह स्वर्ग में भी तीन वस्तुएँ दुःख देनेवाली हैं। दूसरों को अपने से ऊँचे सिंहासन पर बैठे देखकर डाह करना, दूसरे अपने बराबर बैठनेवाले से विरोध करना, तीसरे नीचे बैठनेवालों को अभिमान की राह छोटा समझना दुःख देनेवाला है। इसलिए स्वर्ग की भी इच्छा न रखनी चाहिए। जो मनुष्य संसारी सुख व स्वर्ग की चाह न रखकर हरिचरणों में ध्यान लगाये रहता है वह महाप्रलय तक मेरे साथ वैकुण्ठ में सुख भोगकर दूसरा जन्म नहीं पाता। हे उद्धव! जो लोग मुझे ईश्वर जानकर एक बेर भी सच्चे मन से मेरा स्मरण व ध्यान करते हैं वे मुझको कभी नहीं

भूलते। इसलिए मनुष्य को उचित है कि शास्त्रानुसार अपना धर्म रखकर मेरे चरणों में प्रीति लगाये रहे।



बाईसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का तत्त्वों का हाल वर्णन करना।

उद्धव ने इतनी कथा सुनकर विनय किया—हे वैकुण्ठनाथ! मैंने चौबीस तत्त्वों का हाल सुना, पर कोई ऋषीश्वर तीन तत्त्व, कोई छः, कोई नव और कोई ग्यारह तत्त्व कहते हैं, इसका भेद वर्णन कीजिए जिसमें मेरा सन्देह छूट जावे। श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! संसाररूपी माया से योगी व ऋषीश्वर कोई नहीं बचता। जो बात हम कहते हैं वह सच मानो। मेरी माया व्यापने से योगियों और ऋषीश्वरों को भी अनेक राह दिखलाई देती हैं। जब तक वे मेरे भेद को नहीं पहुँचते तब तक उनका मन एक बात पर स्थिर नहीं रहता। जिसने ज्ञान की राह मुझे पहिचाना उसके मन से सब भेद छूट जाता है। जब तक मेरी माया के तीन गुण सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण रहते हैं तब तक संसार की रचना होती है। उन तीनों के घटने-बढ़ने से जगत् की उत्पत्ति होती है। नव तत्त्व जो तुमने सुने थे उनके नाम ये हैं—पुरुष, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और माया। ग्यारह तत्त्व जो सुने हैं उनको त्वचा, आँख, नाक, कान और जिह्वा पाँच ज्ञानइन्द्रिय तथा हाथ, पाँव, लिंग, गुदा और वाक् पाँच कर्मइन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन समझना चाहिए। अंग को त्वचा से ठण्ढा, गर्म, कोमल और कड़ाई विचारना, आँखों से देखना, नाक से सूँघना, कान से सुनना, जिह्वा से खट्टे-मीठे का स्वाद चखना, हाथ से शुभ-अशुभ कर्म करना, पाँव से चलना, लिंग से स्त्री का सुख भोगना, गुदा से मल त्यागना, वाक् से बोलना मन की इच्छानुसार सब कर्म होते हैं। हे उद्धव! इन सब इन्द्रियों, अहंकार और महत्तत्त्व से संसार उत्पन्न होता है। छः तत्त्व जो कहते हैं उनको पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश पंचभूतात्मा और छठे परमात्मा पुरुष को जानो। जब तक मनुष्य मेरी माया में फँसा रहता है तब तक

उसे लाखों तरह के भ्रम लगे रहते हैं। जब उसने मेरी माया से विलग होकर मुझे अपना स्वामी जान लिया तब फिर उसका मन दूसरी ओर नहीं लगता। वह सब जीवों में मेरा प्रकाश बराबर देखता है। यह सब मन का बखेड़ा है। मनुष्य संसारी माया में फँसने से मुझे नहीं पहिचानता और मन को मेरी ओर लगाने से भवसागर पार उतर जाता है। हे उद्धव! मनुष्य मरते समय जिस ओर अपना मन लगाते हैं, मरने के उपरान्त वही तनु उनको मिलता है। हरिचरणों का ध्यान करने से अन्तःकरण शुद्ध होकर वैकुण्ठ में पहुँचते हैं। जो लोग अपना शरीर पुष्ट करने के लिए जीवहिंसा करते हैं उसको अवश्य नरकवास होकर चौरासी लाख योनि भोगनी पड़ती है। देखो, सोते समय शरीर एक जगह पड़ा रहकर मन कई जगह घूमने से अनेक तरह का स्वप्न देखता है और जागने में भी मन हजारों कोसों तक दौड़ जाता है, इसलिए मन को शरीर से विलग समझना चाहिए। जिसने मायारूपी ब्रह्माण्ड बनाया हुआ समझकर अपना मन वश में किया उसने इन्द्रियादिक सबको जीत लिया। मन के वश में रहनेवाले संसारी माया में फँसकर नष्ट होते हैं। आत्मा में मेरा प्रकाश शुद्ध रहकर कुछ नहीं करता, पर उसको भी माया के साथ फँसकर संसार उत्पन्न करना पड़ता है। मैं सतोगुण के साथ होकर ऋषीश्वर और देवता, रजोगुण से मिलकर दैत्य और मनुष्य, तमोगुण में मिश्रित होकर भूत, प्रेत व पशु आदि को उत्पन्न करता हूँ। जिस तरह मकड़ी अपने मुख से जाला निकालकर फिर खा लेती है उसी तरह हम भी अपनी शक्ति सबके तनु में रखकर मरने के उपरांत खींच लेते हैं। जैसे बहती नौका पर चढ़ने से किनारे के वृक्ष चलते हुए दिखलाई देते हैं और घूमते समय पृथ्वी व आकाश घूमता हुआ मालूम पड़ता है वैसे ही संसार के शुभ-अशुभ कर्म मेरी माया व इच्छा से होते हैं, पर मनुष्य ऐसा जानते हैं कि यह काम हमने किया। इसलिए ज्ञानी मनुष्य को अपना परलोक बनाने के वास्ते काम, क्रोध और मन आदि को अपने वश में रखकर किसी के गाली देने से खेद मानना न चाहिए।

तेईसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का उद्धव से एक ब्राह्मण का इतिहास वर्णन करना।

उद्धव ने यह सब ज्ञान सुनकर विनय किया—हे महाप्रभु ! यह बात बहुत कठिन है जो गाली व कठोर वचन सुनकर क्षमा करे। श्रीकृष्णजी ने कहा—हे उद्धव ! तुम सच कहते हो, तीर व तलवार के घाव मलहम लगाने से अच्छे हो जाते हैं, पर कठोर बात कहने से जो घाव कलेजे में पड़ जाता है वह किसी तरह नहीं मिटता। ये सब बातें मन के कारण होती हैं। जिसने अपने मन व अहंकार को वश में कर लिया उसे इन बातों का खेद नहीं होता। वह सब जीवों में परमेश्वर का चमत्कार एक-सा देखता है और सब बातों को परमेश्वर की इच्छा समझता है। जो लोग अपने मन और इन्द्रिय के वश हो रहे हैं उनको दुर्वचन कहने से क्रोध उत्पन्न होता है। इस बात का एक इतिहास तुमसे कहते हैं, मन लगाकर सुनो। उज्जैन नगर में एक ब्राह्मण बड़ा धनपात्र, व्यापार करनेवाला रहता था। वह ऐसा सूम, लोभी, क्रोधी और कामी था कि उसने कभी अपने जाति-भाई व ब्राह्मणादिक को मुख से भोजन करने के वास्ते नहीं कहा। एक कौड़ी के वास्ते मित्र का शत्रु हो जाता था। अपने खाने-पाहिनने में भी सूमपन रखता था। उसने बहुत धन बटोरा, पर सूम होने के कारण सब परिवारवाले और स्त्री-पुत्र उससे शत्रुता रखते थे। संसारी मनुष्य के पास द्रव्य होने से आत्मा, परिवार, देवता, पितर और अतिथि को सुख प्राप्त होता है, सो ये पाँचों उस ब्राह्मण के शत्रु थे। जब वह ब्राह्मण बूढ़ा हो गया और व्यापार करने की सामर्थ्य उसमें नहीं रही तब उन्हीं पाँचों के शाप से आग लगने, चोरों के चुरा ले जाने, राजा के लूटने और देनदारों के पचा लेने से उसका सब धन जाता रहा। जो द्रव्य पृथ्वी में गड़ा था वह भी टल गया। जब वह ब्राह्मण अपना सब धन खोकर खाने के लिए भी दुःखी हुआ और जाति-भाई लोग उसका निरादर करने लगे तब एक दिन बैठे हुए उसने मन में विचारा कि मैंने इतना द्रव्य बटोरकर कोई धर्म व कर्म परलोक बनाने के लिए नहीं किया और न खर्च करके संसारी सुख उठाया। सूम का धन इसी तरह व्यर्थ

जाता है। तृष्णा रखने से मनुष्य के सब गुण नष्ट होकर यश नहीं रहता। जिस तरह सुन्दर मनुष्य के मुख पर कोढ़ का दाग रहने से उसकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है, उसी तरह लोभी मनुष्य तेजहीन रहता है। उसे कोई अच्छा नहीं कहता। देखो, जिस धन को लोग उत्तम जानते हैं वह ऐसा बुरा होता है कि पहिले व्यापार करते समय अपने व बिराने के साथ शत्रुता करने व झूठ बोलने से मिलता है, और रात्रि-दिन उसकी रक्षा करने में चोर, डाकू, राजा और जाति-भाइयों का भय लगा रहने से अच्छी तरह निद्रा नहीं आती। द्रव्य प्राप्त होने से वेश्यागमन, जुआ, जीवहिंसा और जाति-भाइयों से अभिमान उत्पन्न होता है, और भी अनेक तरह के पाप करने में आते हैं, जिस कारण संसार में अपयश उठाकर मरने के उपरान्त नरक भोगना पड़ता है। परमेश्वर ने बहुत अच्छा किया जो मेरा सब धन जाता रहा। जिस द्रव्य में इतने अवगुण भरे हैं उसे पाकर शुभ कर्म में खर्च कर डालना चाहिए। द्रव्य इकट्ठा करने से दुःख के सिवा कुछ सुख नहीं मिलता। चार दिन के जीने में मायारूपी द्रव्य व स्त्री के वास्ते बहुत मनुष्यों से शत्रुता करनी उचित नहीं है। जो लोग भरतखण्ड में मनुष्य तनु पाकर द्रव्य, स्त्री और पुत्रों के प्रेम में फँसकर नष्ट होते हैं, उनका संसार में जन्म लेना व्यर्थ है और उन्हें बड़ा मूर्ख समझना चाहिए। देवता लोग यह इच्छा रखते हैं कि भरतखण्ड में हमारा जन्म मनुष्य के तनु में होता तो उस शरीर से जितनी बड़ी पदवी को चाहते हैं, पहुँच जाते। अब बुढ़ापा आने और इन्द्रियों की सामर्थ्य घटने से मैं कुछ शुभ कर्म नहीं कर सकता, इसलिए अब जितने दिन मेरे जीने में हैं उतने रोज अपने आत्मा को कुछ दुःख देकर परमेश्वर के स्मरण व ध्यान में मग्न रहूँ। ऐसा विचारकर उसने विरक्त होकर संन्यास धारण कर लिया और एक जगह बैठकर परमेश्वर का भजन व स्मरण करने लगा। जब वह ब्राह्मण नगर में भिक्षा करने जाता था तब पुरवासी उसको पहिचानकर पिछली बात याद करके बहुत दुःख देते थे। कोई गाली देकर उस पर थूक देता, कोई दण्ड व कमण्डलु छीनकर उसको रस्सों से बाँधकर कहता था कि यह बड़ा सूम व कपटी था अब बकुला भक्त बना है। हे उद्धव!

इसी तरह वह ब्राह्मण अनेक दुःख पाने पर भी किसी से कुछ खेद न मानकर अपने मन में समझता था कि मुझे कोई देवता, मनुष्य, नवग्रह, जाड़ा, बरसात और गर्मी कुछ दुःख नहीं देते, सब दुःख अपने प्रारब्ध व मन से होता है। संसारी मनुष्य अपना मन चलायमान होने से शुभ-अशुभ जैसे कर्म करते हैं वैसे दुःख व सुख उनको भोगना पड़ता है। जिसने अपना मन वश में किया उसे कुछ दुःख नहीं होता और यज्ञ-तप आदि करने का प्रयोजन नहीं रहता। पर यह चंचल मन बलवान् शत्रु जल्दी वश में नहीं होता। मन के कारण सदा शत्रु व मित्र होते आये हैं। मन को रोक लेने से कोई शत्रुता व मित्रता नहीं रखता। जिसने अपना मन वश में नहीं किया उसका धर्म व कर्म करना वृथा है। इसलिए मन को संसारी माया से रोककर हरिचरणों में लगाना चाहिए।

दो० मन के हारे हार है मन के जीते जीत। परब्रह्म को पाइये मनहीं की परतीत ॥

हे उद्धव! वह ब्राह्मण अपने मन को रोककर ऐसा ज्ञानी हो गया कि शत्रु व मित्र को बराबर समझकर किसी के गाली देने और मारने से क्रोध नहीं करता था। इसी तरह का ज्ञान मन में रखकर मरने के उपरान्त मुक्ति पदवी पर पहुँचा। इस अध्याय को सच्चे मन से कहने व सुननेवाला अपने मन व काम क्रोधादिक के वश न होकर भवसागर पार उतर जायगा।

चौबीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का आदि पुरुष व माया का हाल कहना।

श्रीकृष्णजी ने कहा—हे उद्धव! आत्मापुरुष व माया का हाल बिलग करके कहते हैं, सुनो। जहाँ आत्मापुरुष निरंकाररूप है वहाँ वाणी व मन पहुँचने की सामर्थ्य नहीं रखते। जब उस पुरुष को संसार उत्पन्न करने की इच्छा होती है तब वह पहिले अपनी माया को जिसे प्रकृति भी कहा जाता है, उत्पन्न करते हैं। उसी माया से सात्त्विक, राजस व तामस तीन गुण प्रकट होते हैं। जब तक तीनों गुण बराबर रहते हैं तब तक कोई जीव उत्पन्न नहीं होता, उनके घटने व बढ़ने से संसार की चाहना होती है। मेरा प्रकाश माया में मिश्रित होने से महत्तत्त्व प्रकट होकर उसमें अहङ्कार उत्पन्न होता है। अहङ्कार से वैकारिक, तामस व तेजस प्रकट होते हैं। वैकारिक से

पंचभूत व तामस से ग्यारह इन्द्रियाँ व तेजस से ग्यारह देवता इन्द्रियों के मालिक उत्पन्न होकर जब तक ये सब अलग रहते हैं तब तक ब्रह्माण्ड पुरुष प्रकट नहीं होता। जब मेरी शक्ति से ये सब वस्तुएँ इकट्ठी हो जाती हैं तो वह मेरा ब्रह्माण्डरूप होकर बहुत दिन तक जल में शेषनाग पर शयन करता है। उस स्वरूप की नाभि से एक कमल का फूल निकलता है। उस फूल की डार से ब्रह्मा उत्पन्न होकर तप करने के उपरान्त रजोगुण से सब जीव उत्पन्न करके तीनों लोकों की रचना करते हैं। देवता स्वर्गलोक, दैत्य व दानव आदिक पाताललोक और मनुष्य आदिक मृत्युलोक में रहकर अपने कर्मानुसार स्वर्ग व नरक का दुःख व सुख भोगते हैं। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र बदल जाते हैं। जब ब्रह्मा का एक दिन बीत-कर सन्ध्या समय वह सो रहते हैं तब कोई लोक नहीं रहता। जब ब्रह्मा प्रातःकाल उठकर रचना करते हैं तब फिर सब लोक व संसार प्रकट हो जाते हैं। ब्रह्मा के मरने के उपरान्त पानी के सिवा कुछ नहीं रहता। पृथ्वी पानी में, पानी अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहङ्कार में, अहङ्कार महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व माया में मिल जाता है और वह माया मेरे निरंकाररूप में समा जाती है।

पच्चीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का उद्धव से रजोगुण, तमोगुण व सतोगुण का लक्षण वर्णन करना।

श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! अब हम सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण का लक्षण वर्णन करते हैं, सुनो। जो मनुष्य मन में दया रख-कर अपनी इन्द्रियों के वश न होवे, शुभ कर्म करने का विचार किया करे, किसी के गाली देने से खेद न मानकर परमेश्वर का स्मरण व ध्यान करता रहे, सच बोले, स्वभाव में धैर्य रक्खे, मन में सन्तोष रखकर किसी वस्तु की चाह न करे, ठाकुरजी की पूजा व सेवा में मन लगाये रहे, ये लक्षण सतोगुण के हैं। जो मनुष्य सुन्दरी स्त्री, उत्तम भूषण, वस्त्र, स्थान व बाग आदि संसारी सुख की चाह रक्खे, अभिमान से किसी का कहना न माने, जो शुभ कर्म करे उसमें अपना यश चाहे, सदा सामर्थ्य व द्रव्य

बढ़ाने का उपाय करता रहे उसे रजोगुणी समझना चाहिए। जो मनुष्य अधिक क्रोध व लोभ रक्खे, झूठ बोले, जीवहिंसा करे, कुकर्म करने और माँगने से निर्लज्ज होकर लोगों के साथ झगड़ा करता रहे, आठों पहर आलस्य में भरा रहकर अधिक सोवे, ये लक्षण तमोगुण के हैं। सब वस्तु को अपना समझना और मेरा-तेरा विचारना, अपने को मैं जानना, यह बात तीनों गुण मिलने से होती है। पर मेरा भजन व ध्यान करने-वाले को सतोगुण के प्रताप से कुछ चाह नहीं रहती। तीनों गुण आठ पहर बराबर नहीं रहते, घटा-बढ़ा करते हैं। सतोगुण अधिक होने से मन में हर्ष व ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण बढ़ने से संसारी सुख की चाह होती है, तमोगुण अधिक होने से चिन्ता, क्रोध, नींद और आलस्य बढ़ता है। जीवहिंसा व अधर्म करने को मन चाहता है। जागना सतो-गुण, सोना व स्वप्न देखना रजोगुण, उदास होकर चिन्ता में बैठे रहना तमोगुण के लक्षण समझना चाहिए। थोड़ा खाना सात्त्विकी, अच्छा पदार्थ भोजन करने के लिए ढूँढ़ना राजसी, भूख से अधिक खाना जिसमें अजीर्ण उत्पन्न हो तामसी जानना उचित है। आत्मा तीनों में मिश्रित व सबसे विलग रहता है। सतोगुण स्वभाव वाले स्वर्ग का सुख भोगते हैं, रजोगुणी मनुष्य अपने कर्मानुसार दुःख व सुख भोगकर जन्म व मरण से नहीं छूटते और तमोगुणी लोग पशु आदिक चौरासी लाख योनि में उत्पन्न होकर अपने कर्मानुसार नरक में बड़ा दुःख पाते हैं। संसार से विरक्त होने व मेरे चरणों का ध्यान व भक्ति करनेवाले हमारे पास वैकुंठ में पहुँ-चते हैं। गृहस्थी छोड़कर वन में रहना सतोगुण, नगर व गृहस्थी में रहकर संसारी सुख चाहना रजोगुण और मद पीना, जुआ खेलना, परस्त्रीगमन करना, कुसंगति में बैठना तमोगुण है। ज्ञानचर्चा रखना सात्त्विक, श्राद्ध आदिक संसारी कर्म करना राजसी, जीवहिंसा व पाप आदिक तामसी और मेरी पूजा व जप में लीन रहना निर्गुण धर्म समझना चाहिए। हे उद्धव! इसी तरह सब बातों में सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के लक्षण हैं। कोई जीव तीनों गुणों से बाहर नहीं है। इन तीनों से विरक्त होकर निर्गुण भक्ति व पूजा करनेवाले मेरे निकट पहुँचते हैं।

छब्बीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णजी को उद्धव से जो ज्ञान राजा पुरूरवा को गन्धर्व लोक में हुआ वह वर्णन करना।

श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! जिसे मेरे मिलने की चाह हो वह मनुष्य कभी लम्पट, लोभी, जुआरी, संसारी प्रीति रखनेवाले, अपना शरीर पालन करनेवाले और अधर्मियों से संगति व प्रीति न रक्खे। ऐसे लोगों की संगति करने से भी नरक भोगना पड़ता है। इसलिए साधु व महात्माओं का सत्संग करना चाहिए जिससे हरिचरणों में प्रीति उत्पन्न हो। जिस तरह राजा पुरूरवा उर्वशी अप्सरा की प्रीति में फँसकर नष्ट हुआ था उसी तरह संसारी लोग स्त्री व लम्पट के पास बैठकर अपना परलोक बिगाड़ देते हैं। हे उद्धव! तुम उन लोगों की संगति कभी मत करना। इतनी कथा सुनकर उद्धव ने पूछा—हे त्रिभुवनपति! राजा पुरूरवा का हाल किस तरह है? यह वचन सुनकर मुरलीमनोहर ने कहा—हे उद्धव! जिस तरह राजा पुरूरवा इला नामक स्त्री से उत्पन्न होकर उर्वशी अप्सरा के वास्ते गन्धर्वलोक में जा बसा था वह सब कथा नवम स्कन्ध में लिखी है। अब उसके ज्ञान प्राप्त होने का हाल सुनो। जब राजा पुरूरवा ने गन्धर्वलोक में रहकर हजारों वर्ष उर्वशी के साथ भोग-विलास किया और उसका मन नहीं भरा तब मेरी इच्छानुसार एक दिन उसने ज्ञान की राह मन में विचारा कि इतने दिन कामदेव के वश होकर मैंने संसारी सुख उठाया, पर मेरी इन्द्रियों की चाह पूरी नहीं हुई। जिस तरह अग्नि में घी डालने से ज्वाला बढ़ती जाती है उसी तरह इन्द्रियों को जितना अधिक सुख देवे उतनी चाह बढ़कर कभी सन्तोष नहीं होता। मैं बुध का बेटा ऐसा ज्ञानी व प्रतापी राजा होकर उर्वशी के जाते समय उसके पीछे इस तरह नंगा उठ दौड़ा जिस तरह गदहा कामातुर होकर गदही को खरेदे चला जाता है। उसने मुझे ऐसा वश कर लिया जैसे नट लोग वानर को अपने अधीन कर लेते हैं। मैं उसके भोग-विलास में फँसकर ऐसा अन्धा हो गया कि मुझे छोटे व बड़ों की लज्जा न रही, दिन-रात बीतने की सुधि जाती रही। सातों द्वीपों के हजारों राजा, जो मेरे अधीन थे, मेरे अज्ञान पर हँसने लगे। सच है, जो कामी पुरुष स्त्री

के वश हो जाते हैं उन्हें अपना भला व बुरा दिखाई नहीं देता। उनका तेज, बल, ज्ञान व धर्म कुछ नहीं रहता। मांस की पुतली पर, जिसमें मल-मूत्र लोहू आदि भरा रहता है, सब द्वारों से अशुद्ध वस्तु निकलती है, मैं ऐसा बौरहा हो गया कि जहाँ इन्द्रादिक देवता मेरे साथ लड़ने की सामर्थ्य नहीं रखते थे वहाँ एक स्त्री ने जीतकर मेरा अभिमान तोड़ दिया। उसकी प्रीति में फँसकर अपने को ऐसा भूल गया कि उसके समझाने पर भी मुझे कुछ ज्ञान नहीं हुआ। जिस शरीर को मनुष्य अपना समझते हैं वह शरीर मरने के उपरांत कुछ काम नहीं आता। फिर उसे कोई एक दिन घर में नहीं रख सकता। इसलिए मनुष्य को उचित है कि पहिले से संसारी माया छोड़कर हरिचरणों में प्रीति लगावे। ऐसा विचारकर राजा पुरूरवा उर्वशी का प्रेम छोड़कर गन्धर्वलोक से पृथ्वी पर गिर पड़ा और हरिचरणों में ध्यान लगाकर मुक्ति पदवी पाई। हे उद्धव! स्त्री में ध्यान लगाये रहने से यज्ञ, तप, तीर्थ, व्रत, दान व धर्म आदि करने से कुछ लाभ नहीं होता और बिना सत्संग ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जो लोग अपने अज्ञान से समुद्ररूपी सागर में गोता खा रहे हैं उनको भव-सागर पार उतरने के वास्ते सत्संग नौका समझना चाहिए। अन्धे को सत्संग आँख के समान है। जिस तरह माता-पिता अपने पुत्र का भला चाहते हैं उसी तरह संसारी मनुष्य के कल्याण के लिए सत्संग होता है। जब मनुष्य को सत्संग करने से ज्ञान प्राप्त होता है और अपने शरीर व स्त्री आदि की प्रीति छूट जाती है तब वह विरक्त होकर हरिचरणों में ध्यान लगाने से मुक्ति पाता है। जबतक मायारूपी स्त्री व द्रव्य की तृष्णा नहीं छोड़ता तब तक स्वप्न में भी ज्ञान नहीं प्राप्त होता। संसारी मनुष्य का दुःख छोड़ानेवाली केवल मेरी भक्ति व शरण है, इससे उत्तम दूसरा उपाय नहीं है, इसलिए धन चाहनेवाले को धर्म करना उचित है। जो नरक जाने से डरता हो वह सत्संग में बैठे, तो उसको ज्ञान प्राप्त होकर मुक्ति मिलेगी। विरक्त पुरुष व सन्त महात्मा को मेरा स्वरूप समझना चाहिए।

—०—०—

सत्ताईसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी को उद्धव से पूजादिक की विधि कहना।

उद्धव ने इतनी कथा सुनकर विनय किया—हे दीनानाथ ! ब्रह्मचारी व वानप्रस्थ का धर्म और योग व तप आदि बहुत कठिन है। तुम्हारी पूजा के बिना शरीर पवित्र नहीं होता। ब्रह्मा, नारद, बृहस्पति और व्यासजी ने वेद व शास्त्र में अनेक उपाय लिखे हैं, सो दया करके अपनी पूजा की विधि, जिसके करने से संसारी लोग भवसागर पार उतर जाते हैं, वर्णन कीजिए। श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव ! मेरी पूजा का अन्त नहीं है, पर संक्षेप से थोड़ा हाल उसका कहता हूँ, सुनो। पूजा की एक विधि वेद में और दूसरी तंत्रशास्त्र में लिखी है। मनुष्य को चाहिए कि प्रातःसमय उठकर मेरा व अपने गुरु के चरणों का ध्यान करे। फिर उसको स्नान, सन्ध्या, तर्पण, जप करके सुचित्त होकर मेरा सगुण रूप पूजना चाहिए। मेरी मूर्ति आठ तरह की होती है। एक पत्थर, दूसरी काठ, तीसरी सोना, चौथी चाँदी, पाँचवीं पीतल, छठी ताँबा, सातवीं पृथ्वी पर चबूतरा आदिक और आठवीं मिट्टी का स्वरूप बनाकर पूजा व ध्यान करे। इसके सिवा रत्न, चित्रकारी, कागज, दीवार और शीशे पर मूर्ति बनाकर जिस तरह हो सके पूजा करना उचित है। दो तरह की मेरी मूर्ति होती है, एक चल व दूसरी अचल। ठाकुरजी आदि जो सिंहासन पर से उठाकर स्नान कराने के उपरांत सिंहासन पर बैठाकर पूजे जाते हैं उसे चल समझना चाहिए और जो मूर्ति शिवालय व मन्दिर आदि में स्थापना कर देते हैं और फिर वह उठ नहीं सकती उसको अचल जानना उचित है। चल-अचल दोनों मूर्ति को स्नान कराने व चन्दन लगाने के उपरांत भूषण-वस्त्र पहिनाकर धूप, दीप, माला, फूल, तुलसीदल, नैवेद्य से पूजन करके शीशा दिखलाना चाहिए। चित्रकारी की मूर्ति को स्नान कराना उचित नहीं है, कपड़े से पोंछकर पूजन करना उचित है। पृथ्वी पर चबूतरा आदि बनाये हो उसमें पहिले भगवान् का ध्यान करके विधिपूर्वक पूजना चाहिए। जो कोई मानसी पूजा करना चाहे वह अपने मन में नारायणजी के स्वरूप

का ध्यान लगाकर, जिस मूर्ति को पूजते हैं उसी तरह धूप दीप नैवेद्य आदि से ध्यान में पूजन करे। हमारा पूजन करते समय सुदर्शनचक्र, पाञ्चजन्य शंख, गदा, पद्म, धनुर्बाण, हल-मूशल, वैजयन्तीमाला, नन्द, सुनन्द, पुण्य, सुशील, गरुड़, विशुक, सेन, सुनाम नवो पार्षद, दुर्गादेवी, गणेश, वेदव्यास, इन्द्र आदिक देवताओं का ध्यान करना चाहिए। भोजन की जितनी वस्तु अपने को बहुत प्यारी हो उसे बनवाकर ठाकुरजी का भोग लगावे। कदाचित् नित्य सब तरह का भोजन तैयार न हो सके तो अन्नकूट आदि पर्व के दिन ठाकुरजी का भोग लगाने के लिए अवश्य छत्तीस व्यंजन बनवाना उचित है। जो मनुष्य प्रति दिन मिट्टी की मूर्ति बनाकर पूजा करे उसे आवाहन व विसर्जन का मंत्र अवश्य पढ़ना चाहिए। ठाकुर पूजनेवाले को वह मन्त्र पढना न चाहिए। होम करने-वाले को अग्नि में मेरा ध्यान लगाना और जल व सूर्य को भी हमारा रूप समझना उचित है। पूजा करते समय मेरे चरणों में मन लगाये रहे और पूजा करने के उपरांत साष्टांग दण्डवत् करके ठाकुरजी से हाथ जोड़कर कहे—हे महाप्रभु! मैं तुम्हारी शरण हूँ, मुझे अपना दास जानकर उद्धार कीजिए। इसीतरह नित्य पूजन के उपरांत चरणामृत लेकर ठाकुरजी का प्रसाद भोजन करे। विष्णुसहस्रनाम का पाठ करके मेरी कथा व लीला सुने, भजन व स्मरण करने में दिन-रात लीन रहे। जिसे परमेश्वर धन देवे वह ठाकुरमन्दिर के खर्च के वास्ते गाँव व जागीर देकर बाग लगवा दे जिसमें अच्छी तरह ठाकुरपूजा हो और अनेक रङ्ग के सुगन्धित फूल चढ़ा करें। पर उस बाग व गाँव को बेचने या पोत व किराया लेने की इच्छा न रक्खे। हे उद्धव! मैं भक्ति व प्रीति से जितना केवल जल चढ़ाने से प्रसन्न होता हूँ उतना बिना भक्ति करोड़ों रुपया हरिमन्दिर में लगाने व दान देने से राजी नहीं होता। जो मनुष्य सच्चे मन से प्रतिदिन इस तरह मेरी पूजा व सेवा करता है उसके सामने अठारहों सिद्धियाँ बनी रहती हैं। जितना फल पूजा करने और देवस्थान बनवानेवालों को प्राप्त होता है उतना पुण्य उनको भी समझना चाहिए जो लोग पूजा करने व देव-स्थान बनाने की सम्मति देकर उस काम में सङ्ग देते हैं जो लोग अपने

व दूसरे की दान दी हुई पृथ्वी ब्राह्मण से या देवस्थान आदि का चढ़ाया हुआ बाग बरजोरी छीन लेते हैं व ऐसी सम्मति देते हैं उनको साठ हजार वर्ष तक कीड़ा होकर विष्ठा में रहना पड़ता है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का उद्धव से विरक्त होने का ज्ञान वर्णन करना।

श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव ! ज्ञानी को किसी की स्तुति व निन्दा करना उचित नहीं है। सब जीवों में परमेश्वर का चमत्कार एकसा समझना चाहिए। दूसरे की निन्दा करनेवाले अवश्य नरक भोगते हैं, इसलिए मनुष्य को उचित है कि अपना मन एक ओर लगाये रखकर ठाकुर की पूजा करते समय दूसरी ओर ध्यान न लगावे। शरीर में एक आत्मा जो शुद्ध है उसका ध्यान आठों पहर करता रहे। इस बात का मन में विश्वास रक्खे कि नारायणजी माया के गुणों को साथ लेकर सब संसार उत्पन्न, पालन व नाश करते हैं। जब मनुष्य ऐसा विचारकर एक परमेश्वर को सच और संसारी व्यवहार को झूठा समझे तब उसका मन विरक्त होकर मेरी ओर लग जाता है। जब आत्मा मन और इन्द्रियों के साथ मिल गया तब वह संसारी प्रीति में फँसकर माया-जाल से नहीं छूटता। जिस तरह मनुष्य स्वप्न में अनेक वस्तु देखकर जागने के उपरान्त उसे झूठा समझता है उसी तरह संसारी व्यवहार मिथ्या है, केवल परमेश्वर का नाम सच जानना चाहिए। हर्ष, सोच, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, भय, प्रीति, शत्रुता, जन्म-मरण यह सब गुण माया के हैं, आत्मा उनसे विलग रहता है। यह संसार नट और भानमती के खेल के समान झूठा है। न आदि में था, न महाप्रलय में रहेगा। इसलिए मनुष्य को ज्ञानरूपी तलवार से संसारी प्रीति और मन तथा इंद्रियों की तृष्णा काट डालना चाहिए। जब उसने संसारी माया छोड़कर अपने मन व इन्द्रियों को वश में किया तब उसको घर व वन का रहना दोनों बराबर हैं। जिस तरह सोने का अनेक गहना बनवाने से नाम उसका पृथक्-पृथक् होता है और वह सब गहना गलवा डाले तो केवल सोना कहलाता है उसी

तरह संसार के आदि अन्त मध्य में कांचनरूपी नारायणजी रहते हैं। उनकी इच्छा से अनेक जीव उत्पन्न होते हैं और विलग-विलग उनके नाम होते हैं। महाप्रलय होने पर सारा जगत् नष्ट हो जाता है, सब जड़ और चैतन्य परमेश्वर के रूप में समा जाते हैं। जैसे सड़क में सीप का टुकड़ा चाँदी के समान चमकता हुआ देखकर कोई लोभी उठा लेवे और उठाते समय सीप समझकर लज्जित हो जावे वैसे ही संसारी गति झूठी समझना चाहिए। जिस तरह उड़ते हुए बादल से आकाश कुछ मिलावट नहीं रखता उसी तरह आत्मा चौरासीलाख योनि में व्यापक रहने पर भी सबसे विलग रहता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपना मन माया के गुणों से विरक्त रखकर हरिचरणों में ऐसा ध्यान लगावे कि संसारी वस्तु की कुछ चाह व प्रीति न रहे। जिस तरह औषध खाने से शरीर में रोग नहीं रहता उसी तरह अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखने से संसारी तृष्णा और प्रीति छूट जाती है। जिसने मन और इन्द्रियों को अपने वश में नहीं किया उसका तप व स्मरण करना वृथा है। जब मनुष्य का मन परमेश्वर के ध्यान में लीन हो गया तब उसे अपने शरीर व संसार की प्रीति नहीं रहती। इसलिए मनुष्य चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते-पीते आठों पहर अपना मन नारायणजी की ओर लगाये रहे। जिस तरह सूर्य निकलने से रात का अँधियारा दूर हो जाता है उसी तरह मेरी भक्ति करने से अज्ञान नहीं रहता। योग व तप भंग होने से जल्दी गति नहीं होती। मेरे भक्त से कुछ अपराध भी हो जाता है तो दूसरे जन्म में उसका उद्धार कर देता हूँ। आत्मा शरीर में रहने से सब इन्द्रियों को चलने-फिरने व बोलने की सामर्थ्य रहती है। जितने देवता अपना प्रकाश इन्द्रियों में रखते हैं उन देवताओं को भी वही आत्मा सामर्थ्य देखकर उनसे विलग रहता है। इसलिए ज्ञानियों और योगियों को चाहिए कि आत्मा की ओर ध्यान लगाकर संसारी माया व मोह में न फँसें। ऐसे मनुष्यों पर पिछले जन्म के अधर्म करने से कोई दुःख भी पड़ जाता है तो मैं उनका कष्ट निवारण कर देता हूँ। यह मेरा वचन सच्चा मानकर नाश होनेवाले शरीर से प्रीति न रखना और इन्द्रियों को सुख देना उचित नहीं है।

उन्तीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्णजी का उद्धव से मन के रोकने का ज्ञान कहना।

उद्धव ने इतनी कथा सुनकर विनय किया—हे दीनानाथ! आपने कहा कि मन को रोकना चाहिए, सो हवा से भी अधिक वेग रखनेवाले मन को रोकना बहुत कठिन है। कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिसमें मन रोका जावे और हरिचरणों में प्रीति उत्पन्न हो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई इसका यत्न बतला नहीं सकता। आपकी माया ने संसारी जीवों को ऐसा भुला रक्खा है कि तुम्हारी दया के बिना कोई मनुष्य इस मायारूपी जाल से नहीं छूटता। जहाँ ब्रह्मादिक देवताओं को तुम्हारा भेद जानना कठिन है वहाँ संसारी मनुष्य हरिचरित्र समझने की कहाँ सामर्थ्य रखते हैं। यह बात सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा—हे उद्धव! जो कोई संसार में जन्म लेकर मेरे चरणों का ध्यान व स्मरण करता है उसको धीरे-धीरे संसारी प्रीति छूटकर प्रति-दिन हरिचरणों में प्रेम बढ़ता है। जहाँ तीर्थ पर मेरे भक्त व ज्ञानी लोग रहते हैं वहाँ उनकी संगति में रहकर मेरा भजन व स्मरण किया करे और सब जीवों पर दया रखकर चौरासी लाख योनि में मेरा प्रकाश बराबर समझे। किसी जीव को दुःख न देकर जहाँ तक बन पड़े वहाँ तक मनसा वाचा कर्मणा दूसरे का उपकार करे। मन में यह अभिमान न रक्खे कि उत्तम जाति व बड़ा मनुष्य होकर कंगाल व शूद्र को किस तरह पानी पिलाऊँ और उसे छूकर भोजन दूँ। जब तक मनुष्य परमेश्वर का प्रकाश ब्राह्मण व चाण्डाल के तनु में एकसा नहीं समझता तब तक वह अज्ञान है। जिसने देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि चौरासी लाख योनि में परमेश्वर का रूप बराबर जाना उसे कोई दुःख देने की सामर्थ्य नहीं रखता। वह अवश्य मुक्त होता है। हे उद्धव! यह सब गुप्त ज्ञान हमने आज तक किसी से नहीं कहा था, सो तुझे सुनाया, इसको याद रखने से तेरी मुक्ति हो जावेगी। तुम भी यह ज्ञान हरिभक्तों और साधु-महात्मा लोगों को सुनाना। जो मनुष्य चोर, लम्पट, पाखण्डी, लोभी, जुआरी, मद्यप, झूठे और जीवहिंसक हों, उपकार न मानें, उनसे मत कहना। जिस तरह अमृत पीनेवाले को दूसरी औषध खाने का प्रयोजन नहीं रहता उसी

तरह यह ज्ञान समझनेवालों को अपने भवसागर पार उतरने के लिए दूसरा कोई उपाय न करना चाहिए। जो कोई यह ज्ञान व हरिकथा सच्चे मन से सुनकर दूसरे को उपदेश करेगा उसको हम यमराज की फाँसी से छोड़ाकर परम पद देवेंगे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! उद्धव ने यह सब ज्ञान सुनकर आँखों में आँसू भर लिया और श्रीकृष्णजी के सामने हाथ जोड़कर विनय किया—हे महाप्रभु! आपने दया करके ज्ञान का दीपक मेरे हृदय में प्रकाशित कर दिया और इस तरह मायारूपी अँधेरा छुड़ा दिया जिस तरह सूर्य निकलने से कुहिरा नहीं रहता। तुम्हारी कृपा से मेरा मन विरक्त होकर स्त्री व पुत्रों का प्रेम छूट गया। आपकी दया का बदला कोई देना चाहे तो किसी तरह उऋण नहीं हो सकता। आपके कमलरूपी चरणों को बार-बार दण्डवत् करके यह वरदान माँगता हूँ कि तुम्हारे चरण छोड़कर मेरा मन दूसरी ओर न जावे। यह वचन सुनकर श्रीकृष्णजी आनन्दमूर्ति ने अपने खड़ाऊँ देकर कहा—हे उद्धव! तुम यहाँ से बदरी-केदार जाकर नित्य गंगा स्नान किया करो और कन्दमूल खाकर मेरे चरणों का ध्यान लगावो। तुम्हारी मुक्ति हो जावेगी। अब मैं भी कलियुग के मनुष्यों का उद्धार होने के लिए भागवतरूपी अपनी मूर्ति संसार में छोड़कर गोलोक को जाऊँगा। उस कथा के पढ़ने व सुनने से संसारी मनुष्य भवसागर पार उतर जावेंगे। उद्धवजी यह वचन सुनकर श्यामसुन्दर का वियोग समझकर अति दुःखी हो गये, पर उनकी आज्ञा टालना उचित न जानकर खड़ाऊँ का जोड़ा शिर पर धर लिया और दण्डवत् व परिक्रमा करके मोहनीमूर्ति का स्वरूप आँखों की राह हृदय में रखकर उनसे विदा हुए। बदरिकाश्रम में जाकर त्रिभुवनपति की आज्ञानुसार स्नान व ध्यान करने लगे और उसी ज्ञान के प्रताप से कुछ दिन बीते अपना तन योगाभ्यास के साथ छोड़कर मुक्ति पदवी पर पहुँचे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने श्यामसुन्दर को ध्यान में दण्डवत् किया और परीक्षित से कहा—हे राजन्! देखो, त्रिभुवनपति ने सब वेदों का सार अमृतरूपी ज्ञान व मुक्ति निकालकर ग्यारहवें स्कन्ध में उद्धव को पिला दिया। जिस तरह

देवताओं और दैत्यों ने समुद्र मथन करके चौदह रत्न निकाले थे उसी तरह वेदव्यासजी ने सब वेद व शास्त्र देखकर उसका सार श्रीमद्भागवत बनाया है।

तीसवाँ अध्याय।

यदुवंशियों का लड़कर नाश होना और श्रीकृष्णजी के पाँव में जरा का बाण मारना।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर विनय किया—हे मुनिनाथ! श्यामसुन्दर को शाप छुड़ाने की सामर्थ्य थी, फिर क्यों उन्होंने यदुवंशियों पर दया नहीं की। शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! वसुदेवनन्दन परब्रह्म परमेश्वर के अवतार को, जो संसारी माया से रहित थे, यदुवंशियों का नाश करना था, पर उन्होंने उनका पालन किया था इसलिए अपने हाथ मारना उचित न जानकर ब्राह्मण से शाप दिलवा दिया। जब उद्धव बदरी-केदार की ओर चले गये तब श्रीकृष्णजी ने विचारा कि द्वारकापुरी में शाप नहीं व्यापेगा, इस कारण यदुवंशियों को प्रभासक्षेत्र में चलने के लिए कहा। त्रिभुवनपति की आज्ञानुसार राजा उग्रसेन और वसुदेवजी के सिवा सब यदुवंशी हाथी, घोड़े व रथों पर चढ़कर प्रभासक्षेत्र में पहुँचे और स्नान-दान करने के उपरांत उस दिन तीर्थव्रत रखकर वहाँ टिक रहे। दूसरे दिन परमेश्वर की इच्छानुसार सब यदुवंशी मदिरा पान करके मतवाले हो गये और समुद्र के किनारे बैठकर अपनी-अपनी बड़ाई करने लगे। इसी बात पर स्नान करते समय पहिले पानी के छींटों से लड़ने लगे, फिर आपस में बाण, तलवार, गदा आदि अनेक शस्त्र चलने लगे। जिस तरह अधर्म करनेवाले वेद व शास्त्र का वचन झूठा जानकर मन माना पाप करते हैं उसी तरह ब्राह्मण के शाप से यदुवंशी लोग श्याम व बलराम का समझाना न मानकर जब बलभद्रजी से लड़ने के लिए दौड़े तब दोनों भाई अलग बैठकर उनका कौतुक देखने लगे। जब लड़ते-लड़ते सबके शस्त्र टूट गये और हाथी-घोड़े भी मारे गये, तब उसी पतली को जो मूसल के चूर से समुद्र के किनारे जमी थी, उखाड़कर एक दूसरे को मारने लगे। दुर्वासा ऋषीश्वर के शाप से उस पतली से तलवार का-सा घाव होने लगा और सब यदुवंशी मरने लगे। जैसे कुलवन्ती स्त्री दूसरे पुरुष को देखकर छिप

जाती है वैसे ही क्रोध उत्पन्न होने से सब यदुवंशियों का सतोगुण व ज्ञान शरीर से जाता रहा। जिस तरह बाँस का वन आग लगने से जल जाता है उसी तरह दुर्बुद्धि उत्पन्न होने से बाप-बेटा व भाई-भाई आपस में लड़कर छप्पन करोड़ यदुवंशी नष्ट हो गये। जब श्याम व बलराम के सिवा और कोई जीता नहीं बचा तब श्यामसुन्दर ने बलभद्रजी से कहा कि अब पृथ्वी का भार उतर गया, इसलिए हम व तुम दोनों भाइयों को भी वैकुण्ठ को चलना चाहिए। यह सुनकर बलभद्रजी ने अपने सब वस्त्र उतार डाले और कौपीन बाँधकर सिंधु के तीर बैठकर योगाभ्यास के साथ अन्तर्धान हो गये। तब श्यामसुन्दर चतुर्भुजीस्वरूप धारण करके शंख, चक्र, गदा, पद्म समेत समुद्र के किनारे पीपल के वृक्ष के नीचे जा बैठे। जिस समय त्रिभुवनपति वृक्ष से उठँगे हुए दाहिना पैर अपने बायें घुटने पर रखकर वैकुण्ठ जाने की इच्छा करते थे उसी समय वसुदेवनन्दन की इच्छानुसार जरा नाम का केवट, जो बालि वानर का अवतार था, धनुष-बाण लेकर वहाँ आ पहुँचा। उसने मुरलीमनोहर का पैर दूर से चमकता हुआ देखकर हरिण के धोखे से बाण मारा। वह तीर, जिसमें मछली के पेट से निकले हुए लोहे का फल बना था, त्रिभुवनपति के चरण में लगा। जब वह केवट अपना शिकार उठाने के लिए उनके निकट आया तब श्यामसुन्दर के पाँव में घाव देखकर डर के मारे काँपता हुआ हाथ जोड़कर बोला—हे दीनानाथ! मेरे बराबर दूसरा कोई अपराधी संसार में न होगा, जिसने लक्ष्मीपति को तीर मारकर दुःख दिया। इस पाप से मेरा उद्धार किसी तरह नहीं हो सकता। इसलिए तुम मुझे अपने हाथ से मार डालो, जिसमें मेरे दण्ड पाने का हाल सुनकर कोई दूसरा मनुष्य सन्त व महात्मा का अपराध न करे। हे महाप्रभु! जब तुम्हारी माया को ब्रह्मादिक देवता नहीं जान सकते तब मुझ अधर्मी व अज्ञानी को क्या सामर्थ्य है जो तुम्हारी महिमा को समझ सकूँ। जब वह केवट बहुत विलाप करके मुरलीमनोहर के चरणों पर लोटने लगा तब श्यामसुन्दर ने हँसकर कहा कि तू उदास मत हो, मेरी इच्छानुसार तुझसे अनजान में यह अपराध हुआ है, जिसमें ब्राह्मण

का शाप झूठा न हो। तू धैर्य रख, तेरे वास्ते वैकुण्ठ से विमान आता है। यह वचन मुरलीमनोहर के मुख से निकलते ही एक विमान वहाँ आ पहुँचा। त्रिभुवनपति की आज्ञानुसार वह केवट दिव्य रूप होकर विमान पर बैठकर वैकुण्ठ को चला गया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! देखो, जो कोई ऐसे दीनदयालु परमेश्वर की शरण छोड़कर दूसरे का भरोसा रखता है उसे मूर्ख समझना चाहिए। उस केवट के जाने के उपरान्त दारुक सारथी ने ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँचकर जैसे मुरलीमनोहर को दण्डवत् किया वैसे ही त्रिभुवनपति की इच्छानुसार वह रथ घोड़ों समेत उड़कर आकाश में चला गया। श्रीकृष्णजी ने दारुक सारथी से कहा कि तुम द्वारका में जाकर वसुदेवजी आदि से यदुवंशियों का हाल कहकर उन्हें समझा देना कि अब द्वारकापुरी समुद्र में डूब जावेगी, इसलिए सब लोग अपनी-अपनी वस्तुओं समेत अर्जुन के साथ हस्तिनापुर चले जावें। हमारी ओर से अर्जुन से कह देना कि मेरे वैकुण्ठ जाने का कुछ सोच न करके सब स्त्रियों, बड़ों और लड़कों को अपने संग ले जावें और हमने जो ज्ञान गीता में समझाया है उसी को सच जानकर मेरे चरणों का ध्यान करते रहें। हे दारुक! मेरा भजन व स्मरण करने और अपना धर्म रखने से तेरी भी मुक्ति हो जावेगी। यह वचन सुनकर दारुक सारथी उनसे बिदा होकर रोता व पीटता हुआ द्वारका की ओर चला।

इकतीसवाँ अध्याय।

श्यामसुन्दर का वैकुण्ठधाम को जाना और वसुदेव आदि का उनके सोच में मरना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब देवताओं ने उस केवट को विमान पर चढ़े हुए वैकुण्ठ की ओर जाते देखा तब ब्रह्मा, इन्द्र, कबेर, वरुण, गन्धर्व, विद्याधर, चारण और किन्नर आदि सब देवता अप्सराओं को साथ लेकर अपने-अपने विमानों पर गाते-बजाते और फूल बरसाते हुए जहाँ पर श्यामसुन्दर बैठे थे वहाँ आकाश में आकर इस इच्छा से इकट्ठे हुए कि अब द्वारकानाथ वैकुण्ठ में आते हैं चलकर मोहनीमूर्ति की

छवि देख लें, नहीं तो फिर उस अद्भुत रूप का दर्शन कहाँ मिलेगा। हम लोग भी उनको अपने स्थान पर ले जाकर दो चार दिन उनकी सेवा करेंगे। ऐसा विचारकर वे लोग मुरलीमनोहर के चढ़ने के लिए अपने-अपने लोक से दिव्य विमान ले आये थे। जब श्यामसुन्दर ने देवताओं को आकाश में देखा तब अपने शरीर में परमात्मा का ध्यान लगाकर आँखें बन्द कर लीं। उसी शरीर से बिजली के समान चमककर इस तरह वैकुण्ठ को चले गये कि ब्रह्मादिक देवताओं को भी अच्छी तरह उनका स्वरूप दिखलाई नहीं दिया। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! वैकुण्ठनाथ की महिमा समझना बहुत कठिन है, पर सब लोग अपनी सामर्थ्य भर उनका गुण गाते हैं। देखो जो आदि-पुरुष भगवान् कैसे-कैसे वीरों को मारकर गुरु का मरा हुआ बेटा यमपुरी से ले आये थे वही त्रिभुवनपति मनुष्य तनु धरने के कारण जरा नामक केवट के बाण मारने से वैकुण्ठ को चले गये। जब श्रीकृष्णजी का वंश जगत् में नहीं रहा तो संसार में जन्म पाकर कौन जीता बचेगा। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जब दारुक सारथी ने द्वारका में पहुँचकर सब यदुवंशियों के मरने और श्याम व बलराम के वैकुण्ठधाम को जाने का हाल वसुदेव व उग्रसेन आदि से कहा तो सब स्त्री व पुरुष छोटे-बड़े जो वहाँ पर थे रोते-रोते व्याकुल होकर प्रभासक्षेत्र को दौड़े। जब उन्होंने रणभूमि में पहुँचकर समुद्र के किनारे सब यदुवंशियों की लोथें पड़ी हुई देखीं और श्याम व बलराम का दर्शन नहीं पाया तब वसुदेव, देवकी और राजा उग्रसेन हाय मारकर उसी जगह मर गये। रुक्मिणी और सत्यभामा आदि आठों पटरानियाँ और बल-रामजी की स्त्री रेवती चिता बनाकर जल मरीं। प्रद्युम्न आदि सब वीरों की स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के साथ सती हो गईं। उस समय अर्जुन ने भी वहाँ पहुँचकर यह दशा देखी और दारुक के मुख से श्यामसुन्दर की आज्ञा सुनी। उसने ऐसा सोच किया जिसका वर्णन नहीं हो सकता, पर श्यामसुन्दर ने जो ज्ञान गीता में अर्जुन से कहा था वह समझकर अपने मन को धैर्य दिया। सब लोगों ने अपने-अपने घरवालों की लोथें

जलाकर शास्त्रानुसार क्रिया-कर्म किया और जिनके कुल में कोई नहीं बचा था उनका अर्जुन ने दाह क्रिया। जब त्रिरात्री वहाँ पर हो चुकी तब अर्जुन अनिरुद्ध के बेटे वज्रनाभ और जो स्त्री-बूढ़े और बालक बच गये थे, अपने साथ लेकर हस्तिनापुर को चले। उसी समय श्रीकृष्णजी के रहने के स्थान के सिवा और सब द्वारका समुद्र में डूब गई। अब तक वहाँ कभी-कभी श्यामसुन्दर का मन्दिर बिजली की तरह चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है। जब अर्जुन ने हस्तिनापुर पहुँचकर यह सब समाचार कहा तब युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों ने हस्तिनापुर की राजगद्दी परीक्षित को और इन्द्रप्रस्थ व मथुरा का राज्य वज्रनाभ को, जो श्रीकृष्णजी के कुल में बचा था, दे दिया और आप पाँचों भाई विरक्त होकर उत्तर दिशा को चले गये और हिमालय में गलकर मुक्त-पदवी को पहुँचे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! जिस दिन श्रीकृष्णजी वैकुण्ठ को पधारे उसी दिन सत्य व धर्म संसार से उठकर उनके साथ चला गया। पर जो कोई इस स्कन्ध को मन लगाकर पढ़े व सुनेगा वह अनेक जन्म के पापों से छूटकर मुक्ति पावेगा।

———

बारहवाँ स्कन्ध ।



कलियुग के मनुष्यों और राजाओं का हाल कहना । तक्षक साँप का राजा परीक्षित को काटना और मार्कण्डेय ऋषीश्वर की कथा ।

पहिला अध्याय ।

शुकदेवजी का कलियुग के राजाओं का हाल परीक्षित से वर्णन करना ।

राजा परीक्षित ने इतनी कथा सुनकर विनय किया—हे मुनिनाथ ! आपने कहा कि जिस दिन श्रीकृष्णजी वैकुण्ठ को गये उसी दिन सत्य व धर्म संसार से उठ गया, क्या उनके पीछे कोई ऐसा धर्मात्मा राजा नहीं हुआ जो धर्म को स्थिर रखता ? अब यह बतलाइए कि फिर किसके वंश में राजगद्दी रही थी । शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित ! श्यामसुन्दर के रहने तक द्वापरयुग था, उनके पीछे कलियुग में जो राजा हुए उन्होंने सत्य व धर्म को छोड़ दिया । थोड़ी आयु रहने से कुछ शुभ कर्म भी नहीं कर सकते थे । जब श्रीकृष्णजी महाराज वैकुण्ठ धाम को गये तब पांडवों के वंश में तुम चक्रवर्ती राजा हुए और तुम्हारे उपरान्त वज्रनाभ व जन्मेजय चक्रवर्ती राजा होंगे । जरासन्ध का बेटा जो सहदेव था, उसके वंश में पुरुजित् नाम का राजा होगा । उसे चाणक मंत्री मारकर अपने पुत्र प्रदेवत् को राज्य देगा । उसके वंश में तीनसौ अड़तीस वर्ष तक राजगद्दी रहेगी । फिर शिशुनाग नाम राजा होगा । उसके कुल में काकौरन व क्षेमधर्मा आदि उत्पन्न होकर तीन सौ साठ वर्ष राज्य करेंगे । फिर महानन्दी राजा के बिन्द नाम का बेटा शूद्री से उत्पन्न होकर बर-जोरी सब क्षत्रियों का धर्म नष्ट करेगा । उसके डर से सब कुलीन क्षत्रिय भागकर पंजाब में जा बसेंगे । पर्वत पर रहनेवाले क्षत्रिय शूद्रधर्म रक्खेंगे । राजा बिन्द के आठ बेटे राज्य करेंगे । उन आठों को चन्द्रगुप्त नामक दास मारकर आप राजगद्दी पर बैठ जायगा । उसके वंश में वारिचारी व देवहूती आदि उत्पन्न होकर हजार वर्ष तक राजा रहेंगे, फिर देवहूती

का मंत्री कण्व अपने राजा को स्त्री के विषय में फँसे रहने से मारकर आप राज्य करेगा। उसी कुल में वसुदेव, बहुमित्र और नारायण आदि उत्पन्न होंगे। उनके वंश में तीनसौ पैंतालीस वर्ष तक राज्य रहेगा। फिर कनल नामक शूद्र नारायण राजा को मारकर आप राजगद्दी पर बैठ जावेगा। उसके वंश में कृष्ण व पूर्णमास आदिक उत्पन्न होकर तीस पीढ़ी साढ़े आठसौ वर्ष तक राज्य करेंगे। फिर उभरती शहर के रहनेवाले सात अहीर राजा होंगे। उन्हें मारने के उपरांत कावों का राज्य होगा। उनके पीछे चौदह पीढ़ी तक मुसलमान राजा होकर बादशाह कहलावेंगे। एक हजार निन्नानवे वर्ष उनका राज्य रहेगा। मुसलमानों को जीतकर दश पीढ़ी गोरण्ड राज्य करेंगे। उनके पीछे ग्यारह पीढ़ी निन्नानवे वर्ष तक मौन का राज्य होगा। इतने लोग कलियुग में नामी राजा होकर फिर अहीर, शूद्र और म्लेच्छ राजा होंगे। कलियुग में राजा अपना कर्म व धर्म छोड़कर स्त्री, बालक व गौ का वध करेंगे। दूसरे का धन, स्त्री व पृथ्वी बरजोरी छीनकर काम, क्रोध, लोभ अधिक रक्खेंगे। उनकी दशा देखकर प्रजा लोग अपने कर्म व धर्म से न रहकर बहुत पाप करेंगे।

—:o:—

दूसरा अध्याय।

शुकदेवजी को कलियुग वासियों का लक्षण कहना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! कलियुग में संसारी मनुष्य दया व सचाई छोड़ देने से सामर्थ्यहीन हो जावेंगे और आयु थोड़ी होने में कुछ शुभ कर्म उनसे नहीं बन पड़ेगा। राजा लोग प्रजा को दुःख देकर अन्न का चारों भाग ले लेंगे। वर्षा थोड़ी होगी, अन्न कम उत्पन्न होगा। महँगी पड़ने से सब मनुष्य खाने के बिना दुःख पाकर अपने-अपने वर्ण व आश्रम का धर्म छोड़ देंगे। कलियुग में मनुष्य की आयु एकसौ बीस वर्ष की लिखी है, पर अधर्म करने से पूरी आयु न भोगकर उसके भीतर मर जावेंगे। कलियुग के अन्त में बहुत पाप करने के कारण बीस-बाईस वर्ष से अधिक कोई नहीं जीवेगा। ऐसा चक्रवर्ती व प्रतापी राजा भी

कोई नहीं रहेगा जिसकी आज्ञा सातों दीपों के राजा पालन करें। जिनके पास थोड़ासा भी राज्य व देश होगा वे अपने को बड़ा प्रतापी समझेंगे। थोड़ी आयु होने पर भी पृथ्वी व धन लेने के लिए आपस में झगड़ा करेंगे और अपना धर्म व न्याय छोड़कर जो मनुष्य उनको द्रव्य देगा उसका पक्ष करेंगे। पाप पुण्य का विचार न रक्खेंगे। चोरी व कुकर्म करने और झूठ बोलने में अपनी अवस्था बिताकर दमड़ी की कौड़ी के लिए मित्र से शत्रु हो जावेंगे। गायों के दूध बकरी के समान थोड़ा होगा। ब्राह्मणों में कोई ऐसा लक्षण नहीं रहेगा जिसे देखकर मनुष्य पहिचान सके कि यह ब्राह्मण है। पूछने से उनकी जाति मालूम होगी। धनपात्र की सेवा सब लोग करेंगे, उत्तम-मध्यम वर्ण का कुछ विचार नहीं रहेगा। व्यापार में छल अधिक होगा। स्त्री-पुरुष का चित्त मिलने से ऊँच-नीच जाति आपस में भोग-विलास करेंगे। ब्राह्मण लोग अपना धर्म-कर्म छोड़कर जनेऊ पहिनने से ब्राह्मण कहलावेंगे। ब्रह्मचारी व वानप्रस्थ जटाशिर पर बढ़ाकर अपने आश्रम के आचार विचार छोड़ देंगे। उत्तम वर्ण कङ्गाल से धनपात्र मध्यम वर्ण को अच्छा समझेंगे। झूठी बात बनानेवाला मूर्ख मनुष्य सच्चा और ज्ञानी कहलावेगा। तीनों वर्णों के मनुष्य जप, तप, सन्ध्या व तर्पण करना छोड़कर नहाने के उपरांत भोजन कर लेंगे। केवल स्नान करना बड़ा आचार समझेंगे और ऐसी बातें करेंगे कि जिससे संसार में यश हो। अपनी सुन्दरता के लिए शिर पर बाल रक्खेंगे। परलोक का सोच न करेंगे। चोर व डाकू बहुत उत्पन्न होकर सबको दुःख देंगे। राजा लोग चोर व डाकू से मेल करके प्रजा का धन चुरवा लेंगे। दश वर्ष की कन्या बालक जनेगी और कुलीन स्त्रियाँ दूसरे पुरुष की चाह रक्खेंगी। अपना कुटुम्ब पालनेवाले को सब लोग अच्छा जानगें। केवल अपने पेट भरने से सब छोटे-बड़े प्रसन्न रहेंगे। बहुत लोग अन्न व वस्त्र का दुःख उठावेंगे। वृक्ष छोटे होंगे। औषधों में गुण नहीं रहेगा। शूद्र के समान चारों वर्णों का धर्म होगा। राजा लोग थोड़ी सी सामर्थ्य रखने पर सब पृथ्वी लेने की इच्छा रक्खेंगे। गृहस्थ लोग माता-पिता को छोड़-कर ससुर, साले और स्त्री की आज्ञा में रहेंगे। निकट के तीर्थों पर विश्वास

न रखकर दूर के तीर्थों में जावेंगे, पर तीर्थ में नहाने और दर्शन करने से जो फल मिलते हैं उस पर उनको निश्चय न होगा। होम और यज्ञ आदि संसार में कम होंगे। गृहस्थ लोग दो-चार ब्राह्मण खिला देने को ही बड़ा धर्म समझेंगे। सब लोग धर्म व दया छोड़कर ऐसे सूम हो जावेंगे कि उनसे अतिथि को भी भोजन व वस्त्र नहीं दिया जायगा। संन्यासी लोग अपना कर्म-धर्म छोड़कर गेरुआ वस्त्र पहिनने से दण्डी मालूम होंगे। इतनी कथा सुनाकर शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जब कलियुग के अन्त में इसी तरह घोर पाप होगा तब नारायणजी धर्म की रक्षा करने के लिए सम्भल देश में गौड़ ब्राह्मण के घर कलंकी अवतार लेंगे। नीले घोड़े पर चढ़कर हजारों राजाओं, अधर्मियों और पापियों को खड्ग से मार डालेंगे। जब उनके दर्शन मिलने से बचे हुए मनुष्यों को ज्ञान प्राप्त हो जावेगा तब वे लोग पाप करना छोड़कर अपने धर्म से चलेंगे। उसके आठसौ वर्ष उपरांत सतयुग होगा, सब छोटे-बड़े अपना धर्म करेंगे। हे राजन्! इसी तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों का वंश बराबर चला आता है। सतयुग के आदि में राजा देवापि चन्द्रवंशी जो बदरिकाश्रम में और राजा मरु सूर्यवंशी जो मन्दराचल पहाड़ पर बैठे हुए तप कर रहे हैं, सूर्यवंशी कुल को उत्पन्न करेंगे। सतयुग के प्रवेश करने से कलियुग का धर्म जाता रहेगा। देखो, इतने बड़े-बड़े राजा पृथ्वी पर होकर मिट्टी में मिल गये, भलाई-बुराई के सिवा कुछ उनके साथ नहीं गया। यह शरीर मरने के उपरांत कुछ काम न आवेगा। इसको कौवे व कुत्ते खा जाते हैं। कीड़े पड़ने व दुर्गन्ध आने से कोई उसके पास खड़ा नहीं होता। जला देने से राख हो जाता है। जो लोग नाश होनेवाले शरीर को पुष्ट करने के लिए जीवहिंसा करते हैं उनको बड़ा मूर्ख समझना चाहिए। बड़े-बड़े प्रतापी राजाओं का नाश हो गया, केवल उनका यश-अयश रह गया। यह शरीर लाखों यत्न करने पर भी किसी तरह स्थिर नहीं रहता इसलिए मनुष्य को उचित है कि अपने शरीर, संसार की प्रीति व अहंकार छोड़-कर हरिचरणों में ध्यान लगावे और परमेश्वर का भजन व स्मरण करके

भवसागर पार उतर जावे। मनुष्यतनु पाने का यही फल है। नहीं तो पीछे बहुत पछतावेगा। हे परीक्षित! तुम बड़े भाग्यवान् हो जो अन्त समय परमेश्वर की कथा व लीला सुनने में तुम्हारा मन लगा है।

तीसरा अध्याय।

शुकदेवजी का राजा परीक्षित से पिछले राजों का हाल कहना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! जो राजा दूसरे का राज्य व धन लेने की इच्छा रखकर पिता-पुत्र, भाई-भाई में लड़ मरते हैं। ऐसे राजों को पृथ्वी हँसकर कहती है कि देखो, सब मृत्यु का कलेवा होकर मेरे मालिक हुआ चाहते हैं। अपने बाप-दादा का मरना देखकर भी संसारी तृष्णा नहीं छोड़ते। जितना परिश्रम दूसरे की पृथ्वी, द्रव्य व स्त्री लेने के लिए करते हैं तथा अपने व बिराने को मार डालते हैं उतना काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि बलवान् शत्रुओं को जीतने व अपना परलोक बनाने के लिए नहीं करते। जब राजा पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, सहस्रार्जुन, मान्धाता, सगर, खट्वांग, धुन्धमार, रघु, तृणबिन्दु, ययाति, सर्याति, कुबलयाश्व, बलि, नृग, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, वृत्रासुर, रावण और भौमासुर आदिक ऐसे-ऐसे प्रतापी शूरवीर तथा सब गुण व योगाभ्यास जाननेवाले राजा मेरे ऊपर रहकर मुझे अपना कहते-कहते मर गये, पर मैं किसी के साथ न जाकर अब केवल उन लोगों की कहानी मात्र रह गई, तब कलियुगवासी छोटे-छोटे राजा, जो कुछ धर्म व पराक्रम नहीं रखते, वृथा मुझे अपना जानकर आपस में लड़ते-मरते हैं। इसलिए मनुष्यतनु पाकर यह चाहिए कि अपना मन संसार से विरक्त रखकर परमेश्वर की लीला व कथा सुने और हरिचरणों में प्रीति उत्पन्न करे। हे राजन्! तुमको कुछ संसारी चाह रह गई हो तो इन राजाओं की गति समझकर विरक्त होने के लिए हरिचरणों में ध्यान लगावो। संसारी व्यवहार झूठा होकर हरिभजन के सिवा और कुछ साथ नहीं जाता। इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित ने विनय किया—हे मुनिनाथ! चारों युगों के कौन-कौन धर्म हैं और कलियुग में कौन उपाय करने से हरिचरणों में

प्रीति उत्पन्न होती है ? शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित ! सतयुग में धर्म के चारों पैर सत्य, दया, तप और दान बने थे। सब छोटे-बड़े अपने-अपने धर्म-कर्म से रहते थे। सब लोग आपस में प्रीति रखकर कोई किसी से शत्रुता नहीं रखता था। त्रेता में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपना-अपना धर्म रखकर यज्ञ आदि करते थे, परन्तु दूसरे की स्त्रीगमन करने से धर्म का एक पैर टूट गया था। द्वापर में संसारी मनुष्य यश मिलने के लिए यज्ञ व पूजा करते हैं, परन्तु दूसरे का धन लेने और परस्त्रीगमन करने से धर्म के दो चरण टूट गये हैं। कलियुग में तीन अंश पाप और एक अंश पुण्य होगा। धर्म का एक चरण रह जायगा, तीन पैर टूट जायँगे। कलियुग में मनुष्य केवल थोड़ा-सा दान देंगे और कुछ सचाई रक्खेंगे, किन्तु कलियुग के अन्त में वह भी छोड़ देंगे। कलियुग में मनुष्य लोभी, कुरूप और अभागी अधिक उत्पन्न होंगे। एक-दो रुपये के लिए मनुष्य को मार डालेंगे। कुलीन स्त्रियाँ अपने पति की प्रीति छोड़कर दूसरे पुरुष से प्रेम रक्खेंगी। जब तक पति धनपात्र रहेगा तब तक स्त्री उसकी आज्ञा में रहेगी, विपत्ति पड़ने पर दूसरे पुरुष के पास चली जावेगी। अच्छे भोजन व सुन्दरी स्त्री की चाह में संन्यासी आदि गृहस्थ हो जावेंगे। विपत्ति पड़ने पर सेवक अपने स्वामी को छोड़कर दूसरी जगह चाकरी करेगा। सब लोग अपने स्वार्थ की प्रीति रक्खेंगे। राजा लोग अपने दासों को बुढ़ापे के समय छोड़ देंगे। बहुत मनुष्य द्रव्य व सन्तान की अधिक चाह रखकर भूत-प्रेतों को पूजेंगे। धन लेने के लिए बेटा मां-बाप को दुःख देगा। माता-पिता भी खाने के लोभ से अपना बेटा बेच डालेंगे। शूद्र लोग वैरागी व संन्यासी आदि का वेष बनाकर दान लेंगे और ब्राह्मणों को मंत्र का उपदेश करेंगे। आप कथा बाँचने के लिए ऊँचे सिंहासन पर बैठकर ब्राह्मणों को नीचे बैठालेंगे। इसी तरह अनेक पाप संसार में होंगे। हरिभजन व स्मरण कम हो जायगा। चारों युग का फल प्रतिदिन मनुष्य के शरीर में प्रकट होता है। जिस समय मन जप, ज्ञान व धर्म की ओर लगे उस समय सतयुग का धर्म समझना चाहिए। जब लोभ व तृष्णा मन में अधिक उत्पन्न हो तब

त्रेतायुग का धर्म जानो। जिस समय अभिमान, कामदेव व प्रेम मन में प्रकट हो उस समय द्वापर का धर्म समझो। जब झूठ, जीवहिंसा व क्रोध मन में अधिक उत्पन्न हो वह कलियुग का धर्म जानना उचित है। राजा परीक्षित ने कलियुग का लक्षण सुनते ही बहुत डरकर पूछा—हे मुनिनाथ! जब कलियुग का ऐसा धर्म है तो संसारी जीव किस तरह उद्धार होंगे? शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! कलियुग में यज्ञ, तप व योगाभ्यास आदि कुछ नहीं बन पड़ता, परन्तु एक बात बहुत अच्छी है कि दूसरे युगों में संसारी मनुष्य सच्चे, धर्मात्मा और दयावान् होने पर भी बहुत दिनों तक यज्ञ, तप, पूजा और तीर्थ स्नान करने से मुक्त होते थे, किन्तु कलियुग में केवल परमेश्वर का नाम जपने, उनकी लीला व कथा सुनने और गंगा नहाने से भवसागर पार उतर जाते हैं। जिस तरह महापापी अजामिल ब्राह्मण मरते समय नारायण नामक अपने बेटे को पुकारने से वैकुण्ठ को चला गया था उसी तरह कलियुग में परमेश्वर का नाम लेते ही सब पापों से छूटकर मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। दूसरे युग में अधर्म कम था, जब किसी से कुछ पाप हो जाता था तब वह उसका प्रायश्चित्त कर डालता था, कलियुग में बहुत अधर्म होने से कोई प्रायश्चित्त नहीं कर सकता, इसलिए दीनदयालु परमेश्वर केवल नाम लेने से सब पापों से छुड़ाकर सहज में मुक्त कर देते हैं। तिस पर भी कलियुग में अज्ञानी मनुष्य दिनरात संसारी सुख में फँसे रहकर एक क्षण नारायणजी का स्मरण नहीं करते। जिह्वा से वृथा बकते हैं, परमेश्वर का नाम नहीं लेते। कलियुग में केवल भगवान् का नाम लेने, पूजा, ध्यान, भजन करने, उनकी कथा व लीला सुनने और भक्ति रखने से मनुष्यों का सब दुःख, पाप और अज्ञान छूट जाता है। जब उनके हृदय में नारायणजी की कृपा से ज्ञानरूपी दीपक प्रकाशित होता है तब वह मायारूपी अँधियारे से बाहर निकलकर मुक्ति पाते हैं। मनुष्य सतयुग में तप, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजा, कलियुग में भजन व स्मरण करने से कृतार्थ होता है। सो हे राजन्! तुम भी श्रीकृष्णजी साँवली सूरत का ध्यान हृदय में लगावो तो चतुर्भुजी स्वरूप हो जावोगे। तुमने कलियुग में

उद्धार होने का धर्म जो पूछा था सो संसाररूपी समुद्र से पार उतरने के लिए परमेश्वर की लीला व कथा सुनना व पढ़ना सहज समझना चाहिए। इससे उत्तम कोई दूसरा उपाय नहीं है। यह श्रीमद्भागवत पुराण जो ब्रह्माजी से नारदमुनि ने सुनकर वेदव्यासजी को बतलाया और मैंने उनसे पढ़कर तुमको सुनाया। जब यही कथा सूतजी नैमिषार मिश्रिष में शौनक आदि अट्ठासी हजार ऋषीश्वरों को सुनावेंगे तब यह अमृतरूपी कथा कलियुग में प्रकट होकर संसारी मनुष्यों को भवसागर पार उतारेगी।

—:o:—

चौथा अध्याय।

शुकदेवजी का अग्नि, जल और वायु आदि का हाल राजा परीक्षित से वर्णन करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे परीक्षित! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र राज्य भोगते हैं। सन्ध्या समय प्रलय होने से तीनों लोकों में सब जीवों का नाश हो जाता है। उनके दिन के प्रमाण रात भी होती है। रात के समय ब्रह्मा सो रहते हैं। जब ब्रह्मा की आयु पूरी होकर महाप्रलय होता है तब सैकड़ों वर्ष पहिले से अवर्षण होकर काल पड़ता है। अन्न न उत्पन्न होने से सब जीव मारे भूख के मर जाते हैं। पाताल में शेष-नागजी विष उगलकर और आकाश में सूर्यदेवता अपना तेज प्रकट करके चौदहों लोकों को जला देते हैं। फिर मेघपति के पानी बरसाने से पृथ्वी पर जल के सिवा और कुछ दिखलाई नहीं देता। जल, अग्नि, वायु, आकाश में, आकाश शब्द में, यह पाँच तत्त्व अहङ्कार में, अहङ्कार महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व माया में और माया ईश्वर के रूप में समा जाती है। केवल नारायणजी अविनाशी पुरुष, जिनका आदि-अन्त कोई नहीं जानता और उनके पास मन, शब्द, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण आदि पहुँच नहीं सकते, वर्तमान रहते हैं। ये लक्षण महाप्रलय के हैं। जागना, सोना, सुषुप्ति और संसारी उत्पत्ति माया के गुणों से समझनी चाहिए। आदिपुरुष भगवान् को ज्ञानरूपी आँख से देखने पर मायारूपी संसार झूठा मालूम होता है। जिस तरह कपड़े में सूत के तार होते हैं उसी तरह सब जीवों में परमेश्वर की शक्ति व्याप्त रहती है। जिसने सूर्यरूपी

ज्ञान समझा उसके हृदय में काम, क्रोध, मोह और लोभ का अँधियारा नहीं रहता। वह देवता, मनुष्य, दैत्य और पशु आदि चौरासी लाख योनि को बराबर समझकर किसी के साथ शत्रुता व मित्रता नहीं रखता। जिस तरह बत्ती जलने से दीपक का तेल कम होता और तेल चुक जाने से दिया बुझ जाता है, तेल का जलना कुछ मालूम नहीं होता उसी तरह कालपुरुष प्रतिदिन तेज, बल, आयु क्षीण करते-करते मृत्यु आने पर सब जीवों को मार डालता है। अज्ञानी मनुष्य अपना मरना याद नहीं रखता। जो कोई कालपुरुष से बचना चाहे वह हरिभजन व स्मरण करके भवसागर पार उतर जावे।

—:०:—

पाँचवाँ अध्याय।

शुकदेवजी का राजा परीक्षित से परमेश्वर की महिमा वर्णन करना।

शुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! श्रीमद्भागवत में सब लीला व चरित्र परमेश्वर का लिखा है। भागवतपुराण को, उन परब्रह्म का स्वरूप समझना चाहिए जिनकी नाभि से कमल का फूल निकलने से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और उन्हीं ने महादेव को उत्पन्न किया। तुम तक्षक साँप के काटने और अपने मरने का कुछ डर न करो। सब जगह परमात्मा पुरुष को वर्तमान देखो। आदि, अन्त व मध्य में केवल परब्रह्म अविनाशी पुरुष को, जो उत्पन्न होने व मरने से रहित हैं, सत्य जानो। संसार का सब व्यवहार झूठा समझो। तब तुमको मालूम होगा कि कौन किसको काटता है। अपने अज्ञान व परमेश्वर की माया से संसारी लोग उत्पन्न होना व मरना मालूम करते हैं। सच पूछो तो आत्मा सदा अमर रहकर कभी नहीं मरता और यह शरीर माया के गुणों से बनता व बिगड़ता रहता है। जिस तरह पानी भरे हुए बर्तन में छाया पड़ने से दूसरे सूर्य दिखलाई देते हैं, बर्तन तोड़ डालने से फिर वह छाया सूर्य में मिल जाती है और बर्तन के तोड़ने से सूर्य का नाश नहीं होता उसी तरह शरीर उत्पन्न होने से जन्म लेना और उसका नाश होने से मरना कहा जाता है, इसलिए परमात्मा को सूर्यरूपी जानकर शरीर को बर्तन के

समान समझना चाहिए। यह शरीर पाँच कर्मइन्द्रिय, पाँच ज्ञानइन्द्रिय, पाँच तत्त्व, मन और बुद्धि, सत्रह वस्तु मिलकर तैयार होता है। बुद्धि को रथरूपी और मन को उस रथ का घोड़ा जानना चाहिए। उस मन में परब्रह्म का प्रकाश मिलने से शरीर को चलने-फिरने और खाने-पहिनने की सामर्थ्य होती है। जब वह प्रकाश शरीर से निकलकर बिलग हो जाता है तब शरीर मुर्दा होकर सिवा गल व सड़ जाने के कुछ काम नहीं आता। चौरासी लाख योनि में नारायण की शक्ति है और बाहर भी वही परमेश्वर कालरूप से रहते हैं। सो तुम अपना शरीर माया का बनाया हुआ समझकर परमात्मा को तनु से अलग जानो। ब्राह्मण के शापानुसार तक्षक साँप के काटने से आज तुम्हारा शरीर नष्ट हो जायगा। जीवात्मा जो शरीर से बिलग रहता है वह नहीं मरेगा। अब तुम्हारे मरने का समय निकट आ पहुँचा, इसलिए परमेश्वर के चरणों में मन लगाकर उनके नाम का स्मरण करो और इस बात का विश्वास मानो कि नारायण का नाम लेने से अनेक जन्म के पाप छूट जाते हैं। भागवतपुराण सुनने से अब तुम्हारी मुक्ति होने में सन्देह नहीं रहा। जब तुम श्यामसुन्दर का ध्यान करोगे तब उनकी ज्योति में लीन होने से इस शरीर के छूटने का ज्ञान नहीं रहेगा। ऐसा मूल मन्त्र, जिसमें सब गुण परमेश्वर के लिखे हैं, हमने तुमको सुना दिया, इससे उत्तम कौन वस्तु चाहते हो। इस अमृतरूपी कथा को सच्चे मन से पढ़ने व सुननेवाले अवश्य मुक्ति पदवी पर पहुँचते हैं।

छठा अध्याय।

राजा परीक्षित को तक्षक साँप का काटना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जब श्रीमद्भागवत सात दिन में सुनकर राजा परीक्षित का अज्ञान जाता रहा और परमात्मा को शरीर से अलग सब जगह वर्तमान देखने से शरीर की प्रीति छूट गई तब उसने विधिपूर्वक शुकदेवजी की पूजा करने व चरण पर गिरने के उपरांत हाथ जोड़कर विनय किया—हे मुनिनाथ! आपने मेरा संदेह व शोक छुड़ाकर मुझे उद्धार किया। महात्मा व परोपकारी लोग सदा से अज्ञानी

मनुष्य को ज्ञानरूपी रस्सी थँमाकर निकालने के उपरांत भवसागर पार उतार देते हैं। यह भागवतपुराण, जिसके आदि, मध्य और अन्त में श्रीकृष्णजी का माहात्म्य लिखा है, सुनकर मेरा मन हरिचरणों में लीन हो गया, इसलिए अब मुझे तक्षक साँप के काटने और अपने मरने का कुछ डर नहीं रहा। आज सातवें दिन तक्षक के काटने से मैं यह शरीर त्याग करूँगा। आप आज्ञा दीजिए तो बोलना छोड़कर श्यामसुन्दर के स्वरूप का ध्यान लगाऊँ। शुकदेवजी ने कहा कि इस समय तुमको हरि चरणों का ध्यान अवश्य करना चाहिए। जब यह वचन सुनकर परीक्षित आँखें बन्द करके श्रीकृष्णजी का ध्यान करने लगा और शुकदेवजी व सब ऋषीश्वर वहाँ से उठकर अपने-अपने स्थान को चले गये तब तक्षक साँप पहर दिन रहे अपने स्थान से ब्राह्मण का रूप धरकर परीक्षित को काटने चला। उसी समय कश्यपजी की आज्ञा से धन्वन्तरि वैद्य तुमड़ी आदिक सब औषधें झोली में लेकर परीक्षित को अच्छा करने के लिए घर से निकले। जब राह में ब्राह्मणरूपी तक्षक ने धन्वन्तरि को देखकर पूछा कि तुम कहाँ जाते हो तब उन्होंने उत्तर दिया कि आज हस्तिनापुर में तक्षक सर्प राजा परीक्षित को काटेगा, इसलिए मैं उसका विष उतारने जाता हूँ। यह बात सुनकर मायारूपी ब्राह्मण ने पूछा कि तुम तक्षक साँप के काटे हुए को अच्छा कर सकते हो ? धन्वन्तरि बोले कि तक्षक क्या, किसी तरह का साँप काटे, मैं अच्छा कर सकता हूँ। यह वचन सुनकर उसने कहा कि तक्षक साँप मैं हूँ, मैं एक वृक्ष को काटता हूँ, तुम फिर उसे हरा कर दो तो मुझे विश्वास हो कि परीक्षित का विष उतार सकोगे। धन्वन्तरि ने कहा बहुत अच्छा। जैसे ही तक्षक ने उसी जगह बरगद के वृक्ष को काटा वैसे ही वह वृक्ष एक लोहार समेत, जो उस पर चढ़ा हुआ लकड़ी काटता था, तक्षक के विष से जलकर राख हो गया। धन्वन्तरि ब्राह्मण ने आचमन करके संजीवनी मंत्र पढ़कर जैसे उस राख पर पानी का छींटा मारा वैसे राख से डाली व पत्ता निकलकर दो घड़ी में फिर वह वृक्ष ज्यों का त्यों तैयार हो गया। लकड़ी काटनेवाला लोहार भी जी उठा। यह हाल देखकर तक्षक साँप घबराकर धन्वन्तरि से बोला—हे द्विजराज ! तुम

किस वस्तु की चाह रखकर परीक्षित का विष उतारने जाते हो ? धन्वन्तरि ने उत्तर दिया कि हम ऐसे धर्मात्मा राजा को, जिससे बहुत लोगों का भला होता है, जिलाकर मुँहमाँगा धन पावेंगे। तक्षक बोला—महाराज! तुम केवल विष उतारने का मंत्र जानते हो या और भी कुछ ज्ञान रखते हो ? धन्वन्तरि ने कहा कि मैं भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालों की बातें जान सकता हूँ। यह बात सुनकर तक्षक ने पूछा—हे द्विजराज! पहिले तुम विचारो कि राजा परीक्षित की आयु पूरी हो चुकी या कुछ और बाकी है। धन्वन्तरि ने अपनी विद्या से विचारकर कहा कि परीक्षित की आयु पूरी होकर अब थोड़ा विलम्ब उसके मरने में रह गया है। यह बात सुनकर तक्षक बोला कि महाराज, जब ऐसा है तब तुम्हारा मंत्र उसको गुण न करेगा। उसकी कुछ आयु होती तो तुम अवश्य उसे जिला देते, और तुम्हें द्रव्य की चाह है तो मुझसे लेकर अपने घर चले जाओ। धन्वन्तरि ने कहा बहुत अच्छा। तक्षक ने एक वृक्ष के नीचे उनको द्रव्य बतला दिया। धन्वन्तरि वहाँ खोदकर जितना उनसे उठ सका उतना द्रव्य लेकर अपने घर चले गये। तक्षक हस्तिनापुर में जाकर कीड़ारूप से एक फूल में बैठ गया। जब ब्राह्मणों ने वह फूल उठाकर राजा परीक्षित को दिया तब कीड़ारूपी तक्षक ने फूल से निकलकर जैसे परीक्षित को काट लिया वैसे ही राजा का शरीर जलकर राख हो गया और चैतन्य आत्मा दिव्य विमान पर बैठकर वैकुण्ठ में पहुँचा। तक्षक साँप वहाँ से उड़कर इन्द्रलोक में चला गया। यह हाल देखकर जितने लोग उस जगह बैठे थे रोने लगे। नगरवालों ने यह समाचार सुनकर बड़ा शोक किया। जनमेजय ने अपने पिता परीक्षित को दाह देकर शास्त्रानुसार उनका क्रिया-कर्म किया और मंत्रियों की इच्छानुसार राजसिंहासन पर बैठा। जो लोहार वृक्ष के साथ जलकर फिर जी उठा था उसने हस्तिनापुर में आकर वहाँ का सब हाल तक्षक साँप और धन्वन्तरि ब्राह्मण से जो बातें हुई थीं, ज्यों की त्यों सब लोगों से कहीं। यह समाचार परीक्षित के मन्त्रियों ने सुनकर तक्षक से बहुत बुरा माना। जब जनमेजय को बारह वर्ष राजगद्दी पर बैठे हो चुके तब उसने भी मन्त्रियों से तक्षक

व धन्वन्तरि की बातचीत का हाल सुनकर बहुत क्रोध करके कहा कि तक्षक ने शृंगीऋषि के शाप देने से मेरे पिता को काटा तो उसका दोष नहीं था, पर उसने धन्वन्तरि वैद्य को राह में द्रव्य देकर हस्तिनापुर आने से बर्जा इसलिए मैं उसे अपना शत्रु समझकर इस तरह सब साँपों को अपने पिता के बदले जला डालूँगा जिसमें उनका वंश संसार में न रहे। यह बात विचारकर जनमेजय ने ब्राह्मणों और ऋषीश्वरों को बुलाकर उनसे विनय किया कि आप लोग कोई ऐसा यज्ञ कराइए जिसमें सब साँप जलकर मर जावें। ब्राह्मणों ने कहा बहुत अच्छा, सर्पसत्र यज्ञ करने से सब साँप आप से आप आकर जल जाते हैं, वही करो। जब जनमेजय ने सारस्वत ब्राह्मण को आचार्य बनाकर वह यज्ञ करना आरम्भ किया तब मंत्र के प्रभाव से हजारों साँप दौड़े हुए वहाँ चले आये और आहुति देते समय अग्निकुण्ड में गिरने और जलने लगे। जब इसी तरह करोड़ों सर्प उस यज्ञ में जलकर मर गये और तक्षक अपने प्राण के डर से इन्द्र की शरण में जा छिपा, इसलिए यज्ञशाला में नहीं पहुँचा, तब जनमेजय ने ब्राह्मणों से पूछा कि महाराज! सब साँप जलकर मरे जाते हैं, पर मेरा शत्रु तक्षक अभी तक क्यों नहीं आया। ब्राह्मणों ने उत्तर दिया कि तक्षक साँप इन्द्र की रक्षा करने से अब तक यहाँ आकर नहीं जला। यह बात सुनकर जनमेजय ने यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणों से कहा कि महाराज! मेरे शत्रु की रक्षा करने से इन्द्र भी मेरा वैरी ठहरा, क्या तुम्हारा मंत्र ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता कि तक्षक इन्द्रसमेत यहाँ आकर जल जावे? ऋषीश्वरों ने उत्तर दिया कि परमेश्वर की दया से मंत्र में सब सामर्थ्य है। हम लोग तुम्हारे कहने से वैसा ही मंत्र पढ़ेंगे। जैसे ब्राह्मणों ने वही मंत्र पढ़कर अग्निकुण्ड में आहुति डाली वैसे ही राजा इन्द्र का सिंहासन जिसके नीचे वह सर्प बैठा था, तक्षक समेत उड़ा। यह हाल देखकर वासुकिनाग के नाती आस्तीक ने बृहस्पति पुरोहित से कहा कि यदि इस समय आप कुछ सहायता इन्द्र व तक्षक की नहीं करते तो ये दोनों अग्निकुण्ड में जलकर मर जावेंगे। तब बृहस्पति गुरु ने आस्तीक को साथ लिए हुए यज्ञशाला में जाकर,

अंगिरसगोत्री ब्राह्मण यज्ञ करानेवालों से जो उनके कुल में थे, कहा कि तुम लोग आहुति देने में थोड़ी देर लगाकर यही पूर्णाहुति की जनमेजय से दक्षिणा माँग लो, जिसमें इन्द्र व तक्षक का प्राण बच जावे। जब मन्त्र के प्रभाव से इन्द्र का सिंहासन तक्षक समेत उड़ता हुआ यज्ञशाला में आ पहुँचा। तब बृहस्पति गुरु और आस्तीक ने बहुत स्तुति करने के उपरान्त जनमेजय से कहा—हे राजन्! परीक्षित को ब्राह्मण के शाप से मरना लिखा था, इसमें तक्षक का कुछ दोष नहीं है। तक्षक सब सर्पों का राजा है, अमृत पीने से वह मर नहीं सकता, और तुम जो समझते हो कि तक्षक के काटने से हमारा बाप मरा, सो यह बात ज्ञान के बाहर है। मरना-जीना, दुःख-सुख, हानि-लाभ परमेश्वर की इच्छा और अपने प्रारब्ध से होता है। जिस तरह संसारी लोग आग से जलने, पानी में डूबने, शस्त्र द्वारा मारने, साँप के काटने, बाघ के खाने, स्थान से गिरने, विष देने, और अनेक रोगादिक से जैसा जिसके प्रारब्ध में लिखा रहता है मर जाते हैं, पर एक बहाना होकर मृत्यु का नाम कोई नहीं लेता, उसी तरह तुम्हारा पिता भी अपने प्रारब्धानुसार तक्षक साँप के काटने से मरकर मुक्ति पदवी पर पहुँचा। तुमने एक तक्षक के बदले करोड़ों सर्प बिना अपराध जलाकर मार डाले। ज्ञानी व धर्मात्मा को ऐसा न चाहिए। अब अपना क्रोध क्षमा करके यह यज्ञ मत करो, परीक्षित का मरना अपने प्रारब्ध से समझकर और सर्पों को न जलाओ। किसी के मारने से कोई नहीं मरता। उन परमेश्वर को दण्डवत् करनी चाहिए जिनकी माया से लोगों को यह अभिमान उत्पन्न होता है कि हमने अपने शत्रु को मारकर जीत लिया। नारायणजी केवल यह बात कहने के लिए बनाकर सबका मारना व जिलाना अपने अधीन रखते हैं। दूसरे किसी को यह सामार्थ्य नहीं है जो इस विषय में कुछ कर सके। जब यह बात बृहस्पति गुरु और आस्तीक नाग से सुनकर जनमेजय को ज्ञान उत्पन्न हुआ तब उसने ब्राह्मणों से कहा कि पूर्णाहुति अग्नि में मत डालो। उस समय तक्षक ने जनमेजय को ऐसा वरदान दिया कि जो लोग हमारा व तुम्हारा नाम स्मरण करेंगे उनको कोई सर्प न काटेगा।

जब जनमेजय ने ऋषीश्वरों और ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर बिदा किया तब बृहस्पति गुरु, जिनकी दया से इन्द्र व तक्षक के प्राण बचे थे, उनको अपने साथ लेकर चले गये। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने श्यामसुन्दर को ध्यान में दण्डवत् करके शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि हमने अमृतरूपी भागवतपुराण तुम लोगों को सुना दिया, इसके प्रताप से सब पाप छूटकर तुम्हारी मुक्ति हो जावेगी।

—:०:—

सातवाँ अध्याय।

सूतजी का शौनकादिक ऋषीश्वरों से शुभाशुभ कर्मों का फल कहना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि इन्द्रादिक देवताओं को परमेश्वर की यह आज्ञा है कि जो मनुष्य जैसा पुण्य, यज्ञ व तप आदि करे उसको वैसा स्वर्ग देना चाहिए और पाप करनेवालों को धर्मराज उनके कर्मानुसार नरक में भेज देवें। जो लोग केवल परमेश्वर का भजन व स्मरण करते हैं उनको इन्द्रपुरी से ऊपर ब्रह्मलोक में जगह मिलती है। नारायणजी की निर्गुण पूजा व भजन करनेवाले वैकुण्ठ में जाकर महाप्रलय तक वहाँ का सुख भोगते हैं। राजा परीक्षित भी भागवतपुराण सुनने से श्यामसुन्दर के प्रेम में लीन होकर वैकुण्ठ को चला गया। जितना यज्ञ, तप, भजन व स्मरण संसारी लोग करते हैं उसमें एक किसी अर्थ के चाहने और दूसरा किसी इच्छा के बिना होता है। हमने दोनों तरह का हाल इस भागवत में तुम लोगों को सुना दिया। अठारहों पुराण में श्रीमद्भागवत उत्तम है। यह बात सुनकर शौनकादिक ऋषीश्वरों ने अठारहों पुराणों के नाम पूछा। तब सूतजी ने कहा—ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुड़पुराण, नारदपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, बाराहपुराण, नृसिंहपुराण, ब्रह्माण्डपुराण और भागवतपुराण हैं। इन सब पुराणों में परमेश्वर का गुण व चरित्र वर्णन किया है। किसी पुराण में सात्त्विकी, किसी में राजसी और किसी में तामसी धर्म लिखा है। श्रीमद्भागवत में केवल

सात्त्विकी धर्म और भगवद्गुण वेदव्यासजी ने वर्णन किये हैं, सो हमने तुमको सुनाया, अब और क्या सुना चाहते हो।

आठवाँ अध्याय।

सूतजी का मार्कण्डेय ऋषीश्वर की उत्पत्ति को कहना।

शौनकादिक ऋषीश्वरों ने इतनी कथा सुनकर पूछा—हे सूतजी! आपने परमेश्वर का गुण व चरित्र हम लोगों को सुनाकर कृतार्थ किया। तुम चिरंजीव रहो। हम लोग अब यह सुना चाहते हैं कि हमारे कुल में मार्कण्डेय ऋषीश्वर ने परमेश्वर की माया किस तरह देखकर वैकुण्ठ-नाथ का दर्शन पाया और व्यासजी ने सब वेदों को किस तरह अलग-अलग वर्णन किया। सूत पौराणिक ने कहा—जब ब्रह्मा ने देखा कि कलियुग के मनुष्य थोड़ी आयु होने से सब वेद पढ़ न सकेंगे तब ब्रह्मा के विनय करने से नारायणजी ने वेदव्यास का अवतार धारण करके वेदों का सार निकाल लिया और उसका नाम विलग-विलग रखकर वह सब अपने चेलों को पढ़ाया। जो पुराण वेदों में से निकाला था उसका नाम मार्कण्डेयपुराण रक्खा। यह सुनकर ऋषीश्वरों ने पूछा कि पहिले यह बतलाइये कि मार्कण्डेय ने इतनी बड़ी आयु किस तरह पाई थी। सूतजी ने कहा—मृकण्ड नाम एक ऋषीश्वर थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। जब ऋषीश्वर ने सन्तान उत्पन्न होने के लिए देवताओं के नाम पर बहुत तप व होम किया तब देवताओं ने दर्शन देकर कहा—हे ऋषीश्वर! तुम्हारे भाग्य में बेटा नहीं लिखा है, पर तप व होम करने के प्रताप से तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होकर बारह वर्ष की अवस्था में मर जायगा। यह सुनकर ऋषीश्वर ने विनय किया कि मैं सन्तान होने की इच्छा रखता हूँ, बारह वर्ष का होकर मर जायगा तो मैं सन्तोष कर लूँगा। जब देवताओं के आशीर्वाद से मृकण्ड के पुत्र उत्पन्न हुआ तब ऋषीश्वर ने उसका नाम मार्कण्डेय रक्खा। जब वह बालक बारह वर्ष का हुआ तब उसके माता-पिता रोने लगे। मार्कण्डेय ने उनको रोते देखकर पूछा कि तुम लोग क्यों इतना विलाप करते हो? उन्होंने कहा कि हे बेटा! अब

तुम्हारे मरने का दिन निकट आ पहुँचा, यही समझकर हम लोग रो देते हैं। यह सुनकर मार्कण्डेय बोले कि संसार में कोई ऐसा उपाय भी है जिसके करने से हम जीते रहें ? उसके माता-पिता ने कहा कि हे बेटा ! नारायणजी की दया से मनुष्य के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। यह वचन सुनते ही मार्कण्डेय वन में जाकर परमेश्वर का तप व ध्यान करने लगा। जब उसे छः मन्वन्तर तप करते बीत गये तब राजा इन्द्र ने डरकर विचारा कि यह ब्राह्मण तप करके मेरा इन्द्रासन छीन लेगा। यह विचारकर इन्द्र ने कामदेव, वसन्तऋतु, गन्धर्व और अप्सराओं को मार्कण्डेय की तपस्या भंग करने के लिए भेजा। उन्होंने हिमालय पहाड़ से उत्तर ओर भद्रा नदी के किनारे, जहाँ मार्कण्डेय शिला पर बैठा हुआ तप करता था, पहुँचकर क्या देखा कि वहाँ घने-घने वृक्षों की छाया है, अनेक रंग के सुगन्धित फूल-फल लगे हैं, कोकिला और मोर आदि अनेक पक्षी बैठे हुए सोहावनी बोली बोल रहे हैं। यह शोभा देखकर कामदेव आदि मोहित हो गये। जब प्रातःकाल मार्कण्डेय अग्निहोत्र करके वहाँ पर बैठे उसी समय अप्सराएँ उनके सामने नाचकर भाव बतलाने लगीं। गन्धर्वों ने अनेक बाजा बजाकर छः राग व छत्तीस रागिनी गाये। कामदेव ने कोकिलारूप होकर कामरूपी बाण चलाया। वसन्तऋतु की महिमा से बहुत उत्तम बाग वहाँ तैयार हो गया और शीतल मन्द सुगन्ध हवा बहने लगी। जब नाचते समय एक अप्सरा का कपड़ा हवा से उड़ गया तब वह नंगे बदन गेंद उछालती हुई मार्कण्डेय के निकट चली आई, पर मार्कण्डेय का चित्त कुछ चलायमान नहीं हुआ। जब अनेक उपाय करने पर भी कामदेव और अप्सरा आदि का कुछ वश उन पर नहीं चला तब वे लोग शाप के डर से भागकर काँपते हुए इन्द्र के पास लौट आये और बहुत लज्जित होकर बोले—महाराज ! हमारा पराक्रम मार्कण्डेय पर कुछ नहीं चलता। यह हाल सुनकर इन्द्रादिक देवताओं ने बहुत आश्चर्य माना। देवता लोग मार्कण्डेय के दर्शन के लिए वहाँ जाकर उनकी स्तुति करके चले आये। जब इसी तरह कुछ दिन और मार्कण्डेय को तप करते बीते तब नारायणजी गरुड़ पर बैठकर वहाँ गये और अपने चतुर्भुजी

स्वरूप का दर्शन मार्कण्डेय को देकर कहा कि जो कुछ तुझे इच्छा हो सो वरदान माँग। मार्कण्डेय ने वैकुण्ठनाथ को देखते ही दण्डवत् किया और परिक्रमा करके स्तुति करने उपरांत हाथ जोड़कर बोला—हे दीनानाथ! मैं अपनी आयु अधिक चाहता हूँ। त्रिभुवनपति ने कहा कि तू एक कल्पांत तक जीता रहेगा। ऐसा कहकर लक्ष्मीपति वैकुण्ठ को चले गये।

नवाँ अध्याय।

नारायणजी का मार्कण्डेय को महाप्रलय का कौतुक दिखलाना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जब मार्कण्डेय ब्रह्मा के एक दिन प्रमाण आयु पाने पर भी उसी तरह तप व ध्यान करता रहा तब कुछ दिन उपरांत नारायणजी ने मार्कण्डेय को फिर दर्शन देकर कहा कि अब तू क्या चाहता है? मार्कण्डेय हाथ जोड़कर बोला—हे महाप्रभु! अब मुझे किसी वस्तु की चाह नहीं है, पर तुम्हारी माया का थोड़ा-सा कौतुक देखना चाहता हूँ, जिस माया से आप सब जीवों को उत्पन्न करके फिर नाश कर देते हैं। वैकुण्ठनाथ ने कहा कि बहुत अच्छा, आजके सातवें दिन हम तुझे अपनी माया दिखलावेंगे, पर तुम चैतन्य रहकर मुझे भूल मत जाना। भूलने से तुम्हारा पता नहीं लगेगा। मार्कण्डेय ने विनय किया—हे त्रिभुवनपति! मैं आपको कभी न भूलूँगा। जब यह बात सुनकर नारायणजी वैकुण्ठ को चले गये तब मार्कण्डेय भी वहाँ से अपने स्थान पर चला आया। जब सातवें दिन मार्कण्डेय ने नदी के किनारे बैठकर तप करते समय महाप्रलय को देखना चाहा तब क्या दिखलाई दिया कि एक ओर से बड़ी आँधी उठकर मारे धूर के अँधियारा छा गया। यह हाल देखकर मार्कण्डेय ने मन में कहा कि हमने आज तक ऐसी आँधी कभी नहीं देखी। फिर चारों ओर से पानी उमड़ा हुआ आकर जहाँ वह बैठा था वहाँ अथाह जल हो गया। उस पानी में वह गोता खाने लगा। कभी गोता खाकर जल में डूब जाता, कभी पानी के वेग से ऊपर निकल आता, कभी घड़ियाल आदि जलचर उसको निगल जाते और कभी अपने मुख से उगिल देते थे। जब मार्कण्डेय की समझ में हजारों वर्ष

तक उसका यह हाल हुआ तब वह अपने मन में बहुत लज्जित होकर कहने लगा कि मुझसे बड़ी चूक हुई जो ऐसा वरदान माँगकर इस दशा को पहुँचा। अब परमेश्वर से यह चाहता हूँ कि नारायणजी दया करके मुझको इस पानी से जीता बाहर निकालें। मार्कण्डेय को भगवान्‌जी का ध्यान करते ही जब मायारूपी जल में एक टापू व बरगद का वृक्ष दिखलाई दिया तब उसने प्रसन्न होकर मन में कहा कि हे परमेश्वर! मुझे किसी तरह इस टापू तक पहुँचा दे तो बरगद की डाली पकड़कर अपने प्राण बचा लूँ। जब मार्कण्डेय भगवान् की दया से उस वृक्ष के पास पहुँच गया तो उसने क्या देखा कि बरगद का एक पत्ता दोने के समान बना है, उसमें बारह-तेरह दिन की अवस्था का एक बालक श्यामरंग चन्द्रमुख कमलनयन अति सुन्दर सोता हुआ अपने पैर का अँगूठा हाथ में पकड़े मुँह में डाले चूसता है। जब मार्कण्डेय निकट जाकर उस बालक की छबि देखने लगे तब बालकरूपी भगवान् ने अपना श्वास खींचा तो मार्कण्डेय मच्छड़ की तरह उनके नाक में घुस गया और वहाँ पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, सातों द्वीप, नवों खण्ड, दशों दिशाएँ, आठों लोकपाल, तालाब, वृक्ष, नगर, ग्राम, समुद्र, पहाड़, चाँदी व सोने की खानि, ऋषीश्वरों व मुनीश्वरों के स्थान और अपना स्थान आदि सब संसारी वस्तुओं को उस स्वरूप में देखकर आश्चर्य माना। जब श्वास छोड़ते समय नाक के बाहर निकल आया तब उसने फिर उस बालक को उसी तरह देखकर चाहा कि उसे गोद में उठाकर प्यार करें। ऐसा विचारकर मार्कण्डेय ने जैसे उस बालक को उठाना चाहा वैसे ही बालकरूप भगवान् मायारूप पानी व वृक्ष समेत अन्तर्धान हो गये। मार्कण्डेय अपनी समझ में करोड़ों वर्ष तक माया का कौतुक देखकर जब चैतन्य हो गया तब उसने अपने को ज्यों का त्यों नदी के किनारे बैठा पाया और विचारा तो दो घड़ी से अधिक बिलम्ब नहीं हुआ था।

यह बात सुनकर शिवजी ने कहा कि तुम एक कल्प तक चिरंजीव रहकर कभी बूढ़े न होगे। तुमको सदा मेरी और नारायणजी की भक्ति बनी रहेगी और अठारहों पुराणों में एक पुराण तुम्हारे नाम से प्रकट होगा। यह वरदान देकर शिवजी वहाँ अन्तर्धान होकर कैलास पर्वत पर चले गये। मार्कण्डेय ऋषीश्वर का सब हाल उत्पन्न होने, तपस्या करने और वरदान पाने का पार्वती से वर्णन किया। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि तुमने मार्कण्डेय ऋषीश्वर का हाल जो पूँछा हमने सुना दिया।

—:o:—

ग्यारहवाँ अध्याय।

शौनकादिक ऋषीश्वरों का सूतजी से शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि का हाल पूछना।

शौनकादिक ऋषीश्वरों ने इतनी कथा सुनकर पूछा—हे सूतजी! परमेश्वर के पूजन करने की विधि वर्णन कीजिए और यह बतलाइए कि शंख, चक्र, गदा, पद्म, शस्त्र, वैजयन्ती माला और पीताम्बर जो आठों पहर नारायणजी धारण किये रहते हैं, ये सब कौन वस्तु हैं? सूतजी ने कहा कि तुम लोग बड़ी गुप्त बात पूछते हो, इसलिए मैं अपने गुरु वेदव्यास को दण्डवत् करके कहता हूँ, सुनो। यह ब्रह्माण्ड भगवान् का रूप है। पृथ्वी पैर, आकाश शिर, सूर्य आँखें, वायु नाक, दशों दिशाएँ कान, लोकपाल भुजा, चन्द्रमा मनु, यमराज दाँत, वृक्ष शरीर के रोयें, मेघ घटा शिर के बाल, पहाड़ तनु की हड्डी, समुद्र पेट, नदियाँ शरीर की नसें होकर सब व्यवहार संसार का विराट्रूप में समझना चाहिए। जो मनुष्य उस रूप का ध्यान लगाकर सब जीवों में परमेश्वर की शक्ति बराबर देखता है और काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि के वश न होकर किसी से शत्रुता व मित्रता नहीं रखता व कौस्तुभमणि नारायणजी की ज्योति, वैजयन्ती माला माया, पीताम्बर चारों वेद, जनेऊ का जोड़ा ओंकार, कानों का कुण्डल सांख्यशास्त्र व योगशास्त्र मुकुट, ब्रह्मलोक व शेषनाग उनके बैठने का सिंहासन, पद्म सतोगुण, गदा पराक्रम, शंख जलतत्त्व, सुदर्शनचक्र अग्नि तत्त्व, खड्ग आकाशतत्त्व,

शार्ङ्गधनुष कालरूप होकर परमेश्वर के तरकस में सब जीवों का कर्म भरा रहता है। वैकुण्ठ परमेश्वर का छत्र, गरुड़ वेदरूप, लक्ष्मीजी शक्ति, नन्द व सुनन्दादिक पार्षद उनकी विभूति हैं। नारायणजी अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर अपना भूषण व वस्त्र पहिने व शंख लिए हुए दर्शन देते हैं। उनका चरित्र कोई नहीं जान सकता। हमने गुरु की कृपा से यह सब कथा तुमको सुनाई। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर नारायणजी का ध्यान शंख, चक्र, गदा आदि समेत करता है, उस पर तुरन्त प्रसन्न होकर उसे कृतार्थ कर देते हैं। इतनी कथा सुनकर ऋषीश्वरों ने पूछा कि बारहों महीने में सूर्य भगवान् नये-नये रूप पृथक्-पृथक् नाम से जो प्रकाश करते हैं उनका क्या कारण है? सूतजी बोले कि सूर्य देवता भगवान्जी का एक स्वरूप है, सो क्षण घड़ी और पहर के पहिचान करने का ज्ञान उनके प्रकाश से मालूम होता है। चैत के महीने में सूर्य धाता नाम से प्रकाश करते हैं। कृतस्थली अप्सरा उनके आगे नाचती और तुम्बुरु गन्धर्व गाना सुनाता है। हेती राक्षस उनका रथ पीछे ढकेलता है। वासुकि नाग उस रथ में रस्सी बाँधने और कृतयक्ष उसकी मरम्मत करने के लिए बने रहते हैं। पुलस्त्य नाम ऋषीश्वर उनके साथ रहकर स्तुति करते जाते हैं। वैशाख में सूर्य का नाम अर्यमा होता है। पुलह नाम ऋषीश्वर, उरजा नाम यक्ष, प्रहेती राक्षस, पुंजस्थली अप्सरा, नारद गन्धर्व और कुक्षनीर नाग, उनके साथ रहकर अपना-अपना काम करते हैं। ज्येष्ठ में सूर्य का नाम मित्र होता है। अत्रि ऋषीश्वर, पौरुषेय राक्षक, तक्षक नाग, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथस्व यक्ष उनके साथ रहते हैं। आषाढ़ में सूर्य का वरुण नाम होता है। वशिष्ठ ऋषीश्वर, रम्भा अप्सरा, हूहू गन्धर्व, सहजन्य यक्ष, सर्वज्ञ नाग, चित्रसेन राक्षस उनके साथ रहते हैं। सावन में सूर्य का नाम इन्द्र होता है। विश्वावसु गन्धर्व, परमलोचा अप्सरा, श्रोता यक्ष, वर्य नाम राक्षस उनके साथ रहते हैं। भादों में सूर्य का विवस्वान नाम होता है। उग्रसेन गन्धर्व, व्याघ्र नाम राक्षस, असारन यक्ष, भृगु ऋषीश्वर, निम्लोचा अप्सरा, शंखपाल, नाग उनके साथ रहते हैं। कुवार में सूर्य का त्वष्टा

नाम होता है। जमदग्नि ऋषीश्वर, कामल नाग, तिलोत्तमा अप्सरा, धृतराष्ट्र गन्धर्व, बृहद्दती राक्षस, सत्यजित यक्ष उनके साथ रहते हैं। कार्त्तिक में सूर्य का विष्णु नाम होता है। अश्वतर नाग, रम्भा अप्सरा, सुवर्चा गन्धर्व, सत्यजित यक्ष, विश्वामित्र ऋषीश्वर, घृतापी राक्षस उनके साथ रहते हैं। अगहन में सूर्य का अंशुमान नाम होता है। कश्यप ऋषीश्वर, तार्क्ष यक्ष, ऋतुसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, विन्दाछत्र राक्षस, महाशंख नाग उनके साथ रहते हैं। पूस में सूर्य का भग नाम होता है। सुवर्च नाम राक्षस, अरिष्टनेमि गन्धर्व, परण यक्ष ऋषीश्वर, करकोटक नाग, पूर्वचित्ती अप्सरा उनके साथ रहते हैं। माघ में सूर्य का पुरुष नाम होता है। धनञ्जय नाग, बात नाम राक्षस, सुखेन गन्धर्व, सुरुचि यक्ष, घृताची अप्सरा, गौतम ऋषीश्वर उनके साथ रहते हैं। फागुन में सूर्य का नाम पर्जन्य होता है। क्रतु नाम यज्ञ, सुवर्चा राक्षस, विश्व गन्धर्व, ऐरावत नाम यज्ञ, सेनजिता अप्सरा सूर्य के साथ रहकर अपना-अपना काम करते हैं। इतनी कथा सुनाकर सूतजी ने कहा—हे ऋषीश्वरो! जो मनुष्य प्रातःकाल व सन्ध्यासमय सूर्य भगवान् का स्मरण करके इन सब ऋषीश्वर आदि का नाम लेवे वह अनेक जन्म के पापों से छूटकर परम गति को पाता है।

बारहवाँ अध्याय।

सूतजी का श्रीमद्भागवत की सम्पूर्ण कथा कहना।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जो अमृतरूपी कथा श्रीमद्भागवत हमने तुमको सुनाई उसमें आदि से अन्त तक सब लीला व चरित्र परमेश्वर का लिखा है। पहिले व्यासजी व नारद का संवाद, फिर राजा परीक्षित की कथा, जिस तरह उनको शृंगी ऋषि ने शाप दिया था फिर शुकदेवजी का राजा परीक्षित के पास आने का हाल, फिर नारद व ब्रह्माजी से बातचीत, अवतारों की कथा, विदुर व उद्धव से भेंट, मैत्रेयजी का विदुर को मुख्य ज्ञान सुनाना, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति वर्णन करना, परमेश्वर का वाराह अवतार धरकर हिरण्याक्ष को मारना,

कपिलदेव अवतार लेकर अपनी माता देवहूती को सांख्ययोग ज्ञान सिखलाना, सतीजी के तनु त्याग करने और यज्ञ विध्वंस होने का हाल, राजा ध्रुव, पृथु, प्राचीनबर्हिष, पुरंजन और प्रियव्रत की कथा, सातों द्वीप, सातों समुद्र, नवों खण्ड का हाल, वृत्रासुर दैत्य का मारना, नरसिंह अवतार लेना, प्रह्लाद भक्त की रक्षा करना, गजेन्द्रमोक्ष कथा, कच्छप अवतार, चौदहों रत्न निकालने और समुद्र मथने का हाल, राजा बलि व वामन अवतार की कथा, राजा पुरूरवा व उर्वशी अप्सरा का हाल, सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, परशुराम, रामचन्द्र अवतार, राजा दुष्यन्त, रानी शकुन्तला, राजा ययाति, देवयानी और यदु जिनके वंश में श्यामसुन्दर त्रिभुवनपति ने वसुदेवजी के घर अवतार धारण किया, श्यामसुन्दर का गोकुल में जाना और अनेक लीला करके नन्द व यशोदा आदि सब व्रजवासियों को सुख देना व फिर मथुरा में आकर राजा कंस को मारना, जरासन्ध आदि से युद्ध करना, द्वारकापुरी बसाना, रुक्मिणी आदि आठों पटरानियों के ब्याह का हाल, भौमासुर को मारकर सोलह हजार एक सौ कन्या उनके यहाँ से लाकर विवाह करना, बड़े-बड़े दैत्यों और अधर्मी राजाओं को मारना, कौरव-पांडवों से महाभारत कराके पृथ्वी का भार उतारना, छप्पन करोड़ यदुवंशियों का दुर्वासा ऋषीश्वर के शाप से नाश करना और श्रीकृष्णजी का वैकुण्ठ में चले जाना, हे ऋषीश्वरो! हमने सम्पूर्ण कथा श्रीमद्भागवत्, मार्कण्डेय ऋषीश्वर का हाल और सूर्य भगवान् की कथा तुम लोगों को सुना दी। संसारी मनुष्यों को उचित है कि जिह्वा से आठों पहर परमेश्वर का नाम लेकर कानों से उनकी कथा व लीला सुनें। नारायणजी के गुण व महिमा की चर्चा आपस में रखकर थोड़ा या बहुत जहाँ तक बन पड़े हरिचरणों में ध्यान लगावें। सब जीवों पर दया रखकर अपनी सामर्थ्य भर मनसा वाचा कर्मणा उपकार करते रहें। मनुष्यतनु पाने का यही फल समझना चाहिए। जैसा व्यासजी ने भागवतपुराण में परमेश्वर का निर्मल यश लिखा है वैसा दूसरे पुराणों में वर्णन नहीं किया। जिन शुकदेवजी महाराज की दया से हमने अमृतरूपी कथा तुमको सुनाई उन्हें बारम्बार

दण्डवत् करता हूँ। जितना फल ब्राह्मण को चारों वेद पढ़ने से प्राप्त होता है उतना फल एक श्रीमद्भागवत पढ़ने व सुनने में जानना चाहिए। क्षत्रिय को इसके पढ़ने व सुनने से विजय और वैश्य को व्यापार में लाभ होता है। मरने के उपरांत मुक्ति पदवी मिलती है। शूद्र के सब पाप छूट जाते हैं।



तेरहवाँ अध्याय।

अठारहों पुराणों का हाल।

सूतजी ने शौनकादिक ऋषीश्वरों से कहा कि जिन भगवान् के चरणों का ध्यान ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, उनचास मरुद्गण, कुबेर आदि, देवता, ऋषीश्वर, योगी और मुनि अपने हृदय में रखकर दिन-रात उनका स्मरण व भजन करते हैं और उनके आदि अन्त को किसी ने नहीं पाया उनको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने देवताओं की रक्षा करने और अमृतादिक चौदहों रत्न के निकालने के लिए कच्छपरूप धारण किया था उनको मेरी हजारों दण्डवत् पहुँचे। हे ऋषीश्वरो! अठारहों पुराण में जितने-जितने श्लोक हैं उनके हाल सुनो। ब्रह्मपुराण दश हजार, पद्मपुराण पचपन हजार, विष्णुपुराण तीस हजार, शिवपुराण चौबीस हजार, श्रीमद्भागवतपुराण अठारह हजार, नारदपुराण पच्चीस हजार, मार्कण्डेयपुराण नव हजार, अग्निपुराण पन्द्रह हजार चार सौ, भविष्यपुराण चौदह हजार पाँच सौ, ब्रह्मवैवर्तपुराण अठारह हजार, लिंगपुराण ग्यारह हजार, बाराहपुराण चौबीस हजार, स्कन्दपुराण इक्यासी हजार एक सौ, वामनपुराण दश हजार, कूर्मपुराण सत्रह हजार, मत्स्यपुराण चौदह हजार, गरुड़पुराण उन्नीस हजार और ब्रह्माण्डपुराण में बारह हजार श्लोक हैं। श्रीमद्भागवत का सार चार श्लोक नारायणजी ने ब्रह्माजी से कहा, ब्रह्माजी ने उसका हाल नारद से बतलाया, नारद ने व्यासजी को उपदेश किया और वेदव्यास ने अठारह हजार श्लोकों में यह सब हाल विस्तारपूर्वक लिखकर उसका नाम भागवतपुराण रक्खा। इस पुराण के आदि, मध्य और अन्त में नारायणजी का सब चरित्र वर्णन किया है। जो लोग

इस पुराण को भादों सुदी पूर्णमासी के दिन सुनहले सिंहासन पर धरकर वेद व पुराण जाननेवाले ब्राह्मणों को दान करते हैं उनको परमपद मिलता है। श्रीमद्भागवत महापुराण सत्रहों पुराणों से उत्तम है, चारों वेदों का सार इसमें लिखा है। जिस तरह नदियों में गंगा, देवताओं में नारायण और तपस्या करनेवालों में महादेवजी बड़े हैं उसी तरह सब पुराणों में भागवतपुराण उत्तम है। इस पुराण के पढ़ने व सुनने से हमारी व तुम्हारी दोनों की गति हो जावेगी। जिनके नाम लेने और दण्डवत् करने से सब पाप और दुःख छूट जाते हैं उन परमेश्वर, वेदव्यास और शुकदेव महाराज को दण्डवत् करता हूँ। जिस तरह देवता लोग स्वर्ग में रहकर अमृत पीने से नहीं मरते उसी तरह संसार में जो लोग अमृतरूपी भागवतपुराण को सच्चे मन से पढ़ व सुनकर उस पर विश्वास रक्खेंगे उनको संसार में रोगादिक का दुःख न होगा, भूत-प्रेत आदि का भय छूट जायगा और अशुभ ग्रहों का फल नहीं व्यापेगा।

दो० चूहामलसुत विमलमति गञ्जनलाल कुमार। गो ब्राह्मणहरिचरणरतमाखनलालउदार॥

सो० बिरच्यो माखनलाल श्रीमद्भाषा भागवत। सुनत कटै भवजाल अन्त समय हरिपुरवसै॥

जे जन परमसुजान भूली लेव सुधारि मम। बाल बुद्धि अज्ञान वेदशास्त्र जानौं नहीं॥

इति श्रीक्षत्रियवंशावतंस काशीवासी श्रीकृष्णदास मक्खनलालकृत श्रीमद्भागवतभाषा सुखसागरे द्वादशस्कन्धः समाप्तः॥

शुभम्भूयात्॥ श्रीकृष्णाय नमः॥

---

* हमारे अमूल्य प्रकाशन *

अमृत सागर	११)
भैषज्य रत्नावली	१६)
माधव निदान	७)
हंसराज निदान	२)
मदनपाल निघण्टु	३)
पथ्या पथ्य	)७५पैसे
दिल्लग्न चिकित्सा	)७५पैसे
मन्थर ज्वर चिकित्सा	२)
नींबू के सौ उपयोग	)३७पैसे
नीम के सौ उपयोग	)३१पैसे
डाक्टर शहद	)५६पैसे
डाक्टर तुलसी	)५६पैसे
इलाजुलगुर्बा हिन्दी	४)
वृहत्पाकावली	१)
शिवसिंह सरोज	९)
भक्तिसागर चरणदास	१०)
शार्ङ्गधर सटीक	१२)
योगवाशिष्ठ सम्पूर्ण २ भागों में	२२)
वृजविलास	९)
प्रेम सागर	६)
भगवद्गीता भाषा सजिल्द	३)
दुर्गा मूल खुलापत्रा	१)३०पैसे
गरुड़ पुराण सटीक	३)
एकादशी माहात्म्य सटीक	२)
सत्य नारायण रेवा खण्डी	)६० पैसे
विवाह पद्धत्ति सटीक	१)५०पैसे
भक्तमाल नाभा जी टीका प्रियादास	१६)
सुखसागर मध्यम	१६)
श्रीमद्भागवत (सुखसागर) उर्दू	१६)
तुलसीदास कृत रामायण टीका पं० सूर्यदीन	१५)
तुलसीदास कृत रामायण टीका लक्ष्मण प्रसाद भारद्वाज	१४)
स्त्रीसुबोधिनी	७)
वृहज्योतिस्सार सटीक	६)
वृहज्जातक सटीक	३)
महाभारत भाषा	१५)
महाभारत दोहा चौपाई सबल सिंह	१०)
फल प्रकाश	)३७ पैसे
चाणक्य नीतिदर्पण	)५० पैसे
रामायण वालमीकी हिन्दी सम्पूर्ण २ भागों में	२२)

मिलने का पता—

मैनेजर—तेजकुमार-बुकडिपो,

उत्तराधिकारी—(**नवलकिशोर-प्रेस-बुकडिपो**)

हजरतगंज, लखनऊ ।

मुरलीधर मिश्र द्वारा तेजकुमार—प्रेस, लखनऊ में मुद्रित ।

19.6.76	95		
11.5.77	113		